कृष्णदास संस्कृत सीरीज १२७

कादम्बरी

सविमर्श–'भावबोधिनी'–संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याद्वयोपेता

(उत्तरार्द्ध)

सम्पादको व्याख्याकारश्च
डॉ० जयशंकर लाल त्रिपाठी



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी-२२१००१

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
१२७
****

श्रीमद्बाणभट्टसुतेन भूषणभट्टेन विरचिता

कादम्बरी

(उत्तर भागः)

सविमर्श 'भावबोधिनी'-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याद्वयोपेता

सम्पादको व्याख्याकारश्च
प्रो० डॉ० जयशङ्करलाल त्रिपाठी
आचार्यः (लब्धस्वर्णपदकः), एम.ए., पी-एच.डी, डी. लिट्
आचार्यः, संस्कृत विभागः, कलासंकायः
काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
१९९८

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०५४

पो० बा० नं० ११९८
के० ३७/११८, गोपाल मंदिर लेन,
वाराणसी-२२१००१
(भारत)
फोन : ३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० १००८, वारणसी-२२१००१ (भारत)

आफिस : ३३३४५८
आवास : ३३४०३२ एवं ३३५०२०

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES

127

KĀDAMBARĪ

(UTTARA-BHĀGA)

OF

ŚRI BHŪṢAṆA-BHAṬṬA

SON OF BĀṆABHAṬṬA

Edited with the

'BHAVABODHINĪ' Sanskrit & Hindi Commentaries

By

Prof. Jayashankar Lal Tripathi

Achaiya (Goldmedalist), M.A., Ph.D., D.Litt.

Deptt. of Sanskrit, Faculty of Arts

Banaras Hindu University, Varanasi



Krishnadas Academy

VARANASI-221001

1998

Post Box No. 1118
K. 37/118; Gopal Mandir Lane,
VARANASI—221001
(INDIA)
☎ 335020

First Edition
1998

Also can be had from

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

Publishers and Oriental Book-Sellers
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin)
P. Box 1008;
VARANASI-1 (India)
☎ Offi. 333458
Res. 334032 & 335020

प्राक्कथन

'कादम्बरी' यह शब्द कर्णगोचर होते ही एक विशिष्ट व्यक्तित्व को सहसा स्मृतिपटल पर उपस्थित कर देता है जिसने संस्कृत-गद्य-लेखन को चरमोत्कर्ष पर प्रतिष्ठापित कर दिया, उसका नाम है बाणभट्ट। बाण ने अपनी अमूल्य कृति 'कादम्बरी' में गद्य को इस उत्कृष्टतम रूप में प्रस्तुत किया है कि वह एक आदर्श रूप में सर्वमान्य तथा अनुकरणीय हो गया। इसीलिये प्रत्येक गद्यकार बाण का अनुकरण करने का प्रयास करता है और कुछ अंशों में भी सफल अनुकर्त्ता होने पर 'बाण' जैसी गौरवपूर्ण पदवी प्राप्त कर लेता है। संस्कृत भाषा-मर्मज्ञ इस तथ्य से सुपरिचित हैं।

यद्यपि काल के विकराल करों से कवलित हो जाने के कारण असमय ही संसार छोड़ देने वाले बाण अपनी सङ्कल्पित कादम्बरी कथा पूरी नहीं कर सके तथापि उनकी अधूरी ही कादम्बरी उनकी यश:पताका को चिरस्थायी बनाने में समर्थ है। यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण तथा दुःखद संयोग है कि बाण अपनी दोनों गद्य कृतियाँ—हर्षचरित तथा कादम्बरी अधूरी ही लिख सके। बाण की इस अधूरी कृति कादम्बरी ने संस्कृतज्ञ समाज को इतना अधिक अभिभूत कर लिया कि सामान्यतया कोई यह नहीं जानता और न जानने की चिन्ता ही करता है कि इस अधूरी कथा को उसी रूप में पूरी लिखने वाला कोई अन्य व्यक्ति भी था। यह बाण की परम उपलब्धि है।

परन्तु कादम्बरी-उत्तरभाग लिख कर अधूरी कथा को बाणसदृश ही शैली में सफलतापूर्वक पूरी करने वाले, अपने यश तथा प्रतिष्ठा की कोई चिन्ता न करने वाले; यहाँ तक कि अपने नाम का संकेत भी न करने वाले 'पुलिन' 'पुलिन्द' तथा 'भूषण' आदि नामों से व्यवहृत होने वाले, विद्वान् के विषय में संस्कृत के विद्वानों तथा आलोचकों ने जो उपेक्षा दिखलाई वह निश्चित ही पीडादायक है। जिस पुत्र भूषण ने अपना नाम तक लिखना आवश्यक नहीं समझा, पिता के अधूरे कार्य को पूरा करना ही परम कर्तव्य माना, ऐसा परम त्यागी, अनुकरणीय सुपुत्र सम्भवतः दूसरा कोई नहीं होगा। जिन लोगों ने बाण-पुत्ररचित कादम्बरी-उत्तरभाग का भलीभाँति निष्पक्ष रूप से अध्ययन किया होगा वे उनकी प्रतिभा और योग्यता से सुपरिचित होंगे। यदि भूषण ने अपने पिता बाण की शैली में उत्तरभाग न लिखा होता तो आज बाण द्वारा कल्पित तीन-तीन जन्मों तथा दो-दो लोकों के प्राणियों की कथा अधूरी ही रह जाती। संस्कृत साहित्य की रिक्तता ही रहती। अतः सम्प्रति भूषण के इस महनीय कार्य का सही और निष्पक्ष मूल्यांकन करना अत्यन्त आवश्यक है।

बाण और भूषण पिता-पुत्र थे। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' यह उक्ति भूषण पर सर्वथा घटित होती है। बाण ने अपनी प्रौढावस्था में व्यापक ज्ञान, प्रचण्ड पाण्डित्य तथा बहुविध अनुभव से विभूषित होने के बाद ही 'कादम्बरी' लिखनी आरम्भ की थी। उनके समक्ष न कोई समस्या थी, न लेखनसीमा और न कोई विवशता। उनका तो एक ही सङ्कल्प था अपनी पूरी प्रतिभा और शक्ति से पूर्ववर्ती गद्य-कविद्वयी की कृतियों की अपेक्षा उत्कृष्टतर गद्य काव्य लिखना। निश्चित ही बाण अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल हुये हैं। यह पृथक् विषय है कि वे अपनी कृति पूरी नहीं लिख सके। इसके विपरीत बाणपुत्र भूषण के समक्ष कई विवशतायें थीं, स्वतन्त्र विचारक्षेत्र नहीं था, इच्छानुसार कथा-कल्पना की छूट नहीं थी और न ही था बाण जैसा प्रचण्ड पाण्डित्य तथा

अथाह अनुभव। अतः भूषणरचित उत्तर भाग निश्चित ही बाणरचित पूर्वभाग की तुलना में कुछ हल्का प्रतीत होता है। परन्तु जैसी उपेक्षा समीक्षकों तथा विद्वानों ने भूषण के विषय में की है वह कथमपि तर्कसंगत तथा उचित नहीं है।

यदि भूषण ने अपने पिता की अधूरी कृति के पूरक के रूप में उत्तर भाग न लिख कर किसी अन्य स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में लिखा होता तो निश्चित ही आज संस्कृत में 'गद्यकवित्रयी' के स्थान पर 'गद्य-कविचतुष्टयी' प्रसिद्ध होती। उत्तरभाग का सही मूल्यांकन उसके परिशीलन के बाद ही सम्भव है। इसी भावना ने इसकी व्याख्या लिखने की प्रेरणा दी।

पूर्वार्द्ध की व्याख्या के लेखनकाल में ही यह प्रबल इच्छा हो गई थी बाणपुत्र-विरचित कादम्बरी-उत्तरभाग की भी संस्कृत हिन्दी-व्याख्यायें लिखूं। संस्कृत ग्रन्थों के यशस्वी प्रकाशक 'चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी' 'कृष्णदास-संस्कृत-अकादमी' आदि संस्थानों के सञ्चालक महोदयों ने मेरी भावना का औचित्य समझा और पूर्वार्द्ध के सदृश ही उत्तरभाग की भी विस्तृत व्याख्यायें लिखने की योजना स्वीकृत कर दी।

इस गुरुतर कार्य में समय-समय पर अनेक विघ्न बाधायें आती रहीं। इसी मध्य उच्च रक्तचाप ने भी आक्रान्त कर डाला। कार्य मन्द-मन्द चला। यही कारण है कि १९९३ से प्रारम्भ यह कार्य १९९७ में सम्पन्न हो सका। इस कार्य की परिपूर्णता से मन में अपार शान्ति और प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ।

आज इस महती महर्घता के युग में संस्कृत के प्राचीन तथा विशेष अप्रचलित किन्तु महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी ग्रन्थों के भी प्रकाशन में विशेष रुचि रखने वाले 'चौखम्बा संस्कृत सीरीज' तथा 'कृष्णदास संस्कृत अकादमी' आदि प्रसिद्ध संस्थानों के सञ्चालकगण, विशेषरूप से भाई श्री ब्रजमोहन दास जी गुप्त तथा चि० श्री कमलेश कुमार गुप्त का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मेरी भावना का सम्मान करते हुये यह ग्रन्थ शीघ्र प्रकाशित करवाया। स्व० श्री विट्ठलदास जी गुप्त के साथ किये गये सङ्कल्प की पूर्णता देख कर मन अत्यन्त प्रसन्न और कृतकृत्य हो रहा है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन तथा व्याख्यालेखन में जिन-जिन विद्वानों का सहयोग लिया गया उन सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना चाहता हूँ।

अस्वस्थता में अपेक्षित परिचर्या आदि के द्वारा मेरे कार्य को सम्पन्न कराने में मेरी धर्मपत्नी श्रीमती उर्मिला त्रिपाठी एम०ए० का सराहनीय योगदान रहा है। अतः उन्हें धन्यवाद देना अपना कर्तव्य मानता हूँ। मेरे सुपुत्र चि० वागीश त्रिपाठी एम० एस-सी०, रिसर्चस्कालर तथा सुपुत्री कु० पूनम त्रिपाठी एम० एस-सी० रिसर्चस्कालर ने प्रूफ संशोधन आदि में पर्याप्त सहयोग दिया है अतः वे आशीर्वाद के अधिकारी हैं।

प्रस्तुत भावबोधिनी-व्याख्याद्वयी से विभूषित कादम्बरी यदि सहृदयों तथा जिज्ञासु छात्रों का अल्प भी मनोरञ्जन कर सकी तो अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

मालवीय-जन्मदिन

२५।१२।९७

विनीत

प्रो० जयशङ्करलाल त्रिपाठी

सम्पादकीयम्

विविध-विषय-विपुलावगाहनाहित-विशद-बुद्धिवैभवस्य, गभीरतर-शास्त्र-सरित्-मज्जनार्जित-परिष्कृत-मस्तिष्कस्य, स्वाभिलषित-दिशाकर्षित-प्रतिपाद्य-विषयजालस्य, स्वकीय-दृष्टि-गोचरी-भूत-पदार्थमात्र-प्रतिपादन-प्रवणस्य, सकल-लोक-व्यापार-रहस्य-ज्ञस्य, सूक्ष्मतर-मानव-भाव-विश्लेषण-निपुणस्य, अनुज्झित-समस्त-प्रतिपाद्य-पदार्थस्य, अनवरत-प्रशंसावर्णनरत-बुद्धेरपि वर्णयितुमशक्यस्यापरिमित-यशस्कस्य संस्कृत-गद्यकाव्य-प्रणयि-निखिल-कविराशि-शेखरायमाणस्य स्वीयाप्रतिम-प्रतिभा-प्रभावाभिभावित-समस्त-मित्रा-मित्र-चित्तस्य निजवर्णन-नैपुण्य-निराकृत-प्राज्ञम्मन्य-पण्डित-वर्णन-दर्पदलस्य संस्कृत-भारती-स्वयंवृत-प्रियतमस्य बाणभट्टस्य परिचयो नापेक्षते कस्याप्यन्यदीयस्य वर्णनं स्वविषये। त्रिलोकं विलोकं यस्यामरकृति 'कादम्बरी' सहृदयानां विदुषां हृदयानि नितरामासादयन्ति अमन्दानन्द-सन्दोहम्। यस्याः कथायाः रसास्वादेन विस्मरन्ति रसिकाः सकलानपरा-ल्लौकिकान् विषयव्यामोहान्, परित्यजन्ति पद्यकाव्याध्ययनानुशीलनप्रेमपाशान्, तिरस्कुर्वन्ति समक्षमागतान् सुस्वादूनपि समशनीयान् पदार्थान्, न भावयन्ति भौतिकं सुखम्, न कलयन्ति कालम्, न चिन्तयन्ति वित्तम्, न विचारयन्ति परिवारम्, न गणयन्ति मित्रम्, न निभालयन्ति भार्यासौख्यम्, न ध्यायन्ति शरीरकष्टम्। किं बहुना, तामनुपमामुत्तमोत्तमां कादम्बरी-मधीत्य सु-संस्कृत-लेखन-नैपुण्यं प्राप्नुवन्ति विपश्चितोऽपीति न तिरोहितं समेषां संस्कृतज्ञानां मनीषिणाम्।

कमनीय-कादम्बरीकथा-कल्पयितुर्बाणभट्टस्य यशोराशिमविरामं वर्णयन्तो विद्वांसोऽपि अपूर्णायास्तस्याः कथायाः पूरयितुस्तस्य बाणभट्टस्य सुतस्य पुलिन्दापरनामधेयस्य भूषणभट्टस्य विषये कस्माद् हेतोर्दैन्यं प्रादर्शयन्निति न मतावबतरति कथञ्चिदपि मामकीनायाम्। एष भूषणभट्टो निजाचरणेन बाणभट्टस्यात्मजत्वं सार्थकं चकार। जहार च मनांसि सर्वेषां सहृदयानां विदुषां स्वकीयेनातिप्रशस्तकर्तव्येनापूर्ण-कथापरिपूरणात्मकेन।

अयमपि स्वजनक-बाणभट्ट इवाखिलशास्त्रावबोध-विमल-मतिको वर्णनीय-विषय-निरूपणाव्याहत-गतिको नव्य-भव्य-भाव-भावन-निपुणः, कामिनी-कमनीय-मनोदर्शनानुकूल-प्रतिपादन-प्रवीणः, वियोगि-युगल-व्यथा-यथार्थरूप-वर्णन-प्रवणः, तन्त्र-मन्त्रायुर्वेद-गान्धर्व-धर्म-शास्त्र-राजनीति-लोकव्यवहारादि-जीवनोपयोगि-विषय-मर्मज्ञः, सारस्वत-साधना-समधिगत-समस्ताभिवाञ्छित-पदार्थ-रहस्योद्भेदनदक्षः, अगणित-कला-कलाप-ज्ञानाभि-वर्धित-सकलाध्येतृ-लोकः, रमणीय-रमणी-मनोभिराम-मनोभावाभिव्यञ्जनापनोदित-विरहिजन-शोकः, अपूर्व-वर्णन-शक्ति-सम्पादित-प्रतिद्वन्द्वि-हृदय-कमल-सङ्कोचः, स्वीय-मनोहारि-निरूपण-रीति-प्रमोदित-सहृदय-हृदयदर्पणः, अपूर्ण-कादम्बरीकथा-परिपूरणापहृत-सज्जनमनश्शोकः।

अयं हि परमोपासकः प्रकृतिरूपसौन्दर्यस्य, परिपोषकः सदान्तरिकस्नेहस्य, उद्घोषकः स्मृत्यादि-प्रतिपादित-सदाचारस्य, प्रवर्तक आदर्श-प्रणयपद्धतेः, संवर्धको मर्यादितव्यवहाराणाम्, संस्थापकः पुनर्जन्मसिद्धान्तानाम्, निराकर्ता उच्छृङ्खलकुलीनाम्,

स्थापयिता नवरीतीनाम्, कल्पयिता गान्धर्वपार्थिवोभयलोक-स्नेहसम्बन्धानाम्, भावयिता विविध-भावानाम्, कारयिता वियोगिजन-समागमानाम्, पोषयिता समीचीन-नवीन-रीतीनाम्, निराकर्त्ता तुच्छवृत्तीनाम्, हर्त्ता मानसिक-सन्तापानाम् ।

भूषणभट्ट-विरचितोत्तरभागेऽपि मृदुता मातरि, कटुता विधातरि, कोमलता कादम्बर्याम्, शुम्भिता महाश्वेतायाम्, सौहार्दं कपिञ्जले, कामातुरता पुण्डरीके, चमत्कार-कारिता चन्द्रापीडे, धीरता तारापीडे, मनीषा शुकनासे, तपोबलं जाबालौ, सुतस्नेहः श्वेतकेतौ, क्रोधो वैमानिके, स्वामिभक्तिः भृत्येषु, पतिभक्तिः पत्रलेखायाम्, सखिभक्तिः मदलेखायाम् ।

यत्र च कलरवः कलहंसेषु, प्रपातः कृत्रिम-जलधारायन्त्रेषु, अमोघता शापवचनेषु, तेजस्विता तपस्विषु, अनुरागः कर्तव्येषु, विरागः स्वार्थसाधनेषु, विभागः केशबन्धनेषु, रागः मुखेषु पत्रेषु च, स्नेहः मित्रेषु प्रदीपेषु च, चिन्ता कर्तव्येषु प्रेयसीषु च, अतुलनीयता विभवेषु सदाचारेषु च ।

भूषणभट्टस्य भव्यकृतिरपि बाणभट्टस्य कादम्बरी-पूर्वभाग इवावर्जयति सर्वेषां सुधियामशयान् । विवशीकरोति प्रशंसां विधातुं समालोचकान् । चमत्करोति संस्कृत-गद्यकाव्य-रसास्वादननिरतान् पण्डितप्रवरान् । दूरीकरोति निन्दां प्रवाहाभावविषयिकां स्वतात-विरचित-कादम्बरी-पूर्वभागस्य । आतुरीकरोति स्वयमेव शय्यायामभ्यागता नववधूरिवस्वाध्याय-परान् सहृदयान् । विचलीकरोति वशीकृतेन्द्रियानपि तरुणान् । स्थिरी-करोति पूर्वजन्म-सिद्धान्तान् । एकीकरोति विरहाग्नि-दह्यमान-प्रेमियुगलान् । नोररीकरोति कमपि किमपि स्वच्छन्दतया विधातुम् । नानुमन्यते कमपि स्वरसास्वादमातिरिक्तमुपभोक्तुम् ।

यो हि सत्तनयो भूषणभट्टो स्वपितुरपूर्वामपूर्णाञ्च कृतिमवलोक्य तेन चोत्पन्नं सतां हृदि क्लेशं च विचिन्त्य तां पूरयितुं प्रायतत निरभिमानतया केवलेन स्वकर्त्तव्य-भावेन । एतादृशस्य प्रणम्यस्य निःस्पृहस्य विदुषो नामविषयेऽपि निश्चितरूपेण ज्ञातुं न प्रभवामो वयमित्यतीव खेदावहम् । येन सहृदयेन अर्धनारीश्वररूपेण कल्पयित्वोत्तरभागं विरचय्य पूरिता कादम्बरी कथा, परन्तु न क्वापि लिखितं सङ्केतितं वा किमपि स्वनामादिविषये, न कृता कापि स्वयशश्चिन्ता, न ध्याता सामान्यजनाभिवाञ्छिता स्वप्रतिष्ठा, न चिन्तिता वैदुष्यख्यातिः, तस्य विषयेऽस्मावध्यस्माभिर्योपेक्षा प्रादर्शि या वा तटस्थता समाश्रिता, किं तत् समीचीनं वक्तुं शक्यते । निर्मत्सरा गुणग्राहिणो विद्वांसोऽस्यां दिशायामवश्यमेवोचितं चिन्तयिष्यन्तीति ।

बाणभट्टस्याकस्मिकमृत्योः कारणादेषा कादम्बरी कथा न तेन पूर्णरूपेण लिखिता । अपूर्णाञ्चेमामालोक्य सतां दुःखेन दुःखितो बाणभट्टपुत्रो भूषणो निजपितृतुल्यां रीतिमेवानुसृत्य कादम्बरीकथां पूरयामासेति निश्चीयते उत्तरभागस्य प्रारम्भिकश्लोकानामध्ययनेन । अमुष्योत्तरभागं दृष्ट्वा साम्प्रतिकाः समीक्षकाः भूषणस्य समालोचनायामेव निरता निरीक्ष्यन्ते, न तैर्विचारितं शान्तेन चित्तेन यद् बाणस्य तत्पुत्रस्य भूषणस्य च मध्ये

आसन्ननेके भेदाः। प्रौढावस्थायां प्राप्तपाण्डित्यप्रकर्षो बाणभट्टः पूर्वविरचित-कथाद्वयी-गौरवोन्मूलनधियैव स्वचिन्तित-योजनानुसारं कादम्बरीकथां कल्पयित्वा तस्याः लेखने प्रवृत्तोऽभूत्। परन्तु तत्पुत्रो भूषणस्तु स्वपितृविरचित-कथाया अवशिष्टांशमेव यथाशीघ्रं यथाशक्ति च पूरयितुकामः सन्नेवोत्तरभागस्य सम्पादने संलग्नोऽभूत्। स स्वीयं वैदुष्यं सम्यग्वेत्ति, वर्णननैपुण्यं निश्चितं जानाति, ज्ञानवैशारद्यं सर्वथा परिचिनोति। अत एव भीत इव प्रवृत्तोऽभूल्लेखने इति तेन स्वयमेवोद्घोषितं "कादम्बरी-रस-भरेण" इत्यादिपद्यं विरचयता।

किञ्च,मन्ये नालोचकैरवलोकिता परिशीलता वा भूषणभट्टविरचिता कादम्बरी सम्यक्। यस्यां यद्यपि बहूनि तत्त्वानि न सन्ति बाण-विरचित-कादम्बरी-तुल्यानि तथापि स्वीयानि तु कतिपयानि वैशिष्ट्यानि विद्यन्त एव। बाणविरचित-पूर्वभाग आकारदृशा द्विगुणोऽधिको वा वर्तते परन्तु कथा त्वल्पीयस्येव विद्यते। तत्र वर्णनीयानां विषयाणां बाहुल्यं चमत्कुर्वदपि विपश्चितां चित्तं सामान्याध्येतॄणां मनांसि तूद्वेजयत्येवेति सर्वेऽपि परिशीलिनो भृशं विदन्ति। बाणविरचितकादम्बर्यामलङ्काराणां बाहुल्येन भारेण च कथा-नायिकायाः कमनीयं कलेवरं समभिभूतमिव विलोक्यते, विपरीतन्त्वेतस्माद्भूषणविरचित-कथाभागे, न चास्मिन् सर्वत्र विस्तरो वर्णनीयानां विषयाणाम्, न चोद्वेजको भारो विविधानामनपेक्षितानामलङ्काराणाम्। अत्र तु कथारसस्याविच्छिन्नः प्रवाहो विवशी-करोति आसमाप्ति समध्येतुं सकलां कथाम्। भूषणभट्टसमाश्रिता रीतिर्गद्यस्य साम्प्रतिकी रीतिः स्वीकर्तुं शक्यते यस्यां खल्वपेक्षितानां सर्वेषामावश्यकतत्त्वानां सन्तुलितं प्रतिपादनम्। मन्ये 'कादम्बरी-रस-भरेण' इत्यादिवाक्यं भूषणेन स्वविरचितभागस्य कृत एव लिखितम्। अपरञ्चेदमपि ध्येयं यद् बाणेन प्रामुख्येन सम्भोगपक्ष एव शृङ्गारस्य वर्णितः, जन्म-त्रयकथायाः विचित्रा समायोजना तु भूषणेनैवाकारि। भूषणस्य भागे तु प्रायशो विप्रयोग एवासीत्। स च विप्रयोगः प्राणवल्लभस्य भवतु प्राणवल्लभाया वा, मातुर्भवतु सुतस्य वा, मित्रस्य भवतु स्वामिनो वा। एवञ्च वर्णनीयविषयाणां बाध्यतापि भूषणभट्टाय वर्णनस्वातन्त्र्यं न प्रायच्छत्।

अस्यामवस्थायां स्वपितृतुल्यतामधारयन्नपि भूषणभट्टो गद्यकवीनां मध्ये समुत्कृष्टं पदं प्राप्तुमर्हत्येव। एतद्विषयकं प्रमाणन्तु अनेन विरचितस्य कादम्बरीभागस्य प्रथमं वाक्यमेव—

"अपि चेदानीमानीतस्यापि कुमारस्य न ददाति तरलता-लज्जिता लज्जैव दर्शनम्। मनोभव-विकार-वेदना-विलक्षं वैलक्ष्यमेव न पुरस्तिष्ठति। अप्रतिपत्तिसाध्वस-जडा जडतैव नोपसर्पति......।"

एवञ्चालोक्य वैशिष्ट्यमुत्तरभागस्य विचिन्त्यञ्चावश्यकतां विशदव्याख्यानस्य मया भूषणभट्टविरचितोत्तरभागस्यापि व्याख्या सम्पादनञ्चारब्धम्। अस्मिन् प्रसङ्गे चत्वारि प्रकाशितानि संस्करणानि समुपलब्धानि—

(१) भट्ट-श्रीमथुरानाथशास्त्रिणा सम्पादितम्, १९४८ ई० वर्षे निर्णयसागर-यन्त्रालयमुम्बयीतः प्रकाशितम्।

(२) डा० पी० एल० वैद्यमहोदयैः सम्पादितम्, १९५१ ई० वर्षे ओरियण्टल बुक एजेन्सी पूनातः प्रकाशितम् ।

(३) श्रीमोहनदेवपन्तमहोदयैः सम्पादितम्, १९७७ ई० वर्षे उत्तरभागरूपेण मोतीलाल-बनारसीदास दिल्लीतः प्रकाशितम् ।

(४) आचार्य-रामचन्द्र-मिश्रमहोदयैः सम्पादितम्, १९८७ ई० वर्षे द्वितीयभाग-रूपेण चौखम्भा-संस्कृत-संस्थान–वाराणसीतः प्रकाशितम् ।

एषु पाठान्तरप्रदर्शने मथुरानाथभट्टमहोदया मयोपजीव्यत्वेन समाश्रिता इति प्रथमं तेषां प्रति स्वीयाधमर्णतां ज्ञापयामि । अन्येषाञ्च पूर्ववर्तिनां सम्पादकानां व्याख्यातॄणां चापि साहाय्यमपेक्षितविषये गृहीतमिति तेऽपि धन्यवादार्हा इति सविनयं निवेदयामि । अस्याः व्याख्यायाः सम्पादनार्थं श्रीमद्भिर्विश्वनाथ-भट्टाचार्य-महोदयैरध्यक्षचरैः संस्कृत-विभागस्य काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयस्य भूरिशः प्रेरितमतस्तेभ्यो हार्दिकं कार्तज्ञ्यं ज्ञापयामि । साम्प्रतं संस्कृत-विभागे काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालये प्रवक्तृपदे समासीनेन डा० सदाशिव-कुमार-द्विवेदिनास्मदन्तेवासिनापेक्षितग्रन्थानां समये समये साहाय्यप्रदानेनोपकृतमेतदर्थं तस्माया-शीर्वादान् वितरामि । प्रकाशनकाले प्राग्रूपसंशोधनादिकार्येषु मदीयेन सुपुत्रेण चि० वागीशत्रिपाठिना एम०एस-सी०,शोधच्छात्रेण अथ च मम सुपुत्र्या एम०एस-सी० पदवीयुतया शोधच्छात्र्या कुमारीपूनमत्रिपाठीति नाम्न्यापेक्षितं साहाय्यं प्रदत्तमतस्ताभ्यामपि शुभाशिषः प्रयच्छामि । ममार्धाङ्गिन्या सहचारिण्या श्रीमत्या ऊर्मिलादेव्या अस्मिन् गुरुतरकर्मणि सहजभावेन सदैवापेक्षितः सहयोगो दत्तोऽस्य कृते तस्यै धन्यवादान् वितरामि ।

साम्प्रतं महर्घताया भीषणः प्रकोपः । न सारल्येन प्रकाशयन्ति प्रकाशकास्तान् ग्रन्थान् येषां प्रचारो विशेष-विक्रययोग्यता वा न वर्तते । परन्तु लब्धयशस्काः सर्वविधोत्तम-संस्कृत-ग्रन्थानां प्रकाशने निरताः 'चौखम्बा-संस्कृत-सीरीज' 'कृष्णदास-संस्कृत-अकादमी' वाराणसी-इत्यादीनां संस्थानानां सञ्चालकाः सज्जना अस्योत्तरभागस्य कादम्बर्याः प्रकाशने दत्तचित्ता अभूवन्निति प्रशंसनीयं वर्तते । तत्र च श्रीमताम् व्रजमोहनदासगुप्त-महोदयानां कमलेशकुमारगुप्त-महोदयानाञ्च या कापि प्रशंसा विधीयेत सा न्यूनैव । एतैर्महोदयैः सदैव मम रुचिमनुसृत्यास्य प्रकाशनं विहितम् । अत एतेषां कृतज्ञतां हृदयेन प्रकटयामि ।

सत्सु नानाविधेषु व्याख्यानेषु मामकीना नामानुरूपा 'भावबोधिनी'-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याद्वयी यदि कादम्बरी-रसिकानां मनसि अल्पमप्यानन्दमुत्पादयति च्छात्राणां च स्वल्पमपि साहाय्यं विदधाति तदा स्वीयं श्रमं सफलं मन्ये ।

विनयावनतः

प्रो० जयशङ्करलाल-त्रिपाठी

मदनमोहन-मालवीय-जन्मदिनम्

२५-१२-१९९७

विषयानुक्रमणिका

भूमिका

संस्कृत गद्यरचना की प्राचीनता

संस्कृत-वाङ्मय का काव्यात्मक गद्य अपनी विशिष्टताओं के कारण प्रशंसा और आलोचना दोनों का विषय बना हुआ है। परन्तु यदि विश्व में सर्वप्रथम गद्य के प्रयोगों को देखा जाय तो प्राचीनतम साहित्य[1] वेदों से ही इसका प्रारम्भ स्पष्ट परिलक्षित होता है। तैत्तिरीय संहिता इस सन्दर्भ में दर्शनीय है। इसी प्रकार काठक संहिता, मैत्रायणी संहिता आदि में भी सुन्दर गद्य प्रयुक्त है। अथर्ववेद का षष्ठभाग तो गद्यात्मक ही है। शतपथ, छान्दोग्य आदि समस्त[2] ब्राह्मण-ग्रन्थ गद्य में ही उपनिबद्ध हैं। आरण्यकों का गद्य भी प्रसिद्ध है। उपनिषदों में भी गद्य की बहुलता सर्वविदित है। इससे स्पष्ट है कि संहिताकाल से लेकर उपनिषत्काल तक अनवरत कुछ न कुछ गद्य अवश्य प्रयुक्त होता रहा है। यह अलग बात है कि इनका गद्य काव्यस्तरीय नहीं भी रहा हो।

सूत्रग्रन्थों का प्रारम्भ भी गद्य रूप में ही होता है। श्रौत सूत्र तथा गृह्य सूत्र इसके प्राचीनतम उदाहरण हैं। वैदिक साहित्य के पश्चात् यास्क (ई० पू० ७००) के निरुक्त में सूत्रात्मक गद्य है। यास्क के परवर्ती महामनीषी पाणिनि ने (ई० पू० ५००) अपने[3] व्याकरणसूत्रों की रचना गद्य में ही की। इनके सूत्रों की गम्भीरता संस्कृतज्ञमात्र से छिपी नहीं है। पाणिनि से परवर्ती कात्यायन (ई० पू० ३००) ने अपने वार्तिक गद्य में ही लिखे। महर्षि पतञ्जलि (ई० पू० १५०) के महाभाष्य के गद्य की तुलना ही असम्भव है। न केवल व्याकरण अपितु मीमांसा, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग सभी के मूल सूत्रग्रन्थ और भाष्यादि व्याख्यान ग्रन्थ अधिकांशतः गद्य में ही हैं। भागवत आदि पुराणों में भी परिष्कृत गद्य का प्रयोग है।

स्मरण करने की सुविधा के कारण पद्य रचना का प्रयोग संस्कृत में अधिक होता रहा है। यहाँ तक की आयुर्वेद तथा ज्योतिष जैसे विषय भी पद्यों में उपनिबद्ध हैं। परन्तु व्याख्यान-सौकर्य तथा शीघ्र ज्ञान के लिये गद्य का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी माना जाता है।

काव्यात्मक गद्य का प्रारम्भ

संस्कृत काव्यों में सर्वप्रथम गद्य का प्रयोग कब से हुआ—इसको निश्चित रूप में कह सकना कठिन है। क्योंकि कोई भी प्राचीन गद्य काव्य आज प्राप्त नहीं है। परन्तु आज उपलब्ध गद्य-

---

१. व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिः समैरयत्...। अथर्व १५।१

२. यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद् विजानाति स भूमा। (छान्दोग्य ७।२४)

३. अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतो मुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

कविश्रयी[1] की उत्कृष्ट रचनायें यह सूचित करती हैं कि इनके पहले इस प्रकार की अनेक रचनायें अवश्य हो चुकी होंगी। क्योंकि अनायास इतनी प्रौढता दिखाई देना सम्भव नहीं लगता। आज लिखित रूप में गद्य का प्राचीनतम परिष्कृत स्वरूप हमें रुद्रदामन (१५० ई०) के गिरिनार शिलालेख[2] में ही प्राप्त होता है। इसके बाद प्रयागस्थित किले में स्तम्भ पर खुदा[3] हरिषेणकृत समुद्रगुप्त (३५० ई०) का प्रशस्तिलेख है।

गद्य काव्य के दो भेद

यद्यपि विद्वानों में गद्य काव्य के भेदों के विषय में ऐकमत्य नहीं है तथापि बहुजन-स्वीकृत दो भेद हैं—कथा और आख्यायिका। कथा कविकल्पित होती है, जैसे—कादम्बरी। आख्यायिका—इतिवृत्त पर आधृत, जैसे—हर्षचरित।

तीन प्राचीन प्रमुख गद्यकवि

संस्कृत गद्य-कवियों की चर्चा के प्रसंग में अनायास तीन नाम सामने आ जाते हैं—दण्डी, सुबन्धु और बाण। इनके पौर्वापर्य को लेकर विवाद है। किन्तु इतना तो सभी मानते हैं कि बाण ही इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं। बाणभट्ट के विषय में विस्तृत चर्चा कादम्बरी-पूर्वार्द्ध में की जा चुकी है।

उपेक्षित चतुर्थ गद्यकवि—भूषणभट्ट

यह कितनी पीडा तथा खेद का विषय है कि आज तक प्रायः सभी इतिहासकार तथा समीक्षक एक ऐसे गद्यकार के विषय में या तो मौन रहे हैं या औपचारिकतामात्र पूरी करके सन्तुष्ट हो गये, जिसने अपनी सम्पूर्ण सारस्वत-साधना अपने पिता के लिये ही समर्पित कर दी। जिसने अपने नाम तक का उल्लेख करना अपराध समझा। जिसने अपनी यशोभिलाषा का पूर्णतया दमन कर दिया। पिता द्वारा पुत्र के लिये त्याग की कथाओं से विश्व-साहित्य भरा पड़ा है परन्तु ययाति तथा भूषणभट्ट जैसे अंगुल्यग्र व्यक्तित्व यदा कदा ही जन्म लेते हैं जिन्होंने अपने-अपने पिताओं के लिये अविस्मरणीय त्याग के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

एक ओर हम पिता पुरुरवा के लिये अपना यौवन समर्पित कर देने वाले ययाति की प्रशंसा करते नहीं थकते हैं वहीं दूसरी ओर अपने जीवन की सम्पूर्ण साधना और विद्यातप को अपने पिता बाणभट्ट के लिये समर्पित करनेवाले भूषणभट्ट के लिये कुछ प्रशस्ति-वचन तक नहीं कहते हैं। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पुरुरवा ने पुत्र से वैसी आकांक्षा की थी तब उसने वह किया। परन्तु भूषण ने तो पिता की भावना को जानकर आदेश या प्रार्थना के बिना स्वयं ही कार्य सम्पन्न कर दिया।

१. सुबन्धु, बाण, दण्डी।

२. "प्रमाणोन्मानोमानस्वरगतिवर्णसत्त्वादिभिः परमलक्षणव्यञ्जनैरुपेतकान्तमूर्तिना स्वयमधिगत-महाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंबरानेकमान्यप्रासदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना सेतु सुदर्शनतरं कारितम्।

३. सर्वपृथिवी-विजय-जनितोदयव्यासनिखिलावनितलां कीर्तिमितस्त्रिदशपतिभवनगमनावाप्तललित-सुखविचरमाणमाचक्षाण इव बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः।"

जो भूषणभट्ट अपने पिता की अधूरी छूटी कृति को उसी सन्दर्भ से मिला कर लिखते हुये आरम्भ करके पूरी करते हैं उनके लिये समुचित संमान और गद्यकवियों में प्रशंसनीय स्थान न देना कहाँ का न्याय है ? भूषणभट्ट यदि चाहते तो इसी अधूरी कथा को किसी अन्य नाम से स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में लिख कर प्रतिष्ठित गद्यकवियों की श्रेणी में आ सकते थे किन्तु उनकी पितृभक्ति ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया। उनके पिता के अनुगत विद्वानों तथा मित्रों में अधूरी कादम्बरी को देख कर, पढ़ कर क्लेश हो रहा था। वे सभी जानते थे कि यह गुरुतर कार्य बाणभट्ट के सुयोग्य विद्वान् पुत्र ही पूर्ण कर सकते थे। सम्भव है लोगों की इस चिन्ता का ज्ञान भूषणभट्ट को भी होने लगा हो। परन्तु वे अपने पिता की प्रौढता तथा विद्वत्ता से भलीभाँति परिचित थे[1]। अतः उनकी अधूरी कादम्बरी को उसी रूप में लिख सकना उन्हें भी कठिन लगा होगा। परन्तु कुछ न करने से अच्छा है कुछ सामान्य भी कर देना। यही मानसिकता बना कर भूषणभट्ट ने उस समय के विद्वानों की भावनाओं का सम्मान करते हुये कादम्बरी की कथा पूरी करने का विचार किया, साहस किया।

वे कथमपि नहीं चाहते थे कि उनकी रचना का स्वतन्त्र रूप में भी मूल्याङ्कन किया जाय। उनके समक्ष तो एक ही लक्ष्य था, एक ही चुनौती थी—पिता की अधूरी कृति को यथाशक्ति उसी शैली में पूरी करना। इसीलिये उन्होंने प्रारम्भिक मङ्गलाचरण में अर्धनारीश्वर महादेव की ही प्रार्थना की है। जैसे इन दोनों में पार्थक्य करना असम्भव और अनुचित है उसी प्रकार पिता की कृति और अपनी कृति में अलगाव करना उन्हें कथमपि अभीष्ट नहीं था। यह लिखने पर उनके मन में संकोच का अनुभव भी हो रहा होगा क्योंकि अर्धनारीश्वर में तो एक रूप होने पर भी दोनों भागों की महिमा एक जैसी ही मानी जाती है। इसके विपरीत भूषण अपने को अपने पिता की समकोटि में नहीं रखना चाहते थे। अतएव आगे उन्होंने अपनी कथा को एक सामान्य नदी के प्रवाह के समान मानते हुये, समुद्र तक जाने वाले अपने पिता की वाणी रूपी प्रवाह (=कथा) में जोड़ने के लिये अपनी वाणी को प्रेरित करना लिखा है—

गङ्गां प्रविश्य भुवि तन्मयतामुपेत्य स्फीताः समुद्रमितराः प्रवहन्ति नद्यः।
आसिन्धुगामिनि पितुर्वचनप्रवाहे क्षिप्ता कथानुघटनाय मयापि वाणी[2]॥

उन्हें अपने ज्ञान की सीमा का पूर्ण ज्ञान है। फिर भी अपने इस प्रयास में वे कादम्बरी-रसास्वाद में निमग्न अन्य विद्वानों के समान अपने को भी मान लेते हैं और अपने कर्तव्य में जुट जाते हैं।[3] कितनी निरभिमानिता है इस मनीषी में जो संस्कृत के पण्डितम्मन्य विद्वानों के लिये अनुकरणीय है।

भूषणभट्ट तो अपने को उस चतुर तथा बुद्धिमान किसान के बेटे के समान मानते हैं

१. याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां यदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात् ॥ उपोद्घातश्लो० २

२. उपोद्घात श्लोक ४। ३. द्र० उपोद्घात-श्लोक ५।

जिसके पिता ने पूरी फसल तैयार करके उसे काटने के पहले ही संसार छोड़ दिया हो। अब उसका बेटा हो उसका पूरा पूरा लाभ उठायेगा[1]। यह भी भूषण की विनम्रता का एक सुन्दर उदाहरण है।

पिता के प्रति समर्पण के भाव का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि स्वरचित कादम्बरी की समाप्ति में पुष्पिका तक नहीं लिखो। कहीं भी स्पष्ट या सांकेतिक रूप में स्वनामोल्लेख नहीं किया। ऐसा गुमनाम लेखक शायद ही कहीं अन्यत्र हो। एक ओर इनके पिता ने अपने वंश का अति विस्तृत वर्णन हर्षचरित में किया है दूसरी ओर भूषण ने इस विषय में कुछ नहीं लिखा। इन्होंने अपने पिता की प्रशंसा में यह लिखा है कि उस समय घर-घर में उनकी अर्चना होती थी। ऐसे देवतुल्य पिता से मेरा जन्म, मेरे पुण्यों से ही हुआ है।[2] सुयोग्य पिता की ऐसी सुयोग्य सन्तान को प्रणाम किये बिना नहीं रहा जाता।

भूषणभट्ट का जीवनवृत्त

अपने पिता बाणभट्ट के विपरीत भूषणभट्ट अपने विषय में सर्वथा मौन रहे हैं। यहाँ तक कि इन्होंने अपना नाम अथवा उपनाम तक नहीं लिखा। इनके विषय में सर्वप्रथम तिलकमञ्जरी के रचयिता धनपाल (१००० ई०) ने ही पिता-पुत्र दोनों की एक साथ प्रशंसा की है—

केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसन्धान-पुलिन्द-कृत-सन्निधिः॥

यहाँ कवि ने श्लेष के माध्यम से बाण (कवि) पर बाण (तीर) का और पुलिन्द (बाणपुत्र) पर पुलिन्द (शबर, भील) का आरोप करके पिता-पुत्र के संयुक्त प्रयास के समक्ष अन्य सभी कवियों के अहङ्कार को दूर कर दिया है। इस आधार पर कुछ विद्वान् बाणपुत्र (उत्तर भाग के रचयिता) का नाम पुलिन्द मानते हैं। परन्तु बाण जैसा विद्वान् अपने पुत्र के लिये शबरवाची शब्द का प्रयोग करे ऐसा सहसा विश्वास नहीं होता है। इसी लिये प्रो० भण्डारकर मूल शब्द 'पुलिन' मानते हैं और श्लेष-उपपादनार्थ 'पुलिन्द' रूप मानते हैं। ऐसा भी सम्भव है कि स्वयं किसी नाम का प्रयोग न करने के कारण उत्तरवर्ती काल में इनके लिए 'पुलिन्द' उपनाम का प्रयोग होने लगा हो। यद्यपि पाश्चात्य विद्वान् बूह्लर ने पहले 'पुलिन भट्ट' नाम का ही समर्थन किया था परन्तु बाद में उन्होंने भी 'भूषणभट्ट' यही नाम स्वीकार किया।

वस्तुस्थिति सर्वथा अन्धकारमय है। प्रस्तुत संस्करण में 'पुलिन' उपनाम और 'भूषणभट्ट' मुख्य नाम माना गया है। जब तक कुछ और हस्तलेख प्रकाश में नहीं आ जाते तब तक इसी में सन्तोष करना होगा। हिन्दी में प्रयुक्त 'पुलिन्दा' (= कागज-पत्रों का ढेर) का सम्बन्ध भी इनके नाम के साथ विचारणीय है।

---

१. उपोद्घात श्लोक ६।

२. आर्यं यमर्चति गृहे गृह एव लोकः पुण्यैः कृतश्च यत एव ममात्मलाभः।
सृष्टैव येन च कथेयमनन्यशक्या वागीश्वरं पितरमेव तमानतोऽस्मि॥ उपोद्घातश्लो० १

भूषणभट्ट का जन्म-स्थान

कादम्बरी-प्रथम भाग में (पूर्वार्द्ध) सप्रमाण यह सिद्ध किया जा चुका है कि बाणभट्ट का जन्मस्थान 'प्रीतिकूट' था। परन्तु सम्राट् हर्षवर्धन के दरबार में रहने से इनका सम्बन्ध 'कान्यकुब्ज' वर्तमान 'कन्नौज' से दीर्घकाल तक रहा था। अतः बहुत सम्भव है कि भूषणभट्ट का जन्मस्थान 'कान्यकुब्ज' राजधानी ही रहा हो। बाणभट्ट के समान भूषणभट्ट ने भी मातृप्रेम के मार्मिक वर्णन किये हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि इन्हें भी अधिक समय तक मातृसुख प्राप्त नहीं रहा होगा। चूंकि ये राजदरबार और वहाँ के आचार-व्यवहार आदि से भली भाँति परिचित प्रतीत होते हैं। इनका सेवकों की स्वामिभक्ति का वर्णन भी दर्शनीय है। अतः इनके जीवन का अधिकांश समय राजाश्रय में ही व्यतीत हुआ प्रतीत होता है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि इनका जन्मस्थान 'कान्यकुब्ज' ही रहा होगा। यह भी संभव है कि जन्म तो 'प्रीतिकूट' इस पारिवारिक नगर या ग्राम में हुआ हो किन्तु कार्यक्षेत्र निश्चितरूपेण 'कान्यकुब्ज' राजधानी ही मानना उचित है। एक तथ्य इनका कन्नौज से जुड़ना स्पष्ट सिद्ध करता है वह है चन्द्रलोक में 'महोदया' नामक सभा का उल्लेख। इतिहासकार जानते हैं कि वर्तमान कन्नौज (कान्यकुब्ज) का एक प्राचीन नाम 'महोदय' भी था। सम्भव है भूषण ने उसी का सांकेतिक उल्लेख उत्तर भाग में किया हो।

भूषणभट्ट का जन्मकाल

बाणभट्ट के आश्रयदाता सम्राट् हर्षवर्धन का शासनकाल ई० ६०६ से ६४८ तक ४२ वर्षों तक रहा। हर्षचरित के आधार पर इनसे बाण का सम्बन्ध भी लम्बे समय तक प्रतीत होता है। अतः इनके पुत्र भूषणभट्ट का समय निश्चित रूप से ७वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध ही मानना उचित है।

क्या भूषणभट्ट बाण की एकलौती सन्तान थे?

बाण ने हर्षचरित में अपने वंश के पूर्वजों का वर्णन विस्तार से किया है। परन्तु अपने निजी परिवार के विषय में मौन ही रहे हैं। संस्कृत-विद्वानों में प्रचलित कथा के आधार पर बाणभट्ट के कई (कम से कम दो) पुत्र थे। जब बाणभट्ट को अपनी रुग्णता असाध्य तथा प्राण ले लेनेवाली प्रतीत होने लगी तो उन्हें अपनी दोनों कृतियाँ अधूरी रह जाने की बेचैनी सताने लगी। अन्ततः अपनी मृत्यु आसन्न समझकर उन्होंने एक पुत्र को बुलाया जो सम्भवतः बड़ा था तथा व्याकरण अथवा ज्योतिष का विद्वान् था। उन्होंने उससे कहा—"सामने सूखा पेड़ खड़ा है" इसका वर्णन (अनुवाद) संस्कृत में करो। उसने तत्काल कह दिया—"शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे।" सुनकर बाण को बहुत निराशा हुई। फिर उन्होंने दूसरे पुत्र को बुलाकर वही प्रश्न किया तो उसने कहा—"नीरसतरुरिह विलसति पुरतः।" बाण बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें अधूरी कादम्बरी पूरी हो जाने का पक्का विश्वास हो गया। उन्होंने कुछ समय बाद शरीर छोड़ दिया। इस किंवदन्ती के अतिरिक्त कोई भी उल्लेख बाण की सन्तति के विषय में नहीं मिलता है। किन्तु इसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। ऐसा भी हो सकता है कि भूषणभट्ट के किसी अनन्य भक्त ने ऐसी कथा गढ़ ली हो। कादम्बरी

के बाणकृत पूर्वभाग तथा भूषण-रचित उत्तर भाग में कहीं भी सहोदर भ्राता या भगिनी का संकेत रूप में भी वर्णन नहीं है। इसके अतिरिक्त उत्तर भाग के उपोद्घात में भी ऐसा कोई सूत्र नहीं है जिससे 'भूषण' के अतिरिक्त किसी अन्य सन्तति का होना सिद्ध हो सके।

"आर्य यमर्चति......पुण्यैः कृतश्च यत एव ममात्मलाभः[1]।" यहाँ सामीप्य के कारण यदि 'एव' का अन्वय 'मम' के साथ कर दिया जाय—'मम एव' अथवा पाठान्तर में 'मया एव' मान लिया जाय तो भूषणभट्ट का एकलौता पुत्र होना सिद्ध हो जाता है। चूंकि उक्त पद्य में कई बार 'एव' का प्रयोग किया गया है अतः ऐसा अन्वय भी संभव है।

भूषणभट्ट के गुरु

जिन भूषणभट्ट ने अपने जन्मदाता पिता के प्रति अधमर्णता मानते हुए अपनी सम्पूर्ण सारस्वत साधना समर्पित कर दी वे अपने ज्ञानदाता गुरु के विषय में सर्वथा मौन हैं, यह आश्चर्यजनक है। इन्होंने किससे शिक्षा प्राप्त की—इस प्रश्न का उत्तर इनकी कृति (कादम्बरी उत्तरभाग) से नहीं मिलता है। इस विषय में दो संभावनायें प्रतीति होती हैं। पहली तो यह कि इन्होंने अपने पिता बाणभट्ट से ही सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त की हो क्योंकि उपोद्घात के श्लोक में इन्होंने स्पष्ट लिखा है—"वागीश्वरं पितरमेव तमानतोऽस्मि।" इसमें 'एव' शब्द इसकी पुष्टि करता है। दूसरी संभावना यह भी हो सकती है कि बाण के गुरु 'भर्सु' अथवा 'भर्वु' से ही इन्होंने भी शिक्षा-ग्रहण की हो क्योंकि बाण की अधूरी कृतियों से उनका दीर्घजीवी न होना ज्ञात होता है। कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें पिता के बाद पुत्र ने भी उसी गुरु से शिक्षा प्राप्त की है।

भूषणभट्ट की कृति

वस्तुस्थिति तो यह है कि संस्कृत-साहित्य में भूषणभट्ट के नाम से कोई कृति प्रसिद्ध नहीं है। यहाँ तक कि अपनी कृति इस कादम्बरी के उत्तरभाग के प्रारम्भ में या समाप्ति की पुष्पिका में कहीं भी भूषण ने अपने नाम का स्पष्ट या सांकेतिक उल्लेख नहीं किया है। चूंकि प्रारम्भिक श्लोकों में पिता की अधूरी कृति को पूरी करने की इच्छा ही उत्तर भाग के लिखने में मूल कारण बतलाया है। इसी से विद्वानों ने उत्तरभाग भूषणभट्ट द्वारा रचित माना है। अतः कादम्बरी उत्तरभाग ही इनकी अकेली कृति मानी जाती है।

कादम्बरी कथा का सारांश

बाणभट्ट-विरचित पूर्व भाग—एक विदिशा नामक नगरी थी। उसका अधिपति शूद्रक था। एक बार उसकी राजसभा में कोई चाण्डाल-कन्या आई और राजा को एक वैशम्पायन नामक तोता भेंट में दिया। वह तोता बहुत विलक्षण विद्वान था। उसने मनुष्य-वाणी में आशीर्वादात्मक श्लोक बोल कर राजा का अभिनन्दन किया इससे सभी उपस्थित लोग आश्चर्यचकित हो गये। भोजनादि के पश्चात् राजा ने उस तोते को मंगवाया और अपना सारा वृत्तान्त सुनाने का आग्रह किया।

---

१. उपोद्घातश्लोक १।

वह वैशम्पायन नामक तोता बोला—"हे राजन्! विन्ध्याटवी में पम्पा-सरोवर के पास एक जीर्ण शाल्मली वृक्ष है। उसी पर बहुत से तोते रहते हैं। उन्हीं में मेरे माता और पिता भी रहते थे। वृद्धावस्था में मैं माता से उत्पन्न हुआ था। जन्मकाल में ही मेरी माता का प्राणान्त हो गया। मेरे पिता ने ही मेरा सारा पालन-पोषण किया। एक दिन प्रातः काल एक भील आया और उस वृक्ष पर चढ़ गया। वह वहाँ से सभी तोतों को मार-मार कर नीचे फेकने लगा। मेरे पिता की भी वही दुर्दशा कर डाली। सौभाग्यवश मैं अपने पिता के पंखों में छिपा हुआ नीचे सूखे पत्तों के ढेर पर गिरा जिससे मरा नहीं। वह भील सभी तोतों को बांध कर ले गया। मैं किसी प्रकार घिसट-घिसट कर समीपवर्ती पेड़ की जड़ में छिप गया। प्यास के कारण मेरे प्राण निकल रहे थे। सौभाग्यवश उसी समय महर्षि जाबालि का पुत्र हारीत पम्पा सरोवर में नहा धोकर वापस आश्रम लौट रहा था, मुझे देख कर उसके मन में दया आ गई। उसने मेरे मुँख में पानी की बूँदे डालीं और उठा कर अपने साथ आश्रम ले गया। आश्रम में पहुँच कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। जब महर्षि जाबालि ने मुझे देखा तो हंसने लगे, और बोले—"यह तोते का बच्चा पूर्वजन्म की अपनी करनी का ही फल भोग रहा है।" सभी ऋषि उनकी बात सुन कर कुतूहल में पड़ गये। उन्होंने महर्षि से तोते के पूर्वजन्म की सारी कथा सुनाने का अनुरोध किया।

महर्षि ने बताया कि यह कथा बहुत लम्बी है। और इसे सुनते ही इस तोते को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो जायगा। अतः सन्ध्या-वन्दन, भोजनादि के उपरान्त महर्षि ने कथा कहनी प्रारम्भ की। (कथामुख)

महर्षि बोले—"उज्जयिनी नाम की एक अत्यन्त सुन्दर, समृद्ध और रमणीय नगरी है। वहाँ तारापीड नामक राजा राज्य करता था। उसकी गुणवती महारानी विलासवती और अत्यन्त विद्वान् महामन्त्री शुकनास था। किन्तु राजा तथा मन्त्री दोनों ही सन्तानहीन थे। अनेक अनुष्ठानों के बाद स्वप्नदर्शन से उन्हें पुत्र-प्राप्ति की आशा बंधी। महारानी गर्भवती हुई। एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम चन्द्रापीड रखा गया। उसी समय शुकनास की पत्नी ने भी एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम वैशम्पायन रखा गया। उन दोनों कुमारों में प्रगाढ़ मित्रता थी। एक विशिष्ट गुरुकुल में दोनों ने शिक्षा लेनी प्रारम्भ की। कुछ वर्षों बाद शिक्षित होकर वे वापस राजभवन आये। चन्द्रापीड को युवा देख कर राजा तारापीड ने उसका यौवराज्याभिषेक करने का आयोजन किया। इस अभिषेक के पूर्व चन्द्रापीड महामन्त्री शुकनास के समीप गया। उन्होंने बड़ा लम्बा और सारगर्भित उपदेश दिया जिससे वह आगे एक उत्तम सम्राट् बन सकता है। युवराज पद पर अभिषिक्त होने के बाद चन्द्रापीड इन्द्रायुध नामक अश्व पर सवार होकर अपने मित्र वैशम्पायन को साथ लेकर सेना सहित दिग्विजय के लिये निकल पड़ा। मार्ग में समस्त राजाओं को परास्त करता हुआ उत्तर दिशा की ओर बढ़ा जहाँ किरात रहते थे। वहीं पड़ाव डाल दिया। एक दिन अकेले ही वनभ्रमण के लिये निकल पड़ा। आगे उसे एक किन्नर-युग्म दिखाई दिया। उसे पकड़ने के लिये उसने अपना घोड़ा दौड़ा दिया। आगे वह युग्म तो गायब हो गया, राजकुमार और इन्द्रायुध

लस्त पस्त हो गये। वह पानी पीने और विश्राम करने के लिये जलाशय खोजने लगा। उसे समीप में ही एक अति रमणीय 'अच्छोद' सरोवर दिखाई दिया। वहाँ विश्राम करते समय उसे किसी स्त्री की मधुर ध्वनि में गीत सुनाई दिया। आगे जाने पर उसे एक शिव-मन्दिर मिला जिसमें भीतर एक अत्यन्त श्वेत वर्ण वाली युवती भक्ति-भाव में गाती हुई साथ में आंसू भी गिरा रही थी। चन्द्रापीड ने उसका परिचय पूछा और उस वन में निवास तथा दुःख का कारण भी पूछा।

उस युवती ने अपना वंश-परिचय देते हुए कहा—"मैं गन्धर्वराज हंस तथा चन्द्रकुलोत्पन्न अप्सरा गौरी की कन्या हूँ। एक बार अपनी सहेली के साथ यहीं अच्छोद सरोवर में स्नान करने आई थी। यहाँ अचानक एक अतिसुन्दर ऋषिपुत्र को देखा। उस पर आसक्त हो गई। वह भी मुझ पर आसक्त हो गया। उसके मित्र से मैंने उसका परिचय पूछा तो उसने बताया कि वह महर्षि श्वेतकेतु का पुत्र और लक्ष्मी की सन्तान पुण्डरीक है। उसी समय से मेरी और उसकी कामव्यथा असह्य होने लगी। मैं अपनी माता और सहेली के साथ घर तो चली आई किन्तु हृदय उसी के पास छोड़ दिया। उधर वह भी व्याकुल होने लगा। उसके मित्र कपिञ्जल ने आकर उसकी दयनीय दशा सुनाई। मैं सहेली के साथ अभिसार के लिए निकल पड़ी। उसके समीप पहुँचने पर उसका मित्र रोता हुआ बोला कि असह्य कामवेदना के कारण पुण्डरीक ने प्राण त्याग दिये हैं। वज्राघात समान यह सुनकर मैं रोई, विलाप करने लगी। चिता बनाकर आत्मदाह करने ही जा रही थी कि उसी बीच एक ज्योतिपुरुष आकाश से नीचे उतरा और उस पुण्डरीक के मृत शरीर को उठाकर ऊपर चलते हुए मुझसे कहने लगा—'महाश्वेता, तुम प्राण मत त्यागना। कुछ समय बाद तुम्हारा अपने प्रियतम से पुनः मिलन अवश्य होगा।' पुण्डरीक का मित्र कपिञ्जल उसी ज्योति का पीछा करता हुआ आकाश में उड़ गया। उस समय से मैं यहीं पुनर्मिलन की आशा बाँधे तपस्या करती हुई जीवन बिता रही हूँ।"

वहाँ अकेली महाश्वेता को देखकर चन्द्रापीड ने उसकी सखी तरलिका के विषय में पूछा कि वह इस समय कहाँ है, तो महाश्वेता फिर बोली—"तरलिका को अभिन्नहृदया सखी कादम्बरी को समझाने-बुझाने के लिए भेजा है। वह कादम्बरी गन्धर्वराज चित्ररथ की पुत्री है। उसे जब मेरे प्रियतम का दुःखद समाचार मिला तो उसने भावुकता में आकर यह प्रतिज्ञा कर डाली—"जब तक मेरा (महाश्वेता का) पुनर्मिलन नहीं हो जाता तब तक वह भी अपना विवाह नहीं करेगी।"

दोनों आपस में वार्तालाप कर ही रहे थे कि कादम्बरी का सेवक केयूरक वहाँ आया और कहा कि कादम्बरी अपनी प्रतिज्ञा पर अटल है। आप चल कर उसे समझायें—ऐसा कादम्बरी के माता-पिता ने सन्देश दिया है। यह सुन कर महाश्वेता ने स्वयं ही चल कर समझाना उचित समझा। उसने चन्द्रापीड से भी अपने साथ चलने और गन्धर्व-राजधानी घूमने के लिये कहा। चन्द्रापीड तैयार हो गया। केयूरक के साथ सभी हेमकूट पर्वत पर पहुँचे। महाश्वेता ने कादम्बरी से चन्द्रापीड का परिचय करवाया। प्रथम साक्षात्कार में ही दोनों का प्रेम हो गया। वे एक दूसरे पर पूर्ण अनुरक्त हो गये। कादम्बरी ने अपना प्रेम प्रदर्शित करने के लिये एक अमूल्य हार चन्द्रापीड

की भेंट में भेजा। दोनों की कामव्यथा बढ़ने लगी। कुछ समय बाद चन्द्रापीड महाश्वेता के साथ उसके आश्रम वापस लौट आया। यहाँ आकर उसने देखा कि उसकी खोज करती हुई सारी सेना वहीं आ गई है। उसे पिता तारापीड और महामन्त्री शुकनास का सन्देश मिला कि वे लोग शीघ्र ही उसे लौटा हुआ देखना चाहते हैं। आज्ञा पाकर चन्द्रापीड ने कुछ तेज घुड़सवार सैनिकों के साथ उज्जयिनी जाने की तैयारी कर दी। उसने वैशम्पायन से कहा कि वह पीछे से सेना लेकर धीरे-धीरे आता रहे। मार्ग में उसे चण्डिका-मन्दिर दिखाई दिया। कुछ समय बाद वह उज्जयिनी आ पहुँचा। बाद में चन्द्रापीड के आदेश के अनुसार मेघनाद पत्रलेखा को अपने साथ लेकर उज्जयिनी वापस लौटा। पत्रलेखा से चन्द्रापीड ने कादम्बरी तथा महाश्वेता आदि के विषय में पूछा। उसने सारी बातें कहने के बाद कादम्बरी की दारुण विरहावस्था का वर्णन प्रारम्भ कर दिया। चन्द्रापीड के प्रति कादम्बरी के अतिशय प्रेम प्रकट करनेवाले मृत्युसूचक वाक्य "ज्ञास्यसि मरणेन प्रीतिमित्य-सम्भाव्यमेव" अर्थात् हे राजकुमार! मेरी मृत्यु से तुम अपने प्रति मेरे प्रेम को जान लोगे ऐसा संभव नहीं है। [क्योंकि मृत्यु किसी के अधीन नहीं होती है।"] [बाणकृत कथा समाप्त]

उत्तर भाग का सारांश

भूषणकृत कथा का प्रारम्भ "और भी, (हे पत्रलेखा, सुनो।) ...."ऐसा कह कर उसने कादम्बरी की असहनीय कामवेदना का मार्मिक तथा विस्तृत वर्णन किया। उसने राजकुमार से कहा कि वह कादम्बरी को यह आश्वासन देकर यहाँ आई है कि वह शीघ्र ही राजकुमार को लेकर हेमकूट पर्वत पर वापस आयेगी। उसने कादम्बरी की इस दुर्दशा के लिये राजकुमार को ही पूर्ण उत्तरदायी कहा।

इधर चन्द्रापीड स्वयं ही विरहपीडित था। वह पत्रलेखा के मुख से कादम्बरी की अतिशय विरहपीडा से जनित दयनीय दशा सुनकर और अधिक व्याकुल हो गया। वह इस सबके लिए कामदेव को कोसने लगा। उसने अपने प्राण देकर भी कादम्बरी की रक्षा करने का संकल्प ले लिया। इसी बीच प्रतीहारी ने आकर संदेश दिया कि महारानी विलासवती ने पत्रलेखा-सहित उसे अपने पास उपस्थित होने के लिए कहा है। राजकुमार एक ओर कादम्बरी की विरह से पीडित था दूसरी ओर माता की अनुलंघनीय आज्ञा भी पालन करनी थी। वह पत्रलेखा को साथ लेकर अपनी माता की सेवा में पहुँचा और सारा दिन आनन्दपूर्वक वहीं बिताया।

रात्रि आरम्भ होते ही वह स्मरायतनभूत कादम्बरी का स्मरण करने लगा। अपनी पीडा के समान ही उसकी भी पीडा को मानकर, कामदेव के आक्रमण से उसकी रक्षा करने के लिये उन दोनों के मध्य में अपने को खड़ा कर दिया। फलतः चन्द्रापीड की दशा और भी खराब होने लगी। वह एक ओर गुरुजनों की अनुलंघनीय आज्ञा और दूसरी ओर कादम्बरी के उत्कट स्नेहपाश में फँसा हुआ पीडा सहने में असमर्थ होता हुआ एक दिन सायंकाल राजभवन से बाहर निकल पड़ा। घूमता हुआ कार्तिकेय भगवान् के मन्दिर पहुँचा। वहाँ सामने दौड़कर आते हुए बहुत से घोड़ों को देखा।

उनके विषय में जानकारी पाने के लिये उसने एक सेवक को भेजा। स्वयं भी नदी पार कर मन्दिर में अपने सेवक के वापस लौटने की प्रतीक्षा करने लगा।

उसने दूर से कादम्बरी के सेवक केयूरक को पहचान कर पत्रलेखा को दिखाया। पास आ जाने पर केयूरक का आलिंगन किया। कादम्बरी तथा परिजनों के विषय में पूछा। इसके बाद हथिनी पर पत्रलेखा और केयूरक को बिठाकर अपने राजभवन लौट आया। यहाँ पुनः रात्रि में कादम्बरी तथा महाश्वेता के विषय में पूछने लगा।

केयूरक ने कहा—"हे राजकुमार आपके आदेश से मैं पत्रलेखा को अपने साथ लाकर सेनापति मेघनाद को सौंपकर वापस चला गया। मैंने महाश्वेता से आपके अचानक प्रस्थान की बात कही तो वह दुखी होकर उठी और पुनः तपस्या के लिये अपने आश्रम चली गई। कादम्बरी इस समाचार से बहुत आहत हुई और मदलेखा से पूछने लगी—"राजकुमार ने जैसा किया है क्या वैसा कभी किसी ने किया है या करेगा?" दूसरे दिन प्रातः सेवा में उपस्थित सभी सेवकों को उसने डाँटकर भगा दिया। सारे दिन शोक में डूबी पड़ी रही। मुझसे उसकी यह दशा देखी नहीं गई और मैं उससे बिना कुछ बताये ही उसके प्राणों की रक्षा के लिये आपकी शरण में आया हूँ।" ऐसा कहकर उसने विस्तार-पूर्वक कादम्बरी की दुर्दशा बतलायी। सुनते-सुनते चन्द्रापीड मूर्छित हो गया। होश में आने पर वह कादम्बरी की महानुभावता, अतिशय उदारता तथा गुणों की प्रशंसा करने लगा। इस सारी दुर्घटना के लिये उसने कादम्बरी की तटस्थता, लज्जा तथा संकोच को और उसकी सेविकाओं की मूर्खता को ही दोषी ठहराया। अन्त में भाग्य को ही दोष दिया और कादम्बरी को पीडा दूर करने का पूर्ण आश्वासन दिया।

रात्रि में राजकुमार ने केयूरक से फिर पूछा—"क्या हमलोगों के हेमकूट पर पहुँचने तक कादम्बरी प्राण धारण किये रहेगी? क्या मदलेखा और महाश्वेता पुनः उसका ढाढस बँधवा सकेगी?" यह सुनकर केयूरक ने राजकुमार से शीघ्र ही वहाँ चलने का आग्रह किया।

राजकुमार माता-पिता को बिना बताये चल देने से होनेवाली विपत्तियों की चिन्ता में डूब गया। उसे अपना अकेलापन खलने लगा। उसे अपने अभिन्न मित्र वैशम्पायन की याद सताने लगी। क्योंकि उसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उसे इस विपत्ति से नहीं बचा सकता था, समस्या का हल नहीं निकाल सकता था।

दूसरे दिन प्रातः उसे यह सुनाई दिया कि पीछे आनेवाली सेना दशपुर तक आ गई है। सुनकर उसे वैशम्पायन के शीघ्र ही आ पहुँचने का विश्वास हुआ। अब उसे अपने मनोरथ की सिद्धि की आशा बँधने लगी ऐसा उसने केयूरक को बताया। किन्तु केयूरक ने पुनः कहा कि वैशम्पायन के आने में विलम्ब होगा। अतः शीघ्र ही कादम्बरी के पास चलने का उपाय किया जाय। उसने कहा कि वह पहले आगे जाकर कादम्बरी को आश्वस्त करना चाहता है। पीछे से राजकुमार वहाँ आ जायँ। राजकुमार केयूरक के प्रस्ताव से प्रसन्न हुआ और पत्रलेखा को बुलाकर, समझाकर उसे कादम्बरी की सेवा में

केयूरक के साथ भेज दिया। उसने पत्रलेखा के द्वारा कादम्बरी के पास यह सन्देश भिजवाया कि उसने राजकुमारी के साथ जो निन्दनीय आचरण किया है, उसे दुःख पहुँचाया है, उसके लिये वह खेद प्रकट करता है और क्षमायाचना करता है।'' उसने कादम्बरी की महानुभावता की प्रशंसा करते हुए आगे फिर कहा—"मेरा दुबारा आगमन निष्फल न हो, सारा संसार सूना न हो, ऐसा ही राजकुमारी को करना चाहिए।''

उन लोगों के चले जाने के बाद उसने स्कन्धावार की वापसी का समाचार जानने के लिये सेवक भेजा। स्वयं भी वैशम्पायन का स्वागत करने की अनुमति लेने के लिये पिता तारापीड के चरणों में उपस्थित हो गया। युवराज को उपस्थित देखकर राजा ने उसे आशीर्वाद दिया। उसकी युवावस्था देखकर राजा तारापीड मन्त्री शुकनास से कहने लगे—"अब राजकुमार युवा हो गया है। अतः महारानी से विचार विमर्श कर इसका विवाह कर देना चाहिए। आप इसके लिये किसी सुन्दर राजकुमारी का पता लगाइये।'' राजा के प्रस्ताव से शुकनास बहुत प्रसन्न हुआ और सहमति व्यक्त की। इसके बाद वे राजकुमार को लेकर महारानी विलासवती के भवन में पहुँचे। वहाँ राजकुमार के विवाह के विषय में उनसे बातचीत की। हास-परिहास की अनेक बातें करके वे दोनों वहाँ से बाहर निकल गये। राजकुमार ने वैशम्पायन के स्वागत की चिन्ता में सारा दिन बिता दिया।

रात में चन्द्रोदयकाल में ही उसने स्वागत-यात्रा के लिये प्रस्थान कर दिया। हजारों राजकुमारों से घिरा हुआ वह किसी प्रकार नगर से बाहर निकला और रात में ही तीन योजन मार्ग तय कर डाला। प्रातः होते-होते उसने स्कन्धावार देखा। उसने मन में एक योजना बनाई कि बिना सूचना के वैशम्पायन से मिलना अच्छा रहेगा। अतः राजोचित वेशभूषा हटाकर, सामान्य-जनोचित वेश धारण करके कुछ घुड़सवारों के साथ वैशम्पायन को पूछता हुआ स्कन्धावार में प्रविष्ट हुआ। उसने वैशम्पायन के विषय में पूछा तो सेविकाओं ने उत्तर दिया कि यहाँ वैशम्पायन नहीं है ? किन्तु दूसरे सेवकों ने इन्द्रायुध अश्व देखकर राजकुमार को आया हुआ जान लिया और सेवा में उपस्थित हो गये। राजकुमार ने उनसे भी वैशम्पायन के विषय में पूछा तो उन्होंने भी उसके न आने की बात कही। जब राजकुमार ने उसके न आने का कारण पूछा तो उन्होंने बतलाया कि वैशम्पायन अच्छोद सरोवर के तट पर शिवमन्दिर में खोया हुआ सा, अन्न जलादि छोड़ कर रहा है। उन लोगों ने बहुत समझाया और बहुत प्रतीक्षा की, प्रार्थना की, अन्त में वे सभी निराश होकर उसे वहीं छोड़कर वापस चले आये।

चन्द्रापीड को वैशम्पायन के वैराग्य का कोई भी कारण समझ में नहीं आया और वह उसके लिये बहुत चिन्तित हो उठा। बड़े भारी मन से दुःखी होकर उसने पटमण्डप में प्रवेश किया। रात्रि में उसके मन में यह विचार आया कि अब वैशम्पायन को वापस लाने के बहाने से वह कादम्बरी से भी मिल सकेगा। ऐसा सोचकर कुछ प्रसन्न भी हुआ और उज्जयिनी वापस लौट आया। राजा तारापीड और मन्त्री शुकनास को जब वैशम्पायन के न आने का समाचार मालूम हुआ तो वे बहुत दुःखी हुए। पिता शुकनास ने अपने पुत्र वैशम्पायन की इस कृत्य के लिये बहुत निन्दा की।

परन्तु राजा ने इस कार्य के प्रति चन्द्रापीड को ही दोषी ठहराया । किन्तु शुकनास ने इसका तीव्र विरोध किया । दुःखी और क्षुब्ध शुकनास को राजा ने शान्त किया । परन्तु इस सारे घटनाक्रम से चन्द्रापीड के मन में बहुत क्लेश होने लगा । उसने शुकनास के माध्यम से राजा से अपने प्रस्थान की अनुमति माँगी । क्योंकि अब उसके अलावा दूसरा कोई भी वैशम्पायन को वापस नहीं ला सकता था ।

राजा ने चिन्तित होते हुए भी जाने की अनुमति तो दे दी परन्तु उसे अपनी माता से भी आज्ञा प्राप्त कर लेने को कहा । उसने अपनी माता को बहुत समझाया और शीघ्र ही वापस लौटने का वचन दिया । माता ने जाने की अनुमति दे दी । तब उसने वैशम्पायन की माता मनोरमा और पिता शुकनास से भी प्रस्थान की आज्ञा माँगी । उन्होंने न चाहते हुए भी अनुमति दे दी । प्रस्थान करते समय महारानी ने शंकाग्रस्त मन से बिदाई दी । राजा के पास आज्ञा के लिये जब वह आया तो राजा ने कहा कि वह निर्दोष है । उसमें दुर्गुण नहीं हैं । इसीलिए उसे युवराज बनाया गया है । अतः उसे दुःखी नहीं होना चाहिए । वे तो युवराज का विवाह करना चाहते थे किन्तु वैशम्पायन की यह दुर्घटना उसका प्रतिबन्धक बनकर आ गई है । ऐसा कहकर खूब आलिंगन किया और आशीर्वाद देकर बिदा कर दिया । चन्द्रापीड अत्यन्त उत्सुक होकर उसी समय अपनी यात्रा पर निकल पड़ा ।

बाहर निकल कर राजकुमार ने प्रस्थान-मंगल के लिये निर्मित पट-मण्डप में बिना प्रवेश किये ही कुछ राजकुमारों को साथ में लिये हुये चलते-चलते तीन योजन मार्ग पार करने के बाद ही विश्राम किया । पुनः आगे की यात्रा प्रारम्भ करते हुये वह मन में वैशम्पायन तथा कादम्बरी आदि से मधुर मिलन की कल्पनाओं में खो गया । वह दिन-रात बिना रुके चलता ही रहा । इसी मध्य भयानक वर्षाकाल भी आ गया जिससे उसकी कामातुरता बढ़ने लगी । आगे मार्ग में वापस लौटता हुआ सेनापति मेघनाद उससे मिला । उसने उससे वैशम्पायन का समाचार पूछा । उसने बताया कि उसे वैशम्पायन के विषय में कोई भी जानकारी नहीं है । यह सुन कर राजकुमार की व्याकुलता और बढ़ने लगी । वह आगे चलता रहा ।

अच्छोद सरोवर के तट पर उसने सभी घुड़सवार सैनिकों को बाहर ही रोक दिया । स्वयं अकेला ही वैशम्पायन को खोजता हुआ घूमने लगा । बहुत खोजने के बाद भी उसे न पाकर, निराश होकर सोचने लगा कि महाश्वेता से ही इस विषय में पूछूं । उसने गुफा के द्वार पर सभी को दुःखी बैठे देखा । चिन्तित होकर तरलिका से दुःख का कारण पूछा । वह महाश्वेता का मुख देखने लगी । महाश्वेता बोली—"राजकुमार ! अभागिन मैं ही यह वृत्तान्त भी आपको बताती हूँ, बेचारी पत्रलेखा क्या बतायेगी ? केयूरक से आपके अचानक उज्जयिनी-प्रस्थान का समाचार सुनकर मैं दुःखी हुई और पुनः तपस्या के लिये यहीं आश्रम में लौट आई । कुछ समय बाद आपके ही समान एक नवयुवक ब्राह्मण यहाँ आया । मुझे बहुत देर तक घूर घूर कर देखने के बाद कहने लगा—"हे देवि ! असमय में तपस्या करके शरीर को कष्ट देना उचित नहीं है ।" परन्तु मैं तो प्राणवल्लभ पुण्डरीक के ध्यान में डूबी हुई थी । मैंने तरलिका द्वारा उसे मना करवाया कि यहाँ दुबारा न आवे अन्यथा

उसका अनिष्ट हो जायगा। बार-बार निषेध और उपेक्षा करने पर भी जब वह नहीं माना तो मैं दूसरे आश्रम में चली गई। एक रात जब चन्द्रमा की चाँदनी से सारा भूमण्डल व्याप्त था। सभी प्राणी मध्य रात्रि में निद्रा में मग्न थे। तभी वह युवक कामावेश में विवेकशून्य, उन्मत्त सा होकर पुनः मेरे समीप आया और निवेदन करने लगा—'देवि, कामदेव का सहायक मित्र यह चन्द्रमा मुझे मार डालने के लिये उद्यत हो रहा है। और शरण में आये हुये के प्राणों की रक्षा करना तपस्वियों का भी धर्म है। अतः यदि आप आत्मसमर्पण द्वारा मेरी रक्षा नहीं करती हैं तो मैं कामदेव तथा चन्द्रमा इन दोनों के द्वारा मार डाला जा रहा हूँ।"

इस प्रकार से तोते के समान बार-बार प्रलाप करता हुआ, मना करने पर भी नहीं मान रहा था तो प्रियतम की शोकवह्नि में जलती हुई मैंने उसे शाप दे डाला—"हे सकलभुवन-चूडामणि चन्द्र! मैंने देव पुण्डरीक के दर्शन से लेकर आज तक यदि किसी पर पुरुष का ध्यान स्वप्न में भी न किया हो तो मेरे सत्य वचन के प्रभाव से, शुक के समान बोलने वाला यह दुष्ट शुकयोनि में ही पतित हो जाय।" मेरे इतना कहते ही वह कटे वृक्ष के समान तत्काल चेतना-रहित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। विलाप करते हुये उसके साथियों के मुख से पता चला कि वह आप चन्द्रापीड का ही मित्र था"—ऐसा कह कर वह लज्जा से मुख नीचा करके आंसू बहाती हुई बैठ गई।

चन्द्रापीड का हृदय कादम्बरी के वियोगजन्य दुःख से पहले ही व्याप्त था और अब महाश्वेता की बातें सुनकर वास्तव में विदीर्ण होने लगा। उसके हृदयविदारण को देखकर तरलिका घबड़ाकर फूट-फूट कर रोने लगी और महाश्वेता को चन्द्रापीड की वह दशा दिखलाने लगी। चन्द्रापीड के सभी सेवक चन्द्रापीड के हृदय-विदारण के लिये महाश्वेता को ही दोषी मानकर उस पर क्रुद्ध होने लगे और अनेक प्रकार का विलाप करने लगे। सभी राजकुमार दौड़ कर वहाँ आ गये हैं। उसी समय इन्द्रायुध अश्व मानों अपनी अश्वयोनि से मुक्ति चाहने लगा। इधर इसी बीच केयूरक तथा पत्रलेखा द्वारा चन्द्रापीड के पुनरागमन का समाचार सुनकर महाश्वेता से मिलने का बहाना बनाकर, मदलेखा से अनेक प्रकार की बातें करती हुई कादम्बरी भी उसी स्थान पर आ पहुँची।

कादम्बरी ने वहाँ आकर चन्द्रापीड के मृत परन्तु अविकृत शरीर को देखा तो वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। पत्रलेखा भी मूर्च्छित हो गई। मदलेखा कादम्बरी को समझाने लगी। किन्तु कादम्बरी ने अपने प्रियतम का अनुगमन करने का निश्चय कर लिया। वह अपना कर्तव्यभार मदलेखा से पूरा करने का आग्रह करने लगी। उसने उससे विवाह करके माता-पिता को सन्तोष और अपने लिये जलाञ्जलि-प्रदानहेतु पुत्र उत्पन्न करने की प्रार्थना की। अपनी समस्त प्रिय वस्तुयें विभिन्न लोगों को दे देने का निर्देश दिया। इसके बाद मदलेखा को अलग हटाकर महाश्वेता के गले में लिपट कर प्राण त्याग करने के लिये उद्यत हो गई। इसी समय दुबारा आकाशवाणी सुनाई दी—"हे वत्से महाश्वेते! दूसरी बार भी मुझे ही तुमको आश्वस्त करना पड़ रहा है। तुम्हारे प्रियतम पुण्डरीक का शरीर तो चन्द्रलोक में मेरे (चन्द्रमा के) तेज से आप्यायित होकर अविनाशी बना हुआ मेरे समीप रक्खा ही है, यह चन्द्रापीड का शरीर तो स्वतः अविनाशी होता हुआ विशेष रूप

से कादम्बरी के इस स्पर्श से परिपुष्ट होता हुआ, शापदोष के कारण आत्मा से रहित होता हुआ, योगी के शरीर के समान, आप लोगों के विश्वास के लिये शाप की समाप्ति तक यों ही रखा रहेगा। इसका न तो अग्नि-संस्कार करना चाहिये और न जल में प्रवाहित करना चाहिये, इसे यत्नपूर्वक सुरक्षित रखना चाहिये।''

उस आकाशवाणी को सुन कर पत्रलेखा को छोड़ कर सभी आश्चर्यचकित होकर ऊपर देखने लगे। इधर उस अमृतमयी वाणी के श्रवण से होश में आयी हुई पत्रलेखा ने सेवक के हाथ से इन्द्रायुध अश्व की लगाम छुड़वा कर—"वाहन के बिना अकेले स्वामी के चले जाने पर तुम शोभित नहीं हो रहे हो''—ऐसा कह कर उस इन्द्रायुध अश्व के साथ अपने को भी अच्छोद सरोवर में डुबो दिया है। तत्काल उस सरोवर से ऊपर निकल कर, गीली जटायें धारण करता हुआ कपिञ्जल महाश्वेता के सामने उपस्थित हो गया।

जल से प्रकट हुये कपिञ्जल ने महाश्वेता से पूछा—"देवि! आप मुझे पहचान रही हैं?'' महाश्वेता ने उत्तर दिया—'भगवन् कपिञ्जल! इतनी तो अभागिन नहीं हूँ कि आपको भी न पहचान सकूँ। अब आप पुण्डरीक के शरीर को उठा ले जाने के बाद से अब तक क्या क्या हुआ—मुझे विस्तार से बतलाइये।'' आग्रहपूर्वक पूछे जाने पर कपिञ्जल ने कहा—"गन्धर्व-राजपुत्रि! विलाप करती हुई भी आपको जब मैं मित्र पुण्डरीक के स्नेह के कारण छोड़ कर, कमर कस कर, उस ज्योति पुरुष का पीछा करता हुआ उसे ललकार कर कहने लगा "अरे, मेरे मित्र को कहाँ चुरा कर लिये जा रहे हो?'' वह बिना उत्तर दिये चन्द्रलोक तक मुझे ले गया। उस ज्योति पुरुष ने वहाँ चन्द्रकान्त मणि-निर्मित पलंग पर पुण्डरीक का शरीर रखा और बोला—'कपिञ्जल! मुझे चन्द्रमा जानो। मैं संसार का अनुग्रह करने के लिये उदित होकर अपना कार्य पूरा कर रहा था। उसी समय कामातुर इस तुम्हारे मित्र ने निरपराध भी मुझे यह शाप दे डाला—'दुरात्मन् चन्द्र! जैसे मैं वल्लभासुख न प्राप्त करता हुआ तेरे कारण मर रहा हूँ वैसे ही तू भी जन्म-जन्म में भारतवर्ष में उत्पन्न होकर प्रियासुख न पाता हुआ मरेगा।' यह सुन कर निरपराध मुझे भी क्रोध आ गया और मैंने भी उसे प्रतिशाप दे डाला—'तू भी मेरे समान ही सुख-दुःख का भागी बनेगा।' क्रोध शान्त होने पर जब मुझे ज्ञात हुआ कि मेरी किरणों से उत्पन्न अप्सरा-कुल में गौरी नामक कन्या से ही महाश्वेता उत्पन्न है और उसने इस पुण्डरीक को स्वयं अपना पति चुना है। अब मेरे द्वारा दिये गये शाप के कारण इस पुण्डरीक को दो बार भारतवर्ष में जन्म लेना है। अतः शापदोष की समाप्ति तक इसके शरीर को सुरक्षित रखने के लिये अपने पास उठा लाया हूँ। और आकाशवाणी द्वारा मैंने वत्सा महाश्वेता को आश्वस्त कर दिया है। अब यह सारा वृत्तान्त पुण्डरीक के पिता श्वेतकेतु को जाकर बता दो।''

कपिञ्जल आगे बोला—"मैं मित्र के वियोग में अन्धा बना हुआ आकाशमार्ग से जाता हुआ एक क्रोधी वैमानिक ऋषि को लांघ गया। उसने क्रोध से शाप दे डाला—'अरे घोड़े के समान उच्छृङ्खल दौड़ने वाला तू घोड़ा ही बन जा।' उसके शाप देते ही मैं विनय करने लगा और अपने

मित्रवियोग के कारण ही हुए अपराध के लिये क्षमायाचना करने लगा। बहुत अनुनय-विनय से प्रसन्न होकर उस ऋषि ने कहा--"मेरा वचन अन्यथा नहीं हो सकता। मैं इतना ही कर सकता हूँ कि तुम जिसके वाहन बनोगे उसकी मृत्यु के समय स्नान करने के बाद शाप से मुक्त हो जाओगे। मैंने ध्यान के बल पर यह जान लिया है कि उज्जयिनी में पुत्र के लिये तपस्या करते हुए राजा तारापीड के यहाँ चन्द्रमा पुत्ररूप में जन्म लेगा। और तुम्हारा मित्र पुण्डरीक वहीं महामन्त्री शुकनास के यहाँ वैशम्पायन के रूप में जन्म लेगा। तुम उसी चन्द्रावतार चन्द्रापीड राजकुमार के वाहन इन्द्रायुध अश्व बनोगे।" ऋषि के ऐसे कहते ही मैं नीचे समुद्र में गिर पड़ा और घोड़ा बनकर ही बाहर निकला किन्तु मेरा ज्ञान पूर्ववत् सुरक्षित ही रहा। इसी कारण किन्नर-युगल का पीछा करते हुए राजकुमार चन्द्रापीड को यहाँ तक ले आया। और अपने पूर्वजन्म के अनुराग के कारण आपसे प्रेमालाप करनेवाले जिस व्यक्ति को आपने शाप से दग्ध कर डाला, तोता बना डाला, वह मेरे प्रिय मित्र और तुम्हारे प्राणवल्लभ पुण्डरीक का ही अवतार वैशम्पायन था।"

कपिञ्जल से उपर्युक्त बातें सुनकर महाश्वेता आर्त्त स्वर में क्रन्दन करने लगी और अपने को बार-बार कोसने लगी। किन्तु कपिञ्जल ने उसे शाप की समाप्ति के बाद शीघ्र ही पुण्डरीक के मिलन का आश्वासन दिया और तपस्या द्वारा सभी मनोरथपूर्ण होने की बात कही। दोनों गन्धर्वराज-कुमारियों को ढाढस बँधाया है कि उन दोनों का शीघ्र ही अपने-अपने प्रियतमों से मिलन होगा। तब कादम्बरी ने पत्रलेखा के विषय में पूछा कि उसका क्या समाचार है? कपिञ्जल ने कहा—"चन्द्रात्मक चन्द्रापीड का तथा पुण्डरीकात्मक वैशम्पायन का जन्म कहाँ हुआ है और उस पत्रलेखा का क्या हुआ है? यह सभी कुछ जानने के लिये वह पुण्डरीक के पिता महर्षि श्वेतकेतु के समीप जा रहा है।" ऐसा कहकर ऊपर आकाश में उड़ गया।

कपिञ्जल के चले जाने के बाद कादम्बरी ने महाश्वेता से पूछा कि अब आगे क्या करना चाहिए। महाश्वेता ने चन्द्रात्मक चन्द्रापीड के शरीर की आराधना को ही सभी मनोरथों की सिद्धि का साधना बतलाया। कादम्बरी ने बड़ी सावधानी के साथ चन्द्रापीड के शरीर को सुरक्षित स्थान पर रखवाया। और अनन्यभाव से उसकी परिचर्या में जुट गई। उसे आकाशवाणी और कपिञ्जल की बातों से पुनः समागम का पूरा-पूरा विश्वास था। दूसरे दिन प्रातः उसने चन्द्रापीड के शरीर को पूर्ववत् विकाररहित देखा तो महाश्वेता तथा राजकुमारों आदि को भी उसका दर्शन करवाया। सभी लोग उस प्रकार के चन्द्रापीड को देखकर कादम्बरी की स्तुति करने लगे। इसके बाद कादम्बरी ने सबके साथ फलाहार किया। अपने माता-पिता को यह समाचार बतलाने के लिये मदलेखा को उनके समीप भेजता। उसने वहाँ जाकर सारा समाचार सुनाया और वापस आकर उन लोगों का सन्देश कादम्बरी को बतला दिया।

वर्षाकाल बीत जाने के बाद एक दिन मेघनाद ने कादम्बरी के पास आकर निवेदन किया—"हे देवि! राजकुमार लौटने में विलम्ब कर रहे हैं अतः महाराज तारापीड और महारानी विलासवती ने राजकुमार का हाल जानने के लिये दूत भेजे हैं। मैंने उनसे कह दिया कि न तो राजकुमार और न

ही देवी कादम्बरी को आप लोगों द्वारा कोई समाचार भेजना है। ऐसा कहा जाने पर भी वे लोग राजकुमार के दर्शन के बिना वापस नहीं लौटने को कह रहे हैं।'' मेघनाद की बातें सुनकर कादम्बरी ने दूतों के न लौटने को बात को उचित माना और उन सभी को राजकुमार का दर्शन करने की आज्ञा दे दी। कादम्बरी स्वयं ही उनसे कहने लगी--''आप लोग शोक त्याग दीजिये। ऐसी घटना संसार में कहीं अन्यत्र नहीं हुई है। अतः आप लोग वापस जाकर महाराज से इतना ही कहें--''हम लोगों ने अच्छोद सरोवर के तट पर राजकुमार का दर्शन किया है।'' सेवकजनों ने महाराज से कोई भी सत्य बात छिपा सकने में अपनी असमर्थता प्रकट की और अपने एकनिष्ठ सेवाभाव की बात कही। तब कादम्बरी के निर्देश से मेघनाद ने त्वरितक नामक बालसेवक को उन लोगों के साथ उज्जयिनी भेज दिया।

उज्जयिनी में बहुत दिनों से चन्द्रापीड का समचार न मिलने के कारण चिन्तित होकर महारानी विलासवती अवन्ती-मातृकाओं से मनौती मनाने के लिये अवन्तीमातृका-मन्दिर पहुँची। उसी समय सेविकाओं ने बतलाया—''युवराज का वृत्तान्त लेने के लिये भेजे गये दूत वापस लौट आये हैं।'' यह सुनकर महारानी बहुत खुश हुई और चन्द्रापीड के विषय में जानकारी पाने के लिये अनेक प्रकार के प्रश्न पूछने लगी। दूतों ने बतलाया--''हम लोगों ने अच्छोद-तट पर युवराज को देखा है। शेष यह त्वरितक बतलायेगा।'' यह सुनकर महारानी बहुत दुःखी हुई और युवराज के अनिष्ट की आशंका से विलाप करती-करती मूर्छित हो गई। यह सारा समाचार जब महाराज तारापीड को बतलाया गया तो वे तत्काल तीव्रगामिनी हथिनी पर सवार होकर मातृकागृह पहुँचे। वहाँ महारानी को सान्त्वना देते हुए कहा—''यदि युवराज का वास्तव में कोई अनिष्ट हुआ होगा तो हम लोग भी प्राण दे देंगे। हम लोगों ने इतना सुख पाने के लिये ही पुण्य किया था। इसके अतिरिक्त किसी ने स्पष्ट रूप से यह भी तो नहीं बतलाया है कि युवराज को क्या हुआ है। पहले त्वरितक को बुलाकर सब मालूम करते हैं तब जो उचित होगा, करेंगे।''

राजा की आज्ञा पाकर त्वरितक ने सारा वृत्तान्त कहना प्रारंभ कर दिया। चन्द्रापीड के हृदय फटने तक की बात सुनने पर राजा ने घबड़ाकर आगे कहने से मनाकर दिया। किन्तु आर्त्त प्रलाप करते हुये महाराज तथा महारानी से त्वरितक ने कहा—''युवराज अभी भी शरीर से जीवित हैं।'' इस लोकोत्तर वृत्तान्त को सुन कर महाराज-सहित सभी लोग आश्चर्य में डूब गये। तब महामन्त्री शुकनास ने संसार की अनेक विलक्षण घटनाओं का वर्णन करते हुये त्वरितक की बातों पर विश्वास करने के लिये कहा। महारानी तत्काल चन्द्रापीड के पास चलने का आग्रह करने लगी।

इधर शुकनास की पत्नी मनोरमा के सेवक ने चन्द्रापीड तथा वैशम्पायन के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिये मातृकागृह में आई हुई मनोरमा की सूचना दी। महाराज ने महारानी को स्वयं जाकर मनोरमा से सारी स्थिति बतलाने के लिये कहा और स्वयं शुकनास के साथ प्रस्थान की तैयारी करवाने लग गये।

स्नेहातिरेक के कारण अपने साथ आते हुये उज्जयिनी के लोगों को वापस लौटा कर, कुछ तेज घुड़सवारों के साथ महाराज अच्छोद सरोवर के तट पर पहुँचे। वहाँ जाकर त्वरितक के साथ कुछ घुड़सवारों को वास्तविक वृत्तान्त जानने के लिये भेजा। वहाँ जाकर और वापस लौट कर आये हुये राजकुमारों को देख कर महाराज ने महारानी से कहा कि इन राजकुमारों की वापसी से यह स्पष्ट है कि युवराज शरीर से जीवित हैं अन्यथा ये लोग वापस नहीं लौटते। महारानी ने युवराज के साथियों के मध्य में केवल उसे ही न देख कर विलाप करना प्रारम्भ कर दिया। महाराज ने मेघनाद को बुला कर चन्द्रापीड का सब हालचाल पूछा। उसने बताया—'युवराज की केवल शारीरिक चेष्टायें ही नष्ट हुई हैं किन्तु उनकी कान्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।' यह सुन कर महाराज ने महारानी को आश्वस्त किया और हथिनी पर सवार होकर आश्रम पहुँचे।

इधर अचानक चन्द्रापीड के माता-पिता का आगमन सुन कर महाश्वेता बहुत घबड़ा गई और दौड़ कर गुफा में छिप गई। कादम्बरी भी मूर्छित हो गई। महाराज ने सबके साथ आश्रम के भीतर प्रवेश किया। महारानी वैशम्पायन की माता मनोरमा को पीछे धक्का देकर, अलगकर रोती हुई, लेटे हुये मृत युवराज के शरीर से विलाप करती हुई लिपट गई। परन्तु महाराज ने अपने से भी अधिक दुःख वाले शुकनास तथा मनोरमा को ढाढ़स बँधाने के लिये महारानी से कहा। साथ ही मूर्छित पुत्रवधू कादम्बरी को संभालने के लिये भी समझाया। महारानी ने दौड़ कर कादम्बरी को अपनी गोद में बिठा लिया और उसके कारण अपने पुत्र की जीवनरक्षा के लिये उसकी प्रशंसा करने लगी। मदलेखा ने मूर्छित ही कादम्बरी द्वारा सभी गुरुजनों को प्रणाम करवाया। सभी ने 'सदा सौभाग्यवती रहो'—यह आशीर्वाद दिया। राजा ने आदेश किया कि अभी तक कादम्बरी जिस प्रकार से चन्द्रापीड की सेवा कर रही थी वह उसी प्रकार से अबाध रूप से करती रहे। हम लोग रहें या चले जाँय, इससे सेवा में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ना चाहिए।

उक्त आदेश देकर बाहर निकल कर महाराज ने सम्मानपूर्वक समस्त राजाओं से कहा—"मैंने यह निश्चय किया था कि बधूसहित चन्द्रापीड का मुखदर्शन करने के बाद उसे समस्त राज्यभार सौंप कर, वन में किसी आश्रम में वृद्धावस्था बिताऊँगा। परन्तु दुर्दैव ने यह मनोरथ इस दुर्भाग्यपूर्ण रूप में उपस्थित किया है। नियति का अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता। वे परम भाग्यशाली होते हैं जो अपना भार पुत्रों को सौंप कर, हलके होकर परलोकगमन करते हैं।" ऐसा कहने के बाद राजोचित सभी सुख छोड़ कर चन्द्रापीड के दर्शन का सुख प्राप्त करते हुये महारानी तथा शुकनास आदि के साथ वहीं आश्रम में रहने लगे।"

इतनी कथा कहने के बाद महर्षि जाबालि ने मुस्करा कर श्रोता ऋषियों से कहा—"देखा आप लोगों ने कथा का प्रभाव, जो पुण्डरीक कामोपहत होकर मृत्युलोक में वैशम्पायन रूप में जन्मा था वही अपनी अविनय से पिता के आक्रोश तथा महाश्वेता के शाप के कारण इस शुकयोनि में आ गिरा।"

महर्षि जाबालि का इतना ही कहना था कि उस शुक को सोकर जागे हुए व्यक्ति के समान तत्काल सभी कुछ स्मरण हो गया। वह अपने पूर्वजन्म के सम्बन्धियों को याद करने लगा। कुछ देर बाद पुनः सिर झुकाकर महर्षि जाबालि से बोला—"महर्षि! आपकी कृपा से मुझे सब कुछ स्मरण हो गया है। पूर्व के समान मानववाणी भी हो गई है। एक बात जानने की मन में प्रबल उत्कण्ठा है कि मेरे वियोग के कारण जिस प्रिय मित्र चन्द्रापीड का हृदय फट गया था अब उसका क्या समाचार है?" महर्षि ने उसे डाँटा और कहा कि उचित समय आने पर उसे सब मालूम हो जायगा। उड़ने की शक्ति प्राप्त करने तक शान्तिपूर्वक यहीं प्रतीक्षा करे।

इतने में रात्रि लगभग समाप्त हो गई थी। प्रभातकाल हो चुका था। महर्षि सभा भंग कर उठ खड़े हुए। ऋषि लोग नित्य कर्म में लग गये।

यद्यपि अन्य मुनिकुमार वहाँ पर थे फिर भी जाबालिपुत्र हारीत स्वयं मुझ शुक को उठा कर, अपनी कुटी में एक ओर बैठाकर प्रातःकृत्य करने के लिये चला गया। उस समय मुझे अपने कर्मों से बहुत दुःख हुआ और मैं अपना शरीर छोड़ने की सोचने लगा। इतने में मुस्कराते हुए हारीत ने आकर बतलाया कि मेरा प्रिय मित्र कपिञ्जल मुझसे मिलने आया है और यहीं आश्रम में महर्षि जाबालि के चरणों के पास बैठा है। मैं मिलने के लिए बहुत व्याकुल हो ही रहा था कि कपिञ्जल स्वयं मेरे पास उपस्थित हो गया। मुझे शुकयोनि में गिरा देखकर कपिञ्जल दुःखी होकर फूट-फूट कर रोने लगा। मैंने उसे समझाया और अपने अपराध पर उसे रोने से मना किया। फिर उससे अपने पिता श्वेतकेतु का वृत्तान्त पूछा। उसने कहा कि पिता जी ने अपनी दिव्य दृष्टि से हम लोगों का सारा वृत्तान्त पहले ही जान लिया था। उसी समय से उसके प्रतीकार के लिये उपाय प्रारम्भ कर दिया था। उसी के प्रभाव से मैं अश्वयोनि से मुक्त होकर उनकी शरण में पहुँचा। उन्होंने तुम्हारा शुकयोनि में जन्म लेना बताया। और आज प्रातःकाल पुनः बताया कि महर्षि जाबालि के आश्रम में तुम रह रहे हो। उन्होंने तथा तुम्हारी माता लक्ष्मी ने मुझे तुमसे यह कहने की आज्ञा दी है—"जब तक यह अनुष्ठान समाप्त नहीं हो जाता तब तक तुमको जाबालि के चरणों में ही रहना है, अन्यत्र कहीं भी नहीं जाना है।"

कपिञ्जल और मैं आपस में पूर्वजन्म की अनेक बातें करते रहे। दोपहर में हारीत ने कपिञ्जल के साथ मुझे भी भोजन करवाया। कुछ समय बाद कपिञ्जल मुझे हारीत को सौंपकर, ढाढ़स बंधवा कर, कहीं अन्यत्र न जाने के लिये सावधान करके वहीं से आकाश में उड़ गया।

हारीत द्वारा पाला-पोसा जाता हुआ मैं यह सोचने लगा 'अब उड़ने में तो समर्थ हो गया हूँ। चन्द्रापीड का समाचार भले ही न ज्ञात हो सका हो, महाश्वेता तो वैसी ही वहीं पर है। अब उसके बिना एक पल भी रुक पाना संभव नहीं है। अतः उसी के पास चलता हूँ।' इस प्रकार का निश्चय करके प्रातःकाल में मैं पूर्व दिशा की ओर चल दिया। चलते-चलते थकान से चूर होकर मार्ग में एक वृक्ष की नीची शाखा पर बैठकर विश्राम करते-करते सो गया। उसी समय कालपुरुष के

समान एक चण्डाल ने मुझे बाँध लिया। मैंने उसे अनेक प्रकार से समझाया और अपनी मुक्ति की प्रार्थना की। किन्तु उसने अपने स्वामी की कन्या की आज्ञा का उल्लंघन करना स्वीकार नहीं किया और मुझे बाँधकर उसी कन्या के पास ले गया। चाण्डालों के मध्य में निवास करने के भय और चिन्ता से मैं बहुत दुःखी हुआ। कुछ समय बाद उसने मुझे ले जाकर प्रणाम करके अपने स्वामी की कन्या के हाथों में मुझे सौंप दिया।

मुझ (शुक) को पाकर वह चाण्डालकन्या बहुत प्रसन्न हुई और एक चमड़े से बँधे पिंजड़े में मुझे बन्द करके कहने लगी "पुत्र! अब तुम्हारी स्वेच्छाचारिता समाप्त करती हूँ। अब इसी में शान्त होकर बैठो।" बन्द हो जाने पर मैं बहुत दुःखी हुआ। उन चाण्डालों से बात करने की अपेक्षा मर जाना अच्छा मानकर मौन धारण कर लिया। भोजन के समय वह कन्या स्वयं ही आई और अनेक प्रकार के फलादि खाने के लिये आग्रह करने लगी। मेरे न खाने पर अनेक तर्कों तथा शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा आपत्तिकाल में किसी भी प्रकार प्राण-धारणार्थ भोजन करने का उपदेश देने लगी। उसकी बातों से प्रभावित होकर मैंने फल तो खाये किन्तु अपना मौन नहीं तोड़ा।

धीरे-धीरे समय बीतता गया। एक दिन प्रातःकाल जब मेरी आँख खुली तो मैंने अपने को सोने के इस पिंजरे में बन्द पाया। उस चाण्डाल बस्ती (पक्कण) को भी अमरपुर के समान देखा। जब तक मैं इस कन्या से इस आश्चर्य के विषय में कुछ पूछता उससे पहले ही यह उठा कर आप (महाराज शूद्रक) के समीप ले आयी। (अन्त में उस शुक ने कहा कि) मुझे भी आपके ही समान इसके विषय में कुछ भी मालूम नहीं है।" (पूर्वार्द्ध पृ० ८७ से उत्तरार्ध पृ० ४४१ तक की कथा)

उस शुक की बातें सुनकर, राजा शूद्रक ने अपना कौतूहल शान्त करने के लिये तत्काल द्वारपालिका भेज कर उस चाण्डाल कन्या को बुलवाया। वहाँ आकर अपने तेज से राजा को अभिभूत करती हुई, खड़ी-खड़ी ही वह बोली—

"हे रोहिणीपति चन्द्र, कादम्बरी-लोचनानन्द-चन्द्र! मैं इस दुर्मति शुक की माता लक्ष्मी हूँ। आपने इसके मुख से अपने और इसके पूर्व जन्म का सारा वृत्तान्त सुन लिया है। इसकी चपलता देखकर इसके पिता श्वेतकेतु ने इसको और अधिक पतन से बचाने के लिये मुझे आदेश दिया था कि अब यह शुकयोनि से भी निकृष्ट योनि में गिर सकता है। बिना पश्चात्ताप के इसकी चपलता दूर नहीं होगी। अतः इसके मन में अपने कृत्यों का पश्चात्ताप उत्पन्न कराने के लिये ही मैंने इसे बाँधा और लोगों के सम्पर्क से बचने के लिये ही यह चाण्डाल-बस्ती तथा चाण्डाल-कन्या का रूप बनाया। अब आपके और इसके दोनों के शाप की समाप्ति का अवसर आ गया है। अतः अब दुःखदायी इन शरीरों को छोड़ कर आप दोनों अपने प्रिय लोगों के समागम का सुख प्राप्त करें।"

इतना कहने के बाद वह चाण्डाल कन्या बिजली के समान देदीप्यमान होती हुई, पृथ्वी से आकाश में अन्तर्धान हो गई।

उसकी बातें सुनते ही अपने-अपने पूर्व जन्मों का वृत्तान्त स्मरण हो जाने से वैशम्पायन शुक और राजा शूद्रक दोनों के शरीर काष्ठ के सदृश जड़ हो गये। उसी समय कामदेव कादम्बरी को परमास्त्र बना कर उपस्थित हो गया। शूद्रक के शरीर की सारी चेष्टायें शून्य हो गईं। उसका हृदय अपनी रक्षा के लिये मानों कादम्बरी की शरण में चला गया। उसकी तथा वैशम्पायन की कामातुरता पराकाष्ठा पर पहुँच गयी। उसी समय उनकी कामाग्नि को बढ़ाता हुआ वसन्तमास भी उपस्थित हो गया।

इधर कामाग्नि को उद्दीप्त करने वाले वसन्त मास के प्रभाव से व्याकुल कादम्बरी ने कामदेव-महोत्सव में जिस किसी प्रकार दिन तो बिता दिया किन्तु सायंकाल स्नानादि करके कामदेव की पूजा करने के बाद चन्द्रापीड के शरीर का पूजन तथा श्रृङ्गारादि सम्पादित किया। इसके बाद अत्यन्त उत्कण्ठा से उसके शरीर को देख कर, इधर-उधर दृष्टि दौड़ाती हुई, अपने ऊपर नियन्त्रण करने में असमर्थ होती हुई अचानक चन्द्रापीड के गले में जोर से लिपट गई। कादम्बरी के उस अमृतमय स्पर्श से चन्द्रापीड के शरीर में पुनः चेतनता (प्राण) आ गई। उसने अपनी भुजाओं से कादम्बरी का दृढ़ आलिंगन करते हुये कहा—"अरे भीरु ! भय छोड़ दे। तुम्हारे इस कण्ठाश्लेष से मैं पुनर्जीवित हो गया हूँ। अभी तक शाप के कारण मैं जीवित नहीं हो सका था। अब मैं शूद्रक का शरीर छोड़ चुका हूँ। चूंकि चन्द्रापीड के इस शरीर में तुम्हारी प्रीति है अतः इसे धारण किये हुये हूँ। साथ ही तुम्हारी प्रिय सखी महाश्वेता का प्राणवल्लभ पुण्डरीक भी मेरे साथ ही शापमुक्त हो गया है।"

कादम्बरी चन्द्रापीड का आलिंगन छोड़ कर जब तक महाश्वेता के पास पहुँचे तब तक आकाश से उतरते हुये कपिञ्जल का हाथ थामे हुये पुण्डरीक भी चन्द्रापीड के पास आकर मिल गया। दोनों आपस में वार्तालाप करने लगे। चन्द्रापीड ने पुण्डरीक से इस नये ससुर-दामाद के सम्बन्ध की अपेक्षा मैत्री सम्बन्ध से ही व्यवहार करने का आग्रह किया। इस घटना को देख कर मदलेखा ने दौड़ कर मृत्युञ्जय-जप में व्यस्त राजा तारापीड तथा महारानी विलासवती को चन्द्रापीड के पुनर्जन्म तथा वैशम्पायन की शापमुक्ति का सुखद समाचार सुनाया। अत्यन्त प्रसन्न राजा और महारानी ने शुकनास तथा मनोरमा को सब समाचार सुनाया और एक साथ महाश्वेताश्रम में पहुँचे।

राजा ने चन्द्रापीड को वास्तव में चन्द्रमा का अवतार जान कर स्वयं पिता होने पर भी अपने पुत्र चन्द्रापीड के चरणों में प्रणाम किया और अपना सर्वस्व उन्हें समर्पित कर दिया। किन्तु महारानी ने पुत्रभाव से ही उसका आलिंगन किया। चन्द्रापीड ने शुकनास तथा मनोरमा को उनके पुत्र वैशम्पायन (पुण्डरीक) को दिखाया। इसी बीच में कपिञ्जल ने शुकनास को श्वेतकेतु का यह सन्देश सुनाया—"उन्होंने पुण्डरीक को केवल बड़ा ही किया है, वास्तव में यह आपका ही पुत्र है और यह भी आपके प्रति असीम स्नेह करता है। अतः इसे अपना ही समझ कर व्यवहार करें, दोषों से बचायें।"

दूसरी ओर केयूरक से सारा समाचार जानकर, दूसरे दिन कादम्बरी के पिता गन्धर्वराज चित्ररथ और माता मदिरा तथा महाश्वेता के पिता गन्धर्वराज हंस तथा माता गौरी वहाँ पधारे। चित्ररथ ने राजा तारापीड से गन्धर्व-राजधानी चल कर विवाह सम्पन्न करने का अनुरोध किया। परन्तु तारापीड ने कहा कि इस वन से बढ़ कर सुख उन्हें कहीं मिल सकता। और मैंने अभी आपके जामाता को अपना सब समर्पित कर दिया है अब वृद्धावस्था वन में बिताना चाहता हूँ। आप चन्द्रापीड को गन्धर्व-राजधानी ले जाइये। उनकी आज्ञा से चित्ररथ अन्य सभी के साथ अपनी राजधानी आये और कादम्बरी का विवाह चन्द्रापीड के साथ करके अपना सारा राज्य भी उसे दे दिया। गन्धर्वराज हंस ने भी अपनी पुत्री महाश्वेता का विवाह पुण्डरीक के साथ करके अपना राज्य आदि उसे ही दे दिया। किन्तु अपनी चिर अभिलषित प्रेयसियों के पाने से अत्यन्त प्रसन्न उन दोनों ने केवल उन्हें ही स्वीकार किया।

कुछ समय बाद एक दिन खिन्नमुखी होती हुई कादम्बरी ने चन्द्रमूर्ति चन्द्रापीड से पूछा—"आर्यपुत्र! हम लोग तो वियुक्त होकर पुनः आपस में मिल गये हैं परन्तु बेचारी अकेली वह पत्रलेखा ही नहीं दिखाई दे रही है। न जाने उसका क्या हुआ होगा।" चन्द्रापीड ने कादम्बरी से कहा कि वह मेरी प्रिय पत्नी रोहिणी थी। मेरे शाप का वृत्तान्त सुनकर मेरी सेवा के लिये वह मुझसे पहले मृत्युलोक में अवतीर्ण हुई थी। इस समय वह चन्द्रलोक में विराजमान है। वहीं चलने पर देख सकोगी। इसी बीच दोनों का प्रथम मिलन कराने के लिये मानों दिन खिसक गया। और रात्रि लम्बी हो गई। चन्द्रापीड ने कादम्बरी के प्रथम सुरत सुख का खूब अनुभव किया। कुछ समय बाद अपने सास-ससुर से आज्ञा लेकर अपने माता-पिता की सेवा के लिये उज्जयिनी आ गया।

उज्जयिनी आने के बाद अपने सभी मित्र राजकुमारों को भी अपने समान सुखी बना कर, पुण्डरीक को सारा राज्यभार सौंप दिया। इसके बाद कभी विरक्तभाव से माता-पिता की सेवा करता हुआ उज्जयिनी में, कभी कादम्बरी के पिता गन्धर्वराज के प्रति सम्मान दिखाता हुआ हेमकूट पर्वत पर, कभी रोहिणी के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये चन्द्रलोक में, कभी पुण्डरीक के प्रेम से कमलों के सरोवर में, कभी कादम्बरी की रुचि से अन्य रमणीय उन-उन सभी प्रदेशों में, दोनों जन्मों में आकाङ्क्षित नये-नये सुखों को, चन्द्रमूर्ति चन्द्रापीड कादम्बरी के साथ, कादम्बरी महाश्वेता के साथ, महाश्वेता पुण्डरीक के साथ और पुण्डरीक चन्द्रमूर्ति चन्द्रापीड के साथ परस्पर सम्मिलनपूर्वक भोगते हुए आनन्द की पराकाष्ठा प्राप्त करते हुए जीवन बिताने लगे।

कादम्बरी-कथा का मूल स्रोत

यद्यपि बाण और उनके सुपुत्र भूषण ने जिस कुशलता के साथ कादम्बरी कथा प्रस्तुत की है उससे यह कहना कठिन लगता है कि इन्होंने किसी का अनुकरण किया है तथापि अनेक साम्य देखने के बाद विद्वानों का यह मानना है कि बाण के समय अति प्रसिद्ध तथा प्रशंसित 'बृहत्कथा' ही कादम्बरी की मूल प्रतीत होती है। 'बृहत्कथा' में वर्णित मकरन्दिकोपाख्यान को पिता-पुत्र ने

इस प्रकार परिवर्तित, परिवर्धित तथा परिष्कृत रूप में प्रस्तुत किया है कि यह नवीन रूप में दिखाई देती है। उसके पात्रों के नाम, घटनाओं में अपेक्षित परिवर्तन, अपनी भावना के अनुसार परिवर्धन करके उस नीरस कथा को जीवन्त रूप में सदा के लिये अमर बना दिया है। दुर्भाग्यवश 'बृहत्कथा' जो कि प्राकृत में उपनिबद्ध थी, आज अपने मौलिक रूप में नहीं मिलती है। उसके कुछ परिवर्तित अंश सोमदेवरचित 'कथा-सरित्सागर' में हैं। क्षेमेन्द्ररचित 'बृहत्कथामञ्जरी' और बुधस्वामीरचित 'बृहत्कथाश्लोक' में भी कुछ कथांश हैं। कादम्बरी की कथा का मूल सम्प्रति उपलब्ध कथासरित्-सागर के लम्बक १० तरङ्ग १३ श्लोक २२-१७९ तक वर्णित है।

दोनों का साम्य और वैषम्य प्रस्तुत संस्करण प्रथम भाग की भूमिका पृ० १४-२०तक देखा जा सकता है।

कादम्बरी-कथा का घटना-काल

यद्यपि कादम्बरी की कथा कविकल्पित है तथापि पात्रों के चयन और सुनियोजित घटनाक्रम-वर्णन के कारण यह कथा तीन-तीन जन्मों तक चलती रहती है।

सर्वप्रथम हमारे समक्ष राजा शूद्रक उपस्थित होता है। वह युवक है। विवाह के लिये सर्वथा योग्य अवस्थावाला है फिर भी विवाह के प्रति मन में भावना नहीं बनती है जो जन्मान्तर की किसी अज्ञात प्रेमघटना का संकेत देती है।

दूसरा पात्र चन्द्रापीड आता है। यह भी नवयुवक है। युवराज पद पर अभिषिक्त हो चुका है। सम्राट् तारापीड उसके विवाह के लिये सुयोग्य राजकुमारी खोजने के लिये महामन्त्री शुकनास से तथा महारानी विलासवती से विचार-विमर्श करते हैं।

इन दो व्यक्तित्वों के मध्य में एक तृतीय व्यक्तित्व है लोकपाल चन्द्रमा का। यह लोकपाल चन्द्रमा ही शाप के कारण चन्द्रापीड के रूप में जन्म लेता है—चन्द्रमा—चन्द्रापीड—राजा शूद्रक

शाप की घटना कुछ इस प्रकार है। महर्षि श्वेतकेतु के पुत्र पुण्डरीक के कान में लगी कर्णमञ्जरी की उत्कट गन्ध से गन्धर्वराज हंस की कन्या महाश्वेता उस पर पूर्ण आसक्त हो जाती है। ऋषिपुत्र पुण्डरीक जो लक्ष्मी की काम-भावनाजन्य सन्तान है, वह भी महाश्वेता का अनुपम सौन्दर्य देख कर व्याकुल हो जाता है। प्रथम साक्षात्कार और अल्प वार्तालाप में ही दोनों कामातुर हो जाते हैं। रात्रि में चन्द्रोदय के कारण कामव्यथा-पीडित पुण्डरीक चन्द्रमा को शाप देता है—'तुम्हारे कारण मैं प्रिया के समागम का सुख न पाकर जैसे मर रहा हूँ वैसे ही तुम भी प्रिया के समागम का सुख न पाकर मरोगे।' यह सुनकर निरपराध चन्द्रमा को क्रोध आ जाता है और वह तत्काल प्रतिशाप दे देता है—"तुम भी मेरे सुख-दुःख के सहभोगी बन इस कर्मभूमि भारत वर्ष में बार-बार जन्म लोगे।" 'बार-बार' कथन को सच करने के लिये चन्द्रमा और पुण्डरीक को कम-से-कम दो बार जन्म लेने ही हैं। यही केन्द्रबिन्दु है सम्पूर्ण कथा का काल निर्णय करने के लिये।

पुण्डरीक ब्रह्मचारी है, युवक है, कामवासना का अतिरेक उसमें दिखाई देता है अतः उसे २० वर्षों से ऊपर की आयुवाला होना चाहिए। यह कथा बीस वर्षों की अवस्था वाले पुण्डरीक से प्रारम्भ होती है। इसी पुण्डरीक के द्वारा शापित चन्द्रमा का कुछ समय बाद उज्जयिनी में सम्राट् तारापीड की महारानी विलासवती के गर्भ से चन्द्रापीड के रूप में जन्म होता है और पुण्डरीक के अकारण शाप देने से क्रुद्ध चन्द्रमा द्वारा प्रतिशाप दिये गये पुण्डरीक का जन्म तारापीड के महामन्त्री शुकनास की पत्नी मनोरमा के गर्भ से वैशम्पायन के रूप में जन्म होता है। दोनों की शिक्षा-दीक्षा एक साथ सम्पन्न होती है और तारापीड चन्द्रापीड को युवराज पद पर अभिषिक्त कर देते हैं। वह विजययात्रा के लिये वैशम्पायन के साथ निकलता है। उसी प्रसङ्ग में महाश्वेता आदि से मिलने के साथ-साथ कादम्बरी से भी उसका मिलन होता है। परस्पर प्रेम और आसक्ति हो जाती है। अतः चन्द्रापीड पूर्ण यौवन अवस्था में है। बाद में उज्जयिनी आने पर राजा तारापीड के दर्शन करने पर चन्द्रापीड की दाढ़ी-मूंछ देख कर वह उसके विवाह के लिये शुकनास तथा महारानी विलासवती से परामर्श करते हैं। इस स्थिति में चन्द्रापीड पूर्ण यौवन प्राप्त किया हुआ अर्थात् पच्चीस वर्ष का होना चाहिए। यदि शाप की घटना के बाद एक वर्ष का समय गर्भग्रहण आदि में मान लिया जाय तो अब तक छब्बीस वर्ष बीत जाने चाहिए।

उधर वैशम्पायन भी पूर्वजन्म के संस्कार से महाश्वेता से प्रणययाचना करता है। कामातुर होकर विवेकशून्य हो जाता है। अतः उसके भी पूर्ण युवक और विवाहयोग्य अवस्थावाला होने के कारण अब तक छब्बीस वर्ष का काल बीत जाना उचित है। यह वैशम्पायन पुनः महाश्वेता के शाप से शुक-योनि में गिर जाता है। दूसरी ओर वैशम्पायन के वापस न आने से तारापीड तथा शुकनास आदि सभी चिन्तित हैं। और अन्ततो गत्वा चन्द्रापीड स्वयं ही वैशम्पायन को वापस लाने के लिए पुनः अच्छोद सरोवर के तट पर पहुँचता है। इन सभी कार्यों में कुछ महीनों का समय लगना निश्चित है। महाश्वेता वैशम्पायन को दिया गया अपना शाप और शुकयोनि में उसका पतन जब चन्द्रापीड सुनाती है तभी उसका हृदय फट जाता है। इधर आकाशवाणी सुन कर कादम्बरी आदि चन्द्रापीड के मृत शरीर का दाह न करके पुनर्जीवन की आशा से पूजन-सत्कार करते रहते हैं। वही चन्द्रापीड शूद्रक राजा के रूप में जन्म लेता है। पूर्ण युवक है, विवाह के सर्वथा योग्य है किन्तु किसी के साथ इसका अनुराग या विवाह नहीं होता है। अतः यदि चन्द्रापीड के प्राण निकलने से लेकर शूद्रक की पूर्ण युवावस्था तक पच्चीस वर्ष और जोड़ दिये जायें तो कुल कथा अब तक पचास वर्षों से अधिक का समय ले लेती है। (पुण्डरीक—वैशम्पायन—शुक)

पुरुष पात्र तो दो-दो जन्म लेते हैं किन्तु प्रेमिका नारियाँ महाश्वेता और कादम्बरी वे ही हैं। उन पर अवस्था का प्रभाव नहीं हैं क्योंकि वे गन्धर्वराज-कन्यायें हैं।

द्वितीय बार जन्म लेने का शाप तब समाप्त होता है जब वैशम्पायन शुक राजा शूद्रक को सारी कथा सुना रहा होता है और दूसरी ओर वसन्त महोत्सव में कामदेव की पूजा के बाद कादम्बरी चन्द्रापीड की पूजा-सत्क्रिया करने के बाद विवश होकर अचानक उसके गले में लिपट जाती है।

चन्द्रापीड में पुनः प्राणसञ्चार होता है। उधर शूद्रक तथा शुक का शरीर काष्ठ बन जाता है। चन्द्रापीड जीवित हो जाता है। कपिञ्जल के साथ पुण्डरीक भी चन्द्रलोक से नीचे उतरता है। कपिञ्जल शुकनास को समझाता है कि पुण्डरीक जो वैशम्पायन के रूप में जन्मा था, वास्तव में श्वेतकेतु का पुत्र है किन्तु उन्होंने अब उसे शुकनास आदि को ही सौंप दिया है और उन्हें अपना पुत्र मानने का निर्देश भी दिया है।

सभी मिल जाते हैं। कादम्बरी के पिता चित्ररथ और महाश्वेता के पिता हंस अपनी-अपनी कन्याओं का विवाह क्रमशः चन्द्रापीड और पुण्डरीक के साथ कर देते हैं। और गन्धर्वलोकों का राज्य भी दे देते हैं। चन्द्रापीड के पिता तारापीड अन्तिम अवस्था बन में ही बिताते हैं। इससे भी प्रतीत होता है कि वे लगभग पचहत्तर वर्षों के होंगे।

दो-दो जन्म लेना और दोनों जन्मों में कुछ घटनायें भी घटित होना यह सिद्ध करती हैं कि सारी कथा साठ से लेकर पचहत्तर वर्षों का समय ले लेती है।

उत्तर भाग में पात्रों का चरित्र

भूषणकृत उत्तर भाग में लगभग वे ही पात्र हैं जो पूर्व भाग में हैं। इसमें केवल त्वरितक नामक एक सेवक और अधिक है जो तारापीड को युवराज चन्द्रापीड के हृदयविदारण की घटना सुनाता है। चाण्डाल सेवक का भी वर्णन है जो अपनी स्वामिकन्या का आदेश पालन करता हुआ वैशम्पायन शुक को पकड़ कर उसकी सेवा में उपस्थित करता है।

पात्रों की चरित्रगत कुछ विशेषतायें

इस भाग में महाराज तारापीड एक आदर्श सम्राट्, स्नेहिल पिता, धैर्यवान् श्वशुर, त्यागी वृद्ध के रूप में वर्णित हैं। भूषण ने इनके चरित्र को अत्यन्त सावधानी से उपस्थित किया है। कहीं भी अनौचित्य या पक्षपात करते नहीं दिखाया है। महारानी विलासवती एक भावुक, वात्सल्यमयी माता, सास तथा उदारहृदया महारानी के रूप में वर्णित हैं। विपत्तिकाल में भी शीघ्र धैर्यधारण कर अपने कर्तव्य का समुचित निर्वाह करना इनकी प्रमुख विशेषता है।

महामन्त्री शुकनास प्रकाण्ड विद्वान् तथा महान राजनीतिज्ञ के रूप में वर्णित हैं। सम्राट् तथा युवराज के प्रति इनकी अनन्य भक्ति सराहनीय है। अपने असह्य कष्ट को सहते हुए भी राजपरिवार के कुशलक्षेम की चिन्ता करना इनका प्रमुख कार्य दिखाई देता है। प्रत्येक परिस्थिति में उचित प्रबोधन और स्वामी-अनुगमन इनका स्वभाव है। इनकी धर्मपत्नी मनोरमा एक गम्भीर प्रकृति की सहनशील नारी है। यह अपने दुःख में अन्धी न होकर राजपरिवार के हित की सोचती है।

चन्द्रापीड एक गुणी, उदार, कर्तव्यपरायणपुत्र, पक्के मित्र तथा अनन्य प्रेमी के रूप में चित्रित है। उसमें दुराग्रह नहीं है। अपनी त्रुटि शीघ्र समझ लेता है और उसके परिमार्जन को सोचता है। उसमें पितृभक्ति, मातृभक्ति, मित्रप्रेम तथा स्वजन-स्नेह सदैव दिखाई देता है। संकीर्णता और क्षुद्रता

इसके स्वभाव में नहीं है। कादम्बरी एक गुणी, उदार राजकुमारी, पक्की सखी, आदर्श प्रेमिका तथा पत्नी के रूप में दिखाई देती है। वह अपने सद्व्यवहार से सभी को प्रसन्न रखती है। उसके सेवक-सेविकायें सदैव सेवा में तत्पर रहते हैं। उसमें निरभिमानिता कूट-कूट कर भरी है। वह दूसरों के दुःख से दुःखी होती है।

वैशम्पायन का चारित्र्य-दौर्बल्य प्राणी के जन्मकारणों पर प्रकाश डालता है। वह इस बात का उदाहरण है कि केवल वासना से जन्मा हुआ व्यक्ति उस गुण से मुक्त नहीं हो पाता है। वह प्रेमी है किन्तु धीर, गम्भीर नहीं। मित्रतानिर्वाह में वह पीछे नहीं है। अपने वर्तमान तथा पूर्व जन्म के माता-पिताओं के प्रति उसका आदरभाव समान रूप से है। उसे अपनी कुलीनता और श्रेष्ठता का ज्ञान है। पतित अवस्था में भी वह सर्वभक्षी नहीं बनना चाहता। महाश्वेता त्याग, तपस्या, सतीत्व तथा सखीप्रेम के परिपालन में अनुकरणीय है। वह कभी भी स्वार्थी या तुच्छ नहीं दिखाई देती है। अपनी गलती पर पश्चात्ताप करना उसका स्वभाव है। अपने प्रेम की तुलना में अपनी सखी के प्रेम तथा जीवनरक्षण में वह कभी भी प्रमाद नहीं करती है। वह अपने कष्ट में किसी अन्य को दोषी न मानकर भाग्य को ही दोष देती है।

पत्रलेखा के विषय में बाणकृत पूर्व भाग में यह उत्सुकता बनी ही रह जाती है कि क्या उस प्रकार की सुन्दर युवती राजकन्या केवल सेविका का ही कार्य करने के लिये कल्पित की गई थी। इस उत्तर भाग में उसका समाधान होता है। वह चन्द्रमा (जो कि चन्द्रापीड तथा बाद में शूद्रक के रूप में दो बार जन्मा है) की पत्नी रोहिणी है। जो अपना पातिव्रत्यधर्म निर्वाह करने के लिये पहले से ही भूलोक में अवतीर्ण हो जाती है। पिता-पुत्र बाण और भूषण दोनों ने रोहिणी को एक वन्दनीय नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। जो स्वयं के विषय में जानती है। अपने पति चन्द्रमा के विषय में भी जानती है। फिर भी उसकी खुशी के लिये अपने को अर्पित कर देती है। वह स्वयं ही कादम्बरी को चन्द्रापीड के प्रति और चन्द्रापीड को कादम्बरी के प्रति प्रेमसूत्र में बाँधने का पूर्ण प्रयास करती रहती है। इसी त्याग और बलिदान की भावना से भूषण ने अन्त में कादम्बरी के माध्यम से पत्रलेखा (रोहिणी) के प्रति अपना सम्मान और श्रद्धा प्रदर्शित की है।

मदनिका तथा तरलिका दोनों अपनी-अपनी स्वामिकन्याओं की एकनिष्ठभाव से सेवा करती हैं। केयूरक अपनी राजकुमारी का समर्पित सेवक है। वह सदैव उसका कल्याण ही चाहता है। बलाहक तथा मेघनाद तारापीड और चन्द्रापीड के परम विश्वस्त सेनाध्यक्ष हैं। वे अपने स्वामी की आज्ञा का पालन ही अपना परमधर्म मानते हैं।

श्वेतकेतु का ऋषि होने पर भी पुत्र पुण्डरीक (वैशम्पायन) के कुशलक्षेम का पूर्ण ध्यान रखना और अनिष्टनिवारणार्थ अपेक्षित अनुष्ठान करना इनके कर्तव्यबोध का यथार्थ रूप प्रस्तुत करते हैं। लक्ष्मी की चञ्चलता, कामुकता के साथ-साथ पुत्रहित के लिये चाण्डालकन्या का भी रूप धारण कर लेना मातृप्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण बन गया है।

जाबालि का माहात्म्य अवर्णनीय है। जाबालिपुत्र हारीत में जीवमात्र के प्रति स्नेह है।

भूषणकृत उत्तर भाग में सभी पात्र जीते-जागते और अपने-अपने कर्तव्य के प्रति पूर्ण सावधान दिखाई देते हैं। शिष्टाचार का निर्वाह सभी में समान रूप में है। दूसरों की भावनाओं को समझना और उनका आदर करना इन पात्रों की एक सराहनीय विशेषता है।

भूषणभट्ट की शैली

भूषणभट्ट का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध न हो सकने के कारण इनकी शैली के विषय में साधिकार कुछ कहना कठिन है। कादम्बरी का जो उत्तर भाग इन्होंने लिखा है वह तो विवशता से तथा पिता की अद्वितीय अपूर्णकृति को पूर्ण करने की भावना से ही लिखा है। चूंकि इन्होंने प्रारम्भ में ही यह घोषित कर दिया है कि 'अर्धनारीश्वर भगवान् शंकर' के रूप के समान इन मिले हुए दो भागों में अन्तर कर पाना कठिन[1] है। लेकिन दार्ष्टान्तिक अर्धनारीश्वर के दोनों भाग आधे-आधे रूप में पुरुष तथा स्त्री का स्पष्ट परिचय तो देते ही हैं। यह बात अलग है कि उन्हें अलग कर सकना असम्भव है। इसी प्रकार दोनों भागों को यहाँ भी अलग-अलग अपनी कुछ विशेषतायें तो स्पष्ट प्रतीत ही होती हैं। परन्तु कुछ ही भिन्नतायें हैं शेष सभी कुछ एक समान है। अतएव शैलीगत जो भी विशेषतायें बाणरचित पूर्वभाग में हैं वे सभी इस उत्तर भाग में भी यथासंभव हैं। साथ ही कुछ भिन्नतायें भी हैं।

यद्यपि इन्होंने अपने पिता का अनुकरण करने का यथाशक्ति प्रयास किया है तथापि बाण जैसी प्रौढ़ता, परिष्कार, नवीनता, स्वाभाविकता तथा एकरूपता का निर्वाह कहीं-कहीं नहीं भी हो पाया है। यह अस्वाभाविक नहीं है क्योंकि बाण ने जब कादम्बरी लिखनी आरम्भ की तो उनका संकल्प 'अतिद्वयी कथा' लिखना था[2], अर्थात् उन्हें अपना आत्मविश्वास और ज्ञान-गौरवदर्प था। इसके विपरीत भूषण ने विनम्रभाव से लिखा है—

"याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां यदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात्" ॥[3]

अतः दोनों के संकल्प में अन्तर स्पष्ट है। अब इस दृष्टि से भूषणकृत उत्तर भाग में कुछ न्यूनतायें तो स्वाभाविक हैं। किन्तु उन्हें देख कर कुछ पाश्चात्य और भारतीय समीक्षकों ने इनकी केवल आलोचना ही की। प्रशंसा का एक शब्द भी नहीं लिखा। यह अनुचित है। कादम्बरी का पूर्व भाग तो बाणभट्ट की सारस्वत साधना का परिपक्व फल है। इनकी प्रौढावस्था की कृति है।

---

१. देहद्वयार्धघटनारचितं शरीरमेकं ययोरनुपलक्षित-सन्धिभेदम्।
वन्दे सुदुर्घटकथापरिशेष-सिद्धयै सृष्टेर्गुरू गिरिसुतापरमेश्वरौ तौ ॥—उत्तर भाग मंगलश्लोक–१

२. द्विजेन तेनाक्षतकण्ठकौण्ठ्यया महामनोमोहमलीमसान्धया।
अलब्ध-वैदग्ध्य-विलास-मुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा ॥—कादम्बरी पूर्वार्द्ध श्लोक२०

३. उत्तरभाग उपोद्घात श्लोक २

जब कि उत्तर भाग भूषण की प्रारम्भिक और अन्तिम एक ही कृति है। यह भी विद्वानों के दुःख को देखकर विवशता में लिखी गई है। यदि हम हर्षचरित को देखें तो उसमें कादम्बरी जैसी प्रौढता, गम्भीरता नहीं है। अतः भूषणभट्ट को उचित महत्त्व न देना, कथमपि न्याय्य नहीं माना जा सकता।

बाणभट्ट ने स्वयं अपनी शैली के विषय में लिखा है—

"श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम्[१]॥"
नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्॥[२]

बाण ने भारतीय विद्वानों की क्षेत्रीय विशेषतायें अलग-अलग लिखीं किन्तु अपनी कृति में इन चारों का एक साथ सुन्दर समन्वय किया है। इस शैली को आचार्य 'पाञ्चाली' रीति कहते हैं—

'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि" ॥[१]

बाण के समान ही भूषणभट्ट ने भी पाञ्चाली रीति में लिखने का अच्छा प्रयास किया। इस शैली की विशेषता है शब्द और अर्थ का सन्तुलित प्रयोग। जिस प्रकार का अर्थ अभिप्रेत है शब्दावली भी उसी तरह की होनी चाहिए—कोमल के लिये कोमल, कठोर के लिये कठोर। भूषण के अनेक वर्णन इसके सुन्दर उदाहरण हैं। यह बात अलग है कि ये अपने पिता के समान सर्वत्र एकरूपता नहीं बना सके। बाण की भाषा संगीतमयी और निर्झरिणीतुल्य सदा एक रूप में बहुत दूर तक चलती है। भूषण की भाषा कुछ ही देर में रुकने लगती है, थकने सी लगती है। ऐसा बहुत स्थलों पर दिखाई देता है।

प्रकृति-चित्रण में भूषण भी रुचि रखते दिखाई देते हैं। प्रातः काल, चन्द्रोदय, रात्रिकाल, वर्षाकाल, वसन्तकाल, हिमगृह, अच्छोद-सरोवर, लतामण्डप आदि इसके सुन्दर उदाहरण हैं। इनके भीषणता के वर्णनों में चाण्डालसेवक तथा पक्कण का वर्णन अच्छा लगता है।

बाण ने जिस प्रकार प्रसंगवश उपदेश भी दिये हैं। शुकनासोपदेश तो इसका उत्कृष्टतम उदाहरण है। भूषण ने भी इसका अनुकरण किया है। शुकनास द्वारा कुपुत्र की निन्दा और तारापीड द्वारा यौवन के दोष तथा युवराज और राजा के कर्तव्यों का कथन महत्त्वपूर्ण हैं। सेनापति मेघनाद द्वारा कथित भृत्यों के कर्तव्य भी दर्शनीय हैं—

(१) "......स्वयमेवोत्पद्यन्ते एवंविधाः शरीरसंभवाः महाकृमयः, सर्वदोषाश्रया महाव्याधयः, अन्तर्विषा महाव्यालाः, विनाशहेतवो महोत्पाताः, भुजङ्गवृत्तयो महावातिकाः, वक्रचारिणो

१. हर्षचरित। २. हर्षचरित।

महाग्रहाः·······। ये सकलंकाः कृपाणा इव स्नेहेनैव पारुष्यं भजन्ते। मलिनस्वभावाः करिकपोला इव दानेनैव मलिनतरतामापद्यन्ते।·········। ये च स्निग्धेष्वपि रूक्षाः, ऋजुष्वपि वक्राः, साधुष्वप्यसाधवः·········। येषां च विपरीतानां गुरव एव लघवः, नीचा एवोच्चैः, अगम्या एव गम्या·····। येषां च क्षुद्राणां प्रज्ञा पराभिसन्धानाय न ज्ञानाय, श्रुतं मायाजालाय नोपशमाय·····किं बहुना।" (शुकनासकृतवैशम्पायननिन्दा पृ० १८६-१९१)

(२) "किमस्ति कश्चिदसाविग्रति लोके यस्य निर्विकारं यौनमतिक्रान्तम्? यौवनावतारे हि शैशवेनैव सह गलति गुरुजनस्नेहः। वयसैव सहारोहत्यभिनवा प्रीतिः। वक्षसैव सह विस्तीर्यते वाञ्छा·········। विकाराणां च कारणं प्रायः सरसता। सा च सर्वमेव जलप्रायं कुर्वाणा वर्षातिवृद्धयेवोपजायते। अपि च दिवसो दोषागमाय, दोषागमोऽनालोकाय, अनालोकोऽसद्दर्शनार्थम्·······। बहुदर्शित्वं च तावतः कालस्यैवासम्भावात् कुतः भवतु प्रथमे वयसि। (तारापीडोक्ति पृ० १९६-२००)

(३) "······विनयाधानात् प्रभृति सम्यक् परीक्षितोऽस्यस्माभिः।······न तनयस्नेहादेव। राज्यं हि नामैतत् पृथ्वीभारेणैवातिदुरुद्धरम्, महीभृत्संबाधतयैवातिसंकटम्······, नामहासत्त्वे नास्थिरप्रकृतौ नादातरि नास्थूललक्ष्ये·········पदमेवादधाति।··········अस्माभिरस्खलितैश्चिरं पदे स्थितम्। न पीडिता प्रजा लोभेन, नोद्वेजिता गुरवो मानेन, न विमुखिताः सन्तो मदेन।" (तारापीडकृत उपदेश पृ० २२१-२२७)

(४) "देवि, राजलोके तु का कथा भृत्यवर्गोऽपि सकल एवायं कन्दमूलफलाशी············गन्तव्यमिति। भृत्या अपि त एव ये सम्पत्तौविपत्तौ सविशेषं सेवन्ते। सम्मुन्नम्यमानाः सुतरामवनमन्ति। आलप्यमाना न समानालापाः सञ्जायन्ते।·····धनात् स्नेहं बहु मन्यन्ते। जीवितादपि पुरो मरणमभिवाञ्छन्ति···। (मेघनादकृताभृत्यप्रशंसा पृ० ३४०-३४२)

भूषण की गद्य कहीं-कहीं बाण से कुछ भिन्न भी प्रतीत होती है। बाण इतने लम्बे-लम्बे समस्त वाक्यों का प्रयोग करते हैं कि अध्येता को अर्थबोध में कभी-कभी अधिक कठिनाई होने लगती है। इस तथ्य से भूषण भी परिचित प्रतीत होते हैं। अतः इन्होंने समासयुक्त वाक्यों का तो खूब प्रयोग किया है किन्तु उनमें दीर्घता न हो यह ध्यान रखा है, ऐसा होने से दुर्बोधता नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि बाण ने वर्णनों को प्रधानता दी है, तिल को भी ताड़ बनाया है। जबकि भूषण ने कथाप्रवाह अवरुद्ध न हो, इसका पूरा ध्यान रखा है। यही कारण है कि बाणरचित कादम्बरी आकार की दृष्टि से दो तिहाई से भी अधिक है किन्तु कथा की दृष्टि से उतनी नहीं है। भूषण-रचित उत्तर भाग में कथा अंश पर्याप्त है। इन्हें तो अपूर्ण कथा-प्रबन्ध पूर्ण करना था साथ ही मान्य गद्य काव्य का स्तर भी रखना था। अतः इन्होंने अल्पसमासा तथा असमासा शैली ही मुख्य रूप से अपनायी।

उपरिवर्णित दृष्टि से इनके कुछ दीर्घ समास तथा लघु समास के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

"मधु-मद-मुखर-मधुकर-कुल-कल-कोलाहलाकुलित-कोक-कामिनी-करुण-कूजित-जनित-विरहिजन-मनोदुःखे, विकच-दलारविन्द-वृन्दनिष्यन्दानन्दित-मन्द-गन्धवह-सुगन्ध-दशदिशि विकसित-कुसुमामोद-मुकुलित-मान-ग्रहोन्मोचन-दक्ष-कुसुमायुधे······।" (पृ० १३)

'यथैव च दिवसमशेषं तथैव तां गम्भीर-मेघोपरोधभीमामनवरत-गर्जित-ध्वनि-कम्पित-हृदय-बन्धामाबद्ध-कलाकलापि-कुल-केका–कोलाहलाकुलितचेतोवृत्तिमुद्दामदर्दुरारटित-बधिरित-श्रोत्रेन्द्रियाम्… …।' (पृ० १९९)

अन्य उदाहरण—

"उद्रिक्तरजः सन्ततेः पुरतया चापरिस्फुटविभाव्य-सर्ववृत्तान्तमपीतस्ततो बलित-धवलकदलिकोद्भासितानेक-करि-घटा-सहस्रसङ्कुलमविरल-बलाकावली-विभ्राजिताम्भोदसंघातं मूर्तिमन्तमिव मेघ-समयारम्भम्, आवास-भूमि-ग्रहण-सम्भ्रम-प्रधावितासंख्य-करि-तुरग-परम्परोर्मि-संबाधतयाऽमन्दमन्दरास्फालन-लुलित-कल्लोल-जालाकुलस्य महाजलधेर्लीलया निविशमानं स्कन्धावारमद्राक्षीत् ।"(पृ० १३८)

"………राज्यं हि नामैतत् पृथ्वी-भारेणैवातिदुरुद्धरम्, महीभृत्सम्बाधतयैवातिसङ्कटम्, कुटिलनीति-प्रचारेणैवातिदुःसहचरम्, चतुःसमुद्र-पर्यन्त-भुवनव्याप्त्यैवातिमहत्, महासाधन-प्रसाध्यतयैवातिदुःसाधनम् ।" (पृ० २२१-२२)

भूषण ने बाण के सदृश दीर्घ समासों का प्रयोग कम किया है ऐसा देख कर कुछ समीक्षक इसे भूषण की दुर्बलता मानते हैं। परन्तु वे भूल जाते हैं भूषण के समक्ष उपस्थित समस्या। भूषण का प्रथम उद्देश्य था पिता की अधूरी कृति शीघ्र पूरी करना। चूंकि बाण ने वर्णनों को प्रधानता दी थी, कथा बहुत अवशिष्ट पड़ी थी। वर्णनीय विषयों के चयन में बाण स्वतन्त्र थे। अतः जहाँ जैसा भाव मन में उठा तदनुसार लिख दिया किन्तु भूषण के सामने अवशिष्ट कथा थी जिसमें अधिकांशतः विलाप या वियोग का ही वर्णन करना था। अतः रसानुभूति में बाधक होने के कारण भी भूषण दीर्घसमासा शैली नहीं अपना सकते थे। साथ ही पुनरुक्ति की सम्भावना भी थी। क्योंकि बाण ने अधिकांश सम्भावित विषयों पर दीर्घसमासा, अल्पसमासा तथा असमासा त्रिविध शैली अपनायी थी। यदि भूषण भी इन तीनों का अवलम्बन करके चलते, कथाप्रवाह की अपेक्षा वर्णन को प्रधानता देते, अर्थबोध की तुलना में पाण्डित्य-प्रदर्शन ही मुख्य मानते तो सम्भव था कि भूषण भी कादम्बरी कथा पूरी नहीं कर पाते अपने जीवनकाल में।

अमूर्त भावों का चित्रण इनकी एक विशेषता लक्षित होती है—

"… …कुमारस्य न ददाति तरलिता-लज्जिता लज्जैव दर्शनम्। मनोभव-विकारवेदनाविलक्षं वैलक्ष्यमेव न पुरस्तिष्ठति। अप्रतिपत्तिसाध्वसजडा जडतैव नोपसर्पति। स्वयमुपसर्पणलघु लाघवमेव तत्प्रतिपत्तिस्थैर्यं नावलम्बते। बलात्तदानयनापराधभीता भीतिरेव न सम्मुखीभवति।" (पृ० ९)

"… …तदेवमात्मना सर्वगुणहीनस्यापि मे देवीगुणा एवावलम्बनम्। इयमेव ते स्वभाव-सरसा दूरस्थमपि मदनहुतभुजा दह्यमानं रक्षत्येव सरलता। मुहुर्मुहुराह्वयत्येव स्नेहलता। आनयत्येव स्थिरप्रज्ञता। ढौकयत्येव दक्षिणता। अभिपद्यत एव वत्सलता… …।" (पृ० १११)

कादम्बरी में रस

आचार्यों की मान्यता है कि किसी भी कृति को रस के बिना काव्य की श्रेणी में रखना सम्भव नहीं है। ध्वनिवाद के समर्थक भी रसध्वनि को ही उत्तम काव्य का प्राण मानते हैं। साहित्य-दर्पणकार ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है—"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।" चूंकि कादम्बरी एक उत्कृष्ट काव्य है अतः इसका रसविवेचन अपेक्षित है। यों तो इस उत्तर भाग के रचयिता भूषणभट्ट ने कादम्बरी के रस को वास्तविक कादम्बरी के रस के समान मानते हुए अध्येतामात्र को आनन्द से मत्त मान कर किया है—

'कादम्बरी-रसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।
भीतोऽस्मि यन्न रसवर्णविवर्जितेन तच्छेषमात्मवचसाप्यनुसन्दधानः[1] ॥'

अतः रसविषयिणी चर्चा महत्त्व नहीं रखती है। परन्तु साहित्यिक दृष्टि से विचार करना अनपेक्षित नहीं होगा। कादम्बरी में शृङ्गार रस की प्रधानता है। इसमें विप्रलम्भ और सम्भोग दोनों की अनुभूति होती है। इसमें लगभग ९० प्रतिशत कथानक में विप्रलम्भ ही वर्णित है। इनका विप्रलम्भ एक अलग कोटि का है जो करुण की स्थिति में आते-आते बच जाता है। इसे साहित्यदर्पणकार ने करुणविप्रलम्भ नाम दिया है। और यह कल्पना व्यावहारिक तथा अनुभवसिद्ध भी है। उन्होंने वियोग को स्थायी और अस्थायी मान कर करुण तथा करुणविप्रलम्भ के मध्य में रेखा खींची हैं—

यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये।
विमनायते यदेकस्तदा भवेत् करुणविप्रलम्भः[2] ॥

कादम्बरी में विरही पुण्डरीक की मृत्यु होती है। किन्तु आकाशवाणी द्वारा उसके पुनर्जीवन को सान्त्वना उसकी प्रेमिका महाश्वेता को मिल जाती है। वह इसी आश्वासन से जीवित रहती है और तपस्या करती रहती है। उसे दूसरी बार कपिञ्जल के वचनों से भी पुण्डरीक के पुनर्जीवन का विश्वास होता है। और कथा के अन्त में पुण्डरीक आ भी जाता है। यह पुण्डरीक ही शुकनास का पुत्र वैशम्पायन बना है और पुनः शुकयोनि में जन्म लेकर शूद्रक के राजदरबार में पिंजरे में बन्द होकर आया हुआ सारी कथा कहता है।

महाश्वेता के साथ युवराज चन्द्रापीड गन्धर्व-राजधानी हेमकूट पहुँचता है। कादम्बरी का साक्षात्कार होता है। दोनों परस्पर अनुरक्त और आसक्त हो जाते हैं। फिर चन्द्रापीड पिता के आदेश से अचानक बिना कहे उज्जयिनी चला जाता है। कादम्बरी असहनीय विरह सहन करती है। उधर युवराज भी बेचैन है। दोनों लम्बा वियोग भोग रहे हैं। पूर्वजन्म के संस्कार के कारण वैशम्पायन महाश्वेता पर आसक्त हो जाता है। वह अच्छोद सरोवर-तट छोड़ कर उज्जयिनी वापस

१. कादम्बरी उत्तरभाग उपोद्घातश्लोक ५। २. साहित्यदर्पण ३।२०९।

नहीं आता है। उसके न आने से सभी दुःखी हैं। चन्द्रापीड किसी प्रकार माता-पिता की आज्ञा पाकर दुबारा वैशम्पायन को वापस लेने अच्छोदतट पर आता है। किन्तु उसके आने के पहले ही महाश्वेता के शाप से वैशम्पायन मर कर शुकयोनि में गिर जाता है। महाश्वेता जब युवराज से सारी घटना कहती है तो युवराज चन्द्रापीड का हृदय फट जाता है।

सारी घटना से अपरिचित कादम्बरी चन्द्रापीड से मिलने महाश्वेता के आश्रम में आती है और चन्द्रापीड का मृत शरीर देखकर स्वयं अग्निदाह की इच्छा करने लगती है। दुबारा आकाशवाणी होती है और सभी को ज्ञात होता है कि चन्द्रापीड चन्द्रमा का अवतार है, शाप के कारण उसके प्राण निकले हैं। शाप की समाप्ति होने पर पुनर्मिलन होगा। कादम्बरी चन्द्रापीड की परिचर्या में लगी रहती है। काममहोत्सव में किसी दिन सायंकाल वह अपने ऊपर नियन्त्रण नहीं रख पाती है और लेटे हुए मृत चन्द्रापीड के शरीर का आलिंगन कर बैठती है। उसके स्पर्श से चन्द्रापीड पुनर्जीवित होता है।

अन्त में कादम्बरी का चन्द्रापीड के साथ और महाश्वेता का पुण्डरीक (वैशम्पायन) के साथ विवाह हो जाता है। दोनों दम्पती परस्पर संभोगादि सुख भोगने लगते हैं। इस कथा में करुण विप्रलम्भ और संभोग दोनों पक्षों का सुन्दर समन्वय है।

शृङ्गार के दोनों पक्षों के अतिरिक्त क्रोध, करुण, अद्भुत, वीर, वीभत्स, शान्त, हास्य, भयानक, रौद्र सभी रसों का समुचित परिपाक लक्षित होता है। वात्सल्य रस भी कई स्थानों पर अत्यन्त मार्मिक रूप में है।

उत्तर भाग में अलंकार

अलंकारों का लगाव तो भूषण को पिता की धरोहर के रूप में प्राप्त हुआ प्रतीत होता है। किसी भी प्रसंग को प्रभावशाली बनाने के लिये उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष आदि का प्रयोग किये बिना इन्हें भी सन्तोष नहीं होता है। यह आगे उदाहरणों में देखा जा सकता है।

यदि बाण किसी वर्णन के विस्तार में रुचि रखते हैं, भले ही अध्येता मूल कथा से पूरी
तरह भटक जाय तो भूषण इस दिशा में कुछ सावधान प्रतीत होते हैं। पाण्डित्य-प्रदर्शन के व्यामोह
में ये किसी भी विषय का इतना लम्बा वर्णन नहीं करते हैं कि अध्येता ऊब जाय और आगे पढ़ना
ही बन्द कर दे। बीच-बीच में दो या अधिक पात्रों का परस्पर वार्तालाप अवश्य रखते हैं। इससे
कथाप्रवाह अवरुद्ध नहीं होता है। अध्येता की जिज्ञासा बढ़ती जाती है और वह आगे भी पढ़ने को
उत्सुक होता जाता है। यह एक बहुत बड़ी विशेषता है भूषणभट्ट-विरचित उत्तर भाग कादम्बरी की।

हर्षचरित में गद्य कवियों के लिये निम्न वाक्य आदर्श रूप में कहा गया है—

"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्॥"

भूषण ने यथासंभव इसे अपनाने का प्रयास किया है। यह कितने दुःख का विषय है कि आज तक विद्वान् भूषण-रचित इस भाग की सर्वथा उपेक्षा करते आ रहे हैं। कुछ अंशों में यह भाग यदि बाण से हल्का है तो कुछ अंशों में, विशेषकर आज की समीक्षा के स्तर से देखें तो अच्छा भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि अम्बिकादत्त व्यास ने इन्हीं की शैली को अपनाया।

बाण के समय तक अलंकृत गद्य ही विद्वत्समवाय में मान्य होता था। यही कारण है कि आज भी संस्कृत में गद्य काव्यों की संख्या सीमित है। और इसीलिए यह उक्ति भी प्रसिद्ध है—"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।" जब अलंकृत शैली ही गद्यरचना की श्रेष्ठता का मापदण्ड हो तो बाण या उनके पुत्र अपने को पीछे कैसे रख सकते थे। बाण का गद्य तो एक नमूना बन गया। भूषण ने भी यथाशक्ति सुन्दर अलंकृत प्रयोग किये हैं।

अलंकार दो प्रकार के होते हैं—शब्दालंकार तथा अर्थालंकार। भूषण ने दोनों के प्रयोग किये हैं। कुछ उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत हैं—

शब्दालंकार

(१) अनुप्रास—

"अनेन कुमारेण मधु-मद-मुखर-मधुकर-कुल-कल-कोलाहलाकुलित-कोक-कामिनी-करुण-कूजित-जनित-विरहिजन-मनोदुःखे विकच-दलारविन्द-वृन्द-निष्यन्दानन्दित-मन्द-गन्धवह-सुगन्ध-दशदिशि विकसित-कुमुदामोद-मुकुलित-मानिनी-मानग्रहोन्मोचन-दक्ष-कुसुमायुधे (पृ० १३)

जरठ-शरकाण्ड-विपाण्डु-निबिड-कुण्डलोद्घृष्ट-लडह-युवति-गण्डस्थलान्यखण्ड-मण्डले विडम्बयति मण्डयति गगनं। (पृ० १४)

(२) यमक—

यमक का प्रयोग बहुत कम स्थानों पर हुआ है—

"न तुहिनकर-कर-निकर-संक्रान्तिहृद्येषु ललनाकर.........." (पृ० ४०-४१)

"कलक्वणित-कलहंस-चक्रवाक-चक्रवालाक्रान्त-सरससुकुमार-सैकतानि......।" (पृ० ४३-४४)

"नानुत्ताल-तालवृन्त-वान्तजल-जड-कणिकासारसेकेन निर्वृतिः।" (पृ० ५३)

(३) श्लेष—

"सकलंकाः कृपाणा इव स्नेहेनैव पारुष्यं भजन्ते। मलिनस्वभावाः करिकपोला इव दानेनैव मलिनतरतामापद्यन्ते। निर्वर्तयो मणिप्रदीपा इव प्रसादेनैव ज्वलन्ति...।" (पृ० १८७)

"आशये केशेषु चास्निग्धम्, आनने ज्ञाने चान्धकारितम्, वर्णे चरिते च कृष्णम्, निवसने कर्मणि च मलिनम्, वपुषि वचसि च परुषम्.........।" (पृ० ४२३-२४)

अर्थालङ्कार

(१) उपमा—

अर्थालंकारों में उपमा तथा उत्प्रेक्षा के प्रति भूषण की रुचि विशेष है। चूंकि श्लेषसहित उपमा अधिक प्रभावी होती है अतः इन्होंने श्लिष्टोपमा का प्रचुर प्रयोग किया है—

“तथा च जलकणिकेव पद्मिनी-पलाशस्थिता कम्पते। प्रतिच्छायेव स्फटिकोपलसलिल-दर्पण-मणि-कुट्टिमतलेषु दृश्यते। नलिनीव शशिकरस्पर्शेन म्लायति। हंसीव सरसमृणालिकाहार-व्यतिकरेण जीवति………।” (पृ० ७०)

“मुररिपु-जलशयनलीलेव मन्दोच्छ्वसितशेषा निमीलितलोचना किमपि चिन्तयति। मलय-निम्नगेव सरसहरिचन्दन-किसलयलाञ्छितेषु शिलातलेष्वभिपतति।” (पृ० ७१)

“पदमिव जलदकालस्य, प्रतिपक्षमिव सर्वसन्तापानाम्, निजावासमिव जडिम्नः, निर्गममार्ग-मिव सुरभिमासस्य, आश्रयमिव मकरध्वजस्य।” (पृ० १४९)

“शुकनास! पश्येयमायुष्मतश्चन्द्रापीडस्योरःसर्पिणी महानीलमणि-प्रभेव कनकशिखरिणः, गण्डमण्डलोद्भासिनी मदलेखेव गन्धद्विपस्य,उपहितकान्तिपरभागा लक्ष्मच्छायेव चन्द्रमसः।”(पृ० ११८)

(२) रूपक—

‘मुखकमल’, ‘मदनदाह’—आदि अनेक शब्द यत्र,तत्र रूपक के रूप में प्रयुक्त हैं।

(३) उत्प्रेक्षा—

भूषण की उत्प्रेक्षायें दर्शनीय हैं—

“चन्द्रोदये चास्यास्तिमिरमयीवापैति धृतिः। कमलमयमिव दूयते हृदयम्। कुमुदमय इव विजृम्भते मकरकेतनः।” (पृ० ६५)

“अथ गगनतललब्धविस्तारः, विजृम्भमाण इव दिक्कुञ्जेषु, आवर्तमान इवाभ्रंलिहनगरी-प्राकारमण्डलाभ्यन्तरे, समारोहन्निवोत्तुङ्गगोपुराट्टालकशिखरिणि।” (पृ० १२६)

“परिभवस्थानमिव निदाघसमयस्य, निदानमिव शीतकालस्य, निवेशमिव वारिवाहानाम्, तिरस्कारमिव रविकिरणानाम्।” (पृ० १७३)

“आचरणादुत्कटमनवरत-मदन-शरशल्यनिकर-रचितमिव शरीरमुद्वहन्तम्, उद्विकासिकेतक-रजःपटलधवलं प्रथमतरमेव भस्मसात्कृतमिव मदनहुतभुजा।” (पृ० २७३)

(४) परिसंख्या—

परिसंख्या वर्ण्यविषय की महत्ता किस प्रकार बढ़ा देती है यह गद्यलेखक भली भाँति जानते हैं। बाण के परिसंख्या–प्रयोग सराहनीय हैं। किन्तु भूषण ने भी इसका भरपूर प्रयोग किया है—

"एवञ्च निष्प्रतिक्रियतया·········उपास्यमानोऽपि मनसिजेनाकारमेव लोकलोचनेभ्योऽरक्षन्न कुसुमशरसायकेभ्यो जीवितम्। तनोरेव तानवमङ्गीचकार न लज्जायाः। शरीरस्थितावेवानादरं कृतवान्न कुलक्रमस्थितौ।" (पृ० ४२)

"येषां च विपरीतानां गुरव एव लघवः, नीचा एवोच्चैः, अगम्या एव गम्याः, कुदृष्टिरेव सद्दर्शनम्······।" (पृ० १८९-९०)

"राजधर्मोऽनुरुद्धो न स्वरुचिः। वृद्धाः समासेविता न व्यसनानि। सतां चरितान्यनुवर्तितानि नेन्द्रियाणि······।" (पृ० १२६)

"तथाहि—हर्म्यबुद्धिं वृक्षमूलेषु, अन्तःपुरस्त्रीप्रीतिं लतासु, संस्तुतजनस्नेहं हरिणेषु।" (पृ० ३९५)

(५) सहोक्ति—

"अपि च तस्याश्चन्दनपरिमल इव दक्षिणानिलेन सह समागच्छति मोहः। चक्राह्वशाप इव निशया सहापतति प्रजागरत्रासः। प्रतिरुतानीव वलभीकपोतैः सहाविर्भवन्ति दुःखानि। मधुकर इवोपवन-कुसुमामोदेन सहोपसर्पति मरणाभिलाषः।" (पृ० ६९-७०)

"यौवनावतारे हि शैशवेनैव सह गलति गुरुजनस्नेहः। वयसैव सहारोहत्यभिनवा प्रीतिः। वक्षसैव सह विस्तीर्यते वाञ्छा। बलेनैव सह स्थूलतामापद्यते धीः। मध्येनैव सह कार्श्यमुपयाति श्रुतम्।" (एवकारप्रयोगात् परिसंख्यापि) (पृ० १९६)

"अपि च दुस्तरैर्नदीपूरैरेव सहावर्धन्त मनोरथाः। वर्षजललुलितैः कमलाकरैरेव सह निममज्ज कादम्बरी-समागमप्रत्याशा। धारारयासहैः कन्दलैरेव सहाभिद्यत हृदयम्"। (अत्रपरिसंख्यापि पृ० २४२)

(६) विरोध—

"मधुरमपि दुःश्रवम्, सरसमपि शोषहेतुम्, कोमलमपि कठोरम्, नम्रमप्युन्नतम्, पेशलमप्यहंकृतम्, ललितमपि प्रौढमालापमाकर्ण्य।" (पृ० २७)

"अक्षतमपि हृतमिव, सपरिच्छेदमपि मुषितमिव, जीवन्तमपि मृतमिव, ससंभ्रमकृतागमनमपि प्रतीपमाकृष्यमाणम्।" (पृ० ३८०)

(७) कारणमाला—

"अपि च दिवसागमो दोषाय, दोषागमोऽनालोकाय, अनालोकोऽसद्दर्शनार्थम् ('असद्दर्शनाय), असद्दर्शनमविवेकाय, अविवेकोऽसन्मार्गप्रवृत्तये, असन्मार्गप्रवृत्तं च मोहान्धं चेतो भ्राम्यदवश्यमेव स्खलति।" (पृ० १९८)

इनके अतिरिक्त अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, अपह्नुति आदि विभिन्न अलंकार भी प्रयुक्त हैं।

भूषणभट्ट का शास्त्रीय ज्ञान

भूषणभट्ट वास्तव में किस शास्त्र के विशेष पण्डित थे यह इनकी रचना से स्पष्ट ज्ञात नहीं होता है। परन्तु इतना तो निश्चित है कि ये विभिन्न दर्शनों, पुराणों, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद, राजनीति तथा लोकाचार आदि के अच्छे जानकार थे। प्रसंगवश इन्होंने अपने व्यापक ज्ञान का समुचित प्रदर्शन किया है। कुछ उदाहरण दर्शनीय हैं :—

दर्शन—

"देव, विचित्रेऽस्मिन् संसारे सञ्चरत्सु सुखदुःखमयेषु देवतिर्यग्योनि-मानुषेषु, त्रिगुणात्मनः प्रधानस्यापि परिणामात् परमाण्वादेर्ब्रह्माण्ड-पर्यन्तस्योत्पत्तिस्थिति-प्रलयकारणस्येश्वरेच्छया।" (पृ० ३६६)

"कर्मणां वा शुभाशुभानां विपाकस्वभावात्।" (पृ० ३६७)

"आगमप्रामाण्यादेवाभ्युपगतानि।" (पृ० ३६७)

"स्पष्टमेवात्र कारणं वत्स! अयं हि कामरागमोहमयादल्पसारात् स्त्रीवीर्यादेव केपलादुत्पन्नः। श्रुतौ च पठ्यते एतद्-यादृशाद्वै जायते तादृगेव भवतीति। लोकेऽपि च प्रायः कारणगुणभाञ्जि एव कार्याणि दृश्यन्ते।" (पृ० ४०१-२)

रामायण-पुराण

"आगमेषु सर्वेष्वेव पुराणरामायणभारतादिषु सम्यगनेकप्रकाराः शापवार्त्ताः। तद् यथा—महेन्द्रपदवर्तिनो नहुषस्य राजर्षेरगस्त्यशापादजगरता।" (पृ० ३६७)

"सौदासस्य च वसिष्ठसुत-शापान्मानुषादत्वम्" (वाल्मीकि उ० का०)। (पृ० ३६९)

"असुरगुरुशापाच्च ययातेस्तारुण्य एव जरसा भङ्गः। त्रिशङ्कोश्च पितृशापाच्चाण्डालभावः।" (पृ० ३६९)

"श्रूयते च स्वर्गवासी महाभिषो नाम राजाऽस्मिंल्लोके शन्तनुरुत्पन्नः। तत्पत्नीत्वमुपगताया गङ्गायाः शापदोषादष्टानामपि वसूनां मनुष्येषूत्पत्तिः।" (पृ० ३६९)

"अयमादिदेवो भगवानजः । एष एव जमदग्नेरात्मजतामुपगतः ।" "श्रूयते च पुनश्चतुर्धात्मानं विभज्य राजर्षेर्दशरथस्य तथैव मथुरायां वसुदेवस्य ।" (पृ० ३६९)

"तपसो हि सम्यक् कृतस्य नास्त्यसाध्यं नाम किञ्चित् । देव्या हि गौर्या तपसः प्रभावादतिदुरासदं स्मरारेपि यावदासादितं देहार्धपदम् ।" (पृ० ३१४)

इनके अतिरिक्त अन्यत्र भी कुछ ऐसे प्रसङ्ग हैं जिनसे इनके पुराणादि के ज्ञान की पुष्टि होती है ।

औषधि-तन्त्र-मन्त्र-योग—

"मुद्राबन्धनाद् ध्यानाद् वा विषसुप्तस्योत्थापने कीदृशी युक्तिः । अयस्कान्तस्य चायसः समाकर्षणे भ्रमणे वा । मन्त्राणां वैदिकानामवैदिकानां वानेकप्रकारेषु कर्मसु सिद्धौ । नानाविधद्रव्यसंयोगानां वा मरण-मदनाद्युत्पादनाहरण-वशीकरण-विद्वेषणादिषु शक्तेः समुत्पादनात् अन्येषां बहुतराणामेवंविधानां च तत्र तत्र सर्वस्मिन्नेवागमः प्रमाणम् ।" (पृ० ३६८)

"भगवन् परमेश्वर ! सकल-भुवन-चूडामणे लोकपाल !···तदानेन मे सत्यवचनेनायमलीककामी मदुदीरितायामेव जातौ पततु ।"······अचेतनः क्षिताववपतत् ।" (पृ० २७९) तथा (पृ० ३९७)

धर्मशास्त्र—

"रे मोहान्ध, यस्य शुभाशुभकर्मसाक्षिभूताः पञ्च लोकपालास्तवैवात्मशरीरस्थिता न पश्यन्ति, सोऽन्यस्य भयादकार्यं नाचरसि ?" (पृ० ४२९)

"येषां च भक्ष्याभक्ष्यनियमोऽस्ति तेषामप्यापत्काले प्राणानां सन्धारणमभक्ष्योपयोगेनापि तावद् विहितमेव ।···पानीयमपि चाण्डालभाण्डादपि भुवि पतितं पवित्रमेवेत्येवं जनः कथयति ।" (पृ० ४३९)

ज्योतिष

"यथा सर्वे एव ग्रहाः स्थितास्तथाऽस्मन्मतेन देवस्य गमनमेव वर्तमाने न दृश्यते ।" (पृ०२१२)

"अपरमपि कार्यानुरोधाद् राजेच्छैव कालः······अन्यदात्ययिकेषु कार्येषु कार्यपराणां दिवसनिरूपणैव कीदृशी ।" (पृ० २१२-१३)

राजनीति

चन्द्रापीड द्वारा बिना बताये छिप कर कादम्बरी से मिलने के लिये भागने के प्रसङ्ग में (पृ० ९२), तारापीड द्वारा चन्द्रापीड के प्रस्थानकाल में दिये गये उपदेश (पृ० १२१), मेघनाद द्वारा कादम्बरी से आज्ञा लेने के समय (पृ० ३४०) चन्द्रापीड के दर्शन से रोके जाते हुए सेवकों द्वारा कादम्बरी से वार्तालाप के प्रसङ्ग में (पृ० ३३२) तथा तारापीड द्वारा वानप्रस्थानाश्रमग्रहण के अवसर पर (पृ० ३९३) प्रस्तुत वर्णनों से भूषणभट्ट का राजनीति-विषयक प्रौढ ज्ञान प्रकट होता है ।

लोकव्यवहार

लोकव्यवहार तथा शिष्टाचार के वर्णन में भूषण सर्वत्र सावधान रहे हैं। चाहे सेवक हो या सेविका, युवराज हो सेनाध्यक्ष, सभी अपेक्षित शिष्टाचार का भलीभाँति पालन करते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। मातृत्व तथा पितृत्व का जितना मार्मिक चित्रण यहाँ मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। विलासवती और मनोरमा दोनों ही समानरूप से चन्द्रापीड तथा वैशम्पायन के अनिष्ट से भयभीत तथा व्याकुल हो जाती हैं। राजा तारापीड तथा महामन्त्री शुकनास का पुत्रवात्सल्य मार्मिक रूप में चित्रित है किन्तु पुरुषगत धैर्य का भी समुचित प्रदर्शन करने में भूषण ने पूरी सावधानी बरती है।

उपसंहार के प्रसङ्ग में जब सभी मिलते हैं तो कादम्बरी के पिता गन्धर्वराज चित्ररथ चन्द्रापीड के विवाह के लिये वन की अपेक्षा अपनी गन्धर्वराजधानी चलने के लिये राजा तारापीड से प्रार्थना करते हैं। किन्तु विरक्त राजा वन में ही यह कार्य सम्पन्न करने का विचार रखते हैं और चन्द्रापीड को ले जाकर गन्धर्व-नगरी में विवाह करने की सहर्ष अनुमति दे देते हैं।

भूषणकालीन भारत

पिता बाणभट्ट ने तथा पुत्र भूषणभट्ट ने महान् सम्राट् हर्षवर्धन के राज्य में प्रतिष्ठित जीवन-व्यतीत किया था। हर्ष के समय उत्तर भारत विशेष रूप से कन्नौज और उसका समीपवर्ती क्षेत्र सभी दृष्टियों से समृद्ध था। इस समृद्धि का स्पष्ट उल्लेख बाण तथा भूषण दोनों की कृतियों से ज्ञात होता है। इस विषय में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि अनेक विद्वानों ने पर्याप्त लिखा है।

उस समय राजतन्त्र था। अधीनस्थ राजा अपने सम्राट् के सुख-दुःख में सहभागी होते थे। प्रजा के सुख-दुःख का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता था। राजा निरंकुश नहीं हो पाता था। यद्यपि छोटे-छोटे अनेक राज्य थे और उनमें कुछ पारस्परिक विवाद भी थे परन्तु वे सम्राट् के प्रभाव से दबे रहते थे। राजा की आय धर्मसम्मत करों द्वारा होती थी। पराजित राजा विजयी राजा को अमूल्य वस्तुयें उपहार में देते थे। जैसा कि कुलूतेश्वर द्वारा अपनी पुत्री पत्रलेखा तारापीड को सेवा के लिये भेंट करने से स्पष्ट है।

भारत का सम्बन्ध बाहरी देशों से भी था। अत एव पारसीक राजा ने इन्द्रायुध अश्व राजा तारापीड को उपहार में दिया था। जीती हुई सम्पत्ति तथा राज्य आदि कभी-कभी वापस भी कर दिये जाते थे जैसा कि चन्द्रापीड ने (कथा के अन्त में) सभी को अपने समान सुखी बनाने के लिये उनका वैभव वापस दे दिया था।

एक विशेष बात की चर्चा करनी आवश्यक है। बाणभट्ट और उनके पुत्र भूषणभट्ट दोनों ने ही मानवजाति के लोगों के विवाहादि-सम्बन्ध दिव्यलोक की गन्धर्वराजकुमारियों के साथ करवाये हैं। भौगोलिक दृष्टि से दोनों की अत्यन्त दूरी होते हुए भी इनके परस्पर सम्बन्ध और समय-समय पर दोनों लोकों की सरल यात्रायें भी अतिसम्पन्नता की सूचक प्रतीत होती हैं। ऐसा लगता है कि

कविद्वयी ने भूतलीय तथा पर्वतीय दोनों समाजों की परम्पराओं तथा संस्कृतियों के समीकरण का प्रस्ताव रखा है। क्योंकि गन्धर्व-राजकुमारियाँ हिमालय पर आकर पूजनादि सम्पादित करती हैं। और दीर्घकाल तक रहती हैं। वहीं मानव राजकुमार चन्द्रापीड मिलता है। दोनों का सम्बन्ध होता है। दोनों के गुरुजन माता-पिता आदि की ओर से कोई विरोध या आपत्ति नहीं उठाई जाती है प्रत्युत गन्धर्वराज तो और प्रसन्न ही होते हैं।

एक दूसरे के आचार-व्यवहार के प्रति सहिष्णुता का भी अच्छा उदाहरण मिलता है जब तारापीड अपने पुत्र चन्द्रापीड के मृत देह के लिये कादम्बरी द्वारा किये जाते हुए गन्धर्वलोकोचित उपचारों को पूर्ववत् ही करते रहने का आदेश देकर निकल जाता है। वह अपने लोक या कुल के उपचार करने को बाध्य नहीं करता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि उस समय धार्मिक तथा सांस्कृतिक कट्टरता नहीं दिखाई देती है।

भूषणभट्ट के समय का समाज स्मृति-प्रतिपादित वर्ण तथा आश्रम की व्यवस्था के अनुरूप था। ब्राह्मण की श्रेष्ठता सर्वमान्य थी। ये निर्धारित षट्कर्म (अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह) करते थे। विद्वान् ब्राह्मणों को राजनीतिक पद, महामन्त्री, मन्त्री आदि पर भी नियुक्त किया जाता था। शुकनास और उनका पुत्र वैशम्पायन (पुण्डरीक) क्रमशः महाराज तारापीड तथा राजकुमार (चन्द्रापीड) के महामन्त्री थे। मन्त्री विश्वासपात्र हुआ करते थे। राजा उन पर राज्यभार भी सौंप देता था।

शिक्षा का समुचित प्रबन्ध था। उच्चकुल तथा राजकुल के पुत्र भी गुरुकुल में पढ़ने जाते थे। लड़कियों की स्वतन्त्र शिक्षा का संकेत नहीं मिलता है किन्तु वे पढ़ी-लिखी होती थीं। उनकी शिक्षा में कलाओं तथा संगीत पर विशेष ध्यान दिया जाता था। चित्रकला और मूर्तिकला का खूब विकास हो चुका था। इसका उपयोग राजभवनों, उद्यानों आदि में विशेष रूप से किया जाता था।

आयुर्विज्ञान का अच्छा विकास हो चुका था। अनेक प्रकार के रासायनिक अनुसन्धानों के फलस्वरूप रोगों पर नियन्त्रण किया जाना सरल था। कहीं भी दैवी प्रकोप नहीं था। सन्तान की कामना प्रबल रूप से हुआ करती थी। मृत्यु के बाद जलाञ्जलि देने की इच्छा प्रायः सभी के मन में हुआ करती थी। सन्तान की दीर्घजीविता और अल्पजीविता पुरुषवीर्य पर निर्भर है—इसका ज्ञान लोगों को था।

कहीं-कहीं स्वेच्छया विवाह भी होते थे। आर्ष तथा गान्धर्व दोनों विवाहों को सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। स्त्रियों की भावना का सम्मान किया जाता था। लड़का-लड़की के विवाह के लिये अकेला पिता ही अधिकृत नहीं होता था माता की अनुशंसा भी प्राप्त की जाती थी। चन्द्रापीड के विवाह के प्रसंग में राजा तारापीड महारानी विलासवती की भी राय जानना चाहते थे। महिलाओं को सम्मानित स्थान प्राप्त था। पर्दा-प्रथा की कठोरता नहीं थी। महारानी ने सभी के

सामने नौकरों से चन्द्रापीड के विषय में पूछताछ की थी। किन्तु मनोरमा ने वहाँ सभी के सामने न आकर मातृमन्दिर के पीछे खड़ी होकर ही पुत्रों के विषय में समाचार जानना चाहा था।

सती-प्रथा का प्रचलन था। किन्तु उसकी आलोचना भी होने लगी थी। इसीलिए महाश्वेता जब अनुमरण (सती होने) की चर्चा करती है तब चन्द्रापीड इस कृत्य की निन्दा आत्महत्या, मूर्खता तथा महापाप आदि शब्दों से करता है। कभी-कभी पुत्रादि प्रियजन के शोकातिरेक में माता-पिता भी अग्नि में आत्मदाह के इच्छुक हो जाया करते थे। चन्द्रापीड की मृत्यु का समाचार सुनकर राजा तारापीड और महारानी विलासवती के वक्तव्यों से यह संकेत मिलता है। हर्षचरित में राज्यश्री के सती होने की घटना से सभी इतिहासकार सुपरिचित हैं। पतिव्रता का महत्त्व माना जाता था। उसके शाप से अनिष्ट भी माने जाते थे। यद्यपि बालविवाह नहीं प्रचलित थे। किन्तु कन्यायें स्वेच्छा से भी वर चुन सकती थीं। दहेज दिया जाता था किन्तु माँगा नहीं जाता था।

समाज में धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान खूब होता था। यद्यपि प्रधानता वैदिक तथा स्मृति-प्रतिपादित कर्मों की थी किन्तु अन्य प्रकार के कर्म भी हुआ करते थे। टुटका, टोना का भी प्रचलन था। मनोरथपूर्ति के लिये देवमन्दिरों आदि में लोग मनौतियाँ भी मनाया करते थे। पुत्र की प्राप्ति के लिये यज्ञादि भी किये जाते थे। उनके अनिष्टनिवारणार्थ मन्दिरों में अनुष्ठानादि भी करवाये जाते थे। अनेक अन्धविश्वास भी प्रचलित थे। लोग भूत-प्रेत आदि चढ़ना भी मानते थे। ज्योतिष के प्रति लोगों में विश्वास था। मुहूर्त समझ कर ही विशेष यात्रायें प्रारम्भ की जाती थीं। यात्रा में शुभ-अशुभ शकुनों पर भी ध्यान दिया जाता था। अनिष्ट-निवारण के उपाय भी प्रचलित थे। दु:ख और वियोग आदि को शाप आदि विभिन्न कारणों से होना माना जाता था। पूर्वजन्म ही नहीं अनेक जन्मों की धारणा थी। उन जन्मों की बातें स्मरण रखना भी स्वीकृत था।

चाण्डालों, शूद्रों का स्थान गर्हित था। वे प्रायः सामान्य लोगों की बस्ती में नहीं रहते थे। ग्राम के बाहर उनकी अलग बस्ती हुआ करती थी। उनके जीवनयापन के साधन परम्परागत ही थे। बलि-पूजा बहुत होती थी। जानवरों, पक्षियों का शिकार करना सामान्य बात थी। इनकी तामसिक वृत्ति और आचरण सामान्य थे। अस्पृश्यता की भावना दृढ़ थी। फिर भी तिरस्कार नहीं होता था। कादम्बरी कथा के प्रारम्भ में चाण्डाल कन्या को राजा शूद्रक के दरबार में प्रवेश करने की अनुमति ही नहीं मिलती अपितु वह राजा के सामने खड़ी होकर बातचीत भी करती है। इससे समाज में सहनशीलता परिलक्षित होती है। किन्तु छुआछूत का बहुत प्रचलन होने के कारण उनकी स्पर्श की हुई खाद्य सामग्री खाने योग्य नहीं मानी जाती थी। इसीलिए चाण्डालकन्या द्वारा वैशम्पायन शुक को भक्षणार्थ दिये गये फल और जल भी वह नहीं ग्रहण करता है। परन्तु प्राणसंकट में इन लोगों के हाथ से भी फलादि ले लेने में आपत्ति नहीं होती थी।

बाण तथा भूषण ने अपनी कथा केवल वर्तमान विभक्त भारत खण्ड तक ही सीमित नहीं रखी। इन्होंने पुराणों में वर्णित गन्धर्वलोक तक की उड़ान भरी है। इतिहासकार हिमालय की

शृङ्खला में किन्नरों, गन्धर्वों का वास मानते हैं। पहले ये अलग देश के होते थे। बाद में प्रतापी राजा भरत ने इन पर भी आधिपत्य जमा लिया और सभी बृहत्तर भारत में ही समाविष्ट हो गये। फलतः दोनों स्थानों के लोगों का आपस में सम्बन्ध बन गया। कालान्तर में प्रगाढता बढ़ती गई। बाण और भूषण ने तो दोनों लोकों के बीच विवाहादि सम्बन्ध भी करवा दिये। चूंकि सभी लोग आस्तिक, तपस्वी, कलाप्रेमी तथा गुणग्राही थे अतः कालान्तर में एक रूप हो गये। और सभी भारतीय कहलाने लगे। गन्धर्वों की कुछ अलौकिक शक्तियों की भी चर्चा यहाँ की गई है। परन्तु उसका उपयोग केवल यात्रा के विषय में ही दिखाई देता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि तत्कालीन भारत समृद्ध, सुखी, धार्मिक, अन्यों के धर्म तथा आचार-विचार के प्रति सहिष्णु, कुछ अंशों में अन्धविश्वासी, राजतन्त्रशासित, कलासाहित्य प्रेमी, दानादि-तत्पर तथा शान्तिप्रिय था।

॥ श्रीः ॥

कादम्बरी

सविमर्श-भावबोधिनी संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याद्वयोपेता

उत्तरभागः

मङ्गलाचरणम्

देहद्वयार्धघटनारचितं शरीरमेकं ययोरनुपलक्षितसन्धिभेदम् ।
वन्दे सुदुर्घटकथापरिशेषसिद्धयै सृष्टेर्गुरू गिरिसुता-परमेश्वरौ तौ ॥ १ ॥

या विश्वं वितनोति, रक्षति, परं लुप्तं करोत्याशु या,
यामर्चन्ति दिवानिशं सुरगणाः विष्ण्वब्जयोमाधवाः ।
यस्याः प्रीतिमवाप्य बाणकविना कादम्बरी निर्मिता
सेयं मे प्रददातु शक्तिमतुलां व्याख्यान-सम्पादिकाम् ॥ १ ॥

वन्दे गणेशमीशानं तथाऽम्बां शारदां गुरून् ।
कवीशं पितृपादांश्च सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ २ ॥

व्याख्याय बाणरचितां महितां यशोभिः
'कादम्बरीं' स्वमतिशक्तिविवर्धनाय ।
पुत्रेण तस्य रचितं ह्यपि 'चोत्तरार्धं'
व्याचष्ट एष विनतो 'जयशङ्कराख्यः' ॥ ३ ॥

शारदे ! वर दे, मुझे तू ज्ञान शक्ति अनन्त दे,
व्याख्यान बाण-तनूज की वाणी का मैं कुछ कर सकूँ ।
निज-तोषहेतु तथा सुधी-जनमोद-हेतु प्रयास को,
आरम्भ कर तेरी कृपा से शीघ्र पूरा कर सकूँ ॥

भावबोधिनी

जिनका दो शरीरों के आधे-आधे भाग को मिलाने से बनाया गया एक ही शरीर है, [किन्तु] उसमें सन्धियों का भेद [अर्धशरीरावयवों की पृथक्ता] दिखाई नहीं देता है, ऐसे उन सृष्टि के गुरु (माता-पिता) पार्वती तथा शंकर की वन्दना, [मैं भूषण भट्ट अपने पिता बाण द्वारा आरम्भ की गई किन्तु मध्य में अधूरी छूटी हुई] अत्यन्त कष्ट से जोड़ी जा सकने वाली अवशिष्ट कथा की सिद्धि (पूर्णता) के लिये करता हूँ ।

पित्रा बाणभट्टेन प्रारब्धां मध्ये एव खण्डितां कादम्बरीमवलोक्य तत्तनयश्चिकीर्षितस्योत्तरार्धभागस्य निर्विघ्नपरिसमाप्ति-प्रचारादीच्छया शिष्टाचार-सम्प्राप्तं मङ्गलं शिष्यादिशिक्षार्थी स्वग्रन्थादावुपनिबध्नाति—देहेत्यादिना।

अन्वयः—ययोः, देहद्वयार्धघटनारचितम्, शरीरम्, अनुपलक्षितसन्धिभेदम्, [सत्], एकम्, [एव, वर्त्तते], सुदुर्घट-कथा-परिशेषसिद्धयै, तौ, सृष्टेः, गुरू, गिरिसुतापरमेश्वरौ, वन्दे ॥१॥

व्याख्याः—ययोः = सर्वजनप्रसिद्धयोः गौरीशङ्करयोः, देहेत्यादिः—द्वौ अवयवौ यस्य तत् द्वयम्, देहयोः (= शरीरयोः) द्वयम्, (नारीशरीरं पुरुषशरीरं चेति भावः) तस्य ये अर्धे (= अर्धभागौ, साम्यंशौ) तयोः घटनया (= परस्परसंयोजनेन, मेलनेन) रचितम् (= विनिर्मितम्), शरीरम् = देहः, आकृतिविशेषः, अर्धनारीश्वरदेह इति भावः, अनुपेत्यादिः—अनुपलक्षितः (= अदृष्टः) सन्धेः (= सन्धानस्य, सम्मिलनस्य) भेदः (= भिन्नता) यस्मिन् तत् तादृशम्, वस्तुतो भागद्वयमेलने सत्यपि यस्मिन् किमपि परस्परमिलन-भेदकचिह्नं नैव दृश्यते, सर्वथा एकीभूतमिति भावः, अतएव एकम् = एककम्, [एव, वर्त्तते]। सुदुर्घटेत्यादिः—सु (= सुष्ठु) दुः (= दुःखेन) घटयितुम् (= संयोजयितुम्) शक्या, [स्वपितृकृता, मध्ये विच्छिन्ना, अग्रे अतीवकष्टेन प्रारभ्य संयोजनीया यस्यां स्वाभाविकत्वं न व्याहन्येतेति भावः।] या कथा (= प्रसिद्धाऽर्धभागविनिर्मिता = कादम्बरीतिनाम्ना ख्याता ग्रन्थरूपा कथा), तस्याः यः परिशेषः (= अवशिष्टोंऽशः, स्वपितृकल्पितकथाविशेषावशिष्टभागः) तस्य सिद्धयै (=परिनिष्पत्त्यै, पूरणार्थमिति भावः), तौ = लोकप्रसिद्धौ, सृष्टेः = संसारसृजनस्य, गुरू = निर्मातारौ, मातापितरौ, रचयितारौ [आदरातिशयप्रदर्शनार्थी निर्मात्रादिपदमुपेक्ष्य गुरुशब्दप्रयोगः।] गिरिसुता-परमेश्वरौ—गिरिसुता (= हिमालयपुत्री पार्वती) च, परमेश्वरः (= महादेवः शङ्करः) च तौ तादृशौ, वन्दे = प्रणमामि।

बाणभट्टसुतः पितुरपूर्णां कृतिमवलोक्य तस्याः पूर्त्यै अर्धनारीश्वरं भगवन्तं प्रणमन् मङ्गलाचरणमाध्यमेन स्वमनोभावानपि व्यनक्ति। स प्रतिपादयति यत् सामान्यरूपेण यत्र कुत्रापि वस्तुद्वयसम्मेलनं भवति तत्र तयोः पार्थक्यसूचकमपि किंचिद् दृश्यते एव येन कुतः कियानंशः कस्येति ज्ञातुं शक्यम्। परन्तु परमेश्वरयोः गौरी-शङ्करयोरर्धनारीश्वरस्वरूपे कथमपि कुत्रापि किमपि पार्थक्यसूचकं चिह्नं ज्ञातुं न शक्यते। अतः द्वयोरर्धभागसंमिलनेन एकमपूर्वं शरीरं सम्पन्नम्। एवमेव प्रकृतेऽपि स्वपितृकृतो यः पूर्वभागो रचयिष्यमाणो यश्चोत्तरभागः तयोः सम्मेलनेन तादृश एको ग्रन्थो निर्मितो भविष्यति तस्मिन्नपि उभयभागयोः पार्थक्यसूचकं किमपि चिह्नं नैव भविष्यतीति तदाशयः। एतेन स्वपितृरचितग्रन्थभागस्य इव आत्मनो ग्रन्थस्यापि वैशिष्ट्यं सूचितम्। तत्र सादृश्यप्राप्तौ सारल्यं

विमर्श—प्रस्तुत मङ्गलश्लोक में बाणभट्ट के पुत्र भूषणभट्ट या पुलिनभट्ट ने अर्धनारीश्वर शंकर की प्रार्थना की है। यह प्रार्थना सोद्देश्य है। भगवान् शङ्कर के अर्धनारीश्वर रूप में आधा (वाम) भाग स्त्री का और आधा (दक्षिण) भाग पुरुष का है। किन्तु उन दोनों का सन्धिस्थल जान सकना अत्यन्त कठिन ही नहीं असम्भव है। यही तथ्य बाण द्वारा रची गई कादम्बरी कथा में और उनके पुत्र भूषण द्वारा रची गई शेष कथा के मिलाने में भी है। दोनों का अलग-अलग ज्ञान कर सकना अत्यन्त कठिन है। दोनों भाग मिल कर एकाकार हो गये हैं। इस प्रकार से प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलङ्कार की प्रतीति हो जाती है। वास्तव में सन्धिभेद होने पर भी उसका ज्ञान न हो सकने से विशेषोक्ति अलंकार भी है। दोनों की संसृष्टि है। वसन्ततिलका छन्द है।

व्याधूतकेसरसटाविकरालवक्त्रं हस्ताग्रविस्फुरितशङ्खगदासिचक्रम् ।
आविष्कृतं सपदि येन नृसिंहरूपं नारायणं तमपि विश्वसृजं नमामि ॥ २ ॥

थास्तीत्यपि 'सुदुर्घटे' त्यादि-विशेषणबलेन प्रकटितम् । याभ्यां पार्वतीपरमेश्वराभ्यां तादृशमपूर्वं शरीरं धृतम्, तयोरेव प्रसादात् स्वस्याः कृतेरपि परिपूर्णतामिच्छन् तयोरनुग्रहप्राप्तये तौ प्रणमति । देहद्वयार्धं-घटितत्वेऽपि सन्धिभेद-ज्ञानाभावात् विशेषोक्तिरलङ्कारः । किञ्च, अर्धनारीश्वर-ग्रन्थयोः सादृश्यस्य व्यङ्ग्यतयोपमाध्वनिरिति बोध्यम् । गिरिसुता-परमेश्वर-विषयकः कविगतो भावः प्राधान्येन प्रतीयते । अत्र वसन्ततिलका वृत्तम्—"उक्ता वसन्ततिलका त-भ-जाः ज-गौ गः" ॥ १ ॥

अन्वयः—येन, व्याधूत-केसरसटा-विकरालवक्त्रम् हस्ताग्र-विस्फुरित-शङ्ख-गदासि-चक्रम्, नृसिंहरूपम्, सपदि, आविष्कृतम्, तम्, विश्वसृजम्, नारायणम्, अपि, नमामि ॥२॥

व्याख्याः—मङ्गलप्राचुर्येऽपि पितुरपूर्णां कृतिमवलोक्य अनिष्टविनाशकं स्वकुलदेवतारूपं नृसिंह-मनुकूलयितुं मङ्गलान्तरमाचरति—व्याधूतेत्यादिः । येन = विश्वसृजा नारायणेन, व्याधूतेत्यादिः—व्याधूताः (= प्रकम्पिताः) याः केसरसटाः (= स्कन्धभागस्थितलम्बायमानबालसमूहाः) ताभिः विकरालम् (= भयङ्करम्) वक्त्रम् (= आननम्) यस्य तत् तादृशम् । हस्ताग्रेत्यादिः—हस्तानाम् (= चतुर्णां भुजानाम्) अग्रेषु (= अग्रभागेषु) विस्फुरितानि (=देदीप्यमानानि, सुशोभमानानि) शङ्खः (= पाञ्चजन्यनामा) च, गदा (= कौमोदकीनाम्नी) च, असिः (= नन्दकनामा खड्गविशेषः) च, चक्रम् (= सुदर्शननामकम्) च—तानि यस्य तत् तादृशम्, नृसिंहरूपम् = नरसिंहरूपम्, अधोभागे मानवरूपम् ऊर्ध्वभागे च सिंहरूपम् अपूर्वं विलक्षणरूपमिति भावः, सपदि = सद्यः एव, [प्रह्लादाख्य-स्वभक्तरक्षणार्थं तस्य प्रार्थनाकाले एव स्तम्भमध्यात्] आविष्कृतम् = प्रकटितम्, तम् = पूर्ववर्णितम्, अपिः = समुच्चये, अर्धनारीश्वरेण सहेति भावः, विश्वसृजम् = जगन्निर्मातारम्, नारायणम् = विष्णुम्, अपि, नमामि = प्रणतिं करोमि । बाणेनापि नृसिंहस्य स्तुतिर्विहिता 'जयत्युपेन्द्रः' इत्यादिना तृतीयपद्ये । अत्र च तत्पुत्रेणापि नृसिंहस्य स्तुतिर्विहिता, एतेन तस्य कुलाधिष्ठातृदेवत्वं प्रतीयते । अथ च प्रह्लादेन विहितां स्तुतिमाकर्ण्य यथा नारायणो भगवान् अद्भुतमपूर्वं नृसिंह-रूपं धृत्वा प्रकटितोऽभूत् । स्वभक्तस्य रक्षां दैत्यराजस्य वधं च चकार तथैव अत्रापि विघ्नविनाशं

'दुर्घट' के पूर्व 'सु' उपसर्ग दुर् के अर्थ की प्रकृष्टता घोषित करता है। इसलिये 'बहुत अधिक कष्ट से मिलायी जा सकने वाली' यह अर्थ निकलता है।

कादम्बरी के पूर्वार्ध में बाण ने मंगल-श्लोक लिखे हैं। परम्परा का निर्वाह करने के लिये उनके पुत्र ने भी अपनी रचना के प्रारम्भ में मङ्गल-श्लोक लिखे हैं ॥ १ ॥

जिन्होंने [अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिये] हिलाईं (फटकारीं) गईं केसरसटाओं (गरदन के लम्बे-लम्बे बालों) के कारण विकराल मुख वाले [तथा] हाथों के अग्रभागों में शङ्ख, गदा, खड्ग और चक्र [धारण करने] वाले 'नृसिंह' रूप को तत्काल [खम्भे से] प्रकट कर दिया था, ऐसे विश्वसृष्टा उन भगवान् नारायण को भी प्रणाम करता हूँ।

विमर्श—कादम्बरी के प्रारम्भ में बाणभट्ट ने भी नृसिंह भगवान् की स्तुति की है—

"जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो बिभित्सया यः क्षणलब्धलक्ष्यया ।
दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम् ॥ २ ॥

बाणपुत्र ने भी यहाँ नृसिंह भगवान् की स्तुति की है। इससे प्रतीत होता है कि बाण के कुल में नृसिंह भगवान् की विशेष पूजा होती थी। जिस प्रकार हिरण्यकशिपु द्वारा प्रह्लाद को अतिशय

(उपोद्घातः)

आर्यं यमर्चति गृहे गृह एव लोकः पुण्यैः [1]कृतश्च यत एव [2]ममात्मलाभः।
सृष्टैव येन च कथेयमनन्यशक्या वागीश्वरं पितरमेव तमानतोऽस्मि ॥ १ ॥

स्वजीवनरक्षणं चेच्छति भूषणभट्टो येन पितुरपूर्णां कृतिं पूरयितुं शक्तो भवेदिति प्रतीयते। अत्रापि भगवद्विषयिणी रतिर्भावः। वसन्ततिलका वृत्तम्। "शङ्खो लक्ष्मीपतेः पाञ्चजन्यश्चक्रं सुदर्शनः। कौमादकी गदा खड्गो नन्दकः कौस्तुभो मणिः" ॥ इत्यमरः १।२८ ॥ २ ॥

अन्वयः—लोकः, यम्, आर्यम्, गृहे-गृहे, एव, अर्चति। पुण्यैः, एव, च, यतः, मम, आत्मलाभः, कृतः। येन, एव, च, इयम्, अनन्यशक्या, कथा, सृष्टा। वागीश्वरम्, तम्, पितरम्, एव, आनतः, अस्मि ॥ १ ॥

व्याख्या—मङ्गलाचरणानन्तरं तन्महत्त्ववर्णनपूर्वकं स्वपितरं बाणभट्टमपि प्रणमति—आर्यमित्यादिना। लोकः = जनः, जातावेकवचनम्, तेन सर्वेपि जना इत्यर्थः, यम् = अतिप्रसिद्धम्, मम पितरं बाणभट्टमित्यर्थः, आर्यम् = पूज्यम्, सम्मानार्हम्, गृहे-गृहे = प्रतिसदनम्, सर्वेषु गृहेष्वित्यर्थः, अर्चति = पूजयति, देवस्येव यस्य पूजां कुर्वन्ति लोका इति भावः। पुण्यैः = सुकृतैः, मया पूर्वजन्मानुष्ठितैरिति शेषः, च, यतः = यस्मात् जनकात्, एव, मम = भूषणभट्टस्य, एतदुत्तरार्धविरचयितुः, आत्मलाभः = जन्मप्राप्तिः, कृतः = विहितः, ममोत्पत्तिर्जातेति भावः। पितुर्बीजादेव सन्तानोत्पत्तिः प्रसिद्धा। आत्मनः पुण्यैरेव स बाणात् स्वोत्पत्तिं प्राप्तवानिति तदाशयः। येन = लोकविश्रुतेन मम तातेन, एव, अनन्यशक्या = न अन्येन (= मम जनकाद् भिन्नेन) शक्या (= सम्पादनीया), इयम् = सर्वजनख्याता, कथा = कादम्बरीनामक-कथाग्रन्थविशेषः, सृष्टा = विनिर्मिता। अन्यः कोपि एतादृशीं कथां रचयितुं न प्रभवतीति तद्भावः। वागीश्वरम् = वाचस्पतिम्, स्वाधीनीकृतवाग्देवताकमिति भावः, तम् = प्रसिद्धम्, पितरम् = जनकम्, बाणभट्टम्, आनतः = प्रणतः, अस्मि = भवामि। अत्र कविना चतुर्ष्वपि पादेषु 'एवकारः' प्रयुक्तः। 'एवकारस्त्रिधा मतः' इति वचनानुरोधेन अत्र श्लोके एवकारार्थस्यान्वये न विशिष्टं चारुत्वम्। अत्र कथंचित् लक्षणादिना कवेराशयः प्रतिपादनीयः। अर्चतीति पदं प्रशंसार्थपरम्, तेन लोकः प्रतिगृहं यं प्रशंसति एव, न तु निन्दतीति भावः। एवमेव 'पुण्यैः एव' इत्यादावपि योज्यम्। अस्य स्वीयानि पुण्यानि येन सः बाणात् जन्म प्राप्तवान्। 'येन एव' कथा सृष्टा—न तु अन्येन केनापि तादृशी लिखितुं शक्येति भावः। 'वागीश्वरं पितरम् एव आनतोऽस्मि' एतेन पितुर्न जनकत्वमात्रं प्रत्युत विद्यादाना-

---

यातना दिये जाने पर भगवान् ने तत्काल प्रकट होकर राक्षसराज का वध और भक्तराज की रक्षा की थी उसी प्रकार भूषण ने भी विघ्नों का विनाश और कथा-पूर्ण करने की सामर्थ्य प्राप्त करने के लिये नृसिंह भगवान् की स्तुति उचित ही की है ॥ २ ॥

लोग [विशेष रूप से विद्वान्] हर घर में जिन आर्य (श्रेष्ठ पुरुष) की पूजा करते हैं। [अपने पूर्व जन्म के] पुण्यों के कारण ही जिनसे मुझे [पुत्ररूप में] जन्म प्राप्त हुआ है। किसी अन्य के द्वारा न लिखी जा सकने योग्य इस कादम्बरी कथा को जिन्होंने ही लिखा है, वाणी के अधिपति उन पिता के ही प्रति विनत हूँ, अर्थात् उन्हें ही प्रणाम करता हूँ।

विमर्श—सामान्य रूप से 'एव' का प्रयोग अवधारणार्थ की प्रतीति के लिये होता है। यहाँ श्लोक के चारो पादों में 'एव' का प्रयोग कुछ खटकता है। कहीं-कहीं अन्वय भी सन्दिग्ध है।

---

१. कृतस्य। २. मया।

याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां यदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात् ॥ २॥

दिकमपि तेनैव कृतम्। स एव जनकः, शिक्षको गुरुश्चासीदिति प्रतीयते। अत्र क्वचित् 'अनन्यशक्त्या' इत्यपि पाठो लभ्यते परन्तु 'अनन्यशक्या' इति पदेन बाणस्योत्कर्षः प्रतीयते, तेन च तस्य कवित्वशक्तेरुत्कर्षः सुतरां सिद्धस्तस्मादत्रत्यः पाठ एव साधीयान् बोध्यः। अत्रापि वसन्ततिलका-वृत्तम् ॥ १ ॥

अन्वयः—पितरि, दिवम्, याते (सति), तद्वचसा, सार्धम्, एव, यः, कथाप्रबन्धः, तु, भुवि, विच्छेदम्, आप। सताम्, यदसमाप्तिकृतम्, दुःखम्, विलोक्य, एव, मया, सः, प्रारब्धः, कवित्वदर्पात्, न, [प्रारब्धः] ॥ २ ॥

व्याख्या:—इदानीं विच्छिन्नकथापरिपूर्तौ हेतुं निर्दिशन्नाह—यात इत्यादिना। पितरि = जनके, बाणभट्टे इत्यर्थः, दिवम् = स्वर्गम्, याते = प्रस्थिते, मरणमुपगते सतीत्यर्थः, तद्वचसा = तस्य वचनेन, सार्धम् = सह, एव, यः = सुप्रसिद्धः, कथाप्रबन्धः = कादम्बरीतिनामा कथाग्रन्थ-विशेषः, तु = अप्यर्थे, भुवि = भूलोके, विच्छेदम् = विच्छिन्नताम्, मध्ये एव भङ्गमित्यर्थः, आप = प्राप्तवान्, मध्य अपूर्ण एव अत्रुटयत। मृतस्य मुखात् यथा वचनानि नैव निःसरन्ति स वक्तुं न पारयति, तथैव एष ग्रन्थोऽपि विरामं प्राप्तवान्। सताम् = सहृदयानाम्, यदसमाप्तिकृतम्—यस्य (= कथाग्रन्थस्य) असमाप्तिः (= अपूर्णता) तया कृतम् (= विहितम्), यस्य कथाग्रन्थस्य अपूर्त्या समुत्पन्नम्, दुःखम् = क्लेशम्, पीडाम्, विलोक्य = दृष्ट्वा, एव, मया = बाणपुत्रेण भूषणभट्टेन, सः = पूर्वं सङ्कीर्तितः प्रसिद्धः कथाप्रबन्धः, प्रारब्धः = पुनर्लिखितुमारभ्यत, पूरयितुं प्रयत्नो व्यधीयत इति भावः, कवित्वदर्पात् = काव्यरचनानैपुण्यगर्वात्, तु, न = नैव, आरब्ध इति अत्रापि

इतना अवश्य है कि इससे बाण की पूजनीयता, अवर्णनीय कवित्वशक्ति तथा वाणी पर पूर्ण अधिकार की प्रतीति होती है। निपातों की अनेकार्थता मान कर अर्थ-संगति बैठाई जा सकती है।

'वागीश्वरं पितरमेव तमानतोऽस्मि' कह कर भूषण ने अपने पिता बाण को ही अपना गुरु भी घोषित किया है। उनसे पुत्र रूप में जन्म लेना भी अपना गौरव माना है ॥ १ ॥

पिता श्रीबाणभट्ट के स्वर्ग प्रस्थान कर जाने पर उनकी वाणी के साथ-ही-साथ जिस कथा-प्रबन्ध (कादम्बरीग्रन्थ) ने भी पृथ्वीतल पर विच्छेद प्राप्त कर लिया, (जो बीच में ही अधूरा छूट गया था) जिसकी अपूर्णता के कारण होने वाले सज्जनों के दुःख को देख कर ही मैंने [उस कथा-प्रबन्ध को] आरम्भ किया है न कि [अपने] कवित्व के अहंकार से [आगे लिखना आरम्भ किया है]।

विमर्श—बाणपुत्र भूषण ने कादम्बरी कथा को पूर्ण करने में जो हेतु यहाँ दिखाया है उससे उनकी निरभिमानता स्पष्ट है। वे यह जानते थे कि आलोचक उनकी कविता की आलोचना करने से चूकेंगे नहीं। अतः विनम्र शब्दों में यह घोषित कर दिया है कि पिता की अधूरी कादम्बरी से सज्जनों के मन में दुःख था उसे दूर करने के लिये ही उन्होंने आगे की कथा लिखनी आरम्भ की है। यही प्रमुख कारण है। वह लोगों को अपनी कवित्व-शक्ति का प्रदर्शन नहीं करना चाहता था। इस प्रकार का अहंकाराभाव संस्कृत के विद्वानों में प्रायः नहीं देखा जाता है।

वाणी के विच्छेद के साथ ही साथ कथा का विच्छेद होने से यहाँ 'सहोक्ति' अलंकार स्पष्ट है। ऐसा लगता है कि बाणभट्ट कुछ अधिक दिन अस्वस्थ रहे और बोल-बोल कर कादम्बरी लिखाते

गद्ये कृतेऽपि गुरुणा तु तथाक्षराणि यन्निर्गतानि पितुरेव स मेऽनुभावः।
एकप्लवामृतरसास्पदचन्द्रपादसंपर्क एव हि मृगाङ्कमणेर्द्रवाय ॥ ३ ॥

योज्यम् । एवञ्च सः पितुरपूर्णां कृतिं कवित्वदर्पात् पूरयितुं नारब्धवानिति तद्भावः । एतेन तस्य विनयातिशयो द्योत्यते । सहोक्तिरलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २ ॥

अन्वयः—गुरुणा, गद्ये, कृते, अपि, यत्, मे, अक्षराणि, तथा, निर्गतानि, सः, पितुः, एव, अनुभावः, [अस्ति], हि एकप्लवामृत-रसास्पद-चन्द्रपादसम्पर्कः, एव, मृगाङ्कमणेः, द्रवाय, [निमित्तं भवति] ॥ ३ ॥

व्याख्या:—स्वसम्पादयिष्यमाण-गद्यस्य महत्त्वे पितुरनुग्रहमेव कारणत्वेन निर्दिशन्नाह—गद्ये कृतेपीत्यादिना । गुरुणा = पित्रा, जनकेन शिक्षकेण च, गद्ये = कादम्बरीनामके गद्यग्रन्थ-विशेषे, कृते = विरचिते, अपि, यत्, मे = मम, भूषणभट्टस्य, अक्षराणि = अवशिष्टकथाभागपूरक-शब्दाः, तथा = तनैव प्रकारेण, निर्गतानि = निःसृतानि, यथा मम पित्रा लिखितानि तथैव मयापि लिखितुं विषयीकृतानि, सन्ति, एवञ्च, उभयोः साम्यं विद्यते इति भावः । सः, मे, पितुः = जनकस्य गुरोः, एव, अनुभावः = माहात्म्यम्, अनुग्रहः, अस्ति । 'यत्', 'सः' अनयोर्लिङ्गभेदो न दोषाय, उद्देश्यप्रतिनिर्देश्ययोर्लिङ्गं पर्यायेण भवतीति सिद्धान्तात् । स्ववचनं दृष्टान्तेन द्रढयति–एकेत्यादिना । हि = यतः, एकेत्यादिः—एकः (= मुख्यः) प्लवः (= प्रवाहः) यस्य स तादृशो य अमृतरसः (= पीयूषद्रवः) तस्य आस्पदम् (= स्थानम्, आश्रयः) यः चन्द्रः (= निशापतिः) तस्य पादानाम् (=किरणानाम्) सम्पर्कः (=संसर्गः, परामर्शः), एव, मृगाङ्कमणेः =चन्द्रकान्ताख्यमणेः, द्रवाय = स्रवाय, निमित्तं भवतीति शेषः । अत्रायं भावः—यथाऽमृतभरितचन्द्रकिरणानां सम्पर्कादेव चन्द्रकान्तमणिः द्रवति तत्रान्यत् किमपि निमित्तं नैव स्वीक्रियते तथैव मम पित्रा तादृशे अलौकिके गद्ये विहितेऽपि तत्तुल्यगद्यकाव्यसर्जनसामर्थ्यं यत् किमपि मे दृश्यते तत्सर्वमपि मम पितुरनुग्रह एव द्रष्टव्यः । यथा हनुमता समुद्रलङ्घने भगवता रामचन्द्रस्यैवानुग्रहो वर्णितस्तथैव भूषणभट्टोऽपि स्वविरच्यमानगद्यसाफल्ये पितरमेव मूलं स्वीकरोति,तस्यानुग्रहादेव साफल्यं मन्यते इति बोध्यम् । अत्र बिम्बप्रतिबिम्बभावप्रदर्शनात् दृष्टान्तालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३ ॥

रहे । करालकाल ने यह भी नहीं सहन किया, मृत्यु द्वारा उनकी वाणी भी बन्द कर दी, फलतः कथा लिखवाना भी समाप्त हो गया ॥ २ ॥

गुरु =पिता बाणभट्ट द्वारा गद्य काव्य (कादम्बरी) की रचना किये जा चुकने पर भी [मेरी लेखनी से] जो उसी प्रकार के अक्षर निकले हैं, [अर्थात् पिता के समान ही मैं भी जो लिख सका हूँ] वह मेरे पिता का ही प्रभाव (महिमा) है । क्योंकि चन्द्रकान्तमणि को पिघलने (द्रवित होने) के लिये एक धारा के रूप में बहने वाले अमृतरस के अधिष्ठानस्वरूप चन्द्रमा की किरणों का सम्पर्क ही कारण होता है । [अन्य किसी कारण की अपेक्षा नहीं होती है ।]

विमर्श—पत्थर चन्द्रकान्तमणि के पिघलने के लिये एक मात्र कारण है अमृतरस के अधिष्ठान-भूत चन्द्रमा की किरणों का सम्पर्क । यहाँ अपने पिता को अमृतरसास्पद चन्द्रमा तथा उनके पादों को चन्द्रमा की किरणें बता कर अपने को पाषाण बताना और पादसम्पर्क से प्रवाहित कहना—यह सूचित करता है कि अपने पिता के चरणों में ही भूषण ने विद्याभ्यास किया था । पिता के प्रभाव से ही उनमें भी कवित्वशक्ति प्रवाहित हो सकी थी । इसमें दृष्टान्त अलंकार की सुन्दर अभि-व्यक्ति है ॥ ३ ॥

गङ्गां प्रविश्य भुवि तन्मयतामुपेत्य स्फीताः समुद्रमितरा अपि यान्ति नद्यः ।
आसिन्धुगामिनि पितुर्वचनप्रवाहे क्षिप्ता कथानुघटनाय मयापि वाणी ॥ ४ ॥
कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम् ।
भीतोऽस्मि यन्न रसवर्णविवर्जितेन तच्छेषमात्मवचसाप्यनुसन्दधानः ॥ ५ ॥

अन्वयः—भुवि, इतराः, नद्यः, अपि, गङ्गाम्, प्रविश्य, तन्मयताम्, उपेत्य, स्फीताः [सत्यः], समुद्रम्, यान्ति । [तथैव] आसिन्धुगामिनि, पितुः, वचनप्रवाहे, कथानुघटनाय, मया, अपि, वाणी, क्षिप्ता ॥ ४ ॥

व्याख्या—पितू रचनया सह स्वस्याः रचनायाः साफल्यं दृष्टान्तेन समर्थयन्नाह—**गङ्गामिति** । भुवि = पृथिव्याम्, इतराः = भिन्नाः, गङ्गात इति शेषः, नद्यः = सरितः, क्षुद्रा इति शेषः, गङ्गाम् = भागीरथीम्, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, सम्मिल्येति भावः, तन्मयताम् = तद्रूपताम्, [ता एव इति तन्मया, तस्या भावस्तत्तामित्यर्थः ।] उपेत्य = सम्प्राप्य, स्फीताः = वृद्धिमत्यः, स्वच्छा वा, सत्यः, समुद्रम् = सागरम्, यान्ति = गच्छन्ति, तत्र मिलन्तीति भावः; तथैव, आसिन्धुगामिनि = समुद्रपर्यन्तगमनशीले, पितुः = जनकस्य बाणभट्टस्य, वचनप्रवाहे = कथनप्रवाहे, वचनप्रवाहमध्ये इति भावः, कथानुघटनाय—कथायाः (=कादम्बरीनामकग्रन्थविशेषस्य), अनुघटनाय (= संयोजनाय), अपूर्णां कथां पूरयितुमिति भावः, मया = भूषणभट्टेन, अपि, वाणी = स्ववाक्, क्षिप्ता = प्रेरिता, सम्मेलितेति भावः । अयं भावः—गङ्गा महानदी प्रवहमाना सारल्येन समुद्रं प्रविशति परन्तु क्षुद्राः नद्यः एकाकिन्यः समुद्रं प्राप्तुं न शक्नुवन्ति, परन्तु ता अपि यदि गङ्गां मिलन्ति तदा गङ्गारूपं धारयन्त्यः समुद्रं प्राप्नुवन्ति । एवमेव पितुः बाणभट्टस्य वहनप्रवाहः सर्वत्र गच्छन् प्रशसां प्राप्तुमर्हति, तेन सह मिलितः मद्विरचितः कथाभागोऽपि सर्वत्र प्रशंसां प्राप्स्यतीति तदाशयो व्यज्यते । अत्रापि दृष्टान्तालङ्कारः सुस्पष्टः रूपकमपि बोध्यम् । वृत्तं वसन्ततिलका ॥४॥

अन्वयः—अयम्, समस्तः, एव, जनः, कादम्बरी-रस-भरेण, मत्तः, सन्, न किञ्चिद्, अपि, चेतयते, यत्, रसवर्णविवर्जितेन, अपि, आत्मवचसा, तच्छेषम्, अनुसन्दधानः, न, भोतः, अस्मि ॥ ५ ॥

पृथ्वीतल पर जिस प्रकार दूसरी छोटी-छोटी नदियाँ भी गङ्गा नदी [के जल] में प्रविष्ट होकर उसके साथ मिलकर, उसी के रूप को प्राप्त कर (गंगा ही बनकर), विशाल होती हुईं समुद्र तक पहुँच जाती है । उसी प्रकार समुद्र-पर्यन्त पहुँचने वाली अपने पिता की वाणी रूपी नदी में [पिता द्वारा आरम्भ की गई किन्तु बीच में ही अधूरी छूटी] कथा को मिलाने के लिये मैंने भी अपनी वाणी [रूपी छोटी नदी] डाल दी है, मिला दी है ।

विमर्श—छोटी-छोटी नदियाँ समुद्र तक नहीं पहुँच सकती परन्तु वे भी जब गङ्गाजी जैसी विशाल और महिमाशाली नदी में मिल जाती हैं, उस गंगा का ही रूप धारण कर लेती हैं तो समुद्र तक पहुँचने में सफल हो जाती है । बाण की वाणी रूपी गंगा नदी है । भूषण अपनी वाणी रूपी क्षुद्र नदी को उसी में मिलाकर सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्धि पाने की कामना करता है । अपने पिता की वाणी को गंगा और अपनी बाणी को क्षुद्र नदी कहते हुए भूषण ने अतीव गम्भीरता का परिचय दिया है । यहाँ सादृश्य ध्वनित होता है । रूपक अलङ्कार स्पष्ट है ॥ ४ ॥

[संसार के सामान्य और विशिष्ट] सभी लोग कादम्बरी (कथा) के रस [शृङ्गार आदि] के अतिशय से [कादम्बरी = मदिराविशेष के स्वाद के अतिशय से] मत्त होते हुए कुछ भी चेतना नहीं रख पा रहे हैं । यही कारण है जो कि रसाभिव्यञ्जक बर्णों से रहित भी अपनी वाणी द्वारा

बीजानि गर्भितफलानि विकासभाञ्जि [1]वप्त्रैव यान्युचितकर्मबलात्कृतानि ।
उत्कृष्टभूमिविततानि च [2]यान्ति पोषं तान्येव तस्य तनयेन तु संहृतानि ॥ ६ ॥

व्याख्या—स्वरचनायां निर्भीकत्वे हेतुं प्रदर्शयितुमाह—कादम्बरीति । अयम् = एषः, संसारे वर्तमानः, समस्तः = सकलः, एव, जनः = लोकः, कादम्बरी-रसभरेण-कादम्बरी (= एतन्नामकः बाणभट्टविरचितः पूर्वार्द्ध-कथाभागः) एव कादम्बरी (= मदिराविशेषः) तस्याः रसाः (= शृङ्गारादयः, माधुर्यादयश्च) तेषां भरेण (= अतिशयेन) मत्तः (= क्षीबः, तदतिरिक्तज्ञानशून्य इति भावः), सन्, न, किञ्चिदपि = न किञ्चनापि, चेतयते = अनुध्यायति, विचारयितुं पारयतीति भावः, यत् = यस्मात्, रसेत्यादिः—रसाः (= शृङ्गारादयः) तस्य वर्णाः (= अभिव्यञ्जकाक्षराणि) तैः शून्येन (= रहितेन), अपि, आत्मवचसा = स्वीयवचनेन, तच्छेषम्—तस्याः (= कादम्बरीपूर्वार्द्धवर्णितापूर्णकथायाः) शेषम् (= अवशिष्टभागम्), अनुसन्दधानः (= सम्मेलयन्, पूरयन्) न = नैव, भीतः = भयाक्रान्तः, अस्मि = वर्त्ते । अत्रायमाशयः—बाणविरचिता अपूर्णापि कादम्बरीकथा तदध्येतॄन् विशिष्टमदिरेव मत्तान् विदधाति, तदास्वाद-जन्यानन्दे तेषां मनसि तदतिरिक्तं किञ्चिदपि न प्रतिभाति । एतेन भूषणभट्टो यत्किमपि लिखति तत्र रसोद्बोधो भवेन्न वा, तेन कापि चिन्ता न करणीया । पूर्वार्द्धाध्ययन-जन्यानन्देन मत्तानां पाठकानां समक्षं मम दोषाः नोद्घाटिताः भविष्यन्ति । अतो निश्चिन्तो भूत्वाऽहं शिष्टां कथां पूरयामि । मत्तैर्जनैः केवलमानन्द एवानुभूयते न तु दोषा अपि दृश्यन्ते । किञ्च यथाऽन्ये मत्ता जातास्तथैव भूषणभट्टः स्वयमपि मत्तोऽभूदित्यपि व्यज्यते । एवञ्च मत्तस्य वचनेषु सज्जनाः दोषान् न पश्यन्ति, यदि तत्रानन्दप्रदं किमपि भवति, तद् विलोक्य प्रसन्ना एव भवन्तीति बोध्यम् । अत्र रूपकम्, यद्वा कादम्बरीद्वयोः द्विविधरसयोश्चाभेदाध्यवसायस्तेनातिशयोक्तिरलङ्कारः । पूर्वोक्तमेव वृत्तम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—वप्त्रा, एव, गर्भितफलानि, यानि, बीजानि, उचितकर्मबलात्, विकासभाञ्जि, कृतानि, उत्कृष्ट-भूमिविततानि, च, [यानि], पोषम्, यान्ति, तस्य, तनयेन, तु, तानि, एव, संहृतानि ॥ ६ ॥

[अधूरी छूटी हुई] उस कथा के अवशिष्ट भाग को मिलाता (लिखता) हुआ भी मैं [आलोचकों से] भयभीत नहीं हूँ ।

विमर्श—इसमें कवि ने श्लेष का सुन्दर वर्णन किया है । कादम्बरी कथा कादम्बरी मदिरा के समान है । मदिरा पान कर मत्त हुए व्यक्ति में चेतना-शक्ति, विवेक का अभाव हो जाता है । वह अच्छाई-बुराई नहीं पहचान सकता । अतः भूषण प्रसन्न हैं कि कादम्बरी-रसास्वाद में सभी मत्त हो चुके हैं, उनकी आलोचना की शक्ति लुप्तप्राप्त है । इसलिये आगे की मेरी रचना में यदि रस-भाव आदि नहीं हैं तो भी कोई चिन्ता या भय नहीं है क्योंकि अब किसी में मेरी आलोचना की शक्ति ही नहीं है । 'रसवर्ण-विवर्जित' कहते हुए अपनी रचना में रस की अभिव्यक्ति और अपेक्षित वर्णों के प्रयोग का अभाव स्वयं ही सूचित किया है । जब सभी लोग कादम्बरी - रसास्वाद से मत्त हैं तो भूषण स्वयं को भी मत्त मान लेता है । और फिर अपनी वाणी की आलोचना का डर छोड़ कर निश्चिन्त होकर लिखता है, यह भी भाव माना जा सकता है । यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है ॥५॥

---

१. वप्त्रेव । २. गतानि पोषं, च यान्ति पुष्टिं ।

पत्रलेखया कादम्बर्याः सन्देशः

'अपि चेदानीमानीतस्यापि कुमारस्य न ददाति[1] तरलतालज्जिता लज्जैव [2]दर्शनम् ।

व्याख्याः—पितृकृतसुकर्मणः तस्य तनयेन फलप्राप्ति वर्णयन् आत्मनो यशोलाभं प्रतिपादयति—बीजानीति । वप्त्रा = वपनकर्त्रा कृषकादिना, एव, गर्भितफलानि—गर्भितानि (= सञ्जातगर्भाणि, अन्तर्निहितानि) फलानि (= सस्यादीनि, पक्षे—सहृदयास्वादसाधनीभूतानि लक्ष्याणि) येषु तानि, यानि, बीजानि = उत्पत्तिकारणभूतानि, पक्षे—बृहत्कथामञ्जर्यादिस्थितकथामूलानि, उचितकर्मबलात्—उचितम् (= यथाकालमपेक्षितम्, पक्षे—कल्पनार्हम्) यत् कर्म (= जलसेकादिकम्, पक्षे—अपेक्षितसंकेतवर्णनादिकम्) तस्मात् हेतोः, बिकासभाञ्जि = विकासं भजन्ति तानि, वृद्धिशीलानि, पक्षे—विस्तरयोग्याणि, कृतानि = विहितानि,च = समुच्चये, उत्कृष्टेत्यादिः—उत्कृष्टा (= उत्कट-गुणयुक्ता, शोधनादिना प्रबलोत्पादनक्षमेत्यर्थः, पक्षे—उत्कृष्टा = प्रशस्या, अनुपमकल्पनाधारभूता), या भूमिः (= धरा, क्षेत्रम्) तस्यां विततानि (= विकीर्णानि, पक्षे—विस्तरं प्राप्तानि च) यानि, पोषम् = पुष्टिम्, समृद्धिम्, यान्ति = गच्छन्ति, प्राप्नुवन्ति, तु=किन्तु,तस्य=वप्तुः, पितुर्बाणस्येति भावः, तनयेन = सुतेन, भूषणभट्टनामकेनेति भावः, पक्षे—कृषकपुत्रेण च, संहृतानि = एकत्रीकृतानि, फलरूपेण समधिगतानीति भावः । अयं भावः—यथा खलु कश्चित् विज्ञः कृषकः उत्पादनयोग्ये क्षेत्रे उत्कृष्टकोटिकानि बीजानि निक्षिप्य आवश्यकतानुसारं जलादिसेकं कृत्वा परिपुष्टानि विदधाति । तानि च यदा विकसितानि फलप्रदानार्हाणि जायन्ते तदा दौर्भाग्यात् पितुरकालमृत्यौ तत्पुत्र एव तानि फलस्वरूपेण सम्प्राप्य एकत्रीकरोति तथैवाहमपि पितुर्बाणभट्टस्य मृत्यौ सुकथाप्रणयनफलं प्राप्नोमीति स्वविनयातिशयं प्रकटयति भूषणभट्ट इति बोध्यम् ॥ ६ ॥

बाणभट्ट-विरचितायां कथायां पूर्वार्द्धभागे पत्रलेखा कादम्बरीमुक्तवती "आनयामि देवि ! ते हृदय-दयितम्" एतच्छ्रुत्वा कादम्बर्या यद्यद् उक्तं तत्सर्वं चन्द्रापीडाय बिनिवेदयन्ती आसीत् ।

[अपने] भीतर [अदृश्यरूप में] फलों [को छिपाये रखने] वाले जो बीज, [उन्हें] बोने वाले कृषक के द्वारा ही उत्कृष्ट (उपजाऊ) भूमि में बोये गये, उचित कार्य (समय पर जल से सींचना आदि) के द्वारा विकासयुक्त (अंकुरित, पल्लबित) किये गये, परिपुष्टता (परिपक्वावस्था) को प्राप्त होते हैं किन्तु उन्हें उस (कृषक आदि) के पुत्र द्वारा [फल के रूप में] एकत्रित किया जाता है, प्राप्त किया जाता है ।

विमर्श—प्रस्तुत श्लोक में भूषण ने अपने पिता को एक सुयोग्य विद्वान् कृषक के रूप में तथा स्वयं को कृषकपुत्र के रूप में चित्रित किया है । एक बुद्धिमान् किसान सुन्दर बीजों को उपजाऊ भूमि में डालता है, समय-समय पर सिंचाई करता है, खाद आदि देता है । वे बीज धीरे-धीरे पौधे और वृक्ष का रूप धारण करते जाते हैं, इसी बीच किसान की आकस्मिक मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र ही उन बीजों के फलों को एकत्रित करता है । यही स्थिति बाण और उसके पुत्र की हुई । बाण ने एक सुन्दर कथा की कल्पना की । उसे आरम्भ कर अपनी प्रतिभा से पल्लवित तथा पुष्पित किया किन्तु उपसंहार (फलप्राप्ति) नहीं कर सके, वह तो उनका पुत्र ही कर रहा है ।

उक्त कथन करते हुए भूषण ने अपने पिता के प्रति अधमर्णता प्रकट की है और उन्हीं की कृपा से फलप्राप्ति की बात भी स्वीकार की है । इस प्रकार के कृतज्ञ सुपुत्र भाग्यशाली पुरुषों को ही प्राप्त होते हैं । यहाँ उपमानोपमेयभाव की प्रतीति ध्वनित होने से उपमाध्वनि है ॥ ६ ॥

१. सुतरां लज्जितेव लज्जा । २. दर्शनं दातुम् ।

मनोभवविकारवेदनाविलक्षं वैलक्ष्यमेव न पुरस्तिष्ठति । अप्रतिपत्तिसाध्वसजडा जडतैव

पितुर्विच्छिन्नां कथां चातुर्येण संयोजयन् भूषणभट्टः स्वयमपि पुनः पत्रलेखया कादम्बरी-दशां चन्द्रापीडाय संसूचयन् कथानकं विस्तृतं कर्तुमारमते—अपि चेत्यादिना । अपि च = एतदन्यदपि शृणोतु भवान् । इदानीम् = अस्मिन्समये, तद्दर्शनाभावे मम कादम्बर्याः मरणासन्नावस्थायामिति भावः, आनीतस्य = अत्र सम्प्रापितस्य, अपि, भवत्येति शेषः, कुमारस्य = पूर्ववर्णितस्य राजकुमारस्य चन्द्रापीडस्येत्यर्थः, कौ = पृथिव्याम् मारस्य = कामदेवस्य, तत्तुल्यस्येति भावः, दर्शनम् = साक्षात्कारम्, तरलता-लज्जिता—तरलता (= तद्दर्शनोत्कण्ठारूपा चञ्चलता नेत्रयोरिति शेषः)) तया लज्जिता (= त्रपां प्राप्ता) लज्जा = त्रपा, व्रीडा, एव, न = नैव, ददाति = दास्यति, सामीप्ये भविष्यत्काले लट् । अत्र वाक्येषु अन्तर्भावितण्यर्थं मत्वा दापयतीत्यादयोऽर्थाः, तेषां च भविष्यत्त्वेर्थे दापयिष्यन्तीत्यादयोऽर्थाः भवन्तीति मान्याः ।

अयमाशयः—यदि कथञ्चित् भवत्या कुमारोऽत्र समानीतः स्यात्तदापि नारीस्वभावसुलभया प्रकृष्टलज्जया तस्य दर्शनं कर्तुं न प्रभविष्यामीति भावः । "……लज्जिता लज्जा" प्रभृतिवाक्यैस्तत्तद्भावानामतिरेको द्योत्यते । भावानां मूर्तरूपेणोपस्थापने भूषणभट्टस्य कल्पनाशक्तिमत्त्वं स्फुटीभवति ।

मनोभवेति । मनोभवेत्यादिः—मनोभवः (= कामदेवः) तस्य विकाराः (= तत्कर्तृकाः कार्श्यपाण्डुत्वादि-विकृतयः) तेषां वेदनाः (= मानसीपीडाः) ताभिः विलक्षम् (= विगत-लक्षणम्, विस्मयान्वितम्) वैलक्ष्यम् (= विलक्षायाः भावः, विविधभावभावनम्), एव, न = नैव, पुरः = अग्रे, कुमारस्य समक्षमिति, तिष्ठति = स्थास्यति, सामीप्ये भविष्यति लट् । वैलक्ष्यं मां तस्य पुरः स्थातुं समर्थां न करिष्यतीति भावः ।

अप्रतिपत्तीति । अप्रतिपत्तीत्यादिः—अप्रतिपत्तिः (= अज्ञानम्, किंकर्तव्यविमूढता) साध्वसम् (= भयम्, पुनस्तद्वियोगभीतिः) ताभ्यां जडा (= स्तब्धा, निश्चला), जडता = स्पर्शजन्यः स्तम्भाख्यः सात्त्विक भावः एव, न = नैव, उपसर्पति = पुरः गन्तुं प्रभवति, 'उपसारयिष्यति' इति भावः ।

[पूर्वभाग की कथा का सन्दर्भ—पूर्वभाग में चन्द्रापीड अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसङ्ग में आगे बढ़ता हुआ महाश्वेता के आश्रम में पहुँचता है। उसके साथ गन्धर्वलोक जाकर गन्धर्व-राजकुमारी कादम्बरी से मिलता है। साक्षात्कार होते ही वे एक दूसरे के प्रति पूर्ण आसक्त हो जाते हैं। उनका अनुराग प्रतिक्षण बढ़ने लगता है। इसी बीच अचानक पिता तारापीड का सन्देश पाकर वह उज्जयिनी वापस लौट आता है किन्तु अपनी प्रिय परिचारिका पत्रलेखा को कादम्बरी के पास ही छोड़ देता है। उज्जयिनी में राजकुमार कादम्बरी की विरह में व्याकुल रहता है। इसी बीच पत्रलेखा उज्जयिनी में वापस लौटती है। राजकुमार उससे कादम्बरी के विषय में पूछता है। वह कादम्बरी की विरहावस्था का विस्तारपूर्वक वर्णन उसी के शब्दों में करती है—]

पत्रलेखा द्वारा कादम्बरी का सन्देश कहना

'और [यह समझ लो कि] इस समय [तुम्हारे द्वारा] यहाँ लाये गये भी कुमार का तरलता से लज्जित हुई लज्जा ही दर्शन नहीं करने देगी। कामभाव के विकार से उत्पन्न वेदना से अत्यधिक व्यग्रता ही मुझे [उस कुमार के] सामने बैठने नहीं देगी। कर्तव्य-अकर्तव्य के निर्धारण करने का असमर्थता (ज्ञानाभाव) तथा भय से जड़ (स्तब्ध) हो जाने वाली जड़ता ही [मुझे

नोपसर्पति । स्वयमुपसर्पणलघु लाघवमेव तत्प्रतिपत्तिस्थैर्यं नावलम्बते । बलात्तदानयनापराधभीता भीतिरेव न संमुखीभवति । अथ कथंचिद् गुरुजनत्रपया वा राजकार्यानुरोधेन वा चिरावलोकितसहसंवर्धितबन्धुजनदर्शनसुखेन[1] वा [2]सुहृन्मुखकमलावलोकनोत्कण्ठया वा

स्वयमिति । स्वयम् = आत्मना, तदनुमतिमन्तरेति भावः, उपसर्पणलघु = उपसर्पणम् (= समीपगमनम्) तेन (= तुच्छम्), लाघवम् = तुच्छता, एव, तदित्यादिः—तस्य प्रतिपत्तिः (= त्वया एव आगन्तव्यम्—इत्याकारकमुपदेशज्ञानम्) तस्यां स्थैर्यम् (= स्थिरताम्, दृढतामिति भावः) न = नैव, अवलम्बते = आश्रयति । तस्य पित्रादीनाञ्चानुमतिं विना तस्य समीपे गमने सति मम यत् लाघवं भविष्यति तत् तादृशाचरणदृढतां नाश्रयतीति भावः ।

ननु स कथमपि अत्रानेय एवेति मया कथिते सति सा जगाद—बलादिति । बलात् = हठात्, प्रसह्येति भावः, तदानयनेत्यादिः—तस्य (= राजकुमारस्य) यद् आनयनम् (= कादम्बरीसमीपे प्रापणम्) तदेव अपराधः (= आगः) ततो भीता (= भयाक्रान्ता), भीतिः = भयम्, एव, न सन्मुखीभवति = साम्मुख्यं प्राप्नोति, बलपूर्वकं तस्यानयने योऽपराधो भविष्यति तस्मादति भीताऽहं कथमपि तस्य सन्मुखीभवितुं न शक्नोमि । यद्वा सा भीतिः मां तस्य सम्मुखं गन्तुं समर्थां नैव करिष्यतीति भावः ।

अत्र भूषणभट्टेन स्त्रीणां कामातुराणां स्वाभाविकाः मनोभावाः चातुर्येण वर्णिताः । अत्र च स स्वपितुरनुकरणं कृतवानिति सुस्पष्टमेव कादम्बरी-परिशीलनपराणाम् । एतादृशानि नैकानि स्थलानि पूर्वार्द्धे द्रष्टुं शक्यानि;यथा—"तस्याः सकाशादशिक्षतेव लज्जापि लज्जालीलाम्, विनयोऽपि विनयातिशयम्, मुग्धतापि मुग्धताम्, विलासोऽपि विलासम् ।" (पूर्वार्द्धे पृ० १०४०)

पूर्वकथनेष्वसन्तोषं प्रकटयन्ती पुनराह—अथेत्यादि । अथ = यदीत्यर्थे, खेदाभिव्यक्तौ वा । "प्रियासख्या पादपतनेनापि आनेतुमेव न पारितः" इति मुख्यवाक्यार्थे 'गुरुजनत्रपा' इत्यादीनां हेतुत्वेनोल्लेखो बोध्यः । कुमारानयनाभावे च तत्प्राणत्यागः सुनिश्चित इति बोधयितुमेव 'तदा न सुतरामेव किञ्चिदि' ति कथनम् । गुरुजनत्रपया—गुरुजनाः (= मातापित्रादयः) तेषां सकाशात् त्रपा (=लज्जा) तया, तेषामनुमतिमन्तरा ईदृशं कृत्यं कृतमिति विचार्य मनसि उत्पन्नया लज्जयेति भावः । वा = अथवा, राजकार्यानुरोधेन—राजकार्यम् (= शासनसम्बन्धि-सन्धिविग्रहादिकृत्यम्) तस्य अनुरोधेन (= अवश्यकरणीयतया, विलम्बेऽनर्थसम्भवत्वादिति शेषः) वा = पक्षान्तरे, चिरेत्यादिः—चिरम् (= दीर्घकालम्) अवलोकितः (= दृष्टः) [वियोगेन तेषां दर्शने महान् बिलम्बो जात इति भावः ।] सह (= सार्धम्) सम्बर्धितः (= वृद्धिं प्रापितः) यो बन्धुजनः (= आत्मीयजनः) तस्य दर्शनम् (= अवलोकनम्, साक्षात्कारः) तेन यत् सुखम् (= आनन्दः)

उस कुमार के] पास नहीं जाने देगी । अपने आप उसके पास जाने [के बिचार] से लघु लाघव (हल्कापन) ही उस कुमार की प्रतिपत्ति (स्वीकृति, प्राप्ति, सम्मान) की स्थिरता का अवलम्बन नहीं करने देगा अर्थात् स्वयं ही उसके पास जाने के बिचार से मेरे मन मे जो हल्कापन (हीनता) आया है वही मुझे उनके स्वागत में दृढ़ नहीं बनने देगा । बलपूर्वक यहाँ उन्हें लिवा (बुला) लाने के अपराध से भयभीत हुई भीति (डर) ही उनके सम्मुख नहीं होने देगी । फिर भी यदि किसी प्रकार गुरुजनों (माता-पिता आदि) से लज्जा से, या राजकार्य आ जाने से या चिरकाल से परिचित और साथ ही साथ पले पुसे (खेले खाये) बन्धुजनों के देखने के आनन्द से या मित्रों के मुखकमलों

१. बन्धुजनोत्कण्ठया । २. कमलदर्शनेन ।

पुनरागमनखेदपरिजिहीर्षया वा निजगृहावस्थानरुच्या वा जन्मभूमिस्नेहेन वाऽनिच्छया वाऽस्य जनस्योपरि पादपतनेनापि नानेतुमेव पारितो[1] यदा मयि स्नेहात्कृतयत्नयापि प्रियसख्या तदा सुतरामेव न किंचित्। किं चाधुनाप्यधिकमुपजातम् ? सैवाहं कादम्बरी

तेन, जन्मकालादारभ्य सहैव परिपालितानां सम्प्रति यूनां स्वबन्धूनां दीर्घकालान्तरं जायमानं दर्शन-सुखं त्यक्तुं नेच्छतीति भावः। वा = पक्षान्तरे, सुहृदित्यादिः—सुहृदः (= सखायः) तेषां मुखानि (= आस्यानि) कमलानि (= पङ्कजानि इव), [उपमितसमासः, कमलसदृशमुखानीत्यर्थः] तेषाम् अवलोकनम् (= दर्शनम्) तस्मिन् या उत्कण्ठा (= औत्सुक्यम्) तया। वा = अथवा, पुनः = भूयः, आगमनम् (= स्वनगरान्नगरसम्प्राप्तिः) तस्मिन् यः खेदः (= आयासः, शारीरिको मानसिकश्च) तस्य परिजिहीर्षया (= परिहर्तुम् इच्छया, वाञ्छया), कादम्बरीनगर-गमनाय पुनः कः क्लेशं संहतेति इच्छयेति भावः। वा = अथवा, निजेत्यादिः—निजम् (= स्वकीयम्) यद् गृहम् (= भवनम्, राजभवनम्) तस्मिन् यद् अवस्थानम् (= अवस्थितिः, निवसनम्) तत्र रुच्या (= अभिलाषेण)। एतावत्कालपर्यन्तं बहिरभूवमिदानीं स्वभवन एव स्थास्यामीति विचार्य नागन्तुं शक्नोतीति भावः। वा = अथवा, जन्म-भूमि-स्नेहेन = जन्मस्थानविषयकप्रेम्णा, स्वजन्मभूमिं विहायान्यत्र कथं गच्छामीति तदाशयः। वा=अथवा, अस्य=मादृशस्य, जनस्य=लोकस्य, कादम्बर्या इति भावः, उपरि=विषये, अनिच्छया=अनभिलाषेण, अप्रीत्या वा। चरमं पक्षं प्रस्तौति—यदेति। मयि = मद्विषये, स्नेहात् = प्रेम्णः, कृतप्रयत्नया = विहितप्रयासया, अपि, प्रियसख्या= स्निग्धसख्या, पत्रलेखया त्वया, यदा = यस्मिन् काले, पादपतनेनापि = चरणयोर्निपतनेनापि, तस्य चन्द्रापीडस्य पादयोर्दण्डवत् प्रणतिं विधायापि, आनेतुम् = अत्र सम्प्रापयितुम्, पारितः = शक्तः, एव, न = न हि, तदा = तस्मिन् काले, सुतराम् = अतिशयेन, एव, न, किञ्चित् = किमपि कर्तुमवशिष्टमिति भावः।

अयमाशयः—कुमारस्य मनसि नैके विकल्पाः भवितुमर्हन्ति। यदि भवती विनयस्य चरमं रूपमाश्रयन्ती तस्य पादयोर्निपतति तथापि तस्य हृदये अस्मद्विषयिणी प्रीतिर्न जायते, स कथमपि मम समीपे आगन्तुं नेच्छति तदा नावशिष्टं किमप्यन्यद् विधातुम्। अतः यदि स आयाति तदा लज्जादिभिर्न शक्नोमि किमपि कर्तुम्। यदि नागच्छति तदा तु स्वत एव नावशिष्यते किञ्चिद् विधातुम्। एवञ्च कुमारस्यागमने आगमनाभावे वा न कोऽपि लाभ इति कादम्बरी-वचनानामाशयं प्रकटितवती पत्रलेखेति बोध्यं सहृदयैरित्यलम्।

अन्यदपि वक्तुकामा कादम्बरी पत्रलेखां सूचयति—किञ्चेति। च = समुच्चये। अधुनापि = इदानीमपि, अधिकम् = अतिरिक्तम्, किम् उपजातम् = सम्भूतम् ? अहम्, सा =

को देखने की उत्सुकता से या फिर दूसरी बार [इतनी दूर तक] आगमन के खेद (श्रम) से बचने की इच्छा से या अपने घर पर ही रुकने (रहने) की रुचि से या जन्मभूमि के प्रति स्नेह से या इस जन के अर्थात् मेरे ऊपर इच्छा न होने से—यदि मेरे ऊपर स्नेह के कारण मेरी प्रिय सखी द्वारा [उसके] पैरों पर गिरकर भी उसे नहीं लाया जा सका—तो कुछ भी नहीं हो सका अर्थात् तुम पैरों पर गिर कर भी यदि पूर्वोक्त किसी भी कारण से उसे यहाँ नहीं ला सकी तो सब प्रयास व्यर्थ ही होगा। और अभी भी [पहले से] अधिक क्या [परिवर्तन] हो गया है ? मैं वही कादम्बरी अब भी हूँ जिसे सायङ्काल राजकुमार ने हिमगृह में पुष्पशय्या पर लेटी हुई देखा था,

---

१. पारितः कृतप्रयत्नयापि प्रियसख्या तदा।

याऽनेन कुमारेण [1]मधुमदमुखरमधुकरकुलकलकोलाहलाकुलितकोककामिनीकरुणकूजित[2]-जनितविरहिजनमनोदुःखे विकचदलारविन्दवृन्दनिष्यन्दानन्दितमन्दगन्धवहसुगन्धदश-दिशि विकसितकुसुमामोदमुकुलितमानिनीमानग्रहोन्मोचनदक्षकुसुमायुधे[3] कर्पूरक्षोदमिश्र-

अपरिवर्णिता, एव कादम्बरी, या, अनेन = अमुना, कुमारेण = राजपुत्रेण, [वक्ष्यमाणेन "हिमगृहे कुसुमस्रस्तरावलम्बिनी वीक्षिता" इति पदसमुदायेनान्वयो बोध्यः]।

मधुमदेति। मध्वित्यादिः—मधु (= मकरन्दः, पुष्परसः, तस्य पानमिति भावः) तेन यः मदः (= मत्तता) तेन मुखराः (= वाचालाः) ये मधुकराः (= भ्रमराः) तेषां कुलानि (= समुदायाः) तेषां कलः (= मनोहरः) यः कोलाहलः (= कलकलः, दीर्घध्वनिः) तेन आकुलिताः (= व्याकुलतामुपगताः) याः कोकानाम् (= चक्रवाकानाम्) कामिन्यः (=रमण्यः) तासां यत् करुणम् (= सखेदम्) कूजितम् (= शब्दः, विरुतम्) तेन जनितम् (= उत्पादितम्) विरहिजनानाम् (= वियोगिलोकानाम्) मनोदुःखानि (= चित्तक्लेशाः) यस्मिन् तादृशे 'हिमगृहे'। केचित्तु—सामीप्यात् 'प्रदोष-समये' इत्यस्यैव विशेषणं मन्यन्ते। नानुचितमेतद्; रात्रौ चक्रवाकानां मिथुनानां वियोगः सर्वजनप्रसिद्धः।

पुनरपि तदेव विशिष्टि—विकचेत्यादिना। विकचेत्यादिः—विकचानि (= विकसितानि) दलानि (= पत्राणि) येषां तानि तादृशानि यानि अरविन्दानि (= कमलानि) तेषां वृन्दानि (= समूहाः) तेषां यो निष्यन्दः, (= पुष्परसः, मकरन्दः) तेन आनन्दितः (= प्रसन्नः) मन्दः (= मृदुः) च यो गन्धवहः (= पवनः) तेन सुगन्धाः (= सुरभिताः, मनोहरगन्धवत्यः) दश-दिशः (= दशसंख्याकाः काष्ठाः) यस्मिन् तादृशे।

विकसितेति। विकसितेत्यादिः— विकसितानि (=प्रफुल्लानि) यानि कुसुमानि (=अन्यानि पुष्पाणि) तेषाम् आमोदेन (= सौरभेण) मुकुलितः (= मुकुलावस्थां सम्प्राप्तः, एकीभूतः) यो मानिनीनाम् (= प्रणयकोपवतीनाम्) मानः (= प्रणयक्रोधः) तस्य ग्रहः (= ग्रहणम्, ग्रन्थिः) तस्य उन्मोचनम् (= दूरीकरणम्) तस्मिन् दक्षः (= कुशलः) कुसुमायुधः (= कामदेवः) यस्मिन्, तादृशे प्रदोषसमये। कर्पूरेत्यादिः—कर्पूरः (= घनसारः) तस्य क्षोदः (=चूर्णम्) तेन मिश्रः (= सम्मिलितः) यः चन्दनस्य (= श्रीखण्डस्य) पङ्कः (= कर्दमः) तस्य पिण्डः (= निकरः) यस्मिन् तादृशे। केचित्तु—इदं चन्द्रमस एव विशेषणं स्वीकुर्वन्ति। प्रतिलिपिकर्तुः प्रमादात् पाठस्य भ्रंशतां च प्रतिपादयन्ति। वस्तुतस्तु ग्रीष्मादौ सायंकाले तथाविधसामग्र्याः राजभवनादौ प्रयोगदर्शनात् 'प्रदोषसमये' इत्यस्यापि विशेषणत्वं समीचीनम्।

वह सायङ्काल, जिसमें मधु (पुष्परस के पान) से मत्त गुनगुनाते हुए भौंरों के मीठे-मीठे कोलाहल (ध्वनि) से व्याकुल की गईं चकवी-चकवा पक्षियों की करुण ध्वनि [सुनकर]से विरही लोगों के मन में सन्ताप उत्पन्न हो रहा था, खिली हुई पंखुड़ियों (दलों) वाले कमलों के समुदाय से निकलने (चूने) वाले मकरन्द (पुष्परस) से आनन्दित (सुगन्धित) मन्द हवा से दशों दिशायें (सभी ओर) सुगन्धित हो रहीं थीं, कामदेव खिले हुए फूलों की सुगन्ध से मुकुलित (कुछ बढ़े हुये) मानिनी (रूठी) नायिकाओं के मानग्रह (रूठने के आग्रह) को दूर करने में दक्ष हो रहा था, कपूर के चूर्ण से मिले हुए चन्दन रस के पिण्ड [बनाये जा रहे] थे, रूठी हुई कामिनियों को

१. मत्तमद। २. कूजिते जनित। ३. मोचनहस्ते कुसुमायुधे।

चन्दनपङ्कपिण्डे कुपितकामिनीविनोददक्षगेयमुखरपरिजने पुनरुक्तदर्शनाभ्युत्थानव्रीडितकञ्चुकिजने प्रदोषसमये जरठशरकाण्डविपाण्डुनिविडकुण्डलोद्घृष्टलडहयुवतिगण्डस्थलान्यखण्डमण्डले विडम्बयति मण्डयति गगनं चानवरतविस्फुरद्विशदकरनिर्भरावर्जितज्योत्स्नाजलासारवर्षिणि चन्द्रमसि दूरविक्षिप्तदलनिवहकुमुदकाननामोदवासितदिगन्तायाः कुमुदिन्यास्तटे चन्द्रकरस्पर्शप्रवृत्तशशिमणिशिखरनिर्झरझंकारिणि क्रीडापर्वतनितम्बके

कुपितेति । कुपितेत्यादिः—कुपिताः (= प्रणयकोपवत्यः) याः कामिन्यः (= रमण्यः) तासां विनोदे (= मनोरञ्जने) दक्षाः (= निपुणाः) अतएव, गेयेषु (= गायनेषु) मुखराः (= वाचालाः) परिजनाः (= सेवकाः) यस्मिन् तादृशे । पुनरुक्तेति । पुनरुक्तेत्यादिः—पुनरुक्तानि (= बारं बारं विधीयमानानि) यानि दर्शनानि (= साक्षात्काराः) तैः यानि अभ्युत्थानानि (= सम्मानप्रदर्शनार्थी समुत्थानानि) तैः व्रीडिताः (= लज्जां प्राप्ताः) कञ्चुकिजनाः (= कञ्चुकिलोकाः) यस्मिन् तादृशे, विशेष्यमाह—प्रदोषसमये = सायङ्काले ।

चन्द्रमसं वर्णयति—जरठेत्यादिना । जरठेत्यादि—जरठाः (= परिपक्वाः) ये शरकाण्डाः (= ग्रासविशेषस्य नालाः) तद्वत् विपाण्डूनि (= पाण्डुवर्णानि, ईषत्श्वेतपीतवर्णानि), अथ च, निबिडैः (= अतीवनतैः) कुण्डलैः (= कर्णाभूषणविशेषैः) उद्घृष्टानि (= लब्धसङ्घर्षणानि) च यानि लडहानाम् (= मदमत्तानाम्) युवतीनाम् (= यौवनवतीनाम् स्त्रीणाम्) गण्डस्थलानि (= कपोलफलकानि) तानि, विडम्बयति = अनुकुर्वति सति । पुनरपि तमेव विशिनष्टि—अनवरतेत्यादिना । अनवरतम् (= निरन्तरम्) यथा स्यात् तथा विस्फुरन्तः (= संशोभमानाः) विशदाः (= निर्मलाः) च ये कराः (= रश्मयः) तैः निर्भरं यथा स्यात् तथा आवर्जिताः (= विकीर्णाः, प्रक्षिप्ताः) याः ज्योत्स्नाः (= चन्द्रिकाः) ता एव जलानि (= वारीणि) तेषाम् आसारम् (= धारासम्पातम्) वर्षति (= पातयति) इति तादृशे । अखण्डमण्डले—अखण्डम् (= सकलम्, पूर्णम्) मण्डलम् (= बिम्बम्) यस्य तस्य तस्मिन् तादृशे, चन्द्रमसि = चन्द्रे, गगनम् = आकाशम्, मण्डयति = विभूषयति, सति ।

कुमुदिनीं विशेषयति—दूरेत्यादिना । दूरम् (= विप्रकृष्टम्) यथा स्यात् तथा विक्षिप्ताः (= विकीर्णाः), दलानाम् (= पत्राणाम्) निवहाः (= समूहाः) येभ्यः येषां वा तादृशानि यानि कुमुदानाम् (= कैरवाणाम्) काननानि (= वनानि) तेषाम् य आमोदः (= सौरभम्) तेन वासिताः (= सुगन्धयुक्तीकृताः) दिगन्ताः (= दिगवकाशाः) यया सा तादृश्याः । कुमुदिन्याः = कुमुद्वत्याः, कुमुदपरिपूर्णवाप्या इति भावः, तटे = तीरे । ["अथ कुमुद्वती । कुमुदिन्याम्" इत्यमरः १।३।३९]

इदानीं हिमगृहं विशेषयितुमाह—चन्द्रकरेत्यादिना । चन्द्रेत्यादिः—चन्द्रस्य (= शशिनः) कराणाम् (= किरणानाम्) स्पर्शेन (= आमर्शेन, सम्पर्केण) प्रवृत्ताः (= प्रसृताः, स्यन्दितुमारब्धाः) शशिमणीनाम् (= चन्द्रकान्तमणीनाम्) शिखरेभ्यः (= कोटिभ्यः अग्रभागेभ्यः),

---

मनाने में दक्ष परिचारकगण गाना गाने में लगे हुए थे, [स्वामी-स्वामिनी आदि के] बार-बार दर्शन से [उनके सम्मान में बार-बार] उठने के कारण कञ्चुकी लोग लज्जित हो रहे थे, ऐसे प्रदोष काल में सम्पूर्ण मण्डल वाला चन्द्रमा खूब पके (सूखे) सरकण्डे (नरकुल नामक एक घास के पौधे) के समान श्वेत-पीत (पाण्डु) वर्ण की तथा घने कुण्डलों के घर्षण से घिसे (टकराये) हुए अल्हड़ (मस्त) युवती के कपोलस्थल का अनुकरण कर रहा था, उसके समान प्रतीत हो रहा था, और आकाश को शोभित कर रहा था, निरन्तर खिलती (बढ़ती) हुई उज्ज्वल किरणों के समूह से

हृद्यहरिचन्दनरसकणिकाजालकच्छलेन तत्करतलस्पर्शसुखसम्भवस्वेदजलनिवहमिव वहति तत्कालहारिणि मुक्ताशिलापट्टशयने कुसुमामोदसुरभितदशदिशि तुषारकणनिकरहारिण्यपि बहिरेव देहदाहमात्रकापहारिणि[1] सर्वरमणीयानां संदोहभूते हिमगृहे कुसुमस्रस्तरावलम्बिनी वीक्षिता ।

ये निर्झराः (= पयःप्रवाहाः) तेषां झङ्काराः (= झम्—इत्याकारकाः ध्वनयः) सन्ति यस्मिन् तादृशे, क्रीडापर्वतनितम्बके = विहारशैलकटके, सति । अयं भावः—तत्र क्रीडार्थं चन्द्रकान्तमणीनां पर्वतो निर्मित आसीत् । यदा सायं चन्द्रोदयो जातस्तदा चन्द्रकिरणसम्पर्कात्तत्र मणिभ्यः जलप्रक्षरणमारब्धमभूदिति बोध्यम् ।

शिलापट्टशयनं वर्णयति—हृद्येत्यादिना । हृद्येत्यादिः—हृद्यम् (= मनोहरम्) यद् हरिचन्दनम् (= श्रीखण्डविशेषः) तस्य रसस्य (= द्रवस्य) याः कणिकाः (= सूक्ष्माः कणाः) तेषां जालकम् (= समूहः) तस्य च्छलेन (= व्याजेन) । तत्करेत्यादिः—तस्य (= चन्द्रापीडस्य) करतलम् (= पाणितलम्) तस्य स्पर्शः (= आमर्शः, सम्पर्कः) तेन यत् सुखम् (= सातम्) तस्मात् सम्भवः (= उत्पत्तिः) यस्य तादृशं यत् स्वेदजलम् (= स्वेदसलिलम्) तस्य निवहः (= समूहः) तम् इव, वहति = धारयति, सति । तत्कालहारिणि—तत्कालम् (= सद्य एव) हरति (= आकर्षयति) इति तस्मिन् । मुक्ताशिलापट्टशयने = मुक्ताशिलायाः (= मौक्तिक-प्रस्तरस्य) पट्टः (= फलकम्) स एव शयनम् (= शय्या) तस्मिन् ।

हिमगृहस्य वैशिष्ट्यानि एव वर्णयति—कुसुमेत्यादिना । कुसुमानाम् (=पुष्पाणाम्) य आमोदः (= सौरभम्) तेन सुरभिताः (= सुगन्धीकृताः) दश दिशः (= दशसंख्याकदिशाः) येन यस्मिन् वा तादृशे । तुषारेत्यादिः—तुषारः (=हिमम्) तस्य कणाः (=विप्रुषः) तेषां निकरः (= समूहः) तेन हारिणि (= मनोहरे), अपि, बहिः = बाह्यरूपेण, एव न तु अन्तःरूपेणेति भावः, देहेत्यादिः—देहः (= कायः) तस्य दाहः (= तापः, कामजनित इति शेषः) एव मात्रकम् (=तन्मात्रम्) तद् अपहरति (=दूरीकरोति) इति तस्मिन् तादृशे । सर्वरमणीयानाम् = सकलमनोहराणाम्, सन्दोहभूते—सन्दोहः (= सन्दोहनम्) तस्माद् भूते (=उत्पन्ने), हिमगृहे = तुषारसदनविशेषे, कुसुमेत्यादिः—कुसुमानाम् (=पुष्पाणाम्) स्रस्तरम् (= शय्या)तस्य अवलम्बिनी (= आश्रयिणी, पुष्पनिर्मितशय्यायां स्थितेति भावः), वीक्षिता = अवलोकिता, कुमारेणेत्यन्वयः ।

चन्द्रिकारूपी जलधारा की बरसा कर रहा था; हिमगृह दूर-दूर तक बिखरी हुई पंखुड़ियों के समूह (ढेर) वाले कुमुदों के वन की उत्कृष्ट गन्ध से दिगन्तों को अर्थात् चारों ओर सुगन्धित करने वाली कुमुदिनी (कमलयुक्त बावड़ी) के तट पर चन्द्रमा की किरणों के सम्पर्क से चन्द्रकान्त मणियों से बहते हुये झरनों के झङ्कार से युक्त क्रीडापर्वतक (खेलने के लिये बनाये गये पर्वत) के मध्यभाग में [स्थित] था, मनोहर हरिचन्दन के रस की बूंदों के समूह के बहाने से उस (कुमार या चन्द्र) के करतल के स्पर्शसुख से होने वाले पसीने की बूंदों के समूह को मानों धारण करने वाले, उसी समय मन को आकृष्ट कर लेने वाले मुक्तामणि के शिलापट्ट के पलंग पर थी, जो हिमगृह फूलों की उत्कृष्ट गन्ध से दशों दिशाओं को सुगन्धित किये हुए था, तुषारकणों के समूह से रमणीय होता हुआ भी बाहर ही से केवल शरीर के दाह को दूर कर रहा था, जो समस्त रमणीय पदार्थों का सन्दोह (भण्डार) था । [ऐसे हिमगृह में मुक्तामणि के पलंग पर फूलों के बिस्तर पर लेटी हुई मुझ कादम्बरी को कुमार ने स्वयं देखा था ।]

---

१. कायहारिणि ।

ममापि [1]चापुनरुक्ततद्दर्शनस्पृहे ते एवैते लोचने ययोरालोकनपथमसौ यातः। तदेव चेदमप्रतिपत्तिशून्यं हतहृदयं येनान्तःप्रविष्टोपि न पारितो धारयितुम्। तदेव चैतच्छरीरं येन तत्समीपे चिरमुदासीनेन[2] स्थितम्। स एव चायं पाणिर्योऽलीकगुरुजनापेक्षी[3] नात्मानं परिग्राहितवान्। अनपेक्षितपरपीडश्चन्द्रापीडोऽपि स एव योऽत्र वारद्वयमागत्य प्रतिगतः।

ममेति। मम = कादम्बर्याः, अपि, अपुनरुक्तेत्यादिः—अपुनरुक्ता (= आवृत्तिशून्या, प्रथमा) तस्य (= राजकुमारस्य चन्द्रापीडस्य) दर्शनस्य (= अवलोकनस्य) स्पृहा (=इच्छा) ययोस्ते, तादृशे एते = इमे, एव, ते = प्रसिद्धे, लोचने = नेत्रे, ययोः = लोचनयोः, आलोकनपथम् = दर्शनमार्गम्, असौ=एषः, चन्द्रापीडः, यातः=गतः, प्राप्त इत्यर्थः। तद्, एव, इदम् = एतत्, अप्रतिपत्तिशून्यम् = अज्ञानरहितम्, अप्रतिपत्तिः = अज्ञानम्, तेन शून्यम् = रहितम्, ज्ञानसम्पन्नमिति भावः, [एतेन—'कर्त्तव्याकर्त्तव्यविवेकरहितमित्यर्थः—' इति निरस्तम्, तादृशेन हृदयेन धारणासम्भवादिति बोध्यम्।] हतहृदयम् = दग्धं चित्तम् [निन्दार्थे एतादृशप्रयोगाः प्रसिद्धाः], कथमेतदत आह—येन = मय हृदयेन, अन्तःप्रविष्टः = हृदयमध्यप्राप्तप्रवेशः, अपि, धारयितुम् = ग्रहीतुम्, संरक्षितुम्, न = नैव, पारितः = शक्तः। स राजकुमारो मम हृदयान्तर्गतोऽपि मम मूर्खेण हृदयेन न तत्र गृहीत्वा रक्षित इति भावः।

तदेवेति। एतत् = पुरोवर्ति इदम्, शरीरम् = कायः, तदेव = पूर्ववर्णितरूपमेव, येन = मम शरीरेण, तत्समीपे = राजकुमारस्य सन्निधौ, अपि, चिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, उदासीनेन = तटस्थेन, निष्क्रियेण, स्थितम् = अवस्थितिः कृता, न किमपि आवश्यकं चेष्टितमिति भावः। स एवेति। सः = एषः, एव, पाणिः = हस्तः, यः = हस्तः, अलीकेत्यादिः—अलीकम् (= मिथ्या) एव ये गुरुजनाः (= मातापित्रादयः) तान् अपेक्षते (=गणयति), इति तादृशः, आत्मानम् = स्वम्, पाणिमित्यर्थः, न, परिग्राहितवान् = स्वीकारितवान्। मम पाणिं धिक् यो मिथ्यैव गुरुजनानामपेक्षायां जडः सन् चन्द्रापीडद्वारा स्वग्रहणं न कारितवानिति भावः।

इदानीं चन्द्रापीडमुपलभते—अनपेक्षितेति। अनपेक्षेत्यादिः—अनपेक्षिता (=अगणिता) परस्य (= अन्यस्य, मम कादम्बर्या इत्यर्थः) पीडा (= क्लेशः) येन स तादृशः, चन्द्रापीडः = एतन्नामा राजकुमारः, अपि, सः = पूर्ववर्णितावस्थः, एव, ननु अन्यः, यः = राजकुमारः, अत्र = मम समीपे भवने वा, वारद्वयम् = द्विवारम्, आगत्य = आगमनं कृत्वा, प्रतिगतः=प्रतिनिवृत्तः।

विमर्श—प्रस्तुत स्थल का पाठ सन्दिग्ध है। अनेक पाठान्तर भी प्राप्त हैं। कई विशेष्य सप्तम्यन्त प्रयुक्त होने से परस्पर अन्वय में विवाद है। अतः औचित्य के आधार पर अर्थ करना चाहिए। पाठक ध्यान दें कि बाण के पूर्वार्द्ध में ऐसा सन्देह नहीं उत्पन्न होता है। अनेक पाठान्तरों में यहाँ प्रोफेसर पी० एल० वैद्य द्वारा स्वीकृत पाठ ही रखा गया है।

[अनु०] एक बार फिर से या बार-बार उनके दर्शनों के लिये ललचायी (तरसती) हुई मेरी भी वे ही आँखें है जिनके दर्शन-पथ में वह कुमार आया था, जिन्होंने कुमार के दर्शन किये थे। और अकिंकर्तव्यविमूढ मारा गया वही यह [मेरा] हृदय है जो कि अन्तःकरण में प्रविष्ट हुए भी उस (कुमार) को रोक नहीं सका। और यह वही शरीर है जो उनके पास देर तक उदासीन (बिना कुछ किये) बैठा रहा। और यह वही हाथ है जिसने व्यर्थ ही गुरुजनों की अपेक्षा (परवाह) करते हुए अपने को (उनके द्वारा) पकड़वा (गृहीत) नहीं (करवा) दिया। और दूसरों की पीडा

---

१. च पुनरुक्त०। २. उदासीनं। ३. अलीकगुरुजनापेक्षणात्।

मय्येवोपक्षीणमार्गणतया चाकिञ्चित्करोऽन्यत्र पञ्चशरोऽपि स एव यस्त्वयावेदितो मे।

प्रतिज्ञातं च मया महाश्वेतायाः—'त्वयि दुःखितायां नाहमात्मनः पाणिं ग्राहयिष्यामि' इति। सा तु 'देवि, मैवं स्म मनसि करोः, कुमतिरियम्, अतिदारुणोऽयं पापकारी मकरकेतुः कदाचिददृश्यमाने प्रियजने जनितहृदयानुरागाज्जीवितमप्यपहरति' इत्यब्रवीत्। एतदपि

कामदेवमप्युपलक्षते—मयीत्यादिना। मयि = कादम्बर्याम्, एव, उपक्षीणेत्यादिः—उपक्षीणाः (= नष्टाः, समाप्तिं याताः) मार्गणाः (= बाणाः) यस्य स तस्य भावस्तत्ता तया, समाप्तबाणतयेत्यर्थः, च, अन्यत्र = मत्तः भिन्ने, चन्द्रापीडे इत्यत्र, अकिञ्चित्करः = किमपि कर्तुमसमर्थः, पञ्चशरः = कामदेवः, अपि, सः एव = पूर्ववर्णितावस्थ एव, वर्तते न तु ततो भिन्नोऽमुदिति भावः, यः = कामः, त्वया = प्रियसख्या पत्रलेखया, मे = मह्यम्, कादम्बर्यै, आवेदितः = निवेदितः, तत्स्वरूपादिकं सम्यग्वर्णितमिति भावः। एवं सर्वमपि मम प्रतिकूलं वर्तते इति तदाशयः।

कादम्बर्याः प्रतिज्ञां प्रस्तौति—प्रतिज्ञातं चेत्यादिना। मया = कादम्बर्या, महाश्वेतायै = स्वाभिन्नसख्यै, प्रतिज्ञातम् = प्रतिज्ञा कृता। किं तदिति कथयति—'त्वयि = भवत्याम्, महाश्वेतायाम्, दुःखितायाम् = पुण्डरीकवियोगरूपदुःखयुक्तायाम्, सत्याम्, अहम् = कादम्बरी, आत्मनः = स्वस्याः पाणिम् = हस्तम्, न = नैव, ग्राहयिष्यामि=गृहीतं विधास्यामि, स्वोद्वाहं नैव करिष्यामीति भावः।

महाश्वेतायाः प्रतिवचनं वर्णयति—सा त्वित्यादिना। सा = महाश्वेता, तु, देवि! = माननीये राजकुमारिके!, मनसि = चित्ते, एवम् = अनेन रूपेण, मा स्म = नैव, करोः = कार्षीः। [मास्म योगे लङि अडभावो बोध्यः।] एतादृशं मनसा न कदापि चिन्तनीयमिति तद्भावः। कथमिति चेदत आह—इयम् = एषा, पूर्वोक्तचिन्तनरूपा, कुमतिः = कुत्सितबुद्धिः, न सम्यग्विचार इति भावः। अयम् = एषः, लोकविख्यातः, मकरकेतुः = कामदेवः, अतिदारुणः = अतीव-भयानकः, पापकारी = पापकृत्यसम्पादकः, कदाचित् = कर्हिचित्, न तु सर्वदेति भावः, प्रियजने = वल्लभलोके, अदृश्यमाने = अदर्शनविषयीभूते, सति जनितेत्यादिः—जनितः (= उत्पादितः) हृदये (= चित्ते) य अनुरागः (= स्नेहः) तस्मात्, कारणात्, जीवितम् = जीवनम्, प्राणान्, अपि, अपहृति = अपाकरोति, वियोगावस्थायां प्राणानपि हरतीति भावः। इति = एवं पूर्वोक्तम्, अब्रवीत् = अवोचत्। एतत्सर्वं महाश्वेतायाः प्रतिवचनं कादम्बर्या कथितम्। तस्याः वचनसाफल्यं कादम्बर्यां नैव जायत इति कथयति—एतद् = महाश्वेतया वर्णितं प्राणहरणम्, अपि, मे = मम,

---

की चिन्ता न करने वाले कुमार चन्द्रापीड भी वही हैं जो यहाँ दो बार आकर [मुझे बिना लिये हुए खाली] लौट गये। और मेरे ऊपर ही चला-चला कर सभी बाणों को समाप्त कर देने वाला हो जाने से अन्यत्र (अर्थात् राजकुमार के ऊपर) कुछ भी न कर सकने वाला कामदेव भी वही है जिसके विषय में तुमने मुझसे कहा था।

फिर मैंने महाश्वेता से [समक्ष] यह प्रतिज्ञा की है—"तुम्हारे दुःखी रहते हुए मैं अपना पाणिग्रहण नहीं करवाऊँगी।' किन्तु उस महाश्वेता ने [इसके उत्तर में] कहा था—'देवि! (राजकुमारि!) ऐसा विचार भी मन में मत लाना, यह बहुत बुरी बुद्धि (कुमति) है। पापी वह कामदेव बड़ा दारुण है कि कभी-कभी प्रियजन के न दिखाई देने पर हृदय में उत्पन्न हुए अनुराग के

नास्त्येव मे। मदनेन वा दैवेन वा विरहेण वा यौवनेन वानुरागेण वा मदेन वा हृदयेन वान्येन[1] वा केनापि दत्तः संकल्पमयः कुमारो जनसंनिधावपि केनचिदविभाव्यमानः सिद्ध इव सर्वदा मे ददाति दर्शनम्। अपि चासाविव नायमकाण्डपरित्यागनिष्ठुरहृदयः। अयमेवास्मद्विरहकातरः[2]। नायं नक्तंदिवं लक्ष्मीसमाकुलः। न पृथिव्याः पतिः। न सरस्वती-

---

कादम्बर्याः, न = नैव, अस्ति = भवति, एव। वियोगावस्थायां नैके जनाः मृताः किन्तु अहं दुर्भगा साम्प्रतमपि जीवामीति तदाशयः।

सा तदानीन्तन-स्वावस्थायाः वर्णनमाध्यमेन कुमारस्य दर्शनं निरूपयति---**मदनेनेत्यादिना**। मदनेन = कामदेवेन, वा, दैवेन = अदृष्टेन, वा, विरहेण = वियोगेन, वा, यौवनेन = तारुण्येन, वा, अनुरागेण = स्नेहेन, वा, मदेन = मत्ततया, वा, हृदयेन = चित्तेन, वा = अथवा, अन्येन = अपरेण, केनचित् = अज्ञातेन, दत्तः = समर्पितः, संकल्पमयः = कल्पनात्मकः, कुमारः = राजकुमारश्चन्द्रापीडः, जनसन्निधौ = लोकानां सामीप्ये, अपि, केनचित् = लोकेन, अविभाव्यमानः = अज्ञायमानः, सर्वेषामदृष्टः सन् इति भावः, सिद्धः = अणिमादिसिद्धिसम्पन्नः, इव, मे = मह्यं कादम्बर्यै, दर्शनम् = अवलोकनम्, ददाति = प्रयच्छति। एवञ्च तस्य वियोग एव नानुभूयते इति कथं प्राणापहरणं सम्भाव्यते इति तद्भावः।

सङ्कल्पमयकुमारस्योत्कृष्टत्वं वर्णयति---अपि चेत्यादिना। अपि च = अन्यच्च। असौ = एषः राजकुमारः, इव = तुल्यः, अयम् = संकल्पमयः कुमारः, अकाण्डेत्यादिः---अकाण्डे (= अनवसरे, अकस्मात्) परित्यागः (= मोचनम्, सन्त्यज्य गमनम्) तस्मिन् निष्ठुरम् (= कठोरम्) हृदयम् (= चित्तम्) यस्य सः तादृशः, न = नैव। संकल्पमयः कुमारोऽकस्मान्मां परित्यज्य न क्वापि गच्छतीति तस्य सहृदयत्वं स्पष्टमिति भावः। अयमिति। अयम् = सङ्कल्पमयः कुमारः, एव, अस्मदित्यादिः---अस्माकम् विरहे (= वियोगे) कातरः (= विह्वलः), न तु वास्तविकः कुमारः, स तु विरहेऽपि सुखी वर्तते इति तद्भावः। अयम् = एषः सङ्कल्पमयः कुमारः, नक्तं-दिवम् = रात्रिन्दिवम्, सर्वदेति भावः, लक्ष्मी-समाकुलः---लक्ष्मीः (= राजलक्ष्मीः) तस्यां समाकुलः (= समासक्तः), न = नैव। स तु तामपि विहाय मम समीपे वर्तते इति भावः। पृथिव्याः = वसुन्धरायाः, पतिः = भर्ता, न = नैव। एतेनास्य आगमने कापि औपचारिकता नापेक्षते। सरस्वतीम् = शारदाम्, न = नैव, अपेक्षते = महत्त्वं ददाति। अध्ययनादिकार्येषु अपि व्यापृतो नास्ति येन मिलने कापि बाधा जायेत। कीर्ति-

---

कारण प्राण भी ले लेता है।" परन्तु मेरे सम्बन्ध में तो यह भी नहीं हुआ है अर्थात् मैं तो कुमार के अभाव में भी जीवित रह रही हूँ। कामदेव अथवा दैव अथवा विरह अथवा यौवन अथवा अनुराग अथवा मद अथवा हृदय अथवा जिस किसी भी अन्य के द्वारा दिया गया संकल्परूपी (भावना में प्रतीत होने वाला) कुमार लोगों के सामने भी, सिद्ध पुरुष के समान किसी अन्य के द्वारा न देखा जाता हुआ, मुझे सदैव दर्शन देता रहता है अर्थात् विचारों में मैं सदैव उसे देखती रहती हूँ। और भी, यह (संकल्पमय कुमार) उस (वास्तविक कुमार) के समान निष्ठुर हृदयवाला भी नहीं है जो अचानक छोड़ दे। यही मेरे विरह से कातर (घबड़ाया) रहता है। यह दिन-रात लक्ष्मी[प्राप्ति] के लिये व्याकुल नहीं रहता है। न तो यह पृथ्वी का पति है। और न सरस्वती की ही अपेक्षा

---

१. अनेन। २. तस्मादस्मद्विरहमरणभयहरः।

मपेक्षते। न कीर्तिशब्दं वर्धयति। पश्यामि चाहर्निशमासीनोत्थिता भ्राम्यन्ती शयाना जाग्रती निमीलितलोचना चलन्ती स्वप्नायमाना च शयने श्रीमण्डपे गृहकमलिनीषूद्यानेषु लीलादीर्घिकासु क्रीडापर्वतके बालगिरिनदिकासु च यथा तमज्ञजनविडम्बनैकहेतुं विप्रलम्भकं कुमारं, ते तथा कथितमेव मया। तदलमनया तदानयनकथया।' इत्यभिदधानाऽतर्कितागतमूर्च्छेव निमीलिताक्षी पक्ष्माग्रसंपिण्डितनयनजलवर्षिणी विलीयमानेवोत्पी-

---

शब्दम् = प्रशंसागानम्, न, वर्धयति = एधयति। तस्य दर्शनार्थं प्रशंसाया अपि आवश्यकता नास्ति। स सारल्येन प्राप्तुं शक्यते इति भावः। अत्र सर्वत्र सङ्कल्पमयकुमारस्य वास्तविककुमारापेक्षयाऽधिक्यवर्णनाद् व्यतिरेकालङ्कारः सुस्पष्टः।

सङ्कल्पमयकुमारस्य सर्वदा दर्शनं सुलभमिति प्रतिपादयति—पश्यामीत्यादिना। अहम् = कादम्बरी, अहर्निशम् = रात्रिन्दिवम्, आसीना = उपविष्टा, उत्थिता = ऊर्ध्वीभूता, भ्राम्यन्ती = भ्रमणं कुर्वती, शयाना = स्वपन्ती, जाग्रती = अशयाना, जाग्रदवस्थायां वर्तमाना, निमीलितलोचना = मुद्रितनयना, चलन्ती = गच्छन्ती, स्वप्नायमाना = स्वप्नावस्थायां वर्तमाना, स्वप्नं पश्यन्तीति भावः, विभिन्नासु क्रियासु वर्तमानाऽपि तं पश्यतीति प्रतिपाद्य विभिन्नस्थानेषु तद्दर्शनं प्रतिपादयितुमाह—शयने = शय्यायाम्, श्रीमण्डपे = श्रियोपलक्षिते जने, यद्वा—एतन्नामकस्थानविशेषे, गृहकमलिनीषु = भवनस्थितपद्मिनीषु, उद्यानेषु = राजसदनसमीपस्थितोपवनेषु, लीलादीर्घिकासु—लीलार्थम् (= क्रीडार्थं निर्मितासु) दीर्घिकासु (= वापीषु), क्रीडापर्वतके = क्रीडार्थनिर्मितशैले, बालेत्यादिः—बालाः (= ह्रस्वाः) गिरिनदिकाः (= पर्वतस्थक्षुद्रसरितः) तासु च, तम् = प्रसिद्धम्, चन्द्रापीडम्, अज्ञेत्यादिः—अज्ञः (= मूढः, सरलः, मादृशो) यो जनः (= लोकः) तस्य विडम्बनम् (= व्यामोहनम्, विरहो वा) तत्र एकम् (= अद्वितीयम्) हेतुम् (= कारणम्), विप्रलम्भकम् = प्रतारकम्, पश्यामि = विलोकयामि, इति, ते = पत्रलेखायै, तथा = तेन प्रकारेण, मया = कादम्बर्या, कथितम् = उक्तम्, एव। स्वोक्तिमुपसंहरति कादम्बरी—तत् = तस्मात्, पूर्वोक्तात् हेतोः, तदानयनकथया—तस्य (= कुमारस्य चन्द्रापीडस्य) आनयनम् (= सम्प्रापणम् अस्मिन् स्थाने) तस्य कथया (= वार्तया कथनेन वा) अलम् = न किमपि प्रयोजनं सेत्स्यतीति भावः। गम्यमानक्रियायोगे तृतीया।

इतीति। इति = पूर्वोक्तम्, अभिदधाना = कथयन्ती, अतर्कितागतमूर्च्छा—अतर्कितम् (= अचिन्तितम्) यथा स्यात् तथा, आगता (= सम्प्राप्ता), मूर्च्छा (= मोहः, मूर्छनम्) यस्याः सा, इव, निमीलिताक्षी—निमीलिते (= मुद्रिते) अक्षिणी (= नेत्रे) यस्याः सा तादृशी। पक्ष्माग्रेत्यादिः—पक्ष्मणाम् (= नयनरोम्णाम्) अग्रेषु (= ऊर्ध्वभागेषु) संपिण्डितम् (= एकत्रीभूतम् सञ्चितम्) नयनजलम् (= अश्रुसलिलम्) तद् वर्षति (= स्रवति) इति

करता है। न कीर्ति शब्द को बढ़ाता है, अर्थात् अपना यश फैलाने के चक्कर में परेशान नहीं रहता है। और मैं इस (संकल्पमय कुमार) को दिन-रात बैठी हुई, खड़ी हुई, घूमती हुई, लेटी (सोती) हुई, जागती हुई, आँखें बन्द किये हुई, चलती हुई और स्वप्न देखती हुई, पलंग पर, श्रीमण्डप में, गृहकमलिनियों में, उद्यानों में, कीडा (विलास) की बावड़ियों में, क्रीडापर्वतक में, छोटी-छोटी पहाड़ी नदियों में, [सीधी-साधी भोली-भाली] अज्ञ कुमारियों को मूर्ख बनाने वाले, छलिया उस कुमार को जैसे देखती हूँ, वैसा मैंने तुमसे कहा ही है। इसलिये अब उस कुमार को लाने की बात छोड़ दीजिए।'' इस प्रकार से कहती हुई उसे अचानक मूर्च्छा (बेहोशी) सी आ गई। उसकी आँखें

डयमानेवान्तर्जातमन्युवेगेन तथैव वेदिकावितान-नाभिदामांशुकावलम्बिन्यां बाहुलतिकाया-मच्छसलिलस्रोतसि प्रसूतायां मृणालिकायामिव जलाहतिश्यामारुण-तामरसमिवाननमुपा-वेश्य तूष्णीमुत्कीर्णेव तस्थौ।

अहं तु तच्छ्रुत्वा समचिन्तयम् । 'सत्यमेव गरीयः खलु जीवितालम्बनमिदं विनोदश्च वियोगिनीनां यदुत[1] संकल्पमयः प्रियः। नितरां कुलाङ्गनानां विशेषतः कुमारीणाम्।

तादृशी। तथा, अन्तर्जातमन्युवेगेन—अन्तः (= मध्ये, हृदयाभ्यन्तरे) जातः (= उत्पन्नः) यो मन्युः (= क्रोधः, दुःखम्, अधुना मम जीवितेन को लाभ इत्यादिचिन्तनरूपः) तस्य वेगेन (= रयेण, प्राबल्येन वा) विलीयमाना = लयं प्राप्ता, यद्वा—द्रवतामुपगता, इव, उत्पीडयमाना = अत्यधिक-पीडां प्राप्यमाणा, इव। तथैव = तथावस्था एव, वेदिकेत्यादिः—वेदिका (= बद्धभूमिः) तस्याः वितानस्य (= उल्लोचस्य) यो नाभिः (= मध्यदेशः) तस्मिन् यद् दाम (= रज्जुः) तत्र (= तन्निष्ठम्) यद् अंशुकम् (= वस्त्रम्) तद् अवलम्बते (= आश्रयति, गृह्णाति) इति तादृश्याम्, [वेदिकावितानस्य मध्यदेशे स्थितं वस्त्रमाश्रित्य वर्तमानायामिति भावः] बाहुलतिकायाम् = भुजवल्ल्याम् (लुप्तोपमा) अच्छेत्यादिः—अच्छम् (= निर्मलम्) यत् सलिलम् (= जलम्) तस्य स्रोतसि (= प्रवाहविशेषे), प्रसूतायाम् (= समुत्पन्नायाम्) मृणालिकायाम् = कमलिन्याम्, इव, जलेत्यादि—जलस्य (= वारिणः) या आहतिः (= आघातः) तया श्यामम् (= नीलम्) अरुणम् (= रक्तम्) च यत् तामरसम् (= कमलम्) तद् इव, आननम् = मुखम्, उपावेश्य = संस्थाप्य, उत्कीर्णा = प्रस्तरादिषु चित्रिता, इव, तूष्णीम् = मौनमाश्रित्य, तस्थौ=अवस्थिताऽभूत्। अत्र उपमायाः उत्प्रेक्षायाश्च स्पष्टा प्रतीतिस्तयोश्च संसृष्टिः।

पत्रलेखा पुनः स्वचिन्तनं चन्द्रापीडाय निवेदयितुमाह—अहमिति। तु = किन्तु, पुनरित्यर्थो वा। अहम् = पत्रलेखा, तत् = कादम्बर्युक्तम् 'सङ्कल्पमयः, कुमारः जनसन्निधावपि' इत्यादिकम् श्रुत्वा = आकर्ण्य, समचिन्तयम् = व्यचारयम्, अमृशम्। सत्यम् = तथ्यम्, एव, खलु = निश्चयेन। वियोगिनीनाम् = प्रियवियोगातुराणाम्, कृते, इदम् = एतत्, गरीयः = गुरुतरम्, जीवितालम्बनम् = जीवनस्याधारभूतम्, विनोदः = दुःखदूरीकरणसाधनम्, च, इदमा परामृष्टमाह—यद् = पूर्वोक्तम्, उत = वाक्यालंकारे, 'उक्तम्' इति पाठे तु—कादम्बर्या कथितम्, सङ्कल्पमयः = ध्यानसन्निधापितः, प्रियः = अभीष्टः वल्लभः, नितराम् = अतिशयेन, कुलाङ्गनानाम्, = कुलीनवधूनाम्, विशेषतः = विशेषरूपेण, कुमारीणाम् = कन्यकानाम्।

बन्द हो गईं, पलकों के अग्रभाग में एकत्रित हुआ जल (आँसू) बरसाने लगी, पिघलती हुई सी, मानों अपने भीतरी सन्ताप से पीड़ित हो रही थी, उसी अवस्था में वेदी के चन्दोवे के मध्य में लटकती हुई रस्सी के वस्त्र को पकड़े हुई (उस कपड़े का सहारा लेती हुई) वैसे ही बाहुरूपी लता पर अपना मुख रख कर—जैसे निर्मल जल की धारा में उत्पन्न होने वाली कमलिनी पर पानी की टकराहट से काला होता हुआ लाल कमल रहता है—वह पत्थर पर खोदी गई सी चुपचाप बैठी रही। [जलधारा में कमलिनी के कमल के साथ चंदोवे के वस्त्रखण्ड थामे हुई बाहुलता पर रखे मुख का साम्य वर्णित है। अच्छी कल्पना है।]

उस [की उक्त बातों] को सुनकर मैं सोचने लगी—'सचमुच जो संकल्पमय प्रिय है वह वियोगिनी स्त्रियों के जीवन-धारण रखने का बहुत बड़ा सहारा और मन बहलाने का साधन है, विशेषरूप से उच्च कुल में उत्पन्न स्त्रियों के लिये, उनमें भी विशेषरूप से कुमारियों के लिये। इसे

---

१. यदुक्तसंकल्प।

तथा हि—अनेन सार्धमकृतदूतिकापादपतनदैन्यानि प्रतिक्षणं समागमशतान्यकालरमणीयानि स्वेच्छाभिसरणसौख्यान्यदूषितकन्यकाभावानि सुरतानि। सुरतेषु चाकृतस्तनव्यवधानदुःखान्यालिङ्गनानि, अजनितव्रणदर्शनव्रीडानि नखदन्तक्षतसुखानि, अनाकुलितकेशपाशाः कचग्रहमहोत्सवाः, शब्दविहीनानि निधुवनानि, अनुत्पादितगुरुजन-

अत्रत्या पदयोजना न सरला, पाठभेदेन तु सन्देहमपि जनयति। अत्रायमाशयः प्रतीयते यत् कादम्बर्या यस्य सङ्कल्पमयस्य प्रियस्य विषये उक्तं स सङ्कल्पमयः प्रियः वियोगिनीनां जीवनधारणे सहायको भवति, स एव तासां दुःखमपि अपहरति। यद्यपि सः सर्वासां कल्याणकृद् वर्तते परन्तु सत्कुलोत्पन्नानां मादृशीनां कुमारिकाणां तु स एव जीवनधारणसहायको मनोव्यथापहारकश्च वर्तते। इदं च लोके सर्वत्रानुभूयमानत्वात् सत्यमेव बोध्यम्।

पत्रलेखा स्ववचनानि समर्थयितुमाह—तथाहीत्यादिना। तथा हि = तच्च एवं बोध्यम्। अनेन = सङ्कल्पमयेन प्रियतमेन, सार्धम् = साकम्, अकृतेत्यादिः—अकृतानि (= अविहितानि) दूतिकायाः (= दूत्याः) पादयोः (= चरणयोः) पतनानि (= निपतनानि) एव दैन्यानि (= दीनताः) येभ्यः (= यदर्थम्) येषु वा तानि तादृशानि, प्रतिक्षणम् = क्षणे क्षणे, समागमशतानि = सम्मिलनशतानि, अगणितालिङ्गनानीति भावः। अथ च, अकालरमणीयानि—अकाले (= असमये) [अपीति शेषः] रमणीयानि (= हृद्यानि) [वास्तविक-प्रियतमेन सङ्गमादौ कालविशेषस्यापेक्षा, सङ्कल्पमयेन सह तु कदापि मिलनं सम्भवतीति तस्योत्कृष्टत्वम्।] स्वेच्छेत्यादिः—स्वेच्छया (= आत्मेहया) अभिसरणम् = अभिसारः, तेन जनितानि सौख्यानि (= सुखानि) येषु तानि। अदूषितेत्यादिः—अदूषितः (= दोषं न प्रापितः) कन्यकाभावः (= कन्यात्वम्) येषु तादृशानि, सुरतानि = मैथुनानि। सङ्कल्पमयेन सह सुरतादिसुखानुभवे जातेऽपि कस्याश्चिदपि कन्यात्वं न दूष्यते। लोके समाजे सा कन्यैव स्वीक्रियते इति भावः।

पुनरपि तस्योत्कृष्टत्वं वर्णयति—सुरतेष्विति। च = पुनरर्थे। सुरतेषु = सम्भोगेषु, अकृतेत्यादिः—अकृतम् (= न विहितम्) स्तनानाम् (= वक्षोजानाम्) व्यवधानम् (= व्यवधिः) तेन दुःखम् (= क्लेशः, पीडा) यैः तादृशानि, आलिङ्गनानि (= उपगूहनानि, आश्लेषाः)। अजनितेत्यादिः—अजनिता (= अनुत्पादिता) व्रणानाम् (= क्षतानाम्) दर्शनात् (= विलोकनात्) व्रीडा (= लज्जा) यैः तानि तादृशानि, नखेत्यादिः—नखाः (= नखराः) दन्ताः (= रदनाः) च तेषां समाहारः नखदन्तम् [प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः] तेन जातं यत् क्षतम् (= अल्पव्रणादिकम्) तस्मात् सुखानि (= आनन्दाः)। अनाकुलितेत्यादिः—अनाकुलितः (= न विशीर्णः, इतस्ततो विप्रकीर्णः) केशपाशः (= कचकलापः) येषु तादृशाः, कचेत्यादिः—कचानाम् (= कुन्तलानाम्, केशानाम्) ग्रहः (=ग्रहणम्, आकर्षणम्) एव महान्तः उत्सवाः (= महापर्वाणि)। शब्दविहीनानि= सीत्कारादिध्वनिरहितानि, निधुवनानि = सुरतक्रीडाः। अनुत्पादितेत्यादिः—'अनुत्पादितम् (=न

इस प्रकार से समझो—"दूतियों के पैरों पर गिरकर दीनता (गिड़गिड़ाहट) प्रकट किये बिना ही प्रतिक्षण सैकड़ों समागम (मिलन) [हो सकते हैं और] बिना समय के ही [जब चाहें तब] अच्छे लगने वाले, अपनी इच्छा से अभिसरण के आनन्द लिये जा सकते हैं और कन्यकात्व दूषित किये बिना सुरत हो सकते हैं। और रतिकाल में स्तनों के व्यवधान से रहित आलिङ्गन [होते हैं], नखक्षत तथा दन्तक्षत के सुख ऐसे होते हैं जिनमें व्रणों के दिखाई देने से उत्पन्न होने वाली लज्जा नहीं होती है, केशपाश को बिना बिखराये हुए केशग्रहण महोत्सव होते हैं, [सी-ही आदि किसी भी प्रकार के] शब्दों से रहित मैथुन होते हैं, अधरखण्डन (दान्तों से ओष्ठ का काटना) के विलास

विभावित-क्षत-वैलक्ष्याण्यधरखण्डनविलसितानि । नैनमन्धकारराशिरन्तरयति । न जलधरधारापातः स्थगयति । न नीहारनिकरस्तिरोदधाति ।' इत्येवं चिन्तयन्त्या एव मेऽनुरागकथारसप्लावेनेव रक्ततामगाद्दिवसः । तत्क्षणं प्रकटितरागं हृदयमिव कादम्बर्यास्त्रपया पलायमानमदृश्यत रविमण्डलम् । पल्लवशयनमिव संध्यारागमरच यद्-यामिनी । परिचारक इव चन्द्रमणिशिलातलतल्पमकल्पयत्प्रदोषः । अत्रान्तरे चागत्य स्वं

विहितम्) गुरुजनैः (= मातापित्रादिलोकैः) विभावितम् (= विज्ञातम्) क्षतम् (= व्रणादिकम्) तेन वैलक्ष्यम् (= लज्जा) येषु तानि तादृशानि, अधरेत्यादिः—अधरस्य (= ओष्ठस्य) खण्डनानि (= क्षतानि) एव विलसितानि (= क्रीडितानि) । एतेनेदं सुस्पष्टं यत् चन्द्रापीडेन सह सम्भोगे यत् किमपि लज्जाकरं कष्टकरञ्चं सम्भाव्यते तत्सर्वं सङ्कल्पमयेन प्रियतमेन सह न जायते । अतएव जीवामीति तद्भावः ।

पुनरपि तद्वैशिष्टयमेव वर्णयति—नैनमित्यादिना । एनम् = सङ्कल्पमयं प्रियतमम्, अन्धकारराशिः = तमसां समूहः, न = नैव, अन्तरयति = व्यवधत्ते, अन्धकारेषु अपि तद्दर्शन-सुलभात् । जलधरधारापातः = वारिद-जलासारः, न = नैव, स्थगयति = स्तम्भयति, आगमनं रुणद्धीति भावः । नीहारनिकरः = तुषारकणसमूहः, न = नैव, तिरोदधाति = आच्छादयति, नीहारसमूहेऽपि तद्दर्शनसम्भोगादिसुखप्राप्तिसम्भवादिति बोध्यम् ।

इत्येवमिति । इति एवम् = अनेन, पूर्ववर्णितरूपेण, चिन्तयन्त्याः = विचारयन्त्याः, एव, मे = मम, पत्रलेखायाः, अनुरागेत्यादिः—अनुरागस्य (= प्रेम्णः) कथा (= वार्ता) सा एव रसः (= आनन्दः) तेन तस्मिन् वा प्लावः (= प्लवनम्, मज्जनम्) तेन, इव, दिवसः = दिनम्, रक्तताम् = अरुणताम्, अगात् = अगच्छत्, प्राप्तवानिति भावः । सायङ्कालो जात इति तात्पर्यम् । तत्क्षणम् = तत्कालम्, यथा स्यात् तथा, प्रकटितरागम्—प्रकटितः (= प्रदर्शितः) रागः (= स्नेहः, रक्तिमा च) येन तादृशम्, कादम्बर्याः = गन्धर्वकन्यायाः, हृदयम् = चित्तम्, इव, त्रपया = लज्जया, पलायमानम् = पलायनं कुर्वत्, रविमण्डलम् = सूर्यबिम्बम्, अदृश्यत = विलोकितः, लोकैरिति शेषः । कादम्बर्याः हृदयरागापेक्षया स्वरागं न्यूनमालोकयत् रविमण्डलं पलायमानमिव लोकैर्वीक्षितमिति बोध्यम् । यामिनी = रात्रिः, सन्ध्यारागम् = सायंकालस्य लालिमानम्, पल्लवशयनम् = नवपल्लवनिर्मितशय्याम्, इव, अरचयत् = अकरोत् । प्रदोषः = निशामुखम्, परिचारकः = सेवकः, इव, चन्द्रेत्यादिः—चन्द्रम् (= शशिनम्) मणेः शिलातलम् (= मणिशिलाफलकम्) तल्पम् (=पर्यङ्कम्), अकल्पयत् = विरचितवाम् । अत्र चन्द्र एव चन्द्रकान्त-मणिशिलातलत्वेनोत्प्रेक्षितः ।

ऐसे होते हैं जिनमें क्षतों (व्रणों) को गुरुजनों द्वारा देख लेने पर लज्जा उत्पन्न नहीं होती है । इस (संकल्पमय प्रियतम) को अन्धकारसमूह [भी] नहीं छिपा पाता है, न बादलों की मूसलाधार वर्षा ही रोक पाती है और न घना कुहरे का समूह ही ढक पाता हैं—इस प्रकार से मेरे सोचते-सोचते ही दिन अनुराग कथा के रस में डूबने (नहाने) से मानों लाल-लाल हो गया था । उस राग (प्रेम, लालिमा) को व्यक्त किये हुए कादम्बरी के हृदय के समान सूर्यमण्डल लज्जा से भागता हुआ दिखाई देने लगा । रात्रि ने सन्ध्या की लाली को ऐसा बना दिया मानो पल्लवों की शय्या(बिस्तर) हो । प्रदोष काल ने सेवक के समान चन्द्रकान्तमणि के शिलातल को पलंग बना दिया था । इसी बीच में आकर अपने-अपने कर्तव्य में लग गईं दीपकधारिणी बालिकायें जिन्होंने सुगन्धित तेल में

स्वं नियोगमशून्यं कुर्वाणा दूरतो दीपिकाधारिण्यो गन्धतैलावसिक्तसुरभिगन्धोद्गारिणीभिर्दीपिकाभिर्विरचितचक्रवालिका बालिकाः पर्यवारयन्। अथ निर्मललावण्यलक्षितानि दीपिकाप्रतिबिम्बानि ज्वलितानि मदनसायकशल्यानीवाङ्गलग्नानि समुद्वहन्तीं नवनिरन्तरकलिकाचितां चम्पकलतामिव तथावस्थितां तां पुनर्व्यजिज्ञपम्—'देवि प्रसीद। नार्हस्यखेदार्हा हृदयखेदकारिणं संतापमङ्गीकर्तुम्। संहर मन्युवेगम्। एषाहमादाय चन्द्रापीडमाग-

---

अत्रेति। अत्रान्तरे = एतत्कालमध्ये च, आगत्य = समीपम् एत्य, स्वं स्वम् = निजं निजम्, नियोगम् = करणीयम्, आदिष्टं कर्मेत्यर्थः, अशून्यम् = परिपूर्णम्, कुर्वाणाः = विदधानाः, दीपिकाधारिण्यः = प्रदीपिकावाहिन्यः, गन्धेत्यादिः—गन्धतैलम् (= सुगन्धिततैलम्) तेन अवसिक्ताः (= सिञ्चिताः) अतएव सुरभिगन्धम् (= सुष्ठुगन्धम्) उद्गिरन्त्यः (= उद्वमन्त्यः, प्रसारयन्त्यः) इति ताभिः तादृशीभिः, दीपिकाभिः = लघुदीपैः, विरचितचक्रवालिकाः—विरचिताः (= विहिताः) चक्रवालिकाः (= मण्डलानि) याभिः ताः तादृश्यः, बालिकाः = कुमारिकाः सेविकाः, दूरतः = विप्रकृष्टात्, पर्यवारयन् = दूरीचक्रुः, अन्धकारमिति शेषम्। पर्यवारयन् इत्यस्य पर्यवेष्टन्त इत्यर्थे 'कादम्बरीमि'ति शेषो बोध्यः।

पत्रलेखा पुनः स्वकृत्यं वक्तुमारभते—अथेत्यादिना। अथ = दीपिकाधारिणीनां समागमनानन्तरम्, निर्मलेत्यादिः—निर्मलम् (= स्वच्छम्), यत् लावण्यम् (= कादम्बर्याः सौन्दर्यम्) तेन लक्षितानि (= ज्ञपितानि,, दृष्टानि) [दर्पणतुल्यदेहे प्रतिबिम्बितानीति भावः।] दीपिकाप्रतिबिम्बानि = लघुदीपप्रतिच्छायाः, ज्वलितानि = प्रदीपितानि, मदनसायकशल्यानि = कामदेवबाणाग्राणि, अङ्गलग्नानि = देहसक्तानि, इव समुद्वहन्तीम् = धारयन्तीम्। अतएव, नवेत्यादिः—नवाः (= नवीनाः) निरन्तराः (= घनाः) याः कलिकाः (= कोरकाणि) ताभिः, आचिताम् (= समन्ताद् व्याप्ताम्), ['चिताम्' इति पाठे, युक्तामिति सामान्योऽर्थः], चम्पकलताम् = चम्पकनाम्ना ख्यातां व्रततीविशेषाम्, इव, तथावस्थिताम् = पूर्वोक्तप्रकारेण मूर्तिवद्विद्यमानाम्, ताम् = कादम्बरीम्, अहं पत्रलेखा, पुनः = भूयः, व्यजिज्ञपम् = निवेदितवती। पत्रलेखानिवेदनं प्रकटयति—देवि! इत्यादिना। हे देवि! = हे राजकुमारि! प्रसीद = प्रसन्ना भव, अखेदार्हा—अर्हति (= योग्या भवति) इति अर्हा, न अर्हा = अनर्हा, खेदस्य (= क्लेशानुभवस्य) अनर्हा (= अयोग्या) त्वं कादम्बरि हृदयखेदकारिणम् = चित्तक्लेशजनकम्, सन्तापम् = अतिशयपीडाम्, अङ्गीकर्तुम् = स्वीकर्तुम्, अनुभवितुमिति भावः, न = नैव, अर्हसि = योग्या असि। मन्युवेगम् = क्रोधस्य क्षोभस्य वा रयम्, संहर = परित्यज। एषा = तव पुरोवर्तिनी, अहम् = पत्रलेखा, चन्द्रापीडम् = तव प्रियतमं राजकुमारम्, आदाय = स्वसार्धं नीत्वा, आगता = अत्र सम्प्राप्ता, एव, अहं त्वरितं तव प्रियतमं नीत्वा अत्र आगमिष्यामि, त्वं क्षणमेव प्रतीक्षां कुर्विति तद्भावः।

सींची (डुबोई) गई बत्तियों से सुगन्ध फैलाने वाली दीपिकाओं से मण्डल (घेरा) बना लिया था [उस कादम्बरी को] चारो ओर से घेर लिया। इसके बाद निर्मल लावण्य में दिखाई देने वाले दीपिकाओं के प्रतिबिम्ब जो मानो शरीर में लगे हुए कामदेव के बाणों की नोके हों, को धारण करती हुई वह नई कलियों से युक्त चम्पा की लता के समान लग रही थी, ऐसी उस प्रकार से बैठी हुई उस कादम्बरी से मैंने पुनः निवेदन किया—"देवि! प्रसन्न हो जाइये। खेद न करने के योग्य आपको हृदय को दुःख देने वाले सन्ताप नहीं करने चाहिए। अपने मन्यु (क्रोध या दुःख) के वेग को रोकिये। यह मैं चन्द्रापीड को लेकर आई (अभी आती हूँ)" इसके बाद आपके नाम से युक्त

तैव' इति । अथानेन देवनामग्रहणगर्भेण मद्वचसा विषापहरणमन्त्रेणेव विषमूर्च्छिता झटित्युन्मील्य नयने मामवलोक्य 'कः प्रदेशेऽस्मिन्' इति परिजनमपृच्छत् ।

अथ धवलवसनोल्लासितगात्रयष्टयः, द्वारप्रदेशसंपिण्डिताङ्गयः, परशुरामशरविवरविनिर्गता इव कलहंसपङ्क्तयः, कलहंसकलालापमधुररवैः प्रतिवाचमिव प्रयच्छद्भिर्नूपुरैः पतत्कर्णपूरपल्लवोल्लासितैश्चाज्ञाश्रवणाय धावद्भिरिव श्रवणैर्मौक्तिककुण्डलांशुजालकानि

अथेति । अथ = भवन्नामाकर्णनानन्तरम्, देवनामग्रहणगर्भेण—देवस्य (= भवतः, राजकुमारस्य) नामग्रहणम् (= नामोच्चारणम्) गर्भे (= मध्ये) यस्मिन् तेन तादृशेन, मद्वचसा = पत्रलेखावचनेन, विषमूर्च्छिता = गरलेन मूर्च्छामुपागता, स्त्री,इव, विषापहरणमन्त्रेण= गरलापहारकशब्दसमूहविशेषेण, झटिति = तत्कालम्, नयने = नेत्रे, उन्मील्य = उद्घाट्य, सस्पृहम् = स्पृहायुक्तं यथा स्यात् तथा, सोत्कण्ठमिति भावः, माम् = पत्रलेखाम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा, अस्मिन् = एतस्मिन्; प्रदेशे = स्थाने, कः = व्यक्तिविशेषः, वर्तते इति शेषः, इति = एवम्, परिजनम् = परिचारकम्, अपृच्छत् = पृष्टवती । अत्रोपमा स्पष्टा ।

कादम्बरीजिज्ञासानन्तरं किमभूदिति निरूपयितुमाह—अथेति । अथ = कादम्बरीवचनाकर्णनानन्तरम्, [अत्र प्रथमाबहुवचनान्तानि वक्ष्यमाणस्य 'कन्यका' इत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि ।] धवलेत्यादिः—धवलैः (= निर्मलैः श्वेतैः) वसनैः (= वस्त्रैः उल्लासिताः (=शोभां प्रापिताः, प्रकाशिताः) गात्रयष्टयः (= देहलतिकाः) यासां ताः तादृश्यः । द्वारेत्यादिः—द्वारप्रदेशे (= प्रतोलीस्थाने) सम्पिण्डितानि (= संकोचितानि) अङ्गानि (= देहावयवाः) याभिः ताः तादृश्यः । परशुरामेत्यादिः—परशुरामस्य (= जमदग्निपुत्रस्य) शरेण (= बाणेन) विहितो यो विवरः (= छिद्रम्) तस्माद् विनिर्गताः (= विनिःसृताः), कलहंसपंक्तयः = राजहंससमूहाः, इव अत्रोपमा । उत्प्रेक्षया वर्णयति—कलहंसेत्यादिः—कलहंसानाम् (=कादम्बानाम्) कलः (=मधुरः) यः रवः (= ध्वनिः) स इव मधुरः (= कर्णप्रियः) रवः (= ध्वनिः) येषां तैः प्रतिवाचम् = प्रतिवचनम्, प्रयच्छद्भिः = प्रददद्भिः, इव, नूपुरैः = मञ्जीरैः, उपलक्षिताः । पुनः कीदृश्यः ? पतत्कर्णेत्यादिः—पतन्तः (= भ्रश्यन्तः) ये कर्णपूरस्य (= श्रवणाभूषणस्य) पल्लवाः (=किसलयाः) तैः उल्लासितैः (= उद्भासितैः), आज्ञाश्रवणाय = कादम्बरीसमादेशाकर्णनाय, धावद्भिः = पलायमानैः, इव, श्रवणैः = कर्णैः, उपलक्षिताः । अत्रोत्प्रेक्षा । मौक्तिकेत्यादिः—मौक्तिकानि

मेरी वाणी से उसी प्रकार झटपट आखें खोल कर जिस प्रकार विष से मूर्छित स्त्री विष के अपहारक मन्त्र से आखें खोल देती है, उत्सुकता या लालसा के साथ मुझे देख कर नौकर से पूछा "यहाँ कौन है ।"

इसके बाद (उसकी आवाज सुनकर) बहुत सी कन्यायें (सेविकायें) [उसके पास] दौड़ पड़ीं जो (कन्यायें) श्वेत वस्त्र से सुशोभित शरीररूपी यष्टिवाली थीं, जिन्होंने [छोटे दरवाजे में प्रवेश करने के लिये] दरवाजे पर अपने अङ्गों को सिकोड़ लिया था, [इसलिये] परशुराम के बाण से छेद किये गये क्रौंच के बिवर से निकली हुई कलहंस की पङ्क्तियों जैसी थीं, कलहंसों की मधुर ध्वनि के समान ध्वनि करने वाले जिनके नूपुर [कादम्बरी के प्रश्न का] उत्तर सा दे रहे थे, जिनके गिरते हुए (झूलते हुए) कर्णपूर के पल्लवों से उल्लासित श्रवण ऐसे लग रहे थे मानो उसकी आज्ञा सुनने के लिये दौड़ रहे हों; मोतीजड़े कुण्डलों की किरणों का समूह (जो कन्धों पर गिर

स्कन्धदेशनिक्षिप्तानि चामराणीव बहन्त्यः, समाहतकपोलस्थलैः कुण्डलैर्बलादिव वाह्यमानाः, वाचालैः कर्णोत्पलमधुकरैः समाज्ञापयेति व्याहरन्त्यः कन्यकाः समधावन् । आज्ञाप्रतीक्षासु च मुखकमलावलोकिनीषु तासु क्रमेण दृष्टिं पातयन्ती स्निग्धामिन्दीवरस्रजमिव मरकतशिलातले न्यषीदत् । अब्रवीच्च—'पत्रलेखे, न खलु प्रियमिति ब्रवीमि । त्वामेव पश्यन्ती संधारयाम्येव जीवितमहम् । तथापि यद्ययं ते ग्रहस्तत्साधय समीहितम्'

(= मुक्ताफलखचितानि) यानि कुण्डलानि (= श्रवणाभरणानि) तेषाम् अंशुजालकानि (= किरणसमूहान्), स्कन्धदेशनिक्षिप्तानि = स्कन्धभागोपरिस्थापितानि, चामराणि = चामरबालव्यजनानि, इव, बहन्त्यः । तासां कुण्डलानि मुक्तामयानि आसन् तेषां किरणसमूहाः स्कन्धदेशे निपतन्तः सन्तः चामरवदवभासन्ते स्मेत्यर्थः । अत्राप्युत्प्रेक्षा । समाहतेत्यादिः—समाहतानि(=ताडितानि) कपोलस्थलानि (= गण्डस्थलानि) यैः तादृशैः कुण्डलैः = श्रवणाभूषणविशेषैः, बलात् = हठात्, वाह्यमानाः = अग्रे गमनाय प्रेर्यमाणाः, इव । वाचालैः = मुखरैः, शब्दायमानैः, कर्णोत्पलमधुकरैः = श्रवणकुवलयभ्रमरैः, समाज्ञापय = आज्ञां प्रदेहि, इति = एवम्, व्याहरन्त्यः = वदन्त्यः, इव, कन्यकाः = कुमारिकाः, समधावन् = सत्वरं तस्याः समीपमागनाय चेलुः । तासां कर्णोत्पलेषु स्थिताः भ्रमराः शब्दं कुर्वन्त एवं प्रतीयन्ते स्म यत् ते स्वामिनीं कादम्बरीं समादेशप्रदानाय प्रार्थयमाना आसन्निति भावः ।

आज्ञेति । आज्ञा (= समादेशः) तस्याः प्रतीक्षा (= प्रतीक्षणम्, परिपालनम्) यासां तासु तादृशीषु । मुखेत्यादिः—मुखकमलम् (= आननपद्मम्) अवलोकयन्ति (= पश्यन्ति) इति तासु तादृशीषु तासु = पूर्वोक्तासु कन्यकासु, स्निग्धाम् = स्नेहमयीम्, इन्दीवरस्रजम् = नीलकमलानां माल्यम्, इव, दृष्टिम् = दृशम्, नेत्रम्, क्रमेण = क्रमशः, क्षिपन्ती = पातयन्ती, मरकतशिलातले = हरितमणिविशेषस्य प्रस्तरखण्डे, न्यषीदत् = अतिष्ठत् । अत्रोपमा । अब्रवीत् = अबोचत् च ।

कादम्बरी किमब्रवीदिति वर्णयति—पत्रलेखे इत्यादिना । पत्रलेखे = एतन्नामिके सखि !, खलु = निश्चयेन, प्रियम् = मनोहरम्, इति = अस्मात् कारणात्, न = नैव, ब्रवीमि = कथयामि । मम वचनमाकर्ण्य त्वं प्रसन्ना भविष्यसीति नाहं कथयामि अपि तु सत्यमेव वदामीति तद्भावः । अहम् = कादम्बरी, त्वाम् = पत्रलेखाम्, एव, पश्यन्ती = विलोकयन्ती, न तु अन्यं कमपि जनमिति शेषः, जीवितम् = प्राणान्, संधारयामि = धारणं करोमि, जीवामीति भावः, एव, केवलं श्वासधारणं करोमीति तद्भावः, न तु अन्यत् कर्तुं मे मनसीच्छा वर्तते । तथापि = एवं स्थितावपि, यदि = चेत्, ते = तव, पत्रलेखायाः, अयम् = त्वयोक्तः, ग्रहः = आग्रहः, यदि त्वं चन्द्रापीडमत्रानेतुमाग्रहं करोषि इति भावः, तत् = तर्हि, समीहितम् = अभीष्टम्, साधय = सम्पादय, स्वेच्छानुकूलं यत्

रहा था) से ऐसी लग रही थी मानों कन्धों पर चामरों को रखे हुई हों; कपोलस्थल पर टक्कर मारने वाले कुण्डलों द्वारा जिन्हें बलपूर्वक आगे बढ़ाया जा रहा था; और आवाज करने वाले कर्णोत्पल में स्थित भौंरों के माध्यम से 'आज्ञा दीजिए'—ऐसा जो कह रही थी । [कादम्बरी की] आज्ञा की प्रतीक्षा करने वाली, और [उसके] मुखकमल को निहारने (देखने) वाली उन कन्याओं पर क्रमशः स्नेहमयी इन्दीवर की माला के समान दृष्टि डालती हुई (उन्हें स्नेहभाव से देखती हुई) वह मरकत मणि के शिलातल पर बैठ गई । और कहने लगी—"पत्रलेखा ! तुम्हें अच्छा लग रहा है इसलिये नहीं कह रही हूँ अर्थात् तुम्हें खुश करने के लिये यह नहीं कह रही हूँ । सत्य तो यह है कि तुम्हें देखकर ही अब जीवन-धारण किये हुई हूँ । फिर भी यदि तुम्हारा आग्रह [चन्द्रापीड के पास जाकर वापस लाने का ही] है तो तुम अपने मन की इच्छा भी पूरी कर लो ।" ऐसा कह कर

इत्यभिधायाङ्गस्पृष्टनिवसनाभरणताम्बूलप्रदानप्रदर्शितप्रसादातिशयां मां व्यसर्जयत् ।'

इत्यावेद्य च किंचिदिव नमितमुखी शनैः पुनर्व्यजिज्ञपत्—'देव प्रत्यग्रदेवीप्रसादातिशयाहितप्रागल्भ्या दुःखिता च विज्ञापयामि । 'देवेनाप्येतदवस्थां देवीं दूरीकुर्वता किमिदमापन्नवत्सलायाः स्वप्रकृतेरनुरूपं कृतम्' इति । चन्द्रापीडस्तु तथोपालम्भगर्भं विज्ञप्तः पत्रलेखया तं च कादम्बर्याः स्नेहोक्तिपुरःसरं गम्भीरं च [1]सतापं च सपरिहासं च

किमपि कुर्वित्यर्थः । इति = एवम्, अभिधाय = उक्त्वा, अङ्गेत्यादिः अङ्गैः (= अवयवैः) स्पृष्टानि (= लग्नानि) यानि निवसनानि (= वस्त्राणि) आभरणानि (= आभूषणानि) ताम्बूलानि (= नागवल्लीदलानि) च एतेषां प्रदानेन (= समर्पणेन) प्रदर्शितः (= प्रकटितः) प्रसादस्य (= प्रसन्नताया) अतिशयः (= आधिक्यम्) यस्यां तां तादृशीम्, माम् = पत्रलेखाम्, व्यसर्जयत् = तव समीपं प्रेषितवती ।

इतीति । इति = पूर्वोक्तप्रकारेण, च, आवेद्य = निवेदनं कृत्वा, किञ्चिदिव = ईषदिव, नमितमुखी—नमितम् (= नीचैर्विहितम्) मुखम् (= आननम्) यया सा तादृशी, पत्रलेखा शनैः = मन्दं मन्दम्, पुनः = भूयः, व्यजिज्ञपत् = विज्ञापितवती, निवेदयामासेति भावः । देव != स्वामिन् !, प्रत्यग्रेत्यादिः—प्रत्यग्रः (= नवीनः, सद्य एव विहितः) यो देव्याः (= गन्धर्वराजकुमार्याः कादम्बर्याः) प्रसादस्य (= प्रसन्नतायाः) अतिशयः (= अतिरेकः, आधिक्यम्) तेन आहितम् (= स्थापितम्, आरोपितम्) प्रागल्भ्यम् (= धृष्टता) यस्या सा तादृशी, दुःखिता = कादम्बरीदुःखेन खिन्ना च सती, विज्ञापयामि = विज्ञप्तिं करोमि, सूचयामीति भावः । विज्ञप्तिं वर्णयति—देवेन = स्वामिना, राजकुमारेण, अपि, एतदवस्थाम्—एषा (= मयोक्ता) अवस्था (= स्थितिः, दशा) यस्याः सा तां तादृशीम् । देवीम् = गन्धर्वराजकुमारीं कादम्बरीम्, दूरीकुर्वता= वियोगं प्रापयता, परित्यजता, किम् = प्रश्ने, इदम् = दूरीकरणरूपकृत्यम्, आपन्नवत्सलायाः—आपन्नेषु (= शरणागतेषु) वत्सलायाः (= स्नेहकारिण्याः) शरणसमागत-कृपाविधायिन्याः, स्वप्रकृतेः = निजस्वभावस्य, अनुरूपम् = योग्यम्,कृतम् = विहितम् ? नैव कृतमिति तत्तात्पर्यम् ।

चन्द्रापीडस्य प्रतिक्रियामुपवर्णयति—चन्द्रापीडस्त्वित्यादिना । चन्द्रापीडः = राजकुमारः, तु, पत्रलेखया = एतन्नाम्न्या कादम्बरीसकाशादागतया स्वपरिचारिकया, तथा तेन प्रकारेण, उपालम्भगर्भम्—उपालम्भः (= समालोचनादिः) गर्भे (= मध्ये) यस्मिन् तत् तथा स्यात् तथा, सोपालम्भमिति भावः, विज्ञप्तः = संसूचितः, कथितः । कादम्बर्याः =स्वप्रेयस्याः, च, तम् = पत्रलेखयोक्तम् [अत्र द्वितीयान्तपदानि 'आलापम्, इत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि । एतच्च 'आकर्ण्य' इत्यत्रान्वेतीति बोध्यम्]। आलापविशेषणानि विस्तरेण वर्णयति—स्नेहोक्तिपुरस्सरम्—स्नेहस्य (= प्रेम्णः) उक्तिः (= वचनम्) पुरस्सरा (= प्रमुखा, पूर्वा वा) यस्मिन् तं तादृशम् [अत्र 'च' शब्दाः वाक्यालङ्कारे प्रयुक्ताः] च = तथा, गम्भीरम् = गाम्भीर्ययुक्तम् । सतापम् =

अपने अंगों से छुआ कर (स्पर्श करा कर) वस्त्र, आभूषण और ताम्बूल के देने के माध्यम से प्रदर्शित की गई विशेष कृपा वाली मुझे बिदा किया ।''

ऐसा निवेदन करके मुख को कुछ नीचे झुकाये हुई वह फिर धीरे से निवेदन करने लगी—"स्वामी ! देवी कादम्बरी द्वारा अभी-अभी (ताजी) विशेष कृपा के कारण ढीठ बन गई और दुःखी हो रही मैं आपसे निवेदन कर रही हूँ (= पूंछ रही हूँ)—"क्या स्वामी ने भी उस प्रकार की दशा वाली कादम्बरी को छोड़ते हुए शरण में आये हुये पर बत्सलता दिखाने वाली (शरणागत-परिपालनकर्त्री) अपनी प्रकृति के योग्य आचरण किया है ? [अर्थात् उस विरहातुरा

---

१. ससन्तापं ।

साभ्यर्थनं च साभिमानं च सावहेलं च सप्रसादं च सनिर्वेदं च सानुरागं च सार्तिविशेषं च सावष्टम्भं च सकोपं च सात्मार्पणं च ससद्भावं च सोत्प्रासं च सोपालम्भं च सानुक्रोशं च सस्पृहं च सावधारणं च मधुरमपि दुःश्रवं सरसमपि शोषहेतुं कोमलमपि कठोरं नम्रमप्युन्नतं पेशलमप्यहंकृतं ललितमपि प्रौढमालापमाकर्ण्योत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्य

सन्तापविशिष्टम्, सपरिहासम् = परिहासेन सह विद्यमानम्, साभ्यर्थनम् = प्रार्थनया युक्तम्, च। साभिमानम् = आत्मसम्मानेन अहङ्कारेण वा सहितम्, च। सावहेलम् = तिरस्कारयुक्तम्, ['सावलेहम्' इति पाठे 'अवलेहः रसः तेन सहितमित्यर्थो बोध्यः] सप्रसादम् = प्रसन्नतया अनुग्रहेण वा सहितम् च। सनिर्वेदम् = स्वावमननासहितम् सखेदं वा। सानुरागम् = स्नेहयुक्तम्, सार्तिविशेषम्—आर्तिः (= मानसीव्यथा) तस्याः विशेषः (= अतिशयः) तेन सहितम्। सावष्टम्भम् = अवष्टम्भः (= स्तब्धता) तेन सहितम्। सकोपम् = क्रोधसहितम्। सात्मार्पणम् = स्वसमर्पणसहितम्। ससद्भावम्—सद्भावः (= सौजन्यम्) तेन सहितम्। सोत्प्रासम्—उत्प्रासः (= उत्कण्ठा) तेन सहितम्। सोपालम्भम् = उपालम्भसहितम्। सानुक्रोशम्—अनुक्रोशः (= अमर्षः, करुणा वा) तेन सहितम्। सस्पृहम् = साभिलाषम्। सावधारणम् = निश्चयसहितम्, विमर्शयुक्तं वा। विरोधाभासेन वर्णयति—मधुरम् = मिष्टम्, अपि, दुःश्रवम् = दुःखेन समाकर्णनयोग्यम्, अत्र विरोधः, परिहारस्तु—माधुर्यगुणयुक्तम् इत्यर्थः। सरसम् = रसेन सह वर्तमानम्, अपि, शोषहेतुम् = सन्तापकारणम्, अत्र विरोधः, परिहारस्तु—शृङ्गारादिरसपरिपूर्णम् इत्यर्थः। कोमलम् = मार्दवयुक्तम्, अपि, कठोरम् = कठोरतापरिपूर्णम्, विरोधः, परिहारस्तु—कोमलम् = अकठोराक्षरम् इत्यर्थः। नम्रम् = विनतम्, अपि, उन्नतम् = उच्चैस्तरम्, अत्र विरोधः, परिहारस्तु—नम्रम् = विनययुक्तम् इत्यर्थः। पेशलम् = सुकुमारम्, अपि अहंकृतम् = अहंकारसहितम्, विरोधः, परिहारस्तु—पेशलम् = हृद्यम् इत्यर्थः। ललितम् = मृदु लघु, अपि, प्रौढम् = प्रौढियुक्तम्, विरोधः, परिहारस्तु ललितम् = सुकोमलबन्धम्—इत्यर्थः। विशेष्यमाह—आलापम् = वार्ताम्, उभयोः तयोर्मध्ये जातं वार्तालापमिति भावः। आकर्ण्य = श्रुत्वा। स्तिमितपक्ष्मतया स्तिमिते (= निश्चले, स्तब्धे) पक्ष्मणी (= नेत्ररोमपङ्क्ती) ययोस्तयोर्भावस्तत्ता तया, निर्निमेषतयेत्यर्थः। दुर्विषहेत्यादिः—दुर्विषहम् (= सुदुःसहम्) यद् दुःखम् (= पीडा) तेन यो वाष्पः (= अश्रुजलम्) तेन उपप्लुते (= परिव्याप्ते) आयते (= विशाले) अक्षिणी (= नेत्रे) यस्मिन् तत् तादृशम्, तन्मुखम् = तस्याः कादम्बर्याः मुखम्, उत्प्रेक्ष्य उत्प्रेक्ष्य = बारं बारं सम्भावनां कृत्वा,कादम्बर्याः पत्रलेखोक्तमाननं पुनः पुनः चिन्तयित्वेति भावः। यद्वा—तन्मुखम् =

का परित्याग कर अपने शरणागतपालन स्वभाव को ही छोड़ दिया है।]'' इस प्रकार के उलाहने भरे हुए पत्रलेखा के कथन को सुनने वाला चन्द्रापीड, कादम्बरी के—स्नेहवचन-पूर्वक, गम्भीर, सन्तापयुक्त, परिहासयुक्त, प्रार्थनापूर्ण, अभिमान से भरा, अवहेलनायुक्त, प्रसादयुक्त, खेदयुक्त, अनुरागयुक्त, पीड़ायुक्त, स्तब्धतायुक्त, क्रोधयुक्त, आत्मसमर्पणयुक्त, सद्भावपूर्ण, उत्कण्ठायुक्त, उलाहना युक्त, आक्रोशयुक्त, स्पृहायुक्त, तथा अवधारणयुक्त (विचारपूर्ण), मधुर होता हुआ भी दुःश्रव (सुनने में कष्टकारक), सरस होता हुआ भी [शरीर को] सुखाने का निमित्त, कोमल होता हुआ भी कठोर, नम्र होता हुआ भी, उद्धत, मधुर होता हुआ भी अहंकार भरा, ललित होता हुआ भी प्रौढ—आलाप (वक्तव्य) को सुन कर, तथा निश्चल पलकों वाली होने के कारण असहनीय दुःख के

च स्तिमितपक्ष्मतया दुर्विषहदुःखबाष्पोप्लुतायताक्षं तन्मुखं स्वभावधीरप्रकृतिरपि नितरां पर्याकुलोऽभवत् ।

अथ कादम्बरीशरीरादिवालापपदैरेव सहागत्य युगपद्गृहीतो हृदये मन्युना कण्ठे जीवितेनाधरपल्लवे वेपथुना मुखे श्वसितेन नासाग्रे स्फुरितेन चक्षुषि च बाष्पेण च तुल्यवृत्तिर्भूत्वा कादम्बर्याः क्षरद्बाष्पविक्षेपपर्याकुलाक्षरमुच्चैः प्रत्युवाच—'पत्रलेखे किं करोमि ? अनेन दुरात्मना दुःशिक्षितेन ज्ञानाभिमानिना पण्डितम्मन्येन दुर्विदग्धेन दुर्बुद्धिनालीकधीरेण

पत्रलेखायाः मुखम्, उत्प्रेक्ष्य उत्प्रेक्ष्य = पुनः पुनरवलोक्य इत्यर्थः । अयमेव च प्रासङ्गिकोऽर्थः, कादम्बरी-दशावर्णनकाले पत्रलेखाया एव तादृशावस्थायाः सम्भवादिति बोध्यम् । स्वभावेत्यादिः—स्वभावेन (= निसर्गेण) धीरा (= गम्भीरा) प्रकृतिः (= स्वभावः) यस्य सः तादृशः सन्नपि राजकुमारः, पर्याकुलः = अतीवव्यग्रः, अभवत् = अभूत् । कादम्बरीदशाश्रवणेन कुमारस्य धैर्यं भग्नमभूदिति भावः ।

अथेति । अथ = पर्याकुलतानन्तरम्, कादम्बरीशरीरात् = कादम्बरीदेहाद्, इव, आलापपदैः = दुःखाभिव्यञ्जकशब्दैः, एव, सह = सार्धम्, आगत्य = आव्रज्य, आगमनं विधाय, युगपत् = एककालमेव, हृदये = चित्ते, मन्युना = क्रोधेन, दुःखेन वा, गृहीतः = धृतः, चन्द्रापीडः, 'गृहीतः' इति क्रियापदं सर्वत्र योज्यम् ।] कण्ठे = गलप्रदेशे, जीवितेन = प्राणैः, गृहीतः । अधरपल्लवे = ओष्ठकिसलये, वेपथुना = कम्पेन, गृहीतः । मुखे = आनने, श्वसितेन = दीर्घनिःश्वासैः, गृहीतः । नासाग्रे = नासिकाग्रभागे, स्फुटितेन = स्फुरणेन, गृहीतः । चक्षुषि = नेत्रे, च, वाष्पेण = अश्रुजलेन, गृहीतः सन् अतएव, कादम्बर्याः = स्वप्रेयस्याः, तुल्यवृत्तिः = तुल्या (= समाना) वृत्तिः (= व्यवहारः) यस्य स तादृशः, भूत्वा = सम्पद्य, चन्द्रापीडः, क्षरदित्यादिः—क्षरन् (= स्रवन्, निःसरन्) यो वाष्पः (= अश्रुजलम्) तस्य विक्षेपः (= इतस्ततः पातनम्) तेन पर्याकुलानि (= अव्यवस्थानि, गद्गदानि, व्याप्तानि) अक्षराणि (= शब्दाः, अव्यक्तध्वनयः) यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा, उच्चैः = तारस्वरेण, प्रत्युवाच = प्रत्यब्रवीत्, पत्रलेखामिति शेषः । किं प्रत्युवाचेति वर्णयति—पत्रलेखे ! = सम्बोधनमिदम्, किं करोमि ? = विदधामि, इदं ज्ञातुं न शक्नोमीति तद्भावः । [तृतीयान्तानि पदानि 'मूढहृदयेन' इत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि ।] दुरात्मना = दुष्टस्वभावेन, दुःशिक्षितेन = दुष्टम् (= दोषयुक्तम्) शिक्षितम् (= शिक्षणम्) यस्य तत् तेन तादृशेन, तथापि, ज्ञानाभिमानिना—ज्ञाने (= ज्ञानविषये) अभिमानः (= अहङ्कारः दर्पः) अस्ति अस्य तेन तादृशेन । पण्डितम्मन्येन—पण्डितम् आत्मानं मन्यते यत् तेन तादृशेन । अश्रद्दधानेन = विश्वासमकुर्वता, दुर्विदग्धेन—दुर् (= दुष्टम्) विदग्धत्वम् (= चातुर्यम्)

आंसुओं से डबडबाई हुई विशाल आखों वाली उस कादम्बरी के मुख की बार-बार सम्भावना (कल्पना) करके वह स्वभावतः धीर प्रकृतिवाला होता हुआ भी अत्यन्त व्याकुल हो उठा ।

इसके बाद [पत्रलेखा द्वारा कहे गये] शब्दों के साथ-साथ मानों कादम्बरी के शरीर से आकर (निकल कर) दुःख ने हृदय पर, जीवन (प्राणों) ने कण्ठ पर, कम्पन ने अधर-पल्लव पर, श्वास ने मुख पर, स्फुरण (फड़कन) ने नाक के छोर पर, आँसू ने आँख पर, अधिकार कर लिया, अतः कादम्बरी के समान दशा वाले होकर चन्द्रापीड ने गिरते हुए आँसुओं से व्याकुल अक्षरों अर्थात् गद्गद स्वर में जोर से उत्तर दिया—"पत्रलेखा ! मैं क्या करूँ ? यह दुष्ट, दुःशिक्षित, ज्ञान का अभिमानी, अपने को पण्डित मानने वाला, दुष्कर्म में चतुर, दुष्ट बुद्धि वाला, झूठमूठ का धीर,

[1]स्वयंकृतमिथ्याविकल्पशतसहस्रभरितेनाश्रद्दधानेन मूढहृदयेन यद्यदेवानेकप्रकारं शृङ्गार-नृत्ताचार्येण भगवता मनोभवेनान्तर्गतविकारावेदनाय मामुद्दिश्य बाला बलात्कार्यते तत्त-देवादृष्टपूर्वत्वाद्दिव्यकन्यकानां रूपानुरूपलीलासम्भावनया च तावतो मनोरथस्याप्यात्मन उपर्यसम्भावनया च सर्वं सहजमेवैतदस्या इति विकल्पसंशयदोलाधिरूढं मां ग्राहयतैवमी-

यस्य अस्ति तेन तथा। दुर्बुद्धिना—दुर् (= दुष्टा) बुद्धिः (= मतिः) यस्य तेन तादृशेन। अलीकधीरेण = मिथ्याधैर्यगुणोपेतेन। स्वयंकृतेत्यादि—स्वयम् (= आत्मना) कृताः (विहिताः) ये मिथ्या (= अवास्तविकाः) विकल्पाः (= नानाप्रकारकल्पाः मनोरथादयः) तेषां शतसहस्रैः (= लक्षैः) भरितेन (= व्याप्तेन), नानाविधमनोरथकल्पना-परिपूर्णेनेति भावः। अनेन = एतेन, मदीयेन, मूढहृदयेन = मूर्खचित्तेन (प्रयोज्यकर्त्रा)। प्रयोजकर्तारमाह—शृङ्गारनृत्ता-चार्येण—शृङ्गारस्य (= कामकलायाः) नृत्यस्य (= हावभावसूचकशारीरक-व्यापारविशेषस्य) आचार्येण (= शिक्षकेण)। भगवता = माहात्म्यवता, मनोभवेन = कामदेवेन, अन्तर्गतेत्यादिः—अन्तर्गताः (= मनसि विद्यमानाः) ये विकाराः (= कामप्रभावजन्यावस्थाः) तेषाम् आवेदनाय (= सूचनाय, प्रकटनाय), माम् = चन्द्रापीडम्, उद्दिश्य = लक्ष्यीकृत्य बाला = कुमारी कादम्बरी, बलात् = हठात्, यद्यद् एव = अनुभूयमानम्, अवर्णनीयम्, अनेकप्रकारम् = नानाविधम्, कार्यते = विधातुं प्रेर्यते। तत्तद् एव = परितापक्रोधादिकम् दिव्यकन्यकानाम् = गन्धर्वलोकोत्पन्नकुमारीणाम्, अदृष्टपूर्वत्वात्—न पूर्वं दृष्टाः (= अवलोकिताः) तासां भावस्तस्मात्, अनवलोकितपूर्वत्वात्, कादम्बरीदर्शनात् प्राक् कदापि दिव्यकन्या नावलोकितास्तस्माद्धेतोः। तासाम्, रूपेत्यादिः—रूपस्य (= सौन्दर्यस्य) अनुरूपाः (= योग्याः) लीलाविलासाः (= हाव-भावादयः) तेषां सम्भावना (= उत्कटैककोटिक-संशयः) तया, च। तावतः = तत्परिमाणवतः मनोरथस्य = अभिलाषस्य, अपि, आत्मनः = स्वस्य, उपरि = विषये, असम्भावनया = असम्भा-व्यतया, अकल्पनयेति भावः, सा कादम्बरी मामभिलषतीति कल्पनापि मम मनसि नासीदिति तद्भावः। एभिः हेतुभिः, अस्याः = कादम्बर्याः, एतत् = प्रदर्श्यमानम्, सर्वम् = सकलम्, सहजम् = स्वाभाविकम्, एव न तु मामुद्दिश्य तस्या जायन्ते इति भावः, इति = अनेन प्रकारेण, विकल्पे-त्यादिः—विकल्पः (= विविधकल्पः) संशयः (= सन्देहः) च तयोः दोलाम् (= प्रेङ्खाम्) अधिरूढम् (= समारूढम्, उभयमध्यपतितमिति भावः), माम् = चन्द्रापीडम्, ग्राहयता =

अपने आप किये गये लाखों संकल्प-विकल्पों से भरा हुआ, श्रद्धा न करने वाला, मूढ हृदय वाला, शृङ्गार और नृत्त का आचार्य कामदेव है उसके द्वारा [कादम्बरी के] आन्तरिक (मन में उत्पन्न) विकारों को सूचित करने के लिये मुझको उद्देश्य बना कर उस बालिका कादम्बरी द्वारा जो कुछ भी अनेक प्रकार के कार्य बलपूर्वक करवाये जा रहे हैं, उन सभी को—(दिव्या कन्याओं को) इससे पहले कभी न देखने के कारण और दिव्य कन्याओं के रूप के योग्य लीलाओं की सम्भावना के कारण और इतने बड़े मनोरथ की अपने विषय में सम्भावना न करने के कारण वह सभी कुछ उस कादम्बरी के स्वाभाविक ही हैं—इस प्रकार के विकल्प और संशय के झूले में मुझ को झुलानेवाले कामदेव ने मुझे देवी कादम्बरी के इस प्रकार के दुःख का और तुम्हारे उलाहने का कारण बना दिया है। [भाव यह है कि दुष्ट कामदेव ने उस कादम्बरी से मेरे विषय में जो-जो कार्य करवा कर आन्तरिक भाव व्यक्त करवाये उन्हें मैं उसकी स्वाभाविक क्रियायें समझता रहा क्योंकि दिव्य कन्याओं को न पहले कभी देखा था और न मेरे

१. स्वकृत०।

दृशस्य देव्या दुःखस्य तव चोपालम्भस्य हेतुतां नीतोऽस्मि। मन्ये च ममापि मनोव्यामोहकारी कोपि शाप एवायम्। अन्यथाऽप्रबुद्धबुद्धेरपि येषु न सन्देह उपपद्यते तेष्वपि स्फुटेषु मदनचिह्नेषु कथं मे धीर्व्यामुह्येत। तिष्ठन्त्वेव तावदतिसूक्ष्मतया दुर्विभाववृत्तीनि तानि स्मितावलोकितकथितविहृतलीलालज्जायितानि यान्यन्यथापि सम्भवन्ति। चिरानुभूतात्मकण्ठसंसर्गसुभगं हारमिममकृतपुण्यस्य मे तत्क्षणमेव कण्ठे कारयन्त्या किमिव

बोधयता (मूढहृदयेन), एवम् = अनेन प्रकारेण, देव्याः = कादम्बर्याः, ईदृशस्य = एतत्प्रकारस्य, दुःखस्य = क्लेशस्य, तव = पत्रलेखायाः, उपालम्भस्य = आक्रोशाभिव्यञ्जकशब्दप्रयोगस्य, हेतुताम् = कारणताम्, नीतः = प्रापितः, अस्मि = वर्ते। एवञ्च यत्किमपि अद्यावधि जातं तस्मिन् मम मूढं हृदयमेव दोषभाक्, न त्वहमिति तद्भावः। हेत्वन्तरमपि प्रकटयति—मन्ये = मन्वे, सम्भावयामि। मम = चन्द्रापीडस्य, अपि, मनोव्यामोहकारी = चित्तविक्षेपकर्त्ता, कोपि = अनिर्वचनीयः, अयम् = एषः, शापः = दुराशीर्वचनम् एव, अन्यथा मम बुद्धेर्व्यामोहाप्रसङ्गादिति तद्भावः। स्वोक्तिं द्रढयति—अन्यथा = एतद्वैपरीत्ये, येषु = कामजन्य-विकारेषु, अप्रबुद्धबुद्धेः = मन्दमतेः, अपि, सन्देहः = संशयः, न = नैव, उपपद्यते = उपपन्नो भवति, जायते इति भावः, तेषु, स्फुटेषु = व्यक्तेषु, अपि, मदनचिह्नेषु = कामलक्षणेषु, मे = मम, सुबुद्धेरिति शेषः, धीः = मतिः, कथम् = केन कारणेन, व्यामुह्येत = व्यामोहं प्राप्नुयात्, न कथमपीति तद्भावः।

स्वोक्तिमेव समर्थयितुमाह—तिष्ठन्त्वेवेति। तावत् = इदानीमित्यर्थे, अतिसूक्ष्मतया = बहुधिकसूक्ष्मत्वात्, दुर्विभाववृत्तीनि—दुःखेन (= क्लेशेन) विभावयितुम् (= ज्ञातुम्) शक्या वृत्तिः (= वर्तनम्) येषां तानि तादृशानि, तानि = कादम्बर्याः यथावलोकितानि, स्मितेत्यादिः—स्मितम् (= ईषद् हास्यम्) अवलोकितम् (= सस्पृहवीक्षणम्) कथितम् (= भाषितम्) विहृतम् (= विलासपूर्वकम्), लज्जायितम् (= त्रपयाचरितम्)—एतानि तानि, तिष्ठन्तु = दूरे सन्तु, यतो हि तानि = पूर्वोक्तानि एतानि, अन्यथापि = स्नेहाभावेऽपि, सम्भवन्ति = उपपद्यन्ते। पूर्वोक्तानि आचरणानि तु नानिवार्यतया कामावस्थायामेव दृश्यन्ते, अन्यावस्थास्वपि एतेषामनुभवात् दर्शनाच्चेति भावः। परन्तु, चिरेत्यादिः—चिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, अनुभूतः (= सम्प्राप्तः) आत्मनः (= कादम्बर्याः) कण्ठसंसर्गं (= गलप्रदेशसम्पर्कः) तेन सुभगम्

मन में सम्भावना थी कि वह कादम्बरी मुझे चाह सकती है। इसलिये यहाँ सारा दोष कामदेव का ही है जो मुझे निमित्त बना कर कादम्बरी को दुःख दे रहा है।] मैं सोचता हूँ कि मेरे भी मन को मोह लेने वाला (भ्रान्त कर देने वाला) कोई यह शाप ही [लगा हुआ] था। यदि ऐसा नहीं होता तो जिन (कामभाव-जनित चिह्नों) में साधारण बुद्धि वाले व्यक्ति को भी सन्देह नहीं होता है ऐसे उन अत्यन्त स्पष्ट कामचिह्नों में भी मेरी बुद्धि का मोह (चक्कर खाना) नहीं होना चाहिए था। अत्यन्त सूक्ष्मता से समझी जा सकने वाली बातें जैसे कि—मुस्कराहट, देखना, बातें करना, विहार, लीला और लज्जा करना आदि [अथवा मुस्करा कर देखना आदि] दूर रहें, छोड़ भी दी जायें क्योंकि ये (क्रियायें) तो अन्य भाव (कारण) से भी हो सकती हैं। परन्तु (कादम्बरी ने) बहुत लम्बे समय तक अपने गले के संसर्ग से भाग्यशाली अर्थात् गले में पहनने के कारण भाग्यवान् इस (मणिमय) हार को उसी समय [तत्काल अपने गले से उतार कर] इस अभागे के गले में पहनाते हुये क्या नहीं कह दिया था? अर्थात् सभी कुछ सूचित कर दिया था। और फिर हिमगृह में

नावेदितम्। अपि च हिमगृहकवृत्तान्तस्तु तवापि प्रत्यक्ष एव। तत्किमत्र प्रणयकोपाक्षिप्तयाप्यन्यथा व्याहृतं देव्या। सर्वं एवायं विपर्ययान्मम दोषः। तदधुना प्राणैरप्युपयुज्यमानस्तथा करोमि यथा नेदृशमेकान्तनिष्ठुरहृदयं जानाति मां देवी।' इत्येवं वदत्येव चन्द्रापीडेऽश्राविंतैव प्रविश्य वेत्रहस्ता प्रतीहारी कृतप्रणामा व्यज्ञापयत्—'युवराज, एवं देवी विलासवती समादिशति—कृतजल्पात्परिजनतः श्रुतं मया यथा किल पृष्ठतः स्थिताद्य पत्रलेखात्र

(=मनोहरम्, भाग्यशालिनम्), इमम् = प्रत्यक्षं वर्तमानम् हारम्=मुक्ताहारम्, अकृतपुण्यस्य=अनाचारितपुण्यस्य, मे = चन्द्रापीडस्य कण्ठे = गलप्रदेशे, तत्क्षणमेव = तत्कालमेव, कारयन्त्या = पातयन्त्या, परिधापयन्त्या, कादम्बर्येति शेषः, किमिव, न = नैव, आवेदितम् = सूचितम्, सर्वमेव स्वाभिलषितं सम्यगेव प्रकटितमिति भावः।

अपि चेति। अपि च = अन्यच्च। हिमगृहकवृत्तान्तः = एतन्नामकशीतलस्थानविशेषस्य घटना, तु, तव = पत्रलेखायाः, अपि, प्रत्यक्षः = साक्षात् दृष्टः, एव। तद्विषये तु मया न किमपि अधिकं वक्तव्यमिति भावः। तत् = तस्मात् हेतोः, अत्र = अस्मिन् सन्दर्भे, प्रणयेत्यादि—प्रणयः (= स्नेहो मयीति शेष) तस्मात् कृतः कोपः (= क्रोधः) तेन आक्षिप्तया (= व्याकुलया) अपि, देव्या = कादम्बर्या, अन्यथा = विपरीतम्, अनुचितम्, किम्, व्याहृतम् = कथितम्, 'तदलं तदानयनकथया' इत्यादिकं पूर्ववर्णितं तस्याः कथनं सर्वथा समीचीनमेवेति तद्भावः। अयम्=अधुनावधि सञ्जातः, सर्वः = सकलः, एव, विपर्ययात् = अज्ञानाद्, मम = मे चन्द्रापीडस्य, दोषः=दूषणम्, अपराधः।

स्वानुष्ठेयं प्रकटयति—तदधुनेति। तत् = तस्मात्कारणात्, अधुना = इदानीम्, प्राणैः = जीवितेन, अपि, उपयुज्यमानः = तस्या अभीष्टं सम्पादयन्, तथा = तेन प्रकारेण, करोमि = विदधामि, यथा = येन प्रकारेण, देवी = कादम्बरी, ईदृशम् = एतत्प्रकारं यथा तया कथितम्, एकान्तनिष्ठुरहृदयम्—एकान्तेन (= अतिशयेन) निष्ठुरम् (= निर्दयम्) हृदयम् (=चित्तम्) यस्य तं तादृशम्, माम् = चन्द्रापीडम्, न = नैव, जानाति = वेत्ति, 'जानातु' इत्यर्थेऽयं प्रयोगः। इति पूर्वोक्तम्, एवम् = अनेन प्रकारेण, चन्द्रापीडे = राजकुमारे, वदति=कथयति, सति, एव, अश्राविता = असूचितागमना, एव, अकस्मादिति भावः, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, वेत्रहस्ता = यष्टिहस्ता, प्रतीहारी, कृतप्रणामा=विहितनमस्कारा, व्यज्ञापयत्=निवेदयामास। किं तदिति, युवराज !, देवी = महाराज्ञी, विलासवती = एतन्नाम्नी तव जननी, एवम् = इत्थम्, समादिशति = आज्ञापयति, कृतजल्पात्—कृतः (= विहितः) जल्पः (= भाषणम्) येन तस्मात् तथाभूतात्, परिजनतः = भृत्यलोकात्, मया = विलासवत्या, श्रुतम् = आकर्णितम्। यथा = यत्, किल = निश्चयेन, वाक्यालंकारे वा, पृष्ठतः = तवात्र आगमनानन्तरम्, पृष्ठे, स्थिता = विलम्बिता, कादम्बरी-

जो घटना घटी वह तो तुम्हारे भी सामने हुई थी, तुमने भी प्रत्यक्ष देखा था। इस (स्थिति) में प्रणय कोप से व्याकुल हृदय वाली देवी कादम्बरी ने क्या झूठ कहा है [—"कि कुमार को लाना या न लाना दोनों ही अब व्यर्थ है"]। [बुद्धि के] विपर्यय (मूर्खता) के कारण यह सभी मेरा ही दोष था। इसलिये अब अपने प्राणों से भी अर्थात् प्राणों को बाजी लगा कर भी वैसा कुछ करूँगा जिससे देवी मुझे अत्यन्त निष्ठुर न समझें।" इस प्रकार से जब चन्द्रापीड बोल रहा था तभी सूचना दिये बिना ही अर्थात् अचानक प्रविष्ट होकर छड़ी लिये हुई प्रतिहारी ने प्रणाम करके निवेदन किया—"युवराज ! महारानी विलासवती आदेश दे रही हैं कि आपस में वार्तालाप करते हुए नौकरों से मैंने यह सुना है कि तुम्हारे पीछे रुकी हुई पत्रलेखा अभी यहाँ फिर वापस आ गई है। मेरा

पुनः परागतेति । न च मे त्वय्यस्यां च कश्चिदपि स्नेहस्य विशेषो विलसतीति मयैवेयं संवर्धिता । अपि च तवापि कापि महती वेला[1] वर्तते दृष्टस्य । तदनया सहित एवागच्छ । मनोरथशतलब्धमतिदुर्लभं ते मुखकमलालोकनम्' इति ।

चन्द्रापीडस्तु तदाकर्ण्य चेतस्यकरोत् । 'अहो संदेहदोलारूढं मे जीवितम् । एवमम्बा निमेषमपि मामपश्यन्ती दुःखमास्ते । पत्रलेखामुखेन चैवमाज्ञापितमागमनाय मे निष्कारणवत्सलेन देवीप्रसादेन । आजन्मक्रमाहितो बलवाञ्जननीस्नेहः । वाञ्छाकुलं हृदयम् । अमोच्यं

समीपे इति शेषः, पत्रलेखा = एतन्नाम्नी परिचारिका, अद्य = अधुना, पुनः = भूयः, परागता = प्रत्यावृत्य समागता, इति । त्वयि = भवति चन्द्रापीडे, अस्याम् = पत्रलेखायाम्, च, मे = मम, विलासवत्याः, स्नेहस्य = अनुरागस्य, कश्चिद् = कोऽपि, विशेषः = वैलक्षण्यम्, भेदो वा, न = नैव, विलसति = वर्तते, इति । मया = विलासवत्या, एव, इयम् = एषा, पत्रलेखा, संवर्धिता= वृद्धिं प्रापिता, परिपोषिता । अपि च = अन्यच्च, तव = भवतः, चन्द्रापीडस्य, अपि, दृष्टस्य = विलोकितस्य, कापि, महती = अधिका, वेला = समयः, वर्तते = विद्यते । बहुकालात् तवापि मे दर्शनं नैव जातमिति भावः । तत् = तस्मात् कारणात्, अनया = एतया पत्रलेखया, सहितः = सार्धम्, एव, आगच्छ = अत्रागमनं कुरु । मनोरथेत्यादिः—मनोरथानाम् (= अभिलाषाणाम्) शतेन लब्धम् (= प्राप्तम्), अतिदुर्लभम् = अतिशयदुःखेन प्राप्तुं शक्यम्, ते = तव, मुखकमलालोकनम् = आननपद्मवीक्षणम्, इतिः = कथनसमाप्तौ ।

चन्द्रापीड इति । तत् = प्रतीहारीवचनम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, चन्द्रापीडः = राजकुमारः, चेतसि = मनसि, अकरोत् = कृतवान् । अहो = इदमाश्चर्यं, मे = मम, जीवितम् = जीवनम्, सन्देहदोलारूढम् = संशयप्रेङ्खाधिष्ठितम् । संशयमध्ये निपतितमिति भावः । एवम् = अनेन प्रकारेण, अम्बा = जननी, माम् = स्वपुत्रम्, निमेषम् = क्षणम्, अपि, अपश्यन्ती = अनवलोकयन्ती, दुःखम् = क्लेशं यथा स्यात् तथा, आस्ते = तिष्ठति, सा क्षणमपि विलम्बं सोढुं न शक्तेति भावः । पत्रलेखामुखेन = पत्रलेखामाध्यमेन च, निष्कारणवत्सलेन = निर्निमित्तकहितकारिणा, देवीप्रसादेन= कादम्बर्यनुग्रहेण,च, मे = मम, आगमनाय = तत्र सम्प्राप्तये, एवम् = इत्थम्, आज्ञापितम् = समादिष्टम् । आजन्मक्रमाहितः—आजन्म (= जन्मकालं मर्यादीकृत्य) क्रमेण (= क्रमशः) आहितः (= स्थापितः आरोपितः) बलवान्=प्रबलः, जननीस्नेहः=मातुरनुरागः । जन्मकालमारभ्याद्यावधि मातुः स्नेहः क्रमशो

तुम में और पत्रलेखा में स्नेह का कोई अन्तर नहीं है अर्थात् तुम दोनों पर एक जैसा ही प्यार करती हूँ क्योंकि उसे भी मैंने ही पाल-पोस कर बड़ा किया है । और फिर तुम्हें भी देखे हुए बहुत समय बीत चुका हैं, काफी देर हो चुकी है । इसलिये इस पत्रलेखा के साथ ही [मेरे पास] आ जाओ । सैकड़ों मनोरथों (मनौतियों) से प्राप्त होने वाला, तुम्हारे मुखकमल का दर्शन अति दुर्लभ (हो गया) है ।"

[प्रतीहारी के] यह (वचन) सुन कर चन्द्रापीड मन में सोचने लगा—"ओह, मेरा जीवन कैसे सन्देह के झूले में झूल रहा है । [एक ओर] इस तरह माता जी पल भर भी मुझे नहीं देखती तो दुःख में पड़ जाती हैं, (चिन्तित होने लगती हैं ।) [दूसरी ओर] अकारण कृपा करने वाली देवी कादम्बरी ने पत्रलेखा के मुख से इस प्रकार से [शीघ्र ही हेमकूट] आने के लिए आज्ञा दी है । [एक ओर] जन्मकाल से ही लगातार किया जाने वाला मां का प्यार बलवान् हो रहा है ।

---

१. वर्ततेऽदृष्टस्य ।

तातचरणशुश्रूषासुखम् । प्रमाथी मन्मथहतकः । हारिणी गुरुजनलालना । दुःसहान्युत्कण्ठितानि । अनुबन्धिनी बान्धवप्रीतिः । कुतूहलिन्यभिनवप्रार्थना । मुखावलोकिनः कुलक्रमागता राजानः । जीवितफलं प्रियतमामुखावलोकनम् । अनुरक्ताः प्रजाः । गरीयान्गन्धर्वराजसुतानुरागः । दुस्त्यजा जन्मभूमिः । परिग्राह्या देवी कादम्बरी । कालातिपातासहं मनः । विप्रकृष्टमन्तरं हेमकूटविन्ध्याचलयोः ।' इत्येवं चिन्तयन्नेव प्रतीहार्योपदिश्यमानवर्त्मा

वर्धमान एव जायते इति भावः । परन्तु, हृदयम् = मम चित्तम्, वाञ्छाकुलम् = वाञ्छाभिः (= इच्छाभिः कादम्बरीविषयिणीभिरिति शेषः) आकुलम् (= व्यग्रम्), अस्ति । तातेत्यादिः—तातस्य (= पितुस्तारापीडस्य) चरणयोः (= पादयोः) शुश्रूषा (= सेवा) तस्याः सुखम् (= सातम्, आनन्दः) अमोच्यम् = न मोक्तुं शक्यम् । परन्तु, मन्मथहतकः = कामदेवहतकः, नीच इति भावः, प्रमाथी = प्रमथ्नाति (= चित्तोद्वेगं प्रबलयति) इति तादृशः । गुरुजनलालना = गुरुजनानाम् (= मातापित्रादीनाम्) लालना (= स्नेहः, पालना) हारिणी (= मनोहरा, आकर्षिणी) । परत्र च, दुःसहानि = दुःखेन सोढुं शक्यानि, उत्कण्ठितानि = औत्सुक्यानि, कादम्बरीं प्रतीति शेषः । बान्धवप्रीतिः = बान्धुलोकानां स्नेहः, अनुबन्धिनी = अनुबध्नाति इति तादृशी, परित्युक्तमशक्या । अभिनवप्रार्थना = अभिनवे (= नूतने, पूर्वानुभूते विषये, गन्धर्वकन्यायामिति भावः) प्रार्थना (= वाञ्छा, अभ्यर्थनम्) कुतूहलिनी (= कौतुकयुक्ता, आश्चर्यकारिणी वा) । कुलक्रमागताः (= वंशपरम्परातः सम्प्राप्ताः) राजानः (= नृपाः,) मुखावलोकिनः (= आननदर्शिनः, मुखमवलोक्यात्मनः धन्यान् मन्यमानाः) । अपरत्र च, प्रियतमामुखावलोकनम्—प्रियतमायाः (= प्रेयस्याः कादम्बर्याः) मुखस्य (= आननस्य) अवलोकनम् (= वीक्षणम्) जीवितफलम् = जीवनस्य साध्यभूतम्, साफल्यम् । प्रजाः = जनपदवासिनो लोकाः, अनुरक्ताः = अनुरागयुक्ताः, मयीति शेषः । गन्धर्वराजसुतानुरागः = गन्धर्वाधिपतिकन्याकादम्बरींप्रेम, गरीयान् = अतिशयेन गुरुः, अत्यधिक इत्यर्थः । जन्मभूमिः = जन्मस्थानम्, उज्जयिनी, दुस्त्यजा = दुःखेन त्यक्तुं शक्या । परन्तु, देवी = मान्या, कादम्बरी = मम प्रेयसी, परिग्राह्या = परिग्रहणयोग्या, परिणेतुमर्हा । मनः = मम चित्तम्, कालातिपातासहम्—कालस्य (= समयस्य) अतिपातः (= अतिक्रमणम्, विलम्ब इतिभावः) तम् न सहते (= मर्षयति) इति तच्छीलम् । परन्तु हेमकूटविन्ध्याचलयोः = हेमकूटविन्ध्यनामकपर्वतयोः, अन्तरम् = अन्तरालम्, मध्यभाग इति भावः,

---

[दूसरी ओर, कादम्बरी के लिये] अभिलाषा से [मेरा] हृदय व्याकुल हो रहा है । [एक ओर] पिता के चरणों की सेवा का सुख छोड़ा नहीं जा सकता, [दूसरी ओर] पापी कामदेव [हृदय को] मथ दे रहा है, झकझोर दे रहा है । [एक ओर] गुरुजनों का मनोहारी लाड़ प्यार है [तो दूसरी ओर] अतिकष्ट से सहने योग्य उत्सुकतायें हैं [एक ओर] बन्धु-बान्धवों का प्रेम [यहाँ रुकने के लिये] बाँधने वाला है, [दूसरी ओर] नवीन प्रेम (कादम्बरी की पहली प्रार्थना) कौतूहल करने वाला है । [एक ओर] कुल-परम्परा से आने वाले राजा लोग [मेरे] मुख का दर्शन करने वाले हैं [दूसरी ओर] प्रियतमा कादम्बरी के मुख का दर्शन ही [मेरे] जीवन का फल है । [एक ओर] अनुरागयुक्त (प्यार करने वाली) प्रजा है और [दूसरी ओर] गन्धर्व-राजपुत्री कादम्बरी का (प्रबल) प्रेम है । [एक ओर] कष्ट से त्यागने योग्य जन्मभूमि है, [दूसरी ओर] देवी कादम्बरी को भी अपनाना [अनिवार्य] है । [एक ओर] विलम्ब को न सह सकने वाला मन है, [दूसरी ओर] हेमकूट तथा विन्ध्याचल दोनों के बीच में बहुत दूरी है ।" इस प्रकार से

पत्रलेखाकरावलम्बी जननीसमीपमगात्। तत्रैव च तमनेकप्रकारजननी-लालनसुखाचिन्तित-दुर्विषहहृदयोत्कण्ठं दिवसमनयत्।

उपनतायां चात्मचिन्ताथामिवान्धकारितदशदिशि शर्वर्याम्, अनिवार्यविरहवेदनोन्मथ्यमानमानसाकुलेषु कलकरुणमुच्चैर्व्याहरत्सु चक्रवाकयुगलेषु, उत्तेजितस्मरशर[1]समुत्सर्प-

विप्रकृष्टम् = अतिदूरम्, वर्तते इति शेषः। इति एवम् = अनेन प्रकारेण, चिन्तयन् = मनसि विचारयन्, ध्यायन्, प्रतीहार्या = द्वारपालिकया, उपदिश्यमानवर्त्मा: = निर्दिश्यमानपथः, मातरं प्रति गन्तुमिति शेषः, पत्रलेखाकरावलम्बी—पत्रलेखायाः (= एतन्नामकदास्याः) करम् (= हस्तम्) अवलम्बते (= धारयति) इति एवं शीलः सन्, जननीसमीपम् = मातुः विलासवत्याः निकटम्, अगात् = अगमत्। तत्र = मातुः समीपे, एव, अनेकत्यादिः—अनेकप्रकारम् (= बहुविधम्) जनन्याः (= मातुः) यत् लालनम् (= स्नेहाभिव्यञ्जनम्) तेन यत् सुखम् (= आनन्दः) तस्मात् अचिन्तिता (= अध्याता, अविज्ञाता) दुर्विषहा (= दुःखेन सोढुमर्हा) हृदयोत्कण्ठा (= चित्तौत्सुक्यम्) यस्मिन् तथाभूतम्, दिवसम् = दिनम्, अनयत् = अत्यवाहयत्, सम्पूर्णं दिनं निश्चिन्तः सन् यापितवानित्यर्थः।

उपर्युक्तेषु वाक्येषु प्रतिवाक्यद्वयं परस्परं यच्चमत्कारपूर्णं भावाभिव्यञ्जनं कृतं तत्तु सचेतसामानन्दाय। अत्र च भूषणभट्टस्यापि कल्पनाशक्तेर्गाम्भीर्यं दर्शनीयम्। मानसिक-द्वन्द्वस्याद्भुतं चित्रणमत्र।

दिवसयापनानन्तरं रात्रौ किं जातमिति वर्णयति—उपनतायामित्यादिना। [इतः आरभ्य 'तृतीयान्तानि पदानि वक्ष्यमाणस्य 'मनसा' इत्यस्य विशेषणानि। एवञ्च "········मनसा स्मरायतनभूतस्य कादम्बरीरूपस्य सस्मार' इत्यत्रान्वयो बोध्यः।] आत्मचिन्तायाम् = आत्मनः (= स्वस्य) चिन्ता (= मानसिकदशाविशेषः) तस्याम् इव, अन्धकारितदशदिशि—अन्धकारिताः (= अन्धकारं प्रापिताः) दशदिशः (= दशकाष्ठाः) यया यस्यां वा तथाभूतायाम्, शर्वर्याम् = निशायाम्, उपनतायाम् = सम्प्राप्तायाम्, च। [तस्य चिन्ता—कादम्बरी-समीपं कथं गच्छेयमित्याकारा, अनया यथा सर्वा दिशाः अन्धकारावृता विहितास्तथैव निशापि सर्वाः दिशः अन्धकाराच्छन्नाः कुर्वती समायातेति उभयोः साम्यं स्पष्टम्] अनिवार्येत्यादिः—अनिवार्या (= कथमपि निवारयितुमशक्या, प्रतिदिनं निश्चितेति भावः) या विरहस्य (= वियोगस्य) वेदना (= पीडा) तया उन्मथ्यमानानि (= पीड्यमानानि, व्याकुलीक्रियमाणानि) यानि मानसानि (= चित्तानि) तैः आकुलेषु (= विह्वलेषु) चक्रवाकयुगलेषु = द्वन्द्वचराख्यपक्षि-मिथुनेषु, कलकरुणम्—कलम् (= मधुरम्) करुणम्

[मन में] सोंचता हुआ ही, प्रतीहारी द्वारा दिखाये गये मार्ग वाला, पत्रलेखा के हाथ को थामे हुए [अपनी] माता के समीप पहुँचा। और वहीं पर माता के अनेक प्रकार के लाड़-प्यार के आनन्द में हृदय की असहनीय मन की उत्कण्ठा को भूलते हुये, न सोंचते हुये, (पूरा) दिन बिता दिया।

अपनी अर्थात् चन्द्रापीड की चिन्ता के समान जब दशों दिशाओं में अन्धकार फैला देने वाली रात्रि हो गई। कभी भी दूर न हटाये जा सकने वाले (समाप्त न किये जा सकने योग्य) विरह की पीडा से मथे गये और विकल चित्त वाले चकवा-चकवी पक्षियों के जोड़े जोर-जोर से मधुर और करुण शब्द बोलने लगे थे, अंकोल के फूलों के पराग के सदृश श्वेत-पीत

१. 'सृप्लृगतौ' इति भौवादिको धातुः परस्मैपदी। तेन 'उत्तेजितस्मरशरम् समुत्सर्पमाणेषु' इति प्रायः प्रकाशितेषु पाठेषु शानचः प्रयोगश्चिन्तनीयः। अतएव मथुरानाथभट्टनुरोधी पाठ एवोचिततरः।

णेषु चन्द्रमसोङ्कोल्लधूलिधूसरालोकेष्वग्रमयूखेषु, विजृम्भमाणकुमुदिनीश्वासपरिमलग्राहिणि मन्दं मन्दमावातुमारब्धे प्रदोषानिले च, शयनवर्ती निमीलितलोचनोऽप्यप्राप्तनिद्राविनोदः, हेमकूटागमनखेदान्निपत्य विश्रान्तेनेव पादपल्लवच्छायायाम्, जङ्घा[1]नुरोधिरोहिणा लग्नेनेव सुसंहतयोरूर्वोः, लिखितेनेव विस्तारिणि नितम्बफलके, मग्नेनेव नाभिमुद्रायाम्, उल्लसि-

(=दीनम्) च यथा स्यात्तथा, उच्चैः = तारस्वरेण, व्याहरत्सु = उच्चायरत्सु सत्सु । अङ्कोल्लेत्यादिः—अङ्कोलः (=एतन्नामा पुष्पविशेषः) तस्य धूलिः (=परागः) तद्वत् धूसरः (=ईषत्पाण्डुरः) आलोकः (=प्रकाशः) येषां ते तथाभूतेषु, चन्द्रमसः=चन्द्रस्य, अग्रमयूखेषु=प्रारम्भिककिरणेषु, उत्तेजितस्मरशरम्—उत्तेजिताः (=निशिताः तीक्ष्णीकृताः) स्मरस्य (=कामदेवस्य) शराः (=बाणाः) येन तादृशं समुत्सर्पणम् (=समुदयः) येषां तेषु, सत्सु । [अत्र 'समुत्सर्पमाणेषु' इति पाठस्याशुद्धत्वं टिप्पण्यामवलोकनीयम् । 'स्वतन्त्राः कवयः' इति स्वीकारे तु अत्र प्रकाशित-पाठोऽपि संगतः ।] विजृम्भमाणेत्यादिः—विजृम्भमाणाः (=विकसन्त्यः) याः कुमुदिन्यः (=कुमुद्वत्यः) तासां श्वासस्य यः परिमलः (=सौरभम्) तं गृह्णाति (=धारयति) इत्येवंशीलः स तथा तस्मिन्, प्रदोषानिले=सायंकालिके पवने, च, मन्दं-मन्दम्=शनैःशनैः, आवातुम्=प्रचलितुम्, आरब्धे=प्रक्रान्ते सति ।

पूर्वोक्तासु स्थितिषु जातासु चन्द्रापीडः कीदृशोऽवर्ततेति प्रतिपादयति—शयनवर्तीत्यादिना । शयनवर्ती—शयने (=शय्यायाम्) वर्तते (= तिष्ठति) इत्येवंशीलः स तादृशः चन्द्रापीडः, निमीलितलोचनः—निमीलिते (=मुद्रिते) लोचने (=नयने) येन स तादृशः, सन्, अपि, अप्राप्तेत्यादिः—अप्राप्तः (=न लब्धः) निद्रायाः (=स्वापस्य) विनोदः (=आनन्दः) येन सः तादृशः । हेमकूटेत्यादिः—हेमकूटः (=एतन्नामक-गन्धर्वराजीय-पर्वतविशेषः) तस्मात् यद् आगमनम् (=अत्रोज्जयिन्यां सम्प्राप्तिः) तेन यः खेदः (= परिश्रमः) तस्मात् हेतोः, निपत्य=पतित्वा, पादेत्यादिः—पादौ (=चरणौ) [कादम्बर्या इति सर्वत्र योज्यम् ।] एव पल्लवौ (=किसलयौ) तयोः छायाः (=अनातापः) तस्याम्, विश्रान्तेन=गृहीतविश्रामेण, इव, 'मनसा इत्यस्य विशेषणानीति पूर्वमेवोक्तम् 'इव' शब्दः सर्वत्रोत्प्रेक्षायामेव वर्तते । जङ्घेत्यादिः–जङ्घाम्(=जङ्घाभागम्) अनुरोद्धुम् (= आरोढुम्) शीलमस्य स जङ्घानुरोधी (=जङ्घानलकीलः) तं रोहतीत्येवंशीलः तेन, कादम्बर्याः जङ्घयोरारोढुं प्रवृत्तेनेति भावः, सुसंहतयोः=सुसंघटितयोः, परस्परमतिमिलितयोः, ऊर्व्वोः=सक्थ्नोः, लग्नेन=संसक्तेन, इव, मनसा । विस्तारिणि=आयते, परिणाहयुक्ते, नितम्बफलके—नितम्बौ (=कटिपश्चाद्भागौ) एव फलकम् (=पट्टः) तस्मिन्, लिखितेन=चित्रितेन, इव । नाभिमुद्रायाम्—नाभिः (=तुन्दकूपिका) तस्या मुद्रा (=आकारविशेषः) तस्याम्, मग्नेन=ब्रुडितेन, इव । रोमराज्याम्=लोमा-

(पाण्डुर वर्णवाली) चन्द्रमा की अग्रगामिनी किरणें कामदेव के बाणों को और तीखी करती हुई फैलने लगी थीं, जमुहाई लेती (खिलती) हुई कुमुदिनी के श्वास-वायु की सुगन्ध को लिये हुए सायंकालीन हवा धीरे-धीरे चलने लगी थी, तब पलंग पर लेटा हुआ (चन्द्रापीड) आंखे बन्द किये हुये भी नींद के सुख को नहीं प्राप्त कर रहा था, सो नहीं पा रहा था । उसका मन हेमकूट से वापस लौटने के कारण हुई थकान से गिर कर (लेट कर) मानों [कादम्बरी के] चरणों में विश्राम सा करने लगा था, उस (कादम्बरी) की पिण्डली के अनुसार जंघाओं पर चढ़ कर उसके खूब सटे (मिले) हुए उरुओं में चिपक सा गया था, विस्तृत नितम्बफलक पर चित्रित सा हो गया था, नाभिमुद्रा (तोंदी की गहराई) में डूब सा गया था, रोमसमूह में उल्लसित सा हो गया था,

१. जंघानुरोधरोहिणा ।

तेनेव रोमराज्याम्, आरूढेनेव त्रिवलिसोपानहारिणि मध्यभागे, कृतपदेनेवोन्नतिविस्तार-शालिनि स्तनतटे, मुक्तात्मनेव[1] बाह्वोः, कृतावलम्बनेनेव हस्तयोः, [1]आश्लिष्टेनेव कण्ठे, प्रविष्टेनेव कपोलयोः, उत्कीर्णेनेवाधरपुटे, ग्रथितेनेव नासिकासूत्रे, समुन्मीलितेनेव लोचनयोः, स्थितेनेव ललाटशालायाम्, अन्वितेनेव चिकुरभारान्धकारे, प्लवमानेनेव सर्वदिक्पथप्लाविनि लावण्यपूरप्लवे, मनसा सस्मार स्मरायतनभूतस्य कादम्बरीरूपस्य ।

बलौ, उल्लसितेन = उच्छ्वसितेन, रोमाञ्चितेन, इव । त्रिवलीत्यादिः—त्रिवली (= उदरस्थं वलित्रयम्) एव सोपानम् (= आरोहणम्, निःश्रेणी) तेन हारिणि (= मनोहरे) मध्यभागे = मध्यशरीरदेशे, आरूढेन = कृतारोहणेन, इव । उन्नतीत्यादिः—उन्नतिः (= उच्चता) विस्तारः (= विशालता, विस्तीर्णता) ताभ्यां शालते (= शोभते) इत्येवंशीलं यत् तस्मिन् तादृशे, स्तनतटे = कुचप्रान्तभागे, कृतपदेन = कृतम् (= विहितम्) पदम् (= स्थानम्) येन तेन तादृशेन, इव । बाह्वोः = भुजयोः, मुक्तात्मना—मुक्तः (= स्थापितः) आत्मा (= स्वरूपम्) येन तथाभूतेन, इव । हस्तयोः = करयोः, कृतावलम्बनेन—कृतम् (= विहितम्) अवलम्बनम् (= आश्रयः, ग्रहणम्) येन तेन, इव । [अत्र बाह्वोः' 'हस्तयो'रिति पुनरुक्तिः प्रतीयते । अतः करपञ्जरोर्द्ध्वभागे 'बाहु' शब्दः अधोभागे च 'हस्त' शब्दः प्रयुक्तो बोद्धव्यः, व्यवहारे एवमेव दर्शनात् ।] कण्ठे = गलप्रदेशे, आश्लिष्टेन = कृताश्लेषेण, इव, कपोलयोः = गण्डस्थलयोः, प्रविष्टेन = कृतप्रवेशेन, इव । अधरपुटे = अधरोष्ठदेशे, उत्कीर्णेन = चित्रितेन, इव । नासिकासूत्रे—नासिका (= नासा) एव सूत्रम् (= तन्तुः) तस्मिन्, ग्रथितेन = गुम्फितेन, इव । लोचनयोः = नेत्रयोः, समुन्मीलितेन = विकसितेन, विमुद्रितेन, इव । ललाटशालायाम्—ललाटम् (= अलिकम्, मस्तकदेशः) एव शाला (= भवनम्) तस्याम्, स्थितेन = कृतावस्थितिना, इव । चिकुरेत्यादिः—चिकुरभारः (= केशसमूहः) एव अन्धकारः (= तमः) तस्मिन्, अन्वितेन = युक्तेन, इव । सर्वेत्यादिः—सर्वाणि (= सकलानि) दिक्पथानि (= दिशामार्गान्) प्लावयति (= प्लवयुक्तान् करोति) इति एवं शीले, लावण्यपूरप्लवे—लावण्यस्य (= सौन्दर्यस्य) यः पूरः (= समूहः) तस्य प्लवः (= प्रवाहः) तस्मिन्, प्लवमानेन = तरणं कुर्वता, इव, मनसा = चित्तेन, स्मरायतन-भूतस्य—स्मरः (= कामः) तस्य आयतनम् (= सदनम्) तद्भूतस्य (= सञ्जातस्य) कादम्बरीरूपस्य = कादम्बरी-सौन्दर्यस्य, सस्मार = अस्मरत्, चन्द्रापीडः । अत्र—स्मरणार्थक, धातुयोगे 'अधीगर्थदयेषां कर्मणि' (२।३।५२) इति सूत्रेण कादम्बरी-रूपम्' इति कर्मार्थे षष्ठी बोध्या—मातुः स्मरतीतिवत् । अत्र च विविधानामुत्प्रेक्षाणां प्रयोगात् संसृष्टिरलङ्कारः । अत्रोत्प्रेक्षामालायामनुकरोति पितरं बाणभट्टं भूषणभट्टः इति स्पष्टं विदुषाम् ।

त्रिवली की सीढ़ियों पर मानों चढ़ गया था, ऊंचे तथा विस्तृत स्तन के अग्रभाग में पैर जमाये हुए (विराजमान) सा था, भुजाओं में अपने को छोड़े (डाले) हुए सा था, हाथों का सहारा सा लिये हुए था, कण्ठ में आलिङ्गन किये हुए सा था, गालों में घुसा हुआ था, अधरोष्ठ में चित्रित सा था, नासिकासूत्र में पिरोया गया (गूँथा हुआ) सा था, नेत्रों में खिला हुआ सा था, ललाट-शाला (मस्तक पट्ट) पर स्थित (बैठा) हुआ सा था, अन्धकार के समान काले केश-समूह में मिल सा गया था, सभी दिशाओं के मार्गों को डुबो देने वाली सौन्दर्य की बाढ़ में तैर सा रहा था इस प्रकार के मन से चन्द्रापीड कामदेव के मन्दिर उस कादम्बरी के रूप का स्मरण करने लगा । [अर्थात् कामदेव का मन उस समय कादम्बरी के ही अंग-प्रत्यङ्ग में रमने लगा था । केवल शरीर पलंग पर पड़ा था ।]

---

१. १. अनयोः पुनरुक्तिः । समाधानं संस्कृतव्याख्यायां द्रष्टव्यम् ।

उत्पन्नात्मीयबुद्धिश्च निर्भरस्नेहार्द्रचेतास्तत एव वासरादारभ्य तां प्रति गृहीतरक्षापरिकर इव यतो यत एव मण्डलितकुसुमकार्मुकं मकरध्वजमस्यां प्रहरन्तमालोकितवांस्ततस्तत एवात्मानमन्तरेऽर्पितवान् । एवमम्लानमालतीकुसुमकोमलतनौ निर्घृणं प्रहरन्न लज्जस इत्युपालभमान इव दिवसमुत्तरलतारयान्तर्बाष्पार्द्रया दृष्ट्या कुसुमचापं पुनः स्मरशरप्रहार-

---

चन्द्रापीडस्य कादम्बर्यां स्नेहाभिवृद्धिं निरूपयति—उत्पन्नेत्यादिना । उत्पन्नेत्यादिः—उत्पन्ना (=सञ्जाता) आत्मीया (=स्वसम्बन्धिनी) बुद्धिः (= मतिः) यस्य सः, कादम्बरी ममैवास्तीति विचारयुक्त इति भावः । अतएव, निर्भरेत्यादिः—निर्भरः (= अत्यधिकः) यः स्नेहः (=अनुरागः) तेन आर्द्रम् (= द्रवितम्) चेतः (=चित्तम्) यस्य स तथा सन्, ततः = तस्माद् एव, वासरात्= दिवसाद्, आरभ्य = प्रभृति, ताम् = कादम्बरीम्, प्रति, गृहीतेत्यादिः—गृहीतः (=धृतः, आत्तः) रक्षार्थम् (= परित्राणार्थम्) परिकरः (= परिच्छेदः) येन स तादृशः सन्, यतः यतः=यस्माद् यस्माद्, दिग्भागादिति शेषः, मण्डलितेत्यादिः—मण्डलितम् (= वक्रीकृतम्, वलयीकृतम्) कुसुमानाम् (= पुष्पाणाम्) कार्मुकम् (= धनुः) येन तं तादृशम्, मकरध्वजम् = मीनकेतनं कामम्, अस्याम् = अमुष्यां कादम्बर्याम्, एतद्विषये इति भावः, प्रहरन्तम् = प्रहारं कुर्वन्तम्, प्रचालयन्तम्, आलोकितवान्=दृष्टवान्, ततः ततः=तस्मात् तस्मात्, एव, दिग्भागात्, आत्मानम् = स्वम्, अन्तरे = मध्ये, अर्पितवान् = समर्पणभावेन समुपस्थापितवान् । येन कादम्बरीसमीपगमनात् पूर्वं तस्योपरि एव प्रहारेण क्षीणशक्तिकाः कामबाणाः स्युरिति तद्भावः । एवम्=अनेन प्रकारेण, अस्यां स्थितौ वा, अम्लानेत्यादिः—अम्लानम् (= म्लानताम् अप्राप्तम्, विकसितम्) यत् मालत्याः कुसुमम् (= पुष्पम्) तद्वत् कोमला (= मृद्वी, सुकुमारा) तनुः (= शरीरम्) यस्याः सा तस्यां तादृश्याम्, निर्घृणम् = निर्दयम् (निर्गता घृणा = दया यस्मिन् कर्मणि तद्) यथा स्यात् तथा) प्रहरन् = प्रहारं कुर्वन्, न = नैव, लज्जसे = त्रपां प्राप्नोषि ! ईदृशो बली त्वं सुकुमारायां तस्यां प्रहारे लज्जनीयं त्वयेति भावः । इति = एवम्, दिवसम् = दिनम्, [अहोरात्रस्योपलक्षणं तेन रात्रिमपि, अत्यन्तसंयोगे द्वितीया] उत्तरलया = उत् (=प्राबल्येन) तरला (= चञ्चला) तारा (=कनीनिका) यस्यां तादृश्या, अथ च, अन्तर्बाष्पेत्यादिः—अन्तः (=मध्ये, आभ्यन्तरे) बाष्पः (=अश्रु) यस्यां तया तादृश्या, दृष्ट्या=नयनेन, कुसुमचापम्=कामदेवम्, उपालभमानः= उपालम्भविषयीकुर्वन् इव, पुनः=तदनन्तरम्, स्मरेत्यादिः—स्मरः (=कामदेवः) तस्य शराणाम् (=बाणानाम्) प्रहारेण (=आघातेन) मूर्छिताम् (= मोहमुपगताम्) ताम्=कादम्बरीम्, संज्ञाम्=चेतनाम्, लम्भयितुम्=प्रापयितुम्, इव, अवयवैः=स्वदेहाङ्गैः करचरणादिभिः, स्वेदजल-

---

इसके बाद कादम्बरी पर अपने पन का भाव उत्पन्न हो गया, उसे अपनी ही समझने लगा अतः स्नेह से आर्द्र चित्त वाला होता हुआ वह उसी दिन से उस कादम्बरी की रक्षा करने के लिये कमर कसे हुये सा—जिस-जिस ओर पुष्प-धनुष को [खींचते हुए] मण्डलाकार बनाते हुए कामदेव को उस (कादम्बरी) पर प्रहार करते हुये देखता था उसी-उसी दिशा में बीच में अपने को उपस्थित कर देने लगा, कादम्बरी और कामदेव के बीच में आकर खड़ा होने लगा। 'चमेली के फूल के समान कोमल शरीर वाली (इस कादम्बरी) पर प्रहार करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती है'—इस प्रकार से दिन भर चञ्चल पुतली वाली,भीतर आँसुओं से गीली (डबडबाई)आखों से कामदेव को उलाहना जैसा देता हुआ,फिर कामदेव के बाण के प्रहार से बेहोश कादम्बरी को होश(संज्ञा)

मूर्च्छितां संज्ञामिव लम्भयितुं तामवयवैरुवाह स्वेदजललवानुत्ससर्ज च दीर्घदीर्घान्निश्वासमारुतान्। तच्चेतनालम्भमुदित इव च सर्वाङ्गीणं क्षणमपि न मुमोच रोमाञ्चम्। सह्यते हृदयेन वेदना न वेति तद्वार्तां प्रष्टुमिव नियुक्तेन मनसा शून्यतामधार्षीत्। तत्प्रतिवार्ताकर्णनायेव च गृहीतमौनः सर्वदैवातिष्ठत्। तदाननालोकनान्तरितमिव सर्वमेव नाद्राक्षीत्।

लवान् = स्वेदसलिल कणान्, उवाह = अवहत्, च = तथा, दीर्घदीर्घान् = अतिशयेन दीर्घीभूतान्, निश्वास मारुतान् = निश्वासपवनान्, उत्ससर्ज = परित्यक्तवान्। लोकेऽपीत्थं दृश्यते यत् मूर्छितां कामपि रमणीं सलिलकणान् पातयित्वा व्यजनादि-पवनं जनयित्वा चेतनायुक्तां कुर्वन्ति जनाः। तथैव चन्द्रापीडोऽपि कादम्बर्यर्थं कृतवानिति बोध्यम्। इव शब्द उत्प्रेक्षायाम्।

तच्चेतनेति। तच्चेतनेत्यादिः—तस्याः (= कादम्बर्याः) या चेतना (= संज्ञा, चैतन्यम्) तस्या आलम्भः (= सम्प्राप्तिः) तेन मुदितः (= प्रसन्नः) इव, सर्वाङ्गीणम् = सकलदेह-व्याप्तम्, रोमाञ्चम् = रोमोद्गमम्, क्षणम् = स्वल्पकालम्, अपि, न मुमोच = त्यक्तवान्। हर्षेण स सदैव रोमाञ्चित आसीदिति भावः। अत्राप्युत्प्रेक्षा। हृदयेन = चित्तेन, कादम्बर्या इति शेषः, वेदना = विरहपीडा, सह्यते = सहनविषयीक्रियते, न वा ? इति = इत्थम्, तद्वार्ताम् = कादम्बर्याः वृत्तान्तम्, प्रष्टुम् = प्रश्नविषयीकर्तुम्, ज्ञातुमिति भावः, इव, नियुक्तेन = व्यापारितेन, मनसा = अन्तःकरणेन, शून्यताम् = रिक्तताम्, निःसंज्ञताम्, एकाग्रतामिति भावः, अधार्षीत् = धृतवान्। यदा मनः कादम्बरीसमीपे गतं तदा अन्यस्मिन् कर्मणि प्रवृत्तिरेव नैव जातेति रिक्तता उपपन्ना। तद्वार्त्ताकर्णनाय—तस्याः (= कादम्बर्याः) वार्ता (= वृत्तान्तः) तस्या आकर्णनाय (= श्रवणार्थम्) इव, सर्वदा = सदा, गृहीतमौनः—गृहीतम् (= धृतम्, आचरितम्) मौनम् (= अभाषणम्) येन स तादृशः सन्, अतिष्ठत् = तस्थौ। अन्येन वार्ताकरणे ध्यानभङ्गतया कादम्बरीवृत्तान्तश्रवणे बाधा सम्भावितेति स सर्वदा मौनी अवर्ततेति भावः। तदित्यादिः—तस्याः (= कादम्बर्याः) आननम् (= मुखम्) तस्य यद् आलोकनम् (= दर्शनम्) तेन अन्तरितम् (= व्यवहितम्), इव, सर्वम् = सकलम्, वस्तुजातमिति शेषः न, अद्राक्षीत् = दृष्टवान्। सम्मुखस्थं वस्तु कादम्बरीचिन्तनेन दृष्टिपथं नायातमिति भावः। चन्द्रबिम्बे = इन्दुमण्डले, अपि, अस्य = चन्द्रापीडस्य, दृष्टिः = नयनम् न, अरमत = रमणं व्यधात्। चन्द्रमण्डलमपि द्रष्टुमीच्छा तस्य नासीदिति भावः।

में लाने के लिये अपने सभी अवयवों द्वारा पसीने की बूंदों को ढोने लगा, लाने लगा और लम्बी-लम्बी निश्वास हवायें छोड़ने लगा। [लोक में भी बेहोशी दूर करने के लिये पानी की बूंदें छिड़की जाती हैं और हवा की जाती हैं। इसी प्रकार वह सम्पूर्ण शरीर में स्वेद बिन्दु धारण करने लगा और लम्बी लम्बी सांसों से हवा छोड़ने लगा।] फिर उसकी चेतना प्राप्ति के आनन्द से प्रसन्न सा होता हुआ सर्वाङ्गीण रोमाञ्च को नहीं छोड़ पाता था, अर्थात् पूरा शरीर रोमाञ्चित हो जाता था। 'हृदय वेदना सहन कर पा रहा है अथवा नहीं—इस बात को मानों पूछने के लिये नियुक्त मन द्वारा शून्यता को धारण कर लेता था। [मन जब कादम्बरी का समाचार जानने चला जाता था तो उसका मन रहित होना स्वाभाविक है।] उस कादम्बरी का प्रत्युत्तर सुनने के लिये वह सदैव मौन धारण किये हुये सा अर्थात् चुपचाप रहा करता था। उस (कादम्बरी) को देखते रहने के कारण मानो व्यवधान हो जाने से कुछ भी नहीं देख पाता था। [उसके सामने कादम्बरी का मुख ही सदैव रहा करता था इस कारण उसके व्यवधान से वह सभी अन्य वस्तुयें नहीं देख पाता था।] चन्द्रमण्डल पर भी

चन्द्रबिम्बेपि नास्य दृष्टिररमत। तदालापपरिपूरितश्रोत्रेन्द्रिय इव न किंचिदप्यपरमन्तः [1]कर्णे कृतवान्। वीणाध्वनयोप्यस्य बहिरेवासन्। सुभाषितान्यपि न प्रवेशमलभन्त। सुहृद्वाचोपि परुषा इवाभवन्। बान्धवजनजल्पितान्यपि नासुखायन्त। भावावगमभीत्येव यथापूर्वं न कस्यचिद्दर्शनमदात्। अनवरतमुक्तज्वालेन मदनहुतभुजान्तर्दह्यमानोपि गुरुजन-

तदालापेति। तदित्यादिः—तस्याः (=कादम्बर्याः) आलापः (=संलापः, भाषणम्) तेन परिपूरितम् (=परिपूर्णम्, भरितम्) श्रोत्रेन्द्रियम् (=श्रवणेन्द्रियम्) यस्य स तादृशः, इव, किञ्चिद् अपि, अपरम्=अन्यत्, वार्तादिकम्, अन्तःकर्णे=श्रवणस्याभ्यन्तरे, न = नैव, कृतवान् = अकरोत्। परिपूरितत्वादन्यस्य कृते अवकाश एव नासीत् तस्य कर्णे इति भावः। वीणा-ध्वनयः= तन्त्रीतारस्वनाः, अपि, अस्य = चन्द्रापीडस्य, बहिः = बाह्यदेशे, एव, आसन्=अभूवन् न तु कर्णाभ्यन्तरे इति शेषः। जायमानं वीणाध्वनिमपि श्रोतुं नाशक्नोदिति भावः। सुभाषितानि= सदुक्तयः, अपि, प्रवेशम्=प्रविशनम्, मध्यगमनावकाशम्, न, अलभन्त=प्रापुः। सुभाषितेष्वपि न मनो रमते स्मेति भावः। सुहृद्वाचः=मित्रवचनानि, अपि, परुषाः=कठोराः, इव, अभवन् = अजायन्त। बान्धवेत्यादिः—बान्धवजनानाम् (=आत्मीयलोकानाम्) जल्पितानि (=कथितानि) अपि, न, असुखायन्त = सुखोत्पादकानि अभूवन्। आत्मीयलोकानां वार्तासु अपि तस्य मनो नारमतेति भावः।

भावावगमेति। भावेत्यादि—भावाः (=मनोविकाराः) तेषाम् अवगमः (=ज्ञानम्) तस्माद् भीतिः (=भयम्) तया, इव, यथापूर्वम्=पूर्ववत्, कस्यचित्=कस्मैचित् [सम्बन्धसामान्ये षष्ठी], दर्शनम् = अवलोकनम्, न = नैव, अदात् = दत्तवान्। मम दर्शनेन वस्तुस्थितेः ज्ञानं भविष्यति लोकानामिति भीत्येव चन्द्रापीडः लोकानां समक्षमागमने पूर्ववद् रुचिं न प्रादर्शयदिति भावः। अत्र विविधोत्प्रेक्षाणां प्रयोगः।

अनवरतेति। अनवरतेत्यादिः—अनवरतम् (=निरन्तरम्) यथा स्यात् तथा मुक्ता(=निःसारिता) ज्वाला (=अर्चिः) येन तादृशेन, मदनहुतभुजा=कामाग्निना, अन्तः=हृदयाभ्यन्तरे, दह्यमानः=ज्वाल्यमानः, अपि, गुरुजनत्रपया=माता-पित्रादिलज्जया, सद्य इत्यादिः—सद्यः (=प्रत्यग्रम्, तत्कालम्) समुद्धृतानि (=उत्खातानि) अत एव, आर्द्राणि (= क्लिन्नानि) यानि अरविन्दानि (=कमलानि) तेषां शयनम् (=शय्याम्), न, अभजत = असेवत। ईदृशशय्यायां शयानं मामवलोक्य गुरुजना मद्विषये किं विचारयिष्यन्तीति लज्जा तस्य मनसि आसीत्। सरसेत्यादिः—

इसकी आँख नहीं रमती थी। उस (कादम्बरी) के आलापों (बातों) से मानो भरी (पुरित) श्रोत्रेन्द्रिय वाला होता हुआ वह कुछ भी दूसरी बात कान के भीतर नहीं कर पाता था, (उसके कानों में सदैव कादम्बरी की ही आवाज गूँजती रहती थी जिससे वह अन्य कुछ भी नहीं सुन पाता था।) वीणा की [मधुर] ध्वनियाँ भी इसके [कानों के] बाहर ही रह जाती थीं। सुभाषित भी [इसके कानों में] प्रवेश नहीं कर पाते थे। 'मित्रों की बातें भी कठोर सी हो जाती थीं। बान्धव लोगों द्वारा कही गई बातें भी इसको सुख नहीं उत्पन्न कर पाती थी।' [मेरे मन के] भाव को कोई जान न ले' मानों इस भय से, पहले के समान [अब] लोगों को दर्शन नहीं दिया करता था। लगातार लपटें छोड़ने (जलाने) वाले कामदेव द्वारा भीतर-भीतर जलाया जाता हुआ भी वह गुरुजनों की लज्जा के कारण, तत्काल (ताजे-ताजे) लाये गये गीले

१. कर्णे।

त्रय्या न सद्य:समुद्ध तार्द्रारविन्दशयनमभजत । न सरसबिसलताजालानि गात्रेष्वकरोत् । न जललवमौक्तिकक्षोदतारकितान्यजरठपद्मिनीपत्राणि पार्श्वेप्यकारयत् । न कुसुमपल्लवस्रस्तररचनामादिदेश । नानवरतधारानिपातोल्लसितशिशिरसीकराबद्धदुर्दिनं ददर्शापि धारागृहम् । न मकरन्दसंततसंपातशीतलाभ्यन्तराणि हर्म्योद्यानलताभवनान्यप्यसेवत । न मलयजजललुलितपृष्ठेषु मणिकुट्टिमेष्वप्यलुठदिच्छया । न तुहिनकरकरनिकरसंक्रान्तिहृद्येषु ललनाकर-

---

सरसानि (=सलिलार्द्राणि) यानि बिसानि (=मृणालानि) तेषां लताः (=वल्लर्यः) तासां जालानि (=समूहान्), गात्रेषु=स्वावयवेषु, न, अकरोत्=कृतवान् । अत्रापि अग्रेऽपि गुरुजनत्रपैव हेतुः । जललवेत्यादिः—जलस्य (=सलिलस्य) लवाः (=कणाः) एव मौक्तिकानाम् (=मुक्तामणीनाम्) क्षोदाः (=चूर्णानि) तैः तारकितानि (=सञ्जाततारकाणि), अजरठेत्यादिः—अजरठानि (=अपक्वानि, हरितानि) पद्मिनीपत्राणि (=कमलिनीदलानि) पार्श्वे=समीपे, अपि, न=नैव अकारयत्=कारितवान् । [तारकाः संजातानि अस्य इत्यर्थे 'तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्' (५।२।३६) इति सूत्रेण इतच् प्रत्ययः ।] कुसुमेत्यादिः—कुसुमानि (=पुष्पाणि) पल्लवानि (=किसलयानि) च तेषां स्रस्तरः (=आस्तरणम्) तस्य रचनाम् (=निर्माणम्), न, आदिदेश=आदिष्टवान् । अनवरतेत्यादिः—अनवरतम् (=निरन्तरम्) धारा (=जलधारा) तस्याः निपातः (=प्रपतनम्) तेन उल्लसिताः (=उत्पन्नाः) ये शिशिराः (=शीतलाः) सीकराः (=जलकणाः) तैः आबद्धम् (=निर्मितम्) दुर्दिनम् (=मेघाच्छन्नं दिनम्) यस्मिन् तत् तादृशम्, धारागृहम्=कृत्रिमजलधारापातनयन्त्रविशिष्टसदनम्, अपि, न, ददर्श=व्यलोकयत् । मकरन्देत्यादिः—मकरन्दः (=पुष्परसः) तस्य सन्ततम् (=निरन्तरम्) यः सम्पातः (=प्रपतनम्) तेन शीतलानि (=शिशिराणि) आभ्यन्तराणि (=मध्यभागाः) येषां तानि तादृशानि, हर्म्येत्यादिः—हर्म्ये (=राजभवने) यद् उद्यानम् (=लघुकाननम्) तस्य लतागृहाणि (=व्रततीकुञ्जानि , अपि, न, असेवत=सेवितवान् । मलयजेत्यादिः—मलयजम् (=चन्दनम्) तस्य जलम् (=सलिलम्, मलयज - सयुक्तं जलमिति भावः) तेन लुलितानि (=आर्द्रीकृतानि) पृष्ठानि (=ऊर्ध्वदेशाः) येषां तानि तेषु तादृशेषु, मणिकुट्टिमेषु=मणिनिबद्धभूभागेषु, अपि, इच्छया=वाञ्छया, न, अलुठत्=लुठितवान्, कामदाहसन्तप्तानि अङ्गानि शीतलयितुमिति शेषः । तुहिनेत्यादिः—तुहिनाः (=शीताः) कराः (=रश्मयः) यस्य स तादृशश्चन्द्रः तस्य करनिकरः (=किरणसमूहः) तस्य संक्रान्तिः (=संक्रमः, निपतनम्) तया हृद्येषु (=मनोरमेषु), ललनेत्यादिः—ललनानाम् (=स्त्री-

---

कमलों [के पत्तों] की शय्या का सेवन (उपभोग) नहीं करता था । [उस पर तापशमनार्थ नहीं लेटता था जिससे गुरुजनों को उसकी कामपीड़ा का ज्ञान न हो जाय ।] और न गीली-गीली कमलिनी-लताओं के समूह को अपने अंगों में [ठंडक पाने के लिये] लपेटता था । और न ही जल-बिन्दुओं के रूप में मोतियों के चूरे से तारागणों से युक्त, कोमल कमलिनी के पत्तों को पास में भी करने (रखने) देता था । न फूलों तथा पत्रों के विस्तर बनाने की आज्ञा ही देता था । लगातार गिरती रहने से [टक्कर के कारण] ऊपर उठती हुई ठंडी-ठंडी जलबिन्दुओं के कारण बने हुये दुर्दिन वाले धारागृह (फव्वारों वाले भवन) को देखता भी नहीं था । फूलों के रस (मकरन्द) के लगातार गिरते रहने से ठंडे हो गये मध्यभाग वाले; राजभवन के उपवन के लताभवनों (लता-मण्डपों) तक का भी सेवन नहीं करता था, उनमें भी नहीं जाता था । न चन्दनमिश्रित जल छिड़के

कलितचन्द्रकान्तमणिदर्पणेष्वप्यसंक्राम¹यदात्मसंपातम्। किं बहुना, नाश्यानहरिचन्दनरस-चर्चामप्या चरणाददापयत्।

एवमेव केवलं रात्रौ दिवा चाकृत²निर्वृतिज्वलताप्यदहनात्मकेन दहताप्यक्षतस्नेहेन्धनेन दुःखानुभावनायेव भस्मसादकुर्वता मदनदहनेनान्तर्बहिश्च क्वाथ्यमानदेहः शोषमगात्। आर्द्रतां पुनः प्रतिक्षणाधीयमानवृद्धिं नात्याक्षीत्। एवं च निष्प्रतिक्रियतया दुस्त्यजतया

णाम्) कराः (=हस्ताः) तैः कलिताः (=धृताः) ये चन्द्रकान्तमणिभिः (=एतन्नामकरत्नविशेषैः) खचिताः, दर्पणाः (=आदर्शाः) तेषु, अपि, आत्मसम्पातम्=स्वसम्पतनम्, स्वप्रतिबिम्बमिति भावः, न, असङ्क्रामयत्=सङ्क्रामितवान्। [धातोरुपसर्गस्य च मध्ये एवाडादिव्यवस्था शास्त्रसम्मता तेन 'समक्रामयत्' इत्येव पाठः साधुः। लेखप्रवाहात् तथा प्रमाद इति बोध्यम्।] किं बहुना ?=अधिकलेखनेन न किमपि भविष्यतीति बोध्यम्। आचरणात्=चरणौ मर्यादीकृत्य, ताभ्यामारभ्येत्यर्थः, आश्यानेत्यादिः—आश्यानम् (=ईषत् शुष्कम्) यद् हरिचन्दनम् (=मलयजविशेषः) तस्य रसः (=द्रवः) तेन चर्चा (=पूजा, लेपः) ताम्, अपि, न, अदापयत् = दापितवान्, तथाविधं कर्तुं सेवकान् अनुमतिं न प्रदत्तवानिति भावः।

एवमेवेति। एवम्=एतेन प्रकारेण, एव रात्रौ=निशायाम्, दिवा=दिने च, अकृतेत्यादिः—अकृता (=अविहिता) निर्वृतिः (=उपरमः) यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा, ज्वलता=दीप्यमानेन, अपि, अदहनात्मकेन—न दहनः (=अग्निः) आत्मा (=स्वरूपम्) यस्य तादृशेन। दहता=दाहं कुर्वता, अपि, अक्षतेत्यादिः—अक्षतम् (=अविनष्टम्) स्नेहः (=प्रेमा) एव इन्धनम् (=एधः) यस्मिन् येन वा तेन तादृशेन। केवलम्, दुःखानुभवाय=दुःखस्यानुभवं कर्तुम्, इव, भस्मसादकुर्वता=भसितसादकुर्वता, अविनाशयतेति भावः, मदनदहनेन=कामाग्निना, अन्तः=आभ्यन्तरे, बहिः=बाह्यभागे, च, क्वाथ्यमानदेहः—क्वाथ्यमानः (=क्वाथतां प्राप्यमाणः, पच्यमानः) देहः (=शरीरम्) यस्य सः तादृशः सन्, शोषम्=शुष्कताम्, अगात्=प्रयातः। अत्र 'केवलम्' इत्यस्याग्रे 'दुःखानुभवायेव' इत्यत्रान्वयो बोध्यः। यद्वा—'न' इत्यधिकं संयोज्य 'न' केवलं रात्रौ दिवा च' इत्यन्वयं विधाय 'च' शब्दोऽप्यर्थे ज्ञेयः। पुनः=परन्तु, प्रतिक्षणाधीयमान-वृद्धिम्—क्षणे क्षणे आधीयमाना (=विधीयमाना) वृद्धिः (=उपचयः) यस्याः सा तां तादृशीम्, आर्द्रताम्=स्वेदक्लिन्नताम्, (स्नेहवत्तां मृदुतां वा—इत्यर्थे विरोधपरिहारः) न, अत्याक्षीत्=त्यक्तवान्।

गये मणिजटित फर्शों पर इच्छा से लेटता था। चन्द्रमा की किरणों के समूह के गिरने से मनोहर बने हुए, तथा रमणियों के हाथों द्वारा पकड़े गये चन्द्रकान्तमणि के दर्पणों पर अपनी परछाईं तक भी नहीं पड़ने देता था। अधिक क्या कहें, गाढ़े (कुछ सूखे हुए) हरिचन्दन के रस के लेप को पैरों तक में भी नहीं लगाने देता था। [लगाने की बात तक भी नहीं करने देता था।]

इसी प्रकार दिन-रात कामरूपी आग के द्वारा, जो (कामाग्नि) बिना शान्त हुये जलती हुई भी अदहनात्मक अर्थात् अग्निरूपी नहीं थी, जो (कामाग्नि) जलाती हुई भी स्नेहरूपी इन्धन को नष्ट नहीं करती थी, जो मानों दुःख भोगने के लिये भस्म (राख) कर देने वाली नहीं थी,—ऐसी (कामाग्नि) के द्वारा [वह राजकुमार] भीतर से और बाहर से काढ़े के समान पकाये जाते हुए

१. 'समक्रामयद्' इत्येव शुद्धं रूपम्। अनवधानतया एष पाठो लिखित इति बोध्यम्।

२. निर्वृतिराज्वलता, निर्वृतिनाज्वलता।

वातिविसंष्ठुलेनोपास्यमानोपि मनसिजेनाकारमेव लोकलोचनेभ्योऽरक्षन्न कुसुमशरसायकेभ्यो जीवितम्। तनोरेव तानवमङ्गीचकार न लज्जायाः। शरीरस्थितावेवानादरं कृतवान्न कुलक्रमस्थितौ। प्रजा एवान्वरुध्यन्त[1] न मन्मथोत्कलिकाः। सुखमेवावधीरयामास न धैर्यम्।

एवं चास्य पुरः कादम्बरीरूपगुणावष्टम्भाहितप्राणेन बलवतानुरागेणाकृष्यमाणस्य

एवञ्चेति। एवम् = अनेन प्रकारेण, च, निष्प्रतिक्रियतया—निः = निर्गता) प्रतिक्रिया (= प्रतीकारः, समुचितोपायः) यस्याः क्रियाया तस्या भावः तत्ता, तया, दुः (दुःखेन) त्यजः (= त्यक्तुं शक्यः) तस्य भावस्तत्ता, तया, अतिविसंष्ठुलेन = अतीवविषमेण, मनसिजेन = कामदेवेन, उपास्यमानः = सेव्यमानः, (= व्याकुलीक्रियमाणः), अपि, लोकलोचनेभ्यः = जनानां नेत्रेभ्यः, आकारम् = आकृतिम्, एव अरक्षत् = रक्षितवान्, गोपायितवान्, न तु, कुसुमशरसायकेभ्यः = कामदेवबाणेभ्यः, जीवितम् = जीवनम्, अरक्षत्। जीवनं तु कामदेवशराणां लक्ष्यीभूतमेवति भावः। तनोः = देहस्य, एव, तानवम् = तनुताम्, कृशताम्, अङ्गीचकार = स्वीकृतवान्, लज्जायाः = त्रपायाः, न = नैव, तानवमङ्गीचकारेति शेषः। शरीरस्थितौ = शरीरस्य धारणे, एव, अनादरम् = असम्मानम्, उपेक्षाम्, कृतवान् = व्यधत्त, कुलक्रमस्थितौ = वंशपरम्परामर्यादायाम्, न, अनादरं कृतवानिति शेषः। प्रजाः = जनाः एव, अन्वरुध्यन्त = अनुरोधविषयीकृताः, अकाम्यन्त इति भावः, मन्मथोत्कालिकाः = कामदेवविषयकोत्कण्ठाः, न अन्वरुध्यन्त। [अत्र 'कर्मणि' प्रयोग एव समीचीनः। प्रजा शब्दस्य उत्कलिका-शब्दस्य च बहुवचने एवं प्रयोगस्यौचित्यम्। कर्तरि प्रयोगे तु एकत्र एकवचनान्तस्य अन्यत्र च बहुवचनान्तस्य रूपस्य परिकल्पने गौरवादिति बोध्यम्। 'प्रजा' शब्दस्य प्रकृतिरित्यर्थो न समीचीनः। एवमेव 'प्रजाः अन्वरुध्यत = अन्वसरत् कामस्य उत्कलिका अन्वरुध्यत्' इति तु न सम्यक् रुध्धातोर्लङि श्नमा विकरणेन योगे 'अरुणद्' इति रूपेण भाव्यम्। कर्मणि प्रत्यये 'अन्वरुध्यन्त' इति बहुवचनान्तस्यैव समीचीनत्वमिति दिक्।] सुखम् = भौतिकम् आनन्दम्, एव, अवधीरयामास = उपेक्षितवान्, धैर्यम = धीरताम्, न, उपेक्षितवान्।

एवञ्चेति। एवञ्च = अनेन प्रकारेण च, अस्य = चन्द्रापीडस्य, पुरः = अग्रतः कादम्बरी-त्यादिः—कादम्बर्याः (= गन्धर्वराजकन्यायाः) रूपम् (= सौन्दर्यम्) गुणः (= गाम्भीर्यादिः) तयो यः अवष्टम्भः (= अवलम्बः) तेन आहिताः (= स्थापिताः, निहिताः) प्राणाः (= असवः) येन तादृशेन, अथ च, बलवता = शक्तिमता, अनुरागेण = स्नेहेन, आकृष्यमाणस्य = हठात् नीय-

---

शरीर वाला होता हुआ सूखता जा रहा था। [वह राजकुमार] प्रतिक्षण वृद्धि प्राप्त करने वाली [लगातार बढ़ती ही रहने वाली) आर्द्रता (गीलेपन, स्नेह) को नहीं छोड़ रहा था। [कामाग्नि जैसे जैसे अधिक जला रही थी उसकी आर्द्रता = स्नेह भाव बढ़ती जा रही थी।] इस प्रकार से जिसका कोई प्रतीकार (उपचार) नहीं है अथवा जिसे छोड़ा नहीं जा सकता ऐसे अति विषम (कठोर) कामदेव के द्वारा पकड़ा गया, लक्ष्य बनाया गया वह (राजकुमार) लोगों की आंखों से अपने शरीर की ही रक्षा कर सका, (छिपा सका) कामदेव के बाणों से अपने जीवन की नहीं [रक्षा कर सका]। उसने अपने शरीर की ही तनुता = दुर्बलता (ह्रास) स्वीकार की लज्जा की (न्यूनता, ह्रास) नहीं [स्वीकार की]। शरीर की स्थिति (दशा) के विषय में ही अनादर

---

१. 'अन्वरुध्यत'—इति पाठो न समीचीनः, प्रजाशब्दस्य बहुवचनान्तत्वात्, 'मन्मथोत्कलिकाः' इत्यत्र बहुवचनवदिति बोध्यम्। स्पष्टप्रतिपत्तये संस्कृतव्याख्या द्रष्टव्या।

पश्चाद्गुरुजनप्रतिबन्धदृढतरेण महीयसा स्नेहेन च वार्यमाणस्य गम्भीरप्रकृतेः सरित्पतेरिव चन्द्रमसा सुदूरमुल्लास्यमानस्यापि मर्यादावशादात्मानं स्तम्भयतः कथंकथमपि कतिपयेष्वपि सहस्रसंख्यायमानेष्वतिक्रान्तेषु वासरेष्वेकदा रणरणकस[1]काशादिवान्तरलब्धावस्थानो निर्गत्य बहिर्नगर्यास्तरंगसङ्गशीतसीकरासारमरुन्ति कलक्वणितकलहंसचक्रवाकचक्रवाला-

मानस्य कादम्बरी-समीपमिति शेषः, पश्चात् = पृष्ठतः च, गुरुजनेत्यादिः—गुरुजनाः (= माता-पित्रादयः) तेषां यः प्रतिबन्धः (= प्रतिरोधः) तेन दृढतरेण (= अतिघनेन, प्रबलतरेण) महीयसा = महत्तरेण स्नेहेन = प्रेम्णा, च, वार्यमाणस्य = निषिध्यमानस्य, अवरुध्यमानस्य, गम्भीर-प्रकृतेः—गम्भीरा (= धीरा) प्रकृति (= स्वभावः) यस्य तस्य तादृशस्य, सरित्पतेः = सागरस्य, इव, चन्द्रमसा = चन्द्रेण, सुदूरम् = अत्यन्तविप्रकृष्टम्, उल्लास्यमानस्य = उल्लासविषयी-क्रियमाणस्य, अपि, मर्यादावशात् = मर्यादा (= सीमा, पक्षे स्ववंशक्रमस्थितिः) तस्याः वशात् (= अधीनत्वात्, निमित्ताद् वा) आत्मानम् = स्वम्, स्तम्भयतः = नियन्त्रितं कुर्वतः अस्य चन्द्रापीडस्य । [यथा समुद्रं चन्द्रकिरणा ऊर्ध्वमाकृषन्ति, मर्यादा तु तं तत्रैव स्थापयति एवमेव कादम्बरीविषयकोऽनुरागः तं तां प्रति प्रेरयति गमनाय, कुलमर्यादा च तथा कर्तुं वारयतीति भावः। अत्रोपमा स्पष्टा ।] कथं कथमपि = येन केन प्रकारेण, महता कष्टेनेति भावः, कतिपयेषु = अल्पेषु, अपि, सहस्रसंख्यायमानेषु = सहस्रसंख्यायामिवाचरत्सु सहस्रसंख्यकेषु इव अनुभूयमानेष्विति भावः, दिवसेषु = दिनेषु, अतिक्रान्तेषु = व्यतीतेषु, सत्सु । एकदा = एकस्मिन् काले, रणरणकवशात् = औत्सुक्यवशाद्, इव, अन्तः = राजसदनाभ्यन्तरे, अलब्धावस्थानः = अलब्धम् (= न प्राप्तम्) अवस्थानम् (= अवस्थितिः) येन स तादृशः, सन्, विरहवेदनाकुलो राजभवने कथमपि स्थातुमशक्तः सन्निति भावः, निर्गत्य = निष्क्रम्य, नगर्याः = उज्जयिन्याः बहिः = बाह्यभागे, तरङ्गेत्यादिः—तरङ्गाणाम् (= वीचीनाम्) सङ्गः (= सम्पर्कः) तेन शीताः (= शीतलाः) ये सीकराः (= जलकणाः) तेषाम् आसारः (= वर्षणम्) येषु तादृशाः मरुतः (= पवनाः) येषु तानि तादृशानि । कलेत्यादिः—कलानि (= मृदूनि) क्वणितानि (=रणितानि,

(अवहेलना) करने लगा था, कुलक्रम की स्थिति (= मर्यादा) के विषय में [अनादर] नहीं [करता था]। प्रजाजनों का ही अनुरोध करता था, कामदेव-सम्बन्धी उत्कण्ठाओं का नहीं। [अथवा अपनी प्रजा का ही अनुगमन करता था, कामसम्बन्धी उत्कण्ठाओं का नहीं।] सुख को ही छोड़ा उपेक्षित किया, धैर्य को नहीं।

और इस प्रकार—आगे से कादम्बरी के रूप (सौन्दर्य) तथा गुण (उदारता आदि) के अवलम्बन (सहारे) से प्राण धारण करने वाले (जीवित रह जाने वाले) प्रबल अनुराग द्वारा खींचे जाते हुए तथा—पीछे से गुरुजन (माता-पिता आदि) के प्रतिरोध के कारण दृढ़तर बहुत बढ़े हुए स्नेह द्वारा रोके जाते हुए [उस राजकुमार के]—चन्द्रमा द्वारा बहुत दूर ऊपर खींचे (उछाले) जाते हुए भी मर्यादा के कारण अपने को [उसी रूप में पृथ्वी पर] स्थिर रखने वाले समुद्र के समान [अपने कुल की मर्यादा का परिपालन करने वाले तथा गम्भीर स्वभाव वाले] उस (राजकुमार) के हजारों की संख्या के समान प्रतीत होने वाले किन्तु कुछ ही अर्थात् बहुत कम ही दिन जिस किसी प्रकार (अत्यन्त) कष्ट से बीत सके थे कि एक दिन (कादम्बरीविषयिणी) उत्कण्ठा के कारण [राजभवन के] भीतर अवस्थान (रुकने की स्थिति) को न पाते हुए, अर्थात् भीतर ठहर सकने में असमर्थ होते हुए, नगरी के बाहर निकल कर (वह चन्द्रापीड) लहरों के सम्पर्क से ठण्डी-ठण्डी जलबिन्दुओं की वर्षा करने वाली हवाओं से

१. रणरणकसकासादिव० ।

क्रान्तसरससुकुमारसैकतानि सिप्रातटान्यनुसरन्नाति[1]दूरमिव चरणाभ्यामेव बभ्राम। भ्राम्यंश्च रुद्रतनयायतनं रयेणागच्छतः सावष्टम्भया गत्या त्वरितखुरसंचारान्युज्यमानांश्च विरलीभवतश्च संघट्टमानांश्च विश्लिष्यतश्चोत्सहमानांश्च लम्बमानांश्च परापततश्च विच्छिन्नपङ्क्तिव्यवस्थानान्स्खलतोपि पततोऽप्यवसीदतोपि यथाशक्ति सादिभिरुत्पीडितान्निःसहतया दूरागमन-

---

ध्वनयः) येषां ते तादृशाः ये कलहंसाः (=कादम्बाः) चक्रवाकाः (=चक्राह्वयाः) तेषां चक्रवालम् (=समूहः) तेन आक्रान्तानि (=व्याप्तानि) सरसानि (=आर्द्राणि) सुकुमाराणि (=कोमलानि) सैकतानि (= सिकतामयानि) सिप्रातटानि (=एतन्नामक-नद्यास्तीराणि) अनुसरन् = अनुगच्छन्, आश्रयन्निति भावः, न, अतिदूरम् = अधिकविप्रकृष्टम्, इव, समीपमेवेति भावः, चरणाभ्याम् = पादाभ्याम्, एव, न तु वाहनादिना, बभ्राम = भ्रमणं चकार।

भ्राम्यंश्चेति। भ्राम्यन् = भ्रमणं कुर्वन्, च, ['रुद्रतनयायतनम् आगच्छतः तुरङ्गमान् अद्राक्षीद्' इति वाक्ययोजना। अत्र द्वितीया-बहुवचनान्तानि पदानि 'तुरङ्गमान्' इत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि।] रुद्रतनयायतनम्—रुद्रतनयः (=षडाननः) तस्य आयतनम् (=मन्दिरम्), प्रति, रयेण = वेगेन, आगच्छतः = आव्रजतः, उपसर्पतः, सावष्टम्भगतया—अवष्टम्भः (=दर्पः) तेन सहिता गतिः (=प्रचलनम्) तया, [हेतौ तृतीया]। तुरङ्गमान् विशेषयति—त्वरितेत्यादिः—त्वरितः (=सत्वरः) खुराणाम् (=शफानाम्) सञ्चारः (=सञ्चरणम्) येषां तान्। युज्यमानान् = परस्परं संमिलतः, च = पुनः, विरलीभवतः = पृथक्-पृथक् जायमानान्, संघट्टमानान् = परस्परं सघर्षणं कुर्वतः, संमिलतो वा, विश्लिष्यतः = विश्लेषं प्राप्नुवतः, उत्सहमानान् = उत्साहं कुर्वतः सोत्साहान्, लम्बमानान् = देहान् लम्बायमानान् विदधतः, परापततः = सामस्त्येन पतनं प्रदर्शयतः, भूमिं स्पृशतः आगच्छतः, विच्छिन्नेत्यादिः—विच्छिन्ना (=भग्नीकृता) पङ्क्तेः (=रेखायाः) अवस्था (=मर्यादा) यैस्तान् तादृशान् अत्याशुगमनतया धावतामश्वानां पङ्क्तिर्नष्टा भवतीति सर्वानुभवसिद्धमेतत्।] स्खलतः= स्खलनं प्राप्नुवतः, अपि, पततः = भ्रंशतः, अपि, अवसीदतः = खेदं प्राप्नुवतः, अपि, सादिभिः = अश्वारोहैः जनैः, यथाशक्ति = शक्त्यनुसारम्, उत्पीडितान् = ताड्यमानान्, त्वरितत्वरिततर-गमनायेति शेषः, निःसहतया = असमर्थतया, दूरागमनखेदम्—दूरात् (=अतिविप्रकृष्टात्) यद् आगमनम् (= आव्र-

---

युक्त, [और] मधुर ध्वनि करने वाले, राजहंसों तथा चक्रवाकों के समूहों से युक्त (अधिष्ठित), गीली तथा कोमल बालुकाओं वाले शिप्रा नदी के किनारों का पीछा करते हुये अर्थात् उन्हीं के साथ-साथ चलते हुए पैदल ही बहुत दूर तक नहीं घूमा था, अर्थात् कुछ ही दूर तक पैदल चल पाया था। और घूमते हुए उसने रुद्रतनय = कुमार कार्तिकेय के मन्दिर की ओर तेजी से आते बहुत से घोड़ों को दूर से ही देखा, जिनके पैर तेजी से चल रहे थे, जो [कभी] आपस में मिले जा रहे थे, जो [कभी] अलग-अलग हो जा रहे थे, जो [कभी] आपस में टकरा रहे थे, [कभी] अलग हो जा रहे थे, जो उत्साह भरे हुए थे, जो लम्बे-लम्बे [शरीर वाले] हो रहे थे, जो एक दूसरे पर गिर पड़ रहे थे, जो पंक्ति-व्यवस्था तोड़ डाल रहे थे, लड़खड़ाते हुये भी, थके होते हुये भी जो घुड़सवारों द्वारा शक्ति के अनुसार उत्पीडित (भागने के लिये बलात् प्रेरित) किये जा रहे थे, जो दूर से आने के खेद (श्रम, थकान) के अब सहन योग्य न होने से तथा अत्यन्त शीघ्रता के कारण आने के कार्य

---

१. 'नातिदूर······संचारान्' इत्यन्तः पाठो नास्ति कुत्रचित्।

खेदमतित्वरयागमनकार्यगौरवमावेदयतो दूरादेवातिबहूनिव तुरङ्गमानद्राक्षीत्। दृष्ट्वा चोत्पन्नकुतूहलस्तेषां परिज्ञानायान्यतमं पुरुषं प्राहिणोत्। आत्मनाप्यूरुदघ्नेन पयसोत्तीर्य शिप्रां तस्मिन्नेव भगवतः कार्तिकेयस्यायतने तत्प्रतिवार्तां प्रतिपालयन्नतिष्ठत्।

तत्रस्थश्च कुतूहलात्तस्मिन्नेव वाजिवृन्दे निक्षिप्तदृष्टिः पार्श्वस्थितां हस्तेनाकृष्य पत्रलेखामवादीत्—'पत्रलेखे, पश्य य एष पुर एवार्ककिरणनिवारणोल्लासितया प्रेङ्खदालोल-

---

जनम्, तत्र प्रापणम्) तेन यः खेदः (=क्लेशः, परिश्रान्तिः) तम्, अतित्वरया=अतिशीघ्रतया, आगमनकार्य-गौरवम्-आगमनेन (=आव्रजनेन) कार्यस्य (=कृत्यस्य) गौरवम् (=महत्त्वम्) आवेदयतः=सूचयतः,अन्येभ्य इति शेषः, दूरादेव=विप्रकृष्टादेव, अतिबहून्=अत्यधिकान्, इव, तुरङ्गमान्=अश्वान्, अद्राक्षीत्=अपश्यत्। वस्तुतो बहुसंख्याऽभावेऽपि रयवशात् बहुत्वप्रतीतिरिति बोध्यम्।

दृष्ट्वा चेति। दृष्ट्वा = अवलोक्य, च, उत्पन्नकुतूहलः = जातोत्कण्ठः, तेषाम्=अश्वानाम्, परिज्ञानाय = सम्यग् बोधाय, 'कस्य इमे? किमर्थमायाताः? कदा परावर्तिष्यन्ते?' इत्यादिकं ज्ञातुमिति भावः, अन्यतमम् = एकं कमपि, पुरुषम् = लोकम्, सेवकम्, प्राहिणोत् = प्रेषयामास। आत्मना = स्वयम् च, ऊरुदघ्नेन = जानुपरिमितेन, पयसा = जलेन, शिप्राम्=एतन्नाम्नीं नदीम्, उत्तीर्य=पारं गत्वा, तस्मिन्=प्रसिद्धे, एव, भगवतः = माहात्म्यवतः, कार्तिकेयस्य = षडाननस्य, आयतने=मन्दिरे, तत्प्रतिवार्ताम् = तस्य (=प्रेषितसेवकस्य) प्रतिवार्ताम् (=प्रत्युत्तरम्), प्रतिपालयन्=प्रतीक्षमाणः, सन्, अतिष्ठत् = तस्थौ।

तत्रस्थश्चेति। तत्रस्थः = कार्तिकेयस्यायतने स्थितः, च, कुतूहलात् = औत्सुक्यात्, तस्मिन् =पूर्ववर्णिते, एव, वाजिवृन्दे = अश्वराशौ, निक्षिप्तदृष्टिः = दत्तनेत्रः, पार्श्वस्थिताम् = समीपे आसीनाम्, पत्रलेखाम् = एतन्नाम्नीम् सेविकाम्, हस्तेन = करेण, आकृष्य = आकर्षणं कृत्वा, स्वाभिमुखं विधायेत्यर्थः, अवादीत् = अवोचत्। किमवोचदिति वर्णयति--पत्रलेखे = एतन्नामिके! सम्बोधनमिदम्, पश्य = विलोकय, यः, एषः = अयम्, पुरः = अग्रे, एव, अर्केत्यादिः--अर्ककिरणानाम् (= सूर्यरश्मीनाम्) निवारणाय (= अवरोधाय, आच्छादनाय) उल्लासितया (= उत्थापितया), प्रेङ्खदित्यादिः---प्रेङ्खन्ती (= दीप्यन्ती, चलन्ती) आलोला (= ईषच्चंचला) लम्बा (= आयता, दीर्घा) च शिखा (=अग्रभागः) यस्याः सा तया तादृश्या, मयूरपिच्छमय्या =

के गौरव को सूचित कर रहे थे। उन्हें देख कर उत्सुक होकर उनका ठीक-ठीक ज्ञान करने के लिये एक व्यक्ति को भेजा। और स्वयं भी जाँघ तक पानी वाली 'शिप्रा' को पार कर उन्हीं भगवान् कार्तिकेय के मन्दिर में उत्तर पाने की प्रतीक्षा करता हुआ बैठा रहा।

वहीं बैठे हुये उसने कौतूहल से उस घोड़ों के समूह पर दृष्टि डाली (घोड़ों को देखा) और समीप में स्थित पत्रलेखा को हाथ से खींच कर कहने लगा—"पत्रलेखा! देख-देख, आगे जो यह घुड़सवार है, जिसका मुख—सूर्य की किरणों [के ताप] को रोकने के लिये ऊपर फैलाई गई, हिलती हुई, चञ्चल और लम्बी चोटी (सिरे) वाली मोर के पंखों से बनी छतरी के कारण—ठीक से पहचान में नहीं आ रहा है, लगता है कि यह केयूरक (कादम्बरी का विशेष सेवक) है।"

लम्बशिखया मयूरपिच्छमय्या छत्रिक[1]या दुर्विभाव्यवदनोऽश्ववारो ज्ञायते केयूरकोऽयम्' इति। यावत्तया सहैवं निरूपयत्येव तावत्तस्मात्प्रहितपुरुषादुपलब्धात्मावस्थानं दृष्टिपथ एवावतीर्य तुरंगमादापतन्तं दूरात् द्रुतागमनधूलीधूसरश्यामीकृतशरीरं परिवर्तितमिवेतराकारेणोज्झिताङ्गरागसंस्कारान्मलिनेन वपुषा विषादशून्येन च मुखेनान्तर्दुःखसंभारपिशुनया च दृष्ट्या दूरत एवापृष्टा[2]मपि कष्टां कादम्बरीसमवस्थामनक्षरमावेदयन्तं केयूरकमद्राक्षीत्।

मयूरपिच्छविरचितया, छत्रिकया = सुन्दरेण लघुछत्रेण, दुर्विभाव्यवदनः—दुःखेन (= क्लेशेन) विभाव्यमानम् (= ज्ञातुं शक्यम्) वदनम् (= आननम्) यस्य स तादृशः, अश्ववारः=अश्वारोही, ज्ञायते = प्रतीयते, अयम् = एषः, केयूरकः = एतन्नामा कादम्बरीपरिचारकः। यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, तया = पत्रलेखया, सह = साकम्, एवम् = अनेन रूपेण, पूर्वोक्तम्, निरूपयति= कथयति एव, तावत् = तस्मिन् काले, प्रहितपुरुषात् = प्रेषितसेवकलोकात्, उपलब्धात्मावस्थानम्—उपलब्धम् (= ज्ञातम्) आत्मनः (= स्वस्य, चन्द्रापीडस्य) अवस्थानम् (= अवस्थितिः कार्तिकेयायतनविद्यमानता) येन तं तादृशम् 'केयूरकम्' इति वक्ष्यमाणेऽन्वयः। दृष्टिपथे = दृष्टिगोचरे, एव, चन्द्रापीडस्येति शेषः, तुरङ्गमात् = अश्वात्, अवतीर्य = अवरुह्य, आपतन्तम् = आगच्छन्तम्, दूरात् = विप्रकृष्टात् स्थानात्, द्रुतागमनेत्यादिः—द्रुतम् (=सत्वरम्) यद् आगमनम् (= आव्रजनम्, सम्प्रापणम्) तेन धूल्या (=रजसा) धूसरम् (=ईषत् पाण्डुरम्) श्यामीकृतम् (=कृष्णवर्णीकृतम्) च शरीरं यस्य तथाभूतम्, इतरः = भिन्नः, स्वाभाविकादिति शेषः, यः आकारः (= आकृतिः) तेन, परिवर्तितम् (=परिणतम्, अन्यविधमाकारं प्राप्तम् इव)। अत्रोत्प्रेक्षा। उज्झिताङ्गरागेत्यादिः—उज्झितः (= परित्यक्तः) अङ्गरागस्य (= विलेपनस्य) संस्कारः (= प्रसाधनादिकम्) तस्माद् हेतोः, मलिनेन = मलीमसेन, वपुषा=शरीरेण, विषादशून्येन—विषादः (= हर्षाभाव) तेन हेतुना शून्येन (= रिक्तेन, कान्तिहीनेन) मुखेन = आस्येन, च। अन्तरित्यादिः—अन्तः (= आभ्यन्तरे, हृदये) यः दुःखस्य (= कष्टस्य) संभारः (= समूहः) तस्य पिशुनया (=सूचिकया, ज्ञापिकया) दृष्ट्या = नेत्रेण च, दूरतः = विप्रकृष्टाद्, एव, अपृष्टाम् = न प्रश्नविषयीकृताम्, अपि, कष्टाम् = कष्टयुक्ताम्, [मत्वर्थेऽच्प्रत्ययान्तमेतत्।] कादम्बरीसमवस्थाम् = स्वमिन्याः दशाम्, अनक्षरम् = अशब्दम्, शब्दोच्चारणं विनापि, आवेदयन्तम् = सूचयन्तम्, ज्ञपयन्तम्, केयूरकम् = एतन्नामकं कादम्बरीसेवकम्, अद्राक्षीत् = ददर्श।

उस पत्रलेखा के साथ ज्यों ही वह इस प्रकार से देख रहा था त्यों ही (उसी समय) भेजे हुये पुरुष द्वारा अपना अर्थात् चन्द्रापीड का [कार्तिकेय भगवान के मन्दिर में] रुकना जानने वाले, [चन्द्रपीड का] दर्शन होते ही घोड़े से उतर कर [पैदल] आते हुए, दूर से तेजी से आने के कारण धूलि से धूसरित मटमैले शरीर वाले, आकार में दूसरे ही जैसा लगने वाले, शरीर के प्रसाधन छोड़ देने से मलिन शरीर से तथा मन के दुःख के भार को सूचित करने वाली दृष्टि से—दूर से ही न पूछी गई भी कादम्बरी की कष्टकारिणी दशा को सूचित कर देने वाले केयूरक को देखा। [केयूरक का मटमैला शरीर विषाद से सूनी-सूनी और भीतरी दुःख से भरी हुई आँखें—बिना पूछे ही यह बता रही थीं उसकी स्वामिनी राजकुमारी कादम्बरी बहुत कष्ट भोग रही है।]

---

१. वेत्रिकया। २. अपृष्टम्।

दृष्ट्वा च दर्शितप्रीतिरेह्येहीत्याहूय ससंभ्रम[1]प्रणतोपसृतमतिदूरप्रसारिताभ्यां दोर्भ्यां पर्यष्वजत तम्। अपसृत्य पुनः कृतनमस्कारे तस्मिन्ननामयप्रश्नवचसा संव[2]र्ध्य सर्वानेव तत्सहायान् पुरः स्थितं पुनः पुनः सस्पृहमालोक्य केयूरकमवादीत्—"केयूरक! त्वद्दर्शनेनैव भद्रं देव्याः सपरिवारायाः इत्येतदावेदितम्। आगमनकारणमपि विश्रान्तः [3]सुखितः कथयिष्यसि' इत्युक्त्वा संभ्रान्तागतारोहकढौकितां करिणीमारुह्य 'कुतोऽस्य जनस्य सुखिते'त्यभिदधानमेव केयूरकं पृष्ठतः पत्रलेखां चारोप्य स्वभवनमयासीत्। तत्र च

दृष्ट्वेति। दृष्ट्वा = विलोक्य, च, केयूरकमिति शेषः, दर्शितप्रीतिः—दर्शिता (=प्रकटिता) प्रीतिः (=स्नेहः) येन स तादृशः, सन्—एहि-एहि = आगच्छ-आगच्छ' इति = एवम् उक्त्वा, आहूय = आह्वानं कृत्वा, आकार्य, ससंभ्रमेत्यादिः—ससंभ्रमम् (=सादरम्) यथा स्यात् तथा प्रणतम् (= विनतम्) उपसृतम् (=समीपमागतम्), तम् = केयूरकम्, अतिदूरप्रसारिताभ्याम् = अतिदूरविस्तारिताभ्याम्, दोर्भ्याम् = भुजाभ्याम्, पर्यष्वजत = समालिलिङ्ग। अपसृत्य = दूरे भूत्वा, पुनः = भूयः, कृतनमस्कारे = विहितप्रणामे, तस्मिन् = केयूरके, अनामयप्रश्नवचसा—अनामयस्य (=कुशलस्य) प्रश्नः (=पृच्छा) तस्य वचः (=वचनम्) तेन, सर्वान् = सकलान्, एव, तत्सहायान् = सार्धमागतान्, संवर्ध्य = समादृत्य, पुरःस्थितम् = अग्रे विद्यमानम्, पुनः पुनः = भूयो भूयः, सस्पृहम् = साभिलाषं यथा स्यात् तथा, आलोक्य = दृष्ट्वा, केयूरकम् = एतन्नामकं सेवकम्, अवादीत् = अवोचत्। किन्तदिति वर्णयति—केयूरक! सम्बोधनमिदम्, त्वद्दर्शनेन = भवद्विलोकनेन, एव, सपरिवारायाः = सपरिच्छदायाः, देव्याः = कादम्बर्याः, भद्रम् = कल्याणम्, इति एतत् = इदम्, आवेदितम् = सूचितम्, आगमनकारणम् = अत्र सम्प्राप्तिहेतुम्, अपि, विश्रान्तः = कृतविश्रामः, सुखितः = सुखीभूय, प्राप्तसुखः, सन्, कथयिष्यसि = वक्ष्यसि, इति = पूर्ववर्णितम्, उक्त्वा = कथयित्वा, सम्भ्रान्तेत्यादिः—सम्भ्रान्तम् (= ससम्भ्रमम्) यथा स्यात् तथा आगतः (= उपसृतः) य आरोहकः (= हस्तिपकः) तेन ढौकिताम् (=समानीताम्, उपनमिताम्), करिणीम् = हस्तिनीम्, आरुह्य = आरोहणं कृत्वा, अस्य = अमुष्य, जनस्य = लोकस्य केयूरकस्येति भावः, सुखिता = सुखित्वम्, सुखम्, कुतः = कस्मात् सम्भवतीति शेषः, इति = एवम्, अभिदधानम् = कथयन्तम्, एव, केयूरकम् = तन्नामानम्, पृष्ठतः = पृष्ठ-

---

[उस केयूरक को] देख कर [उसके आगमन पर] प्रसन्नता प्रकट करते हुए 'आओ आओ' इस प्रकार से बुलाकर शीघ्रतापूर्वक झुक कर पास आये हुए उस केयूरक का बहुत दूर तक फैलाईं गईं अपनी दोनों भुजाओं से आलिंगन किया, भुजाओं में लिपटा लिया। [भुजाओं से] अलग होकर उस केयूरक द्वारा नमस्कार कर लेने पर कुशलक्षेम के प्रश्न (आप सभी लोग कुशल तो हैं ? ऐसे प्रश्न) से उसके सभी साथियों का सम्मान करने के बाद सामने खड़े हुए उस केयूरक को बार-बार उत्कण्ठापूर्वक देख कर कहने लगा—"केयूरक! तुम्हारे दर्शन ने ही परिवार सहित देवी कादम्बरी की कुशलता है, यह सूचित कर दिया है। विश्राम करके, प्रसन्न होकर अपने आगमन का कारण (प्रयोजन) भी कह देना।'' ऐसा कह कर जल्दी-जल्दी महावत द्वारा लायी गई हथिनी पर बैठ

---

१. ससंभ्रम-प्रणय-प्रणत०। २. संवर्ग्य, समावर्ज्य। ३. विश्रान्तसुखितः।

निषिद्धाशेषराजलोकप्रवेशः प्रविश्य वल्लभोद्यानं सपरिवारेण केयूरकेण सहोत्ताम्यता चेतसाऽचेतितमेव दिवसकरणीयं निर्वर्तयामास[1]। निर्वर्त्य[2] च पत्रलेखाद्वितीयः सुदूरोत्सारितपरिजनः केयूरकमाहूयाब्रवीत्-'केयूरक' कथय देव्याः कादम्बर्याः समदलेखाया महाश्वेतायाश्च संदेशम् ।''

इत्यभिहितवति चन्द्रापीडे पुरः सप्रश्रयमुपविश्य केयूरकोऽप्यगादीत्[3]—'देव किं विज्ञापयामि। नास्ति मयि संदेशलवोऽपि देव्याः कादम्बर्याः समदलेखाया महाश्वेताया वा।

देशे, पत्रलेखाम् = एतन्नाम्नीं स्वसेविकाम्, च, आरोप्य = स्थापयित्वा, स्वभवनम् = राजसदनम्, अयासीत् = अव्रजत् ।

तत्र चेति । तत्र = राजभवने, च, निषिद्धेत्यादिः—निषिद्धः (= वारितः) अशेषाणाम् (=सकलानाम्) राजलोकानाम् (=नृपाणाम् सेवकानां वा) प्रवेशः (= आभ्यन्तरगमनम्) येन स तादृशः, सन्, वल्लभोद्यानम् = प्रियमुपवनम्, सपरिवारेण = सपरिच्छदेन, केयूरकेण = कादम्बरीसेवकेन, सह = सार्धम्, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, उत्ताम्यता = औत्सुक्ययुक्तेन, अधीरेण, चेतसा = चित्तेन, अचेतितम् = अविज्ञातम्, एव, दिवसकरणीयम् = दिवाकृत्यम्, निर्वर्तयामास = सम्पादितवान् । सम्पाद्य=विधाय, दिनकृत्यमिति शेषः, च, पत्रलेखाद्वितीयः-पत्रलेखा (=प्रियपरिचारिका) एव द्वितीया (= अपरा) यस्य स तादृशः, अत एव, सुदूरेत्यादिः—सुदूरम् (= अतिविप्रकृष्टम्) उत्सारिताः (= अपसारिताः, कृताः) परिजनाः (=सेवकलोकाः) येन स तादृशः सन्, केयूरकम् = एतन्नामकं कादम्बरीसेवकम्, आहूय = आह्वानं कृत्वा, आकार्य, अब्रवीत् = अवोचत् । किं तदिति—हे केयूरक ! = सम्बोधनमिदम्, देव्याः = माननीयायाः, कादम्बर्याः = गन्धर्वराजकन्यायाः, समदलेखायाः = मदलेखासहितायाः, महाश्वेतायाः = एतन्नाम्न्याः तपस्विन्याः गन्धर्वराजकन्यायाः, च, सन्देशम् = वाचिकं, वृत्तम्, कथय = वद, श्रावय । इति = अनेन रूपेण, चन्द्रापीडे = राजकुमारे, अभिहितवति = कथितवति सति, पुरः = अग्रे, सप्रश्रयम् = सविनयम्, उपविश्य = निषद्य, केयूरकः = एतन्नामा, अपि, अगादीत् = अब्रवीत् ।

केयूरककथनं वर्णयति—देव इत्यादिना । हे देव ! = स्वामिन्, राजकुमार !, किम्, विज्ञापयामि = निवेदयामि । कथमिति चेदत आह-नास्तीति । मयि = मम समीपे, देव्याः, कादम्बर्याः= गन्धर्वराजकन्यायाः, वा = अथवा, समदलेखायाः = मदलेखासहितायाः, महाश्वेतायाः = एतन्नाम्न्याः;

कर 'इस व्यक्ति को सुख कहाँ ?' ऐसा कहते हुये ही केयूरक को और पत्रलेखा को अपने पीछे बैठा कर अपने राजभवन की ओर चल दिया । वहाँ समस्त राजकर्मचारियों का प्रवेश रोक दिया, परिवार (सेवकों) सहित केयूरक के साथ वल्लभ (अपने मनपसन्द) बगीचे में प्रविष्ट होकर उतावले मन से, अनजाने ही दिन के समस्त कार्य सम्पादित कर डाले । सभी कार्य सम्पादन करके केवल पत्रलेखा को साथ लिये हुए, सभी अन्य सेवकों को बहुत दूर तक हटवा कर केयूरक को बुलवा कर कहने लगा—"केयूरक ! देवी कादम्बरी तथा मदलेखा सहित महाश्वेता का सन्देश सुनाओ, कहो ।"

इस प्रकार से चन्द्रापीड के कहने पर उसके सामने बैठकर केयूरक विनयपूर्वक कहने लगा—"देव ! क्या निवेदन करूँ ? मेरे पास देवी कादम्बरी के अथवा मदलेखा-सहित महाश्वेता

---

१. निवर्तयामास । २. निवर्त्य । ३. अवादीत् ।

यदैव पत्रलेखां मेघनादाय समर्प्यागतेन[1] प्रतिनिवृत्य[2] मयायं देवस्योज्जयिनीगमनवृत्तान्तो निवेदितस्तदैवोर्ध्वं विलोक्य दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य सनिर्वेदम् 'एवमेतत्' इत्युक्त्वोत्थाय महाश्वेता पुनस्तपसे स्वमेवाश्रमपदमाजगाम। देव्यपि कादम्बरी झटिति हृदये [3]द्रुघणेनेवाभिहता, अतर्कितापतिताशनिनेव[4] मूर्ध्नि ताडिता, अन्तःपीडाकूणननिमीलितेन चक्षुषा मूर्च्छितेव मुषितेव परिभूतेव वञ्चितेव चोन्मुक्तेव[5] चान्तःकरणेन, अविदितमहाश्वेतागमन-

---

कादम्बरीसख्याः, सन्देशलवः = वाचिकस्य अंशः, अपि, नास्ति = न वर्तते। यदैव = यस्मिन् काले एव, मेघनादाय = एतन्नामकाय भवत्सेनापतये, पत्रलेखाम् = एतन्नाम्नीं भवत्परिचारिकाम्, समर्प्य = प्रदाय, प्रतिनिवृत्य = परावर्त्य, आगतेन = सम्प्राप्तेन, मया = केयूरकेण, अयम् = एषः, तदा सञ्जातः, देवस्य = राजकुमारस्य श्रीमतः, उज्जयिनीगमनवृत्तान्तः = उज्जयिनीं प्रस्थानोदन्तः, निवेदितः = कथितः, तदैव = तस्मिन्नवसरे एव, ऊर्ध्वम् = उपरि आकाशे, विलोक्य = दृष्ट्वा दीर्घम् = लम्बायमानम्, ऊष्णम् = अशीतम् च यथा स्यात् तथा, निश्वस्य = निश्वासं नीत्वा, सनिर्वेदम् = सखेदम्, स्वावमाननासहितम् 'एवम् = इत्थम्, एतत् = इदम्' एष वृत्तान्तो वर्तते इत्यभिप्रायः, इति, उक्त्वा = कथयित्वा, उत्थाय = उत्थिता भूत्वा, महाश्वेता = कादम्बरीसखी पुनः = भूयः तपसे = तपश्चरणार्थम्, स्वम् = निजम्, आश्रमपदम् = आश्रमस्थानम्, एव, आजगाम = आगतवती।

कादम्बरी-प्रतिक्रियां वर्णयति—देव्यपीत्यादिना। देवी = माननीया राजकुमारी, कादम्बरी, अपि, ['सकलमेव तं दिवसमस्थादि'ति वक्ष्यमाणेऽन्वयः।] झटिति = तत्कालम्, हृदये = चित्ते, द्रुघणेन = घनाख्यायुधविशेषेण, अभिहता = आहता, इव। अतर्कितेत्यादिः—अतर्कितम् (= अचिन्तितम्) यथा स्यात् तथा, आपतितः (= निपतितः) यो अशनिः (= वज्रम्) तेन, मूर्ध्नि = शिरोदेशे, ताडिता = अभिहता, इव, अन्तरित्यादिः—अन्तः (= मनसि) या पीडा (= व्यथा) तया यत् कूणनम् (= क्रन्दनम्) तेन निमीलितेन (= मुद्रितेन) चक्षुषा = नेत्रेण, मूर्छिता = मोहमुपगता, इव, मुषिता = लुण्ठिता, इव, परिभूता = पराभवं प्रापिता, इव, वञ्चिता = प्रतारिता, इव। अन्तःकरणेन = चित्तेन, उन्मुक्ता = परित्यक्ता, इव। अत्र सर्वत्र 'इव' शब्द उत्प्रेक्षायां वर्तते। एतासां संसृष्टिः। पूर्ववर्णनेन कादम्बर्याः दशा कीदृशी जातेत्यपि निरूपयति—अविदितेत्यादिना। अविदितेत्यादिः—अविदितः (= अविज्ञातः) महाश्वेतायाः (= एतन्नाम्न्याः स्वसख्याः) गम-

---

के सन्देश का लव (कण) भी नहीं है अर्थात् उनमें से किसी का कोई भी सन्देश लेकर नहीं आया हूँ। जभी पत्रलेखा को मेघनाद को सौंप कर वापस लौटकर मैंने देव (चन्द्रापीड, आप) के उज्जयिनी चले जाने का यह समाचार निवेदित किया अर्थात् आप उज्जयिनी चले गये हैं—यह खबर वहाँ सुनाई, तभी ऊपर देखकर, लम्बी तथा गर्म साँस लेकर खिन्नता के साथ 'ऐसी बात है' ऐसा कह कर उठ कर महाश्वेता फिर से तपस्या करने के लिये अपने आश्रम के स्थान में वापस चली आई। देवी कादम्बरी भी तत्काल हृदय में अयोघन से आहत (चोट खाई) हुई सी, अप्रत्याशित रूप से (अचानक) गिरे हुए वज्र द्वारा सिर पर प्रहार की गई सी, अन्तःपीडा (मनोव्यथा) के क्रन्दन से से बन्द की गई आँखों से मूर्छित हुई सी, लुटी हुई सी, पराभूत सी, ठगी हुई सी और अन्तःकरण (मन) द्वारा छोड़ी गई सी, महाश्वेता के चले जाने के समाचार को न जानती हुई, देर तक रुक

---

१. क्वचित्तु 'आगतेन' इति नापि पठ्यते। २. प्रतिनिवर्त्य। ३. अयोघनेन।
४. ...शुष्काशनिना। ५. उन्मुक्ता।

वृत्तान्ता चिरमिव स्थित्वोन्मील्य नयने विलक्षेव[1] लज्जितेव विस्मृतेव विस्मयस्तब्धदृष्टिः—'महाश्वेतायाः कथये'ति सासूयमिव मामादिश्य मदलेखायां पुनर्वलितमुखी सविलक्षस्मितं 'मदलेखे अस्ति केनचिदपरेणैतत्कृतं करिष्यते वा यत्कुमारेण चन्द्रापीडेन'—इत्येवमभिदधत्युत्थाय निवारिताशेषपरिजनप्रवेशा शयनीये निपत्योत्तरवाससोत्तमाङ्गमवगुण्ठ्य निर्विशेषहृदयवेदनां मदलेखामप्यनालपन्ती सकलमेव तं दिवसमस्थात्।

नस्य (=आश्रमप्रस्थानस्य) वृत्तान्तः (=उदन्तः) यया सा तादृशी सती, चिरम् =दीर्घकालम्, इव, स्थित्वा=अवस्थाय, नयने=नेत्रे, उन्मील्य =उद्घाट्य, विलक्षा = अप्रतिभा, इव, लज्जिता = त्रपिता, इव, विस्मृता =विस्मरणमुपगता, इव, विस्मयेत्यादिः—विस्मयः (=आश्चर्यम्) तेन स्तब्धा (=निश्चला) दृष्टिः (=नयनम्) यस्याः सा तादृशी सती, महाश्वेतायाः =स्वप्रियसख्याः, कथय =निवेदय, [चन्द्रापीडोऽस्मात् स्थानात् प्रस्थितः एष वृत्तान्तः तमत्र समानीतां महाश्वेतामेव कथय, मां प्रति कथनेन को लाभ ? इत्याक्षेपो व्यज्यते ।] इति =अनेन प्रकारेण, सासूयम् =ईर्ष्यायुक्तं यथा स्यात् तथा, इव, माम् =केयूरकम्, आदिश्य =निर्दिश्य । मदलेखायाम् =एतन्नाम्न्यां स्वपरिचारिकायां विषये, पुनः =भूयः, वलितमुखी =वक्रीकृतवदना, सविलक्षस्मितम् =लज्जापूर्वकं यत्मन्दहसितं तेन सह वर्तमानं यथा स्यात् तथा, मदलेखे =सम्बोधनमिदम्, कुमारेण =राजकुमारेण, चन्द्रापीडेन =एतन्नामकेन, यत् कृतम् =विहितम् मम विषये इति शेषः, एतत्, केनचित् =ज्ञातेन अज्ञातेन वा, अपरेण =अन्येन, कृतम् =विहितम्, करिष्यते =विधास्यते, वा, न कृतं न वा करिष्यते इति तस्या भावः । इति एवम् =अनेन पूर्वोक्तेन रूपेण, अभिदधती =कथयन्ती, उत्थाय =उत्थानं कृत्वा, निवारितेत्यादिः—निवारितः (=प्रतिषिद्धः) अशेषपरिजनानाम् (=सकलसेवकानाम्) प्रवेशः (=आभ्यन्तरमागमनम्) यया सा तादृशी सती, शयनीये =पल्यङ्के, निपत्य =सर्वतोभावेन पतित्वा, उत्तरवाससा =उत्तरीयवस्त्रेण, उत्तमाङ्गम् =मस्तकम्, शिरो वा, अवगुण्ठ्य = आच्छाद्य, निर्विशेषेत्यादिः—निर्विशेषा (=निर्गतः विशेषः यस्याः सा तादृशी, समानेति भाव) हृदयस्य (=चित्तस्य) वेदना (=पीडा) यस्यास्तां तादृशीम्, समान-मानसिकक्लेशामिति भावः, मदलेखाम् =एतन्नाम्नीं स्वसखीम्, अपि, अनालपन्ती =अभाषमाणा, सकलम् =समस्तम्, एव, तम्, दिवसम् =दिनम्, अस्थात् =स्थितवती, स्थितैव आसीदिति भावः । अत्र कालात्यन्तसंयोगे द्वितीया । तेन मध्येऽन्यत् किमपि न कृतवतीति फलति ।

(बैठ) कर, आँखें खोल (फाड़) कर, आश्चर्य में पड़ी हुई सी, लज्जित सी, भूली-भूली हुई सी, आश्चर्य से स्तब्ध नेत्रों वाली होती हुई—"महाश्वेता से कहो" इस प्रकार असूया (ईर्ष्या) के साथ जैसी मुझे आज्ञा देकर, मदलेखा की ओर फिर से मुख घुमाये हुई लज्जा या आश्चर्य से युक्त मुस्कराहट के साथ—"मदलेखा ! क्या किसी दूसरे ने ऐसा किया है या करेगा जैसा कुमार चन्द्रापीड ने किया है ?" इस प्रकार से कहती हुई, उठकर, सभी परिजनों के प्रवेश को रोकती हुई, पलङ्ग पर गिर (लुढ़क) कर, चादर से मस्तक को ढांक कर, हृदय की पीडा को समान रूप से जानने वाली (अभिन्न) सखी मदलेखा से भी कोई बात न करती हुई, उस पूरे दिन [वैसी ही] पड़ी रही ।

---

1. लक्षितेव ।

परेद्युश्च प्रातरेवोपसृतं माम् 'एवं' [1]दृढतरशरीरेषु म्रियमाणेष्विव भवत्स्वहमीदृशीमवस्थामनुभवामीत्युपालभमानेव 'न मे भवद्भिः पार्श्ववर्तिभिः कार्य'मिति निर्भर्त्सयन्तीव 'किं मे पुरस्तिष्ठसी'त्यन्तर्मन्युवेगेन तर्जयन्तीव च बाष्पपूरोद्रेकोत्कम्पपर्याकुलया दृष्ट्या चिरमालोकितवती। तथा दृष्टश्च दुःखितया[2] देव्यादिष्टमेव गमनायात्मानं मन्यमानोहमनिवेद्यैव देव्यै देवपादमूलमुपागतोस्मि। तच्च देवैकशरणजनजीवितपरित्राणाकुलमतेः

परेद्युश्चेति। परेद्युः = परस्मिन् दिवसे, च, प्रातः = प्रभातकाले एव, उपसृतम् = समीपमागतम्, माम् = केयूरकम्, एवम् = इत्थम्, दृढतर-शरीरेषु—दृढतरम् (= अतिशयेन कठिनम्, परिपुष्टं वा) शरीरम् (= देहः) येषां तादृशेषु, म्रियमाणेषु = मृत्युमुपगच्छत्सु, इव, (उत्प्रेक्षायाम्) भवत्सु = युष्मत्सु केयूरक-प्रभृतिषु, अहम् = कादम्बरी, ईदृशीम् = एतादृशीम्, अवस्थाम् = दशाम्, अनुभवामि = अनुभवविषयीकरोमि, इति = एवम्, उपालभमाना = उपालम्भं प्रददाना, इव, पार्श्ववर्तिभिः = समीपस्थायिभिः, भवद्भिः = युष्माभिः, मे = मम, कादम्बर्याः, कार्यम् = कृत्यम्, न = नैव, अत्र युष्माकमुपस्थितेः कापि आवश्यकता नास्तीति भावः, इति = एवम्, निर्भर्त्सयन्ती = तिरस्कारं विदधती, इव। मे = मम, कादम्बर्याः, पुरः = अग्रे, किम् = किमर्थम् तिष्ठसि = स्थितोऽसि इति = एवम्, अन्तर्मन्युवेगेन = अन्तः (= हृदये) यो मन्युः (=क्रोधः, खेदो वा) तस्य, वेगेन (= रयेण), तर्जयन्ती = तर्जनां कुर्वन्ती, इव, बाष्पेत्यादिः—बाष्पः (= अश्रु) तस्य पूरः (= प्रवाहः) तस्य उद्रेकः (= आधिक्यम्) तेन उत् (= प्रबलम्) यः कम्पः (= वेपथुः) तेन पर्याकुलया (= व्याकुलया, परिपूर्णया), दृष्ट्या = नेत्रेण, चिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, आलोकितवती = दृष्टवती।

तथेति। तथा = पूर्वोक्तेन तेन प्रकारेण, दृष्टः = विलोकितः, च, दुःखितया = दुःखमुपगतया दुःखिन्या, देव्या = गन्धर्वराजकुमार्या, कादम्बर्या, गमनाय = प्रस्थानाय, भवत्समीपमिति शेषः, आदिष्टम् = आज्ञप्तम्, एव, मन्यमानः = जानन्, अहम् = केयूरकः, देव्यै = गन्धर्वराजकुमार्यै कादम्बर्यै, अनिवेद्य = अकथयित्वा, एव, देवपादमूलम् = श्रीमच्चरणसमीपम्, उपागतः = सम्प्राप्तः, अस्मि।

तच्चेति। तत् = तस्मात् कारणात्, च देवेत्यादिः—देवः (= श्रीमान् राजकुमारः) एव एकः (= अद्वितीयः) शरणम् (= परित्राणम्, आश्रयो वा) यस्य स तादृशः यो जनः (= कादम्बरीरूपः) तस्य जीवितम् (= जीवनम्) तस्य परित्राणम् (= रक्षणम्) तस्मिन् तदर्थं वा आकुला (= व्याकुला, व्यग्रा) मतिः (= बुद्धिः) यस्य तादृशस्य तस्य, केयूरकस्य =

दूसरे दिन, प्रातःकाल ही आये हुए मुझको—"'ऐसे हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले [किन्तु किसी काम के करने में] मरे जाते हुए से आप लोगों के होते हुए भी मैं इस प्रकार की दशा को भोग रही हूँ'—ऐसा उलाहना देती हुई सी, 'आप लोगों का मेरे पास रहने का कोई काम नहीं है' इस प्रकार से भर्त्सित करती (फटकारती) हुई सी, और—'मेरे सामने क्यों खड़े हो'—इस प्रकार से मन के (भीतरी) क्रोध से डाँटती हुई सी, आँसुओं के प्रवाह से व्याकुल दृष्टि से [मुझे] बहुत देर तक देखती रही। दुःखी देवी कादम्बरी द्वारा उस प्रकार से देखे गये मैंने 'देवी द्वारा मुझे गमन का आदेश दे ही दिया गया है' ऐसा समझते हुए, देवी कादम्बरी से बिना निवेदन किये हुए ही अर्थात् उन्हें बिना बताये ही

१. दृढशरीरेषु। २. दृष्टश्च तथा दुःखितया, दृष्टश्च दुःखितया।

केयूरकस्य विज्ञापनाकर्णनावधानदानेन प्रसादं कर्तुमर्हति देवः[1]।

"देव श्रूयताम्। यदैव ते प्रथमागमनेनामोदिना मलयानिलेनेव चलितं समस्तमेव तत्कन्यका-लतावनं तदैव सकलभुवनमनोभिरामं भवन्तमालोक्य वसन्तमिव रक्ताशोकतरुलता-मिवारूढवान्मकरकेतनस्ताम्। इदानीं तु महान्तमायासमनुभवति त्वदर्थे कादम्बरी। [2]तस्या

एतन्नाम्नः कादम्बरीसेवकस्य, विज्ञापनेत्यादिः—विज्ञापना (= निवेदनम्) तस्या आकर्णनम् (= श्रवणम्) तस्मिन् अवधानदानेन (= अवधानतावलम्बनेन), प्रसादम् = अनुग्रहम्, कर्तुम् = विधातुम्, अर्हति = योग्यो भवति, देवः = श्रीमान् भवान् इति।

केयूरकः स्वाभीष्टं निवेदयति—देव इत्यादिना। देव ! = स्वामिन् !, श्रूयताम् = आकर्ण्यताम्, भवतेति शेषः। यदा = यस्मिन् काले, एव, ते = तव, चन्द्रापीडस्य, आमोदिना—आमोदः (= आनन्दः, सौरभम्) अस्ति अस्मिन् तादृशेन, प्रथमागमनेन = आद्यसम्प्राप्त्या, मलयानिलेन = मलयपर्वतपवनेन, इव (उत्प्रेक्षा), समस्तम् = सकलम्, एव, तत् कन्यका-लतावनम्—कन्यकाः (=कुमारिकाः), एव, लताः (=व्रततयः), तासां वनम् (=विपिनम्), चलितम्= क्षुब्धम्, (अत्र रूपकम्), तदैव=तस्मिन् काले, एव, सकलेत्यादि —सकलम् (=समस्तम्) यद् भुवनम् (=संसारः) तस्य मनसः (=हृदयस्य) अभिरामम् (=रुचिरम्), भवन्तम्=श्रीमन्तं राजकुमारम्, वसन्तम्=एतन्नामक-ऋतुविशेषम्, इव, अवलोक्य=दृष्ट्वा (उपमा), रक्तेत्यादिः—रक्ता (=रक्तवर्णा) या अशोकतरोः (=अशोकवृक्षस्य) लता (=वल्लरी शाखा वा) ताम्, इव ताम्= कादम्बरीम्, मकरकेतनः = कामदेवः, आरूढवान् = आरूढोऽभूत्। तदैव सा कामेन समाक्रान्ता-भूदिति भावः। अत्र 'समे शाखालते' (अमरः २।४।१०) इत्यनुसारेण लता-शब्दः शाखावाची बोध्यः। यथा कश्चित् प्रबलो जनोऽशोकवृक्षस्य शाखामारोहति तथैव कामदेवः कादम्बरीमारूढ-वान्, तथैवाक्रम्य पीडितुमारब्धवानिति भावः। 'लता' शब्दस्य व्रतत्यर्थे न प्रकरणसङ्गतिः। यद्वा 'वासन्ती लता' इत्यमरमनुसृत्य वसन्तकाले विकासशीला काचन लताविशेषापि बोद्धुं शक्यते। अत्रो-पमा स्पष्टा।

कामदेवारोहणेन किं जातमिति कथयति—इदानीमिति। इदानीम् = अस्मिन् काले, तु, कादम्बरी = गन्धर्वराजकुमारी, त्वदर्थे = भवदर्थे, तव कृते इति, महान्तम् = अत्यधिकम्, आयासम् = क्लेशम्, अनुभवति = अनुभवविषयीकरोति, महतीं यातनां सहते इति भावः। तस्या हीति। तस्याः = कादम्बर्याः, दिनकरोदयाद् = सूर्योद्गमनाद्, आरभ्य = आरब्धं कृत्वा,

आपके चरणों के मूल (समीप) में आ गया हूँ आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। अतः श्रीमान् आप ही अकेले जिसके शरण (रक्षक) हैं ऐसी उस कादम्बरी रूपी जन (प्राणी) की रक्षा के लिये व्याकुल चित्त वाले (मुझ) केयूरक की प्रार्थना को सुनने में ध्यान देकर आप अनुग्रह कर सकते हैं।

'महाराज ! सुनिये, जभी आमोद (= आनन्द, सौरभ) से भरी मलयाचल की हवा के समान आपके पहले पहल के आगमन द्वारा सम्पूर्ण कन्यारूपी लताओं का वन हिल उठा था, चञ्चल हो गया था, तभी सम्पूर्ण संसार के मन को अच्छे लगने वाले आपको देख कर कामदेव उस कादम्बरी पर वैसे ही आरूढ़ हो गया था जैसे समस्त विश्व के लोगों के मन को हर लेने वाला वसन्त रक्त अशोक वृक्ष की लता (शाखा) पर आरूढ हो जाता है। अब तो कादम्बरी आपके

१. क्वचित्तु 'देवः' इदं न पठ्यते। २. तथाहि

हि दिनकरोदयादारभ्य दिवसकरकान्तोपलानलस्येव निःशब्दस्यापवनेरितस्याधूमस्याभस्मनः प्रज्वलतो मकरध्वज-हुतभुजो न परिजनकरकमल-कलितकोमलपल्लव-लास्यलीलया प्रसरभङ्गः। नानुत्तालतालवृन्त-वान्तजल-जडकणिकासारसेकेन निवृत्तिः[1]। न सरस-हरिचन्दन-पङ्कच्छटाच्छुरणेन च्छेदः। न विदलितमुक्ताफल-वालुकापटलोद्धूलनेन[2]

ततः प्रभृतीति भाव। दिवसकरेत्यादिः—दिवसकरः (= सूर्यः) तस्य कान्तः (= प्रियः) दिवसकरकान्तः = एतन्नामा प्रसिद्धो मणिः, स चासौ उपलः (= दृषत्, प्रस्तरः) तस्य अनलः (= तदुत्पादितो वह्नि) तस्य, इव, (उपमा), निःशब्दस्य = ज्वलनकालोत्पन्नध्वनि-हीनस्य, अपवनेरितस्य = न पवनेन (= वायुना) ईरितः (= संधुक्षितः) तस्य, वायुवेगाभावाद-वृद्धस्येति भावः, अधूमस्य = धूमशून्यस्य, अभस्मनः = भसितहीनस्य, तथापि, प्रज्वलतः = जाज्वल्यमानस्य, प्रदीप्यमानस्य, मकरध्वजहुतभुजः—मकरध्वजः (= कामदेवः) एव हुतभुग् (= अग्निः) तस्य, [रूपकमत्र], प्रसरभङ्गः = विस्तारस्य शमनम्, परिजनेत्यादिः—परिजनाः (= सेवकाः) तेषां कराः (= पाणयः) एव कमलानि (= पङ्कजानि) तैः कलितानि (= धृतानि) यानि कोमलपल्लवानि (= मृदुकिसलयानि), तेषां लास्यलीला (= नृत्य-क्रीडा), तया, न = नैव, जायते इति शेषः। तदा कामदेवाग्नेः यो: विस्तारो जातः तस्य उपशमनं सेवकादीनां कोमलपल्लवादिना न कर्तुं शक्यते, अपि तु विस्तार एव क्रियते इति भावः। लोकेऽपि अग्निवेगतुलनायामल्पो वायुः तस्य प्रसारमेव करोति न तु उपशमनम् तथैव कादम्बरी-विषयेऽपि जायते इति केयूरकस्याशयः।

कामाग्निप्रसारस्यानुपशमनमेव विस्तरेण प्रतिपादयति–नानुत्तालेत्यादिना। अनुत्तालेत्यादिः—न उत्तालानि (= प्रबलानि, अर्थान्मन्दानि) यानि तालवृन्तानि (= व्यजनानि) तेभ्यो वान्ताः (= निपतिताः) जलस्य (= सलिलस्य) या जडाः (= शीतलाः) कणिकाः (= कणाः, विन्दवः) तासाम् आसारः (= वर्षणम्) तेन सेकः (= सिञ्चनम्) तेन, निवृत्तिः = विनाशः, उपशमो वा, न = नैव, भवतीति शेषः। सरसेत्यादि—सरसः (= आर्द्रः) यो हरिचन्दनस्य (= मलयजविशेषस्य) पङ्कः (= कर्दमः, द्रवः) तस्य छटायाः (= समूहस्य) छुरणम् (= लेपः) तेन, छेदः = भङ्गः, विनाशो वा, न = नैव, भवतीति शेषः। विदलितेत्यादिः—विदलितानि (= स्फोटितानि, विदारितानि) यानि मुक्ताफलानि (= मौक्तिकानि) तेषां बालुकाः (= सिकताः, कणाः) तासां पटलानि (= समुदायाः) तेषाम् उद्धूलनम् (= निक्षेपः उद्वर्तनं वा) तेन, न = नैव, व्युपरमः = विरामः, समाप्तिः भवतीति शेषः। उत्कीलिते-

लिये (कारण) बहुत अधिक कष्ट भोग रही है। सूर्योदय काल से लेकर [सारे दिन] सूर्यकान्त मणि की आग के समान न आवाज करने वाली, न हवा से भड़कने (तेज होने) वाली, न धुंयें वाली और न भस्म (राख) वाली, [फिर भी] प्रज्वलित रहने वाली कामदेवरूपी आग का फैलाव (बिस्तार), सेवकों के करकमलों द्वारा पकड़े गये (गृहीत) कोमल पल्लवों की लास्य क्रीड़ा (धीरे-धीरे हिलाने) से नहीं रुकता है, नहीं शान्त होता है। धीरे-धीरे (हल्के) चलाये गये पंखों से गिरी हुई शीतल जलबिन्दुओं की वर्षा के सींचने से भी [उस कामाग्नि की] शान्ति (ठण्डक) नहीं होती है। गीले-गीले हरिचन्दन के द्रव (गीले)-समूह के लेप से भी [उस कामाग्नि का] छेद

१. निर्वृतिः। २. उद्धूननेन।

व्युपरमः। नोत्कीलितयन्त्रमय-कलहंसपङ्क्तिमुक्ताम्बुधारेण धारागृहेण प्रशमः। यथा यथा चलितजलयन्त्र[1]विगलिताभिरतिशिशिरसीकरनिकरतारकिताभिरम्बुधाराभिराहन्यते तथा तथा वैद्युतानलसहोदर इव स्फुरति मदनपावकः। सुतरां च शिशिरः कुन्दकलिका-[2]कलापमञ्जरीमिव विकासयति स्वेदजल-लवजालक-संततिमुपचारः।

त्यादिः—उत्कीलिताः (= उत्कीर्य निर्मापिताः, यद् वा कीलाश्रयेणोर्ध्वं स्थापिताः) याः यन्त्रमयाः (= यन्त्रनिर्मिताः) कलहंसपङ्क्तयः (= कलहंस-राशयः) ताभिः मुक्ताः (= परित्यक्ताः) अम्बुधाराः (= सलिलधाराः) यस्मिन् तेन तादृशेन, धारागृहेण = जलधारायुक्तसदनेन, प्रशमः = शमनम्, न = नैव, भवतीति शेषः।

पुनरपि मदनहुतभुजो वर्धनमेव निरूपयति—यथा यथेत्यादिना। [इयं कादम्बरी] यथा—यथा = क्रियाविशेषणमेतत्, चलितेत्यादिः—चलितम् (= कम्पितम्, प्रवृत्तम्) यत् जलयन्त्रम् (= सलिलप्रवहणकृत्रिमसाधनम्) तस्मात् विगलिताभिः (= पतिताभिः, निःसृताभिः) अतिशिशिरेत्यादिः—अतिशयेन शिशिरः (= शीतलः) यः सीकरनिकरः (= पवनाक्षिप्त-जलकण-समूहः) तेन तारकिताभिः (=सञ्जाततारकाभिः,नक्षत्रिताभिः)इव,अम्बुधाराभिः=जलधाराभिः, आहन्यते = प्रताड्यते (उत्प्रेक्षा), तथा = क्रियाविशेषणमेतत्, वैद्युतेत्यादिः—वैद्युतः (= विद्युत्सम्बन्धी, विद्युदुत्पादितः) अनलः (= अग्निः) तस्य सहोदरः (= सगर्भः, सदृशः), इव, मदनपावकः = कामाग्निः, स्फुरितः = प्रदीप्ततरो भवति। सुतराम् = अतिशयेन, च, शिशिरः = शीतलः, उपचारः = प्रतीकारः, विधीयमान इति शेषः, कुन्देत्यादिः—कुन्दः (= एतन्नामा वृक्षविशेषः, पुष्पविशेषो वा) तस्य कलिकाः (= कोरकाः) तासां कलापः (= समूहः) तस्य मञ्जरीम् (= वल्लरीम्, समुदयम्), इव, स्वेदेत्यादिः—स्वेदस्य (= घर्मजलस्य) ये जललवाः (=सलिलकणाः) तेषां जालकानाम् (= समूहानाम्) सन्ततिम् (= राशिम्) विकासयति = वर्धयति। यः कश्चनापि उपचारो दाहशमनार्थं विधीयते स दाहशमनमकृत्वा विपरीतं दाहमेव वर्धयतीति भावः। अत्र वाक्ये इव शब्द उत्प्रेक्षायामेव बोध्यः तादृश-साम्यस्याप्रसिद्धत्वात्।

यथा यथा शीतलोपचारः क्रियते तथा तथा कादम्बर्याः सन्तापो वर्धते एवेति केयूरकस्याशयः। विशेषोक्तिरलङ्कारः।

= विनाश नहीं होता है। तोड़े गये (चूरा बनाये गये) मोतियों की बालु (धूलि) के ढेर को लगाने लेने से भी [उस कामाग्नि को] रोक नहीं होती है। कीलों पर लटकाये यन्त्रमय कलहंसों के समूह द्वारा छोड़ी जाती हुई जलधाराओं वाले धारागृह (फव्वारों वाले भवन) से [उसकी] शान्ति नहीं होती है। जैसे-जैसे चलते हुये जलयन्त्रों (फुव्वारों) से निकली हुई (गिरती हुई), अत्यन्त शीतल जल-बिन्दुओं से उत्पन्न (निकले) हुये तारागणों वाली जैसी, जलधाराओं द्वारा वह (कादम्बरी) आहत होती है, वे जलधारायें जैसे-जैसे उसके ऊपर जोर से गिरती हैं, वैसे-वैसे वैद्युत (बिजली-सम्बन्धी) अग्नि के सहोदर भाई जैसी कामरूपी अग्नि और भड़कती रहती है। अच्छे तरीके से किया गया शीतल उपचार कुन्द पुष्प की कलियों के समूह की मञ्जरी के समान पसीने की जल-बिन्दुओं के समूह के जाल को बढ़ा देता है, विकसित कर देता है।

---

१. ...दन्त...। २. ...कलापि...।

चित्रं चेदम्—मकरकेतुहुतभुजा दह्यमानमप्यग्निशौचमंशुकमिव नितरां निर्मलीभवति लावण्यम्। मन्ये च मृदुस्वभावमपि जलमिव मुक्ताफलतामुपगतं कठिनीभवत्युत्कण्ठितं हृदयमबलाजनस्य, यत्तादृशेनातिसंतापेनापि न विलीयते। बलवती खलु वल्लभजनसंगमाशा, यत्तथाविधमप्यनुभववेदनाविह्वलितप्राण[1]मतिकष्टं प्राण्यते। किं करोमि।

चित्रं चेदमिति। इदम् = एतत्, सर्वैरनुभूयमानमिति भावः, चित्रम्=आश्चर्यकरम्। किमिदमिति निरूपयति—मकरेत्यादिः—मकरकेतुः (= कामदेवः) एव हुतभुक् (= अग्निः) तेन, दह्यमानम् (= ज्वाल्यमानम्), अपि, लावण्यम् = कामिन्याः सौन्दर्यम्, प्रकृते कादम्बर्या इति योज्यम्, अग्निशौचम् = अग्निना (= पावकेन) शौचम् (= शुद्धिः) यस्य तत् तादृशम्, अंशुकम् = वस्त्रम्, इव, नितराम् = अतिशयेन, निर्मलीभवति = विमलीभवति। प्राचीनकाले एतादृशमुत्कृष्टं किमपि वस्त्रमासीद् यद् अग्निना दग्ध्वैव शुद्धं क्रियते स्म। दुर्गासप्तशत्यामप्यस्योल्लेखो दृश्यते—"वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी।" (५।१९)

मन्ये चेति। मन्ये = अवगच्छामि, अबलाजनस्य = नारीलोकस्य, मृदुस्वभावम्—मृदुः (= कोमलः) स्वभावः (= प्रकृतिः) यस्य तत् तादृशम्, अपि, उत्कण्ठितम् = दयितं प्रति समुत्सुकम्, हृदयम् = चित्तम्, मुक्ताफलताम् = मौक्तिकत्वम्, उपगतम् = प्राप्तम्, जलम् = पानीयम्, इव, कठिनीभवति = कठोरीभवति, पाषाणायते। अत्रोक्तौ किं प्रमाणमत आह—यत् = यस्मात् हेतोः, तादृशेन = पूर्वोक्तरूपेण, अतिसन्तापेन = अतिशयदाहेन, अपि न = नैव, विलीयते = विलयं प्राप्नोति। नैव गलतीति भावः। अन्ये पदार्थास्तादृशेन सन्तापेन गलिताः दग्धाः वा भवन्तीति दृश्यते लोके।

बलवतीति। वल्लभेत्यादिः—वल्लभजनः (=दयितलोकः) तस्य सङ्गमः (= सम्मेलनम्) तस्य आशा (= मनोरथः, वाञ्छा) बलवती = अतिसामर्थ्यवती, भवति, खलु = निश्चयेन। कथमिति चेत्तत्राह—यत् = यस्मात्, तथाविधम् = तादृशम्, अनुभवेत्यादिः—अनुभवः (=साक्षात्कारः) तस्य या वेदना (= पीडा) तया विह्वलिताः (= व्याकुलीकृताः) प्राणाः (= असवः) यस्मिन् तत् इदं क्रियाविशेषणम्, अतिकष्टम् = अतिशयेन कष्टं यथा स्यात् तथा, प्राण्यते = जीव्यते। अयं भावः—यदि पुनर्मिलनस्य सुनिश्चिताशा मनसि न स्यात्तदा कापि नानाविधक्लेशानि सोढ्वापि जीवनधारणं न कुर्यादिति बोध्यम्। एतदेव संगमाशाया बलवत्त्वे स्पष्टं प्रमाणम्।

और यह आश्चर्यजनक है—कि कामदेव द्वारा जलाया जाता हुआ भी (उसका) सौन्दर्य [2]अग्निशौच वस्त्र के समान और अधिक निर्मल होता जाता है। मैं तो ऐसा मानता हूँ, (मुझे ऐसा लगता है) कि कोमल स्वभाव वाला होता हुआ भी स्त्रियों का उत्कण्ठित हृदय मोती के रूप को प्राप्त हुये [मृदु स्वभाव वाले भी] जल के समान कठोर बन जाता है। [जैसे सीप में पड़ा हुआ पानी का बूंद कठोर मोती का रूप ले लेता है, उसी प्रकार उत्कण्ठा से युक्त होने पर स्त्रियों का कोमल भी मन कठोर बन जाया करता है।] क्योंकि इस प्रकार के अति सन्ताप द्वारा भी नहीं

१. ···प्राणाम्।

२. प्राचीन काल में कोई ऐसा उत्कृष्ट वस्त्र बनता था जो आग द्वारा शुद्ध किया जाता है। मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत दुर्गा-सप्तशती में भी 'अग्निशौच' वस्त्र का उल्लेख है—"वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी।" आज वस्त्र की ऐसी प्रविधि दुर्लभ है।

कथय—कथं कथ्यते, कया वृत्त्या वर्ण्यते, कीदृशेनोपायेन प्रदर्श्यते, केन प्रकारेणावेद्यते, कया युक्त्या प्रकाश्यते, कतमया वेदनयोपमीयते बलवती तदुत्कण्ठा। स्वप्नेषु विगलितवेदनाः स्फुटं प्राणिनः, प्रतिदिनं दृश्यमानोपि यन्न पश्यसि तामीदृशीमवस्थाम्। प्रचण्डकिरण-

केयूरकः कादम्बरीदशायाः प्रतीकारे जिज्ञासुः पृच्छति—किं करोमीति। किम् = अज्ञातम्, करोमि = विदधामि, इदानीं स्वविधेयमपि ज्ञातुं न प्रभवामि येन कादम्बर्याः तादृशी वेदना समाप्ता भवेदिति तद्भावः। कथय = वद, राजकुमार त्वम्—इति शेषः, कथय = केन प्रकारेण, कथ्यते = भण्यते, कया = अज्ञातया, वृत्त्या = आरभट्यादिकया, यद्वा—अभिधादिकया, शब्दव्यापार-विशेषेणेति भावः, वर्ण्यते = वर्णनाविषयीक्रियते। कीदृशेन = किं रूपेण, उपायेन = साधनेन, प्रदर्श्यते = साक्षात्कारविषयीक्रियते। केन प्रकारेण, आवेद्यते = आवेदनं क्रियते। कया युक्त्या = तर्कादिना, प्रकाश्यते = प्रकटीक्रियते। कतमया, वेदनया = पीडया, बलवती = अतिप्रबला, तदुत्कण्ठा = कादम्बर्याः त्वयि औत्सुक्यम्, उपमीयते — तुलनाविषयीक्रियते। अत्र 'बलवती तदुत्कण्ठा' इत्यस्य पूर्वोक्तेषु सर्वेषु वाक्येषु सम्बन्धो बोध्यः। एवञ्च—'बलवती तदुत्कण्ठा कथं कथ्यते' इति रीत्याऽन्यत्राप्यन्वयो विधेयः।

कादम्बर्याः वेदनामेव वर्णयति केयूरकः—स्वप्नेष्वित्यादिना। प्राणिनः = जीवाः, स्वप्नेषु = निद्रावस्थायामन्तःकरणजन्येषु ज्ञानेषु, विगलितवेदनाः = विगलिता (= लुप्ता, निवृत्ता) वेदना (= पीडा चैतन्यं वा) येषां ते तथाभूताः, स्फुटम् = प्रकटम्, सर्वानुभवसिद्धमिति भावः। प्रतिदिनम् = प्रत्यहम्, [स्वप्नेषु] दृश्यमानः=साक्षात्क्रियमाणः, अपि, त्वम्, यत् = यदि, ताम्=पूर्वोक्ताम्, ईदृशीम् = एतत्प्रकाराम्, अवस्थाम् = दशाम् न = नैव पश्यसि। अत्र वाक्यद्वयं परस्परं संयोज्यार्थो विधेयः—प्रतिदिनं दृश्यमानः अपि तु ताम् ईदृशीम् अवस्थां यत् न पश्यसि, तत् स्वप्नेषु विगलितवेदनाः स्फुटं प्राणिनः।'—विगलितवेदनाः = चैतन्यविहीना भवन्ति। स्वप्नद्रष्टारं विहाय सर्वेऽपि स्वप्ने दृश्यमानाः पदार्थाः चैतन्यहीना एव भवन्ति। अतः सा कादम्बरी राजकुमारं तु स्वप्ने पश्यति किन्तु राजकुमारः चैतन्यहीनत्वात् वस्तुतोऽभावाच्च कादम्बरीदशां ज्ञातुं कथं प्रभवतीति केयूरकस्याशयः। वस्तुतस्तु अत्र कवेराशयः सन्दिग्ध एव प्रतीयते।

पिघलता है। प्रियजन से मिलने की आशा निश्चय ही बहुत प्रबल होती है, जो कि उस प्रकार के अनुभव की पीड़ा से व्याकुल किये गये प्राणों से अतिकष्ट के साथ जिया जाता है, जिन्दा रहा जाता है। [यदि पुनर्मिलन की प्रबल आशा न रहे तो प्रेमिकायें इतनी घोर पीड़ा सहन करती हुई भी जीवित रहने की इच्छा न करें।]

क्या करूं ? [आप ही बताइये कि] उस कादम्बरी की उत्कण्ट उत्कण्ठा [जो आपको लेकर हो रही है उस] को कैसे कहा जाय ? किस [शब्द—] वृत्ति से वर्णन किया जाय ? किस उपाय से वर्णन किया जाय ? किस उपाय से [उसका] प्रदर्शन किया जाय, दिखाया जाय ? किस प्रकार से निवेदन किया जाय ? किस युक्ति से प्रकाशित किया जाय ? और किस पीड़ा के साथ [उसकी उस उत्कण्ठा] की बराबरी की जाय ? यह स्फुट = सर्वज्ञात है कि प्राणी स्वप्न में वेदनाशून्य हो जाते हैं, अथवा चैतन्यशून्य रहते है इसीलिये तो प्रतिदिन [स्वप्न में] दिखाई देते हुये भी तुम [कादम्बरी की] वैसी उस अवस्था (हालत) को नहीं देख पा रहे हो। [सूर्य की] हजारों

सहस्रातपसहानि कमलानि शयनीकृतानि म्लानिमुपनयन्त्या दिवसकरमूर्तिरपि निर्जिता तया निजोष्मणा।

निष्करुणेन चाकारणवामेन कामेन मथ्यमाना तास्ताश्चेष्टाः करोति। तथा हि—'सासोढमदनवेदने त्वमतिकठिने मनसि निवससि' इति मृदुनि कुसुमशयने कथमपि सखीजनेन पात्यते। कुसुमशयनगता च संतापगलित-चरणतलालक्तक-लवपाटलितैः शय्याकुसुमैः

पुनस्तस्याः सन्तापमेव वर्णयति—प्रचण्डेत्यादिना। प्रचण्डेत्यादिः—प्रचण्डानि (= अतीवोग्राणि) यानि किरणानाम् (= सूर्यरश्मीनाम्) सहस्राणि (= दशशतानि, अगणितानि) तेषाम् आतपम् (= सतापम् ऊष्माणम्), सहन्ते—इत्येवं भूतानि, शयनीकृतानि = शय्यीकृतानि, शयनरूपत्वं प्रापितानि, कमलानि = पङ्कजानि, म्लानिम् = म्लानताम् उपनयन्त्या = कुर्वन्त्या, तया = कादम्बर्या, निजोष्मणा = स्वशरीरसन्तापेन, दिवसकरमूर्तिः = सूर्यस्याकृतिः बिम्बं वा, अपि, निर्जिता = पराजिता। यस्य सूर्यस्य सहस्रकिरणानामुष्मा कमलानि न सन्तापयितुं प्रभवति तानि कमलान्यपि सा स्वदेहोष्मणा सन्तापयतीति तस्याः तापस्योग्रत्वमिति व्यतिरेकालङ्कारः।

इदानीं कामातुरतां वर्णयति—निष्करुणेत्यादिना। निष्करुणेन = निर्दयेन, अकारणवामेन = अहेतुकविपरीतेन, कामेन = मदनेन, मथ्यमाना = बिलोड्यमाना, क्षोभं प्राप्यमाणा, सा कादम्बरी, ताः ताः = वक्ष्यमाणाः, चेष्टाः = शारीरिकक्रियाः, करोति = विदधाति। एतदेव विशदयितुमाह—तथा हीत्यादिना। सासोढेत्यादिः—सासोढा (= पुनः पुनरतिशयेन वा सोढा सहनविषयीकृता) मदनवेदना (= कामजन्यपीडा) यया तत्सम्बोधने इदं पदम् [सह + यङ् द्वित्वाभ्यासादिकार्यानन्तरम्—'सहिवहोरोदवर्णस्य' इति सूत्रेण अवर्णस्य ओत्वे अभ्यासदीर्घे च सासोह् + क्त, ढत्वादि कृते टापि—सासोढा।] त्वम्, अतिकठिने = अतिकठोरे, निर्दये, मनसि = चित्ते, चन्द्रापीडस्येति शेषः। निवससि = विद्यसे, इति = एवम्, उक्त्वा, मृदुनि = कोमले, कुसुमशयने पुष्पशय्यायाम्, सखीजनेन = परिचारिकालोकेन, कथमपि = येन केन प्रकारेण, महता कष्टेन इति भावः, पात्यते = शयनार्थं स्थाप्यते। केचित्तु 'सा' इति पृथक् पदं मत्वा 'पात्यते' इत्यनेनान्वयं कुर्वन्ति। कुसुमशय्यायां किं करोतीति वर्णयति—कुसुमशयनगतेति। कुसुमशयनगता = पुष्पशय्यायां स्थिता च, सन्तापेत्यादिः—सन्तापः (= कामजन्यदाहः) तेन गलितः (= द्रवितः) यः चरणतलयोः (= पादतलयोः) अलक्तकः (= लाक्षाद्रवः, यावकः) तस्य लवैः (= बिन्दुभिः) पाटलितैः (= श्वेतरक्तीकृतैः) शय्याकुसुमैः (= पर्यङ्कपुष्पैः) कुसुमशरेण = कामदेवेन,

---

प्रचण्ड किरणों के ताप को भी सहन कर लेने वाले कमल, जो उसकी शय्या के रूप में प्रयुक्त कर दिये गये है, उन्हें म्लानता को प्राप्त कराती हुई, (शय्या बने हुये कमलों को मुरझाया बनाती हुई) वह (कादम्बरी) अपने संताप (कामसन्ताप) द्वारा सूर्य की मूर्ति को भी परास्त कर देते ही है। [उसके सन्ताप के आगे सूर्य का सन्ताप भी फीका पड़ जा रहा है क्योंकि प्रचण्ड सूर्यसन्ताप सहन कर लेने वाले भी कमल उसके शरीर के सन्ताप से मुरझा जाते हैं।]

निष्ठुर और बिना किसी कारण प्रतिकूल बने हुये कामदेव द्वारा मथी (सताई) जाती हुई वह कादम्बरी उन-उन (कही जाने वाली) चेष्टाओं (क्रियाओं) को करती रहती है। जैसे कि—"अरी बार-बार या बहुत अधिक कामजन्य पीड़ा को सहन करने वाली तू [चन्द्रापीड के] अतिकठोर मन में रह रही हैं"—ऐसा [कह कर] सखियों द्वारा कोमल फूलों के पलंग पर जिस किसी प्रकार गिरा दी जाती है, लिटा दी जाती है। और फूलों के पलंग पर लेटी हुई वह [काम-

कुसुमशरेण शरतामुपनीतैः सरुधिरैरिव हृदयात्पतितैर्भयमुपजनयति । सर्वाङ्गीणमनङ्गशर-निवारणाय कवचमिव भवदनुस्मरणरोमाञ्चमुद्वहति । रोमाञ्चिनि कुचयुगले श्वासगलितमंशुकं निदधाना त्वत्पाणिग्रहणतृष्णया कण्टकशयनव्रतलीलामिव दक्षिणकरकमलमनुभावयति । वामं तु वामकपोलभरजडाङ्गुलिमुल्लसत्पद्मरागवलय-प्रभांशुरज्यमानं ज्वलितमदनहुताशन-

शरताम् = बाणताम्, उपनीतैः = प्रापितैः, बाणीकृतैरिति भावः, सरुधिरैः = सरक्तैः, हृदयात् = चित्तात्, पतितैः = स्रस्तैः, इव, भयम् = भीतिम्, जनयति = उत्पादयति, स्वसखीनां मनसीति शेषः । अत्रोत्प्रेक्षा । अयं भावः—शय्यायां विराजमानायाः कादम्बर्याः पादतलाभ्यां निःसृतोऽलक्तकरसः पुष्पाणि रक्तीकरोति । तानि पुष्पाणि विलोक्य तस्याः परिचारिकाः कामदेवेन प्रयुक्तान् रक्तरञ्जितान् हृदयं भित्त्वा निपतितान् कामबाणान् सम्भाव्य भयमनुभवन्तीति बोध्यम् ।

सर्वाङ्गीणमिति । सर्वाङ्गीणम् = सकलदेह-परिव्याप्तम्, भवदनुस्मरणरोमाञ्चम्—भवत (=तव राजकुमारस्य) अनुस्मरणम् (=पुनः पुनर्ध्यानम्) तस्माद् यो रोमाञ्चः (=रोमोद्गमः) तम्, अनङ्गशर-निवारणाय=कामदेव-बाणवारणाय, कवचम्=वर्म, इव उद्वहति=धारयति । भवत्स्मरणेन तस्याः देहे यो रोमाञ्चो जायते स कामदेव-प्रहितबाणैः रक्षणाय अभेद्यकवच इव प्रतीयते इति भावः । रोमाञ्चिनि = रोमाञ्चयुक्ते, कुचयुगले = स्तनयुग्मे, श्वासगलितम् = निःश्वासवायुपतितम्, अंशुकम् = क्षौमवस्त्रं, निदधाना = स्थापयन्ती, सा कादम्बरी त्वत्पाणिग्रहणतृष्णया—तव (= भवतः) पाणि-ग्रहणस्य (= करग्रहणस्य, उद्वाहस्य) तृष्णया (= अभिलाषेण), दक्षिण-करकमलम्—दक्षिणः (= वामेतरः) करः (= हस्तः) कमलम् (= पङ्कजम्) इव, तम्, कण्टकशयनव्रतलीलाम्—कण्टकेषु (= उच्चावचकठोर-स्थानेषु) शयनम् (= स्वापः) तदेव व्रतम् (= अनुष्ठानम्, नियमः) तस्य लीलाम् (=व्यापारम्), इव, अनुभावयति = अनुभवविषयीकारयति । अयमाशयः—कस्यचिदपि दुर्लभस्य पदार्थस्य प्राप्तये कठोरव्रतादिविधानं दृश्यते । तस्याः कादम्बर्याः दक्षिणः करः भवता स्वग्रहणं कारयितुमिच्छति । एतन्महाफलप्राप्त्यर्थं स करः रोमाञ्चयुक्ते कठोरे तस्याः स्तन-युग्मे स्थितः तद् व्रतमिव आचरति स्म । मनोहरेयं कल्पना बाणतनूजस्येति बोध्यम् ।

दक्षिणकरस्य कार्यं प्रतिपाद्य वामस्यापि करस्य लीलां वर्णयति—वाममित्यादिनेति । वामे-त्यादिः—वामः (= दक्षिणेतरः, वामभागवर्ती) यः कपोलः (= गण्डस्थलम्) तस्य भरः (= भारः) तेन जडाः (= स्तब्धाः, क्रियाशून्याः) अङ्गुलयः (= करशाखाः) यस्य तत् तादृशम्, उल्लसदित्यादिः—उल्लसत् (= शोभमानम्, राजत्) यत् पद्मरागवलयम् (= पद्मराग-नामक-मणिखचितकुण्डलम्) तस्य प्रभायाः (= कान्तेः) ये अंशवः (= रश्मयः) तैः रज्यमानम् (= रक्तीक्रियमाणम्) ज्वलितेत्यादिः—ज्वलितः (= दग्धः) यः मदनः (= कामदेवः) एव

जनित] सन्ताप के कारण पैरों के पिघले हुये आलता की बूंदों से पाटलवर्ण के किये गये पलंग के फूलों से सखियों के भय को ऐसे उत्पन्न करा देती है मानों कि वे पुष्प कादम्बरी के हृदय से [बाहर] निकले हुए, खून से लथपथ, कामदेव के द्वारा बाण के रूप में प्रयुक्त किये गये हों । आपको स्मरण कर लेने के कारण उठे हुए सारे शरीर के रोमाञ्च को, मानों कामदेव [द्वारा चलाये गये] बाणों को रोकने के लिये कवच को धारण कर लेती है । रोमाञ्चित स्तनद्वय पर श्वास वायु से गिरे हुए अंचल (वस्त्र) को सम्भालती हुई वह तुम्हारे द्वारा पाणिग्रहण कराने की तृष्णा से दायें करकमल द्वारा कांटों पर शयन करना रूपी व्रत की लीला करवाती है । किन्तु बायें गाल के बोझ से जड़ीभूत [अं]गुलियों वाले, शोभायमान (चमकती हुई) पद्मराग मणियों से जड़े कंगन की चमक से लाल-

विप्लुष्यमाणमिव हस्तकमलं विधुनोति। नलिनीदलव्यजनपवन-विक्षिप्यमाणकर्णकुवलयदलं वदनमजस्र-स्रवदश्रुभय-पलायमानलोललोचनमिव बिभर्ति। प्रतिक्षणं क्षामतां व्रजन्ती न केवलं मङ्गलवलयं पतनभयेन दोलायमानं हृदयमपि मुहुर्मुहुः पाणिपल्लवेन रुणद्धि। शिशिरवारिक्षोदक्षरिण्या लीलाकमलमालिकयेव वपुषि निहितया सखीजनहस्तपरम्परया

हुताशनः (= अग्निः) तेन विप्लुष्यमाणम् (= दह्यमानम्), इव, वामम् = दक्षिणेतरत्, हस्तकमलम् = करपङ्कजम्, विधुनोति = कम्पयति। लोके जडीभूतं दह्यमानञ्चावयवं जनः स्फूर्ति-प्राप्तये धुन्वन्ति तथैव सा कादम्बर्यपि वामकपोलभागेन जडीभूतं बामं करं विधुनोतीति बोध्यम्। अत्रोत्प्रेक्षा।

नलिनीति। नलिनीत्यादिः—नलिनी (= कमलिनी) तस्याः दलानि (= पत्राणि) तेषां व्यजनानि (= तालवृन्तानि) तेषां पवनः (= तदुत्थापितो वायुः) तेन विक्षिप्यमाणम् (= इतस्ततो विधीयमानम्) कर्णयोः (= श्रवणयोः) कुवलयदलम् (= कुवलयपत्रम्) यस्मिन् तादृशम्, वदनम् = आस्यम्, अजस्रेत्यादिः—अजस्रम् (= निरन्तरम्) स्रवत् (= क्षरत्, निःसरत्) यद् अस्रु (= अस्रम्) तस्माद् यद् भयम् (= भीतिः) तेन पलायमानम् (= धावत्, परित्यज्य गच्छत्) लोलम् (= चञ्चलम्) लोचनम् (= नयनम्) यस्य यस्माद् वा तत् तादृशम्, इव, बिभर्ति = धारयति। अत्रोत्प्रेक्षा। निरन्तरमश्रुपातेन इदं प्रतीयते यत् तद्भयेन लोचनं पलायमानमिवासीद्।

प्रतिक्षणमिति। प्रतिक्षणम् = प्रतिपलम्, क्षामताम् = कृशताम्, व्रजन्ती = गच्छन्ती, सा कादम्बरी, दोलायमानम् = दोलावदाचरन्तम्, कम्पमानमिति भावः, न, केवलम्, मङ्गलवलयम् = मङ्गलकटकम् पतनभयेन = भ्रंशभीत्या, पाणिपल्लवेन = करकिसलयेन, मुहुर्मुहुः = पुनः पुनः, रुणद्धि = निवारयति, अपि तु, पतनभयेन = चरित्रच्युतिभीत्या, दोलायमानम् = कम्पमानम्, हृदयम् = चित्तम्, अपि, पाणिपल्लवेन रुणद्धि। सा पाणिपल्लवेन मङ्गलकटकमथ च हृदयम्, उभयमपि पतनात् वारयति स्मेति भावः।

शिशिरेति। शिशिरेत्यादिः—शिशिरम् (= शीतलम्) यद् वारि (= जलम्) तस्य क्षोदः (= बिन्दुः, लघुकणः) तं क्षरति (= स्रवति, पातयति) एवं शीला तया, लीलेत्यादिः—लीलार्थम् (= क्रीडार्थम्) या कमलानाम् (= पङ्कजानाम्) मालिका (= माल्यम्) तया इव (उत्प्रेक्षा), वपुषि = देहे, निहितया = स्थापितया, सखीजनहस्तपरम्परया = परिचारिकालोकस्य करश्रेण्या,

---

लाल होने वाले बांये हाथ को ऐसे झटकती है मानों कि वह कामरूपी अग्नि से जला जा रहा हो। कमलिनी के पत्तों के पंखे की हवा से हिलते हुये कर्ण-कुवलयदल वाले (कान में लगे हुये कमल के पत्ते युक्त) मुख को ऐसे धारण किये रहती है मानों निरन्तर गिरते हुये आसुओं के भय से भागती हुईं चंचल आखों वाला हो। [कमल पत्रों के पंखे की हवा से हिलते हुये कानों में लगे कुवलयदल ऐसे लग रहे हैं कि निरन्तर रोते रहने के भय से अब चञ्चल आखें ही मुख छोड़कर भागी जा रही हों।] हर क्षण और अधिक दुबली होती जा रही वह हिलते हुये मङ्गलवलय को ही नहीं, अपि तु कांपते हुये हृदय को भी, गिर पड़ने (भ्रष्ट होने) के भय से बार-बार अपने कर-कमल से रोकती है, सम्भालती है। [उसे अपने हृदय और मंगलवलय दोनों के ही गिर जाने = भ्रष्ट हो जाने का भय सताता है। अतः हाथ से बार-बार दोनों को थामती रहती है।] [उसके]

परिक्लाम्यति। तथा चरणयुगलेन रसनाकलापं, नितम्बविस्तारेण [1]मध्यं, संगमाशया हृदयं, हृदयेन भवन्तम्, उरसा बिसिनीपलाशप्रावरणं, कण्ठेन जीवितं, करकमलेन कपोलपालीं, त्वदालापेनाश्रुपातं, ललाटफलकेन चन्दनलेखिकामंसेन वेणीमधुना धारयति।

अपीति शेषः, परिक्लाम्यति = ग्लानिं प्राप्नोति, उद्वेगमनुभवतीति भावः।

पुनरपि कामातुरतां प्रतिपादयति—तथेत्यादिना। तथा = अन्यच्च। अधुना = इदानीम्, चरणयुगलेन = पादद्वयेन, रसनाकलापम् = काञ्चीम्, [धारयति = धत्ते' अस्य क्रिया पदस्य सर्वत्र सम्बन्धो बोध्यः।] एतेन वियोगात् कटिभागस्यातिकृशत्वं व्यज्यते येन काञ्ची भ्रश्यन्तीव प्रतीयते। नितम्बविस्तारेण—नितम्बः (= आरोहः कटिपश्चाद्भाग) तस्य विस्तारेण=परिणाहेन, विशालत्वेन, मध्यम् = कटिम्, धारयति। एतेन नितम्बस्यापि कृशत्वं व्यज्यते। सङ्गमाशया = सम्मेलनाभिलाषेण, हृदयम् = चित्तम् धारयतीति सम्बन्धः। एतेन हृदयस्य सद्यः पतनत्वं सूचितम्। हृदयेन = चित्तेन, भवन्तम् = त्वाम्, राजकुमारम्, धारयतीति सम्बन्धः। उरसा = वक्षस्थलेन बिसिनीपलाशप्रावरणम्—बिसिनी (= कमलिनी) तस्याः पलाशनि (= पत्राणि) तेषां प्रावरणम् (= आच्छादनम्), धारयति, एतेन उरसि दाहातिशयो द्योत्यते। कण्ठेन = गलप्रदेशेन, जीवितम् = जीवनम् = प्राणान्, धारयति, एतेन प्राणानां कण्ठदेशसमागमनं व्यज्यते। करकमलेन = पाणिपद्मेन, कपोलपालीम् = गण्डस्थलमूलम्, धारयति, विरहिणां स्वाभाविकीयं स्थितिः। त्वदालापेन = त्वत्सम्बन्धिन्या वार्त्तया, अश्रुपातम् = नेत्रजलक्षरणम् रोदनमिति भावः, वार्त्ताकाले रोदनस्य स्थगितत्वादिति बोध्यम्, अत्र 'धारयति' न तु करोतीति व्यङ्ग्यार्थः। ललाटफलकेन = मस्तकपट्टेन, चन्दनलेखिकाम् = मलयजरचनाम्, एतेनान्यालङ्कारधारणाभावो द्योत्यते। अंसेन = स्कन्धेन, वेणीम् = केशराशिम्, एतेन केशानामनियन्त्रितत्वं सूचितम्, धारयति = धत्ते। अत्र मनोहरो वाक्यविन्यासोनुकरोति पितू रीतिम्।

शरीर पर रखी गई ठण्डी-ठण्डी जल की बूदों को टपकाने वाली सखियों के हाथों की परम्परा (माला) द्वारा वह ऐसे खिन्न होने लगती है मानों क्रीडा के लिये निर्मित कमल पुष्पों की माला हो।

इसके अतिरिक्त इस समय वह दोनों पैरों से करधनी-समूह को, नितम्बों के विस्तार से कटिभाग (कमर) को, मिलन की आशा से हृदय को, हृदय से आपको, वक्षस्थल से कमलिनी पत्ररूपी आवरण को, कण्ठ से जीवन (प्राणों) को, करकमल से गाल के किनारे के भाग को, आप से सम्बद्ध बातचीत से आसुओं को, ललाटपट्ट से चन्दन की रेखा को और कन्धे से वेणी (बिखरे हुए केशसमूह) को धारण करती है।

विमर्श—यहाँ सभी वाक्यों में 'एव' न होने पर भी उसका 'अवधारण' अर्थ समझना चाहिये। अतः चरणयुगल से केवल रसनाकलाप को ही धारण करती है, किसी आभूषण आदि अन्य वस्तु को नहीं धारण करती है; ऐसे अर्थान्तर की व्यावृत्ति समझनी चाहिए। तभी पूर्ण भाव की अभिव्यक्ति होती है।

---

१. मध्यभागम्।

त्वद्दिदृक्षया विघटमानं हृदयमभिवाञ्छति। गोत्रस्खलनेनेव[1] जीवितेन लज्जते। प्रियसख्येव मूर्च्छया मनसि मुहुर्मुहुः स्पृश्यते। परिजनेनेव रणरणकेन [2]मदनपरवशा कुसुमशयनादुत्थाप्यते। परिचारिकयेवार्त्या स्रस्ताङ्गी संचार्यते। मुहुः पवनप्रेङ्खोलितमुत्कण्ठाव्यजनपल्लवभङ्गभयकम्पितमिव लतामण्डपमधिवसति। मुहुः [3]सत्कोशकलिकं बिसवलयसंरक्षण-

पुनर्लघुवाक्यैर्विरहावस्थां वर्णयति—त्वद्दिदृक्षयेत्यादिना। त्वद्दिदृक्षया = तव दर्शनाभिलाषेण, हृदयम् = चित्तम् विघटमानम् = भेदमापद्यमानम्, स्वस्थानात् पलाय्य तवान्तिके उपागतमिति भावः, अभिवाञ्छति = अभिलषति। यद्वा—यदि हृदयं विदीर्णं स्यात्तदा तत्र विराजमानं भवन्तं द्रष्टुं समर्था भवेयमिति भावनया तथेच्छतीति भावः। गोत्रस्खलनेन—गोत्रस्य (= नाम्नः) स्खलनम् (= भ्रंशः, अन्यस्य नाम्नः स्थाने तद्भिन्नस्य लोकस्य नाम्न उच्चारणम्) तेन, इव, जीवितेन = जीवनेन, प्राणैः, लज्जते = त्रपामनुभवति। यथा सा गोत्रस्खलनेन लज्जते तथैव जीवितेनापि इति भावः। प्रियसख्या = वल्लभवयस्यया, इव, मूर्च्छया = मोहावस्थया, मुहुर्मुहुः = पुनः पुनः, मनसि = स्वान्ते, स्पृश्यते = आश्लिष्यते। यथा काचन प्रियसखी वारं वारं स्पृशति तथैव मूर्छा तां मनसि वारंवारं स्पृशति। परिजनेन = सेवकलोकेन, इव, रणरणकेन = त्वद्विषयकौत्सुक्येन, मदन-परवशा = कामाधीना, सा कादम्बरी, कुसुमशयनात् = पुष्पमयतल्पपर्यङ्कात्, उत्थाप्यते = उत्थिता विधीयते। औत्सुक्यमेव तां कुसुमशयनात् उत्थापयतीति भावः। स्रस्ताङ्गी—स्रस्तानि (=विपर्यस्तानि) अङ्गानि (= अवयवाः) यस्याः सा तादृशी, परिचारिकया = सेविकया इव, आर्त्या = मानसीव्यथया, सञ्चार्यते = संचरणं कार्यते। यथा काचन सेविका स्वामिनीं सञ्चारयति तथैव आर्तिः तां कादम्बरीमितस्ततो भ्रमणाय विवशां करोतीति भावः।

तस्याः विविधव्यापारान् वर्णयति—मुहुरित्यादिना। पवनेत्यादिः—पवनः (= वायुः तेन प्रेङ्खोलितम् (= प्रकम्पितम्), उत्कण्ठेत्यादिः—उत्कण्ठा (= उत्कलिका) तया, हेतुनेति भावः व्यजनार्थम् (= तालवृन्तार्थम्) यः पल्लवानाम् (= पत्राणाम्) भङ्गः (= त्रोटनम्) तस्माद् यद् भयम् (= भीतिः) तेन कम्पितम् (= धूतम्, वेपितम्) इव, लतामण्डपम् = व्रततीनां गृहम्, मुहुः = बारं बारम्, आश्रयति = अधितिष्ठति। तत्र लतामण्डपे पवनचलनेन कम्पनमुत्पद्यते तदित्थं प्रतीयते यत् उत्कण्ठाशमनार्थं व्यजनानि अपेक्षन्ते तेषां निर्माणाय तस्य पत्राणामुच्छेदो भवितेति विचिन्त्य तल्लतामण्डपं कम्पितमिव प्रतीयते स्मेति बोध्यम्। मुहुः = वारं वारम् पुनर्वा, सत्कोशेत्यादिः—सती (= शोभना) कोशकलिकाः (= कोशयुक्त-कोरकाः) यस्मिन् तत् तादृशम् [कोशः = बीजोत्पत्तिस्थानम्] बिसेत्यादिः—बिसानाम् (= मृणालानाम्) वलयम्

(अनु०) तुमको देखने की इच्छा से [वह अपने] हृदय को फटा हुआ चाहती है। [क्योंकि हृदय फट जाने पर उसमें बैठे हुये आपको वह देख सकती है।] गोत्रस्खलन = गलत नाम लेने के समान जीवन से लज्जा करती है। [गलत नाम उच्चारण करने वाले को जैसे लाज होने लगती है वैसे ही वह जीवन से ही लजाने लगी है।] प्रिय सखी के समान मूर्छा (बेहोशी) द्वारा मन में बार-बार स्पृष्ट की (छुई) जाती है। परिजन के समान रणरणक (उत्सुकता, व्यग्रता) द्वारा काम की वशीभूत वह फूलों की शय्या से उठाई जाती है। सेविका के समान आर्ति (व्यथा) द्वारा ढीले ढाले अङ्गों वाली वह चलाई जाती है। वह हवा द्वारा प्रकम्पित (अतएव) उत्कण्ठा दूर करने के लिये बनाये जाने वाले पंखे के लिये तोड़े जाने वाले पत्तों के भय से मानों कांपते हुए लतामण्डप में

१. ···स्खलितेनेव। २. क्वचित्तु 'मदन' इति नापि पठ्यते। ३. उत्क्रोश०, सत्क्रोश०।

रचिताञ्जलिपुटमिव [1]स्थलनलिनीवनमधिशेते। मुहुरुद्बन्धनभयादिव निरन्तरकिसलयाच्छादित-लतापाशमुद्यानमासेवते। मुहुर्निप[2]तदविरतरोदनाताम्रनयनप्रतिबिम्बं स्रस्तरास्तरणत्रासनिमज्जत्कमलमिवोपवनसरोजलमवगाहते। तस्मादुत्थाय तमालवीथीमुपैति। तस्यां

(= कटकम्) तस्य संरक्षणार्थम् (= परित्राणार्थम्) रचितम् (= विहितम्) अञ्जलिपुटम् (= बद्धकरपुटम्) येन तम् तादृशम्, इव, स्थलकमलिनीवनम् = स्थलकमलिनीकाननम्, अधिशेते = अधिशयनं करोति। बिसानां त्रोटनं कृत्वा वलयानां निर्माणं न क्रियेत एतदर्थम् अञ्जलिपुटं निर्माय एव स्थितं स्थलकमलिनीवनं साश्रयतीति भावः। बिसवलयसंरक्षणार्थम्—इत्यस्य बिसानां वलयनिर्माणार्थं य उच्छेदः सम्भाव्यते तस्मात् संरक्षणार्थमित्यर्थं एव समीचीनः।

मुहुरिति। उद्बन्धनभयात् = गलपाशविधानभीतेः (रज्ज्वादिनाऽत्मानम् उद्बध्य मरणं प्राप्नुयामि'ति भीतेः)। इव, निरन्तरेत्यादिः—निरन्तरम् (= अव्यवहितम्, सघनम्) यथा स्यात् तथा, किसलयैः (= नवपल्लवैः) आच्छादितः (= आवृतः) लतानाम् (= व्रततीनाम्) पाशः (= जालकम्) यद्वा—लता एव पाशः, यस्मिन् तत् तादृशम्, उद्यानम् = उपवनम्, मुहु = बारं बारम्, आसेवते = आश्रयति। किसलयानां सघनत्वेन रज्जूरूपलताभागस्य दर्शनमेव न जायते। अतः तस्याः सखीभिः तादृशे उपवने सा नीता यत्र कथमपि लतादिना बद्ध्वा मरणं नैव सम्भवति स्मेति बोध्यम्। कीदृशी कल्पना भूषणभट्टस्य।

मुहुरिति। निपतदित्यादिः—निपतत् (= निर्गच्छत्) अविरतम् (= निरन्तरम्) यद् रोदनम् (= परिदेवनम्, अश्रुजलपातनम्) तेन आताम्रे (= ईषद् रक्ते, यद्वा—भृशं रक्ते) नयने (= नेत्रे) तयोः प्रतिबिम्बम् (= प्रतिच्छाया) यस्मिन् तत् तादृशम्, अतएव, स्रस्तरे (= शय्यायाम्) यद् आस्तरणम् (= उपरि स्थापनम्) तस्माद् यः त्रासः (= भयम्) तेन निमज्जन्ति (=ब्रुडन्ति) कमलानि (= पद्मानि) यस्मिन् तत् तादृशम्, इव, उपवनसरोजलम्—उपवनस्य (= उद्यानस्य) सरसः (= कासारस्य) जलम् (= सलिलम्) मुहुः = बारं बारम्, अवगाहते = अवगाहनं करोति। अयं भावः—अत्र कादम्बर्याः रक्तनयनयोः जले प्रतिबिम्बः पतति स एवं प्रतीयते यत् शय्यायामुपरि आस्तरणकर्मणि उपयोगार्थं ममोच्छेदनं न स्यादेतदर्थं कमलानि जले ब्रुडितानि भवेयुरिति। अत्रोत्प्रेक्षा।

तस्मादिति। तस्मात् = सरोवरजलात्, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, बहिर्निर्गत्य, तमालवीथीम् = तापिच्छ-नामकवृक्षाणां राशिम्, उपैति = प्राप्नोति। तस्याम् = तमालवीथ्याम्,

बार-बार बैठती है। कमलनाल की कंगन बनाने से रक्षा (बचाव) करने के लिये मानों अञ्जलिपुट बनाये हुए, कोशयुक्त सुन्दर कलियों वाले स्थलनलिनी के वन में बार-बार शयन करती है, लेटती है। [गले में] उद्बन्धन (फांसी) लगाने के भय से मानों घने नवपल्लवों से आच्छादित लताओं के पाश (= फन्दों) वाले उद्यान का बार-बार सेवन करती है, वहाँ जाती है। लगातार रोते रहने के कारण खूब लाल-लाल आंखों का प्रतिबिम्ब जिसमें पड़ रहा है ऐसे उपवन के सरोवरजल, जो मानों बिस्तर के बिछौने (चादर) के [निर्माणार्थ तोड़े जाने के] भय से डूबे हुए कमलों से युक्त हो, का बार-बार अवगाहन करती है, उसमें नहाती है। वहाँ से उठ कर, तमालवीथी (तमालवृक्षों वाली गली) में जाती है। वहाँ पर शाखा (डाल, टहनी) का सहारे लिये हुई भुजारूपी लता पर

१. स्थलकमलिनीव। २. निपतित०।

[1]शाखावलम्बोर्ध्वभुजलतानिहित-निमीलितलोचन-वदना चम्पकदलमालिकोद्बद्धदेहाशङ्का-मुत्पादयन्ती मुहूर्तं विश्रम्य संगीतकगृहमाविशति। ततो मधुरमुरज-रवलय-ललितलास्य लील-योद्वेज्यमाना मयूरीव[2]मुक्तधारं धारागृहमभिपतति। ततोऽपि[3]घनजलधारासीकरपुलकितकाया[4]कदम्बकलिकेव कम्पमाना शुद्धान्तकमलिनीतीरमुपसर्पति। तस्माच्च भवनकलहंसरवमसह-माना प्रस्थिता तत्कालावतारितनूपुरयुगला[5] निपुणप्रेक्षामिव क्षामतामभिनन्दति। वलय-

शाखेत्यादिः—शाखा (= विटपः) अवलम्बः (= आश्रयः) यस्य स तादृशः, गृहीतशाख इत्यर्थः, ऊर्ध्वः (= उन्नतः) चासौ भुजः (= बाहुः) लता (= वल्ली) इव, [लुप्तोपमा] तस्यां निहितम् (= स्थापितम्) अथ च निमीलिते (= मुद्रिते) लोचने (= नेत्रे) यस्मिन् तादृशम्, वदनम् (= आस्यम्) यया सा तादृशी, चम्पकेत्यादिः—चम्पकः (= हेमपुष्पकः) तस्य दलानि (= पत्राणि) तेषां मालिका (= स्रक्) तया उद्बद्धः (= निगडितः) देहः (= कायः गल-प्रदेश इति भावः) तस्य आशङ्काम् (= आरेकाम्) उत्पादयन्ती = जनयन्ती, मुहूः = क्षणम्, विश्रम्य = अवस्थाय, सङ्गीतकगृहम् = सङ्गीतशालाम्, आविशति = प्रविशति। सा तमालतरुशाखा-यामूर्ध्वं भुजं स्थापयित्वा तत्र नेत्रे निमील्य मुखं स्थापयन्ती एवं प्रतीयते स्म यत् चम्पकपुष्पदलानां मालिकया गलप्रदेशं बद्ध्वा स्थिता भवेत्। अत्र बाहौ चम्पकदलमालात्वं संशय्यमानं ज्ञेयम्।

तत इति। ततः = तस्मात् संगीतकगृहात्, मधुरेत्यादिः—मधुरः (= कर्णप्रियः) यः मुरजस्य (= मृदङ्गस्य) रवः (= ध्वनिः) तस्य लयः (= तानविशेषः) तेन ललिता (= मनोहरा) या लास्यस्य (= नृत्यविशेषस्य) लीला (= विनोदः विलासः) तया उद्वेज्यमाना = उद्वेगं प्राप्यमाणा, उद्विजन्तीति भावः, मयूरी = शिखण्डिनी, इव, मुक्तधारम् = स्रवज्जलधारम्, धारागृहम् = जलयन्त्रयुक्तसदनविशेषम्, अभिपतति = उपगच्छति, झटितीति शेषः।

ततोऽपीति। ततः = तस्माज्जलधारागृहाद्, अपि, घनेत्यादिः—घना (= निविडा), या जलधारा (= वारिधारा) तस्याः सीकराः (= जलकणाः) तैः पुलकितः (= रोमाञ्चितः) कायः (= देहः) यस्याः सा तादृशी सा, कदम्बकलिका = तापिच्छस्य कोरकः, इव, कम्पमाना = वेपमाना, शुद्धान्तकमलिनीतीरम्—शुद्धान्तस्य (= अन्तःपुरस्य) या कमलिनी (= कमलपरि-पूर्णनदी) तस्याः तीरम् (= तटम्) उपसर्पति = उपयाति।

तस्माच्चेति। तस्मात् = अन्तःपुर-कमलिनीतीरात्, च, भवनेत्यादिः—भवनस्य (= राज-भवनस्य परिपालिताः) ये राजहंसाः (= कादम्बाः) तेषां रवम् (= ध्वनिम्) असहमाना

बन्द नेत्रों वाले मुख को रक्खे हुई वह चम्पा की पंखुड़ियों (दलों) की माला द्वारा [गले में] फाँसी लगा लेने की आशंका को उत्पन्न कराती हुई, कुछ देर विश्राम कर, संगीतक गृह में प्रवेश कर जाती है, चली जाती है। मृदंग की मधुर ध्वनि की तान (लय) के साथ मनोहर नृत्य लीला से उद्विग्न होती हुई वह मयूरी के समान वहाँ से जलधारायें छोड़ने (बरसाने) वाले धारागृह (फौव्वारे वाले भवन) में पहुँच जाती है। वहाँ जलधारा की घनी बूंदों से रोमाञ्चित शरीरवाली होती हुई वह कदम्बकलिका के समान काँपती हुई, अन्तःपुर की कमलिनी (कमलों वाले सरोवर) के तट के पास पहुँच जाती है। और वहाँ से भी राजभवन के कलहंसों की ध्वनि को सहन न कर पाती हुई, चली हुई, उसी समय पैरों के दोनों नूपुर (पायजेब) को उतारती हुई विद्वानों की तीक्ष्ण

१. शाखावलम्ब्यूर्ध्वं०। २. मुक्तवारिधारम्। ३. जलधरधारा०।
४. कादम्ब०। ५. ···युगलम्।

रचना-[1]म्लापितमृणालकुपितैरिव भवनवापीचक्रवाकमिथुनैः कूजितेन खेद्यते। शय्याविलास-मृदितकुसुम-संचयामर्षितैरिव प्रमदवन मधु[2]करैर्विरुतेनोद्वेज्यते। निर्भरोत्[3]कण्ठागीत-निर्जित-रवरोषितैरिवाङ्गणसहकार-पिकवृन्दैः कलकलेनाकुलीक्रियते। मदन पाण्डुगण्ड-परिभूतगर्भपत्र-

(= सोढुमशक्नुवती) प्रस्थिता (= प्रस्थानं कृतवती, चलिता) सती, तत्कालेत्यादिः—तत्कालम् (= तदानीम्), अवतारितम् (= अपसारितम्, दूरीकृतम्) नूपुर-युगलम् (= पादकटकयुग्मम्) यया सा तादृशी, निपुणप्रेक्षाम् = प्रवुद्धजनप्रतिभाम्, इव, क्षामताम् = कृशताम्, अभिनन्दति = स्तौति, प्रशंसति। देहे कृशतामुपगतेऽलङ्कारादीनामपसारणं सुकरं जायते इति विचिन्त्य कृशतां बहु मन्यते इति भावः।

वलयेति। वलयेत्यादिः—वलयम् (= कटकम्) तस्य रचना (= निर्माणम्) तया म्लापितानि (= म्लानतां प्रापितानि) यानि मृणालानि (= कमलनालानि) तेन कुपितैः (= क्रुद्धैः), इव, भवनेत्यादिः—भवनस्य (= राजसदनस्य) या वापी (= दीर्घिका) तस्याः चक्रवाकमिथुनानि (= रथाङ्ग-युग्मानि) तैः, कर्तृभिः, कूजितेन = ध्वनिना, खेद्यते = खेदं प्राप्यते, खिन्ना विधीयते इति भावः। अयं भावः—गृहवापी-कमलिनीमृणालानि स्ववलयरचनया मलिनानि विदधाना कादम्बरीमवलोक्य तत्रत्याः चक्रवाकाः कुपिता भूत्वा तारतरध्वनिना तां खेदयन्तीति बोध्यम्। उत्प्रेक्षात्र।

शय्येति। शय्येत्यादिः—शय्यायाम् (= पल्यङ्के) यो बिलासः (= इतस्ततः परिवर्तन-मवयवानाम्) तेन मृदितः (= मर्दितः) यः कुसुमसञ्चयः (= पुष्पराशिः) तेन हेतुना अमर्षितैः (= क्रोधं प्राप्तैः), इव, प्रमदवन-मधुकरैः = अन्तःपुरोद्यान-भ्रमरैः, विरुतेन = स्वरवेण, उद्वेज्यते = उद्वेगं प्राप्यते, उद्विग्ना विधीयते। भ्रमराणां प्रियाणि पुष्पाणि शयायामुपयुज्य मर्दयित्वा च तेषामप्रियं कृतवतीति ते भ्रमराः तीव्रतरेण स्वनेन तामुद्वेजयन्तीति भावः। अत्रा-प्युत्प्रेक्षा।

निर्भरेति। निर्भरेत्यादिः—निर्भरा (=अतिमात्रा, अत्यधिका) या उत्कण्ठा (= औत्सुक्यम्) तया यद् गीतम् (= गानम्) तेन निर्जितः (= न्यक्कृतः) यो रवः (= स्वनः) तेन रोषितैः (= कुपितैः), इव, अङ्गणेत्यादिः—अङ्गणम् (= प्राङ्गणम्, अजिरम्) तत्र यः सहकारः (= आम्रपादप) तत्रस्थाः पिकाः (= कोकिलाः) तेषां वृन्दैः (= समुदायैः), कलकलेन = कोलाहलेन, आकुलीक्रियते = व्याकुलीक्रियते। अयम्भावः—सा कादम्बरी भवद्-विषयिणीमुत्कण्ठां दूरीकर्तुं यदा मधुराणि गीतानि गायति तदा तेषां ध्वनिना अजिरस्थाम्रवृक्ष-निवासिनां कोकिलानां ध्वनि पराजितो भवति, लोकाः तेषां ध्वनिमुपेक्ष्य गीतमेवाकर्णयन्ति तेन ते पिकाः कादम्बरीमवलोक्य कोलाहलध्वनिना तां व्याकुलीकुर्वन्तीति बोध्यम्।

बुद्धि के समान क्षमता (दुर्बलता, तीक्ष्णता) की प्रशंसा करने लगती है। कंगनों (वलयों) की रचना में [प्रयुक्त होने के कारण] म्लान (मुरझाये) कर दिये गये मृणालों (= कमलनाओं) के कारण कुपित हुए से, घर की बावड़ी के चकवी-चकवा के मिथुनों द्वारा कूजित (पी-पी ऐसी ध्वनि) से खिन्न = दुःखी कर दी जाती है। पलंग पर विलास के कारण कुचल दिये गये फूलों के ढेर के कारण क्रुद्ध हुए से, प्रमदवन के भौरों द्वारा गुंजनध्वनि से उद्वेजित (परेशान) कर दी जाती है। अतिशय उत्कण्ठा के गीतों के गाये जाने से [अपने गीतों की] आवाज के पराजित (फीकी) कर दिये जाने से नाराज हुए से, आंगन के आम्र वृक्षों की कोयलों के समूह द्वारा कलकल (कू-कू) ध्वनि से व्याकुल कर दी जाती है। कामदेव द्वारा श्वेत-पीत बनाये गये गण्डस्थल के कारण [अपने]

१. आम्लायित०। २. …मधुकरकुलैः। ३. उत्कर्ष०।

कान्तिभिर्विद्धे वोद्यानकेतकीसूचिभिरुद्भूतवेदना भवति। एवंप्रायैश्च मदनदुश्चेष्टितायासैः परिणाममुपैति दिवसः।

चन्द्रोदये चास्यास्तिमिरमयीवापैति धृतिः। कमलमयमिव दूयते हृदयम्। कुमुदमय इव विजृम्भते मकरकेतनः। [1]चन्द्रकान्तमयमिव प्रक्षरति नयनयुगलम्। उदधिजल-

---

मदनेति। मदनेत्यादिः—मदनेन (= कामेन) पाण्डुः (= श्वेतपीतः) यः गण्डः (= कपोलफलकम्) तेन परिभूता (= पराजिता) गर्भपत्राणाम् (= मध्यवर्त्तिदलानाम्) कान्तिः (= रुक्, शोभा) यासां ताभिः, तादृशीभिः, उद्यानकेतकी-सूचिभिः = उपवन-केतकीनां त्रिपत्रकैः, अग्रिमभागस्थितकण्टकैः, विद्धा = क्षता, इव, उद्भूतवेदना—उद्भूता (= प्रकटिता) वेदना (= पीडा) यस्याः सा तादृशी, अन्यजनबोध्यपीडायुक्तेति भावः, भवति = जायते। तस्याः पाण्डुवर्णेन कपोलेन उद्यानकेतकीनां गर्भपत्राणि तिरस्कृतानि भवन्तीति मत्वा केतक्यः स्वसूचिभिस्तां भिन्दन्ति, तदा तस्या वेदना सर्वजनबोध्या भवतीति बोध्यम्। एवं-प्रायैः=एतादृशैः, च, मदनदुश्चेष्टितायासैः—मदनस्य (=कन्दर्पस्य) यानि दुश्चेष्टितानि (= दूषित-व्यापाराः) तेषाम् आयासैः (= प्रयासैः, परिणामैरिति भावः) दिवसः = दिनम्, परिणामम् = परिणतिम्, समाप्तिम्, उपैति = प्राप्नोति।

सा कादम्बरी दिवसकाले कां कां पीडामनुभवतीति कथयित्वा सायंकालानन्तरं कीदृशी दशा जायते इति वर्णयितुमाह—चन्द्रोदये चेत्यादिना। चन्द्रोदये = शशिनः समुद्गमे, सति, च, अस्याः = एतस्याः कादम्बर्याः, तिमिरमयी = अन्धकाररूपा, इव, धृतिः = धीरता, धैर्यम्, अपैति = पलायते, दूरीभवति। चन्द्रोदये तिमिरस्य नाशात् तस्याः धृतेश्चेति साम्यम्। [परन्तु इव शब्द उत्प्रेक्षावाची एव। अग्रेऽपि वाक्येषु 'इव' शब्द उत्प्रेक्षायामेव बोध्यः। द्रव्यगुणक्रियाणामुत्प्रेक्षात्वं यथाप्रयोगमवगन्तव्यम्।] अस्याः, हृदयम् = चित्तम्, कमलमयम् = पद्ममयम्, तन्निर्मितम् इव, दूयते = खिन्नं भवति, सङ्कुचितं भवतीति भावः। चन्द्रोदये यथा कमलानि संकुचितानि भवन्ति तथैवास्या हृदयमपीति तद्भावः। कुमुदमयः = कैरवात्मकः, इव, मकरकेतनः = कामदेवः, विजृम्भते = वर्द्धते, विकासं प्राप्नोति। चन्द्रोदये कैरवाणां विजृम्भणात् मदनेन तुल्यता बोध्या। नयनयुगलम् = नेत्रद्वन्द्वम्, चन्द्रकान्तमयम् = इन्दुकान्तमणिघटितम्, इव, प्रक्षरति = स्रवति, द्रवितं भवति। चन्द्रोदये चन्द्रकान्तमणेः प्रक्षरणं यथा जायते तथैव तस्याः नयनयोरपि अश्रुजलं क्षरतीति साम्यं बोध्यम्।

पत्तों के भीतर की पराजित की गई कान्तिवाली उद्यान के केवड़ा के पुष्प की सुइयों द्वारा बींधी गई सी वह वेदनायुक्त हो जाती है। और प्रायः इसी प्रकार की कामदेव की कुत्सित चेष्टाओं से उत्पन्न कष्टों से दिन बीतता है।

चन्द्रोदय होने पर उस कादम्बरी का धैर्य ऐसे भाग जाता है मानों अन्धकारमय (अंधेरे से बना हुआ) हो। हृदय ऐसे दूषित हो जाता है मानों कि कमलमय (कमलों से बना हुआ) हो। कामदेव [का प्रभाव] ऐसे बढ़ने लगता है मानों कुमुदमय (कुमुदों से बना हुआ) हो। दोनों आँखें ऐसे पिघलने = बहने लगती हैं मानों चन्द्रकान्तमणिमय (चन्द्रकान्तमणि से निर्मित) हों।

---

१. चन्द्रान्तमणिमयम्।

मयानीय वर्धन्ते [1]श्वसितानि । चक्रवाकमया इव विघटन्ते मनोरथाः । शीतज्वरातुरेव मणिकुट्टिमोदरसंक्रान्तस्य तुषारकिरणमण्डलस्योपरि वेपथुलुलिततरलाङ्गुलिनिकरं करयुगलं प्रसारयन्ती [2]शशिसंतापमनक्षरं कथयति । सीत्कारेषु दशनांशुव्याजेन मन्मथशरज[3]र्जरितहृदयप्रविष्टानिन्दुकिरणानिवोद्गिरति । वेपथुषु व्यजनीकृतकदलीदलकम्पोपदेशमिव गृह्णाति ।

श्वसितानि = श्वासाः, उदधि-जलमयानि = सागर-सलिलात्मकानि, इव, वर्धन्ते = एधन्ते । चन्द्रोदये पर्वविशेषे सागरे यथा जलवृद्धिर्जायते तथैव तस्याः श्वासवायवोऽपि तदा वर्धन्ते इति साम्यम् । मनोरथाः = अभिलाषाः, चक्रवाकमयाः = रथाङ्गपक्षिस्वरूपाः, इव, विघटन्ते = परस्परं वियुज्यन्ते, छिन्नभिन्ना भवन्तीति भावः । चन्द्रोदये चक्रवाकमिथुनानि वियुक्तानि भूत्वा रात्रिं यावत् कष्टं सहन्ते तथैव तस्याः मनोरथा अपि तस्या दूरीभूय नष्टा इव प्रतीयन्ते इति बोध्यम् ।

शीतज्वरातुरेति । शीतज्वरातुरा = शीतप्रभावजनितज्वरव्याकुला, इव, मणीत्यादिः—मणिकुट्टिमस्य (= मणिनिबद्धभूभागस्य) उदरम् (= अन्तवर्तीदेशः) तस्मिन् संक्रान्तस्य (= प्रतिबिम्बितस्य) तुषारकिरणमण्डलस्य = चन्द्रबिम्बस्य, उपरि = ऊर्ध्वम्, वेपथ्वित्यादिः—वेपथुः (= कम्पः) तेन लुलितः (= चलितः) तरलः (= चञ्चलः) अङ्गुलीनाम् (= करशाखानाम्) निकरः (= समूहः) यस्य यस्मिन् वा तत् तादृशम्, करयुगलम् = हस्तद्वयम्, प्रसारयन्ती = विस्तारयन्ती, विस्तीर्णं स्थापयन्ती, शशिसन्तापम् = इन्दुदाहम्, अनक्षरम्—शब्दहीनम्, यथा स्यात् तथा तथा मूकमिति भावः, कथयति = वदति । कुट्टिमे चन्द्रप्रतिबिम्बं विलोक्य कादम्बरी तत्र कम्पमानं स्वहस्ताङ्गुलिराशिं संस्थाप्य मूकभावेन चन्द्रसन्तापमेव सूचयतीति भावः । एतेन चन्द्रोदये तस्याः पीडातिरेकः प्रतीयते ।

सीत्कारेष्विति । सीत्कारेषु = सीत्कृतेषु, दशनांशुव्याजेन—दशनाः (= दन्ताः) तेषाम् अंशवः (= किरणाः) तेषां व्याजेन (= छलेन) मन्मथेत्यादिः—मन्मथः (= मदनः) तस्य शराः (= बाणाः) तैः जर्जरितम् (= छिन्नं भिन्नं कृतम्) यद् हृदयम् (= चित्तम्) तस्मिन् प्रविष्टान् (= कृतप्रवेशान्, स्थितान्) इन्दुकिरणान् = चन्द्ररश्मीन्, इव उद्गिरति = वमति । मदनशरैस्तस्या हृदयं जर्जरीकृतम्, अत एव तत्र चन्द्रकिरणाः स्थातुमशक्ताः । अतः सीत्कारावसरे दशनांशूनां मिषेण सा तान् बहिष्करोतीति भावः ।

वेपथुष्विति । वेपथुषु = कम्पेषु, व्यजनीकृतेत्यादिः—व्यजनीकृतानि (= तालवृन्तीकृतानि) यानि कदली-दलानि (= रम्भापत्राणि) तेभ्यः कम्पस्य (= वेपथोः) उपदेशम् (= शिक्षाम्),

---

सासें ऐसे बढ़ने [लम्बी-लम्बी होने] लगती हैं मानों समुद्र-जलमय (समुद्र के जल से बनीं) हों । मनोरथ ऐसे टूटने = अलग-थलग होने लगते हैं मानों चक्रवाकमय (= चकवी-चकवा पक्षियों से बने) हों । शीतज्वर से व्याकुल (रोगिणी स्त्री) के समान वह मणिजटित फर्श में प्रतिबिम्बित हुए चन्द्रमण्डल के ऊपर कँपकपी के कारण हिलती हुई सुन्दर अङ्गुलियों के समूहवाले दोनों हाथों को फैलाती (पसारती, रखती) हुई मूकरूप से अर्थात् बिना कुछ कहे हुए चन्द्रमा के सन्ताप को कह देती है । सी-सी करने (सिसकारियाँ लेने) में दाँतों की किरणों के बहाने से कामदेव के बाणों [के प्रहार] से जर्जरित हृदय में प्रविष्ट हुईं सी चन्द्रकिरणों को उगलती है । कँपकँपी में पंखा

---

१. प्रवर्धन्ते । २. शशिनः सन्तापम् । ३. निर्जित० ।

विजृम्भिकासु [1]कण्ठागतजीवितनिर्गममार्गमिवोपदिशति । गोत्रस्खलितविलक्षस्मितेषु हृदय-[2]निपतितमदनशरपुष्परज इव वमति । बाष्पमोक्षेषु स्थूलाश्रुसंतानवेणिकावाहिनी विलीयत इव । शशिमणिदर्पणेषु विस्फुरितानेकप्रतिबिम्बनिभेन शतधेव विदलति । कुसुमशयनेषु परिमल-लालसागतालिमालाकुलिता धूमायत इव । अमलकमलस्रस्तरेषु[3] किञ्जल्करजः-

---

इव, गृह्णाति = आदत्ते । विजृम्भिकासु = विजृम्भणेषु, कण्ठेत्यादिः—कण्ठः (= गलप्रदेशः) तत्रागतम् (= सम्प्राप्तम्) यत् जीवितम् (=जीवनम्) तस्य तस्मै वा निर्गमस्य (=निःसरणस्य) मार्गम् (=पन्थानम्), इव, उपदिशति = शिक्षयति, दर्शयति । गोत्रेत्यादिः—गोत्रस्य (= अभीष्ट-नाम्नः) स्खलनम् (= अन्यथोच्चारणम्) तस्मिन् विलक्षाणि (= लज्जासहितानि) स्मितानि (= ईषद्हास्यानि) तेषु, हृदयेत्यादिः—हृदये (=चित्ते) निपतिताः (= आलग्नाः, प्रविष्टाः) ये मदनस्य (= कामस्य) शराः (= बाणाः) तेषां पुष्परजः (= कुसुमपरागम्), इव, वमति = उद्गिरति । तस्याः तदा स्मितानि नैव सन्ति अपि तु कामदेवपुष्पबाणपरागमेव हृदयाद् बहिष्करोतीति भावः । बाष्पमोक्षेषु—बाष्पः (= अश्रुजलम्) तस्य मोक्षः (= मोचनम्, परित्यागः), तेषु, स्थूलेत्यादिः—स्थूलानि (=दीर्घाकाराणि, पृथुलानि) यानि अश्रूणि (=नेत्रा-म्बूनि) तेषां सन्तानः (= परम्परा, अनवरतधारा) तस्य वेणिका (= प्रवाहः) तां वाहयति (= प्रवाहयति) इत्येवं शीला, सती विलीयते = द्रवीभवति, इव । 'तिरोधीयते' इति व्याख्यानं त्वसम्बद्धम् । यदा सा रुदती अश्रुमोचनं करोति तदा इदं प्रतीयते यत् सा स्थूलाश्रु-प्रवाहवती नदी प्रवाहयन्ती स्वयं द्रवतां प्राप्नोति । शशिमणिदर्पणेषु = चन्द्रकान्तमणिनिर्मितादर्शेषु, विस्फुरितेत्यादिः—विस्फुरितानि (= प्रतिभासितानि) अनेकानि (= बहूनि) यानि प्रतिबिम्बानि (= प्रति-च्छायाः) तेषां निभेन (=मिषेण) शतधा (=शतसंख्याप्रकारेण, अनेकरूपेणेति भावः), विदलति = खण्डीभवति, इव । तत्र चन्द्रकान्तिमणिषु चन्द्रोदये क्षरणं जायते, तेषु एव तस्याः प्रतिबिम्बानि अपि पतन्ति । तेनेदं प्रतीयते यत् सा बहुषु खण्डेषु शनैः शनैः विभक्ता इव जायते इति बोध्यम् । कुसुमशयनेषु = पुष्पमयीषु शय्यासु, परिमलेत्यादि—परिमलः (=सौरभम्) तस्य लालसा (=तृष्णा) तया आगताः (= सम्प्राप्ताः) ते अलयः (= भ्रमराः) तेषां या माला (= स्रक्, समूहः) तया आकुलिता (= व्याकुलीकृता, व्यग्रा), सती, धूमायते = धूमवदाचरति, इव, धूमसमूह इव प्रतीयते । भ्रमरसमूहपरिव्याप्ता सा धूम इव प्रतीयते । दाहकाले धूमस्य दर्शनात् साम्यमुत्प्रेक्षितम् । अमलकमल-स्रस्तरेषु—अमलानि (=स्वच्छानि) यानि कमलानि (=पद्मानि) तेषां स्रस्तरेषु (=संस्तरेषु, शयनीयेषु), किञ्जल्केत्यादिः—किञ्जल्कम् (=कमलपरागः) तस्य रजसाम् (=धूलीनाम्) पुञ्जः (=समूहः)

बनाये गये केला के पत्तों से काँपने की शिक्षा सी ग्रहण करती है । जमुहाइयों में कण्ठ (गले) तक आये हुए प्राणों को निकलने का मार्ग सा उपदिष्ट करती है । गोत्रस्खलन=गलत नाम के उच्चारण से लज्जा के कारण होनेवाली मुस्कराहटों में हृदय में लगे हुए कामदेव के बाणों के पुष्पपराग सा उगलती है, बिखेरती है । आँसू बहाने में बड़े-बड़े आँसुओं के समूह के प्रवाह को बहाने वाली हुई वह विलीन सी हो जाती है, पिघलने सी लगती है । चन्द्रकान्त मणियों से निर्मित दर्पणों में फैलते (गिरते) हुए अनेक प्रतिबिम्बों के बहाने से सैकड़ों रूप में विदीर्ण सी हो जाती है । फूलों की शय्याओं पर [स्थित वह] सुगन्ध के लोभ से आये हुए भौंरों के समूह से घिरी हुई वह धुयें सी लगने लगती हैं । स्वच्छ कमलों के बिस्तरों पर किंजल्क (कमलविशेष) के पराग से लाल-पीली बनी हुई जलने सी लगती हैं । पसीना [सुखाने] के उपचारों में श्वेत कपूर के चूर्ण के रज (पाउडर)

---

१. कण्ठनाल० । २. निष्पतित० । ३. प्रस्तरे, संस्तरेषु ।

पुञ्ज[1]पिञ्जरिता [2]ज्वलतीव। स्वेदप्रतीकारेषु विशदकर्पूरक्षोदधूलीधवलिता भस्मीभवतीव। न विज्ञायते किं मुग्धतया किं विलासेन किमुन्मादेन संगीतकमृदङ्गध्वनितेषु केकाशङ्कया धारागृहमरकतमणिमयूरमुखानि स्थगयति। दिवसावसानेषु विश्लेषभीता मृणालसूत्रैश्चित्रभित्तिविलिखितानि चक्रवाकमिथुनानि संघट्टयति[3]। चिन्तारतारम्भेषु मणिप्रदीपानवतं-

---

तेन पिञ्जरिता (=पीतरक्तीकृता) सती, ज्वलति=दह्यते, इव। शय्यायां कमलपरागैरावृततया सा श्वेतपीतीभूता सती ज्वलन्तीव प्रतीयते इति भावः। क्रियोत्प्रेक्षा। स्वेदप्रतीकारेषु—स्वेदः (= घर्मजलम्) तस्य प्रतीकारेषु (= उपचारेषु) स्वेद-शोषणार्थं क्रियमाणेषु क्रियाकलापेष्विति भावः, विशदेत्यादिः—विशदः (= निर्मलः) यः कर्पूरक्षोदः (= घनसारचूर्णम्) तस्य धूल्या (= रजसा) धवलिता (=शुभ्रीकृता), सती, भस्मीभवति = भस्मरूपं प्राप्नोति, इव। तस्याः शरीरे यदा स्वेदो जायते तदा तस्य परिशोषणार्थं कर्पूरचूर्णस्य एतावान् प्रयोगो विधीयते यत् सा परिवृता जायते तदा सा भस्मरूपतां प्राप्नुवतीव प्रतीयते इति भावः। रम्यः कल्पना अत्र भूषण-भट्टस्य। क्रियोत्प्रेक्षालङ्कारः।

न विज्ञायत इति। न=नैव,विज्ञायते=अवबुध्यते, 'मया लोकैर्वा' इति शेषः। किम् मुग्धतया=सरलस्वभावतया, किम्, वा, विलासेन = विभ्रमेण, किम् वा, उन्मादेन = चित्तविक्षेपेण सा कादम्बरी, संगीतकमृदङ्ग-ध्वनितेषु-सङ्गीतके (= संगीतानुष्ठानकाले) मृदङ्गानाम् (=मुरजानाम्) ध्वनितेषु (= शब्दितेषु), केकाशङ्कया = मयूरवाणीभ्रान्त्या, धारागृहेत्यादिः—धारागृहस्य (= जलधारायुक्तसदनविशेषस्य) मरकतमणीनाम् (= नीलमणिनिर्मितानाम्) मयूराणाम् (=शिखण्डिनाम्) मुखानि (=आस्यानि) स्थगयति=पिधत्ते। सा मृदङ्गध्वनिं श्रुत्वा मयूरध्वनित्वेन सम्भाव्य तादृशध्वनि-समुत्पादकानां मरकतमणिनिर्मित-मयूराणां मुखानि आवृणोति येन ते शब्दं कर्तुं न प्रभवेयुरिति। परन्तु इदं सा कथं करोतीति न कोपि ज्ञातुं प्रभवतीति तद्भावः।

दिवसावसानेष्विति। दिवसावसानेषु—दिवसस्य (= दिनस्य) अवसानेषु (=समाप्तिषु), सन्ध्यासमयेष्विति भावः, विश्लेषभीता = विश्लेषः (= वियोगः) तस्माद् भीता (= भया-क्रान्ता) सती, मृणालसूत्रैः = बिसानां तन्तुभिः, चित्रभित्ति-विलिखितानि = चित्रनिर्माणार्थ-निर्मितकुड्येषु निर्मितानि, चक्रवाकमिथुनानि = द्वन्द्वचरयुगलानि, संघट्टयति = संयोजयति। येन रात्रौ तेषां परस्परं वियोगो न जायेतेति भावः। चिन्तारतारम्भेषु— चिन्तया (= चिन्तन-मात्रेण, ध्यानद्वारा) ये रतस्य (= सम्भोगस्य) आरम्भाः (= उपक्रमाः, प्रवृत्तयः) तेषु, मणिप्रदीपान् = मणिमयदीपकान्, अवतंसोत्पलैः—अवतंसाः (= आभूषणानि) तद्रूपाणि यानि उत्पलानि (= कमलानि), आभूषणरूपेण कर्णादौ धृतानि यानि कमलानि तैरिति भावः,

---

से श्वेत की गई वह भस्म सी लगती है। यह नहीं समझ में आ पाता है कि—क्या भोलेपन के कारण, या विलास के कारण, या उन्माद के कारण-संगीतक में बजते हुए मृदङ्गों की ध्वनियों में मोर की आवाज (केका) की आशंका से अर्थात् वे बोलने न लग जांय इस डर से धारागृह (फुव्वारे वाले भवन) के मरकत मणि के मोरों के मुखों को [अपने हाथों से] ढँक देती है। दिन के अन्त में अर्थात् सायंकाल होने पर [दोनों चकवी-चकवा के] वियोग के भय से डरी हुई वह चित्र-भित्ति (दीवाल पर बने चित्रों) में बनाये गये चकवी-चकवा के जोड़ों को मृणालसूत्र से बाँध देती है। मानसिक संभोग कियाओं के आरम्भ होने पर मणिमय प्रदीपों को [बुझाने के लिये]

---

१. जर्जरिता। २. उज्ज्वलति। ३. संघटयति।

सोत्पलैस्ताडयति। उत्कण्ठालेखेषु संकल्पसमागमाभिज्ञानानि लिखति। दूतीसंप्रेषणेषु स्वप्नापराधोपालम्भान्संदिशति।

अपि च, तस्याश्चन्दनपरिमल इव दक्षिणानिलेन सह समागच्छति मोहः। चक्राह्वशाप इव निशया सहापतति प्रजागरत्रासः। प्रतिरुतानीव बलभीकपोतकूजितैः सहाविर्भ-

ताडयति = प्रहरति, तेषामुपशमनार्थमिति शेषः, येनान्धकारे निर्बाधरतानन्दो जायेतेति भावः। उत्कण्ठालेखेषु—उत्कण्ठया (=औत्सुक्येन) ये लेखाः (=लेखनानि, लेखनाधारभूतानि पत्राणि) तेषु, संकल्पेत्यादिः—सङ्कल्पः (=कल्पना, चिन्तनम्) तेन तत्र वा ये समागमाः (=सम्मिलनानि) तेषाम्, अभिज्ञानानि (= स्मारकचिह्नानि) लिखति = लिपिविषयीकरोति। दूतीसम्प्रेषणेषु—दूतीनाम् (=सन्देशवाहिकापरिचारिकाणाम्) सम्प्रेषणेषु (=प्रियतम-समीप-प्रेषणकर्मसु), स्वप्नेत्यादिः—स्वप्ने (= स्वापावस्थायाम्) ये अपराधाः (= आगांसि, प्रियतमेन विहितानीति शेषः) तेषाम् उपालम्भान् (= उपालम्भविषयकवचनानि) सन्दिशति =सन्देशरूपेण सूचयति, कथयति। प्रियतमेन यदि स्वप्नेऽपि कोपि अपराधो विहितस्तस्योपालम्भं सा जाग्रदवस्थायां दूतीमाध्यमेन करोतीति भावः। एतेन कादम्बर्याः विक्षिप्तावस्था द्योतितेति बोध्यम्।

इदानीमुपमया सहोक्त्या च कादम्बरी-व्यथां विशदयति—अपि चेत्यादिना। अपि च= अन्यच्च, इदं बोध्यम्। तस्याः = कादम्बर्याः, चन्दन-परिमलः = मलयज-सौरभम्, इव, दक्षिणानिलेन = दक्षिणवायुना, दक्षिणदिशाया आगतेन पवननेति भावः, सह = सार्धम्, मोहः=मूर्च्छा, समागच्छति = समायाति। दक्षिणपवने प्रवहमाने सति यथा चन्दनसौरभम् आगच्छति तथैव तद्वायुप्रभावात् कादम्बर्या मूर्च्छाप्यागच्छति। सा तदा तमसहमाना मूर्छामुपगच्छतीति भावः। निशया = रात्र्या, सह = साकम्, चक्राह्वशापः = मिथुनचरशापवचनम् 'वियुक्तौ भवताम्' इति रूपम्, इव, प्रजागरत्रासः = जागरणभीतिः, आपतति = उपस्थिता भवति। यथा ते चक्रवाकाः रात्रौ न कदापि सम्मिलन्ति तथैव सापि न कदापि शेते इति भावः।

प्रतिरुतानीति। बलभी-कपोत-कूजितैः—बलभी (= गृहस्योपरितनभागः गोपानसी इति ख्यातः) तस्यां ये कपोताः (= पारावताः) तेषां कूजितानि (= शब्दाः) तैः सह = सार्धम्, प्रतिरुतानि =प्रतिध्वनयः, इव, दुःखानि = कष्टानि, आविर्भवन्ति = प्रकटीभवन्ति। यथा कपोत-कूजितानां प्रतिध्वनयो वर्धन्ते तथैव तस्याः दुःखान्यपीति भावः। मधुकर इति। उपवनेत्यादिः—

कर्णोत्पलों (कान में लगे कमलपत्रों) से मारती है, बुझा देती है। उत्कण्ठा के कारण लिखे गये पत्रों में वह काल्पनिक (अपने में सोंचे गये) समागम के अभिज्ञान (पहचान) के चिह्नों को लिख डालती है। दूतियों के भेजने पर स्वप्नों में [आपके द्वारा किये गये] अपराधों के उलाहनों का सन्देश देती है। [यहाँ कादम्बरी की वियोगावस्था की विभिन्न क्रियाओं का अति सुन्दर तथा स्वाभाविक चित्रण किया गया है। प्रत्येक वाक्य का भावार्थ जानने के लिये संस्कृत-व्याख्या देखनी चाहिए।]

और भी, उसे दक्षिण दिशा के पवन के साथ सुगन्ध के समान मूर्छा (बेहोशी भी) आती है। [भाव यह है कि दक्खिनी हवा के साथ जैसे चन्दन की खुशबू आती है वैसे ही उस कादम्बरी की बेहोशी भी आती है। दक्खिनी हवा चलने पर वह मूर्छित हो जाती है।] रात्रि के साथ चकवो-चकवा के शाप के समान जागने का त्रास (व्याकुलता, कष्ट भी) आ जाता है। बलभी (छज्जे

वन्ति दुःखानि। मधुकर इवोपवनकुसुमामोदेन सहोपसर्पति मरणाभिलाषः। तथा च जलकणिकेव पद्मिनीपलाशस्थिता कम्पते। प्रतिच्छायेव स्फटिकोपलसलिलमणिदर्पण-[1]मणिकुट्टिमतलेषु दृश्यते। नलिनीव शशिकरस्पर्शेन म्लायति। हंसीव सरसमृणालिकाहार-व्यतिकरेण जीवति। शरदिव कुमुदकुवलय[2]कमलसंपर्कमनोहरगन्धवहा सकुसुमबाणा च

उपवनस्य (= उद्यानस्य) यानि कुसुमानि (= पुष्पाणि) तेषाम् आमोदः (= परिमलः) तेन, सह = साकम्, मधुकरः = भ्रमरः, इव, मरणाभिलाषः = मुमूर्षा, उपसर्पति = उपयाति। सन्ध्यायामुपवनपुष्पाणां सौरभेण यथा समाकृष्टाः भ्रमराः तेषां समीपमायन्ति तथैव तस्या मरणस्य इच्छाऽपि आयतीति भावः।

तथा चेति। तथा च = तेनैव प्रकारेण च, अन्यच्च इत्यर्थो वा। पद्मिनीत्यादिः—पद्मिनी-पलाशः (= कमलिनीपत्रम्) तस्मिन् स्थिता (= विद्यमाना) जलकणिका (= सलिलबिन्दुः), इव, कम्पते = वेपते। स्फटिकेत्यादिः—स्फटिकम् (= एतन्नामकः) उपलः (= पाषाणः) सलिलम् (= जलम्) मणिदर्पणः (= मणिनिर्मितादर्शः) मणिकुट्टिमम् (= मणिनिबद्धभूतलम्) एतेषां तलानि (= तलप्रदेशाः) तेषु, प्रतिच्छाया = प्रतिबिम्बम्, इव, दृश्यते = अवलोक्यते, जनैरिति शेषः। स्फटिकोपलादिषु सा कादम्बरी सन्तापनिवृत्त्यर्थं यदा निपतति तदा कार्श्यातिशयात् प्रतिबिम्बमिव जनैः दृश्यते सेति भावः। नलिनी = कमलिनी, इव, शशिकर-स्पर्शेन = इन्दुकिरणसम्पर्केण, म्लायति = म्लानतां प्राप्नोति। कमलिनी चन्द्रकिरणैः म्लाना सूर्यकिरणैश्च विकसिता भवति। एवमेव सापि रात्रौ अधिकं म्लानत्वं प्राप्नोतीति भावः। हंसी = मराली, इव, सरसेत्यादिः—सरसाः (= जलार्द्राः) या मृणालिकाः (= नलिन्यः) तासाम् आहारः (= भोजनम्) तस्य व्यतिकरः (= सम्बन्धः) तेन जीवति = जीवनधारणं करोति, पक्षे—सरसमृणालिकानां हारः = माला, तस्य व्यतिकरेण = सम्बन्धेन धारणेनेति भावः जीवति, शैत्यं प्राप्य जीवनधारणे समर्था भवतीति भावः।

शरदिवेति। कुमुदेत्यादिः—कुमुदानि (= श्वेतकमलानि) कुवलयानि (= नील-कमलानि) कमलानि (= अन्यानि च पद्मानि) तेषां सम्पर्कः (= सम्बन्धः) तस्माद् मनोहरः (= चित्ताकर्षकः) गन्धवहः (= पवनः) यस्यां सा, तथा, सकुसुम-बाणा कुसुमैः (= पुष्पैः) सह (= सहिताः), बाणाः (= वृक्षविशेषाः) ('सरकण्डा' इति हिन्द्याम्) यस्यां सा तादृशी, शरद् = एतन्नाम-कर्तुविशेषः, इव, कुमुदकुवलय-कमलसम्पर्केण मनोहरं गन्धं (= सौरभम्) वहति, सा तादृशी, तथा कुसुमबाणेन = कामदेवेन सहिता, विजृम्भते = दृश्यते, पक्षे इतस्ततः प्रसरति, व्याप्नोति वा

पर रहने) वाले कबूतरों की आवाजों के साथ प्रतिध्वनि के समान दुःख प्रकट हो जाते हैं। बगीचे के फूलों की सुगन्ध के साथ भौंरे के समान मरने की इच्छा भी पास में आ जाती है। (सुगन्ध से अति व्याकुल होकर वह मृत्यु चाहने लगती है।)

इसी प्रकार कमलिनी-पत्र पर पड़ी हुई (स्थित) जल की बूंद के समान काँपती रहती है। परछाईं के समान स्फटिक मणि, जल, मणि के दर्पण तथा मणिजटित भूमितलों पर दिखाई देती है। चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से नलिनी के समान म्लान (मुरझाई) होने लगती है। हंसी के समान गीली मृणालिनी के आहार के सम्बन्ध से जीवित रहती है, पक्ष में—जलयुक्त गीली-गीली मृणालिनी की मालाओं के सम्बन्ध से जीवन धारण करती है। जैसे शरद् ऋतु कुमुद, कुवलय, कमलों के सम्पर्क से मनोहर हुई हवा से युक्त तथा फूलयुक्त बाणों=सरकंडों से युक्त होती हुई फैलती हैं वैसे ही कुसुम,

१. ⋯दर्पणकुट्टिम०, दर्पणतलकुट्टिम। २. कुवलयकमल।

विजृम्भते। चन्द्रमूर्तिरिव कमलप्रकरस्खलितपादपल्लवा संचरन्ती निशां नयति। कुमुदिनीव रजनिकरकिरणकृतप्रजागरा[1] दिवसमलीकनिद्रयातिवाहयति।

मुररिपुजलशयनलीलेव मन्दोच्छ्वसितशेषा निमीलितलोचना किमपि चिन्तयति। मलयनिम्नगेव सरसहरिचन्दनकिसलयलाञ्छितेषु शिलातलेष्वभिपतति। कुन्दकलिकेव

कमलेत्यादिः—कमलानाम् (= पद्मानाम्) प्रकराः (= समूहाः) तेषु स्खलिताः (= स्रस्ताः, पतिताः) पादाः (= किरणाः) ते एव पल्लवाः यस्याः सा तादृशी, चन्द्रमूर्तिः = इन्दुबिम्बम्, इव, सञ्चरन्ती = भ्रमणं कुर्वती, निशाम् = रात्रिम्, नयति = यापयति, सा स्वसन्तापनिवृत्तये कमलपुष्पपत्रेषु भ्रश्यन्ती चलतीति भावः। रजनिकरेत्यादिः—रजनिकरः (=चन्द्रः)तस्य किरणाः (=रश्मयः) तैः कृतः (= विहितः) प्रजागरः (= रात्रिजागरणम्) यया तादृशी, कुमुदिनी = कैरविणी, इव, अलीकनिद्रया = मिथ्यास्वापेन, दिवसम् = दिनम्, अतिवाहयति = यापयति। कुमुदिनी रात्रौ विकसति, दिने च निमीलिता तिष्ठति तथैव सापि रात्रौ जागर्ति दिने च मुधैव शयनस्य यत्नं करोतीति भावः। अत्र सर्वेषु वाक्येषु साम्यवर्णनादुपमा सुस्पष्टा।

मुररिपुजलेति। मुरेत्यादिः—मुरः (= एतन्नामा दैत्यविशेषः) तस्य रिपुः (= शत्रुः, संहारकः, विष्णुरित्यर्थः) तस्य जले (= सागरसलिले) शयनलीला (= शयनक्रीडा), इव, मन्देत्यादिः—मन्दम् (= विलम्बितम्, शनैः शनैरिति यावत्) उच्छ्वसितम् (= उच्छ्वासः) एव, शेषः (= अवशिष्टः) यस्याः सा, उभयत्र साम्यम्, एकत्र विरहकारणात् अपरत्र तन्द्राप्रभावादिति बोध्यम्। अथवा मन्दम् उच्छ्वसितं यस्य स चासौ शेषः (= शेषनागः) यस्यां सा तथा जलशयनलीलेति बोध्यम्। शयने बाधा मा भूदिति शेषनागः शनैः शनैरुच्छ्वासं करोति स्मेति भावः। अथ च, निमीलितलोचना—निमीलिते (= मुद्रिते) लोचने (= नेत्रे) यस्यां सा, अपरत्र—यस्याः सा तादृशी, किमपि = अनिर्वचनीयम्, चिन्तयति = ध्यायति। शयनकाले विष्णोरक्षिणी स्वापप्रभावात् निमीलिते भवतः, कादम्बरी चानवरतजागरणवशात् लोचने निमील्य किमपि ध्यायन्ती आसीदिति बोध्यम्।

मलयेति। मलय-निम्नगा = मलयाचल-सरित्, इव, सरसेत्यादिः—सरसाः (= निबिडरसाः, मध्ये तैलयुक्ता इति भावः) ये हरिचन्दनस्य (= एतन्नामकवृक्षविशेषस्य) किसलयाः (= पत्राणि) तैः लाञ्छितेषु (= चिह्नितेषु, विहितचिह्नेषु), शिलातलेषु (= प्रस्तरतलेषु,

कुवलय, कमलों के सम्पर्क से मनोहर गन्ध वाली और सकुमबाण = कामदेव से युक्त दिखाई देती है। जैसे, चन्द्रबिम्ब कमलसमूह पर गिरते हुये किरणरूपी पल्लवों वाला होता हुआ रात बिता देता है वैसे ही कमलसमूह पर फिसलते हुए पादपल्लवों वाली होती हुई रात बिताती है। कुमुदिनी जैसे रजनीकर = चन्द्रमा की किरणों के कारण जगाई गई (खिलाई हुई) रहती हुई झूठमूठ की नींद से दिन बिताती है वैसे ही चन्द्रमा की किरणों के कारण कराये गये जागरण वाली वह झूठमूठ की नींद से दिन बिताती है।

मुरारि भगवान् विष्णु की जल में शयनलीला के समान मन्द उच्छ्वास वाले शेषनाग वाली अथवा मन्द उच्छ्वास मात्र शेष रह जाने वाली तथा बन्द आखों वाली होती हुई कुछ (अज्ञात) सोंचने लगती है। मलय पर्वत की नदी के समान रसयुक्त हरिचन्दन के पल्लवों से चिह्नित शिलातलों

१. प्रजागार०।

तुषारसिक्तपल्लववर्तिनी वनानिलेनायास्यते। भुजंगीवासह्यसंतापालिङ्गितचन्दना[1] शिखि-[2]शकुन्तकुलकोलाहलेन ताम्यति। हरिणीव केसरिकाननं परिहरति। कुसुमघटितशिलीमुख-मनोहरान्मदनचापादिव प्रमदवनात् त्रस्यति। जानकीव पीतरक्तेभ्यो रजनिचरेभ्य[3]इव चम्प-

प्रस्तराणामुपरि भागेषु) अभिपतति = पातं करोति, एकत्र प्रवाहकारणात् अपरत्र च सन्ताप-शमनार्थं तेषु निपत्य शयाना तिष्ठतीति भावः। कुन्दकलिका = एतन्नामकपुष्प-विशेषस्तस्य कोरक, इव, तुषारेत्यादिः—तुषारेण (= हिमेन) सिक्तानि (= सिञ्चितानि, युक्तानि) यानि पल्लवानि (= पत्राणि) तेषु वर्तते (= विद्यते, तिष्ठति) इत्येवंशीला सती, वनानिलेन = कानन-समुत्थितपवनेन, आयास्यते = आयासं प्राप्यते। कादम्बरी सन्तापशमनार्थं तुषारसिक्तकिसलयमध्ये शेते, तत्र काननपवनेनापि पीडामनुभवतीति भावः।

भुजङ्गीति। भुजङ्गी = सर्पिणी, इव, असह्येत्यादिः—असह्यः (= सोढुमशक्यः) यः सन्तापः (= उग्रतापः) तेन आलिङ्गितम् (= समाश्लिष्टम्) चन्दनम् (= मलयजवृक्षः) यया सा तादृशी, कादम्बरीपक्षे—··· ···चन्दनम् = चन्दनरसः यया सा तादृशी, तापशमनार्थं चन्दनरसं स्वशरीरे प्रयोजयतीति भावः। अथ च, शिखीत्यादिः—शिखिनः (= मयूराः) शकुन्ताः (= अन्यपक्षिणः) च तेषां कुलम् (= समूहः) तस्य कोलाहलः (= कूजनध्वनिः) तेन, ताम्यति = खिद्यते, व्याकुला भवतीति भावः। यथा सर्पिणी भक्षणादिभीत्या मयूरादि-ध्वनिना खेदं प्राप्नोति तथैव सा कादम्बरी अपि तेषामुत्तेजकध्वनिना पीडामेवानुभवतीति साम्यम्। हरिणी = मृगी, इव, केसरिकाननम् — केसरिणः (= सिंहाः) तेषां काननम् (= वनम्) पक्षे—केसरः (= बकुलः) अस्ति अस्मिन् तत् तादृशं यत् केसरि काननम् (= उपवनम्) तत् परिहरति = परित्यजति। एकत्र तत्र मृत्युभीत्या अपरत्र च तत्रासह्योत्तजनासम्भवात् तत् परित्यजतीति साम्यम्। तत्तद्वर्णनीयपदार्थैः सह कादम्बर्याः साम्यं वर्णितम्, तेनोपमालङ्कारः।

कुसुमेति। कुसुमेत्यादिः—कुसुमेषु (= पुष्पेषु) घटिताः (= संलग्नाः) ये शिलीमुखाः (= भ्रमराः) तैः मनोहरात् (= रुचिरात्), पक्षे—कुसुमानि (= पुष्पाणि) एव घटिताः (= रचिता) शिलीमुखाः (= बाणाः) तैः मनोहरात्, मदनचापात् = कन्दर्पधनुषः, इव, प्रमदवनात् = अन्तःपुरोद्यानात्, त्रस्यति = त्रासं प्राप्नोति। प्रमदवने स्थिता कादम्बरी कामदेव-चापनिःसृतबाणजन्यकष्टमनुभवतीति बोध्यम्। अत्र मदनचाप-प्रमदवनयोः साम्यं बोध्यम्। जानकीति। जानकी = सीता, इव, पीतरक्तेभ्यः = पीतरक्तवर्णेभ्यः, चम्पकाशोकेभ्यः—चम्पकाश्च अशोकाश्च तेभ्यः, एतन्नामक-वृक्षविशेषेभ्यः, बिभेति = भयं प्राप्नोति, कादम्बरी इति। पक्षे—पीतम् (= पान-विषयीकृतम्) रक्तम् (= रुधिरम्) यैस्ते तादृशेभ्यः, रजनिचरेभ्यः = राक्षसेभ्यः, इव, बिभ्यति। जानकी यथा रक्तपायिनः = पीतरक्तान् रजनिचरान् विलोक्य भीता भवति तथैव कादम्बरी

पर गिरती है, बैठती है। कुन्द की कली के समान तुषार (ओस) से सींचे हुए पल्लवों के बीच में रहने वाली वन की हवा द्वारा पीडित (व्याकुल) की जाती है। असह्य सन्ताप के कारण चन्दन का आलिङ्गन करने वाली सर्पिणी के समान मोर तथा अन्य पक्षियों के समूह के कोलाहल द्वारा तमतमाने लगती है। हरिणी के समान केसरी = सिंहों के वन को छोड़ देती है, पक्ष में केसरयुक्त वृक्षों वाले वन को छोड़ देती है। फूलों के बने हुए शिलीमुख = बाणों से मनोहर कामदेव के धनुष के समान प्रमदवन [पक्ष में—फूलों पर बैठे हुए शिलीमुखों = भ्रमरों से मनोहर प्रमद वन] से

१. ···चन्दनशाखा। २. शिखिकुल०। ३. अपि।

काशोकेभ्यो बिभेति । उषेव स्वप्नसमागमेनापि कृतार्थतामेति । [1]ग्रीष्मलक्ष्मीरिवानुदिनमतिक्षामा भवति । सर्वथा तस्याः कन्दर्पवेदनयाङ्गानि दिवसैर्जीवितसंधारणवस्तूनि वलयरचनया गृहकमलिनी-मृणालान्युपदेशैः सखीजनवचनानि शय्यापरिकल्पनेनोपवनकुसुमान्यनवरतमोक्षेण मदनायुधानि निःशेषं क्षीणानि ।

पीतरक्तवर्णाणि चम्पकाशोकवृक्षपुष्पाणि विलोक्य भयमनुभवतीति अत्र द्विविधं साम्यम् उपमेयस्य उपमानस्य चेति बोध्यम् । उषा = बाणासुर–सुता, इव, स्वप्नसमागमेन = स्वप्ने सम्मिलेन, अपि, कृतार्थताम् = कृतकृत्यताम्, साफल्यं वा, एति = प्राप्नोति । अत्रेयं कथा—बाणासुरस्य कन्या उषा कदाचित् स्वप्ने प्रद्युम्नस्य पुत्रं श्रीकृष्णस्य पौत्रम् अनिरुद्धं दृष्टवती । तत एव सा तं प्रति अनुरक्ता जाता । ततश्च तस्याः सख्या चित्रलेखया स्वमायाशक्त्या द्वारिकातः शयानमेवानिरुद्धं समानीय उषया सह संयोगः कारितः । इतः पूर्वं तु सा केवलं स्वप्नदर्शनमेव अनुभवति स्मेति भावः ।

ग्रीष्मेति । ग्रीष्मलक्ष्मीः = निदाघश्रीः, इव, अनुदिनम् = प्रतिदिनम्, अतिक्षामा = अतिकृशा, भवति । [अत्र 'ग्रीष्मनिशालक्ष्मीः' इत्येव पाठः उचिततरः, तस्मिन्नतौ निशाया एवानुदिनं कृशत्वमनुभवसिद्धम् । अत्र श्लिष्टोपमाया शृङ्खला अन्तमेति ।]

सर्वथेति । अत्र 'निःशेषं क्षीणानि' इति वाक्यांशः सर्वत्र योजनीयः । सर्वथा = सर्वप्रकारेण, तस्याः = कादम्बर्याः, अङ्गानि = हस्तादयो देहावयवाः, कन्दर्पवेदनया = कामदेवजन्यपीडया, निःशेषम् = अत्यन्तं यथा स्यात् तथा, क्षीणानि = कृशानि जातानि, क्षीणत्वमुपगतानीति सर्वत्र योज्यम् । दिवसैः = दिनैः, जीवित-सन्धारणवस्तूनि = प्राणावलम्बनसाधनानि, यैर्जीवनं धारयितुं शक्यते तानीति भावः, निःशेषं क्षीणानि । वलयरचनया = कटकनिर्माणेन, गृहकमलिनीमृणालानि = भवननलिनीबिसानि, निःशेषं क्षीणानि । उपदेशैः = शिक्षावचनैः, सखीवचनानि = वयस्याजनसुभाषितानि, निःशेषं क्षीणानि । शय्या-परिकल्पनेन = पल्यङ्कविरचनेन उपवनकुसुमानि = उद्यानपुष्पाणि, निःशेषं क्षीणानि । अनवरतमोक्षेण = सततं यथा स्यात् प्रहारेण, मदनायुधानि = कामदेवशस्त्राणि, कामबाणाः इति भावः, निःशेषम् = अत्यन्तं यथा स्यात् तथा, क्षीणानि = क्षीणत्वं प्राप्तानि । कन्दर्पस्य एतावती वेदना जायते स्म यथा तस्याः सर्वाणि अङ्गानि कृशतां प्राप्तानि । वियोगदिवसा एतावन्त अभूवन् यैः जीवनधारणार्थमुपयोगीनि साधनानि क्षीणानि कृतानि । एवमेवान्यवाक्येष्वप्यभिप्रायो बोध्यः । अनेक-वाक्यार्थानामेकत्रान्वयस्य इदमुत्तममुदाहरणम् ।

भयभीत हो जाती है । पीतरक्त (खून पी लेने वाले) राक्षसों से जैसे जानकी सीता डरती है वैसे ही पीत-रक्त (पीले और लाल) चम्पक और अशोक वृक्षों से वह डर जाती है । केवल स्वप्न में होने वाले समागम से भी उषा के समान कृतकृत्य हो जाती है । ग्रीष्म ऋतु [की रात्रि] की शोभा के समान प्रतिदिन और अधिक दुर्बल = क्षीण, छोटी होती जाती है । सर्वथा (सभी प्रकार से) कामजन्य वेदना के कारण उस कादम्बरी के अङ्ग [पूर्ण रूप से क्षीण हो गये], विरह के दिनों के कारण प्राण धारण करने में उपयोगी वस्तुयें [पूर्णतया क्षीण = समाप्त हो गईं], कंगन बनाने के कारण गृहकमलिनी के मृणाल [क्षीण = समाप्त हो गये], उपदेशों के कारण सखीजनों के वचन [पूर्ण रूप से क्षीण = समाप्त हो गये], शय्या = पलंग का निर्माण करने के कारण उपवन के फूल [पूरी तरह क्षीण = समाप्त हो गये], लगातार छोड़ते = प्रहार करते रहने के कारण कामदेव के बाण पूरी तरह क्षीण = समाप्त हो गये ।

---

१. ग्रीष्मनिशालक्ष्मीः । अयमेव पाठः साधीयान्, ग्रीष्मे निशाया एवानुदिनं क्षामत्वादिति बोध्यम् ।

किं बहुना, संप्रति तस्यास्त्वन्नाम्ना सर्वसखीजनस्त्वत्संबद्धानि सर्वरहस्यानि त्वत्समागमोपायान्वेषिणः सर्वसमवायास्त्वद्वार्त्तोपलम्भनतत्पराः सर्वप्रश्नास्त्वद्वृत्तान्तमुखरः [1]सर्व-परिजनस्त्वदालापनिर्मिताः सर्वविनोदास्त्वदाकारमयश्चित्रकलाभ्यासस्त्वदुपालम्भगर्भा मागधीमङ्गलगीतयस्त्वद्दर्शनपुनरुक्ताः स्वप्नास्त्वत्परिहासप्राया मदनज्वरदाहविप्रलापा-

---

इदानीमुपसंहरन्नाह केयूरकः किं बहुनेत्यादिना। बहुना = बहुभाषणेन, किम् ? न किमपि फलम्। कथमिति चेत्तत्राह—सम्प्रतीति। सम्प्रति = साम्प्रतम्, तस्याः = कादम्बर्याः, सर्वसखीजनः= समस्त वयस्यालोकः, त्वन्नाम्ना = तव एव नाम यस्य स तथाभूतः, सर्वानपि सखीजनान् सा तवैव नाम्ना आह्वयतीति भावः। सर्वरहस्यानि = सर्वाणि गुह्यानि, त्वत्सम्बद्धानि = त्वया सम्बद्धानि। सर्वसमवायाः = सर्वेऽपि लोकसमूहाः, गोष्ठ्य इति भावः, त्वत्समागमोपायान्वेषिणः—तव (=भवतः) समागमस्य (= सम्मिलनस्य) उपायम् (= मार्गम्, साधनम्) अन्वेषयन्ति (= मृगयन्ते), इति तादृशाः सन्तीति शेषः। सर्वास्वपि विदुषां गोष्ठीषु इदमेव चिन्त्यते यत् केन प्रकारेण तव कादम्बर्याश्च समागमः भवेदिति। सर्वप्रश्नाः = सर्वे च ते प्रश्नाः (= जिज्ञास्यविषयाः) त्वद्वार्त्तोपलम्भन-तत्पराः—तव (= चन्द्रापीडस्य) वार्त्ता (= वृत्तान्तः) वार्तम् (= कुशलम्) वा तस्य उपलम्भनम् (= परिज्ञानम्) तस्मिन् पराः (= प्रमुखाः)। सर्वेषु प्रश्नेषु इदमेव प्रामुख्येन विचार्यते यत् केन प्रकारेण तव वृत्तान्तज्ञानं सम्भवेदिति। त्वद्वृत्तान्तमुखरः-तव (=भवतः) वृत्तान्तः (=उदन्तः) तस्मिन् मुखरः (=वाचालः) सर्वपरिजनः=समस्त-परिच्छदः। सर्वेऽपि परिजनाः तवैव विषये अतिशयेन भाषन्ते इति भावः। सर्वविनोदाः=समस्तक्रीडाविलासाः, त्वदालापनिर्मिता— तव (= भवतः) आलापः (= सम्भाषणम्) तेन निर्मिताः (=विरचिताः)। त्वया सह पूर्वं कृतं वार्त्तालापमाश्रित्यैव तस्याः मनोविनोदाः उपहासादिकं भवतीति बोध्यम्। त्वदाकारमयः— तव (= भवतः) आकारः (= आकृतिः) एव, तन्मयः, चित्रकलाभ्यासः = आलेख्यकलाया अभ्यसनम्। तव आकारमेव पुनः पुनर्विलिख्य चित्रनिर्माणस्य अभ्यासः क्रियते इति भावः। त्वदुपालम्भ-गर्भाः = तव (= भवतः) उपालम्भः (= आलोचनावाक्यम्) गर्भे (= मध्ये) यासां ताः तादृश्यः, मागधीमङ्गलगीतयः = वन्दिचारणादिस्त्रीणां स्तुतिवचनानि, ताः स्तुतिषु मध्ये मध्ये तव नाम अवश्यमुच्चारयन्ति येन कादम्बरी प्रसन्ना भवेदिति भावः। स्वप्नाः = निद्रावस्थायामनु-भूयमानविषयाः, त्वद्दर्शनपुनरुक्ताः—तव (= भवतः) दर्शनम् (= अवलोकनम्) तेन पुनरुक्ताः= पुनरुक्तिपूर्णाः, स्वप्ने भवत एव दर्शनं पुनः पुनर्जायते इति भावः। त्वत्परिहासप्रायाः—तव (=भवतः)

अधिक कहने से क्या लाभ ? इस समय उस कादम्बरी की सभी सखीजन तुम्हारे नामवाली हो गई हैं, अर्थात् सभी को वह तुम्हारे नाम से ही बुलाती है। सभी रहस्य = गोपनीय विषय तुम्हीं से सम्बद्ध हो गये हैं, सभी समवाय = गोष्ठियाँ तुम्हारे ही समागम = मिलन के उपायों का अन्वेषण करने वाली (मिलन का उपाय खोजने वाली) हो गई हैं, सभी प्रश्न तुम्हारे ही समाचार को प्राप्त करने की प्रमुखता वाले हो गये हैं, सभी परिजन लोग तुम्हारे ही वृत्तान्त को कहने वाले हो गये हैं, सारे मनोविनोद तुम्हारे साथ हुई बातों के आधार पर बनाये जा रहे हैं, [समस्त] चित्रकला का अभ्यास तुम्हारे ही आकार को बनाने में होता है, मंगलगीत गाने वाली महिलाओं के गीत तुम्हारे लिये ही उलाहनों से भरे (युक्त) होते हैं, स्वप्न तुम्हारे ही दर्शन की पुनरुक्ति वाले हो गये हैं अर्थात् स्वप्नों में बार-बार तुम्हीं दिखाई देते हो, कामजन्य ज्वर के दाह (सन्ताप) से होने वाले विप्रलाप (बड़बड़ाहटें) तुम्हारे साथ किये गये परिहासों = हसी मजाक की अधिकता वाले हो गये हैं, अर्थात् वह बड़बड़ाहट में भी तुम्हारे साथ किये गये हास परिहास को ही अधिक बोलती

---

१. यद्यपि प्रकाशितग्रन्थेषु 'सर्व' शब्दो न दृश्यते तथापि अन्यविशेषणसाम्यादौचित्याच्चात्र सर्वशब्दो योजितः।

स्त्वन्नामग्रहणैकोपायगम्यप्रबोधा मोहमहावेगाः ।'

—इत्यावेदयन्तं केयूरकं 'भवतु, संप्रति न शक्नोम्यतः परं श्रोतुम्' इत्यामीलनाद्दत्तसंज्ञेव कादम्बरीव्यथाश्रवणवेदनासंभवानुकम्पयेव चन्द्रापीडमाक्रामन्ती मूर्च्छा न्यवारयत्, न तु पुनरवस्थानिवेदनपरिसमाप्तिः[1] ।

परिहासः (= उपहासः) प्रायः (= बाहुल्येन) तेषु ताहशाः, मदनेत्यादिः—मदनज्वरः (= कामज्वरः) तस्य दाहः (= सन्तापः) तेन तस्माद् वा विप्रलापाः (= विरुद्धोक्तयः) । मदनदाहपीडिता सा विप्रलापेषु त्वया सह विहितान् परिहासान् एव बाहुल्येन वदतीति बोध्यम् । मोहमहावेगाः—मोहः (= मूर्च्छा, मूर्खत्वं वा) तस्य महान्तः (=अतिशयिताः) वेगाः (=रयाः), त्वन्नामेत्यादिः—तव नाम्नः (= अभिधानस्य) ग्रहणम् (=उच्चारणम्) एव एकः (=अद्वितीयः) य उपायः (= साधनम्, प्रपञ्चः) तेन गम्याः (= प्राप्तव्याः) प्रबोधाः (= प्रबोधनानि) येषु ताहशाः सन्ति । यदा सा मूर्च्छाया महावेगेनाप्याक्रान्ता सती तव नाम शृणोति सदैव तस्या मूर्छावेग उपशाम्यतीति भावः । अत्र सर्वेषु विषयेषु कादम्बरी चन्द्रापीडमेवं सर्वममन्यतेति स्पष्टम् ।

इदानीं चन्द्रापीडस्य प्रतिक्रियां वर्णयितुमाह—इत्यावेदयन्तमित्यादिना । इति = पूर्वोक्तम् आवेदयन्तम् = निवेदयन्तम्, केयूरकम् = एतन्नामानं कादम्बरीसेवकम्, भवतु = त्वया यदुक्तं तत् तथैव अस्तु; न मे वैमत्यम्, सम्प्रति = अधुना, अतः = अस्मात् त्वदुक्तात्, परम् = अधिकम्, श्रोतुम् = आकर्णयितुम् न = नैव, शक्नोमि = समर्थो भवामि, पारयामि, इति = इत्थम्, आमीलनात् = नेत्र-निमीलनात्, दत्तसंज्ञा = विहितसंङ्केता, इव, मूर्छा = मोहः, कादम्बरीत्यादिः—कादम्बर्याः (= गन्धर्व-राजकन्यायाः), याः व्यथाः (= पीडाः कामजन्याः) तासां श्रवणम् (= आकर्णनम्) तस्माद् या वेदना (= चन्द्रापीडे अतिशयपीडा) तस्याः सम्भवः (= समुत्पत्तिः) तस्मिन् अनुकम्पा (= दया) तया, इव, चन्द्रापीडम् = राजकुमारम्, आक्रामन्ती = आक्रमणं विदधाना, आगच्छन्तीति भावः, न्यवारयत् = न्यषेधयत्, केयूरकमिति कर्म बोध्यम् । यदि स अग्रेपि कादम्बरीव्यथां कथयिष्यति तदा किमप्यनिष्टं भवितुमर्हतीति विचार्य केयूरकः स्वभाषणं समाप्तमकरोत् । तु = किन्तु, पुनः अवस्थेत्यादिः—अवस्थायाः (= कादम्बरी-दशायाः) निवेदनस्य (= ज्ञापनस्य) परिसमाप्तिः (= पर्यवसानम्), न = नैव, जातेति भावः । यद्वा, अवस्थानिवेदनपरिसमाप्तिः केयूरकं न कथनात् न्यवारयदिति सम्बन्धो बोध्यः ।

हैं, और मूर्छा (बेहोशी) के बड़े-बड़े वेग (प्रवाह) केवल तुम्हारा नाम लेना रूपी उपाय से प्रबोध (होश) में लाये जा सकने वाले हैं अर्थात् तुम्हारा नाम लेते ही उसकी बड़ी से बड़ी मूर्छा दूर हो जाती है, वह होश में आ जाती है ।"

इस प्रकार से निवेदन करने वाले केयूरक को—"रहने दो, अब इसके आगे (अधिक) मैं नहीं सुन सकता"—ऐसा कहते हुये आंखें बन्द कर लेने से संकेत दिये हुई सी, मानों कादम्बरी की व्यथा को सुनने से होने वाली वेदना से जन्य दया से चन्द्रापीड को आने वाली मूर्छा ने [केयूरक को कहने से] रोक दिया । किन्तु [कादम्बरी की] दशा के वर्णन की समाप्ति फिर भी नहीं हो सकी । [भाव यह है कि कादम्बरी की दयनीय दशा को सुनते-सुनते चन्द्रापीड मूर्छित हो गया । इससे केयूरक ने कहना बन्द कर दिया न कि अब कादम्बरी की दशा को कहने लायक कुछ बचा नहीं था, अभी और भी बहुत कुछ कहना शेष था ।]

१. ···निवेदनवेदन···।

इति [तथा] मूर्च्छानिमीलितश्च तामेवानुध्यायन्निव[1] ससंभ्रमप्रतिपन्नशरीरेण केयूरकेण संभावितताल‌वृन्तया च पत्रलेखयानुभाव्यार्थसज्जया[2] च नियत्या संज्ञां लम्भितश्चन्द्रापीडः स्वकृतपीडापराधेन भीतमिव[3] लज्जितमिव विलक्षमिव निभृतस्थितं केयूरकमन्तर्बाष्पोपरुध्यमानकण्ठः [4]कथमपि स्खलिताक्षरं प्रत्युवाच—'केयूरक ! येन प्रकारेणैवमेकान्त-

---

इतीति । इति = एवम् मूर्च्छानिमीलितः = मूर्छया (= मोहेन) निमीलितः (= मुद्रितनेत्रः), सन्, ताम् = कादम्बरीम् एव, अनुध्यायन् = चिन्तयन् इव, ससम्भ्रम-प्रतिपन्नशरीरेण—ससम्भ्रमम् (= सत्वरम्) यथा स्यात् तथा प्रतिपन्नम् (= विधृतम्, पतनादिति शेषः) शरीरम् (= देहः), (चन्द्रापीडस्येति शेषः) येन तेन तादृशेन, केयूरकेण = पूर्वोक्त-कादम्बरीदशाभाषकेण सेवकेन, च = तथा, सम्भावित-तालवृन्तया—सम्भावितम् (= गृहीतम्, उत्थाप्य करे नीतम्) तालवृन्तम् (= व्यजनम्) यया तया तादृश्या, पत्रलेखया = चन्द्रापीडस्य एतन्नाम्न्या परिचारिकया, अनुभाव्येत्यादिः—अनुभाव्यः (= अग्रेऽपि अनुभवितुं योग्यः) यो अर्थः (= कादम्बरीसमागमरूपवस्तुविशेषः) तस्मिन् सज्जया (= तत्परया, समर्थया वा) नियत्या = भाग्येन, च, संज्ञाम् = चैतन्यम्, लम्भितः = प्रापितः संज्ञायुक्तो विहित इति भावः, चन्द्रापीडः = राजकुमारः, स्वकृतेत्यादिः—स्वेन (= आत्मना) कृता (= विहिता) या पीडा (= व्यथा राजकुमारस्येति शेषः) तस्याः अपराधः (= आगः) तेन हेतुना, भीतम् = भयाक्रान्तम्, इव, लज्जितम् = त्रपितम् इव, विलक्षम् = आश्चर्यान्वितम्, इव, अत्र सर्वत्र 'इव' शब्द उत्प्रेक्षायां बोध्यः । निभृतस्थितम्—निभृतम् (= मौनम्) यथा स्यात् तथा स्थितम् (= विद्यमानम्) केयूरकम् = एतन्नामकं कादम्बरीसेवकम्, अन्तरित्यादिः—अन्तः (= अभ्यन्तरे) यो बाष्पः (= अश्रु) तेन उपरुध्यमानः (= अवरुध्यमानः, अवष्टभ्यमानः) कण्ठः (= गलदेशः) यस्य स तादृशः सन्, कथमपि = येन केन प्रकारेण; महता कष्टेनेति भावः, स्खलिताक्षरम्—स्खलितानि (= भ्रष्टानि, परित्यक्तानि) अक्षराणि (= वर्णाः) यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा गद्गदमिति भावः, प्रत्युवाच = प्रत्यवोचत्, चन्द्रापीड इत्यनेनान्वयः ।

चन्द्रापीडस्य प्रतिवचनं प्रस्तौति—केयूरक-इत्यादिना । केयूरक ! = सम्बोधनमिदम्, येन प्रकारेण = रूपेण, एवम् = पूर्वोक्त-त्वदुक्त्यनुसारम्, एकान्तेत्यादिः = एकान्तम् (= अत्यन्तम्) निष्ठुरम् (= निर्दयम्) हृदयम् (= चित्तम्) यस्य तं तादृशम्, आत्मनि = स्वविषये,

---

इस प्रकार से बेहोशी के कारण आंखे बन्द किये हुये उस कादम्बरी को ही सोंचता हुआ सा, घबड़ाहट से उसके शरीर को पकड़ लेने (सहारा देने) वाले केयूरक द्वारा, [हाथ में] पंखा पकड़े हुई पत्रलेखा द्वारा और आगे होने वाली घटना के लिये तैयारी कर लेने वाली नियति (भाग्य) द्वारा संज्ञा (चेतना) को प्राप्त कराया गया चन्द्रापीड अपने (केयूरक) द्वारा किये गये अपराध से डरे हुये से, लजाये हुए से, हीनता की भावना से ग्रसित से, चुपचाप खड़े (या बैठे) हुए केयूरक से, रुंधे हुये कण्ठवाला होता हुआ लड़खड़ाते हुए अक्षरों से किसी प्रकार (बहुत कठिनता से) बोला—"हे केयूरक ! जिस प्रकार से ऐसा पूर्णरूप से (अत्यन्त) निष्ठुर हृदयवाला और अपने

---

१. आध्यायन् । २. अनुभाव्यार्थं ।
३. भीतमपि । ४. किमपि ।

निष्ठुरहृदयमात्मन्य[1]नुत्पन्नानुरागमेव मां संभाव्य देव्या कादम्बर्या [2]दूरीकृतपुनर्मदागमनसंभावनया न त्वमागमनायादिष्टो न संदिष्टं वा किंचिन्महाश्वेतया [3]समुपहृतानुबन्धया मदलेखया वा त्वन्मुखेन नोपालब्धोऽस्मि तथा[4] मयि पत्रलेखया सर्वमाख्यातम् । तदभिजाततया महानुभावत्वादुदारतया समानशीलतया दक्षिणतया चैकान्तपेशलतया च स्वभाव-

---

कादम्बरीविषये, अनुत्पन्नानुरागम् = अनुत्पन्नः (= असंजातः) अनुरागः (= स्नेहः) यस्य तं तादृशम्, सर्वथा प्रेमशून्यमिति भावः, एव, माम् = चन्द्रापीडम्, सम्भाव्य = उत्प्रेक्ष्य, कल्पयित्वा, देव्या कादम्बर्या = गन्धर्वराजकुमार्या, दूरीकृतेत्यादिः—दूरीकृता (= परित्यक्ता) मम (=चन्द्रापीडस्य) यद् पुनः, आगमनम् (=गन्धर्व-राजधान्यां सम्प्राप्तिः) तस्य सम्भावना (=कल्पना) तया हेतुना, यद्वा—··· ···सम्भावना यस्याः सा तया तादृश्या कादम्बर्या, त्वम् = भवान् केयूरकः, आगमनाय = अत्र उज्जयिन्याम् आव्रजनाय, न = नैव:, आदिष्टः = आज्ञप्तः, वा = अथवा, समुपहृतानुबन्धया—समुपहृतः (= समार्पितः, दूरीकृतः) अनुबन्धः (= सम्बन्धः, अत्याग्रहो वा) यया तया तादृश्या, महाश्वेतया = कादम्बरी-प्रियवयस्यया, किञ्चित् = किमपि, न = नैव सन्दिष्टम् = सन्देशः दत्तः, वा = अथवा, मदलेखया = एतन्नाम्न्या कादम्बरी-प्रियपरिचारिकया, त्वन्मुखेन =तवास्येन, तव माध्यमेनेति शेषः, न = नैव, उपालब्धः = उपालम्भविषयीकृतः, अस्मि = भवामि, तथा = तेन प्रकारेण, पत्रलेखया = एतन्नाम्न्या मम परिचारिकया, मयि = मम विषये, सर्वम् = सकलम्, आख्यातम् =कथितम् । तवात्रागमनात् पूर्वं समागतया पत्रलेखया सर्वमेव संसूचितम् । अतस्तस्मिन् विषये न ममोत्कण्ठेति बोध्यम् ।

कादम्बर्याः वैशिष्ट्यानि स्वदोषाभावं च प्रस्तौति—तदभिजाततयेत्यादिना । तत् = तस्मात्, अभिजाततया—अभिजाता (=कुलीना) तस्याः भावः तया, उत्कृष्टकुलोत्पन्नतया, महानुभावत्वात्—महान् (= अतिशयितः) अनुभावः (= माहात्म्यम्) तस्या भावस्तत्त्वं तस्मात्, उदारतया = औदार्येण, समानशीलतया—समानम् (= रूपाद्यनुगुणम्) शीलम् (= स्वभावः) यस्यास्तत्ता तया, दक्षिणतया = सरलतया, च = तथा, स्वभावस्य = स्वनिसर्गस्य एकान्तपेशलतया = नितान्तहृद्यतया च, अत्यन्तसरलस्वभावतयेति भावः, एभिः हेतुभिः, देवी कादम्बरी = तव राजकुमारी, आत्मना = स्वयम्, आत्मानम् = स्वाम्, न = नैव, कलयति = जानाति; परिचिनोति, सा का वर्तते, कीदृशी अस्ति, के के गुणाः तस्यां वर्त्तन्ते इत्यादिकं सा किमपि नैव जानातीति तस्याः

अर्थात् कादम्बरी में अनुत्पन्न प्रेमवाला (कादम्बरी से प्रेम न करने वाला) मुझे समझ कर देवी कादम्बरी ने वहाँ (हेमकूट पर) दुबारा आने की सम्भावना को दूर करके (अर्थात् अब मैं कभी भी वहाँ नहीं आऊँगा ऐसा सोचकर) तुम्हें [मेरे पास] आने के लिये आदेश नहीं दिया है, सारे सम्बन्धों को समेट लेनेवाली (समाप्त कर लेनेवाली) महाश्वेता ने भी कोई सन्देश नहीं दिया है और मदलेखा ने भी तुम्हारे मुख से मुझे कोई उलाहना नहीं दिया है, वह सब मुझ से पत्रलेखा कह चुकी है । इसलिये उच्चकुल में उत्पन्न होनेवाली होने से, महान् अनुभाव (महिमा) वाली होने से, उदार होने से, समान (रूप तथा गुणों के अनुकूल) स्वभाववाली होने से, सरल होने से तथा स्वभाव के अत्यन्त मृदु होने के कारण देवी अपने आप को नहीं समझ पा रही है।

---

१. अनुत्पन्नरागम् ।
२. पुनर्दूरीकृतमदागमन० ।
३. समुपाहृत० ।
४. तथानया ।

स्यात्मानमात्मना न कलयति देवी कादम्बरी। चन्द्रमूर्तेरालोकेन[1] निश्चेतनस्य चन्द्रकान्ताख्यस्य पाषाणखण्डस्यार्द्रभावोपगमनमेवायत्तं न पुनस्तत्कराकर्षणम्। नितरां पक्षपातिनोपि च मधुकरस्याभिगमनमेवाधीनम्, मकरन्दलाभे तु कलिकाश्रयिणी जृम्भैव[2] प्रभवति। दिवससंतापक्लान्तेन चोन्मुखता कुमुदाकरेण करणीया, विकासयति[3] पुनस्तं ज्योत्स्नाभिरामा

सारल्यातिशयो गम्यते।

इदानीं चन्द्रापीडः कादम्बर्या विहितं प्रमादं मूर्खत्वं च कथयति—चन्द्रमूर्तेरित्यादिना। चन्द्रमूर्तेः = चन्द्रमण्डलस्य, आलोकेन = दर्शनेन, प्रकाशेन, हेतुना, निश्चेतनस्य = जडस्य, चन्द्रकान्ताख्यस्य = चन्द्रकान्तनामकस्य, पाषाणखण्डस्य = प्रस्तरशकलस्य, आर्द्रभावोपगमनम् = द्रवीभावप्रापणम्, एव, आपन्नम् = अधीनम्, न पुनः, तत्कराकर्षणम्—तस्य (= चन्द्रस्य) कराणाम् (= किरणानाम्) आकर्षणम् (= आवर्जनम्) आयत्तमिति शेषः। चन्द्रकान्तमणिः चन्द्रकिरणसम्पर्केण द्रवत्येव किन्तु स स्वयं चन्द्रकिरणानाक्रष्टुं समर्थो न भवति। एवमेव कादम्बरीमवलोक्य तद्विषये प्रेम्णः समुत्पत्तिः, करणं चैव ममाधीनमासीत् तस्या आलिङ्गनादि तु तस्या एव अधीनमासीदिति तद्विषये तस्याः क्षोभोऽसमीचीन इति भावः।

नितरामिति। नितराम् = सुतराम्, अत्यन्तं वा, पक्षपातिनः—पक्षाभ्याम् (= वाजाभ्याम्) पतति (= चलति, भ्रश्यति वा) तच्छीलस्य, पक्षे—पक्षे = विषये पतति = पातं करोति, अनुरागं करोति तच्छीलस्य, च, मधुकरस्य = भ्रमरस्य, अभिगमनम् = सम्मुखसम्प्राप्तिः, एव, अधीनम् = आयत्तम्, तु = परन्तु, मकरन्दलाभे = पुष्परसस्य प्राप्तौ, कालिकाश्रयिणी—कलिकाम् (= कोरकम्) आश्रयति (= अवलम्बते) तच्छीला, कलिकाश्रिता, जृम्भा = जृम्भणम्, विकास इति यावत्, एव, प्रभवति = समर्था भवति। अयं भावः—भ्रमरः कलिकां प्रति गन्तुमेव प्रभवति किन्तु यावत्कालपर्यन्त कालिकाया जृम्भा=विकासो न जायते तावत्कालपर्यन्तं समीपस्थितोऽपि भ्रमरः पुष्परसं प्राप्तुं न प्रभवति। एवमेव अहं पक्षपाती भूत्वा कादम्बरीसमीपं गन्तुमेवापारयम्, तस्या अधररसपानं तु तदैव सम्भवमासीत् यदा सा स्वयमेव स्वमुखेन किमपि तादृशं प्रकटीकुर्यात् येनाहं तस्या अनुरागं बोद्धुं समर्थः भवेयम्। किन्तु तया न तथा किमपि विहितं तदात्र मे कोऽपराध इति ज्ञायताम्।

दिवसेति। दिवसेत्यादिः—दिवसः (= दिनम्, दिनकर इति भावः) तस्य सन्तापः (= अतिशयोष्मा) तेन क्लान्तेन (= खिन्नेन, पीडितेन), च, कुमुदाकरेण = कैरवसमूहेन

[वह कैसी है—इसका ज्ञान उसे नहीं है।] चन्द्रमण्डल के देखने से जड़ चन्द्रकान्त नामक मणि का केवल गीलापन प्राप्त कर सकना (बहने लगना) ही वश में होता है न कि चन्द्रमा की किरणों को खींच लेना। [इसी प्रकार कादम्बरी के दर्शन से मैं उस पर सरस=प्रेमयुक्त तो हुआ किन्तु उसके हाथों को खींच लेना मेरे वश में नहीं था।] अत्यन्त पक्षपाती (पंखों से उड़नेवाला, अनुराग करनेवाला) भी भ्रमर का [कली के] सम्मुख जाना ही उसके अधीन रहता है, किन्तु मकरन्द (= पुष्परस) की प्राप्ति में तो कली की जृम्भा (जमुहाई, खिलन) ही समर्थ होती है। [जब तक कली खिलेगी नहीं तब तक संमुख उपस्थिति भी भौंरा पुष्परस पान नहीं कर सकता।] दिन भर के सन्ताप (गरमी) से व्याकुल कुमुदाकर = कुमुदवन [केवल रात्रि की ओर] उन्मुखता ही कर सकता है। किन्तु उस कुमुदवन का विकास (खिलना) तो चादनी से मनोहर रात ही करती है।

---

१. आलोकेनापि। २. जृम्भिकैव। ३. विकासयसि न पुनस्तम्।

रजन्येव । निर्भरमन्तःसरसतायां सत्यामपि मधुमासलक्ष्मीपरिग्रहाद्विना पल्लवानुरागदर्शनस्य कृते किं करोतु पादपः । तत्र देव्याः कादम्बर्या एवाज्ञापराधिनी । ययाधरस्पन्दितमात्रप्रतीक्षे[1] पुरःस्थायिनि दासजने निष्करुणतयात्मानमव्यापारयन्त्या [2]सुखपरिपन्थिनी दुःखदानै-

उन्मुखता (= संमुखता) एव, करणीया = विधेया, पुनः = ततः, तम् = कुमुदाकरम्, ज्योत्स्नाभिरामा— ज्योत्स्नया (= चन्द्रिकया) अभिरामा (= मनोहारिणी) रजनी = रात्रिः, एव, विकासयति = विकस्वरतां प्रापयति । अयमाशयः—यथा दिवसः सन्तापपीडितः कुमुदानां समूहः केवलं सम्मुखमेव स्थातुं शक्नोति, तस्य विकासस्तु निशा एव स्वज्योत्स्नया कर्तुं प्रभवति । तथैव स राजकुमारोऽपि कामसन्तापस्य शान्तिमिच्छन् कादम्बर्याः सम्मुखं स्थातुमेव पारयति, परन्तु तस्या मनसो विकासस्तु कादम्बर्यधीन एवास्ति । तया न तदनुरूपमाचरितमतो न राजकुमारस्य दोष इति बोध्यम् ।

निर्भरमिति । निर्भरम् = अत्यन्तं यथा स्यात् तथा, अन्तःसरसतायाम् = अन्तः (=मध्ये) आर्द्रतायाम्, सरसतायां (=सत्याम्), अपि, मध्वित्यादिः—मधुमास (= बसन्तमासः) तस्य लक्ष्मीः (=शोभा) तस्याः परिग्रहः (=स्वीकारः, आत्मीयीकरणम्) तस्माद्, विना = ऋते, पल्लवेत्यादिः— पल्लवानाम् (= किसलयानाम्) अनुरागः (= रक्तिमा) तस्य दर्शनम् (= प्रकटनम्) तस्य, कृते, पादपः = वृक्षः, किं करोतु = विदधातु । अयं भावः—वृक्षो मध्ये रसयुक्तो भवति परन्तु यावत्कालपर्यन्तं बसन्तलक्ष्मीर्नायाति, तं नाश्रयति तावत्कालपर्यन्तं पल्लवरूपानुरागस्य दर्शनं न जायते, अत्र वृक्षस्य कोऽपि दोषो नास्ति । तथैव राजकुमारोऽपि मनसि कादम्बरीं प्रति अनुरागयुक्त आसीत् किन्तु कादम्बर्याः न आनुकूल्यं प्रकटितम्, तेन राजकुमारेण स्वानुरागो न प्रकटितः । तत्र राजकुमारेण किमनुचितमाचरितमितं बोध्यम् । अप्रस्तुतप्रशंसा प्रतिवस्तूपमा वेत्याहु ।

स्वनिष्कर्षं प्रकटयति चन्द्रापीडः—तत्रेत्यादिना । तत्र = अस्मिन् प्रसंगे तस्मिन् प्रदेशे वा, देव्याः, कादम्बर्याः = गन्धर्वराजकुमार्याः, आज्ञा = आदेशः, एव, अपराधिनी = अपराधकारिणी, जातेति शेषः । यया = आज्ञया, अधरेत्यादिः—अधरस्य (= अधरोष्ठस्य) स्पन्दितमात्रम् (= केवलं स्पन्दनम्) तस्मिन् प्रतीक्षा (= प्रतिपालनम्, विलम्बः) यस्य स तस्मिन् तादृशे, पुरःस्थायिनि = संमुखस्थिते, दासजने = सेवकलोके, मयि चन्द्रापीडे इति भावः, निष्करुणतया = निर्दयतया, आत्मानम् = स्वाम्, अव्यापारयन्त्या = अनियोजयन्त्या, अचेष्टमानया,सुखपरिपन्थिनी = सातस्य विरोधिनी, दुःखेत्यादिः—दुःखस्य (=कष्टस्य) दानम् (=करणम्)तस्मिन् एका(=अद्वितीया)

[कुमुदवन रात्रि की ओर देख ही सकता है, रात्रि जब आयेगी तभी वह खिल सकता है ।] भीतर अत्यन्त सरस रहते हुये भी वृक्ष बसन्तमास की शोभा (लक्ष्मी) की स्वीकृति = अपनाये बिना पल्लव रूप में अनुराग (लालिमा,प्रेम) के प्रदर्शन के लिये क्या कर सकता है, अर्थात् वसन्त-लक्ष्मी जब तक उसे नहीं अपनाती, वृक्ष अकेला अनुराग=लालिमा कैसे दिखा सकता है । उसमें अर्थात् कादम्बरी को होनेवाली पीड़ा के विषय में देवी कादम्बरी की आज्ञा ही अपराधिनी है [मैं नहीं हूँ क्योंकि] जिस (आज्ञा) ने अधर के स्पन्दनमात्र की प्रतीक्षा करने वाले, सामने विद्यमान (खड़े हुये) दासजन (मुझ चन्द्रापीड) के ऊपर निष्ठुरता के कारण अपने (कादम्बरी) को न लगाती हुई अर्थात् मेरे ऊपर किसी प्रकार का स्पष्टभाव व्यक्त न करती हुई, सुख की विरोधिनी, केवल दुःख देने में

१. प्रतीक्ष्ये । २. सुखप्रतिपन्थिनी ।

कनिपुणा परहृदयपीडानपेक्षिणी लज्जापेक्षिता न जीवितसंदेहदायिनी देव्याः समवस्था। अथवास्य परिजनस्यापि [1]देव्याः कोयमेवंविधो व्यामोहः, यदनिच्छन्त्यपि बलादसौ न व्यापारिता। कीदृशी चरणतलप्रतिबद्धस्य[2] दासजनस्योपरि लज्जा। कीदृशं वा गौरवम्? को वानुरोधः? अविश्वस्तचित्तता वा केयमीदृशी? यदेवमात्मनः शिरीषपुष्पकोमलस्येयमतिदारुणा पीडाङ्गीकृता न कृतार्थितो मे मनोरथः। अथवा क्रमागतमन्तर्धानं वामलोचनानां

निपुणा (= चतुरा), परेत्यादिः—परस्य (= अन्यस्य, मम इति भावः) हृदयस्य (= चित्तस्य) पीडाम् (= व्यथाम्) न अपेक्षते (= अपेक्षां करोति) तच्छीला, तादृशी, लज्जा = त्रपा, अपेक्षिता = आश्रिता, ईहिता, किन्तु, देव्याः = कादम्बर्याः, जीवितसन्देहदायिनी = प्राणसङ्कटकारिणी, समवस्था = दयनीया दशा, न = नैव, अपेक्षितेति भावः। अयं भावः-लज्जातिरेकात् सा कादम्बरी मयि स्वप्रेम न प्रकटितवती अस्यां स्थितौ मम दोषः कथं भवद्भिर्विलोक्यते। यदि तस्याः प्रेम्णः प्राकट्येऽपि मया उपेक्षिता कृताभूत् तदैव भवतामाक्रोशः क्षोभो वोचितः कथ्येतेति भावः।

अथवेति। अथवा = पक्षान्तरे, देव्याः = गन्धर्वराजकुमार्याः कादम्बर्याः, अस्य = प्रसिद्धस्य समीपस्थायिनः, परिजनस्य = परिच्छदस्य, विशालस्य सेवकसमूहस्य अपि, कः = अनिर्वचनीयः, एवंविधः = एतादृशः, व्यामोहः = मतिभ्रमः, किंकर्तव्यविमूढता, जातेति शेषः, यत् = यस्माद्, अनिच्छन्ती = अनभिलषन्ती, अपि, असौ = एषा, कादम्बरी, बलात् = हठात्, न = नैव, व्यापारिता = प्रेरिता, प्रेम्णः स्पष्टप्रदर्शनार्थमिति शेषः। चरणतलप्रतिबद्धस्य = पादतलयोः लग्नस्य, दासजनस्य = सेवकलोकस्य, मम चन्द्रापीडस्येत्यर्थः, उपरि = विषये, कीदृशी = किंप्रकारा, लज्जा=त्रपा, तादृशे मयि लज्जायाः प्रश्न एव नासीदिति भावः। वा = अथवा, कीदृशम्, गौरवम् = गुरुता, गाम्भीर्यं वा? वा = अथवा, कः, अनुरोधः = प्रतिबन्धः? वा = अथवा, इयम् = एषा, ईदृशी, का, अविश्वस्त-चित्तता—न विश्वस्तम् (= विश्वासयुक्तम्) चित्तम् (= चेतः) यस्याः सा तस्या भावस्तत्ता = अविश्रम्भमनस्कता, जातेति शेषः, पूर्वोक्तेषु कस्यापि आवश्यकता नासीदिति भावः, यत् = यस्मात्, हेतोः, एवम् = अनेन प्रकारेण, शिरीषपुष्पकोमलस्य = शिरीषाख्य-कुसुमवत्सुकुमारस्य, आत्मनः = स्वस्याः, इयम् = अधुनाऽनुभूयमाना एषा, अतिदारुणा = अतिशयेन कठोरा, पीडा = व्यथा, अङ्गीकृता = स्वीकृता, परन्तु, मे = मम, चन्द्रापीडस्य, मनोरथः = अभिलाषः, सङ्गमविषयक इति शेषः, न = नैव, कृतार्थितः = सफलीकृतः। एवञ्च न केवलं स्वस्या एव पीडामजनयत् प्रत्युत मामपि पीडायां पातितवतीति भावः।

सा पूर्वोक्तं कथं नाचरितवतीति समर्थयितुमाह—अथवेत्यादिना। अथवा = पक्षान्तरे, वामलोचनानाम् = कामिनीनां स्त्रीणाम्, विशेषतः = विशेषरूपेण, अपरित्यक्तेत्यादिः—अपरित्यक्तः

निपुण (चतुर) और दूसरे (मुझ चन्द्रापीड) के हृदय की पीड़ा की अपेक्षा न करनेवाली (मेरी हार्दिक व्यथा को महत्त्व न देनेवाली) लज्जा की अपेक्षा की, लज्जा को ही महत्त्व दिया, न कि जीवन = प्राणों का सन्देह देनेवाली (प्राणों के भी चले जाने का संशय उत्पन्न करनेवाली) देवी (कादम्बरी) की दशा की [अपेक्षा नहीं की, इसके विषय में कुछ नहीं किया]। अथवा देवी कादम्बरी के परिजनों (सेवक-सेविकाओं) का भी कौन सा ऐसा व्यामोह (= बुद्धिभ्रम) हो गया था कि [बाहर से] न चाहती हुई भी उसे हठपूर्वक प्रवृत्त नहीं करा सके। चरणतलों में प्रतिबद्ध (= पैरों में लगे हुए) दासजन के (मेरे) ऊपर कैसी लज्जा? अथवा कैसा गौरव = बड़प्पन? अथवा कौन सा अनुरोध = नियन्त्रण? अथवा यह कौन सी अविश्वस्तचित्तता (अविश्वसनीयता) ? जो कि शिरीष के पुष्प के समान कोमल अपने (कादम्बरी के) लिये इस अत्यन्त

---

१. परिजनस्यापि देव्या अपि। २. प्रतिबद्धदासजनस्य।

विशेषतोऽपरित्यक्तनिःशेषबालभावानामनतिप्रबुद्ध[1]मुग्धमनसिशयानां कन्यकानाम्, यल्लज्जा[2]न पारिता नामास्मिञ्जने स्वयं परित्यक्तुं देव्या। मदलेखा तु द्वितीयं हृदयमस्याः। तया किमेवमहार्यसंयमधनैर्मुनिभिरप्यरक्षित[3]-[4]हृदयापहारेणानिग्राह्यचोरेण शुचिभिरप्यपरि-

(= न मुक्तः) निःशेषः (= सम्पूर्णः) बालभावः (= बालत्वं, कुमारत्वम्) याभिस्तास्तासाम्, वयःसन्धौ वर्तमानानामिति भावः। अनतीत्यादिः—अनतिप्रबुद्धः (= सामान्यरूपेण सम्भूतः) मुग्धः, (= चातुर्यरहितः, सरलः) मनसिशयः (= मनोजः, कामः) यासां तादृशीनाम्, कन्यकानाम् = कुमारिकाणाम्, अन्तर्धानम् = गोपनम्, स्वमनोभावानामिति शेषः, क्रमागतम् = परम्परासम्प्राप्तम्। अयं भावः—वयः सन्धौ विद्यमानाः कन्यकाः स्वमनोभावान् सामान्यरूपेण गोपायन्त्येव, कष्टं सहमाना अपि झटिति स्वाभिप्रायं न प्रकटयन्तीति पुरातनकालादेव दृश्यते। पूर्वकथनस्य प्रकृते तात्पर्यमाह—यदिति। यत् = यस्मात्, देव्या = कादम्बर्या, अस्मिन् = मादृशे, जने = लोके, स्वयम् = आत्मना, परित्यक्तुम् = मोक्तुम्, विहातुम्, लज्जा = त्रपा, न पारिता = शक्ता, नाम = इदं कोमलामन्त्रणे, सम्भाव्ये वा। तया स्वभावाः सर्वथा गुप्ता एव रक्षिताः। लज्जाक्रान्ता सा न किमपि तादृशमुक्तवती येन कामातुरता प्रकटिता स्यादिति भावः।

इदानीं कादम्बर्याः प्रियवयस्यायाः मदलेखायाः प्रमादं प्रकटयति चन्द्रापीडः—मदलेखा त्वित्यादिना। तु = परन्तु, मदलेखा = एतन्नाम्नी परिचारिका, अस्याः = कादम्बर्याः, द्वितीयम् = अपरम्, हृदयम् = चित्तम्। यथा तस्याः हृदयं सर्वं जानाति तथैव मदलेखाया हृदयेनापि कादम्बर्याः सर्वे मनोभावाः ज्ञाताः स्युरिति तद्भावः। तया = पूर्वोक्तया मदलेखया, किम् = कस्मात् कारणात्, एवम् = अनेन पूर्वोक्तेन प्रकारेण, ['कामेन दुरात्मनायास्यमानं देवीशरीरमुपेक्षितम्' इति वक्ष्यमाणेनान्वयो बोध्यः। तृतीयैकवचनान्तानि पदानि 'कामेन' इत्यस्य विशेषणानीति बोध्यम्।] अहार्येत्यादिः—अहार्यम् (= अपहर्तुं न शक्यम्) संयमः (= इन्द्रियनियन्त्रणम्) एव धनम् (= सम्पत्तिः) येषां ते तैस्तादृशैः, मुनिभिः = ऋषिभिः, अपि, अरक्षितेत्यादि—अरक्षितः (= न रक्षितः) हृदयस्य (= चित्तस्य) अपहारः (= अपहरणम्, वञ्चनम्) यस्मात् तेन तादृशेन। अथ च, अनिग्राह्य-चोरेण = अनिग्राह्यः (= न निग्रहीतुं शक्यः) चासौ चोरः (= चौर्यकर्मकृत्) तेन। शुचिभिः = पवित्रैः अपि, अपरिहार्यस्पर्शेन—अपरिहार्यः (= न

दारुण (कठोर) पीडा तो स्वीकार कर ली (किन्तु) मेरा मनोरथ पूरा नहीं किया। अथवा स्त्रियों का, विशेष रूप से कन्याओं का (बालाओं) जिन्होंने बालभाव (लड़कपन) पूरी तरह से नहीं छोड़ा है और जिनमें कामदेव अभी खूब प्रबुद्ध नहीं हुआ है, (सामान्य रूप से ही कामभाव जाग्रत हुआ है), अन्तर्धान (अपने मनोभावों का छिपाना) क्रम से चला आ रहा है। [अर्थात् क्वांरी लड़कियाँ आदिकाल से ही अपने कामभावों को छिपाती चली आ रही हैं] जो कि इस जन के ऊपर देवी कादम्बरी स्वयं अपनी लज्जा छोड़ने में समर्थ नहीं हो सकी। परन्तु मदलेखा तो इस (कादम्बरी) का दूसरा हृदय ही है तो फिर उसने क्यों इस प्रकार से कामदेव द्वारा सताये (पीडित किये) जा रहे देवी के शरीर की उपेक्षा की, जो (कामदेव) नहीं नष्ट किये जा सकने वाले संयमरूपी धन से युक्त मुनियों के द्वारा भी (उनके) हृदय के अपहरण को न बचने देने वाला है, जो न पकड़े जा

१. अनभिबुद्ध। २. लज्जां न पारितम्।
३. असंरक्षित। ४. ······प्राणहृदय······।

हार्यस्पर्शेनाबहिष्कार्यचण्डालेन[1] भस्मीकृतापर्यवसानप्राणिसहस्रेणानिर्वाप्यश्मशानाग्निना सर्वदोषाश्रयेणाशरीरव्याधिना रूपापहारिणाकाण्डव्याधेन[2] मर्मभेदिनालीकधनुर्धरेण सद्यःप्राणापहारक्षमेणाकालमृत्युनानिरूपितस्थानास्थानप्रवर्तिना परापकारकृतार्थेन[3] हृदयवासिनापरप्रत्ययेन स्वयोनिना कामेन दुरात्मनायास्यमानं देवीशरीरमुपेक्षितम्। किमिति

परिहर्तुं शक्यः) स्पर्शः (= आमर्शः) यस्य तेन तादृशेन। अबहिष्कार्य-चण्डालेन—अबहिष्कार्यः (= न बहिष्कर्तुं शक्यः) चासौ चण्डालः (= मातङ्गः) तेन। अन्यश्चण्डालादिर्यदि समीपमागच्छति तदा येन केनाप्युपायेन दूरीकर्तुं शक्यते परन्तु कामचण्डालः न केनापि कथञ्चनापि दूरीकर्तुं शक्यते इति भावः। भस्मीकृतेत्यादि—भस्मीकृतम् (=दग्धीकृतम्) अपर्यवसानम् (= अनन्तम्) प्राणिसहस्रम् (= जीवसहस्रम्) येन तेन तादृशेन। अनिर्वाप्येत्यादिः—अनिर्वाप्यः (= न निर्वापयितुं = प्रशमयितुं शक्यः) चासौ श्मशानस्य (= पितृवनस्य) अग्निः (= अनलः) तेन। सर्वेत्यादि—सर्वे (= समस्ताः) ये दोषाः (= दूषणानि, कुकृत्यानि) तेषाम् आश्रयः (= आधारः) तेन। अशरीरेत्यादिः—अशरीरः (= शरीरहीनः, नास्ति शरीरं यस्य स तादृशः) चासौ व्याधिः (= आमयः) तेन। रूपेत्यादिः—रूपम् (= सौन्दर्यम्) अपहर्तुम् (= दूरीकर्तुम्) शीलमस्य स तेन तादृशेन। कामातुरस्य वियोगावस्थायां सौन्दर्यं नश्यतीति सर्वजनप्रसिद्धम्। अकाण्ड-व्याधेन—अकाण्डः (= काण्डो = बाणः नास्ति यस्य सः, बाणहीनः) चासौ व्याधः = मृगवधाजीवः, तेन। मर्मभेदिना = हृदयादि-मर्मस्थलविदारकेण। अलीकधनुर्धरेण = मिथ्याधानुष्केण। सद्यः—इत्यादिः—सद्यः (= तत्कालम्) प्राणानाम् (= असूनाम्) अपहारः (= अनुग्रहणम्, नयनम्, नाशनम्) तस्मिन् (क्षमः=समर्थः), तेन। अकाल-मृत्युना = असमयमरणकारकेण) अनिरूपितेत्यादिः—अनिरूपिते (= अदर्शिते, अननुभूते) ये स्थानास्थाने (= योग्यायोग्यस्थले) तयोः प्रवर्तते (= प्रवृत्तिं करोति) तच्छीलस्तेन, सर्वत्र प्रवर्तनशीलेनेति भावः। परेत्यादिः—परेषाम् (= अन्येषां सर्वेषाम्) अपकारः (= अहितम्) तस्मिन् तेन वा कृतार्थेन (= कृतकृत्येन)। हृदयवासिना = चित्ते निवासशीलेन। अपरप्रत्ययेन—परस्मिन् (= स्वभिन्ने अन्यस्मिन्) न प्रत्ययः (= विश्वासः) यस्य तेन तादृशेन। स्वयोनिना—आत्मा (= स्वम्) योनिः (= कारणम्) यस्य स तेन, स्वयम्भुवेत्यर्थः दुरात्मना = दुः (= दुष्टः) आत्मा (= स्वरूपं स्वभावो वा) यस्य तेन तादृशेन। विशेष्यमाह—कामेन = कामदेवेन, आयास्यमानम् = पीड्यमानम्, देवीशरीरम् = कादम्बरी-देहः, उपेक्षितम् = उपेक्षाविषयीकृतम्, मदलेखया कादम्बरीशरीरस्य पीडापीडे अवश्यं विचारणीये आस्ताम्। किन्तु तया स्वकर्तव्यस्य निर्वाहः

सकने योग्य चोर है, पवित्र लोगों द्वारा भी जिसका स्पर्श नहीं रोका जा सकता है, जिसका बहिष्कार नहीं किया जा सकता ऐसा चण्डाल है, जो अनन्त प्राणियों को भस्म कर देने वाला है, जो कभी भी न बुझाई जा सकने वाली मरघट की आग है, जो समस्त दोषों का आश्रय (निवासाधार) है, जो बिना शरीर की व्याधि है, जो रूप (सौन्दर्य) का अपहरण कर लेने वाला है, जो बाणों से रहित व्याध (बहेलिया) है, मर्मस्थलों को भेदने वाला है, मिथ्या धनुर्धारी है, तत्काल ही प्राण ले लेने में समर्थ है, अकालमृत्यु है, न विचारे, (देखे या जाने) गये उचित और अनुचित स्थानों पर [कार्य में] प्रवृत्ति करानेवाला है, दूसरों के अपकार (अहित) से कृतकृत्य (सफल) होनेवाला है, हृदय में (ही) निवास करनेवाला है, (अर्थात् बाहर कहीं भी नहीं दिखाई देता है), दूसरों पर विश्वास न

१. स्पर्शनचाण्डालेन। २. काण्डव्याधेन। ३. ……वृतान्तेन।

तत्रस्थस्यैव मे कर्णे नावेदितम्। अधुना श्रुत्वापि दिवसक्रमगम्येऽध्वनि किं करोमि। मलयानिलाहतलताकुसुमपातस्याप्यसहं देवीशरीरम्। वज्रसारकठिनहृदयैरपि[1] दुर्विषहाः स्मरेषवः। न ज्ञायते निमेषेणैव[2] किं भवतीति। प्रायेण च देव्याप्यनुभवनीय एवायमर्थः।

समुचितरूपेण न कृत इति तद्भावः। तस्या एव प्रमादमाह—किमित्यादिना। तत्रस्थस्यैव=तस्मिन् स्थाने कादम्बर्याः समीपे विद्यमानस्य एव, मे = चन्द्रापीडस्य, कर्णे = श्रवणे, किमिति = कस्मात् कारणात्, न = नैव, निवेदितम् = सूचितम्, 'यत् देवी मयि अतीवानुरक्ते'ति शेषः।

स्वासामर्थ्यं प्रकटयति चन्द्रापीडः—अधुनेत्यादिना। अधुना = इदानीम्, केयूरक-कथनानन्तरमिति भावः, श्रुत्वा = आकर्ण्य, अपि, दिवसेत्यादिः—दिवसानाम् (= दिनानाम्) क्रमः (= परिपाटी) तेन गम्ये (= गन्तुं योग्ये), बहुदिन-गमनानन्तरं प्राप्तियोग्ये इति भावः, अध्वनि = पथि, उज्जयिन्याः गन्धर्वराजनगर्याश्च मध्ये विद्यमान-मार्ग-विषये इति भावः, किम्, करोमि = विदधामि, तत्र झटिति गमनाय किमपि कर्तुं समर्थो नास्मीति तद्भावः। मलयेत्यादिः—मलयस्य (= मलयाचलस्य) य अनिलः (= पवनः) तेन आहतम् (= आक्रान्तम्, प्रकम्पितम्) यत् लताकुसुमम् (= व्रततीपुष्पम्) तस्य पातः (= पतनम्, स्वस्थानाद् भ्रंशः) तस्य, अपि, असहम् = सोढुमसमर्थम्, देवीशरीरम् = कादम्बर्याः देहः। कुसुमानां पातेनापि देव्याः शरीरे पीडा जायते इति तद्भावः। एतेन किं विवक्षितं तदाह—वज्रसारेत्यादिना। वज्रेत्यादिः—वज्रम् (= हीरकादिः) तस्य सारः (= मध्यभागः) तद्वत् कठिनानि (= कठोराणि) हृदयानि हृदयानि (= चेतांसि) येषां ते तैस्तादृशैः, मादृशैरिति भावः, अपि, दुर्विषहाः = दुःखेन विशेषरूपेण सोढुं योग्याः, स्मरेषवः = कामदेवस्य बाणाः। न, ज्ञायते = बुध्यते, मयेति शेषः, निमेषेण = अक्षिनिमीलनकालमात्रेण, एव, किम् = अज्ञातम् अननुमितम्, भवति = भविष्यति, इति = विरामसूचकमव्ययम्।

प्रायेणेति। प्रायेण = बाहुल्येन, सामान्यरूपेणेति भावः, देव्या = गन्धर्वराजकुमार्या कादम्बर्या, अपि, न तु केवलं मयैवेति शेषः, अयम् = एषः, मयोक्तः, अर्थः = पीडादिरूपः, अनुभवनीयः = अनुभवितव्यः, एव। सा कादम्बरी मदनबाणैः भृशं पीडिता वर्तत इति अनुमिनोमीति

करनेवाला है और अपने आप उत्पन्न होनेवाला अर्थात् स्वयम्भू है। [ऐसे कामदेव द्वारा सताये जाते हुए देवी के शरीर की उपेक्षा उस मदलेखा ने भी कर दी, यह मुझे समझ में नहीं आ रहा है।] वहीं पर बैठे हुए ही मेरे (चन्द्रापीड के) कान में क्यों नहीं सूचित कर दिया। इस समय [सारी बातें] सुनकर भी कई दिनों तक चल कर पार करने योग्य मार्ग के विषय में मैं क्या कर सकता हूँ अर्थात् उस तक पहुँचने में रास्ते में ही अनेक दिन बीत जायेंगे। मलयाचल की हवा से आहत (टकराई) हुई लता के फूल के गिरने (स्पर्श) को भी न सह सकने वाला अर्थात् अत्यन्त सुकोमल देवी का शरीर है। और वज्र के मध्यभाग के समान कठोर हृदयवालों के द्वारा भी कामदेव के बाणों का [प्रभाव] सहन करना अति कठिन है। मालूम नहीं है कि क्षण में क्या (अनिष्ट) होनेवाला है। और अधिकांशतः देवी कादम्बरी को भी ऐसा अनुभव करना ही पड़ रहा होगा, या ऐसा अनुभव

---

१. ...हृदयैरस्मद्विधैरपि। २. निमेषमात्रेणैव किं वा।

यथा चास्य दुःखैकदानव्यसनिनो दुर्घटघटनापण्डितस्य यत्किचनकारिणो निष्कारणकुपितस्य हतविधेः सर्वतो विसंष्ठुलं[1] समारम्भं पश्यामि तथा जानामि [2]नैवायमेतावता स्थास्यतीति। अन्यथा क्व[3] निष्प्रयोजनाश्वमुखमिथुनानुसरणेनामानुषभूमिगमनम्। क्व च तत्र तृषितस्याच्छोददर्शनम्। क्व [4]तत्तीरे विश्रान्तस्यामानुषगीतध्वनेराकर्णनम्। क्व तज्जिज्ञासा-

---

तद्भावः। स्वाशङ्कां प्रकटयति—यथा चास्येत्यादिना। [अत्र षष्ठ्येकवचनान्तानि पदानि 'हतविधे' रित्यस्य विशेषणानि बोध्यानि।] यथा = येन प्रकारेण, च, दुःखेत्यादिः—दुःखम् (=पीडादिकम्) एकम् (= अद्वितीयम्) दानम् (= अर्पणम्, जननमिति भावः), तस्मिन् व्यसनम् (= आसक्तिः अभिरुचिः) अस्ति अस्य तस्य तादृशस्य। दुर्घटेत्यादिः—दुर्घटा (= दुःखेन घटितुं = भवितुं योग्या) या घटना (= कार्यनिष्पत्तिः) तस्यां पण्डितस्य (= विदुषः, तत्त्वज्ञस्य)। यत्किञ्चन-कारिणः = यत्किञ्चन (= यदेव तदेव) कारिणः (= कर्तुं शीलमस्य तस्य) सर्वमपि विधातुं समर्थस्येति भावः। निष्कारणकुपितस्य = निर्निमित्तक्रुद्धस्य, कोपस्य कारणाभावेऽपि सञ्जातकोपस्येति भावः। अस्य = प्रसिद्धस्य, हतविधेः =हतः (= दुष्टः) चासौ विधिः (= विधाता) तस्य, यथा = येन प्रकारेण, सर्वतः = सर्वदिग्भ्यः, सर्वतः = सर्वदिग्भ्यः, सर्वत्र वा, विसंष्ठुलम् = विरूपम्, विसदृशम्, समारम्भम् = कृत्यम्, उपक्रमं वा, पश्यामि = अवलोकयामि, तथा = तेन प्रकारेण, जानामि = आकलयामि, चिन्तयामीति भावः, यत् अयम् = एष हतविधिः, एतावता = एतादृश-दुर्दशाकरणमात्रेण, एव, नैव, स्थास्यति = अवस्थानं करिष्यति, विरमिष्यतीति भावः, अपितु इतोऽप्यधिकं किमपि विधास्यतीति विचिन्त्य मे चेतः प्रकम्पते इति भावः।

चन्द्रापीडः स्वाशङ्कायां प्रमाणानि प्रस्तौति—अन्यथेत्यादिना। अन्यथा = वैपरीत्ये, यदि विधिरधिकं कर्तुं नेच्छति तदा, क्व = कुत्र, निष्प्रयोजनेत्यादिः—निष्प्रयोजनम् (= प्रयोजनं विनैव) अश्वमुखयोः (= किन्नरयोः) मिथुनम् (= युगलम्) तस्य अनुसरेण (= अनुधावनेन), अमानुषेत्यादि—अमानुषाणाम् (= मनुष्यभिन्नानाम् देव-गन्धर्वादीनाम्) भूमौ (= प्रदेशे) गमनम् (= यानम्, सम्प्राप्तिः), ममेति शेषः ? [अत्र सर्वत्र 'क्व' शब्दो महदन्तरे आश्चर्ये वा वर्तते] क्व, च, तत्र = अमानुषभूमौ, तृषितस्य = पिपासितस्य, मम, अच्छोद-दर्शनम् = अच्छोद—नामक—सरोवरावलोकनम्। क्व, तत्तीरे = अच्छोद-तटे, विश्रान्तस्य = गृहीत-विश्रमस्य दूरीकृतमार्गपरिश्रमस्य, मम, अमानुषगीत-ध्वनेः = मानव-भिन्न-गीतस्वनस्य, आकर्णनम् = श्रवणम्। क्व, तज्जिज्ञासेत्यादिः—तज्जिज्ञासा (= तस्य ध्वनेः ज्ञातुमिच्छा, 'कस्या अयं मधुरो

करना चाहिए। और जैसा कि एकमात्र दुःख देने के व्यसनी, दुर्घट (अनहोनी) घटना करने के विद्वान्, सब कुछ कर सकनेवाले, बिना किसी कारण के कुपित होनेवाले, इस अभागे (मरे हुए) विधाता का विषम (उलटा-पुलटा) समारम्भ (कार्य का उपक्रम) देख रहा हूँ उससे तो यही समझ पा रहा हूँ कि वह इतने से ही [शान्त] नहीं बैठेगा अर्थात् अभी आगे भी बहुत कुछ करेगा। यदि ऐसा नहीं है तो कहाँ बिना किसी प्रयोजन के किन्नर-युगल के पीछे दौड़ने से अमानुषों (मानवों से रहित अर्थात् गन्धर्वों तथा देवताओं) की भूमि पर पहुँच जाना। और कहाँ वहाँ प्यासयुक्त मेरा अच्छोदसरोवर का दर्शन करना। कहाँ उस अच्छोद के किनारे पर विश्राम करते हुए (लेटे हुए) मेरा अमानुषी (मानव-भिन्न अर्थात् गन्धर्वकन्या) के गीत की ध्वनि को सुनना। कहाँ उस ध्वनि को

---

१. विसंस्थुलं। २. नैतावता। ३. ...अश्वमुखानुसरणेन। ४. तत्रतीरे।

गतस्य महाश्वेतावलोकनम्। क्व तत्र तरलिकया सह तवाभिगमनेन मद्गमनप्रस्तावः। क्व महाश्वेतया सह हेमकूटगमनम्। क्व तत्र देवीवदनदर्शनम्। [1]क्वानुरागोत्पत्तिरस्मिञ्जने देव्याः। क्व वाऽपरिपूर्णमनोरथस्य मे पितुरलङ्घनीयागमनाज्ञा। तत्सुदूरमारोप्य पातिता वयं खल्वनेनाकार्यकारिणास्मत्कर्मबलनियोगदक्षेण दग्धवेधसा। तथापि देवीं संभावयितुं प्रयतामहे।'

ध्वनि' रिति ज्ञातुमिच्छा) तया, आगतस्य (= सम्प्राप्तस्य), महाश्वेतावलोकनम् = महाश्वेतायाः दर्शनम्, मम जातमिति शेषः। क्व, तत्र = महाश्वेताश्रमे, तरलिकया = महाश्वेतायाः परिचारिकया, सह = सार्धम्, तव = भवतः, केयूरकस्य, अभिगमनेन = आगमनेन, मद्गमनप्रस्तावः = मम चन्द्रापीडस्य हेमकूटे प्रयाण-प्रस्तुतिः, मयापि तत्र चलितव्यमिति महाश्वेतायाः प्रस्तावः। क्व, महाश्वेतया एतन्नाम्न्या कादम्बरी-प्रियवयस्यया, सह = साकम्, हेमकूट-गमनम् = एतन्नामक-पर्वतं प्रति प्रस्थानम्। क्व, तत्र = हेमकूटे, देवीवदन-दर्शनम् = कादम्बरी-मुखावलोकनम्। क्व, अस्मिन् जने = मयि चन्द्रापीडे, देव्याः = कादम्बर्याः, अनुरागोत्पत्तिः = प्रेम्णः समुद्भवः। वा = अथवा, क्व, अपरिपूर्ण-मनोरथस्य—अपरिपूर्णः (= असम्पूर्णः, असफलः) मनोरथः (= अभिलाषः) यस्य तस्य तादृशस्य, मे = मम चन्द्रापीडस्य, पितुः = जनकस्य तारापीडस्य, अलङ्घनीया = अतिक्रमणायोग्या, सर्वथा परिपालनीयेति भावः, आगमनाज्ञा = उज्जयिनी-प्रत्यावर्तनविषयकादेशः।

स्ववक्तव्यमुपसंहरति चन्द्रापीडः—तदित्यादिना। तत् = तस्मात् अकार्यकारिणा—अकृत्यविधायिना, अस्मदित्यादिः—अस्माकम् (= कादम्बरी-चन्द्रापीड-प्रभृतीनाम्) यत् कर्म (= पूर्वजन्मविहितशुभाशुभकृत्यम्) तस्य बलम् (= प्रभावः, परिणामः) तस्य नियोगे (= प्रवर्तने) दक्षेण (= प्रवीणेन), अनेन = एतेन प्रसिद्धेन, दग्धवेधसा = हत-विधिना, वयम् = कादम्बर्यादयः, सुदूरम् = अत्यन्तं विप्रकृष्टम्, आरोप्य = उत्थाय, उपरि संस्थाप्य वा, पातिताः = अधोदेशं प्रापिताः। पूर्वं बहु अनुकूलं विधाय मनोरथाः वर्द्धिताः, पश्चाच्च तथाऽऽचरितं येन जीवनस्यैव सन्देहो जात इति भावः। तथापि = एवं भूतेऽपि, देवीम् = कादम्बरीम्, सम्भावयितुम् = समाश्वासयितुम् हेमकूटं गत्वेति शेषः, प्रयतामहे = प्रयासं कुर्महे।

जानने की इच्छा से पहुँचे हुए मुझे महाश्वेता का दर्शन होना। कहाँ उस स्थान पर तरलिका के साथ तुम्हारे (केयूरक के) आगमन के कारण मेरा [हेमकूट पर] जाने का प्रस्ताव होना। कहाँ महाश्वेता के साथ हेमकूट पहुँचना। कहाँ उस प्रदेश में देवी कादम्बरी के मुख का दर्शन करना। कहाँ देवी कादम्बरी का इस व्यक्ति (चन्द्रापीड) में प्रेम उत्पन्न हो जाना। कहाँ अपरिपूर्ण मनोरथवाले मुझे [उज्जयिनी वापस] आने के लिये पिता जी की अलंघनीय आज्ञा। इसलिए [लगता है कि] अकार्य (अनुचित कर्म) करानेवाले, और हमारे (जन्मान्तरीय) कर्मों के बल से कार्य कराने (फल-प्रदान) में दक्ष इस दग्ध (जलमुहे) विधाता द्वारा हम लोग बहुत दूर तक ऊपर उठा कर नीचे जमीन पर पटक दिये गये हैं, तथापि (जो भी हो), देवी कादम्बरी को सम्भालने (आदर देने) के लिये हम लोग प्रयत्न करेंगे, या कर रहे हैं।"

---

१. क्व रागोत्पत्तिः।

इत्यभिदधत्येव चन्द्रापीडे 'नितरामयमनेनैव कादम्बरीवृत्तान्तेन संतापितस्तत्किमपरमहमेनमात्मतेजसा संतापयामि' इत्युत्पन्नदय इव भगवांस्तिग्मदीधितिरुत्तप्तकनकद्रवस्फुलिङ्गपिङ्गलद्युति[1]-दिग्विकीर्णधूर्जटिजटामण्डलानुकारि[2] संजहार करसहस्रम्। अस्तानुसारेण च रवेर्वासरोऽपि यथोच्छ्रिततरुशिखरावलम्बिनो रक्तातपच्छेदानाकर्षन्नपससार।

सूर्यास्तं वर्णयितुमुपक्रमते—इतीत्यादिना। इति = पूर्वोक्तम्, अभिदधति = कथयति, एव, चन्द्रापीडे = राजकुमारे, अयम् = एष चन्द्रापीडः, अनेन = पूर्ववर्णितेन, कादम्बरीवृत्तान्तेन = गन्धर्व-राजकुमारीविषयकोदन्तेन, एव, नितराम् = अत्यन्तं यथा स्यात् तथा, सन्तापितः = सन्तापं लम्भितः, तत् = तस्मात्, एनम् = अमुम् चन्द्रापीडम्, अहम् = सूर्यः, आत्मतेजसा = निजतापेन, अपरम् = अन्यत्, इतोऽप्यधिकमिति भावः, किम् = किमर्थम्, सन्तापयामि = सन्तापयुक्तं करोमि, स्वत एव सन्तप्तस्य पुनः सन्तापकरणमनुचितमिति भावः, इति = अस्मात् कारणात्, उत्पन्नदयः = सञ्जातकरुणः, इव, भगवान् = ऐश्वर्यवान्, तिग्मदीधितिः = उष्णरश्मिः सूर्यः, उत्तप्तेत्यादिः—उत्तप्तम् (= अग्न्यादिनोष्णीकृतम्) यत् कनकम् (= सुवर्णम्) तस्य यो द्रवः (= रसः), तस्य स्फुलिङ्गः (= दीप्यमानः कणः) तद्वत् पिङ्गला (= रक्तपीतवर्णा) द्युतिः (= कान्तिः) यस्य तत् तादृशम्। यद्वा—उत्तप्त-कनक-द्रवः स्फुलिङ्गः = वह्निकणः च, तयोरिव पिङ्गला द्युतिर्यस्य तत् तादृशम्। दिग्विकीर्णेत्यादिः—दिक्षु (= सर्वासु दिशासु) विकीर्णा (= विक्षिप्ता) या धूर्जटेः (= शिवस्य) जटा (= शिरस्थकेशराशिः; सटा) तस्याः मण्डलम् (= समूहम्) अनुकरोति (= बिडम्बयति) इति तत् तादृशम्, करसहस्रम् = किरणानां सहस्रम्, राशिमिति भावः, संजहार = संहृतवान्। करसहस्रस्य विशेषणद्वयम्, प्रथमेन रक्तपीतत्वम् द्वितीयेन च श्वेतत्वं सूर्यकिरणानां प्रतिपादितम्, सायङ्काले एतादृशस्यैव दर्शनादिति बोध्यम्।

अस्तेति। रवेः = सूर्यस्य, अस्तानुसारेण = अस्तकालानुसरणेन, च; वासरः = दिवसः, अपि, यथेत्यादि—यथोच्छ्रितम् (= यथोच्चम्) यथा स्यात् तथा, तरूणाम् (= पादपानाम्) शिखराणि (= अग्रदेशान्) अवलम्बन्ते (= आश्रयन्ति) इति तान् तादृशान् वृक्षाणां शिखरोपरि स्थितानिति भावः, रक्तेत्यादिः—रक्तः (= लोहितः) य आतपः (= घर्मः, सूर्यप्रकाशः) तस्य छेदान् (= खण्डान्), आकर्षन् = संहरन्, अपससार = अप-ययौ। सूर्येऽस्तं गते वृक्षाणा-

---

इस प्रकार से जब चन्द्रापीडे कह ही रहा था तब 'यह चन्द्रापीड कादम्बरी के इस वृत्तान्त से ही बहुत अधिक सन्तापयुक्त कर दिया गया है तो फिर मैं अपने तेज (सन्ताप) से इसको और अधिक क्यों सन्तप्त करूँ'—इस (भावना) से उत्पन्न हुई दयावाले से सूर्य भगवान् ने खूब गरम किये गये (पिघलाये गये) सोने के द्रव (पानी) के तथा अग्नि कण के समान पिङ्गल (लाल-पीली) कान्तिवाली (तथा) सभी दिशाओं में (चारो ओर) बिखेरे हुए भगवान् शंकर के जटामण्डल (जटाओं के समूह) का अनुकरण करनेवाली अर्थात् उनके समान [अपनी] हजारों किरणों को समेट लिया, खींच लिया। और सूर्य के अस्त होने के अनुसार (अर्थात् फीका) दिन भी ऊँचे से ऊँचे वृक्षों की चोटिओं पर स्थित (टिकी हुई) लाल-लाल धूप के खण्डों को खींचते हुये (अपने में समेटते हुये) भागने लगा। उत्पन्न हुई दया के सम्बन्ध वाली जैसी सन्ध्या ने भी क्रम से ही (धीरे-

---

१. पिङ्गलगलद्द्युति। २. मण्डलाकारी।

[1]क्रमेणैव संजातकरुणानुबन्धयेव संध्ययाप्युपरि जलार्द्रपट इव प्रसार्यमाणे स्वरागपटले, निशागमेनापि 'एवमस्य शून्यताविक्लवस्य मा भूद्दर्शनमि'त्याप्तेनेव[2] सर्वतो नीलीपरिलम्बमानायामिव [3]भ्राम्यमाणायां तिमिरलेखायाम्, कमलेष्वपि दुःसहत्वाच्छोषकारिणः संतापस्य तल्पकल्पनाभीतेष्विव संकुचत्सु, कुमुदेष्वपि शुचिस्वभावतयार्द्रार्द्रेषु शयनसंपादनायेवाह-

मुपरिभागे विद्यमानाः रक्तातपखण्डा अपि लुप्ता जात इति भावः। क्रमेणेति। क्रमेण = क्रमशः, एव, सञ्जातेत्यादिः—सञ्जातः (= समुत्पन्नः) करुणायाः (= दयायाः) अनुबन्धः (= सम्बन्धः, भावना) यस्यां सा तादृश्या, इव, सन्ध्यया = प्रदोषवेलया, अपि, उपरि = उपरिष्टात्, ऊर्ध्वदेशे, जलार्द्रपटे = सलिलेन क्लिन्ने वसने, इव, स्वरागपटले = स्वस्याः रागस्य (= अनुरागस्य, रक्तिम्नः) पटले (= समूहे), प्रसार्यमाणे = विस्तार्यमाणे सति। सन्तापपीडितस्य जनस्य शान्त्यर्थं यथा लोकाः जलार्द्रं वस्त्रमाच्छादयन्ति तथैव सन्ध्या अपि चन्द्रापीडस्य सन्तापातिशयं विलोक्य तस्य दूरीकरणार्थमुपरि स्वरागपटलं वस्त्रमिव प्रसारितवतीति भावः। निशागमनेन = रजन्या आगमेन, प्रदोषकालेन, अपि 'एवम् = अनेन प्रकारेण, शून्यताविक्लवस्य—शून्यता (= वियोगवशाद् रिक्तता, विमनस्कता) तया विक्लवस्य (= विह्वलस्य), अस्य = एतस्य चन्द्रापीडस्य, दर्शनम् = अवलोकनम्, मा भूत् = नैव भवेत्, लोकानामिति शेषः, शून्यताविह्वलममुं राजकुमारं कोपि न पश्येदिति भावः, इति = एवम्, आप्तेन = शिष्टजनेन, इव, सर्वतः = सर्वत्र, नीलीपरिलम्बमानायाम्—नीली (= नीलवर्णयुक्ता) या परिलम्बमाना (= पटमण्डपादिः) तस्याम्, इव, तिमिरलेखायाम् = तमोवीथ्याम्, भ्राम्यमाणायाम् = इतस्ततो विक्षिप्यमाणायाम्, सत्याम्। लोके यथा कश्चन शिष्टो जनः विह्वलं कमपि वियोगिनं नीलवस्त्रेणाच्छादयति येन लोका तं न पश्येयुस्तथैव निशागमेन तिमिरलेखया स राजकुमार आवृतः, अतो न वियोगातुरं तं कश्चिदपि द्रष्टुं शक्नोतीति भावः। कियदनभवसिद्धोऽयं भूषणभट्ट इति विचारणीयम्। कमलेष्विति। शोषकारिणः—शोषं (= शुष्कताम्) करोति (= विदधाति) इति तच्छीलस्य, सन्तापस्य = कामभावजन्योग्रदाहस्य, दुःसहत्वात् = दुःखेन सोढुं शक्यात्, तल्पकल्पनाभीतेषु—तल्पस्य (= शय्यायाः) कल्पना (= सम्भावना) तया भीतेषु (= भयत्रस्तेषु), इव, कमलेषु = पद्मेषु, अपि, संकुचत्सु = मुद्रितत्वं प्राप्तवत्सु, सत्सु। एतादृशोग्रसन्तापतप्तस्य चन्द्रापीडस्य कृते शय्यायामस्माकं यदोपयोगो भविष्यति तदाऽस्माकं का गतिर्भविष्यतीति भीतानि भूत्वा कमलानि संकुचितानि भवन्ति येन तेषां शय्यार्थमुपयोगो न भवेदिति भावः। कुमुदेष्वपीति। शुचिस्वभावतया—शुचिः (= पवित्रः, निर्मलः) स्वभावः (= प्रकृतिः) येषां ते तेषां भावस्तत्ता तया, निर्मलप्रकृतितया, आर्द्रार्द्रेषु—

धीरे) ऊपर जल से गीले वस्त्र की तरह अपने राग (= लालिमा, अनुराग) का समूह फैला दिया था, निशा के आगमन (= सायंकाल) ने भी—'ऐसी शून्यता से व्याकुल इस चन्द्रापीड का दर्शन [किसी को] न हो सके'—इस प्रकार (भाव) से आप्त [सज्जन दोषहीन] व्यक्ति के समान चारों ओर नीले रंग की परदा (कनात) जैसी अन्धेरे की रेखा घुमाने (फैलाने) लग गया था। कमल भी [चन्द्रापीड के शरीर को] सुखा डालने वाले सन्ताप के दुःसह [अत्यन्त दुःख से सहन करने योग्य] होने के कारण [उसके लिये] पलंग [के विस्तर बनाये जाने] की कल्पना से भयभीत जैसे होते हुये संकुचित (बन्द) होने लगे थे, [क्योंकि बन्द कमलों का बिस्तर नहीं बनाया जाता है।] शुचि (= पवित्र, श्वेत) स्वभाव वाले होने के कारण अत्यन्त आर्द्र

१. क्रमेण च। २. प्राप्तेनेव।

३. वस्तुतस्तु 'नीलीपरिलम्बनायाम्' इति पाठः। नीली = नीलवर्णयुक्ता, परिलम्बना = तिरस्कारिणी तस्यामिव तिमिरलेखायां भ्राम्यमाणायाम्। इति मथुरानाथभट्टः। तिरस्कारिणी = परदा, कनात इति हिन्द्यां प्रसिद्धम्।

महमिकयोद्दलत्सु, चक्रवाकेष्वपि सहचरीविरहविधुरेषु कादम्बरीसमीपगमनोपदेशदानायेव कलकरुणमुच्चैर्मुहुर्मुहुर्व्याहरत्सु, चन्द्रमस्यपि भगवति समस्तभुवनैकातपत्रे सुधारजतकलशे पूर्वदिग्वधूवदनचन्दनतिलके गगनतललक्ष्मीलावण्यमहाह्रदे [1]सकललोकाह्लादकारिणि सुधा-

---

आर्द्राणि आर्द्राणि इति आर्द्रार्द्राणि तेषु (= अतिशयेन सलिलक्लिन्नेषु अथ च सरसेषु सहृदयेषु) कुमुदेषु = कैरवेषु, अपि, शयनसम्पादनाय = पर्यङ्कनिर्माणाय, इव, अहमहमिकया = अहं पूर्वम्, अहं पूर्वम्—इत्याकारकस्पर्धया, उद्दलत्सु = विकसत्सु सत्सु। यथा उदारस्वभावा जनाः दुःखिनं विलोक्य तस्य साहाय्यार्थम् स्पर्धया प्रवर्तन्ते तथैव कुमुदानि चन्द्रापीडस्य शय्यायामुपयोगार्थं विकसितानि जायन्ते इति भावः।

चक्रवाकेष्वपीति। सहचरीविधुरेषु = चक्रवाकी-वियोगयुक्तेषु, चक्रवाकेषु = रथाङ्गाह्वयपक्षिषु, कादम्बरीत्यादिः—कादम्बरीसमीपे (= स्वप्रेयसीनिकटम्) यद् गमनम् (= व्रजनम्, सम्प्राप्तिः) तस्य उपदेशदानम् (= उपदेशकरणम्) तस्मै, इव, कलकरुणम् = कलं (= मधुरम्) करुणम् (= सदयं) च यथा स्यात् तथा, उच्चैः = तारस्वरेण, मुहुर्मुहुः = बारं बारम्, व्याहरत्सु = उच्चारयत्सु, सत्सु। सायंकालादेव प्रियविरहिताश्चक्रवाकाः स्वतुल्यं वियोगिनं चन्द्रापीडं कादम्बरीसमीप-गमनाय तारस्वरेण उच्चार्य प्रेरयन्तीति भावः। तुल्यदशानां सुन्दरं चित्रणम्। चन्द्रमस्यपीति। समस्तेत्यादिः—समस्तम् (= अखिलम्) यद् भुवनम् (= संसारः) तस्य एकम् (= अद्वितीयम्) आतपत्रम् (= छत्रम्) तस्मिन्। सुधेत्यादिः—सुधा (= अमृतम्, श्वैत्यसम्पादक-पदार्थविशेषो वा, 'चूना' इति हिन्द्याम्) रजतम् (= रौप्यम्) तयोः कलसे (= घटे, आधारभूतपात्रे), पूर्वदिगित्यादिः—पूर्वा (= ऐन्द्री) चासौ दिक् (= काष्ठा) सा एव वधूः (= रमणी) तस्या वदनम् (= आननम्) तस्मिन् चन्दनस्य (= श्रीखण्डस्य) तिलकम् (= विशेषकः, तिलकबिन्दुः) तस्मिन्। गगनेत्यादिः—गगनतलम् (= आकाशतलम्) तस्य लक्ष्मीः (= शोभा), तस्याः लावण्यम् (= सौन्दर्यम्) तस्य महाह्रदः (= विपुलतडागः) तस्मिन्। सकलेत्यादिः—सकललोकाः (= समस्तजनाः) तेषाम् आह्लादम् (= आनन्दम्) करोति इति तच्छीलस्तस्मिन्। भगवति = ऐश्वर्यशालिनि, चन्द्रमसि = इन्दौ, अपि, सुधा-

---

(= जलयुक्त, द्रवित हृदय) कुमुद भी मानों शयन (पलंग के बिछावन) बनाने के लिये 'पहले मैं, पहले मैं—' इस प्रकार की स्पर्धा से विकसित होने लगे थे, सहचरियों के वियोग से व्याकुल चकवा पक्षी भी मानों कादम्बरी के पास जाने का उपदेश देने के लिये ऊंचे स्वर से मधुर और करुण बार-बार बोलने लगे थे, समस्त संसार के एकमात्र छत्र, अमृत के रजतकलस; पूर्वदिशारूपी बधू के मुख की चन्दन की बिन्दी, आकाशतल की लक्ष्मी (शोभा) के सौन्दर्यरूपी महान् सरोवर, समस्त लोकों के आनन्द को (देने) करने वाले भगवान् चन्द्रमा भी मानों अमृत से लिप्त (युक्त) किरण रूपी हाथों से (चन्द्रापीड को) स्पर्श करने के लिये और उच्छ्वास (चैतन्य) को करने वाले (होश में लाने वाले) चांदनीरूपी जल से (चन्द्रापीड को) सींचने के लिये उदयाचल की चोटी

---

१. समस्त०।

लिप्तैः करैरिव स्प्रष्टुमुच्छ्वासहेतुना तं ज्योत्स्नाजलेन[1] च सेक्तुमुदयगिरिशिखरमारूढे, प्रौढे प्रदोषसमये चन्द्रापीडस्तस्मिन्नेव वल्लभोद्याने चन्द्रातपस्पर्शदर्शितविशदजललवोद्भेदहारिणि चन्द्रमणिशिलातले विमुच्याङ्गानि चरणसंवाहनोपसृतं केयूरकमवादीत्—'केयूरक ! किमाकलयसि[2] यावद्वयं परापतामस्तावत्प्राणान्संधारयिष्यति[3] देवी कादम्बरी ? पारयिष्यति वा तां विनोदयितुं मदलेखा ? आगमिष्यति वा पुनस्तत्समाश्वासनाय महाश्वेता ? मत्परि-

---

लिप्तैः = अमृतमयैः, करैः = किरणैः, पक्षे—'हस्तैः, इव, स्प्रष्टुम् = स्पर्शं कर्तुम्, च = अथ च, उच्छ्वासहेतुना = उच्छ्वासकारणभूतेन, ज्योत्स्नाजलेन = चन्द्रिकारूपिसलिलेन, तम् = चन्द्रापीडम्, सेक्तुम् = सिञ्चितुम्, उदयगिरि-शिखरम् = उदयाचल-शृङ्गम्, आरूढे = समाक्रान्ते, समारोहिते, सति । लोके यथा कश्चन महापुरुषः व्याकुलं मूर्छितं वा कञ्चन जनं कोमलकरेण स्पर्शं कृत्वा, जलादिना सेकं च विधाय स्वस्थं करोति तथैव चन्द्रश्चन्द्रापीडाय कृतवानिति भावः । प्रौढे = दृढे, पूर्णे इति भावः, प्रदोषसमये = प्रदोषकाले, चन्द्रापीडः = राजकुमारः तस्मिन्, एव, वल्लभोद्याने = प्रियोपवने । चन्द्रातपेत्यादिः—चन्द्रातपस्य (= इन्दुप्रकाशस्य) यः स्पर्शः (= सम्पर्कः) तेन दर्शिताः (= प्रकटिताः) विशदस्य (= निर्मलस्य) जलस्य (= वारिणः) लवाः (= बिन्दवः, कणाः) । तेषाम् उद्भेदः (= प्रादुर्भावः प्रकटता) तेन हरति (= आकृषति) इति तस्मिन् तादृशे, चन्द्रमणि-शिलातले इन्दुकान्तमणिप्रस्तरतले, अङ्गानि = स्वपादादिदेहावयवान्, विमुच्य = मुक्त्वा, शिथिलानि कृत्वा, चरणेत्यादिः—चरणयोः (= पादयोः) संवाहनम् (= शनैः शनैर्मर्दनम्) तदर्थम् उपसृतम् = समीपमुपगतम्, केयूरकम् = कादम्बरी-सेवकम्, अवादीत् = अबोचत् ।

स किमवादीदिति वर्णयति—केयूरक इत्यादिना । केयूरक = इदं सम्बद्धौ । किम् (= इदं) प्रश्ने । आकलयसि = सम्भावयसि, आकलनां करोषि, यावत् = यावता समयेन, वयम् = चन्द्रापीडादयः, परापतामः = तस्याः समीपे गच्छामः, सामीप्ये लट् तेन गमिष्याम इत्यर्थः, तावत् = तावत्कालपर्यन्तम्, देवी, कादम्बरी, प्राणान् = असून्, धारयिष्यति = प्राणरक्षणं करिष्यति, जीविता स्थास्यतीति भावः ? वा = पक्षान्तरे, मदलेखा = कादम्बरी-परिचारिका-विशेषः, ताम् = कादम्बरीम्, विनोदयितुम् = तस्या मनो रञ्जयितुम्, पारयिष्यति = समर्था भविष्यति ? वा = पक्षान्तरे, तत्समाश्वासनाय = तस्याः सान्त्वनां विधातुम्, समाश्वासयितुम्, महाश्वेता = कादम्बर्याः प्रियवयस्या, पुनः = भूयः, आगमिष्यति = आयास्यति ? वा =

पर आरूढ हो चुके थे, (चन्द्रमा पूरा निकल चुका था), ऐसे प्रौढ (पूरे) प्रदोष के समय में चन्द्रापीड ने उसी वल्लभ उद्यान में चन्द्रमा की चाँदनी के स्पर्श के द्वारा प्रकट किये गये (प्रदर्शित) निर्मल जलकणों (बिन्दुओं) के प्रादुर्भाव से मनोहारी चन्द्रकान्त मणि के शिलातल पर [अपने सभी] अङ्गों को [ढीला] छोड़ कर, चरण दबाने के लिये समीप में आये हुये केयूरक से कहा—"केयूरक ! क्या समझते (सोंचते) हो कि हम लोग जब तक [हेमकूट] पहुँचेंगे तब तक देवी कादम्बरी अपने प्राण धारण किये रहेगी ? अथवा मदलेखा उसके मन का बहलाव कर सकेगी ? अथवा उस कादम्बरी को दुबारा आश्वासन देने के लिये महाश्वेता आयेगी ? अथवा मेरे परिचय के कारण उद्विग्न (बहुत उदास) हुई वह (कादम्बरी) अपना शरीर धारण किए रखने के लिये

---

१. ज्योत्स्नाजलेनेव । २. मामालपसि । ३. धारयिष्यति ।

चयोद्वेजिता प्रतिपत्स्यते वा शरीरस्थितये तयोरभ्यर्थनाम् ? द्रक्ष्यामि वा पुनस्तस्याः स्मेरसृक्कोपान्तमालोलतारकमुत्त्रस्तहरिणशावकायताक्षं [1]मुखम्' ? इति ।

स तु व्यज्ञपयत्—'देव, धैर्यं [2]समवलम्ब्य गमनाय यत्नः क्रियताम्, तिष्ठतु तावदासन्नवर्ती [3]सखीजनः परिजनो वा । तस्या हि त्वदालोकनेच्छैव स्वेच्छया निमेषितुमपि न ददाति । समागमाशयैवावष्टब्धं हृदयम् । श्वसितमेव मुखे वहितम्[4] । रोमाञ्च एव क्षणमपि

विकल्पार्थे, मत्परिचयोद्वेजिता—मम(=चन्द्रापीडस्य) यः परिचयः (=परिचितिः, कादम्बर्या सहेति शेषः) तेन, उद्वेजिता (= उद्विग्ना, व्याकुला) कादम्बरीति शेषः, तयोः = महाश्वेतामदलेखयोः, अभ्यर्थनाम्=प्रार्थनाम्, प्रतिपत्स्यते=स्वीकरिष्यति ? वा=विकल्पे, स्मेरेत्यादि—स्मेरम् (= विकसितम्, मन्दस्मितयुक्तम्) सृक्कयोः (= ओष्ठप्रान्तयोः) उपान्तम् (= प्रान्तभागः) यस्मिन् तत् तादृशम् । आलोलतारकम्—आलोले (= ईषच्चञ्चले) तारके (= कनीनिके) यस्मिन् तत् तादृशम् । उत्त्रस्तेत्यादिः—उत्त्रस्तः (= भयचकितः) यो हरिण-शावकः (= मृगशिशुः) तत्तुल्ये आयते (= विस्तृते) अक्षिणी (= नेत्रे) यस्मिन् तत् तादृशम्, तस्याः = कादम्बर्याः, मुखम् = आननम्, पुनः = भूयः, द्वितीयवारम्, द्रक्ष्यामि = अवलोकयिष्यामि ? अत्र सर्वत्र प्रश्नः प्रतीयते एतावता सर्वेषु वाक्येषु 'न वा' इति संयोज्याभीष्टार्थ-प्रतीतिर्विधेया । तेन देवी कादम्बरी प्राणान् सन्धारयिष्यति न वे ?' त्यादि वाक्यरूपाणि फलितानि सन्ति ।

स इति । सः = केयूरकः, तु, व्यज्ञपयत् = निवेदयामास । किं तदित्याह—देव = स्वामिन् !, धैर्यम् = धीरताम्, समवलम्ब्य = समाश्रित्य, गमनाय = प्रस्थानाय, कादम्बरीसमीपमिति शेषः, यत्नः = प्रयासः, क्रियताम् = विधीयताम् । आसन्नवर्ती = कादम्बर्याः समीपस्थायी, सखीजनः = वयस्यालोकः, परिजनः = सेवकलोकः, वा, तिष्ठतु = दूरे अस्तु, तावत् = इदं वाक्यालंकारे । कथमिति चेत्तत्राह—हि = यतः, तस्याः = कादम्बर्याः, त्वदालोकनेच्छा—तव (= चन्द्रापीडस्य) यद् आलोकनम् (= दर्शनम्) तस्य इच्छा (= अभिलाषः, वाञ्छा), एव, स्वेच्छया = स्वाभिलाषानुसारम्, निमेषितुम् = निमेषं कर्तुम्, अक्षि-संकोचं कर्तुम्, न = नैव, ददाति = दत्ते, अनुमन्यते, तव दर्शनस्य इच्छा एतावती उत्कटा वर्तते यया सा कदापि नेत्रे न निमीलयति,कदाचित् तदैव समागतस्य तव दर्शनेन वञ्चिता मा भूदिति तस्या मनोभावः ।

समागमेति । समागमाशया = समागमः (= तव सम्मिलनम्) तस्य आशया (= अभिलाषेण) एव, तस्याः, हृदयम् = चित्तम्, अवष्टब्धम् = स्तब्धम्, अविदीर्णम् वर्तते, अन्यथा इदानीं यावत् विदीर्णं स्यादिति भावः । [अत्र 'समागमाशया एव' इत्यस्यान्वयोऽग्रिमेषु वाक्येषु यथासम्भवं विधेयः ।] मुखे = आस्ये, श्वसितम् = उच्छ्वासग्रहणम्, एव, वहितम् = अवहितम्, विद्यमानम् [अव पूर्वकाद् धा धातोः क्तप्रत्यये "वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः" इति भागुरि-

---

उन दोनों (महाश्वेता और मदलेखा) की प्रार्थना को स्वीकार कर लेगी ? अथवा क्या मैं उसके मुस्कुराहटयुक्त ओष्ठों के किनारों वाले चंचल पुतलियों वाले और घबड़ाये हुये हिरन के बच्चे के समान विशाल नेत्रों वाले मुख को दुबारा देख सकूंगा ?

वह केयूरक बोला—'महाराज ! धीरज रख कर चलने के लिये प्रयास करिये । समीप में रहने वाली सखियाँ, अथवा सेवक-सेविकायें [दूर ही] रहें अर्थात् वे कादम्बरी के जीवन धारण में सहायक नहीं बन सकतीं ।] क्योंकि उसकी आपके दर्शन की इच्छा ही स्वेच्छा से पलक भी बन्द नहीं करने देती है । [उसका] हृदय [आपके] मिलन = संगम की आशा से ही [अभी तक] रुका, टिका हुआ है । सांसें ही मुख में रहती हैं, या बहती हैं । रोमाञ्च ही एक क्षण के लिये

---

१. '''आयतेक्षणं । २. धैर्यमवयम्ब्य । ३. आसन्नसखीजनः । ४. विहितम्, अवहितम् ।

शरीरं न मुञ्चति । दिवानिशं बाष्प एव लोचनपथस्थायी । प्रजागर एव रात्रावपि दत्तदृष्टिः । अरतिरेव नैकाकिन्याः क्षाम्यत्यवस्थानम् । जीवितमेव कण्ठस्थानान्नापसरति ।'

एवं वदन्तं [1]तमादिदेश विश्रान्तये केयूरकम् । आत्मनापि गमनचिन्तां प्राविशत् । यदि तावदकथयित्वाऽनिपत्य[2] चरणयोरनाघ्रातः शिरस्यगृहीताशीः सहसानुत्संकलित[3] एव[4]

मतेन 'अव' इत्यस्याकारलोपः । प्रसङ्गाच्च, 'स्थितम्' इत्यर्थः । वह् धातोस्तु अनिट्त्वाद् 'ऊढम्' इत्येव रूपं शुद्धम् । परन्त्वत्र कविः 'वह्' धातोरेवार्थमभिलषति, वियोगकाले मुखे सदैवोच्छ्वास-प्रवाह-दर्शनादिति बोध्यम् । इडभावादिकन्तु उपेक्षितं कविनेति तत्त्वम् । यद्वा—अवहितम् = इत्यस्य दत्तावधानम् इत्यर्थः । निश्वसितं सदैव सावधानं वर्तते येन तव दर्शनादौ कदापि बाधा न स्यादित्यपि केषाञ्चन व्याख्यानं नानुचितम् । रोमाञ्चः = रोमोद्गमः, एव, क्षणम् = निमेषकालमात्रम्, अपि, शरीरम् = देहम्, न मुञ्चति = त्यजति, सदैव रोमाञ्चो वर्तते तेन तस्याः कामातुरता प्रतीयते । दिवानिशम् = रात्रिन्दिवम्, बाष्पः = अश्रुजलम्, एव, लोचनपथस्थायी = नेत्रमार्गस्थितिशीलः, वर्तते । प्रजागरः = अतिशयजागरणम्, एव, रात्रौ = निशायाम्, अपि, दत्तदृष्टिः = दत्ता (= प्रेरिता) दृष्टिः (= नेत्रम्) येन स तादृशः, रात्रि-समयेऽपि स्वप्तुं नानुमन्यते इति भावः । अरतिः = सर्वतो विरक्तिः, एव, एकाकिन्याः = अद्वितीयायाः, अवस्थानम् = अवस्थितिम्, क्षाम्यति = सहते, सर्वदैव अरतियुक्ता, व्याकुला वर्तते इति भावः । जीवितम् = जीवनम्, प्राणा इति भावः, एव, कण्ठस्थानात् = गलप्रदेशात्, न अपसरति = अपयाति, दूरीभवति, अन्यत् सर्वं भोजनादिकन्तु अपसरत्येव भावः ।

अत्र सर्वत्र वाक्येषु 'एव' शब्दस्य प्रयोगात् परिसंख्यालङ्कारः । अवधारणार्थंस्तु यथा-यथमूह्यः ।

एवमिति । एवम् = अनेन प्रकारेण पूर्वोक्तम्, वदन्तम् = कथयन्तम्, तम्, केयूरकम् = कादम्बरीसेवकम्, विश्रान्तये = विश्रामार्थम्, आदिदेश = आदिष्टवान्, चन्द्रापीड इति शेषः । आत्मना = स्वयम्, अपि, गमनचिन्ताम् = प्रयाणचिन्तनम्, हेमकूटं प्रतीति शेषः, प्राविशत् = प्रविष्टवान् । स विचारयितुमारेभे केन प्रकारेण हेमकूटं प्रति गन्तुं शक्यते इति भावः । चन्द्रापीडस्य चिन्ता वर्णयति—यदीत्यादिना । तावत् = आदौ, यदि = चेत्, अकथयित्वा = अनापृच्छ्य, पितराविति शेषः, चरणयोः = पादयोः, अनिपत्य = अपतित्वा प्रणामम् अकृत्वा, शिरसि = मूर्धनि, अनाघ्रातः = अचुम्बितः, अगृहीताशीः = न गृहीता (= आत्ता) आशीः (= आशीर्वादः) येन स तादृशः, तातेन = पित्रा तारापीडेन, अम्बया = महाराज्ञ्या वा = विकल्पे,

---

भी [उसके] शरीर को नहीं छोड़ता है, अर्थात् वह सदैव रोमाञ्चित रहा करती है । आँसू ही दिन-रात लोचन-मार्ग (आँखों) में रहते हैं । रात्रि का अतिशय जागरण ही [उस पर] दृष्टि लगाये रहता है । अरति = अशान्ति, बेचैनी ही [उसका] अकेले रहना सहन नहीं करती है, अर्थात् बेचैनी उसके साथ सदा बनी रहती है । प्राण ही [उसके] कण्ठस्थान से नहीं निकलते हैं अर्थात् प्राणों को छोड़ कर आहें आदि उसके कण्ठ से निकलती रहती हैं ।'

इस प्रकार से कहने वाले उस केयूरक को विश्राम करने का आदेश दिया । स्वयं भी (चन्द्रापीड) गमन की चिन्ता में प्रविष्ट हो गया, डूब गया । यदि मैं माता जी तथा पिता जी से बिना कहे और बिना चरणों पर गिरे (स्पर्श) किये [उनके द्वारा] बिना शिर सूंघे = चूमे, बिना [उनका] आशीर्वाद लिये, पिता जी अथवा माता जी के द्वारा बिना जाने हुए अचानक

---

१. एवम् ।   २. अनभिपत्य ।   ३. उत्संकलितः, उच्छृंखलितः ।   ४. इव ।

तातेनाम्बया[1] वापक्रम्य गच्छामि ततो गतस्यापि मम कुत सुखं, किं श्रेयः, कुतो वा [3]फलावाप्तिः, कीदृशी वा हृदयनिवृ॑तिः ?

अथवा तिष्ठतु तावदियमुत्तरकालागामिनी चिन्ता। अपक्रम्य गत[3] एव कथमहम्, यत्तातेन[4] [5]दुस्तराहवार्णवोत्तरण-महासेतुबन्धादबन्ध्य-[6]वाञ्छितफलप्रदानकल्पद्रुमादहित[7]विक्रान्तियशोनिष्क्रान्तिद्वारार्गलदण्डादशेष-भुवनभवनो-[8]

अनुत्सङ्कलितः = अज्ञातः, एव, सहसा = अकस्मात्, अपक्रम्य = प्रपलाय्य, गच्छामि = व्रजामि, हेमकूटे कादम्बरीसमीपमि'ति शेषः। ततः = तर्हि, गतस्य = प्रयातस्य, अपि, मम चन्द्रापीडस्य, कुतः = कस्मात्, सुखम् = सौख्यम्, किम् = किम्प्रकारकम्, श्रेयः = कल्याणम्, कुतः = कस्मात् जनात् स्थानाद्, वा, फलावाप्तिः = इष्टवस्तुप्राप्तिः, वा = अथवा, कीदृशी = किम्प्रकारा, हृदयनिवृ॑तिः = चित्तस्य सन्तुष्टिः, शान्तिर्वा भविष्यति ? न किमपि भविष्यतीति तद्भावः।

पक्षान्तरं चिन्तयति चन्द्रापीडः—अथवेत्यादिना। अथवा = पक्षान्तरे। उत्तरकालागामिनी = भविष्यत्कालभाविनी, इयम् = एषा, पूर्ववर्णिता, चिन्ता = चिन्तनम्, तिष्ठतु = दूरे भवतु, तावत्। भविष्यत्कालिकीघटनाविषये इदानीमनपेक्षिता चिन्ता। वर्तमानकृत्यं निर्दिशति—अपक्रम्येत्यादिना। अपक्रम्य = पलाय्य, पित्रादीनामाज्ञामन्तरेति शेषः, अहम् = चन्द्रापीडः, गतः = प्रस्थितः, एव, कथम् = कुतः, अहं पित्रोराज्ञां विना पलाय्य कथं गतः स्याम्, गन्तुमेव न शक्नोमीति भावः। यद्वा, अपक्रम्य = पलाय्य, अहम्, गतः = यातः, एव, कथम् = कुत्र इत्यर्थः। एवञ्च यदि पलाय्य गतोऽभविष्यम् तदा अस्मिन् प्रमादविषये अचिन्तयिष्यमिति तदभिप्रायः। अग्रिमकथनेन स्वगमनस्य बाधां प्रकटयति—यत्तातेनेत्यादिना। यत् = यस्मात्, तातेन = पित्रा तारापीडेन, दुस्तरेत्यादिः—दुस्तरः (= दुःखेन तर्तुं योग्यः) य आहवः (= संग्रामः) स एव अर्णवः (= समुद्रः) तस्य तस्माद् वा उत्तरणे (= लङ्घने, पारकरणे) महान् चासौ सेतुबन्धः (= पालिबन्धः), तस्मात्। [इदमन्यानि च पञ्चम्येकवचनान्तानि पदानि वक्ष्यमाणस्य 'स्वभुजादि'त्यस्य विशेषणानि बोध्यानि।] अबन्ध्येत्यादिः—अवन्ध्यः (= सर्वथा समर्थः) चासौ वाञ्छितफलस्य (= अभीष्ट-मनोरथस्य) प्रदाने (= वितरणे) कल्पद्रुम (= कल्पवृक्षः) तस्मात्। अहितेत्यादिः—अहिताः (= शत्रवः) तेषां या विक्रान्तिः (= पराक्रमः) तस्या यद् यशः (= कीर्तिः) तस्य या निष्क्रान्तिः (= निष्क्रमणम्, बहिर्गमनम्) तस्य द्वारम् (= प्रतिहारः) तस्य अर्गलदण्ड (= विष्कम्भः, पिधानकाष्ठादिः) तस्मात्। अशेषेत्यादिः—अशेषाणि (= सकलानि) यानि भुवनानि (= लोकाः) तानि एव भवनम् (= सदनम्) तस्य उत्तम्भने

निकल = भाग कर जाता हूँ तो [इस प्रकार से] गये हुए भी मुझे सुख कैसे या कहाँ से ? अथवा कल्याण कैसे ? फलप्राप्ति कैसे ? अथवा मेरे हृदय को शान्ति कैसी ?

अथवा आगे आने वाली यह चिन्ता दूर रहे, छोड़ दें। अभी मैं भाग कर गया ही कहाँ ? चूँकि पिता जी ने दुस्तर (= दुःख से पार करने योग्य) युद्धरूपी समुद्र को पार करने में हेतुभूत सेतुबन्ध = पुलरूपी, मनोवाञ्छित फल प्रदान करने में अमोघ कल्पवृक्ष रूप, शत्रुओं के पराक्रम की कीर्ति के निकलने के द्वार (दरवाजे) के अर्गल दण्ड (सांकड़ दण्ड) रूप और समस्त लोकरूपी

१. अम्बयोक्तमपक्रम्य। २. उच्चफलावाप्तिः। ३. गम्यत एव कथमयम्। ४. तातेन। ५. दुस्तर-दुःखार्णव०। ६. ...अवध्य...। ७. अहितजन०। ८. अशेषभवन०।

स्तम्भनस्तम्भात् स्वभुजादवारोप्य राज्यभारः [१]समारोपितः। तदनाख्याय पदमपि निर्याते मय्यवश्यमपरिमित[२]करितुरगरथगमनसंक्षोभितधरातलैरालोलकदलिकाकाननाकुलीकृतभास्वद्गभस्तिभिरूर्ध्वध्रियमाणधवलातपत्रमण्डलच्छायान्तरितवासरव्यतिकरैरतिबहलरेणूद्गमाविच्छेदापूरितभुवनकुहरैः पुरःप्रसृतजवनवाजिभिरनुसंतानलग्नवेतण्डप्रायसाधनैः श्रान्तैरपि बुभु-

(= उपरि धारणे) स्तम्भः (= स्थूणा) तस्मात्। स्वभुजात् = निजबाहोः, अवारोप्य = उत्तार्य, पृथक्कृत्य, मयि = चन्द्रापीडे, एव, केवले, राज्यभारः = राज्यधुरा, आरोपितः = आरोहितः, स्थापितः। [णिचि 'रुह्' धातोः 'रुहः पोन्यतरस्याम्' (७।३।४३)इति वैकल्पिको हकारस्य पकारादेशः। तेन उभयोः प्रयोगयोः समत्वं साधुत्वञ्च।] विशेषणवाक्येषु रूपकालङ्कारः स्पष्टः।

राज्यभारसमारोपणेन तस्य महत्त्वं कर्त्तव्यं च वर्द्धितम्, तेन असूचयित्वा प्रयाणे संकटं वर्णयति—तदनाख्यायेत्यादिना। तत् = तस्मात् पूर्वोक्तात् कारणात्, अनाख्याय = अनापृच्छय, अनिवेद्य, पितराविति शेषः, पदम् = पादक्रमम्, अपि, मयि = चन्द्रापीडे निर्याते = बहिर्गते, सति, अवश्यम् = निश्चितरूपेण। अपरिमितेत्यादिः—अपरिमिताः (= अगणिताः) ये करिणः (= गजाः), तुरगाः (= अश्वाः) रथाः (= स्यन्दनाः) च तेषां गमनेन (= प्रचलनेन) संक्षोभितम् (= क्षोभं प्रापितम्, क्षुब्धं कृतम्) धरातलम् (= भूतलम्) यैस्तैः तादृशैः। [अत्र तृतीयैकवचनान्तानि पदानि वक्ष्यमाणस्य 'राजभि'रित्यस्य विशेषणानि।] आलोलेत्यादिः—आलोलानि (= चञ्चलानि) यानि कदलिकानाम् (= पताकानाम्), काननानि (= वनानि, समूहाः) तैः आकुलीकृताः (= पीडिताः, तिरोहिताः) भास्वतः (= भास्करस्य) गभस्तयः (= रश्मयः) यैस्तैस्तादृशैः। ऊर्ध्वेत्यादिः—ऊर्ध्वम् (= उपरि) ध्रियमाणानि (= धार्यमाणानि, गृह्यमाणानि) यानि धवलानि (= शुभ्राणि) आतपत्राणि (= छत्राणि) तेषां मण्डलानाम् (= वृत्तानाम्) छाया: (= आतपाभावः आच्छादनम्) तया अन्तरितः (= व्यवहितः) वासरस्य (= दिनस्य) व्यतिकरः (= सम्बन्धः, सम्पर्कः) यैस्तैस्तादृशैः। अतिबहलेत्यादिः—अति (= अतिशयेन) बहुला (= घनाः, निबिडाः) ये रेणवः (= रजांसि, पांशवः) तेषाम् उद्गमः (= उत्पत्तिः, प्रादुर्भावः) तस्य अविच्छेदः (= सन्तानः) तेन आपूरितानि (= भरितानि, व्याप्तानि) भुवनकुहराणि (= त्रिविष्टपरन्ध्राणि) यैस्तैस्तादृशैः। पुरःप्रसृतेत्यादिः—पुरः (= अग्रे) प्रसृताः (= प्रचलिताः) जवनाः (= वेगवन्तः, शीघ्र-गामिनः) वाजिनः (= अश्वाः) येषां तैस्तादृशैः। अनुसन्तानेत्यादिः—अनुसन्तानम् (=क्रमानुसारम्, अनुसैन्यसमूहं वा) लग्नाः (= सम्बद्धाः) ये वेतदण्डाः (= गजाः) तेषां प्रायः (= बाहुल्येन) साधनम् (= सैन्यम्) येषां ते तादृशैः। श्रान्तै = क्लान्तैः, अपि, बुभुक्षितैः = क्षुधाक्रान्तैः, अपि,

पकड़े (धारण किये) गये सफेद छत्रों के समूह की परछाईं से दिन के सम्बन्ध को व्यवहित कर देने वाले (दिन को छिपा देने वाले, जानकारी न होने देने वाले) बहुत अधिक धूलि उठने की भवन को धारण करने (अपने ऊपर रखने) के लिये स्तम्भरूप अपने बाहु (भुजा) से उतार कर राज्यभार मेरे ऊपर ही रखा है, अपना राज्यभार मुझे ही सौंप दिया है, अतः (उनसे) बिना कहे मेरे एक पद भी निकलने (चलने) पर समुद्र से लेकर आठों दिशाओं के राजाओं को [मेरे] पीछे दौड़ पड़ना है, जो (राजा) अपरिमित हाथियों, घोड़ों और रथों के चलने से भूतल को क्षुब्ध कर (हिला) देने वाले, खूब हिलती हुईं (लहराती) हुई कदलिका (पताकाओं) के समूह के द्वारा सूर्य की किरणों को व्याकुल कर देने वाले अर्थात् नीचे आने से रोक देने वाले, ऊपर उठा कर

१. आरोपितः। २. गज...।

क्षितैरप्यकृतगतिविलम्बैरा पयोधेरष्टाभ्योपि[1]दिग्भ्यो राजभिरनुधावितव्यम्।[2]तिष्ठन्तु तावत्सेवा-परा राजानः। सुखपरिभुक्ताः प्रजा अपि तातस्नेहात्परित्यक्तपुत्रदाराः पृष्ठतो [3]लगन्तीति मे चेतसि। अपि च, तातस्यापि कोऽपरोस्ति यस्मिन्मदीयं स्नेहं संक्रमय्य मय्यपक्रान्ते 'यातु किमनेन गतेनागतेन वा' इत्यविनयकोपितोऽवष्टम्भं कृत्वा स्थास्यति। कस्य वापरस्य मुखमा-

---

अकृतेत्यादिः—न कृतः (= विहितः) गतौ (= चलने) विलम्बः (= मन्दत्वम्) यैस्तै-स्तादृशैः, स्वकष्टानि सोढ्वापि अन्वेषणतत्परैरिति भावः, राजभिः = नृपैः, आ पयोधेः = समुद्रं मर्यादीकृत्य, अष्टाभ्यः, अपि, दिग्भ्यः = दिशाभ्यः, अनुधावितव्यम् = त्वरितगत्या प्रचलितव्यम्, ममान्वेषणार्थमिति शेषः।

पक्षान्तरमाह चन्द्रापीडः—तिष्ठन्त्वित्यादिना। तावत् = आदौ, सेवापराः = सपर्यासक्ताः, राजानः = नृपाः, तिष्ठन्तु = आसताम्, दूरे सन्तु, तेषां महत्त्वं नाङ्गीकरोमीति भावः। तर्हि अन्ये के येषां महत्त्वं तदाह—सुखपरिभुक्ता—सुखेन (= आनन्देन, कष्टादिकं विनैव) परिभुक्तम् (= उपभोगादिकम्) यासां ताः तादृश्यः, सुखभोगिन्य इति भावः प्रजाः = प्रकृतयः, अपि, (अत्र 'भुक्तम्' इत्यत्र भावे क्तः) तातस्नेहात् = पितुस्तारापीडस्य प्रीतिवशात्, परित्यक्त-पुत्रदाराः = परित्यक्ताः (= मुक्ताः) पुत्राः (= सुतादयः) दाराः (= स्त्रियः) च याभि-स्तास्तादृश्यः, सत्यः, पृष्ठतः = पृष्ठदेशे, लगन्ति = लगिष्यन्ति, अनुसरिष्यन्तीति भावः, सामीप्ये भविष्यति लट्, इति = एवम्, मे = चन्द्रापीडस्य, चेतसि = मनसि, वर्तते इति शेषः। मम गमनं श्रुत्वा मदनुरक्ताः प्रजाः सद्य एव मामनुसृत्य सार्धं गमिष्यन्तीति भावः।

पलायनाकरणेऽन्यमपि हेतुमाह—अपि चेत्यादिना। तातस्य = पितुस्तारापीडस्य, अपि, कः, अपरः = मत्तो भिन्नः, पुत्रादिरिति भावः, वर्तते, यस्मिन्, मदीयम् = मद्विषयकम्, स्नेहम् = प्रेमाणम्, संक्रमय्य = संक्रमणं कृत्वा, संस्थाप्येति भावः, मयि = चन्द्रापीडे, अपक्रान्ते = इतोऽन्यत्र गते, सति, यातु = गच्छतु, चन्द्रापीड इति शेषः, अनेन = अमुना, चन्द्रापीडेन, गतेन = प्रयातेन, अगतेन = अप्रयातेन, वा = विकल्पे, किम् = न किमपि फलमिति भावः, इति = एवम्, अविनय-कोपितः—अविनयेन (= अशिष्टाचारेण, पितुराज्ञामन्तरा स्वेच्छया निष्क्रमणरूपेण) कोपितः (= कोपं प्रापितः, क्रुद्धः), तातः, अवष्टम्भम् = धैर्यम्, कृत्वा = धारयित्वा, स्थास्यति = स्थितिं विधास्यति। एवञ्च मयि निष्क्रान्ते पितुः कीदृशी दशा भविष्यतीति वक्तुमशक्यम्। मातुर्दशां चिन्तयति—कस्येत्यादिना। अपरस्य = मद्भिन्नस्य, कस्य = अज्ञातस्य, वा = विकल्पे, मुखम्=

अविच्छिन्नता से भुवनों के कुहरों (रिक्त स्थानों) को भर देने वाले, दौड़ने वाले घोड़ों को आगे भगाने वाले, क्रमशः एक के पीछे एक लगे हुये हाथियों की सेना की बहुलता वाले, थके हुये [होने पर] भूखे [रहने पर] भी चलने में [किसी प्रकार की] देर करने वाले नहीं हैं, अर्थात् भूख प्यास की चिन्ता किये बिना ही दौड़ पड़ेंगे। सेवा में लगे हुए राजाओं को छोड़ दें, उनकी न सोचें। सुखपूर्वक रहने वाली प्रजा तक भी [मेरे] पिता स्नेह के कारण [अपने] पुत्र और पत्नियों को छोड़ कर मेरे पीछे लग जायेंगे—मेरे मन में यही चिन्ता है, मैं ऐसा सोच रहा हूँ। फिर पिता जी का भी [मेरे अतिरिक्त] दूसरा कौन है जिस पर मेरे [लिये होने वाले] स्नेह को डाल कर, मेरे भाग जाने पर "जाने दो, इसके जाने अथवा न जाने से क्या (अन्तर पड़ता है)?' इस प्रकार

---

१. अष्टाभ्यो। २. अवश्यमनुधावितव्यम्। ३. लगिष्यन्ति।

लोकयन्ती सुखायमानहृदया मत्प्रत्यानयनाय कृतार्तप्रलापा न तातमेवाकुलीकरोत्यम्बा। ताते च पृष्ठतो लग्नेऽष्टादशद्वीपमालिनी मेदिन्येव[1] लग्ना भवतीति[2]। तदा मया क्व गतम्? क्व [3]स्थितम्? क्व विश्रान्तम्? क्व यातम्? क्व भुक्तम्? क्वापसृतम्? [4]क्वात्मा मया गोपायितव्यः? समासादितेन वात्र कथं मया वदनं दर्शयितव्यम्? पृष्टेन वा किमुत्तरं दातव्यम्? अथापि

आननम्, विलोकयन्ती = पश्यन्ती, सुखायमानहृदया—सुखायमानम् (= सुखयुक्तम्) हृदयम् (= चित्तम्) यस्याः सा तादृशी। ['दुःखादयो वृत्ति-विषये तद्वति वर्तन्ते' इति भाष्यवचनात् सुखम् = सुखयुक्तं भवति—इत्यर्थे क्यष्, 'वाक्यषः' १।३।९० इति वापरस्मैपदम् आत्मनेपदे शानजादिकं भवतीति बोध्यम्।] मत्प्रत्यानयनाय = मम परावर्त्तनाय, कृतार्त्तप्रलापा—कृतः (=विहितः) आर्त्तः (= कारुण्यपूर्णः) प्रलापः (= क्रन्दनम्) यया सा तादृशी, अम्बा = मम माता, तातम् = मम पितरम्, एव, न, आकुलीकरोति = व्याकुलीकरिष्यति? कापवा आकुलीकरिष्यत्येवेत्यर्थः, सामीप्ये भविष्यति लट्। मम वियोगेऽनवरतं आर्त्तस्वरेण प्रलपन्ती मम जननी पितरमेवावश्यं व्याकुलीकरिष्यतीति भावः।

पलायिते सति यद् भविष्यति तद् भवतु, का हानिरिति प्रतिवदति—ताते चेत्यादिना। ताते = पितरि, पृष्ठतः = पृष्ठे, लग्ने = संलग्ने, अन्वेषणार्थमनुसरणे, सति, अष्टादश-द्वीपमालिनी = अष्टादश-संख्यकानि द्वीपानि (= अन्तरीपाणि) मालाः (= स्रजः) यस्याः सा तादृशी अष्टादशद्वीपविभूषितेति भावः, मेदिनी = वसुन्धरा, एव, लग्ना = अनुसम्बद्धा, पित्रा सार्धं मदन्वेषणार्थं तत्परा, भवति = भविष्यति, सामीप्ये भविष्यदर्थे लट्। इति = एवं स्थितौ, तदा = तस्मिन् काले, मया = चन्द्रापीडेन क्व = कुत्र, गतम् = यातम्? क्व, स्थितम् = संस्थितम्? क्व, विश्रान्तम् = विश्रामः कृतः? क्व, यातम् = गतम्? क्व, भुक्तम् = भोजनं कृतम्? क्व, अपसृतम् = अपसरणं कृतम्। [अत्र 'इदं सर्वं ज्ञातं भविष्यती'तिशेषः।] क्व, आत्मा, गोपायितव्यः = रक्षितव्यः? समासादितेन = प्राप्तेन पित्रादिभिरिति शेषः, अत्र = उज्जयिन्याम्, मया = तारापीडेन, वदनम् = मुखम्, कथम् = केन प्रकारेण, दर्शयितव्यम् = दर्शनीयम्? वा = विकल्पे पृष्टेन = प्रश्नविषयीकृतेन, किम् = कीदृशम्, उत्तरम् = प्रतिवचनम्, दातव्यम् = देयम्?

अविनय (धृष्टता) के कारण कुपित (नाराज) होते हुए धैर्य धारण करके अथवा अपने ऊपर नियन्त्रण करके रह सकेंगे? अथवा किस दूसरे का मुख देखती हुई सुखी चित्तवाली होती हुई मेरी माता, पिता जी को मुझे वापस लाने के लिये आर्त प्रलाप करती हुई (खूब रोती हुई) परेशान नहीं करेगी? और पिताजी जब पीछे चल देंगे तो अट्ठारह द्वीपों की मालावाली पूरी पृथ्वी ही मेरे पीछे लग जायगी, ऐसा [मेरे मन में]है। तब मैं कहाँ गया? कहाँ ठहरा? कहाँ विश्राम किया? कहाँ चला? कहाँ खाया? कहाँ भागा? [यह सब जानकारी कर ली जायगी। अतः] अपने को कहाँ छिपाना चाहिए? प्राप्त हो जाने (मिल जाने, पकड़ लिये जाने) पर मैं अपना मुख कैसे दिखा सकूंगा? पूछे जाने पर क्या उत्तर देना चाहिये, दे सकूंगा? इतना होने पर भी यदि भाग्यवश किसी प्रकार निकल कर भाग

---

१. मेदिनीव।　　२. भवति।　　३. प्रस्थितम्।

४. क्व वा खादितं क्व पीतं क्व सुप्तं क्वापसृतमित्यनुयुञ्जानेभ्यः कथं क्वात्मा।

कथंचिद्दैवनियोगान्निःसृतोस्मि तथाप्यनायासनीयं तातमेवं महीयस्यायासे तातप्रसादाद-दृष्टदुःखामम्बां वा निजापक्रमणशोकार्णवे पातयता[1] किं कृतं भवत्यपुण्यवता। अपि च, स[2] बहुदिवसप्रवासोपतप्तः स्कन्धावारोपि मेऽद्यापि न परापतति। तेनापरसंविधानादर्धपथादेव निवृत्य पुनर्धावितव्यम्[3]। अथावेद्य तातस्याम्बायाश्च ताभ्यां च विसर्जितः संविधानेन

अत्र 'गतम्, स्थितम्' इत्यादिषु निष्ठा प्रत्यये भूतकाल-प्रतीतिः। भावे क्त प्रत्यये तु 'गतम् = गमनम्, स्थितम् = स्थितिः' इत्यादिरर्थः। परन्तु अग्रे 'क्वात्मा मया गोपायितव्यः' इत्यादि वाक्यानामनुरोधेन सर्वत्रैव वाक्ये निष्ठा विधिकृदन्तपरा बोध्या, तेन 'गतम् = गन्तव्यम्, स्थितम् = स्थातव्यम् इत्येवमर्थाः करणीया इति केचन।

वस्तुतस्तु—"तदा मया क्व गतम् ?" इत्यारभ्य "क्वापसृतम्" इति पर्यन्तं 'क्त' प्रत्ययेन विध्यर्थप्रतीतिस्वीकारे अग्रे च ग्रन्थकृता 'तव्यप्रयोगे' वैषम्यापत्तिः। अतः 'क्वापसृतम्' इति पर्यन्तं भूतकाले एव प्रत्ययः स्वीकार्यः 'इति अन्वेषयिष्यति' इति संयोज्य वाक्यार्थभेदः करणीयः। 'क्वात्मा मया गोपायितव्यः' इत्यादिना तु भविष्यत्कालः प्रत्येतव्यः भावार्थश्च। अस्तु, अत्र ग्रन्थकर्तुरनवधानता-विषये महान्तो व्याख्याकारा मौनमेवाश्रयन्तीति बोध्यम्।

स्वकर्मणि साफल्ये सम्भाविते़ऽपि कष्टं निर्दिशति—अथापीत्यादिना। अथापि = पक्षान्तरे, कथञ्चित् = केनापि प्रकारेण, दैवनियोगात् = भाग्यनिर्देशात्, निःसृतः = बहिर्गतः, अस्मि = भवामि, भवेयमिति भावः। तथापि = निःसरणे सफले जातेऽपि, अनायासनीयम् = खेदनस्य अयोग्यम्, तातम् = जनकम्, एवम् = एतादृशे अनेन प्रकारेण वा, महीयसि = दीर्घतरे, आयासे = कष्टे, खेदे, वा = अथवा, तातप्रसादात् = जानकानुग्रहात् अदृष्ट-दुःखाम् = अनवलोकितकष्टाम्, अम्बाम् = जननीम्, निजेत्यादिः—निजम (= स्वकीयम्) अपक्रमणम् (= अपृष्ट्वा निर्गमनम्) तस्माद् यः शोकः (= क्लेशः), स एव अर्णवः (= सागरः) तस्मिन्, पातयता = क्षिपता, अपुण्यवता = पापिना, मया चन्द्रापीडेन, किम्, कृतम् = विहितम्, भवति = भविष्यति, सामीप्ये भविष्यति लट् सर्वं पापं कृतमिति भावः।

अपि चेति। अपि = अन्यच्च, बहुदिवसेत्यादिः—बहवः (= अगणिताः) च ते दिवसाः (= दिनानि) तान् यावत् यः प्रवासः (= अन्यदेशेषु अवस्थानम्) तेन उपतप्तः (= सन्तप्तः, व्याकुलीकृतः) सः = मया सह प्रस्थितः, मे = मम, स्कन्धावारः = सैन्यसमूहः, अद्यापि = अस्मिन् दिने, अपि, न, परापतति = परावर्तते, आगच्छति। तेन = कारणेन, प्रथम प्रयात-स्कन्धावारेण वा, अपर-संविधानात्—अपरम् (= पूर्वनिर्दिष्टात् भिन्नं नवीनम्) यत् संविधानम् (= ममाज्ञातगमनरूप-घटना-विशेषः), हेतोः, अर्धपथात् = अर्धमार्गात्, मार्गस्य मध्ये, एव, निवृत्य = पुनः परावृत्य, पुनः = भूयः, धावितव्यम् = त्वरितं गन्तव्यम्, ममान्वेषणार्थमिति

सका, तो भी कष्ट न दिये जा सकने योग्य अर्थात् जिन्हें कष्ट नहीं दिया जाना चाहिए ऐसे पिता जी को महान् कष्ट में (गिराते हुए) और पिता जी के अनुग्रह से (कभी भी) दुःख न देखने वाली माताजी को अपने पलायन (भागने) से जन्य शोकरूपी समुद्र में गिराते हुए अभाग्यशाली पापी मैंने क्या कर डाला ? (क्या पाप नहीं कर डालूंगा ?) और भी, बहुत दिनों के प्रवास (परदेश में रहन) से व्याकुल हो चुकी मेरी सेना आज भी वापस नहीं आई है। इस कारण (मेरी खोज रूपी) दूसरे प्रयोजन के कारण आधे रास्ते से ही वापस लौटकर फिर से [मुझे खोजने के लिये] भागना होगा। और यदि पिता जी तथा माता जी से निवेदन करके, उनसे कहकर, उनके द्वारा

---

१. पातयसि। २. सुबहु०। ३. प्रधावितव्यम्।

गच्छामि । तत्रापि किं कथयामि—'मम स्नेहेन[1] दुःखिता गन्धर्वराजपुत्री कादम्बरी मामुद्दिश्य मकरकेतुनायास्यमाना दुःखं तिष्ठतीति ? किं वा बलवान्मे तस्यामनुरागो [2]नानया विनाहं प्राणान्संधारयामीति ? किं तस्या मम च द्वयोरपि जीवितनिबन्धनहेतुभूतया महाश्वेतया तत्परिणयनाय मे संदिष्टमिति ? किं वा तद्दुःखमपारयन्सोढुमयं केयूरकस्तद्भक्त्या

शेषः । अयं भावः—मया सह पूर्वं प्रस्थितः साम्प्रतं परावर्तमानः स्कन्धावारः यदा मम असूचितं पलायनं ज्ञास्यति तदा मदन्वेषणार्थं प्रचलितेन नवीनेन स्कन्धावारेण सह मिलित्वा परावर्त्य ममान्वेषणे एव सोऽपि प्रवृत्तो भविष्यतीति बोध्यम् । तेन मम गोपनमतीव दुष्करमिति ।

इदानीमसूचयित्वा पलायनस्य विचारं विहाय पित्रोरनुमत्यापि गमनेऽनुपपत्तिं चिन्तयति—अथावेद्येति । अथ = पक्षान्तरे, तातस्य = पितुः, अम्बायाः = जनन्याः, च, आवेद्य = निवेद्य, तयोराज्ञां गृहीत्वेति भावः, [सम्बन्धसामान्ये षष्ठी बोध्या ।] ताभ्याम् = माता-पितृभ्याम्, विसर्जितः = प्रयाणार्थं प्राप्तानुज्ञः, संविधानेन = सम्यग् रूपेण सैन्यादिना, गच्छामि = प्रयामि, तत्रापि = तस्मिन् विषये अपि, किम्, कथयामि = वदामि, कथयिष्यामि, पितराविति शेषः । विकल्पान्निर्दिशति—मम = चन्द्रापीडस्य, स्नेहेन = प्रेम्णा, दुःखिता = दुःखिनी, गन्धर्वराजपुत्री = कादम्बरी, माम् = चन्द्रापीडम्, उद्दिश्य = आश्रित्य, लक्ष्यीकृत्य, मकरकेतुना = कामदेवेन, आयास्यमाना = पीड्यमाना, दुःखम् = दुःखपूर्वकं यथा स्यात्तथा, तिष्ठति = अस्ति ? अतो मया तत्र गत्वा मिलित्वा तस्याः दुःखं दूरीकरणीयमिति वाक्यांशः सर्वत्र संयोज्यः । वा = विकल्पे, किम्, कथयामीति शेषः, तस्याम् = पूर्वोक्तायां कादम्बर्याम्, मे = मम चन्द्रापीडस्य, बलवान् = प्रबलः, अनुरागः = प्रीतिः, अतः, अनया = कादम्बर्या, विना = ऋते, अहम् = चन्द्रापीडः, प्राणान् = असून्, न=नैव, सन्धारयामि=रक्षामि धारयितुं शक्नोमीति भावः । अतः तया सह सम्मेलनमनिवार्यम् । तस्याः=कादम्बर्याः, मम=चन्द्रापीडस्य, च, द्वयोः=उभयोः, अपि, जीवितेत्यादिः—जीवितम् (= जीवनम्), तस्य निबन्धनम् (= सन्धारणम्) तत्र हेतु-भूतया (= निमित्तभूतया) महाश्वेतया = कादम्बरी-वयस्यया, तत्परिणयनाय—तस्याः (= कादम्बर्याः) यद्वा—तया (= कादम्बर्याः सह) परिणयनाय (= पाणिग्रहणाय) मे = मम, मह्यम्, सन्दिष्टम् = सन्देशः प्रेषितः, किम् ? अतस्तत्र गच्छामीति भावः । किम्, वा = (पक्षान्तरे, तद्दुःखम्—तस्याः = कादम्बर्याः), दुःखम्(=पीडाम्,)सोढुम् = मर्षितुम्,तितिक्षितुम्, अपारयन् = अशक्नुवन्, तस्याः पीडातिशयं द्रष्टुमसमर्थो भूत्वेति भावः, अयम् = एषः, केयूरकः =

बिदा किया गया, सेना के साथ जाता हूँ तो इस विषय में उनसे क्या कहूँ कि मेरे साथ प्रेम करने के कारण दुःखी होती हुई गन्धर्वराज की पुत्री कादम्बरी मेरे कारण कामदेव द्वारा पीड़ित की जाती हुई दुःख में पड़ी हुई है ? अथवा क्या उस कादम्बरी में मेरा बहुत प्रेम हो गया है, उसके बिना मैं प्राण-धारण नहीं कर सकता, जीवित नहीं रह सकता (यह कहूँ ?) अथवा क्या उस कादम्बरी के तथा मेरे (चन्द्रापीड के) जीवन-धारण की कारणभूत महाश्वेता द्वारा उस कादम्बरी के [मेरे साथ] परिणय के लिये सन्देश भेजा गया है (ऐसा कहूँ)? अथवा क्या उस कादम्बरी के दुःखों को सहन न कर पाता हुआ केयूरक उसके प्रति भक्ति के कारण मुझे ले जाने के लिये आया है (यह

---

१. स्नेहदुःखिता । २. न तया विनाहं ।

मामानेतुमागत इति ? अपरोपि वा कश्चिद् व्यपदेशो न शक्यत एव पुनर्गमनाय कर्तुम्। संप्रत्येव समधिकाद्वर्षत्रयात्प्रसाध्य वसुधां प्रत्यागतोस्मि। अद्यापि साधनमेव न परापतति। अकथयित्वा च गमनकारणं कथमात्मानं मोचयामि। [1]कथं वा मुञ्चतु तातोऽम्बा वा। तत्सुहृत्साध्येस्मिन्नर्थेऽनर्थपतितः[2] किं करोम्येकाकी ? वैशम्पायनोप्यसंनिहितः पार्श्वे मे। कं पृच्छामि ? केन सह निरूपयामि ? को मे समुपदिशतु ? को वापरो मे निश्चयाधानं करोतु ?

कादम्बरीसेवकः, तदुक्तया = कादम्बर्याः स्नेहातिरेकेण, हेतुना, माम् = चन्द्रापीडम् आनेतुम् = तत्र प्रापयितुम्, आगतः = समायातः, अतो गच्छामीति शेषः। वा = पक्षान्तरे, अपरः = अन्यः, अपि, कश्चित् = कश्चन अज्ञातः, व्यपदेशः = व्याजः, उपधिः, पुनः = भूयः, द्वितीयबारम्, गमनाय = प्रस्थानाय, तस्याः समीपे इति शेषः, कर्तुम् = विधातुम्, न = नैव, शक्यते = पार्यते, एव। पूर्वोक्तान् व्याजान् विहाय नान्यं कमपि पश्यामि येन कादम्बर्याः समीपे गमनाय पित्रोरनुमतिं प्राप्तुं शक्नोमीति। एतेष्वन्यतमस्यापि कथने महती लज्जा वर्तते इति चन्द्रापीडस्याशयः।

पुनर्विजययात्रामिषेणैव कथं न गन्तुं शक्यते इति तत्राह—सम्प्रत्येव। सम्प्रति = इदानीम्, किञ्चिदधिकात्, वर्षत्रयात् = वत्सरत्रयात्, वसुधाम् = पृथिवीम्, प्रसाध्य = स्वाधीनीकृत्य, प्रत्यागतः = परावर्तितः, अस्मि। अद्यापि = अस्मिन् दिने, अपि, साधनम् = सैन्यम् एव, न, परापतति = प्रत्यागच्छति, परावर्तते। अतो विजययात्रायाः व्यपदेशेन प्रस्थानं कर्तुं न शक्यते इति तदाशयः। गमनकारणम् = प्रस्थाननिमित्तम्, अकथयित्वा = असूचयित्वा, अविनिवेद्य, आत्मानम् = स्वम्, कथम् = केन प्रकारेण, मोचयामि = मोचनविषयीकरोमि, कादम्बरीसमीपं गमनाय उन्मुक्तं कर्तुं शक्नोमीति भावः, वा = पक्षान्तरे, तातः = जनकः, अम्बा = माता, वा, कथम् = केन प्रकारेण, मुञ्चतु = त्यजतु, स्वेच्छया गमनाय अनुमन्यतामिति भावः। तत् = तस्मात् हेतोः, सुहृत्-साध्ये = मित्रेण सम्पादनयोग्ये, अस्मिन् = प्रकृते, अर्थे = विषये, अनर्थपतितः—अनर्थे (= दुःखे) पतितः (= निमग्नः), एकाकी = असहायः, किम्, करोमि = विदधामि ? मित्राणां सहयोगं बिना एकाकी अहं कथमपि अस्मात् स्थानात् निर्गत्य कादम्बरीसमीपं गन्तुं नैव शक्नोमीति तद्भावः। वैशम्पायनः = एतन्नामा, अभिन्नहृदयः सुहृद्, अपि, मे = मम चन्द्रापीडस्य, पार्श्वे = समीपे, असन्निहितः = अविद्यमानः अस्तीति शेषः। तदभावे किमनुपपन्नमत आह—कम्, पृच्छामि = जिज्ञासा-विषयी-करोमि ? केन = अज्ञातेन, सह = सार्धम्, निरूपयामि = स्वक्लेशं विचारयामि ? कः = अज्ञातः, मे = माम्, समुपदिशतु = सम्यङ् निर्दिशतु ? कः, वा = अथवा, अपरः = भिन्नः, मे = मम, निश्चयाधानम् = निर्णयस्य

कहूँ)? [इनके अतिरिक्त] कोई दूसरा बहाना भी वहाँ दुबारा जाने के लिये नहीं बनाया जा सकता। [कारण स्पष्ट है कि] अभी लगभग तीन वर्षों से कुछ अधिक [समय में सारी] पृथिवी को जीतकर या भ्रमण कर वापस लौटा हूँ। अभी भी सेना ही वापस नहीं लौटी है। जाने का कारण कहे बिना मैं अपने को [यहाँ राजभवन से] कैसे मुक्त करवा सकता हूँ। अथवा पिताजी और माताजी ही मुझे कैसे छोड़ेंगे। इसलिये (घनिष्ठ) मित्र द्वारा पूरे किये जा सकने वाले इस कार्य में कष्ट में फँसा हुआ अकेला मैं क्या कर सकता हूँ। वैशम्पायन भी मेरे पास नहीं है। [अतः अब] किससे पूछूँ ? किसके साथ विचार-विमर्श करूँ ? कौन मुझे उपदेश दे सकता है ? अथवा कौन दूसरा है जो

---

१. मां। २. अनर्थः।

कस्यापरस्य वा विवेकिनी प्रज्ञा ? कस्य वान्यस्य श्रुतं श्रोतव्यम् ? को वापरो वेत्ति वक्तुम् ? कस्य वापरस्य मय्यसाधारणः स्नेहः ? केन वापरेण सह समानदुःखो भवामि ? को वापरो मयि दुःखिते दुःखी सुखिते सुखी ? को वापरो रहस्यावेदनस्थानम् ? कस्यापरस्योपरि कर्तव्यभारमवक्षिप्य निर्वृतात्मा तिष्ठामि ? कस्य वापरस्य मत्कार्ये पर्याकुलता ? को वापरो मया-[1]नुकोपितं तातमम्बां च परिबोध्य मा[2] नेतुं समर्थः ?' इत्येवं चिन्तयत एवास्य सा क्षपा दुःखदीर्घापि क्षयमगमत् ।

स्थापनाम्, करोतु = विदधातु ? कस्य, वा अपरस्य, विवेकिनी = कर्तव्याकर्तव्यविवेचिनी, प्रज्ञा = बुद्धिः, वर्तते इति शेषः ? कस्य, वा, अन्यस्य = इतरस्य, श्रुतम् = शास्त्रम्, श्रोतव्यम् = आकर्णनीयम् ? कः, वा अपरः = भिन्नः, वक्तुम् = वदितुम्, वेत्ति = जानाति ? कस्य, वा, अपरस्य = इतरस्य, मयि = मद्विषये, ममोपरि, असाधारणः = असामान्यः, स्नेहः = प्रीतिः, अस्ति ? केन, वा, अपरेण = इतरेण, सह = साकम्, समानदुःखः—समानम् (= तुल्यम्) दुःखम् (= व्यथा, कष्टम्) यस्य स तादृशः, भवामि = सञ्जाये, स्वदुःखं विभज्य शान्तिमनुभवामीति भावः । अपरः = इतरः, कः वा, मयि = चन्द्रापीडे, दुःखिते = कष्टयुक्ते सति, दुःखी = दुःखयुक्तः, सुखिते = सुखयुक्ते, सति, सुखी = सुखयुक्तः, स्यादिति शेषः । [सुखिते दुःखिते—इत्यत्र सुखं संजातं यस्यः, दुःखं संजातं यस्य सः— इत्यर्थे 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' इति सूत्रेण इतच् प्रत्ययः ।] अपरः = अन्यः, कः वा, रहस्यावेदनस्थानम्-रहस्यस्य (=गोपनीयविषयस्य) आवेदनस्य (= कथनस्य) स्थानम् (= पात्रम्), अस्ति ? कस्य, वा, अपरस्य, उपरि, कर्तव्यभारम् = स्वकृत्यस्य धुरम्, अवक्षिप्य = न्यस्य, अवस्थाप्य, निर्वृतात्मा—निर्वृतः (= सुखितः, शान्तः) आत्मा (= स्वरूपम्) यस्य स तादृशः, शान्तचित्त इति भावः, तिष्ठामि= निषी[illegible] ? कस्य, वा, अपरस्य, मत्कार्ये = प्रस्तुते मदीये कृत्ये, पर्याकुलता = व्याकुलता, व्यग्रता ? अपर[illegible]ः, वा, मया = चन्द्रापीडेन, अनुकोपितम् = अनुक्रुद्धम्, तातम् = जनकम्, अम्बाम् = जननीम्, च, [illegible]रिबोध्य = सम्यग् बोधयित्वा, सान्त्वनां दत्त्वेति भावः, माम् = चन्द्रापीडम्, नेतुम् = इतः हेमकूटे प्र[illegible]तुम्, समर्थः = शक्तः ? कोऽपि न समर्थ इति भावः । अत्रापि भूषणभट्टः स्वपितुरनुकरणं करोति पु[illegible]ोक-प्रसङ्गस्येति बोध्यम् । इत्येवम् = पूर्वोक्तरूपेण, चिन्तयतः = ध्यायतः, एव, अस्य = चन्द्रापीडस्य, सा, दुःखदीर्घा = दुःखेन विशाला, अपि, क्षपा = रात्रिः, क्षयम् = समाप्तिम्, अगमत् = अगच्छत् । विविधविकल्पानां चिन्तनेन जागरणं कुर्वतश्चन्द्रापीडस्य सा निशा अन्यापेक्षया दीर्घतरान्वभूयत । शनैः शनैः सापि व्यतीतेति भावः ।

मुझे निर्णय दे सकता है ? अथवा किस दूसरे की विवेकयुक्त बुद्धि है ? अथवा किस दूसरे का शास्त्र सुनूं ? अथवा कौन दूसरा [है जो इस विषय में ठीक] बोलना जानता है ? अथवा किस दूसरे का मेरे ऊपर अकारण स्नेह है ? अथवा किस दूसरे के साथ समान दुःखवाला अर्थात् दुःख को बराबर-बराबर बाँट लेनेवाला होऊँ ? अथवा कौन दूसरा है जो मेरे दुःखी होने पर दुःखी और सुखी होने पर सुखी हो ? अथवा कौन दूसरा गोपनीय बात कहने योग्य पात्र है ? अथवा किस दूसरे के ऊपर अपने कर्तव्य का भार डाल (सौंप) कर शान्त चित्तवाला होऊँ ? अथवा किस दूसरे को मेरे कार्य के लिये व्याकुलता है ? अथवा कौन दूसरा है जो मेरे द्वारा कुपित किये गये पिताजी और माताजी को समझा-बुझाकर (शान्त कराकर) मुझे ले जाने में समर्थ है ।'' इस (उपर्युक्त) प्रकार से सोचते हुए ही इस (चन्द्रापीड) की दुःख के कारण लम्बी हो गई भी वह रात बीत ही गई ।

---

१. कोपितं । २. मामानेतुं ।

प्रातरेव च किंवदन्तीं शुश्राव–'यथा किल 'दशपुरं यावत्परागतः स्कन्धावार' इति। तां च श्रुत्वा समुच्छ्वसितचेताश्चकार चेतसि–'अहो धन्योऽस्मि। अहो विधेर्भगवतोऽनुग्राह्योऽस्मि। यस्य मेऽनुध्यानानन्तरमेव परागतो द्वितीयं हृदयं वैशम्पायनः' इति। प्रहर्षपरवशश्च प्रविशन्तमालोक्य दूरत एव कृतप्रणामं केयूरकमवादीत्—'केयूरक! करतलवर्तिनीं सिद्धिमधुनावधारय, प्राप्तो वैशम्पायनः' इति।

स तु तदाकर्ण्य गमनपरिलम्बकृतया चिन्तयान्तःशून्य एव 'भद्रकमापतितं महती

अपरदिवसस्य वृत्तान्तं वर्णयति–प्रातरिति। प्रातः=प्रत्यूषे, एव, च, किंवदन्तीम्=जनश्रुतिम्, शुश्राव=आकर्णितवान्, यथा किल = निश्चये, सत्ये वा, स्कन्धावारः = तेन सह गतः सैन्यसमूहः, दशपुरम्=एतन्नामकस्थानम्, यावत् = पर्यन्तम्, परागतः = परावृत्तः, इति, = समाप्तौ। ताम् = पूर्वोक्तां किंवदन्तीम्, च, श्रुत्वा = समाकर्ण्य, समुच्छ्वसितचेताः— समुच्छ्वसितम् (=समाश्वस्तम्, समुल्लसितम्) चेतः (= चित्तम्) यस्य स तादृशः, सन्, चेतसि = स्वमनसि, चकार = कृतवान्, मनसि चिन्तयामासेति भावः। अहो = इदमाश्चर्यं, हर्षातिरेके वा, धन्यः = पुण्यवान्, भाग्यवान् वा, अस्मि। अहो, भगवतः=माहात्म्यवतः, विधेः=विधातुः, भाग्यस्य, अनुग्राह्यः=अनुग्रहकरणयोग्यः, कृपापात्रम् अस्मि = वर्ते। यस्य, मे = मम, चन्द्रापीडस्य, अनुध्यानानन्तरम् = अनुस्मरणस्याव्यवहितोत्तरम्, चिन्तनस्य झटिति पश्चात् काले इति भावः, एव, द्वितीयम्=अपरम्, हृदयम्=चित्तम्, ममेति शेषः, वैशम्पायनः = तस्य वयस्यः, शुकनासपुत्रः, परागतः = परावृत्तः, समायातः, इतिः = समाप्तौ। प्रहर्ष-परवशः=अतिशयप्रमोदपरतन्त्रः, च, प्रविशन्तम्=प्रवेशं कुर्वन्तम्, दूरतः=विप्रकृष्टाद्, एव, कृतप्रणामम्=विहित-नमस्कारम्, केयूरकम् = कादम्बरीसेवकम्, आलोक्य=दृष्ट्वा, अवादीत्=अवोचत्, चन्द्रापीडः। केयूरक = इदं सम्बुद्धौ। अधुना = इदानीम्, सिद्धिम् = कार्यसम्पत्तिम्, करतलवर्तिनीम्=हस्ततल-गताम्, अवधारय=जानीहि, कथमिति तत्राह— वैशम्पायनः=ममाभिन्नहृदयः सुहृद्, एतन्नामा, सम्प्राप्तः = समागतः, इतिः=समाप्तौ। एवञ्च साम्प्रतं मे सर्वाणि दुःखानि नष्टानि भूत्वा कादम्बरीसमीपे गमनाय कश्चनोपायः सम्भाव्यते इति तदाशयः।

स त्विति। सः = केयूरकः, तुः, तद्=चन्द्रापीडेनोक्तम्, आकर्ण्य=श्रुत्वा, गमनेत्यादिः—गमने (= कादम्बर्याः निकटे चन्द्रापीडस्य प्रस्थाने) यः परिलम्बः (= विलम्बः, कालक्षेपः) तेन कृतया (=विहितया), चिन्तया = आर्त्या, अन्तःशून्यः = शून्यचित्तः, किमपि बोद्धुमसमर्थः एव,

---

और प्रातःकाल ही यह किंवदन्ती (खबर) सुनी कि सेना दशपुर तक वापस आ पहुँची है। इसे सुनकर प्रसन्न चित्तवाला होता हुआ (चन्द्रापीड) मन में सोचने लगा—'अरे मैं धन्य (भाग्यशाली) हूँ, अरे मैं भगवान् ब्रह्मा के अनुग्रह का पात्र हो गया हूँ क्योंकि जिस (मेरे) के सोचने के तत्काल बाद में ही अर्थात् स्मरण करते-करते ही मेरा दूसरा हृदय वैशम्पायन वापस आ गया है! अतिशय हर्ष से युक्त वह प्रवेश करते हुए दूर से ही प्रणाम करते हुए केयूरक को देखकर, बोला—"केयूरक! अब सिद्धि=सफलता को हाथ में आई हुई ही समझो, अर्थात् अब अपना काम बन गया समझ लो, क्योंकि वैशम्पायन आ पहुँचा है।"

वह कर्णपूर यह सुनकर [वापस] जाने में होने वाले विलम्ब के कारण चिन्ता से सूने मनवाला होता हुआ ही 'बहुत ही अच्छा हुआ, कुमार के मन को बहुत शान्ति हो गयी'—ऐसा

---

१. दशपुरी।

हृदय-निर्वृतिर्देवस्य जाते'त्यभिदधदेवोपसृत्योपविश्य पार्श्वे, वैशम्पायनागमनालापमेवानुबध्य मुहूर्तमिव संज्ञोत्सारितसमस्तपरिजनं चन्द्रापीडं व्यज्ञपयत्—"देव, सर्वतो विस्फुरन्ती तडिदिव [1]बलाहकोन्नाहम्, उपारूढश्यामिका मेघलेखेव सलिलागमनम्, उपदर्शितपाण्डुच्छविः प्राचीव चन्द्रोदयम्, परिमलग्राहिणी मलयानिलागतिरिव वसन्तमासावतारम्, [2]अभ्युच्छ्रित-मकरध्वजा मधुमासलक्ष्मीरिव पल्लवोद्भेदम्, उल्लसितरागा[3] पल्लवोद्गतिरिव कुसुमनिर्गमम्,

---

भद्रकम् = कल्याणम्, आपतितम् = सञ्जातम्, देवस्य = राजकुमारस्य, महती = विपुला, हृदय-निर्वृतिः= चित्तस्य शान्तिः, जाता = भूता, इति = एवम्, अभिदधत् = वदन्, एव, उपसृत्य = समीपमागत्य, पार्श्वे = समीपे, उपविश्य = निषीद्य, मुहूर्तम् इव=मुहूर्तमात्रम्, अत्यल्पकालपर्यन्तम्, वैशम्पायनेत्यादिः— वैशम्पायनस्य (= एतन्नामकमित्रस्य) यद् आगमनम् (= सम्प्राप्तिः) तस्य आलापम् (=वार्ताम्), एव, अनुबध्य = सम्बध्य, तदागमनविषये एव वार्तामारभ्येति भावः, संज्ञेत्यादिः— संज्ञया (= संकेतेन) उत्सारिता (=दूरीकृताः) समस्ताः (= सकलाः) परिजनाः (=परिच्छदाः, सेवकादयः) येन तं तादृशम्, चन्द्रापीडम् = राजकुमारम्, व्यज्ञपयत् = विज्ञापितवान्, निवेदितवान् ।

केयूरकः किं व्यज्ञपयदिति वर्णयति—देवेत्यादिना । हे देव !=राजकुमार !, बलाहकोन्नाहम्— बलाहकानाम् (= मेघानाम्) उन्नाहम् (= प्रवृद्धिम्, आगमनम्), सर्वतः = सर्वासु दिशासु, विस्फुरन्ती = देदीप्यमाना, तडित् = विद्युद्, इव "अवस्थैवेयमादयति निःसंशयं देवस्य गमनम्" इति दूरे वक्ष्यमाणेऽन्वयो बोध्यः । सलिलागमनम्—जलस्यागमनम्, वर्षणम्, उपारूढश्यामिका— उपारूढा (= प्रवृद्धा, प्राप्ता वा) श्यामिका (= कालिमा) यया सा तादृशी, मेघलेखा = वारिदश्रेणी, इव । चन्द्रोदयम् = निशाकरोद्गमनम्, उपदर्शितेत्यादिः—उपदर्शिता (= प्रकटिता) पाण्डुः (= पाण्डुवर्णा) छविः (= कान्तिः) यया सा तादृशी, प्राची = पूर्वादिशा, इव । वसन्तेत्यादिः—वसन्तमासः (= मधुमासः) तस्य अवतारः (=प्रादुर्भावः) तम्, परिमलग्राहिणी= सौरभग्राहिणी, सौरभयुक्ता, मलयेत्यादिः—मलयः (= एतन्नामाचलः) तस्य अनलः (=पवनः) तस्य आगतिः (= आगमनम्), इव । पल्लवोद्भेदम्—पल्लवानाम् (= किसलयानाम्) उद्भेदः (= उत्पत्तिः, उद्गमनम्) तम्, अभ्युच्छ्रितेत्यादिः—अभ्युच्छ्रितः (= वृद्धिमुपगतः) मकरध्वजः (= कामदेवः) यस्यां सा तादृशी, मधुमास-लक्ष्मीः = वसन्तमासशोभा, इव । कुसुमनिर्गमम् = पुष्पनिर्गमनम्, पुष्पाविर्भावम्, उल्लासितेत्यादिः—उल्लासितः (= उल्लासं प्राप्तः, प्रहृष्टः) रागः

कहता हुआ समीप जाकर, समीप में ही बैठकर कुछ देर के लिये वैशम्पायन-सम्बन्धी बातचीत करके, इशारे (संकेत) से सभी सेवकों को हटा देने वाले चन्द्रापीड से निवेदन करने लगा—"देव ! चारों ओर चमकती हुई बिजली जैसे बादलों की वृद्धि (घने बादलों के आगमन) को, कालिमा से युक्त अर्थात् काले-काले बादलों की माला (समूह) वर्षा =पानी बरसने को, पाण्डुर वर्ण की कान्तिवाली पूर्व दिशा जैसे चन्द्रोदय को, सुगन्ध से भरी हुई दक्षिणीहवा का आगमन जैसे वसन्त मास के अवतरण (आ जाने) को, कामवासना को उद्दीप्त करनेवाली वसन्त मास की शोभा जैसे पल्लव-विकास (नये-नये पत्तों के फूटने, निकलने) को, तथा लालिमा से युक्त नवीन पल्लवों का विकसित होना जैसे फूलों के निकलने को तथा खिले हुए काश (सरकण्डे) के फूलों की मञ्जरी जैसे शरद् ऋतु के

---

१. उन्नादम् । २. समुच्छ्वसितमकर । ३. रागः पल्लव० ।

विकसितकाशकुसुमञ्जरीव शरदारम्भम्, अवस्थैवेयमावेदयति निःसंशयं देवस्य गमनम्। अवश्यं च देवस्य देवीप्राप्त्या भवितव्यम्। केन कदा वावलोकितो ज्योत्स्नारहितश्चन्द्रमाः ? कमलाकरो वा मृणालिकया विना ? उद्यानभागो वा लताशून्यः ? अपि च, न राजत एव सहकारकुसुममञ्जरीपरिग्रहमन्तरेण सर्वजनसुभगोऽपि कुसुममासः। असम्भावितदानलेखा-

---

(= रक्तिमा) यस्यां तादृशी, पल्लवानाम् (= किसलयानाम्) उद्गतिः (= उद्भेदः), इव। शरदारम्भम् = शरदाख्यर्तुप्रारम्भम्, विकसितेत्यादिः—विकसिता (= विकासं प्राप्ताः) काशकुसुमानाम् (= काशनामकतृणवृक्षविशेषपुष्पाणाम्) मञ्जरी (= वल्लरी) इव, इयम् = एषा, समुपस्थिता, अवस्था = दशा, स्थितिः, एव, निःसंशयम् = असन्दिग्धं यथा स्यात् तथा, देवस्य = स्वामिनः, राजकुमारस्य, गमनम् = प्रस्थानम्, आवेदयति = सूचयति, कादम्बर्याः समीपे इति शेषः। अयं भावः—यथा विस्फुरन्त्या तडिता इदं ज्ञाप्यते यद् मेघानां वृद्धिर्भविष्यति, एवमेव अन्यैरपि हेतुभिरन्येषां कार्याणां निष्पत्तिरनुमीयते तथैव साम्प्रतिक्या दशया भवतः कादम्बरीसमीपे गमनं सुनिश्चितमित्यनुमीयते। उपमालंकारः।

विशेष—अत्र वाक्येषु प्रयुक्तस्य 'इव' शब्दस्यान्वयः 'विस्फुरन्ती तडिद् इव' इत्यादौ कर्तरि-यथा दृश्यते तथैव करणीय उत 'बलाहकोन्नाहम् इव' इत्यादिवत् कर्मणि करणीयः ? अत्र दृष्टिभेदो दृश्यते। यदि 'तडिद् इव' एवमन्वयस्तदा तडितः सादृश्यम् 'अवस्थायाम्' बोध्यम्, 'यथा तडित् तथा इयमवस्था''''''इत्यादिवाक्यार्थ उपपादनीयः। यदि 'बलाहकोन्नाहम् इव' एवमन्वयः क्रियते तदा 'यथा बलाहकोन्नाहं तथा गमनम्' इति रीत्या सादृश्यं कल्पनीयम्। वस्तुतस्तु—'अवस्था एव' इत्यत्र 'एवकारप्रयोगात् कर्तृवाचकेषु तडिदादि-शब्देषु एव इवार्थान्वयो युक्ततरः।

अवश्यं चेति। देवस्य = राजकुमारस्य, देवीप्राप्त्या = कादम्बर्याः संगमेन, अवश्यम् = निश्चितरूपेण, भवितव्यम् = भाव्यम्। पूर्वोक्तशुभघटनावशादिदं सुनिश्चितं यद् राजकुमारस्य तत्र गमनं यावत्कादम्बरी जीविता एव स्थास्यति, तया सह संमिलनं भविष्यति। स्वोक्तौ युक्तीः प्रस्तौति—केनेत्यादिना। केन = अज्ञातेन, कदा = कस्मिन् काले, वा, चन्द्रमाः = चन्द्रः, ज्योत्स्नारहितः = चन्द्रिकाहीनः, अवलोकितः = दृष्टः ? कमलाकरः = कमलयुक्तस्तडागः, वा = अथवा, मृणालिकया = कमलिन्या, विना = ऋते, अवलोकितः ? वा = अथवा, उद्यानभागः = उपवनप्रदेशः, लताशून्यः = व्रततीरहितः, अवलोकितः ? नावलोकित इति काक्वा व्यज्यते। तथैव भवान् कादम्बर्या विना नैव शोभते इति तदाशयः।

अपि चेति। अपि च = अन्यच्च, सर्वजनेत्यादिः—सर्वजनस्य (= समस्तलोकस्य) सुभगः (= अतिप्रियः), अपि, कुसुममासः = वसन्तमासः, सहकारेत्यादिः—सहकाराः (= आम्रवृक्षाः) तेषां कुसुममञ्जरी (= पुष्पमञ्जरी) तस्याः परिग्रहः (= स्वीकारः, धारणम्) तम्, अन्तरेण =

आगमन को सूचित करती है, वैसे ही यह अवस्था = परिस्थिति ही आपके प्रस्थान (जाने) की सूचना निश्चित रूप से दे रही है। और देव (आप) को देवी (कादम्बरी) अवश्य ही [जीवितावस्था में] मिलनी चाहिए। [क्योंकि] किसने और कब चाँदनी से रहित चन्द्रमा को देखा है ? अथवा कमलाकर को मृणालिनी (कमलिनी) के बिना ? अथवा उद्यान का प्रदेश लता के बिना [देखा है] ? और भी, सभी लोगों को अच्छा लगने वाला भी वसन्त का महीना आम्रपुष्प की मञ्जरी को अपनाये बिना शोभित होता ही नहीं है। अथवा गजसमूह के अधिपति गजराज का

लक्ष्मीकं वा वदनं यूथाधिपतेः । किं तु यावद् वैशम्पायनः परापतति यावच्च[1] तेन सह गमन-संविधानं निरूपयति देवस्तावदवश्यं कालक्षेपेण भाव्यम् । यादृशी चाकालक्षमा देव्याः शरीरावस्था तादृशी निवेदितैव मया । सर्वोपि प्रत्याशया धार्यते । देव्यास्तु पुनर्देवदर्शनेऽद्य[2] यावन्निष्प्रत्याशमेव हृदयं केनाश्वासनेन[3] वर्ततास् । मद्वार्तोपलम्भादेतदुत्पत्स्यते[4] चेतसि—

विना, न = नैव, राजते = शोभते, एव । रसालवृक्षमञ्जरीभिरेव वसन्तस्य शोभेति भावः । वा = अथवा, यूथाधिपतेः = गजसमूहाधिपस्य, गजराजस्य, वदनम् = आननम्, असम्भावितेत्यादिः—असम्भाविता (= न सम्भावनाविषयीकृता, अलक्षिता) या दानस्य (=मदजलस्य) लेखा (=रेखा) तस्याः लक्ष्मीः (= शोभा) यस्मिन् तत् तादृशम्, न राजते एव । [बहुव्रीहौ स्वार्थे कप्रत्ययः ।] अतो भवानपि कादम्बरीपरिग्रहमन्तरेण न शोभते इति तदाशयः । किन्तु = परन्तु, यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, वैशम्पायनः = एतन्नामा सुहृद्, परापतति = आगच्छति, परावर्तते, यावत्, च, देवः = राजकुमारः, तेन = वैशम्पायनेन, सह = सार्धम्, गमनसंविधानम् = प्रस्थानस्य प्रकारादिकम् यात्राया व्याजमिति भावः, निरूपयति=विचारयति, भविष्यति लट्, निरूपयिष्यतीति भावः, तावत् = तावता समयेन, कालक्षेपेण = समयविलम्बेन, अवश्यम् = निश्चितरूपेण, भाव्यम् = भवितव्यम् । वैशम्पायनस्य परावर्तनं तेन सह केनापि मिषेण प्रस्थानस्य प्रबन्धकरणं तत्र विलम्बोऽपरिहार्यं इति भावः । सति विलम्बे का क्षतिरिति प्रतिपादयति—देव्याः = कादम्बर्याः, च, यादृशी = यत्प्रकारा, अकालक्षमा—कालम् (= समयम्, विलम्बमिति भावः) न क्षमते (= सहते) इति तादृशी, विलम्बासहिष्णुरित्यर्थः, शरीरावस्था = देहस्य दशा, वर्तते इति शेषः, तादृशी = तत्प्रकारा, मया = केयूरकेण, निवेदिता = कथिता, एव । एवं च अल्पोपि विलम्बः कादम्बरीशरीरत्यागस्य कारणं भवितुमर्हतीति तद्भावः । सर्वः = समस्तः, अपि, जनः, प्रत्याशया = प्रतिवाञ्छया, धार्यते = ध्रियते, जीवितः स्थाप्यते, प्रत्याशैव सर्वेषां दीर्घजीवनधारणस्य मुख्यं निमित्तम् । तस्या विनाशे न कोपि जीवितुमुत्सहते इति तद्भावः । तु = किन्तु, देव्याः = कादम्बर्याः, पुनः = द्वितीयवारम्, देव-दर्शने = भवदवलोकने, [वैषयिकी सप्तमी, देवदर्शनविषये इत्यर्थः] अद्य = अस्मिन् दिनम्, यावत् = पर्यन्तम्, निष्प्रत्याशम् = प्रत्याशाशून्यम्, एव, हृदयम् = मानसम्, केन = अज्ञातेन, आश्वासनेन = सान्त्वनया, वर्तताम् = तिष्ठतु शान्तमिति शेषः, कथं जीवितं तिष्ठेदिति भावः । मद्वार्त्तोपलम्भात्—मत्तः (= केयूरकात्) वार्त्तायाः (= समाचारस्य, भवदागमनसम्बन्धिन इति शेषः) उपलम्भात् (= प्राप्तेः) हेतोः, तस्याः, चेतसि = मनसि, एतत् = इदं वक्ष्यमाणम्,

---

मुख भी मदजल की रेखा की सुन्दरता के बिना [शोभित नहीं ही होता है] । [अतः आप कादम्बरी को अवश्य प्राप्त कर लेंगे ।] परन्तु जब तक वैशम्पायन वापस लौटता है और जब तक देव (आप) उसके साथ जाने की तैयारी के विषय में विचार-विमर्श करते हैं तब तक निश्चित ही बहुत देर हो जायगी । और देवी की शरीर की दशा जैसी समय के विलम्ब को सहन न कर सकने वाली है वैसी मैंने आपको बता ही दी है । समस्त प्राणी प्रत्याशा (अपने कार्य के अनुरूप आशा)से ही जीवन धारण किये रहते हैं । परन्तु देवी कादम्बरी का तो देवदर्शन में आज तक निराश रहनेवाला ही मन [अब] किस आश्वासन से[निश्चिन्त] रह सकता है । मुझसे आपके आने का समाचार पाने से[उसके] चित्त में यह भाव उत्पन्न हो जायगा कि मेरे (कादम्बरी के) जीवित रहने की आवश्यकता (कार्य)

---

१. यावच्चैतेन । २. दर्शनेनाद्य । ३. आश्वासेन । ४. उपपत्स्यते ।

'यथास्ति कार्यं मे जीवितेन, दुःखान्यपि [1]'सहन्ती धारयाम्येतदिति'। अतो विज्ञापयामि—'चेतसा त्वग्रतो गत एव देवः शरीरेणाप्यनुपदमुच्चलित एव। किमपरं मयात्र स्थितेनापि साधनीयम्। तद्देवागमनोत्सवावेदनाय गमनानुज्ञया प्रसादं क्रियमाणमिच्छति मे प्रणयप्रसाददुर्ललितं हृदयमिदानीमेव।'

उत्पत्स्यते = उत्पन्नं भविष्यति—'यथा = यत्, मे = मम, कादम्बर्याः, जीवितेन = जीवनेन, कार्यम् = कृत्यम्, फलमिति भावः, अस्ति = वर्तते, तस्मात्, दुःखानि = कष्टानि, अपि, सहन्ती = सहमाना, एतत् = स्वकीयं शरीरम्, धारयामि = दधामि, मृत्युं नाङ्गीकरोमीति भावः।

'सहन्ती'ति प्रयोगश्चिन्त्य इति केचनाहुः, तत्तु व्याकरणशास्त्रानवबोधमूलकम्। पाणिनिना 'षह मर्षणे' इति भ्वादौ आत्मनेपदी पठितः। परन्तु 'चुरादाष्वपि षहमर्षणे' इत्यपरोऽपि धातुः पठितः। स चायं धातुः 'आधृषीयः।' अत्र च 'आधृषाद् वा' इति गणसूत्रेण विभाषया णिज् विहितः। तेन—साहयति, णिजभावे-सहति-इति रूपद्वयं साधु। अतएव सिद्धान्तकौमुद्यामयं पद्यांशोऽपि उद्धृतः—"स एवायं नागः सहति कलभेभ्यः परिभवम्।"

एवञ्च—'सहन्ती'ति रूपमपि शुद्धमेव बोद्धव्यमिति त्रिपाठी।

अतो विज्ञापयामीति। अतः = अस्मात् पूर्वोक्तात् कारणात्, विज्ञापयामि = विनिवेदयामि। देवः = राजकुमारः, चेतसा = मनसा, तु, अग्रतः = पुरतः, अग्रे, गतः = प्रयातः, एव, न त्वत्र स्थितं तव चित्तमिति भावः। शरीरेण = देहेन, अपि, अनुपदम् = पश्चात् शीघ्रम्, उच्चलितः = प्रस्थितः, एव, इदानीं शरीरेण सहैव गमनं निश्चितमिति भावः। स्वकर्तव्यं निर्दिशति केयूरकः—किमित्यादिना। अत्र = उज्जयिन्याम्, भवतः समीपे वा, स्थितेन = निषण्णेन विद्यमानेन, अपि, मया = केयूरकेण, किम् = अज्ञातम्, अपरम् = अन्यत्, साधनीयम् = सम्पादनीयम्? नापरं किमपि करणीयमिति भावः। तत् = तस्मात्, देवागमनेत्यादिः—देवस्य (= राजकुमारस्य) आगमनम् (= सम्प्राप्तिः, कादम्बरीसमीपे इति शेषः) तद् एव उत्सवः (= पर्व, महः) तस्य आवेदनाय (= सूचनाय), प्रणयेत्यादिः—प्रेम्णा (= प्रीत्या) यः प्रसादः (= अनुग्रहः) तेन दुर्ललितम् (= बहुगर्वितम्, धृष्टम्) मे = मम केयूरकस्य, हृदयम् = चित्तम्, इदानीम् = अस्मिन् काले, एव, गमनानुज्ञया = प्रस्थानस्यानुमत्या, क्रियमाणम् = विधीयमानम्, प्रसादम् = अनुग्रहम्, इच्छति = वाञ्छति। मम हृदयमिदानीमेव कादम्बरीं भवदागमनं सूचयितुं व्यग्रं सत् प्रस्थानानुमतिमभिलषति। अतो मह्यं परावर्तनस्याज्ञा देया भवतेति तद्भावः।

है, [अतः] दुःखों को सहती हुई भी इसे धारण किये रहूँ।' इस कारण मैं निवेदन कर रहा हूँ कि मन से तो आप आगे (कादम्बरी के पास) जा ही चुके हैं अब शरीर से भी शीघ्र ही (पीछे) जा रहे हैं। मुझे यहाँ रहकर भी दूसरा और क्या करना है, अर्थात् यहाँ अब मेरा कोई काम नहीं है। इसलिए [आपके द्वारा किये गये] अनुग्रह से धृष्ट बनाया गया मेरा मन आपके आगमनोत्सव की सूचना देने के लिये इसी समय जाने की आज्ञा द्वारा की जानेवाली प्रसन्नता = अनुग्रह को चाह रहा है, अर्थात् अब आप मुझे अभी वापस जाने की आज्ञा दें जिससे कि मैं देवी कादम्बरी को आपके पुनरागन रूपी महोत्सव की सूचना दे सकूँ, आपकी बड़ी कृपा होगी।'

---

१. 'षह मर्षणे' इत्यस्य धातोरात्मनेपदित्वादत्र शतृप्रत्ययश्चिन्त्य एव, 'सहमाना' इत्येव शुद्धं रूपं बोध्यम्'—इत्यस्य निराकरणं संस्कृतव्याख्यायां द्रष्टव्यम्।

इति विज्ञापिते केयूरकेण अन्तःपरितोषविकसितया विकचनीलोत्पलपुञ्जमालिकयेव दृष्ट्या दर्शितप्रसाद[1]श्चन्द्रापीडः प्रत्युवाच—'किमुच्यते ? कस्यापरस्येदृशोऽस्मद्दुःखासहिष्णुरनपेक्षितस्वशरीरशक्तिरुत्साहः ? कस्यापरस्येदृशी देशकालज्ञता ? को वापरोऽस्मास्वेवं निर्व्याजभक्तिः ? तत्साधु चिन्तितम् । गम्यतां देव्याः प्राणसन्धारणाय । [2]मदागमनप्रत्ययार्थं

इतीति । इति = एवं पूर्वोक्तरूपेण, केयूरकेण = कादम्बरीसेवकेन, विज्ञापिते = प्रार्थिते, कथिते, सति । अन्तरित्यादिः—अन्तः (= अभ्यन्तरे, मनसीति भावः) यः परितोषः (= सन्तुष्टिः, शान्ति) तेन विकसितया (= प्रफुल्लया) विकचेत्यादिः—विकचानि (= विकस्वराणि) यानि नीलकमलानि (= नीलकुवलयानि) तेषां मालिका (= स्रक्) तया, इव, दृष्ट्या = नेत्रेण, दर्शितप्रसादः—दर्शितः (= प्रकटितः) प्रसादः (= प्रसन्नता, हर्षः) येन स तादृशः, चन्द्रापीडः = राजकुमारः, प्रत्युवाच = प्रत्यब्रवीत् । [इव शब्द उत्प्रेक्षायां न तूपमायाम्] किम्, उच्यते = कथ्यते ? कथनस्य तव काप्यावश्यकतैव नास्तीति भावः । कस्य, अपरस्य = त्वद्भिन्नस्य, ईदृशः = एतादृशः, एतत्प्रकारकः, अस्मदित्यादिः—अस्माकम् आवयोर्वा (= कादम्बरीचन्द्रापीडयोः) यद् दुःखम् (= क्लेशः, व्यथा) तस्य असहिष्णुः (= असहनशीलः) अनपेक्षितेत्यादिः—अनपेक्षिता (= अवाञ्छिता) स्वशरीरस्य (= निजदेहस्य) शक्तिः (= सामर्थ्यम्) यस्मिन् तादृशः, उत्साहः = उत्सहत्वम्, कार्याधिक-सम्पादनाभिरुचिः ? न कस्यापीति भावः । कस्य, अपरस्य = त्वद्भिन्नस्य, देशकालज्ञता—देशः (= स्थानादिः) कालः (= समयः, अवसरः) तौ जानाति (= वेत्ति) इति तस्य भावस्तत्ता: ? त्वद्भिन्नोऽपरो न समुचितं देशं कालं वा सम्यग् जानातीति भावः । वा = विकल्पे, कः, अपरः = अन्यः, अस्मासु = चन्द्रापीडादिषु, एवम् = अनेन प्रकारेण, निर्व्याजभक्तिः—निर्व्याजम् (= निश्छलम्) यथा स्यात् तथा भक्तिः (= भजनम्, अनुरक्तिः) यस्य स तादृशः ? सर्वेऽपि किमपि स्वार्थमुद्दिश्यैव भक्तिं कुर्वन्ति, परन्तु तव भक्तिस्तु निःस्वार्था, निश्छला च । तत् = तस्मात्, साधु = सम्यक्, चिन्तितम् = विचारितम् । देव्याः = कादम्बर्याः, प्राणधारणाय = असुसंरक्षणाय, गम्यताम् = व्रज्यताम्, प्रस्थीयताम्, त्वयेति शेषः । मदागमन-प्रत्ययार्थम्—मम (= चन्द्रापीडस्य) यद् आगमनम् (= कादम्बरीसमीपे सम्प्राप्तिः) तस्य प्रत्ययः (= ज्ञानम्, विश्वासः) तदर्थम्, च, पत्रलेखा = मम प्रिया परिचारिका, अपि, अग्रतः = अग्रे, मदागमनात्पूर्वमेवेति भावः, त्वया = केयूरकेण, सह = साकम्, एव,

---

केयूरक द्वारा इस (पूर्वोक्त) प्रकार निवेदन किये जाने पर मानसिक (अन्तः) सन्तोष के कारण खिली हुई, खिले हुये नीलकमल के समूह की माला सी [प्रतीत होने वाली] दृष्टि (आँखों) से अनुग्रह प्रदर्शित करता हुआ चन्द्रापीड कहने लगा—"क्या कहा जाय, कौन दूसरा ऐसा है जिसमें हमारे दुःख को न सहन कर सकने वाला, अपने शरीर की शक्ति की भी अपेक्षा न करने वाला उत्साह है ? किस दूसरे को इस प्रकार की देश = स्थान और समय की जानकारी है ? अथवा कौन दूसरा है जिसमें हम लोगों के लिये छलरहित भक्ति है ? इसलिये [तुमने] ठीक ही सोचा । देवी के प्राण धारण रखवाने के लिये जाइये । और मेरे आने का विश्वास कराने के लिये

---

१. दर्शितप्रसारः ।   २. ममागमन० ।

च पत्रलेखाप्यग्रतस्त्वयैव सह यातु[1] देवीपादमूलम् । इयमपि प्रसादभूमिरेव देव्याः । इमामप्यालोक्य कियत्यपि धृतिरवश्यमुत्पद्यत[2] इति मे चेतसि । अपि चास्या अपि देव्यामस्त्येव स्नेहो भक्तिश्च' —इत्यभिधाय पृष्ठतः [3]समुपविष्टाम् 'एवं नेति ? पत्रलेखामप्राक्षीत् । सा तु किंचिदवनतमुखी 'निजाज्ञाक्षराणि प्रयच्छतु देवः' इति व्यज्ञपयत् । कृतप्रस्थितिनिश्चयायां च तस्यां मेघनादाह्वानाय प्रतीहारीमादिदेश ।

आदेशानन्तरमेवागतं च दूरतः प्रणतमाज्ञाप्रतीक्षं स्वयमेवाहूय सोपग्रहमादिदेश—

देवीपादमूलम् = कादम्बर्याः चरणयोः समीपम्, यातु = गच्छतु । इयम् = एषा, पत्रलेखा, अपि, देव्याः = कादम्बर्याः, प्रसादभूमिः = अनुग्रहस्थानम्, एव, वर्तते इति शेषः । इमाम् = पत्रलेखाम्, अपि आलोक्य = दृष्ट्वा, कियती = कियन्मात्रा अपि, न तु समग्रेति भावः, धृतिः = धैर्यम्, अवश्यम् = असन्दिग्धम्, उत्पद्यते = जायते, उत्पत्स्यते इत्यर्थः, भविष्यति सामीप्ये लट्, इति = एवम्, मे = चन्द्रापीडस्य, चेतसि = हृदये, वर्तते इति शेषः । अपि च = अन्यच्च, अस्याः = एतस्याः पत्रलेखायाः, अपि, देव्याम् = कादम्बर्याम्, स्नेहः = प्रीतिः भक्तिः = आराध्यत्वेन विश्वासः, अस्ति = वर्तते, एव । एवञ्च पत्रलेखायाः दर्शनेन कादम्बरी प्राणानवश्यं धारयिष्यतीति तद्भावः । इति = पूर्वोक्तम्, अभिधाय = उक्त्वा, पृष्ठतः = पृष्ठभागे, समुपविष्टाम् = निषण्णाम्, एवम् = अनेन मदुक्तरूपेण, न = नैव वर्तते ? इति = इत्थम्, पत्रलेखाम् = स्वसेविकाम्, अप्राक्षीत् = पृष्टवान् । [क्वचित्तु 'उपविष्टामेव तां पत्रलेखामप्राक्षीत्' इति पाठः । अयन्तु सरलतरः ।] सा = पत्रलेखा, तु, किञ्चिदवनतमुखी = किञ्चित् (= ईषत्, स्वल्पम्) अवनतम् (= अवनम्रम्) मुखम् (= आननम्) यस्याः सा तादृशी सती, निजाज्ञेत्यादिः—निजायाः (= स्वीयायाः) आज्ञायाः (= आदेशस्य) अक्षराणि (= वर्णान्), देवः = राजकुमारः प्रयच्छतु = ददातु, आज्ञां करोत्विति भावः, इति = एवम्, व्यज्ञपयत् = न्यवेदयत् ।

कृतेति । कृतेत्यादिः—कृतः (=विहितः) प्रस्थितेः (=प्रस्थानस्य) निश्चयः (=निर्णयः) यया सा तादृश्याम्, तस्याम् = पत्रलेखायाम्, मेघनादाह्वानाय = मेघनादाहूत्यर्थम्, प्रतीहाराम् = द्वारपालिकाम्, आदिदेश = आदिष्टवान् । आदेशान्तरम् = आज्ञायाः, पश्चात्, एव, आगतम् = समुपस्थितम्, च, दूरतः = विप्रकृष्टात्, प्रणतम् = विहितप्रणामम्, आज्ञाप्रतीक्षम्—आज्ञायाः (= आदेशस्य) प्रतीक्षा (= परिपालनम्) यस्मिन् यस्य वा तादृशम्, स्वयम् = आत्मना, एव आहूय = आकार्य, सोपग्रहम् = आदरसहितम्, आदिदेश = आज्ञापयामास, चन्द्रापीड इति शेषः ।

पत्रलेखा भी तुम्हारे ही साथ देवी के चरणों के समीप (सेवा में) पहले ही चली जाय । क्योंकि यह (पत्रलेखा) भी देवी कादम्बरी की कृपापात्र है । मैं समझता हूँ कि इस (पत्रलेखा) को भी देखकर [देवी के मन में] कुछ तो धैर्य अवश्य ही उत्पन्न होगा । और फिर इसकी भी तो देवी कादम्बरी में प्रीति तथा भक्ति [दोनों ही] हैं ।'' ऐसा कह कर अपने पीठ पीछे बैठी हुई पत्रलेखा से 'ऐसा नहीं है क्या ?' इस प्रकार से पूछा । वह नीचे मुख किये हुई कहने लगी—"स्वामी, अपनी आज्ञा के शब्द दीजिये अर्थात् आप आदेश दीजिये ।'' उसके द्वारा प्रस्थान का निश्चय कर लेने पर [चन्द्रापीड ने] मेघनाद को बुलाने के लिये प्रतीहारी को आदेश दे दिया ।

आदेश के तुरन्त बाद ही आये हुए,दूर से ही झुके हुए,आदेश की प्रतीक्षा करने वाले (मेघनाद) को स्वयं बुलाकर आदरपूर्वक आदेश दिया—"मेघनाद ! जिस स्थान पर मैंने पत्रलेखा को लाने

---

१. प्रयातु । २. उत्पत्स्यते । ३. उपविष्टामेव तां पत्रलेखाम् ।

'मेघनाद, यस्यां भूमौ पत्रलेखानयनाय पूर्वं मया त्वं [1]स्थापितस्तां भूमिं[2] यावत्पत्रलेखामादाय केयूरकेण सहाग्रतो गच्छ। अहमपि वैशम्पायनमालोक्यानुपदमेव ते तुरंगमैः परागतः।'' इत्यादिश्य '[3]यदाज्ञापयति देव' इति कृतनमस्कृतौ त्वरितगमनसंविधानाय निष्क्रान्ते मेघनादे—"देव किमतः परं विलम्बेन'' इत्यभिधाय मेघनादनिर्गमनानन्तरं गमनप्रणामोत्थितं केयूरकं सस्नेहमाहूय सबाष्पया दृष्ट्या पुनः पुनरालोक्य परिष्वज्य च सपुलकाभ्यां दोर्भ्यामात्मकर्णादपनीयानेकवर्णरुचिरं सन्देशमिव कर्णाभरणमस्य कर्णे कृत्वा कण्ठागत-

---

मेघनाद = सम्बोधनमिदम्, यस्याम्, भूमौ=पृथिव्याम्, यस्मिन् प्रदेशे इति भावः, पत्रलेखाऽऽनयनाय= पत्रलेखाम् आनेतुम्, मया=चन्द्रापीडेन, पूर्वम्=इतः प्राक्काले, त्वम्=मेघनादः, स्थापितः=रक्षितः,न्यस्तः, आसीरिति शेषः ताम् = तव ज्ञाताम्, भूमिम् = भूभागम्, यावत् = पर्यन्तम्, पत्रलेखाम् = एतन्नाम्नीम्, आदाय=नीत्वा, केयूरकेण=एतन्नाम्ना कादम्बरीसेवकेन, सह=सार्धम्, अग्रतः=अग्रे, पूर्वम् गच्छ = व्रज। अहम् =चन्द्रापीडः, अपि, वैशम्पायनम् = एतन्नामानम्, सुहृदम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, मिलित्वेति भावः, ते = तव, अनुपदम् =शीघ्रं पश्चाद्, एव, तुरङ्गमैः = अश्वैः, परापतितः= आगतः, भविष्यामीति शेषः। इति = अनेन प्रकारेण, आदिश्य = आज्ञाप्य, देवः =स्वामी, यद् = यथा, आज्ञापयति = आदिशति, तथैव करोमीति शेषः, इति = एवमुक्त्वा, कृतनमस्कृतौ—कृता (= विहिता) नमस्कृतिः (= नमस्कारः) येन तस्मिन् तादृशे, त्वरितेत्यादिः—त्वरितम् (= शीघ्रम्) यद् गमनम् (= प्रस्थानम्) तस्य संविधानाय = प्रबन्धकरणाय, मेघनादे = एतन्नामके सेनापतौ, निष्क्रान्ते = निर्गते, सति, देव ! = स्वामिन् !, अतः = अस्मात्, परम् = पश्चात्, विलम्बेन = कालक्षेपेण किम् ? न किमपि फलमिति भावः। इति = एवम्, अभिधाय = उक्त्वा, मेघनादेत्यादिः—मेघनादस्य (= एतन्नामकसेनापतेः) यद् निर्गमनम् (= निष्क्रमणम्, प्रस्थानम्) तस्मात् अनन्तरम् (=पश्चात्), गमनेत्यादिः—गमनाय (=स्वप्रस्थानाय) यः प्रणामः (= नमस्कारः) तदर्थम् उत्थितम् (= उत्थाय स्थितम्), केयूरकम् = कादम्बरीसेवकम्, सस्नेहम् = प्रीतिसहितं यथा स्यात् तथा, आहूय = आकार्य, सबाष्पया = नेत्राम्बुपूर्णया, दृष्ट्या= नेत्रेण, पुनः पुनः = भूयो भूयः, आलोक्य = निरीक्ष्य, सपुलकाभ्याम् = रोमाञ्चसहिताभ्याम्, दोर्भ्याम् = भुजाभ्याम्, परिष्वज्य = समालिङ्ग्य; च, आत्मकर्णात् = निजश्रोत्रात्, अपनीय = पृथक्कृत्य, निःसार्य, अनेकवर्णरुचिरम्—अनेकवर्णैः (= पीतश्यामादिवर्णैः, पक्षे–अकाराद्यक्षरैः) रुचिरम् (= मनोहरम्) सन्देशम् (= वाचिकं वृत्तम्) इव, कर्णाभरणम् = श्रवणाभूषणम्, अस्य = केयूरकस्य, कर्णे = श्रोत्रे, कृत्वा = विधाय, परिधापयित्वेति भावः, कण्ठागतेत्यादिः—कण्ठे (= गलप्रदेशे) आगतः (= समायातः) यो बाष्पः (= रोदनजलम्) तस्माद् या

के लिये पहले तुम्हें रखा(खड़ा किया) था,उस स्थान तक पत्रलेखा को लेकर केयूरक के साथ तुम आगे से चलो,पहुँचो। मैं भी वैशम्पायन को देखकर (मिलकर) तुम्हारे पीछे-पीछे ही घोड़ों से आया,अर्थात् आ रहा हूँ।'' ऐसा आदेश देकर "स्वामी की जैसी आज्ञा [वैसा ही करता हूँ''] ऐसा [कह कर] नमस्कार करके शीघ्र ही जाने का प्रबन्ध करने के लिये मेघनाद के बाहर चले जाने पर "स्वामी !अब इससे अधिक विलम्ब करने में क्या लाभ ?' यह कह कर मेघनाद के जाने के बाद [स्वयं भी] जाने के लिये प्रणाम करके उठ खड़े हुए केयूरक को स्नेहपूर्वक बुलाकर आसुओं से भरी हुई आंखों से बारम्बार देखकर, रोमाञ्चयुक्त भुजाओं से बार-बार आलिङ्गन करके अपने गले से लगाकर), अनेक प्रकार के वर्णों (अक्षरों, रंगों) से सुन्दर लगने वाले सन्देश वचन के समान कर्णाभूषण को अपने कान से

---

१. प्रस्थापितः। २. भूमिमेव। ३. यथाज्ञापयति।

बाष्पगद्गदिका[1]-गृह्यमाणाक्षरमवादीत्—'केयूरक, त्वया तु देवीसन्देशो नानीत एव। तत्कि तव हस्ते तदनुरूपं प्रति[2]सन्दिशाम्यपूर्वम्? विज्ञापयितव्या देवी। तत्रापि किमलीकलज्जाजालभारोद्वहनेन त्वामायासयामि। यात्येव पत्रलेखा देवीपादमूलम्। इयं विज्ञापयिष्यति।' इत्यभिदधदेवातर्कितोपनतात्मविरहपीडाम्, अमङ्गलशङ्कया कृतयत्नामपि बाष्पवेगमपारयन्तीं सन्धारयितुम्, [3]उत्प्लुताबद्धलक्षशून्यदृष्टिसंचारणां चरणपाताभिमुखीं पत्रलेखां

गद्गदिका (= गद्गदित्यव्यक्तध्वनिः) तया गृह्यमाणानि (= रुध्यमानानि, उच्चार्यमाणानीति भावः) अक्षराणि (= वर्णाः) यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा, अवादीत् = अवोचत्।

चन्द्रापीडः किमवादीदिति वर्णयति—केयूरक इत्यादिना। केयूरक ! = इदं सम्बुद्धौ, त्वया = भवता, तु, मे = मह्यम्, मम वा, देवीसन्देशः = कादम्बर्याः वाचिकं वृत्तम्, न, आनीतः=प्रापितः, एव। तत् = तस्माद् हेतोः, तव = भवतः, हस्ते = करे, तदनुरूपम् = तस्याः कादम्बर्याः योग्यम्, अपूर्वम् = नवीनम्, किम्, सन्दिशामि = प्रतिवचः प्रयच्छामि ? देवी = कादम्बरी, विज्ञापयितव्या = बोधनीया, निवेदयिष्येति भावः। तत्र = विज्ञापनाविषये, अपि, अलीकेत्यादिः—अलीका (= मिथ्या) या लज्जा (= व्रीडा) तस्याः यत् जालम् (= राशिः) तस्य भारः (= वीवधः, भरः) तस्य उद्वहनेन (= ग्रहणेन, धारणेन), त्वाम् = केयूरकम्, किम् = किमर्थम्, आयासयामि = खेदयामि। तर्हि कादम्बरी कथं तव प्रतिक्रियां ज्ञास्यतीत्यत आह—यातीत्यादिना। पत्रलेखा = मम प्रियपरिचारिका, देवीपादमूलम् = कादम्बर्याः चरणसमीपम्, याति = गच्छति, एव, त्वया सहेति शेषः। इयम् = एषा, पत्रलेखा, विज्ञापयिष्यति=निवेदयिष्यति।

इत्यभिदधदिति। इति = इत्थम्, अभिदधत् = कथयन्, एव, चन्द्रापीडः, अतर्कितेत्यादिः—अतर्किता (= अचिन्तिता, अकस्मादिति भावः) एव, उपनता (= सम्प्राप्ता) या आत्मनः (= स्वस्याः) विरहः (= वियोगः चन्द्रापीडसम्बन्धीति भावः) तस्य पीडाम् (= व्यथाम्) अकस्माद् गमनेन चन्द्रापीडस्य सद्य एव भाविना विरहेणातीव खिन्नामिति भावः, अमङ्गलशङ्कया = अशुभस्याशङ्कया, कृत-प्रयत्नाम्—कृतः (=विहितः) प्रयत्नः (= प्रयासः, उद्योगः) यया सा तां, तादृशीम्, अपि, बाष्पवेगम् = नेत्राश्रुप्रवाहम्, संधारयितुम् = रक्षितुम्, अवरोद्धुम्, अपारयन्तीम् = अशक्नुवतीम्। उत्प्लुतेत्यादिः—उत्प्लुता (= ऊर्ध्वं स्थिता, अश्रुपूर्णा वा) आबद्धम् (= न निश्चितम्) लक्षम् (= लक्ष्यम्) यस्याः सा तादृशी अत एव शून्या (= रिक्ता, हीना) या दृष्टिः (= नेत्रम्) तस्याः सञ्चारणम् (=सञ्चालनम्) यस्याः सा तां तादृशीम्। चरणपाताभिमुखीम्—चरणयोः (= पादयोः, चन्द्रापीडस्येति शेषः) पातः (= पतनम्, नयनम्) तं प्रति अभिमुखीम्

उतार कर, इस (केयूरक) के कान में पहना कर, गले तक आये हुए आंसुओं से गद्गदिका से गृहीत होने वाले अर्थात् गद्गद होने से रुन्धे हुये अक्षरों से कहने लगा—"केयूरक ! तुम तो देवी का कोई सन्देश लाये ही नहीं हो। इसलिये अनुरूप अपूर्व कौन सा सन्देश तुम्हारे हाथ में दूँ, तुम्हारे द्वारा कादम्बरी के पास भेजूं। [फिर भी] देवी से निवेदन कर देना। इसमें भी मिथ्या लज्जा-समूह के भार को ढोने में तुम्हें क्या कष्ट दूँ। पत्रलेखा तो देवी के चरणों के समीप (सेवा में) जा ही रही है। वही सब कह देगी।' ऐसा कहते हुआ चन्द्रापीड, अकस्मात् आये हुये [चन्द्रापीड के साथ होने वाले] अपने (पत्रलेखा के) वियोग की पीडावाली, [यात्रा-काल में] अमङ्गल की आशंका से प्रयत्न करने पर भी आंसुओं के वेग को रोक पाने में असमर्थ होती हुई, उत्प्लुत (आंसुओं

---

१. ...गद्गदिकाक्षरम्। २. सन्दिशामि। ३. उत्फुल्ल०।

प्रणयेनाभिमुखो भूत्वा बद्धाञ्जलिरभाषत—

'पत्रलेखे, साञ्जलिबन्धेन शिरसा प्रणम्य मदीयेन विज्ञाप्या देवी कादम्बरी। येन[1] सर्वखलानां धुरि लेखनीयेन—तथा प्रथमदर्शनेपि[2] वत्सलत्वात्स्वभावस्य दर्शितप्रसादातिशयां देवीं प्रणामेनाप्यसम्भाव्य[3] गच्छता–प्रज्ञा जडतया, ज्ञानं मौढ्येन, धीरता तारल्येन, स्नेहलता रौक्ष्येण, गौरवं लघुतया, प्रियंवदता पारुष्येण, मृदुहृदयता नैष्ठुर्येण, स्थैर्यं चञ्चलतया, दयालुता

(= सम्मुखीम्) चरणयोः प्रणतौ प्रवृत्तामिति भावः, पत्रलेखाम् = स्वप्रियसेविकाम्, प्रणयेन = स्नेहेन, अभिमुखः = सम्मुखः, भूत्वा = स्थित्वा, बद्धाञ्जलिः = बद्धः (= निर्मितः) अञ्जलिः (= करसम्पुटम्) येन स तादृशः चन्द्रापीडः, अभाषत = अबोचत्।

चन्द्रापीडस्य निवेदनं वर्णयति–पत्रलेख इत्यादिना। पत्रलेखे! सम्बोधनमिदम्, साञ्जलिबद्धेन= अञ्जलिबन्धनसहितेन, मदीयेन = चन्द्रापीडसम्बन्धिना, शिरसा=मस्तकेन, प्रणम्य = प्रणतिं विधाय, देवी, कादम्बरी = एतन्नाम्नी गन्धर्वराजकुमारी, विज्ञाप्या = निवेदनीया। सर्वखलानाम् = सर्वेषां धूर्तानाम्, धुरि = अग्रे, लेखनीयेन = लेखनयोग्येन, गणनीयेन वा, धूर्तसम्राटेति भावः, तथा = तेन रूपेण, अकस्मात् महाश्वेतया सह संजाते इति भावः, प्रथमदर्शने = प्रथमावलोकने, अपि, स्वभावस्य= स्वस्याः प्रकृतेः, वत्सलत्वात् = स्नेहिलत्वात्, दर्शितेत्यादिः—दर्शितः (= प्रकटितः) प्रसादस्य (= प्रसन्नतायाः, अनुग्रहस्य वा) अतिशयः (= अतिरेकः) यया सा तां तादृशीम्, देवीम् = सम्माननीयाम्, कादम्बरीम्, प्रणयेन = प्रणतया, अपि, असम्भाव्य = आदरम् अकृत्वा, चरण-स्पर्शादिस्तु कथा दूरे एवेति भावः, ['सर्वखलानां धुरि लेखनीयेन' इत्यस्यात्राप्यन्वयो युक्तः।] गच्छता = व्रजता, येन = मया चन्द्रापीडेनेत्यर्थः, प्रज्ञा = मनीषा, प्रतिभा, जडतया = मूर्खतया ['सर्वगुणा एव दोषैः परिवर्तिताः' इति दूरे वक्ष्यमाणेन सर्वेषामन्वयो बोध्यः।] ज्ञानम् = विवेकः, मौढ्येन = मूढतया। धीरता = धैर्यम्, तारल्येन = चाञ्चल्येन। स्नेहलता = स्निग्धता, स्नेहशीलता, रौक्ष्येण = रुक्षतया। गौरवम् = गुरुता, लघुतया = लाघवेन। प्रियंवदता = प्रियवादिता, पारुष्येण = कठोरत्वेन, कठोरभाषित्वेनेत्यर्थः। मृदुहृदयता = कोमलचित्तता, नैष्ठुर्येण=निष्ठुरतया। स्थैर्यम् = स्थिरता, चाञ्चलत्वेन = चञ्चलेन। दयालुता = कृपालुता, नृशंसत्वेन = घातकत्वेन।

से डबडबाई हुई) तथा लक्ष्यशून्य (सूनी) हिलती हुई आँखों वाली, [प्रणाम करने के लिये] चरणों में झुकी हुई पत्रलेखा की ओर स्नेह से सम्मुख होकर हाँथ जोड़ कर कहने लगा—

"पत्रलेखा! मेरी ओर से हाथ जोड़े हुए शिर से [झुककर] प्रणाम करके देवी कादम्बरी से निवेदन कर देना। समस्त खलों = दुर्जनों में आगे गिने जाने वाले = अग्रगण्य तथा पहले पहल दर्शन में भी अपने स्वभाव की वत्सलता के कारण अत्यधिक प्रसन्नता (अनुग्रह) दिखाने वाली देवी को प्रणाम के द्वारा भी सम्मानित न करके अर्थात् प्रणाम द्वारा भी शिष्टाचार न प्रदर्शित करके वापस जाते हुये जिस (मुझ चन्द्रापीड) ने—प्रज्ञा (बुद्धिमत्ता) को जड़ता = बेबकूफी में, ज्ञान को मूर्खता में, धैर्य को चञ्चलता में, स्नेहशीलता को रुक्षता में, गौरव को लाघव (हल्केपन) में, प्रियवादिता को कठोरता में, कोमलहृदयता को निष्ठुरता में, स्थिरता को चञ्चलता में, दयालुता

१. येन सर्वाभिलषणीयेन तथा०। २. प्रथमदर्शनेन।
३ असम्भाव्यागच्छता सर्वखलानां धुरि लेखनीयेन प्रज्ञा।

नृशंसत्वेन[1],आर्जवं मायाजालेन[2],सत्यवादितालीककाकुसंपादनेन, दृढभक्तितावज्ञानेन,पेशलता कौटिल्येन, लज्जा धाष्टर्येन, औदार्यं क्षुद्रतया, दाक्षिण्यममहानुभावतया, प्रश्रयोऽभिमानेन, कृतज्ञता कृतघ्नतया,शीलं पौरोभाग्येण[3] सर्वगुणा एव[4] दोषैः परिवर्तिताः[5],—स कथमिवापरं गुणमवलम्ब्य पुनः परिग्रहाय विज्ञापयतु ? केन [6]चाङ्गीकरोतु देवी ? किमुपदर्शितालीकात्मार्पणेन न प्रतारितं देव्या हृदयमिति ? किं प्रकृतिपेशलं हृदयमपहृत्य नापक्रान्तोस्मीति ?

आर्जवम् = ऋजुत्वम्, सरलत्वम्, मायाजालेन = कपटप्रपञ्चेन । सत्यवादिता = ऋतभाषिता, अलीककाकु-सम्पादनेन—अलीका (= मिथ्या) या काकुः (= ध्वनिविशेषः) तस्याः सम्पादनेन (= विधानेन) । दृढभक्तिता—दृढा (= स्थिरा, अचला) भक्तिः (= आराध्यत्वेन ज्ञानादिः) यस्य तस्य भावस्तत्ता, स्थिराराध्यतेति भावः, अवज्ञानेन=अवमानेन, अवगणनेनेति भावः । पेशलता = कमनीयता, कोमलता वा, कौटिल्येन = कुटिलतया, लज्जा = व्रीडा, धाष्टर्येन = धृष्टतया, औदार्यम्= उदारता, क्षुद्रतया = तुच्छतया, दाक्षिण्यम् = दक्षिणता, सरलता वा, अमहानुभावतया=अमाहात्म्यतया, तुच्छस्वभावतया, प्रश्रयः = विनयः, अभिमानेन = दर्पेण, कृतज्ञता—कृतम् (= उपकृतम्) वेत्ति (=जानाति)इति कृतज्ञस्तस्य भावस्तत्तातया,कृतवेदितयेति भावः, शीलम्=सदाचारः,पौरोभाग्येण= पौरोभाग्यतया, दोषैकदृक्तया । ['दोषैकदृक् पुरोभागी' । इत्यमरः] उपसंहरन्नाह—सर्वगुणाः = समस्तानि वैशिष्ट्यानि, एव, दोषैः = दूषणैः, परिवर्त्तिताः = रूपान्तरं प्रापिताः, सर्वे गुणा दोषरूपेण सम्पादिता इति भावः । सः = तादृशः, अहं चन्द्रापीडः, कथम् = केन प्रकारेण, इव, अपरम् = अन्यम्, गुणम् = वैशिष्ट्यम्, अवलम्ब्य = समाश्रित्य, पुनः = भूयः, परिग्रहाय = स्वीकाराय, विज्ञापयतु = निवेदयतु, एवञ्च नावशिष्टः कोऽपि गुणो यो ममाधारो भवेत् भवतया स्वीकारे हेतुरिति तदाशयः । केन=अज्ञातेन गुणेन, च, देवी=कादम्बरी, अङ्गीकरोतु=स्वीकरोतु, न केनापीति भावः ।

आत्मनो दोषानेवाह चन्द्रापीडः—किमुपदर्शितेत्यादिना । उपदर्शितेत्यादिः—उपदर्शितम् (= प्रकटितम्) यद् अलीकम् (= मिथ्या) आत्मनः (= स्वस्य, चन्द्रापीडस्य) अर्पणम् (= प्रदानम्) तेन, देव्याः = कादम्बर्याः, हृदयम् = चित्तम्, न = नैव, प्रतारितम् = वञ्चितम्, किम् ? अवश्यमेव प्रतारितमिति भावः । प्रकृतिपेशलम्—प्रकृत्या (=स्वभावेन) पेशलम् (=कोमलम्) देव्याः, हृदयम् = चित्तम्, अपहृत्य = अपहृतं कृत्वा, समाकृष्येति भावः, न = नैव, अपक्रान्तः =

को क्रूरता में, सिधाई को मायाजाल (कुटिलता) में, सत्यवादिता को झूठी काकु (विशेष ढंग से बोलना) को बनाने में,अर्थात् घुमा फिरा कर बात करने में,दृढ़भक्तिता (अटल भक्तिभाव) को अपमान में, कोमलस्वभावता को कुटिलता में, लज्जा को धृष्टता में, उदारता को क्षुद्रता में, दाक्षिण्य (सरलता) को अमहानुभावता = हल्केपन में, विनय को अभिमान में, कृतज्ञता को कृतघ्नता में, शील को छिद्रान्वेषिता में,—[संक्षेप में यह कि] सभी गुणों को दोषों में बदल डाला—वह अब किसी दूसरे गुण का सहारा लेकर फिर से दुबारा स्वीकार करने (अपनाने) के लिये निवेदन कैसे कर सकता है ? और किस गुण के कारण देवी (आप कादम्बरी) स्वीकार कर सकती है ? झूठमूठ अर्थात् नकली आत्मसमर्पण के द्वारा मैंने देवी (आप) के हृदय को ठगा नहीं है क्या ? अर्थात् अवश्य ठगा है । क्या मैं स्वभावतः कोमल [देवी के] हृदय का अपहरण करके नहीं भागा हूँ ? क्या

---

१. निस्त्रिंशत्वेन । २. मायामन्त्रेण । ३. पौरोभाग्यतया ।
४. एवं । ५. परिवृत्ताः, परिवृताः । ६. वा० ।

किमियं प्राणसंदेहकारिणी निष्करुणेन शरीरावस्था नोपेक्षितेति ? किमहमस्या[1] न कारणमिति ? [2]एतत्सर्वदोषाश्रयेणाप्यनुवृत्त्या चरणावाराधिताविति वा ? तदेवमात्मना सर्वगुणहीनस्यापि मे देवीगुणा एवालम्बनम्। इयमेव ते स्वभावसरसा [3]दूरस्थमपि मदनहुतभुजा दह्यमानं रक्षत्येव सरलता। मुहुर्मुहुराह्वयत्येव स्नेहलता। आनयत्येव स्थिरप्रतिज्ञता[4]। ढौक-

पलायितः, अस्मि, किम् ? अवश्यमेवापक्रान्तोऽस्मीति भावः। निष्करुणेन = निर्दयेन, मया चन्द्रापीडेन, प्राणेत्यादिः—प्राणानाम् (= असूनाम्) सन्देहस्य (= संशयस्य) कारिणी (= जननी), जीवनविनाशसंशयस्य विधायिनी, शरीरावस्था = देहस्य दशा, न = नैव, उपेक्षिता = उपेक्षाविषयीकृता, किम् ? अवश्यमेवोपेक्षितेति भावः। अहम् = चन्द्रापीडः, अस्याः = विद्यमानदेहदुर्दशायाः, न, कारणम् = निमित्तम्, किम् ? अहमेव निमित्तमस्मीति भावः। एतत्सर्वेत्यादिः—एते (= मया पूर्वमुक्ताः) सर्वे (= सकलाः) च ते दोषाः (= अवगुणाः) तेषाम् आश्रयः (= आधारः, सर्वविधदोषयुक्तः) तेन तादृशेन, अपि, मया चन्द्रापीडेन, अनुवृत्त्या = आनुकूल्येन, बारं बारम्, अनुवर्तनेन वा, देव्याः, चरणौ = पादौ, आराधितौ = सेवितौ, इति वा ? नाराधिताविति भावः। दोषयुक्तो भूत्वापि यदि अहं देव्याश्चरणयोराधनायां प्रवृत्तोऽभविष्यं तदा पुनः परिग्रहार्थं प्रार्थनाकरणे साहसमकरिष्यम्, न तु तथाऽभूदिति तदाशयः।

अत्र 'किम्' शब्दाभावेऽपि काक्वा तदर्थो बोधनीयः। चरणसेवकस्य सर्वेऽपराधाः क्षम्यन्ते मया तु तदपि नाचरितमिति कथं तस्याः समक्षं गन्तुं शक्नोमीति दुश्चिन्ता चन्द्रापीडस्य।

इदानीं कादम्बर्याः गुणानेव स्वावलम्बनत्वेन वर्णयति चन्द्रापीडः—तदेवमात्मनेत्यादिना। तत् = तस्मात्, एवम् = अनेन प्रकारेण, आत्मना = स्वयम्, इत्यर्थेऽव्ययमिदम्, सर्वगुणहीनस्य = सकलवैशिष्ट्यशून्यस्य, अपि, मे = मम चन्द्रापीडस्य, कृते इति शेषः, देवीगुणाः = कादम्बर्याः वैशिष्ट्यानि, एव, आवलम्बनम् = आश्रयः। पूर्वोक्तायां स्थितौ सत्यां केवलं देव्याः कादम्बर्या गुणा एव मां तस्याः समक्षमुपस्थितं भवितुं पारयन्तीति भावः। इयम् = एषा, एव, ते = तव, कादम्बर्याः, स्वभाव-सरसा—स्वभावेन (= प्रकृत्या) सरसा (= स्निग्धा, आर्द्रा, कोमला वा) सरलता = ऋजुता, दूरस्थम् = विप्रकृष्टस्थम्, अपि, मदनहुतभुजा = कामाग्निना, दह्यमानम् = प्लुष्यमाणम्, प्रज्वाल्यमानम्, मां चन्द्रापीडम्, रक्षति = त्रायते, एव। एतदभावे मम मरणं निश्चितमासीदिति तद्भावः। [ते = कादम्बर्याः' इति 'वक्ष्यमाणेषु यथायोग्यं संयोज्यम्] ते, स्नेहलता = स्निग्धता [स्नेहं लाति इति स्नेहलः, तस्याः भावः स्नेहलता। स्नेहिलः, स्नेहिलता-एतत्तु इलच् प्रत्यये 'लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः' ५।२।१००) इति सूत्रेण गणे पाठाभावेऽपि प्रयोगदर्शनादुपपादनीयः।] मुहुर्मुहुः = वारं बारम्, आह्वयति = आकारयति, एव। ते, स्थिरप्रज्ञता = स्थिरा (= दृढा, अचला) प्रतिज्ञता (= निश्चयः, संकल्पो वा), आनयति = प्रापयति, एव, तव समीपे मामिति शेषः। ते, दक्षिणता = उदारता, ढौकयति = आकर्षति,

निर्दयी मैंने [देवी के] प्राणों को सन्देह में डाल देने वाली शरीर की दशा की उपेक्षा नहीं की है ? अर्थात् अवश्य की है। क्या मैं इस दुर्दशा का कारण (निमित्त) नहीं हूँ ? इन सभी दोषों के आश्रय होते हुये भी मैंने कुछ देर तक आपके चरणों की आराधना की है, आपके चरणों के समीप बैठा रहा हूँ। इस कारण अपने आप सभी गुणों से रहित भी मेरे लिये देवी आपके सद्गुण ही केवल सहारा हैं ? आपकी यही स्वाभाविक रूप से सरस (कोमल) सरलता ही इतनी दूर स्थित तथा कामाग्नि से जलते हुये मेरी रक्षा कर ही रही है। [आपकी] स्नेहलता = वत्सलता मुझे

१. अस्याः सन्दिशामि न कारणम्। २. अन्तर०।
३. दूरस्थमपि माम्। ४. स्थिरप्रकृतिता, स्थिरप्रज्ञता।

यत्येव दक्षिणता। [1]अभिपद्यत एव वत्सलता। चरणपतितं न निर्भर्त्सयत्येव मृदुहृदयता। उत्थाप्य संभावयत्येव महानुभावता। आलपत्येव प्रियवादिता[2]। ददात्येव हृदयेऽवकाशमत्युदारता। यच्च तथापि गत्वा निर्लज्जहृदयः पुनर्वदनदर्शनदानसाहसमङ्गीकरोम्यत्रापि सत्प्रकृतयो देवीप्रसादा एव कारणम्। एते हि विशदत्वादुदारभावात्संगतत्वाच्च क्षणपरिचिता अपि समारोपितजीवितप्रत्याशा न किंचिन्न कारयन्ति? स्मारयन्ति सेव्यतां देव्याः।

एव, 'त्वां प्रति'ति शेषः। ते, वत्सलता = वात्सल्यम्, अभिपद्यते = स्वीकरोति, एव। ते, मृदुहृदयता = सुकोमलचित्तता, चरणपतितम् = पादसमीपेऽवनतमस्तकम्, मां चन्द्रापीडम्, न = नैव, निर्भर्त्सयति = भर्त्सनां न करोति, नाक्रोशतीति भावः। यदाहं तव चरणयोः पतित्वा स्थास्यामि तदा ते सरलं हृदयं ममापराधान् विस्मृत्य, क्षान्त्वा वा मामङ्गीकरिष्यति देवीति तदाशयः। ते, महानुभावता = महाशयता, उत्थाप्य = उत्थानं कृत्वा, चरणपतितं मामिति शेषः, सम्भावयति=प्रसादयति, एव। ते, प्रियवादिता = मिष्टभाषिता, आलपति = सम्भाषयति, एव, [अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र बोध्यः] ते, अत्युदारता = अतिशयौदार्यम्, हृदये = चित्ते तवेति शेषः, अवकाशम् = स्थानम्, ददाति = प्रयच्छति, एव। यत्, तथा = तेन प्रकारेण, अनुमतिमगृहीत्वेति भावः, गत्वा = यात्वा, पलाय्येति भावः, निर्लज्जहृदयः = निस्त्रप-चित्तः, भूत्वेति शेषः, पुन=भूयः, वदनेत्यादिः—वदनस्य (= मुखस्य) यद् दर्शनम् (= अवलोकनम्) तस्य दानम् (= अर्पणम्, शक्ति वा) अङ्गीकरोमि = स्वीकरोमि, आश्रयामि, अत्रापि = अस्मिन् विषयेऽपि, सत्प्रकृतयः—सती (= साध्वी, सरला) प्रकृतिः (= स्वभावः) येषां ते तादृशाः, शोभनस्वभावा इत्यर्थः, देवीप्रसादाः = कादम्बर्या अनुग्रहाः, एव, कारणम् = निमित्तम्। अन्यथा मम साहसस्य प्रश्न एव नोदेतीति तद्भावः। कादम्बरी गुणानां वैशिष्ट्यमाह—एते हीत्यादिना। हि=यत, एते= इमे, देव्याः प्रसादाः, विशदत्वात्=निर्मलत्वात्, उदारभावत्वात्=उदारत्वात् सरलत्वाद्वा, संगतत्वात्= मिलित्वात् उचितत्वाद् वा, क्षणपरिचिताः = अल्पकालं प्राप्तपरिचयाः, अत्यल्पसमयं परिचयं प्राप्ता अपि समारोपितेत्यादिः—समारोपिता (=संस्थापिता, समुत्पादिता) जीवितस्य (=प्राणधारणस्य) प्रत्याशा (=आशा, अभिलाषो वा) यैस्ते तादृशाः, सन्तः, किञ्चित्=अनिर्वचनीयम्, न, कारयन्ति = कर्तुं प्रेरयन्ति, इति; न=नैव,अपि तु सर्वमपि कारयन्त्येवेति भावः। एतदेव विवृणोति—स्मारेत्यादिना।

बार-बार [आपके पास] बुला ही रही है। [आपकी] दृढप्रतिज्ञता = पक्का निश्चय [मुझे आप तक] ले ही जाता है। आपकी उदारता खींच ही ले जाती है। वत्सलता [मुझे] शरण दे ही देती है। आपकी मृदुहृदयता चरणों में गिरे हुए मेरा तिरस्कार नहीं करती है। आपकी महानुभावता मुझे उठाकर सम्मान देती है। प्रियवादिता बोलती है अर्थात् मुझे बोलने को प्रेरित करती है। आपकी अतिशय उदारता [आपके] हृदय में मुझे स्थान देती ही है। और जो उस प्रकार से [बिना सूचित किये] जाकर निर्लज्ज मैं फिर से दुबारा मुख दिखाने का साहस कर पा रहा हूँ, इसमें भी देवी आपके सुन्दर स्वभाव वाले प्रसाद=अनुग्रह ही कारण हैं। [अन्यथा मैं दुबारा मुख दिखाने लायक नहीं रह गया हूँ।] ये (देवी के अनुग्रह) विशद (=निर्मल) उदार तथा संगत (उचित) होने के कारण, थोड़ी ही देर तक परिचित होते हुए भी जीवन धारण की प्रत्याशा को उत्पन्न कराते हुए क्या-क्या कुछ नहीं करवाते हैं,? अर्थात् सभी कुछ करने के लिए विवश कर देते हैं। [ये प्रसाद] देवी कादम्बरी की सेवा योग्यता का स्मरण करवाते हैं। [देवी के] चरणों की सेवा करने के लिए

---

१. अभ्युपपद्यते। २. प्रियंवादिता, प्रियवेदिता।

चरणपरिचर्यायै समुत्साहयन्ति। शिक्षयन्ति सेवाचातुर्यम्। उपदिशन्त्याराधनोपायान्। [1]'चाटुकारो भवे'त्यसकृदाज्ञापयन्ति। 'एवं स्थीयतामि'ति स्वयमेवोपदर्शयन्ति। मुखावलोकिनामकालोपसर्पणकोपेऽनुनयन्ति[2]। परितोषावसरेऽनुगृह्णन्ति गुणानुवादेन। लज्जापसृतं हठादाकृष्योपसर्पयन्ति। नान्यत्र क्षणमपि ददत्यवस्थातुम्। अपि चैतेऽनुग्राहकत्वादेवापरित्याज्याः। गुरुत्वादेव कृतावष्टम्भाः। विस्तीर्णत्वादेवालङ्घनीयाः। प्रभूतत्वादेवापरिहार्याः। तदेभिरहं

ते देवीप्रसादाः, देव्याः = कादम्बर्याः, सेव्यताम् = सेवनार्हताम्, स्मारयन्ति = स्मृतिविषयीकारयन्ति। चरणपरिचर्यायै = देव्याः पादयोः सपर्यायै, समुत्साहयन्ति = प्रेरयन्ति, समुत्साहमुत्पादयन्ति। सेवाचातुर्यम् = परिचर्यायाः नैपुण्यम्, शिक्षयन्ति = पाठयन्ति। आराधनोपायान् = समाराधनस्य हेतून्, साधनानि वा, उपदिशन्ति = उपदेशं कुर्वन्ति। चाटुकारः = सदा प्रशंसकः, भव = एधि, इति = एवम्, असकृत् = अनेकबारम्, आज्ञापयन्ति = आदिशन्ति। एवम् = अनेन विशेषप्रकारेण, स्थीयताम् = स्थितिं विधीयताम्, इति = इदम्, स्वयम् = आत्मना, एव, उपदर्शयन्ति = स्वीयाचरणेन प्रकाशयन्ति। मुखेत्यादिः—मुखम् (= आननम्) अवलोकयन्ति (= पश्यन्ति) इति तच्छीलास्तान्, सदैव स्वामिनी-मुखस्य प्रसादाप्रसादं विलोक्य कार्यं कुर्वतामिति भावः, अकालेत्यादिः— अकाले (= असमये, अप्रसङ्गे) उपसर्पणम् (= समीपे गमनम्) तेन जनित, कोपः (= क्रोधः) तस्मिन् सति, अनुनयन्ति = अनुकूलं कुर्वन्ति प्रसादयन्तीति भावः। परितोषावसरे—परितोषस्य (= सन्तुष्टतायाः) अवसरे (= समये) गुणानुवादेन = गुणानां पुनः पुनः कथनेन, अनुगृह्णन्ति = अनुग्रहं कुर्वन्ति। लज्जापसृतम्—लज्जया (= व्रीडया) अपसृतम् (= दूरीभूतम्, पश्चाद् गतम्) हठात् = बलाद्, आकृष्य = आकर्षणं विधाय, उपसर्पयन्ति = समीपम् आनयन्ति। अन्यत्र = अन्यस्मिन् स्थाने, स्वस्याः भिन्ने इति भावः, क्षणम् = अल्पकालम्, अपि, अवस्थातुम् = स्थितिं कर्तुम्, न ददति = प्रयच्छन्ति, अनुमन्यन्ते इति भावः।

पुनरपि वैशिष्ट्यमेवोपबृंहयति—अपि चेत्यादिना। अपि च=अन्यच्च, एते = इमे, देवीप्रसादाः, अनुग्राहकत्वात् = अनुग्रहकारकत्वात्, एव, अपरित्याज्याः = त्यक्तुमशक्याः। गुरुत्वाद् = गौरवात्, भारवत्त्वात्, एव, कृतावष्टम्भाः = कृतः। (= विहितः) अवष्टम्भः (= आधारः, दृढस्थितिः) यैस्ते तादृशाः, सन्ति। विस्तीर्णत्वात् = विशालत्वात्, एव, अलङ्घनीयाः = अनतिक्रमणीयाः, लङ्घयितुमशक्याः। प्रभूतत्वात् = प्रचुरत्वात्, अपरिमितत्वात्, एव, अपरिहार्याः = निवारयितुमशक्याः, अत्याज्याः। तत् = तस्मात् हेतोः, एभिः = एतैः, देवीप्रसादैः, कर्तृभिः, अहम् =

उत्साहित करते हैं। [देवी की] सेवा की चतुरता सिखाते हैं। [देवी की] आराधना के उपायों का उपदेश देते हैं। '[देवी के] चाटुकार = चापलूसी करने वाले बन जाओ' ऐसा बार-बार आदेश देते हैं। 'इस प्रकार से बैठना चाहिए' ऐसा स्वयं ही प्रदर्शित करते हैं। मुखदर्शन करने वालों के असमय में आगमन के कारण होने वाले क्रोध में अनुनय करते हैं, मनाते हैं। प्रसन्नता के समय में गुणों के कथन द्वारा अनुग्रह करते हैं। लज्जा के कारण दूर हटे हुए को दृढतापूर्वक खींच कर पास ले जाते हैं। किसी दूसरे स्थान पर क्षण भर भी रुकने के लिए अवकाश नहीं देते हैं। और भी, ये अनुग्रह करनेवाले होने के कारण ही त्यागने योग्य नहीं है। गुरुभूत होने से ही दृढ़ आधारवाले हैं। विस्तृत होने से ही लाँघने योग्य नहीं हैं। प्रभूत = प्रचुर मात्रावाले होने से ही अपरिहरणीय = न

---

१. चाटुकारा भवन्तु। २. अनुतपन्ति।

विनाप्यागमनाज्ञया सुदूरमपक्रान्तोपि बलादेवाकृष्य देवीपादमूलमानीये इति। यथा [1]वानपेक्षितगमनाज्ञयानिर्यन्त्रणत्वाद् 'गतोहमि'ति[2] विज्ञप्तं सैव वाणी विज्ञापयति—'यथा च मे न निष्फलमागमनं भवति जगद्वा शून्यं तथा देव्यात्मसन्धारणायात्मनैव यत्नः कार्यः।''

इति सन्दिश्य पुनराह—'पत्रलेखे, त्वयापि यान्त्याध्वनि न मद्विरहपीडा भावनीया। न शरीरसंस्कारेऽनादरः करणीयः। नाहारवेलातिक्रमणीया। न येन केनचिदज्ञातेन पथा

चन्द्रापीडः, आगमनाज्ञया = आगमनानुमत्या, बिना = ऋते, अपि, सुदूरम् = बहुविप्रकृष्टम्, अपक्रान्तः = निष्क्रान्तः, अपि, बलाद् = हठात्, एव, आकृष्य = आकर्षणं कृत्वा, देवीपादमूलम्= कादम्बरीचरण-समीपम्, आनीये = प्राप्ये, अहमिति शेषः। 'आनीये' इति आङ्पूर्वकनयतेः धातोः कर्मणि लटि उत्तम-पुरुषैकवचने रूपं बोध्यम्। 'आनीतोऽस्मी' त्यर्थः। एवञ्च पुनः कादम्बरी-समीपमागन्तुमहं विवशोऽस्मि तस्याः सुप्रसादैरिति भावः। वा = पक्षान्तरे। अनपेक्षितेत्यादि—न अपेक्षिता (= ईप्सिता) गमनस्य (= प्रस्थानस्य) आज्ञा (= अनुमतिः) यया तादृश्या वाण्या अनिर्यन्त्रणत्वात् = नियमनशून्यत्वात्, स्वतन्त्रत्वादिति भाव,, 'अहम् = चन्द्रापीडः, गतः = प्रस्थितः' इति = एवम्, विज्ञप्तम् = सूचितम्, सा, एव, बाणी = मम वाक्, विज्ञापयति = निवेदयति। वाणी अधुना किं निवेदयतीति वर्णयति—यथा चेत्यादिना। यथा=येन प्रकारेण, च, मे = मम चन्द्रापीडस्य, आगमनम् = सम्प्राप्तिः, भवत्याः सन्निकटे इति शेषः, निष्फलम् = व्यर्थम् न = नैव, भवति = जायते, भवत्याः जीवितायाः एव दर्शनं भवेदिति भावः, वा = अथवा, जगत् = संसारः, शून्यम् = रिक्तम्, न भवतीति शेषः, तथा = तेन प्रकारेण, देव्या = भवत्या कादम्बर्या, आत्मसन्धारणाय = जीवनरक्षणाय, आत्मना एव = स्वयमेव, यत्नः = प्रयासः, कार्यः = विधेयः। ममागमनं यावत् भवत्या येन केन प्रकारेण प्रणानां रक्षणं करणीयमेव, ममागमनानन्तरं त्वहं सर्वं सम्पादयिष्यामीति तद्भावः।

इतीति। इति = पूर्वोक्तम्, सन्दिश्य = सन्देशं दत्वा, पुनः = भूयः, आह = कथितवान् चन्द्रापीडः। पत्रलेखे != सम्बोधनमिदम्, त्वया = भवत्या, अपि, यान्त्या = गच्छन्त्या, अध्वनि = मार्गे, मद्विरहपीडा = मम वियोगकष्टम्, न = नैव, भावनीया = भावना-विषयीकार्या, चिन्तनीयेति भावः। शरीरसंस्कारे = देहरक्षणार्थम् आवश्यके स्नान-प्रसाधनादौ, अनादरः = अपमानः, उपेक्षा, न, करणीयः = विधेयः। आहारवेला = भोजनकालः, न = नैव, अतिक्रमणीया = लङ्घनीया। येन केनचित्, अज्ञातेन = अविदितेन, पथा = मार्गेण, न = नैव, यातव्यम् = गन्तव्यम्। वा =

छोड़े जा सकने वाले हैं। इसलिए [देवी की] आज्ञा के बिना भी बहुत दूर चला गया भी मैं इन (प्रसादों) के द्वारा बलपूर्वक खींचा जाकर देवी के चरणों के मूल में लाया जा रहा हूँ अर्थात् आपके प्रसाद ही मुझे बलपूर्वक आपकी सेवा में उपस्थित कर रहे हैं।' अथवा स्वतन्त्र होने के कारण गमन की आज्ञा की अपेक्षा न करने वाली जिस मेरी वाणी ने 'मैं चला गया हूँ' ऐसा कहा था वही मेरी वाणी आपसे निवेदन करती है—'जिस प्रकार से मेरा वहाँ आना व्यर्थ न हो, अथवा सारा संसार मेरे लिए शून्य न हो जाय, उसी प्रकार से देवी को अपने प्राणों को धारण करने के लिये, जीवित रहने के लिये स्वयं ही प्रयत्न करना चाहिए।''

इस (उक्त) सन्देश को देकर चन्द्रापीड फिर से बोला—'हे पत्रलेखा! जाती हुई तुम भी मार्ग में मेरी विरहपीडा की चिन्ता मत करना। शरीर के संस्कार (नित्य क्रिया) में उपेक्षा मत करना। भोजन करने के निश्चित समय को मत लांघना, समय पर ही भोजन करती रहना।

---

१. च। २. विज्ञप्तः।

यातव्यम् । न यत्र तत्रैवानिरूप्यावस्थातव्यमुषितव्यं वा । न यस्य कस्यचिदपरिज्ञायमानस्यान्तरं दातव्यम् । सर्वदा शरीरेऽप्रमादिन्या भाव्यम् । किं करोमि । त्वत्तोपि मे वल्लभतरा देवीप्राणाः । येनैवमेकाकिनी तेषां सन्धारणाय [1]विसर्जितासि । अपि च मम जीवितमपि, तवैव हस्ते वर्तते । [2]तन्नियतं त्वयात्मा यत्नेन परिरक्षणीयः ।' इत्युक्त्वा सस्नेहं परिष्वज्य केयूरकं पुनस्तदवधानदानाय संविधाय 'महाश्वेताश्रमं यावत्पुनस्त्वयैव [3]सहानया मन्नयनायागन्तव्यमि'त्यादिश्य व्यसर्जयत् ।

अथवा, यत्र तत्र=यस्मिन् तस्मिन् स्थाने, अनिरूप्य=अविचार्य,झटितीति भावः, न=नैव अवस्थातव्यम्=अवस्थानं कर्तव्यम्, वा = अथवा, उषितव्यम्=निवासः करणीयः । ['उषितव्यम्' इत्यत्र सम्प्रसारणं न शास्त्रसम्मतं तेन 'वस्तव्यम्' इत्येव शुद्धं रूपं बोध्यम् ।] यस्य कस्यचित्, अपरिज्ञायमानस्य=अपरिचितस्य, अन्तरम् = अवकाशः, हृदयम् = हृद्गतं रहस्यमित्यर्थो वा, न = नैव, दातव्यम्=देयम् । सर्वदा = सर्वस्मिन् काले, शरीरे=देहे, अप्रमादिन्या = प्रमादशून्यया, सावधानयेति भावः, भाव्यम्=भवितव्यम् । शरीरस्य समुचितरक्षणादौ कदापि कोऽपि प्रमादो नैव विधेय इति भावः । किम् = अज्ञातम्, करोमि = विदधामि ? त्वत्तः = भवत्याः अपि, मे=मम चन्द्रापीडस्य कृते, देवीप्राणाः=कादम्बर्याः असवः, वल्लभतराः = प्रियतराः । येन = कारणेन, एवम् = इत्थम्, एकाकिनी = अद्वितीया, मया हीना, तेषाम् = प्राणानाम्, सन्धारणाय = रक्षणाय, रक्षां कर्तुम्, विसर्जिता = प्रेषिता, असि । अपि च = अन्यच्च, मम = चन्द्रापीडस्य, जीवितम् = जीवनम्, प्राणाः, अपि, तव = पत्रलेखायाः एव, हस्ते = करे, वर्तते = विद्यते । एवञ्च मम सर्वस्वमेव तवाधीनं विद्यते इति तद्भावः । तत् = तस्मात्, नियतम् = निश्चितं यथा स्यात् तथा, त्वया=भवत्या, पत्रलेखया, आत्मा = स्वजीवनम्, यत्नेन=प्रयासेन, परिरक्षणीयः=संरक्षितव्यः । इति = एवम्, उक्त्वा = कथयित्वा, सस्नेहम् = प्रीतिपूर्वकम्, परिष्वज्य = समालिङ्ग्य, पत्रलेखामिति शेषः, केयूरकम् = कादम्बरी-सेवकम्, पुनः=भूयः, तदवधानदानाय—तस्याः (=पत्रलेखायाः) अवधानम् (=समाधानम्) तस्य दानम् (=वितरणम्, विधानम्) तदर्थम्, संविधाय = सम्यग् रूपेण कृत्वा, महाश्वेताश्रमम्=एतन्नाम्नी-कादम्बरी-सखीतपस्थलीम्, यावत् = पर्यन्तम्, पुनः = भूयः, त्वया = केयूरकेण, एव, सह, अनया=एतया पत्रलेखया, मन्नयनाय=मम प्रापणाय, कादम्बरी-समीपमिति शेषः, आगन्तव्यम्=आयातव्यम्, इति=एवम्, आदिश्य=आज्ञाप्य, व्यसर्जयत्=विसर्जितवान् ।

जिस किसी अज्ञात (अपरिचित) रास्ते से मत जाना। बिना सोचे समझे यहाँ वहाँ न रुकना और न ठहरना। न जिस किसी अपरिचित को अपना रहस्य बताना। अपने शरीर के विषय में सदैव सावधान रहना। मैं क्या करूँ ? मेरे लिये देवी के प्राण तुमसे भी अधिक प्रिय हैं। इसी कारण अकेली तुम उन्हें संधारण = रक्षित करने के लिये भेजी जा रही हो। और भी, मेरा भी जीवन तुम्हारे ही हाथों में है। इस कारण तुम्हें सावधानी से यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करना चाहिए।" —इस प्रकार से कहकर गले से लगाकर, केयूरक को फिर से पत्रलेखा के विषय में ध्यान रखने का आदेश देकर–'महाश्वेता के आश्रम तक तुम्हारे ही साथ इस पत्रलेखा को मुझे लिवा ले जाने के लिये आना होगा'—ऐसा आदेश देकर बिदा कर दिया।

---

१. विसर्जितव्यासि । २. नियतम्–इति नापि पठ्यते । ३. त्वयानयैव ।

निर्गतायां च केयूरकेण सह पत्रलेखायां 'किं शीघ्रमेते यास्यन्ति न वा इति, अन्तरा वा गच्छतां [1]परिलम्ब उत्पत्स्यते न वेति, कियद्भिर्वा दिवसैः परापतिष्यन्ति', इत्यनयैव चिन्तया शून्यहृदयः क्षणमिव स्थित्वा स्कन्धावारवार्तास्फुटीकरणाय वार्ताहरं विसर्ज्य बहुदिवसान्तरितदर्शनस्य वैशम्पायनस्य प्रत्युगद्गमनायात्मान मोचयितुं पितुः पादमूलमगात्[2]। तत्र[3] चोभयतः ससंभ्रमापसृतप्रतीहारमण्डलवितीर्णविस्तीर्णालोकनमार्गो दूरादेवापसव्य-जानुकरतलावलम्बितविमलमणिकुट्टिमोदरसंक्रान्तप्रतिमो द्विगुणायमानायतकुन्तलकलापः

तेषां प्रस्थानानन्तरं चन्द्रापीडस्य चिन्तां वर्णयति—निर्गतायां चेत्यादिना। केयूरकेण = एतन्नामक-सेवकेन, सह = सार्धम्, पत्रलेखायाम् = एतन्नाम्न्यां चन्द्रापीडसेविकायाम्, निर्गतायाम = निष्क्रान्तायाम्, च। चन्द्रापीडस्य विकल्पान् निरूपयति—किमित्यादिना। किम्, एते = केयूरकादयः, शीघ्रम् = सत्वरम्, यास्यन्ति = गमिष्यन्ति, न = नैव, वा = अथवा, गच्छताम् = व्रजताम्, अन्तरा = मध्ये, परिलम्बः=विलम्बः, उत्पत्स्यते = जनिष्यते न, वा ? वा = अथवा, कियद्भिः = किम्परिमाणैः, दिवसैः = दिनैः, परापतिष्यन्ति = आगमिष्यन्ति ? इति = इत्थम्, अनया = एतया पूर्वोक्तया, चिन्तया = आर्त्या, चिन्तनेन, शून्यहृदयः = रिक्तचेताः, विचार शून्य इति भावः, क्षणमिव = अल्पकालमिव, स्थित्वा = स्थितिं कृत्वा, स्कन्धेत्यादिः—स्कन्धावारस्य (= सैन्यस्य) वार्ता (= वृत्तान्तः) तस्याः स्फुटीकरणाय (= स्पष्टीकरणाय, निर्णयाय), वार्ताहरम् = सन्देशवाहकम्, विसर्ज्य = सम्प्रेष्य, बह्वित्यादिः—बहुभिः (= प्रचुरैः) दिवसैः (= दिनैः) अन्तरितम् (= व्यवहितम्) दर्शनम् (= विलोकनम्) यस्य तस्य तादृशस्य, वैशम्पायनस्य = शुकनासपुत्रस्य, स्ववयस्यस्य, प्रत्युद्गमनाय = अभिमुखगमनाय, स्वागतविधानायेति भावः, आत्मानम् = स्वम्, मोचयितुम् = स्वतन्त्रं कर्तुम्, तस्याज्ञां प्राप्तुमिति भावः, पितुः = जनकस्य तारापीडस्य, पादमूलम् = चरणसमीपम्, अगात् = अव्रजत्। तत्र = तस्मिन् स्थाने, च, उभयतः = उभयपार्श्वे, ससम्भ्रमेत्यादिः—ससम्भ्रमम् (= सत्वरम्), यथा स्यात् तथा, अपसृतम् (= दूरीभूतम्, किञ्चित् पृष्ठे भूत्वा स्थितम्) यत् प्रतीहारिणाम् (= द्वारपालकादि-सेवकानाम्) मण्डलम् (= समूहः) तेन वितीर्णः (= प्रदत्तः, विहितः) विस्तीर्णः (= विशालः) आलोकनस्य (= राज्ञो दर्शनस्य) मार्गः (= पन्थाः) यस्मै तादृशः। दूराद् = विप्रकृष्टात्, एव, अपसव्येत्यादि—अपसव्यः (= दक्षिणः) यो जानुः (= नलकीलकम्, जङ्घाप्रदेशः) करतलम् (= हस्ततलम्) च, ताभ्याम्, अवलम्बितम् (= आश्रितम्) यत् मणिकुट्टिमोदरम् (= मणिनिबद्धभूमध्यदेशः) तस्मिन् संक्रान्ता (= प्रतिबिम्बिता) प्रतिमा (=मूर्तिः) यस्य स तादृशः। द्विगुणेत्यादिः—द्विगुणायमानः (=द्विगुणवद् आचरन्, द्विगुण इव प्रतीयमान इति भावः) आयतः (=विशालः) च, कुन्तलानाम् (= केशानाम्) कलापः (=समूहः) यस्य स तादृशः

केयूरक के साथ पत्रलेखा के चले जाने पर—'क्या ये लोग शीघ्र ही जायेंगे अथवा नहीं ? जाते हुए इनको देर तो नही हो जायगी ? कितनों दिनों में वापस पहुँच पायेंगे ?' इसी चिन्ता के कारण शून्य हृदयवाला (खोया खोया सा) होता हुआ कुछ देर रुककर स्कन्धावार (सेना) का समाचार स्पष्ट करने (जानने) के लिये वार्ताहर (दूत) को भेज कर, बहुत दिनों से न देखे हुए वैशम्पायन का स्वागत करने के लिये अपने को मुक्त कराने के लिये अर्थात् आज्ञा लेने के लिये पिता के चरणों के मूल (समीप) में पहुँचा। वहाँ पर दोनों ओर से जल्दी-जल्दी पीछे हटे हुए द्वारपालों के समूह द्वारा दर्शन के लिये बहुत बड़ा रास्ता प्रदान किये गये, दूर से ही दायें घुटने तथा करतल द्वारा छुई गयी मणि जटित फर्श के भीतर अपना प्रतिबिम्ब डाल देने वाले, अपने केशकलाप को [झुक

१. विलम्बः। २. अयात्। ३. तत्रैव।

पितुः प्रणाममकरोत् ।

अथ तारापीडस्तथा दूरत एव कृतप्रणामं चन्द्रापीडमालोक्य निर्भरस्नेहगर्भेण सलिलभरमन्थरेणेव[1] जलधरध्वनिना[2] स्वरेण [3]सधीरम् 'एह्येही'त्याहूय ससंभ्रमप्रधावितमपि सम्भावितशुकनासप्रणाममुपसृत्य[4] पार्श्वे भूमावुपविशन्तमाकृष्य हठात्पादपीठे समुपवेश्यापरिसमाप्तावलोकस्पृहेण चक्षुषा सुचिरमालोक्यास्योपारूढयौवनभराभिरामतराण्यङ्ग[5]-

---

चन्द्रापीडः, पितुः = जनकस्य तारापीडस्य, प्रणामम् = प्रणतिम्, अभिवन्दनम्, अकरोत् = विहितवान् ।

अथेति । अथ = प्रणामानन्तरम्, तारापीडः = चन्द्रापीडस्य जनकः, तथा = पूर्वोक्तेन प्रकारेण, दूरतः = दविष्ठात्, एव, कृतप्रणामम् = विहित-प्रणतिम्, चन्द्रापीडम् = एतन्नामकं स्वपुत्रम् आलोक्य = दृष्ट्वा, निर्भरेत्यादिः—निर्भरः (= अत्यधिकः) स्नेहः (= प्रीतिः) गर्भे (= मध्ये) यस्य तेन तादृशेन । सलिलेत्यादिः—सलिलम् (= जलम्) तस्य भरः (= भारः) तेन मन्थरेण (= मन्देन); जलधर-ध्वनिना = पयोधरध्वानेन, इव = तुल्येन, स्वरेण = स्वनेन, सधीरम् = गम्भीरतापूर्वकम् 'एहि-एहि = आगच्छ-आगच्छ' इति = इत्थम्, आहूय = आकार्य, सम्बोध्य, ससंभ्रम-प्रधावितम् = सम्भ्रमः (= आदरातिशयः, त्वरा वा) तेन सहितं यथा स्यात् तथा प्रधावितम् (= प्रचलितम्) अपि । सम्भावितेत्यादिः—सम्भावितः (= सम्भावनाविषयीकृतः) शुकनासस्य (= एतन्नामक-प्रधानामात्यस्य) प्रणामः (= प्रणतिः, नमस्कारः) येन तं तादृशम्, उपसृत्य = समीपमागत्य, भूमौ = पृथिव्याम्, उपविशन्तम् = निषीदन्तम्, हठात् = बलाद्, आकृष्य = आकर्षणं कृत्वा, पादपीठे = चरणासने, समुपवेश्य = उपवेशनं कारयित्वा, अपरिसमाप्तेत्यादिः—अपरिसमाप्ता (= न परिपूर्णा) अवलोकस्य (= दर्शनस्य) स्पृहा (= इच्छा) यस्य तेन तादृशेन चक्षुषा = नेत्रेण, सुचिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, अस्य = एतस्य चन्द्रापीडस्य, उपारूढेत्यादिः—उपारूढम् (= सम्प्राप्तम्, समुत्पन्नम्) यत् यौवनम् (= तारुण्यम्) तस्य भरः (= भारः) तेन अभिरामतराणि (= मनोहरतराणि), अङ्गप्रत्यङ्गानि = अङ्गानि (= शरीरावयवान् हस्तादीन्) प्रत्यङ्गानि (= अङ्गावयवान् अङ्गुल्यादीन्) च, पाणिना = स्वहस्तेन, स्पृष्ट्वा = स्पर्शं कृत्वा, दर्शयन् = दर्शनं कारयन्, शुकनासम् = स्वामात्यम्, अवादीत् = अवोचत् ।

जाने के कारण] दूना और बड़ा सा कर देने वाले (चन्द्रापीड) ने पिता को प्रणाम किया ।

इसके बाद तारापीड उस प्रकार से दूर से ही प्रणाम कर लेने वाले चन्द्रापीड को देखकर, अत्यन्त स्नेहयुक्त तथा जल भर जाने के कारण मन्थर (धीमे) मेघध्वनि के समान स्वर से गम्भीरतापूर्वक "आओ-आओ" ऐसे बुला कर, शीघ्रता से दौड़े हुए तथा शुकनास को प्रणाम किये हुए, समीप आकर भूतल पर बैठते हुए (चन्द्रापीड) को बलपूर्वक खींच कर, पादपीठ के पास बैठाकर, दर्शन की इच्छा पूरी न कर सकने वाली आखों से बहुत देर तक देख कर, इस चन्द्रापीड के प्राप्त यौवन के भार से अतीव सुन्दर अंगों का हाथ से स्पर्श करके दिखाते हुए शुकनास से कहने लगा—"शुकनास ! देखो,

---

१. एव, नव० । २. ध्वनिना, ध्वनिगंभीरेण । ३. धीरं ।
४. उपसृज्य । ५. अङ्गोपाङ्गानि ।

प्रत्यङ्गानि पाणिना स्पृष्ट्वा दर्शयञ्शुकनासमवादीत्—"शुकनास, पश्येयमायुष्मतश्चन्द्रापीडस्योत्सर्पिणी महानीलमणिप्रभेव कनकशिखरिणः, गण्डमण्डलोद्भासिनी मदलेखेव गन्धद्विपस्य, [1]उपहितकान्तिपतिपर-भागा लक्ष्मच्छायेव चन्द्रमसः, विकासशोभापेक्षिणी मधुकरावलीव कमलाकरस्य, रूपालेखोन्मीलनकालाञ्जनवर्तिका, तारुण्यभरजलधरोत्तान[2]-श्यामिका, उज्ज्वलत्कन्दर्पप्रदीपकज्जलशिखा, स्फुरत्प्रतापानलधूमराजी, मकरध्वजोपवन-

---

तारापीडः किमवादीदिति प्रतिपादयति—शुकनास इत्यादिना। शुकनास = इति सम्बोधनान्तम्, पश्य = अवलोकय। किमिति बोधयितुमाह—आयुष्मतः = चिरञ्जीविनः, चन्द्रापीडस्य = एतन्नामकस्य मे पुत्रस्य, इयम् = एषा, प्रत्यक्षं दृश्यमानेति भावः, 'श्मश्रुराजिलेखा' इत्यत्रान्वयः। उत्प्रेक्षया तां वर्णयति—कनक-शिखरिणः = सुमेरुपर्वतस्य, उत्सर्पिणी = ऊर्ध्वं गामिनी, महानीलेत्यादिः—महानीलः (= अतिशय-श्यामः, एतन्नाम्ना विख्यातः) चासौ मणिः (= प्रस्तरखण्डविशेषः) तस्य प्रभा (= कान्तिः), इव, [इमानि सर्वाणि 'श्मश्रुराजिलेखा' इत्यस्य विशेषणानीति बोध्यम्।] गन्धद्विपस्य = गन्धगजस्य, गण्डमण्डलोद्भासिनी—गण्डमण्डले (= गण्डफलके) उद्भासितुम् (= शोभितुम्, विद्योतितुम्) शीलं यस्याः सा तादृशी, मदलेखा = दानवारिरेखा, इव। उपहितेत्यादिः—उपहितः (= व्यवहितः, आच्छादितः) कान्तिपतेः (= सूर्यस्य) परभागः (= गुणोत्कर्षः, कञ्चनांशः) यया सा तादृशी। यद्वा—उपहितः (= व्यवहितः) कान्तिपतेः (= चन्द्रस्य) परभागः (= गुणोत्कर्षः) यया सा तादृशी। मथुरानाथ-भट्टास्तु—'उपहित-कान्तिपरभागा' इत्येव पाठं स्वीकृत्य 'उपहितो जनितः कान्तेः परभागः = उत्कर्षो यस्या सा इति तदर्थः' इति व्याचख्यौ। वस्तुतस्तु कान्तिपति-शब्दस्य चन्द्र इत्यर्थं स्वीकृत्य 'उपहितः = आच्छादितः, कान्तिपतेः = चन्द्रस्य, परभागः = गुणोत्कर्षः यया सा तादृशी' लक्ष्मच्छाया = कलङ्कप्रभा, इव इत्यर्थेऽपि न काचिदनुपपत्तिः। चन्द्रमसः लक्ष्म तस्यैव कान्ति व्यवधत्ते न तु सूर्यस्य। एवं च चन्द्रापीडस्य मुखं चन्द्र इव वर्तते तस्मिन् श्मश्रुराजिलेखा कलङ्कप्रभेव वर्तते इति भावः। विकासशोभापेक्षिणी=विकस्वर-लक्ष्मीमपेक्षते इत्येवंशीला, कमलाकरस्य= पद्मपुञ्जस्य, मधुकरावली = भ्रमरराशिः, इव। इव शब्द उपमायाम्, केचित्तूत्प्रेक्षायामेव वदन्ति। रूपेत्यादिः—रूपस्य (= सौन्दर्यस्य, आकारस्य) यत् आलेख्यम् (= चित्रम्) तस्य उन्मीलनम् (= प्रकाशनम्) तस्मिन् कालाञ्जनस्य (= कृष्णकज्जलस्य) वर्तिका (= तूलिका, लेखनसाधनिका)। तारुण्येत्यादिः—तारुण्यम् (= यौवनम्) तस्य भरः (= भारः) स एव जलधरः (= पयोदः) तस्य उत्ताना (= अतिशायिनी) श्यामिका (= कालिमा)। उज्ज्वलदित्यादिः—उज्ज्वलन् (= प्रज्वलन्, उद्दीप्यमानः) यः कन्दर्पः (= मकरध्वजः) स एव प्रदीपः (दीपः, स्नेहप्रियः) तस्य कज्जलम् (= अञ्जनम्) तस्य शिखा (= चूडा, धूमराशिः)। स्फुरदित्यादिः—स्फुरन् (= सर्वतः प्रसरन्) यः प्रतापः (= कोशदण्डजं तेजः) स एव अनलः

देखो चिरंजीवी चन्द्रापीड की (यह दाढ़ी-मूंछ) सुमेरु पर्वत की ऊपर उठती हुई महानीलमणि की प्रभा जैसी, गन्धगज के गण्डस्थल पर चमकने वाली मदरेखा जैसी, चन्द्रमा के ऊपरी भाग को ढक देने वाली कलंक की छाया जैसी, कमलसमूह के खिलने की शोभा की अपेक्षा रखनेवाली भ्रमरपंक्ति जैसी, सौन्दर्य के चित्र में और अधिक निखार (चमत्कार) लाने वाली काली सुरमें (अंजन) की सलाई, तारुण्य के अतिशय रूपी मेघ की गहरी कालिमा, जलते हुए कामदेवरूपी दीपक के काजल की शिखा, चमचमाते हुए प्रतापरूपी अग्नि के धुआं का समूह, कामदेवरूपी उपवन के तमालवृक्ष की लता

---

१. कान्तिपर०। २. उन्नाम, उद्दाम।

तमालवल्ली, [1]मनोभवविकारदोषारम्भबालतिमिरोद्गतिः, उद्वाहमङ्गलभ्रूसंज्ञा श्मश्रुराजिलेखा समंतात्समुद्भिन्ना। विवाहमङ्गलयोग्यां दशामारूढोऽयम्। तद्देव्या विलासवत्या सह [2]संमन्त्र्याभिजनरूपा निरूप्यतां काचिज्जगति [3]राजकन्यका। दृष्टं हि दुर्लभदर्शनं वत्सस्य वदनम्। सम्प्रति वधूमुखकमलदर्शनेनानन्दयाम[4] आत्मानम्।' इत्युक्तवति तारापीडे शुकनासः प्रत्युवाच।

'साधु चिन्तितं देवेन। अनेन तु सहृदयेन हृदये समारोपिता एव सर्वविद्याः।

(= अग्निः) तस्य धूमराजी (= धूमराशिः)। मकरध्वजेत्यादिः—मकरध्वजः (=कामदेवः) एव उपवनम् (= उद्यानम्) तस्य तमालवल्ली (=तापिच्छतरुलता)। मनोभवेत्यादिः—मनोभवः (= कामदेवः) तस्य विकारः (= विकृतिः) स एव दोषायाः (= निशायाः) आरम्भः (= उपक्रमः, आदिमकालः) तस्य तस्मिन् वा यानि बालानि (= स्तोकानि, अपरिपक्वानि) तिमिराणि (= तमांसि) तेषाम् उद्गतिः (= उदयः)। उद्वाहेत्यादिः—उद्वाहस्य (=पाणिग्रहणस्य) यत् मङ्गलम् (= शुभम्) तस्य भ्रुवोः (= भृकुट्योः) संज्ञा (= संकेतः, इङ्गितम्), श्मश्रुराजिलेखा = श्मश्रुपंक्तिः, समन्ताद् = सर्वतः, समुद्भिन्ना = प्रकटीभूता, बहिर्निःसृता। [अत्र 'तारुण्य ········श्यामिका–इत्यादिपदेषु इव शब्दाभावेऽपि '·· ······श्यामिका इव श्यामिका' इत्यादिरीत्यार्थः करणीयः। एवञ्च सादृश्यं गम्यं बोध्यम्।] उपसंहरन्नाह—विवाहेत्यादिः। उक्तैः हेतुभिरिदं प्रतीयते यत्, अयम् = एष चन्द्रापीड, विवाहेत्यादिः—विवाहः (= उद्वाहः) तद्रूपं यत् मङ्गलम् (= शुभाचरणम्) तस्य योग्याम् (=अनुरूपाम्) दशाम् = अवस्थाम्, युवावस्थामिति भावः, आरूढः = सम्प्राप्तः, वर्तते। तत् = तस्मात्, देव्या = राजमहिष्या, विलासवत्या = एतन्नाम्न्या, सह = सार्धम्, आमन्त्र्य = विचार्य, जगति = संसारे, अभिजनरूपा = कुलसौन्दर्यवती, प्रशस्तरूपवती वा, काचित् = अज्ञाता, राजकन्यका = राजसुता, निरूप्यताम् = दृश्यताम्, अन्विष्यतां वा। हि = यतः, दुर्लभदर्शनम् = दुष्प्रापावलोकनम्, वत्सस्य = पुत्रस्य, वदनम् = मुखम्, दृष्टम् = विलोकितम्। सम्प्रति = अधुना, वधू-मुखकमल-दर्शनेन = स्नुषायाः पद्मोपमस्य आस्यस्य विलोकनेन, आत्मानम् = स्वम्, आनन्दयामः = प्रसादयामः, प्रीणीयामः, भविष्यति सामीप्ये लट् तेन आनन्दयिष्याम इत्यर्थः। इति = एवम्, पूर्वोक्तम्, तारापीडे = एतन्नामके नृपे, उक्तवति = कथितवति, सति, शुकनासः = एतन्नामामात्यः, प्रत्युवाच = प्रत्यवोचत्।

शुकनासस्य प्रतिवचनं निरूपयति- साधु चिन्तितमित्यादिना। देवेन = महाराजेन, साधु = सम्यग्, एव, चिन्तितम् = विचारितम्। तु = ह्यर्थे। अनेन = एतेन, सहृदयेन = सज्जनेन, उदारचित्तेन, सर्वविद्याः = सकलविद्याः, हृदये = चित्ते, समारोपिताः = संस्थापिताः, गृहीताः,

---

(शाखा), कामदेव सम्बन्धी विकार रूपी रात्रि के आरम्भकाल के हल्के अंधेरे का उद्गम (निकलना), विवाहरूपी मंगल की भौहों की संज्ञा=सूचना देने वाली—यह दाढ़ी मूँछ सभी ओर निकल आई है। अब यह विवाह रूपी मंगल के योग्य अवस्था को प्राप्त कर चुका है। इसलिए अब देवी (महारानी) विलासवती के साथ विचार-विमर्श करके संसार में किसी कुलीन राजकन्या को देखिये, पता लगाइये। दुर्लभ दर्शन वाला बेटे का मुख देख लिया है। अब पुत्रवधू के मुखकमल के दर्शन से अपने को आनन्दित करेंगे, करना चाहते हैं" तारापीड के ऐसे कहने पर शुकनास बोले—

"महाराज ने ठीक ही सोचा है। इस सहृदय (उदारचित्त वाले चन्द्रापीड) ने सभी विद्यायें

---

१. मनोभवदोष०। २. समेत्य। ३. जगतीराज०, जगतीपति०। ४. आनन्दय मे।

सम्भाविता एव सर्वाः कलाः । स्वीकृता एव सर्वाः प्रजाः । गृहीता[1] एव सर्वदिग्वधूनां कराः । स्थापितैव निश्चलकुटुम्बिनीपदे राजलक्ष्मीः । ऊढैव चतुरुदधिमेखलाकलापभूषणा भूः । किमपरमवशिष्यते येन[2] न परिणीयते ।' इत्यभिहितवति शुकनासे लज्जावनम्रवदनश्चन्द्रापीडश्चकार चेतसि—'अहो संवादो येन मे कादम्बरीसमागमोपायचिन्तासमकालमेवेदृशी तातस्य बुद्धिरुत्पन्ना । [3]तद्यदुच्यते—अन्धकारे प्रविष्टस्यालोकः, वनगहनप्रविष्टस्य देशिक-

---

एव । सर्वाः = समस्ताः, कलाः = संगीतादि-विज्ञानानि, सम्भाविताः = समादृताः, अभ्यस्ताः । सर्वाः, प्रजाः = लोका,, स्वीकृताः = अङ्गीकृताः, स्वाधीनीकृताः, एव । सर्वदिग्वधूनाम् = सकलदिशास्नुषाणाम्, कराः = हस्ताः, गृहीताः = आत्ताः, एव । राजलक्ष्मीः = राजश्रीः, निश्चलेत्यादि.= निश्चलम् (= स्थिरम्) यत् कुटुम्बिन्याः (=जायायाः) पदम् (= स्थानम्) तस्मिन्, स्थापिता= प्रतिष्ठापिता, एव । क्वचित्तु—'निश्चला = स्थिरा, राजलक्ष्मीः' इत्यपि पठ्यते । चतुरित्यादिः— चत्वारः (= चतुः-संख्याकाः) ये उदधयः (= सागराः) ते एव मेखलाकलापः (= रशनासमूहः) स एव भूषणम् (= अलङ्कारः) यस्याः सा तादृशी, भूः=वसुन्धरा, ऊढा=परिणीता, एव । अपरम् = अन्यत्, किम् = अज्ञातम्, अवशिष्यते = अवशिष्टं वर्तते, येन=कारणेन, अयम्=एष कुमारः, न = नैव, परिणीयते = पाणिग्रहणं कार्यते, अस्य विवाहो न विधीयते इति भावः, इति = एवम्, शुकनासे = प्रधानामात्ये, अभिहितवति = कथितवति सति, लज्जेत्यादिः—लज्जया (= व्रीडया) अवनम्रम् (= विनतम्) वदनम् (= मुखम्) यस्य स तादृशः, चन्द्रापीडः = राजकुमारः, चेतसि= मनसि, चकार = अकरोत् ।

अहो इति । अहो = इति विस्मये प्रसन्नतायां वा, संवादः = समानरूपत्वम्, सर्वेषामस्माकं विचाराणामिति शेषः, येन = कारणेन, मे = मम चन्द्रापीडस्य, कादम्बरीत्यादिः—कादम्बर्याः (=गन्धर्वराजकन्यायाः) समागमः (=सम्मिलनम्) तस्य उपायः (= साधनम्) तस्य या चिन्ता (= चिन्तनम्) तस्याः समः (= समानः) कालः (= समयः) यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा, एव, तातस्य = पितुस्तारापीडस्य, ईदृशी = एतादृशी, मम विवाहविषयिणीति भावः, बुद्धिः= मतिः, उत्पन्ना = जाता । यस्मिन् कालेऽहं कादम्बर्या सह संगमस्य उपायं चिन्तयन्नस्मि तस्मिन् काले एव मम पितुर्मनसि मम विवाहस्य विचारोऽपि समुत्पन्नः । स शुकनासं कस्याश्चन सुन्दर्याः राजकन्यायाः अन्वेषणाय न्यवेदयदिति । तत् = तस्मात्, यत् = इदम्, उच्यते = कथ्यते, जनैरिति शेषः, अन्धकारे = तमसि, प्रविष्टस्य = प्राप्तप्रवेशस्य, आलोकः = प्रकाशः, प्रकाशस्योपलब्धिरिति भावः, वनेत्यादिः—वनस्य (= काननस्य) गहनम् (= गह्वरम्) तस्मिन् प्रविष्टस्य (= कृतप्रवेशस्य),

---

हृदय में कर ही लीं है । सभी कलायें भी सीख ली हैं । समस्त प्रजा अपनी बना ली है । सभी दिशा रूपी नायिकाओं का पाणिग्रहण कर लिया है, अर्थात् जीत कर पत्नी बना लिया है । निश्चल = स्थायी गृहिणी पद पर राजलक्ष्मी को स्थापित ही कर दिया है । चारो समुद्र रूपी करधनी-समूह से अलंकृत पृथ्वी को ब्याह लिया है, या धारण कर लिया है । अब और क्या बचा है जिसके कारण इसका विवाह न किया जाय''—ऐसा शुकनास द्वारा कहे जाने पर लज्जा से झुके हुए मुख वाला चन्द्रापीड मन में सोचने लगा । 'अहो यह आश्चर्यजनक संवाद (विचारों की समानता) है जिससे मेरे द्वारा कादम्बरी से समागम (=मिलने) के उपाय के सोचते समय (साथ-साथ) मेरे पिता का भी ऐसा विचार बन गया । इसलिए जो यह कहा जाता है—'अंधेरे में प्रविष्ट (फँसे हुए व्यक्ति) को प्रकाश

---

१. एव दिग्वधूनां । २. येनानेव । ३. तदुच्यते ।

दर्शनम्, महार्णवपतितस्य [1]यानपात्राभ्यागमः, [2]म्रियमाणस्योपर्यमृतवृष्टिरिति, तदेत[3]दापतितं मयि। सर्वथा वैशम्पायनदर्शनमात्रकान्तरिता वर्तते मे कादम्बरीप्राप्तिः।' इत्येवं चिन्तयत्येव चन्द्रापीडे क्षितिपतिरुत्तस्थौ। उत्थाय च तमेव [4]विनयावनम्रपूर्वकायं समवलम्ब्यांसदेशे सकलमेदिनीभारोद्वहनगुरुणा दोर्दण्डेन शनैः शनैः संचरञ्शुकनासेनानुगम्यमानो विलासवतीभवनमगमत्। गत्वा च ससंभ्रमकृताभ्युत्थानामिन्दूदयावलोकनविलोलामिव

देशिकदर्शनम् = मार्गोपदेशकावलोकनम्, महार्णव-पतितस्य = महासमुद्रे निमग्नस्य, यानपात्राभ्यागम.— यानपात्रम् (= पोतः, नौका वा) तस्य अभ्यागमः (= सम्प्राप्तिः), म्रियमाणस्य = मृत्युमुपगच्छतः, उपरि = ऊर्ध्वम्, अमृतवृष्टिः = सुधावर्षणाम्, इति = दृष्टान्तसमाप्तौ, तद्, एतत् = पूर्वोक्तम्, मयि = चन्द्रापीडे, आपतितम् = निपतितम्, सञ्जातमिति भावः। सर्वथा = सर्वप्रकारेण, वैशम्पायनेत्यादिः—वैशम्पायनस्य (= एतन्नामकवयस्यस्य) दर्शनमात्रकम् (= विलोकनमात्रम्) तेन अन्तरिता (= व्यवहिता), मे = मम चन्द्रापीडस्य, कादम्बरीप्राप्तिः = कादम्बरीलाभः. वर्तते = विद्यते। यस्मिन् काले वैशम्पायनस्य दर्शनं भविष्यति तस्मिन्नेव काले कादम्बर्याः प्राप्तिः सुनिश्चिता भविष्यतीति भावः। इति, एवम्=अनेन प्रकारेण, चन्द्रापीडे = राजकुमारे, चिन्तयति= विचारयति, एव, क्षितिपतिः = भूपतिस्तारापीडः, उत्तस्थौ = समुत्थितः, राजसिंहासनं विहायेति शेषः।

उत्थाय चेति। उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, च, विनयेत्यादिः—विनयेन (= विनम्रतया) अवनम्रः (= अवनतः) पूर्वकायः (= देहस्योर्ध्वभागः) यस्य तं तादृशम्, तम् = चन्द्रापीडम्, एव, सकलेत्यादिः—सकला (= सम्पूर्णा) या मेदिनी (= वसुधा) तस्या भारः (= भरः, वीवधः) तस्य उद्वहनेन (= धारणेन) गुरुः (= भारवान्) तेन तादृशेन, दोर्दण्डेन = भुजदण्डेन, अंसदेशे = स्कन्धभागे, समवलम्ब्य = समाश्रित्य, स्कन्धं गृहीत्वेति भावः, शनैः शनैः = मन्दं-मन्दम्, सञ्चरन् = गच्छन्, शुकनासेन = एतन्नाम्नाऽमात्येन, अनुगम्यमानः = अनुस्रियमाणः, विलासवतीभवनम् = प्रधानमहिषीसदनम्, अगमत् = अगच्छत्।

गत्वा चेति। गत्वा = व्रजित्वा, च, ससंभ्रमेत्यादिः—सम्भ्रमेण (= त्वरया, व्यग्रतया वा) सह (= सार्धम्) कृतम् (= विहितम्) अभ्युत्थानम् (= सम्मुखे उत्थानम्) यया सा तां तादृशीम्। इन्दूदयेत्यादिः—इन्दोः (= चन्द्रस्य) उदयः (= उद्गमनम्) तस्य विलोकनम् (= दर्शनम्) तेन विलोलाम् (= चञ्चलाम्, क्षुब्धाम्), समुद्रवेलाम् = सागरस्य

(रोशनी) मिल जाना, घने जंगल में प्रविष्ट (मार्ग भूले हुए व्यक्ति) को मार्गदर्शक दिखाई देना, महासमुद्र में गिरे (डूबते) हुए व्यक्ति को यानपात्र (जहाज) मिल जाना, मरते हुए व्यक्ति के ऊपर अमृत की वर्षा हो जाना।' यही मेरे ऊपर (विषय में) हो गया है [अर्थात् मेरी मनचाही बात हो गई है।] अब मुझे कादम्बरी की प्राप्ति (मिलन) में केवल वैशम्पायन का दर्शन होना ही व्यवधान रह गया है, वैशम्पायन के मिलते ही कादम्बरी से मिलने का कार्य सम्भव हो जायगा।' इस प्रकार से चन्द्रापीड के सोचते ही राजा तारापीड उठ खड़े हुए। और उठकर शरीर के ऊपरी भाग को विनय से झुकाये हुए उसी राजकुमार को, समस्त पृथ्वी का भार उठाने से गुरुभूत (भारी) भुजदण्ड से कन्धे को पकड़ कर अर्थात् कन्धे पर हाथ रख धीरे-धीरे चलता हुआ पीछे-पीछे शुकनाथ द्वारा अनुगत होता हुआ विलासवती महारानी के राजमहल में चल दिया। और जाकर, सम्मान में शीघ्रता

---

१. यानपात्राभ्यागमनम्।   २. म्रियमाणस्येवामन्ने चोपरि।   ३. तदेव।   ४. अवनत०।

समुद्रवेलां विलासवतीमूर्ध्वंस्थित एवावादीत्—'देवि, पश्यैषा त्वमपि[1] वधूमुखावलोकन-सुखस्य कृते [2]नोत्ताम्यसीत्युपालभमानेव देवीं वत्सस्य यौवनभरारम्भसूत्रपातरेखा, आवयो-स्तारुण्यदुर्विलसितेच्छाविनिवर्तनाज्ञा[3] विजृम्भमाणा [4]श्मश्रुराजिशोभा विवाहमङ्गलसम्पादना-यादिशति। त्वमपरं किमादिशसीति प्रष्टव्या,तदादिशतु देवी। [5]कथ्यमानेपि किमपरम्, अद्या-प्यपहरसि वदनमन्यतो व्रीडया। पृष्टा वा कर्तव्यं नाज्ञापयसि। वरमातासि संवृत्ता। जानामि

ऊर्मिम्), इव, विलासवतीम् = चन्द्रापीडस्य जननीम्, ऊर्ध्वंस्थितः = ऊर्ध्वमवस्थितः, एव, अवादीत् = अवोचत्। किन्तदिति वर्णयति—'देवि ! = महाराज्ञि !, त्वम् = भवती, अपि, अपिना 'अहम्' इत्यस्य संग्रहः, वधूमुखेत्यादिः—वधूमुखम् (= स्नुषाननम्) तस्य यद् अवलोकनम् (= दर्शनम्) तस्य सुखस्य (= आनन्दस्य), कृते, सुखमनुभवितुमिति भावः, न = नैव, उत्ताम्यसि = खेदमनुभवसि, व्यग्रा भवसि, इति = एवम्, देवीम् = भवतीम् उपालभमाना = उपालम्भं प्रयच्छन्ती, इव, वत्सस्य = प्रियपुत्रस्य चन्द्रापीडस्य, यौवनेत्यादिः—यौवनम् (= तारुण्यम्) तस्य च आरम्भः (= उपक्रमः) तस्य सूत्रपातस्य (=प्रथमसूचना-प्रदानस्य) रेखा (=लेखा), आवयोः = तव मम उभयोः, तारुण्येत्यादिः—तारुण्यम् (= यौवनम्) तस्य यानि दुर्विलसितानि (= दुश्चेष्टितानि) तेभ्यः, निवर्तनस्य (= निवृत्तेः, दूरीभवनस्य) आज्ञा (= आदेशः), विजृम्भमाणा = विस्तारं प्राप्यमाणा, वर्धमाना, श्मश्रुराजिशोभा = श्मश्रु-पङ्क्तिकान्तिः, विवाहमङ्गलसम्पादनाय=पाणिग्रहणरूपकृत्यविधानाय, आदिशति = आज्ञापयति। अत्र इव शब्दाभावेऽपि सादृश्यं गम्यम्। रूपकं च यथा-प्रयोगमवगन्तव्यम्।

त्वमपरमिति। त्वम् = भवती, अपरम् = अन्यत्, किम् = अज्ञातम्, आदिशसि = आज्ञापयसि, इति = एवम्, प्रष्टव्या = प्रश्नविषयीकार्या, वर्तसे इति शेषः। तत् = तस्मात् कारणात्, देवी = महाराज्ञी भवती, आदिशतु = आज्ञापयतु। मयि = तारापीडे नृपे, कथ्यमाने = निवेद्यमाने, सति, अपि अपरम् = अन्यत्, किम् ? भविष्यतीति शेषः। अद्यापि = अस्मिन् समयेऽपि, व्रीडया = लज्जया, वदनम् = स्वमुखम्, अन्यतः = अन्यस्यां दिशि, विपरीतदिशाया-मिति भावः, अपहरसि = परावर्त्तयसि। वा = अथवा, पृष्टा = प्रश्नविषयीकृता, अनुयुक्ता, सती, कर्तव्यम् = करणीयम्, अनुष्ठेयम्, न = नैव, आदिशसि = आज्ञापयसि। वरमाता—वरस्य (= पाणिग्राहकस्य) माता = जननी, संवृत्ता = संजाता, असि = वर्तसे। परन्तु,

से उठ खड़ी होने वाली विलासवती जो कि चन्द्रोदय के दर्शन से चंचल हुई समुद्र की तरंग जैसी हो रही थी, उससे खड़े-खड़े ही राजा तारापीड कहने लगे—'देवि तुम भी देखो, वधू के मुख को देखने के आनन्द के लिये उतावली नहीं हो रही हो'—इस प्रकार से देवी तुम्हें उलाहना देती हुई सी, बेटे के यौवन के आरम्भ को सूत्रपात रेखा (=सूचना देने वाली), हम दोनों के लिये यौवन-सम्बन्धी दुर्विलासों की इच्छा से अलग (विरत) होने की आज्ञा स्वरूपी बढ़ती हुई दाढ़ी-मूँछ रेखा की शोभा विवाह रूपी मंगलकार्य पूरा करने की आज्ञा दे रही है। तुम और क्या आज्ञा देती हो—यह मैं पूछता हूँ, अतः देवी आदेश दें [अब और क्या जाय]। [मेरे] कहने पर भी अब आज दूसरी क्या बात है जो तुम लज्जा से अपना मुख दूसरी ओर कर ले रही हो, मोड़ ले रही हो ? और पूछी जाने पर भी कर्तव्य (करने योग्य काम) की आज्ञा नहीं दे रही हो। तुम तो (अब) वर

१. त्वमपि च। २. न ताम्यसि। ३. क्वचित्तु 'इच्छा' इति नापि पठ्यते। ४. श्मश्रुराग०। ५. अत्रत्या पाठयोजना न सुस्पष्टा। अन्वये विवादो दृश्यते। औचित्यं विपश्चिद्भिर्विचारणीयम्।

चन्द्रापीडस्योपर्यप्रीतिरेषा यदेवमेतत्कार्येष्वनादरोऽवधीरणा च।' इत्येवंविधैर्नर्मप्रायैरालापैः सुखायमानचेताश्चिरमिव स्थित्वा शरीरस्थितिसम्पादनाय निरगात्[1]।

चन्द्रापीडोऽपि शुकनासमुखेनैव वैशम्पायनप्रत्युद्गमनायात्मानं मोचयित्वा जननी-भवन एव निर्वर्तितशरीरस्थितिर्वैशम्पायनप्रत्युद्गमनसंविधानविनोदेनैव तं दिवसमनयत्।

अवतीर्णायां च तस्यां यामिन्यां सुहृद्दर्शनौत्सुक्येन शयनगतोऽपि जाग्रदेव समधिक-

---

अहम्, जानामि = वेद्मि, चिन्तयामि, चन्द्रापीडस्य = राजकुमारस्य, उपरि = विषये, एषा = प्रत्यक्षं दृश्यमाना, अप्रतीतिः = स्नेहाभावः, यत् = यस्मात्, एवम् = अनेन प्रकारेण, एतत्कार्येषु—एतस्य (= चन्द्रापीडस्य) कार्येषु (= अनुष्ठेयेषु विवाहादिषु), अनादरः = अवमानः, अनुत्साह इति भावः अवधीरणा = अवज्ञा, च, वर्तते इति शेषः। त्वं चन्द्रापीडं न स्निह्यसि अत एवास्य अपेक्षितेषु विवाहादिकार्येषु न स्वकीयमुत्साहादिकं प्रदर्शयसीति तद्भावः। इति एवंविधैः = एतादृशैः, नर्मप्रायैः = परिहास-परिपूर्णैः, आलापैः = वचनैः, सुखायमान-चेताः—सुखायमानम् (= सुखयुक्तं भवति इति तादृशम्) चेतः (= चित्तम्) यस्य स तादृशः सन्, चिरम् = दीर्घकालम्, इव, स्थित्वा = अवस्थाय, शरीरेत्यादिः—शरीरम् (= देहः) तस्य स्थितिः (= निर्वाहः, पोषणादिकम्) तस्याः सम्पादनाय (= करणाय स्नान-भोज-नादि-दैनिकावश्यककृत्यकरणायेति भावः), निरगात् = निर्जगाम, विलासवती-सदनादिति शेषः।

चन्द्रापीडोऽपीति। चन्द्रापीडः = राजकुमारः, अपि, शुकनास-मुखेन = शुकनासमाध्यमेन, एव, वैशम्पायन-प्रत्युद्गमनाय = वैशम्पायनस्य स्वागत-विधानाय, आत्मानम् = स्वम्, मोच-यित्वा = मुक्तं कारयित्वा, आज्ञां प्राप्येति भावः, जननी-भवने = मातुः राजसदने, एव, निर्वर्तितेत्यादिः—निर्वर्तिता (= सम्पादिता) शरीरस्य (= देहस्य) स्थितिः (= निर्वाहः, स्नान-भोजनादिकृत्यम्) येन स तादृशः, वैशम्पायनेत्यादिः—वैशम्पायनस्य (= स्वप्रियवयस्यस्य) प्रत्युद्गमनम् (= स्वागतार्थमभिमुखगमनम्) तस्य यत् संविधानम् (= निष्पादनम्) तदेव विनोदः (= मनोरञ्जनम्) तेन, एव, तम्, दिवसम् = दिनम्, अनयत् = अयापयत्। केन केन रूपेण वैशम्पायनस्य स्वागतं करणीयमिति चिन्तायामेव तद्दिनं समाप्तमभूदिति भावः।

अवतीर्णायामिति। अवतीर्णायाम् = सम्प्राप्तायाम्, च, तस्याम्, यामिन्याम् = निशायाम्, चन्द्रापीडः, सुहृदित्यादिः—सुहृदः (= प्रियवयस्यस्य वैशम्पायनस्य) यद् दर्शनम् (= अवलोकनम्)

की माता बन गई हो। मैं जानता हूँ कि चन्द्रापीड पर यह तुम्हारे प्रेम का अभाव ही है जो कि इस प्रकार से इन कार्यों में अनादर और उपेक्षा है, अर्थात् तुम्हें चन्द्रापीड पर वास्तव में प्रेम नहीं है इसीलिए इसके विवाह की बातों में तुम्हारा ध्यान नहीं हो रहा है।' इस प्रकार के हँसी मजाक वाली बातों से प्रसन्न चित्त वाला होता हुआ, आनन्द लेता हुआ, बहुत देर तक वहां रुक कर, शरीर कार्य (स्नानादि) को पूरा करने के लिये निकल कर चला गया।

चन्द्रापीड ने भी शुकनास के माध्यम से ही वैशम्पायन का स्वागत करने के लिये अपने को छुड़ा कर अर्थात् आज्ञा लेकर माता के महल में शरीर-सम्बन्धी कृत्य (स्नान-भोजन आदि) सम्पादित करके वैशम्पायन के स्वागत की तैयारी के विनोद (आनन्द) से ही वह दिन बिता दिया।

उस रात के आ जाने पर मित्र को देखने की उत्सुकता के कारण, पलंग पर लेटा हुआ भी,

---

१. निरगमत्।

मिव यामद्वयं स्थित्वा परिवर्तयद्भिरिव स्वकान्त्या नीलिमानमम्बरतलस्य, अपहरद्भिरिव हरिततां तरुगहनानाम्, अधस्तादपि छिद्रयित्वेव प्रविशद्भिर्निर्वासयद्भिरिव तरुतलच्छायाम्, [1]दरीकुहरकुञ्जोदरेष्वपि निलीनं तिमिरमक्षान्त्येव प्रविश्योत्पाटयद्भिः, विवरप्रवेशव्याजेन च रसातलमिव प्रवेष्टुमारब्धैः, अन्यथा पुनर्धवलयद्भिरिव धवलतां सौधानाम्, उद्धूलयद्भिरिव कर्पूररेणुना दिङ्मुखानि, लिम्पद्भिरिव सान्द्रचन्दनद्रवेण यामिनीम्, उन्नामयद्भिरिव मेदिनीम्, उपनयद्भिरिव द्याम्, संक्षिपद्भिरिव तारकाग्रहनक्षत्रमण्डलानि,

---

तस्मिन् औत्सुक्यम् (= औत्कण्ठचम्) तेन, हेतुना, शयनगतः = स्वापावस्थितः, पर्यङ्कनिषण्णः, अपि, जाग्रद् = जागरणं कुर्वन्, एव, समधिकम् इव = समधिकसदृशम्, यामद्वयम् = प्रहरद्वयम्, स्थित्वा = स्थितिं कृत्वा, स्वकान्त्या = निजप्रभया, अम्बरतलस्य = गगनतलस्य, नीलिमानम् = नीलत्वम्, परिवर्तयद्भिः = परिणमयद्भिः, आकाशस्य नीलत्वं श्वेतत्वे परिवर्तितं कुर्वद्भिः। [अत्रत्यानि तृतीयाबहुवचनान्तानि पदानि दूरे वक्ष्यमाणस्य 'चन्द्रपादैः कुर्वद्भिः' इत्यस्य विशेषणानीति बोध्यम्। एवञ्च सर्वाणि विशेषणानि चन्द्रपादानामेव वैशिष्ट्यं प्रतिपादयन्ति।] तरुगहनानाम् = वृक्षगह्वराणाम्, हरितताम् = पीतनीलमिश्रितवर्णताम्, अपहरद्भिः = दूरं कुर्वद्भिः, श्वेत्यमुत्पादयद्भिरिति भावः। अधस्तादपि = अधोदेशम्, अपि, छिद्रयित्वा = छिद्रितं कृत्वा, इव, प्रविशद्भिः = प्रवेशं कुर्वद्भिः, तरु-तलच्छायाम् = वृक्षाधोदेशस्थितमन्धकारम्, निर्यासयद्भिः = बहिष्कुर्वद्भिः, इव। दरीत्यादिः—दरीणाम् (= गुहानाम्) कुहराणि (=निकुञ्जानि, अभ्यन्तराणि) कुञ्जानाम् (= लतागृहाणाम्) च उदराणि (= मध्यभागाः) च तेषु, अपि, निलीनम्=प्रच्छन्नतया स्थितम्, तिमिरम् = तमः, अक्षान्त्या = अमर्षेण, इव, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, उत्पाटयद्भिः = दूरीकुर्वद्भिः, समून्मूलयद्भिः। विवर-प्रवेश-व्याजेन = रन्ध्रान्तर्गमनमिषेण, च, रसातलम् = पातालम्, इव, प्रवेष्टुम् = प्रवेशं कर्तुम्, आरब्धैः = विहितारम्भैः।

चन्द्रपादानामेव वैशिष्ट्यं प्रस्तौति—अन्यथेत्यादिना। अन्यथा = अन्यप्रकारेण, सौधानाम् = उत्कृष्टभवनानाम्, धवलताम् = श्वेतताम्, पुनः = भूयः, द्वितीयवारम्, धवलयद्भिः = श्वेतयद्भिः, इव। दिङ्मुखानि = दिशां वदनानि, अग्रभागान् इति यावत्, कर्पूररेणुना = घनसारपांसुभिः, उद्धूलयद्भिः = धूलिसहितानि कुर्वद्भिः, इव। यामिनीम् = निशाम्, सान्द्रचन्दनद्रवेण = घनीभूतमलयज-रसेन, लिम्पद्भिः = लिप्तां विदधद्भिः, आश्लेषयद्भिः, इव। मेदिनीम्=पृथ्वीम्, उन्नामयद्भिः=

जागता हुआ दो पहरों से कुछ अधिक देर तक लेट कर—अपनी कान्ति से आकाशतल की नीलिमा को [श्वेत रूप में] बदलती हुईं सी, वृक्षों के वनों (झुरमुठों) की हरितता (हरेपन = हरियाली) को दूर हटाती हुई सी, नीचे भी मानों प्रवेश करती हुई सी वृक्षों के नीचे की छाया को निकालती हुई सी, पर्वत की गुफाओं और लताकुंजों के भीतर भी छिपे हुए अंधेरे को प्रवेश करके क्रोध से निकालती हुई सी, गड्ढों में प्रवेश करने के बहाने से पाताल में प्रवेश प्रारम्भ की हुईं सी, महलों की सफेदी को फिर से दुबारा दूसरे रूप में सफेद करती हुई सी, दिशाओं के मुखों को कपूर के चूर्ण से धूलियुक्त करती हुई सी, रात्रि को गाढ़े चन्द्रनरस से लीपती हुई सी, पृथ्वी को ऊपर उठाती हुई

---

१. दरीगहनकुहर०।

विस्तारयद्भिरिव सरित्पुलिनानि, पृथक्पृथक्कमलवनान्युत्पीडच्येव[1] धारयद्भिः, उद्दलितदल-विकासानेकीकुर्वद्भिरिवि कुमुदाकरान्, अपि च, पर्यस्तैरिव शिखरिशिखिरेषु[2], आवर्जितै-रिव प्रासादमूर्धमु, पिण्डीभूय वहद्भिरिव रथ्यामुखेषु, [3]तरद्भिरिव जलतरंगेषु, प्रसारितैरिव सैकतस्थलेषु, हंससार्थैः सहैकीभूतैरिव, संविभक्तैरिव चन्द्राश्रयप्रसुप्तकामिनीकपोल-लावण्येन, क्षालितैरिव चन्द्रकान्तच्युतजलधारासहस्रैः, तथा च गर्भगृहेष्वप्यविहतप्रवेशैः, दन्तवलभीभ्योपि लब्धपरभागैः, पद्मिनीपत्रखण्डेष्वप्यखण्डितधवलिमभिः, आरामेष्वपि

ऊर्ध्वं प्रापयद्भिः, इव। द्याम् = द्युलोकम्, गगनं वा, उपनयद्भिः = समीपं कुर्वद्भिः, इव। तारकेत्यादिः—तारकाः (= अरुन्धतीत्यादि-ताराः) ग्रहाः (= सूर्यादिखेचराः) नक्षत्राणि (= अश्विन्यादीनि) च, तेषां मण्डलानि (= समूहान्), संक्षिपद्भिः = संक्षिप्तं कुर्वद्भिः, इव। सरित्पुलिनानि = नदीनां सैकततलानि, विस्तारयद्भिः = विशालतां प्रापयद्भिः, इव। पृथक् पृथक् कमलवनानि = अन्यदन्यत् पङ्कजसमूहान्, उत्पीडच = पीडयित्वा, मर्दयित्वा, धारयद्भिः = वहद्भिः, इव। उद्दलितेत्यादिः—उद्दलितानि (= उद्घाटितानि) यानि दलानि (=पत्राणि) तेषां विकासः (=विकसनम्) येषां तान् तादृशान्, कुमुदाकरान् =कौरवसमुदायान्, एकीकुर्वद्भिः = एकत्वम् अभिन्नत्वं प्रापयद्भिः, परस्परं सम्मिलितान् कुर्वद्भिः, इव।

तान् चन्द्रपादानेव वर्णयति—अपि चेत्यादिना। अपि च = अन्यच्च, शिखरि-शिखरेषु = पर्वतानां शृङ्गेषु, पर्यस्तैः = विकीर्णैः, इव। प्रासादमूर्धसु = प्रासादानामुपरिभागेषु, आवर्जितैः= समाकृष्टैः, इव। रथ्यामुखेषु = प्रतोलीषु, पिण्डीभूय = पिण्डरूपतां प्राप्य, वहद्भिः =प्रवहद्भिः, इव। जलतरंगेषु = सलिलवीचिषु, तरद्भिः = तरणं विदधद्भिः, इव। सैकतस्थलेषु =बालुकामय-भूभागेषु, प्रसारितैः = विस्तीर्य स्थापितैः, इव। हंससार्थैः =सितच्छदानां समूहैः, सह,एकीभूतैः = एकरूपतामधिगतैः, इव। चन्द्राश्रयेत्यादिः—चन्द्राश्रये (= शिरोगृहे, यद्वा—भवनोर्ध्वाट्टालिकायाम्) सुप्ताः (= शयानाः) याः कामिन्यः (= रमण्यः) तासां कपोलेषु (= गण्डस्थलेषु) यद् लावण्यम् (= सौन्दर्यम्) तेन, संविभक्तैः = विभज्य गृहीतैः, संविभागीकृतैः, इव। ['कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धा भूश्चन्द्रशाला 'शिरोगृहम्' इत्यमरः] चन्द्रकान्तेत्यादिः—चन्द्रकान्ताः (=एतन्नामकमणयः) तेभ्यः च्युताः (=गलिताः) याः जलधाराः (=सलिलधाराः) तासां सहस्रैः (= सहस्रसंख्याभिः) क्षालितैः = धौतैः, इव। तथा च = एवमेव च, गर्भगृहेषु = अभ्यन्तर गृहभागेषु, अपि, अविहत-प्रवेशैः—अविहतः (= अप्रतिषिद्धः, अवारितः), प्रवेशः (= अभ्यन्तरगमनम्), येषां तैस्तादृशैः। दन्तवलभीभ्यः = हस्तिदशन-विनिर्मित-गोपानसीभ्यः, अपि, लब्धपरभागैः—लब्धः (= प्राप्तः) परभागः (= उत्कृष्टत्वम्) यैस्तैस्तादृशैः, तदपेक्षयोत्कृष्टतरैरिति भावः, "गोपानसी तु वलभी"

सी, द्युलोक को समीप में लाती हुई सी, तारा, ग्रह और नक्षत्रों के मण्डल को संक्षिप्त (छोटा) करती हुई सी, नदियों के रेतीले तटों का विस्तार करती हुई सी, अलग-अलग विद्यमान कमलवनों को उखाड़ कर धारण करती हुई सी, खिली पंखुड़ियों वाले कुमुदाकरों (कुमुदसमूहों) को एक में मिलाती हुई सी, और भी, पर्वतों की चोटियों पर बिखरी हुई सी, महलों के ऊपर खींच कर रखी हुई सी, गलियों के मुखों में गाढ़ी होकर बहती हुई सी, जल की तरंगों के ऊपर बहती =तैरती हुई सी, बालुकामय स्थलो मे फैलाई गई सी, हंससमूहों के साथ एकाकार हुई सी, चन्द्राश्रय =अटारियों पर सोती हुई कामनियों के गालों के लावण्य के साथ बँटवारा किये हुई सी, चन्द्रकान्त मणियों से बहती हजारों जलधाराओं द्वारा धोई गई सी, तथा गर्भगृह =गृह के भीतर भी बिना रोक-टोक के प्रवेश की हुई, हाथी के दांत से बनी ढालदार छतों से भी अधिक उत्कृष्ट स्थान प्राप्त की हुई, कमलिनी के

१ उत्पीडच एव। २. शिखरिशेखरेषु।

३. -तरद्भिरिव जलतरङ्गेषु' इति नास्ति कुत्रचित्।

दिवसबुद्धिमुत्पादयद्भिः, परस्परोद्भिन्नक्रमेणोद्गिरद्भिरिवावर्जयद्भिरिव विक्षिपद्भिरिव विस्तारयद्भिरिव [1]प्रवर्तयद्भिरिव वर्षद्भिरिव सर्वतो ज्योत्स्नाप्रवाहम्, कादम्बरीसमागमत्वारादानाय स्मरसर्वास्त्रमोक्षमिव कुर्वद्भिश्चन्द्रपादैर्द्विगुणीकृतमन्मथोत्साहो[2] गमनसंज्ञाशङ्खनादायादिदेश।

अथ गगनतललब्धविस्तारः, विजृम्भमाण इव दिक्कुञ्जेषु, आवर्तमान इवाभ्रंलिह-

इत्यमरः। पद्मिनी-पत्र-खण्डेषु=कमलिनीनां पत्राणां समूहेषु, अपि, अखण्डित-धवलिमभिः—अखण्डितः (=न शकलीकृतः, त्रुटितः) धवलिमा (=श्वेतिमा) येषां तैस्तादृशैः। आरामेषु=कृत्रिमोपवनेषु, तत्रत्य-भवनेषु इति भावः, अपि, दिवसबुद्धिम्=दिनभ्रमम्, उत्पादयद्भिः=जनयद्भिः परस्परेत्यादिः—परस्परम् (=अन्योन्यम्) यद् उद्भिन्नम् (=उद्भेदनम्, विकसनम्, निःसरणम्) तस्य क्रमेण (=परिपाट्या), सर्वतः=सर्वासु दिशासु, ज्योत्स्नाप्रवाहम्=चन्द्रिकायाः स्रोतः, उद्गिरद्भिः=उद्गीर्णं कुर्वद्भिः, इव। [अत्र सर्वत्र 'ज्योत्स्नाप्रवाहम्' इति कर्मणः क्रियाभिरन्वयो बोध्यः] आवर्जयद्भिः= आकृषद्भिः, पातयद्भिर्वा, इव, विक्षिपद्भिः = विकिरद्भिः, इव, विस्तारयद्भिः = प्रसारयद्भिः, इव, प्रवर्तयद्भिः = प्रवृत्तं कुर्वद्भिः, वर्षद्भिः = वृष्टिं कुर्वद्भिः, इव। कादम्बरीत्यादिः—कादम्बर्याः (=गन्धर्वराजकन्यायाः) यः समागमः (= सम्मेलनम्) तस्मिन् या त्वरा (= शीघ्रता) तस्याः दानाय (= सम्पादनाय), स्मरेत्यादिः—स्मरस्य (= कामदेवस्य) यानि सर्वाणि (= समस्तानि) अस्त्राणि (= आयुधानि) तेषां मोक्षः (= मोचनम्, प्रहारः) तम्, कुर्वद्भिः = विदधद्भिः, इव, इदानीं विशेष्यमाह—चन्द्रपादैरिति। पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टैः, चन्द्रपादैः = इन्दुकिरणैः, द्विगुणीकृतेत्यादिः—द्विगुणितः (= द्विगुणतां प्रापितः, प्रवर्धित इति यावत्) मन्मथस्य (= कामदेवस्य) उत्साहः (= वेगः, औत्सुक्यम्) यस्य स तादृशः, चन्द्रापीडः, गमनेत्यादिः—गमनस्य (= प्रस्थानस्य) या संज्ञा (= संकेतः, ज्ञापनम्) तदर्थं यः शङ्खनादः (= कम्बुध्वनिः) तस्मै आदिदेश=आज्ञापयामास, साम्प्रतमेव प्रस्थानं सूचयितुं शङ्खनादं कुर्विति आज्ञां दत्तवान्।

इदानीं शङ्खध्वनिस्वरूपं वर्णयितुमाह—अथेत्यादिना। अथ = शङ्खध्वनिनादाज्ञानन्तरम्, गगनेत्यादिः—गगनतलम् (= नभस्तलम्) तस्मिन् लब्धः (= प्राप्तः) विस्तारः (= प्रसारः) येन स तादृशः। [अत्र सर्वाणि प्रथमैकवचनान्तानि पदानि वक्ष्यमाणस्य 'शङ्खध्वनिः' इत्यस्य विशेषणानीति बोध्यम्।] दिक्कुञ्जेषु—दिशः (= दिशाः, आशाः) एव कुञ्जाः (=निकुञ्जाः) तेषु, विजृम्भमाणः=

पत्रखण्डों में भी सफेदी को अक्षुण्ण रखने वाली, बाग-बगीचों में भी दिन की बुद्धि (ज्ञान, भ्रम) उत्पन्न करती हुई, परस्पर एक दूसरे के उद्भेदन के क्रम से चारो ओर चाँदनी के प्रवाह को उगलती हुई सी, आकृष्ट करती हुई सी, फेंकती हुई सी, फैलती हुई सी, प्रवृत्त करती हुई सी, बरसाती हुई सी, कादम्बरी के समागम में शीघ्रता करने के लिये कामदेव के समस्त अस्त्रों को छोड़ती हुई सी, चन्द्रमा की किरणों से—दूने किये गये काम-सम्बन्धी उत्साह वाले अर्थात् चन्द्रकिरणों से जिसकी कामवासना और अधिक बढ़ गई थी ऐसे चन्द्रापीड ने प्रस्थान की सूचना देने वाले शंखनाद को करने के लिये आज्ञा दे डाली।

इसके बाद गगनतल में विस्तार (फैलाव) प्राप्त करने वाली अर्थात् फैली हुई, दिशा रूपी

१. इदं नापि पठ्यते कुत्रचित्। २. गमनौत्साहः।

नगरीप्राकारमण्डलाभ्यन्तरे[1],समारोहन्निवोत्तुङ्गगोपुराट्टालकशिखराणि, [2]चलन्निव हर्म्यान्तरालेषु, बिकसन्निव चतुष्कचत्वरेषु, प्रसरन्निव राजमार्गेषु, परिभ्रमन्निव भवनसंकटेषु, प्रविशन्निवोद्यानगह्वरेषु[3], संमूर्छन्निव प्रासादकुक्षिषु, तत्क्षणप्रतिबोधितानां गृहसरोजिनीसारसानामनुवर्त्यमान इव तारतरदीर्घेण रणितेन, विच्छिद्यमान इव मुहुर्मुहुः स्वभावगद्गदेन भवनकलहंसानां कलरवेण, निर्धार्यमाण इव श्रोत्रप्रवेशिना गमनवेलाप्रणामसं-

---

वर्द्धमानः, इव । अभ्रंलिहेत्यादिः—अभ्रंलिहः (= गगनचुम्बी) यः नगर्याः (= उज्जयिन्याः) प्राकारः (= प्राचीरम्) तस्य यत् मण्डलम् (= परिधिः) तस्य अभ्यन्तरे (= मध्ये), आवर्तमानः (= परिभ्रमन्), इव । उत्तुङ्गेत्यादिः—उत्तुङ्गानि (= अत्युच्चानि) यानि गोपुराणाम् (= पुरद्वाराणाम्, प्रतोलीनाम्) अट्टालकानि (= अट्टालिकाः, उपरिवर्तिभवनानीति यावत्) तेषां शिखराणि (= शृङ्गाणि) तानि, समारोहन् = आरोहणं कुर्वन्, इव । हर्म्यान्तरालेषु—हर्म्याणि (= भवनानि) तेषाम्, अन्तरालानि (= मध्यभागाः) तेषु, चलन् = गच्छन्, इव । चतुष्कचत्वरेषु—चतुष्काणि (= चतुष्कोणानि, प्राङ्गणानि) चत्वराणि (= चतुष्पथानि) च तेषु, विकसन् = स्फुरन्, विकासमधिगच्छन्, इव । राजमार्गेषु=राजपथेषु प्रसरन् = विस्तारं प्राप्नुवन्, इव । भवनसंकटेषु = गृहाणां संकीर्णस्थानेषु, परिभ्रमन्= इतस्ततः सञ्चरन्, इव । उद्यानगह्वरेषु—उद्यानानाम् (= उपवनानाम्) गह्वराणि (= निकुञ्जानि) तेषु, प्रविशन् = प्रवेशं कुर्वन्, इव । क्वचित्तु—'उद्यान-नग-वनगह्वरेषु' इति पाठः । तत्र उद्यानस्य ये नागाः= पर्वतास्तेषां यानि वनानि तेषां गह्वराणि = गहनानि तेषु, प्रविशन्निवेत्यर्थः । प्रासादकुक्षिषु—प्रासादाः (= देवनृप-भवनानि) तेषां कुक्षिषु (= अभ्यन्तरप्रदेशेषु), संमूर्च्छन् = वर्द्धमानः, इव । तत्क्षणेत्यादिः—तत्क्षणे (= तस्मिन् काले) प्रतिबोधितानाम् (=जागरणं प्रापितानाम्) गृहेत्यादि—गृहस्य (=नृपसदनस्य) याः, सरोजिन्यः (=कमलिन्यः, कमलयुक्ता नद्यः) तासां सारसानाम् (=लक्ष्मणाम्), तारतरदीर्घेण—अतिशयेन तारः तारतरः (= अतीवोच्चः) तेन दीर्घेण (= आयतेन, प्रवृद्धेन) रणितेन=ध्वनितेन, अनुवर्त्यमानः = अनुस्रियमाणः, इव । शब्दध्वनिमाकर्ण्य जागृताः सारसास्तेन ध्वनिना सहैव तीव्रतरं स्वध्वनिं कुर्वन्तीति भावः । भवनकलहंसानाम् = भवनपरिपालितराजहंसानाम्, स्वभावगद्गदेन = प्रकृत्या अव्यक्तेन, कलरवेण = मधुरध्वनिना, मुहुर्मुहुः = बारंबारम्, विच्छिद्यमानः= त्रोट्यमानः, व्याघातं प्राप्यमाणः, इव । श्रोत्रप्रवेशिना = कर्णप्रवेशकारिणा, गमनेत्यादिः—गमनस्य (= प्रस्थानस्य) वेला (= कालः) तस्यां यः प्रणामः (= नमस्कृतिः) तस्मिन् सम्भ्रान्तस्य

कुंजों में बढ़ती हुई सी, नगर के गगन चुम्बी प्राकारों (प्राचीरों) के मध्य में घूमती हुई सी, ऊँचे-ऊँचे गोपुर (मुख्य द्वार) तथा महलों की चोटियों पर आरूढ होती हुई सी, महलों के भीतरी भागों में चलती हुई सी, चौकोर आँगनों तथा चौराहों में और अधिक बढ़ती (विकसित होती) हुई सी, राजमार्गों (मुख्य सड़कों) पर फैलती हुई सी, घरों के संकरे स्थानों में चारों ओर घूमती हुई सी, उद्यानों के कुंजों (झुरमुट वाले स्थानों) में प्रवेश करती हुई सी, महलों की कुक्षियों (भीतरी भागों) में फैलती (बढ़ती) हुई सी, उसी समय जगाये गये घरेलू कमलिनियों (जलवाटिकाओं) के सारसों की खूब तेज और लम्बी आवाज (ध्वनि) द्वारा पीछा की जाती हुई सी, [अर्थात् जिसके पीछे-पीछे सारसों की तीखी और लम्बी आवाजें हो रही थीं], भवन के (घरेलू) राजहंसों के स्वाभाविक रूप से अस्पष्ट मधुर शब्द द्वारा बार-बार (बीच-बीच में) तोड़ी जाती (बाधित की

---

१. अभ्यन्तरेषु । २. वलन्, वलयन् । ३. उद्याननगवन० ।

श्रान्तस्य वाराङ्गनाजनस्य चलवलयनूपुररशनाकलकलेन, तारदीर्घतरः शङ्खध्वनिरुदतिष्ठत् ।

अनन्तरं चोत्थाप्यमानैश्चोत्थितैश्चाकृष्यमाणैश्चाकृष्टैश्चारोप्यमाणपर्याणैश्च पर्याणितैश्च नीयमानैश्चानीयमानैश्च विलभ्यमानैश्चाच्छिद्यमानैश्चागच्छद्भिश्चागतैश्च पूज्यमानैश्च पूजितैश्च पङ्क्तिस्थितैश्च वाह्यमानैश्च तिष्ठद्भिश्च प्रतिपालयद्भिश्चापर्याप्त[1]राजद्वाराङ्गणैरप्रभूतचत्वरै-

(= व्यग्रस्य) वाराङ्गनाजनस्य = वेश्यालोकस्य, चलेत्यादि–चलानि (= प्रचलानि, प्रकम्पितानि) यानि वलयानि (= कटकानि) नूपुराणि (= मञ्जीराणि) रशनाः (= मेखलाः) च तासां कलकलेन (= कोलाहलेन ध्वनिना), निर्धार्यमाणः = निश्चीयमानः, इव । तारदीर्घतरः––तारः (= अत्युच्चः) दीर्घतरः (= आयततरः) च, शङ्खध्वनिः = कम्बुनादः, उदतिष्ठत्=समुत्थितः ।

शङ्खनादश्रवणानन्तरं किमभूदिति वर्णयति–अनन्तरञ्चेत्यादिना । अनन्तरम्=शङ्खनादानन्तरम्, च, उत्थाप्यमानैः = उत्थानं प्राप्यमाणैः, उत्थितैः = कृतोत्थानैः, च [अत्र तृतीयाबहुवचनान्तानि पदानि वक्ष्यमाणस्य 'तुरङ्गमसहस्रै'रित्यस्य विशेषणानीति बोध्यम् ।] आकृष्यमाणैः = आकर्षणं क्रियमाणैः, एकस्मात् स्थानादन्यत्र नीयमानैरिति भावः, आकृष्टैः = विहिताकर्षणैः, च, आरोप्यमाणपर्याणैः––आरोप्यमाणम् (=निधीयमानं संस्थाप्यमानम्) पर्याणम् (=पल्ल्ययनम्) तेषु तैस्तादृशैः, पर्याणितैः = धृतपल्ल्ययनैः, च, नीयमानैः = अन्यत्र प्राप्यमाणैः, आनीयमानैः = अन्यतः आनयनविषयीक्रियमाणैः, च, विलभ्यमानैः = अन्येषां करेषु दीयमानैः ["विलम्भस्त्वतिसर्जनम् ।" इत्यमरः] च, आच्छिद्यमानैः = हठात् गृह्यमाणैः, च, आगच्छद्भिः = आगमनं कुर्वद्भिः, च, आगतैः = सम्प्राप्तैः, च, पूज्यमानैः = पूजाविषयीक्रियमाणैः, च, पूजितैः = कृतपूजनैः, च, पंक्तिस्थितैः = श्रेणिबद्धीभूत्वा विद्यमानैः, च, वाह्यमानैः = आरुह्य चाल्यमानैः, च, तिष्ठद्भिः = उपवेशनं कुर्वद्भिः, प्रतिपालयद्भिः = प्रतीक्षां कुर्वद्भिः, अपर्याप्तेत्यादिः—अपर्याप्तम् (= न अलम्, अपेक्षितम्) राजद्वारस्य (= नृपप्रतोल्याः) अङ्गणम् (= अजिरम्) येभ्यः येषां वा तैस्तादृशैः, अश्वानामतिशयाधिक्येन राजद्वाराङ्गणं पर्याप्तं न जातमिति भावः, अप्रभूतचत्वरैः––अप्रभूतम् (= असमर्थम्, अपर्याप्तम्) चत्वरम् (= चतुष्पथम्) येषां येभ्यो वा तैस्तादृशैः, निस्तुच्छितेत्यादिः–

जाती) हुई सी, (वापस) जाने के समय का प्रणाम करने के लिये शीघ्रता (हड़बड़ाहट) करनेवाली वाराङ्गनाओं [वेश्याओं) के हिलते हुए कड़ों, नूपुरों और करधनियों की झनझनाहट जो कि कानों में प्रविष्ट होने वाली थी, के कारण और तीखी तथा खूब लम्बी (देर तक होने वाली) शंखध्वनि होने लगी ।

इसके बाद उठाये जाते हुए और उठे हुए, खींचे जाते हुए और खींचे गये, काठी पहनाये (जीन कसे) जाते हुए और पहनाये (कसे) गये, ले जाये जाते हुए, लाये जाते हुए, [दूसरे के हाथों में] दिये जाते हुए और [दूसरों के हाथों से] लिये जाते हुए, आते हुए और आये हुए, पूजा किये जाते हुए और पूजा किये गये, पंक्ति में खड़े हुए, बढ़ाये (आगे चलाये) जाते हुए और (अपने ही स्थानों पर) खड़े हुए, प्रतीक्षा करते हुए, राजद्वार के आँगन में न समा पाते हुए अर्थात् बहुत अधिक, चत्वरों (चबूतरों या चौराहों) को [अपनी संख्या की अधिकता के कारण] छोटे

१. पर्याप्त ।

र्निस्तुच्छितसकलरथ्यान्तरतयान्तर्बहिश्च संकटायमान-नगरीविस्तारैस्तुरंगमसहस्रैस्तत्क्षणं कुन्तवनमयमिवान्तरीक्षम्, खुररवमयीव मेदिनी, हेषारवमयानीव श्रोत्रविवराणि, फेनपिण्ड-स्तबकमयमिव युवराजभवनद्वाराङ्गणम्, खलीनरवमय्य इव दश दिशः, अश्वालंकाररत्नप्रभा-मया इवाभवञ्छशाङ्करश्मयः। अचिराच्च गृहीतसमायोगोऽङ्गणगतमिन्द्रायुधमारुह्य पुर-स्ताच्चलितेनालोकहेतोर्द्वितीयचन्द्रमण्डलेनेव हंसधाम्ना मङ्गलातपत्रेणावेद्यमाननिर्गमो

निःशेषेण (= पूर्णतया) तुच्छितानि (= तुच्छीकृतानि, अल्पीकृतानि) सकलानाम् (= सर्वासाम्) रथ्यानाम् (= वीथीनाम्) अन्तराणि (= मध्यभागाः) यैस्तेषां भावस्तत्ता तया हेतुना, अन्तः = आभ्यन्तरे, बहिः = बाह्यभागे, च, संकटायमानेत्यादि--संकटायमानः (= संकीर्णतां प्राप्नुवन्) नगर्याः (= उज्जयिन्याः) विस्तारः (= प्रसारः, विशालता) येभ्यो येषां वा तैस्तादृशैः, विशेष्यं प्रस्तौति--तुरङ्गमेति। तुरङ्गमानाम् (= अश्वानाम्) सहस्रैः (= दशशत्या), असंख्यैरश्वैरिति भावः। तत्क्षणम् = तस्मिन् काले, अन्तरिक्षम् = गगनतलम्, कुन्तवनमयम् = भल्लकाख्यास्त्र-काननमयम्, इव अभवत्। मेदिनी = पृथ्वी, खुररवमयी = शफशब्दमयी, इव, अभवत्। श्रोत्रविवराणि = श्रवणरन्ध्राणि, हेषारवमयानि = अश्व-ध्वनि-मयानि, इव, अभवन्। युवराजेत्यादिः-युवराजस्य (= चन्द्रापीडस्य) यद् भवनम् (= सदनम्) तस्य द्वारस्य (= प्रतीहारस्य) अङ्गणम् (= अजिरम्) फेनेत्यादिः—फेनपिण्डानाम् (= अश्वमुखनिःसृत-फेन-पिण्डानाम्) स्तबक-मयम् (= गुच्छमयम्), इव, अभवत्। दश, दिशः = दिशाः, खलीनरवमय्यः = कविक-ध्वनिमय्यः, इव, अभवन्। शशाङ्करश्मयः = चन्द्रकिरणाः, च, अश्वेत्यादिः—अश्वानाम् (=वाजिनाम्) ये अलंकाराः (=आभूषणानि) तेषु यानि रत्नानि (=मणयः) तेषां प्रभाः (= कान्तयः) तद्युक्ता इति तन्मयाः, अभवन्=सञ्जाताः।

सम्प्रति चन्द्रापीडस्य स्थितिं वर्णयति—अचिराच्चेत्यादिना। अचिरात् = अविलम्बेन, तत्कालमेवेति भावः, च, गृहीतसमायोगः—गृहीतः (=आत्तः) समायोगः (=अपेक्षितसंविधानम्) येन स तादृशः, अङ्गणगतम् = अजिरस्थितम्, इन्द्रायुधम् = एतन्नामकं स्वीयमश्वम्, आरुह्य = आरोहणं कृत्वा, पुरस्तात् = अग्रे, चलितेन = प्रस्थितेन, आलोकहेतोः=प्रकाशार्थम्, द्वितीयेत्यादिः—द्वितीयम् (= अपरम्) चन्द्रमण्डलम् (= इन्दुमण्डलम्) तेन, इव, हंसधाम्ना = हंसवत् कान्ति-र्यस्य तेन तादृशेन, एतन्नामकेन वा, मङ्गलातपत्रेण=शुभकारकच्छत्रेण, आवेद्यमाननिर्गमः—आवेद्यमानः

(सीमित) कर देने वाले, सभी गलियों के मध्य भागों को तुच्छ (छोटा, अपर्याप्त) बना देने के कारण बाहर तथा भीतर सभी ओर नगरी के विस्तार को संकरा (छोटा) कर देने वाले—हजारों घोड़ों के द्वारा उस समय [सैनिकों के भालों द्वारा] आकाश कुन्तमय (भालों से भरा हुआ या बना हुआ) सा (हो गया), पृथिवी खुरमयी (खुरों से भरी या बनी हुई) सी [हो गई], कर्णबिवर (सभी के कानों के छिद्र) हेषाध्वनि (घोड़ों की हिनहिनाहट) से युक्त से [हो गये], युवराज के भवनद्वार का आँगन [घोड़ों के मुख से निकलने वाले] फेने के समूह से गुच्छों से भरा हुआ सा (हो गया), दशों दिशायें लगामों की ध्वनि से युक्त (भरी हुई) सी [हो गई] और चन्द्रमा की किरणें अश्वों के आभूषणों के रत्नों की प्रभा से परिपूर्ण सी हो गई। कुछ ही देर में(पूर्ण रूप से) तैयार होकर, (चन्द्रापीड), आँगन में स्थित इन्द्रायुध (नामक अश्व) पर सवार होकर आगे आगे चलने वाले, चमकने के कारण दूसरे चन्द्रमण्डल जैसे दिखाई देने वाले, हंस की कान्ति (सफेदी) के समान कान्ति वाले (श्वेत) (अथवा हंसधाम नाम वाले) माङ्गलिक छत्र द्वारा

यथादर्शनमितस्ततस्तुरंगगतैरेव[1] प्रणम्यमानो राजपुत्रसहस्रैः प्रसुप्तपुरजनतयासम्बाधेनापि राजवर्त्मना बहुत्वात्तुरंगमबलस्य कृच्छ्रलब्धसंचारः कथं कथमपि निर्जगाम नगर्याः। निर्गत्य चादूरत एव निर्भरत्वाज्ज्योत्स्नापूरस्याच्छतया च दुर्विभाव्यपानीयामुपरि कलकूजितानुमीयमानोत्त्रस्तहंससार्थोत्पतनव्यतिकरां[2] पुलिनायमानामिव सर्वतो [3]जडतरतरंगा-

(= सूच्यमानः) निर्गमः (= निर्गमनम्, प्रस्थानम्) यस्य स तादृशः राजकुमारः। इतस्ततः = उभयपार्श्वे, तुरङ्गगतैः = अश्वारूढैः, एव, राजपुत्र-सहस्रैः = असंख्यराजकुमारैः, यथादर्शनम् = दर्शनानुसारम्, चन्द्रापीडस्य दर्शन-क्रमेण, प्रणम्यमानः = अभिनन्द्यमानः, नमस्क्रियमाणः। प्रसुप्तेत्यादिः—प्रसुप्ताः (= प्रगाढनिद्रायुक्ताः, सुशयिताः) पुरजनाः (= नगरवासिनः) यस्मिन् तस्य भावस्तत्ता तया, शयनेन मार्गेऽविद्यमानतयेति भावः, असम्बाधेन= असंकटेन, सर्वथा लोकशून्येन, अपि, राजवर्त्मना = राजपथेन, तुरङ्गमबलस्य = अश्वारोहिसैन्यस्य, बहुत्वात् = अतिशयत्वात्, कृच्छ्रेत्यादिः—कृच्छ्रेण (= कष्टेन) लब्धः (= प्राप्तः) सञ्चारः (= सञ्चरणम्, प्रस्थानम्) येन स तादृशः सन्, कथं कथमपि = येन केन प्रकारेण, महता कष्टेनेति भावः, नगर्याः = उज्जयिनीपुर्याः, निर्जगाम = बहिर्ययौ।

निर्गत्येति। निर्गत्य = निष्क्रम्य, च, अदूरतः = अविप्रकृष्टाद्, एव, ज्योत्स्नापूरस्य = चन्द्रिकाप्रवाहस्य, निर्भरत्वात् = अत्यधिकत्वात्, अच्छतया = स्वच्छतया, निर्मलत्वात्, च, दुर्विभाव्य-पानीयाम्– दुःखेन (= कष्टेन) विभाव्यम् (= ज्ञातुं शक्यम्) पानीयम् (= सलिलम्) यस्याः यस्यां वा तां तादृशीम्, [अत्र स्त्रीलिङ्गद्वितीयैकवचनान्तानि वक्ष्यमाणस्य 'सिप्रा' मित्यस्य विशेषणानि बोध्यानि।] उपरि = सलिलोपरिष्टात्, कलकूजितेत्यादिः—कलम् (=मधुरमव्यक्तं वा) यत् कूजितम् (= ध्वनितम्) तेन अनुमीयमानः (= अनुमितिविषयी-क्रियमाणः) उत्त्रस्तानाम् (=व्यग्राणाम्, भीतानां वा) हंसानाम् (= सितच्छदानाम्) सार्थः (= समूहः) तस्य यद् उत्पतनम् (= उड्डयनम्) तस्य व्यतिकरः (= सम्बन्धः, लक्षणया क्रिया) यस्यां सा तां तादृशीम्, पुलिनायमानाम् = सैकततटवदाचरन्तीम्, [चन्द्रिकायाः प्रकाशातिशयेन तदा सलिल-पुलिनयोरेकाकारप्रतीत्या तयोर्भेदकरणं कठिनमासीदिति भावः।] सर्वतः = सर्वत्र, जडेत्यादिः— जडतराः (= अतिशीतलाः) ये तरङ्गाः (=कल्लोलाः) तेषां अनिलस्य (= वायोः) स्पर्शमात्रेण

प्रस्थान किये जाने को सूचना दिया जाता हुआ, (अर्थात् आगे-आगे चलने वाला श्वेत मंगलछत्र चन्द्रापीड के प्रस्थान को सूचित कर रहा था), इधर-उधर (दोनों ओर) घोड़ों पर ही बैठे हुए हजारों राजकुमारों के द्वारा दर्शन करने के क्रम के अनुसार प्रणाम किया जाता हुआ, (वह चन्द्रापीड) नगर-वासियों के सोये रहने के कारण राजपथ के बहुत भीड़-भाड़ युक्त न होने पर अर्थात् खाली होने पर भी घुड़सवार सैनिकों की बहुलता के कारण बड़े कष्ट से चलने की सुविधा को पाता हुआ जिस किसी प्रकार नगरी से बाहर निकल गया। बाहर निकल कर उसने 'शिप्रा' नामक नदी —जो कि अधिक दूर नहीं थी, चांदनी का खूब प्रवाह होने के कारण और अत्यन्त स्वच्छ होने के कारण जिसके पानी का पता चलना कठिन हो रहा था, [सैनिकों के कोलाहल के कारण] जिसके ऊपर घबड़ाये हुए हंसों के उड़ने की घटना (बात) का अनुमान उन हंसों की मधुर ध्वनियों से किया

१, ...समागतैः। २. उत्पन्नव्यतिकरपुलिनायमानामिव, उत्पन्नव्यतिकरां पुलिनायमानामिव। ३. जलतरङ्ग०।

निलस्पर्शमात्रोपलक्ष्यसलिलसन्निधिमुत्तीर्य सिप्रामति[1]प्रहतत्वादसंकटत्वाच्च वर्धयतेव [2]गमनोत्साहमतिविस्तीर्णेनापि [3]पुनर्विस्तारितेनेव चन्द्रपादैर्दशपुरगामिना मार्गेण प्रावर्तत गन्तुम् ।

अथोह्यमानैरिव रयवाहिना सकलदिङ्मुखप्रसृतेन ज्योत्स्नाजलस्रोतसा वैशम्पायनालोकनत्वरितस्य चन्द्रापीडमानसस्यैव[4] तुल्यं वहतो जङ्घानिलेनेन्द्रायुधस्याकृष्यमाणैरिव

(= संसर्गमात्रेण, न तु प्रत्यक्षादिनेति भावः) उपलक्ष्यः (= ज्ञातुं शक्यः) सलिलस्य (=जलस्य) सन्निधिः (= सामीप्यम्) यस्याः यस्यां वा तां तादृशीम्, सिप्राम् = एतन्नाम्ना प्रसिद्धां नदीम्, उत्तीर्य = पारं सन्तरणं कृत्वा, उल्लङ्घ्येति भावः, अतिप्रहतत्वात् = गमनाधिक्येनातिक्षुण्णत्वात् असंकटत्वात् = असंकीर्णत्वात्, विशालत्वात् च, गमनोत्साहम् = प्रयाणोद्योगम्, वर्धयता = एधयता, इव, अतिविस्तीर्णेन = बहुविस्तृतेन सता, अपि, चन्द्रपादैः = इन्दुकिरणैः, पुनः = भूयः, विस्तारितेन = विस्तारं प्रापितेन, इव, दशपुरगामिना = दशपुरनामकस्थानविशेषानुयायिना, मार्गेण = पथा, गन्तुम् = चलितुम्, प्रावर्तत = प्रवृत्तोऽभवत्, यात्रां प्रारब्धवानिति भावः ।

अथेति । अथ = राजवर्त्मना अग्रे गन्तुं प्रवृत्ते सति, रयवाहिना—रयेण (= वेगेन) वहति (= चलति) इति तादृशेन, सकलेत्यादिः—सकलानि (= निखिलानि) यानि दिङ्मुखानि (= आशाग्रभागाः) तेषु प्रसृतेन (= विस्तृतेन), ज्योत्स्नेत्यादिः—ज्योत्स्ना (= चन्द्रिका) एव जलम् (= सलिलम्) तस्य स्रोतः (= प्रवाहः) तेन, उह्यमानैः = नीयमानैः, इव, [इमानि तृतीया-बहुवचनान्तानि वक्ष्यमाणस्य 'वाजिभि' रित्यस्य विशेषणानि बोध्यानि ।] वैशम्पायनेत्यादिः—वैशम्पायनस्य (= एतन्नामकस्य स्वमित्रस्य) यद् आलोकनम् (= दर्शनम्) तदर्थं त्वरितस्य (= त्वरायुक्तस्य, शीघ्रतया चलितस्य), चन्द्रापीडमानसस्य = राजकुमारचित्तस्य, एव, तुल्यम् = सदृशम्, वहतः = चलतः, इन्द्रायुधस्य = एतन्नामकाश्वस्य, जङ्घानिलेन = जङ्घाभ्यामुत्थापितेन वायुना, आकृष्यमाणैः = बलादिवाग्रे धावितुं प्रेर्यमाणैः, नीयमानैः, इव, वाजिभिः = अश्वैः ।

जा रहा था, जो रेतीले तट जैसी प्रतीत हो रही थी, जिसमें जल की सन्निधि (विद्यमानता) का ज्ञान अत्यन्त शीतल जलतरंगों की हवा के स्पर्श के कारण हो रहा था—उसको पार करके (चन्द्रापीड) खूब गमनागमन वाले तथा खूब चौड़ा होने के कारण आगे जाने के लिये उत्साह को बढ़ाते हुए से, (स्वतः) बहुत विशाल होने पर भी [उस समय] चन्द्रमा की किरणों के कारण दुबारा और विशाल बनाये गये से 'दशपुर' को जाने वाले मार्ग से (आगे) चलना प्रारम्भ कर दिया ।

इसके बाद तेजी से बहने वाले, सभी दिशाओं में फैले हुए, चाँदनी रूप जल के प्रवाह द्वारा (खींचकर) ले जाये जाते हुए से, वैशम्पायन को देखने के लिये शीघ्रता करने वाले चन्द्रापीड के मन के समान जाते (हवा में उड़ते) हुए इन्द्रायुध अश्व की जंघाओं की हवा [के वेग] से खींचे जा रहे—जैसे घोड़ों के द्वारा (चन्द्रापीड) रात के उतने ही परवर्ती भाग के समय में तीन योजन = बारह कोस पार कर गया, आगे चला । इसके बाद आनन्द उत्पन्न कराने वाली, चाँदनी

१. अतिप्रसृतत्वात् ।　　२. गमनोत्साहविस्तीर्णेन ।

३. पुरो ।　　४. मनसः, मानसोऽस्य ।

वाजिभिस्तावत्यैवापररात्रवेलया[1] योजनत्रितयमेवालङ्घयत् । अथाध्वश्रमापहरणायेव प्रवृत्ते वातुमाह्लादकारिणि निर्भरज्योत्स्नाजलावगाहादार्द्रार्द्रस्पर्शेऽवश्यायसीकरवर्षिणि [2]रजोलुलितविविधवनपल्लवानिलवीजिते विनिद्रकुमुदिनीपरिमललग्नपरिमलेन[3] परिमलाहितजडिम्नि रजनिविरामपिशुने मातरिश्वनि, क्रमेण चापरदिग्वधूवदनचुम्बिनि तदा [4]कल्पकाले च

[लोके मन्दचारिणं यथा शीघ्रचारी समाकृष्य अग्रे प्रापयति तथैव इन्द्रायुधोऽपि स्वसहचारिणोऽश्वान् समाकृष्याग्रे नयने प्रवृत्त आसीदिति भावः ।] तावत्या = तावन्मात्रया, एव, अपर-रात्रवेलया = रात्र्याः परभागस्य कालेन, योजनत्रितयम् = षट्क्रोशपर्यन्तम् एव, अलङ्घयत् = लङ्घितवान्, अतिक्रान्तवान् ।

सूर्योदयं वर्णयति—अथेत्यादिना । अथ = तदनन्तरम्, अध्वेत्यादिः—अध्वनः (= मार्गस्य मार्गे धावनस्येति भावः) यः श्रमः (= क्लान्तिः) तस्य अपहरणाय (= निवारणाय, उपशमनाय), इव, [उत्प्रेक्षा] आह्लादकारिणि = आनन्दजनके, [अत्र सप्तम्येकवचनान्तानि पदानि 'मातरिश्वनि' इति वक्ष्यमाणस्य विशेषणानि बोध्यानि । निर्भरेत्यादिः—निर्भरम् (= अत्यन्तम्) यथा स्यात् तथा ज्योत्स्ना (= चन्द्रिका) एव जलम् (= सलिलम्) तस्मिन् अवगाहः (= अवगाहनम्, ब्रुडनम्) तेन आर्द्रार्द्रः (= अतिशयेन क्लिन्नः) स्पर्शः (= आमर्शः, सम्बन्धः) यस्य स तथा तस्मिन्, अवश्यायेत्यादिः—अवश्यायः (= तुषारः, तुहिनम्) तस्य सीकराः (= कणाः) तान् वर्षति (= वर्षणं करोति) इति तादृशे । रजोलुलितेत्यादिः—रजांसि (=धूलयः, पांसवः) तैः लुलितानि (=स्पृष्टानि) यानि विविधानाम् (= अनेकप्रकाराणाम्) वनानाम् (= काननानाम्) पल्लवानि (=किसलयानि) तेषाम् अनिलेन (=तदुत्थितपवनेन) वीजिते (= व्यजनसेवाविषयीक्रियमाणे, प्रकम्पिते) । विनिद्रेत्यादिः—विनिद्राः (= विकसिताः) याः कुमुदिन्यः (= कैरविण्यः) तासां परिमलः (= परिमलनम्, मर्दनम्) तेन हेतुना लग्नः (= संसक्तः) परिमलः (= सौरभम्) यस्मिन् तादृशे । परिमलेत्यादिः—परिमलः (= सौगन्ध्यम्) तेन आहितः (= समुत्पादितः) जडिमा (= शीतलत्वम्, जाड्यम्) यस्मिन् तादृशे । रजनीत्यादिः—रजनी (= रात्रिः) तस्याः विरामः (= अवसानम्) तस्य पिशुने (= सूचके), मातरिश्वनि = पवने, वातुम् = प्रचलितुम्, प्रवृत्ते = आरब्धे, सति । क्रमेण = परिपाट्या, शनैः शनैः वा, च, अपरेत्यादिः—अपरा (= पश्चिमा) या दिक् (= दिशा) सा एव वधूः (= रमणी) तस्याः वदनम् (= आननम्) चुम्बति (= चुम्बितं करोति) इति तादृशे, तदा = तस्मिन् समये, प्रत्यूषे इति भावः, कल्पकाले = प्रलयकाले च, दुर्विषहेत्यादिः—

रूपी जल में पर्याप्त अवगाहन करने से अत्यन्त शीतल स्पर्शवाली, (ठंडी-ठंडी लगने वाली) नीहार (ओस) की बूँदों को बरसाने वाली अनेक वनों के पराग-परिपूर्ण (भरे हुए) पल्लवों की हवा से पंखा झली गई अर्थात् प्रेरित की गई, और बढ़ाई गई, खिली हुई कुमुदिनियों को कुचल देने के कारण उनकी सुगन्ध को साथ में लिये हुई, सुगन्ध के कारण भीतर ठंडक लिये हुई, और रात की समाप्ति की सूचना देने वाली हवा जब मानों मार्ग की थकावट को दूर करने के लिये बहने = चलने लग गयी थी । पश्चिम दिशा रूपी नायिका के मुख को चूमने वाला, उस (प्रातः) समय मे तथा

---

१. इव पर० । २. रयलुलित० ।

३. परिमिलन०, परिमलन० । ४. तदाकल्पकेनेव ।

दुर्विषहशर्वरीविरहचिन्तयेवासन्नदिनकरोदयविषादेनेवाप्रदोषादुत्तानितमुखः [1]कुमुदराशिभिरापीयमानस्य[2] धाम्नः परिक्षयेणेव सर्वाम्बरसरःपयःपायिपयोदविभ्रमाश्वरजःसंघातोपघातेनेव[3] पाण्डुतामुपगतवति[4] चन्द्रबिम्बे, प्रत्यग्रगगनलक्ष्मीवियोगसन्तापोज्झिते धवलोत्तरीयांशुक इव शशाङ्कलग्ने गलति चन्द्रिकालोके, अपरजलधिपातिना ज्योत्स्ना-

दुर्विषहः (= दुःखेन सोढुं शक्यः) यः शर्वर्याः (= निशायाः) विरहः (= वियोगः) तस्य चिन्तया (= आर्त्या, ध्यानेन), इव आसन्नेत्यादिः—आसन्नः (= सद्योभावी, समीपवर्ती) यः दिनकरस्य (= रवेः) उदयः (= उद्गमनम्) तेन यः विषादः (= खेदः) तेन, इव। आप्रदोषात्—प्रदोषः (= सायंकालः) तस्माद् आरभ्य (=आदाय), उत्तानितमुखैः—उत्तानितानि (= ऊर्ध्वीकृतानि) मुखानि (= आस्यानि) यैः तादृशैः, कुमुदराशिभिः = कैरवसमूहैः, आपीयमानस्य = सम्यक्तया पानविषयी-क्रियमाणस्य, आस्वाद्यमानस्य, धाम्नः = तेजस, परिक्षयेण = विनाशेन, इव। सर्वेत्यादिः—सर्वम् (= अखिलम्) यद् अम्बरम् (= गगनम्) तदेव सरः (= तडागः) तस्य पयः (= सलिलम्) पिबन्ति (= धयन्ति, पानविषयीकुर्वन्ति) इति ते तादृशाः पयोदाः (= मेघाः) तेषां विभ्रमः (= भ्रमणम्) इव विभ्रमः (= विलासः) यस्य स तादृशः य अश्वानाम् (= हयानाम्) रजसाम् (= धूलीनाम्) संघातः (= समूहः) तेन य उपघातः (= प्रहारः, सम्बन्धः) तेन, इव, चन्द्रबिम्बे = चन्द्रमण्डले, पाण्डुताम् = श्वेतपीतताम्, उपगतवति = प्राप्तवति, सति, यदा चन्द्रः पाण्डुवर्णः सञ्जातस्तदेति भावः। प्रत्यग्रेत्यादिः—प्रत्यग्रः (=नवीनः, तदैव सञ्जातः) यः गगनलक्ष्म्याः (=आकाशश्रियः) वियोगः (= विरहः) तेन यः सन्तापः (= विरहज्वरः) तेन उज्झिते (= परित्यक्ते), धवलेत्यादिः—धवलम् (=श्वेतम्) यद् उत्तरीयांशुकम् (=उपरिपरिधानीयवस्त्रम्) तस्मिन् इव, शशाङ्कलग्ने = चन्द्रसम्बद्धे, चन्द्रिकालोके = ज्योत्स्नाप्रकाशे, गलति = क्षरति, सति, यथा ज्वराक्रान्तो जनः ऊष्माणमसहमानः स्वाच्छादनवस्त्राणि निस्सार्य क्षिपति तथैव चन्द्रेण स्वसंसक्तचन्द्रिकायाः प्रकाशरूपं वस्त्रं परित्यक्तमिति भावः।

अपरेति। अपरेत्यादिः—अपरः (= पश्चिमः) यः जलधिः (= सागरः) तस्मिन् पतति (= पतनं करोति इति) तादृशेन, ज्योत्स्नेत्यादिः—ज्योत्स्ना (= कौमुदी) एव जलम् (=सलिलम्)

कल्पकाल = प्रलय के समय में रात्रि के साथ होने वाले अत्यन्त कष्ट से सहने योग्य विरह की चिन्ता से मानों, [अथवा] आसन्न = समीपवर्ती शीघ्र ही होने वाले सूर्योदय के विषाद (खेद) से मानों, [अथवा] सायंकाल से लेकर [उस समय तक] ऊपर की ओर मुख किये हुए कुमुदों के समूह द्वारा खूब पिये जाते हुए धाम = तेज के विनष्ट हो जाने के कारण मानों, [अथवा] सम्पूर्ण आकाश रूपी सरोवर का जल पीने वाले मेघों के समान घूमते हुए घोड़ों की धूलिसमूह के टक्कर से मानों चन्द्रमण्डल क्रमशः (धीरे-धीरे) पाण्डुवर्ण को प्राप्त करने लगा था, आकाश रूपी लक्ष्मी (सुन्दरता) के ताजे (नवीन) वियोग के सन्ताप = ज्वर के कारण [अलग कर] फेंक दी गई सफेद चादर के समान चन्द्रमा में लगी चाँदनी का प्रकाश जब गिरने लगा था, अपर = पश्चिमी समुद्र में गिरने वाले ज्योत्स्ना रूपी जल के प्रवाह द्वारा मानों बुलबुलों की पंक्तियों जैसी तारागणों

१. कुमुदशशिभिः।　　२. पीयमानस्य।
३. संघातेनेव।　　४. गतवति।

जलप्रवाहेणेव सहसा फेनबुद्बुदावलीष्विव [1]नश्यन्तीषु तारकापङ्क्तिषु, [2]गलदवश्याय-सलिलक्षालनादिव शनैः[3]शनैर्दलित[4]मुक्तागौर[5]ज्योत्स्नानुभाव[5]मुत्सृजन्तीष्वशासु, पुनर्विभाव्य-मानसहजश्यामकान्तिषु सलिलादिवोन्मज्जत्सु तरुलताविटपेषु, समुल्लसति पूर्वदिग्वधूकर्ण-पूररक्ताशोकपल्लवेऽम्बरसरस्तामरसे दिवसमुखकरिकुम्भसिन्दूररेणौ तरणिरथरक्तध्वजांशुके सन्ध्यारागे, [6]सन्ध्यातपरचितान्तेष्वालग्नदावानलेष्विव वयःसङ्घातैर्जनितारावमुत्सृज्यमानेषु

तस्य प्रवाहः (= स्रोतः) तेन, इव, सहसा = अकस्मात्, सद्य एवेति भावः, फेनेत्यादिः—फेनस्य (= जलोत्थितकफविशेषस्य) बुद्बुदानाम् (=स्थासकानाम्, डिम्बिकानाम्) अवलीषु (= पंक्तिषु), इव, तारकापंक्तिषु = तारकाणां श्रेणीषु, नश्यन्तीषु = विलीनतां गच्छन्तीषु । गलदित्यादिः—गलन् (= क्षरन्) यः अवश्यायः (= हिमम्) तस्य सलिलम् (= जलम्) तेन क्षालनात् (=धावनात्), इव, ["धावु गतिशुद्धयो'रिति धातुः] शनैः शनैः = मन्दं मन्दम्, दलितेत्यादिः—दलिताः (= चूर्णीकृताः) याः मुक्ताः (= मौक्तिकानि) तद्वत् गौरी (=शुक्ला) या ज्योत्स्ना (= चन्द्रिका) तस्या अनुभावम् (=प्रभावम्), आशासु = दिशासु, उत्सृजन्तीषु=परित्यजन्तीषु, सतीषु । पुनः = भूयः, विभाव्येत्यादिः—विभाव्यमाना (= ज्ञायमाना, प्रकाश्यमाना) सहजा (= स्वाभाविकी) श्यामा (= कृष्णा) कान्तिः (= छविः) येषां तेषु तादृशेषु तरु-लता-विटपेषु = वृक्ष-वल्ली-शाखासु, सलिलात् = जलाद्, इव, उन्मज्जत्सु = बहिर्निःसरत्सु, सत्सु । पूर्वेत्यादिः—पूर्वा (= प्राची) दिक् (= दिशा) एव वधूः (=स्नुषा, नायिका) तस्याः यः कर्णपूरः (= श्रवणाभरणविशेषः) तद्रूपः रक्ताशोकः (= एतन्नामकवृक्षविशेषः) तस्य पल्लवे (= किसलये)। अम्बरेत्यादिः—अम्बरम् (= गगनम्) एव सरः (= तडागः) तस्य तस्मिन् वा तामरसे (= रक्तकमले)। दिवसेत्यादिः—दिवसस्य (= दिनस्य) मुखम् (= आरम्भः, आस्यं वा) एव करि-कुम्भः (= गजमस्तकपिण्डः) तस्मिन् सिन्दूरस्य (= नागजस्य) रेणौ (= रजसि)। तरणीत्यादिः—तरणिः (= सूर्यः) तस्य रथः (= स्यन्दनः) तस्य रक्तध्वजस्य (= ताम्रपताकायाः) अंशुके (= वस्त्रे), सन्ध्यारागे = प्रातः कालिकीसन्ध्यारक्तिम्नि, समुल्लसति = शोभमाने सति । सन्ध्यातपेत्यादिः—सन्ध्या (= प्रातःसन्ध्यासमयः) तस्या आतपः (= आलोकः, रागः) तेन रचिताः (= विनिर्मिताः, व्याप्ताः) अन्ताः (= अन्तभागाः) येषां तेषु तादृशेषु, अतएव, आलग्न-दावानलेषु—आ (= समन्तात्) लग्नः (= संसक्तः, व्याप्तः) दावानलः (= वनाग्निः) येषु तेषु तादृशेषु, इव, निवास-पादपेषु=नीडाधारभूततरुषु, वयःसंघातैः= पक्षिसमूहैः, जनितारावम् = जनितः (= विहितः) आरावः (= ध्वनिः) यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा, उत्सृज्यमानेषु = परित्यज्यमानेषु सत्सु, पक्षिणः स्वनीडाधारवृक्षान् परित्यज्य

की पंक्तियाँ अचानक नष्ट=विलुप्त होने लगी थीं, गिरती हुई ओस की बूंदों के पानी द्वारा धो दिये जाने के कारण दिशायें मानों धीरे-धीरे मोतियों के चूर्ण (पाउडर) के समान गौर=श्वेत ज्योत्स्ना के प्रभाव को छोड़ने लगी थीं, अर्थात् सभी ओर सफेदी फैलने लगी थीं: जिनकी स्वाभाविक श्याम कान्ति (हरितवर्ण की शोभा) फिर से दिखाई देने लगी थी ऐसे वृक्ष, लता और शाखायें मानों पानी के भीतर से ऊपर निकलने लगी थीं, पूर्व दिशा रूपी नायिका के कर्णपूर (कान के आभूषण) सा लाल अशोक का पल्लव, आकाश रूपी सरोवर का रक्तकमल, दिन का आरम्भ रूपी हाथी के गण्डस्थल का सिन्दूर रज, सूर्य के रथ की पताका का रक्त वस्त्र तथा प्रातः कालीन सन्ध्या का राग (=लालिमा) चमकने लग गया था; प्रातःकालीन सन्ध्या की लालिमा से युक्त अग्रभाग वाले, निवास के आधारभूत वृक्षों को पक्षि-समूह शोर मचाते हुए ऐसे छोड़ने लगे थे मानों उनमें चारो ओर दावानल

१. स्पृशन्तीषु । २. अवश्यायसलिल० । ३. शनैर्गलित० ।
४. गौरं । ५. ज्योत्स्नानुभवम् । ६. सन्ध्यातप-रिचित०, परिगत० ।

निवासपादपेषु, सशेष-निद्रालसैश्चिरप्रसारणाविशदजङ्घाङ्घ्रिभिर्हठादाकृष्टदीर्घपदसञ्चारिभिर्मृगकदम्बकैरुन्मुच्यमानासूषरशय्यासु, इच्छावखण्डितोत्खातपल्वलोपान्तप्ररूढमुस्ताग्रन्थिष्वरण्यगह्वराभिमुखेषु वराहयूथेषु, निशावसानप्रचारनिर्गतैर्गोधनैरितस्ततो धवलायमानासु ग्रामसीमान्तारण्यस्थलीषु, आलोक्यमानजनपदविनिर्गमेषु प्रसूयमानेष्विव ग्रामेषु, यथार्ककिरणावलोकोद्‍गमं चोन्नाम्यमान इव पूर्वदिग्भागे, समुत्सार्यमाणास्विवाशासु, अपसर्पत्स्व-

---

उड्डीयमाना आसन्निति भावः। सशेषेत्यादिः—सशेषा (= शेषेण सहिता, किञ्चिदवशिष्टा) या निद्रा (= स्वापः) तया अलसैः (= आलस्ययुक्तैः), चिरेत्यादिः—चिरम् (= दीर्घकालं यावत्) प्रसारणम् (= विस्तारणम्) तेन अविशदाः (= अ-स्वाभाविकरूपेण वर्तमानाः) जङ्घाः (= प्रसृताः, जघनोपरिभागाः) अङ्घ्रयः (= पादाः) च येषां तैस्तादृशैः। हठादित्यादिः—हठात् (=बलाद्) आकृष्टाः (= आकर्षिताः) दीर्घपदाः (= लम्बायमानपादाः) तैः सञ्चारिभिः (= सञ्चरणशीलैः), मृगकदम्बकैः = हरिणसमुदायैः, ऊषरशय्यासु = ऊषर-भूमिरूपासु शय्यासु, उन्मुच्यमानासु = परित्यज्यमानासु सतीषु। इच्छेत्यादिः—इच्छया (= वाञ्छया, इच्छानुसारम्) अवखण्डिताः (= द्वैधीकृताः, विदारिताः) उत्खाताः (= समूलमुत्पाटिताः) च पल्वलानाम् (=तडागानाम्, कासाराणाम्) उपान्तेषु (= समीपभागेषु तटेषु) प्ररूढानाम् (= समुत्पन्नानाम्) मुस्तानाम् (= एतन्नामकतृणविशेषाणाम्) ग्रन्थयः (= पर्वाणि) यैस्तेषु तादृशेषु, वराहयूथेषु= शूकराणां समूहेषु, अरण्येत्यादिः—अरण्यानाम् (= काननानाम्) गह्वराणाम् (= गहनानाम्, गुफानाम्) अभिमुखेषु = संमुखेषु, सत्सु तान्प्रति चलत्स्विति भावः।

निशेति। निशेत्यादिः—निशायाः (= रात्रेः) अवसानम् (= परिसमाप्तिः) तत्र यः प्रचारः (= सञ्चरणम्) तदर्थं निर्गतैः (= निःसृतैः) गोधनैः (= धेनुसमूहैः) इतस्ततः = यत्र तत्र, ग्रामेत्यादिः—ग्रामस्य सीमा (= उपशल्यम्) तस्या अन्ते (= अवसाने) यानि अरण्यानि (= काननानि) तेषां स्थलीषु (= अकृत्रिमभूमिषु) धवलायमानासु = श्वैत्यमापद्यमानासु, सतीषु। आलोक्येत्यादिः—आलोक्यमानः (= दृश्यमानः) जनानाम् (= लोकानाम्) पदानाम् (= चरणानाम्) विनिर्गमः (= निर्गमनम्, निःसरणम्) एभ्यस्तादृशेषु ग्रामेषु= वसतिविशेषेषु, प्रसूयमानेषु = प्रसवं कुर्वाणेषु, सत्सु इव। प्रसवकाले बालकानां पादावेव प्रथमं बहिः निष्क्रामतः। यथेत्यादिः—अर्ककिरणानाम् (= दिनकर-रश्मीनाम्) आलोकः (= प्रकाशः) तस्य उद्‍गमः (= उदयः) तम् अनतिक्रम्य इति यथा तथा च, पूर्वदिग्भागे = प्राचीदिशाप्रदेशे, उन्नाम्यमाने= ऊर्ध्वं क्रियमाणे, सति इव। आशासु = दिशासु सर्वासु, समुत्सार्यमाणासु = सम्मिलनं परिसमाप्य

(वन की आग) लग गई हो; निद्रा बाकी रह जाने के कारण अर्थात् नींद भर न सो सकने के कारण अलसाये हुए, बहुत देर तक सीधे=लम्बे फैलाये रखने के कारण अकड़े हुए (न मुड़ सकने योग्य) घुटनों तथा पैरों वाले, बलपूर्वक खींचे गये लम्बे-लम्बे पैरों से चलने वाले अर्थात् लम्बे-लम्बे पैरों को बलपूर्वक खींच कर चलने वाले हरिणों के समूह (झुंड) ऊसर भूमि की शय्यायें छोड़ने लगे थे, छोटे-छोटे तालाबों के किनारों पर उगी हुई मोथा नामक घास की गाँठों को अपनी इच्छा के अनुसार तोड़ते और उखाड़ते हुए सुअरों के समूह जंगलों के गहनों (घने स्थानों) की ओर जाने लगे थे; रात की समाप्ति अर्थात् तड़के सबेरे घूमने के लिये निकले हुए गायों के झुण्डों द्वारा गाँवों की सीमा पर स्थित जंगली भूभाग सफेद किये जाने लगे थे; लोगों के पैरों का बाहर निकलना देखने से ऐसा लगने लगा था कि वे गाँव प्रसव कर रहे हों, [प्रसवकाल में बच्चे का पैर पहले बाहर निकलता है।] जैसे-जैसे सूर्य की किरणों का प्रकाश बढ़ता जाता था वैसे-वैसे लगता था कि पूर्व दिशा का भाग

वारण्येषु,[1] विस्तार्यमाणास्विव ग्रामसीमासु, उत्तानीभवत्स्विव सलिलाशयेषु अवच्छिद्यमानेष्विव शिखरिषु, उद्ध्रियमाणायामिव मेदिन्याम्, अदृश्यतामिवोपयान्तीषु कुमुदिनीषु, तिरोधानकारिणीं नीलतिरस्करिणीमिव करैरुत्सार्य तिमिरमालां विरहविधुरां कमलिनीमिवालोकयितुमुदयगिरिशिखरमारूढे भगवति [2]सप्तलोकचक्षुषि सप्तवाहे विहायस्तलमुद्भास्य दिगन्तराण्युद्भासयन्तीषु सकलजगद्दीपिकासु दिवसकरदीधितिषु दृष्टिप्रसरक्षमायां वेलायां सहसैवाग्रतोर्धगव्यूतिमात्र इव रात्रिप्रयाणकायातम्, अन्तःक्षोभभीतेन रसातलेनेवोद्गीर्य-

---

यथास्थानं प्राप्यमाणासु, दूरीक्रियमाणासु, सतीषु इव । अरण्येषु = वनेषु, अपसर्पत्सु = पलाय्य दूरं गच्छत्सु सत्सु, इव । ग्रामसीमासु = ग्रामावधिषु, विस्तार्यमाणासु = प्रसार्यमाणासु सत्सु, इव । सलिलाशयेषु = तडागादिषु उत्तानीभवत्सु = ऊर्ध्वीभवत्सु, इव । शिखरिषु = पर्वतेषु, अवच्छिद्यमानेषु = खण्डशोविधीयमानेषु, इव । मेदिन्याम् = पृथिव्याम्, उद्ध्रियमाणायाम् = ऊर्ध्वं विधीयमानायाम्, इव । कुमुदिनीषु = कैरविणीषु, अदृश्यताम्=अनवलोकनीयताम्, दर्शनाभावमिति यावत्, उपयान्तीषु = गच्छन्तीषु, इव । तिरोधानेत्यादिः--तिरोधानम् (=व्यवधानम्, अन्तर्धानम्) करोति इति तां तादृशीम्, नीलतिरस्करिणीम् = नीलवर्णं-जवनिकाम्, इव, तिमिरमालाम् = तमोराशिम्, करैः = किरणैः एव करैः = हस्तैः, उत्सार्य = दूरीकृत्य, विरहविधुराम् = वियोगेन व्याकुलाम्, कमलिनीम् = पद्मिनीम्, अवलोकयितुम् = द्रष्टुम्, इव, भगवति = ऐश्वर्यशालिनि, सप्तलोक-चक्षुषि = सप्तलोकनयने, सप्तवाहे—सप्त संख्याकाः वाहाः (= अश्वाः) यस्य तस्मिन् तादृशे सूर्ये, उदयगिरिशिखरम् = उदयाचलशृङ्गम्, आरूढे = सम्प्राप्ते, सति । [सप्तलोका इमे विख्याताः—भूः, भुवः, स्वः, जनः, महः, तपः, सत्यमिति ।] विहायस्तलम्—विहायसः (=गगनस्य) तलम्, उद्भास्य = प्रकाश्य, सकलेत्यादिः—सकलम् (= समस्तम्) जगत् (= विश्वम्) तस्य दीपिकासु (=प्रकाशकारिकासु), दिवसकरदीधितिषु = सूर्यकिरणेषु, दिगन्तराणि=दिशामध्यभागान्, उद्भासयन्तीषु = प्रकाशयन्तीषु सतीषु ।

दृष्टिप्रसरेति । दृष्टि-प्रसर-क्षमायाम्—नेत्रप्रसर-समर्थायाम्, यदा नेत्राणि पदार्थान् विलोकयितुं समर्थानि जातानि तदेति भावः, सहसा = अकस्मात्, एव; अग्रतः = पुरः, अर्धगव्यूति-

---

क्षेत्र और ऊपर किया जा रहा हो, दिशायें मानों दूर-दूर हटायी जाने लगी थीं अर्थात् अलग-अलग स्पष्ट कर दी जा रहीं थीं, वन मानों दूर भागने लगे थे, गाँवों की सीमायें बढ़ाई जाने लगीं, तालाब ऊपर जैसे उठने लगे, पहाड़ अलग-अलग किये जाने लगे, पृथ्वी ऊपर की ओर जाने वाली सी होने लगी, कुमुदिनियाँ अदृश्य (गायब) सी होने लगीं, ढक देने वाली काली परदा जैसी अन्धकारमाला को किरण रूपी हाथों से हटाकर (दूर करके) विरह से व्याकुल कमलिनी को देखने के लिये मानों सातों लोकों के नेत्रस्वरूप भगवान् सूर्य देव उदयाचल के शिखर पर आरूढ हो गये, समस्त संसार को प्रकाशित करने वाली सूर्य की किरणें आकाशतल को उद्भासित (प्रकाशित) करके दिशाओं के अन्तराल भागों को भी प्रकाशित करने लगीं, जिस काल में आखें फैलने अर्थात् सब कुछ देखने में समर्थ होने लगी. तब चन्द्रापीड ने अचानक आगे आधी गव्यूति = एक कोश पर्यन्त चलकर शिविर

---

१. चापसर्पत्स्विव०, अपसार्यमाणेषु । २. सप्तलोकैकचक्षुषि ।

माणम्, असोढसङ्घातभरया मेदिन्येव विक्षिप्यमाणम्, [1]अपर्याप्तप्रमाणाभिर्दिग्भिरिव संह्रियमाणम्, अपरिमाणरजोनिरोधाशङ्कितेन गीर्वाणवर्त्मनेवावकीर्यमाणम्, [2]अर्कावलोकेनेव सह विस्तीर्यमाणम्, आयासितायततरदृष्टिभिरप्यदृष्टपर्यन्तम्, [3]अनुजीविभूभृच्छतसहस्रकल्पितावष्टम्भं सञ्चारिणं द्वितीयमिव मेदिनीसन्निवेशम्, [4]अजलवाहिनीप्रवेशगम्भीरं

मात्रे = एकक्रोशमात्रे, इव, ["स्कन्धावारमद्राक्षीद्' इति वक्ष्यमाणे दूरेऽन्वयो बोध्यः। एवञ्च द्वितीयैकवचनान्तानि पदानि 'स्कन्धावारम्' इत्यस्यैव विशेषणानि बोध्यानि।] रात्रीत्यादिः—रात्रौ (= निशायाम् एव) प्रयाणकेन (= प्रयाणेन, चलनेन) आयातम् (= सम्प्राप्तम्)। अन्तरित्यादिः—अन्तः (= आभ्यन्तरे मध्ये) यः क्षोभः (= क्षुब्धता, कम्पनम्) तस्मात् भीतेन (= प्राप्तभयेन, त्रस्तेन) रसातलेन = पातालेन, उद्गीर्यमाणम् = बहिःनिसार्यमाणम्, इव ! असोढेत्यादिः—असोढः (= न क्षमितः) बः संघातस्य (= सैन्यसमूहस्य) भरः (= भारः, बीवधः), यया तादृश्या, मेदिन्या = पृथिव्या, विक्षिप्यमाणम् = विस्तार्य विकीर्यमाणम्, इव। अपर्याप्तेत्यादिः—अपर्याप्तम् (= आवश्यकताया अननुकूलम्, न्यूनम्) प्रमाणम् (= परिमाणम्, इयत्ता) यासां ताभिस्तादृशीभिः, दिग्भिः = दिशाभिः, संह्रियमाणम् = संक्षिप्यमाणम् इव। अपरिमाणेत्यादिः—अपरिमाणम् (= असंख्यम्, गणनातीतम्), यद् रजः (= धूलिकणः) तेन यो निरोधः (= अवरोधः, बाधनम्) तेन आशङ्कितेन (= आरेकितेन) गीर्वाण-वर्त्मना= देवानां मार्गेण, आकाशेनेति भावः, अवकीर्यमाणम् = इतस्ततो विक्षिप्यमाणम्, इव। अर्कावलोकेन = सूर्यस्य प्रकाशेन, सह = सार्धम्, विस्तीर्यमाणम् = विस्तारं प्राप्यमाणम्, वर्धमानमिति भावः, इव। आयासितेत्यादिः—आयासिताः (= आयासं लम्भिताः, आयासयुक्ता विहिताः) आयततराः (= विशालतरा, विस्फारिततराः) च या दृष्टयः (=नेत्राणि) ताभिः, अपि, अदृष्टपर्यन्तम्—न दृष्टः (= विलोकितः) पर्यन्तः (= प्रान्तभागः) यस्य तत् तादृशम्। अनुजीवीत्यादिः—अनुजीविनः (= आधीनाः) ये भूभृतः (= राजानः) ते एव भूभृतः (= गिरयः) तेषां शतानां सहस्रेण (= दशशत्या संख्याविशेषया) कल्पितः (= विहितः) अवष्टम्भः (= आश्रयः, धारणं वा) यस्य तं तादृशम्, सञ्चारिणम् = गमनशीलम्, द्वितीयम् = अपरम्, मेदिनीसन्निवेशम् = पृथिव्याः विस्तृतं निर्मित-विशेषम्, इव। यथा सहस्राधिकैः पर्वतैः पृथिवी धार्यते तथैव तमपि सहस्राधिका राजानः विभूषयन्ति धारयन्ति वा। अजलेत्यादिः—अजला (= सलिलशून्या) वाहिनी (= सेना) सा एव वाहिनी (= नदी) तस्याः प्रवेशेन (= प्रविशनेन,

बनाते हुए सेना के समूह देखा जो—स्कन्धाकार = सैन्य-समूह रात में चलकर आया था, जो ऐसा लग रहा था कि भीतरी क्षोभ से भयाकुल पाताल द्वारा ऊपर उगला जा रहा हो, समूह का भार न उठा सकने वाली पृथ्वी द्वारा मानों फेंका जा रहा हो, अपर्याप्त प्रमाणवाली (अपने भीतर न समा सकने वाली) दिशाओं द्वारा मानों संक्षिप्त = थोड़ा किया जा रहा हो, अपरिमित धूलि द्वारा अवरुद्ध (घिर) हो जाने की आशंका (भय) से स्वर्ग के मार्ग द्वारा मानों फेंका या उगल दिया जा रहा हो, सूर्य की रोशनी के साथ-साथ मानों बढ़ता जा रहा हो, प्रयास युक्त फैलाई गईं आखों द्वारा भी जिसका अन्त नहीं देखा जा रहा हो, जो अनुजीवी (आश्रित) हजारों भूभृतों = राजा रूपी पर्वतों

१. पर्याप्त०।　२. अर्ककिरणावलोकेन।　३. अनिर्जीव०।　४. जल०।

प्राणिमयमपरपार[1]मष्टममिव महासमुद्रम्, उद्रिक्तरजःसन्ततेः पूरतया चापरिस्फुटविभाव्यसर्ववृत्तान्तमपीतस्ततो वलितधवलकदलिकोद्भासितानेककरिघटासहस्रसंकुलमविरलबलाका-[2]वलीविभ्राजिताम्भोदसंघातं मूर्तिमन्तमिव मेघसमयारम्भम्, आवासभूमिग्रहणसंभ्रमाभिप्रधावितासंख्यकरितुरगनरपरम्परोर्मिसम्बाधतयाऽमन्दमन्दरास्फालनलुलितकल्लोलजालाकुल-

मिलनेन) गम्भीरम् (= गहनम्, गभीरम्) प्राणिमयम् = जीवप्रचुरम्, अपरपारम्—न विद्यते परः (= द्वितीयः) पारः (= तटम्) यस्य तं तादृशम्, पारहीनमिति भावः, अष्टमम् = अष्टमसंख्याकम्, महासमुद्रम् = महासागरम्, इव । उद्रिक्तेत्यादिः—उद् रिक्ता (= प्रचुरा) या रजसाम् (= धूलीनाम्) सन्ततिः (= समूहः, परम्परा) तस्याः, पूरतया = प्रवाहतया, च अपरिस्फुटेत्यादिः—अपरिस्फुटम् (= अव्यक्तम् अस्पष्टम्) यथा स्यात् तथा विभाव्यः (= ज्ञातुं योग्यः) सर्वः (= सकलः) वृत्तान्तः (= उदन्तः) यस्य यस्मिन् वा तं तादृशम्, अपि, इतस्ततः = यत्र तत्र, वलितेत्यादिः—वलिताः (= चलिताः, स्थापिताः वा) याः धवला, (= श्वेताः) कदलिकाः (= वैजयन्त्यः) ताभिः उद्भासिताः (= सुशोभिताः) अनेके (= बहवः) ते करिणः (= गजाः) तेषां घटाः (= समूहाः) तेषां सहस्रम् (= अगणितम्) तेन संकुलम् (= व्याप्तम्)। अविरलेत्यादिः—अविरला (= घना) याः बलाकानाम् (= बकानाम्) अवली (= श्रेणी) तया विभ्राजितः (= सुशोभितः) अम्भोदानाम् (= वारिदानाम्) संघातः (= समुदायः) यस्मिन् तं तादृशम्, मूर्तिमन्तम् = देहधारिणम्, मेघसमयारम्भम् = वर्षाकालारम्भम्, इव । [अत्र कदलिकानां श्वेततया बलाकापङ्क्त्या गजानां च श्यामतया मेघैः सह सादृश्यं बोध्यम् ।] आवासेत्यादि—आवासार्थम् (= तत्रावस्थानार्थम्) यद् भूमे (=पृथिव्याः स्थानस्य) ग्रहणम् (= स्वाधीनीकरणम्) तस्मिन् संभ्रमेण (= व्यग्रतया) अभिप्रधाविताः (= त्वरितं सम्मुखं प्रचलिताः) असंख्याः (= गणयितुमशक्याः) ये करिणः (= गजाः) तुरगाः (= अश्वाः) नराः (= मानवाः) च इति तेषां परम्परा (= पङ्क्तिः) एव ऊर्मिः (= वीचिः) तासामिव सम्बाधः (= सम्मर्दः, आघातः) यस्मिन् तस्य भावस्तत्ता तया, अमन्देत्यादिः—अमन्दम् (= शीघ्रम्, सत्वरम्) यत् मन्दरस्य (= एतन्नामकाचलस्य) आस्फालनम् (= समन्तात् सञ्चालनं भ्रमणं वा) तेन लुलितम् (= आलोडितम्, सञ्चालितम्) यत् कल्लोलानाम् (= तरङ्गाणाम्) जालम् (= राशिः) तेन आकुलस्य (= व्याकुलस्य व्याप्तस्य वा) महाजलधेः = महासागरस्य लीलया = विलासेन, निविश-

द्वारा धारण किया जाता हुआ, संचरण करता (चलता-फिरता) हुआ दूसरा पृथिवी का स्वरूप हो, बिना जल वाली नदी रूपी सेना के प्रवेश=आगमन से गम्भीर हो, जिसका पार=कोई छोर=किनारा नहीं है ऐसा प्राणिमय (प्राणियों से बना हुआ) आठवाँ महासमुद्र जैसा हो, जो ऊपर उठी हुई अत्यधिक धूलि के समूह से भर जाने के कारण जिसकी सारी बातें साफ-साफ नहीं दिखाई देने पर भी इधर-उधर चलती हुई स्वच्छ सफेद पताकाओं से उद्भासित (सुशोभित प्रकाशित) अनेक हजारों हाथियों के समूह से व्याप्त था, अतएव घनी बकपंक्तियों से शोभायमान मेघसमूह वाले, साकार=साक्षात् मेघसमय=वर्षा ऋतु के आरम्भ सा प्रतीत हो रहा था, जो रहने (ठहरने) के लिये भूमि (स्थान) पाने के लिये इधर-उधर दौड़ते हुए असंख्य हाथी, घोड़े तथा मनुष्यों की

१. अपरम्, अपरमपारम् । २. बलबलाक ।

स्य महाजलधेर्लीलया निविशमानं स्कन्धावारमद्राक्षीत् ।

दृष्ट्वा चाकरोच्चेतसि—"अहो भद्रकं भवति यद्यचिन्तितागमन एव प्रविश्य वैशम्पायनं पश्यामि' । इत्येवं चिन्तयित्वा छत्रचामरादिभिः स्वचिह्नैः सह निवारिताशेषराजपुत्रलोको जवविशेषग्राहिभिस्त्रिचतुरैस्तुरंगमैरनुगम्यमानो मूर्धानमावृत्योत्तरीयेण रयविशेषग्राहिणेन्द्रायुधेन नानाव्यापारव्यग्रसकललोकमचिन्तित एव स्कन्धावारमाससाद ।

मानम् = स्थाप्यमानम्, आवासप्रबन्धं कुर्वाणमिति भावः, स्कन्धावारम् = सैन्यसमूहम्, अद्राक्षीत् = दृष्टवान् । अत्रोभयोः सुन्दरं साम्यं प्रदर्शितम् ।

चन्द्रापीडस्य चिन्तनं प्रस्तौति—दृष्ट्वेत्यादिना । दृष्ट्वा = विलोक्य, च, चेतसि = मनसि, अकरोत् = कृतवान्, चन्द्रापीडः वक्ष्यमाणं विचारयामासेति भावः । अहो = इदमाश्चर्यं हर्षे वा, भद्रकम् = सुष्ठु क्षेमकरं वा, भवति = जायते, यदि = चेत्, अचिन्तितागमनः—न चिन्तितम् (= ध्यातं विचारितं वा) आगमनम् (= सम्प्राप्तिः) यस्य स तादृशः, एव, अकस्मादेवेति भावः, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, वैशम्पायनम् = स्वमित्रम्, पश्यामि = विलोकयामि, अनेन तं विस्मितं कर्तुं शक्नोमीति तदाशयः, इति, एवम् = अनेन प्रकारेण, चिन्तयित्वा = मनसि विचार्य, छत्रचामरादिभिः—छत्रम् (=आतपत्रम्) चामरम् (=चमर्याः पुच्छनिर्मितः व्यजनविशेषः) आदिः (=प्रधानम्) येषां तादृशैः, सह=सार्धम्, निवारितेत्यादिः—निवारिताः (=दूरीकृताः) अशेषाः (= समस्ताः) राजपुत्रलोकाः (= नृप-सुतजनाः) येन स तादृशः, युवराजचिह्नानि सहयायिराजपुत्रान् च विहायेति भावः, जवेत्यादिः—जवविशेषः (= रयस्यातिशयः) तं गृह्णन्ति (= धारयन्ति) इति तादृशैः, त्रिचतुरैः = त्रिभिश्चतुर्भिर्वा, अत्यल्पैरित्यर्थः, तुरङ्गमैः = अश्वैः, सादिभिरिति भावः, अनुगम्यमानः = अनुस्रियमाणः, उत्तरीयेण = उपरिवस्त्रेण, उपसंव्यानेन, मूर्धानम् = शिरः, आवृत्य = आच्छाद्य, येन न कोऽपि परिचिनुयादिति शेषः, रयविशेषग्राहिणा = वेगातिशयधारिणा, अत्यन्तसत्वरगामिनेति भावः, इन्द्रायुधेन = एतन्नामक-निजाश्वेन, नानेत्यादिः—नाना (= विविधाः) ये व्यापाराः (= कर्माणि) तैस्तेषु वा व्यग्राः (= संलग्नाः) सकलाः (= समस्ताः) लोकाः (=जनाः) यत्र तं तादृशम्, स्कन्धावारम् = सैन्यसमूहम्, अचिन्तितः= अविचारितः, एव, तत्क्षणं बिलम्बं विनैवेति भावः, आससाद = प्राप्तवान् ।

परम्परा रूपी तरंगों से भरा (व्याप्त) होने के कारण मन्दराचल के जोर से मथने से उठी हुई तरंगों के समूह से व्याप्त महासमुद्र की लीला को अपना रहा था ।

(उसे) देखकर चन्द्रापीड मन में सोचने लगा—'ओह, कितना अच्छा होता यदि मैं अचानक =अज्ञात रूप में ही प्रवेश करके वैशम्पायन को देखूँ ?' ऐसा सोंच कर छत्र, चामर आदि राजचिह्नों के साथ-साथ राजकुमारों को रोककर, हटाकर, बहुत वेग से दौड़ने वाले तीन-चार घोड़ों (घुड़सवारों) को पीछे लिये हुए, अपने सिर को दुपट्टे से ढक कर बहुत तेज दौड़ने वाले इन्द्रायुध घोड़े के द्वारा वह अनेक प्रकार के कार्यों में लगे हुए समस्त लोगों वाले उस स्कन्धावार में अचानक (अप्रत्याशित रूप में) ही पहुँच गया ।

प्रविशंश्च प्रत्यावासकं वहन्नेव 'कस्मिन्प्रदेशे वैशम्पायनावासः ? इति पप्रच्छ। ततस्तत्सन्निहिताभिः स्त्रीभिरितरत्वादप्रत्यभिज्ञाय यथारब्धकर्मव्यग्राभिरेवोद्बाष्पशून्यवदनाभिः 'भद्र किं पृच्छसि, कुतोऽत्र वैशम्पायनः' इत्यावेद्यमाने 'आ पापाः किमेवमसम्बद्धं [1]प्रलपथ' इति शून्यहृदय एव ताः प्रतारयन्नन्तर्भिन्नहृदयत्वान्नापराः पृच्छन्नेमेवोत्त्रस्त इव हरिणशावकः, यूथपरिभ्रंशविलोल इव [2]करिकलभकः, धेनुविरहादुत्कर्ण इव तर्णको न

प्रविशंश्चेति। प्रविशन् = प्रवेशं कुर्वन्, च, प्रत्यावासकम् = आवासकम् आवासकं प्रति, सर्वेषु आवासेष्विति भावः, वहन् = गच्छन्, अश्वं नयन्, एव, वा, 'वैशम्पायनः = मम मित्रम्, कस्मिन् = अज्ञाते, प्रदेशे = स्थाने, वर्तते इति शेषः ? इति = एवम्, पप्रच्छ = पृष्टवान्। ततः = तदनन्तरम्, तत्सन्निहिताभिः—तस्य (= वैशम्पायनावासस्य) सन्निहिताभिः, (= निकटस्थायिनीभिः), स्त्रीभिः = नारीभिः, इतरत्वात् = भिन्नत्वात्, अप्रत्यभिज्ञाय = अविज्ञाय, तस्य परिचयमज्ञात्वेति भावः, यथेत्यादिः—यथा (= स्वानुरूपम्) आरब्धम् (= उपक्रान्तम्) यत् कर्म (= कृत्यम्) तेन तस्मिन् वा व्यग्राभिः (= संसक्ताभिः, व्यापृताभिः), एव, उद्बाष्पेत्यादिः—उद्गताः (= निःसृताः, समुत्पन्नाः) बाष्पाः (= अश्रुजलानि) येभ्यस्तादृशानि अतएव शून्यानि (= रिक्तानि, मलिनानीति भावः) वदनानि (= मुखानि) यासां तादृशीभिः, स्त्रीभिः—"भद्र = कल्याणवन्, किम्, पृच्छसि = पृच्छाविषयीकरोषि ? अत्र=अस्मिन् प्रदेशे, वैशम्पायनः = एतन्नामाः, कुतः = क्व ? कुत्रापि न वर्तते इति तद्भावः। इति = एवम्, आवेद्यमाने = सूच्यमाने सति, आः = इदं क्रोधे, पापाः = पापिन्यः !, एवम् = इत्थम्, असम्बद्धम् = असमञ्जसम्, अप्रकृतम्, किम्, प्रलपथ = प्रलापं कुरुथ, इति, शून्यहृदयः = रिक्तचेताः, एव, ताः = स्त्रीः, द्वारपालिन्यादिकाः, प्रतारयन् = भर्त्सयन्, आक्रोशन्, अन्तर्भिन्नहृदयत्वात्—अन्तः (= आभ्यन्तरे) भिन्नम् (= विदीर्णम्, छिन्नं वा) हृदयम् (= चित्तम्) यस्य स तस्य भावस्तस्मात्, अपराः = अन्याः स्त्रीः, अपृच्छन् = अप्रश्नविषयीकुर्वन् एव, उत्त्रस्तः = भयभीतः, हरिणशावकः = मृगशिशुः, इव। यूथेत्यादिः—यूथात् = स्वसमूहात्, यः परिभ्रंशः = पार्थक्यम्, परित्यागः, तस्मात् विलोलः (= चञ्चलः, खिन्नः), करिकलभः = गजस्य पोतः, इव। धेनुविरहात् = गोः वियोगात्, उत्कर्णः = ऊर्ध्वीकृतश्रवणः, तर्णकः = वत्सकः, इव, [अत्र सर्वेषूपमा स्पष्टा], न, किञ्चित् = किमपि वस्तु, पश्यन् =

प्रवेश करते हुए ही प्रत्येक आवास (कैम्प) से जाते हुए ही 'वैशम्पायन का आवास किस जगह है ?' ऐसा पूछा। इसके बाद वहाँ पर एकत्रित स्त्रियों ने कोई दूसरा होने के कारण न पहचान कर अपने-अपने कामों में लगी रहती हुई ही, आसुओं से भरे तथा सूने-सूने मुखवाली होती हुई 'श्रीमन् ! क्या पूछते हो, यहाँ वैशम्पायन कहाँ से होगा ?' ऐसा कहा तब 'अरे पापिनियों, यह क्या अनर्गल बक रही हो ?' ऐसे सूने हृदयवाला होता हुआ ही उन्हें डाँटता-फटकारता हुआ, भीतर से हृदय के फट जाने (दिल टूट जाने) के कारण अन्य स्त्रियों से बिना पूछता हुआ ही, डरे हुए मृग के बच्चे जैसा, समूह से छूट जाने से चंचल बने हाथी के बच्चे जैसा, गाय से बिछुड़ जाने से कान ऊपर उठाये हुए बछड़े जैसा, न कुछ देखता हुआ, न कुछ बोलता हुआ,

---

१. प्रलपन्ति, प्रलयथ। २. कलभः।

किंचित्पश्यन्न किंचिद्वदन्न किंचिदालपन्न किंचिदाकर्णयन्न किंचिन्निरूपयन्न क्वचित्तिष्ठन्न कंचिदाह्वयन्, क्वागतोऽस्मि, किमर्थमागतोस्मि, क्व चलितोस्मि, क्व गच्छामि, किं पश्यामि-किमारब्धं मया, किं वा करोमीति सर्वमेवाचेतयमानो[1]ऽन्ध इव बधिर इव मूक इव जड इवाविष्ट इव कटकमध्यदेशं यावत्तादृशेनैव वेगेनावहत् ।

अथेन्द्रायुधप्रत्यभिज्ञानाद्वार्तयैवानुप्रधावितराजपुत्रदर्शनाच्च[2] 'देवश्चन्द्रापीड' इति समन्तात् ससंभ्रमप्रधावितानामचेतितोत्तरीयस्खलनानामुद्बाष्पशून्यदृष्टीनां दूरादेव लज्जया

अवलोकयन्; न, किञ्चित्, वदन् = भाषमाणः, न किञ्चित्, आलपन् = आलापं कुर्वन्, न, किञ्चित्, आकर्णयन् = शृण्वन्, न, किञ्चित्, निरूपयन् = भावयन्, न क्वचित् = कुत्रापि स्थाने, तिष्ठन् = निषीदन्, न, कञ्चिद् = कमपि जनम्, आह्वयन् = आकारयन्; क्व = कुत्र, आगतः = आयातः, सम्प्राप्तः, अस्मि = वर्ते ? किमर्थम् = किम्प्रयोजनम्, आगतः = आयातः, अस्मि ? क्व = कुत्र, चलितः = प्रस्थितः, प्रयातः, अस्मि ? क्व, गच्छामि = व्रजामि ? किम्, पश्यामि = विलोकयामि ? मया = चन्द्रापीडेन, किम् = अज्ञातम्, आरब्धम् = उपक्रान्तम् ? वा = अथवा, किम् = अनिश्चितम्, करोमि = विदधामि ? इति = पूर्वोक्तम्, सर्वम्=सकलम्, अचेतयमानः = अविजानन्, एव, अन्धः = नेत्रहीनः, इव, बधिरः = श्रवणहीनः, इव, मूकः=वाक्शून्यः, इव, जड =निश्चेतनः, इव, आविष्टः = भूतादिग्रस्तः, इव, कटक-मध्यदेशम् = सैन्यमध्यभागम्, यावत् = पर्यन्तम्, तादृशेन = तथाविधेन, एव, वेगेन = जवेन, अवहत् = अगच्छत्, सत्वरगमनसूचनार्थं 'वह' धातोः प्रयोगः ।

अथेति । अथ = अनन्तरम्, इन्द्रायुधप्रत्यभिज्ञानात् = इन्द्रायुधाख्याश्वपरिज्ञानात्, 'अयम् इन्द्रायुधोऽश्वः, अतश्चन्द्रापीडेनैव भाव्यम्' इति, वार्त्तया = कर्णपरम्परया, समाचारेणेति भावः, अनुप्रधावितेत्यादिः—अनु (= पश्चात्) प्रधावितानाम् (= सत्वरगमनशीलानाम्) राजपुत्राणाम् (= राजकुमाराणाम्) दर्शनात् (= अवलोकनात्), च, देवः = स्वामी, चन्द्रापीडः, आगतोऽस्ति' इति कृत्वा, समन्तात् = परितः, ससम्भ्रमप्रधावितानाम्—ससम्भ्रमम् (= सत्वरम्, सादरं वा) प्रधावितानाम् (= प्रचलितानाम्), अचेतितेत्यादिः—अचेतितम् (= अविज्ञातम्) उत्तरीयस्य (= उपरिवस्त्रस्य) स्खलनम् (= परिभ्रंशः) यैः तेषां तादृशानाम्, उद्बाष्पेत्यादिः—उद्बाष्पेण (= रोदनेन) शून्याः (= रिक्ताः) दृष्टयः (= नेत्राणि) येषां तादृशानाम्, दूराद् = विप्रकृष्टाद्, एव, लज्जया = त्रपया, प्रणामक्रियया = प्रणति-व्यापारेण, च समम् = सार्धम्, एव, अवनमताम्=

न कुछ बड़बड़ाता हुआ, न कुछ सुनता हुआ, न कुछ समझता या देखता हुआ, न कहीं बैठता (ठहरता) हुआ, न किसी को बुलाता हुआ—कहाँ आ गया हूँ ? किस लिये आ गया हूँ ? कहाँ के लिये चला हूँ ? कहाँ जाऊँ ? क्या देखूं ? मैंने यह क्या कर दिया है ? अब मैं क्या करूँ ?' इस प्रकार से सभी कुछ न जानता-समझता हुआ, अन्धा जैसा, बहरा जैसा, गूंगा जैसा, जड़ जैसा, भूतादि से ग्रस्त जैसा होता हुआ सेना के मध्य स्थान तक उसी तेजी के साथ चलता चला गया ।

इसके बाद इन्द्रायुध अश्व को पहचान लेने के कारण और समाचार से ही पीछे दौड़ते हुए राजकुमारों को देखने के कारण 'महाराज चन्द्रापीड [आ गये हैं'] इसलिए चारों ओर जल्दी-जल्दी घबड़ाहट में दौड़े हुए, दुपट्टा गिरने की चिन्ता न किये हुए, आसुओं से युक्त और सूखी आखों वाले, दूर से ही लज्जा से और प्रणाम क्रिया से एक साथ ही सिर को झुकाये हुए हजारों राजन्यों =

---

१. अचिन्तय० । २. राजपुत्रलोक० ।

प्रणामक्रियया च सममेवावनमतां राजन्यसहस्राणां मुखान्यवलोक्य 'क्व वैशम्पायनः' इत्यपृच्छत्। ततस्ते सर्वे सममेव विचार्य 'अस्मिंस्तरुतलेऽवतरतु तावद् देवस्ततो यथावस्थितं विज्ञापयामः' इति न्यवेदयन्।

चन्द्रापीडस्य तेन तेषां स्फुटाख्यानादपि कष्टतरेण वचसान्तःशल्यगर्भं स्फुटितमिव हृदयमासीत्। केवलं तत्कालप्रणयिनी मूर्च्छा सा धारणमकरोत्। तुरगादवतारितं च कुथोपविष्टं पितुः समवयोभिरनतिक्रमणीयैर्मूर्धाभिषिक्तपार्थिवैर्धृतमात्मानं तदानीं न वेदितवान्[1]। उपलब्धसंज्ञोऽपि च वैशम्पायनस्यादर्शनादात्मतत्त्वदर्शनात्[2]—'किमेतत्, क्वाहं

अवनम्राणाम्, विनतानाम्, राजन्यसहस्राणाम् = क्षत्रियनृपसहस्राणाम्, मुखानि = आस्यानि, अवलोक्य = दृष्ट्वा, 'वैशम्पायनः = एतन्नामा मम सुहृद्, क्व = कुत्र, वर्तते ?' इति शेषः, इति = एवम्, अपृच्छत् = प्रश्नमकरोत्। ततः = प्रश्नश्रवणानन्तरम्, ते = पूर्वोक्ताः राजन्याः, सर्वे = समस्ताः, समम् = सार्धम्, तत्कालं वा, एव, विचार्य = सम्मन्त्र्य, 'देवः = राजकुमारः, तावत् = प्रथमम्, अस्मिन् = पुरोवर्तिनि, तरुतले = वृक्षस्याधोदेशे, अवतरतु = अवरोहतु, अश्वादिति शेषः, ततः = तदनन्तरम्, यथावस्थितम् = यथाभूतं वृत्तान्तम्, विज्ञापयामः = सूचयामः, इति = इत्थम्, न्यवेदयन् = निवेदितवन्तः।

चन्द्रापीडस्येति। चन्द्रापीडस्य = राजकुमारस्य, हृदयम् = चित्तम्, स्फुटाख्यानाद् = प्रकटं यत् कथनं तस्माद्, अपि = तदपेक्षयापीति, कष्टतरेण = अधिकपीडाप्रदायकेन, तेषाम् = राजन्यानाम्, वचसा = वचनेन, अन्तरित्यादिः—अन्तः (= मध्ये) शल्यम् (= बाणाग्रम्) यस्य तादृशः गर्भः (= मध्यभागः) यस्य तत् तादृशम्, हृदयम्=चित्तम् स्फुटितम्=विदीर्णम्, इव, आसीत्=अभूत्। [अत्र 'अन्तः शब्दस्य गर्भशब्दस्य च समानार्थकत्वेन सह प्रयोगोऽसमीचीनः प्रतीयते। अत्रोत्प्रेक्षा।] केवलम् = तन्मात्रम्, तत्कालप्रणयिनी = तस्मिन् समये स्नेहवती, सा, मूर्च्छा = मोहः, धारणम् = रक्षितम्, अकरोत् = कृतवती। तदानीं समुत्पन्नया मूर्च्छयैव तस्य हृदयं प्राणाश्च धृता इति भावः। तुरगात् = अश्वात्, अवतारितम् = उत्तारितम्, कुथोपविष्टम् = आसने निषण्णम्, च, पितुः = जनकस्य तारापीडस्य, समवयोभिः = तुल्यावस्थाभिः, अनतिक्रमणीयैः – अनुल्लङ्घनीयैः, मूर्धाभिषिक्त-पार्थिवैः = विहितराज्याभिषेकैः नृपैः, धृतम् = धारितम्, अङ्कादौ गृहीतम्, आत्मानम् = स्वम्, तदानीम् = तस्मिन् समये, न = नैव, वेदितवान् = ज्ञातवान्। लब्धसंज्ञः = प्राप्तचेतनः अपि, च वैशम्पायनस्य = स्वमित्रस्य, अदर्शनात् = अनवलोकनात् आत्मतत्त्वदर्शनात् = आत्मनः (= स्वस्य) तत्त्वम् (= स्वरूपम्) तस्य दर्शनात् (= अवलोकनात्)

नृपकुमारों के मुखों को देखकर 'वैशम्पायन कहाँ है ?' ऐसा पूछा। इसके बाद उन सभी ने एक साथ ही विचार करके—'स्वामी पहले इस वृक्ष के नीचे उतरिये उसके बाद जैसा हुआ है, आपसे निवेदित करते हैं'—ऐसा निवेदन किया। स्पष्ट कथन से भी अधिक कष्ट देने वाली उनकी वाणी से चन्द्रापीड का हृदय भीतर बाण रखे हुये सा विदीर्ण हो गया। उस समय में स्नेह करने वाली मूर्छा (बेहोशी) ने ही केवल [हृदय को] धारण किया। पिता के समान आयु वाले, अलंघनीय (आज्ञा वाले) तथा मूर्धाभिषिक्त राजाओं द्वारा घोड़े से उतारे गये, आसन पर बैठे हुये, थामे गये (सहारा दिये गये) अपने को उस समय नहीं जान सका। होश प्राप्त कर लेने पर भी वैशम्पायन को न देखने के कारण और अपने स्वरूप को देखने के कारण—

१. चेतितवान्। २. क्वचित्तु नेदं पठ्यते, कुत्रचित्तु आत्मनश्च दर्शनादिति पाठः।

वर्ते, किं वा मयैतच्चरितमिति, भ्रमारूढ इव मुह्यद्भिरिवेन्द्रियैः सर्वमेवानुत्प्रेक्षमाणः[1] केवलं [2]स्कन्धावारागमनेनैव तस्याभावादन्यदसम्भावयन् दुर्विषहपीडाभिहतेन [3]चेतसा किमारटामि, किं हृदयमवष्टभ्य तूष्णीमासे, किमात्मानमाहृत्य[4] हृदयात् प्राणैर्वियोजयामि, किमेकाकी कांचिद्दिशं गृहीत्वा प्रव्रजामीति कर्तव्यमेव[5] नाध्यगच्छत्। अन्तर्द्रवन्निव दह्यमान इव स्फुटन्निव सहस्रधा दुःखेन चकार चेतसि—'अहो मे रम्योऽप्यरमणीयः संवृत्तो जीवलोकः।

'नाध्यगच्छद्' इत्यत्रान्वयः। किम् = अज्ञातम्, एतत् = इदम्, वर्तते इति शेषः? क्व, अहम् = चन्द्रापीडः, वर्ते = भवामि? वा = अथवा, मया, एतत् = अज्ञातम्, किम्, चरितम् = विहितम्? इति = एवम्, भ्रमारूढः = संशयाक्रान्तः, इव, मुह्यद्भिः = मोहमुपगच्छद्भिः, इव, इन्द्रियैः = करणैः, सर्वम् = सकलम्, एव, अनुत्प्रेक्षमाणः = अनवलोकयन्, अभावयन्, केवलम् = तन्मात्रम्, स्कन्धावारागमनेन = सैन्यसमूहस्य परावर्तनेन, एव, तस्य = वैशम्पायनस्य, अभावात् = अनुपलब्धेः, अन्यत् = वैशम्पायनाद् भिन्नम्, असम्भावयन् = असम्भावनाविषयीकुर्वन्, वैशम्पायनदृष्ट्वा तस्य मरणमात्रमेव विचारयन्निति भावः, दुर्विषहेत्यादि—दुर्विषहा (= दुःखेन सोढुं शक्या) या पीडा (= व्यथा) तया अभिहतेन (= आहतेन, प्रहतेन), चेतसा = मनसा, किम् = इदं प्रश्ने, आरटामि = विलपामि? अथवा, किम् हृदयम् = चित्तम्, अवष्टभ्य = अवष्टम्भितं कृत्वा, दृढीकृत्य, तूष्णीम् = मौनम्, आसे = निषीदामि? अथवा, किम्, आत्मानम् = स्वम्. आहृत्य = आहतं कृत्वा, हृदयात् = चित्तात्, प्राणैः = असुभिः वियोजयामि = पृथक् करोमि? अथवा, किम्, एकाकी = अद्वितीयः, सन्, काञ्चिद् = अनिश्चिताम्, दिशम् = दिशाम्, गृहीत्वा = धृत्वा, तस्यां दिशि गत्वेति भावः, प्रव्रजामि = प्रव्रज्यां गृह्णामि, इति = एवम्, कर्तव्यम् = करणीयम्, एव, न = नैव, अध्यगच्छत् = अज्ञासीत्। अन्तः = हृदये, द्रवन् = द्रवतां प्राप्नुवन्, इव, दह्यमानः = प्रज्वलयमानः, इव, दुःखेन = क्लेशेन, सहस्रधा = अनेकधा, स्फुटन् = विदीर्यमाणः भवन्, इव, चेतसि = मनसि, चकार = कृतवान् विचारितवानिति भावः।

स किं विचारितवानिति प्रतिपादयति—अहो इत्यादिना। अहो = इदं खेदे आश्चर्ये वा, मे = मम, रमणीयः = मनोहरः, अपि, जीवलोकः = प्राणिलोकः, अरमणीयः = अमनोहरः,

---

'यह क्या हुआ है? मैं कहाँ आ गया हूँ? मैंने यह क्या कर डाला है?—ऐसा भ्रम में पड़ा हुआ सा, मोह को प्राप्त करने वाली इन्द्रियों से सभी कुछ न देखता (समझता) हुआ, अकेली सेना के आ जाने से ही उस वैशम्पायन के अभाव अर्थात् साथ में न आने के कारण अन्य किसी को भी (आया हुआ) न समझता हुआ, अत्यन्त कष्ट से असहनीय पीडा से पीडित चित्त से 'क्या चिल्लाऊँ? अथवा क्या हृदय को थाम कर चुपचाप बैठा रहूँ? अथवा क्या आत्मघात करके हृदय से प्राणों को निकाल दूँ? अथवा अकेला ही किसी दिशा को पकड़ कर चल दूँ या संन्यास ग्रहण कर लूँ? इस प्रकार से किसी भी कर्तव्य का ज्ञान नहीं कर सका। भीतर ही भीतर घुलता हुआ सा, जलता हुआ सा और दुःख के कारण हजारों प्रकार से विदीर्ण होता हुआ सा मन में सोचने लगा—'ओह, रमणीय होता हुआ भी जीवलोक = संसार मेरे लिये अरमणीय बन गया है। लोगों से भरी हुई

---

१. अनुत्प्रेक्ष्यमाणः। २. स्कन्धावारानुगमनमिवासादसावन्यत्।
३. अभिहतेनेव। ४. आहन्य हठात्, आहन्मि हृदयात्। ५. इति कर्तव्यताम्।

वसन्त्यपि[1] शून्यीभूता पृथिवी। सचक्षुषोऽप्यन्धाः ककुभो जाताः। सुनिष्पन्नमपि हतं जन्म। सुरक्षितमपि मुषितं जीवितफलम्। कं[2] पश्यामि। कमालपामि। कस्मै विश्रम्भं कथयामि। केन सह सुखमासे। किमद्यापि मे जीवितेन कादम्बर्यापि च[3]। वैशम्पायनस्य कृते क्व गच्छामि[4]। कं पृच्छामि। कमभ्यर्थये। को मे ददातु पुनस्तादृशं मित्ररत्नम्। कथं मया तातस्य शुकनासस्य चात्मा वैशम्पायनेन विना दर्शयितव्यः। किमभिधाय च तनयशोकविह्वलाम्बा[5] मनोरमा वा संस्थापयितव्या। किं भूमिः काचिदसिद्धा तां साधयितुं पश्चात्

दुःखकर इति भावः, संवृत्तः = सञ्जातः। वसन्ती = लोकाश्रयभूता, अपि, पृथिवी = वसुन्धरा, शून्यीभूता = रिक्तीभूता। सचक्षुषः = नेत्रयुक्तस्य, यद्वा ककुभः विशेषणमिदम्—सनेत्राः, अपि, ककुभः = दिशः, अन्धाः = दृष्टिहीनाः, जाताः = भूताः। सु = सुष्ठु, निष्पन्नम् = सञ्जातम्, अपि, जन्म = उत्पत्तिः, हतम् = विनष्टम्। सुरक्षितम् = सम्यग् परित्रातम्, अपि, जीवितफलम् = जीवनस्य फलम्, उद्देश्यम्, मुषितम् = अपहृतम्। कम् = अज्ञातम्, पश्यामि = विलोकयामि? कम्, आलपामि = वदामि, व्याहरामि? कस्मै = अज्ञाताय, विश्रम्भम् = रहस्यम्, स्वाशयम्, कथयामि = निवेदयामि? केन = अज्ञातेन, सह = सार्धम्, सुखम् = सुखपूर्वकं यथा स्यात् तथा, आसे = तिष्ठामि? अद्यापि = अधुनापि, मे = मम, चन्द्रापीडस्य, जीवितेन = प्राणैः, कादम्बर्या = गन्धर्व-राजकुमार्या, अपि, च, किम् = न किमपि फलमिति भावः। वैशम्पायनस्य = स्ववयस्यस्य, कृते, क्व = कुत्र, गच्छामि = व्रजामि? कम् = अज्ञातम्, पृच्छामि = प्रश्नविषयीकरोमि? कम्, अभ्यर्थये = याचे, प्रार्थये वा? कः = अज्ञातः, मे = मह्यम्, पुनः = भूयः, तादृशम् = तथाविधम्, मित्ररत्नम् = सुहृद्रत्नम्, ददातु = प्रयच्छतु। मया = चन्द्रापीडेन, तातस्य = पितुस्तारापीडस्य, शुकनासस्य = वैशम्पायनजनकस्य, च, वैशम्पायनेन = एतन्नामकेन, विना = ऋते, आत्मा = स्वरूपम्, कथम् = केन प्रकारेण, दर्शयितव्यः = दर्शनीयः, एकाकी तयोः सम्मुखं कथमपि गन्तुं न शक्नोमीति भावः। किम् = अज्ञातम्, अभिधाय = उक्त्वा, च तनयेत्यादिः—तनयः (= सुतः वैशम्पायनः) तस्य शोकः (= दुखम्) तेन विह्वला (= व्याकुला) अम्बा = माता, मनोरमा = एतन्नाम्नी, वा, संस्थापयितव्या = धैर्यं प्रापणीया, समाश्वासनीया।

वैशम्पायनानागमनस्य विकल्पान् विचारयति—किं भूमिरित्यादिना। किम् = इदं प्रश्ने, काचित् = काचन अज्ञाता, भूमिः = भूभागः, असिद्धा = अविजिता, ताम् = भूमिम्, साध-

भी पृथिवी सूनी हो गई है। आखों वाली भी दिशायें अन्धी बन गई है? अच्छी प्रकार से हुआ भी जन्म विनष्ट हो गया। सुरक्षित भी जीवन का फल लुट गया। किसको देखूं? किससे बोलूं? किसे रहस्य बतलाऊँ? किसके साथ सुख से बैठूं? क्या अब भी मेरे जीवन से अथवा कादम्बरी से कोई प्रयोजन हैं अर्थात् अब जीवन और कादम्बरी दोनों मेरे लिये व्यर्थ हो गये? वैशम्पायन [को पाने] के लिये कहाँ जाऊँ? किससे पूछूं? किससे प्रार्थना करूं? कौन फिर से मुझे वैसा मित्ररत्न देगा? वैशम्पायन के बिना अर्थात् अकेले अपने को कैसे पिता जी को तथा शुकनाश को दिखा सकता हूँ अर्थात् नहीं दिखा सकता। अथवा और क्या कह कर पुत्रशोक से व्याकुल माता मनोरमा (वैशम्पायन की माता) को धीरज बधाऊँ। सान्त्वना दूं? क्या कोई भूमि अभी जीती नहीं गई थी जिसे जीतने

१. वसन्ती। २. कं परं।
३. क्वचित्तु 'च' इदं नापि पठ्यते। ४. गच्छामि—इदं नापि पठ्यते। ५. मनोरमाम्बा।

स्थितः। उत नरपतिः कश्चिदसंघटितः तत्संघटनाय पश्चात्परिलम्बितः। कच्चिद्विद्या काचिदगृहीता तां ग्रहीतुं मयोत्संकलितः।' इत्येतानि चान्यानि चान्तरात्मना चिरमधोमुख एव विकल्प्य हृदयास्फुटनाद्विलक्ष्य[1]मिवापराधिनमिव महापातकिनमिवात्मानं मन्यमानो वदनमदर्शयञ्छनैः कृच्छ्रादिव तानप्राक्षीत्—'मय्यागते किं कश्चिदेवंविधोऽन्तरे संग्राम उत्पन्नः। [2]व्याधिर्वा कश्चिदाशुकार्यसाध्यरूपः समुपजातः, येनैतदतर्कितमेव महावज्रपतनमुपनतम्' इति।

यितुम् = जेतुम्, स्वायत्तीकर्तुम्, पश्चात् = पृष्ठे, स्थितः = अवस्थितः। उत = अथवा, कश्चित्, नरपतिः = भूपतिः, असंघटितः = असम्मिलितः, मम राज्ये इति शेषः, तत्संघटनाय = तस्य मेलनाय, स्वाधीनीकर्तुम्, पश्चात् = पृष्ठे, परिलम्बितः = विलम्बितः। अथवा, काचिद् = अज्ञाता, विद्या = ज्ञानविशेषः, अगृहीता = अप्राप्ता, ताम् = विद्याम्, ग्रहीतुम् = अधिगन्तुम्, मया = चन्द्रापीडेन, उत्संकलितः = प्रेषितः, दूरीकृतः, इति, एतानि = पूर्वोक्तानि, अन्यानि = भिन्नानि, च, अन्तरा = मध्ये, मनसा = चेतसा, चिरम् = दीर्घकालम्, अधोमुखः = निम्नवदनः, एव, विकल्प्य = विकल्पनां विधाय, हृदयास्फुटनात् = चित्तस्याविदारणात्, आत्मानम् = स्वम्, विलक्ष्यम् = लक्ष्यशून्यम्, (विलक्षम् = लज्जितम्) इव, अपराधिनम् = सागसम्, इव, महापातकिनम् = महापातकविशिष्टम्, इव, मन्यमानः = कलयन्, भावयन्, वदनम् = मुखम्, अदर्शयन् = दृष्टिविषयमकारयन्, शनैः = मन्दम्, कृच्छ्रात् = कष्टात्, इव, तान् = राजन्यान्, अप्राक्षीत् = पृष्टवान्।

तस्य प्रश्नं विशदयति—मयीत्यादिना। मयि = चन्द्रापीडे, आगते = आयाते सति, उज्जयिन्यामिति शेषः, अन्तरे = एतन्मध्ये, किम् = इदं प्रश्ने, कश्चित् = अज्ञातनामा, एवंविधः = एतादृशः, संग्रामः = समितिः, युद्धम्, उत्पन्नः = संजातः। अथवा, कश्चिद् = अज्ञातनामा, व्याधिः = आमयः, आशुकारी = शीघ्रं करोति मृत्युमिति शेषः, तादृशः, असाध्यरूपः—असाध्यम् (= प्रतिकर्तुमशक्यम्) रूपम् (= स्वरूपम्) यस्य तादृशः, समुपजातः = समुत्पन्नः। येन = हेतुना, अतर्कितम् = अचिन्तितम्, एव, एतत् = इदम्, अनुभूयमानम्, महावज्रपातनम् = महाशनि-पतनम्, उपनतम् = सम्प्राप्तम्, इति = इदं कथनसमाप्तौ।

के लिये पीछे से रुक गया है। अथवा कोई राजा [अपने साम्राज्य में] नहीं मिला लिया गया था उसे मिलाने के लिये पीछे विलम्ब कर रहा है। अथवा कोई विद्या नहीं सीख पाया है उसे ग्रहण करने के लिये मैंने प्रेरित किया है, रुकने के लिये छोड़ रखा है।' इनको तथा अन्य बातों को मन में देर तक नीचे मुख करके विचार करके [अपना] हृदय न फट पाने के कारण अपने को लज्जित सा, अपराधी सा, महापातकी सा समझता हुआ, अपना मुख न दिखाता हुआ बड़ी कठिनता से पूछने लगा—"मेरे चले आने पर बीच में क्या कोई ऐसा संग्राम हो गया ? अथवा तुरन्त ही मार डालने वाली कोई असाध्य बीमारी हो गई जिससे कि यह पहले से न सोचा गया महावज्रपात हो गया।'

---

१. विलक्षम्। २. महाव्याधिः।

ते त्वेवं पृष्टाः सर्वे सममेव [1]करद्वयापिहितश्रुतयो व्यज्ञपयन्—'देव शान्तं पापम्। देवशरीरमिव साग्रं[2] वर्षशतं ध्रियते वैशम्पायनः' इति। एतदाकर्ण्य [3]चोज्जीवित इवानन्दबाष्पनिर्भरः सम्भाव्य तान् सर्वानेव कण्ठग्रहेणावादीत्—'जीवतो वैशम्पायनस्यान्यत्र क्षणमप्यवस्थानमसम्भावयता मयैवं पृष्टा भवन्तः। तज्जीवतीत्येतानि तु तावत्कर्णे कृतान्यक्षराणि। अधुना किं वृत्तमस्य येनासौ नागतः। क्व वा स्थितः। केन वा प्रसङ्गेन

ते त्विति। ते = नृपादयः, तु, एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, पृष्टाः = प्रश्नविषयीकृताः, अनुयुक्ताः, सन्तः, सर्वे = सकलाः, समम् = सार्धम्, एव, न तु पृथक् पृथगिति भावः, करेत्यादिः—करयोः (= हस्तयोः) द्वयम् (= द्वितयम्, पाणियुगलम्) तेन अपिहिताः (= आच्छादिताः) श्रुतयः (= श्रोत्राणि) यैस्तादृशाः, व्यज्ञपयन् = निवेदितवन्तः। देव = स्वामिन्, पापम् = अमङ्गलम्, शान्तम् = प्रतिहतम्, भवतु, इति शेषः, वैशम्पायनः = शुकनासपुत्रः, देवशरीरम् = देवानां कायः, इव, साग्रम्—अग्रेण (= आधिक्येन) सहितम्, अत्यधिकमिति भावः, वर्षशतम् = हायनशतपर्यन्तम्, ध्रियते = जीवति। ध्रियते—इदं चिन्त्यम्, धारयतीति तूचितम्। यद्वा—आयुषा (कर्त्री) वैशम्पायनः (कर्म) वर्षशतं ध्रियते—इत्याशयः। एतत् = पूर्वोक्तम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, च, उज्जीवितः = उत्प्राणितः, इव, आनन्दबाष्पनिर्भरः—आनन्दस्य (= प्रसन्नतायाः, हर्षस्य) यः बाष्पः (= नेत्राम्बु, अश्रुजलम्), तेन निर्भरः (= परिपूर्णः) यद्वा—तस्य निर्भरः (= आधिक्यम्) यस्मिन् स तादृशः, सन्, तान् = पुरःस्थितान्, सर्वान् = सकलान्, एव, कण्ठग्रहेण = ग्रीवाश्लेषेण, गलालिङ्गनेन, सम्भाव्य = सम्मान्य, सन्तुष्टान् कृत्वेति भावः, अवादीत् = अवोचत्।

स किमवादीदिति वर्णयति—जीवत इत्यादिना। जीवतः = प्राणान् धारयतः, वैशम्पायनस्य = एतन्नामकस्य, अन्यत्र = मद्भिन्ने स्थाने मां विहायेति भावः, क्षणम् = स्वल्पकालम्, अपि, अवस्थानम् = स्थितिम् असम्भावयता = अकल्पयता, सम्भावनामकुर्वता, मया = चन्द्रापीडेन; भवन्तः = यूयम्, एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, पृष्टाः = अनुयुक्ताः। तत् = तस्मात्, जीवति = प्राणान् धारयति वैशम्पायनः, इति, एतानि = इमानि, अक्षराणि = वर्णाः, तावत्, कर्णे = श्रवणे, कृतानि = विहितानि, स जीवतीति तु श्रुतमेव। व्याकुलतां विशदयन्नाह—अधुना = इदानीम्, अस्य = एतस्य वैशम्पायनस्य, किम् = अज्ञातम्, वृत्तम् = सञ्जातम्, येन = कारणेन, असौ = एष वैशम्पायनः, न = नैव, आगतः = आयातः। वा = अथवा, क्व = कुत्र, स्थितः = अवस्थानं कृतवान्। वा = अथवा, केन = अज्ञातेन, प्रसङ्गेन = सम्बन्धेन, विषयेण;

इस प्रकार से पूछे गये वे सभी कानों को दोनों हाथों से ढकते हुए एक साथ ही कहने लगे—"महाराज, अमंगल का नाश हो। देवशरीर के समान वैशम्पायन सौ वर्षों से अधिक समय तक जियेंगें।' यह सुनकर उज्जीवित सा होता हुआ, आनन्द के आँसुओं से परिपूर्ण होता हुआ उन सभी को आलिङ्गन द्वारा (गले से लगाकर) सम्मानित करके कहने लगा—"जीवित रहते हुये वैशम्पायन की [अपने से अलग] किसी भी स्थान पर क्षण भर के लिये भी रहने की सम्भावना न करते हुये मैंने आप लोगों से ऐसा पूछा था। तो 'वह जीवित है' ये शब्द तो कानों में कर लिये अर्थात् सुन लिये। अब [यह बतलाइये कि] उसे क्या हुआ जिससे कि वह नहीं आया। अथवा कहाँ

---

१. करद्वय—इति नापि पठ्यते। २. साग्रवर्षशतं। ३. तु।

स्थितः[1]। कथं वा तमेकाकिनमुत्सृज्यायाता भवन्तः। कथं वा भवद्भिर्बलादपि नानीतोऽसावित्येतदवगन्तुमुत्ताम्यति मे हृदयम्' इति।

ते चैवं पृष्टा[2] व्यज्ञपयन्—'देव श्रूयतां यथावृत्तम्। पृष्ठतः स्कन्धावारमनुपालयद्भिः शनैः शनैर्वैशम्पायनेन सह भवद्भिरागन्तव्यमित्यादिश्य [3]गतवति देवे [4]तस्मिन्दिवसे सुगृहीतत्वाद् [5]घासेन्धनादिकस्योपकरणजातस्य न दत्तमेव प्रयाणं स्कन्धावारेण। अन्यस्मिन्नहन्याहतायां प्रयाणभेर्यां सज्जीक्रियमाणे साधने प्रातरेवास्मान् वैशम्पायनोऽभ्यधात्—

स्थितः। वा = अथवा, तम् = वैशम्पायनम्, एकाकिनम् = असहायम्, उत्सृज्य = त्यक्त्वा, भवन्तः = यूयम्; कथम् = किमर्थम्, आयाताः = परावृत्ताः ? वा = अथवा, भवद्भिः = युष्माभिः, असौ = एष वैशम्पायनः, बलादपि = हठाद् अपि, कथम् = किमर्थम्, न, आनीतः = प्रापितः, इति = इदम्, अवगन्तुम् = ज्ञातुम्, मे = मम चन्द्रापीडस्य, हृदयम् = चित्तम्, उत्ताम्यति = व्याकुलीभवति, इति = वाक्यसमाप्तौ।

ते इति। ते = नृपादयः, एवम् = अनेन प्रकारेण, पृष्टाः = अनुयुक्ताः, सन्तः, व्यज्ञपयन् = न्यवेदयन्। देव = स्वामिन्, यथावृत्तम् = यथाघटितम्, श्रूयताम् = आकर्ण्यताम्, भवता = चन्द्रापीडेनेति शेषः। पृष्ठतः = पश्चात्, स्कन्धावारम् = सैन्यम्, अनुपालयद्भिः = प्रतीक्षमाणैः, अनुरक्षद्भिर्वा, भवद्भिः = युष्माभिः, वैशम्पायनेन = भवद्वयस्येन, सह = सार्धम्, शनैः शनैः = मन्दं मन्दम्, आगन्तव्यम् = आगमनीयम्, इति = एवम्, आदिश्य = आज्ञाप्य, आगतवति = प्रचलितवति, सति, देवे = राजकुमारे, भवति, तस्मिन्, दिवसे = दिने, यदा भवान् उज्जयिनीं प्रति प्रस्थित आसीत् तदैवेति भावः, घासेन्धनादिकस्य = यवस-दार्वादिकस्य, उपकरणजातस्य = साधनसमूहस्य, सुगृहीतत्वात् = सुसञ्चितत्वात्, सुलभत्वादिति भावः, हेतोः, स्कन्धावारेण = सैन्यसमूहेन, प्रयाणम् = प्रस्थानम्, चलनम्, न = नैव, दत्तम् = कृतम्, एव। तत्र उपयोगिनी सामग्री सरलतया सुलभाऽसीदिति विचार्य गमनार्थं त्वरा न करणीयेति विचार्य तस्मिन् दिने सैन्यं ततः न प्रचलितमिति भावः। अन्यस्मिन् दिने = अपरस्मिन् दिवसे, प्रयाणभेर्याम् = प्रस्थानसूचक दुन्दुभौ, आहतायाम् = प्रताडितायाम्, सत्याम्, साधने = अश्वादिके, सज्जीक्रियमाणे = सन्नद्धतां प्राप्यमाणे, प्रातः = प्रत्यूषे, एव, वैशम्पायनः = भवतो वयस्यः, अस्मान् = नः, अभ्यधात् = अकथयत्। पुराणे = पञ्चलक्षणात्मके ग्रन्थविशेषे, अच्छोदाख्यम्

रुका है ? किस प्रसंग (कारण, प्रयोजन) से रुका है ? और किस कारण उसे अकेला छोड़कर आप लोग वापस यहाँ चले आये। और क्यों नहीं आप लोग बलपूर्वक भी उसे ले आये ?—यह सब जानने के लिये मेरा हृदय उतावला = बेचैन हो रहा है।'

इस प्रकार से पूछे गये वे लोग कहने लगे—"महाराज, सुनिये जैसा घटित हुआ। 'पीछे से सेना की रक्षा या प्रतीक्षा करते हुये आप लोग वैशम्पायन के साथ धीरे-धीरे आइयेगा'—ऐसा आदेश देकर स्वामी आपके [वहाँ से] चले आने पर घास, इन्धन आदि सामग्री के पर्याप्त संचित हो जाने से अथवा सरलता से सुलभ होने से स्कन्धावार = सैन्यसमूह उस दिन चला ही नहीं, अर्थात् वहीं रुका रहा। दूसरे दिन प्रस्थान की सूचना देने वाली भेरी (धौंसा) के बजा दिये जाने और [हाथी घोड़ा आदि] उपकरणों के तैयार किये जाने पर सवेरे-सबेरे ही वैशम्पायन हम लोगों से

१. स्थितः—इदं नापि पठ्यते। २. पृष्टाः। ३. आगतवति।
४. तस्मिंस्तु। ५. यास०।

'अतिपुण्यं [1]ह्यच्छोदाख्यं सरः पुराणे श्रूयते । तदस्मिन् स्नात्वा प्रणम्य [2]चास्यैव तीरभाजि सिद्धायतने भगवन्तं भवानीप्रभुं महेश्वरं शशाङ्कशकलशेखरं व्रजामः । दिव्यजनसेविता केन कदा पुनः स्वप्नेपि भूमिरियमालोकिता ।' इत्यभिधाय चरणाभ्यामेवाच्छोदसरस्तीरमयासीत् । तत्र चातिरम्यतयैव सर्वतो दत्तदृष्टिः संचरन्नमरकामिनीश्रोत्रशिखरारोहणप्रणयोचितैस्तरंगानिलाहतिविलोलवृत्तिभिः किसलयैरविरलकुसुममकरन्दलोभपुञ्जितानां च मत्तमधुलिहां मञ्जुना शिञ्जितरवेण दूरादाह्वयन्तमिव, मरकतमणि-

= अच्छोदनामकम्, सरः = तडागः, अतिपुण्यम् = अतिशयेन पवित्रम्, हि = निश्चयेन, श्रूयते आकर्ण्यते । तत् = तस्मात् हेतोः, अस्मिन् = अच्छोदसरोवरे, स्नात्वा = स्नानं कृत्वा, अस्य = एतस्य, एव, तीरभाजि = तटस्थिते, सिद्धायतने = देवमन्दिर-विशेषे, भवानी-प्रभुम् = पार्वतीवल्लभम्, शशाङ्केत्यादिः—शशाङ्कः (= चन्द्रः) तस्य शकलः (= खण्डः) शेखरः (= शिरोभूषणम्) यस्य तं तादृशम्, भगवन्तम् = देवम्, महेश्वरम् = शिवम्, प्रणम्य = प्रणतिं कृत्वा, च, व्रजामः = चलामः, सामीप्ये भविष्यति लटि, तेन = व्रजिष्याम इति भावः । दिव्यजनसेविता = स्वर्गवासि-देवगणादिभिरध्युषिता, इयम् = एषा, भूमिः = भूभागः, स्वप्नेपि = स्वापावस्थायाम्, केन, अपि कदा = कस्मिन् समये, आलोकिता = दृष्टा, इति = समाप्तौ, अभिधाय = कथयित्वा, चरणाभ्याम् = पादाभ्याम्, एव, पदातिरिति भावः, अच्छोदसरस्तीरम् = अच्छोदसरोवरतटम्, अयासीत् = अगमत् ।

तत्रत्यं रमणीयत्वं वर्णयति—तत्र चेत्यादिना । तत्र = अच्छोदसरस्तटे, च, अतिरम्यतया = अतिशयमनोहरतया, एव, सर्वतः = सर्वासु दिशासु, दत्तदृष्टिः = न्यस्तनेत्रः, विलोकयन् इति भावः, सञ्चरन् = विचरन्, अमरेत्यादिः—अमराः (= देवाः) तेषां कामिन्यः (= अङ्गनाः) तासां यानि श्रोत्रशिखराणि (= कर्णोर्ध्वभागाः) तेषु आरोहणम् (= सम्प्रापणम्) तस्मिन् प्रणयः (= स्नेहः) तत्र उचितैः (= योग्यैः) तरङ्गेत्यादिः—तरङ्गानाम् (= वीचीनाम्) य अनिलः (= पवनः) तेन या आहतिः (= आघातः, सघर्षः) तया विलोला (= चञ्चला) वृत्तिः (= व्यापारः) येषां तैः तादृशैः, किसलयैः = पल्लवैः । अविरलेत्यादिः—अविरलः (= निबिडः, प्रचुर इति भावः) यः कुसुमानाम् (= पुष्पाणाम्) मकरन्दः (= रसः, मरन्दः) तस्य लोभः (= तृष्णा, लिप्सा) तेन पुञ्जितानाम् (= एकीभूतानाम्), च, मत्तमधुलिहाम् = क्षीबभ्रमराणाम्, मञ्जुना = मनोहरेण, शिञ्जितरवेण = गुञ्जनस्वरेण, दूरात् = विप्रकृष्टात्, आह्वयन्तम् = आकारयन्तम्, इव । [अत्र द्वितीयैकवचनान्तानि पदानि वक्ष्यमाणस्य 'लतामण्डपम्' इत्यस्य विशेषणानि ।]

कहने लगा—"पुराणों में यह 'अच्छोद' सरोवर बहुत पुण्यदायक सुना जाता है, वर्णित है । इस कारण इसमें स्नान करके और इसी के तट पर स्थित मन्दिर में विद्यमान पार्वती-पति, चन्द्रमा की कला को शिरोभूषण बनाये हुये भगवान् शंकर को प्रणाम करने के बाद चलते हैं । दिव्य लोगों लोगों द्वारा सेवित इस भूमि पर अब फिर स्वप्न में भी कब किसे देखना (आना) है ।" ऐसा कह कर पैदल ही अच्छोद सरोवर के किनारे चल दिया और वहाँ पर अत्यधिक रमणीयता के कारण ही सभी ओर दृष्टि डालते हुए (देखते हुए), विचरण करते हुए तट की लताओं का एक मण्डप = कुञ्ज देखा—जो (तट-लतामण्डप) देवाङ्गनाओं के कानों के अग्रभाग पर आरोहण के स्नेह के योग्य प्रेमी और तरङ्गों की हवा की टक्करों से हिलने वाले पल्लवों तथा फूलों के घने मकरन्द (पुष्परस) के लोभ से इकट्ठे हुये मदमत्त भ्रमरों की मधुर गुनगुनाहट द्वारा दूर से बुला सा

१. तदच्छोदसरः । २. वा ।

श्यामया प्रभयानुलिम्पन्तमिव समं दशदिग्भागान्, अदत्तदिवसकरकिरणप्रवेशतया दिवाप्यन्तर्निशीथिनीमिव[1] बिभ्राणम्, चिरपरिचितैरपि मेघोद्गमाशङ्कया मुहुर्मुहुरुन्मुक्तमधुरकेकारवैर्वनशिखण्डिभिरुत्कन्धरैरवलोक्यमानम्, पदमिव जलदकालस्य, प्रतिपक्षमिव सर्वसन्तापानाम्, निजावासमिव जडिम्नः, निर्गममार्गमिव सुरभिमासस्य, आश्रयमिव मकरध्वजस्य, उत्कण्ठाविनोदस्थानमिव रतेः, आस्पदमिव सर्वरमणीयानाम्, [2]अनवरतवलितसुरभिशीतलाच्छोदसरस्तरंगमारुताभिवीजिताभ्यन्तरशिलातलमन्यतमं तटलतामण्डपमद्राक्षीत् ।

मरकतेत्यादिः—मरकतमणिः (= अश्मगर्भरत्नम्) तद्वत् श्यामया (= कृष्णवर्णया), प्रभया = कान्त्या, समम् = समकालम्, सहैव, दशदिग्विभागान् = दशकाष्ठाभागान्, अनुलिम्पन्तम् = व्याप्नुवन्तम्, इव । अदत्तेत्यादिः—अदत्तः (= न दत्तः, न अनुमतः) दिवसकरस्य (= सूर्यस्य) किरणेभ्यः (= रश्मिभ्यः) प्रवेशः (= आभ्यन्तरगमनम्) येन तस्य भावस्तया, दिवा = दिवसे, अपि, अन्तः = मध्ये, निशीथिनीम् = रात्रिम्, बिभ्राणम् = धारयन्तम्, इव । चिरपरिचितैः = बहुकालात् सुज्ञातैः, अपि, मेघेत्यादिः—मेघस्य (= वारिदस्य) उद्गमः (= उदयः) तस्य शंकया (= आरेकया, भ्रान्त्या), मुहुर्मुहुः = बारंबारम्, असकृत्, उन्मुक्तेत्यादिः—उन्मुक्तः (=परित्यक्तः) मधुरः (=मनोहरः) केकारवः (=केकाध्वनिः) यैस्तैस्तादृशैः, वनशिखण्डिभिः = आरण्यमयूरैः, उत्कन्धरैः = उन्नमितग्रीवैः, सद्भिः, अवलोक्यमानम् = वीक्ष्यमाणम् । जलदकालस्य= वर्षासमयस्य, पदम् = स्थानम्, इव । सर्वसन्तापानाम् =समस्ततीव्रदाहानाम्, प्रतिपक्षम् = शत्रुम्, निराकरणकारकम्, इव । जडिम्नः = जडतायाः, शीतलतायाः, निजावासम् = स्वीयनिवासस्थानम्, इव । सुरभि-मासस्य = वसन्तमासस्य, निर्गम-मार्गम् = निष्क्रमणपथम्, इव । मकरध्वजस्य = कामदेवस्य आश्रयम् = आधारम्, इव । रतेः = कामप्रियायाः, उत्कण्ठेत्यादिः—उत्कण्ठायाः (= औत्सुक्यस्य) विनोदः (= अपनयनम्, उपशमनम्) तस्य स्थानम् (= स्थलम्, पदम्), इव । सर्वरमणीयानाम् = सकलमनोहराणाम्, पदार्थानाम्, आस्पदम् = प्रतिष्ठानम्, आधारम्, इव, अनवरतेत्यादिः—अनवरतम् (= निरन्तरम्) वलिताः (= चलिताः) सुरभयः (= सुगन्धयुक्ताः) शीतलाः (= शीताः) च, अच्छोदसरसः (=अच्छोदनामकसरोवरस्य) ये तरङ्गाः (=कल्लोलाः) तेषां मारुतैः (= पवनैः, तदुत्थापितवायुभिरिति भावः) अभिवीजितम् (= कृतवीजनम्) अभ्यन्तरम् (= मध्यवर्ति) शिलातलम् (= पाषाणखण्डम्) यस्य यस्मिन् वा तं तादृशम्, अन्यतमम् = तेषु एकं कमपि, लतामण्डपम् =लताकुञ्जम्, अद्राक्षीत् = अपश्यत् ।

रहा था, मरकत मणि जैसी श्याम वर्ण की कान्ति द्वारा दशों दिशाओं के विभागों को एक ही साथ लीप = व्याप्त सा कर रहा था; सूर्य की किरणों को प्रवेश न कर दे सकने के कारण दिन में भी अपने भीतर रात्रि को रखे (छिपाये)हुए सा था;बादलों के निकलने की आशंका से बार-बार मधुर केका ध्वनि करते हुये, गरदन ऊपर उठाये हुये चिरपरिचित भी मयूरों के द्वारा देखा जा रहा था; जो वर्षा ऋतु के स्थान सा, सभी सन्तापों का शत्रु सा, जडता=ठण्डक का अपना घर सा, वसन्त मास के निकलने के मार्ग सा, कामदेव का आश्रय = आधार सा, रति की उत्कण्ठा को हटाने वाले स्थान सा, सभी रमणीय वस्तुओं का स्थान = आश्रय सा था, जो लगातार बहती हुई अच्छोद सरोवर की सुगन्धित और शीतल तरंगों की हवाओं द्वारा शीतल = ठण्डे बनाये गये भीतरी शिलातल वाला था । [अर्थात् शीतल तरंगों की हवा के सम्पर्क से भीतरी शिलातल भी जिसका शीतल हो गया था, ऐसा एक तटलतामण्डप वैशम्पायन ने देखा ।]

---

१. निशीथमिव । २. ० चलित० ।

दृष्ट्वा च तमतिचिरान्तरितदर्शनं भ्रातरमिव तनयमिव सुहृदमिव चानन्यदृष्टिर्विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा विलोकयन् स्तम्भित इव[1] लिखित इवोत्कीर्ण इव पुस्तमय इव सुचिरमूर्ध्वमेव स्थित्वापारयन्निवाङ्गानि धारयितुमाक्रम्यमाण इव मूर्च्छयोन्मुच्यमान इवेन्द्रियैर्झटित्युन्मुक्ताङ्गः समुपविश्य भूमौ किमप्यन्तरात्मना स्मरन्निवानुध्यायन्निव निर्विकारवदनो[2] गलितलोचनपयोधारासन्तानस्तूष्णीमधोमुखस्तस्थौ। तथावस्थितं च[3] तमवलोक्यास्माकमुदपादि चेतसि चिन्ता—'येन केनचिदपह्रियन्त एव रसिकहृदयाः

दृष्ट्वा चेति। तम् = पूर्वोक्तं लतामण्डपम्, दृष्ट्वा = विलोक्य, च, अतीत्यादिः—अतिचिरात् (= बहुकालात्) अन्तरितम् (= व्यवहितम्) दर्शनम् (= विलोकनम्) यस्य तं तादृशम्, भ्रातरम् = सहोदरम्, इव, तनयम् = आत्मजम्, इव, सुहृदम् = सखायम्, इव, च, [अत्रोत्प्रेक्षैवोचिता न तूपमा], अनन्यदृष्टिः—न अन्यस्मिन् (= तद्भिन्ने) दृष्टिः (= नेत्रम्) यस्य स तादृशः सन्, विस्मृतनिमेषेण-विस्मृतः (=विस्मरणं प्रापितः) निमेषः (= निमीलनम्) यस्य तेन तादृशेन, चक्षुषा = नेत्रेण, विलोकयन् = पश्यन्, स्तम्भितः = स्तब्धतां प्राप्तः, निश्चेष्टः, इव, लिखितः = लेखनविषयीभूतः, इव, उत्कीर्णः = उत्कीर्य निर्मितः, इव, पुस्तमयः = प्रस्तरादौ विविधैः वर्णादिभिर्विरचितः, इव, सुचिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, ऊर्ध्वम् = उपरि एव, स्थित्वा = अवस्थाय, अङ्गानि = अवयवान्, धारयितुम् = धारणं कर्तुम्, अपारयन् = अशक्नुवन्, इव, मूर्च्छया = मोहेन, आक्रम्यमाणः = आक्रमणविषयीक्रियमाणः, परामृश्यमानः, इव, इन्द्रियैः = हस्तादिभिः करणैः, उन्मुच्यमानः = त्यज्यमानः, इव, झटिति = तत्कालमेव, उन्मुक्ताङ्गः—उन्मुक्तानि (= शिथिलीकृतानि, त्यक्तानि) अङ्गानि (= अवयवा) येन स तादृशः, सन्, भूमौ= पृथिव्याम्, समुपविश्य = निषद्य, अन्तरात्मना = मनसा, किमपि = अज्ञातम्, स्मरन् =ध्यायन्, इव, अनुध्यायन् = चिन्तयन्, इव, निर्विकारवदनः = विकृतिशून्यमुखः, गलितेत्यादिः—गलितः (= स्यन्दितः, पतितः) लोचनयोः (= नेत्रयोः) पयसः (= जलस्य, अश्रुण इति भावः), धारायाः (= प्रवाहस्य) सन्तानः (= सातत्यम्) यस्य तादृशः, अधोमुखः = निम्नवदनः, सन्, तूष्णीम् = मौनम्, तस्थौ = उपविष्टोऽभूत्।

तथेति। तथा = तेन प्रकारेण, अवस्थितम् = निषण्णम्, च, तम् = चन्द्रापीडम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा, अस्माकम् = राजन्यानाम्, चेतसि = मनसि, चिन्ता = आर्तिः, भावना, उदपादि = उत्पन्नाऽभूत्। परिणामेत्यादिः—परिणामे (= अवसाने) धीरा (= स्थिरा) मतिः (= बुद्धिः) येषां ते तादृशाः, अपि, रसिकहृदयाः = कामिजनाः, येन, केनचित् = अज्ञातेन,

उस (लतामण्डप) को देखकर बहुत समय पहले देखे गये भाई जैसे, पुत्र-जैसे, मित्र-जैसे अनन्यदृष्टि=केवल उसी पर दृष्टि गड़ाये हुये,एकटक, बिना पलक बन्द की हुई आँख से उसे देखते हुए स्तम्भित सा, चित्रित सा, मूर्तिसदृश खोदा गया सा, लेपनादि से बनाये गये चित्र सा, वह बहुत देर ऊपर खड़े-खड़े ही अंगों को धारण न करते हुये सा, मूर्छा द्वारा आक्रान्त किया जाता हुआ सा, इन्द्रियों द्वारा छोड़ा जा रहा सा, अङ्गों को छोड़ता हुआ (ढीला करता हुआ), जमीन पर बैठकर मन में कुछ याद करता हुआ सा, सोंचता हुआ सा, विकारशून्य मुखवाला, आखों से आंसुओं की धारा को लगातार बहाता हुआ, चुपचाप मुख नीचे किये हुये बैठा रहा। उस प्रकार से (गुमसुम) बैठे हुए उसे देखकर हम लोगों के मन में चिन्ता उत्पन्न हो गई—'स्वभाव से गम्भीर बुद्धिवाले भी

१. 'लिखित इव···आक्रम्यमाण इव' इति नास्ति। २. ···हृदयो। ३. च नापि पठ्यते।

परिणामधीरमतयोपि किं पुनः कुतूहलास्पदे प्रथमे वयसि वर्तमानः। तस्मान्नियतमियम-स्येमामतिमनोहरां भूमिमालोक्य भावयतो हृदयविकृतिरीदृशी जाता' इति। न चिराच्च तमेवमवदाम वयम्—'दृष्टा दर्शनीयानामवधिरेषा। तदुत्तिष्ठ। सम्प्रति निर्वर्तयामः स्नान-विधिम्। अतिमहती वेला[1]। सज्जीभूतं साधनम्। प्रयाणाभिमुखः सकलः स्कन्धावारस्त्वां प्रतिपालयन्नास्ते। किमद्यापि विलम्बितेन' इति। स त्वेवमुक्तोप्यस्माभिरश्रुतास्म-दीयालाप[2] इव जड इव मूक इवाशिक्षित इव वक्तुं न किंचिदपि प्रत्युत्तरमदात्। तमेव

वस्तुना, अपह्रियन्ते = आकृष्यन्ते, वशीक्रियन्ते, एव, किम्, पुनः, कुतूहलास्पदे = कौतुकस्य स्थानभूते, प्रथमे = आद्ये, वयसि = अवस्थायाम्, वर्तमानः = विद्यमानः? स तु अवश्यमेवा-कृष्यते इति भावः। तस्मात् = अतो हेतोः, नियतम् = निश्चितरूपेण, अतिमनोहराम् = अत्यधिकरमणीयाम्, इमाम् = एताम्, पुरोवर्तिनीम् भूमिम् = पृथ्वीम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, भावयतः = किमपि चिन्तयतः, अस्य = एतस्य वैशम्पायनस्य, ईदृशी = एतादृशी, हृदयविकृतिः = मानसिको विकारः, जाता = समुत्पन्ना। नचिरात् = अचिरकालेन, सद्य एवेति भावः, वयम् = राजन्याः, तम् = वैशम्पायनम्, एवम् = इत्थम्, अवदाम = अकथयाम। किं तदिति वर्णयति—दर्शनीयानाम् = दर्शनयोग्यानां वस्तूनाम्, अवधिः = सीमा, एषा = पुरोवर्तमाना, भूमिः, दृष्टा = विलोकिता। तत् = तस्मात्, उत्तिष्ठ = उत्थानं कुरु उत्थितो भव। सम्प्रति = इदानीम्, स्नानविधिम् = जलमज्जनादिक्रियाम्, निर्वर्तयामः = सम्पादयामः। अतिमहती = अतिशयेन विलम्बिता, वेला = कालः, सञ्जाता। साधनम् = अश्वादिकम्, सज्जीभूतम् = सज्जं जातम्, सकलः = समस्तः, स्कन्धावारः = सैन्यसमूहः, प्रयाणाभिमुखः = गमनोद्यतः, सन्, त्वाम् = वैशम्पायनम्, प्रतिपालयन् = प्रतीक्षमाणः, आस्ते = तिष्ठति। अद्यापि = अस्मिन् समयेऽपि, विलम्बितेन, किम् = न किमपि प्रयोजनं वर्तत इति तदाशयः। तु = किन्तु, सः = वैशम्पायनः, अस्माभिः = राजन्यैः, एवम् = पूर्वोक्तरीत्या, उक्तः = कथितः अपि, अश्रुते-त्यादिः—अश्रुतः (= न आकर्णितः) अस्मदीयः (= अस्माकम्) आलापः (= कथनम्), येन स तादृशः, इव, जडः = निश्चेतनः, इव, मूकः = वाक्शक्तिहीनः, इव, वक्तुम् = कथयितुम्, अशिक्षितः = अपाठितः, इव, किञ्चिद् = किञ्चन, अपि, उत्तरम् = प्रतिवचनम्, न = नैव, अदात् = दत्तवान्, किमपि नाब्रवीदिति भावः। केवलम् = एकमात्रम्, अनिमेष-

रसिक (भावुक) लोग किसी न किसी विषय या वस्तु द्वारा उसकी ओर आकृष्ट कर ही लिये जाते हैं तब फिर उत्सुकता से परिपूर्ण इस यौवनावस्था में वर्तमान व्यक्ति के विषय में क्या कहा जाय अर्थात् उसका आकृष्ट होना तो सामान्य बात है। अतः निश्चित ही इस (अतिसुन्दर) भूमि को देखकर [मन में चुपचाप] सोंचते हुये इस वैशम्पायन के हृदय का ऐसा कोई विकार उत्पन्न हो गया है।' और शीघ्र ही हम लोगों ने उससे ऐसा कहा—'दर्शनीय वस्तुओं की सीमा अर्थात् सबसे उत्कृष्ट वस्तु आपने देख ही ली है। अतः उठिये। अब नहाना-धोना किया जाय। बहुत समय बीत चुका है, देर हो चुकी है। [यात्रा के सभी अश्व, रथ आदि] साधन सज चुके हैं। प्रस्थान करने को तैयार हुआ सारा सैन्यसमूह तुम्हारी ही प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा है। तो अब भी देर क्यों [कर रहे हो]?' किन्तु हम लोगों द्वारा इस प्रकार से कहा गया भी वह वैशम्पायन हमारी बातों को अनसुनी सा करते हुए सा, जड़ जैसे, गूंगे जैसे, बोलना न सिखाये जैसे, उसने कोई भी उत्तर

१. जाता-इत्यधिकं पठ्यते क्वचित्। २. अस्मदालाप।

केवलमनिमेषपक्ष्मणा निश्चलस्तब्धतारकेण सन्तताश्रुस्रोतसा लिखितेनेव चक्षुषा लतामण्डपमालोकितवान् ।

पुनः पुनश्चास्माभिरागमनायानुरुध्यमान[१]स्तद्ग्रथितदृष्टिरेवास्मान् परिच्छेदनिष्ठुरमाह स्म—'मया तु न यातव्यमस्मात्प्रदेशात् । गच्छन्तु भवन्तः स्कन्धावारमादाय । न युक्तं भवतां चन्द्रापीडभुजबलपरिरक्षितं गते तस्मिन् महासाधनं गृहीत्वास्यां भूमौ क्षणमप्यवस्थानं कर्तुम् ।' इत्युक्तवन्तं तमकस्मान्नाम किंचिदस्य दैवादेव वैराग्यकारणमुत्पन्नमित्याशङ्क्य सानुनयमागमनाय पुनः पुनः प्रतिबोध्य तादृशासम्बद्धानुष्ठानेन जातपीडा

पक्ष्मणः = पक्ष्म-पातशून्येन, निश्चलेत्यादिः—निश्चला (= निष्क्रिया) स्तब्धा (= जडा) तारका (= कनीनिका) यस्मिन् तादृशेन तेन, सन्तताश्रुस्रोतसा—सन्ततम् (= निरन्तरम्) अश्रूणाम् (= नेत्राम्बूनाम्) स्रोतः (= प्रवाहः) यस्मिन् तादृशेन तेन, लिखितेन = चित्रितेन, इव, चक्षुषा = नेत्रेण, तमेव = पूर्ववर्णितमेव, लतामण्डपम् = व्रततीनिकुञ्जम्, आलोकितवान् = अपश्यत् ।

पुनःपुनरिति । अस्माभिः = नृपादिभिः, पुनः पुनः = भूयो भूयः, आगमनाय = प्रचलितुम्, अनुरुध्यमानः = अनुरोध-विषयीक्रियमाणः, तद्ग्रथितदृष्टिः—तस्मिन् (= लतामण्डपे) ग्रथिता (=संलग्ना) दृष्टिः (=नेत्रम्) यस्य स तादृशः, सन्, एव, परिच्छेदनिष्ठुरम्—परिच्छेदेन (= दृढनिश्चयेन) निष्ठुरम् (= परुषम्) यथा स्यात् तथा, आह स्म = अवोचत् । मया = वैशम्पायनेन, तु, अस्मात्, प्रदेशात् = स्थानात्, न = नैव, यातव्यम् = गन्तव्यम् । भवन्तः = यूयम्, स्कन्धावारम् = सैन्यसमूहम्, आदाय = नीत्वा, गच्छन्तु = प्रयान्तु । तस्मिन् = चन्द्रापीडे, गते = प्रस्थिते सति, चन्द्रापीडेत्यादिः—चन्द्रापीडस्य (= युवराजस्य) भुजयोः (= हस्तयोः) बलेन (= शक्त्या) परिरक्षितम् (= परिपालितम्), महासाधनम् = महासैन्यम्, गृहीत्वा = आदाय, अवरोध्य, अस्याम्, भूमौ = भूभागे, भवताम् = युष्माकम्, अवस्थानम् = स्थितिम्, कर्तुम् = विधातुम्, न = नैव, युक्तम् = उचितम्, इति = एवम्, उक्तवन्तम् = कथितवन्तम्, तम् = वैशम्पायनम्, अकस्मात् = सहसा, अतर्कितपूर्वम्, दैवाद् = भाग्यवशाद्, एव, अस्य=वैशम्पायनस्य, किञ्चित् = किमपि अज्ञातम्, वैराग्यकारणम् = विरक्तेः हेतुः, उत्पन्नम् = सञ्जातम्, इति = इत्थम्, आशङ्क्य = आशङ्कां कृत्वा, आगमनाय = चलनाय, सानुनयम् = अनुनयपूर्वकं यथा स्यात् तथा, पुनः पुनः = वारं वारम्, प्रतिबोध्य = प्रतिबोधनं कृत्वा, तादृशेत्यादिः—तादृशम् (=तथाविधम्) असम्बद्धम् (=अनर्गलम्, अयुक्तम्) अनुष्ठानम् यद् (=आचरणम्) तेन, जातपीडाः = उत्पन्नव्यथाः,

---

नहीं दिया । अपलक बरौनी वाली, निश्चल तथा स्तब्ध पुतलियों वाली, लगातार आंसुओं के प्रवाह (गिराने) वाली चित्रित (चित्र रूप में बनाई गई) सी आंखों से केवल उसी लतामण्डप को देखता रहा ।

हम लोगों द्वारा [यहां] आने के लिये बार-बार अनुरोध किये जाने पर उसी (लतामण्डप) की ओर आंख गड़ाये हुये ही हम लोगों से बड़ी निष्ठुरता से कहने लगा—'मुझे तो इस स्थान से [कहीं भी] नहीं जाना है । आप लोग सैन्यसमूह को लेकर (वापस) चले जांय । चन्द्रापीड के वापस चले जाने पर उनके भुजबल द्वारा परिरक्षित महान् सैन्य-समूह को लेकर आप लोगों का इस भूमि में एक क्षण के लिये भी रुकना उचित नहीं है, अर्थात् तत्काल वापस चले जांय ।'—इस प्रकार से कहते हुए उसके विषय में हम लोगों ने यह शंका करके कि अचानक दैववश ही

---

१. अनुबुध्यमानः, अनुबध्यमानः ।

निष्ठुरमप्यभिहितवन्तो वयम्—'एवं न युक्तमस्माकं स्थातुम्। भवतः पुनर्देवस्य तारापीडस्यानन्तरादार्यशुकनासाल्लब्धजन्मनो देव्या विलासवत्याङ्कलालितस्य देवेन चन्द्रापीडेन सहैकत्र संवृद्धस्य तथा विद्यागृहे महता यत्नेनैव शिक्षितस्य युक्तमिदं यज्ज्येष्ठे भ्रातरि सुहृदि वत्सले भर्तरि जगन्नाथे च गुणवति च भवति सर्वमर्पयित्वा गते तत्परित्यागेनात्रावस्थानम्? कस्यापरस्येदृशो युक्तायुक्तपरिच्छेदः? तिष्ठतु तावदस्माकं तवोपरि स्नेहो भक्तिर्वा। अस्मिंस्तु शून्यारण्ये भवन्तमेकाकिनमुत्सृज्य गताः सन्तो देवेन चन्द्रशीतल-

---

सन्तः, वयम् = राजानः, निष्ठुरम् = परुषम्, अपि, अभिहितवन्तः = कथितवन्तः।

किं किं कथितवन्त इति वर्णयति—एवमित्यादिना। एवम् = ओम्, स्वीकारार्थे इदम्, उचितमेवेति भावः, अस्माकम् = नृपादीनाम्, स्थातुम् = स्थितिं कर्तुम्, न = नैव, युक्तम् = समीचीनम्। पुनः=परन्तु, भवतः=तव,वैशम्पायनस्य ['इदं युक्त मिति वक्ष्यमाणेऽन्वयः।] अस्माकम् अवस्थानं कर्तुं न युक्तम्, भवतः=वैशम्पायनस्य पुनः, अवस्थानं कर्तुमुचितम्? कदापि नोचितमिति काक्वा ध्वन्यते। एतदेव विशदयति—देवस्य = स्वामिनः, तारापीडस्य=एतन्नाम्नः, अनन्तरात् = अव्यवहिताद्, अभिन्नादिति भावः, आर्यशुकनासात् = आदरणीयात् शुकनाससंज्ञकात्, लब्धजन्मनः-लब्धम् (= प्राप्तम्) जन्म (= जनिः) येन स तस्य, देव्या = महिष्या, विलासवत्या = एतन्नाम्न्या, अङ्कलालितस्य = क्रोडे परिपालितस्य, अथ च, देवेन = स्वामिना, चन्द्रापीडेन = एतन्नामकेन, सह = सार्धम्, एकत्र = एकस्मिन्नेव स्थाने, राजभवनादौ, संवृद्धस्य = वृद्धिं प्राप्तस्य, तथा, विद्यागृहे = विद्यामन्दिरे, महता = विपुलेन, यत्नेन = प्रयासेन, एव, शिक्षितस्य = शिक्षां प्रापितस्य, पाठितस्य, भवतः = तव, वैशम्पायनस्य, इदम्, युक्तम् = समीचीनम्, यत्, ज्येष्ठे = वृद्धे, भ्रातरि = सहोदरसदृशे, सुहृदि = मित्रे, वत्सले = प्रियकारके, भर्तरि = स्वामिनि, जगन्नाथे = संसाराधिपतौ, च चन्द्रापीडे, गुणवति = गुणविशिष्टे, भवति = त्वयि वैशम्पायने, सर्वम् = सकलं वस्तुमात्रम्, अर्पयित्वा = समर्प्य, दायित्वं प्रदायेति भावः, गते = प्रयाते, सति, तत्परित्यागेन = तद्राहित्येन, तं विहायेति भावः, अत्र = अच्छोदसरस्तटे, अवस्थानम् = अवस्थितिः? न युक्तमिदमिति तदाशयः। कस्य, अपरस्य = त्वद्भिन्नस्य, ईदृशः = एतादृशः, युक्तायुक्तपरिच्छेदः = कर्तव्याकर्तव्यनिर्णयः? अस्माकम् = नृपादीनाम्, तव = भवतः, उपरि= विषये, स्नेहः = प्रणयः, भक्तिः = सेव्यत्वेन ज्ञानम्, तावत्, तिष्ठतु = दूरे भवतु, आवश्यकता नास्ति तस्येति भावः। अस्मिन् = पुरोवर्तिनि, शून्यारण्ये = निर्जने विपिने, भवन्तम् = त्वाम्, एकाकिनम् = अद्वितीयम्, उत्सृज्य = विहाय, गताः = प्रयाताः, सन्तः, वयम् = नृपादयः,

---

इसको वैराग्य का कारण उत्पन्न हो गया है, अतः वापस आने के लिये बार-बार अनुनय के साथ समझा बुझाकर, उस प्रकार के असम्बद्ध कार्य करने से उत्पन्न हुई पीड़ा वाले हम लोगों ने कुछ कठोर बातें भी कहीं—'हाँ, इस प्रकार से हम लोगों के लिये यहाँ ठहरना ठीक नहीं है। परन्तु महाराज तारापीड से अभिन्न आर्य शुकनास से [पुत्र रूप में] जन्म लेने वाले, महारानी विलासवती की गोद में पले हुए, स्वामी चन्द्रापीड के साथ ही साथ बढ़े तथा एक ही विद्यागृह में बहुत प्रयत्न से पढ़ाये गये आपके लिये [यह ठीक ही है] जो कि ज्येष्ठ भाई,सुहृद, वत्सल (प्रेम करने वाले) स्वामी, संसार के स्वामी चन्द्रापीड द्वारा गुणवान् आप पर सभी कुछ छोड़कर चले जाने पर उन्हीं चन्द्रापीड को छोड़कर इस जगह ठहरना ठीक है। कौन दूसरा ऐसा है जिसे ऐसे उचित तथा अनुचित का

प्रकृतिना चन्द्रापीडेनैव किं वक्तव्या वयम् ? किमन्यो देवश्चन्द्रापीडोऽन्यो वा भवान् ? तदुन्मुच्यतामयं सम्मोहः। गमनाय धीराधीयताम्।' इत्यभिहितोस्माभिरीषदिव विलक्षहासेन[1] वचनेनास्मानवादीत्—'किमहमेतावदपि न वेद्मि यद्गमनाय[2] मां भवन्तः प्रबोधयन्ति। अपि च, चन्द्रापीडेन विना क्षणमप्यहमन्यत्र न पारयामि स्थातुम्। एषैव मे गरीयसी परिबोधना। तथापि किं करोमि। अनेनैव क्षणेन सर्वत्र विगलितं मे प्रभुत्वम्।

चन्द्रेत्यादिः—चन्द्रः (= इन्दुः) तस्य इव शीतला (= शिशिरा) प्रकृतिर्यस्य तेन तादृशेन, चन्द्रापीडेन = राजकुमारेण, एव, किम् = अज्ञातम्, वक्तव्याः = कथनीयाः। इतः प्रस्थितान् अस्मान् त्वया हीनान् विलोक्य चन्द्रापीडः किं कथयिष्यतीति वयं न विद्म इति तदाशयः। किम्, देवः = स्वामी, चन्द्रापीडः = राजकुमारः, अन्यः = भिन्नः, भवान् = त्वं वैशम्पायनः, वा, भिन्नः = अन्यः ? युवयोर्मध्ये अस्माकं कृते कोऽपि भेद एव नास्तीति भावः। तत् = तस्मात्, अयम् = एषः, अनुभूयमानः, सम्मोहः = अज्ञानम्, भ्रमो वा, उन्मुच्यताम् = परित्यज्यताम्। गमनाय = प्रस्थानाय, अस्मात् स्थानादिति शेषः, धीः = मतिः, आधीयताम् = विधीयताम्, इति = अनेन प्रकारेण, अस्माभिः = नृपादिभिः, अभिहितः = कथितः, सन्, ईषद् = अल्पम्, किञ्चिद्, इव, विलक्षहासेन—विलक्षः (= लज्जायुक्तः) हासः (= हास्यम्) यस्मिन् तेन तादृशेन, वचनेन = कथनेन, अस्मान् = नृपादीन्, अवादीत् = अवोचत्।

स किमवादीदिति प्रस्तौति—किमहमित्यादिना। किम्, अहम् = वैशम्पायनः, एतावत् = एतावन्मात्रम्, अपि, न, वेद्मि = जानामि, अपितु सम्यग् जानाम्येव। यद् = यस्मात् कारणात्, भवन्तः = भवन्तः, यूयम्, माम् = वैशम्पायनम्, गमनाय = इतः प्रस्थानाय, चन्द्रापीडस्य समीपे चलनाय, प्रबोधयन्ति = प्रबोधितं कुर्वन्ति। [अत्र 'यद् गमनान्न माम्—इति बहुशः प्रकाशित पाठो न समीचीनः प्रतीयते। अतः गुणिचन्द्रसूरिसम्मतं पाठमाश्रित्य व्याख्या कृता।] अपि च = अन्यच्च चन्द्रापीडेन = राजकुमारेण, विना = ऋते, अहम् = वैशम्पायनः, क्षणम् = अल्पकालम्, अपि, अन्यत्र = तद्रहिते स्थाने, स्थातुम् = स्थितिं कर्तुम् न, पारयामि = समर्थो

विवेक हो। हम लोगों की तुम्हारे ऊपर प्रीति अथवा भक्ति की बात छोड़ दीजिये। परन्तु इस सूनसान बन में आपको अकेले छोड़कर वापस लौटे हुए हम लोगों से चन्द्रमा के समान शीतल प्रकृति वाले महाराज चन्द्रापीड ही क्या कहेंगे ? [अर्थात् वे दुःखी होकर हम लोगों से बात भी नहीं करेंगे।] क्या स्वामी चन्द्रापीड और आप अलग-अलग हैं ? इस कारण अब इस मोह को छोड़ दीजिए। यहाँ से चलने का विचार बनाइये।'—इस प्रकार से हम लोगों द्वारा कहा गया वह वैशम्पायन कुछ लज्जायुक्त हँसी भरी वाणी से हम लोगों से कहने लगा—'क्या मैं इतना भी नहीं समझता कि आप लोग मुझे चलने के लिये समझा रहे हैं। इसके अतिरिक्त मैं चन्द्रापीड के बिना दूसरे स्थान पर क्षण भर भी नहीं रुक सकता हूँ। यही मेरी सबसे बड़ी परिबोधना = प्रबोधन है। फिर भी मैं क्या करूँ। इसी क्षण में सभी विषयों पर मेरा प्रभाव गल गया—समाप्त हो गया।

---

१. वदनेन।

२. यद्गमनान्न मां भवन्तः प्रबोधयन्तीति—प्रकाशितपाठेऽर्थासङ्गत्या सिद्धचन्द्रगणिसम्मतः पाठोऽत्र स्वीकृतः।

तथा हि—स्मरदिव किमपि मनो नान्यत्र प्रवर्तते। पश्यन्तीव किमपि न दृष्टिरन्यतो वलति। आसक्तमिव क्वापि हृदयं किमपि न जानाति। निगडिताविव पदमपि दातुं न चरणावुत्सहेते। कीलितेव चास्मिन्नेव स्थाने तनुः। तदात्मना त्वहमसमर्थो यातुम्। अथ बलाद्भवन्तो मां निनीषवः। तत्रापि चलितस्यास्मात्प्रदेशादात्मनो जीवितधारणं न सम्भावयामि। अत्र तु पुनस्तिष्ठतो यदेतदन्तर्हृदये किमप्यनवसीयमानं[1] विपरिवर्तते मे येनैव विधृतोस्मि तेनैवावश्यं धार्यन्ते प्राणा इति चेतसि मे। तदलं

भवामि। एषा = इयम्, एव, मे = वैशम्पायनस्य, गरीयसी = गुरुतरा, परिदेवना = प्रतिबोधनम्। तथापि = एवं सत्यपि, किम्, करोमि = विदधामि? अनेन, एव, क्षणेन = अल्पकालेन, मे = मम, प्रभुत्वम् = प्रभावः, सामर्थ्यम्, विगलितम् = विनष्टं जातम्।

स्वोक्तिं विशदयति—तथाहीत्यादिना। मम, मनः=चित्तम्, किमपि=अज्ञातम्, वस्तु, स्मरद्=स्मृतिविषयीकुर्वद्, इव, अन्यत्र=अन्यस्मिन् विषये, न=नैव, प्रवर्तते। दृष्टिः=नेत्रम्, किमपि = अज्ञातम्, पश्यन्ती = विलोकयन्ती, इव, अन्यतः = अन्यस्यां दिशि, स्थाने वा, न, वलति = चलति, प्रवर्तते इति भावः। हृदयम् = स्वान्तम्, क्वापि = कस्मिंश्चिद् वस्तुविशेषे, आसक्तम् = संलग्नम्, इव, किमपि = किञ्चदपि, न, जानाति = वेत्ति। चरणौ = पादौ, निगडितौ = नियन्त्रितौ, इव, पदम् = चरणक्रममात्रम्, अपि, दातुम् = समर्पयितुम् न, उत्सहेते = उत्साहं कुरुतः। यदि स्वयं चलितुमसमर्थस्तर्हि बलान्नेतव्य इति चेत्तत्राह—अथेत्यादिना। अथ = पक्षान्तरे, भवन्तः = यूयम्, बलात् = शक्त्या, हठात्, माम् = वैशम्पायनम्, निनीषवः = नेतुम् इच्छवः, तत्रापि = तस्मिन् कल्पेऽपि, अस्मात् = पुरोवर्तमानात्, प्रदेशात् = स्थानात्, चलितस्य = प्रस्थितस्य, जीवित-धारणम् = प्राणरक्षणम्, न, सम्भावयामि = उत्प्रेक्षे, सम्भावनां करोमि। अत्र = अस्मिन् स्थाने, अच्छोदसरस्तीरे, तु, पुनः, तिष्ठतः = निषीदतः, मे = मम, वैशम्पायनस्य, अन्तर्हृदये = चित्तस्याभ्यन्तरे, यद्, एतत् = अनुभूयमानम्, किमपि = अज्ञातम्, अनवसीयमानम् = अनिर्णीयमानम्, अपरिचीयमानम्, विपरिवर्तते = विपरिभ्रमति, येन = अज्ञातेन, एव, हेतुभूतेन तत्त्वेन, विधृतः = रक्षितः, अस्मि = वर्त्ते, तेन = अज्ञातेन, एव, तत्त्वेन, प्राणाः = असवः, अवश्यम् = निश्चितरूपेण, धार्यन्ते = धृताः क्रियन्ते, ध्रियन्ते इति

इसको इस प्रकार से समझिये—मेरा मन कुछ याद करता हुआ सा दूसरी जगह नहीं लगता है (यहीं लगता है।) दृष्टि कुछ देखती हुई सी दूसरी जगह नहीं जाती है (यहीं जाती है।) किसी में आसक्त हुआ सा हृदय कुछ भी नहीं जान पा रहा है। दोनों पैर बेड़ियों से बँधे हुए से एक कदम भी नहीं चलने देते हैं। और शरीर इसी स्थान पर कील सा दिया गया है। [मन्त्रशक्ति से एक स्थान पर ही स्थिर कर दिया गया है।] इस कारण अपने आप तो मैं चलने में असमर्थ हूँ। यदि आप लोग मुझे बलपूर्वक ले जाना चाहते हैं तो इस स्थान से हटे हुए मुझे अपने प्राणधारण की सम्भावना नहीं है अर्थात् यहाँ से हटते ही मेरे प्राण निकलने की सम्भावना है। परन्तु यहीं पर रुकते हुए मेरे हृदय के भीतर कुछ समझ में न आ सकने वाला घूम सा रहा है और जिसके द्वारा ही मैं धारण किया गया हूँ, अर्थात् अभी तक जीवित हूँ, उसी के द्वारा मेरे प्राण अवश्य धारण कर लिये जायेंगे—ऐसा मेरे मन में है। इस कारण आग्रह (जबरदस्ती) मत कीजिये। आप लोग [यहाँ से] जाइये।

१. अवसीयमानम्, अवस्थीयमानम्।

निर्बन्धेन । गच्छन्तु भवन्तः । 'भवतु यावज्जीवमा तृप्तेश्चन्द्रापीडदर्शनसुखम् ।[2] अल्पपुण्यस्य तु तन्मे प्राप्तमपि करतलादेवमाच्छिद्य दैवेन नीतम् ।' इत्यभिदधानश्च कौतुकात् 'किमेतद्येनैवं भाषसे, नायासि देवस्य चन्द्रापीडस्य समीपम् ? इत्यस्माभिः पुनः पुनः पृष्टोऽभ्यधात् । 'लज्जेऽहमेवं वक्तुम् । तथापि शपामि वयस्यचन्द्रापीडस्यैव जीवितेन यदि किंचिदपि जानामि यत्केन कारणेन न शक्नोम्यतो गन्तुमिति । अपि च, भवतामपि प्रत्यक्ष एवायं वृत्तान्तः । तद् व्रजन्तु भवन्तः ।' इत्युक्त्वा तूष्णीमभूत् ।

भावः, इति = इत्थम्, मे = मम, चेतसि = स्वान्ते, वर्तते इति शेषः, तत् = तस्मात् हेतोः निर्बन्धेन = निर्बन्धनेन, दुराग्रहेण, अलम्; न किमपि साध्यमिति भावः । भवन्तः = यूयम्, गच्छन्तु = प्रयान्तु अस्मात् प्रदेशादिति भावः । यावज्जीवम् = जीवनपर्यन्तम्, आतृप्तेः = सन्तुष्टिपर्यन्तम्, चन्द्रापीडदर्शनसुखम् = चन्द्रापीडावलोकनानन्दः, भवतु = स्यात् । अल्पपुण्यस्य = अल्पसुकृतस्य, मे = वैशम्पायनस्य, तु, तत् = चन्द्रापीडदर्शनसुखम्, प्राप्तम् = लब्धम् अपि, करतलात् = हस्ततलात्, एवम् = अनेन प्रकारेण, दैवेन = भाग्येन, आच्छिद्य = हठाद् आकृष्य, नीतम् = गृहीतम्, पृथक् कृतमिति भावः । इति = पूर्वोक्तम्, अभिदधानः = भाषमाणः, च, स वैशम्पायनः, कौतुकात् = कुतूहलात् 'एतत् = इदम्, किम्, येन = हेतुना, एवम् = इत्थम्, भाषसे = वदसि, देवस्य = स्वामिनः, चन्द्रापीडस्य, समीपम् = पार्श्वं, न, आयासि = आगच्छसि, इति = एवम्, अस्माभिः = नृपादिभिः, पुनः पुनः = भूयो भूयः, पृष्टः = अनुयुक्तः, अभ्यधात् = अभिहितवान् । एवम् = अनेन प्रकारेण, वक्तुम् = भाषितुम्, अहम् = वैशम्पायनः; लज्जे = त्रपामनुभवामि । तथापि = एवं स्थितावपि, वयस्य-चन्द्रापीडस्य = मित्रचन्द्रापीडस्य, एव, जीवितेन = जीवनेन, प्राणैरित्यर्थः, शपामि = शपथं गृह्णामि, यदि = चेत्, किञ्चिदपि = ईषदपि, जानामि = वेद्मि, यत्, केन = अज्ञातेन, कारणेन = हेतुना, अतः = अस्मात् स्थानात्, गन्तुम् = प्रयातुम्, न = नैव, शक्नोमि = समर्थो भवामि । अपि च = अन्यच्च, भवताम् = युष्माकम्, अपि, अयं वृत्तान्तः = एषा घटना, प्रत्यक्षः = साक्षात्कृतः, एव । तत् = तस्मात् कारणात्, भवन्तः = यूयम्, व्रजन्तु = गच्छन्तु, इति = एवम्, उक्त्वा = कथयित्वा, तूष्णीम् = मौनम्, अभूत् = जातः ।

आप लोगों को जीवन भर मन की तृप्ति के अनुसार चन्द्रापीड के दर्शन का सुख मिलता रहे । किन्तु अल्प पुण्य वाले अर्थात् अभागे मुझको तो वह (सुख) प्राप्त हुआ भी करतल से इस प्रकार से भाग्य द्वारा छीन कर ले लिया गया है ।" ऐसा कहते हुए उससे कौतुक से—'यह क्या हो गया जिससे ऐसा बोल रहे हो, क्या स्वामी चन्द्रापीड के पास नहीं आ रहे हो ।'—ऐसा हम लोगों द्वारा बार-बार पूंछा जाने पर वह बोला—"इस प्रकार से कहने में मुझे लज्जा आ रही है । फिर भी मित्र चन्द्रापीड के ही प्राणों की शपथ लेता हूँ कि यदि मैं कुछ भी जानता हूँ कि किस कारण से यहाँ से नहीं जा सकता । और आप सभी ने भी यह वृत्तान्त प्रत्यक्ष देखा ही है । इसलिए आप लोग जाइये ।' ऐसा कह कर चुप हो गया ।

---

१. अनुभवतु । २. चन्द्रापीडमुखदर्शन० ।

मुहूर्तादिव चोत्थाय तेषु तेषु रम्यतरेषु तरुतलेषु [1]लतागृहेषु सरस्तीरेषु तस्मिंश्च देवायतने किमपि नष्टमिवान्विष्यन्ननन्यदृष्टिर्बभ्राम। भ्रान्त्वा च चिरमिव खिन्नान्तरात्मा सनिर्वेदमूर्ध्वं निश्वस्य [2]तस्मिँल्लतागहने पुनरुपविश्य तस्थौ। वयमपि कृतवीरुत्संनिधाना-स्तत्प्रतिबोधनप्रत्याशया स्थिता एव। गतवति समधिक इव यामद्वये शरीरस्थितिकरणाया-स्माभिरभ्यर्थितः प्रत्युवाच—'वयस्यचन्द्रापीडस्य खल्वमी स्वजीवितादपि वल्लभतराः प्राणाः। तद्यदि बलादपि परित्यज्य मां गच्छन्ति तथाप्येषां सन्धारणे मया प्रयत्नः कार्यः।

मुहूर्तादिवेति। मुहूर्तात् = किञ्चित् कालानन्तरम्, इव, च, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, तेषु तेषु = पुरः स्थितेषु, रम्यतरेषु = रमणीयतरेषु, लतागृहेषु = लतामण्डपेषु, सरस्तीरेषु = सरसस्तटेषु, तस्मिन् = पूर्ववर्णिते, देवायतने = देवमन्दिरे च, किमपि = अज्ञातम्, नष्टम् = विलुप्तम्, इव, अन्विष्यन् = अन्वेषणं कुर्वन्, अनन्यदृष्टिः = अनन्यनेत्रः, केवलं तन्मात्रं पश्यन्निति भावः, बभ्राम = भ्रमणं चकार। भ्रान्त्वा = भ्रमणं कृत्वा, च, चिरमिव = दीर्घकालपर्यन्तम्, खिन्नान्तरात्मा—खिन्नः (= खेदयुक्तः दुःखी) अन्तरात्मा (= मनः) यस्य स तादृशः, सन्, सनिर्वेदम् = सखेदम्, उर्ध्वम् = उच्चैः, निःश्वस्य = निश्वासं गृहीत्वा, तस्मिन् = पुरोवर्तिनि; लतागहने = व्रततीकुञ्जे, पुनः = द्वितीयवारम्, उपविश्य=उपवेशनं कृत्वा, निषद्य, तस्थौ = स्थितोऽभूत्। अत्र 'उपविश्य' इत्यस्य 'प्रविश्य' इत्येवार्थः साधुः प्रतीयते, अन्यथा 'स्था' धातुना पुनरुक्ततापत्तिः। वयम् = राजानः, अपि, कृतेत्यादिः—कृतम् (= विहितम्) वीरुधाम् (=लतानाम्, गुल्मादीनाम्) सन्निधानम् (= सामीप्यम्) यैस्ते तादृशाः तत्प्रतिबोधनेत्यादिः—तस्य (= वैशम्पायनस्य) यत् प्रतिबोधनम् (= पुनरौचित्यज्ञापनम्) तस्य प्रत्याशया (= वाञ्छया), सः पुनर्वास्तविकस्थितिं ज्ञास्यतीति सम्भावनयेति भावः, स्थिताः = निषण्णाः, एव, असुवमेति शेषः। समधिके = ईषदधिके, यामद्वये = प्रहरयुग्मे, गतवति = व्यतीते, सति, इव, शरीरस्थिति-करणाय=दैहिककृत्यसम्पादनाय, अस्माभिः = राजन्यैः, अभ्यर्थितः = प्रार्थितः, सन्, प्रत्युवाच = प्रत्युत्तरं दत्तवान्। किं तदिति वर्णयति—वयस्येत्यादिना। वयस्यचन्द्रापीडस्य = सुहृच्चन्द्रापीडस्य, कृते, अमी = एते मत्सम्बन्धिनः, प्राणाः = असवः, स्वजीवितात् = स्वजीवनात्, अपि, वल्लभतराः = प्रियतराः। चन्द्रापीडः स्वजीवनापेक्षयापि मम प्राणानधिकं मन्यते इत्याशयः। तत् = तस्मात्, यदि = चेत् एते = मम प्राणाः, बलादपि = हठादपि, माम् = वैशम्पायनम्, परित्यज्य = विहाय, गच्छन्ति = प्रयान्ति, तथापि, एषाम् = प्राणानाम्, सन्धारणे = रक्षणे, मया = वैशम्पायनेन, प्रयत्नः = प्रयासः, कार्यः =

थोड़ी ही देर के बाद उठकर उन उन अत्यन्त रमणीय तरुतलों में, लतागृहों में, तालाबों के तटों में तथा उस देवमन्दिर में किसी खोई हुई वस्तु को ढूंढ़ता हुआ सा, कहीं अन्यत्र न देखता हुआ (केवल उसी को देखता हुआ) घूमता रहा। बहुत देर तक घूम कर, खिन्न मन वाला होता हुआ, उदासीनता के साथ ऊँची (लम्बी) सांस लेकर फिर दुबारा उसी लतागृह में प्रवेश करके बैठ गया। लता के समीप आसन जमाये हुए हम लोग भी उसे समझा सकने की आशा से बैठे ही रहे। दो पहरों से अधिक समय बीत जाने पर शारीरिक क्रिया (स्नानादिकृत्य) के लिये हम लोगों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उसने उत्तर दिया—"मित्र चन्द्रापीड को मेरे प्राण अपने जीवन से भी अधिक प्रिय हैं', अतः ये प्राण यदि हठपूर्वक भी मुझे छोड़कर जाते हैं तो भी इन्हें बचाने के लिये मुझे प्रयत्न करना ही है और न जानेवालों के लिए तो क्या कहना, अर्थात् उनकी रक्षा तो करनी ही है।

---

१. लतागहनेषु। २. अन्यतरस्मिन्, अन्यतमस्मिन्।

किं पुनरगच्छतामेव। चन्द्रापीडदर्शनेनैव चाहमर्थी न मृत्युना। तदभ्यर्थनैवात्र निष्फला।" इत्यभिधायोत्थाय स्नात्वा कन्दमूलफलैर्वनवासोचितां शरीरस्थितिमकरोत्।[1] निर्वर्तितशरीरस्थितौ तस्मिन्वयमपि कृतवन्तः। अनेनैव च[2] क्रमेण विस्मृतान्तरात्मानो रात्रौ च दिवा च किमेतदिति [3]तद्वृत्तान्तमेवानुभावयन्तो दिनत्रयं स्थित्वा निष्प्रत्याशास्तदागमनानयनयोः सुकृतशम्बल[4]संविधानं तत्परिकरं तत्र स्थापयित्वा चागता वयम्। यच्चाग्रतो न प्रेषितः

करणीयः। अगच्छताम्=अव्रजताम्,प्राणानां धारणविषये पुनः किम्, वक्तव्यमिति शेषः। तेषां धारणं तु सरलमेवेति भावः। चन्द्रापीडदर्शनेन=चन्द्रापीडावलोकनेन,एव,च, अहम्=वैशम्पायनः,अर्थी=प्रयोजनवान्, याचकः, अभिलाषी, मृत्युना = मरणेन, न। तत् = तस्मात् कारणात्, अत्र = प्रस्तुते विषये, अभ्यर्थना = प्रार्थना, एव, निष्फला = व्यर्था, अनावश्यिकोति भावः। इति=एवम्, अभिधाय = उक्त्वा, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, स्नात्वा = स्नानं विधाय, कन्दमूलफलैः—कन्दानि (= पृथिव्या आभ्यन्तरे उत्पन्नानि) मूलानि, फलानि च, इति तैः, वनवासोचिताम् = आरण्यनिवासयोग्याम्, शरीरस्थितिम् = देहदशाम्, देहधारणसाधनमिति भावः, अकरोत् = चकार। तस्मिन् = वैशम्पायने, निर्वर्तितशरीरस्थितौ—निर्वर्तिता (= सम्पादिता) शरीरस्य (= देहस्य) स्थितिः (= दशा, जीवनरक्षार्थं भोजनादिकमिति भावः) येन स तस्मिन्, वयम् = राजानः, अपि, कृतवन्तः = विहितवन्तः, भोजनादिकमिति शेषः।

अनेनैवेति। अनेन = एतेन पूर्वोक्तेन, एव, क्रमेण = परिपाट्या, च, विस्मृतेत्यादिः—विस्मृतः (= विस्मरणविषयीकृतः) अन्तरात्मा (= मानसम्) यैस्तादृशा, वयम्, रात्रौ = निशायाम्, दिवा = दिने, च, 'एतत् = जायमानम्, किम् = न ज्ञातम्, इति तद्वृत्तान्तम्—स चासौ वृत्तान्तः (= उदन्तः), तम्, एव, अनुभावयन्तः = चिन्तयन्तः दिनत्रयम् = त्रीणि दिनानि पर्यन्तम्, स्थित्वा = स्थितिं कृत्वा, तदागमनानयनयोः—तस्य (= वैशम्पायनस्य) आगमनम् आनयनं च, तयोः निष्प्रत्याशाः = निराशाः, सन्तः सुकृतेत्यादि—सुकृतम् (= पुण्यम्) एव, शम्बलम् (= पाथेयम्) तस्य संविधानम् (= करणम्, प्रबन्धम्), तत्परिकरम् = तस्य वैशम्पायनस्य भृत्यवर्गम्, तत्र = तस्मिन् स्थाने, स्थापयित्वा = स्थापितं कृत्वा, च, वयम् = राजानः, परागताः = प्रत्यागताः। तस्य पुण्यान्येव तस्य रक्षकाणि भवन्तु इति निश्चित्य तं परित्यज्य वयं ततः प्रस्थिता इति भावः। यत्, च, अग्रतः = इतः पूर्वम्, संवादकः = सन्देश-

---

मैं चन्द्रापीड के दर्शनों का ही इच्छुक हूँ मृत्यु का नहीं। अतः इस विषय मे [आप लोगों की] प्रार्थना व्यर्थ ही है'—ऐसा कह कर, उठकर, नहा कर, कन्द मूल तथा फलों के द्वारा वनवास के योग्य शरीरस्थिति=शरीरधारणार्थ भोजन को किया। उसके भोजनादि समाप्त कर लेने के बाद हम लोगों ने भी [स्नानादिकृत्य तथा भोजन] किया। इसी क्रम से, अपने आपको भूले हुए हम लोग 'यह क्या हो गया है। इस प्रकार से उसी के वृत्तान्त को दिन-रात सोचते सोचते (लगातार) तीन दिनों तक ठहरने के बाद उसके [स्वयम्] आने अथवा [बलपूर्वक] ले आने के विषय में निराश होते हुए, उसके पुण्यों को ही पाथेय के रूप में प्रबन्ध करके, उन्हीं को उसका सेवक (रक्षक) बनाकर, स्थापित कर हम सभी वापस चले आये। और जो हम लोगों ने पहले सन्देशवाहक नहीं

---

१. निर्वर्तित०। २. अनेन चैव। ३. तं। ४. बल०।

[1]संवादकस्तदेकं तावदन्तरागच्छतो देवस्यासौ न परापतत्येव[2]। अपरमपि चिरात्प्रविष्टमात्र-[3]स्यैव देवस्य मा पुनरागमनक्लेशो भूदिति।''

चन्द्रापीडस्य तु स्वप्नेऽप्यनुत्प्रेक्षणीयं वैशम्पायनवृत्तान्तमाकर्ण्य युगपदुद्वेगविस्म[4]याभ्यामाक्रान्तहृदयस्योदपादि चेतसि[5]—'किं पुनरीदृशस्य सर्वपरित्यागकारिणो वनवासैकशरणस्य वैराग्यस्य कारणं भवेत्। स्वीयं च न पश्यामि किंचित्स्खलितम्। तातप्रसादात्तु

हारकः, न, प्रेषितः = प्रहितः, तदेकम् = तस्य प्रथमम्, तावत् = इदं वाक्यालङ्कारे, कारणमिति शेषः, गच्छतः = इतो व्रजतः, देवस्य = राजकुमारस्य, अन्तरा = मध्ये, असौ = सन्देशहरः, न = नैव, परापतति = मिलितुं शक्नोति, एव। अपरम् = द्वितीयम् अपि, कारणम् = हेतुः, आसीत्, चिरात् = दीर्घकालानन्तरम्, प्रविष्टमात्रस्य = राजधानीं विहित-प्रवेश-मात्रस्य, न तु तत्र विहित-विश्रामादिकस्य, एव, देवस्य = राजकुमारस्य, पुनरागमन-क्लेशः = द्वितीयवारं परावर्तनकष्टम्, मा भूत् = भवेत्। भवान् राजधानीं प्रविष्ट एव पुनर्वैशम्पायनवृत्तान्तं श्रुत्वा यात्रार्थं प्रचलन् बहुक्लेशं नानुभवेदिति विचार्यास्माभिः सन्देशहरो न प्रेषित इति तद्भावः।

इदानीं चन्द्रापीडस्य प्रतिक्रियां प्रस्तौति—चन्द्रापीडस्येत्यादिना। चन्द्रापीडस्य=राजकुमारस्य, तु, स्वप्ने = स्वापावस्थायाम्, अपि, न तु जाग्रदवस्थायामिति भावः, अनुत्प्रेक्षणीयम् = असम्भाव्यमानम्, तम् = राजादिभिः वर्णितम्, वैशम्पायनवृत्तान्तम् = वैशम्पायनविषयकोदन्तम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, युगपत् = एकदैव, सहकालमेव, उद्वेगेत्यादिः—उद्वेगविस्मयाभ्याम् (=खेदाश्चर्याभ्याम्), आक्रान्तम् (= व्याप्तम्) हृदयम्, (= चित्तम्) यस्य तस्य तादृशस्य चन्द्रापीडस्य, चेतसि = मनसि, उदपादि = उत्पन्नमभूत्। विकल्पान् प्रस्तौति—किं पुनरित्यादिना। ईदृशस्य = एतादृशस्य ज्ञातुमशक्यस्य, सर्वपरित्यागकारिणः = वस्तुमात्रपरित्यागजनकस्य, वनवासैकशरणस्य—वनवासः (= आरण्यनिवासः) एव एकम् (= अद्वितीयम्) शरणम् (= गतिः) यस्य तस्य तादृशस्य, वैराग्यस्य = विरक्तेः, कारणम् = निमित्तम्, किम्, पुनः, भवेत्, किं भवितुमर्हतीति तद्भावः। स्वीयम् = निजम्, च, किञ्चित् = किमपि, स्खलितम् = स्खलनम्, अपराधो वा, न = नैव, पश्यामि = विलोकयामि। पुनश्च, तातप्रसादात् = मम पितुरनुग्रहात्, तु, मामिव = चन्द्रापीडम्,

भेजा उसका एक कारण तो यह था कि जाते हुए मार्ग के मध्य में वह आपसे नहीं मिल सकता था, दूसरा यह कि बहुत दिनों के बाद [राजभवन में] पहुँचते हुए ही आपको दुबारा वापस लौटने का कष्ट न हो। [इसी विचार से आपके पास कोई सन्देशवाहक नहीं भेजा गया।]

स्वप्न में भी असम्भवनीय (अकल्पनीय) वैशम्पायन के उस वृत्तान्त को सुनकर एक ही साथ विस्मय तथा आश्चर्य से आक्रान्त (व्याप्त) हृदय वाले चन्द्रापीड के मन में [यह विचार] उत्पन्न हुआ—सभी कुछ छुड़वा देने वाले, वनवास की शरण वाले इस प्रकार के वैराग्य का क्या कारण हो सकता है। मैं अपनी भी कोई गलती (प्रमाद) नहीं देख रहा हूँ। पिता जी के अनुग्रह के

१. सन्देशकः, संवादः। २. ······त्येवम्। ३. प्रविष्टकायमात्रस्य।
४. स्मय। ५. चित्ते।

मामिव तमपि चरणतललु[1]ठितचूडामणयोऽर्चयन्त्येव राजानः। ममेव तस्यापि[2] चेच्छाधिकेषु सर्वोपभोगेषु न किंचिदपि हीयते। ममेव तस्याप्याज्ञा न विहन्यत एव। [3]अहमिव सोपि [4]प्रसादान् करोत्येव। मत्त इव तस्मादपि बिभेत्येवापराधिजनः। मयीव तस्मिन्नपि सर्वाः सम्पदः। तमप्यालोक्य मामिवोत्पद्यते स्पृहा लोकस्य। [5]अप्यागच्छंस्तातेनाम्बया चार्यशुकनासेन मनोरमया च तनयस्नेहोचितेन सौहार्देन न सम्भावितः। विनयाधिक्येच्छुना तातेन

इव, तम् = वैशम्पायनम्, अपि, चरणेत्यादि—चरणयोः (= पादयोः) तले (= अधोदेशे) लुठिताः (= लुलिताः, विनताः) चूडामणयः (= शिरोभूषणरत्नानि) येषां ते तादृशाः, राजानः = नृपाः, अर्चयन्ति = पूजयन्ति, एव, न तूपेक्षां कुर्वन्तीति तद्भावः। मम = चन्द्रापीडस्य, इव, तस्य = वैशम्पायनस्य, अपि, इच्छाधिकेषु, = अभिलाषापेक्षया समभ्यधिकेषु, यावती इच्छा भवति तदपेक्षयापि अधिकेषु इति भावः सर्वोपभोगेषु = सकलेषु उपभोग्य-पदार्थेषु, किञ्चिदपि = स्वल्पमपि, न = नैव, हीयते = न्यूनं भवति। मम = चन्द्रापीडस्य, आज्ञा इव, तस्य = वैशम्पायनस्य, अपि, आज्ञा = आदेशः, न विहन्यते = बाध्यते, उल्लङ्घ्यते एव, सर्वदैव पाल्यते इति भावः। अहम् = चन्द्रापीडः, इव = यथा, सः = वैशम्पायनः, अपि, प्रसादान् = अनुग्रहान्, करोति = विदधाति, एवं तस्य सामर्थ्यं न बाधितं भवतीति भावः, मत्तः = चन्द्रापीडात्, इव, तस्माद् = वैशम्पायनात्, अपि, अपराधिजनः = सागसलोकः, बिभेति = भयं प्राप्नोति, एव। ['भीत्रार्थानां भयहेतुः' इति सूत्रेण अपादानत्वात् पञ्चमी बोध्या।] मयि = चन्द्रापीडे, इव, तस्मिन् = वैशम्पायने, अपि, सर्वाः = सकलाः, सम्पदः = सम्पत्तयः, सन्तीति शेषः। सामीप्येऽधिकरणे सप्तमी बोध्या। माम् = चन्द्रापीडम्, इव, तम् = वैशम्पायनम्, अपि, आलोक्य = दृष्ट्वा, लोकस्य = जनस्य, स्पृहा = इच्छा, उत्पद्यते = जायते, यथाऽयं सौभाग्यशाली तथाऽहमपि भवेयमिति सर्वेषामिच्छा जायत एवेति भावः। अथ = पक्षान्तरे, आगच्छन् = मया सहात्र विजययात्रार्थमागन्, असौ=वैशम्पायनः, तातेन = जनकेन तारापीडेन, अम्बया = मात्रा विलासवत्या, च, आर्यशुकनासेन = एतन्नामकेन वैशम्पायनजनकेन, मनोरमया = वैशम्पायनजनन्या एतन्नाम्न्या, च, तनयस्नेहोचितेन—तनयः (= पुत्रः) तस्मिन् स्नेहः (= प्रीतिः) तस्य उचितेन (= योग्येन), सौहार्देन = अनुरागेण, प्रेम्णा वा, न = नैव, सम्भावितः = सत्कृतः ? विनयाधिक्येच्छुना—विनयस्य (= विनम्रतायाः, शिष्टतायाः) आधिक्यम् (= अतिशयम्)

कारण मेरे समान उसकी भी पूजा चरणतलों पर अपनी मस्तक को मणियों को लुढ़काये (रखे) हुए राजा लोग करते ही हैं। मेरे समान ही उसको भी इच्छा से भी अधिक सभी भोगों में कोई भी कमी नहीं की जाती है (जितना भी चाहता है, उसे दे दिया जाता है।) मेरे ही समान उसकी भी आज्ञा का हनन = उल्लघन नहीं ही किया जाता है (उसकी हर आज्ञा पूरी की जाती है।) मेरे समान ही वह भी [दूसरों पर] अनुग्रह (प्रसाद) करता ही है। मेरे समान ही उससे भी अपराधी लोग डरते ही हैं। मेरे समान ही उसके पास भी सभी सम्पत्तियाँ हैं। मेरे ही समान उसको भी देखकर लोगों के [मन में वैसे ही ऐश्वर्य-भोग की] इच्छा उत्पन्न होने लगती है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि यहाँ आते समय पिता जी ने या माता जी ने, अथवा आर्य शुकनास ने और मनोरमा ने पुत्र के स्नेह के योग्य वात्सल्य से उसका सम्मान न किया हो। अथवा और अधिक विनय

१. लुलित। २. वाञ्छाधिकेषु। ३. अहमपि।
४. प्रसादात्करोति। ५. अत्रागच्छन्०।

शुकनासेन वा किंचित्पीडाकरमभिहितम् । ताडितो वा । तत्रापि [1]नैवासावेवमस्नेहलः पिशुनस्वभावो वा गुरुजनाभक्तो वा गुणोपादानविमुखो वा तरलचित्तो वा यत्किंचनकारी यः कश्चिदिव क्षुद्रप्रकृतिराद्य[2]पुत्रतागर्वितो दुःशिक्षितो दुर्विनीतो वा पुत्रैकतादुर्ललितो वा यो जन्मनः प्रभृति सर्वप्रकारोपकारिणो गुरुजनस्योपरि खेदमेवं कुर्यादनुबन्धाद्विरमेद्वा । प्रशमस्यापीदृशस्य नैष कालः। अद्याप्यसौ विद्वज्जनोचिते गार्हस्थ्य एव न निवेशितो

इच्छति (= अभिलषति) इति तादृशेन तेन, तातेन = जनकेन तारापीडेन, वा = अथवा, शुकनासेन = वैशम्पायनपित्रा, पीडाकरम् = कष्टकारकम्, किञ्चित् = किमपि, अभिहितम् = कथितम् । वा = अथवा, ताडितः = ताडनाविषयीकृतः । तत्रापि = पूर्वोक्तेषु सर्वेषु विषयेषु अपि, असौ = अयं वैशम्पायनः, एवम् = इत्थम्, नैव, अस्नेहलः = स्नेहशून्यः, कठोरः, वा = अथवा, पिशुनस्वभावः = खलप्रकृतिः, वा = अथवा, गुरुजनाभक्तः = वृद्धजनासेवकः, वा = अथवा, गुणोपादानविमुखः = गुणग्रहणे पराङ्मुखः, वा = अथवा, तरलचित्तः = चञ्चलचेताः, वा = अथवा, यत्किञ्चनकारी = अविचार्य यत् किमपि कर्तुं शीलं यस्य स तादृशः, स्वेच्छाचारीति भावः, तथा, यः, कश्चिदिव, क्षुद्रप्रकृतिः = नीचस्वभावः, आद्येत्यादिः—आद्यः (= प्रथमः) चासौ पुत्रः (= सुतः) तस्य भावस्तत्ता तया गर्वितः (= गर्वयुक्तः), दुःशिक्षितः=दूषितशिक्षायुक्तः, वा = अथवा दुर्विनीतः = दुर्विनयः, पुत्रेत्यादिः—पुत्रस्य (= सुतस्य) एकता (= अद्वितीयता) तया दुर्ललितः (= दुश्चेष्टितः, दर्पादियुक्तः), यः, जन्मनः = जन्मकालाद्, प्रभृति = आरभ्य, सर्वप्रकारोपकारिण = सकलविधोपकारपरायणस्य, गुरुजनस्य = मातापित्रादिकस्य, उपरि = विषये, एवम् = इत्थम्, खेदम् = दुःखम्, उद्वेगं वा, कुर्यात् = विदधीत, वा = अथवा अनुबन्धाद् = सम्बन्धात्, विरमेत्= विरतो भवेत् । ईदृशस्य = एतादृशस्य, प्रशमस्य = वैराग्यस्य, अपि, एषः = अयं वर्तमानः, कालः = समयः, न = नैव, अस्तीति शेषः । अद्यापि = अधुनापि, असौ = एष वैशम्पायनः, विद्वज्जनोचिते = बुधलोकयोग्ये, गार्हस्थ्ये = गृहस्थाश्रमे, विवाहादिकृत्ये इति भावः, एव, न, निवेशितः = प्रवेशितः, अतएव च, देव-पितृ-मनुष्याणाम् = सुर-पितृ-मानवानाम्, आनृण्यम् = ऋणाभावम्, एव, न, उपगतः= सम्प्राप्तः । त्रयाणामपि ऋणं तस्योपरि वर्तते इति भावः । आनृण्यम्=ऋणाभावताम्,अगत्वा=अव्रजित्वा, ऋणैरविमुक्तः, ऋणत्रयेण = त्रयाणामृणानां समुदायेन, बद्धः = संयतः, विवशः, क्व=कुत्र, अज्ञातस्थाने

की इच्छा रखने (चाहने) वाले पिताजी ने अथवा आर्य शुकनास ने कुछ कड़वा (पीडाजनक) कह दिया हो अथवा पीट दिया हो । परन्तु ऐसा होने पर भी वह ऐसा स्नेहशून्य (रुक्ष) या दुष्ट स्वभाव वाला अथवा गुरुजनों का अभक्त अथवा गुणों को ग्रहण करने में विमुख अथवा चञ्चलचित्त वाला अथवा [बिना सोचे समझे] कुछ भी कर डालने वाला अथवा जिस किसी क्षुद्र स्वभाव वाले व्यक्ति के समान, अथवा प्रथम पुत्र होने का घमण्ड करने वाला अथवा दूषित शिक्षा वाला अथवा एकलौता पुत्र होने से लाड़ प्यार के कारण बिगड़ा हुआ भी नहीं है जो कि जन्म से लेकर [अभी तक] सभी प्रकार के उपकार करने वाले गुरुजनों के ऊपर इस प्रकार से खेद (असन्तोष अथवा क्रोध) करे अथवा सम्बन्ध छोड़ दे । ऐसे वैराग्य का भी तो यह समय नहीं है । अभी भी वह विद्वानों के योग्य गृहस्थ आश्रम में ही प्रविष्ट भी नहीं कराया गया है अर्थात् विवाहित नहीं किया गया है और

१, नैसावेवं स्नेहलः ।   २. आढ्यपुत्रता० राजपुत्रता० ।

देवपितृमनुष्याणामानृण्यमेव नोपगतः। अगत्वा चानृण्यमृणत्रयेण बद्धः क्व गतः। न तेन पुत्रपौत्रसंतत्या वंशः प्रतिष्ठां नीतः। नानन्तदक्षिणैर्महाक्रतुभिरिष्टम्। न सेतुकूपप्रपाप्रासादतडागारामादिभिः [1]कीर्तनैरलंकृता मेदिनी। नाकल्पस्थायि दिशोयायि यशो विप्रकीर्णम्। न गुरवोऽनुवृत्त्या सुखं स्थापिताः। न स्निग्धबन्धूनामुपकृतम्। न प्रणयिनो [2]निर्विशेषविभवतां नीताः। न साधवः परिवर्धिताः। नानुजीविनः संविभक्ताः। नाभ्यागताः कृता निस्तृषः। [3]न दृष्टाः श्रुता वाङ्गनाः। न जातेन जीवलोकसुखान्यनुभूतानि। न तेन पुरुषार्थसाधनानां

गतः = प्रयातः। तेन = वैशम्पायनेन, पुत्र-पौत्रसन्तत्या = पुत्रपौत्रादीनां परम्परया, वंशः = कुलम्, प्रतिष्ठाम् = प्रशस्यावस्थाम्, न, नीतः = प्रापितः। अनन्तदक्षिणैः—अनन्ता (= प्रचुरा) दक्षिणा (= यज्ञादौ विप्रादिभ्यो दीयमानं धनादि द्रव्यम्) येषु तादृशैः, महाक्रतुभिः = दीर्घयज्ञैः, न, इष्टम् = यजनं विहितम्। सेतुकूपेत्यादिः—सेतवः (= जलबन्धाः) कूपाः (= जलार्थखनयः) प्रपाः (= पानीयशालाः) प्रासादाः (= राजभवनानि) तडागाः (= जलाशयाः) आरामाः (= उद्यानानि) चैत्यादौ येषां तैः तादृशैः, कीर्तनैः = यशोवचनैः, मेदिनी = पृथिवी, न, अलङ्कृता= विभूषिता। आकल्पस्थायि—आकल्पम् (= कल्पपर्यन्तम्) तिष्ठति (= विद्यते) इति तादृशम्, दिशोयायि = सर्वदिग्गमनशीलम्, यशः = कीर्तिः, न = नैव, विप्रकीर्णम् = विस्तारितम्। गुरवः = वृद्धाः शिक्षकादयश्च, अनुवृत्त्या = अनुकरणेन, आनुकूल्येन वा, न = नैव, सुखम् =सातं यथा स्यात् तथा, स्थापिताः = प्रापिताः, सुखिनो विहिता इति भावः। स्निग्धबन्धूनाम् = स्नेहयुक्तबान्धवानाम्, न, उपकृतम् = उपकारो विहितः। अत्र सम्बन्धसामान्यविवक्षायां शैषिकी षष्ठी बोध्या। प्रणयिनः = अनुरागिणो लोकाः, निर्विशेषविभवताम्—निर्गतः (=नष्टः) विशेषः (= भेदः) यस्मात् तादृशः अर्थात् सदृशः, विभवः (=सम्पत्) यस्य तस्य भावस्तत्ताम्, स्वसदृशविभवतामिति भावः, न, नीताः = प्रापिताः। साधवः = सज्जनाः, न, परिवर्धिताः = वृद्धिं नीताः, धनादिदानद्वरेति शेषः। अनुजीविनः = सेवकजनाः, न, संविभक्ताः = संविभागीकृताः, धनादिकं विभज्य तेभ्यो दत्तमिति भावः। अभ्यागताः = अतिथयः, निस्तृषः = परिपूर्णमनोरथाः, न, कृताः = विहिताः। अङ्गनाः = कामिन्यः, न, दृष्टाः = विलोकिताः, न, वा श्रुताः = आकर्णिताः। न तासां दर्शनं कृतम्, न वा तासामालापादिकमेव श्रुतमिति भावः। जातेन = उत्पन्नेन तेन, जन्मना वा, जीवलोकसुखानि = प्राणिलोकसौख्यानि, न, अनुभूतानि = अनुभवविषयीकृतानि।

न देव, पितृ तथा मनुष्यों के ऋण से ही मुक्त हो सका है। बिना तीनों ऋणों को चुकाये, उनसे मुक्त हुए बिना, उनसे बँधा हुआ कहाँ चला गया है ? न तो उसने पुत्र-पौत्रों की परम्परा से वंश को ही विस्तृत किया है, बढाया है। और न ही अनन्त दक्षिणा वाले बड़े-बड़े यज्ञ ही किये हैं। न ही पुल, कुआँ, प्याऊ (पौशाला) देवमन्दिर (या राजभवन), तालाब, बगीचा आदि [के निर्माण] के द्वारा [उत्पन्न होने वाली] कीर्तियों से पृथिवी को अलंकृत किया है। और न ही कल्प (प्रलयकाल) तक रहने वाले तथा सभी दिशाओं में फैलने वाले यश को ही फैलाया है। और न अनुवर्त्तन (इच्छा के अनुकूल आचरण) द्वारा गुरुजनों को सुख पहुँचाया है। और न स्नेही बन्धुओं का उपकार किया है। न प्रियजनों-मित्रादि को अपने ही समान वैभववाला बनाया है। न सज्जनों को [धनादि देकर] बढ़ाया है। न नौकर-चाकरों में धनादि का समान विभाजन किया है। न अतिथियों की इच्छाओं को तृप्त किया है। न सुन्दर स्त्रियों को देखा या सुना है। और न जन्मग्रहण द्वारा जीवलोक के

---

१. अपूर्वैः कीर्तनैः। २. विशेष०।

३. न दृष्टश्रुताभ्यागताः कृतः निस्तृषः नाभ्यागताः कृताः निस्तृषः।

[1]धर्मार्थकामानामेकोपि हि प्राप्तः। किमेतत्तेन कृतम्।'

—इत्याक्षिप्तचेताश्चिन्तयंश्चिरमिव[2] तस्मिन्नेव तरुतले स्थित्वा शून्यहृदयोपि यथाक्रियमाणप्रसाद[3]सम्भावनासम्भावितं विसर्ज्य[4] सकलमेव राजकम्, उत्थाय, तत्क्षणकृतम्, उत्तम्भिततुङ्गतरतोरणाबद्धचन्दनमालम्, उभयपार्श्वस्थापितोत्पल्लवमुखपूर्णहेमकलशम्,

---

तेन = वैशम्पायनेन, पुरुषार्थसाधनानाम् = पुरुषार्थकरणानाम्, जीवनस्य यथार्थफलत्वसम्पादकानामिति भावः, धर्मार्थकामानाम्—धर्मः (= पुण्यादिकम्) अर्थः (= धनादिकम्) कामः (= उपभोगादिकम्) इति तेषां मध्ये, एकः, अपि, न, प्राप्तः = लब्धः। अस्यां स्थितौ सत्याम्, तेन = वैशम्पायनेन, एतत् = वैराग्यग्रहणरूपम्, किम्, कृतम् = विहितम्, इति अहं ज्ञातुं न शक्नोमीति तद्भावः।

इतीति। इति = अनेन प्रकारेण, आक्षिप्तचेताः = व्याकुलमनाः चन्द्रापीडः, चिन्तयन् = किमपि ध्यायन्, तस्मिन्नेव = पुरोवर्तिनि वृक्षस्याधोदेशे एव, चिरमिव = दीर्घकालपर्यन्तम्, स्थित्वा = निषद्य, शून्यहृदयः—शून्यम् (= सर्वभावरिक्तम्) हृदयम् (= चित्तम्) यस्य स तादृशः, सन्, अपि, यथेत्यादिः—यथा (= यथायोग्यम्) यथा स्यात् तथा क्रियमाणा (=विधीयमाना) प्रसादः (= अनुग्रहप्रदर्शनार्थं वस्त्रादिप्रदानम्) सम्भावना (= सम्मानः) च ताभ्यां सम्भावितम् (= सत्कृतम्), सकलम् = सर्वम्, एव, राजकुलम् = नृपसमूहम्, विसर्ज्य = विसर्जितं कृत्वा, यथेष्टगमनार्थमाज्ञाप्येति भावः, स्वयमपि, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, तत्क्षणकृतम् = तस्मिन्नेव समये निष्पादितम्, न तु पूर्वतः निर्मितम्, [अत्रत्यानि द्वितीयैकवचनान्तानि पदानि दूरे वक्ष्यमाणस्य 'कायमानमि'त्यस्य विशेषणानीति बोध्यम्। 'कायमानमि'त्यस्य च 'अविशदि'त्यत्रान्वयः।] उत्तम्भितेत्यादिः—उत्तम्भितम् (= उत्थापितम्) तुङ्गतरम् (= उच्चतरम्) यत् तोरणम् (=बहिर्द्वारम्) तस्मिन् आबद्धा (=बन्धनविषयीकृता, परिलम्बिता) चन्दनमाला (=चन्दनदारुखण्डनिर्मितस्रक्) यस्मिन् तं तादृशम्। केचित्तु—वन्दनमालमिति समर्थयन्ते, नानुचितमेतत्। उभयेत्यादिः—उभयपार्श्वयोः (= द्वयोः भागयोः) स्थापितः (= निहितः) उत्पल्लवमुखः (= ऊर्ध्वपत्राणि मुखे यस्य तादृशः, मुखभागे ऊर्ध्वपल्लवविभूषितः) पूर्णः (= जलादिभृतः) हेमकलसः (= स्वर्णघटः)

सुखों का अनुभव ही किया है। न ही उसने पुरुषार्थ के साधनों–धर्म, अर्थ तथा काम में से किसी भी एक को प्राप्त किया है। तब उसने यह क्या कर डाला [जो वैराग्य ग्रहण कर लिया]।

इस प्रकार से व्याकुल चित्तवाला (वह चन्द्रापीड) सोचता हुआ उसी वृक्ष के नीचे देर तक ठहर कर, सूने हृदयवाला होता हुआ भी यथायोग्य अनुग्रह तथा सम्मान से सम्मानित किये गये सभी राजसमूह को बिदा करके, उठकर, उस पटमण्डप में प्रविष्ट हो गया, उसके भीतर चला गया जो (पटमण्डप) उसी समय (नया) बनाया गया था, जिसमें खड़े किये गये बहुत ऊँचे तोरणों पर चन्दन की मालायें बाँधी गईं थीं, दोनों ओर मुख पर पल्लव रखे, जल से भरे सोने के घट रखे

---

१. काममोक्षाणाम्।
२. चिरमेव।
३. संमान—इत्यधिकमपि पठ्यते क्वचित्।
४. विससर्ज।

द्वारात्प्रभृति [1]सिक्तसंमृष्टभूमिभागम्, अन्तर्बहिश्च प्रकीर्णसुरभिकुसुमप्रकरम्, इतस्ततः संचरता कर्मान्तिकलोकेन गृहीतविविधभृङ्गारम्, मणिचामरतालवृन्तरत्नपादुकाद्युपकरणपाणिभिर्वारवनिताभिश्चाकीर्णम्, वितानतलवर्तिना मदामोदाधिवासितदिगाननेन[2] राजहस्तिना गन्धमादनेन सनाथीकृतैकपार्श्वम्, अपरपार्श्वेऽपि कल्पितेन्द्रायुधावस्थानम्, उपवाह्यकरेणुकाक्रान्तबाह्याङ्गणम्, [3]अशेषद्वारावहितबहुवेत्रिलोकं महत्त्वाद्गम्भीरतयानेकसत्त्वशरणतया च महाजलनिधिमनुकुर्वाणम्। तथा हि–सवेलावनमिव [4]यामावस्थितानेककरि-

यस्मिन् तं तादृशम्, द्वारात् = प्रवेशस्थानविशेषात्, प्रभृति = आरभ्य, सिक्तेत्यादिः—सिक्तः (= सिञ्चितः) संमृष्टः (= परिशोधितः पवित्रीकृतः) भूमिभागः (= पृथ्वीभागः) यस्मिन् तं तादृशम्। अन्तर्बहिश्च = आभ्यन्तरे बाह्ये च भागे, प्रकीर्णेत्यादिः—प्रकीर्णः (= अवकीर्णः, विक्षिप्तः) सुरभीणाम् (= सुगन्धयुक्तानाम्) कुसुमानाम् (= पुष्पाणाम्) प्रकरः (= समूहः) यस्मिन् तं तादृशम्। इतस्ततः = यत्र तत्र, सञ्चरता = प्रचलता, कर्मान्तिकलोकेन = अनुचरजनेन, गृहीतेत्यादिः—गृहीतः (= धृतः हस्तादाविति शेषः) विविधः (= नानाप्रकारः) भृङ्गारः (= कनकालुकाः) यस्मिन् तं तादृशम्। मणीत्यादिः—मणिखचितानि (= रत्नजटितानि) चामराणि (= चमरीपुच्छकेशनिर्मितव्यजनानि) तालवृन्तानि (= व्यजनानि) च, रत्नपादुकानि (= मणिजटितोपानत्प्रकारविशेषाः) एतानि आदौ यस्य तादृशम्, उपकरणम् (= साधनम्, सामग्री) पाणौ (= हस्ते) यासां ताः तादृशीभिः, वारवनिताभिः = वाराङ्गनाभिः, आकीर्णम् = परिव्याप्तम्। बितानतलवर्तिना = उल्लोचस्याधोदेशे विद्यमानेन, मदेत्यादिः—मदः (= दानवारि) तस्य य आमोदः (= सौगन्ध्यम्) तेन अधिवासितानि (= सुरभीकृतानि) दिशाम् (=आशानाम्) आननानि (= आस्यानि, अग्रभागाः) येन तादृशेन, राजहस्तिना = नृपस्य गजेन, गन्धमादनेन = एतन्नामकेन, सनाथीकृतैकपार्श्वम्—सनाथीकृतम् (= विभूषितम्, सहितम्) एकं पार्श्वम् (=भागः) यस्य तं तादृशम्। अपरपार्श्वे = अन्यस्मिन् भागे, अपि, कल्पितेत्यादिः—कल्पितम् (= रचितम्) इन्द्रायुधस्य (= चन्द्रापीडाख्याश्वविशेषस्य) अवस्थानम् (=उपवेशनस्थलम्) यस्मिन् तं तादृशम्। उपेत्यादिः—उपवाह्याः (= उपवाहयितुं योग्याः) याः करेणुकाः (=हस्तिन्यः) ताभिराक्रान्तम् (=परिव्याप्तम्) बाह्याङ्गणम् (=बाह्याजिरम्) यस्मिन् तं तादृशम्। अशेषेत्यादिः—अशेषाणि (= सकलानि) यानि द्वाराणि (= प्रवेश-निष्क्रमणस्थलविशेषाः) तेषु अवहितः (= स्थापितः, सावधानो वा) बहुः (= अत्यधिकः) बेत्रिलोकः (= वेत्रधारिजनः) यस्मिन् तं तादृशम्।

साम्प्रतं महाजलनिधिसादृश्यं वर्णयति—महत्त्वादित्यादिना। महत्त्वात् = विशालत्वात्, गम्भीरतया = गाम्भीर्येण, अलब्धमध्यतलतयेति भावः, अनेकेत्यदिः—अनेके (= नानाविधाः) ये

गये थे, दरवाजे से लेकर [भीतर तक सारा] भूभाग सींचा (जल से छिड़का गया अत एव) पवित्र (स्वच्छ) किया गया था, भीतर और बाहर सुगन्धित फूलों के समूह=गुच्छे बिखेरे गये थे, इधर-उधर घूमते हुए नौकरों ने [अपने हाथों में] अनेक प्रकार के जलादि भरने के पात्रविशेष ले रखे थे, जो (पटमण्डप) मणिजटित चामरों, पंखों तथा रत्नजड़ी पादुका आदि सामग्री को हाथों में लिये (पकड़े) हुई वेश्याओं से भरा हुआ था, जिसमें चाँदनी (तम्बू) के नीचे विद्यमान, मदजल की सुगन्ध से सभी दिशाओं के मुखों (अग्रभागों) को सुगन्धित करने वाला राजहस्ती गन्धमादन एक ओर [बैठा] था, दूसरी ओर भी इन्द्रायुध अश्व के लिये जगह बनाई गई थी, बाहरी आँगन का भाग सवारी के योग्य हथिनियों से भरा हुआ था, सभी दरवाजों पर हाथों में बेत (छड़ी) पकड़े हुए पहरेदार (सावधान) खड़े हुए थे, जो महान् (विशाल) गम्भीर और अनेक प्राणियों का शरणस्थल होने के कारण महासमुद्र का अनुकरण कर रहा था, उसके समान दिखाई दे रहा था, यह इस प्रकार था—अलग-अलग प्रहरों में स्थित होने वाले अनेक हाथियों की घटाओं (समूहों) के

१. सिक्तमृष्टभूभागम्। २. दिङ्मण्डलनेन। ३. अवस्थित०। ४. यामकस्थित०।

घटापरिकरेण, अन्तःप्रविष्टमहाशैलमिव गन्धमादनेन, सकल्लोलमिव संचरत्संभ्रान्तकर्मान्तिकलोकोर्मिपरंपराभिः,सावर्त्तमिव प्राहरिकजनमण्डलावस्थानैः,सलक्ष्मीकमिव [1]वाराङ्गनाभिः, सरत्नमिव महापुरुषैः, सहंसमालमिव सितपताकाभिः, सफेनपटलमिव कुसुमप्रकरैः, हरिमिवानन्तभोगपरिकरं कायमानमविशत् ।

---

[2]सत्त्वाः (= प्राणिनः) तेषां शरणतया (= आश्रयतया) च, महाजलनिधिम् = महासागरम्, अनुकुर्वाणम् = अनुकुर्वन्तम्, तद्वदाचरन्तम्, सागरेऽपि विशालता, गम्भीरता, बहुप्राणिसमाश्रयता च स्पष्टं विलोक्यते इति तयोः साम्यम् । एतदेव वैशद्येन वर्णयति—तथाहीत्यादिना । तथा हि = तच्च एवं बोध्यम्, यामेत्यादिः—यामे यामे (= प्रतिप्रहरम्, चतुष्किकायाम्) अवस्थिताः (= संस्थिताः) ये अनेके (= नैके) करिणः (= हस्तिनः) तेषां घटा (= समूहः) तस्याः परिकरेण (= उपस्करेण), हेतुना, सवेलावनम् = वेलायाम्, (= तटक्षेत्रे) वनम् (= काननम्) इव । तटे विद्यमानवनेषु अत्युच्चश्यामपादपैः, गजघटासाम्यं वर्णितम् । गन्धमादनेन = एतन्नामकेन राजहस्ति-विशेषेण, अन्तरित्यादिः—अन्तः (= आभ्यन्तरे) प्रविष्टः (= प्रविश्य स्थितः) महाशैलः (= मैनाकनामा पर्वतः) यस्मिन् तं तादृशम् इव । उच्चत्व-कृष्णत्वयोः साम्येन गन्धमादनस्य पर्वतसाम्यं कथितम् । सञ्चरदित्यादिः—सञ्चरन्तः (= इतस्ततः भ्राम्यन्तः) सम्भ्रान्ताः (= त्वरायुक्ताः) ये कर्मान्तिक-लोकाः (= सेवकजनाः) ते एव ऊर्मयः (= तरङ्गाः) तासां परम्पराः (= श्रेणयः) ताभिः, सकल्लोलम् = तरङ्गसहितम् इव । अत्रापि साम्यं स्पष्टम् । प्राहरिकेत्यादिः—प्राहरिकाः (= प्रहरिणः) ये जनाः (= लोकाः) तेषां मण्डलेन (= मण्डलाकाररूपेण) अवस्थानैः (= उपवेशनैः) सावर्त्तम् = आवर्त्तः (= जलानां भ्रमिः) तैः सह वर्तमानम्—जलभ्रमिविशिष्टमिवेति भावः । वाराङ्गनाभिः = वारस्त्रीभिः, सलक्ष्मीकम् = लक्ष्मीयुक्तम्, इव । महापुरुषैः = सत्पुरुषैः, सरत्नम् = रत्नसहितम्, इव । महापुरुषाणां रत्नतुल्यता लोके विख्याता । सितपताकाभिः = श्वेतवैजयन्तीभिः, सहंसमालम् = मरालानां पङ्क्तिभिः सहितम्, इव । अत्र श्वेतपताकानां श्वेतहंसैः सह साम्यं वर्णितम् । कुसुमप्रकरैः = पुष्पसमूहैः, सफेनपटलम्—फेनपटलेन (= फेनपुञ्जेन) सह वर्तमानम्, इव । अत्र साम्यं सुस्पष्टम्—अनन्तः (= अपरिमितः) यो भोगः (=उपभोगः, आस्वादादिः) तस्य परिकरः (= परिवारः, बाहुल्यम्) यस्मिन् तं तादृशम्, अनन्तेत्यादिः—अनन्तः (= शेषनागः) तस्य भोगः (= देहः) परिकरः (=पल्यङ्कः) यस्य तादृशम्, हरिम् = विष्णुम्, इव, कायमानम् = पटमण्डपम्, अविशत् = प्रविष्टवान् । अत्र महाजलधेः पटमण्डपस्य च साम्यं साधु वर्णितम् । उपमालङ्कारः स्पष्टः ।

के कारण तट पर स्थित वनों से युक्त सा था, [विशाल हाथी बड़े-बड़े वृक्षों के समान लगने से वन का सादृश्य था ।] गन्धमादन नामक हाथी के कारण भीतर प्रवेश किये हुए (मैनाक नामक) महान् पर्वत से युक्त था, जल्दीबाजी में इधर-उधर घूमते हुए नौकरों रूपी तरंगों की परम्परा के कारण तरंगों से युक्त सा था; पहरेदारों की मण्डलाकार बैठकों के कारण जल की भँवरों से युत था, वेश्याओं के कारण लक्ष्मी से युक्त सा था, महान् पुरुषों के कारण रत्नों से युक्त सा था, श्वेत पताकाओं के कारण हंस-मालाओं से युक्त सा था, पुष्प-समूहों के कारण फेनसमूह से युक्त सा था, अनन्त भोग (उपभोग) की सामग्री वाला होता हुआ, अनन्त नाग = शेषनाग के शरीर रूपी शय्यावाले भगवान् विष्णु सा था । [ऐसे कायमान = पटमण्डप = वस्त्रनिर्मित भवन में चन्द्रापीड ने प्रवेश किया ।]

---

१. बराङ्गनाभिः ।

२. सत्त्व-शब्दः पुंस्यपि साधुः—द्र० 'वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान्' (रघुवंशम् १२।८) ।

प्रविश्य चागृहीतप्रतिकर्मतया मलिनवेषाभिरुद्विग्नदीनमुखीभिरितस्ततो [1]वाराङ्गनाभिर्यामिकलोकेन कर्मान्तिकैश्च प्रणम्यमानस्तूष्णीमिवालोककारकेणेव मदामोदेनावेदिते निसृष्टशून्यदृष्टिर्गन्धमादने शनैः शनैर्वासभवनमयासीत्। तत्र चापनीतसमायोगो विमुच्याङ्गानि शयनीये [2]तरुतालवृन्तानिलेन संवीज्यमानोऽङ्गसंवाहकारिभिश्च शनैः शनैरपनीयमानागमनखेदः सकलरजनीप्रजागरखिन्नोऽपि चाप्राप्तनिद्रासुखो दुःखासिकया पुनरपि दुखान्तर-

---

प्रविश्य चेति। प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, च, लतामण्डपे इति शेषः, अगृहीतेत्यादिः—अगृहीतम् (= अनात्तम्, अकृतम्) प्रतिकर्म (= शरीरसंस्कारः) याभिस्तासां भावस्तत्ता तया, स्नानादिक्रियाया अभावेनेति भावः, मलिनवेशाभिः—मलिनम् (= श्यामम्) वेशः (= नेपथ्यम्) यासां तादृशीभिः, उद्विग्नमुखीभिः—उद्विग्नम् (= खिन्नम्) मुखम् (=आननम्) यासां तास्ताभिः, इतस्ततः = यस्मिन् तस्मिन् स्थाने, सञ्चरन्तीभिः=सञ्चारं कुर्वन्तीभिः, वाराङ्गनाभिः = वेश्याभिः, यामिकलोकेन=प्रहरिजनेन, कर्मान्तिकैः=अन्यैः सेवकैः, च, प्रणम्यमानः=नमस्क्रियमाणः, तुष्णीम्=मौनम्, एव, आलोककारकेण—आलोकः (= जय-जय—इत्यकारकः शब्दः) तं करोतीति तेन तादृशेन, यद्वा—प्रकाशकारकेण जनेन, इव, मदामोदेन = मदस्य गन्धेन, आवेदिते = सूचिते, गन्धमादने = एतन्नामके गजे, निसृष्टशून्यदृष्टिः—निसृष्टा (= निक्षिप्ता) शून्या (= रिक्ता, उद्देश्यहीना) दृष्टिः (= नेत्रम्) येन स तादृशः, सन्, शनैः शनैः = मन्दं मन्दम्, वासभवनम् = आवाससदनम्, पट-मण्डपाभ्यन्तरे निर्मितं स्थानविशेषमिति भावः, अयासीत् = अगमत्। यथा प्रकाशकारकः श्यामे तमसि विद्यमानं किमपि वस्तु ज्ञापयति तथैव मदः गन्धमादनाख्यं गजं सूचितवान्। यद्वा—आलोकः = जयजय-शब्दः राजानं सूचयति तथैव मदः गन्धमादनं गजं सूचितवानिति साम्यादुपमा स्पष्टा।

तत्रेति। तत्र = वासभवने च, अपनीत-समायोगः = दूरीकृतः बाह्यजनसम्बन्धः येन स तादृशः, शयनीये=पल्यङ्के, अङ्गानि=शरीरावयवान्, विमुच्य=परित्यज्य, शिथिलीकृत्य, तस्मिन् लुठन्निति भावः, तरुतालवृन्तानिलेन = वृक्षपत्रनिर्मितव्यजनपवनेन, संवीज्यमानः = व्यजनोत्थवायुना सुखं प्रदीयमानः, अङ्गसंवाहकारिभिः = शरीर-संमर्दन-विधायिभिः, च सेवकैः, शनैः शनैः=मन्दं मन्दम्, अपनीयेत्यादिः—अपनीयमानः (= दूरीक्रियमाणः) आगमनस्य (= तत्र सम्प्राप्तेः खेदः (= श्रमः) यस्य स तादृशः, सकलेत्यादि—सकला (= समस्ता) या रजनी (= रात्रिः)

उस (पटमण्डप) में प्रवेश करके, शरीर-प्रसाधन आदि कर्म न करने के कारण मलिन वेशवाली तथा उद्विग्न (दुःखी) मुख वाली, इधर-उधर [घूमने वाली] वेश्याओं, पहरेदारों तथा सेवकों के द्वारा प्रणाम किया जाता हुआ (चन्द्रापीड) चुपचाप ही प्रकाश करने वाले अथवा जय-जयकार करने वाले के समान मदजल की गन्ध से सूचित किये (बतलाये) गये गन्धमादन नामक हाथी पर सूनी दृष्टि डालता हुआ धीरे-धीरे वासभवन (ठहरने के कक्ष) में चला गया। वहाँ सभी साज सज्जा को हटाकर, अङ्गों को पलंग पर ढीला-ढाला छोड़कर अर्थात् लेट कर पेड़ों [पत्तों] से बने हुए पंखों से हवा किया जाता हुआ, देह दबाने वाले नौकरों द्वारा धीरे-धीरे थकान दूर किया जाता हुआ, सारी रात जागने से खिन्न (क्लान्त) होता हुआ भी बहुत बड़े दुःख के आ जाने के

---

1. वराङ्गनाभिः। 2. तनु०।

हेतुं चिन्तामेवाविशत्—'यदि तावदप्रतिमुक्तस्तातेनाम्बया वा महति शोकार्णवे निक्षिप्य[1] तौ तनयविरहशोकविक्लवं तातं शुकनासमम्बां च मनोरमामनाश्वास्यास्मादेव प्रदेशाद्-गच्छामि तदा मयापि वैशम्पायनस्यानुकृतं भवति। निवृत्य पुनर्गमने चामुक्तिपक्षमाशङ्कते मे हृदयम्। तत्किं करोमि। अथवास्थान[2] एवाप्रतिमुक्तिशङ्का मे। प्रियसुहृदात्मानं मां

तस्यां यः प्रजागर, (=जागरणम्, निद्राऽभावः) तेन खिन्नः (=खेदयुक्तः) अपि, च, दुःखासिकया= दुःखपूर्वकम् अवस्थानेन, अप्राप्तनिद्रासुखः—अप्राप्तम् (=न लब्धम्) निद्रायाः (=स्वापावस्थायाः) सुखम् (= आनन्दः) येन स तादृशः, पुनरपि = द्वितीयवारम्, दुःखान्तरहेतुम्=अन्यदुःखकारणम्, चिन्ताम् = मानसीव्यथाम्, एव, अविशत् = प्रविष्टः। प्रथमत एव कादम्बरीविरहरूपमेकं दुःखमासीदेव। इदानीं वैशम्पायनानागमनरूपं द्वितीयं दुःखमापतितं केनोपायेनास्माद् मुक्तो भविष्यामीति महती चिन्ता तस्य मनसि समुत्पन्ना।

इदानीं चन्द्रापीडः विकल्पान् चिन्तयति—यदीत्यादिना। यदि = चेत्, तातेन = जनकेन तारापीडेन, अम्बया = जनन्या विलासवत्या, वा, अप्रतिमुक्तः = अविसर्जितः, गमनार्थं नानुज्ञप्त इति भावः, तौ = मातापितरौ, महति = विशाले, शोकार्णवे=शोकसागरे, निक्षिप्य=पातयित्वा, एवमेव, तनयेत्यादिः—तनयः (= पुत्रः वैशम्पायनः) तस्य विरहः (= वियोगः) तस्माद् यः शोकः (= दुःखम्) तेन विक्लवम् (= व्याकुलम्) तातम् = पूज्यम्, पितृतुल्यम्, शुकनासम् = एतन्नामानं वैशम्पायनपितरम्, अम्बाम् = वैशम्पायन-जननीम्, मनोरमाम् = एतन्नाम्नीम्, च, अनाश्वास्य = आश्वासनमदत्त्वा, अस्मात् = पुरोवर्तिनः, प्रदेशात् = स्थानात्, गच्छामि = व्रजामि, वैशम्पायनस्यान्वेषणार्थमिति शेषः, तदा = तस्यां स्थितौ, मया = चन्द्रापीडेन, अपि, वैशम्पायनस्य = एतन्नामकस्य मित्रस्य, अनुकृतम् = अनुकरणं कृतम्, भवति = भविष्यति। तस्येव ममापि आचरणं चिन्तनीयं भविष्यतीति भावः। निवृत्य = अस्मात् स्थानात् उज्जयिनीं प्रति पुनर्गत्वा, तु, पुनः = द्वितीयवारम्, गमने = प्रस्थाने, यात्रायाम्, मे = मम चन्द्रापीडस्य, हृदयम् = चित्तम्, अमुक्तिपक्षम् = अविसर्जनविकल्पम्, आशङ्कते = आरेकते। वर्तमानायां स्थितौ मात्रापित्रादयः एकाकिनं मां पुनस्तत्र गमनायानुमतिं कथमपि नैव प्रदास्यन्तीति तद्भावः। एवञ्च अननुमतस्य गमने तथैवानुमतिं प्राप्य गमने उभयत्र दोषाः प्रतीयन्ते। तत् = तस्मात्, किम् = अज्ञातम्, करोमि = विदधामि। अथवा = पक्षान्तरे, मे = मम चन्द्रापीडस्य, अप्रतिमुक्तिशङ्का = अननुमतिलाभशंका, अस्थाने = अनवसरे, एव, अयुक्तेति भावः। 'युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' इति अमरकोशात् सुस्पष्टोऽर्थः।

कारण फिर से दूसरे ही दुःख की हेतु भूत चिन्ता में प्रविष्ट हो गया, डूब गया—"यदि पिता जी अथवा माता जी से आज्ञा लिये बिना ही उन दोनों को महान् शोकसागर में डालकर तथा पुत्र वैशम्पायन के विरह रूपी शोक से व्याकुल पूज्य शुकनास और माता मनोरमा को बिना आश्वस्त किये हुए इस स्थान से [वैशम्पायन को लौटाने के लिये] चल देता हूँ तो मेरे द्वारा भी वैशम्पायन का ही अनुकरण कर लिया जायगा अर्थात् उसकी गलती दोहरा दी जायगी। [राजभवन में] वापस लौट कर, फिर से [वैशम्पायन के पास] जाने में मेरा मन [माता-पिता से] मुक्ति = जाने की आज्ञा न मिलने की आशंका कर रहा है अर्थात् यदि मैं राजभवन वापस लौटकर गया तो मेरे माता-पिता किसी भी स्थिति में वैशम्पायन के पास नहीं जाने देंगे। तो अब मैं क्या करूँ ? अथवा आज्ञा न प्राप्त होने की मेरी आशंका अनुचित ही है। क्योंकि प्रिय मित्र वैशम्पायन ने अपने को

१. निःक्षिप्य। २. अस्थानप्रतिमुक्ति०।

च परित्यजताप्यपरेण प्रकारेण [1]गमनमुत्पादयता कादम्बरीसमीपगमनोपायचिन्तापर्याकुलमतेरुपकृतमेव । तदधुना वैशम्पायनप्रत्यानयनाय यान्तं न तातो नाम्बापि नार्यशुकनासोऽपि निवारयितुं शक्नोति माम् । गतश्च वैशम्पायनसहितस्तेनैव पार्श्वेन [2]पुरस्ताद्गमिष्यामि ।' इति निश्चित्य तत्कालकृतं वैशम्पायनवियोगदुःखं परिणामसुखमौषधमिव बहु मन्यमानो मुहूर्तमिव स्थित्वा[3] विश्रान्तः सुखितैरङ्गैरापूरिते तृतीयार्धयामशङ्खे शरीरस्थितिकरणायोदतिष्ठत् ।

स्वकथनं समर्थयते—प्रियसुहृदेत्यादिना । प्रियसुहृदा = वल्लभेन मित्रेण वैशम्पायनेन, आत्मानम् = स्वम्, माम् = चन्द्रापीडम्, च, परित्यजता = त्यागं विदधता, अपि, अपरेण = अन्येन, प्रकारेण = रूपेण, गमनम् = प्रस्थानम्, तस्य निमित्तमिति भावः, उत्पादयता = जनयता, कादम्बरीत्यादिः—कादम्बर्याः समीपम् (= निकटम्) यद् गमनम् (= प्रयाणम्) तस्य य उपायः (= साधनम्) तस्त चिन्ता (= मनसी व्यथा) तया पर्याकुला (= व्याकुला, उद्विग्ना) मतिः (= धीः) यस्य तस्य तादृशस्य मम चन्द्रापीडस्य, उपकृतम् = उपकारः कृतः, एव । वैशम्पायनस्य शरीरदर्शनव्याजेन तत्र गच्छतो मे कादम्बर्या अपि दर्शनं सम्भावितमिति तद्भावः । तत् = तस्मात्, अधुना = इदानीम्, वैशम्पायन-प्रत्यानयनाय = वैशम्पायनस्य परावर्त्तनाय, यान्तम् = व्रजन्तम्, माम् = चन्द्रापीडम्, न, तातः = जनकस्तारापीडः, न, अम्बा = जननी विलासवती, न, आर्यशुकनासः = एतन्नामा वैशम्पायनस्य पिता, महामात्यश्च, निवारयितुम् = अवरोद्धुम्, शक्नोति = अर्हति, एते सर्वेऽपि मां झटित्येवाज्ञां प्रदास्यन्तीति तदाशयः । गतः = प्राप्तः, च, तत्र, वैशम्पायनसहितः = वैशम्पायनयुक्तः, तेनैव = पूर्वं परिचितेन एव, पार्श्वेन = अच्छोदसमीपवर्ति-स्थानेन मार्गेण वा, पुरस्तात् = अग्रे, कादम्बरी-समीपे इति भावः, गमिष्यामि = व्रजिष्यामि" इति = इत्थम्, निश्चित्य = निश्चितं कृत्वा, तत्कालकृतम् = तेन कालेन कृतम्, तस्मिन् काले वा कृतम् = जनितम्, वैशम्पायन-वियोगदुःखम् = वैशम्पायन-विरहक्लेशम्, परिणामेत्यादिः—परिणामे (= पर्यवसाने) सुखम् (= सुखजनकम्) औषधम् (= भेषजम्) इव, बहु = अत्यधिकम्, मन्यमानः = अवगच्छन्, मुहूर्तम् = क्षणमात्रम्, इव, स्थित्वा=अवस्थाय, विश्रान्तः = कृतविश्रामः, सुखितैः = सुखप्राप्तैः, अङ्गैः = शरीरावयवैः, उपलक्षितः सन्, तृतीयेत्यादिः—तृतीयः अर्धः (= सामिः) यस्मिन् स तादृशः यामः (= प्रहरः) तस्य शङ्खे (=कम्बौ), सार्धद्विप्रहरमितायां निशायां गतायां तस्याः सूचके शङ्खे इति भावः, आपूरिते = आध्माते, वादिते, सति, शरीरस्थितिकरणाय = दैहिकस्नानादिकृत्यसम्पादनाय, उदतिष्ठत् = उत्थितोऽभूत् ।

तथा मुझको छोड़ते हुए भी दूसरे प्रकार से कादम्बरी के पास जाने [के कारण] को बनाते हुए, कादम्बरी के समीप जाने के उपाय की चिन्ता से व्याकुल बुद्धि वाले मेरा उपकार ही किया है । क्योंकि इस समय वैशम्पायन को वापस लाने के लिये जाते हुए मुझको न पिताजी, न माताजी और न पूज्य शुकनास जी ही रोक सकते हैं । और वहाँ पहुँचा हुआ मैं वैशम्पायन के साथ ही उसी जगह से आगे (कादम्बरी के समीप) चला जाऊँगा ।' ऐसा निश्चित करके उस समय हुए वैशम्पायन के विरह के दुःख को परिणाम में सुख देने वाली औषधि के समान बहुत अधिक मानता हुआ, महत्त्व देता हुआ, थोड़ी देर तक रुककर, विश्राम करके, प्रसन्न अङ्गों के साथ, तीसरे आधे पहर का शंख बजाये जाने पर, शारीरिक कृत्य (स्नानादि) करने के लिये उठ खड़ा हो गया ।

---

१. गमनमप्युत्पादयता । २. अग्रतो । ३. निद्राविश्रान्तिसुखितैः ।

उत्थाय च यत्रैव कादम्बरी तत्रैव वैशम्पायन इति स्वधैर्यविष्टम्भेनैव संस्तभ्य हृदयं शून्यान्तरात्मा पुनरेव [1]'संवगिताशेषराजलोकः शरीरस्थितिमकरोत्। कृताहारश्चान्तर्ज्वलतो मदनानलस्य वैशम्पायनविरहशोकाग्नेश्च बहिरपि सन्तापदानाय साहायकमिव कर्तुमुपरि स्थितश्चातिकष्टमष्टास्वपि दिक्षु युगपत्प्रसारितकरः 'करोम्ययत्नेनैव सन्तापमि'त्याकलय्येव गगनतलमध्यमारूढे सवितरि, आतपव्याजेन रजतद्रवमिवोत्तप्तमुद्गिरति रश्मिजाले, निर्भिद्य

उत्थायेति। उत्थाय = उत्थानं विधाय; च, यत्रैव = यस्मिन् एव स्थाने, कादम्बरी = मम प्रेयसी गन्धर्वराजकन्या, तत्रैव = तस्मिन् एव स्थाने, वैशम्पायनः = एतन्नामा मम प्रियवयस्यः, इति = इत्थम्, स्वधैर्यविष्टम्भेन = स्वधैर्यावलम्बनेन, एव, हृदयम् = चित्तम्, संस्तभ्य = दृढीकृत्य, समाश्वास्य, शून्यान्तरात्मा = रिक्तचित्तः, सन्, पुनरपि = भूयोऽपि, संवगितेत्यादिः--संवगितः (= सम्मिलितः) अशेषः (= समस्तः) राजलोकः (= नृपजनः) यस्य स तादृशः, सन्, शरीरस्थितिम् = शरीरधारणोपायं भोजनादिकम्, अकरोत् = कृतवान्। कृतेत्यादिः--कृतः (= विहितः) आहारः (= भोजनम्) येन स तादृशः, सन्, अन्तः = आभ्यन्तरे, ज्वलतः = दीप्यमानस्य, मदनानलस्य = कामाग्नेः, वैशम्पायनेत्यादिः--वैशम्पायनस्य (= स्वप्रियवयस्यस्य) यो विरहः (=वियोगः) तस्माद् यः शोकः (=दुःखम्) स एव अग्निः (=वह्निः) तस्य, बहिः=बाह्ये, अपि च सन्तापदानाय = सन्तापं समर्पयितुम्, साहायकम् = साहाय्यम्, इव, कर्तुम् = विधातुम्, उपरि = ऊर्ध्वं देशे, गगने इति भावः, स्थितः = विराजमानः, अतिकष्टम्=अतिक्लेशपूर्वकं यथा स्यात् तथा, अष्टासु = अष्टसंख्याकासु, अपि, दिक्षु = दिशासु, युगपत् = एकसार्धमेव, समकालमेव, प्रसारितकरः--प्रसारिताः (= विस्तारिताः, विकीर्णाः) कराः (= किरणाः) येन स तादृशः, अयत्नेन = प्रयासं विनैव, सन्तापम् = उग्रतापम्, करोमि=विदधामि, इति = एवम्, आकलय्य = निश्चित्य, इव, सवितरि = सूर्ये भगवति, गगनतलम् = नभस्तलम्, अध्यारूढे = समाक्रान्ते, सति। [इतो दूरे वक्ष्यमाणे 'जलमण्डपम् अयासीदि' त्यत्र सर्वेषां सति सप्तम्यन्तानामन्वयो बोध्यः।] आतपव्याजेन = घर्मस्य मिषेण, रश्मिजाले = किरणसमूहे, उत्तप्तम् = अत्युष्णीकृतम् रजतद्रवम् = रूप्यरसम्, इव, उद्गिरति = उद्वमति सति। आतपकणिकासु = घर्मखण्डेषु, शरीरम् = देहम्, निर्भिद्य = भेदनं

(इसके बाद) उठकर 'जहाँ कादम्बरी है वहीं वैशम्पायन है' इस प्रकार से [मन में सोचते हुए] अपने धैर्य के सहारे से ही हृदय को थाम कर, दृढ़ बनाकर, सूने मन वाला होता हुआ फिर से सभी राजाओं आदि को एकत्रित करके शरीरस्थिति = स्नान-भोजनादिकृत्य सम्पन्न किया। भोजन कर लेने के बाद भीतर मन में जलती हुई कामाग्नि तथा वैशम्पायन की विरहरूपी अग्नि इन दोनों को बाहर से भी सन्ताप देने के लिये मानों सहायता करने के लिये ऊपर गगन में विद्यमान सूर्य--'आठों दिशाओं में एक साथ किरणें फैलाये हुए बिना प्रयास के ही अत्यधिक कष्टप्रद संताप पैदा कर दूँ'--ऐसा मानों सोचकर गगनतल के मध्यभाग में आरूढ हो गया, किरणों का समूह धूप के बहाने मानों गरम की गई पिघली हुई चाँदी को उगलने लगा, धूप की कणिकायें (अंश) भेदन करके

१. संवर्जितराजलोकः।

विशन्तीष्विव शरीरमातपकणिकासु, [1]पुञ्जयमानप्राणिसङ्घातासु तलप्रवेशात्सङ्कटायमानासु पादपच्छायासु, बहिरालोकयितुं चाप्यपारयन्तीषु दृष्टिषु[2], दिङ्मुखेषु [3]ज्वलत्स्विव, दुःस्पर्शासु भूमिषु, निःसंचारेषु पथिषु, [4]संकटप्रपाकुटीरोदरोदपीतिपुञ्जितेष्वध्वन्येषु, नाडिंधमश्वासातुरेषु स्वनीडावस्थायिषु पत्त्ररथेषु पल्वलान्तर्जलप्रवेशितेषु महिषवृन्देषु, अरविन्ददलशकलकिञ्जल्कविच्छुरितमिच्छाविलोडितोत्त्रुटित[5]बिसकाण्डच्छेददन्तुरं निपानसरःपङ्कमारोहत्सु

विधाय, विच्छिद्य, विशन्तीषु = प्रवेशं कुर्वन्तीषु, सतीषु, इव। पुञ्ज्यमानेत्यादिः—पुञ्ज्यमानः (= पुञ्जतां प्राप्यमाणः) प्राणिनाम् (=जीवानाम्) संघातः (= समुदायः) यासु तादृशीषु पादपच्छायासु = वृक्षच्छायासु, तलप्रवेशात् = अधोदेशगमनात्, किरणानां प्राणिनां वेति शेषः, संकटायमानासु = संकीर्णतामुपयान्तीषु, सतीषु। दृष्टिषु = अक्षिषु, बहिः = बाह्यदेशे, आलोकयितुम् = द्रष्टुम्, अपि, अपारयन्तीषु = अशक्नुवतीषु, असमर्थासु, सतीषु। दिङ्मुखेषु=दिशाग्रभागेषु, ज्वलत्सु = दह्यमानेषु, इव सत्सु। भूमिषु = भूभागेषु, दुःस्पर्शासु = दुःखेन स्प्रष्टुं योग्यासु, सतीषु। पथिषु = मार्गेषु, निःसञ्चारेषु = सञ्चारशून्येषु, सत्सु। अध्वन्येषु = पथिकेषु, यात्रिजनेषु, संकटेत्यादिः—सङ्कटम् (= अतिसङ्कीर्णम्) यत् प्रपायाः (= पानीयशालायाः) कुटीरम् (= लघुभवनम्) तस्य उदरम् (= मध्यदेशः) तस्मिन् उदपीतिः (= उदकस्यपानम्) तदर्थं पुञ्जितेषु (= एकत्रितेषु), सत्सु। स्वनीडावस्थायिषु = स्वकुलायेषु अवस्थानकारिषु, पत्त्ररथेषु = पक्षिषु, नाडिन्धम-श्वासातुरेषु—नाडिं धमतीति नाडिन्धमः (= अतीवोष्णः) यः श्वासः (= निःश्वासः) तेन आतुरेषु (= व्याकुलेषु), सत्सु। महिषवृन्देषु = सैरिभसमूहेषु, पल्वलेत्यादिः—पल्वलानाम् (= कासाराणाम्, तडागानाम्) अन्तर्जले (= सलिलमध्ये) प्रवेशितेषु = प्रवेशं कारितेषु सत्सु, तेषां पालकादिभिरिति शेषः। करियूथेषु = हस्तिनां समूहेषु, अरविन्देत्यादिः—अरविन्दानाम् (= पंकजानाम्) दलानाम् (= पत्त्राणाम्) यानि शकलानि (= खण्डानि) किञ्जल्कानि (= केसराणि) च तैः विच्छुरितम् (= व्याप्तम् चित्रवर्णीकृतम्), इच्छेत्यादिः—इच्छया (= मनोऽनुसारम्) विलोडितेन (= मथनेन) उत्त्रुटितानि (=खण्डतां प्राप्तानि) बिसकणानि (=कमलदण्डानि) तेषां छेदैः (=शकलैः, खण्डैः) दन्तुरम् (= उच्चावचम्, निम्नोन्नतम्), निपानेत्यादिः—निपानम् (= कूपनिकटस्थलघुजलाशयरूपम्) यत् सरः (= कासारः) तस्य पङ्कम् (= कर्दमम्), आरोहत्सु = प्रविशत्सु सत्सु। रक्तेत्यादिः—रक्तम् (=ताम्रवर्णम्)

मानों शरीर में प्रविष्ट होने लगी, [सूर्य की किरणों के] नीचे प्रवेश कर लेने के कारण पेड़ों की छायायें (परछाइयाँ), जिनमें प्राणियों के समूह एकत्रित होने लगे थे, सिकुड़ने (छोटी होने) सी लगीं; आखें [धूप की तेजी के कारण] बाहर देखने में असमर्थ होने लगीं, दिशाओं के मुख = अग्रभाग जलने से लगे; भूमि अत्यन्त कष्ट से स्पर्श करने योग्य हो गई, सड़कें सचार (गमनागमन) से रहित (सूनीं) हो गईं, राहगीर लोग संकरे प्याऊओं के भीतर पानी पीने के लिये इकट्ठे होने लगे, अपने-अपने घोसलों में बैठे हुए पक्षी नसों को फुला देने वाली (लम्बी-लम्बी) सांसों से व्याकुल होने लगे, भैंसों के जोड़े तालाबों के भीतर जल में घुसा दिये गये; हाथियों के समूह कमलों की पंखुड़ियों के टुकड़ों तथा केसरों से भरे हुए तथा अपनी इच्छा के अनुसार बिलोडन करने से टूटे हुए मृणाल-दण्डों के टुकड़ों के कारण ऊँचे-नीचे (खुरदुरे) हो गये, कुओं के समीप बने हुए पोखरों के

---

१. पुञ्जमान०। २. दृष्टिषु आलोकेषु, दुरालोकेषु। ३. उज्ज्वलत्स्विव।
४. निःसंकट०। ५. त्रुटित०।

करियूथेषु, रक्ततामरसकान्तिषु ललनाकपोलोपान्तेषु दलितमुक्ताक्षोदानुकारिणीषु विराजमानासु घर्मजलकणिकावलीषु, स्मर्यमाणायां[1] ज्योत्स्नायाम्, गृह्यमाणेषु तुषारगुणेषु, [2]वाञ्छ्यमाने पयोदकालाभ्यागमे, अभ्यर्थ्यमाने दिवसपरिणामे, प्रदोषदर्शनाकाङ्क्षिषु हृदयेषु, उत्थाय सरस्तीरकल्पितम्, अनवरतापतज्जलासारसेकनिवारितोष्णकरकिरणसन्तापम्, एकसन्तानावली[3]धारावर्षवेगवाहिन्या निर्झरिण्येव कुल्यया परिक्षिप्तम्, अन्तरालम्बित-

---

यत् तामरसम्, (= कमलम्) तस्य कान्तिः (= छविः) इव कान्तिः येषां तेषु तादृशेषु, ललनेत्यादिः—ललनानाम् (= रमणीनाम्) कपोलानाम् (= गण्डस्थलानाम्) उपान्तेषु (=प्रान्तभागेषु) दलितेत्यादिः-दलिताः (= मर्दिताः) याः मुक्ताः (= मौक्तिकानि) तासां क्षोदः (= चूर्णम्)ताननुकुर्वन्तीति तादृशीषु, घर्मजलकणिकावलीषु = प्रस्वेद-सलिलखण्डचयेषु, विराजमानासु = शोभमानासु सतीषु। [केचित्त्वत्र—'रक्ततामरसकान्तेषु ललनाकपोलोपान्तेषु' इति पृथक् वाक्यं मन्यन्ते, तन्न सम्यक् पूर्वपरवाक्येष्विवास्मिन्नपि क्रियावाचिपदमादायैव परिसमाप्तिरुचिता। किञ्च घर्मजलकणिकावलीनां ललनाकपोलेष्वेव शोभावर्णनस्य कविसम्प्रदायसिद्धत्वादपि एकमेव वाक्यं तर्कसङ्गतम्। अत एव मथुरानाथभट्टोपि एवमेव समर्थयामास। अत्रोपमा लुप्ता।

स्मर्यमाणायामिति। ज्योत्स्नायाम् = चन्द्रिकायाम्, स्मर्यमाणायाम् = स्मरणविषयीक्रियमाणायां सत्याम्, तादृशकष्टप्रदकाले शान्तिप्रदायाश्ज्योत्स्नायाः स्मरणं समीचीनमेव। तुषारगुणेषु = हिमकणेषु विद्यमानशैत्यादि-वैशिष्ट्येषु, गृह्यमाणेषु = नीयमानेषु, लक्षणया वर्ण्यमानेषु सत्सु। पयोदकालाभ्यागमे—पयोदानाम् (= मेघानाम्) कालः (= समयः) वर्षर्तुरिति भावः, तस्य अभ्यागमः (= आगमनम्) तस्मिन्, वाञ्छ्यमाने = ईप्स्यमाने, सति। दिवस-परिणामे = दिवसस्य (= दिनस्य) परिणामः (= पर्यवसानम्, सायङ्कालः) तस्मिन्, अभ्यर्थ्यमाने = प्रार्थ्यमाने, सति। हृदयेषु = चित्तेषु, प्रदोषेत्यादिः—प्रदोषः (= सायङ्कालः) तस्य दर्शनम् (= विलोकनम्) आकाङ्क्षन्ते (= इच्छन्ति) इति तादृशेषु तेषु सत्सु। एवञ्च पूर्वोक्तवैशिष्ट्ययुक्तायां दशायामुत्पन्नायां सत्यां चन्द्रापीडः, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, सरस्तीरकल्पितम्—सरसः (= जलाशयस्य) तीरे (= तटे) कल्पितम् (= विनिर्मितम्) [अत्रत्यानि द्वितीयैकवचनान्तानि पदानि वक्ष्यमाणस्य 'जलमण्डपम्' इत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि] एकं वैशिष्ट्यमुक्त्वान्यानि वर्णयति—अनवरतेत्यादिना। अनवरतेत्यादिः—अनवरतम् (= निरन्तरम्) आपतत् (= स्रवत्) यत् जलम् (= सलिलम्) तस्य आसारः (= घनवर्षणम्) तेनः यः सेकः (= सिंचनम्) तेन निवारितः (= दूरीकृतः) उष्णकरस्य (= सूर्यस्य) किरणानाम्

कीचड़ में घुसने लगे; रक्त कमल के समान कान्तिवाले कामिनियों के कपोलों के प्रान्तभागों में, टुकड़े-टुकड़े किये गये मोतियों के चूरे के समान दिखाई देने वाली पसीने के पानी की बूंदों की पंक्तियाँ शोभित होने लगीं, चांदनी याद की जाने लगी; तुषार (शीतल ओसबिन्दु) के गुण गाये जाने लगे; वर्षाकाल के आगमन को चाहा जाने लगा; दिन की समाप्ति अर्थात् सन्ध्याकाल के लिये प्रार्थना की जाने लगी; [सभी के] हृदय प्रदोषकाल देखने की इच्छा करने लगे; [इस प्रकार के धूप के समय में] उठकर चन्द्रापीड जलमण्डप की ओर चल दिया, जो (जलमण्डप) सरोवर के तट पर बनाया गया था, जिसमें लगातार गिरती हुई जल की धारा से सींचने के कारण सूर्य की किरणों का सन्ताप दूर कर दिया गया था, जो लगातार प्रवाहित होने वाले पानी की धारा के रूप में तेज वेग रखने वाली

---

१. स्मर्यमाणायां च। २. आवाञ्छ्यमाने। ३. "...धारावेग..."।

जलजम्बूप्रवालाहितान्धकारम्, आमुक्तकुसुमपल्लवलतावृताखिलस्तम्भसंचयम्[1] अतनुहरिचन्दनचर्चार्द्रम्, मरकतश्यामपद्मिनीपलाशास्तीर्णसमस्तभूतलम्[2], आमोदमानसरसस्फुटितारविन्दराशिदत्तप्रकरम्, आकीर्णसरसबिसकाण्डम्[3], अकाण्डकल्पितप्रावृट्कालमितस्ततो वर्षन्तीभिः शैवलप्रवालमञ्जरीभिः; जलदेवताभिरिव सद्यः स्नानार्द्रचिकुरहस्ताभिरुपगृ-

(= दीधितीनाम्) सन्तापः (= उष्णता) येन तं तादृशम्। एकेत्यादिः—एकः (= अद्वितीयः) यः सन्तानः (= प्रवाहः) तस्य अवली (= पङ्क्तिः) तया यो धारावर्षः (= धारारूपेण वर्षणम्) तस्य वेगम् (= रयम्) वहति (= जनयति) इति तादृश्या, निर्झरिण्या = नद्या, इव, कुल्यया = सारिण्या, अल्पया कृत्रिमया सरिता, परिक्षिप्तम् = वलयाकारेण वेष्टितम्। अन्तरेत्यादिः—अन्तरा (= मध्ये) आलम्बितानि (= उपरिभागे बद्ध्वा स्थापितानि) यानि जलजम्बूनाम् (= जलीयवृक्षविशेषाणाम्) प्रवालानि (= नवपल्लवानि) तैः आहितः (= स्थापित, विहितः) अन्धकारः (= तमः) यस्मिन् तं तादृशम्। आमुक्तेत्यादिः—आमुक्ताः (= तत्र तथा न्यस्ताः) याः कुसुम-पल्लव-लताः (= पुष्प-पत्र-व्रततयः) ताभिः आवृतः (= वेष्टितः) स्तम्भानाम् (= स्थूणानाम्) संचयः (= समूहः) यस्मिन् तं तादृशम्। अतन्वित्यादिः—अतन्वी (= गाढ़ा) या हरिचन्दनस्य (= चन्दनविशेषस्य) चर्चा (= लेप) तया आर्द्रम् (= क्लिन्नम्)। मरकतेत्यादिः—मरकतवत् (= एतन्नामकमणिविशेषवत्) श्यामानि (=कृष्णवर्णानि) यानि पद्मिन्याः (= कुमुदिन्याः) पलाशानि (= पत्राणि) तैः आस्तीर्णम् (= समाच्छन्नम्) समस्तम् (= सम्पूर्णम्) भूतलम् (= पृथ्वीतलम्) यस्मिन् तं तादृशम्। आमोदमानेत्यादिः—आमोदमानानि (= सुगन्धयुक्तानि) सरसानि (= आर्द्राणि, रसयुक्तानि) स्फुटितानि (= विकसितानि) च यानि अरविन्दानि (= कमलानि) तेषां राशिभिः (= समूहैः) राशीनाम् (= समूहानाम्) वा दत्तः (= अर्पितः, स्थापितः) प्रकरः (= पुष्पस्तबकः) यस्मिन् तं तादृशम्। अत्र—अरविन्दराशि··· ··· ··· ···प्रकरम्' इत्यत्र समानार्थकयोः शब्दयोः प्रयोगेणार्थासङ्गतिः। अतः प्रकरशब्दस्य अर्थः—'पुष्पस्तबकः' भाषायां 'गुलदस्ता' इति प्रसिद्धं बोध्यमिति करणीयः। आधुनिकशब्दकोशेषु एतादृशार्थ-दर्शनात् न काप्यनुपपत्तिः। आकीर्णेत्यादिः—आकीर्णानि (= विक्षिप्तानि) सरसानि (= क्लिन्नानि) बिसकाण्डानि (= मृणालदण्डाः) यस्मिन् तं तादृशम्। इतस्ततः = यत्र तत्र सर्वत्र वर्षन्तीभिः = वर्षणं कुर्वन्तीभिः, शैवालमञ्जरीभिः = शैवालवल्लरीभिः, अकाण्डेत्यादिः—अकाण्डे (= असमये, ग्रीष्मर्तावितिभावः) कल्पितः (= निर्मित,) प्रावृट्कालः (= वर्षासमयः) यस्मिन् तं तादृशम्, जलदेवताभिः = सलिलाधिष्ठातृ देवीभिः, इव, सद्यः = तत्कालम्, स्नानेत्यादिः—स्नानम् (= जलादौ निमज्जनम्) तेन आर्द्रः (= क्लिन्नः) चिकुराणाम् (= केशानाम्) हस्तः (= समूह)

नदी के समान कुल्या = नहर द्वारा चारो ओर से घिरा हुआ था; जिसमें बीच-बीच में लटकाये गये जलजम्बू के पत्तों से अंधकार बना दिया गया था, जिसमें सभी स्तम्भों का समूह लटकाये गये फूलों, पत्तों तथा लताओं से घिरा (ढका) हुआ था, जो गाढ़े हरिचन्दन के लेप के कारण गीला (बना हुआ) था, जिसमें समस्त पृथिवी मरकतमणि के समान श्याम वर्णवाले कमलिनी के पत्तों से आच्छादित (व्याप्त) थी, जिसमें सुगन्ध फैलाते हुए, गीले तथा खिले हुए 'कमलों के समूह के गुलदस्ते (प्रकर) रखे गये थे, जहाँ गीले मृणालनाल बिखरे पड़े थे, इधर-उधर बरसात करती हुई (पानी गिराती हुई) शैवाल-पल्लवों की मंजरियों द्वारा असमय में वर्षाऋतु का निर्माण किया जा रहा था, बरसात करवाई जा रही थी, जल की अधिष्ठात्री देवियों के समान तत्काल (ताजे) स्नान से गीले हुए

१. ······सञ्चयमतनुहरिचन्दनचर्चार्द्रमरकतश्यामपद्मिनीपलाशास्तीर्णसमस्तभूतलमामोद०।

२. क्वचित्तु—'अतनु···इत्यारभ्य···भूतलम्' इत्यन्तः पाठो नास्ति। ३. काण्डाकाण्डकल्पित०।

हीतसुरभिकोमलजलार्द्रिकाभि[1]रनाश्यानचन्दनाङ्गरागहारिणीभिर्हारवलयमात्राभरणाभिरवतंसितबालशैवालप्रबालाभिर्मृणालतालवृन्तकर्पूरपटवासहरिचन्दनचन्द्रकान्तमणिदर्पणाद्युपकरणपाणिभिरबह्वीभिर्वाराङ्गनाभिरुपेतम्, परिभवस्थानमिव निदाघसमयस्य, निदानमिव शीतकालस्य, [2]निवेशमिव वारिवाहानाम्, तिरस्कारमिव रविकराणाम्[3], हृदयमिव सरसः,

---

यासां ताः तादृशीभिः, उपगृहीतेत्यादिः—उपगृहीताः (= धृताः, स्थापिताः) सुरभयः (= सौरभयुक्ताः) कोमलाः (= सुकुमाराः, मृदवः) जलार्द्रिकाः (= पद्मपत्रतालवृन्तानि) याभिस्तादृशीभिः, अनाश्यानेत्यादिः—अनाश्यानः (= अशुष्कः, आर्द्रः) यः चन्दनस्य (= मलयजस्य) अङ्गरागः (= शरीर-विलेपन-द्रव्यम्) तेन हारिणीभिः (= मनोहराभिः), हारेत्यादिः—हारः (= कण्ठमाल्यम्) वलये (= कटके) च एव—हारवलयमात्रम्, आभरणम् (= आभूषणम्) यासां तादृशीभिः, अवतंसितेत्यादिः—अवतंसितम् (= श्रवणाभरणीकृतम्) बालम् (= नवीनम्) शैवालप्रबालम् (= शैवालकिसलयम्) याभिस्तादृशीभिः, मृणालेत्यादिः—मृणालानि (= बिसानि) तालवृन्तानि (= व्यजनानि) कर्पूरः (= घनसारः) पटवासः (= सुगन्धिद्रव्यचूर्णम्) हरिचन्दनम् (= पीत-मलयज-विशेषः), चन्द्रकान्तमणयः (= इन्दुकान्त-रत्नानि) दर्पणः (= आदर्शः) च आदौ यस्य तादृशम् उपकरणम् (= सामग्री) पाणिषु (= करेषु) यासां ताः तादृशीभिः, अबह्वीभिः = अल्पाभिः, वाराङ्गनाभिः = वेश्याभिः उपेतम् = युक्तम् ।

पुनरपि तमेव जलमण्डपमुत्प्रेक्षते—परिभवस्थानमिवेत्यादिना । निदाघसमयस्य = ग्रीष्मकालस्य, परिभवस्थानम् = पराजयस्य प्रदेशम्, इव । अत्र सर्वत्र 'इव' शब्द उत्प्रेक्षायाम् । शीतकालस्य = शिशिरसमयस्य, निदानम् = कारणम्, इव । वारिवाहानाम् = जलदानाम्, निवेशम् = आश्रमम्, इव । रविकराणाम् = सूर्यस्य रश्मीनाम्, तिरस्कारम् = न्यक्कारम्, इव । सरसः = तडागस्य, हृदयम् = चित्तम्, मध्यक्षेत्रम्, इव । हिमगिरेः = हिमालयस्य, सहोदरम् = सोदर्यम्,

---

केशकलापों वाली सुगन्धित तथा कोमल जलार्द्रिकाओं (गीले पंखों) को पकड़े हुईं, गीले चन्दन के अंगराग के कारण आकर्षक लगने वाली, केवल हार तथा कंगनों को आभूषण (रूप में धारण करने) वाली, शैवाल के छोटे-छोटे पत्तों को कानों का अलंकार बनाये हुईं, मृणाल (कमलनाल), तालवृन्त (व्यजन, पंखे), कपूर, सुगन्धित पाउडर, हरिचन्दन, चन्द्रकान्तमणि का दर्पण (शीशा)—आदि आदि सामग्री को हाथों में रखे हुईं बहुत सी वेश्याओं से भरा (पूर्ण) था, जो मानों ग्रीष्मकाल के परिभव का स्थान था, अर्थात् जहाँ गरमी को मानों हार माननी पड़ती थी, जो शीतकाल का मूल कारण सा, बादलों का पड़ाव सा, सूर्य की किरणों का निवारक (रोकने वाला) सा,

---

१. जलार्द्रिका—इत्यस्य जलेनार्द्राणि वस्त्राणीत्यर्थो न सम्यक् अपि तु—'पद्मपत्रतालवृन्तम्' इत्येवार्थः समीचीनः । अत एव 'तथा जलार्द्रापवनैर्न निर्ववौ' इति माघः सङ्गच्छते इति मथुरानाथभट्टाः । कोषेष्वपि एतादृशोऽर्थो दृश्यते ।

२. निवेशनमिव । ३. रविकिरणानाम् ।

[1]सहोदरमिव हिमगिरेः, स्वरूपमिव जडिम्नः, आवासमिव विभावरीणाम्, प्रत्याघातमिव दिवसस्य जलमण्डपमयासीत् ।

तत्र चातिरम्यतया क्षुभितमकरध्वजोत्कलिकासहस्रविषमं जलासारशिशिरतया संधुक्षित[2]सुहृद्वियोगा[3]नलं महासमुद्रमिव गम्भीरं तं दिवसमेकाकी[4] कथं कथमपि स्वधैर्ययानपात्रेणालङ्घयत् । लोहितायमानातपे सायाह्ने निर्गत्य बहुलगोमयोपलेपहरिते मन्दमन्दमारुताहतोत्तरलायमानधवलकुसुमप्रकरशोभिनि वासभवनाङ्गणे क्षणमिवास्थाने समासन्न-

---

भ्रातरम्, इव । जडिम्नः = जडतायाः, स्वरूपम्=स्वलक्षणम्, इव । विभावरीणाम् = घानान्धकारयुक्तरात्रीणाम्, आवासम् = निवासस्थानम्, इव । दिवसस्य = दिनस्य, प्रत्याघातम् = तिरस्कारम्, इव, जलमण्डपम् = जलभवनविशेषम्, अयासीत् = अगमत् । उत्प्रेक्षालंकारः सुस्पष्टः ।

तत्र चेति । तत्र = तस्मिन् जलमण्डपे, च, अतिरम्यतया = अतीवरमणीयतया, हेतुना, क्षुभितेत्यादिः—क्षुभितम् (= क्षुब्धम्) यत् मकरध्वजस्य (= कामदेवस्य) उत्कलिकानाम् (= उत्कण्ठानाम्, औत्सुक्यानाम्) सहस्रम् (= दशशती, प्रचुरम्) तेन विषमम् (=विकटम्) [इमानि 'दिवसमि'त्यस्य विशेषणानि ।] जलेत्यादिः—जलस्य (= सलिलस्य) आसारः (= सवेगवर्षणम्) तेन शिशिरः (= शीतलः) तस्य भावस्तया, संधुक्षितेत्यादि —संधुक्षितः (= समुद्दीपितः) सुहृदः (= मित्रस्य वैशम्पायनस्य) वियोगस्य (=विरहस्य) अनलः (=अग्निः) येन स तं तादृशम्, सन्दीपितमित्रविरहवह्निमिति भावः, महासमुद्रम् = महासागरम्, इव, गम्भीरम्= अगाधम्, अतलस्पर्शम्, तम्, दिवसम् = दिनम्, एकाकी = अद्वितीयः, सन्, कथं कथमपि=यथा कथञ्चित्, स्वधैर्ययानपात्रेण—स्वम् (= निजम्) यद् धैर्यम् (= धीरता, अचञ्चलता) तदेव यानपात्रम् (= जलपोतम्) तेन, अलङ्घयत् = लङ्घितवान्, तद् दिनं यथा कथञ्चित् धैर्यपूर्वकं यापितवानिति भावः । अत्रोपमा सुस्पष्टा । लोहितायमानातपे — लोहितायमानः (= रक्ततामापद्यमानः) आतपः (= सूर्यस्यालोकः) यस्मिन् तादृशे, सायाह्ने = सायङ्काले, निर्गत्य = निःसृत्य, जलमण्डपादिति शेषः, बहुलेत्यादिः—बहुलम् (= प्रचुरम्) यद् गोमयम् (= गोपुरीषम् पावनताजनकगव्यं द्रव्यम्) तेन य उपलेपः (= लेपनम्, उपलिम्पनम्, पृथिव्यादाविति शेषः) तेन हरिते (= हरिद्वर्णे) , मन्द-मन्देत्यादिः—मन्दं मन्दम् (= शनैः शनैः) यथा स्यात् तथा मारुतेन (= पवनेन) आहतः (= ताडितः, प्रकम्पितः) अत एव उत्तरलायमानः (= चञ्चलीक्रियमाणः)

सरोवर का हृदय सा, हिमालय का सगा भाई सा, शीलता का स्वरूप सा, रात्रि का आवास सा, और दिन पर प्रहार सा था ।

उस स्थान में अत्यन्त रमणीयता के कारण क्षोभ को प्राप्त (क्षुब्ध, चञ्चल) कामदेव की हजारों उत्कलिकाओं (=उत्कण्ठाओं तथा तरंगों) के कारण विषम (विकट) बना हुआ, जल की अत्यधिक वर्षा के कारण ठंडा होने से मित्र (वैशम्पायन) की भड़कती हुई विरह रूपी अग्निवाले महासागर के समान गम्भीर (गहरे, कष्टप्रद) उस दिन को उस चन्द्रापीड ने अपने धैर्यरूपी जलपोत के द्वारा जिस किसी प्रकार पार किया, बिताया, सायंकाल धूप के लाल-लाल वर्णवाली हो जाने पर, (बाहर) निकलकर, बहुत अधिक गोबर से लीपने के कारण हरे बने हुए, धीमी-धीमी हवा के प्रहार (टक्कर) से हिलाये जाते हुए सफेद फूलों के गुच्छों (गुलदस्तों) से शोभायुक्त वासभवन के

---

१. सहायमिव हिमगिरेः, हिमगिरेः स्वरूपमिव । २. हृदय० ।
३. वियोगौर्वानलमिव । ४. [एकं 'कथम्' इति नापि पठचते ।

पार्थिवैः सह वैशम्पायनालापेनैव स्थित्वा "द्वितीय एव यामे चलितव्यं, सज्जीकुरुत साधन-" मित्यादिश्य बलाध्यक्षमृक्षोदय एव विसर्जिताशेषराजलोको वासभवनमध्यवसत्।

अथातिचिरान्तरितोज्जयिनीदर्शनोत्सुको विनापि प्रयाणनान्द्या सकल एव कटकलोकः संवृत्य[1] प्रावर्तत गन्तुम्। आत्मनाप्यलब्धनिद्राविनोदोऽवतरत्येव तृतीये यामे तुरग-

---

यः कुसुमानाम् (= पुष्पाणाम्) प्रकरः (= समूहः, स्तबकः) तेन शोभते (= राजते) इति तस्मिन् तादृशे, वासभवनाङ्गणे = पटमण्डपसदनस्याजिरे, आस्थाने = सभाभवने, समासन्नपार्थिवैः = समीपवर्तिभिः नृपैः, सह = सार्धम्, वैशम्पायनालापेन = वैशम्पायनसम्बन्धिवार्त्तया, एव न तु अन्यविषयकवार्तालापेनेति भावः, क्षणमिव = किञ्चित्कालपर्यन्तम्, स्थित्वा = अवस्थाय, द्वितीये, एव, यामे = प्रहरे, चलितव्यम् = गन्तव्यम्, अतः, साधनम् = अश्वादि-सैन्यम्, सज्जीकुरुत = सज्जयत; सन्नद्धं कुरुत, इति = इत्थम्, बलाध्यक्षम् = सेनापतिम्, आदिश्य = आज्ञाप्य, ऋक्षोदये = नक्षत्राणामुदयकाले, एव, विसर्जितेत्यादिः—विसर्जिताः (= स्वस्वकृत्यसम्पादनाय आज्ञप्ताः) अशेषाः (= समस्ताः) राजलोकाः (= नृपजनाः) येन स तादृशः, वासभवनम् = निवाससदनम्, अध्यवसत् = अध्युषितवान्, प्राविशत्, चन्द्रापीड इति शेषः। अत्र तस्यातुरता प्रकटीभवति।

अथेति। अथ = आदेशश्रवणानन्तरम्, अतिचिरेत्यादिः—अतिचिरेण (= दीर्घकालेन) अन्तरितम् (= व्यवहितम्, अजातम्) यद् उज्जयिन्याः (= स्वकीयराजधान्याः) दर्शनम् (= विलोकनम्, साक्षात्कारः) तेन उत्सुकः (= उत्कण्ठितः), सकलः = सम्पूर्णः, एव, कटकलोकः = सैन्यजनः, प्रयाणनान्द्याः = प्रस्थानसूचक-माङ्गलिकपटहनादेन, विनापि = ऋतेऽपि, प्रस्थानसूचकपटहनादस्य अकृतेऽपीति भावः, संवृत्य = संभूय, एकीभूय, गन्तुम् = प्रस्थातुम्, प्रावर्तत = प्रवृत्तोऽभवत्। चन्द्रापीडः, आत्मना = स्वयम्, अपि, अलब्धेत्यादिः—अलब्धः (= न प्राप्तः) निद्रायाः (= स्वापस्य) विनोदः (= आनन्दः) येन स तादृशः, सन्, तृतीये= तृतीयसंख्यके, यामे = प्रहरे, अवतरति = अवतारं प्राप्नुवति,समागच्छति, सति, एव, तुरगेत्यादिः— तुरगाः (= हयाः) करिण्यः (= हस्तिन्यः) च प्रायः (= बाहुल्येन) वाहनम् (= युग्यम्, वहनसाधनम्) यस्मिन् यस्य वा तेन तादृशेन, अनतिबहुना = अबहुसंख्यकेन, अल्पेनेत्यर्थः,

---

आँगन में, कुछ देर आस्थान (सभामण्डप) में समीपवर्ती राजाओं के साथ वैशम्पायन-सम्बन्धी बातचीत के सम्बन्ध में ही ठहर कर, अर्थात् वैशम्पायन के विषय में ही बातें करते हुए कुछ देर तक रुककर, 'दूसरे पहर में ही हमें चलना है, साधन = घोड़ा हाथी आदि सैन्य उपकरण तैयार करो'—ऐसी आज्ञा सेनापति को देकर, तारागणों के उदित होते ही सभी राजाओं को बिदा करके वासभवन में चल दिया, पहुँच गया।

इसके बाद बहुत दिनों के व्यवधान के बाद (अपनी) उज्जयिनी नगर को देखने के लिये उत्सुक होता हुआ सम्पूर्ण सैनिक-समूह प्रस्थानसूचक नान्दी (दुन्दुभि) के [बजाय] बिना ही अर्थात् बजने के पहले ही एकत्रित होकर चल दिया। स्वयं (चन्द्रापीड) भी नींद का सुख पाये बिना ही, तीसरे पहर के आरम्भ होते ही घोड़ों तथा हथिनियों की बहुलता वाले, कुछ थोड़े से (गिने, चुने)

---

१. सज्जीभूय।

करिणीप्रायवाहनेनानतिबहुना राजलोकेन सह विरलकटकसम्मर्देन वर्त्मनावहत्।

अथाध्वनैव सह क्षीणायां यामवत्याम्, रसातलादिवोन्मज्जत्सु सर्वभावेषु, उन्मीलन्तीष्विव दृष्टिषु, पुनरिवान्यथा सृज्यमाने जीवलोके, विभज्यमानेषु निम्नोन्नतेषु, विरलायमानेष्विव वनगहनेषु, संकुचत्स्विव तरुलतागुल्मेषु, गगनतलमारोहन्त्याः पदे इव बहुललाक्षारसालोहिते[1] दिवसश्रियोऽवश्यायसेकान्नवपल्लव इवोद्भिद्यमाने पूर्वाशालतायाः,कमलिनीरागदायिनि दिवसकरबिम्बे,विस्पष्टे प्रभातसमये,कटकलोकेनैव सह परापतितवानुज्जयिनीम्।

राजलोकेन = नृपजनेन, सह = सार्धम्, विरलेत्यादिः— विरलः (= अघनः) कटकस्य (= सैन्यजनस्य) संमर्दः (= संबाधः) यस्मिन् तेन तादृशेन, वर्त्मना = पथा,अवहत् = प्राचलत्, उदडीयतेति भावः।

अथेति। अथ = अनन्तरम्, अध्वना = मार्गेण, एव, सह = साकम्, यामवत्याम् = निशायाम्, क्षीणायाम् = विनष्टायाम्, समाप्तायाम्, सत्याम्, सर्वभावेषु = सकलपदार्थेषु, रसातलात= पातालात्, उन्मज्जत्सु = उपरिभागे आगच्छत्सु, इव, दृष्टिषु = नेत्रेषु, उन्मीलन्तीषु = विकसन्तीषु, इव, पदार्थावलोकनसामर्थ्ययुक्तासु जातास्वित्यर्थः, जीवलोके = प्राणिजने, संसारे इति भावः, पुनरिव = द्वितीयवारम् इव, अन्यथा = अन्येन प्रकारेण, सृज्यमाने = निष्पाद्यमाने, सति, निम्नोन्नतेषु = उच्चावचेषु प्रदेशेषु, विभज्यमानेषु = पृथक् पृथक् क्रियमाणेषु, वनगहनेषु = अरण्यानां गह्वरेषु, विरलायमानेषु = अनिविडायमानेषु, घनत्वं परित्यजत्सु, इव। तरु-लतागुल्मेषु = पादपव्रतती-गुच्छेषु, संकुचत्सु = संकोचमुपगच्छत्सु, इव। गगनतलम् = नभस्तलम्, आरोहन्त्याः = आरोहणं कुर्वन्त्याः, दिवसश्रियः = दिनस्य लक्ष्म्याः, बहुलेत्यादिः— बहुलः (= प्रचुरः, गाढो वा) यः लाक्षारसः (= यावकद्रवः) तेन आलोहिते (=ईषद्रक्तवर्णीकृते) पदे=पादे, इव, पूर्वाशालतायाः— पूर्वा (= प्राची) आशा (= दिशा) सा एव लता (= व्रतती) तस्याः, अवश्यायसेकात् = तुषारकणसिञ्चनात्, हेतोः, नवपल्लवे = नूतनकिसलये, इव, उद्भिद्यमाने = उद्भेदं प्राप्यमाणे, स्फुटति, कमलिनीरागदायिनि—कमलिन्याः (= पद्मिन्याः) रागदायिनि (= प्रीति प्रदायके) दिवसकरबिम्बे = सूर्यमण्डले, जाते सति, विस्पष्टे = अतिस्फुटे, प्रभातसमये = प्रत्यूषकाले, कटकलोकेन = सैन्यजनेन, एव, सह = सार्धम्, उज्जयिनीम् = स्वराजधानीम्, परापतितवान् = प्रत्यागतवान्। अत्र 'विस्पष्टे' इति विशेषणं 'दिवसकरबिम्बे' इत्यस्याथवा 'प्रभातसमये' इत्यस्य इत्यत्र व्याख्याकाराणां मतभेदः। परन्तु प्रभातसमयस्य सूर्यबिम्बस्य च अविनाभावसम्बन्धस्तेन कुत्रापि इदं विशेषणं योजयितुं शक्यते। 'पूर्वाशालतायाः' इत्यत्र रूपकम्। 'नवपल्लव इव' इत्यत्रोपमा।

राजा लोगों के साथ बहुत थोड़ी ही भीड़-भाड़ वाले मार्ग से चल दिया।

इसके बाद जब रास्ते के साथ ही रात भी समाप्त हो गई अर्थात् रात में ही सारा रास्ता पार कर लिया गया, सभी चीजें मानों पाताल से ऊपर उठने लगीं, आँखें खुलने सी लगीं, जीवलोक= संसार मानों दूसरे रूप में रचा जाने लगा, नीचे-ऊँचे भूभाग अलग-अलग होने लगे, बनों के गहन (घने कुंज) कम होने से लगे, (अलग-अलग दिखाई देने लगे), पेड़, लतायें तथा गुल्म (झाड़ियां) सिकुड़ने से लगे, गगनतल पर उतरती हुई दिन की श्री के गाढ़े महाबर के रस से कुछ लाल-लाल बने हुए पैर के समान तथा पूर्व दिशारूपी लता के ओस गिरने के कारण फूटते (निकलते) हुए नव पल्लव के समान सूर्यमण्डल कमनियों को राग = लालिमा देने लगा, (अथवा... ...नवपल्लव के समान तथा कमलिनियों को राग = रक्तिमा देने वाला सूर्यमण्डल स्पष्ट हो गया), ऐसे प्रातःकाल में सैनिक लोगों के साथ ही चन्द्रापीड उज्जयिनी वापस लौट आया।

१. बहुललाक्षालोहिते।

अथ दूरत एव [1]प्रसृतिद्वन्द्वसंस्थितैश्च[2] पुञ्जयमानैश्च[3] पुञ्जितैश्चाबद्धमण्डलै[4]श्चोपविष्टैः [5]वलितैश्च दत्तकतिपयशून्यपदैश्च निवर्त्यमानैश्चागच्छद्भिश्चोन्मुखैश्चाधोमुखैश्चोद्बाष्पदृष्टिभिश्च विवर्णदीनवदनैश्च महाकष्टशब्दमुखरैश्च दुःखाधिक्याहितमौनैश्च मुनिभिरपि मुमुक्षुभिरपि [6]वीतरागैरपि निःस्पृहैरप्युदासीनैरपि दुर्जनैरपि स्नेहपरवशैः पितृभिरिव सुहृद्भिरिव स्निग्ध-

---

अथेति । अथ = उज्जयिनी-प्राप्त्यनन्तरम्, दूरतः = विप्रकृष्टाद्, एव, प्रसृतिद्वन्द्वसंस्थितैः—प्रसृतिः (= प्रसृतः पाणिः, निकुब्जः) तस्य द्वन्द्वेन (= युग्मेन) संस्थितैः (= विद्यमानैः) बद्धाञ्जलिभिरिति भावः । [अत्र 'दूरत एव प्रभृति द्वन्द्वसंस्थितैश्च' इति पाठः युक्ततरः । वैशम्पायनस्य वृत्तान्तस्य चर्चार्थं लोकानां नानाविधानां स्थितीनां वर्णनमत्र कृतम् । तत्र केचन द्वन्द्वरूपेण स्थिताः, अपरे पुञ्ज्यमानाः सन्तः स्थिताः, इतरे पुञ्जिताः भूत्वा स्थिता इत्यादिकमर्थं प्रतिपादितवान् कविरिति बोध्यम् ।] पुञ्ज्यमानैः = एकत्रीभवद्भिः, च, पुञ्जितैः = संघीकृतैः, च, आबद्धमण्डलैः = विहितवृत्तैः, च, उपविष्टैः = निषण्णैः, च, वलितैः=चलितैः, च, दत्तेत्यादिः—दत्तानि (=अर्पितानि, सञ्चालितानि) कतिपयानि (= कानिचित्) शून्यानि (= रिक्तानि) पदानि (=पदक्रमणानि) यैस्तैस्तादृशैः, च, निवर्त्यमानैः = अन्यैः परावर्त्यमानैः, पश्चादागच्छद्भिर्वा, च, आगच्छद्भिः = आयद्भिः, च, उन्मुखैः = ऊर्ध्वाननैः, अधोमुखैः = निम्नास्यैः, उद्बाष्पदृष्टिभिः—उद् (= ऊर्ध्वम्) बाष्पः (= अश्रुसलिलम्) यासु तादृश्यः दृष्टयः (= नेत्राणि) येषां तैस्तादृशैः, विवर्णेत्यादिः—विवर्णानि (=कान्तिहीनानि) दीनानि (=करुणानि, विषादयुक्तानि) च वदनानि (=आस्यानि) येषां तैः तादृशैः, महाकष्टेत्यादिः—महतः (= अत्यधिकस्य) कष्टस्य (= दुःखस्य) ये शब्दाः (=हाहेत्यादिध्वनयः) तैः मुखरैः (=वाचालैः) हाहेत्यादिकष्टसूचकशब्दान् उच्चारयद्भिरित्यर्थः, दुःखेत्यादिः—दुःखस्य (= क्लेशस्य) यद् आधिक्यम् (= प्राचुर्यम्) तेन आहितम् (= धृतम्, स्वीकृतम्) मौनम् (= मूकीभावः) यैस्तैस्तादृशैः, मुनिभिः = ऋषिभिः, अपि, मुमुक्षुभिः = मोक्षाभिलाषिभिः, अपि, वीतरागैः = रागादिहीनैः, अपि, निःस्पृहैः=स्पृहाशून्यैः, अपि, उदासीनैः= तटस्थैः, अपि, दुर्जनैः = दुष्टलोकैः, अपि, स्नेहपरवशैः=प्रीतिपराधीनैः, पितृभिः = जनकैः, इव,

---

इसके बाद दूर से ही दोनों हाथों की अंजलि बाँधे खड़े हुए अथवा दूर से ही लेकर दो-दो साथ में खड़े हुये, समूह बनाये जाते हुये, एकत्रित (समूह रूप में) किये जाते हुये, मण्डल (गोला) बनाये हुए, बैठे हुए, चले हुए, कुछ खाली कदम रखे हुए, पीछे लौटाये जाते हुये, आते हुए, ऊपर मुंह किये हुए, नीचे मुख किये हुए, आँसुओं से भरी आखों वाले, फीके तथा उदास मुख वाले, महान् कष्टसूचक शब्दों को खूब बोलते हुए, अतिशय दुःख के कारण मौन बने हुए मुनियों, मोक्षाभिलाषियों, वीतरागों, निःस्पृहों, उदासीनों तथा दुष्ट लोगों तक के द्वारा भी स्नेह के कारण अधीन बनाये गये पिताओं, मित्रों, स्निग्ध बन्धुओं के समान नगरी से बाहर निकले हुए (उपर्युक्त

---

१. 'दूरत एव प्रभृति द्वन्द्वसंस्थितैश्च' इति पाठं साधुतरं मन्यन्ते मथुरानाथभट्ट-महोदयाः । उचितमेव प्रतीयतेऽर्थसंगतेरनुभवानुरोधाच्चेति बोध्यम् ।

२. प्रभृति द्वन्द्वस्थितैः इत्यपि पाठः ।

३. पुञ्जितैश्चपुञ्ज्यमानैश्च ।

४. मण्डलैश्चोर्ध्वैश्च ।

५. चलितैश्च वलितैश्च ।

६. निःसङ्गैरपि ।

बन्धुभिरिव च नगरीनिर्गतैरार्त्या पृच्छयमानं कथ्यमानं च [1]विचार्यमाणं चानुभाव्यमानं च वैशम्पायनवृत्तान्तमेव समन्ताच्छुश्राव ।

शृण्वंश्च चकार चेतसि—'बाह्यस्य तावज्जनस्येयमीदृशी समवस्था । किं पुनर्येनासावङ्केन लालितः संवर्धितो वा बालचाटवोऽस्यानुभूताः ? तदतिकष्टं मे वैशम्पायनेन विना तातस्य शुकनासस्याम्बाया मनोरमाया वा दर्शनम् ।' इत्येवं चिन्तयन्नासानिहितोद्बाष्पदृष्टिरदृष्टसर्ववृत्तान्त एव विवेशोज्जयिनीम् ।

सुहृद्भिः = वयस्यैः, इव, स्निग्धबन्धुभिः = प्रणयिबान्धवैः, इव, च, नगरीनिर्गतैः = उज्जयिनीतः बहिरागतैः, लोकैरिति शेषः, आर्त्या = पीडया, पृच्छ्यमानम्=प्रश्नविषयीक्रियमाणम्, कथ्यमानम् = भाष्यमाणम्, च, विचार्यमाणम् = चिन्त्यमानम्, च,अनुभाव्यमानम् = अनुभवविषयतां प्राप्यमाणम्, च, वैशम्पायनवृत्तान्तम् = एतन्नामक-सुहृत्सम्बन्धिवार्ताम्, एव, समन्तात् = सर्वासु दिशासु, सर्वत्र, शुश्राव = आकर्णितवान् । सर्वेऽपि उज्जयिनीनिवासिनो बहिरागत्य केवलं वैशम्पायनविषये एव वार्तां कुर्वन्ति स्मेति भावः । अत्र 'इव' शब्दः सादृश्ये तेनोपमा ।

चन्द्रापीडस्य प्रतिक्रियां प्रस्तौति—शृण्वंश्चेत्यादिना । शृण्वन् = आकर्णयन्, च, चन्द्रापीडः, चेतसि = मनसि, चकार = अकरोत्, विचारयामास वक्ष्यमाणम् । बाह्यस्य = बहिर्मूलस्य, अनात्मीयस्येति भावः, तावत् = इदमलङ्कारे, जनस्य = लोकस्य, इयम् = एषा, दृश्यमाना, ईदृशी = इदंप्रकारा, समवस्था = दशा, वर्तते इति शेषः, किम्, पुनः, येन = जनेन, असौ = अयं वैशम्पायनः, अङ्केन = क्रोडेन, लालितः = लालनां प्रापितः, पालितः, संवर्धितः = वृद्धिं प्रापितः, वा, अस्य = वैशम्पायनस्य, बालचाटवः = बाल्यावस्थायामुच्चारितानि मधुरवचनानि, अनुभूताः = अनुभवविषीकृताः, तेषां विषये, पुनः, किम्, उच्यते = न वक्तुं शक्यते इति भावः । तत् = तस्मात् हेतोः, वैशम्पायनेन = एतन्नामकेन मित्रेण, विना = ऋते, तातस्य = पितुः, तारापीडस्य शुकनासस्य = वैशम्पायनजनकस्य, अम्बायाः = जनन्याः विलासवत्याः, मनोरमाया, = वैशम्पायनस्य जनन्याः, च, दर्शनम् = विलोकनम्, मे = मदर्थम्, अतिकष्टम् = अतिक्लेशकारकम्, भविष्यतीति शेषः, इति, एवम् = उक्तरूपेण, चिन्तयन् = विचारयन्, नासेत्यादिः—नासायाम् (= नासिकायाम्) निहिता (= स्थापिता, कृता) उद्बाष्पा (= अश्रुयुक्ता) दृष्टिः (= नेत्रम्) येन स तादृशः, अदृष्टेत्यादि—अदृष्टः (= अनवलोकितः) सर्वः (= सकलः) वृत्तान्तः (= उदन्तः) येन स तादृशः, सन् एव, उज्जयिनीम् = एतन्नामक-राजधानीम्, विवेश = प्राविशत् ।

सभी) के द्वारा कष्ट के साथ पूछे जाते हुए, कहे जाते हुए, विचार किये जाते हुए तथा अनुभव किये जाते हुए केवल वैशम्पायन के वृत्तान्त को ही सभी ओर सुना । उसे सुनते हुए मन में (विचार) करने लगा; सोचने लगा—"जब बाहरी लोगों तक का ऐसा हाल है तब उनका क्या कहना जिन्होंने उस वैशम्पायन को गोद में पाला, बड़ा किया और बचपन की मीठी-मीठी तुतली बातों को सुना है । इसलिये वैशम्पायन के बिना अकेले पिता जी का शुकनास का, माता जी का अथवा मनोरमा (वैशम्पायन की माता) का दर्शन करना मेरे लिये अत्यन्त कष्टकारक है । इस प्रकार से सोचता हुआ, आँसुओं से भरी आँखें नाक पर गड़ाये हुये, सारे वृत्तान्त को बिना देखे ही उज्जयिनी में प्रविष्ट हो गया, भीतर आ गया ।

---

१. आकर्ण्यमानं ।

अवतीर्य च स राजकुलद्वारि विशन्नेव 'आर्यशुकनासभवनं सह देव्या विलासवत्या गतो राजे'ति शुश्राव। श्रुत्वा च निवर्त्य[1] तत्रैव जगाम। गच्छंश्च समीपवर्ती—'हा वत्स वैशम्पायन, अद्यापि मदङ्कलालनोचितो बाल एवासि, कथं त्वमेकाकी व्यालशतसहस्र-भीषणे निर्मानुषे तस्मिञ्शून्यारण्ये स्थितः? केन[2] ते तत्रापि सर्वसत्त्वव्याघातकारिणी शरीररक्षा कृता। केन[3] वैषम्यप्रतिपन्थिनी शरीरस्थितिः सम्पादिता। केन निद्रासुखदायि शयनीयमुपकल्पितम्। कस्त्वयि बुभुक्षिते तृषिते सुषुप्सति वा दुःखितः। [4]ममोत्सङ्गमुत्सज्य

अवतीर्यं चेति। अवतीर्य = अवतरणं कृत्वा, च, इन्द्रायुधाख्याश्वादिति शेषः, सः = चन्द्रापीडः, राजकुलद्वारि = नृपसदनद्वारे, विशन् = प्रवेशं कुर्वन्, एव, आर्यशुकनासभवनम् = माननीय-शुकनास-सदनम्, देव्या=महिष्या, विलासवत्या = एतन्नाम्न्या राजमहिष्या, सह = सार्धम्, राजा = नृपस्तारापीड, गतः = प्रयातः, इति = इत्थम्, शुश्राव = आकर्णयामास। श्रुत्वा = आकर्ण्य, च, पूर्वोक्तमिति शेषः, निवर्त्य = व्यावृत्य, तत्रैव = शुकनासभवने, एव, जगाम = ययौ। गच्छन् = व्रजन् च, समीपवर्ती = निकटवर्ती, भूतः सन्, ['मनोरमां विप्रलपन्तीमश्रौषीदि'ति दूरे वक्ष्यमाणेऽन्वयो बोध्यः।] किं शुश्राव तत् विस्तरेण वर्णयति—हा वत्सेत्यादिना। हा इदं दुःख-सूचकमव्ययम्, वत्स वैशम्पायन = पुत्रक वैशम्पायन, इदं सम्बुद्धौ, अद्यापि = इदानीमपि, अस्मिन् दिवसेऽपि, मदङ्केत्यादिः—मम (= मनोरमायाः) अङ्कः (= क्रोडः) तस्मिन् यत् लालनम् (= स्नेहपूर्वकं पालनम्) तस्य उचितः (= योग्यः), बालः = शिशुः, एव, असि = वर्तसे, न तु प्रौढो जात इति भावः। कथम् = कस्मात् कारणात्, त्वम् = भवान्, एकाकी = अद्वितीयः, व्यालशतसहस्रभीषणे = असङ्ख्यसर्पभयानके अगणितश्वापदभयङ्करे वा, ['व्यालः श्वापद-सर्पयोरित्यमरः] निर्मानुषे = मानवरहिते, तस्मिन्, शून्यारण्ये = निर्जने कानने, स्थितः = स्थितिं कृतवान्? केन = अज्ञातेन, ते = तव, तत्रापि = तस्मिन् अरण्ये, अपि, सर्वेत्यादिः—सर्वे (= सकलाः) ये सत्त्वाः (= जीवाः) तेषां व्याघातम् (= प्रतिबन्धम्) करोति इति तादृशी, शरीर-रक्षा = देहपरित्राणम्, कृता = विहिता? केन = अज्ञातेन, वैषम्यप्रतिपन्थिनी = विषमतायाः शत्रुभूता, विषमता-विनाशिनी, शरीरस्थितिः = स्नानभोजनादिकं शारीरिकं कृत्यम्, सम्पादिता = कृता? केन, निद्रासुखदायि = स्वापानन्दप्रदायकम्, शयनीयम् = शय्या, उपकल्पितम् = विरचितम्? कः = अज्ञातः, त्वयि = वैशम्पायने, बुभुक्षिते = क्षुधार्ते, तृषिते = पिपासिते, सुषुप्सति = स्वापं कर्तुमिच्छति, वा, सति, दुःखितः

[अपने घोड़े से] उतर कर राजभवन के दरवाजे में प्रवेश करते ही—'राजा महारानी विलासवती के साथ पूज्य शुकनास के भवन में गये हुये हैं'—ऐसा सुना। यह सुन कर वापस लौट कर वहीं (शुकनास के भवन में) चल दिया। जाते हुये पास में पहुँचते हुये—"हाय बेटा वैशम्पायन! आज भी (अभी भी) तुम मेरी गोद में लाड़-प्यार करने के योग्य बच्चे ही हो। तब फिर क्यों अकेले हीं हजारों जंगली जानवरों के कारण भयंकर, निर्जन तथा सूनसान जंगल में ठहरे हो? सभी जीवों से (सम्भावित कष्ट को) दूर करने वाली तुम्हारे शरीर की रक्षा वहाँ भी किसने की है? किसने वैषम्य की प्रतिपन्थिनी अर्थात् शरीर की गड़बड़ी को रोकने वाली शरीरस्थिति = शरीर की रक्षा की है? किसने नींद का सुख देने वाला बिस्तरा बनाया है? तुम्हारे भूँखे, प्यासे या सोने की इच्छा वाले होने पर

१. निवर्त्य, निःसृत्य, निवृत्य। २. केन तत्रापि।
३. केन वा। ४. अत्रत्योऽन्वयविचारः संस्कृतव्याख्यायां द्रष्टव्यः।

समानसुखदुःखा वधूरपि न पुत्रक त्वयोपात्ता। आगतमात्रस्यैव ते पितरमनुज्ञाप्यात्यर्थं वधूमुखमवलोकयिष्यामीति यन्मया चिन्तितं केवलं तन्मे मन्दपुण्याया न सम्पन्नम्। परं तवापि वदनदर्शनं दुर्लभं[1] भूतम्। वत्स, यत्र तेऽवस्थातुमभिरुचितं नयस्व तत्रैव मामपि[2] पितरं विज्ञाप्य। त्वामपश्यन्ती न जीवामि। तात त्वयाहं शैशवेऽपि नावमानिता, कुतस्तवेयमेकपद एवेदृशी निष्ठुरता जाता। आ[3] जन्मनः प्रभृति न दृष्टमेव यस्य

= पीडितः, भवतीति शेषः? मम = मनोरमायाः उत्सङ्गम् = क्रोडम्, उत्सृज्य = त्यक्त्वा, समानसुखदुःखा—समानम् (= तुल्यम्) सुखम् (= आनन्दः) दुःखम् (= कष्टम्) च यस्याः सा तादृशी, वधूः = स्नुषा, अपि, पुत्रक = वत्स, त्वया = भवता, न = नैव, उपात्ता = गृहीता, तव विवाहोऽपि न जातो येन तव पत्नी मम तुल्यं तव सुखदुःखे विचिन्तयेदिति भावः। [केचित्तु—"कस्त्वयि' इत्यारभ्य 'ममोत्सङ्गमुत्सृज्य" इत्यन्तं मत्वा 'उत्सङ्गस्य चिन्ताकर्तृत्वं प्रतिपादयन्ति, इदमपि नानुचितम्।] आगतमात्रस्य = अत्रोपस्थितमात्रकस्य, एव, ते = तव, पितरम् = जनकम्, शुकनासम्, अनुज्ञाप्य = निवेद्य, अनुमतिं प्राप्य वा, अत्यर्थम् = भृशम्, यथेप्सितम्, वधूमुखम् = स्नुषाननम्, तव भार्यामुखम्, अवलोकयिष्यामि = द्रक्ष्यामि, इति = इत्थम्, यत्, मया = मनोरमया, चिन्तितम् = ध्यातम्, विचारितम्, केवलम् = तन्मात्रम्, मे = मम, मन्दभाग्यायाः = पुण्यहीनायाः, न = नैव, सम्पन्नम् = संजातम्। परम् = पूर्वोक्तविपरीतम्, तव = भवतः, अपि, वदनदर्शनम् = मुखावलोकनम्, दुर्लभम् = दुष्प्रापम्, भूतम् = जातम्, का कथा वधूमुखावलोकनस्येति भावः। वत्स! = हे पुत्रक!, यत्र = यस्मिन् कस्मिन् वा स्थाने, अवस्थातुम् = स्थितिं कर्तुम्, उषितुम्, ते = तव, वैशम्पायनस्य, अभिरुचितम् = अभीप्सितम्, मनोऽनुकूलम्, अस्तीति शेषः; तत्रैव = तस्मिन् स्थाने एव, पितरम् = स्वजनकं शुकनासम्, विज्ञाप्य = निवेद्य, माम् = स्वमातरम्, अपि; नयस्व = नय, प्रापय स्वसार्धमिति भावः। त्वाम् = भवन्तम्, अपश्यन्ती = अनवलोकयन्ती, न = नैव, जीवामि = प्राणान् धारयितुं शक्नोमि। तात! = वत्सक! त्वया = भवता, अहम् = मनोरमा, शैशवे = बाल्यावस्थायाम्, अपि, न, अवमानिता = अपमानिता, तिरस्कृता, तव = भवतः, वैशम्पायनस्य, इयम् = एषा, अस्माभिरनुभूयमाना, ईदृशी = एतादृशी, निष्ठुरता = निर्दयता, एकपदे = सहसा, अकस्माद्, एव, कुतः = कस्मात् कारणात्, जाता = समुत्पन्ना? इदं ज्ञातुं न शक्नोमीति तस्या आशयः। आ जन्मनः = जन्मकालात्, प्रभृति = आरभ्य, यस्य = तव, वैशम्पायनस्य, कुपितम्

[इन कष्टों को दूर करने के लिये] कौन दुःखी होता होगा? बेटा! मेरी गोद छोड़ने के बाद सुख-दुःख की समान रूप से सहभागिनी बहू भी तुमने नहीं प्राप्त की है? 'तुम्हारे यहाँ घर पर आते ही तुम्हारे पिता से आज्ञा लेकर बहू का मुख खूब देखूंगी'—यह जो मैंने सोचा था, इतना भी मुझ अभागिन का [पूरा] नहीं हो सका। बल्कि इसके विपरीत तुम्हारा भी मुख देख पाना दुर्लभ हो गया। बेटा! तुम्हें जहाँ भी रहना अच्छा लगता हो, पिता जी से आज्ञा लेकर मुझे भी वहीं ले चल। तुम्हें बिना देखे मैं जीवित नहीं रह सकती। बेटा! तुमने तो बचपन में भी मुझे कभी अपमानित

१. दुर्लभीभूतम्। २. मामपि तत्रैव।

३. अत्र 'आ-प्रभृति शब्दयोः समानार्थकत्वेन एकस्य प्रयोगोऽधिकोऽनावश्यकश्च। यदि 'आ' इत्ययं 'खेदे' 'स्मरणे' वा प्रयुक्तस्तदा न कापि विसङ्गतिरिति त्रिपाठी।

कुपितमाननं तस्य ते कुतोयमेवंविधो मय्यकस्मादेव कोपः, यदेवं परित्यज्य स्थितोसि। गतोप्यागच्छ शिरसा प्रसादयामि त्वाम्। कोऽपरोस्ति मे। देशान्तरपरिचयान्मुक्तो नामास्मासु स्नेहः। क्षणमप्यनन्तरितदर्शनस्य चन्द्रापीडस्योपरि कथं तवेदृशी निःस्नेहता जाता। तात न भद्रकं ते [1]समापतितम्। सर्व एव सुखं स्थापनीयो गुरुजनो दुःखं स्थापितः। [2]न जानाम्येवं कृत्वा किं त्वया प्राप्तव्यम्।' एतानि चान्यानि चान्तर्भवनगतां

= कोपयुक्तम्, आननम् = मुखम्, न दृष्टम् = विलोकितम्, एव, तस्य = तादृशस्य तव, मयि = स्वमातरि, अयम् = एषः, एवंविधः = एतादृशः, कोपः = क्रोधः, अकस्मात् = सहसा, एव, कुतः = कस्मात् कारणात्, जात इति शेषः, यत् = यस्मात्, एवम् = अनेन प्रकारेण, परित्यज्य = विहाय, अस्मान् सर्वानिति शेषः, स्थितः = स्थितिं कृतवानसि। गतः = प्रयातः, सन्, अपि, आगच्छ = आयाहि, त्वाम् = भवन्तम्, शिरसा = मूर्ध्ना, प्रसादयामि = अनुनयामि। मे = मम, मनोरमायाः ते अम्बायाः, अपरः = त्वद्भिन्नः, कः = अज्ञातः, अस्ति = वर्तते ? न कोऽप्यस्तीति भावः। देशान्तर-परिचयात् = अन्यस्थानसंस्तवात्, अस्मासु = तव मातापित्रादिषु, स्नेहः = प्रीतिः, मुक्तः = त्यक्तः, नाम = इदं वाक्यालङ्कारे। क्षणमपि = स्वकल्पकालमपि, अनन्तरितदर्शनस्य—अनन्तरितम्, (= व्यवहितम्) दर्शनम् (= विलोकनम्) यस्य तादृशस्य, चन्द्रापीडस्य = एतन्नामकस्य निजसुहृदः, उपरि = विषये, तव = भवतः, ईदृशी = एतत्प्रकारा, निःस्नेहता = अप्रीतिः, कथम् = कस्मात् कारणात्, जाता = भूता ? तात ! = वत्स !, ते = तव, भद्रकम् = कल्याणकरम्, न, समापतितम् = सञ्जातम्। वस्तुतस्तु—ते समापतितम् = समाचरणम् न भद्रकम् = समीचीनम्, एष एव अर्थः समीचीनः प्रतीयते। सुखम् = सुखं यथा स्यात् तथा, सुखपूर्वकमिति भावः, स्थापनीयः = स्थापयितुमर्हः, रक्षणीयः, सर्वः = सकलः, एव, गुरुजनः = मान्यजनः, दुःखम् = कष्टं यथा स्यात् तथा, स्थापितः = स्थितिं प्रापितः, दुःखे निपातित इति भावः। एवम् = इत्थम्. कृत्वा = विधाय, त्वया = भवता, किम् = अज्ञातम्, प्राप्तव्यम् = लब्धव्यम्, इति, न = नैव, जानामि = वेद्मि, ज्ञातुं शक्नोमीति तदाशयः। एतानि = पूर्वोक्तानि, अन्यानि = इतराणि, च वचनानीति शेषः,

नहीं किया है तब अचानक तुम्हारी ऐसी निष्ठुरता (रुखापन) कैसे आ गई है ? जन्मकाल से लेकर आज तक जिसका मुख कभी भी क्रोधयुक्त नहीं देखा था, ऐसे तुम्हारा मुझ पर अचानक इस प्रकार का क्रोध कहाँ से हो गया ? जो कि इस प्रकार [निष्ठुरता से हमें छोड़कर जंगल में] रुक गये हो ? गये हुए भी तुम वापस लौट आओ, मैं शिर से तुम्हें मनाती हूँ अर्थात् सिर झुका कर प्रार्थना करती हूँ। [तुम्हारे अतिरिक्त] दूसरा मेरा कौन है ? दूसरे देश = स्थान के परिचय के कारण क्या हम लोगों पर स्नेह छोड़ दिया। थोड़ी देर के लिये भी तुम्हारे दर्शन के अभाव को न सहन करने वाले चन्द्रापीड के ऊपर तुम्हारा ऐसा स्नेहाभाव कैसे हो गया ? बेटा तुमने यह अच्छा नहीं किया अथवा तुम्हारे लिये अच्छा नहीं हुआ है। सुख प्राप्त कराने योग्य सभी गुरुजनों को तुमने दुःख में डाल दिया है। मुझे नहीं मालूम कि ऐसा करके तुम्हें क्या मिलता है ?' इनको तथा अन्य

१. त आपतितम्। २. न—इति नापि पठ्यते।

प्रत्यग्रतनयविरहशोकविह्वलां[1] स्वयं देव्या विलासवत्या संस्थाप्यमानामपि मनोरमां विप्रलपन्तीमश्रौषीत् ।

तेन चातिकरुणेन तत्प्रलापविषेण विह्वल इव निद्रागमेनेव घूर्णमानो निश्चेतनतामनीयत । कथं कथमपि सहजसत्त्वावष्टम्भेनैव संस्तम्भितात्मा प्रविश्य पितुरपि लज्जमानो वदनमुपदर्शयितुमधोमुख एव निस्पन्दसर्वाङ्गेण मन्दराद्रिणेव शुकनासेन सह मथनावसा-

---

विप्रलपन्तीम् = विलापं कुर्वतीम्, अन्तर्भवनगताम् = गृहस्याभ्यन्तरभागे विद्यमानाम्, प्रत्यग्रेत्यादिः—प्रत्यग्रः (= नवीनः, तत्कालं संजातः) यः तनयस्य (= पुत्रस्य) विरह (= वियोगः) तेन यः शोकः (= दुःखम्) तेन विह्वलाम् (= व्याकुलाम्), स्वयम् = आत्मनैव न तु दास्यादिभिः, देव्या = महिष्या, विलासवत्या, संस्थाप्यमानाम् = समाश्वास्यमानाम्, अपि, विप्रलपन्तीम्, आश्रैषीत् = शुश्राव । यद्यपि श्रवणक्रियायाः कर्म शब्द एव भवति तथापि प्रवीणकविभिरनया रीत्यापि प्रयोगाः क्रियते एव । यथा बाणभट्टेनैव पूर्वार्द्धे—"विलपन्तं कपिञ्जलमश्रौषम्" इति प्रयुक्तम् । माघेऽपि 'मन्दानिलापूरकृतं दधानो निध्वानमश्रूयत पाञ्चजन्यः' (शिशुपालवधम्) इति प्रयोगो दृश्यते । किञ्च वाल्मीकीयरामायणेऽपि—"रुदतीः राक्षसीरशृणोत्कपिः" (वाल्मीकीयरामायणम्) एतादृश एव प्रयोग इति केचन ।

वैशम्पायनस्य मातुः मनोरमाया विप्रलापमाकर्ण्य चन्द्रापीडस्य दशा कीदृशी जातेति प्रतिपादयति—तेनेत्यादिना । तेन = पूर्ववर्णितेन, च, अतिकरुणेन = अतीवहृदयविदारकेण, अतिशयकारुण्य-परिपूरितेन, तत्प्रलापविषेण—तस्याः (= मनोरमायाः) प्रलापः (= विलपनम्) एव विषः (= गरलम्) तेन, विह्वलः = व्याकुलः, इव, निद्रागमेन = स्वापागमनेन, इव, घूर्णमानः = संज्ञाशून्यो भवन्, प्रस्खलन्, निश्चेतनताम् = चैतन्यहीनताम्, अनीयत = प्रापितः, स मूर्च्छितो जात इत्याशयः । कथं कथमपि = येन केन प्रकारेण, महता क्लेशेनेति भावः, सहजेत्यादिः— सहजम् (= स्वाभाविकम्, जन्मना सह संजातम्) यत् सत्त्वम् (= धैर्यम्, दृढता) तस्य अवष्टम्भः (= आश्रयः) तेन, एव, न तु बाह्येन केनापि हेतुनेति भावः, संस्तम्भितात्मा—संस्तम्भितः (= दृढीकृतः धारितः) आत्मा (= प्राणाः) येन स तादृशः सन्, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, पितुः = जनकात् तारापीडाद्, अपि, वदनम् = स्वमुखम्, उपदर्शयितुम् = प्रदर्शयितुम्, लज्जमानः = त्रपमानः, व्रीडामनुभवन्, अधोमुखः = निम्नवदनः, एव, निष्पन्देत्यादिः—निष्पन्दानि (= क्रियाशून्यानि, जडीभूतानि) सर्वाणि (= समस्तानि) अङ्गानि (= देहावयवाः) यस्य तेन तादृशेन, मन्दराद्रिणा = मन्दराचलेन, इव = तुल्येन, शुकनासेन = वैशम्पायनजनकेन, सह = सार्धम्, मथनेत्यादिः—मथनम् (= गोलाकारेण अतीवचञ्चलीकरणम्) तस्य अवसानम् (= समाप्तिः)

बातों को कहती हुई, भवन के भीतर बैठी हुई, ताजे पुत्रविरह के शोक के व्याकुल और स्वयं महारानी विलासवती के द्वारा आश्वासन दी जाती हुई भी, जोर जोर से चिल्लाती हुई मनोरमा को सुना ।

उस अति कारुणिक मनोरमा के विलापरूपी विष से व्याकुल होता हुआ सा, मानों नींद आ जाने के कारण चक्कर खाता हुआ वह चन्द्रापीड बेहोशी को प्राप्त करा दिया गया अर्थात् मूर्छित हो गया । जिस किसी प्रकार अपने स्वाभाविक धैर्य के अवलम्बन (सहारे) से अपने को सम्भाले हुये प्रवेश करके अपने पिता जी को भी मुख दिखाने में लजाता हुआ, नीचे मुख किये हुये ही, निश्चल सभी अवयवों वाले मन्दराचल के समान शुकनास के साथ-साथ मन्थन के समाप्त हो जाने पर शान्त

---

१. ...विरहशोकविह्वलाम् ।

नस्तिमितमिव[1] महार्णवं प्रणम्य पितरं दूरत इवोपाविशत्। उपविष्टं च तं क्षणमिव दृष्ट्वा राजान्तर्बाष्पभरगद्‌गदेन ध्वनिनाभ्यर्णवर्ष इव जलधरोऽभ्यधात्—'वत्स चन्द्रापीड! जानामि ते स्वजीवितादपि समभ्यधिकां भ्रातुरुपरि प्रीतिम्। पीडा च सुखैकहेतोर्वल्लभजनादेवा-संभाव्या या [2]समुत्पद्यते [3]तयैव हि न किंचिन्न क्रियते? तज्जन्मनः स्नेहस्य वयसः शीलस्य श्रुतस्य गुरुजनानुशासनस्य विनयाधानस्य च सर्वस्यैवानुचितमिमं भ्रातुः सुहृदश्च

तेन स्तिमितम् (= निश्चलम्, शान्तम्), महार्णवम् = महासमुद्रम्, इव = तुल्यम्, पितरम् = स्वजनकं तारापीडम्, प्रणम्य = प्रणामं कृत्वा, दूरतः = दूरे, इव, उपाविशत् = उपविष्टोऽभूत्। अत्रोपमा सुस्पष्टा।

उपविष्टमिति। उपविष्टम् = निषण्णम्, च, तम् = चन्द्रापीडम्, क्षणमिव = स्वल्पकालम्, इव, दृष्ट्वा = विलोक्य, राजा = नृपस्तारापीडः, अन्तरित्यादिः—अन्तः (= आभ्यन्तरे) य बाष्पभरः (= अश्रुसमूहः) तेन गद्‌गदेन (= अव्यक्तेन) ध्वनिना = शब्देन, स्वनेन, अभ्यर्ण-वर्षः—अभ्यर्णः (= सन्निहितः, सद्योभावी) वर्षः (= वर्षणम्, वृष्टिः) यस्य स तादृशः, जलधरः = मेघः, इव, अभ्यधात् = अवोचत्। अत्राप्युपमा। वत्स चन्द्रापीड! = हे पुत्र चन्द्रापीड!, स्वजीवितात् = निजजीवनात् अपि, समभ्यधिकाम् = प्रचुरतराम्, भ्रातुः=वैशम्पायनस्य उपरि = विषये, ते = तव, चन्द्रापीडस्य, प्रीतिम् = स्नेहम्, जानामि = वेद्मि। सुखैकहेतोः—सुखस्य (= आनन्दस्य) एकः (= अद्वितीयः) हेतुः (= कारणम्) तस्मात्, तादृशात्, वल्लभजनात् = स्निग्धलोकात्, प्रियव्यक्तेः, सकाशादिति शेषः, एव, असम्भाव्या = असम्भवनीया, या, पीडा = व्यथा, समुत्पद्यते = संजायते, तया = पीडया, एव, हि, किञ्चित्, न क्रियते = विधीयते, इति, न = नैव, अपि तु सर्वमेव क्रियते इत्याशयः। प्रियकारकजनात् यथा प्रियमुत्पद्यते तथैव यदि कदाचित् किमपि अप्रियमुत्पद्येत तदा या पीडा भवति तया सर्वमपि कर्तुं शक्यते। एवमिदं प्रतीयते यत् त्वया किमपि तादृशं पीडाकरं कृतं कथितं वा येनातिदुःखी भूत्वा वैशम्पायनो वनेऽव-स्थानमेवोचितं विचारितवानित्याशयः। तत् = तस्मात् कारणात्, जन्मनः = जनेः, उत्पत्तेः, स्नेहस्य = प्रेम्णः, वयसः = अवस्थायाः, शीलस्य = स्वभावस्य, श्रुतस्य = श्रुतिविषयीकृतस्य ज्ञानस्य, गुरुजनानुशासनस्य = गुरुजनानामुपदेशस्य, नियन्त्रणस्य वा, विनयाधानस्य=प्रश्रयस्थापनस्य, च, सर्वस्य = समस्तस्य एव, अनुचितम् = अयोग्यम्, इमम् = पुरोविद्यमानम्, ते = तव, चन्द्रापीडस्य, भ्रातुः = बान्धवस्य, सुहृदः = मित्रस्य, च, वृत्तान्तम् = उदन्तम्, आकर्ण्य =

(निश्चल) हुये महासागर जैसे अपने पिता को प्रणाम करके, (कुछ) दूर ही बैठ गया। बैठे हुये उस चन्द्रापीड को कुछ देर तक देख कर राजा तारापीड भीतर-भीतर आसुओं के समूह के कारण गद्‌गद (अव्यक्त) ध्वनि से, तत्काल बरसने वाले बादल के समान, कहने लगे—"बेटा चन्द्रापीड! अपने भाई वैशम्पायन के ऊपर तुम्हारी अपने प्राणों से भी अधिक प्रीति को मैं जानता हूँ। परन्तु सुख के एकमात्र कारणभूत प्रिय व्यक्ति से ही जो असम्भाव्य (अकल्पनीय) पीडा उत्पन्न होती है उससे ऐसा कुछ नहीं है जो न करा दिया जाता हो; अर्थात् सब कुछ कर दिया जाता है। इस कारण जन्म (वंश), स्नेह, आयु, स्वभाव, शास्त्रज्ञान, गुरुजनों का अनुशासन तथा विनय की स्थापना—

१. स्तिमितमहार्णवम्। २. सम्भवति। ३. तथैव।

ते वृत्तान्तमाकर्ण्य त्वद्दोषमाशङ्कते मे हृदयम्।' इत्येवंवादिनो नरपतेर्वचनमाक्षिप्य[1] युगपच्छोकामर्षाभ्यामन्धकारिताननः प्रावृडारम्भ इव[2] तडिल्लतादुष्प्रेक्ष्यो विस्फूर्जितेनेव स्फुरिताधरेण शुकनासोऽब्रवीत्—

"देव, यदि चन्द्रमस्यूष्मा, दहने चातिशीतलत्वम्,[3] अंशुमालिनि वा तमः, तमस्विन्यां वा दिवसः, [4]महोदधौ वा शोषः, क्षितेरधारणं वा शेषे, परार्थानुद्यमो वा साधोः, अप्रियवचननिर्गमो वा [5]स्वजनमुखात्सम्भाव्यते ततो युवराजेऽपि दोषः। तत्किमेवमेवानि·

श्रुत्वा, मे = मम तारापीडस्य, हृदयम् = स्वान्तम्, त्वद्दोषम् = तवापराधम्, आशङ्कते = सम्भावयति, अस्मिन् वृत्तान्ते त्वमेव प्रमुखरूपेण दोषभागी वर्तसे इति तदाशयः। इति एवम् = (= अनेन रूपेण) वदति (= भाषते) इति तादृशस्य तस्य, नरपतेः = राज्ञस्तारापीडस्य, वचनम् = कथनम्, आक्षिप्य = मध्ये एव निराकृत्य, युगपत् = समकालमेव, शोकामर्षाभ्याम् = दुःखकोपाभ्याम्, अन्धकारिताननः = अन्धकारयुक्तवन्दनः, शून्यमुखः, तडिदित्यादिः—तडित् (= गगनविद्युत्) लता (= व्रतती) इव, तया दुष्प्रेक्ष्यः (= दुरवलोकनीयः), प्रावृडारम्भः— प्रावृषः (= वर्षर्तोः) आरम्भः (= उपक्रमकालः), इव, शुकनासः = वैशम्पायनपिता, विस्फूर्जितेन=प्रदीप्तेन गर्जितेन वा, इव, स्फुरिताधरेण=चञ्चलाधरेण,अब्रवीत् = अवोचत्। अत्र साम्यं सुन्दरं चित्रितम्। तेनोपमालङ्कारः।

शुकनासः किमब्रवीदिति प्रदर्शयति—देव इत्यादिना। हे देव! = हे स्वामिन्!, यदि = चेत्, चन्द्रमसि = निशाकरे, ऊष्मा = उष्णता, सन्तापकता, दहने = अग्नौ, च, अतिशीतलत्वम् = अतिशिशिरत्वम्, वा = अथवा, अंशुमालिनि = सूर्ये, तमः = तमिस्रम्, तमस्विन्याम् = निशायाम्, वा, दिवसः = दिनम्, दिवसकृतालोक इति भावः, महोदधौ = महासागरे, वा, शोषः = जलशोषणम्; जलाभावः, शेषे = शेषनागे, वा, क्षितेः = पृथिव्याः, अधारणम् = अस्थापनम्, अवहनम्, वा, साधोः = सज्जनस्य, परार्थानुद्यमः = अन्यदीयकार्ये उद्यमाभावः, वा = अथवा, स्वजनमुखात् = आत्मीयजनाननात्, अप्रियवचननिर्गमः = अप्रीतिकरवचन-निःसरणम्, वा, सम्भाव्यते = सम्भावना-विषयीक्रियते, ततः = तदा, युवराजे = राजकुमारे चन्द्रापीडे, अपि, दोषः = दूषणम्, सम्भाव्यते इति शेषः। वस्तुतश्चैवं न सम्भाव्यते, तत् = तस्मात्, किम् = कथम्, एवम् = अनेन पूर्वोक्तरूपेण,

इन सभी के अनुचित (विपरीत) तुम्हारे भाई और मित्र वैशम्पायन के इस वृत्तान्त को सुन कर मेरा मन तुम्हारे ही दोष की आशंका कर रहा है, अर्थात् तुम्हारे ही किसी दोष के कारण वैशम्पायन वहाँ रुक गया, वापस नहीं आया"—ऐसा कहने वाले राजा तारापीड की बात को बीच में ही काट कर, एक ही साथ शोक और अमर्ष (क्रोध) से अन्धकारयुक्त (काला) मुख बनाये हुये, बिजली रूपी लता के कारण अत्यन्त कष्ट से देखने योग्य बर्षाकाल के आरम्भ के समान वह शुकनास देदीप्यमान और फड़फड़ाते हुये ओष्ठ से कहने लगे—

"महाराज! यदि चन्द्रमा में ऊष्मा (गरमी), आग में अतिशीतलता (बहुत ठण्डक), सूर्य में अन्धकार, रात में दिन, समुद्र में पानी का सूख जाना, शेषनाग पर पृथिवी का धारण न होना, सज्जन का दूसरे के [हित के] लिये प्रयास न करना अथवा आत्मीय व्यक्ति के मुख से अप्रिय

१. युगपदाक्षिप्य वचनं। २. एव। ३. शीतलत्वम्।
४. महोदन्वति। ५. सज्जन०।

रूप्य तस्यानात्मज्ञस्य मूढप्रकृतेर्दुर्जातस्य [1]राजापथ्यकारिणो मातृपितृघातिनो मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य कर्मचण्डालस्य[2] महापातकिनः कृते कृतयुगावतारयोग्यमात्मनोपि गुणवन्तमत्युदारचरितं चन्द्रापीडमेवं सम्भावयति देवः। न ह्यतःपरमपरं कष्टतरं[3] किंचिदपि पीडाकारणं यद्गुणेषु वर्तमानो दोषेषु सम्भाव्यत इतरजनेनापि। किं पुनर्गुरुजनेन। यो गुणी गुणैरेवाराधनीयः[4]। कस्यापरस्यात्मा गुणवाननेन ज्ञापनीयः। अपि च, जन्मनः प्रभृति

एव, अनिरूप्य = अविचार्य, तस्य = वैशम्पायनस्य, अनात्मज्ञस्य—आत्मानम् (= रूपम्) न जानाति (= वेत्ति) इति तादृशस्य स्वरूपपरिचयहीनस्य, मूढप्रकृतेः = मूर्खस्वभावस्य, दुर्जातस्य = दुर् (= दुष्टम्, कुत्सितम्) जातम् (= जन्म) यस्य तस्य तादृशस्य, राजापथ्यकारिणः = राज्ञोऽनिष्टविधायकस्य, मातृपितृ-घातिनः = जननी-जनक-घातुकस्य, मित्रद्रुहः = सुहृद्वैरिणः, कृतघ्नस्य—कृतम् (= विहितमुपकारादिकम्) हन्ति (= न वेत्ति, जानाति) इति, तादृशस्य, अकृतज्ञस्येति भावः, कर्मचण्डालस्य = कर्मणा श्वपचभूतस्य, महापातकिनः = महापापविधायकस्य, तस्य वैशम्पायनस्य, कृते = अर्थम्, कृतयुगावतारयोग्यम् = सत्ययुगेऽवतरणार्हम्, आत्मनः = स्वस्माद्, अपि, गुणवन्तम् = गुणशालिनम्, अत्युदारचरितम् = अतिशयोदारवृत्तवन्तम्, चन्द्रापीडम् = एतन्नामकं स्वपुत्रम्, एवम् = पूर्वोक्तप्रकारेण, देवः = स्वामी महाराजः, सम्भावयति = सम्भावनाविषयीकरोति, विचिन्तयति। अतः = अस्मात्, परम्=अधिकम्, कष्टतरम् = दुःखतरम्, किञ्चिदपि = किञ्चिनापि, पीडाकारणम् = व्यथाजनकम्, न हि=निश्चयेन वर्तते इति शेषः, यत् = यस्माद्, गुणेषु = वैशिष्ट्येषु, वर्तमानः = विद्यमानः जनः, इतरजनेन = आत्मीयभिन्नलोकेन, नीचजनेन वा, दोषेषु = दूषणेषु, सम्भाव्यते = विकल्प्यते, किम्, पुनः, गुरुजनेन = वृद्धलोकेन मातापित्रादिनेति भावः। गुणिलोकविषये यदि नीचजनाः निकृष्टं भावयन्ति तत्तु कथंचित् क्षन्तव्यम्, यदि तस्य गुरुजनाः तथ्यवेत्तारोपि अन्यथा सम्भावयन्ति तदा तु तत्र विषये न किमपि वक्तुं शक्यते इति तदाशयः।

साम्प्रतं स्वविचारं प्रस्तौति शुकनासः—यो गुणीत्यादिना। यः = जनविशेषः, गुणी = गुणवान्, वर्तत इति शेषः, सः, गुणैः = स्ववैशिष्ट्यैः, एव, आराधनीय =सेवनीयः। अनेन = गुणिना, गुणवान् = गुणयुक्तः, आत्मा = स्वयम्, कस्य = अज्ञातस्य, अपरस्य = भिन्नस्य, दर्शनीयः = प्रकटनीयः, न कस्याप्यन्यस्येति भावः। अपि च = अन्यच्च, जन्मनः = जनेः, जन्मकालात्, प्रभृति = आरभ्य, देवस्य = स्वामिनस्तारापीडस्य, देव्या = महिष्या, विलास-

---

वचन का निकलना—यह [इनमें से कोई भी] सम्भव है तब युवराज में भी दोष की सम्भावना की जा सकती है [जबकि उक्त में कोई भी बात सम्भव नहीं है।] तो फिर यों ही बिना विचार किये आप क्यों उस अनात्मज्ञ (अपने को न पहचानने वाले), मूढ स्वभाव वाले, दुर्जात (दूषित जन्म वाले) राजद्रोही, माता-पिता के हत्यारे, मित्रद्रोही, कृतघ्न, कर्म से चाण्डाल, महापातकी, (वैशम्पायन) के लिये अर्थात् उसका पक्षपात करके, सत्ययुग में अवतार लेने के योग्य आपसे भी अधिक गुणी, अत्यन्त उदार चरित वाले चन्द्रापीड के विषय में ऐसी सम्भावना क्यों कर रहे हैं। इससे अधिक कष्ट देने वाला कोई भी कारण नहीं है कि गुणों में वर्तमान अर्थात् गुणी व्यक्ति में नीच व्यक्ति द्वारा भी दोष की सम्भावना की जाय, फिर गुरुजनों के द्वारा [सम्भावना के विषय

---

१. अराजपथ्यकारिणः। २. चण्डालस्य। ३. कष्टतमं। ४. अवबोधनीयः।

देवस्य देव्या विलासवत्याश्चाङ्कलालनया यो न गृहीतस्तस्य मरुत इव दुर्ग्रहप्रकृतेश्चन्द्रापीडोपि किं करोतु। स्वयमेवोत्पद्यन्त एवं विधाः [1]शरीरसम्भवा महाक्रमयः सर्वदोषाश्रया महाव्याधयः, अन्तर्विषा महाव्यालाः, विनाशहेतवो महोत्पाताः, भुजङ्गवृत्तयो महावातिकाः, वक्रचारिणो महाग्रहाः, तमोमयाः प्रदोषाः, मलिनात्मकाः कुलपांशवः, निःस्नेहाः खलाः, निर्लज्जाः क्षपणकाः,[2] निःसंज्ञाः पशवः। अपि चाकाष्ठा दहनाः, निर्गुणा जालिनः, अतीर्था

वत्याः, च, अङ्कलालनया = क्रोडपरिपालनेन, यः = वैशम्पायनाख्यो जनः, न, गृहीतः = वशीकृतः, मारुतः = पवनस्य, इव, दुर्ग्रहप्रकृतेः = दुर् (= दुःखेन) ग्रहा (= ग्रहीतुं वशीकर्तुं योग्या) प्रकृतिः (= स्वभावः) यस्य तस्य तादृशस्य, तस्य = वैशम्पायनस्य, चन्द्रापीडः = युवराजः, अपि, किम् = अज्ञातम्, करोतु = विदधातु, न किमपीति भावः। एवंविधाः = एतादृशाः, शरीरसम्भवाः = देहोत्पन्नाः, महाक्रमयः = महाकीटाः "[स्वयम् = आत्मना, एव, उत्पद्यन्ते = जायन्ते, न तु तत्रान्यस्य कारणस्यापेक्षेति भावः—इत्येतत् सर्वं सर्वत्र वाक्येषु योज्यम्।]" सर्वदोषाश्रयाः = सकलदूषणाधाराः, महाव्याधयः = महारोगाः, अन्तर्विषाः—अन्तः (= आभ्यन्तरे) विषम् (= गरलम्) येषां ते तादृशाः, गुप्तनिहितविषा इति भावः, महाव्यालाः = विशालाः भयङ्कराः वा सर्पाः, विनाशहेतवः = विनाशनिमित्तानि, विध्वंसस्य सूचका इत्यर्थः, महोत्पाताः = महान्तः उल्कापाताद्युपसर्गाः, भुजङ्गवृत्तयः—भुजङ्गः (= सर्पः) तस्य इव वृत्तिः (= वर्तनम्, आचरणम्) येषां ते तादृशाः, महावातिकाः = झञ्झावातादयः वक्रचारिणः = कुटिलगामिनः, महाग्रहाः = राहुकेत्वादयः, तमोमयाः = तमोबहुलाः, प्रदोषाः = सायङ्कालाः, मलिनात्मकाः = मलिनवर्णाः, मालिन्ययुक्ता वा, कुलपांशवः = सत्कुलस्य धूलयः, निःस्नेहाः = स्नेहहीनाः, खलाः = धूर्ताः, निर्लज्जाः = लज्जाहीनाः, क्षपणकाः = नग्नसाधवः, दिगम्बरजैना इति यावत्, निःसंज्ञाः = चेतनाहीनाः, पशवः = चतुष्पदचारि-जीवाः। अपि च = अन्यच्च, अकाष्ठाः—न काष्ठम् (= एधः) येषु तादृशाः, दहनाः = अग्नयः, अत्र विरोधः, दहनाः = दाहकाः, सन्ताप-कारका इत्यर्थे परिहारः। निर्गुणा = निर् (= निर्गतः) गुणः (= सूत्रम्) यस्मात्, सूत्रहीना इति भावः, जालिनः = जालवन्तः, अत्रार्थे विरोधः। परिहारस्तु—निर्गुणाः (= गुणहीनाः) जालिनः (= वागुरिकाः, उपजापकाः) इत्यर्थे। अतीर्थाः—न तीर्थम् (= ऋषिमुख्यादिसेवितं स्थानम्) येषु ते तादृशाः, जलाशयाः = तडागादयः, अत्र विरोधः, परिहारस्तु—न तीर्थम् (= गुरुः) येषां ते तादृशाः, जलाशयाः इत्यत्र डलयोरैक्यात् 'जडाशयाः = जडः आशयः

में] क्या कहा जाय, अर्थात् कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जो गुणों वाला है उसकी [उसके] गुणों से ही आराधना की जानी चाहिए। गुणवान् को किसी अन्य के सामने अपने आपको गुणवान् बतलाना है ? अर्थात् किसी के आगे नहीं। और भी, जन्मकाल से ही लेकर महाराज (आपने) तथा महारानी विलासवती की गोद में लालन-पालन से भी जो [उनके] अधीन नहीं हो सका, वायु के समान कष्ट से ही वश में किये जाने वाले उस वैशम्पायन का चन्द्रापीड भी क्या कर सकता था। शरीर से पैदा होने वाले ऐसे बड़े-बड़े कीड़े, सभी दोषों के आश्रयभूत, बड़ी-बड़ी व्याधियाँ (बीमारियाँ) भीतर विष (छिपाये रखने) वाले बड़े-बड़े साँप, विनाश के कारणभूत बड़े-बड़े उत्पात (प्राकृतिक प्रकोप), सांप की तरह आचरण वाले बड़े-बड़े झंझावात, वक्र (= कुटिल) चाल चलने वाले महान् ग्रह (शनि आदि), अंधेरे से युक्त प्रदोष (सायंकाल), कुल = सद्वंश की मलिन धूलि, स्नेह (तेल) से रहित खली (प्रेम से हीन दुष्ट), लज्जा से हीन दिगम्बर, (नंगे) संज्ञा = उचितानुचितविवेक से रहित पशु-जानवर, और भी, बिना काष्ठ वाली आग, (बिना काष्ठ के

१. असम्भवा,। २. कृपणकाः।

जलाशयाः, निर्गौरवाः खरप्रकृतयः, अशिवमूर्तयो महाविनायकाधिष्ठिताः।

ये सकलङ्काः कृपाणा इव स्नेहेनैव पारुष्यं भजन्ते। मलिनस्वभावाः करिकपोला इव दानेनैव मलिनतरतामापद्यन्ते। निर्वर्तयो मणिप्रदीपा इव प्रसादेनैव ज्वलन्ति। अङ्गलग्ना

(= चित्तम्) येषां ते तादृशाः, मूर्खा इति भावः, इत्यर्थः। निर्गौरवाः—निर् (= निर्गतम्) गौरवम् (= भारवत्त्वम्) येभ्यस्ते तादृशाः, खरप्रकृतयः = कठिनस्वभावा, अत्रार्थे विरोधः। परिहारस्तु—निर्गतम् गौरवम् (= महत्त्वम्) येभ्यस्ते तादृशाः अमहान्त इत्यर्थः। अशिवमूर्तयः—न शिवस्य (= शङ्करस्य) मूर्तयः (= स्वरूपाणि) अपि, महाविनायकाधिष्ठिता = महागणेशेनाधिष्ठिताः, अत्रार्थे विरोधः। परिहारस्तु—अशिवाः (= अकल्याणकराः) मूर्तयः (= स्वरूपाणि मुखानि) वा येषां ते तादृशाः, अत्र च महाविनायकैः = महाविघ्नैः अधिष्ठिताः = समाश्रिताः इत्यर्थः। एते सर्वेऽपि, स्वयमेव = आत्मना एव, उत्पद्यन्ते = जायन्ते, न तु तेषां जन्मार्थं कोऽपि यतते न वा किमपि विशिष्टं कारणं तत्र भवतीति तदाशयः।

पुनरपि वैशम्पायनमेवोपालभते शुकनासः—ये सकलङ्का—इत्यादिना। ये सकलङ्काः—कलङ्केन (= जनापवादेन, पक्षे, चिह्नादिना) सह (= सहिताः) कृपाणाः = खड्गाः, इव, स्नेहेन = प्रेम्णा, पक्षे तैलादिना, एव, पारुष्यम् = कठोरताम्, निष्ठुरताम्, भजन्ते = प्राप्नुवन्ति। कलङ्कयुक्ता खड्गा यथा तैलादिना चिक्कणाः कृता अधिकं परुषधाराः भवन्ति तथैव स्नेहेन = प्रेम्णा ते लोकाः कठोरा जायन्ते इति न प्रेमयोग्यता तेष्विति भावः। मलिनस्वभावाः—मलिनः (= श्यामः, रागद्वेषादिमलयुक्तः) स्वभावः (= प्रकृतिः; स्वरूपम्) येषां ते तादृशाः, करिकपोलाः = गजानां गण्डस्थलानि, इव, दानेन=मदजलेन, पक्षे—अन्येभ्यः प्रदानेन, मलिनतरताम्=अतिशयमलिनवत्ताम्, आपद्यन्ते=प्राप्नुवन्ति। श्यामवर्णमपि गजगण्डस्थलं यथा दानेन=मदजलेन अधिकं मलिनं भवति तथैव ते अधमा अपि दानेन=वितरणेन मालिन्यं भजन्ते। निर्वर्तयः =वर्तिहीनाः, पक्षे—वृत्त्या = जीविकया हीनाः, मणिदीपाः = मणिमयदीपिकाः, इव, प्रसादेन = प्रसन्नतया पक्षे—उज्जलतया च, एव, ज्वलन्ति = प्रदीप्यन्ते, ईर्ष्यादियुक्ता जायन्ते इति भावः। अङ्गलग्नाः = देहे संसक्ताः, भुजाः = बाहवः, इव, दाक्षिण्यपरिग्रहेण =उदारतायाः स्वीकारेण न्यायदर्शनेन वा, एव,

---

जलाने वाले), निर्गुण = गुण = सूत्र से रहित जालवाले (गुण = दयादाक्षिण्यादि से शून्य षड्यन्त्र करने वाले), बिना तीर्थ (पवित्र स्थान) वाले जलाशय (=बिना गुरु के जड़चित्तवाले), बिना गौरव = भार के खर = गधे के समान स्वभाव वाले, (बिना महत्त्व के दुष्ट स्वभाववाले), महागणेश से अधिष्ठित शिवरहित मूर्तिवाले (महान् विघ्नों से युक्त अमंगलकारक आकृति वाले)—अपने आप ही पैदा हो जाते हैं अर्थात् ऐसे लोगों के जन्म की किसी को इच्छा नहीं होती है।

कलंक (जंक) से युक्त तलवार जैसे स्नेह=तेल से ही और अधिक परुष=तीखी धारवाली हो जाती है उसी प्रकार जो स्नेह = प्रेम के कारण ही और अधिक कठोर = निष्ठुर हो जाते है। मलिन स्वभाव वाले हाथी के गण्डस्थल जैसे दान = मदजल से ही और अधिक मलिनता को प्राप्त करते हैं, मैले हो जाते हैं, वैसे ही जो दान = प्रदान समर्पण के कारण ही और मलिनता = द्वेषादि को प्राप्त कर लेते हैं। बत्तियों से शून्य मणिमय प्रदीप जैसे उज्ज्वलता के कारण ही जलते हैं = प्रकाश करते हैं वैसे ही जो वृत्ति = जीविका से रहित होते हुए अनुग्रह के कारण ही

भुजा[1] इव दाक्षिण्यपरिग्रहेणैवेतरे वामाः संजायन्ते। गुणमुक्ताः सायका इव सपक्षाश्रयेण फलेनैव दूरं विक्षिप्यन्ते।[2] सरागाः पल्लवा इव दिवसारूढ्यैवापरज्यन्ते। भूतिपरामृष्टा दर्पणा इवाभिमुख्येन सर्वं प्रतीपं गृह्णन्ति : अन्तरस्वच्छवृत्तयः सलिलाशया इव गाढा-

वामाः=प्रतिकूलाः,वामदिग्वर्तिनः, वा, संजायन्ते। यथा देहे एकभागे लग्नः बाहुः दक्षिण इति कथ्यते तदा तदन्यः स्वयमेव वामो जायते तथैव यदि कश्चित् एतैः सह दाक्षिण्यमाचरति एते स्वभावत एव वामा भवन्तीति भावः। गुणमुक्ताः—गुणेन (=प्रत्यञ्चया,पक्षे—दयादाक्षिण्यादिना) मुक्ताः (=त्यक्ताः, पक्षे—हीनाः) सायकाः = बाणाः, इव। सपक्षाश्रयेण—पक्षः (= पिच्छम्, स्वबन्धुवर्गं, च) तेन सह वर्तमानः, सहितः = सपक्षः, सः आश्रयः यस्य तेन तादृशेन, बन्धुजनादि-सहितेन, पक्षे—सपुंखबाणाग्रभागायासि स्थितेन, फलेन = लोहादि-मयबाणाग्रभागेन, साध्येन = च, सह, एव, दूरम् = विप्रकृष्टम्, विक्षिप्यन्ते = प्रक्षिप्यन्ते, प्रक्षिप्ताः भवन्ति, आत्मीयजनेभ्य दूरे भवन्तीति भावः। सरागाः—रागः (= लौहित्यम्, स्नेहः च) तेन सहिताः, पल्लवाः = किसलयाः, इव, दिवसारूढ्या—दिवसस्य (= दिनस्य) आरूढिः (= वृद्धिः) तया, एव, पक्षे—दिवसानाम् आरूढ्या, यथा यथा दिनानां वृद्धिर्जायते तथा तथेति भावः, अपरज्यन्ते = रागहीना भवन्ति, बन्धुजनानां रागाद् वियुज्यन्ते, बान्धवान् प्रति तेषां स्नेहः शनैः शनैः क्षीयते इति भावः। भूतिपरामृष्टाः—भूतिः (= भस्म) तया परामृष्टाः (= संसक्ताः) दर्पणाः (= आदर्शाः) इव, आभिमुख्येन = संमुखत्वेन, अनुकूलताप्रदर्शनेन, सर्वम् = सकलम्, प्रतीपम् = विपरीतम्, गृह्णन्ति= अनुभवन्ति। भूतिः = सम्पत्तिः, तया संमृष्टाः = युताः, जनाः दर्पणे सर्वं समीचीनमपि विपरीतं भावयन्तीति तेपि सर्वं विपरीतं भावयन्तीति भावः। अन्तरस्वच्छवृत्तयः—अन्तः (=हृदयम्, मध्यदेशः च) तस्मिन् अस्वच्छा (=मलिना, कलुषा) वृत्तिः (=वर्तनम्, मनोवृत्तिः) येषां ते तादृशाः, सलिलाशयाः=जलाशयाः, इव, गाढावगाहनेन = गभीरावलोडनेन, एव, कालुष्यम् = मलिनताम् उपयान्ति = प्राप्नुवन्ति, गच्छन्ति। विशेषव्याख्यानं हिन्दीव्याख्यायां द्रष्टव्यम्।

जलने लगते हैं। शरीर में लगी हुई भुजायें जैसे दाहिनी के ग्रहण करने से दूसरी बायीं हो जाती हैं वैसे ही जो दाक्षिण्य = उदारता के आश्रयण से ही वाम = प्रतिकूल हो जाते हैं। गुण = धनुष की डोरी से छोड़े गये बाण जैसे पुंखयुक्त बाण के अग्रभाग में स्थित फल = लोह की नोक द्वारा ही दूर फेंक दिये जाते हैं वैसे ही जो गुण = दयादाक्षिण्यादि से हीन होते हुए स्वजनों पर आधारित फल=साध्य, प्रयोजन के कारण ही दूर फेंक दिये जाते हैं अर्थात् अपने किसी फल की प्राप्ति को देखकर ये लोग स्वजनों से भी अपने को अलग करने में संकोच नहीं करते हैं। राग = लालिमा से युक्त पल्लव जिस प्रकार दिन की आरूढि=वृद्धि से ही अपरंजित=लालिमा से हीन हो जाते हैं अर्थात् जैसे जैसे दिन बढ़ता जाता है पत्तों की लालिमा वैसे-वैसे कम होती जाती है उसी प्रकार जो दिनों की अधिकता से ही राग = प्रेम से रहित होने लगते हैं, अर्थात् धीरे-धीरे इनका प्रेम घटने होने लगता है। जैसे भूति = धूलि से [रगड़ कर] साफ किये गये दर्पण = शीशे सामने होने से सभी कुछ उल्टा ग्रहण करते हैं, दिखलाते हैं, उसी प्रकार जो भूति = ऐश्वर्य से सम्पन्न होने पर अपने सामने सभी को उल्टा = प्रतिकूल समझते हैं, अर्थात् जो जैसा है वैसा न

१. भुजंगाः। २. निक्षिप्यन्ते।

वगाहनेनैव कालुष्यमुपयान्ति। ये च स्निग्धेष्वपि रूक्षाः, ऋजुष्वपि वक्राः, साधुष्वप्यसाधवः, गुणवत्स्वपि दुष्टप्रकृतयः, भर्तर्यप्यभृत्यात्मानः, रागिष्वपि क्रुद्धाः, निरीहादप्यादित्सवः, मित्रेष्वपि द्रोहिणः, विश्वस्तानामपि घातकाः, भीतेष्वपि प्रहारिणः, प्रीतिपरेष्वपि द्वेषिणः, विनीतेष्वप्युद्धताः, दयापरेष्वपि निर्दयाः, स्त्रीष्वपि शूराः, भृत्येष्वपि क्रूराः, दीनेष्वपि दारुणाः।

येषां च विपरीतानां गुरव एव लघवः, नीचा एवोच्चैः, अगम्याः, एव गम्याः,

---

ये चेति। ये = निकृष्टाः जनाः च, स्निग्धेषु = प्रणयिषु जनेषु अपि, रूक्षाः = कठोराः; ऋजुषु = सरलेषु, अपि, वक्राः = कुटिलाः साधुषु = सज्जनेषु, अपि, असाधवः = दुष्टाः, गुणवत्सु = गुणशालिषु, अपि, दुष्टप्रकृतयः = खलस्वभावाः, भर्तरि = स्वामिनि, अपि, अभृत्यात्मानः = असेवकाः, रागिषु = अनुरागवत्सु, अपि, क्रुद्धाः = क्रोधकराः, निरीहात् = निःस्पृहात्, अपि, जनात्, आदित्सवः = ग्रहणेच्छुकाः; मित्रेषु = सुहृत्सु, अपि, द्रोहिणः = द्रोहवन्तः, विश्वस्तानाम् = विश्वासयुक्तानाम्, अपि, घातकाः = हन्तारः; भीतेषु = प्राप्तभयेषु, अपि, प्रहारिणः = प्रहारकर्त्तारः; प्रीतिपरेषु = स्नेहवत्सु, अपि, द्वेषिणः = द्वेषकराः, विनीतेषु = विनयिषु, अपि, उद्धताः = उद्दण्डाः; दयापरेषु = दयायुक्तेषु, अपि, निर्दयाः = क्रूराः; स्त्रीषु = कामिनीषु, अपि, शूराः = शूरताप्रदर्शकाः, भृत्येषु = सेवकेषु, अपि, क्रूराः = चण्डाः; दीनेषु = कृपणेषु, अपि, दारुणाः = कठोराः, भवन्तीति शेषः। अत्र सर्वत्र वैषयिकाधारे अधिकरणे सप्तमी तेन तत्तद्विषये तादृशतादृशकार्यसम्पादका इत्यर्थो बोध्यः। अथ च 'अपि' शब्दस्य प्रयोगेण अन्यस्य अर्थस्य आपत्त्या = प्रतीत्या अर्थापत्तिरलङ्कारः।

पुनरपि तेषामेव विषये वर्णयति—येषां चेत्यादिना। येषाम्, च, विपरीतानाम् = प्रतीपमतीनाम्, गुरवः = महान्तः, उपदेशकाः वा, एव, लघवः = हीनाः, निकृष्टाः, न तु इतरे बोध्यम्।

समझकर अपनी भावना के अनुसार उल्टा-पल्टा समझ बैठते हैं। भीतर से अस्वच्छ वृत्ति (= अस्तित्व, स्वरूप) वाले जलाशय = तालाब आदि जिस प्रकार खूब आलोडन (अवगाहन) से ही कलुषता को प्राप्त करते हैं, मलिन हो जाते हैं उसी प्रकार भीतर से कलुषित वृत्ति वाले जो गाढ़े = अत्यधिक अवगाहन = परिचय के कारण हीं कलुषता = मलिनता को प्राप्त करते हैं। और जो स्नेह करने वालों के प्रति भी रूखे (निष्ठुर), सीधे-सज्जनों के प्रति भी वक्र = कुटिल, टेढ़े, साधुओं के प्रति भी असाधु, गुणवालों के प्रति भी दुष्ट प्रकृति = स्वभाव वाले, स्वामी के प्रति भी नौकर न रहने वाले, राग = अनुराग वालों के प्रति भी क्रोध करने वाले, निरीह (इच्छारहित त्यागी) से भी लेने की इच्छा वाले, मित्रों के प्रति भी द्रोह करने वाले, विश्वास करने वालों का भी घात करने वाले, डरने वालों पर भी प्रहार करने वाले, प्रेम करने वालों के प्रति भी द्वेष करने वाले, विनयशीलों के प्रति भी उद्दण्ड, दयावानों के प्रति भी निर्दयी, स्त्रियों के प्रति भी शूरता वाले, सेवकों के प्रति भी क्रूर, दीनों के प्रति भी दारुण = कठोर होते हैं।

जिन उल्टी बुद्धि वालों के लिये गुरु (बड़े) ही लघु (छोटे), नीच ही ऊँचे, अगम्य = सम्बन्ध न करने योग्य ही गम्य = सम्बन्ध करने योग्य, कुत्सित दृष्टि ही अच्छी दृष्टि, अकार्य ही कार्य, अन्याय ही

कुदृष्टिरेव सद्दर्शनम्, अकार्यमेव कार्यम्, अन्याय एव न्यायः, अस्थितिरेव स्थितिः, अनाचार एवाचारः, अयुक्तमेव युक्तम्, अविद्यैव विद्या, अविनय एव विनयः, दौःशील्यमेव सुशीलता, अधर्म एव धर्मः, अनृतमेव सत्यम्। [1]येषां च क्षुद्राणां [2]प्रज्ञा पराभिसन्धानाय न ज्ञानाय, श्रुतं मायाजालाय[3] नोपशमाय, पराक्रमः प्राणिनामुपघाताय नोपकाराय, उत्साहो धनार्जनाय न यशसे, स्थैर्यं व्यसनासङ्गाय न चिरसंगताय, धनपरित्यागः कामाय न धर्माय।

नीचाः = निम्नाः, निकृष्टाः, एव, उच्चैः = महान्तः, न तु अन्ये। अगम्याः = गमनायोग्याः, सम्बन्धानार्हाः एव, गम्याः = गमनयोग्याः, सम्बन्धार्हाः, न तु अन्ये। कुदृष्टिः = कुत्सितं दर्शनम्, एव, सद्दर्शनम् = प्रशस्यावलोकनम्; न तु अन्या। अकार्यम् = अनुचितकृत्यम्, एव, कार्यम् = करणयोग्यम्, न तु अन्यत्। अन्यायः = अनीतिः, एव, न्यायः = नीतिः, न त्वन्यः। अस्थितिः =अमर्यादा, एव, स्थितिः = मर्यादा, न तु अन्या। अनाचारः = निन्दिताचरणम्, एव, आचारः =सदाचरणम्, न त्वन्यः। अयुक्तम् = अनुचितम्, एव, युक्तम् = उचितम्, समीचीनम्। अविद्या = अज्ञानम्, एव, विद्या = ज्ञानम्, अविनयः = अविनम्रता, एव, विनयः = विनम्रता। दौःशील्यम् = दुष्टस्वभावः, एव, सुशीलता = सत्स्वभावः। अधर्मः = वर्जिताचारः, एव, धर्मः = सम्मताचारः। अनृतम् = असत्यम्, एव, सत्यम् = ऋतम्। अत्र 'एव' शब्दप्रयोगात् अर्थान्तरस्य निराकरणात् परिसंख्यालङ्कारः।

पुनरपि दोषानेव वर्णयति—येषां चेत्यादिना। येषाम् = स्वयमेवोत्पन्नानां निकृष्टजनानाम्, च, प्रज्ञा = प्रतिभा, पराभिसन्धानाय—परेषाम् (= अन्येषाम्) अभिसन्धानाय (=वञ्चनाय), एव, न तु ज्ञानाय = विवेकाय, भवतीति सर्वत्र योज्यम्। श्रुतम् = शास्त्रज्ञानम्, [3]आलजालाय = बन्धनाय; भवति, न तु, उपशमाय = शान्तये। क्वचित्तु 'मायाजालाय' इति पाठः, तत्र सांसारिक-माया-बन्धनायेत्यर्थो बोध्यः। केचित्तु इदं वाक्यं नापि पठन्ति। पराक्रमः = बलादिकम्, प्राणिनाम् = सत्त्वानाम्, उपघाताय = हननाय, पीडनाय, एव भवति, न तु उपकाराय = उपकृत्यै, हितसाधनायेति भावः। उत्साहः = अध्यवसायः, धनार्जनाय = वित्तोपार्जनाय, एव, न तु, यशसे = कीर्त्तये। स्थैर्यम् = स्थिरता, व्यसनासङ्गाय = द्यूत-मद्यपानादिव्यसनेषु आसक्तये, एव, न तु, चिरसंगताय =

न्याय, अमर्यादा ही मर्यादा, अनाचार ही सदाचार, अयुक्त ही युक्त, अविद्या ही विद्या, अविनय ही विनय, दुःशीलता (बुरे स्वभाववाला होना) ही सुशीलता, अधर्म ही धर्म, और अनृत=असत्य ही सत्य होता है। और जिन क्षुद्रों की प्रज्ञा (बुद्धिमत्ता) दूसरों को ठगने (धोखा देने) के लिये होती है न कि ज्ञान [प्राप्त करने] के लिये। जिनका शास्त्रज्ञान आलजाल = बन्धन के लिये, मायाजाल के लिये, होता है न कि शान्ति के लिये, पराक्रम प्राणिओं को कष्ट देने के लिये होता है न कि दूसरों के उपकार के लिये। उत्साह धन अर्जित करने के लिये होता है न कि यश (अर्जित करने) के लिये, स्थिरता = (एक स्थान पर बैठे रहना) दुर्व्यसनों में आसक्ति के लिये होती है न कि अधिक

---

१. तेषां। २. ज्ञानं पराति०।

१. ३. आलजालाय, मालजालाय। मूले प्रसिद्धः पाठः स्थापितः।

किं बहुना। सर्वमेव येषां दोषाय न गुणाय। तदसावपीदृश एव कोप्यपुण्यवानुत्पन्नो[1] यस्यैवं कुर्वतो 'मित्रमहं चन्द्रापीडस्य कथं तस्य द्रोहमाचरामो'ति नोत्पन्नं चेतसि। एवं कृते[2] चलितवृत्तानां शासितावश्यं तारापीडो देवः पीडितान्तरात्मा मयि कोपं करिष्यतीत्येवमपि नाशङ्कितं मनसा। मातुरहमेवैको जीवितनिबन्धनं कथं मया विना वर्तिष्यत—इत्येतस्य नृशंसस्य हृदये नापतितम्। पिण्डप्रदो वंशसन्तानार्थमहमुत्पादितः पित्रा[3]। कथमननुज्ञातस्तेन सर्वपरित्यागं करोमीत्येतदपि यथाजातस्य न बुद्धौ संजातम्।

दीर्घकालिकमित्रतार्थम्। धनपरित्यागः = वित्तस्य प्रदानम्, कामाय = इन्द्रियसुखभोगाय, न तु, धर्माय = सुकृताय, भवतीति शेषम्। अत्रापि परिसंख्यालङ्कारः सुस्पष्टः।

स्वभावान् संक्षेपेण प्रकटयितुमाह—किं बहुनेत्यादिना। बहुना = बहुवक्तव्येन, किम्? न किमपि फलम्, येषाम् = निकृष्टजनानाम्, सर्वमेव = समस्तमेव, दोषाय = दूषणाय, एव, भवतीति शेषः, न तु, गुणाय = हितसाधनाय। तत् = तस्मात्, असौ = एषः, वैशम्पायनः, अपि, कोपि = अज्ञातः, अपुण्यवान् = पापी, उत्पन्नः = संजातः, यस्य = वैशम्पायनस्य, एवम् = एतादृशम्, कुर्वतः = विदधतः, स्वमित्रं परित्यजत इति भावः, अहम् = वैशम्पायनः, चन्द्रापीडस्य = युवराजस्य, मित्रम् = सखा, तस्य = मित्रस्य, द्रोहम् = शत्रुताम्, कथम् = किमर्थम्, आचरामि = विदधामि, इति = इदम्, चेतसि = मनसि, न, उत्पन्नम् = सञ्जातम्, स इदं न विचारयामासेति भावः। एवम् = एतादृशे, कृते = विहिते, चलितवृत्तानाम् = भ्रष्टाचरणानाम्, शासिता = शासकः, नियामकः, देवः = महाराजः, तारापीडः = एतन्नामा, अवश्यम् = निश्चितरूपेण, पीडितान्तरात्मा—पीडितः (= क्लेशितः, दुःखितः) अन्तरात्मा = चित्तम् यस्य स तादृशः, मयि = मद्विषये, कोपम् = क्रोधम्, करिष्यति = विधास्यति, क्रुद्धो भविष्यतीति भावः, इति, एवम् = अनेन रूपेण, अपि, मनसा = चेतसा, न, आशङ्कितम् = आशंका विहिता। मातुः = जनन्याः मनोरमायाः, अहम्, एव, एकः = अद्वितीयः, न तु मद्भिन्न इतरः कश्चित्, जीवितनिबन्धनम् = प्राणधारणनिमित्तम्, मया = वैशम्पायनेन, विना = ऋते, सा माता, कथम् = केन प्रकारेण, वर्तिष्यते = जीवनं धारयिष्यति, इति = इदम्, एतस्य = तस्य, नृशंसस्य = क्रूरस्य, हृदये = चित्ते, न, आपतितम् = समागतम्। पित्रा = जनकेन, शुकनासेन, पिण्डप्रदः = पिण्डप्रदानकर्ता, अहम् = वैशम्पायनः, वंशसन्तानार्थम् = कुलवृद्ध्यर्थम्, उत्पादितः = जनितः, अतः, तेन = पित्रा, अननुज्ञातः = अननुमतः, कथम् = कस्मात् कारणात्, सर्व-परित्यागम् = सकल-

---

समय तक की मित्रता के लिये। धनदान करना काम (उपभोग) के लिये होता है न कि धर्म के लिये।

और अधिक क्या कहा जाय, जिन का सभी कुछ दोष (उत्पन्न करने) के लिये ही होता है न कि गुण के लिये। इस लिये वह (वैशम्पायन) भी कोई अपुण्यशाली = पापी ही पैदा हुआ, ऐसा करते हुए जिसके मन में यह विचार नहीं उत्पन्न हुआ कि 'मैं चन्द्रापीड का मित्र हूँ तब मैं उसके साथ यह द्रोह का आचरण क्यों कर रहा हूँ। और उसने मन में यह भी कल्पना नहीं कि [मेरे] ऐसा आचरण करने पर दुराचारी = चरित्रभ्रष्ट लोगों को दण्डित करने वाले महाराज तारापीड दुःखी (खिन्न) होकर मुझ पर अवश्य ही क्रोध करेंगे, नाराज होंगे। मैं अपनी माता के जीवन का एक मात्र आधार (सहारा हूँ), मेरे बिना वह कैसे जीवित रहेगी—यह भी उस क्रूर के हृदय में नहीं आया। पितरों को पिण्ड देने वाले मुझको वंश-परम्परा की वृद्धि के लिये पिता जी ने उत्पन्न किया है, तब फिर उनकी अनुमति लिये बिना मैं सर्वस्व का परित्याग कैसे कर रहा हूँ—

---

१. अपुण्य एवानुत्पन्नः नोपशमाय। २. चलितवृत्तीनाम्। ३. पित्राहं।

तदेवमसत्पथप्रवृत्तेन नष्टात्मना सुदूरमुद्भ्रान्तेन [1]दुर्दर्शमदृष्टं तावत् नाम कुदृष्टिना दृष्टम्। दृष्टमपि येन न दृष्टं तस्याज्ञानतिमिरान्धस्य किं क्रियताम्। अपरमसौ तिर्यङ्महता यत्नेन शुक इव पाठितः पुष्टश्च देवेन। अथवा विनोददानात्तिरश्चामपि सफल एव शिक्षणायासो भवति। तेपि पोषिताः पोषितरि स्नेहमाबध्नन्ति। तेपि कृतं जानन्ति। तेपि परिचयमनुवर्तन्ते। तेषामपि [2]सहजन्मस्नेहो मातापित्रोरुपरि दृश्यत एव। न पुनरस्य नष्टोभय-

---

वस्तुत्यागम्, करोमि = विदधामि, इति एतत् = इदम्, अपि, यथा-जातस्य = मूर्खस्य, बुद्धौ = मतौ, न, सञ्जातम् = समुत्पन्नम्। ['अज्ञः मूढ-यथाजात-मूर्ख-वैधेय-बालिशाः' इत्यमरः।] तत् = तस्मात्, एवम् = इत्थम्, असत्पथप्रवृत्तेन = निकृष्टमार्गगमन-शीलेन, नष्टात्मना = मृतात्मना, सुदूरम् = अतिविप्रकृष्टम्, उद्भ्रान्तेन = मत्तेन, भ्रमयुक्तेन, दुर्दशम् = दुः (= दुष्टा) दशा (= अवस्था) यस्मिन् तत् तादृशम्, दुर्दर्शम्—इति पाठे तु दुः = दुःखेन द्रष्टुं शक्यम्—इत्यर्थम्, तादृशम्, अदृष्टम् = शुभाशुभकर्मजनित-भाग्यम्, कुदृष्टिना—कुः (= कुत्सिता) दृष्टिः (= नेत्रम्) यस्य तेन तादृशेन, न = नैव, दृष्टम् = विलोकितम्, नाम, तावत् = इदं वाक्यालङ्कारे, द्रढता-बोधनार्थं वा। दृष्टम् = विलोकितम्, ज्ञातम्, अपि, येन = कुदृष्टिना, न, दृष्टम् = विलोकितम्, अस्य, अज्ञानतिमिरान्धस्य = अविवेकतमिस्रान्धस्य, किम् = अज्ञातम्, क्रियताम् = विधीयताम्, न किमपि कर्तुं शक्यमिति भावः।

अपरमिति। अपरम् = पूर्वोक्ताद् इदं भिन्नमपि, देवेन = महाराजेन तारापीडेन, असौ = एषः, तिर्यक् = पक्षितुल्यो वैशम्पायनः, महता = अत्यधिकेन, यत्नेन = प्रयासेन, शुकः = कीरः, इव = यथा, पाठितः = अध्यापितः, पुष्टः = परिपोषितः, च। तथापि तेन स उपकारो विस्मृतः। अथवा = पक्षान्तरे, विनोददानात्—मनोरञ्जन-प्रदानात्, तिरश्चाम् = पक्षिणाम्, अपि, शिक्षणायासः = अध्यापनप्रयासः, सफलः = सार्थकः, भवति। ते = तिर्यञ्चः, अपि, पोषिताः = पोषणं प्रापिताः, परिपालिताः, सन्तः, पोषितरि = स्वपोषणकर्तरि लोके, स्नेहम् = प्रीतिम्, आबध्नन्ति = कुर्वन्ति। तेऽपि = तिर्यञ्चोपि, कृतम् = विहितम्, तदर्थमिति शेषः, जानन्ति = विदन्ति। तेऽपि = तिर्यञ्चोऽपि, परिचयम् = संस्तवम्, अनुवर्तन्ते = अनुगच्छन्ति, पालयन्तीति भावः। तेषाम् = पशु-पक्षिणाम् अपि, मातापित्रोः = जननीजनकयोः, उपरि = सम्बन्धे, सहजन्मस्नेहः = सहजाता

यह भी उस मूर्ख की बुद्धि में नहीं आया। इस प्रकार से कुमार्ग पर चलते हुए उस नष्ट आत्मावाले, बहुत दूर तक भटके हुए (अज्ञान में फँसे हुए) तथा कुत्सित दृष्टि वाले उस मूर्ख ने दूषित परिणाम वाले (अनिष्टकारी) अदृष्ट को भी नहीं देखा अथवा अत्यन्त कष्ट से दिखाई देने (समझे जाने) वाले अदृष्ट = भविष्य को भी नहीं देखा। [सभी कुछ] देखा गया भी जिसने वास्तव में नहीं देखा समझा है, अज्ञान रूपी तिमिर से अन्धे बने हुए उस व्यक्ति के लिये क्या किया जा सकता है। फिर यह भी है कि महाराज ने उस पक्षी को शुक के समान बड़े ही प्रयत्न से पढ़ाया और परिपुष्ट किया, पाला-पोसा है। [यहाँ तक कि भविष्य में मन को] विनोद = आनन्द प्रदान करने से पक्षियों को भी पढ़ाने का प्रयास सफल होता है। क्योंकि वे पक्षी (तथा पशु) भी पाले पोसे जाने पर अपने पालन करने वाले के प्रति स्नेह [प्रदर्शन] करते ही हैं, वे भी किये गये उपकार को समझते हैं। वे भी परिचय को निभाते हैं पहचानते हैं। उनमें भी माता-पिता के ऊपर स्वाभाविक स्नेह देखा

---

१. दुर्दर्शम्, दुर्दर्शनेन। २. सहजस्नेहः।

लोकस्य पापकारिणो दुर्जातस्य, यस्य सर्वमेवाधस्ताद्गतम् ।

अपि चेदृशाचरितेन तेनाप्यवश्यमेव कस्यांचित्तिर्यग्योनौ पतितव्यं येन तावद् दुरात्मना[1] जातेन केवलं सुखं न स्थापिताः सर्वं एव वयम् । [2]अपरमेवं दुःखार्णवे निपातिताः[3]। सर्व एव ह्यनाक्षिप्तचेताः प्रवर्तते[4] स्वहिताय परहिताय च[5]। तस्य तु पुनरस्मानेवं दुःखं स्थापयतो न स्वहितं नापि च परहितम्[6]। किमनेनैवमात्मद्रुहा कृत-

प्रीतिः, स्वाभाविकं प्रेम, दृश्यते = विलोक्यते, एव । नष्टोभयलोकस्य—नष्टौ (= भ्रष्टौ, पतितौ) उभयलोकौ (= इहलोकस्वर्गलोकौ) यस्य तस्य तादृशस्य; पापकारिणः = दुष्कृत-विधायिनः, दुर्जातस्य = निकृष्टजन्मनः, वैशम्पायनस्य, मातापित्रोरुपरि स्नेहो न पुनः दृश्यते एव, यस्य = वैशम्पायनस्य, सर्वमेव = पूर्ववर्णितं समस्तमेव, अधस्तात् = अधोदेशे, गतम् = यातम् विनष्टम् ।

अपि चेति । अपि च = अन्यच्च । ईदृशाचरितेन—ईदृशम् (= सद्यो विहितं सर्वस्व-परित्यागरूपम्) आचरितम् (= आचरणम्) यस्य तेन तादृशेन, तेन = वैशम्पायनेन, अपि, अवश्यमेव = निश्चितरूपेण, कस्यांचित् = अविदितायाम्, तिर्यग्योनौ=पशु-पक्ष्यादियोनौ, पतितव्यम्= पतनीयम्, मनुष्यजन्म परित्यज्य पक्षिरूपेण पशुरूपेण वा जन्म ग्रहीतव्यमिति तदाशयः । येन = वैशम्पायनेन, तावत्, दुरात्मना = दुष्टेन, जातेन = उत्पन्नेन, गृहीतजन्मना, सर्वे, एव, वयम्, न, केवलम्, सुखे = आनन्दे, स्थापिताः = निहिताः, सुखं प्रापिता इति भावः, अपरम् = एतद्-विपरीतम्, एवम् = अनेन प्रकारेण, दुःखार्णवे = दुःखसागरे, निपातिताः = निक्षिप्ताः । सर्वः = सकलः, एव, अनाक्षिप्तचेताः—अनाक्षिप्तम् (= अविक्षिप्तम्) चेतः (= मनः) यस्य स तादृशः, स्थिरमना इति भावः, स्वहिताय = निजकल्याणाय, परहिताय = अन्यकल्याणाय, च, प्रवर्तते = प्रवृत्तो भवति । स्थिरचित्तस्य कस्मिन्नपि कार्ये स्वहितविषयिणी परहितविषयिणी वा भावनावश्यमेव भवतीति भावः । तु = परन्तु, तस्य = वैशम्पायनस्य, पुनः, अस्मान् = स्वजनकादीन्, एवम्= अनेन रूपेण, दुःखम् = क्लेशं यथा स्यात् तथा, स्थापयतः = प्रापयतः, दुःखं प्रददत इति भावः, तस्य = वैशम्पायनस्य, न, स्वहितम् = निजं कल्याणम्, नापि, परहितम् = अन्यदीयकल्याणम्, भविष्यतीति शेषः । अनेन = एतेन, आत्मद्रुहा = आत्मघातिना, एवम् = इत्थम्, किम् =

ही जाता है परन्तु इस लोक तथा परलोक इन दोनों को नष्ट करने वाले, पापी, दुर्जात (= दूषित जन्म वाले) उस वैशम्पायन का ही [मातापिता आदि में स्नेह] नहीं देखा जाता है, जिसका सभी कुछ पतित हो गया, नष्ट हो गया ।

और भी, इस प्रकार के आचरण के कारण उसको निश्चित ही किसी पक्षी की योनि में गिरना चाहिए, जन्म लेना चाहिए । जिस दुष्ट ने जन्म के द्वारा हम सभी को सुख नहीं प्राप्त कराया अपितु उल्टे दुःख-सागर में ही गिरा दिया । सभी स्वस्थ (प्रकृतिस्थ) मनवाले लोग अपने हित के लिये अथवा दूसरे के हित के लिये ही [किसी भी कार्य में] प्रवृत्त होते हैं । किन्तु उसने तो हम लोगों को इस प्रकार से दुःख में डालते हुए, दुखी करते हुए न तो अपना ही हित किया है और न दूसरे का । तब उस आत्मघाती ने ऐसा क्यों किया, यह मेरी बुद्धि कुछ भी नहीं

१. दुरात्मजातेन । २. अपि त्वेवंविधे । ३. निपतिताः ।
४. प्रवर्तमानः । ५. वा प्रवर्तते । ६. परहितमपि ।

मिति[1] मतिरेव तावन्न बोधपदवीमवतरति। सर्वथा दुःखायैवास्माकं तस्य पापकर्मणो ग्रहोपसृष्टस्य जन्म।'—इत्युक्त्वा हेमन्तकालोत्पलिनीमिवोद्बाष्पां दृष्टिमुद्वहन्नुद्वेपिताधरश्च बहिरलब्धनिर्गमेण स्फुटन्निवान्तर्मन्युपूरेण निश्वसन्नेवावतस्थे।[2]

तदवस्थं च तं तारापीडः प्रत्युवाच—'एतत्खलु प्रदीपेनाग्नेः प्रकाशनं वासरालोकेन भास्वतः समुद्भासनमवश्यायलेशैराह्लादनममृतांशोर्मेघाम्बुबिन्दुभिरापूरणं पयोधेर्व्यजनानि-

---

अज्ञातम्, कृतम् = विहितम्, इति, मतिः = बुद्धिः, एव, तावत्, बोधपदवीम् = ज्ञानमार्गम्, न,अवतरति = गच्छति। [अत्र 'मतिरेतावन्न बोधपदवीमवतरति' इति प्रकाशितपाठे नार्थसङ्गतिः। अतोऽत्र 'मतिरेव तावन्न बोधपदवीमवतरति' इति पाठो मूले स्थापितः।] सर्वथा = सर्वप्रकारेण, अस्माकम् = तस्य जनकादीनाम्, दुःखाय = क्लेशाय, एव, पापकर्मणः = पापिनः, ग्रहोपसृष्टस्य = शन्यादिगृहीतस्य, तस्य = वैशम्पायनस्य, जन्म = उत्पत्तिः, जातमिति शेषः। इति = पूर्वोक्तम्, उक्त्वा = कथयित्वा, हेमन्तकालोत्पलिनीम् = हेमन्तर्तोः कमलिनीम्, इव, उद्बाष्पाम् = बाष्पपूर्णाम्, अश्रुसंकुलाम्, दृष्टिम् = नेत्रम्, उद्वहन् = धारयन्, उद्वेपिताधरः—उद्वेपितः (= प्रकम्पितः) अधरः (= रदनच्छदः) यस्य स तादृशः, सन्, च, बहिः = बाह्यभागे, अलब्धनिर्गमेण—अलब्धः (= अप्राप्तः) निर्गमः (= निःसरणम्) येन तादृशेन, अन्तः = मध्ये, मन्युपूरेण = दुःखसमूहेन, [अत्र क्रोधोऽर्थो न समीचीनः] स्फुटन् = द्वैधीभवन्, इव, निश्वसन् = निश्वासान् परित्यजन्, एव, अवतस्थे = स्थितोऽभूत्।

तदवस्थमिति। तदवस्थम्—सा (= पूर्ववर्णिता) अवस्था (= दशा) यस्य तं तादृशम्। च, तम् = शुकनासम्, तारापीडः = राजा, प्रत्युवाच = प्रत्यवोचत्। अस्मद्विधैः = अस्मादृशैरल्पज्ञैः भूपतिभिः, आर्यस्य = सम्माननीयस्य, यत्, परिबोधनम् = प्रतिबोधनम्, ज्ञानप्रदानमिति भावः, एतत् = तत् परिबोधनम्, खलु = निश्चयेन, प्रदीपेन = क्षुद्रदीपकेन, अग्नेः = अतिशयप्रकाशप्रदायकस्य वह्नेः, प्रकाशनम् = प्रकाशकरणम्, प्रकाशदानमिति भावः, वासरालोकेन = दिनस्य प्रकाशेन, भास्वतः = दिनकरस्य, समुद्भासनम् = समुद्दीपनम्, अवश्यायलेशैः = तुषारबिन्दुभिः, अमृतांशोः = चन्द्रस्य, आह्लादनम् = आह्लादजननम्, मेघाम्बुबिन्दुभिः = वारिद-सलिलकणैः; पयोधेः = समुद्रस्य, आपूरणम् = परिपूर्तिः, व्यजनानिलैः = व्यजनोत्थवायुभिः, प्रभञ्जनस्य = झंझावातस्य,

---

समझ पा रही है, अर्थात् मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है। पापी तथा शन्यादि ग्रहों से ग्रसित (आक्रान्त) उसका जन्म हम लोगों को सर्वथा दुःख देने के लिये ही हुआ है"—ऐसा कहकर हेमन्त ऋतु के समय की कमलिनी के समान आसुओं (ओस) से भरी हुई आँखों को धारण करता हुआ, फड़फड़ाते हुए अधरोष्ठ वाला, बाहर निकलने का मार्ग न पाने वाले भीतरी शोक-समूह से फटता हुआ सा (शुकनास)साँसें भरता हुआ ही बैठा रहा।

उस प्रकार की दशा (हालत) वाले उन शुकनास से तारापीड बोले—'हमारे जैसे लोगों के द्वारा आर्य (शुकनासजी) आप को समझाना—यह [वैसा ही है जैसे] दीपक से आग को प्रकाश देना, दिन (प्रातःकाल) के प्रकाश से सूर्य को समुद्भासित (अधिक प्रकाशयुक्त) करना, ओस के कणों (बूंदों) से चन्द्रमा को आह्लादित (प्रसन्न) करना, बादलों की जल की बूंदों से समुद्र को

---

१. एवमेतावद्, एव तावत्। २. उद्वहत्। ३. अवतस्थौ।

लैरतिवर्धनं[1] प्रभञ्जनस्य, यदस्मद्विधैः परिबोधनमार्यस्य। तथापि प्राज्ञस्यापि बहुश्रुतस्यापि विवेकिनोपि धीरस्यापि सत्त्ववतोप्यवश्यं दुःखातिपातेन विशुद्धमपि वर्षसलिलेन सर इव मानसं कलुषीक्रियते सर्वस्य। कलुषीकृते च मानसे किमिदमिति सर्वमेव दर्शनं नश्यति। न चित्तमालोचयति। न बुद्धिर्बुध्यते। न विवेकोपि विविनक्ति। येन ब्रवीमि[2]। अन्यदस्मत्तो[3] लोकवृत्तमार्य एव सुतरां वेत्ति।

अतिवर्धनम् = अभिवर्धनम्। एवञ्च यथा एतेषु एषां कर्मणां न किमपि फलं महत्त्वं वा दृश्यते तथैव भवादृशां मनीषिणां मम परिबोधनं न समीचीनम्। अत्र निदर्शनालङ्कारः सुस्पष्टः उपमायां पर्यवसानादिति बोध्यम्।

यदि प्रतिबोधनं निष्फलं प्रतीयते तर्हि कथं विधीयते इत्याह—तथापीत्यादिना। तथापि = पूर्वोक्तस्थितौ सत्यामपि, प्राज्ञस्य = अतीवबुद्धिमतः, अपि, बहुश्रुतस्य = शास्त्रज्ञस्य, अपि, विवेकिनः = विचारप्रवीणस्य, अपि, धीरस्य = धैर्यवतः, सत्त्ववतः = आत्मबलवतः, अपि, सर्वस्य = समस्तस्य जनस्य, अन्येषां विषये तु किमपि कथनीयमेव नास्तीति भावः, अवश्यम् = निश्चितरूपेण, विशुद्धम् = अतिनिष्कलंकम्, अपि, मानसम् = चित्तम्, वर्षसलिलेन = वृष्टेः जलेन, सरः = सरोवरम्, इव, दुःखातिपातेन = अतिशय-दुःखागमनेन, अवश्यम् = निश्चितरूपेण, कलुषीक्रियते = मलिनीक्रियते। अत्रोपमा। कलुषीकृते = कालुष्यं प्रापिते, च, मानसे = चेतसि, 'इदम् = पुरोवर्ति जायमानं वा, किम् = किमाकारकम्' इति, सर्वमेव = सकलमेव, दर्शनम् = सामान्यज्ञानम्, नश्यति = लुप्तं भवति। चित्तम् = अन्तःकरणं मनः, न, आलोचयति = विचारयति। बुद्धिः = मतिः, न, बुध्यते = बोधं प्राप्नोति। विवेकः = उचितानुचित-सामर्थ्यम्, अपि, न विविनक्ति=पार्थक्यं कर्तुं पारयति। येन = यस्मात् कारणात्, ब्रवीमि = कथयामि, भवन्तं प्रतीति शेषः। अस्मत्तः = अस्मदपेक्षया, आर्यः = पूज्यो भवान्, एव, अन्यत्=एतस्मादपरं सर्वम् लोकवृत्तम् = सांसारिकवृत्तान्तम्, सुतराम् = सम्यक्तरम्, वेत्ति = जानाति। एवञ्च इदानीं दुःखातिपातेन शुकनासस्य मतिर्मन्दतामुपगतेति विचार्यैव राजा तारापीडस्तं परिबोधयितुमिच्छां चकार न तु स्वज्ञानदर्पणेति तद्भावः।

भरना तथा पंखे की हवा से झंझावात (तूफान) को और बढ़ाना अर्थात् जैसे इनका कोई महत्त्व नहीं होता है उसी प्रकार मेरे समझाने का भी यद्यपि कोई महत्त्व नहीं है। फिर भी, बड़े से बड़े विद्वान्, बहुत शास्त्रों के ज्ञाता, [नीर-क्षीर के] विवेक वाले, धैर्यवान् तथा बलशाली भी व्यक्ति का शुद्ध मन भी अचानक बहुत बड़े दुःख के आ जाने से उसी प्रकार कलुषित (विकारयुक्त) हो जाता है जिस प्रकार वर्षा के पानी से स्वच्छ सरोवर [का शुद्ध जल कलुषित हो जाता है]। और कलुषित किये गये मन में 'यह क्या [सत्य] है'–यह सारा दर्शन=ज्ञान ही लुप्त हो जाता है। (क्योंकि) मन आलोचना नहीं कर पाता है। बुद्धि ज्ञान नहीं कर पाती है। विवेक (शक्ति) भी विवेचन = पृथक्-पृथक् ज्ञान नहीं कर पाता है। इन्हीं कारणों से मैं आपसे कह रहा हूँ। बाकी तो संसार की बातों को आप ही हम लोगों की अपेक्षा अधिक ही अच्छी तरह जानते हैं।

---

१. अभिवर्धनम्। २. ब्रवीत्यदः। ३. अन्यदा तु मत्तः, अस्मदस्मत्तः।

किमस्ति कश्चिदसावियति लोके यस्य निर्विकारं यौवनमतिक्रान्तम् ? यौवनावतारे हि शैशवेनैव सह गलति गुरुजनस्नेहः। वयसैव सहारोहत्यभिनवा प्रीतिः। वक्षसैव सह विस्तीर्यंते वाञ्छा। बलेनैव सहोपचीयते मदः। दोर्द्वयेनैव सह स्थूलतामापद्यते धीः। मध्येनैव सह कार्श्यमुपयाति श्रुतम्। ऊरुयुगलेनैव सहोपचीयते[1] हृदयमविनयैः। श्मश्रुभिरेव सहोज्जृम्भते मलिनताहेतुर्मोहः। आकारेणैव सहाविर्भवन्ति हृदयाद्विकाराः। तद्यथा—धवल-

---

साम्प्रतं राज्ञः परिबोधनं वर्णयति—किमस्तीत्यादिना। कश्चित् = कोऽपि, असौ = एष जनः, इयति = एतावति महति, लोके = संसारे, अस्ति = वर्तते, किम् ? = इदं प्रश्ने, यस्य = जनस्य, यौवनम् = तारुण्यम्, निर्विकारम् = कामादिविकाररहितम्, अतिक्रान्तम् = व्यतीतम् ? सर्वेषामेव यौवने विकाराः सञ्जायन्ते एवेति तद्भावः। हि = यतः, निश्चयेन वा, यौवनावतारे = तारुण्यस्य प्रादुर्भावे, शैशवेन = बालत्वेन, एव, सह = साकम्, गुरुजनस्नेहः = वृद्धजनेषु प्रीतिः, गलति = क्षरति, नष्टो भवति। यथा-यथा शैशवं गलति तथा-तथा गुरुजनेषु विषये स्नेहोऽपि विनश्यतीति भावः। वयसा = युवावस्थया, सह = साकम्, एव, अभिनवा = नवीना, गुरुजनातिरिक्तविषया, प्रीतिः = स्नेहः, आरोहति = आरूढा भवति। वक्षसा = उरसा, सह=सार्धम्, एव, वाञ्छा = इच्छा, विस्तीर्यते = विस्तारं प्राप्नोति, वर्धते इति यावत्। बलेन = शारीरिकशक्त्या, सह, एव, मदः = दर्पः, उपचीयते = समेधते। धीः = बुद्धिः, दोर्द्वयेन = भुजयुगलेन, सह, एव, स्थूलताम् = स्थूलत्वम्, आपद्यते = प्राप्नोति। मध्येन = मध्यभागेन, कटिप्रदेशेन, सह, एव, श्रुतम् = शास्त्रज्ञानम्, कार्श्यम् = कृशताम् उपयाति = प्राप्नोति। ऊरुयुगलेन = सक्थिद्वयेन, एव, सह, हृदयम् = मनः, अविनयैः = धृष्टताभिः, उपचीयते = वर्धते। श्मश्रुभिः = कूर्चैः, एव, सह, मलिनताहेतुः—मलिनतायाः (= मालिन्यस्य, श्यामतायाः च) हेतुः (= कारणम्) मोहः = मूढता, उज्जृम्भते = विकसितो भवति। आकारेण = आकृत्या, एव, सह, हृदयात् = चित्तात्, विकाराः = कामादिविकृतयः, आविर्भवन्ति = प्रकटीभवन्ति। तद् यथा = तच्च एवं बोध्यम्। धवलम् = श्वेतम् अपि, चक्षुः = नेत्रम्, सरागम्—रागेण (= लोहि-

---

क्या इस (विशाल) संसार में कोई ऐसा प्राणी (हुआ) है जिसकी जवानी (युवावस्था) बिना किसी विकार के बीती हो, उसमें कोई दोष न आया हो। कारण यह है कि यौवन के आरम्भ होते (चढ़ते) समय ही [व्यक्ति का] शैशव = लड़कपन के साथ ही साथ गुरुजनों के प्रति होने वाला प्रेम भी गल जाता है, समाप्त होने लगता है। युवावस्था के साथ ही साथ नया-नया प्रेम बढ़ने लगता है अर्थात् पुरानों को छोड़कर नये-नये दूसरे लोगों के साथ मित्रता बढ़ने लगती है। वक्षःस्थल (छाती) के साथ ही साथ इच्छायें भी बढ़ने लगती हैं। बल (ताकत) बढ़ने के साथ ही साथ अहंकार भी बढ़ने लगता है। दोनों भुजाओं के साथ ही साथ बुद्धि भी मोटापा (स्थूलता) को प्राप्त करने लगती है। मध्यभाग (कटिप्रदेश) के साथ ही साथ श्रुत = शास्त्रज्ञान भी दुर्बल (क्षीण) होने लगता है। दोनों जांघों के साथ ही साथ हृदय भी अविनयों = उद्दण्डताओं से बढ़ने लगता है। श्मश्रु (दाढ़ी-मूँछों) के साथ ही साथ मलिनता (कालेपन) का निमित्त (पैदा करने वाला) मोह भी बढ़ने लगता है। आकार (शरीर) के साथ ही साथ हृदय में विकार प्रकट होने लगते हैं। इसे इस प्रकार समझिये—धवल = स्वच्छ होती हुई भी सराग (लालिमा से युक्त, प्यार से युक्त) आँखें

---

१. उपचीयतेऽविनयैः।

मपि सरागं सर्वथा[1] दीर्घीभवदपि न दीर्घं पश्यति चक्षुः। अनुपहतेपि न प्रविशति गुरूपदेशः श्रोत्रे। स्त्रीरागिण्यपि न विद्यान्तरं विन्दति हृदये। स्थैर्यमस्थिरप्रकृतौ तरलतायाम्। परित्याज्येषु व्यसनेष्वासङ्गः[2]। विकाराणां च कारणं[3] प्रायः सरसता। सा च सर्वमेव [4]जलप्रायं कुर्वाणा वर्षातिवृद्धय[5]वोपजायते।

त्येन) सहितम्, सर्वथा = सर्वप्रकारेण, दीर्घीभवद् = विशालीभवद्, अपि, दीर्घम् = स्पष्टम्, न पश्यति = विलोकयति। अत्रार्थे विरोधः-यत् शुभ्रं तत्कथं न दीर्घं पश्यति। एतत्परिहारस्तु—सरागम् = प्रेम्णा सहितम्, दीर्घम् = दूरम् इत्यर्थे सम्भवति। अत्र विरोधाभासः विशेषोक्तिश्च। अनुपहते = अप्रतिहते, अपि, श्रोत्रे = कर्णे, गुरूपदेशः = वृद्धजनानां सदुक्तिः, न प्रविशति = प्रवेशं प्राप्नोति। विशेषोक्तिरत्र 'सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिर्निगद्यते।' इति। स्त्रीरागिणि-स्त्रियाः (= कामिन्याः) रागः (= प्रीतिः) अस्ति यस्मिन् तादृशे, अपि, हृदये = चित्ते, विद्यान्तरम् = अन्यां विद्याम्, न, विन्दति = प्राप्नोति, युवा जन इति शेषः। स केवलं कामशास्त्र-विषयकमेव ज्ञानमर्जयति नान्यविषयकमिति भावः। यथा-स्त्रीरागिण्यपि हृदये अभीष्टा सामान्यतरुणी एव अन्तरम् = अवकाशं लभते, न तु विद्या रूपा स्त्री अन्तरम् = अवकाशं लभते इत्यर्थः समीचीनः। अस्थिर-प्रकृतौ—अस्थिरा (= चञ्चला, परिवर्तनशीला) प्रकृतिः (= स्वभावः) यस्यां तादृश्याम्, तरलतायाम् = चञ्चलतायाम्, स्थैर्यम् = स्थिरता, जायते इति शेषः। अत्रार्थे विरोधः। तत्परिहारस्तु—स्थैर्यम् = दाढ्र्यम् इत्यर्थे। यौवने सम्प्राप्ते जनाः दुराग्रहिणो दृश्यन्ते इति तरलतायामपि स्थिरता = दृढता भवति। क्वचित्तु 'न स्थैर्यमस्थिरप्रकृतौ तरलतायाम्' इति पाठः अस्थिरस्य लोकस्य प्रकृतौ = प्रकृति-भूतायां तरलतायां स्थिरता न भवतीत्यर्थः। अयमर्थः समीचीनः प्रतीयते। परित्याज्येषु=वर्जनयोग्येषु दुर्व्यसनेषु, आसङ्गः = आसक्तिः, विवेकिनो यान् विहातुमुपदिशन्ति युवानस्तेष्वेव समासक्ता भवन्तीति भावः।

एते विकाराः कथमुत्पद्यन्ते इत्यत्राह—विकाराणामिति। विकाराणाम् = मनोविकृतीनाम्, च, कारणम्=निमित्तम्, प्रायः = बाहुल्येन, सरसता—रसः (=प्रीतिः, जलम्) तेन सह-सरसः, तस्य भावस्तत्ता, रसिकता सजलता= आर्द्रता च। श्लेषे डलयोरभेदात् सजडता इत्यर्थोपि बोध्यः। एवञ्च रसिकतया जडतया च सर्वेपि विकारा जायन्ते इति बोध्यम्। सा = सरसता, (= रसिकता, सजलता च) सर्वम् = सकलम्, एव, पदार्थमात्रम्, जलप्रायम् = सलिलबहुलम्, मूर्खबहुलं च, कुर्वाणा = विदधाना, वर्षातिवृद्धया—वर्षाणाम् (= वत्सराणाम्, वृष्टीनां च) अतिवृद्धया = अतिशयवर्धनेन, एव, उपजायते = भवति। यथा यथा वर्षाणाम् अभिवृद्धिर्भवति तथा तथा तस्याः सरसताया अपि अभिवृद्धिर्भवति यथा वृष्टेः वृद्ध्या सजलताया वर्धनं भवतीति उभयोः साम्यम्।

विशाल होती हुई भी लम्बाई तक (दूर तक, भविष्य की ओर) नहीं देख पाती हैं। अनुपहत = रोगादि से रहित भी कान में गुरु का उपदेश प्रवेश नहीं कर पाता है। स्त्री-सम्बन्धी प्रेम से भरे हुए हृदय में भी विद्यारूपी दूसरी स्त्री [के प्रवेश]के लिये अवकाश नहीं मिल पाता है। चञ्चल प्रकृतिवाली अस्थिरता में ही स्थिरता [दिखाई देने लगती] है। छोड़े जाने योग्य व्यसनों में ही आसक्ति हो जाती है। विकारों का [प्रमुख] कारण प्रायः सरसता (आर्द्रता, रसिकता) होती है। और वह सरसता (आर्द्रता) जैसे सभी कुछ को जलप्राय (जलयुक्त) बनाती हुई वर्षा की अति वृद्धि अर्थात् बहुत अधिक वर्षा होने से ही उत्पन्न होती है वैसे ही यह सरसता (रसिकता) सभी (वस्तुओं, कार्यों आदि) को जलप्राय (जडप्राय, मूर्खतायुक्त) बनाती हुई (यौवन के) वर्षों के बढ़ने से अर्थात्

---

१. सर्वदा। २. आसङ्गेषु। ३. कारणानाम्।
४. जनं बशप्रायम्। ५. वर्षति वृद्धया।

अपि च, दिवसो दोषागमाय, दोषागमोऽनालोकाय, अनालोकोऽसद्दर्शनार्थम्, असद्दर्शनमविवेकाय, अविवेकोऽसन्मार्गप्रवृत्तये, असन्मार्गप्रवृत्तं च मोहान्धं चेतो भ्राम्यदवश्यमेव स्खलति। स्खलिते[1] चेतसि तल्लग्ना पतत्येव लज्जा। त्रपावरणशून्ये च हृदि प्रविश्य पदं

पुनरपि युवानमेव निन्दति—अपि चेत्यादिना। दिवसः=वासरः, दोषागमाय—दोषा (=रात्रिः) तस्या आगमाय (=आगमनाय), दोषाः=मदादयस्तेषामागमाय भवति यूनामिति शेषः। दोषागमः—दोषायाः (= रात्रेः) दोषाणाम् (= अविवेकित्वादीनाम्) च आगमः (= आगमनम्, सम्प्राप्तिः) अनालोकाय—न आलोकः (=प्रकाशः, ज्ञानम्) तदर्थम्, दोषागमे आलोको न तिष्ठति तथैव दोषाणामागमने तैरावृतत्वात् ज्ञानं न तिष्ठतीति भावः। अनालोकः=प्रकाशाभावः, ज्ञानाभावश्च, असद्दर्शनार्थम्—असताम् (=दुष्टानाम्) दर्शनार्थम्(=विलोकनार्थम्) अथ च, असताम्=असत्यानां मिथ्याभूतानां पदार्थानामिति भावः, दर्शनार्थम्=विलोकनार्थम्, भवति। असद्दर्शनम्—असताम् (=दुश्चरितानाम्, असत्यानां च) दर्शनम् (= अवलोकनम्, ज्ञानं च) अविवेकाय = सदसज्ज्ञानाभावाय, भवति। अविवेकः = ज्ञानाभावश्च, असन्मार्गप्रवृत्तये = असन् (= अशुभः, गर्हितः) यो मार्गः (= पन्था :) तस्मिन् प्रवृत्तये (= चलनाय), भवति। असन्मार्गप्रवृत्तम् = गर्हितवर्त्मप्रचलितम्, च, मोहान्धम् = मोहेनावलोकनासमर्थम् [एकत्र मोहः = दिग्भ्रमः, अपरत्र मोहः = उचितानुचितविवेकाभावः] चेतः= चित्तम्, भ्राम्यत् = परिभ्रमत्; अवश्यमेव = निश्चितरूपेण, स्खलति = भ्रश्यति। अत्र चेतस् शब्देन तद्वान् जनो लक्ष्यते। एवञ्च असन्मार्गे प्रवृत्तोऽन्धो लोक इतस्ततो भ्राम्यन् अवश्यमेव पतितो भवतीति भावः। अत्र उत्तरोत्तरवर्णितान् पदार्थान् प्रति पूर्व-पूर्ववर्णितानां पदार्थानां कारणत्वेन कारणमालालङ्कारो बोध्यः।

चेतसीति। चेतसि = मनसि, स्खलिते = भ्रश्यति, सति, तल्लग्ना = तस्मिन् चेतसि संलग्ना, लज्जा = त्रपा, अपि, पतति = भ्रश्यति, एव। आधारे भ्रष्टे आधेयस्य भ्रष्टत्वं ध्रुवमिति

यौवन के बढ़ने के साथ ही साथ बढ़ती जाती है।

और भी, जिस प्रकार दिन दोषा (रात) के आगमन के लिये (होता है), दोषा (रात) का आगमन अनालोक (प्रकाशाभाव, अन्धकार) के लिये (होता है), अनालोक (अंधेरा) असत् (अवास्तविक वस्तु) को देखने के लिये (होता है), असत् का दर्शन अविवेक (ज्ञानाभाव) के लिये (होता है), अविवेक असत् मार्ग में प्रवृत्ति के लिये (होता है), और असत् मार्ग की ओर प्रवृत्त (चला हुआ) तथा मोह से अन्धा बना हुआ मन अर्थात् ऐसे मन वाला व्यक्ति चक्कर खाता हुआ (निश्चित रूप से) गिर पड़ता है, (उसी प्रकार) (व्यक्ति के जीवन के) दिन अर्थात् यौवन काल का आरम्भ दोषों = कामादिजन्य विकारों के आने के लिये (होता है), दोषों का आना अनालोक (अन्धेरा, अज्ञान) के लिये, अनालोक असत् (बुरी, दोषयुक्त बातों) को देखने के लिये, असत् का दर्शन अविवेक = अज्ञान के लिये, अविवेक असत् मार्ग (गलत रास्ते) पर चलनेके लिये होता है और असन्मार्ग पर चलने वाला तथा मोह से अन्धे बना हुआ, इधर-उधर भटकता हुआ मन अर्थात् मनवाला व्यक्ति अवश्य ही पतित हो जाता हैं। मन के भ्रष्ट(स्खलित)हो जाने पर उसमें रहनेवाली लज्जा का भी पतन होता ही है, अर्थात् उसकी लज्जा समाप्त होने लगती है।

---

१. स्खलिते च।

कुर्वन् केन वा निवारितो दुर्निवारः सर्वाविनयहेतुः कुसुमधन्वा[1] ? विलसति च कुसुममार्गणे केन कार्येण छिद्रसहस्राणि न भवन्ति यैः सत्त्वमेवाधस्ताद् व्रजति। सत्त्वे चाधोगते किमाश्रित्य न गलति[2] शीलम्। [3]किमवलम्बनं विनयस्य। किं करोत्वनाधारं धैर्यम्। क पदमाधत्तां धीः। क्व समाधानमाबध्नात्ववष्टम्भः। केन वावष्टभ्य [4]बलान्निश्चलीकृतं मनः? विप्रतिपद्यमानानि केन नियन्त्रितानीन्द्रियाणि ? जगन्निन्द्यानि केन निवारितानि

सर्वजन-प्रसिद्धम्। त्रपावरणशून्ये—त्रपा (= लज्जा) एव आवरणम् (= आच्छादनम्) तेन शून्ये (= रहिते), हृदि = मानसे, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, पदम् = स्थानम्, कुर्वन् = विदधत्, दुर्निवारः = दुःखेन निवारयितुं शक्यः, सर्वाविनयहेतुः = सकल-धृष्टताकारणभूतः, कुसुम-धन्वा = कामदेवः, केन = अज्ञातेन जनेन, वा, वारितः = अवरुद्धः ? न केनापीति भावः। अत्र काकुः। कुसुममार्गणे = कामदेवे, च, विलसति = विलासं विदधति सति, विद्यमाने सतीति भावः, केन = अज्ञातेन, कार्येण = विधेयेन, आचरणेन वा, छिद्रसहस्राणि = असंख्यरंध्राणि, न, भवन्ति = जायन्ते, यैः = छिद्रसहस्रैः, सत्त्वम् = बलम्, एव, अधस्ताद् = निम्नभागे, गच्छति = प्रयाति, नश्यतीति भावः। सत्त्वे = मनोबले, च, अधोगते = निम्नदेशे, गते = याते सति, किम् = अज्ञातं वस्तु, आश्रित्य = अवलम्ब्य, शीलम्=सच्चरित्रम्, न, गलति ? =क्षरति ? अपि तु गलत्येवेति भावः। तदा, विनयस्य = नम्रतायाः, अवलम्बनम् = आश्रयः, किम् ? न किमपीति भावः। अनाधारम् = आश्रयरहितम्, अनालम्बनम्, धैर्यम् = धीरता, किम् = अज्ञातम्, करोतु = विदधातु ? धीः = मतिः, क्व = कुत्र अज्ञाते स्थाने, पदम् = स्थानम्, आपद्यताम्=विधीयताम् ? अवष्टम्भः= स्थिरता, दृढता, क्व = कुत्र, समाधानम् = स्थिरत्वम्, आबध्नातु = निबध्नातु, करोतिवति भावः। वा = अथवा, केन = अज्ञातेन लोकेन, बलात् = हठात्, अवष्टभ्य = आबध्य, वशीकृत्य, मनः= चित्तम्, निश्चलीकृतम् = स्थिरीकृतम् ? न केनापीति भावः। विप्रतिपद्यमानानि = उन्मार्गप्रवृत्तानि, इन्द्रियाणि = करणानि, केन, नियन्त्रितानि = स्ववशीकृतानि ? न केनापीति भावः। केन,

लज्जारूपी आवरण (वस्त्र, या किवाड़, आदि) से शून्य हृदय में प्रवेश करके अपने लिये स्थान बना लेते हुए, सभी प्रकार की अशिष्टताओं को पैदा करने वाले (हेतुभूत) तथा [किसी के भी द्वारा] न रोके जाने योग्य कामदेव को किसने रोका है ? अर्थात् किसी ने नहीं। [हृदय में] कामदेव के विलसित (प्रतिष्ठित) हो जाने पर किस कार्य से हजारों छिद्र नहीं होने लगते हैं ? अर्थात् कामग्रस्त व्यक्ति के प्रत्येक कार्य से दोष ही उत्पन्न होते हैं, जिन (छिद्रों, दोषों) के कारण सत्त्व (= आत्मबल, या प्राणी) ही नीचे गिर जाता है, पतित हो जाता है। जब सत्त्व (आत्मबल) गिर जाता है तब किसका सहारा लेकर शील (चरित्र) न गिरे अर्थात् आश्रयहीन चरित्र भी भ्रष्ट हो ही जाता है। [शील के बिना] विनय का कौन आधार बने ? और (विनय रूपी) आधार से रहित धैर्य क्या करे ? [धैर्य के बिना] बुद्धि किसमें अपना स्थान बनावे, ठहरे ? [बुद्धि के अभाव में] अवष्टम्भ (दृढ़ निश्चय) किसमें समाधान बांधे, रुके ? कौन बलपूर्वक रोककर मन को निश्चल [स्थिर] कर सका है ? [गलत विषयों की ओर] प्रवृत्त होने वाली अथवा संघर्ष करने वाली इन्द्रियों को कौन नियन्त्रित कर सका है ? संसार में निन्दनीय दुराचरणों को कौन रोक सका है ? जैसे

१. मकरकेतुः। २. गलतु। ३. गलिते च—इत्यधिकोऽपि पाठः। ४. बलं।

दुश्चरितानि ? केन वाऽऽलोकभूतेन तमोभिवृद्धिहेतुरुत्सारितो दोषाभिषङ्गो दृष्टेरुपहन्ता । किं वा दृश्यतामसति बहुदर्शित्वे । बहुदर्शित्वं च तावतः कालस्यैवासंभवात् कुतः भवतु प्रथमे वयसि । [1]येनान्वयव्यतिरेकाभ्यां निश्चित्य वर्ज्यतां मलिनता । अपि च, परिणामेपि[2] पुण्यवतां केषांचिदेव हि केशैः सह धवलिमानमापद्यन्ते चरितानि । तन्मोहविषयमहाही[3] मदविकार-

जनन्निन्द्यानि = संसारगर्हितानि, दुश्चरितानि = दुर्वृत्तानि, दुराचरणानि; निवारितानि=दुरीकृतानि ? न केनापीति भावः । वा = अथवा, तमोऽभिवृद्धिहेतुः—तमः (= तमिस्रम्, अज्ञानं च) तस्य अभिवृद्धिः (= अभिवर्धनम्) तस्य हेतुः (= कारणम्), दृष्टेः = नेत्रस्य, ज्ञानस्य च, उपहन्ता= विनाशकः, अवरोधकः, दोषाभिषङ्गः—दोषा (= रात्रिः, व्यसनादयश्च) तस्याः तेषां च, अभिषङ्गः= सम्बन्धः; आलोकभूतेन = प्रकाशरूपेण, केन जनेन, उत्सारितः = वारितः,दूरीकृतः ? न केनापीति भावः । बहुदर्शित्वे—बहु (= अत्यधिकम्) पश्यति इति बहुदर्शी, तस्य भावस्तत्त्वं तस्मिन् असति = अविद्यमाने, किम्, वा, दृश्यताम् = विलोक्यताम् ? न किमपीति भावः । तावतः = तावन्मात्रस्य, कालस्य = समयस्य, एव, अभावात् = अनुपलब्धेः, प्रथमे = आद्ये, वयसि = कुमारावस्थायाम्, बहुदर्शित्वम्=बहुविलोकित्वम्, बहुज्ञानवत्त्वमिति भावः, कुतः=कस्माद् कारणात् सम्भवतीति शेषः । बहुदर्शित्वप्राप्त्यर्थं पर्याप्तकालस्यानुभवस्यावश्यकतापेक्षते सा च आद्ये वयसि कौमारे न सम्भवतीति भावः । येन = कारणेन, अन्वय-व्यतिरेकाभ्याम्—'तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम् अन्वयः, तदभावे तदभावो व्यतिरेकः' इति प्रसिद्धाभ्यां ताभ्याम्, निश्चित्य = निर्णीय, मलिनता = मालिन्यम्, दूषणम्, वर्ज्यताम् = पृथक्क्रियताम्, परिहीयताम् ।

अपि चेति । अपि च = अन्यच्च, परिणामे = वार्धक्ये, सति अपि, केषाञ्चिद् = परिगणितानाम्, पुण्यवताम् = भाग्यशालिनाम् एव, हि = निश्चयेन, चरितानि = चरित्राणि, आचरणानि, केशैः = कचैः शिरस्थादिभिः, सह = सार्धम्, धवलिमानम् = श्वेतिमानम्, आपद्यन्ते = प्राप्नुवन्ति, यथा-यथा केशाः श्वेताः जायन्ते तथा-तथा चरित्राणि अपि उज्ज्वलानि भवन्ति इति केषाञ्चन एव जीवने दृश्यते न तु सर्वेषामिति भावः । तत्=तस्मात् कारणात्, मोहेत्यादिः— मोहः (= ज्ञानाभावः, मूढता) विषयाः (= शब्दस्पर्शरूपरसादयः) ते एव महन्तः (= विशालाः) अहयः (= भुजङ्गाः) तस्मिन्

आलोक (प्रकाश) तम (अंधेरे) की वृद्धि के कारणभूत, दृष्टि (आँख) के प्रतिरोधक (कार्य रोक देने वाले) दोषा = रात्रि के अभिषङ्ग, (सम्बन्ध; या प्रभाव) को रोक देता है उसके समान प्रकाशभूत किसने तम = अज्ञान की अभिवृद्धि के हेतुभूत, दृष्टि = ज्ञान के प्रतिरोधी दोषों के अभिषङ्ग = आसक्ति को दूर किया है ? अर्थात् किसी ने नहीं । बहुदर्शिता (बहुत देखने की शक्ति) के न रहने पर क्या देखा जाय ? उतना अधिक अर्थात् अपेक्षित काल के संभव न हो सकने के कारण प्रथम वय = यौवन काल में बहुदर्शिता कहाँ से आ सकती है ? जिस (बहुदर्शिता) के द्वारा [1]अन्वय-व्यतिरेक से निश्चित करके मलिनता को दूर किया जाय । इसके अतिरिक्त [यह भी देखा जाता] है कि किन्हीं किन्हीं पुण्यशाली [भाग्यवान] व्यक्तियों के ही चरित्र [उनके] केशों के साथ श्वेतता [सफेदी,

१. 'तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम् अन्वयः, तदभावे तदभावो व्यतिरेकः' अर्थात् किसी एक के रहने पर ही जो दूसरा रहता है, उसके न रहने पर नहीं रहता हैं, वहाँ उनका अन्वय-व्यतिरेक माना जाता है । इस न्याय से कार्यकारणभाव का निश्चय किया जाता है ।

२. अतिपुण्य० ।

३. मोहविषमहाही, मोहविषविषयमहाही ।

गन्धमातङ्गे[1] दुर्विलसितैकराज्ये रतिनिद्राविलासवेश्मनि नवरागपल्लवोद्गमलीलान्तविशेष-[2] दुश्चरित-चक्रवर्तिनि तारुण्यावतारे सर्वस्यैव विषमतर-विषयमार्गपतितस्य स्खलितमापतति। किमेवमार्येण लालनीयस्य [3]पालनीयस्य शिशुजनस्योपर्यावेशो गरीयान् गृहीतो यदनुचितमपत्यस्नेहस्याक्रोशगर्भमेवमुक्तम्। स्वप्नायमानानामपि यद् गुरूणां मुखेभ्यो निष्क्रामति शुभ-

तादृशे, (इमानि सप्तम्यन्तैकवचनान्तानि वक्ष्यमाणस्य 'तारुण्यावतारे' इत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि।) मदेत्यादिः—मदः (=दर्पः) तस्य विकाराः (=तज्जन्याः विकृतयः कामादयः) ते एव गन्धमातङ्गाः (=गन्धगजाः) यस्मिन् तादृशे। दुर्विलसितैकराज्ये—दुर्विलसितम् (=दुश्चेष्टितम्) तदेव एकम् (=अद्वितीयम्) राज्यम् (=आधिपत्यम्) यस्मिन् तादृशे, यद्वा—दुर्विलसितानाम् एकराज्ये= एकाधिपत्ये, रतीत्यादिः—रतिः (=कामेच्छा) एव निद्रा (=स्वापः) तस्याः विलासस्य (=प्रमोदस्य) वेश्मनि (=भवने) यद्वा—रतेः निद्रायाश्चोभयोः विलाससदने, नवरागेत्यादिः—नवः (=नवीनः) रागः (=अनुरागः) स एव पल्लवः (=किसलयः) तस्य उद्गमस्य (=विकसनस्य) लीलायाः (=क्रियायाः) अन्ते (=समाप्तौ, परिणामकाले) विशेषाणि (=विशिष्टानि) दुश्चरितानि (=दूषिताचरणानि) तेषां चक्रवर्तिनि (=सार्वभौमे साम्राज्ये), एतादृशे तारुण्यावतारे= यौवनस्य प्रादुर्भावे, सति, विषमेत्यादिः—विषमतरः (=अतिशयेन विषमः, कठिनतरः) विषयाणाम् (=कामादीनाम्) मार्गः (=वर्त्म) तस्मिन् पतितस्य (=स्रस्तस्य), सर्वस्य = समस्तस्य, एव, लोकस्य, स्खलितम् = स्खलनम्, चारित्र्याद्भ्रंशनम्, आपतति = आगच्छति, जायते इति भावः। अत्र प्रायशः सर्वत्र वाक्येषु रूपकालंकारः स्पष्टः। किम् = कथम्, एवम् = अनेन प्रकारेण, आर्येण= पूज्येन, विदुषा, लालनीयस्य = लालनं कर्तुं योग्यस्य, पालनीयस्य = पालनार्हस्य, शिशुजनस्य= बालकस्य, उपरि = विषये, गरीयान् = गुरुतरः, प्रबलः, आवेशः (=क्रोधावेगः) गृहीतः = धृतः, यत् = यस्मात्, अपत्यस्नेहस्य = सन्ततिविषयकानुरागस्य, अनुचितम् = अयोग्यम्, आक्रोशगर्भम्—आक्रोशः एव गर्भे (=मध्ये) यस्य तादृशम्, एवम् = इत्थम्, उक्तम् = कथितम्, एतावतः क्रोधस्य प्रदर्शनं तदनुसृत्य कठोरवचनं च न शोभाकरमिति तद्भावः। तादृशाशुभकथनस्य अनिष्टजनकत्वं प्रतिपादयन्नाह राजा—स्वप्नायमानानाम् = निद्रायमाणानाम्, स्वप्नान् विलोकयताम्, अपि, गुरूणाम् = वृद्धजनानाम्, मुखेभ्यः = आस्येभ्यः, यद् = किमपि, शुभम् = प्रशस्यम्, अशुभम् = अकल्याणकरम्; वा, निष्क्रामति = निःसरति, तत = शुभमशुभं वा, शिशुषु =

उज्ज्वलता निर्दोषता] को प्राप्त करते हैं। [अतः यौवन में दोष होना स्वाभाविक है।] इसलिये मोह तथा विषयरूपी विशाल सर्पों से भरे मद विकार रूपी गन्धराज से युक्त, दुराचारों के एकच्छत्र राज्य, रति तथा निद्रा के विलास के गृह, नये-नये अनुराग (प्रेम) रूपी पल्लवों के निकलने की लीला के अन्त में होने वाले बड़े-बड़े दुश्चरित्रों के चक्रवर्ती[सम्राट् तुल्य]यौवन के आ जाने पर अत्यन्त विषम विषयरूपी मार्ग में गिरे हुये [चलते हुये] प्रत्येक व्यक्ति का स्खलन [पतन, भ्रष्टता] होता ही है। इस कारण लालन-पालन [लाड़-प्यार] के योग्य शिशुजन [चन्द्रापीड] के ऊपर श्रीमान् ने इतना अधिक क्रोध क्यों कर डाला जो कि अपने पुत्रस्नेह के लिये अनुचित [विपरीत] आक्रोश भरी हुईं इतने बातें कह डाली। (नींद में) स्वप्न देखते हुये भी गुरुजनों के मुख से जो शुभ अथवा अशुभ

१. मदविकारमातङ्गे। २. लीलातर०। ३. लालनीयपालनीयस्य।

मशुभं वा शिशुषु[1] तदवश्यं फलति। गुरवो हि दैवतं बालानाम्। यथैवाशिषो गुरुजनवितीर्णा वरतामापद्यन्ते तथैवाक्रोशाः शापताम्। तद्वैशम्पायनमुद्दिश्य कोपावेशादेवमतिपरुषमभिदधत्यार्ये महती मे चेतसः पीडा समुत्पन्ना। स्वयमारोपितेषु[2] तरुषु [3]यावदुत्पद्यते स्नेहः। किं पुनरङ्गसंभवेष्वपत्येषु। तदुत्सृज्यतामयममर्षवेगो वैशम्पायनस्योपरि। विरूपकं तु तेन न किंचिदप्याचरितम्। सर्वपरित्यागं कृत्वा स्थित इत्येतदपि कारणमविज्ञाय किमेव

बालकेषु, अवश्यम् = निश्चितरूपेण, फलति = फलतां प्राप्नोति, तेषां कथनानुसारं हितमहितं वा अवश्यमेव जायते इति तद्भावः। हि = निश्चयेन, गुरवः = वृद्धजनाः मातामित्रादयः, बालानाम्= शिशूनाम्, दैवतम् = देवता, भाग्यविधातारो भवन्तीति भावः। गुरुजनवितीर्णाः = गुरुजनप्रदत्ताः, आशिषः = माङ्गल्यकारकवचनानि, यथैव = येन प्रकारेण, वरताम् = वररूपताम् आपद्यन्ते = प्राप्नुवन्ति,तथैव तेनैव प्रकारेण आक्रोशाः=आक्रोशजन्यवचनानि, शापताम्=शापरूपताम्, आपद्यन्ते इति अत्रापि योज्यम्। अतो गुरुजनैरस्मिन् विषये सदैव सावधानैर्भूत्वा एव आशिषः आक्रोशाः वा प्रकटनीया इति तद्भावः। तत् = तस्मात् वैशम्पायनम् = शुकनासपुत्रम्, उद्दिश्य = अभिलक्ष्य, कोपावेशात्= क्रोधावेशात्, आर्ये = पूज्ये, भवति, एवम् = इत्थम् अतिपरुषम् = अतिकठोरं यथा स्यात् तथा, अभिदधति = कथयति, सति, मे = मम तारापीडस्य, चेतसः = चित्तस्य, महती = गुर्वी, पीडा = व्यथा, समुत्पन्ना = सञ्जाता। स्वयम्=आत्मना, आरोपितेषु = रोपितेषु, कृतारोपणेषु, तरुषु = वृक्षेषु, अपि, तावत् = इदं वाक्यालंकारे, स्नेहः = अनुरागः, उत्पद्यते = जायते, वर्धते च, अंगसंभवेषु = शरीरादुत्पन्नेषु, अपत्येषु = सन्ततौ, किम्, पुनः = भूयः, वक्तव्यमिति शेषः, तेषु तु स्नेहो जायते एवेति सर्वानुभवसिद्धमिति तद्भावः। तत् = तस्मात् वैशम्पायनस्य = एतन्नामकस्य स्वपुत्रस्य, उपरि = विषये, अयम् = एषः, प्रत्यक्षमुपलभ्यमानः, अमर्षवेगः = क्रोधावेगः, उत्सृज्यताम् = परित्यज्यताम्। तेन =वैशम्पायनेन, विरूपकम् = प्रतिकूलम्, विरुद्धम्, तु, किञ्चिदपि, न, आचरितम् = कृतम्, सर्वपरित्यागम् = सर्वेषां पदार्थानां परिहाणम्, कृत्वा = विधाय, स्थितः = काननेऽवस्थितः, इति. एतत् = इदम्, अपि, कारणम् = निमित्तम्, अविज्ञाय=

बातें निकल जाती हैं वे शिशुजनों पर अवश्य फलीभूत हो जाती हैं। कारण यह है कि गुरुजन ही बच्चों के देवता होते हैं। जिस प्रकार गुरुजनों के दिये गये आशीर्वाद वरदान बन जाते हैं उसी प्रकार (उनके किये हुये) आक्रोश शापरूप हो जाते हैं। इस कारण वैशम्पायन को ध्यान में रख कर क्रोधावेश में श्रीमान् के द्वारा बहुत कठोर बातें कहे जाने पर मेरे मन में बहुत बड़ी पीड़ा उत्पन्न हो गई। यहाँ तक कि अपने द्वारा लगाये वृक्षों (पेड़-पौधों) पर भी प्रेम उत्पन्न हो जाता है। (उन्हें कोई कष्ट नहीं देना चाहता।) तब फिर अपने अङ्ग से उत्पन्न होनेवाले बच्चों के विषय में कहना ही क्या। इस कारण यह क्रोध का वेग वैशम्पायन के ऊपर छोड़ दीजिये, उसपर मत नाराज होइये। उसने कुछ भी विपरीत नहीं किया है। सब कुछ छोड़कर (वन में) रुक गया—इसको भी बिना कारण को समझे क्यों इस प्रकार से दोषपक्ष में स्थापित कर रहे हैं, उसे दोषी मान रहे हैं। (यह

१. शिशुषु—इति नापि बठ्यते। २. स्वारोपितेषु, स्वयं रोपितेषु। ३. तावत्।

दोषपक्षे निक्षिपामः[1]। कदाचिद् [2]गुणीभवत्येवमयमविनयनिष्पन्नो दोष एव। आनीयतां तावदसौ। बुध्यामहे किमर्थमयमेवंविधस्तस्य वयसोनुचितोपि संवेग उत्पन्नः। ततो यथा युक्तं विधास्यामः।'

—इत्युक्तवति तारापीडे पुनः शुकनासोऽभ्यधात्—'अत्युदारतया वत्सलत्वाच्चैवमादिशति देवः। अन्यदतः[3]परं [4]भवदपि किमिवास्य विरूपकं भवेद्[5]युवराजमुत्सृज्य क्षणमन्यत्रावस्थानमात्मेच्छया चेष्टितम्।'—इत्युक्तवति शुकनासे कशयेवान्तस्ताडितो दोषसंभावनयानया पितुरुद्बाष्पदृष्टिरुपविष्ट एवोपसृत्य चन्द्रापीडः शनैः शनैः शुकनासमवादीत्—'आर्य, यद्यपि

अबुद्ध्वा, किम् = कथम्, एवम् = इत्थम्, दोषपक्षे = दूषणकक्ष्यायाम्, निक्षिपामः = स्थापयामः। एवम् = इत्थम्, अनेन प्रकारेण, अविनयनिष्पन्नः = अविनयात् समुत्पन्नः, दोषः = वैगुण्यम्, अपराधः, एव, कदाचिद् गुणीभवति = गुणरूपतां लभते। तावत् = प्रथमम्, असौ = एष वैशम्पायनः, आनीयताम् = अत्र समीपे प्राप्यताम्। बुध्यामहे = जानीमहे, ज्ञास्याम इत्यर्थे लटः प्रयोगः, किमर्थम् = किन्निमित्तम्, तस्य = वैशम्पायनस्य, अयम् = एषः, एवंविधः = एतादृशः, वयसः = अवस्थायाः, अनुचितः = अयोग्यः, अपि, संवेगः = सर्वत्यागप्रेरकः क्षोभः, उत्पन्नः = संजातः। ततः = वस्तुस्थितिज्ञानानन्तरम्, यथायुक्तम् = यथोचितम्, विधास्यामः = करिष्यामः। यावत्कालपर्यन्तं सर्वं तथ्यं परित्यागविषयकं ज्ञातं न भवति तावत्कालपर्यन्तं क्रोधादिकं नैव करणीयम्।

इतीति। इति = पूर्वोक्तम्, तारापीडे = राजनि, अभिहितवति = कथितवति, सति, शुकनासः = वैशम्पायनपिता, अभ्यधात् = अबोचत्। स किमभ्यधात् तत् प्रतिपादयति—अत्युदारतयेत्यादिना। अत्युदारतया = अतिशयौदार्येण, वत्सलत्वात् = प्रीत्यतिशयशालित्वात्, च, देवः = महाराजः एवम् = इत्थम्, आदिशति = आज्ञापयति। अतः = अस्मात्, परम् = अधिकम्, अन्यत् = अपरम्, भवद् = जायमानम्, अपि, किमिव, विरूपकम् = विरुद्धम्, भवेत्, यत् = यस्मात् हेतोः, युवराजम् = चन्द्रापीडम्, उत्सृज्य = परित्यज्य, क्षणम् = क्षणमात्रमपि, अन्यत्र = तस्माद् भिन्ने स्थाने, अवस्थानम् = अवस्थितिम्, आत्मेच्छया = स्वेच्छया, चेष्टितम् = कृतम्! एष एव तस्य महानपराधः। इतीति। इति = इत्थम्, शुकनासे = अमात्ये, उक्तवति = कथितवति, सति, कशया = चर्ममय्या ताडनरज्ज्वा, अन्तः = हृदये, ताडितः = आहतः, इव, पितुः = तारापीडस्य, अनया = एतया दोषसम्भावनया = दोषस्याशङ्कया,

---

भी सम्भव है कि) कदाचित् अविनय से उत्पन्न हुआ यह दोष ही गुण हो जाय। सबसे पहले उसे यहाँ) लाइये तो। हम लोग यह समझें तो भला कि इस युवावस्था के विरुद्ध अर्थात् उसमें न होने वाला इस प्रकार का अर्थात् सभी कुछ छोड़ देने वाला संवेग (वैराग्य) उसको उत्पन्न कैसे हुआ; इसके बाद जैसा उचित होगा, करेंगे।'

इस प्रकार से तारापीड के कहने पर शुकनास फिर से बोले—"अत्यधिक उदारता के कारण और वत्सलता (स्नेह) के कारण महाराज (आप) ऐसा कह रहे हैं। इसके अतिरिक्त और क्या इसके लिये विरुद्ध आचरण हो सकता है जो कि युवराज को (अकेला) छोड़कर क्षण भर भी स्वेच्छा से दूसरी जगह रहने (ठहरने) की चेष्टा की?" ऐसा शुकनास के कहने पर अर्थात् शुकनास की बात सुनकर, पिताजी के द्वारा [अपने ऊपर ही] दोष की सम्भावना से मानों हृदय पर चाबुक से प्रहार किया गया, आँखों में आँसू भरे हुए, बैठे-बैठे ही कुछ पास जाकर (सरक कर) चन्द्रापीड शुकनास से धीरे-धीरे कहने लगा—'आर्य! यद्यपि आपके कथन से तो यही समझ रहा हूँ कि मेरे

---

१. निक्षिप्तः। २. गुणो भवति। ३. इतः परम्।
४. भवदपि—इति नापि पठ्यते। ५. यदद्य।

[1]निरुक्तितो वेद्मि न मदीयेन दोषेण नागतो वैशम्पायन इति तथापि तातेन सम्भावितमेव कस्य वापरस्य सम्भावना नोत्पन्ना ? मिथ्यापि तत्तथा गृहीतं लोकेन विशेषतो गुरुणा। प्रसिद्धिरत्रायशसे यशसे वा दोषगुणाश्रया वा फलवती। परत्र फलदायी कुत्रोपयुज्यते परमार्थः। तदस्या दोषसम्भावनायाः प्रायश्चित्तमार्यो दापयतु मे वैशम्पायनानयनाय गमना-

'चन्द्रापीडेनैव वैशम्पायनं प्रति किमपि तादृशमाचरितं येन दुःखी स सर्वस्वमत्यज्यदिति' आत्मनि दोषं सम्भाव्येति भावः, उद्वाष्पदृष्टिः-उद् (= ऊर्ध्वम्) वाष्पः (= अश्रुजलम्) यस्यां तादृशी दृष्टिः (= नेत्रम्) यस्यः स तादृशः सन्; चन्द्रापीडः = राजकुमारः, उपविष्टः = निषण्णः, एव, न तूत्थायेति भावः, उपसृत्य = समीपं गत्वा, शनैः-शनैः = मन्दं मन्दम्, शुकनासम् = वैशम्पायनपितरम् अवादीत् = अवोचत् । आर्य = पूज्य !, यद्यपि, निरुक्तितः = भवतः वचनेन, वेद्मि = जानामि, मदीयेन = मामकेन, दोषेण = अपराधेन, हेतुना, वैशम्पायनः = तव पुत्रः, न = नैव, आगतः = आयातः, इति, न, तस्य अनागमने अहं कारणं नास्मीति तद्भावः। तथापि = एवं स्थितावपि, तातेन = पित्रा; सम्भावितम् = कल्पना कृता, एव, कस्य, वा, अपरस्य = अन्यस्य, सम्भावना = कल्पना, न = नैव, उत्पन्ना = संजाता ? अर्थात् सर्वेषामेव मम दोषविषयिणी कल्पना जाता एव भविष्यति, सर्वेऽपि अस्मिन् प्रसङ्गे मयि एव दोषान् प्रक्षिपिष्यन्तीति तदाशयः। मिथ्या = असत्यम्, अपि, तत् = वैशम्पायनानागमनकारणम्, तथा = सत्यम्, यथार्थरूपेण, लोकेन=जनेन, विशेषतः = विशेषरूपेण, गुरुणा = पित्रा, गृहीतम् = स्वीकृतम् । वस्तुतोऽसत्यमपि सर्वैः सत्यत्वेन स्वीकृतं यत् मम दोषेण एव वैशम्पायनो नायातः। किं कारणमत्र अत आह—प्रसिद्धिरित्यादिः। अत्र = अस्मिन् लोके; दोषगुणाश्रया—दोषः (= वैगुण्यम्) गुणः (= साद्गुण्यम्) ते एव आश्रयः (= आधारः) यस्याः सा तादृशी, प्रसिद्धिः = लोकप्रवादः, सामान्यजनधारणा, एव, अयशसे = अपकीर्तये, यशसे=कीर्तये, वा, फलवती = फलविशिष्टा, फलप्रदेति भावः, भवति। दोषाश्रिता जनश्रुतिः अपकीर्तिं जनयति, गुणाश्रिता च कीर्तिमिति अस्मिन् संसारे दृश्यते। परत्र=परलोके, फलदायी=परिणामप्रदः, परमार्थः = यथार्थः, कुत्र = कस्मिन् विषये, उपयुज्यते = उपयोगी भवति ? न कुत्रापीति भावः। तत् = पूर्वोक्तात् कारणात्, आर्य, अस्याः = वर्तमानायाः, दोषसम्भावनायाः = मयि वैगुण्यकल्पनायाः,प्रायश्चित्तम्—प्रायः (= पापम्) तस्य चित्तम् (=परिमार्जनम्), वैशम्पायनानयनाय = वैशम्पायनपरावर्त्तनाय, तातेन = पित्रा तारापीडेन, मे = मह्यम्, गमनाभ्यनुज्ञाम् = प्रस्थानस्यानुमतिम्, दापयतु = कारयतु। यदा भवान् मम पितरं तथा प्रेरयति यथा स गमनाय मामादिशति तदैवाहं स्वसम्भावित-दोषस्य परिमार्जनं मन्ये इति

दोष के कारण वैशम्पायन नहीं आया, ऐसी बात नहीं है तथापि पिताजी ने जैसी सम्भावना की है वैसी ही किस और को नहीं हुई है ? अर्थात् सभी ने ऐसी ही (मेरे दोष की) सम्भावना की है। वह (मेरे दोष की सम्भावना) झूठ होने पर भी लोगों ने उसे सच ही मान लिया है और विशेष रूप से गुरुजनों (पिता आदि) ने। इस संसार में दोषों अथवा गुणों को मानकर होनेवाली प्रसिद्धि (लोकप्रवाद) ही यश अथवा अपयश रूपी फल (देने) वाली होती है। परलोक में फल देनेवाली सच्चाई का [इस लोक में] कहाँ उपयोग होता है अर्थात् जैसा सभी मान लेते हैं उसी के अनुसार इस संसार में यश या अपयश मिलता है, सच्चाई तो परलोक में ही फल देती है, संसार उसे नहीं देखता। इसलिए इस दोष की सम्भावना का प्रायश्चित्त करने के लिये आप (शुकनास) वैशम्पायन

१. निरुक्ततः।

भ्यनुज्ञां तातेन। नान्यथा मे दोषशुद्धिर्भवति। किं कारणम्—अनागते तु वैशम्पायने तातस्यानया सम्भावनया नापगन्तव्यम्।[1] अगते च मयि वैशम्पायनेन नागन्तव्यम्। यद्यसावन्येनानेतुमेव पार्येत तदा तातस्याप्यनुल्लङ्घनीयवचनैरेभि[2]रवनिपतिसहस्रैरानीत एव स्यात्। तदार्यः कारयतु मे गमनाभ्यनुज्ञया[3] प्रसादम्। न च तुरङ्गमैर्गच्छतो मे दृष्टायां[4] भूमौ स्व[5]ल्पोऽपि गमनपरिक्लेशः। वैशम्पायनमादायागतमेव मामवधारयत्वार्यः।

चन्द्रापीडस्य आशयः। अन्यथा = एतद्वैपरीत्ये, मम गमनाभावे, मे = चन्द्रापीडस्य, दोषशुद्धिः = दोषपरिमार्जनम्, न, भवति = भविष्यतीति भावः।

किं कारणं येन दोषशुद्धिर्न भवतीति विशदयितुमाह—किं कारणमिति। किम् = निमित्तम्? एतादृशं कथमुच्यते चेत्, तत्राह—अनागत इति। वैशम्पायने, अनागते = अनायाते, सति, तु, अनया = वर्तमानया, पित्रादिभिः कल्पितया, तातस्य = जनकस्य तारापीडस्य, सम्भावनया = दोषकल्पनया, न, अपगन्तव्यम् = दूरीभवितव्यम्। यदि वैशम्पायनोऽत्र न आगच्छति तदा पित्रादिभिः मम विषये विहिता सम्भावना स्थास्यत्येव, न दूरीभविष्यतीति भावः। मयि = चन्द्रापीडे, च, अगते = अप्रयाते, वैशम्पायनेन, न = नैव, आगन्तव्यम् = आव्रजितव्यम्। मम गमनं विना वैशम्पायनः कथमपि नात्रागमिष्यतीति तदाशयः। स्वोक्तिं दृढयितुमाह—यद्यसाविति। यदि = चेत्, असौ = एष, वैशम्पायनः अन्येन = मद्भिन्नेन केनापि जनेन आनेतुम् = प्रापयितुम्, एव, पार्येत = शक्येत, तदा = तस्मिन् काले, तस्यां स्थितौ वा, तातस्य = पितुस्तारापीडस्य अनुल्लङ्घनीयवचनैः—अनुलङ्घनीयम् (=अनतिक्रमणीयम्) वचनम् (= वचः) यैस्तादृशैः, अवनिपतिसहस्रैः = भूपति-सहस्रैः आनीतः = अत्र प्रापितः, एव स्यात् = भवेत्, सम्भावनायां लिङ्। न च तैरानीत इत्यनेन स्पष्टं यदहमेव तमत्रानेतुं शक्नोमि। तत् = तस्मात् कारणात्, आर्यः = पूजनीयो भवान्, मे = मम चन्द्रापीडस्य, गमनाभ्यनुज्ञया = प्रस्थानानुमत्या, प्रसादम् = अनुग्रहम्, कारयतु = विधापयतु। तुरङ्गमैः = अश्वैः, अश्वारोहिभिरित्यर्थः, गच्छतः = व्रजतः, मे = चन्द्रापीडस्य, दृष्टायाम् = पूर्वं विलोकितायाम्, भूमौ = पृथिव्याम्, प्रदेशे इति भावः, स्वल्पः = अत्यल्पः, कियानपीति भावः, गमनक्लेशः = यात्राकष्टम्, न = नैव, भविष्यतीति शेषः। आर्यः = पूज्यः, शुकनासः, माम् = चन्द्रापीडम्, वैशम्पायनम् = स्वमित्रम्, आदाय = नीत्वा, सार्धमिति शेषः, आगतम् = अत्र सम्प्राप्तम्, एव, अवधारयतु = निश्चितरूपेण वेत्तु।

को वापस लिवा लाने के लिये मुझे पिताश्री से आज्ञा दिलवा दीजिए। क्योंकि और किसी भी प्रकार से अर्थात् वैशम्पायन को वापस लाये बिना मेरे दोष का परिमार्जन नहीं हो सकता। [यदि आप पूंछे कि ऐसा करने का] क्या कारण है? [मेरा उत्तर हैं—] यदि वैशम्पायन वापस नहीं आता है तो मेरे प्रति की गई पिता की इस (दोष) सम्भावना को भी नहीं जाना है, नहीं दूर होना है। और यदि मैं नहीं जाता हूँ तो वैशम्पायन को वापस नहीं लौटना है। क्योंकि किसी भी दूसरे के द्वारा यदि वह लाया जा सकता, तब तो पिता जी की आज्ञा का उल्लंघन न करनेवाले इन हजारों राजाओं के द्वारा वह वापस लिवा लाया गया ही होता। इसलिए आर्य! आप मुझे गमन की अनुमति दिलवा कर (मुझ पर) कृपा करें। उस परिचित भूमि (प्रदेश) में घोड़ों से जाते हुए मुझे जाने में थोड़ा भी कष्ट नहीं होगा। आप अब मुझे वैशम्पायन को वापस लाया हुआ ही समझें, अर्थात् जाने और वापस लौटने में देर नहीं लगेगी।

---

१. आगते। २. एभि-रिति नापि पठ्यते। ३. रामनानुज्ञया।
४. कष्टायां, दुष्टायां। ५. स्वप्नेपि।

अपि च, बाह्यखेदादसह्योऽन्तःखेद एव मे तद्वियोगजन्मा[1]। अनुपदमेव स्कन्धावारमादायागच्छतीत्यमुना हेतुना विना तेनागतोऽहम्। [2]अन्यदा जन्मनः प्रभृति कदा मया गतं स्थितं क्रीडितं हसितं पीतमशितं सुप्तं प्रबुद्धमुच्छ्वसितं वा विना वैशम्पायनेन। यच्च श्रुत्वा तस्मादेव प्रदेशान्न गतोऽस्मि तन्मा[3] तेनैव तुल्योऽभूवमिति। तदप्रतिगमनदोषाद् रक्षतु मामार्यः।'

इत्यभिहितवति चन्द्रापीडेऽन्तःपीडोपरागरक्ते[4] रक्ततामरसानुकारिणि मुखे सपक्षपातो

पुनरपि स्वगमनं समर्थयितुमाह—अपि चेत्यादिना। अपि च = इदमपि बोध्यं भवतेति भावः, तद्वियोगजन्मा = वैशम्पायनविरहोत्पन्नः, अन्तःखेदः = आन्तरिकक्लेशः, एव, बाह्यखेदात्= बाह्यक्लेशापेक्षया, असह्यः = सोढुमशक्यः। बाह्यखेदं सोढुं समर्थोऽपि मानसिकक्लेशं कथमपि सोढुं न समर्थ इति तदाशयः। स्कन्धावारम् = सैन्यसमूहम्, आदाय = नीत्वा, अनुपदम् = अनुचरणम्, मम पृष्ठतः शीघ्रमेवेति भावः, आगच्छति = आयाति, वैशम्पायन इति शेषः, इति, अमुना = एतेन, हेतुना = कारणेन, तेन = वैशम्पायनेन, विना = ऋते, अहम् = चन्द्रापीडः, आगतः = सम्प्राप्तः, अत्र राजधान्यामिति शेषः। अन्यदा = अन्यस्मिन् कस्मिन् काले, 'अन्यथे'ति पाठे-उक्तवैपरीत्ये, जन्मनः = जन्मकालात्, प्रभृति = प्रारभ्य, वैशम्पायनेन = एतन्नामकेन मित्रेण, विना = ऋते, कदा = कस्मिन् समये, मया = चन्द्रापीडेन, गतम् = यातम्, स्थितम् = स्थितिः कृता, क्रीडितम् = क्रीडनं कृतम्, हसितम् = हसनं कृतम्, पीतम् = पानं कृतम्, सुप्तम् = शयनं कृतम्, प्रबुद्धम् = जागृतम्, वा = अथवा, उच्छ्वसितम् = उच्छ्वासो गृहीतः। सर्वमपि कार्यजातं सदैव तेन सार्धमेव विहितम्। केवलमिदानीमेव एकाकिना आयातमिति तदाशयः; श्रुत्वा = वैशम्पायनानागमनवृत्तान्तम् आकर्ण्य, तस्माद्, एव, प्रदेशात् = स्थानविशेषात्, यत्, न, तं प्रति, गतः = प्रचलितः, अस्मि, तत्, तेनैव = वैशम्पायनेनैव, तुल्यः = सदृशः, मा = नैव, अभूवम् = अभवम्, इति = हेतौ। अत्र 'मा' शब्दो निषेधार्थे न तु माङ्। अन्यथा अडागमाभावापत्तिः। वस्तुतस्तु—'तुल्यो भूवमिति' अवग्रहरहित एव पाठो युक्ततरः। तत् = पूर्वोक्तात् हेतोः, आर्यः = पूज्यः शुकनासः, अप्रतिगमन-दोषात् = अ-पृष्ठप्रस्थानापराधात्, माम् = चन्द्रापीडम्, रक्षतु = पालयतु, वारयत्विति भावः।

इतीति। इति = पूर्वोक्तम्, चन्द्रापीडे = युवराजे, अभिहितवति = कथितवति, सति, अन्तःपीडेत्यादिः—अन्तः (= मनसि) पीडा (= व्यथा) सा एव, उपरागः (= रक्तवर्णः) [यद्वा—तस्याम् उपरागः = विपत्तिः) तेन रक्ते (= रक्तवर्णे, लोहिते), रक्त-तामरसानुकारिणि =

इसके अतिरिक्त यह भी है कि उस वैशम्पायन के विरह से होने वाले बाहरी (शारीरिक) कष्ट की अपेक्षा भीतरी (मानसिक) कष्ट ही असहनीय है। 'सैन्यसमूह लेकर वह मेरे पीछे-पीछे ही आ रहा है' इस कारण से अर्थात् ऐसा सोंच कर मैं उसके बिना (अकेला ही आगे) चला आया। जन्मकाल से लेकर अभी तक किसी भी अन्य समय में वैशम्पायन के बिना अकेले कभी गया, रुका, खेला, हँसा, पिया, खाया, सोया, जागा, सांस ली ? अर्थात् कुछ भी नहीं किया। और जो [उसका अनागमन] सुनकर उसी स्थान से वापस नहीं चल पड़ा, उसका कारण यह था कि मैं भी उसी के समान (आज्ञा के बिना कार्य करने वाला) न हो जाऊँ। अतः आर्य आप मुझे उसके पास न जाने रूपी दोष से बचाइये अर्थात् उसके पास जाने की आज्ञा अवश्य दिलवा दीजिये।

—चन्द्रापीड द्वारा इस प्रकार (पूर्वोक्त रूप) से कहे जाने पर भीतरी (मानसिक) पीड़ा के कष्ट (प्रभाव) के कारण लाल-लाल हो गये, (अतएव) लालकमल के सदृश [चन्द्रापीड के] मुख पर

---

१. एवमेतद्वियोगजन्मा, एव मे तद्वियोगजन्मा। २. अन्यथा।
३. तस्मात्। ४. चन्द्रापीडेऽपि रागरक्ते रक्ततामरसानुकारिणि।

षट्पदावलीमिव दृष्टिं निवेश्य[2] "एवं गमनाय विज्ञापयति युवराजः, किमाज्ञापयति देवः" इति शनैः शनैः शुकनासो राजानमप्राक्षीत्।

तथा पृष्टश्च शुकनासेन किंचिदिव ध्यात्वा तारापीडः प्रत्यवादीत्—"आर्य, मया ज्ञातमेतेष्वेव दिवसेषु संपूर्णमण्डलस्येन्दोर्ज्योत्स्नामिव करावलम्बिनीं वत्सस्य वधूं द्रक्ष्यामीति यावदयमपरोऽन्तर्हिताशापथो जलदकाल इव प्रत्यूहकारी वैशम्पायनवृत्तान्तो विलोमप्रकृतिना[3] विधात्रान्तरा पातितः। यथा चायुष्मताविहितमेवै-

---

रक्तकमलसदृशे, मुखे = आनने, स-पक्षपाताम्—पक्षाणाम् (= पतत्राणाम्) पातः (= पतनम्) तेन सह वर्तमानाम्, पक्षपतनविशिष्टाम्, षट्पदावलीम् = भ्रमरराशिम्, इव, [पक्षे—पक्षपातः = अनुकूलाचरणम्, तेन सहिताम्] दृष्टिम् = नेत्रम्, निवेश्य = संस्थाप्य, निक्षिप्य, सानुकूलं विलोक्येति भावः, 'युवराजः = राजकुमारश्चन्द्रापीडः, एवम् = अनेन प्रकारेण, वैशम्पायनानयनायेति भावः, गमनाय = प्रस्थानाय, विज्ञापयति = निवेदयति, अनुमतिं प्रार्थयते इति भावः, देवः = स्वामी तारापीडः, किम्, आज्ञापयति = आदिशति, इति = इत्थम्, शुकनासः = वैशम्पायनपिता, शनैः शनैः = मन्दं मन्दम्, राजानम् = तारापीडम्, अप्राक्षीत् = पृष्टवान्।

शुकनासवचनं श्रुत्वा तारापीडः किं कथितवानिति प्रतिपादयति–तथेत्यादिना। शुकनासेन तथा=पूर्वोक्तरूपेण, पृष्टः = प्रश्नविषयीकृतः, निवेदितः, च, तारापीडः = नृपः, किञ्चिदिव = अज्ञातम्, इव, किमपि, ध्यात्वा = विचिन्त्य, प्रत्यवादीत् = प्रत्यवोचत्। आर्य = श्रीमन्!, मया = तारापीडेन, ज्ञातम् = अवबुद्धम्, निश्चितं कृतमिति भावः, यत्, एतेषु = वर्तमानेषु, एव, दिवसेषु= दिनेषु, सम्पूर्णमण्डलस्य—सम्पूर्णम् (= सकलम्, षोडशकलासहितम्) मण्डलम् (= बिम्बम्) यस्य तादृशस्य, इन्दोः = चन्द्रस्य, करावलम्बिनीम् = किरणाश्रयिणीम्, ज्योत्स्नाम् = चन्द्रिकाम्, इव, पक्षे—वत्सस्य = पुत्रस्य, करावलम्बिनीम् = पाणिग्राहिणीम्, व्यूढामित्यर्थः, वधूम् = स्नुषाम्, द्रक्ष्यामि = विलोकयिष्यामि, इति, यावत् = अत्रान्तरे, अयम् = एषः, अपरः = प्रसिद्धात् भिन्नः, अन्तर्हितेत्यादिः—अन्तर्हितः (= व्यवहितः) आशायाः (= दिशायाः) पन्थाः (= मार्गः) येन तादृशः, जलदकालः = वर्षाकालः, इव, [पक्षे—अन्तर्हितः आशायाः = मनोरथस्य पन्थाः येन स तादृशः] प्रत्यूहकारी = विघ्नकारी, वैशम्पायनवृत्तान्तः = वैशम्पायनविषयिणी घटना, विलोमप्रकृतिना = विपरीतस्वभावेन, विधात्रा = ब्रह्मणा, अन्तरा = मध्ये, पातितः = आनीतः,

---

पक्षपात युक्त, (फड़फड़ाते हुए पंखों वाली) भौंरों की पंक्ति के सदृश (पक्षपात 'अनुकूलता' से युक्त) दृष्टि डालकर 'इस प्रकार से युवराज जाने के लिये निवेदन कर रहे हैं, महाराज क्या आज्ञा दे रहे हैं?' इस प्रकार से धीरे-धीरे शुकनास ने राजा तारापीड से पूछा।

शुकनास द्वारा इस प्रकार से पूछे गये राजा तारापीड ने कुछ देर सोंच कर उत्तर दिया, कहा—"आर्य! मैंने तो यह समझा (सोंचा) था कि इन्हीं दिनों में अर्थात् अतिशीघ्र मैं पूर्णमण्डल वाले चन्द्रमा की चाँदनी के समान बेटा चन्द्रापीड का हाथ पकड़े हुई पुत्रबधू का मुख देखूंगा, अर्थात् इसका विवाह कर दूंगा, किन्तु इसी बीच आशा (दिशा) के मार्ग को ढक लेने वाली (बादलों से छिपा लेने वाली) वर्षा ऋतु के समान मेरी आशा (मनोरथ) के मार्ग में बाधा करने वाला यह वैशम्पायन का वृत्तान्त विपरीत स्वभाव वाले विधाता ने बीच में लाकर डाल दिया। जैसा कि

---

१. षट्पदाली, अम्बुदाली।   २. एव।   ३. मे दुष्प्रकृतिना।

तत्; न तमन्यः शक्नोत्यानेतुम्, न च तेन विनायमत्र स्थातुम्। तदवश्यमेव तावन्निस्तरितव्यो व्यसनार्णवोमुना पोतेन। वैशम्पायनप्रत्यानयनाय चावश्यं देव्यपि विलासवती विसर्जयिष्यत्येवैनमिति निश्चयो मे। तद्यातु। किंत्वतिदूरं वत्सेन गन्तव्यम्। तद्गणकैः सहादरादार्यो दिवसं लग्नं च गमनायास्य निरूपयतु संविधानं च कारयतु' इति। एतदभिधाय शुकनासमुद्वाष्पलोचन[1]श्चिरमिव[2] चन्द्रापीडमालोक्याहूय च विनयावनम्रमसंदेशे शिरसि बाह्वोश्च पाणिना स्पृशन्नादिशत्—'वत्स गच्छ' त्वमेव प्रविश्याभ्यन्तरं मनोरमा-

समुपस्थापितः। यथा = येन प्रकारेण, च, आयुष्मता = चिरञ्जीविना चन्द्रापीडेन, अभिहितम् = कथितम्, एव, एतत् = पूर्वोक्तम्, किं तदिति प्रतिपादयति—तम् = वैशम्पायनम्, अन्यः = मद्भिन्नः कोऽपि, आनेतुम् = अत्र प्रापयितुं न, शक्नोति = अर्हति। अयम् = एष चन्द्रापीडश्च, तेन = वैशम्पायनेन, विना = ऋते, अत्र = राजधान्याम्, स्थातुम् = स्थितिं कर्तुम्, न, शक्नोतीति भावः। तत् = तस्मात्, व्यसनार्णवः = विपत्तिसागरः, अमुना = चन्द्रापीडगमनरूपिणा, पोतेन = यानेन, अवश्यमेव, तावत् = प्रथमम्, निस्तरयितव्यः = पारयितव्यः, लंघनीयः। वैशम्पायन-प्रत्यानयनाय = वैशम्पायनं प्रत्यानेतुम्, च देवी = राज्ञी, विलासवती = चन्द्रापीडस्य माता, अपि, एनम् = चन्द्रापीडम्, अवश्यम् = निश्चितरूपेण, विसर्जयिष्यति = प्रेषयिष्यति, एव, इति = एषः, मे = तारापीडस्य, निश्चयः = निर्णयः, सुनिश्चितं मतमिति भावः। तत् = तस्मात्, यातु = व्रजतु, चन्द्रापीड इति शेषः। किन्तु, वत्सेन = पुत्रेण चन्द्रापीडेन, अतिदूरम् = बहुविप्रकृष्टम्, गन्तव्यम् = व्रजितव्यम्। तत् = तस्मात् हेतोः, आदरात् = सम्मानपूर्वकं यथास्यात् तथा, गणकैः = मौहूर्तिकैः, ज्योतिर्विद्भिः, दिवसम् = दिनम्; लग्नम् = मेषादिद्वादशनाम्ना प्रसिद्धं होराद्वयात्मकं कालविशेषं च, अस्य = चन्द्रापीडस्य, गमनाय = प्रस्थानाय, निरूपयतु = विचारयतु, संविधानम् = यात्रोपकरणादिकसज्जां, च, कारयतु = विधापयतु, इति = समाप्तौ, एतत् = पूर्वोक्तम्, शुकनासम्, अभिधाय = उक्त्वा, उद्वाष्पलोचनः = आश्रुपूरितनेत्रः, सन् तारापीडः, चन्द्रापीडम् = स्वसुतम्, चिरम् = दीर्घकालम्, इव, आलोक्य = दृष्ट्वा, आहूय = आकार्य, च, विनयावनम्रम् = विनयेनावनतम्, अंसदेशे = स्कन्धभागे, शिरसि = मूर्ध्नि, बाह्वोः = भुजयोः, च, पाणिना = हस्तेन, स्पृशन् = स्पर्शं कुर्वन्, परामृशन्, आदिशत् = आदिष्टवान्। किमादिशदिति निरूपयति—वत्सेत्यादिना। वत्स = पुत्र!, गच्छ = प्रयाहि, त्वमेव = भवानेव, अभ्यन्तरम् = प्रासादस्य मध्यभागम्, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, मनोरमासहितायाः = वैशम्पायनजननीयुक्तायाः, मातुः = स्वजन्याः विलासवत्याः,

आयुष्मान् चन्द्रापीड ने कहा ही है कि वैशम्पायन को कोई दूसरा वापस नहीं ला सकता। और उस वैशम्पायन के बिना यह भी अकेला यहाँ नहीं ठहर सकता। इस कारण यह दुःख रूपी समुद्र इस (युवराज के गमन रूपी) पोत = जलयान के द्वारा ही पार करना है। और वैशम्पायन को वापस लिवा लाने के लिये महारानी विलासवती भी इसे भेज ही देंगी, ऐसा मेरा निश्चय है। अतः यह जाय। किन्तु बेटे को बहुत दूर तक जाना है। इसलिए आर्य आप इसके प्रस्थान के लिये आदरपूर्वक ज्योतिषियों से दिन और लग्न का विचार करवाइये और प्रस्थान की तैयारी करवाइये।'—ऐसा शुकनास से कहकर अश्रुपूर्ण (डबडबाई हुई) आँखों वाले होते हुए बहुत देर तक चन्द्रापीड को देखकर और (समीप में) बुलाकर, विनय से झुके हुए कंधों पर, शिर पर तथा हाथों पर (अपने) हाथ से स्पर्श करते (सहलाते) हुए राजा ने आदेश दिया—'बेटा, तुम्हीं भीतर जाकर मनोरमासहित अपनी

१. उद्वाष्पलोचनं। २. इह।

सहितायां मातुरावेदयात्मगमनवृत्तान्तम् ।' इत्यादिश्य चन्द्रापीडमात्मना शुकनासमादाय स्वभवनमयासीत् ।

चन्द्रापीडस्तु तामक्लिष्टवर्णां कादम्बरीवरणस्रजमिव गमनाभ्यनुज्ञां हृदयेनोद्वहन्प्रहृष्टान्तरात्माप्यपहर्षदृष्टिः प्रविश्य कृतनमस्कारो मातुः समीपे समुपविश्यात्मदर्शनद्विगुणीभूत-वैशम्पायनविरहशोकविह्वलां मनोरमामाश्वास्यावादीत्—'अम्ब समाश्वसिहि । वैशम्पायनानयनाय तातेन मे गमनमादिष्टम् । तत्कतिपयदिवसान्तरितं वैशम्पायनानन-

---

गमनवृत्तान्तम् = स्वप्रस्थानवार्त्ताम्, आवेदय = विज्ञापय । मातुरित्यत्र कर्मणि सम्बन्धसामान्यविवक्षायां षष्ठी बोध्या । इति = पूर्वोक्तम्, चन्द्रापीडम् = स्वपुत्रम्, आदिश्य = आज्ञाप्य, शुकनासम्, आदाय = नीत्वा, स्वसार्धं कृत्वेत्यर्थः, स्वभवनम् = राजसदनम्, अयासीत् = अगमत् ।

चन्द्रपीडस्याचरणं वर्णयति—चन्द्रापीडस्त्वित्यादिना । चन्द्रापीडः = युवराजः, तु, अक्लिष्टवर्णाम्—अक्लिष्टाः (= अक्लेशकराः, मधुराः) वर्णाः (= अक्षराणि) यस्यां सा तादृशीम्, गमनाभ्यनुज्ञाम् = गमनस्यानुमतिम्, अक्लिष्टवर्णाम्—अक्लिष्टाः (= मनोहराः) वर्णाः (=रक्त-श्वेत-पीतादयः) यस्यां सा तादृशीम्, कादम्बरी-वरणस्रजम्—कादम्बर्याः (= गन्धर्वराजपुत्र्याः) वरणम् (= पतित्वेन स्वीकरणम्) तदर्थं स्रक् (= वरणमाला) ताम्, इव, हृदयेन = चित्तेन, उद्वहन् = धारयन्, प्रहृष्टेत्यादिः—प्रहृष्टः (= प्रसन्नः) अन्तरात्मा (= चित्तम्) यस्य स तादृशः, सन्, अपि, अपहर्षदृष्टिः—अपगतः (= दूरीभूतः) हर्षः (= प्रसादः, आह्लादः) यस्याः सा तादृशी दृष्टिः (= नेत्रम्) यस्य स तादृशः, सन्, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, कृतनमस्कारः—कृतः (= विहितः) नमस्कारः (= नमस्करणम्, प्रणतिः) येन स तादृशः, मातुः = जनन्याः विलासवत्याः, समीपे = निकटे, समुपविश्य = निषद्य, आत्मदर्शनेत्यादिः—आत्मनः (= स्वस्य चन्द्रापीडस्य) यद् दर्शनम् (= विलोकनम्) तेन द्विगुणीभूतः (=द्वैगुण्यमधिगतः, प्रवृद्ध इति भावः) यः वैशम्पायनस्य (= एतन्नामकस्य स्वपुत्रस्य) विरहः (= वियोगः) तस्य शोकः (= क्लेशः) तेन विह्वलाम् (= व्याकुलाम्), मनोरमाम् = वैशम्पायनजननीम्, आश्वास्य = आश्वासनं प्रदाय, अवादीत् = अवोचत् । किन्तदिति वर्णयति—अम्ब–इत्यादिना । हे अम्ब ! = हे मातः, समाश्वसिहि = समाश्वस्ता भव, धैर्यं धारय । तातेन = पित्रा चन्द्रापीडेन, वैशम्पायनानयनाय = वैशम्पायनमत्र समानेतुम्, मे = मम चन्द्रापीडस्य, गमनम् = प्रयाणम्, आदिष्टम् = आज्ञप्तम् । तत् = तस्मात्, त्वम् = भवती, कतिपयेत्यादिः—कतिपये (= केचित् अत्यल्पाः) ये दिवसाः (= दिनानि) तैः अन्तरितम् (= व्यवहितम्),

---

माताजी से अपने जाने की बात कह दो'—ऐसा चन्द्रापीड को आदेश देने के बाद शुकनास को साथ में लेकर राजा अपने भवन में चले गये ।

चन्द्रापीड उस कोमलवर्णमयी पिता की आज्ञा को कादम्बरी की कोमल वर्ण=रंगोंवाली वरणमाला के समान हृदय में धारण करता हुआ, भीतर (मन में) बहुत प्रसन्न होता हुआ भी, आँखों में उदासी लिये हुए, भीतर पहुँचकर, प्रणाम करके, माता के पास बैठकर अपने अर्थात् चन्द्रापीड को देखने से वैशम्पायन के दूने विरहशोक से व्याकुल होनेवाली मनोरमा (वैशम्पायन की माता) को समाश्वासन देकर कहने लगा—'माताजी, आप धीरज रखिये । पिताजी ने वैशम्पायन को वापस लिवा लाने के लिये मुझे आज्ञा दे दी है । इसलिए कुछ ही दिनों के लिये अलग (दूर)

[1]दर्शनोत्सुकं मामविकल्पं विसर्जय त्वम्।' सा त्वेवमभिहिता प्रत्युवाच—'तात, किमात्मगमनवचसा मां समश्वासयति। कः खलु मे त्वयि तस्मिंश्च विशेषः। तदेकधा तमेकं न पश्यामि [2]कठिनहृदयम्। त्वयि पुनर्गते यदपि तस्यादर्शने[3] जीवितप्रतिबन्धहेतुभूतं त्वद्दर्शनं तदपि दूरीभवति। तन्न गन्तव्यं वत्सेन। एकेनापि हि युवयोरावां पुत्रवत्यौ द्वे अपि। नागतो नामासौ निष्ठुरात्मा।' इत्युक्तवत्यां मनोरमायां विलासवती धीरमुवाच—

वैशम्पायनेत्यादिः—वैशम्पायनस्य आननम् (= मुखम्) तस्य यद् दर्शनम् (= विलोकनम्) तस्मिन् उत्सुकम् (= उत्कण्ठितम्), माम् = चन्द्रापीडम्, अविकल्पम् = विकल्पनारहितं यथा स्यात् तथा, विसर्जय = गमनार्थमाज्ञां देहि। सा = मनोरमा, तु एवम् = अनेन प्रकारेण, अभिहिता = कथिता, सती, प्रत्युवाच = प्रत्यवादीत्। किं तदिति वर्णयति—तात-इत्यादिना। हे तात = हे पुत्रक !, आत्मगमनवचसा = स्व-प्रयाणवचनेन, माम् = मनोरमाम्, किम् = किमर्थम्, समाश्वासयसि = सान्त्वनां प्रददासि, धैर्यं प्रयच्छसि। मे = मम, मनोरमायाः, त्वयि = भवति, चन्द्रापीडे, तस्मिन् = वैशम्पायने, च, कः = अज्ञातः, विशेषः = भेदः, खलु = निश्चयेन ? न कोऽपि भेद इति तदाशयः। तत् = तस्मात् कारणात्, एकधा = एकवारम्, कठिन-हृदयम् = कठोरचित्तम्, निर्दयम्, तम् = वैशम्पायनम्, एकम् = केवलम्, न, पश्यामि = विलोकयामि किन्तु त्वां तु पश्यामीति तदाशयः। पुनः = परन्तु, त्वयि = भवति चन्द्रापीडे, गते = प्रयाते, सति, तस्य = वैशम्पायनस्य, अदर्शने = अनवलोकने, जीवितेत्यादिः—जीवितस्य (= जीवनस्य, प्राणधारणस्य) प्रतिबन्धः (= निःसरणे विघ्नः) तस्मिन् हेतुभूतम् (= कारण-भूतम्) यदपि, त्वद्दर्शनम् = भवदवलोकनम् तदपि, दूरीभवति = अपगच्छति। वैशम्पायन-स्याभावे तव दर्शनेनैव तस्यापि दर्शनं करोमि। किन्तु त्वयि गते सति युवयोरुभयोर्दर्शनाभावो भविष्यतीति तदाशयः। तत् = तस्मात्, वत्सेन = पुत्रेण चन्द्रापीडेन, न, गन्तव्यम् = प्रस्थातव्यम्। हि = यस्मात्, युवयोः = भवतोर्मध्ये, एकेन = द्वितीयरहितेन अपि, आवाम् = विलासवती-मनोरमे, द्वे = उभे, अपि, पुत्रवत्यौ = सुतवत्यौ, स्वः = भवावः। असौ = एषः, वैशम्पायनः, निष्ठुरात्मा = कठोरचेताः, न, आगतः = आयातः, नाम = इदं वाक्यालङ्कारे।

होनेवाले तथा वैशम्पायन के मुखदर्शन के लिये उत्सुक मुझे आप बिना सोचे विचारे बिदा कर दीजिए।' ऐसे कही गई उस (मनोरमा) ने उत्तर दिया—'बेटा, अपने गमन के वचन से मुझे क्यों आश्वासन दे रहे हो ? मेरे लिए तो तुममें और उस वैशम्पायन में क्या भेद है ? अर्थात् कोई भेद नहीं है। एक बार (इस समय) तो उस कठोर हृदयवाले वैशम्पायन को ही नहीं देख पा रही हूँ। परन्तु तुम्हारे भी चले जाने पर तो उसके न दिखाई देने पर प्राणों को रोक रखने में हेतुभूत तुम्हारा दर्शन भी दूर हो जा रहा है अर्थात् वैशम्पायन के अभाव में भी तुम्हें देखकर प्राण धारण किये हुई थी किन्तु जब तुम भी चले जाओगे तो फिर किसे देखकर जीवित रहूँगी। इसलिए बेटा तुम मत जाओ। तुम दोनों में से किसी एक के भी रहने पर हम दोनों पुत्रवती हैं। हो सकता है कि [तुम्हारे जाने पर भी] वह निष्ठुर हृदयवाला वैशम्पायन वापस न भी आये।' इस प्रकार से मनोरमा द्वारा कहे जाने पर रानी विलासवती ने बड़े धैर्य के साथ कहा—"प्रिय सखि ! तुम्हारी

१. दर्शनोत्सवमविकल्पं त्वं मामेव विसर्जय। २. कठिनहृदया। ३. दयितस्या०।

'प्रियसखि, तव मम चैवमेतद्यथा त्वयोक्तम्। अयं पुनर्वैशम्पायनेन विना कं पश्यतु? तदास्ताम्। किमेतन्निवारयसि। वारितेनाप्यनेन नैव स्थातव्यम्। मन्ये च पित्राप्ययमेतदेवाकलय्य गमनायानुमोदितः। तद्यातु। वरमावाभ्यां कतिपयदिवसाननयोरप्यदर्शनकृतान् क्लेशाननुभूतान्न पुनरस्य वैशम्पायनाननानवलोकनदुःखदीनं दिने दिने वदनमीक्षितुम्[1]।

इतीति। इति = पूर्वोक्तम्, मनोरमायाम् = वैशम्पायनजनन्याम्, उक्तवत्याम् = कथितवत्याम्, सत्याम्, विलासवती = महाराज्ञी चन्द्रापीडजननी, धीरम् = गम्भीरं यथा स्यात् तथा, उवाच = जगाद। हे प्रियसखि! = हे प्रियालि!, तव = भवत्याः, मम = विलासवत्याः, च, एतत् = इदम्, एवम् = इत्थम्, एव, यथा = येन प्रकारेण, त्वया = भवत्या मनोरमया, उक्तम् = कथितम् पुनः = परन्तु, अयम् = एष चन्द्रापीडः, वैशम्पायनेन = एतन्नामकेन मित्रेण, विना = ऋते, कम् = अज्ञातं जनम्, पश्यतु = विलोकयतु? न कमपीति भावः। तत् = तस्मात्, आस्ताम् = तिष्ठतु, तव विचार इति शेषः। एतम् = अमुं चन्द्रापीडम्, किम् = किमर्थम्, निवारयसि = अवरुणत्सि, गमनादिति शेषः। वारितेन = अवरुद्धेन, निषिद्धेन, अपि, अनेन = अमुना चन्द्रापीडेन, नैव, स्थातव्यम् = स्थेयम्। मन्ये = विचारयामि जानामि वा, पित्रा = जनकेन, तारापीडेन, अपि, एतदेव = इदमेव, आकलय्य = विचार्य, गमनाय = प्रस्थानाय, अनुमोदितः = आज्ञप्तः। तत् = तस्मात्, यातु = व्रजतु, वैशम्पायनानयनायेति शेषः। आवाभ्याम् = त्वया मया चोभयीभ्याम्, कतिपयदिवसान् = कतिचिद्दिनानि, अनयोः = चन्द्रापीड-वैशम्पायनयोरुभयोः, अपि, अदर्शनकृतान् = अनवलोकनजन्यान्, अननुभूतान् = अननुभवविषयीकृतान्, क्लेशान् = कष्टानि, वरम् = कल्याणकरम्, पुनः = परन्तु, वैशम्पायत्यादि—वैशम्पायनस्य (= एतन्नामकस्य मित्रस्य) यद् अनवलोकनम् (= दर्शनाभावः) तस्माद् यद् दुःखम् (= क्लेशः) तेन दीनम् (= दैन्ययुक्तम्, विवर्णम्), अस्य = चन्द्रापीडस्य, वदनम् = मुखम्, दिने-दिने = प्रतिदिवसम्, ईक्षितुम् = अवलोकयितुम् न = नैव, वरम् = शुभमिति भावः। अत्र वाक्ये 'वरम्' इत्यस्य योगे द्वितीयायाः प्रयोगश्चिन्त्यः। अत एव अत्र 'मन्ये' इत्यादि क्रियामाक्षिप्य कर्मणि द्वितीया उपपाद्या, टिप्पणीस्थपाठस्यायमाशयः—'कतिपयदिवसान् यावत् आवाभ्यामनुभूताः अनयोरदर्शनकृताः क्लेशा अपि वरम्, वैशम्पायनानवलोकनदुःखेन दीनं दिने दिने अस्य (चन्द्रापीडस्य) मुखम् ईक्षितुं, न पुनर्वरम्' इति। तत् = तस्मात्, उत्तिष्ठ = उत्थानं कुरु।

और मेरी दशा वैसी ही है जैसी कि तुमने कही है। किन्तु यह चन्द्रापीड वैशम्पायन के अभाव में किसे देखे। अतः इस बात को छोड़ दीजिए। तुम इसे क्यों रोक रही हो। क्योंकि रोके जाने पर भी यह यहाँ नहीं रहेगा, रुकेगा। मैं समझती हूँ कि इसके पिता (राजा तारापीड) ने भी यही सब सोंचकर इसको जाने की अनुमति दे दी। हम दोनों को कुछ दिनों तक इन दोनों के न देखने से होनेवाले तथा पहले कभी भी अनुभव न किये गये कष्टों का सह लेना ठीक है न कि वैशम्पायन के मुख को न देख पाने के कारण होनेवाले दुःख से दीन (उदास) इसके मुख को रोज-रोज देखना अर्थात् प्रतिदिन इसका कुम्हलाया मुख देखने की तुलना में कुछ दिन दोनों का मुख न देखना ठीक है। इसलिए उठो,

१. 'आवाभ्याम् अननुभूतान् क्लेशान् वरम्'—इत्यादि-प्रकाशिते प्रसिद्धे पाठे व्याकरणाशुद्धिरर्थासङ्गतिश्च। 'अतः 'वरमाभ्यां कतिपयदिवसाननयोरप्यदर्शनकृताः क्लेशा अनुभूताः, न पुनरस्य वैशम्पायनानवलोकन-दुःखदीनं दिने दिने मुखमीक्षितुम्' इति पाठो युक्ततरः। एतस्याशयः संस्कृतव्याख्यायां द्रष्टव्यः।

तदुत्तिष्ठ गच्छावो गमनसंविधानाय वत्सस्य चन्द्रापीडस्य।' इत्यभिदधत्येव मनोरमां हस्ते गृहीत्वोत्थाय चन्द्रापीडेनानुगम्यमाना निजावासमयासीत्।

चन्द्रापीडोपि मातुः समीपे गमनालापेनैव क्षणमिव स्थित्वा गृहमगात्। तत्र चापनीतसमायोगो गमनायोत्ताम्यता हृदयेन गणकानाहूय रहस्याज्ञापितवान्—'यथा विना [1]परिलम्बेन मे गमनं भवति तथा भवद्भिरार्यशुकनासाय पृच्छते ताताय वा दिनमावेदनीयम्।' इत्येवमादिष्टास्ते व्यज्ञापयन्—'देव, यथा सर्व एव ग्रहाः स्थिताः'[2] तथास्मन्मतेन देवस्य गमनमेव वर्तमाने न शस्यते। अपरमपि, कर्मानुरोधाद्व्रजेच्छैव कालः। [3]तत्रापि

वत्सस्य = पुत्रस्य, चन्द्रापीडस्य, गमन-संविधानाय = यात्राप्रबन्धकरणाय, गच्छावः = व्रजावः। प्रतिदिनं दीर्घकालपर्यन्तं चन्द्रापीडस्य विषण्णवदनस्य दर्शनापेक्षया किञ्चित्कालपर्यन्तमस्य दर्शनाभाव एव श्रेयस्कर आवाभ्यामिति तदाशयः। इति = पूर्वोक्तम्, अभिदधती = कथयन्ती, एव, मनोरमाम् = वैशम्पायन-मातरम्, हस्ते = पाणौ, गृहीत्वा = आदाय, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, चन्द्रापीडेन, अनुगम्यमाना = अनुस्रियमाणा, निजावासम् = स्वभवनम्, अयासीत् = अगमत्।

तदा चन्द्रापीडः किमकरोदिति वर्णयति—चन्द्रापीडोऽपीत्यादिना। चन्द्रापीडः, अपि, मातुः = जनन्याः विलासवत्याः, समीपे = सविधे, गमनालापेन = प्रस्थानविषयकवार्त्तया, एव, क्षणम् = स्वल्पकालम्, इव, स्थित्वा = निषद्य, गृहम् = स्वभवनम्, अगात् = अव्रजत्। तत्र = स्वभवने; च, अपनीत-समायोगः = दूरीकृतवसनाभरणादिः, गमनाय = प्रस्थानाय, उत्ताम्यता = उत्कण्ठामाश्रयता, हृदयेन = मनसा, गणकान् = ज्योतिर्विदः, आहूय = आकार्य, रहसि = एकान्ते, आज्ञापितवान् = निर्दिष्टवान्। यथा = येन प्रकारेण, परिलम्बेन = विलम्बेन, विना = ऋते, मे = मम चन्द्रापीडस्य, गमनम् = प्रस्थानम्, भवति = जायते, तथा = तेनैव प्रकारेण, भवद्भिः = युष्मद्भिः, पृच्छते = प्रश्नं कुर्वते, आर्यशुकनासाय = पूज्यशुकनासाय, वा = अथवा, ताताय = जनकाय तारापीडाय, दिनम् = प्रस्थानदिवसः, आवेदनीयम् = सूचनीयम्। इति, एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, आदिष्टाः = आज्ञप्ताः, ते = गणकाः, व्यज्ञापयन्=न्यवेदयन्। यथा = येन प्रकारेण, सर्वे = समस्ताः, एव, ग्रहाः = शन्यादयः, स्थिताः = विद्यमानाः, विभिन्नराशिष्विति शेषः, तथा = तदनुसारम्, अस्मन्मतेन = अस्माकं विचारेण, वर्तमाने = साम्प्रतम्, देवस्य = युवराजस्य, गमनम् = प्रस्थानम्, एव, न, शस्यते = श्लाघ्यते, आनुकूल्यं

बेटा चन्द्रापीड के प्रस्थान की तैयारी करने के लिए हम दोनों चलें।' इस प्रकार से कहती हुई महारानी मनोरमा को हाथ से पकड़कर, उठकर, चन्द्रापीड द्वारा अनुगत होती हुई, (चन्द्रापीड को अपने पीछे ले जाती हुई) अपने भवन में चली गई।

चन्द्रापीड भी माता के पास यात्रा-सम्बन्धी बातचीत के द्वारा ही कुछ देर तक रुककर अपने भवन में चला गया। वहाँ अपने राजसी वस्त्रादि को उतारकर,प्रस्थान करने के लिए उतावले होनेवाले हृदय से ज्योतिषियों को बुलवाकर एकान्त में (गुप्तरूप से)आज्ञा दी—"जिस प्रकार से बिना बिलम्ब के मेरा गमन हो सके उसी प्रकार से आप लोग [यात्रा के सम्बन्ध में] पूछते हुए आर्य शुकनास से अथवा पिता जी से [यात्रा का] दिन बतलाइयेगा।" इस प्रकार से आज्ञा दिये जाने पर उन सभी ज्योतिषियों ने निवेदन किया—'स्वामी ! सभी ग्रहों की जैसी स्थिति है उसके अनुसार तो हम लोगों के मत में

---

१. बिलम्बेन। २. तस्मात्। ३. तत्र न।

न कार्यमेवाहर्निरूपणया। राजा कालस्य कारणम्। यस्यामेव वेलायां चित्तवृत्तिः[1] सैव वेला सर्वकार्येषु।' इति विज्ञापिते मौहूर्तिकैः पुनस्तानब्रवीत्—'तातेनैवमादिष्टमिति ब्रवीमि। अन्यदात्ययिकेषु[2] कार्येषु कार्यपराणां प्रतिक्षणोत्पादिषु च दिवसनिरूपणैव कीदृशी। तत्तथा कथयिष्यथ यथा श्व एव गमनं भवेत्' इति। 'देवः प्रमाणमि'त्यभिधाय गतेषु च तेषु शरीरस्थितिकरणायोदतिष्ठत्। [3]निर्वर्तितशरीरस्थितिं च मौहूर्तिकास्ते पुनः प्रविश्य शनैर्व्य-

धारयति। मुहूर्ताभावेऽपि गमनप्रकारमुपपादयते—अपरमपीत्यादिना। अपरम् = एतदतिरिक्तमपि निमित्तं वक्तुं शक्यते इति शेषः। कर्मानुरोधात् = विशिष्टकर्म अनुरुध्य, कार्यविशेषस्य गौरवत्वादिति भावः, राजेच्छा = नृपस्य ईहा, एव, कालः = शुभसमयः। तत्र = राज्ञ इच्छायाम्, अपि, तदनुसारेण मुहूर्तेऽपीति भावः, अहर्निरूपणया = दिनस्य विचारेण, न, कार्यम् = कृत्यम्; प्रयोजनमिति भावः। यतो हि, राजा = नृपः, एव, कालस्य = समयस्य, कारणम् = निमित्तम्, भवति। राजा यदा यथेच्छति तदा तथैव शुभमशुभं वा मुहूर्तं स्वीकुर्वन्ति जना इति तेषामाशयः। यस्याम्, एव, वेलायाम् = समये, चित्तवृत्तिः = मनोवृत्तिः किमपि विधातुमिति शेषः, सा, एव, सर्वकार्येषु = सकलकर्मसु, वेला = समयः, शुभमुहूर्त्तं इति भावः। इति = एवम्, मौहूर्तिकैः = गणकैः, विज्ञापिते = निवेदिते सति, पुनः = भूयः, तान् = मौहूर्तिकान्, अब्रवीत् = अवोचत्। तातेन = पित्रा, एवम् = शुभगमनदिवसान्वेषणादिकम्, आदिष्टम् = आज्ञप्तम्, इति = अस्मात् हेतोः, ब्रवीमि = कथयामि। अन्यदा = अन्यस्मिन् समये, आत्ययिकेषु = विलम्बसहेषु, ['आत्यन्तिकेषु' इति पाठे 'अवश्यकरणीयेषु' इत्यर्थः] कार्येषु=कृत्येषु, प्रतिक्षणोत्पादिषु = प्रतिपलभाविषु कार्यपराणाम् = विधेयसम्पादनतत्पराणां जनानाम्, कार्येषु च, दिवसनिरूपणा=शुभदिनविचारणा, एव, कीदृशी = किम्प्रकारा? तेषु कालविचारो न विधेय इति तदाशयः। तत् = तस्मात्, तथा = तेनैव प्रकारेण, कथयिष्यथ = वदिष्यथ, मुहूर्त्तमिति शेषः, यथा = येन प्रकारेण, श्वः = आगामिनि दिवसे, एव, गमनम् = प्रस्थानम्, ममेति शेषः, भवेत् = जायेत, इति = कथन-समाप्तौ। देवः = स्वामी, प्रमाणम् = प्रमासाधनम्, यथा आदिशसि तथैव सम्पादयिष्याम इति तद्भावः। इति = एवम्, अभिधाय = उक्त्वा, तेषु = गणकेषु, गतेषु = प्रयातेषु, सत्सु, शरीर-स्थितिकरणाय = शारीरिककृत्यस्नानादि-सम्पादनाय, उदतिष्ठत् = उत्थितोऽभूत्। ते, गणकाः, पुनः = भूयः, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, निर्वर्तितशरीरस्थितिम् = सम्पादित-शारीरिक-

इस समय आपका जाना ही शुभ नहीं है। फिर भी कार्य के अनुरोध से राजा की इच्छा ही काल अर्थात् शुभ मुहूर्त का समय बन जाती है। उसमें (शुभ-अशुभ) दिन के विचार का कोई फल नहीं होता है। क्योंकि राजा ही वास्तव में काल होता है। जिस समय [राजा की कार्य करने की] मनोवृत्ति होती है वही सभी कार्यों में मुहूर्त बन जाता है।'—इस प्रकार से ज्योतिषियों के द्वारा कहे जाने पर वह (चन्द्रापीड) फिर से उनसे कहने लगा—'पिताजी ने ऐसी आज्ञा दी थी अर्थात् शुभ मुहूर्त पूछने के लिये कहा था, इसीलिए मैं आप लोगों से ऐसा कह रहा हूँ। अन्यथा अथवा अन्य समयों में तो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यक तथा क्षण क्षण में होने वाले कार्यों में लगे हुए लोगों के लिये शुभाशुभ दिन का विचार कैसा? अर्थात् उन्हें मुहूर्त देखने का अवसर कहाँ मिलता है। इसलिए आप लोग वैसे ही कहना,मुहूर्त बताना जिससे कि कल ही मेरा प्रस्थान (यात्रा) हो सके।' 'जैसी महाराज की आज्ञा'—ऐसा कहकर उन सभी ज्योतिषियों के चले जाने पर वह शारीरिक क्रिया

१. चित्तनिर्वृतिः। २. आत्यन्तिकेषु। ३. निर्वर्तित॰।

वेदयन्—'कृतोऽस्माभिर्देवादेशः। सिद्धश्च तनयविरहविक्लवतयार्यशुकनासस्य। तदतिक्रान्ते श्वस्तनेऽहनि रात्राावितः प्रस्थातव्यं देवेन।' इत्यावेदिते तैः 'साधु कृतमि'ति मुदितचेतास्तानभिष्टुत्य दृष्टिविषयवर्तिनीमेव कादम्बरीं वैशम्पायनं च मन्यमानोऽप्रविष्टायामेव[1] पत्रलेखायां'परापतामी'त्यग्र[2]प्रधावितेनावधारयंश्चेतसा चतुःसमुद्रसारभूतानिन्द्रायुधरयानुगामिनस्तुरंगमानगणेयानविगणितुरंगगमनखेदानुत्साहिनो राजपुत्रांश्च निरूपयन्ननन्यकर्मा तं

कृत्यम्, चन्द्रापीडम्, शनैः शनैः = मन्दं मन्दम्, न्यवेदयन् = व्यज्ञापयन्। अस्माभिः = गणकैः, देवादेशः = भवदाज्ञा, कृतः = पूर्णीकृतः। यथा भवता निर्दिष्टं तथैवास्माभिः कृतमिति भावः। आर्यशुकनासस्य, तनयेत्यादिः—तनयः (= पुत्रो वैशम्पायनः) तस्य यो विरहः (= वियोगः) तेन विक्लवः (= विह्वलः) तस्य भावस्तत्ता तया, सिद्धः = सफलीभूतः, च। यथाऽस्माभिरुक्तं तथैव स्वीकृतं शुकनासेन। तेन तत्र न किमपि वैमत्यं वैपरीत्यं वा प्रकटितम्। तस्मात् सफलतापि जातेति भावः। तत् = अस्मात् हेतोः, अतिक्रान्ते = व्यतीते, श्वस्तने = श्वोभवे, अहनि = दिने, रात्रौ = निशायाम्, इतः = अस्मात् प्रदेशात्, देवेन = श्रीमता युवराजेन, प्रस्थातव्यम् = प्रस्थानं करणीयम्। इति = इत्थम्, तैः = मौहूर्त्तिकैः, आवेदिते = निवेदिते सति, साधु = प्रशंसनीयम्, कृतम् = विहितम्, इति, मुदितचेताः = प्रसन्नचित्तः, सन्, तान् = गणकान् अभिष्टुत्य = प्रशस्य, तेषां प्रशंसां कृत्वेति भावः, दृष्टिविषयवर्तिनीम् = प्रत्यक्षगताम्, एव, कादम्बरीम् = स्वप्रेयसीम्, वैशम्पायनम् = स्वमित्रम्, च, दृष्टिविषयवर्तिनमिति शेषः, मन्यमानः = स्वीकुर्वाणः, जानन्, पत्रलेखायाम् = एतन्नामिकायां स्वपरिचारिकायाम्, अप्रविष्टायाम् = अनागतायाम्, एव, सत्याम्, परापतामि = आगच्छामि, इति = एवम्, अग्रप्रधावितेन = पुरः प्रस्थितेन, चेतसा = मनसा अवधारयन् = निश्चिन्वन्, चतुरित्यादिः = चत्वारः (= चतुःसङ्ख्याकाः) ये समुद्राः (= पूर्वादि-सागराः) तेषु सारभूतान् (= सर्वोत्कृष्टान्), इन्द्रायुधेत्यादि—इन्द्रायुधस्य (= एतन्नामकस्य निजाश्वस्य) यो रयः (= वेगः) तम् अनुगच्छन्ति (= अनुसरन्ति) इति तादृशान्, तत्तुल्यवेगवत इति भावः, अगणेयान् = गणयितुमशक्यान् असंख्यान्, तुरङ्गमान् = अश्वान्, तथा, अविगणितेत्यादिः—अविगणितः (=न गणितः, चिन्तितः) तुरङ्गमैः (= अश्वैः) गमनेन (= चलनेन) खेदः (= श्रमः) यैस्तादृशान्, तथा, उत्साहिनः= गमनोत्साहयुक्तान्, राजपुत्रान् = नृपसुतान् च, निरूपयन् = विलोकयन्, विचिन्वन् वा, चन्द्रापीडः,

(स्नानादिकृत्य) सम्पादित करने के लिये उठा। उन ज्योतिषियों ने दुबारा प्रवेश करके, शारीरिक कृत्य सम्पादित कर चुके चन्द्रापीड से धीरे से निवेदन किया—'हम लोगों ने आपकी आज्ञा का पालन कर दिया है। और आर्यशुकनास के पुत्रविरह के कारण व्याकुल होने से आज्ञा सफल भी हो गई है। अतः कल का दिन बीत जाने पर रात में आप यहाँ से प्रस्थान करें।' उनके द्वारा ऐसा कहा जाने पर 'आप लोगों ने बहुत अच्छा किया है' ऐसा कहकर प्रसन्नचित्त होता हुआ उनकी प्रशंसा करके, कादम्बरी तथा वैशम्पायन इन दोनों को अपनी आँखों के समक्ष ही उपस्थित समझता हुआ, 'पत्रलेखा के (वहाँ) पहुँचने के पहले ही मैं पहुँच जाता हूँ' इस प्रकार से, आगे-आगे दौड़कर जाते हुए चित्त से निश्चय करता हुआ, चारों समुद्रों के सारभूत (सर्वोत्कृष्ट), इन्द्रायुध के वेग का अनुकरण करनेवाले अर्थात् उसके पीछे-पीछे लगातार दौड़नेवाले, अगणित घोड़ों को तथा घोड़ों से चलने के श्रम (थकान) को कुछ भी न समझ वाले, उसकी चिन्ता न करने वाले और (दौड़ने के) उत्साही राजकुमारों को

१. प्रविष्टायामेव। २. अग्रतः।

दिवसमेकां च यामिनीं कथं कथमप्यस्थात् ।

अथानुरक्तकमलिनीसमागमाप्राप्तिसंतापादिव समं दिवसेनास्तमुपगतवति तेजसां पत्यौ, तेजःपतिपतनाच्चितानलमिव संध्यारागमपराशया सह विशति पश्चिमे [1]गगनभागे, संध्यानलस्फुलिङ्गनिकर इव स्फुरति तारागणे, दिवसविरामान्मूर्च्छागमेनेव तमसा निमील्यमानेषु दिङ्मुखेषु, निवासाभिमुखमुखरेषु वियद्वियोगदुःखादिव [2]कृतार्तप्रलापेषु वयःसमूहेषु,

---

तम्, दिवसम् = दिनम्, एकाम्, यामिनीम् = निशां च, कथं कथमपि = यथा कथञ्चित्, महता कष्टेन, अस्थात् = स्थितोऽभूत्, प्रतीक्षां चकारेति भावः ।

चन्द्रापीडस्य यात्राप्रक्रमं वर्णयितुमाह—अथेत्यादिना । अथ = तदनन्तरम् । अनुरक्तेत्यादिः—अनुरक्ता (= लोहितवर्णा, अनुरागयुक्ता च) या कमलिनी (= पद्मिनी) तस्या यः समागमः (= सम्मिलनम्, सम्बन्धः) तस्य या अप्राप्तिः (= अलाभः) तस्य सन्तापः (= क्लेशः) तस्मात्, इव, दिवसेन = दिनेन, समम् = सार्धम्, तेजसां पत्यौ = दिनकरे भगवति, अस्तम् = अस्ताचलम्, उपगतवति = प्राप्तवति सति, यदा सूर्योऽस्तं गतस्तदेति भावः, तेजःपति-पतनात् = सूर्यस्य अस्तं गमनात्, अपराशया = पश्चिमदिशा, सह=समम्, पश्चिमे = पश्चिमदिग्वर्तिनि, गगनभागे= वियदेकदेशे, चितानलम् = चितावह्निम्, इव, सन्ध्यारागम् = सायङ्कालिकलौहित्यम्, विशति = प्रवेशं कुर्वति सति, [अत्र पूर्वत्र च वाक्ये नायकनायिकाव्यवहारसमारोपात् समासोक्तिरलङ्कारः, सापि उत्प्रेक्षोत्थापितेति बोध्यम् । अग्रेऽपि एवमेव बोध्यम् ।] सन्ध्येत्यादिः—सन्ध्यानलस्य (= सन्ध्यारूपिवह्नेः) स्फुलिङ्गाः (= कणाः) तेषां निकरे (= समूहे), इव, तारागणे = नक्षत्रराशौ, स्फुरति = दीप्यमाने, सति, अत्राप्युत्प्रेक्षा न तूपमा । दिवसविरामात् = दिनस्य समाप्तेः, अवसानात्, मूर्च्छागमेन = मोहागमनेन, इव, तमसा = अन्धकारेण, दिङ्मुखेषु = दिशाननेषु, निमील्यमानेषु= संकोचं प्राप्यमाणेषु, सत्सु । निवासेत्यादिः–निवासः (=आवासस्थानम्) तस्य अभिमुखाः (=सम्मुखाः) मुखराः (= शब्दायमानाः) च तेषु, वियदित्यादिः—वियतः (= गगनस्य) यः वियोगः (=विरहः) तस्य दुःखात् (= कष्टात्), इव, कृतेत्यादिः—कृतः (= विहितः) आर्त्तः (= करुणः) प्रलापः (= विलपनम्) यैस्तेषु, तादृशेषु, वयःसमूहेषु = पक्षिसंघेषु, सत्सु । जीवलोके = प्राणिवर्गे,

---

देखता हुआ, उनको साथ में ले जाने के विषय में विचार करता हुआ, अन्य सभी कार्यों को छोड़े हुआ, उस दिन और एक रात को जिस किसी प्रकार अर्थात् बहुत कष्ट से रुका रहा ।

इसके बाद अनुरक्त (लाल-लाल, प्रेमासक्त) कमलिनी (= नायिका) के साथ समागम प्राप्त न होने के सन्ताप से मानों दिन के साथ-साथ सूर्य अस्त हो चुका था । दिवापति सूर्य के अस्त हो जाने से पश्चिम दिशा के साथ-साथ पश्चिमी गगन भाग (आकाश का हिस्सा) चिता की आग के समान लाल-लाल सन्ध्या की लाली में प्रविष्ट हो गया । सन्ध्यारूपी आग के स्फुलिङ्ग कणों के समान तारागण स्फुटित होने (चमकने) लग गये । दिन के समाप्त हो जाने के कारण मूर्छा के आ जाने के समान अन्धकार द्वारा सभी दिशाओं के मुख बन्द कराये जाने लगे, अंधेरे से घेरे जाने लगे । अपने-अपने घोसलों की ओर शब्द करते हुए पक्षियों के समूह मानों आकाश के वियोग (छूटने) के दुःख

---

१. गगनदिग्भागे । २. कृतान्तप्रलापेषु ।

जनितप्रकाशं जन्मेव [1]समालोक्य दोषागमं निरालोकं गर्भमिव तमः प्रविष्टे पुनर्जीवलोके, निजालोकाद्विकासितपूर्वदिग्वधूवदने जन्मान्तरागत इवोदयगिरिवर्तिनि नक्षत्रसमागमसुखमनुभवति भगवति भूयो भूयः स्वकान्तिनिर्भरान्निष्कलङ्क इव नक्षत्रनाथे, विस्पष्टायां निशीथिन्याम्, प्रस्थानमङ्गले प्रणामायोपगतं चन्द्रापीडं पीडयान्तर्विलीयमानेव[2] बाष्पोत्पीडमपारयन्ती [3]पातुमत्यायताभ्यामपि नेत्राभ्यां कृतप्रयत्नाप्यमङ्गलशङ्कया विलासवती [4]मन्यु-

---

संसारे इति यावत्, जनितप्रकाशम् = विहितालोकम्, जन्म = जननम्, इव, आलोक्य = दृष्ट्वा, दोषागमम् = निशाया आगमनम्, निरालोकम् = अप्रकाशम्, गर्भम् = भ्रूणम्, कुक्षिम्, इव, पुनः = भूयः, तमः = अन्धकारम्, प्रविष्टे = निलीने सति। निजालोकात् = स्वकीय-प्रकाशात्, विकासितेत्यादिः—विकासितम् (= विकासं प्रापितम्, समुद्दीपितम्) पूर्वदिक् (= प्राची दिशा) एव वधूः (= स्नुषा) तस्याः वदनम् (= मुखम्) येन तस्मिन् तादृशे, जन्मान्तरागते=भवान्तराद् आयाते, इव, उदयगिरिवर्तिनि = उदयाचलस्थायिनि, भूयोभूयः = पुनः पुनः, स्वकान्तिनिर्भरात् = स्वदीप्त्यतिशयात् हेतोः, निष्कलङ्के = कलङ्कहीने, इव, भगवति = देवे, नक्षत्रनाथे = चन्द्रे, नक्षत्रेत्यादिः—नक्षत्राणाम् (= ताराणाम्) समागमः (= सम्मिलनम्) तस्य सुखम् (=सौख्यम्) अनुभवति = अनुभवविषयीकुर्वति, सति, उपभोगं कुर्वति सतीति भावः। अत्रापि उत्प्रेक्षोत्थापिता समासोक्तिर्बोध्या। निशीथिन्याम्=मध्यनिशायाम्, विस्पष्टायाम् = प्रकटायां सत्याम्, प्रस्थानमङ्गले = प्रयाणकालिक-माङ्गल्यानुष्ठाने, सति, प्रणामाय = नमस्काराय, प्रणत्यै, उपगतम् = समीपमायातम्, चन्द्रापीडम् = स्वपुत्रम्, पीडया = मानसिकव्यथया, अन्तर्विलीयमाना = मनसि विलयं प्राप्यमाणा, इव, अमङ्गलशङ्कया = अशुभकल्पनया, कृतप्रयत्ना = विहित-प्रयासा, अपि, आयताभ्याम् = विशालाभ्याम्, अपि, नेत्राभ्याम् = नयनाभ्याम्, बाष्पोत्पीडम् = अश्रुप्रवाहम्, पातुम् = धवितुम्, निवारयितुमिति भावः, अपारयन्ती = अशक्नुवती, असमर्था सती, विलासवती = चन्द्रापीडमाता, मन्युरागेत्यादिः—मन्युः (= दुःखं वैशम्पायने) रागः (= स्नेहः चन्द्रापीडे) च तयोर्य आवेगः (= आवेशः) तेन या गद्गदिका (= गद्गदध्वनिः, कण्ठावरोधः) तया उपरुध्यमानानि (= अवरोधं प्राप्यमाणानि) अक्षराणि (= वर्णाः) यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा, अवादीत्=

के कारण आर्त्त प्रलाप करने लगे, जोर-जोर से चिल्लाने लगे। प्रकाश को उत्पन्न करनेवाले जन्म को मानों देख लेने के बाद जीवलोक (सारा संसार) फिर दोबारा प्रकाशरहित रात्रि के आगमन को गर्भ के समान समझ कर अन्धकार में प्रविष्ट होने लगा। अपने प्रकाश द्वारा पूर्व दिशारूपी वधू के मुख को विकसित (खिला हुआ, प्रकाशित) करनेवाले, दूसरे जन्म से आये हुए जैसे, उदयाचल पर स्थित (तथा) बार-बार अपनी अत्यधिक कान्ति के समूह के कारण मानों निष्कलंक भगवान् चन्द्रमा नक्षत्रों = ताराओं के समागम के सुख का अनुभव करने लगा। अर्धं रात्रि जब पूर्णरूप से स्पष्ट हो गई। प्रस्थानकालिक मङ्गलकृत्य सम्पन्न हो गया। तब प्रणाम करने के लिये पधारे हुए चन्द्रापीड को, [अपनी] पीडा के कारण भीतर ही भीतर घुली सी जाती हुई, अमंगल की आशंका (भय) के कारण बहुत प्रयास करती हुई भी अपने बड़े-बड़े नेत्रों से भी आँसुओं के प्रवाह को न पी पाती हुई (न रोक पाती हुई) विलासवती [वैशम्पायन के अनागमन के] दुःख से और [चन्द्रापीड

---

१. जन्मेवालोक्य। २. निलीयमानेव। ३. निवारयितुम्। ४. मन्यूद्गमावेग०।

रागावेगगद्गदिकोपरुध्यमानाक्षरमवादीत्—

'तात, युज्यते ह्यङ्कलालितस्य गर्भरूपस्य प्रथमगमने गरीयसी हृदयपीडा, यस्मिन्प्रथममेवाङ्कादपैति। मम पुनर्नेदृशी प्रथमगमनेऽपि ते पीडा समुत्पन्ना यादृशी तव गमनेऽधुना। [1]दीर्यत इव मे हृदयम्। समुत्पाट्यन्त इव मर्माणि। उत्क्वथ्यत इव शरीरम्। [2]उत्प्लवत इव चेतः। विघटन्त इव संधिबन्धनानि। [3]निर्यान्तीव प्राणाः। न किंचित्समादधाति धीः। सर्वमेव शून्यं पश्यामि। न पारयाम्यात्मानमिव हृदयं धारयितुम्। धृतोऽपि बला-

---

अवोचत्। विलासवती अस्पष्टस्वरेण वक्तुमारेभे इति भावः। अत्र स्वाभाविकं वर्णनमतीव मनोहरं प्रतीयते।

सा विलासवती चन्द्रापीडं किमवादीदिति वर्णयति—तात-इत्यादिना। हे तात != हे वत्स !, अङ्कलालितस्य = क्रोडे परिपालितस्य, गर्भरूपस्य = भ्रूणस्वरूपस्य, बालकस्य, प्रथमगमने = आद्य-प्रस्थाने, गरीयसी = गुरुतरा, पीडा = व्यथा, क्लेशः, युज्यते = युक्ता कथयितुमनुभवितुं वा शक्यते, यस्मिन् = प्रथमगमने, प्रथमम् = आदौ, एव, अङ्कात् = क्रोडात्, अपैति = दूरीभवति, अन्यत्र गच्छतीत्यर्थः। पुनः = परन्तु, ते = तव चन्द्रापीडस्य, प्रथमगमने = आद्यप्रस्थाने, अपि, न, ईदृशी = एतत्प्रकारा, पीडा = व्यथा, समुत्पन्ना = सञ्जाता, यादृशी = यत्प्रकारा, अधुना = साम्प्रतं द्वितीयगमनकाले, तव = भवतश्चन्द्रापीडस्य, गमने = यात्रायाम्, उत्पन्नेति शेषः। मे = विलासवत्याः, हृदयम् = चित्तम्, दीर्यते = द्विधा जायते, इव। मर्माणि = कोमलस्थानानि, समुत्पाट्यन्ते = उत्खन्यन्ते, इव। शरीरम् = कायः, उत्क्वथ्यते = क्वाथतां प्राप्यते, अन्तस्तप्यते, इव। चेतः = स्वान्तम्, उत्प्लवते = उत्प्लुत्य निर्गच्छति, इव। सन्धिबन्धनानि = अवयवानां सम्मिलनस्य बन्धनस्य वा स्थानानि, विघटन्ते = भिद्यन्ते, इव। प्राणाः = असवः, निर्यान्ति = निर्गच्छन्ति, इव। धीः = बुद्धिः, किञ्चित् = किमपि, न, समादधाति = समाधानं विदधाति। सर्वमेव = समस्तमेव जगत्, शून्यम् = रिक्तम्, पश्यामि = विलोकयामि। आत्मानम् = आत्मतत्त्वम्, स्वम्, इव, हृदयम् = चित्तम्, धारयितुम् = अवस्थापयितुम्, अवलम्बयितुम्, न, पारयामि = शक्नोमि। धृतः = संयतः, अवरुद्धः, अपि, मे = मम, वाष्पोत्पीडः = अश्रुप्रवाहः, बलात् = हठात्,

---

के दुबारा चले जाने के कारण उसके प्रति] प्रेम के आवेग के कारण गद्गद् कण्ठ से लड़खड़ाते हुए अक्षरों में बोली—

'बेटा ! गोद में खिलाये, लाड़प्यार किये गये गर्भरूप बच्चे के पहले पहल बाहर गमन में हृदय में बहुत अधिक पीड़ा होना ठीक ही है, स्वाभाविक ही है क्योंकि उस गमन में पहली बार बच्चा गोद से दूर होता है। परन्तु तुम्हारे पहले पहल गमन में भी मेरी वैसी पीड़ा नहीं उत्पन्न हुई थी जैसी कि इस समय तुम्हारे गमन में हो रही है। हृदय फटा सा जा रहा है। मर्मस्थल टूटे से जा रहे हैं। शरीर उबला सा जा रहा है (काढ़ा सा पका जा रहा है)। मन [विक्षिप्त सा होकर] भाग सा रहा है। अवयवों की सन्धियों के जोड़ अलग-अलग से हो रहे हैं। प्राण निकले से जा रहे हैं। बुद्धि कोई भी समाधान नहीं कर पा रही हैं (कुछ भी नहीं समझ पा रही है)। सब कुछ सूनसान (खाली-खाली)देख रही हूँ। अपने स्वरूप के समान ही अपने हृदय को भी नहीं थाम पा रही हूँ,धारण कर पा रही हूँ। रोका गया भी अश्रुप्रवाह, जबरदस्ती बाहर निकल रहा है। तुम्हारे मङ्गल

---

१. यतो दीर्यते। २. उच्च्यवते। ३. उन्मथ्यत इव मनः, निर्यान्तीव प्राणाः।

दागच्छति मे बाष्पोत्पीडः। मुहुर्मुहुः समाहितापि मङ्गलसंपादनाय ते चलति मतिः। न जानाम्येव किमुत्पश्यामीति। किंनिमित्तं चेयमीदृशी मे हृदयपीडेत्येतदपि न वेद्मि। किं[1] बहुभ्यो दिवसेभ्यः कथमप्यागतो मे वत्सो झटित्येव पुनर्गच्छति? किं वैशम्पायन-वियोगादुद्विग्नस्य गमनमेकाकिनस्ते समुत्प्रेक्ष्येति?[2] न पुनर्वैशम्पायन-वृत्तान्तादात्मन एव[3]दुःखिततयेति। न चैवं विधया पीडया वैशम्पायनानयनाय गच्छतस्ते गमनं निवारयितुं

आगच्छति = आयाति, निःसरतीति भावः। मुहुर्मुहुः = बारं बारम्, मङ्गलसम्पादनाय = श्रेयोविधानाय, समाहिता = स्थिरीकृता, दृढीकृता, अपि, मतिः = बुद्धिः, चलति = चञ्चला भवति। न, जानामि = वेद्मि, एव, किम् = अज्ञातम्, उत्पश्यामि = उत्प्रेक्षे, सम्भावयामि। इयम् = एषा, ईदृशी = एतत्प्रकारा, मे = मम, हृदयपीडा = मनोव्यथा, किन्निमित्तम्—कि निमित्तम् (= कारणम्) यस्मिन् तद् यथा स्यात् तथा, इति, एतदपि = इदमपि, न वेद्मि = अवगच्छामि।

साम्प्रतं विलासवत्याः विकल्पान् प्रस्तौति–किं बहुभ्य इत्यादिना। किम्=इदं प्रश्ने, बहुभ्यः = प्रचुरेभ्यः, दिवसेभ्यः=दिनेभ्यः, दीर्घकालानन्तरमिति भावः, मे=विलासवत्याः, वत्सः=पुत्रः चन्द्रापीडः, कथमपि = महता प्रयासेन, मम सौभाग्येन वा, आगतः = आयातः, पुनः = भूयः, झटिति = सद्य एव, गच्छति = प्रयाति, इति हेतोः मे ईदृशी पीडा समुत्पन्ना? अथवा, किम् = इदमपि, प्रश्ने, वैशम्पायन-वियोगात् = चन्द्रापीडस्य सुहृदो विरहात्, उद्विग्नस्य = उद्वेगयुक्तस्य, खिन्नस्य, एकाकिनः = अद्वितीयस्य, ते = तव चन्द्रापीडस्य, गमनम् = प्रस्थानम्, उत्प्रेक्ष्य = सम्भाव्य, ईदृशी पीडा समुत्पन्नेति अत्रापि योज्यम्। वैशम्पायन-वृत्तान्तात् = वैशम्पायनानागमनोदन्तात् कारणात्, आत्मनः = स्वस्याः विलासवत्याः, एव दुःखिततया = खिन्नतया, न पुनः, एतादृशी पीडा समुत्पन्ना। एवं विधया = एतादृश्या, पीडया = व्यथया, वैशम्पायनानयनाय = वैशम्पायनमत्र सम्प्रापयितुम्, गच्छतः = प्रस्थानं कुर्वतः, ते = चन्द्रापीडस्य, गमनम् = प्रयाणम्, निवारयितुम्= अवरोद्धुम्, मम वाणी = वाक्, न, पारयति = समर्था भवति। पुनः = परन्तु, मम, हृदयम् = स्वान्तम्, त्वदीयम् = भवदीयम्, चन्द्रापीडस्य, गमनम् = प्रस्थानम्, न, इच्छति = अभिलषति,

---

का सम्पादन करने के लिये बार-बार संभाली (स्थिर की) गई भी बुद्धि चञ्चल हो जा रही है; इधर-उधर चली जा रही है। मैं नहीं जानती कि मैं क्या गलत देख रही हूँ। मैं यह भी नहीं जान पा रही हूँ कि यह मेरी पीडा किस कारण से है। क्या बहुत दिनों के बाद किसी प्रकार वापस लौटा मेरा बेटा फिर से तुरन्त वापस जा रहा है? अथवा क्या वैशम्पायन के वियोग से दुःखी अकेले-अकेले तुम्हारे गमन को देखकर [यह पीड़ा हो रही है]? न कि वैशम्पायन की घटना के कारण स्वयं के ही दुःखी होने से [ऐसी पीड़ा हो रही है]? और इस प्रकार की पीड़ा से भी मेरी वाणी वैशम्पायन को वापस लाने के लिये तुम्हारा जाना नही रोक सकती है अर्थात् तुम्हें रोकने की भावना नहीं है। परन्तु मेरा हृदय (मन) तुम्हारा जाना (यात्रा) चाहता ही नहीं है। इस कारण मेरी इस प्रकार

---

१. 'किम्' इति नापि पठ्यते। २. मन्तः, उत, पुनः पुनः। ३. दुःखितया।

पारयति वाणी। हृदयं पुनर्नेच्छत्येव त्वदीयं गमनम्। तदीदृशीं मे पीडां [1]विज्ञाय यथा पुरा स्थितं न तथा [2]क्वचिदासङ्गमाबध्यातिदीर्घकालमायुष्मता स्थातव्यम्। अस्य चार्थस्य कृते साञ्जलिबन्धेन शिरसाभ्यर्थये वत्सम्।' इत्यादिशन्तीं स्वमातरं सुदूरं प्रसारितावनम्रमूर्तिश्चन्द्रापीडो व्यजिज्ञपत्—'अम्ब[3] तदा दिग्विजयप्रसङ्गात् स्थितम्[4]। अधुना [5]पुनरयमेव कालक्षेपो यावत्तमुद्देशं परापतामि। तत्पुनश्चिरागमनकृता न भावनीया मनागपि[6] हृदये पीडा त्वया।' इत्येवं विज्ञप्ता चन्द्रापीडेन सन्निरुध्य बाष्पवेगान् कथं कथमपि संस्तभ्यात्मानं

एव। मम हृदयं तव गमनस्यानुमिर्ति कथमपि न ददातीति तस्या भावः। साम्प्रतं स्ववक्तव्यमुपसंहरति विलासवती—तदित्यादिना। तत्=तस्मात्, ईदृशीम् = एतादृशीम्, मे=मम, तव मातुः, पीडाम्= व्यथाम्, विज्ञाय = ज्ञात्वा, बुद्ध्वा, यथा = येन प्रकारेण, पुरा = पूर्वस्मिन् प्रस्थानकाले, स्थितम् = स्थितिर्विहिता, तथा = तेन प्रकारेण, क्वचित् = कस्मिंश्चित् स्थाने, आसङ्गम् = आसक्तिम्, सम्मिलनम्, आबध्य = कृत्वा, आयुष्मता = चिरञ्जीविना, अतिदीर्घकालम्=बहुसमयपर्यन्तम्, न = नैव, स्थातव्यम् = स्थेयम्, निवसनीयम्; अपि तु यथाशीघ्रमेव पुनरागन्तव्यमिति तदाशयः। अस्य = पूर्वोक्तस्य, अर्थस्य = वस्तुनः, प्रयोजनस्य, कृते = उद्देशेन, साञ्जलिबन्धेन= अञ्जलिबन्धनसहितेन, शिरसा = मूर्ध्ना, वत्सम् = पुत्रम्, अभ्यर्थये = प्रार्थये, याचे। इति, आदिशन्तीम् = निवेदयन्तीम्, आज्ञापयन्तीं वा, स्वमातरम् = निजजननीं विलासवतीम्, सुदूरम्= सुतरां विप्रकृष्टम्, प्रसारितावनम्रमूर्तिः—प्रसारिता (= विस्तारिता) अवनम्रा (= अवनमिता) च मूर्तिः (= देहः) येन स तादृशः, सन् चन्द्रापीडः, व्यज्ञपयत् = न्यवेदयत्।

अम्बेति। हे अम्ब! = हे मातः!, तदा = तस्मिन् पूर्वस्मिन् काले, दिग्विजय-प्रसंगात् = दिशामधीनीकरणसम्बन्धात्, स्थितम् = अवस्थितिः कृता। पुनः = परन्तु, अधुना = इदानीम्, अयमेव = एष एव, कालक्षेपः = समयस्य विलम्बः, यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, तम्, उद्देशम् = वैशम्पायनस्य वसतिस्थानम्, परापतामि = गच्छामि। गमने यावान् विलम्बोऽपेक्ष्यते, तावानेव भविष्यति न तदधिक इति तद्भावः। तत् = तस्मात्, त्वया = भवत्या मम जनन्या, पुनः = भूयः, इदानीमिति भावः, चिरागमनकृता = विलम्बेनागमनजनिता, पीडा = व्यथा, हृदये = मनसि, मनाक् = ईषद्, अपि, न = नैव, भावनीया = विधेया।' इति एवम् = इत्थम्, चन्द्रापीडेन = स्वपुत्रेण, विज्ञप्ता = निवेदिता विलासवती, बाष्पवेगान् = अश्रुरयान्, सन्निरुध्य = नियम्य, कथं कथमपि = यथा कथञ्चित् महता कष्टेन, आत्मानम् = स्वाम्, संस्तभ्य =

की पीडा को समझ कर चिरंजीवी तुम बीच में कहीं भी आसक्त होकर अधिक समय तक मत रुक जाना, जैसा कि पहले यात्रा में तुमने किया था। इस बात के लिये हाथ जोड़कर सिर से अर्थात् सिर झुकाकर बेटे से भीख माँग रही हूँ।'—इस प्रकार की आज्ञा देती हुई अपनी माता से बहुत दूर तक फैलाये और झुके(विनत)शरीरवाला होता हुआ चन्द्रापीड बोला–'माँ! उस समय तो दिग्विजय के प्रसङ्ग के कारण[अधिक समय तक] रुक गया था। किन्तु इस समय तो केवल उतना ही समय लगेगा जितने में उस स्थान तक पहुँचता हूँ अर्थात् 'यह गया और वह आया' समझिये। इसलिए अपने मन में बिलम्ब से वापस लौटने से होनेवाली पीडा जरा भी मत बनाइये, 'देर से लौटने के कष्ट का विचार ही मत कीजिये।'—इस प्रकार से चन्द्रापीड द्वारा निवेदन करने पर, आँसुओं के वेग को रोककर,

---

१. विभाव्य। २. आसङ्गमाबध्यदीर्घकालम्। ३. मातः, अहं च मातः। ४. स्थितोऽस्मि। ५. अयमेव, इयानेव मे। ६. मनागपि हृदये न भावनीया, मनागपि हृदये न भवनीया।

निर्वर्तितगमनमङ्गला[1],गलता प्रस्रवेण सिञ्चन्ती,शिरसि चोपाघ्राय [2]गाढं सुचिरमालिङ्ग्य गच्छद्भिरिव प्राणैः कृच्छ्रान्मुमोच तं माता।

मुक्तश्च मात्रा पितुः प्रणतये वासभवनमगमत्। तत्र च 'देव, गमनाय नमस्करोति युवराजः' इत्यावेदिते द्वाररक्षिणा प्रविश्य क्षोणीतलनिवेशितशिरसा[3] शयनवर्तिनो ननाम दूरस्थित एव पितुः पादौ।

अथ तथा प्रणतमालोक्य किंचिदुन्नमितपूर्वकायः शयनगत एवाहूय तं पिता चक्षुषा

दृढीकृत्य, पतनात् निवार्य, निर्वर्तितेत्यादिः—निर्वर्तितम् (= सम्पादितम्) गमनस्य (= प्रस्थानस्य) मङ्गलम् (= माङ्गल्यम्) यया सा तादृशी, गलता = स्रवता, प्रस्रवेण = स्तन्येन, स्तनोद्भूतदुग्धेनेति भावः, सिञ्चन्ती = सेचनं कुर्वन्ती, आर्द्रयन्ती, शिरसि=मूर्ध्नि, च उपाघ्राय= घ्रात्वा, गाढम् = घनं यथा स्यात् तथा, सुचिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, आलिङ्ग्य = आश्लिष्य, गच्छद्भिः = निःसरद्भिः, इव, प्राणैः = असुभिः, कृच्छ्रात् = अतिकष्टात्, माता = जननी विलासवती, तम् = पुत्रं चन्द्रापीडम्, मुमोच = तत्याज। स्वाभाविकं हृद्यं वर्णनम्।

मुक्तश्चेति। मात्रा = जनन्या विलासवत्या, मुक्तः = परित्यक्तः, च, पितुः = जनकस्य तारापीडस्य, प्रणतये = प्रणामाय, वासभवनम् = राज्ञो निवाससदनम्, अगमत् = अव्रजत्। तत्र = राजसदने, च, 'देव = महाराज !, युवराजः = राजकुमारः, गमनाय = प्रस्थानाय, नमस्करोति = प्रणामं करोति' इति = एवम्, द्वाररक्षिणा = द्वारपालेन, आवेदिते = निवेदिते, सति, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, क्षोणीत्यादि—क्षोणीतले (= भूतले) निवेशितम् (= स्थापितम्) यत् शिरः (= मस्तकम्) तेन, शयनवर्तिनः = पर्यङ्कस्थितस्य, पितुः = जनकस्य तारापीडस्य, पादौ = चरणौ, दूरस्थितः = विप्रकृष्टे विद्यमानः, एव, ननाम = प्रणतवान्।

अथेति। अथ = तदनन्तरम्, तथा = पूर्वोक्तेन तेन प्रकारेण, प्रणतम् = विहितप्रणामम्, चन्द्रापीडम्, आलोक्य = निरीक्ष्य, किञ्चिदित्यादिः—किञ्चित् (= ईषत्) उन्नमितः (= उत्थापितः) पूर्वकायः (= कायस्य पूर्वभागः, देहस्योर्ध्वभागः) येन स तादृशः, तथा, शयनगतः = शय्यायां विद्यमानः, एव, आहूय = आकार्य, आह्वानं कृत्वा, तम् = चन्द्रापीडम्, चक्षुषा = नेत्रेण,

---

जिस किसी प्रकार से अपने को संभाल कर, यात्रा-सम्बन्धी माङ्गलिक कार्य को सम्पादित कर लेने वाली, बहते हुए स्तनों के दूध से सींचती हुई, (चन्द्रापीड का) सिर सूँघकर, बहुत देर तक गाढ़ आलिङ्गन करके माता विलासवती ने जाते (निकलते) हुए प्राणों जैसे उसको बहुत कष्ट से छोड़ा, बिदा किया।

माता द्वारा मुक्त (बिदा) किया गया वह पिता जी को प्रणाम करने के लिये उनके राजभवन गया। वहाँ पर 'स्वामी, युबराज प्रस्थान करने के लिये प्रणाम कर रहे हैं'—ऐसा द्वारपाल द्वारा निवेदन किये जाने पर, चन्द्रापीड ने प्रवेश करके पलंग पर वर्तमान (बैठे हुए) पिता के चरणों को, दूर से ही झुककर, पृथ्वीतल पर झुके हुए अर्थात् भूतल का स्पर्श करते हुए मस्तक से प्रणाम किया।

इसके बाद झुके (प्रणाम करते) हुए चन्द्रापीड को देखकर, शरीर के ऊपरी भाग को कुछ ऊपर उठाकर, बिस्तर पर लेटे हुए ही उसे बुलाकर पिता तारापीड ने आँखों से मानों पीते हुए

---

१. मंगल-प्रस्रवेण, मङ्गलाङ्कलताप्रस्रवेण। २. गाढं गाढं। ३. ……शिरा।

पिबन्निव प्रेम्णा परिष्वज्य [1]गाढमप्रौढ इव सहसोद्ग[2]ताविरलबाष्परय[3]पर्याकुलाक्षोऽन्तः-क्षोभावेग[4]विक्षिप्ताक्षरमवादीत्—'वत्स, [5]पित्राऽहं दोषेषु सम्भावित इत्येषा मनागपि मनसि वत्सेन दुःखासिका न कार्या। विनयाधानात् प्रभृति सम्यक्परीक्षितोऽस्यस्माभिः। परीक्ष्य च गुणागणैरेवाधिगम्यो राज्यभारस्त्वय्यारोपितो न तनयस्नेहादेव। राज्यं हि नामैतत् पृथ्वीभारेणैवातिदुरुद्वहम्, महीभृत्सम्बाधतयैवातिसंकटम्, कुटिलनीतिप्रचारेणै-

पिबन् = धयन्, इव, पानविषयीकुर्वन्निव, प्रेम्णा = अनुरागेण, गाढम् = दृढम्, परिष्वज्य = समालिङ्ग्य, अप्रौढः = प्रौढतामप्राप्तः, बालः इव, सहसा = अकस्मात्, उद्गतेत्यादिः—उद्गतः (= उत्पन्नः) अविरलः (= निबिडः, घनः) यः बाष्पः (= अश्रुजलम्) तेन पर्याकुले (= व्याकुले, परिव्याप्ते) अक्षिणी (= नेत्रे) यस्य स तादृशः सन्, अन्तः क्षोभेत्यादिः—अन्तः (= मनसि) यः क्षोभः (= क्षुब्धता, क्लेशः) तस्य आवेगेन (= आवेशेन) विक्षिप्तानि (= श्लथीभूतानि, त्रुटितानि) अक्षराणि (= वर्णाः) यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा, अवादीत् = अवोचत्।

स किमवादीदिति वर्णयति—वत्स इत्यादिना। हे वत्स ! = पुत्रक, पित्रा = जनकेन मया तारापीडेन, अहम् = चन्द्रापीडः, दोषेषु = वैशम्पायनविषयकापराधेषु सम्भावितः = आशङ्कितः, इति, एषा = इयम्, दुःखासिका = दुःखमयी भावना, मनसि = स्वचित्ते, मनागपि = अल्पापि, न, कार्या = करणीया। [दुःखम् आस्यतेऽस्यामिति ण्वुलि रूपम्।] कथं न कार्येत्यत्र समाधिमाह—विनयाधानात्—विनयः (= गुरूणां पुरतोऽभ्युत्थानादिकः) तस्य आधानम् (= शिक्षणम्, विद्याग्रहणादिकम्) तस्मात् प्रभृति = आरभ्य, शिक्षाग्रहणकालादारभ्येति भावः, अस्माभिः = तव पित्रादिभिः, सम्यक् = समुचितरूपेण, परीक्षितः = परीक्षाविषयीकृतः, असि = वर्तसे। परीक्ष्य = परीक्षां कृत्वा, च, गुणगणैः = शौर्यौदार्यादिगुणसमूहैः, एव, अधिगम्यः = प्राप्तियोग्यः, राज्यभारः = राज्यधूः, त्वयि = चन्द्रापीडे भवति, आरोपितः = निहितः, न तु, तनयस्नेहाद् = पुत्रानुरागात् हेतोः, एव, आरोपितः। राज्यभारारोपणे तव गुणा एव कारणानि न तु मम पुत्रत्वमिति तदाशयः।

इदानीं राज्यस्य वैशिष्ट्यं विशदतया वर्णयितुमाह—राज्यं हि नामेत्यादिना। एतत् = इदम्, राज्यम् = आधिपत्यम्, हि = निश्चयेन, नाम = इदं वाक्यालंकारे, पृथ्वीभारेण = वसुन्धराया वीवधेन, अतिदुरुद्वहम् = अतिशयदुःखेन उद्वोढुं शक्यम्; न त्वन्यदीयभारेणेति बोध्यम्। महीभृत्-सम्भृततया—महीभृताम् (= अन्यभूपतीनाम्, पर्वतानां च) सम्बाधतया (= संघट्टतया,

(अपलक देखते हुए), स्नेह से गाढ़ (खूब कसकर) आलिङ्गन करके, अप्रौढ = बच्चे के समान अचानक निकले (उमड़े) हुए घने आँसुओं के वेग से व्याकुल आँखों वाला होते हुए, भीतरी क्षोभ (क्लेश) के आवेग से लड़खड़ाते हुए अक्षरों में कहा—'बेटा ! पिता जी ने मुझ पर [वैशम्पायन के अनागमन के] दोष की सम्भावना की है, ऐसी दुःख की जरा भी चिन्ता मन में मत करना। विनयाधान = शिक्षा-ग्रहण करने के समय से ही लेकर हम लोगों ने अच्छी तरह से तुम्हारी परीक्षा ले ली है। और अच्छी तरह परीक्षा करने के बाद ही, गुणों के समूह के द्वारा ही प्राप्त करने योग्य यह राज्यभार तुम्हारे ऊपर सौंपा है न कि पुत्रस्नेह के कारण। [अतः तुम अपने मन से अपने दोषी होने की चिन्ता हटा दो।] कारण यह है कि यह 'राज्य' (नामक वस्तु)—पृथ्वी के भार

१. गाढमिव, 'अप्रौढ इव' नास्ति। २. उद्भूत०। ३. ०० बाष्प पर्याकुल०।
४. ···क्षोभविक्षिप्त०। ५. अहं दोषेऽपि, अनर्हदोषेषु।

वातिदुःसंचरम्, [1]चतुःसमुद्रपर्यन्तभुवनव्याप्त्यैवातिमहत्, महासाधनप्रसाध्यतयैवातिदुःसाधनम्,[2] अपर्यवसानकार्यतन्त्रजालेनैवातिगहनम्, उत्तुङ्गवंशप्रतिष्ठिततयैवातिदुरारोहम्, अहितसहस्रोद्धरणेनैवातिदुर्धरम्[3]। अपि च, समवृत्तितयैवातिविषमम्, अनेकतीर्थकल्पनयैव दुर-

भरिततया), एव, अतिसङ्कटम् = अतिशयेन सङ्कीर्णम् न त्वन्येषां सम्बाधतयेति बोध्यम्। कुटिलनीति-प्रचारेण—कुटिला (=वक्रा कूटा) या नीतिः (=नयः) तस्याः प्रचारः (=प्रसारः) तेन, एव, अतिदुःसञ्चरम् = अतिशयकष्टेन सञ्चरितुं शक्यम्, नत्वन्येन। चतुरित्यादिः—चत्वारः (= चतुःसंख्याकाः) समुद्राः (= सागराः) पर्यन्तः (= अवधिः) यस्य तादृशं यद् भुवनम् (= संसारः, भूलोकः) तस्मिन् व्याप्त्या (= व्यापनतया, विस्तृततया), एव, अतिमहत् = बहुविशालम्। महासाधनेत्यादिः—महन्ति (= विशालानि) यानि साधनानि (= सैन्याद्युपकरणानि) तैः प्रसाध्यतया (= रक्ष्यतया, वशीकर्तुं शक्यतया), एव, अतिदुःसाधनम् = अतिशयदुःखेन साधयितुं शक्यम्, रक्षितुं योग्यम्। अपर्यवसानेत्यादिः—अपर्यवसानानि (= न पर्यवसानम् = अन्तः येषां तानि तादृशानि, अनन्तानि) कार्याणि (= कृत्यानि) यस्मिन् तादृशं यत् तन्त्रम् (= शासनम्) तस्य जालम् (= समूहः), तेन, स्वराष्ट्रचिन्तासमूहेनेत्यर्थः, एव, अतिगहनम् = अतिगभीरम्। उत्तुङ्गेत्यादिः—उत्तुङ्गः (= उच्चः) यो वंशः (= कुलम्, तदेव वंशः = वेणुः) तस्मिन् प्रतिष्ठिततया (= समाश्रिततया, स्थिततया), एव, अतिदुरारोहम् = अतिशयदुःखेन आरोढुं शक्यम्, प्राप्तुं शक्यम्। अहितेत्यादिः—अहिताः (= शत्रवः, दुष्टाः वा) तेषां सहस्रम् (= दशशती, प्राचुर्यम्) तस्य उद्धरणेन (= उन्मूलनेन विनाशनेन), एव, अतिदुर्धरम् = अतिशयदुःखेन धारयितुं शक्यम्।

पुनरपि राज्यस्यैव वैशिष्ट्यं विशदयति—अपि चेत्यादिना। अपि च = अन्यच्च, इदमपि बोध्यम्। समवृत्तितया—समा (= समाना) वृत्तिः (= वर्तनम्, व्यवहारः सर्वेषु इति शेषः) यस्मिन् तत् तस्य भावस्तया, एव, अतिविषमम् = अतिशयेन कठिनम्, सर्वेषु तुल्यव्यवहारस्य बहुकष्टसाध्यत्वात्। अनेकतीर्थकल्पनया—अनेकानि यानि तीर्थानि (= उपायाः) तेषां कल्पनया= विचारणया, विधानेन, एव, दुरवतारम् = दुःखेन अवतर्तुम् (= पारं कर्तुम्) शक्यम्। ['तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायोपाध्यायमन्त्रिषु' इति हलायुधकोषः। अनेकजलावतरेण नद्यादितीर्थं सूत्तरं भवति,

के कारण ही अत्यन्त कष्ट से ढोया (वहन किया) जा सकने वाला है। राजाओं के संबाध = संकुलता, जमघट के कारण ही खूब भरा हुआ है। कुटिल नीति का प्रयोग होने के कारण ही अत्यन्त कष्ट से संचरण करने योग्य है। चारों समुद्रों तक संसार को व्याप्त कर लेने के कारण ही बहुत बड़ा है। बहुत बड़ी (भारी) सेना के द्वारा साध्य = नियन्त्रण योग्य होने के कारण ही बहुत कष्ट से वश में किये जाने योग्य है। कभी भी समाप्त न होने वाले शासन के कार्यों के जाल के कारण ही अत्यन्त गहन (गहरा) है। बहुत ऊँचे वंश (कुल, बांस) पर ही प्रतिष्ठित होने के कारण ही बहुत कष्ट से चढ़ने योग्य है। हजारों शत्रुओं के उद्धरण = उखाड़ फेकने (नष्ट कर देने) के कारण ही बहुत कष्ट से धारण करने योग्य है। और भी, [सभी लोगों के साथ] समान (निष्पक्ष) व्यवहार वाला होने के कारण ही अत्यन्त विषम है, अनेक तीर्थों की कल्पना के कारण ही कष्ट से उतरने योग्य है। [तीर्थ = सीढ़ी और सामदामादि उपाय दोनों अर्थ है) अनेक सीढ़ियों वाला

१. चतुःसमुद्रव्याप्त्यैव। २. दुःसाध्यम्। ३. अतिदुरुद्धरम्।

वतारम्, [1]कण्टकशोधनेनैव दुर्ग्रहम्,अखिलप्रजापालनव्यवहारेणैव[2] दुष्पारम्[3],सर्वाशाप्राप्त्यैव च दुष्प्रापम् । नामहासत्त्वे, नास्थिरप्रकृतौ, नादातरि,नास्थूललक्ष्ये, नाशुचौ, नाविक्रान्ते[4], नामहोत्साहे, नाप्रियवादिनि, नासत्यसन्धे, नाप्राज्ञे, नाविवेकिनि, नाकृतज्ञे, नानुदारव्यवहृतौ,

---

इदं तु अनेकोपायसाध्यतया दुरुत्तरमिति भावः । कण्टकशोधनेन-कण्टकाः (= खलाः, शत्रवः) तेषां शोधनेन (= प्रध्वंसनेन, अपाकरणेन), एव, दुर्ग्रहम् = दुःखेन ग्रहीतुं शक्यम् । अखिलेत्यादिः—अखिलाः (= समस्ताः) याः प्रजाः (= लोकाः) तासां पालनम् (= रक्षणभरणादिकम्) एतदेव व्यवहारः (= व्यवसायः) तेन, एव, दुष्पारम् = दुःखेन पारयितुं शक्यम्, 'दुष्पालम्' इति पाठे दुःखेन पालयितुं योग्यम् । सर्वाशाप्राप्त्या—सर्वाः (= सकलाः) च ताः आशाः (= दिशाः) तासां प्राप्त्या (= लाभेन), एव, दुष्प्रापम् = दुःखेन प्राप्तुं शक्यम्, दुर्लभमिति भावः ।

अत्र पूर्वोक्तेषु कारणसत्त्वेऽपि कार्याभावाद् विशेषोक्तिरलङ्कारः । अन्यच्च 'अनेकतीर्थकल्पनया एव दुरवतारम्' इत्यत्र अनेकतीर्थानाम् = जलावतरणानां सत्त्वेऽपि दुरवतारत्वे विरोधः । 'तीर्थ' शब्दस्य उपायार्थस्वीकारेण तत्परिहारः । एवमेव 'सर्वाशाप्राप्त्या एव च दुष्प्रापम्' इत्यत्रापि सर्वासाम् आशानाम् = मनोरथानां प्राप्तौ सत्यामपि दुष्प्रापमित्यत्र विरोधः, अत्रापि 'आशा' शब्दस्य दिशार्थस्वीकारेण तत्परिहारः । एवञ्च विरोधाभासोऽपि वर्तते । अन्यत्तु हिन्द्यां द्रष्टव्यम् ।

राज्यं कुत्र कुत्र स्थातुं न शक्नोतीति वैशद्येन वर्णयति—नामहासत्त्वे इत्यादिना । राज्यम् = आधिपत्यमत्र कर्तृत्वेन योज्यम्, अमहासत्त्वे-महत् (= विपुलम्) च तत् सत्त्वम् (= बलम्)—महासत्त्वम्, न महासत्त्वं यस्मिन् तादृशे जने, न, पदम् = स्थानम्, एव, आदधाति = करोति' इति वक्ष्यमाणे सर्वेषामन्वयो बोध्यः । अस्थिर-प्रकृतौ—अस्थिरा (= चञ्चला) प्रकृतिः (= स्वभावः) यस्य तस्मिन् तादृशे जने, न, पदमेवादधाति । अदातरि = अदानकर्तरि, कृपणे, न । अस्थूललक्ष्ये—अस्थूलम् (= अविशालम्, क्षुद्रमिति भावः) लक्ष्यम् (= उद्देश्यम्) यस्य तस्मिन् तादृशे जने, न । अशुचौ = अपवित्रे, विविधमालिन्ययुक्ते जने, न । अतिक्रान्ते=पराक्रमहीने, जने, न । अमहोत्साहे—महान् (= अत्यधिकः) चासौ उत्साहः (= उद्योगः, उत्सहनम्) महोत्साहः, न महोत्साहः यस्मिन् तादृशे, महोत्साहहीने, न । अप्रियवादिनि = अप्रियभाषिणि, न । असत्यसन्धे—न सत्या (= ऋता, यथार्था) सन्धा (= प्रतिज्ञा) यस्य स तस्मिन्, स्वप्रतिज्ञापरिपालनहीने, न । अप्राज्ञे=

होने पर कष्ट से उतरने योग्य कैसे ? यह विरोध है । तीर्थ का सामादि उपाय अर्थ मानकर विरोध-परिहार होता है] कांटों के शोधन = उखाड़ फेकने के कारण ही दुर्ग्रह = कष्ट से पकड़ने योग्य है । [कण्टक का अर्थ शत्रु मानकर विरोध-परिहार होता है ।] सारी प्रजा के पालन के व्यवहार के कारण ही दुष्पार = कष्ट से पार करने योग्य है । सभी आशाओं की प्राप्ति हो जाने के कारण ही दुष्प्राप = कष्ट से प्राप्त करने योग्य है । [आशा—का अर्थ दिशा मानकर विरोध का परिहार होता है ।] (यह राज्य)—न अमहासत्त्व = बहुत दुर्बल, न चञ्चल स्वभाववाले, न अदाता = कंजूस, न अस्थूललक्ष्य = तुच्छ उद्देश्य वाले, न अपवित्र, न पराक्रमहीन, न महान् उत्साह से रहित, न अप्रियभाषी, न असत्य प्रतिज्ञावाले, न मूर्ख, न अविवेकी, न अकृतज्ञ = कृतघ्न, न उदार व्यवहार-हीन, न उचित विभाग कर न बाँटने वाले, न अन्याय करने वाले, न अधर्म में रुचि रखने वाले, न

---

१. कटक० । २. ···व्यापारेण । ३. दुःपालनम्, दुष्पारम्, दुष्पाल्यम् ।
४. सर्वाशाप्राप्त्यैव च दुष्प्रापम्, नामहासत्त्वे नास्थिर-प्रकृतौ नादातरि नास्थूल-लक्ष्ये नाशुचौ नाविक्रान्ते नातिक्रान्ते । क्वचित्तु—"सर्वाशा०' इत्यारभ्य 'नाशुचौ"—इति नापि पठ्यते ।

नासंविभागशीले, नान्यायवर्तिनि, नाधर्मरुचौ, नाशास्त्रव्यवहारिणि, नाशरण्ये, नाब्राह्मण्ये नाकृपालौ, नामित्रवत्सले, नावश्यात्मनि, नानिर्जितेन्द्रिये, नासेवके-पदमेवादधाति। यः खलु समग्रैर्गुणैराकृष्य बलात् प्रतिबन्धमस्य चञ्चलप्रकृतेः कर्तुं समर्थस्तत्रास्ते। गुरवोऽप्यपगत-स्खलितभीतयस्तत्रैव समारोपयन्त्येतदालोचितपरावराः। तदनेनैव बोद्धव्यमिदं वत्सेन

प्रज्ञाहीने, मूर्खे, न। अविवेकिनि = युक्तायुक्तविचारशून्ये न। अकृतज्ञे = कृतज्ञताहीने, न। अनुदारव्यवहृतौ = उदारव्यवहारहीने न। असंविभागशीले--सम्यग्विभागः (= विभजनम्) [युद्धादौ विजितस्य धनादेर्मित्रादिभ्य इति शेषः] शीलम्, (= स्वभावः) यस्य स संविभागशीलः, तद्भिन्नोऽसंविभागशीलः, मित्रादिभ्यो प्रदातव्यधनादिविभाजनाभाववान्, तस्मिन्, न। अन्यायवर्तिनि-अन्यायः (= अनयः) तस्मिन् वर्तते इति अन्यायवर्ती, तस्मिन्, न्यायाचरणशून्ये, न। अधर्मरुचौ—धर्मे (=पुण्यजनकसत्कृत्ये) रुचिः (= इच्छा) यस्य स धर्मरुचिः—धर्मानुकूलाचरणाभिलाषी, तद्भिन्नोऽधर्मरुचिः तस्मिन्, न। अशास्त्रव्यवहारिणि—शास्त्रेण (= मन्वादि-प्रणीत-धर्मशास्त्रादिना) न व्यवहर्तुं शीलं यस्य तस्मिन्, शास्त्रविरुद्धाचरणवति, न। अशरण्ये—शरणे (= रक्षणे) साधुः शरण्यः (= शरणागतपरित्राता) न शरण्योऽशरण्यस्तस्मिन्, शरणागतपरिपालनहीने, न। अब्रह्मण्ये—ब्राह्मणानामरक्षके, न। अकृपालौ = कृपाहीने, न। अमित्रवत्सले = सुहृदनुरागशून्ये, न। अवश्यात्मनि-वश्यः (= वशीकर्तुं योग्यः) आत्मा (=मनः) यस्य स तादृशः, तद्भिन्नोऽवश्यात्मा= अविजितमनाः, तस्मिन्, न। अनिर्जितेन्द्रिये—निर्जितानि (= स्वाधीनीकृतानि) इन्द्रियाणि (= हृषीकाणि) येन स तादृशः, तस्माद्भिन्नः, इन्द्रियपराधीनस्तस्मिन्, न। असेवके= सेवाभाव-शून्ये, न, पदम् = स्थानम्, एव, आदधाति = करोति, राज्यमिति कर्तृपदं योज्यम्। तस्माद् एभिः दुर्गुणैर्मुक्ते एव जने राज्यं पदमादधातीति विचार्य त्वया एषां परित्यागे सावधानतया वर्तितव्यमिति तद्भावः।

पूर्वं राज्यस्य पदस्याधानाभावं विशदं प्रतिपाद्य इदानीं कीदृशे जने राज्यं पदमादधातीति वर्णयति यः खल्वित्यादिना। यः = जनविशेषः, खलु = निश्चयेन, समग्रैः = सकलैः, गुणैः = उपयोगिसद्गुणैः, आकृष्य = आकृष्टं कृत्वा, चञ्चलप्रकृतेः = चञ्चलस्वभावस्य, अस्य = राज्यस्य, हठात् = बलात्, प्रतिबन्धम् = प्रतिरोधम्, कर्तुम् = विधातुम्, समर्थः = शक्तः, तत्र = तस्मिन् जनविशेषे, आस्ते = तिष्ठति, विराजते, राज्यमिति कर्तृपदं योज्यम्। आलोचित-परावराः—आलोचितम् (= विभावितम्, विचारितम्) परम् अवरं च (= उत्कृष्टाधमस्वरूपम्) यैस्ते तादृशाः, अपस्खलितेत्यादिः—अपगताः (= दूरीभूताः) स्खलितात् (= भ्रंशाद्, उचिताचारच्युतेः) भीतिः (= भयम्) येषां ते तादृशाः. गुरवः = मातापित्रादयः, अपि, तत्रैव = तस्मिन् पूर्वोक्त-

---

शास्त्रविरोधी व्यवहार करने वाले, न शरणागत की रक्षा न करने वाले, न ब्राह्मणों का हित न करने वाले, न आकृपालु = क्रूर, न मित्रों के प्रेम से हीन, न अपने को वश में न करने वाले, न अजितेन्द्रिय और न सेवा न करने वाले व्यक्ति के पास स्थान बनाता है, ठहरता है अर्थात् पूर्वोक्त में से किसी के पास राज्य नहीं रुक पाता है। जो कोई व्यक्ति समस्त गुणों के द्वारा खींच कर (वश में करके) इस चञ्चल स्वभाव वाले राज्य को बलपूर्वक रोकने में समर्थ होता है उसी के पास (यह राज्य = लक्ष्मी) ठहरता है। और वृद्ध लोग भी, जिन्होंने आगे पीछे सभी का अच्छी तरह विचार कर लिया है, दोष की संभावना से रहित हो चुके हैं, ऐसे ही व्यक्ति पर यह राज्यभार सौंपते हैं। [चूंकि हम लोगों ने तुम्हारे ऊपर राज्य भार सौंपा है] इसी से बेटे को यह समझ लेना चाहिए कि उसमें दोष

नास्ति मयि दोष इति।

अपि च, सम्प्रति कस्मिन् भारमवक्षिप्याणुमपि दोषमाचरसि ? त्वयैव सकललोकानुरञ्जने यतितव्यम्। गतः खलु कालोऽस्माकम्। अस्माभिरस्खलितैश्चिरं[1] पदे स्थितम्। न पीडिताः प्रजा लोभेन। नोद्वेजिता गुरवो मानेन। न विमुखिताः सन्तो मदेन। नोत्त्रासिताः प्राणिनः क्रोधेन। न हासित आत्मा हर्षेण। न हतः परलोकः

वैशिष्ट्ययुक्ते जने एव, समारोपयन्ति = स्थापयन्ति, अत्र राज्यमिति कर्मत्वं योज्यम्। तादृशं जनमेव नृपासने स्थापयन्तीति भावः। तत् = तस्मात्, अनेन = युवराजपदेऽभिषेकेन, एव, वत्सेन = पुत्रेण, इदम् = एतत्, बोद्धव्यम् = ज्ञातव्यम्, यत्, मयि = चन्द्रापीडे युवराजे, दोषः = दूषणम्, नास्ति = न वर्तते।

पुनः दोषाभावमेव समर्थयितुमाह—अपि चेत्यादिना। अपि च = अन्यच्च, इदमपि बोध्यम्, त्वम्, सम्प्रति = इदानीम्, यौवराज्येऽभिषिक्तावस्थायामिति भावः, कस्मिन् = अज्ञाते जने, भारम् = राज्यधुरम्, अवक्षिप्य = न्यस्य, स्वतः, अणुम् = अत्यल्पम्, अपि, दोषम् = दूषणम्, अपराधम्, आचरसि = करोषि, कर्तुं न शक्नोषीति भावः। त्वया = भवता चन्द्रापीडेन एव, सकलेत्यादिः— सकलानाम् (= समस्तानाम्) लोकानाम् (=प्रजाजनानाम्) अनुरञ्जने (=हर्षोत्पादने, सन्तुष्टि-सम्पादने), यतितव्यम् = प्रयतनीयम्, प्रयत्नो विधेयः। कथमिति चेत्तत्राह—अस्माकम् = तव पित्रादीनां वृद्धजनानाम्, कालः = शासनविधानसमयः, गतः = व्यतीतः, वयं शासितुमिदानीं न समर्था इति भावः। अस्माभिः, अस्खलितैः = स्खलनहीनैः, प्रमादरहितैः, सद्भिः, चिरम् = दीर्घकालम्, पदे = राज्ये, राजसिंहासने, स्थितम् = निषण्णम्। लोभेन = लिप्सया, प्रजाः = प्रकृतयः, शासित-जनाः, न, पीडिताः = त्रासिताः। मानेन = अहङ्कारेण, गुरवः = वृद्धाः, सम्माननीया लोकाः, न, उद्वेजिताः = उद्वेगं प्रापिताः, खिन्नाः कृताः। मदेन = दर्पेण, सन्तः = सज्जनाः, न, विमुखिताः = विमुखीकृताः, उपेक्षिताः। क्रोधेन = प्रवृद्धकोपेन, प्राणिनः = सामान्याः सत्वाः, न उत्त्रासिताः = भयं प्रापिताः। हर्षेण = प्रसन्नतया, आत्मा = स्वः, न, हासितः = हासं प्रापितः। कामेन = मनोभवेन, कामवासनया, परलोकः = स्वर्गः, न, हतः = विनाशितः। अत्र वाक्येषु 'लोभेन प्रजा न पीडिताः' इत्यादिषु 'अपि तु रक्षिताः' इत्यादीनामर्थानां प्रतिपत्तिर्भवति। अथ च 'लोभेन प्रजा न पीडिता अपि तु शत्रव एव पीडिता' इत्यर्थस्यापि प्रतीतिर्भवति। अत्र सर्वत्र निषेधार्थस्य प्रतीत्या शाब्दी परिसङ्ख्यालंकारः सुस्पष्टः।

नहीं है अर्थात् चन्द्रापीड निर्दोष है।

और भी, अब [अपने सिवाय] किस दूसरे पर राज्य का भार सौंप कर थोड़े से भी दोष का आचरण कर सकोगे ? (अर्थात् नहीं कर सकोगे); अब तुम्हें ही सभी लोगों के अनुरंजन (प्रसन्नता) के लिये प्रयास करना चाहिए या करना होगा। हम (वृद्ध) लोगों का समय तो बीत चुका है। हम लोग तो [धर्म तथा न्याय के मार्ग से] बिना स्खलित (विचलित) होते हुए बहुत लम्बे समय तक [राज्यसिंहासन पर] बैठे रहे, शासन करते रहे। हम लोगों ने प्रजा को लोभ के कारण [कभी भी] पीड़ित नहीं किया, कष्ट नहीं दिया। न अभिमान से गुरुजनों को उद्वेजित (= व्याकुल) किया। न मद से सज्जनों को विमुख (निराश) किया। क्रोध से (सामान्य) प्राणियों को त्रस्त (भयभीत) नहीं किया। बहुत अधिक हर्ष से [संसार में] अपनी हँसी (उपहास) नहीं करवायी।

---

१. अस्खलितेन चिरं पदं स्थितम्। मयास्खलितेनैव चिरं पदं स्थितम्। अस्माभिरखलितैः पादैः।

कामेन। राजधर्मोऽनुरुद्धो न स्वरुचिः। वृद्धाः समासेविता न व्यसनानि। सतां चरितान्यनुवर्तितानि नेन्द्रियाणि। धनुरुन्नमितं न मनः। वृत्तं रक्षितं न शरीरम्। वाच्याद्भीतं न मरणात्। [1]उपभुक्तानि सुरलोकदुर्लभानि[2] सर्वविषयोपभोगसुखानि। [3]यौवनेच्छया पर्याप्तमकार्यपरिहरात्। कार्यानुष्ठानोपार्जितः परोपि[4] लोकः—इति चेतसि मे। त्वज्जन्मना

पुनरपि राजा स्वीयाचरणस्य वैशिष्ट्यमेव वर्णयति—राजधर्म इत्यादिना। राजधर्मः = नृपधर्मः, राज्ञः कर्तव्यम्, एव, अनुरुद्धः=परिपालितः, सेवितः, न, स्वरुचिः=स्वकीया इच्छा, अनुरुद्धा। वृद्धाः = गुरुजनाः, एव, समासेविताः = समुपासिताः, न, व्यसनानि = मदिरापानादि–दुराचरणानि,समासेवितानि। सताम् =सज्जनानाम्, चरितानि =वृत्तानि, सदाचरणानि, अनुवर्तितानि = अनुसृतानि, न, इन्द्रियाणि = हृषीकाणि, अनुवर्तितानि। धनुः = कार्मुकम्, उन्नामितम् = उत्थापितम्, शत्रूणां विनाशाय, न, मनः =चित्तम्, उन्नामितम्। वृत्तम् = सच्चरित्रम्, रक्षितम् = परित्रातम्, न, शरीरम् = देहः, रक्षितम्। शरीररक्षणापेक्षया चरित्ररक्षायै एव महत्त्वं प्रदत्तमिति भावः। वाच्याद् = लोकापवादात्, भीतम् = त्रस्तम्, भयं प्राप्तम्, न, मरणात् = मृत्योः, भीतम्। लोकापवादश्रवणापेक्षया मरणमेव श्रेयस्त्वेनाङ्गीकृतम्।

सुरेति। सुरलोक-दुर्लभानि = स्वर्गलोकेऽपि दुःखेन प्राप्तुं योग्यानि, सर्वेत्यादिः—सर्वे (= सकलाः) च ते विषयाः (= उपभोग्यपदार्थाः) तेषाम् उपभोगः (= बारं बारं सेवनम्) तस्य सुखानि (= सौख्यानि) उपभुक्तानि = संसेवितानि। अकार्यपरिहारात्—कर्तुं योग्यम्—कार्यम्, न कार्यम् (= अकरणीयं कृत्यम्) तस्य परिहारः (= वर्जनम्, परित्यागः) तस्माद् हेतोः, यौवनेच्छया = तारुण्यस्य वाञ्छया, पर्याप्तम् =पूर्णता प्राप्ता। यौवने या याः स्वाभाविक्यः समुचिताः शिष्टजनसम्मता इच्छाः भवन्ति तासां सर्वासां पूर्तिरभूदिति भावः। कार्यानुष्ठानात् =करणीय-धर्मविधानात्, च, परः = इतरः, लोकः = विष्टपः, स्वर्गलोक इत्यर्थः, अपि, उपार्जितः = स्वाधीनीकृतः। सत्कर्मानुष्ठानवशात् स्वर्गलोकस्य प्राप्तिः सुनिश्चितेति भावः। इति = इदं पूर्वोक्तम्, मे = मम, तारापीडस्य, चेतसि = मनसि, निश्चितरूपेण वर्तते इति भावः। त्वज्जन्मना = तव उत्पत्त्या च, कृतार्थः = कृतकृत्यः, सार्थकजन्मा, एव, अस्मि = भवामि। तर्हि कथं न मां सर्वं कर्तुमनुमन्यसे इति चेत् तदाह—तदित्यादिना।

कामवासना से परलोक (स्वर्ग) नष्ट नहीं किया, नहीं बिगाड़ा। राजा के धर्म (कर्तव्य) का अनुपालन किया, उसे महत्त्व दिया, अपनी रुचि (इच्छा, भावना) को नहीं। वृद्धजनों की सेवा की, व्यसनों की नहीं। सज्जनों के आचरणों का अनुकरण किया, इन्द्रियों का नहीं, अर्थात् सज्जनों के सदाचार के पीछे-पीछे चला, इन्द्रियों की प्रवृत्ति के पीछे नहीं। धनुष [की डोरी] को ऊपर उठाया, चढ़ाया, मन को नहीं। सदाचार की रक्षा की, शरीर की नहीं। वाक्य = लोकापवाद से भय खाया, मृत्यु से नहीं। देवताओं के लिये (भी) दुर्लभ समस्त विषयों के उपभोग का सुख भोगा। अकार्य =बुरे कार्यों को छोड़कर यौवन (काल) की इच्छायें पूरी कीं। कार्य =शास्त्रसम्मत कार्यों के अनुष्ठान से दूसरा अर्थात् स्वर्गलोक भी उपार्जित किया, बना लिया– ऐसा [भाव] मेरे

---

१. उपभुक्तानि च। २. सुरलोकेपि दुर्लभानि।
३. यौवनेच्छया। ४. पारम्परोऽपि लोकः, परलोकः।

च कृतार्थ एवास्मि। तदयमेव मे मनोरथः, दारपरिग्रहात् प्रतिष्ठिते त्वयि सकलमेव मे राज्यभारमारोप्य जन्मनिर्वाहलघुना हृदयेन पूर्वराजर्षिगतं पन्थानमनुयास्यामीति। अस्य च मेऽतर्कित एवायमग्रतः प्रतिरोधको वैशम्पायनवृत्तान्तः स्थितः। मन्ये च न सम्पत्तव्यमेवानेन। अन्यथा क्व वैशम्पायनः? क्व चैवं विधमस्य स्वप्नेप्यसम्भावनीयं समाचेष्टितम्? तद्गतेनापि तथा कर्तव्यं वत्सेन यथा न चिरकालमेष मे मनोरथोन्तर्हृदय एव विपरिवर्तते'-इत्यभिधाय किंचिदुत्तानितेन[1] मुखेनैव [2]सम्पीडितं हृदयमिव ताम्बूलमर्पयित्वा

तत् = तस्मात्, मे = मम, राज्ञस्तारापीडस्य, अयम् = एष, एव, मनोरथः = अभिलाषः, अवशिष्टो वर्त्तते, यत्, दारपरिग्रहात् = विवाहात्, प्रतिष्ठिते = प्रतिष्ठामधिगते, पूर्णतां प्राप्ते, त्वयि = भवति चन्द्रापीडे, सकलम् = समस्तम्, एव, राज्यभारम् = राज्यधुरम्, आरोप्य = संस्थाप्य, समर्प्य, जन्मेत्यादिः—जन्मनः (= जीवनस्य) निर्वाहः (= यापनम्; परिपालनम्) तेन लघुना (= अल्पेन), स्वकीयावशिष्ट-जीवनकालयापनमात्रभारभाजा, लघुभूतेनेति भावः, हृदयेन = चित्तेन, पूर्वराजर्षिगतम् = प्राचीनराजर्षिपरिपालितम्, पन्थानम् = मार्गम्, अनुयास्यामि = अनुसरिष्यामि, सर्वं त्वयि समर्प्य वनं गमिष्यामीति तद्भावः, इति। अस्य = एतस्य, मे = मम मनोरथस्य, च, अतर्कितः = अचिन्तितः, एव, अयम् = एषः, अग्रतः = पुरतः, प्रतिरोधकः = प्रतिबन्धकः, वैशम्पायनवृत्तान्तः = वैशम्पायनानागमनघटना, स्थितः = जातः, वर्तते। मन्ये = जानामि, सम्भावयामि, च, अनेन = एतेन मम मनोरथेन, न = नैव, सम्पत्तव्यम् = पूर्णतां गमनीयम्। अन्यथा = एतद् वैपरीत्ये, क्व = कुत्र, वैशम्पायनः? क्व = कुत्र, च, अस्य=एतस्य वैशम्पायनस्य, स्वप्नेऽपि=स्वापावस्थायाम्, अपि, असम्भावनीयम् = अकल्पनीयम्, एवं विधम्=एतादृशम्, समाचेष्टितम् = कृत्यम्, आचरणम्, वर्तते इति शेषः। साम्प्रतं स्ववक्तव्यमुपसंहरति—तत् = तस्माद्, गतेन = प्रस्थितेन, अपि, वत्सेन = पुत्रेण त्वया, तथा = तेन प्रकारेण, कर्तव्यम्, यथा=येन प्रकारेण, मे=तव पितुः, एषः मनोरथः=मनोऽभिलाषः, चिरकालम्= दीर्घसमयपर्यन्तम्, एव, अन्तर्हृदये = मनसि मध्ये, एव, न, विपरिवर्तते = विलीन एव तिष्ठेत्। इति = एवम्, अभिधाय = उक्त्वा, किञ्चिदुत्तानितेन = ईषदूर्ध्वीकृतेन, मुखेन = आस्येन, एव, सम्पीडितम् = पिण्डरूपतां प्रापितम्, पिण्डीभावेनाकुञ्चितम्, हृदयम् = चित्तम्, इव =

मन में वर्तमान है। तुम्हारे जन्म से ही मैं कृतार्थ हो (चुका) हूँ। अब मेरा केवल यही मनोरथ [बाकी रह गया] है कि विवाह कर लेने से प्रतिष्ठित हो चुके तुम्हारे ऊपर सारे राज्यभार को सौंपकर (डालकर), जीवन के [सफल] निर्वाह (बिता देने) से लघु अर्थात् हल्के मन द्वारा पूर्ववर्ती राजर्षियों के मार्ग का अनुसरण करूँ। किन्तु इस प्रकार का विचार करने वाले मेरे सामने अचानक यह प्रतिरोधक (मनोरथ में बाधा डालने वाला) वैशम्पायन का वृत्तान्त उपस्थित हो गया। इससे मुझे लगता है कि इस (मेरे मनोरथ) को पूरा नहीं होना है, अर्थात् अब अपने मनोरथ के पूरे होने में मुझे शंका हो रही है। नहीं तो कहाँ वैशम्पायन और कहाँ स्वप्न में भी न सोचा जा सकने वाला उसका ऐसा (सर्वस्वत्याग रूपी) कार्य। इस कारण यहाँ से जाकर भी बेटे को ऐसा करना चाहिए जिससे कि मेरा यह मनोरथ बहुत देर तक मन में ही न घूमता रहे, चक्कर काटता रहे।" ऐसा कहकर

---

१. उन्नामितेन। २. सम्पिण्डितम्।

व्यसर्जयत् ।

चन्द्रापीडस्तु तया पितुः सम्भावनया सुदूरमुन्नमितोऽप्यवनम्रतरमूर्तिरुपसृत्य[1] पुनः प्रणामेनोन्नमितात्मा[2] निर्ययौ। निर्गत्य च शुकनासभवनमयासीत्। तत्र च तनयचिन्तापरीतमुन्मुक्तमिवेन्द्रियैः शून्यशरीरं शुकनासमविरताश्रुपातोपहतमुखीं च मनोरमां प्रणम्य[3] तादृशाभ्यामेव ताभ्यां सम्भाव्याशिषा समारोपयद्भ्यामिव स्वदुःखभारमनुगतो निवर्तनाय

तुल्यम्, ताम्बूलम् = नागवल्लीदलम्, अर्पयित्वा = समर्प्य, प्रदाय, व्यसर्जयत् = विसर्जितवान् ।

चन्द्रापीडस्त्विति । चन्द्रापीडः, तु, तया = पूर्ववर्णितया, सम्भावनया = स्वस्मिन् कल्पनया, वैशम्पायनमवश्यमेवानयिष्यतीति विचारणया, सुदूरम् = अतीवोच्चैः यथा स्यात्तथा, उन्नमितः = ऊर्ध्वीकृतः, गौरवं प्रापितः, अपि, अवनम्रतर-मूर्तिः = विनम्रतर-देहः, सन्, उपसृत्य = समीपं गत्वा, पुनः = भूयः, प्रणामेन = प्रणत्या, उन्नमितात्मा—उन्नमितः (=उत्थापितः) आत्मा (= चित्तम्) यस्य स तादृशः, निर्ययौ=बहिर्जगाम । वृद्धजनानां न प्रणामेनात्मबलादिकं वर्धते इति स्मृत्यादिषु वर्णितम् । निर्गत्य-निःसृत्य,च,राजसदनादिति शेषः । शुकनासभवनम्= वैशम्पायजनकसदनम्, अयासीत् = अगमत् । तत्र = तस्मिन् स्थाने, च, तनय-चिन्ता-परीतम् = पुत्र-शोक-पर्याकुलम्, इन्द्रियैः = नेत्रादिभिः करणैः, उन्मुक्तम् = परित्यक्तम्, इव, शून्यशरीरम्—शून्यम् (= रिक्तम्) शरीरम् (= कायः) यस्य तं तादृशम्, शुकनासम् = वैशम्पायनजनकम्, अविरतेत्यादिः—अविरतः (= अनवरतः, निर्बाधः) यः अश्रुपातः (= अश्रुजलक्षरणम्) तेन उपहतम् (= पीडितम्, मलिनीकृतम्) मुखम् (= आननम्) यस्याः तां तादृशीम्, मनोरमाम् = वैम्पायनजननीम्, च, प्रणम्य = प्रणतिं कृत्वा, तादृशाभ्याम् = तथाविधाभ्याम्, एव, ताभ्याम् मनोरमा-शुकनासाभ्याम्, आशिषा = आशीर्वचनेन, सम्भाव्य = अभिवर्ध्य, स्वदुःखभारम् = स्वक्लेशबोधम्, समारोपयद्भ्याम् = निक्षिपद्भ्याम्, इव, निवर्तनाय = परावर्तनाय, अनुगतः = अनुसृतः, 'वस्तुतस्तु—अनुमतः=आज्ञप्तः इत्येव पाठ उचिततरः, तयोः = मनोरमा-शुकनासयोः, अभिमुखमिति शेषः तौ प्रतीति भावः आद्वार-निर्गतेः = द्वारनिर्गमनपर्यन्तम्; मुहुः = वारं वारम्, शनैः शनैर्वा, निर्वर्तितानन:—निर्वर्तितम् (= परावर्तितम्) आननम्

कुछ ही ऊपर उठाये हुए मुख से, मोड़े(लपेटे) गये हृदय जैसा ताम्बूल (पान का बीड़ा) देकर बिदा कर दिया।

पिता द्वारा इस प्रकार के सम्मान से बहुत अधिक ऊपर अर्थात् सम्मानित होता हुआ भी चन्द्रापीड और अधिक विनम्र शरीर वाला होता हुआ, [पिता के] समीप जाकर, दुबारा प्रणाम के द्वारा अपने [आतमबल] को और अधिक ऊँचा करता हुआ बाहर निकल गया। वहाँ से निकलकर [सीधा] शुकनास के भवन पहुँचा। वहाँ पर पुत्र वैशम्पायन की चिन्ता से घिरे हुए, इन्द्रियों द्वारा छोड़ दिये गये जैसे, सूनसान (निष्क्रिय) शरीर वाले शुकनास को तथा लगातार बहते हुए आँसुओं से मलिन (मुरझाये हुए) मुख वाली मनोरमा (वैशम्पायन की माता) को प्रणाम किया, उसके बाद उन दोनों के द्वारा आशीर्वाद से युक्त करके अपने दुःख के भार को उस (चन्द्रापीड) के ऊपर डालते हुए जैसे उन दोनों के द्वारा अनुगत होता हुआ, अर्थात् जिसके पीछे-पीछे वे दोनों चल रहे थे, दरवाजे से निकलने तक [पीछे आते हुए] उन दोनों को लौटाने के लिये बार-बार उनकी ओर

१. अपसृत्य । २. उत्तंसितात्मा । ३. प्रणत्य ।

तयोर्निवर्तिताननो मुहुराद्वारनिर्गतेर्गत्वाग्रतो ढौकितमपि कृतापसर्पण[1]मप्रकृतहेषारवमनुत्कर्णकोशमसुखस्वनममनस्कमनाविष्कृतगमनोत्साहं दीनमिन्द्रायुधमालोक्यापि पुनर्निवारणाशङ्कया वैशम्पायनावलोकनत्वरया कादम्बरीसमागमौत्सुक्येन चाकृतपरिलम्बो मनागप्यारुह्य रयेणैव निरगान्नगर्याः।

निर्गत्य च सिप्रातटे तत्प्रस्थानमङ्गलावस्थानायोपकल्पितं कायमानमप्रविश्य 'बहि-

---

(= मुखम्) येन स तादृशः, द्वाराद् बहिर्गमनं यावत् स्वमुखं पुनः पुनः परावृत्य मनोरमाशुकनासौ प्रति दृष्टिं पातयन्नासीदिति भावः, गत्वा = वहिर्व्रजित्वा, निःसृत्य, अग्रतः = पुरस्तात्, ढौकितम् = समुपस्थापितम्, [अत्र द्वितीयैकवचनान्तानि 'इन्द्रायुधम्' इति वक्ष्यमाणस्य विशेषणानि] अपि, कृतापसर्पणम्—कृतम् (= विहितम्), अपसर्पणम् (= पृष्ठे गमनम्) येन तं तादृशम्, अकृतेत्यादिः—अकृतः (= अविहितः) हेषारवः (= ह्रेषाध्वनिः) येन तं तादृशम्, अनुत्कर्णेत्यादिः—न उत्कर्णः (= उत्थापितश्रवणः) कोशः (= विवरः) यस्य तं तादृशम्, कर्णमनुत्थाप्य एव शान्त्या स्थितमिति भावः, असुखस्वनम्—असुखः (= असौख्यकरः, अहर्षसूचकः) स्वनः (= शब्दः) यस्य तं तादृशम्, अमनस्कम्—न वर्तते मनः (= चित्तम्) गमनविषये यस्य तं तादृशम्, अनाविष्कृतेत्यादिः—अनाविष्कृतः (= अप्रकटीकृतः) गमनस्य (= यात्रायाः, धावनस्य) उत्साहः (= औत्सुक्यम्) येन तं तादृशम्, दीनम् = दैन्ययुक्तम् अप्रसन्नम्, इन्द्रायुधम् = एतन्नामकम् निजाश्वम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, अपि, पुनः = भूयः, निवारणाशङ्कया = गमनप्रतिषेधसम्भावनया, वैशम्पायनावलोकनत्वरया = वैशम्पायनदर्शनशीघ्रतया, कादम्बरीत्यादिः—कादम्बर्याः (= स्वप्रेयस्याः) यः समागमः (= सम्मिलनम्) तस्य औत्सुक्येन (= औत्कण्ठ्येन) च, मनाक् = ईषत्, अपि, अकृतपरिलम्बः—अकृतः (= न विहितः) परिलम्बः (= विलम्बः) येन स तादृशः सन्, आरुह्य = आरोहणं कृत्वा, इन्द्रायुधमिति शेषः, रयेण = वेगेन, एव, नगर्याः = पुर्याः उज्जयिन्याः, निरगात् = निर्ययौ।

निर्गत्येति। निर्गत्य = बहिरागत्य, च, शिप्रातटे = सिप्रातीरे, तत्प्रस्थानेत्यादिः—तस्य (= चन्द्रापीडस्य) प्रस्थानम् (= प्रयाणम्) तदर्थं यन्मङ्गलम् (= श्रेयोविधानम्) तस्मिन् अवस्थानाय (= अवस्थितिं कर्तुम्, स्थातुम्), उपकल्पितम् = विरचितम्, कायमानम् = पटमण्डपम्, अप्रविश्य = प्रवेशमकृत्वा, अगत्वा, बहिः = बाह्यदेशाद्, एव, युवराजः = राज-

---

मुख किये हुए (वह चन्द्रापीड) जाकर आगे बढ़ाये = लाये गये भी किन्तु पीछे हटे हुए, अस्वाभाविक हिनहिनाहट करते हुए, कानों को ऊपर न उठाये हुए, असुख = कष्ट देनेवाली बुरी आवाज वाले, अनमने (उदास), गमन के प्रति कोई जोश (उत्साह) न प्रकट करते हुए तथा दीन (खिन्न) इन्द्रायुध को देखकर भी, फिर से रोक दिये जाने की आशंका से, अर्थात् फिर से मुझे जाने से रोक न दिया जाय—इस आशंका से, वैशम्पायन को देखने की शीघ्रता से तथा कादम्बरी के साथ मिलने की उत्सुकता (उतावलेपन) से बिना कुछ देर किये हुए, [घोड़े पर] सवार होकर बड़ी तेजी के साथ नगरी (उज्जयिनी) से बाहर निकल गया।

[नगरी से] बाहर निकल कर सिप्रा नदी के तट पर उसके प्रस्थानकालिक माङ्गलिक कृत्यों के सम्पादन के लिये बनाये गये पटमकण्डप (तम्बू) में प्रवेश न करके (वहाँ न ठहर कर) 'बाहर

---

१. हेषारवः।

रेव गतो युवराज' इति जनितकलकलेनातर्कितत्कालगमनसम्भ्रान्तेन परिजनेन राजपुत्रलोकेन चेतस्ततो धावतानुगम्यमानो गव्यूतित्रितयमिव गत्वा सुलभपयोयवसे प्रदेशे निवासमकल्पयत् । उत्ताम्यता हृदयेनाप्रभातायामेव[1] यामिन्यामुत्थाय पुनरवहत् । वहंश्च तस्मादेव वासरादारभ्य "*एवमचेतित एव परापत्य कृतापक्रान्तेस्त्रपया पृष्ठतोनुगम्य बलाद् दत्तकण्ठग्रहः 'क्व परं[2] पलाय्यते ? इति वैशम्पायनस्य वैलक्ष्यमपनयामि, *एवं तत्समागमसुखमनुभूय

कुमारः गतः = प्रस्थितः, इति, जनितकलकलेन = विहितकोलाहलध्वनिना, अतर्कितेत्यादिः—अतर्कितम् (= अचिन्तितम्) तत्काले (= तस्मिन् समये) गमनम् (= प्रयाणम्) तेन हेतुना सम्भ्रान्तेन (= आश्चर्यचकितेन, उद्विग्नेन), परिजनेन = सेवकलोकेन, इतस्ततः=यत्र तत्र, धावता = त्वरयता, राजपुत्रलोकेन = राजसुतसमूहेन, च, अनुगम्यमानः = अनुस्रियमाणः, गव्यूतित्रितयम् = षट्क्रोशपरिमितम्, सार्धैकयोजनमितम्, इव, गत्वा = व्रजित्वा, सुलभपयोयवसे—सुलभानि (=सुखेन प्राप्तुं योग्यानि) पयांसि (=जलानि) यवसानि (= भक्ष्यतृणादीनि) यस्मिन् तादृशे, प्रदेशे = स्थाने, निवासम् = वसतिम्, अवस्थितिम्, अकल्पयत् = अकरोत् ।

उत्ताम्यतेति । उत्ताम्यता = औत्सुक्यं प्राप्नुवता, हृदयेन = चेतसा, अप्रभातायाम् = प्रभातशून्यायाम्, अवशिष्टायामेवेति भावः, यामिन्याम् = निशायाम्, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, पुनः = भूयः, अवहत् = तीव्रवेगेनाचलत् । वहन् = त्वरया गच्छन्, च, तस्माद् = वैशम्पायनविषयकवृत्तान्तसूचकाद्, वासरात् = दिवसाद्, एव, आरभ्य = आदाय, ["एवम् अचेतित एव" इत्यत आरभ्य दूरे वक्ष्यमाणे 'इत्येतानि चान्यानि च' चिन्तयन्' इत्यन्तं परस्परमन्वयो बोध्यः ।] एवम् = इत्थम्, अचेतितः=अविज्ञात-गमनः, एव, परापत्य = सहसा उपसृत्य, त्रपया = लज्जया, मम दर्शनोत्पन्नयेति भावः, कृतापक्रान्तेः—कृता (= विहिता) अपक्रान्तिः (= अपक्रमणम्, पलायनम्) येन तस्य तादृशस्य, वैशम्पायनस्य, पृष्ठतः = पश्चाद्भागे, अनुगत्य =अनुसृत्य, बलात् = बलपूर्वकं यथा स्यात् तथा, दत्तकण्ठग्रहः—दत्तः (= विहितः) कण्ठस्य (= ग्रीवास्थलस्य) ग्रहः (= ग्रहणम्, आलिङ्गनमिति भावः) येन स तादृशः सन् अहं चन्द्रापीडः, 'क्व = कुत्र, परम् = अन्यत्र, दूरे, पलाय्यते = पलायनं क्रियते, धाव्यते, त्वया वैशम्पायनेनेति शेषः' ? इति = अनेन रूपेण वैशम्पायनस्य, वैलक्ष्यम् = त्रपाम्, अपनयामि = दूरीकरोमि, सामीप्ये भविष्यति लटः प्रयोगः । एवम् = इत्थम्, तत्समागमसुखम् = वैशम्पायनमिलनानन्दम्,

---

ही बाहर से युवराज चले गये हैं'—इस प्रकार से कोलाहल करते (चिल्लाते) हुए और अचानक उसी समय आगे निकल (बढ़) जाने के कारण घबड़ाये (हड़बड़ाये) हुए सेवकों द्वारा और इधर-उधर भागते हुए राजकुमारों द्वारा पीछा किये जाते हुए चन्द्रापीड ने तीन गव्यूति = छः कोस के लगभग पार करके जहाँ घास-भूसा और जल सुलभ थे वहाँ, पड़ाव डाला, रुका । किन्तु अत्यधिक उतावली वाले मन के कारण सबेरा न होने पर भी रात में ही उठ कर फिर दौड़ने लगा । दौड़ते हुए उसी दिन से लेकर [चन्द्रापीड के मन में ये भाव उठने लगे थे कि]—अज्ञात रूप से अर्थात् बिना सूचना के अचानक पहुँच कर, मुझे देखकर लज्जा से भागते हुए वैशम्पायन का पीछा करके बलपूर्वक उसे गले

---

१. एवम् । २. परिपलाय्यते ।

* यहाँ मूल में 'एवम्' शब्द का अर्थ अस्पष्ट है । सामान्यतः 'एवम्' के अथ—"ऐसे, इस प्रकार, और"—प्रसिद्ध हैं । यहाँ कल्पना की उड़ानें प्रकट करने के लिये 'एवम्' का प्रयोग १२ बार किया गया है ।

निष्कारणप्रसन्नामनघामतर्कितोपनतमदवलोकनोपजातहर्षविशेषां पुरस्ताद्गमनसिद्धये पुनर्महाश्वेतां पश्यामि; एवं महाश्वेताश्रमसमीपे पुनः स्थापिताशेषतुरगसैन्यस्तया सहैव हेमकूटं गच्छामि; एवं तत्र मत्प्रत्यभिज्ञानसम्भ्रमप्रधावितेनेतस्ततः कादम्बरीपरिजनेन प्रणम्यमानः प्रविश्य, मदागमननिवेदनोत्फुल्लनयनेन [1]सखीजनेनापह्रियमाणपूर्णपात्राम्, 'क्वासौ, केन कथितम्,कियद्दूरे वर्तते?' इति [2]मत्प्रश्नोन्मुखीम्, तत्क्षणोत्पन्नया तापोपशान्त्या

अनुभूय = अनुभवविषयीकृत्य, निष्कारण-प्रसन्नाम् = निर्निमित्तमेव प्रसादं कुर्वाणाम्, अनघाम् = निष्पापाम्, अतर्कितेत्यादि—अतर्कितम् (= अचिन्तितम्, अविचारितम्) यथा स्यात् तथा उपनतम् (= सम्प्राप्तम्, सञ्जातम्) यत् मम (=चन्द्रापीडस्य) अवलोकनम् (=दर्शनम्), तेन हेतुना जातः (=उत्पन्नः) हर्षविशेषः (=प्रमोदविशेषः) यस्याः तां तादृशीम्,महाश्वेताम्=एतन्नाम्नीं तपस्विनीं कादम्बरी-प्रियवयस्याम्, पुरस्तात् = ततोऽग्रे, गमन-सिद्धये = यात्रासाफल्याय, पश्यामि = विलोकयामि, विलोकयिष्यामीति भविष्यदर्थे लटः प्रयोगः। एवम् = अनेन प्रकारेण, महाश्वेताश्रमसमीपे = महाश्वेतायाः तपश्चरणस्थली-निकटे, पुनः = भूयः, स्थापितेत्यादिः—स्थापितम् (= न्यस्तम्, त्यक्तम्) अशेषम् (= समस्तम्) तुरगसैन्यम् (=अश्वसेनादिकम्) येन स तादृशः, सन्, तया = महाश्वेतया, सह = सार्धम्, एव, हेमकूटम् = कादम्बर्याः राजधानीम्, गच्छामि = व्रजामि, व्रजिष्यामीत्यर्थः। एवम् = अनेन प्रकारेण, तत्र=हेमकूटे पर्वते, मदित्यादि—मम (=चन्द्रापीडस्य) यत् प्रत्यभिज्ञानम् (= परिचयः) तेन यः सम्भ्रमः (= संवेगः, त्वरा) तेन प्रधावितेन (= प्रकर्षेण चलितेन, पलायितेन), कादम्बरी-परिजनेन = कादम्बरी-सेवकलोकेन, इतस्ततः = सर्वासु दिशासु, यत्र तत्र सर्वत्र, प्रणम्यमानः = अभिवन्द्यमानः, प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा, मदित्यादिः—मम (= चन्द्रापीडस्य) यद् आगमनम् (= सम्प्राप्तिः, हेमकूटे) तस्य निवेदनम् (= सूचनम्) तेन उत्फुल्ले (= विकसिते, प्रसन्ने नेत्रे) यस्य तादृशेन, सखीजनेन=वयस्यालोकेन, अपाह्रियेत्यादिः— अपह्रियमाणम् (= बलात् गृह्यमाणाम्) पूर्णपात्रम् (= अक्षतादिमाङ्गलिकद्रव्यभरितपात्रम्) यस्याः तं तादृशीम्। 'असौ = एष चन्द्रापीडः, क्व = कुत्र, वर्तते ? केन = अज्ञातेन, कथितम् = सूचितम्, तस्यागमनमिति शेषः, कियद्दूरे = कियति विप्रकृष्टे, वर्तते = विद्यते ? इति = इत्थम्, मत्प्रश्नोन्मुखीम्—मम (=चन्द्रापीडस्य) प्रश्नेषु (= पृच्छाविषयेषु)

से लगाकर,'अब कहाँ भागे जा रहे हो'? ऐसा कहकर उसकी लज्जा=व्यग्रता को भगा दूँगा। ऐसे उसके मिलन के सुख का अनुभव करके, अकारण प्रसन्न होनेवाली,निष्पाप, अचानक पहुँचे हुए मुझे देखने से उत्पन्न हुए हर्षविशेष से युक्त(बहुत प्रसन्न) महाश्वेता का दर्शन,फिर से आगे गमन की सिद्धि के लिये, करूँगा। ऐसे महाश्वेता के आश्रम के समीप समस्त घुड़सवार सेना को ठहराकर उस महाश्वेता के साथ ही हेमकूट पर्वत जाऊँगा। ऐसे वहाँ मुझे पहचान लेने के कारण हड़बड़ी में इधर-उधर दौड़ते हुए कादम्बरी के सेवकों द्वारा प्रणाम किया जाता हुआ, (वहाँ) प्रवेश करके—दर्शनीय वस्तुओं के देखने के फल से अपनी आँखों को कृतार्थ करता हुआ उस कादम्बरी का दर्शन करूँगा, जिस (कादम्बरी) से मेरे आगमन की सूचना देने से प्रसन्न नेत्रों वाली परिचारिकायें [हठात्] पूर्णपात्र छीन कर ले रही होगीं। 'वह (चन्द्रापीड) कहाँ है ? [उसका पुनरागमन] किसने कहा है ? वह कितनी दूरी पर है ? इस प्रकार से मेरे विषय में प्रश्न करने लगेगी,उसी समय उत्पन्न हुए तापशमन के

१. नयनसखी। २. तत्प्रश्नोन्मुखी।

त्रपया च युगपदुरसि [1]निहितं पद्मिनीपत्रमपनीयोत्तरीयांशुकाञ्चलं कुचावरणतामुपनयन्तीम्, आभरणतां नीतानि[2] [3]मृणालान्यपास्य भूषणेभ्योऽधिकां स्वशरीरशोभामेव सर्वाभरणस्थानेषु धारयन्तीम्, तापोपशमार्पितहारमात्राभरणाम्, अत्युल्बणहरिचन्दनचर्चान्तरितलावण्य-शोभान्यङ्गानि करपरामर्शप्रयत्नेन दर्शनीयतरतां नयन्तीम्, अङ्गलग्नानि [4]शयनीकृतकमल-

---

उन्मुखीम् (= ऊर्ध्वाननाम्, तस्य जनस्य प्रश्नेषु सावधानतया जिज्ञासां प्रकटयन्तीमिति भावः)।

तत्क्षणेति। तत्क्षणोत्पन्नया = तस्मिन्नेव समये सञ्जातया, तापोपशान्त्या = कामजन्य-सन्तापोपशमनेन, त्रपया = व्रीडया, च, युगपत् = एककाले एव, उरसि = वक्षसि, निहितम् = स्थापितम्, पद्मिनीपत्रम् = कमलिनीदलम्, अपनीय = अपाकृत्य, दूरे कृत्वा, उत्तरीयांशुकाञ्चलम्-उत्तरीयांशुकम् (= उपसंव्यानवस्त्रम्) तस्य अञ्चलम् (= प्रान्तभागम्) कुचावरणताम् = स्तनयोराच्छादनताम्, उपनयन्तीम् = प्रापयन्तीम्, कुर्वाणाम्। आभरणताम् = आभूषणताम्, नीतानि = प्रापितानि, सर्वाङ्गेषु आभूषणीकृतानीत्यर्थः, मृणालानि = कमलिनीबिसानि, अपास्य = दूरीकृत्य, भूषणेभ्यः = अलङ्करणेभ्यः, अपि, अधिकाम् = प्रचुरतराम्, स्व-शरीर-शोभाम् =स्वदेह-सुन्दरताम्, एव, सर्वाभरण-स्थानेषु = समस्तानामलङ्करणानां धारणस्थलेषु हस्तपादादिषु,धारयन्तीम्= बिभ्राणाम्, अलङ्कारैर्विनापि शोभायमानाखिलावयवामित्यर्थः। तापेत्यादिः—तापः (= कामजन्य-सन्तापः, कामज्वरः) तस्य उपशमाय (= शान्त्यर्थम्, निवारणाय) अर्पितः (=दत्तः, धृतः) हारः (=माल्यम्) एव, (=मात्रम्) आभरणम् (=आभूषणम्) यया तां तादृशीम्, अत्युल्बणेत्यादिः- अत्युल्लबणम् (= अत्युत्कटम्) यद् हरिचन्दनम् (= गोशीर्ष-मलयजम्)। तेन चर्चा (= पूजा, लेपनम्) तया अन्तरिता (= व्यवहिता, आच्छादिता) लावण्यस्य (= सौन्दर्यस्य) शोभा (= उत्कर्षः, छटा) येषां तानि तादृशानि, अङ्गानि = शरीरावयवान्, करेत्यादिः—करेण (= हस्तेन) यः परामर्शः (= स्पर्शनम्) तस्य प्रयत्नेन (= प्रयासेन), दर्शनीयतरताम् = अतिशयेन अवलोकनीयताम्, नयन्तीम् = प्रापयन्तीम्, तस्याः हस्तस्पर्शेन अङ्गानां शोभा प्रवर्धमाना दृश्यते स्मेति भावः। अङ्गलग्नानि = देहे संसक्तानि, शयनीकृतेत्यादिः—शयनीकृतानि (= तल्पी-कृतानि, शय्यारूपेण प्रयुक्तानि) यानि कमलानाम् (= सामान्यपङ्कजानाम्) कुमुदानाम् (=श्वेत-

---

तथा लज्जा के कारण वक्षस्थल पर रखे गये कमलिनीपत्रों को एक साथ हटाकर रेशमी वस्त्र के टुकड़े के आँचल (कोने) को कुचों (स्तनों) का आवरण बनाने लगेगी, आभूषणों के रूप में धारण किये गये कमलिनी के नालों को हटा कर, आभूषणों की अपेक्षा और भी अधिक अपने शरीर की शोभा को ही सभी आभूषणों के स्थानों (हाथ, ग्रीवा, मस्तक आदि) में धारण करने लगेगी, सन्ताप मिटाने के लिये केवल हार को ही धारण करेगी, हरिचन्दन के गाढ़े लेप से ढके हुए सौन्दर्य की शोभावाले अपने अवयवों को हाथों के स्पर्श करने के प्रयत्न से और अधिक दर्शनीयता (देखने योग्यता) को प्राप्त कराने लगेगी, शरीर में लगे (चिपके) हुए, पलंग के रूप में उपयुक्त कमल, रक्तकमल, नीलकमल की

---

१. निहित। २. उपनीतानि।

३. कमलिनीमृणालानि। ४. शयनीयकृत।

कुमुद[1]कुवलयदलकिञ्जल्कशकलानि पुलकोद्गमेनैवापास्यन्तीम्[2], कपोलसङ्गिनीं च मणिदर्पणे[3] विलोक्यायथास्थितां[4] करेण कबरीमंसदेशे विनिवेशयन्तीम्, आनन्दजन्मना नेत्रपुटावर्जितेन बाष्पसलिलेनैव मकरध्वजानलसन्तापाय जलाञ्जलिमिव प्रयच्छन्तीम्, उत्सृष्टशेषेणाश्यानमलयजरसेनैवाङ्गलग्नेन भस्मनेव मदनहुतभुजा निवृत्तिमावेदयन्तीम्, अभ्युत्थानप्रसङ्गेनैव कुसुमशय्यां दूरीकुर्वन्तीं कादम्बरीमालोकयन्दर्शनीयावलोकनफलेन चक्षुषी[5]कृतार्थतां नयामि, एवं मदलेखां साञ्जलिप्रणामेन कण्ठग्रहेण सम्भाव्य[6] चरणपतितां पत्रलेखामुत्थाप्य[7]

पद्मानाम्) कुवलयानाम् (=नीलकमलानाम्) च दलानि (= पत्राणि) किञ्जल्काः (=केसराः) तेषां शकलानि (= खण्डानि), पुलकोद्गमेन (= रोमाञ्चोद्भवेन) एव, न तु अन्यप्रयासेनेति भावः, अपास्यन्तीम् = दूरे कुर्वतीम्, पातयन्तीमित्यर्थः। कपोलसङ्गिनीम् = गण्डस्थले संसक्ताम्, कबरीम् = वेणीम्, मणिदर्पणे = मणिमयादर्शे, अयथास्थिताम् = अनुपयुक्तरूपेण स्थायिनीम्, विलोक्य = दृष्ट्वा, अंसदेशे = स्कन्धभागे, निवेशयन्तीम् = संस्थापयन्तीम्। आनन्दजन्मना—आनन्दात् (=हर्षातिरेकात्) जन्म (= उत्पत्तिः) यस्य तेन तादृशेन, नेत्रपुटावर्जितेन = नयनरूप-पात्रेण उपहृतेन, बाष्प-सलिलेन = अश्रुजलेन, एव, मकरेत्यादिः—मकरध्वजः (=कामदेवः) एव अनलः (= वह्निः) तस्य संन्तापः (= संज्वरः) तस्मै, जलाञ्जलिम् = सलिलाञ्जलिम्, इव, प्रयच्छन्तीम् = समर्पयन्तीम्। उत्सृष्टशेषेण—उत्सृष्टात् (= दूरीकृतात्) शेषेण (= अवशिष्टेन) आश्यान-मलयज-रसेन—अल्पीभूतेन चन्दनद्रवेण, अङ्गलग्नेन = देहसंसक्तेन, भस्मना = भूत्या, इव, मदनहुतभुजः = कामाग्नेः, निवृत्तिम् = उपशमनम्, आवेदयन्तीम् = सूचयन्तीम्। भस्मदर्शनेनाग्नेः निवृत्तिरनुमीयते तथैवात्रापि बोध्यम्। इव शब्द उत्प्रेक्षायाम्। अभ्युत्थानप्रसङ्गेन = स्वागतार्थमुत्थानसम्बन्धेन, एव कुसुमशय्याम् = पुष्पतल्पम्, दूरीकुर्वतीम् = पृथग्विदधानाम्, कादम्बरीम् = एतन्नाम्नीं स्वप्रेयसीम्, आलोकयन् = पश्यन्, दर्शनीयेत्यादिः—दर्शनीयम् (= द्रष्टुं योग्यम्) तस्य यद् अवलोकनम् (= विलोकनम्) तस्य फलम् (= साध्यम्, सार्थक्यम्) तेन, चक्षुषी = नेत्रे, कृतार्थताम् = सफलताम्, नयामि=प्रापयिष्यामि, सामीप्ये भविष्यति लट् प्रयोग। अत्र औत्सुक्यस्य स्वाभाविकं वर्णनमतीव मनोहरम्,

पुनरपि कल्पनामेव निरूपयति—एवमित्यादिना। एवम् = अनेन प्रकारेण, मदलेखाम् = कादम्बर्याः सखीं सेविकाम्, साञ्जलि-प्रणामेन—अञ्जलिः (= बद्धकरपुटम्) तेन सहितः प्रणामः (= करबद्धप्रणातिः) यस्मिन् तेन तादृशेन, कण्ठग्रहेण = कण्ठाश्लेषेण, सम्भाव्य = सम्मान्य, चरण-पतिताम् = पादयोः प्रणताम्, पत्रलेखाम् = एतन्नाम्नीं स्वसेविकाम्, उत्थाप्य = उत्थापनेन

पंखुड़ियों तथा केसर के टुकड़ों को रोमांच के उद्गम से ही दूर करने (गिराने) लगेगी, गालों पर बिखरे हुए, अव्यवस्थित रूप में लटकते हुए केशों के समूह (चोटी) को मणिदर्पण (मणिमय शीशा) में देखकर हाथ से कंधे पर धरने लगेगी, आनन्द से उत्पन्न होने (निकलने) वाले, नेत्रपुट द्वारा छोड़े गये आँसुओं के पानी से ही कामदेव रूप अग्नि के सन्ताप [की शान्ति] के लिये जलाञ्जलि सी देने लगेगी, छुड़ा देने के बाद बचे (चिपके) हुए गाढ़े चन्दन का रस जो कि शरीर में लगी भस्म के सदृश होगा, के द्वारा कामदेव रूपी अग्नि की निवृत्ति (शान्ति) को सूचित करेगी, [मेरे] स्वागत में उठ खड़े होने के प्रसङ्ग से ही फूलों के पलंग को दूर कर देगी, छोड़ देगी; [ऐसी कादम्बरी का दर्शन कर दर्शनीयवस्तुओं के देखने के फल से अपनी आखों को सार्थक कर लूंगा।] इस प्रकार से हाथ जोड़कर प्रणाम से तथा कण्ठ के आलिंगन से मदलेखा को सम्मानित करके, पैरों

---

१. कुवलयकिंजल्क।　२. अपश्यन्तीम्।　३. मणिदर्पणेनालोक्य।　४. उपस्थिताम्।
५. कृतार्थयामि।　६. च संभावयामि।　७. सम्भाव्य।

केयूरकं पुनः पुनः परिष्वज्य निर्भरम्, एवं महाश्वेतोपपादितोद्वाहमङ्गलस्त्वरितसखीवृन्द-निर्वर्तितवैवाहिकस्नानमङ्गलविधेर्भुव[1] इव वर्षाभिषिक्तायाः करग्रहणं[2] देव्या निर्वर्तयामि; एवमतिबहलकुङ्कुमकुसुमधु[3]पानुलेपनामोदोद्दीपितहृदयजन्मनि वासभवने[4]शयनवर्तिनो[4] मम समीपमुपविश्य क्षणमपि[5] कृतनर्मालापायां निर्गतायां मदलेखायां त्रपावनम्रमुखीमनिच्छन्तीं किल बलाद्दोर्भ्यामादाय शयनीयं शयनीयादङ्कमङ्काच्च हृदयं देवीं कादम्बरीमा-

---

स्नेहं प्रदर्श्य, केयूरकम् = एतन्नामानं कादम्बरी-सेवकम्, पुनः पुनः = भूयोभूयः, निर्भरम् = दृढं यथा स्यात् तथा, परिष्वज्य = समालिङ्ग्य । एवम् = इत्थम्, महाश्वेतेत्यादि.—महाश्वेतया (= कादम्बरी-प्रियवयस्यया) उपपादितम् (= विहितम्) उद्वाहस्य (= विवाहस्य) मङ्गलम् (=कल्याणम्) यस्य स तादृशः सन्, त्वरितेत्यादिः—त्वरितम् (= शीघ्रं यथा स्यात् तथा) सखीनाम् (= आलीनाम्) वृन्देन (= समूहेन) निर्वर्तितम् (= अनुष्ठितम्, सम्पादितम्) वैवाहिकम् (= उद्वाहसम्बन्धि) यत् स्नानमङ्गलम् (= माङ्गलिकस्नानादिकम्) तस्य विधिः (= विधानम्) यस्यास्तादृश्याः, वर्षाभिषिक्तायाः = वृष्ट्या कृतसेचनायाः, भुवः = पृथिव्याः, इव = यथा, देव्याः = कादम्बर्याः, करग्रहणम् = पाणिग्रहणम्, निर्वर्तयामि = सम्पादयामि, करिष्यामीति भावः । अत्र पृथिव्याः सह कादम्बर्याः सादृश्यवर्णनेनोपमालङ्कारः सुस्पष्टः ।

एवमतीति । एवम् = अनेन प्रकारेण, अतिबहलेत्यादिः—अतिबहलानि (= अत्यधिकानि, अतिघनानि वा) यानि कुङ्कुमानि (= केसराणि) कुसुमानि (= पुष्पाणि) धूपाः (=तुरुष्काः, गन्धविशेषजनकपदार्थाः) अनुलेपनानि (=विलेपनद्रव्याणि) च तेषां य आमोदः (= सौरभम्) तेन उद्दीपितः (= उत्तेजितः, प्रवर्द्धितः) हृदयजन्मा (= मनसिजः, कामः) यस्मिन् तादृशे, वासभवने = निवाससदने, शयनवर्तिनः = पर्यङ्कस्थितस्य, मम = चन्द्रापीडस्य, समीपम्=सविधम्, उपविश्य = निषद्य, क्षणमपि = अत्यल्पकालम्, कृतेत्यादिः—कृतः (= विहितः, उक्तः) नर्मालापः (= हासपरिहासवचनम्) यया तस्यां तादृश्याम्, मदलेखायाम् = कादम्बरीसख्याम्, निर्गतायाम्=बहिःनिःसृतायाम्, सत्याम्,त्रपावनम्रमुखीम्=लज्जयाऽवनतवदनाम्, अनिच्छन्तीम्=अकामयमानाम्, किल=यथार्थे, बलाद्=हठात् शक्तिप्रयोगात्, दोर्भ्याम्=भुजाभ्याम्, शयनीयम्=पल्यङ्कम्, आदाय = नीत्वा, उपस्थाप्येति भावः, शयनीयात् = पल्यङ्कात्, अङ्कम् = क्रोडम्, अङ्कात् = क्रोडात्, च, हृदयम् = चित्तम्, देवीम्, कादम्बरीम् = स्ववल्लभाम्, आरोपयामि = आरोहयामि,

---

पर गिरी (झुकी) हुई पत्रलेखा को ऊपर उठा कर, केयूरक का बार-बार खूब आलिंगन करके, महाश्वेता द्वारा मेरे विवाह का माङ्गलिक कृत्य किया जायगा, सखियों द्वारा जल्दी-जल्दी वैवाहिक स्नान तथा मङ्गलकृत्य कराई गयी देवी कादम्बरी जो कि वर्षा से सींची गई पृथ्वी के समान लगेगी, का पाणिग्रहण करूँगा, उससे विवाह कर लूंगा । तब बहुत अधिक केसर, पुष्प, धूप और अनुलेपन (उबटन) की सुगन्ध से उद्दीपित हुए कामदेव वाले वासभवन (ठहरने के महल) में पलंग पर बैठे (लेटे) हुए मेरे पास बैठकर, कुछ देर तक हँसी मजाक की बातें करके मदलेखा के बाहर चले जाने पर, लज्जा के कारण मुख को नीचे झुकाये हुई, न चाहती हुई भी देवी कादम्बरी को बलपूर्वक दोनों हाथों में समेट कर पलंग पर, पलंग से [उठाकर] गोद में और गोद से [उठाकर] हृदय में

---

१. ···विधेः । २. करग्रहणं निर्वर्तयामि । ३. ······धूपा० ।
४. शयनीयवर्तिनो मम समीपं, शयनवर्ती मत्समीपे समुपविश्य । ५. क्षणमिव ।

रोपयामि; एवमुद्[1]गाढनीवीग्रन्थिदृढतरार्पितपाणिद्वयाया[2] -स्त्रपानिमीलितलोचने चुम्बन्नवञ्चितात्मा[3] चिराद्भवामि; एवं सुरैरपि दुर्लभं तदधरामृतमा तृप्तेर्निपीय सुजीवितमात्मानं करोमि; एवमतिकोमलतयान्तर्विलीय विशन्त्या इवाङ्गं[4] गाढालिङ्गनसुखरसभरेण मकरध्वजानलदग्धशेषं निर्वापयामि शरीरम्; एवं परवत्यापि स्वेच्छाप्रवृत्तयेव, निष्प्रयत्न-

---

स्थापयामि, स्थापयिष्यामीत्यर्थः। एवम् = इत्थम्, उद्गाढेत्यादिः—उद्गाढा (=अतिदृढबद्धा) या नीव्याः (=अधोवस्त्रबन्धनस्य) ग्रन्थिः (=ग्रन्थिका) तस्यां दृढतरम् (=निबिडतरम्, प्रकृष्टतरम्) अर्पितम् (=दत्तम्) यथा स्यात् तथा पाणिद्वयम् (= करद्वयम्) यया तस्याः तादृश्याः कादम्बर्याः, त्रपानिमीलितलोचने = लज्जया मुद्रिते नेत्रे, चुम्बन् = चुम्बनं कुर्वन्, चिरात् = बहुकालानन्तरम्, अवञ्चितात्मा—अवञ्चितः (=अप्रतारितः, सफलीकृतः) आत्मा (= जीवनम्) यस्य स तादृशः, भवामि = सम्पद्ये, भविष्यामीत्यर्थः। एवम् = इत्थम्, सुरैरपि = देवैरपि, दुर्लभम् = दुष्प्रापम्, तदधरामृतम्—तस्याः (= कादम्बर्याः) अधरम् (= रदनच्छदम्) एव, अमृतम् (= पीयूषम्) यद्वा—अधरम् अमृतमिव, आ तृप्तेः = तृप्तिपर्यन्तम्, पिपासानिवृत्तिपर्यन्तम्, निपीय = भृशं पीत्वा, आत्मानम् = स्वम्, सुजीवितम् = सफलजीवनम्, करोमि = विदधामि एवम्=इत्थम्, अतिकोमलतया=अतीवमृदुतया, अन्तः = मध्ये, विलीय = विलीना भूत्वा, द्रवीभूय, अङ्कम् = शरीरम्, विशन्त्याः = प्रवेशं कुर्वन्त्याः, इव, तस्याः, गाढेत्यादिः— गाढम् (= निबिडम्) यद् आलिङ्गनम् (= परिष्वङ्गः, उपगूहनम्) तस्य यत् सुखम् (= आनन्दः) तस्य रसस्य (= द्रवविशेषस्य) भरः (= अतिशयः) तेन हेतुना, मकरेत्यादिः—मकरध्वजः (= कामदेवः) एव अनलः (=वह्निः) तेन दग्धात् (= प्लुष्टात्, ज्वलनात्) अवशिष्टम् (= शेषभूतम्), शरीरम् = स्वदेहम्, निर्वापयामि= उपशमयामि, शीतलीकरोमि।

एवमिति। एवम् = इत्थम्, परवत्या = पराधीनया, अपि, स्वेच्छाप्रवृत्तया = स्वबाञ्छया प्रवृत्तिं कुर्वन्त्या, इव; निष्प्रयत्नया = प्रयासरहितया, अपि, अभियुञ्जानया = अभि-

---

बैठा लूंगा। इसके बाद कसकर बांधी गयी नीवी (नारे) की ग्रन्थि (गांठ) पर दृढ़ता (मजबूती) के साथ दोनों हाथ रखे हुई उस (कादम्बरी) के लाज के कारण बन्द किये गये दोनों नेत्रों को चूमता हुआ बहुत देर तक या बहुत देर बाद कृतकृत्य (सफल) जीवन वाला हो सकूंगा। इसके बाद देवताओं के लिये भी दुर्लभ उस कादम्बरी के अधरों को जी भर कर पान करके अपना जीवन सफल कर लूंगा। इसके बाद कोमल होने के कारण अपने आप में मानों पिघल कर (समाकर) [मेरे] अंगों में प्रवेश करती हुई सी उसके कामाग्नि से जलने के बाद शेष बचे हुए शरीर को गाढ आलिंगन सुख के रस के भार से अर्थात् अत्यन्त आनन्दरूपी जल से शीतल कर दूंगा, तपते अंगों को ठंडा कर दूंगा। इसके बाद पराधीन होती हुई भी स्वेच्छा से [मेरे पास आने के लिये] प्रवृत्त हुई सी, कोई

---

१. उद्भट०। २. पाणिद्वयां।

३. अचुम्बितात्मा। ४. अङ्गभङ्गम्।

याप्यभियुञ्जानयेवापसर्पन्त्यापि [1]कृतोपसर्पणयेव, संगोपितसर्वाङ्गयाप्युपर्शितभावयेव देव्या कादम्बर्या सह तत्किमपि[2] सर्वजनसुलभमपि योगैकगम्यं', [3]स्पर्शविषयमपि हृदयग्राहि, मोहनमपि प्रसादनमिन्द्रियाणाम्, उद्दीपनमपि मदनहुतभुजो [4]निर्वृतिकरम्, उपाहित-सर्वाङ्गखेदमप्याह्लादकरम्, उपजनितविषमोच्छ्वासश्रमस्वेदमपि ससीत्कारपुलकजननम्;

प्रेरयन्त्या, इव; अपसर्पन्त्या = पृष्ठे पलायमानया, दूरे भवन्त्या, अपि, कृतोपसर्पणया—कृतम् (= विहितम्) उपसर्पणम् (= समीपमागमनम्) यया तया तादृश्या इव; संगोपितेत्यादिः—संगोपितानि (= गोपनीयतां प्रापितानि, पिहितानि) सर्वाणि (= सकलानि) अङ्गानि (= देहावयवाः) यया तया तादृश्या, अपि, उपदर्शितभावया—उपदर्शितः (= प्रकटितः) भावः मनोभिलाषः, रिरंसा) यया तया, तादृश्या, इव; देव्या, कादम्बर्या, सह=सार्धम्, तत्, किमपि = शब्दैः प्रतिपादनानर्हम्, सर्वजनसुलभम् = सकलप्राणि-सुप्रापम्, अपि, योगैकगम्यम्—योगेन (= चित्तैकाग्र्येण) एव, गम्यम् (= प्राप्तव्यम्, अनुभवनीयम्); यद् एकेन योगेन एव गम्यं तत् कथं सर्वजनानां सुलभमिति विरोधः, अस्य परिहारः—योगेन = उभयोः देहयोः मनसोश्च सम्मेलनेन प्राप्यमित्यर्थेन भवति । स्पर्शविषयम्—स्पर्शस्य (= स्पर्शनेन्द्रियस्य त्वगिन्द्रस्य) विषयः तत्, तादृशम्, अपि, हृदय-ग्राहि = हृदयं गृह्णाति इति तादृशमित्यर्थः, अत्रार्थे विरोधः, परिहारस्तु—मनोहरमित्यर्थेन । मोहनम् = मूर्च्छाजनकम् अपि, इन्द्रियाणाम् = नेत्रादि-करणानाम्, प्रसादनम् = प्रीतिकरम्, अत्रार्थे विरोधः, परिहारस्तु—मोहनम् = मुग्धताकरमित्यर्थेन । उद्दीपनम् = उत्तेजकम्, अपि, मदनहुतभुजः = कामानलस्य, निवृतिकरम् = शमनकरम्, अत्रार्थे विरोधः, परिहारस्तु—निर्वृतिः = आनन्दः, तं करोति, इति आनन्दजनकम् इत्यर्थेन । उपाहितेत्यादिः—उपाहितः (= स्थापितः, जनितः) सर्वेषाम् (= सकलानाम्) अङ्गानाम् (= अवयवानाम्) खेदः (= आयासः) येन तत् तादृशम्, अपि, आह्लादकरम् = प्रमोदजनकम्, अत्र विरोधः, परिहारस्तु—खेदः = शारीरिकश्रमः, शारीरिकश्रमजनकत्वेपि मानसिकसुखकरमित्यर्थेन । उपजनितेत्यादिः—उपजनितः (=उत्पादितः) विषमः (= कष्टसहः) उच्छ्वासः (= निःश्वासः), श्रमः (= आयासः) स्वेदः (= घर्मजलम्) येन तत् तादृशम्, अपि, ससीत्कार-पुलकजननम्—सीत्कारेण सहितं यत् पुलकम् (= रोमाञ्चः) तस्य जननम् (= उत्पादकम्), उच्छ्वासादि-

प्रयत्न न करती हुई भी कार्य करने में लगी हुई सी, पीछे खिसकती हुई भी समीप में आती हुई सी, सभी अंगों को छिपाये (ढके) हुए होती हुई भी अपने अभिप्राय को दिखाती हुई सी देवी कादम्बरी के साथ उस किसी—सभी लोगों के लिये सुलभ होने वाले भी केवल योग से प्राप्त होने योग्य,[योग= चित्तवृत्ति का निरोध, इस अर्थ में विरोध, दो शरीरों का परस्पर मिलन—इस अर्थ में विरोधपरिहार होता है । इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए।] स्पर्श का विषय होता हुआ भी हृदयग्राही [हृदय को पकड़ने वाले, विरोध का परिहार—मनोहारी, अच्छा लगने वाले], मोह लेने वाला (मूर्च्छाकारी होता हुआ भी इन्द्रियों को खुश कर देने वाले [विरोध का परिहार—मुग्ध कर देने वाले, आनन्दित कर देने वाले], उद्दीपन करने वाला होता हुआ भी कामदेव रूपी अग्नि को शान्त कर देने वाले, [विरोधपरिहार-निर्वृति = आनन्द उत्पन्न करने वाले] सभी अंगों में खेद = दुःख उत्पन्न कर देने वाला होता हुआ भी आह्लाद पैदा करने वाले, [विरोधपरिहार—थकान पैदा करने वाले], लम्बी-लम्बी सांसें, थकान और पसीने को उत्पन्न करता हुआ भी सिसकारियों भरे रोमांच को उत्पन्न करने वाले,

१. कृतात्मार्पणयेव ।

२. क्वचित् पुस्तके 'न' इत्यधिकं पठ्यते, तन्न सम्यक् विरोधाभासानुपपत्तेरिति बोध्यम् ।

३. स्पर्शविषमपि ।

४. निवृत्तिकरम् ।

अनुभूयमानमप्युत्पादितानुभवनस्पृहम्, सहस्रवारानुभूतमप्यपुनरुक्तम्, अतिस्पष्टमप्यनिर्देश्य-स्वरूपम्, [1]अचिन्त्य-समासङ्गमतुलस्पर्शमनुपमरसमनाख्येयप्रीतिकरं परमध्यानसहस्राधिगतं निर्वाण[2]मिवापरप्रकारं [3]सुरताख्यं सुखान्तरमनुभूय निमेषमप्यकृतविरहस्तया[4] सह तेषु तेषु रम्येषूद्देशेषु[5] रममाणः [6]स्वभावरम्यमपि रमणीयतरतां यौवनमुपनयामि; एव-

---

जनकत्वेऽपि पुलकजननत्वे विरोधः, परिहारस्तु—सुरतकाले तादृशोभयसात्त्विकभावोदयस्यानुभव-सिद्धत्वात् बोध्यः। अनुभूयमानम् = साक्षात्क्रियमाणम्, अपि, उत्पादितेत्यादि—उत्पादिता (= जनिता) अनुभवनस्य (= अनुभूतेः) स्पृहा (= वाञ्छा) येन तत् तादृशम्, अत्रार्थे विरोधः, परिहारस्तु—अनुभवनम् = उपभोगः, तस्य स्पृहाया जनकमित्यर्थेन। सहस्रवारा-नुभूतम् = अनेकधानुभवविषयीकृतम्, अपि, अपुनरुक्तम् = अनाम्रेडितम्, अनावर्तितम् अत्रार्थे विरोधः। परिहारस्तु—अपुनरुक्तम् = अद्वितीयम् इत्यर्थेन। अतिस्पष्टम् = अतिप्रकटम्, अपि, अनिर्देश्यस्वरूपम्—अनिर्देश्यम् (= दर्शयितुमशक्यम) स्वरूपम् (= स्वभावः) यस्य तत् तादृशम्, अत्रार्थे विरोधः। अनिर्देश्य-स्वरूपम्—इत्यस्यानिर्वचनीयम् इत्यर्थेन परिहारः। एषु पूर्वोक्तेषु वाक्येषु विरोधस्य तत्परिहारस्य च दर्शनाद् विरोधाभासोऽलङ्कारः सुस्पष्टः।

पुनरपि तस्यैव सुरतस्य वैशिष्ट्यं वर्णयति—अचिन्त्येत्यादिना। अचिन्त्यसमासङ्गम्—अचिन्त्यः (= न चिन्तयितुं योग्यः, अवर्णनीयः) समासङ्गः (= समागमः) यस्य तत् तादृशम् अवर्णनीयमिति भावः। अतुलस्पर्शम्—अतुलः (= अनुपमः) स्पर्शः (= आमर्शः) यस्य तत् तादृशम्। अनुपमरसम्—अनुपमः (= सर्वातिशायी) रसः (= आस्वादः) यस्य तत् तादृशम्। अनाख्येय-प्रीतिकरम्—अनाख्येयाम् (= अवर्णनीयाम्) प्रीतिम् (= स्नेहम्, आनन्दम्) करोति इति, तत् अवर्णनीयानन्दोत्पादकम्। परमेत्यादिः—परमम् (= अत्युत्कृष्टम्) यद् ध्यानम् (= चित्तैकाग्रता) तस्य सहस्रम् (= दशशती) तेन अधिगतम् (= प्राप्तम्), निर्वाणम् = मोक्षम्, ब्रह्म, इव, अपर-प्रकारम् = प्रसिद्धात् भिन्नप्रकारम्, सुरताख्यम् = सुरतनामकम्, सुखान्तरम् = अन्यत् विलक्षणं सुखम्, अनुभूय = अनुभवविषयीकृत्य, निमेषम् = क्षणमात्रम्, अपि, अकृतविरहः—न कृतः (= विहितः) विरहः (= वियोगः, पार्थक्यम्) येन स तादृशः, सन्, तया = कादम्बर्या, सह = सार्धम्, तेषु तेषु = पुर्वानुभूतेषु, रम्येषु = मनोहरेषु, उद्देशेषु = स्थानेषु, रममाणः = रमणं कुर्वन्, विहरन्, स्वभावरम्यम् = निसर्गतः

[सुरतकाल में दोनों प्रकार के सात्त्विक भाव उदित होने के कारण विरोध नहीं है।] अनुभव किया जाता हुआ भी अनुभव करने की इच्छा को उत्पन्न करने वाले, [विरोधपरिहार—अनुभव=उपभोग की इच्छा उत्पन्न करने वाले], हजारों बार भोगा गया होता हुआ भी अपुनरुक्त = नया-नया, [विरोधपरिहार—अद्वितीय, अनुपम], अत्यन्त स्पष्ट होते हुए भी अकथनीय स्वरूप वाले, अचिन्तनीय समागम वाले, अतुलनीय स्पर्शवाले, अनुपम रस (आस्वाद) वाले, वर्णनातीत आनन्द प्रदान करने वाले, उत्कृष्ट हजारों ध्यानों के द्वारा प्राप्त होनेवाले, मोक्ष जैसे, एक अलग ही प्रकार वाले सुरतनाम वाले दूसरे ही सुख का अनुभव करके, (आनन्द प्राप्त करने के बाद) एक पल के लिये भी उस कादम्बरी से अलग न होता हुआ उसके साथ उन-उन मनोहर स्थानों में रमण करता = घूमता हुआ

---

१. अचिन्त्यसमागमम्।　२. निर्वाणसुखम्।　३. अपरप्रकाशम्।
४. तयैव।　५. रम्येषु देशेषु।　६. स्वयमेव रम्यम्।

मुत्पन्नविश्रम्भां[1] देवीमेवाभ्यर्थ्य वैशम्पायनस्यापि मदलेखया सह घटनां कारयामी'—त्येतानि चान्यानि च चिन्तयन्नचेतितक्षुत्पिपासातपश्रमोज्जागरव्यथो[2] दिवा रात्रौ चावहत् ।

एवं च बहतोऽप्यस्य दवीयस्तयाध्वनोऽर्धपथ एव कालसर्पो वर्त्मनः, प्रबलपङ्को[3] ग्रीष्मस्य, निशागमो गभस्तिमतः, स्वर्भानुरमृतदीधितेः, धूमोद्गमो वज्रानलस्फुरितानाम्,

---

रमणीयम्, अपि, यौवनम् = तारुण्यम्, रमणीयतरताम् = अतिशयेन मनोहरताम्, नयामि = प्रापयामि, यौवनमतिशयेन हृद्यं करोमीति भाव.।

एवमिति । एवम् = इत्थम्, उत्पन्नविश्रम्भाम्—उत्पन्नः (=सञ्जातः) विश्रम्भः (= विश्वासः) यस्याः तां तादृशीम्, देवीम् = प्रेयसीं कादम्बरीम्, एव, अभ्यर्थ्य=सम्प्रार्थ्य, मदलेखया = एतन्नामक-कादम्बरीसख्या, सह = सार्धम्, वैशम्पायनस्य = स्वमित्रस्य, अपि, घटनाम् = सम्मेलनम्, वैवाहिकसम्बन्धमित्यर्थः, कारयामि=जनयामि, कारयिष्यामीति भावः इति, एतानि = पूर्ववर्णितानि, अन्यानि = इतराणि वर्णयितुमशक्यानीत्यर्थः, च, चिन्तयन् = ध्यायन्, अचेतितेत्यादिः—अचेतिता (= न ध्याता, चिन्तिता) क्षुत् (= बुभुक्षा) पिपासा (= पानेच्छा), आतपः (= घर्मः) श्रमः (= खेदः, क्लमः) उज्जागरः (= जागरणम्) च एतेषां व्यथा (= पीडा) येन स तादृशः सन् चन्द्रापीडः, दिवा = दिने, रात्रौ = निशायाम्, च, अनवरतमिति भावः, अवहत् = प्रकर्षेण अचलत् ।

एवञ्चेति । एवम् = पूर्वोक्तप्रकारेण, च, वहतः =तीव्रं गच्छतः, अपि, अस्य चन्द्रापीडस्य, अध्वनः = पथः, दवीयस्तया = अतिदूरतया, अर्धपथे = मार्गस्य अर्धभागे, एव, वर्त्मन =मार्गस्य, कालसर्पः = कृष्णसर्पः, [अत्र प्रथमान्तानि सर्वाणि वक्ष्यमाणस्य 'जलदकालः' इत्यस्य विशेषणानि, स च 'बभूव' इति क्रियायामन्वेतीति बोध्यम् । कालसर्प इत्यत्र समासश्चिन्त्यः ।] ग्रीष्मस्य=तपनर्तोः, प्रबलपङ्कः = प्रकृष्टकर्दमः, गभस्तिमतः = सूर्यस्य, निशागमः = रात्रेरागमनम्, निशागमने सूर्यस्य शक्तेः प्रभावनाशकत्वेन साम्यम् । अमृतदीधितेः = सुधांशोः, स्वर्भानुः = राहुः, यथा राहुः चन्द्रं गृह्णाति तेन तस्य दर्शनं न भवति तथैव वर्षागमे मेघाच्छन्नत्वात् चन्द्रस्य दर्शनं न भवति । वज्रेत्यादिः—वज्रम् (=कुलिशम्, आकाशीयविद्युत्) तद् एव तस्य वा अनलः (= अग्निः) तस्य

स्वाभाविक रूप से रमणीय भी यौवन को और अधिक रमणीय बना लूंगा । इसके बाद विश्वास उत्पन्न कराई गई देवी कादम्बरी से ही प्रार्थना करके वैशम्पायन का भी मदलेखा के साथ मेल= विवाह करवा दूंगा'—इन बातों को तथा और दूसरी बातों को सोंचता हुआ चन्द्रापीड भूख, प्यास, धूप, थकान तथा जागरण की व्यथा की ओर कोई चिन्ता किये बिना ही दिन-रात चलता ही रहा ।

इस प्रकार से [सोचते हुए] उसके चलते रहने पर भी मार्ग के बहुत लम्बा होने के कारण आधे मार्ग में ही अर्थात् जब वह आधा मार्ग ही पार कर सका था तभी [शीघ्र गमन में बाधा डालने वाला जलदकाल=बरसात का मौसम आ गया, जो जलदकाल] मार्ग का [अवरोधक] काला नाग, गर्मी के लिये [अवरोधक] बहुत भीषण कीचड़, सूर्य के लिए रात्रि का आ जाना, चन्द्रमा के लिये [निगलने वाला] राहु, बिजलीरूपी अग्नि के स्फुलिंगों (कणों) के लिये धुँआँ

---

१. उत्पन्नसहस्रविश्रम्भाम् । २. जागरव्यथो । ३. कम्पो ।

मदागमो मकरध्वजकुञ्जरस्य, मरणान्धतमसप्रवेशो विरहातुराणाम्, [१]अमोघकालपाश-वागुरोत्कण्ठितकामिहरिणानाम्, अभेद्यलोहार्गलदण्डो दिग्वारणानाम्, अच्छेद्यहिञ्जीरश्शृङ्खला वाहानाम्, अनुन्मोच्यनिगडबन्धोऽध्वगानाम्, अलङ्घ्यकान्तारलेखा प्रोषितानाम्,

स्फुरितानाम् (= स्फुलिङ्गानाम्), धूमोद्गमः (= धूमोद्भवः) यथा धूमोदयस्य अनन्तरं वह्नेरुद्गमस्तथैव मेघस्योदयानन्तरं विद्युदग्निस्फुलिङ्ग-प्रकटनं भवति । मकरेत्यादिः—मकरध्वजः (= कामदेवः) एव कुञ्जरः (= गजः) तस्य, मदागम = दानजलस्य उद्भवः, वर्षाकाले यथा गजो मदयुक्तो भवति तथैव कामदेवोऽपि समुद्दीपितो भवति । विरहातुराणाम् = वियोगेन व्याकुलानां जनानाम्, मरणान्धतमस-प्रवेशः—मरणम् (= मृत्युः) एव अन्धतमसम् (= प्रगाढध्वान्तम्) तस्मिन् प्रवेशः (= प्रविशनम् गमनम्), वर्षर्तौ वियोगिनां मृत्युतुल्यकष्टस्यानुभवसिद्धत्वात् । उत्कण्ठितेत्यादिः—उत्कण्ठिताः (= उत्सुकाः) ये कामिनः (= कामुकाः) त एव हरिणाः (= मृगाः) तेषाम् अमोघेत्यादिः—अमोघा (= अव्यर्था, अतिदृढा) कालपाशः (= यमसम्बन्धिनी गलबन्धनरज्जुः) एव वागुरा (= बन्धनसाधनम्) वागुरया बद्धो हरिणो यथा न क्वापि गन्तुं प्रभवति तथैव वर्षया विवशीकृताः कामिनोऽपि न कुत्रापि गन्तुं प्रभवन्तीति साम्यम् । दिग्वारणानाम्—दिशः (= दिशाः, आशा) एव वारणाः (=गजाः) तेषाम्, अभेद्येत्यादिः—अभेद्यः (=भेत्तुमशक्यः, अभेदनीयः) लोहस्य (= अयसः) अर्गलस्य (= परिघस्य) दण्डः (= यष्टिका)। यथा लोहार्गलानिबद्धो गजः ततः पृथग्भवितुं नार्हति, तथा सहैव मिलितस्तिष्ठति तथैव वर्षाकाले मेघैरावृतत्वात् सूर्यस्यादर्शनात् दिशां पृथक्-पृथक् ज्ञानं न भवतीति बोध्यम् । वाहानाम् = अश्वानाम्, अच्छेद्य-हिन्जीर-शृङ्खला—अच्छेद्यः (= छेत्तुमशक्यः, अत्रोटनीयः) यः हिञ्जीरः (= पादबन्धनपाशः) तस्य शृङ्खला (= निगडः,) यथा पाशेन बद्धाः अश्वाः चलितुं न शक्नुवन्ति तथैव वर्षायां कर्दमाधिक्यात् तेषां गतिर्निरुध्यत इति साम्यम् । अध्वगानाम् = पान्थानाम्, प्रवासिनाम्, अनुन्मोच्येत्यादिः—अनुन्मोच्यः (= उन्मोक्तुमशक्यः, अदूरीकरणीयः) निगडस्य (= शृङ्खलायाः) बन्धः (= बन्धनम्) । यथा निगडेन निबद्धाः एकस्मिन् स्थाने एव तिष्ठन्ति तथैव वर्षया अवरुद्धाः व्याकुला अपि पान्था अग्रे गन्तुं न प्रभवन्तीति साम्यम् । प्रोषितानाम् = विदेश-स्थितभर्तृकाणा स्त्रीणाम्, अलङ्घ्येत्यादिः—अलङ्घ्या (= लङ्घितुमशक्या, अनतिक्रमणीया) कान्तारस्य (= वनस्य) लेखा (= पङ्क्तिः) । यथा भर्तृवियुक्ताः स्त्रियः कान्तारश्रेणीं पारं कर्तुं न शक्नुवन्ति तथैव वर्षाकालमपि अतिवाहयितुं समर्था न भवन्ति, मध्ये एव मृतप्राया भवन्तीति साम्यम् । जीवलोकस्य = प्राणिवर्गस्य, संसारस्य, कालायसेत्यादिः—कालायसस्य (= लौहविशेषस्य) यत् पञ्जरम् (= पिञ्जरम्) तस्मिन् उपरोधः (= बन्धनम्) लोहपञ्जरे बद्धाः प्राणिनोऽन्यत्र क्वापि गन्तुमसमर्था भवन्ति

कामदेवरूपी हाथी के लिये मदजल का आगमन=निकलना,विरह से व्याकुल लोगों के लिये मृत्यु रूपी अंधकार में प्रवेश,उत्कण्ठायुक्त कामी और कामिनीरूपी हरिणों के लिये अमोघ(कभी न नष्ट होनेवाली) बांधनेवाली यमराज की रस्सी,दिशारूपी हाथियों के लिये लोहे का अभेद्य (न टूटने योग्य)जंजीरवाला दण्ड (स्तम्भ), घोड़ों के लिये पैरों को बाँधनेवाली अछेदनीय जंजीर, प्रवासियों के लिये न छूटने वाली पैरों की बेड़ियों का बन्धन,प्रोषिता (= जिनके पति परदेश गये हैं ऐसी) स्त्रियों के लिये न पार

४. पाशोत्कण्ठित, पाशाविरह्योत्कण्ठित० ।

कालायसपञ्जरोपरोधो जीवलोकस्य, उद्गर्जन्नलि[1]कुलगवलमलिनघनघटाभोगभीषणो विषमविस्फूर्जितध्वनिर्विषमतरतडिद्गुणाकर्षी मण्डलितविकटशक्रकार्मुकोनवरतधाराशरा[2]सारवर्षप्रहारी पुरोमार्गमवरुन्धन्[3]विरुद्ध इवान्धकारितमुखो निस्त्रिंशशतसहस्रसम्पातदुष्प्रेक्ष्योऽक्षिणी प्रतिघ्नन्निवाशुगमनविघ्नकारी बभूव जलदकालः ।

तथैव वर्षाकालेऽपि अवरोधेन गृहादिभ्यो बहिर्गमनं न सम्भवतीति साम्यम् । अत्र प्रायशः सर्वत्र उपमालङ्कारः स्पष्टः ।

पुनरपि वर्षाकालमेव वर्णयति—उद्गर्जन्नित्यादिना । उद्गर्जन् = प्राबल्येन गर्जनं कुर्वन्, इदं पृथक् पदम्, 'जलदकालः' इत्यस्य विशेषणमित्येव समीचीनं प्रतीयते । केचित्तु—अल्यादीनामेव विशेषणं स्वीकुर्वन्ति, तन्मते–उद्गर्जन्तीनाम् (=प्रबलं शब्दमुत्पादयन्तीनाम्) अलीनाम् (= द्विरेफानाम्) कुलानि (= समूहाः) च गवलाः (= वन्यमहिषाः) च तद्वत् मलिना (= कृष्णवर्णा) घनानाम् (= मेघानाम्) घटा (= पङ्क्तिः, समुदायः) तासाम् आभोगः (= विस्तारः) तेन भीषणः (= भयङ्करः) [एतानि प्रथमान्तानि पदानि 'जलदकाल.' इत्यस्यैव विशेषणानि बोध्यानि ।] विषमेत्यादिः—विषमः (= भयङ्करः, प्रबलः) विस्फूर्जितस्य (= गर्जनस्य, विजृम्भणस्य) ध्वनि (=शब्दः) यस्य स तादृशः । विषमतरेत्यादिः—विषमतरः (=अतिशयेन विषमः, कठिनतरः) तडिद्गुणः (= विद्युद्रूपी प्रत्यञ्चा) तम् आकर्षति (= आकृष्टं करोति) इति तादृशः, विद्युद्रूपस्य गुणस्याकर्षणकारक इति भावः । वर्षतो मेघैः विद्युदाकृष्यते इति प्रत्यक्षम् । मण्डलितेत्यादिः—मण्डलितम् (= मण्डलाकारं जातम्) विकटम् (= विपुलम्) शक्रधनुः (= इन्द्रधनुः) यस्मिन् स तादृशः, अनवरतेत्यादिः—अनवरतम् (= निरन्तरम्) यथा स्यात् तथा धारा (= जलस्याखण्डवृष्टिः) इव शराः (= बाणाः) तेषाम् आसारवर्षः (= वेगयुक्तवृष्टिः) तेन प्रहरति (= प्रहारं करोति, ताडयति) इति तादृशः, पुरः = अग्रतः, मार्गम् = वर्त्म, अवरुन्धन् = अवरुद्धं कुर्वन्, गमनाद् वारयन्निति भावः, विरुद्धः = रिपुः, इव, अन्धकारितमुखः = सञ्जातान्धकारं वदनं यस्य स तादृशः, जलदकालपक्षे तु—सञ्जातान्धकारं वदनं यस्मिन् स तादृश इत्यर्थः, निस्त्रिंशेत्यादिः—निस्त्रिंशाः (= निर्गताः त्रिंशद्भ्यः अङ्गुलिभ्य इति त्रिंशदङ्गुलिपरिमाणतोऽप्यधिकलम्बायमानाः खड्गाः) तेषां यत् शतसहस्रम् (= लक्षम्) तस्य संपातः (= संपतनम्, प्रहरणम्) तद्वद्दुष्प्रेक्ष्यः (= दुःखेनावलोकयितुं शक्यः, अत्यन्तभीषण इति भावः), अक्षिणी = नयने, प्रतिघ्नन् = प्रतिहननं कुर्वन्, दर्शनशक्तिं विनाशयन्, इव, इति भावः, आश्वित्यादिः—आशु (= शीघ्रं यथा स्यात्तथा) यद्

करने योग्य जंगल के वृक्षों की पंक्ति, सभी प्राणियों के लिये लोहे के पिंजरे के भीतर बन्धन, भौरों के समूह के तथा जंगली भैंसों के समान मैली(काली)गड़गड़ाती हुई घनों की घटा के बिस्तार के कारण भयानक बना हुआ, बहुत तीव्र ध्वनि करने (गरजने) वाला, टेढ़ी या तीखी बिजली रूपी प्रत्यञ्चा (डोरी) को खीचने वाला, विशाल इन्द्रधनुष को गोलाकार बना देनेवाला, अनवरत (लगातार) जलधारा के रूप में बाणों की लगातार वर्षा से प्रहार करने वाला, आगे रास्ते को रोकने वाला, शत्रु (विरुद्ध) के समान (क्रोध से) काले (मलिन) मुख वाला, (आगे-आगे अन्धकार फैलाने वाला), लाखों तलवारों के गिरने जैसा बड़े कष्ट से देखने योग्य, आँखों का प्रतिघात सा करता हुआ अर्थात् चकाचौंध करता हुआ सा, शीघ्र गमन में विघ्न उत्पन्न करता हुआ जलदकाल = वर्षाकाल

---

१. अलिगवय, अलिगणकुवलय । २ धारासार० । ३. अपरुन्धन् ।

[1]तत्र च प्रथममस्य [2]चेतोहारिभिर्मूर्च्छावेगैरन्धकारतामनीयन्त[3] दशदिशस्ततो जलधरैः। अग्रतः [4]समुत्प्लुतेन चेतसा क्वाप्यगम्यत पृष्ठतो हंसैः। पुरस्तात्परिमलिनोस्य [5]निश्वासमरुतः प्रावर्तन्त पश्चात्कदम्बवाताः। पूर्वं तुलितनीलोत्पलवनकान्ति नयनयुगल-

---

गमनम् (= चलनम्) तस्मिन् विघ्नकारी (= प्रतिबन्धजनकः), एतादृशः जलदकालः = मेघसमयः, वर्षर्तुरिति भावः, बभूव = अभूत्। यथा विरुद्धः = विरोधकर्ता शत्रुः चण्डं शब्दायते, क्रोधेन श्यामवर्णवत्तया भयानको भवति, भयकारकं शब्दं करोति, धनुषः प्रत्यञ्चामामृशति, धनुः मण्डलीकरोति, अनवरतं बाणानां वृष्टिं करोति, ग्रामाद् बहिर्गमननिषेधाय पन्थानं रुणद्धि तथैव एष जलदकालोऽपि गर्जनं करोति, भ्रमर-वन्य-महिष-श्यामलघटाशालित्वेन भयानकः, शब्दायमानः, तडिद्रूपिणीं प्रत्यञ्चां परामृशन्, जलधारारूप-बाणावली-वर्षी, मण्डलीकृतेन्द्रचापः, अग्रेगामिमार्गप्रतिबन्धकश्च भवतीति जलदकालस्य शत्रुरूपता सुष्ठु प्रतिपादिता बाणतनूजेनेति सहृदयाः।

जलदकाले चन्द्रापीडस्य दशा कीदृशी जातेति निरूपयति—तत्र चेत्यादिना। तत्र = वर्षाकाले समागते, च, अस्य = चन्द्रापीडस्य, चेतोहारिभिः = चित्तग्राहिभिः, मानसज्ञानापहरणशीलैः, मूर्च्छावेगैः = मूर्च्छारयैः, दश, दिशः = काष्ठाः, प्रथमम् = पूर्वम्, अन्धकारताम् = अन्धकारः (= तमः) तस्य भावस्तत्ताम्, अन्धकाररूपताम्, अनीयन्त = प्राप्यन्त, प्रापितवत्यः, ततः = तदनन्तरम्, जलधरैः = मेघैः, अन्धकारतामनीयन्त—प्रभृतिवाक्यांशाः पुनरपि पुनरपि योजनीयाः सर्वत्र। मेघदर्शनेन चन्द्रापीडस्य यो मूर्च्छावेगोऽजायत तेन स अन्धो भूतः प्रथमं दशसु दिशासु अन्धकारमेवापश्यत् ततः मेघैः दिशः समाक्रम्य अन्धकारिता इति भावः। समुत्प्लुतेन = उत्प्लुत्य धावितेन, चेतसा = चित्तेन, अग्रतः = पुरतः, क्वापि = अज्ञातस्थाने, अगम्यत = यातम्, पृष्ठतः = तत्पश्चात्, हंसैः = मरालैः, क्वापि अगम्यत। अस्य = चन्द्रापीडस्य, परिमलिनः = परिमलयुक्ताः, सौरभवन्तः, निश्वासमारुतः = उच्छ्वासवायवः, पुरस्तात् = प्रथमम्, अग्रे, प्रावर्तन्त = प्रवृत्ता अभूवन्, पश्चात् = तदनन्तरम्, कदम्बवाताः = कदम्बनामक-पादपसुगन्धयुक्ताः वायवः प्रावर्तन्त। तुलितेत्यादिः—तुलिता (= समानीकृता, उपमिता) नीलस्य (= श्यामवर्णस्य) उत्पलवनस्य (= कमलसमूहस्य) कान्तिः (= छटा) येन तत् तादृशम्, अस्य = चन्द्रापीडस्य, नयनयुगलम् = नेत्रयुग्मम्, पूर्वम् = प्रथमम्, सलिलम् =

हो गया, आ गया।

उस वर्षाकाल में चन्द्रापीड के चित्त = चेतना को हर लेने वाले मूर्छा (बेहोशी) के वेगों ने दशों दिशाओं को पहले अन्धकारयुक्त कर दिया, बाद में मेघों ने। [भाव यह है कि मेघों ने दश दिशाओं में अन्धकार बाद में किया उसके पहले ही चेतना हर लेने वाली बेहोशी के वेगों ने चन्द्रापीड के लिये सभी दिशाओं में अंधेरा कर दिया था। इसी प्रकार आगे सभी वाक्यों में समझना चाहिए।] उछलने वाला मन पहले कहीं (अज्ञात स्थान में) गया, बाद में हंस (गये)। इसकी सुगन्धित निश्वासवायु पहले बहने लगी, बाद में कदम्बवृक्ष की वायु। नीले कमलों के वन = समूह के तुल्य कान्तिवाले इसके नेत्रों ने पहले सलिल (आंसू) छोड़े, गिराये, बाद में बादलों के समूह ने।

---

१. ततः। २. चेतनाहारि०। ३. अन्धकारम्।
४. समुपप्लुतेन। ५. निश्वसित०।

मस्य सलिलं समुत्ससर्ज चरममम्भोमुचां वृन्दम्। [1]आदावापूर्यमाणमुद्वेगेनोत्कलिका[2]सहस्रपर्याकुलं मनोऽस्याभवदवसाने स्रोतस्विनीनां पात्रम्।

अपि च, दुस्तरैर्नदीपूरैरेव सहावर्धन्त मन्मथोन्माथाः। [3]वर्षजलविलुलितैः कमलाकरैरेव सह निममज्ज[4] कादम्बरीसमागमप्रत्याशा। [5]धारारयासहैः कन्दलैरेव सहाभिद्यत हृदयम्। अम्भोदवाताहतैः कदम्बकुड्मलैरेव सहाकम्पतोत्कण्टकिता तनुः। अनवरतजल-

---

अश्रुजलम्, समुत्ससर्ज=परितत्याज,चरमम् =तदनन्तरम्, अम्भोमुचाम् = वारिदानाम्, वृन्दम् = समूहः, सलिलं समुत्ससर्ज। उत्कलिकेत्यदिः—उत्कलिकाः (=समुत्कण्ठाः) तासां सहस्रम् (= दशशती) तेन पर्याकुलम् (= व्याकुलम्, क्षुब्धम्), अस्य = चन्द्रापीडस्य, मनः = चित्तम्, आदौ = प्रथमम्, उद्वेगेन = व्यग्रतया, आपूर्यमाणम् = भ्रियमाणम्, अभवत् = जातम्, अवसाने = तदनन्तरम्, च, स्रोतस्विनीनाम् = नदीनाम्, पात्रम् = उभयतटमध्यभागः, उत्कलिकेत्यादि—उत्कलिकानाम् (= तरङ्गाणानाम्) सहस्रेण पर्याकुलम् (=व्याप्तम्) अथ च, उद्वेगेन=बाहुल्येन, आपूर्यमाणम्= जलादिना भ्रियमाणम्, अभवदिति भावः। 'पात्रं च भाजने योग्ये, पात्रं तीरद्वयान्तरे' इति विश्वकोषकारः।

पुनरपि चन्द्रापीडस्य मदनव्यथामेव वर्णयति—अपि चेत्यादिना। अपि च = अन्यच्च, इदमपि बोध्यमिति शेषः। दुस्तरैः = दुःखेन तर्तुं योग्यैः, नदीपूरैः = सरितामोघैः, एव, सह = सार्धम्, मन्मथोन्माथाः = कामदेवस्य उन्मथनानि, व्यग्रताः, अवर्धन्त = वृद्धिं गताः, ऐधन्त। वर्षाकाले उभयोर्वृद्धेरनुभवसिद्धत्वात्। वर्षेत्यादिः—वर्षस्य (= वृष्टेः) जलम् (= वारि) तेन विलुलितैः (= इतस्ततः पर्यस्तैः, विक्षतैः) कमलाकरैः = कमलसमूहैः, सह = सार्धम्, एव, कादम्बरीत्यादिः—कादम्बर्याः (= स्वप्रेयस्याः) यः समागमः (= सम्मिलनम्) तस्य प्रत्याशा (= ईहा, मनोरथः), निममज्ज = अब्रुडत्, यथा पर्यस्तानि कमलवनानि जले निलीनानि तथैव कादम्बरी-सम्मिलन-मनोरथोऽपि जले निमग्नो विलीनो जात इति साम्यम्। धारारयासहैः—धारा (= अखण्डित-जलपतनम्) तस्य रयः (= वेगः) तम् असहन्ते (= अक्षमन्ते) इति तादृशैः; कन्दलैः = कन्दलीवृक्षपल्लवैः नवाङ्कुरैः वा, सह=सार्धम्, हृदयम् = चित्तम्, अभिद्यत=व्यदीर्यत, भिन्नं जातम्। यथा नवाङ्कुराः कदलीपत्राणि वा त्रुटितानि जातानि तथैव तस्य चित्तमपीति साम्यम्। अम्भोदवाताहतैः—अम्भोदानाम् (= मेघानाम्) वातः (=वायुः, तदुत्थापितपवनः) तेन आहतैः (= प्रताडितैः), कदम्बकुड्मलैः = कदम्बकलिकाभिः, सह, एव,

---

उद्वेग (व्याकुलता) से भरा जाता हुआ इसका मन पहले हजारों उत्सुकताओं से व्यग्र हुआ, बाद में तेज वेग से भरा जाता हुआ नदियों के किनारों के मध्य का स्थान हजारों तरंगों से युक्त (व्याकुल) हुआ।

और भी, कष्ट से पार करने योग्य नदियों के प्रवाहों के साथ-साथ [इसके मन में] कामदेव की व्यथायें बढ़ने लगीं। वर्षा के जल से क्षत-विक्षत हुए कमल-वनों के साथ ही साथ कादम्बरी के मिलने की आशा भी डूब गयी, समाप्त होने लगी। जलधारा के वेग को न सह सकने वाले कन्दलों (नये अंकुरों अथवा केला के वृक्षों) के साथ-साथ (इसका) हृदय भी टूट गया, फट गया।

---

१. आदावपूर्वम्। २. उद्वेगोत्कण्ठित०। ३. वर्षा०।

४. प्राभिद्यत हृदयं कादम्बरीसमागमप्रत्याशाधारया सह रयाद् कन्दलैरुद्भिद्यत नवाम्भोदवाताहतैर्धाराकादम्बकुड्मलैरेव।

५. भारायासकन्दलैरेवाभिहतहृदयम्, नवाम्भोदवाताहतैः कदम्बकुड्मलैरेव सहोदकम्पोत्कण्ठिता।

पतनजर्जरितपक्ष्मभिः[1] शिलीन्ध्रैरेव सह ताम्रतामधत्त नयनयुगलम्[2]। उत्कूलसलिलोत्खन्यमानमूलैः सरित्तटैरेव सहापतन्प्राणाः[3]। परिमलमयैर्मालतीकुसुमैरेव[4] सहाजृम्भत[5] रणरणकः। तथातिगुरु[6]निर्घातैरेवाभज्यन्त मनोरथाः। [7]तीक्ष्णतरकोटिभिः केतकीसूचिभिरेवात्रुटचन्त[8] मर्माणि। उच्छिखैः [9]शिखिभिरेवादह्यन्त गात्राणि। अन्धकारितदिशा मेघतम-

उत्कण्टकिता = रोमाञ्चिता, तनुः = देहः, अकम्पत = अवेपत। अत्रापि उभयोः साम्यम्। अनवरतेत्यादिः—अनवरतम् (= निरन्तरम् अविच्छिन्नम्) यत् जलपतनम् (= वारिपातः) तेन जर्जरितानि (= शिथिलीकृतानि) पक्ष्माणि (= नेत्रोर्ध्वभागरोमणि) येषां तैः तादृशैः शिलीन्ध्रैः = छत्रकैः, भूमिविस्फोटैः। कुकुरमुत्तेति हिन्द्यां ख्यातैः, एव, सह, नयनयुगलम्=नेत्रद्वन्द्वम्, ताम्रताम्=ईषद्रक्तवर्णताम्, अधत्त=धारयामास। उत्कूलेत्यादिः—उत्कूलानि (= विपरीतदिग्वर्तीनि तटस्थितानि) यानि सलिलानि (= जलानि) तैः उत्खन्यमानानि (= विदीर्यमाणानि निपात्यमानानि) मूलानि (= अधोभागाः) येषां तैस्तादृशैः, सरित्तटैः = नदीतीरैः, एव, सह=सार्धम्, प्राणाः = असवः, अपतन् = अभ्रश्यन्। परिमलमयैः=सौरभयुक्तैः, मालतीकुसुमैः= मालतीनामकलताविशेष-पुष्पैः, एव, सह रणरणकः = उत्सुकता, अजृम्भत = प्रावर्धत। अत्र सर्वत्र सहोक्तिनामालङ्कारः स्पष्टः।

पुनरपि तस्यावस्थां वैशद्येन वर्णयति—तथेत्यादिना। तथा=तेनैव प्रकारेण, अतिगुरुनिर्घातैः= अतिशयेन प्रचण्डैः वर्षाझञ्झावातैः, एव, मनोरथाः=अभिलाषाः, अभज्यन्त=भग्नाः संजाताः। परस्परमाघ्नतोर्वातयोर्यो वेगो नीचैः सशब्दः पतति स निर्घात उच्यते। द्र० 'कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः' वेणीसंहारे। तीक्ष्णतरेत्यादिः—तीक्ष्णतराः (= निशिततराः) कोटयः (= अग्रभागाः) यासां तादृशीभिः, केतकीसूचिभिः = केतक्याख्यपुष्पमध्यवर्तिकण्टकैः, एव, मर्माणि = मर्मस्थलानि, अत्रुटचन्त = त्रुटितानि जातानि। उच्छिखैः = ऊर्ध्वचूडैः, शिखिभिः = मयूरैः, एव, गात्राणि = अङ्गानि, अदह्यन्त = दग्धानि जातानि। अन्धकारितदिशा = अन्धकारिताः

बादलों की हवा अर्थात् तूफान से आहत (नष्ट किये गये) कदम्ब के कुड्मलों (कलियों) के साथ-साथ ही रोमाञ्चयुक्त शरीर भी काँपने लगा। लगातार पानी बरसते रहने के कारण जर्जर पंखुड़ियों वाले शिलीन्ध्रों (कुकुरमुत्ते) के साथ-साथ ही (लगातार बरसात के कारण जर्जर पलकों वाली) इसकी दोनों आँखें लाल-लाल हो गईं। तटों के ऊपर बहते हुए पानी द्वारा उखाड़े (काटे) गये निचले भाग वाले नदियों के तटों के साथ ही साथ इसके प्राण भी गिरने लगे, नष्ट होने लगे। सुगन्धयुक्त मालती-पुष्पों के साथ-साथ ही इसकी उत्सुकता (उत्कण्ठा) भी बढ़ने लगी। तथा बड़े झंझावातों से ही मनोरथ भग्न होने लगे, टूटने लगे। बहुत तीखी नोक वाली केतकी (केवड़ा) की सूचियों (काँटों) से ही मर्म स्थल टूटने (कटने) लगे। ऊपर उठी हुई शिखा = कलंगी वाले मयूरों से

१. जर्जरितैः पक्ष्मभिः। २. युगलं च, युगम्।
३. अपतन्त, कामबाणा अपतन्। ४. मालतीमुकुलैः।
५. उज्जृम्भन्त। ६. तथातिगुरुर्भिर्घातैरेव तथापि, गुरुभिर्घातैरेव, तथा गुरुभिर्घनैरेव।
७. तीक्ष्णान्तर०। ८. अतुटचन्त। ९. शिखरैरेव।

सैवावर्धत मोहान्धकारः। तिरस्कृतध्वान्तेन तडिदातपेनैवातन्यत सन्तापः। भरेणैव गम्भीर-गर्जितैकसन्तानोत्कम्पितधरापीटबन्धैर्नभसि नवघनैः, [1]घनजलधारातिपातवाचालितचञ्चुभिरन्तराले चातकैः, [2]उद्दाममहारावराविभिरवनिमूले[3] दर्दुरैः, अनवरतझांकाररवजर्जरित-

(= सञ्जातान्धकाराः) दिशः (= ककुभः) यस्मिन् तेन तादृशेन, मेघतमसा = जलदजनितान्धकारेण, एव, मोहान्धकारः=मोहः (= मूर्च्छा) एव अन्धकारः, (= तमः), अवर्धत=ऐधत, वृद्धि गतः। तिरस्कृतेत्यादिः—तिरस्कृतम् (= न्यक्कृतम्) ध्वान्तम् (= तिमिरम्) येन तादृशेन, तडिदातपेन (= आलोकेन), एव, सन्तापः = संज्वरः, अतन्यत = विस्तारितो बभूव।

भरेणेति। भरेण = भारेण, एव, गम्भीरेत्यादिः—गम्भीरम् (= गभीरम्) यत् गर्जितम् (= गर्जनम्, स्तनितम्) तस्य एकः (= मुख्यः) यः सन्तानः (= निरन्तरपरम्परा) तेन उत्कम्पितः (= चलितः) धरायाः (= पृथिव्याः) पीठबन्धः (= आसनम्, सन्धिबन्धनम्) यैस्तादृशैः, नवघनैः = नूतन-जलधरैः, नभसि = गगने [अत्रत्यानां सर्वेषां तृतीयान्त-बहुवचनानां 'नवघनैः' प्रभृतीनां 'नभसि' प्रभृतिषु सप्तम्यन्तेषु अन्वयः सप्तम्यान्तानां च 'विततेन' इति वक्ष्यमाणेऽन्वयः 'विततेन' इत्यस्य 'धारारवेण' इत्यत्रान्वयः, अस्य च 'उत्कलिकाकलितः' इति प्रथमान्तेनान्वयः तस्य च 'निर्वृतिमेव न अध्यगच्छत्' इत्यत्रान्वयो बोध्यः। तेन चेत्थं वाक्ययोजना—"गम्भीर-गर्जितैः नवघनैः नभसि विततेन... ...धारारवेणोत्कलिकाकलित... ...निर्वृतिं नाध्यगच्छत्।" अन्यथा बहुवचनान्तानामेकवचनानाञ्चानन्वयापत्तिः।

घनेति। घनेत्यादिः—घना (= अविरला, निबिडा) या जलधारा (= अतिपतनम्) (= अजस्रजलधारा) अतिपातः (=प्रबलवृष्टिः) तेन वाचालिताः (= शब्दायमानाः, मुखराः) चञ्चवः (= चञ्चुपुटानि) येषां तैस्तादृशैः, चातकैः=नभोम्बुपैः, पक्षिविशेषैः, अन्तराले=द्यावापृथिव्योर्मध्ये। उद्दामेत्यादिः—उद्दामः (= भयानकः) यो महारावः (= उच्चशब्दः) तस्य राविभिः = शब्दयुक्तैः शब्दायमानैः ['महाराव' इत्युक्त्वापि 'राविभि'रिति मत्वर्थीयस्य प्रयोगोऽसमीचीनः, 'उद्दाम—महारावै'रित्यनेनैवाभीष्टार्थ-प्रतीतेः।] दर्दुरैः = भेकैः, अवनिमूले = भूतले। अनवरतेत्यादि—अनवरतः (= निरन्तरः, अविच्छिन्नः) यो झांकार-रवः (= झां झामित्याकारको

ही शरीर के अङ्ग जलने लगे। दिशाओं में अंधेरा फैला देने वाले बादलों के अंधेरे से ही मोह = बेहोशी का अंधकार बढ़ने लगा। अंधेरे को तिरस्कृत करने (भगा देने) वाले बिजली के प्रकाश = आतप से ही सन्ताप बढ़ने लगा। [जल के] भार के कारण ही लगातार गंभीर गर्जनों द्वारा पृथ्वी के पीठबन्धों (सन्धिस्थलों) को कंपा देने वाले (पृथ्वी को हिला देने वाले) नये-नये बादलों से गगनमण्डल में [बढ़ाये गये], घनी जलधारा के अतिपात (बहुत अधिक गिरने) से खूब बोलती हुई चोंच वाले चातकों से अन्तराल (आकाश और पृथ्वी के मध्यभाग) में [बढ़ाये गये], तीखी और जोर-जोर आवाज करने वाले मेढ़कों से पृथ्वीमूल (पृथ्वीतल) में (बढ़ाये गये), लगातार (गिरती हुई जलधाराओं के) झंकार शब्द (सन् सन् आवाज) से जलधाराओं को तोड़ देने वाली

१. घनजलधरधारानिपातरभसवाचालित, घनजललवाचातिरभसवाचालित।

२. महारावहारिभिः, महावाररराविभिः। ३. तले।

धाराम्बुभिराशासु जलदानिलैः, उन्मुक्तमदकलकेकाकोलाहलैः काननेषु कलापिभिः, असमशिखरोपलस्खलनकलकलमुखरैर्गिरिषु निर्झरैः, उल्लोलकल्लोलास्फालविस्फारित[1]विषमनिर्घोषझात्कारिभिः[2] सरित्सु[3] पूरैः, सर्वतश्च विततेन, स्थलीषु, संहतेन[4], कन्दरेषूच्चण्डेन, शिखरिषु कलकलेनाम्बुषु पटुना पर्वततटेषु मृदुना शाद्वलेषु चारुणा पल्वलेषु[5] सान्द्रेण शाखिषु तनुना[6] तृणोलपेषूल्बणेन तालीबनेषु यथाधारा[7]-पतनमाकर्ण्यमानेन सर्वप्रकार-

ध्वनिः), तेन जर्जरितानि (= छिन्नानि, खण्डितानि) धाराणाम् (= अजस्रपातानाम्) अम्बुनि (= सलिलानि) यैस्तादृशैः, जलदानिलैः = अम्बुदोत्थपवनैः, आशासु = सर्वासु दिशासु। उन्मुक्तेत्यादिः—उन्मुक्तः (= विहितः) मदेन (= मत्ततया) कलः (= मनोहरः) केकायाः (= स्वध्वनेः) कोलाहलः (= कलकलः) यैस्तादृशैः, [यद्वा—उन्मुक्तः (= निर्बाधः) यो मदः (= मत्तता) तेन कलः इत्यादिकं पूर्ववत् बोध्यम्] कलापिभिः = मयूरैः, काननेषु = विपिनेषु। असमेत्यादिः—असमाः (= विषमाः, उच्चनीचाः) ये शिखराणाम् (= शृङ्गाणाम्) उपलाः (= प्रस्तराः) तेषु स्खलनम् (= भ्रंशनम्) तेन यः कलकलः (= प्रखरध्वनिः) तेन मुखरैः = वाचालैः, शब्दायमानैः, निर्झरैः = झरैः, प्रस्रवणैः, गिरिषु (=पर्वतेषु, उल्लोलेत्यादिः—उल्लोलाः (= अतिचञ्चलाः) ये कल्लोलाः (= तरङ्गाः) तेषां य आस्फालः (= अन्योन्यसंघातः) तेन विस्फारितः (= विस्तारितः) यो विषमः (= भीषणः) निर्घोषः (= प्रचण्डशब्दः) तेन झात्कारिभिः (= झात् झादिति शब्दं कुर्वद्भिः), पूरैः = जलौघैः, सरित्सु = नदीषु। [पूर्वं झांकार इत्यस्य प्रयुक्ततयाऽत्र 'झात्' इति अनुकरणशब्दोबोध्यः। यद्वा—झात्कारिभिः = प्रकटयद्भिरित्यर्थो बोध्यः, तरङ्गाणां परस्परसंघर्षे एतादृशध्वनेरनुभवसिद्धत्वात्।]

सर्वतश्चेति। सर्वतः = सर्वत्र, च, विततेन = विस्तृतेन, विस्तारितेन वा, स्थलीषु = अकृत्रिमभूभागेषु, संहतेन = एकत्रीभूतेन, कन्दरेषु = गिरि-गह्वरेषु, उच्चण्डेन = अतीवोग्रेण, शिखरिषु = पर्वतेषु, कलकलेन = अव्यक्तमृदुना, अम्बुषु = जलेषु, पटुना = तीक्ष्णेन, पर्वततटेषु—गिरिप्रान्तभागेषु, मृदुना = कोमलेन, शाद्वलेषु = अल्पतृणेषु, चारुणा = मनोहरेण, पल्वलेषु = कासारेषु, सान्द्रेण = घनेन, शाखिषु = वृक्षेषु, तनुना = कृशीभूतेन, तृणोलपेषु = घासेषु लतासु, च, गुल्मितासु लतासु इति भावः ['गुल्मिन्युलप इत्यपि' इत्यमरः।] उल्बणेन = प्रखरेण,

बादलों की हवाओं में सभी दिशाओं में [बढ़ाये गये], मस्ती से मीठो-मीठो केका ध्वनि से कोलाहल करनेवाले मयूरों से वनों में [बढ़ाये गये], ऊँची-नीची चोटियों के पत्थरों पर गिरने (टकराने) से अत्यन्त मधुर शब्द करने वाले झरनों से पर्वतों में [बढ़ाये गये], ऊँची-ऊँची उठती हुई तरंगों को परस्पर टकराहट के कारण भयंकर झड़झड़ आवाज करने वाली बाढ़ों = प्रवाहों से नदियों में [बढ़ाये गये], और [इस प्रकार से] सभी ओर बढ़ाये गये, स्थली (अकृत्रिम, प्राकृतिक भूभागों) में इकट्ठे हुए, पर्वतों की कन्दराओं में और अधिक प्रचण्ड, पर्वतों पर मधुर, जलों में पटु, पर्वतों के तटों = किनारों में मृदु = कोमल, घासों पर सुन्दर, तालाबों = पोखरों में घने = गंभीर, वृक्षों पर

१. ······विस्फुटित······। २. ······उद्गारिभिः। ३. सरित्पूरैः। ४. संभृतेन। ५. कपोलेषु। ६. तृणोपलेषु। ७. यथाधाराशब्दपतन०, यथाधारासंपतन०।

मधुरेण हृदयप्रवेशिना[1] धारारवेणोत्कलिकाकलितो न रात्रौ न दिवा न ग्रामे नारण्ये नान्तर्न बहिर्न वने नोपवने न वर्त्मनि नावासे न वहन्न तिष्ठन्न वैशम्पायनस्मरणे न कादम्बरीसमागमानुध्याने न कथंचिदपि न क्वचिदपि निर्वृतिमेवाध्यगच्छत् ।

तालीवनेषु = तालवृक्षाणां समूहेषु, यथाधारापतनम् = जलधाराणां पतनमनतिक्रम्य, तत्र तत्र धारापतनानुसारेणेति भावः, आकर्ण्यमाणेन = श्रूयमाणेन, सर्वेत्यादिः—सर्वप्रकारैः (= सकलविधैः) मधुरेण (= मिष्टेन), हृदयप्रवेशिना = अन्तःप्रवेशनशीलेन, इदानीं विशेष्यमाह—धारारवेण = जलधाराणां स्वनेन, उत्कलिकाकलितः = औत्सुक्यैर्व्याप्तः, अतीवोत्सुकः इति भावः, तादृशश्चन्द्रापीडः, न, रात्रौ = निशायाम्, न, दिवा = दिने, न, ग्रामे = अवसथे, न, अरण्ये = कानने, न, अन्तः = आभ्यन्तरे, मनसीति भावः, न, बहिः = बाह्यदेशे, न, वने = विपिने, न, उपवने = उद्याने, [अरण्ये वने-इत्यनयोः पुनरुक्तिः । तत्परिहाराय सूक्ष्मार्थभेदो द्रष्टव्यः ।] न, वर्त्मनि = मार्गे, न, आवासे = भवने, न, वहन् = तीव्रं चलन्, न, तिष्ठन् = सीदन् न, वैशम्पायनस्मरणे = स्वमित्रस्य स्मृतौ, न, कादम्बरीत्यादिः—कादम्बर्याः (= स्वप्रेयस्याः) यः समागमः (= सम्मेलनम्) तस्य अनुध्याने (= अनुचिन्तने), न, कथञ्चिदपि=केनापि प्रकारेण, न, क्वचिदपि = कुत्रापि, निर्वृतिम्=शान्तिम्, अध्यगच्छत् = प्राप्नोत् ।

अत्र कैश्चित् 'न······ ··· ··· ···न वैशम्पायनस्मरणेन कादम्बरीसमागमानुध्यानेन कथंचिदपि न क्वचिदपि' ··· ···इत्यादि तृतीयान्त पाठः स्वीकृतः । परन्तु इतः पूर्वं 'न वर्त्मनि, नावासे' इति सप्तम्यन्त एव पाठः, अन्ते च 'न क्वचिदपि' इत्यपि अधिकरणार्थक-प्रत्ययान्त एव पाठस्तेन मध्येऽपि तादृशो मूलोक्त एव पाठः युक्ततरः न तु तृतीयान्तः । किञ्च, तृतीयान्तपाठे नकारद्वयस्याधिकः प्रयोगः करणीयः—'न वैशम्पायनस्मरणेन, न कादम्बरीसमागमानुध्यानेन, न कथञ्चिदपि'—इत्यादिरीत्यैति बोध्यम् ।

पतले, तृणों और घासों में उग्र, ताड़वृक्ष के बनों में धारा के रूप में गिरते हुए सुनाई देने वाले, सभी प्रकार से मीठे तथा हृदय में प्रवेश करनेवाले—जलधाराओं के शब्द से उत्कण्ठायुक्त होता हुआ चन्द्रापीड न दिन में, न रात में, न गाँव में, न जंगल में, न भीतर, न बाहर, न वन में, न उपवन में, न मार्ग में, न आवास=घर में, न चलते हुए, न बैठते हुए, न वैशम्पायन की याद में, न कादम्बरी से मिलने की चिन्ता में, न किसी भी प्रकार से, न किसी भी स्थान पर शान्ति प्राप्त कर सका अर्थात् वह सर्वत्र लगातार बेचैनी का ही अनुभव करता रहा।

विमर्श—यहाँ "भरेणैव" से लेकर "धारारवेण" तक पदों के परस्पर-अन्वय में सन्देह होता है। कुछ विद्वानों ने तृतीया-बहुवचनान्त 'नवघनैः' आदि का अन्वय 'एकवचनान्त दूरस्थित 'धारारवेण' इसके साथ कर दिया जो कि नियम-विरुद्ध और अर्थसंगति के प्रतिकूल है। अतः तृतीया-बहुबचनान्तों का पहले कर्तृरूपेण 'सर्वतश्च विततेन' इस तृतीयान्त में करना चाहिए और इस तृतीयैक-वचनान्त का विशेषण रूप से 'धारारवेण' इसके साथ अन्वय करना चाहिए।

यहाँ प्रघट्टक के भीतर भी पदों के अन्वय में सन्देह है—"सर्वतश्च विततेन स्थलीषु' ऐसा कुछ लोग मानते हैं। किन्तु उचित यही प्रतीत होता है कि 'सर्वतश्च विततेन' यहां तक खण्ड वाक्य मानकर 'स्थलीषु संहृतेन' आदि में पहले सप्तम्यन्त और बाद में तृतीयान्त पदों के अलग-अलग वाक्य बनाकर 'तालीवनेषु यथाधारापतनम् आकर्ण्यमानेन' —एक वाक्य मानना चाहिए। इस प्रकार सभी के

---

१. हृदयं प्रविशता धारा० ।

अनधिगतनिर्वृतिश्चातिकष्टतया वज्रानलस्येव जलदसमयेन्धनस्य मदनहुतभुजो भस्मसात्कर्तुमिवोद्यतस्य धीरस्वभावोपि प्रकृतिमेवोत्ससर्ज । [यद्यपि[1]] [2]प्लावितसकलधरातलैर्धाराजलैरप्यशोष्यत । द्योतितदशदिशा शतह्रदालोकेनापि मूर्च्छान्धकारेऽक्षिप्यत । आह्लादितजीवलोकैर्जलदानिलैरप्यदह्यत । पयोभारमेदुरैर्घनैरपि तनुतामनीयत । पाटलित-

अनधिगतेति । वज्रानलस्य = पविवह्नेः, इव, जलदेत्यादिः—जलदसमयः (= वर्षाकालः) एव इन्धनम् (= ज्वलनकाष्ठम्) यस्य तादृशस्य, भस्मसात्कर्तुम् = भस्मीकर्तुम्, इव, उद्यतस्य = कृतोद्यमस्य, मदनहुतभुजः = कामाग्नेः, अतिकष्टतया = अतिशयपीडाकारकतया, अनधीत्यादिः—अनधिगता (= अप्राप्ता) निर्वृतिः (= शान्तिः) येन स तादृशः, धीरस्वभावः—धीरः (= गम्भीरः, धैर्यवान्) स्वभावः (= प्रकृतिः) यस्य स तादृशः, सन्, अपि, प्रकृतिम् = स्वधीरस्वभावम्, एव, उत्ससर्ज = परितत्याज । कामव्यथाव्याकुलस्य चन्द्रापीडस्य धैर्यं स्खलितं जातमिति भावः । भस्मसात्कर्तुमिवे' त्यत्रोत्प्रेक्षा । इदं विशदयन्नाह–प्लावितेत्यादिना । [मूलेऽपठितमपि 'यद्यपि' इति अत्र योज्यम्; अग्रे 'तथापि' इति पाठस्य दर्शनात् ।] प्लावितेत्यादिः–प्लावितम् (= जलमयं कृतम्) सकलम् (= सर्वम्) धरातलम् (= भूतलम्) यैस्तादृशैः, धाराजलैः = अनवरतवर्षणसलिलैः, अपि, एष चन्द्रापीडः, अशुष्यत = शुष्कोऽभूत् । अत्र विरोधः । तत्परिहारश्च—'अशुष्यत = कृशोऽभूत्' इत्यर्थे । एवमेवाग्रेऽपि विरोधपरिहारः करणीयः । द्योतितदश-दिशा—द्योतिताः (= प्रकाशिताः) दश, दिशः (= आशाः) येन तादृशेन, शतह्रदालोकेन = आकाशीयविद्युत्प्रकाशेन, अपि, मूर्च्छान्धकारे—मूर्च्छा (= मोहः) एव अन्धकारः (= तिमिरम्) तस्मिन्, अक्षिप्यत = चिक्षिपे, क्षिप्तोऽभूत् । आलोकोऽन्धकारे प्रक्षिपतीति विरोधः, तत्परिहारस्तु–चैतन्यहीनः कृत इत्यर्थे । आह्लादितेत्यादिः—आह्लादितः (=प्रसन्नीकृतः) जीवलोकः (= प्राणिवर्गः) यैस्तादृशैः, जलदानिलैः = वारिदवायुभिः, अपि, अदह्यत = प्राज्वल्यत, दग्धोऽभूत् । अनिलः = पवनः दहतीति विरोधः, तत्परिहारः—अदह्यत = दहनतुल्यं कष्टं प्रापित इत्यर्थे । पयोभारमेदुरैः = जलस्य भरेण पीवरैः, घनैः = मेघैः, अपि, तनुताम् = कृशताम्, अनीयत = नीतः । मेदुरैः पदार्थैः पुष्टता दृश्यते न तु तनुता, तस्मादत्र विरोधः । तत्परिहारः—मेदुरैः = सान्द्रैः, निबिडैः' इत्यर्थे, निबिडैः मेघैः कामिनः कृशाः क्रियन्ते इति लोके दृश्यते । पाटलितेत्यादिः—पाटलितानि

अन्त में आने वाले तृतीयैकवचनान्त पदों से निष्पन्न खण्ड वाक्यों का अन्वय 'धारारवेण' इसके साथ करना चाहिए । यहाँ लेखक ने दूरान्वय दोष उपस्थित करके भ्रम उत्पन्न करा दिया है ।

(अनु०) शान्ति (चैन) न प्राप्त कर सकने वाला चन्द्रापीड धीरस्वभाव वाला होता हुआ भी, वर्षाकाल को अपना ईंधन बनाने वाले, वज्राग्नि के तुल्य तथा [उस चन्द्रापीड को] भस्मसात् करने में उद्यत कामदेव के अतिशय कष्टकारक होने के कारण अपना (धैर्यशाली) स्वभाव भी छोड़ बैठा अर्थात् उसका धीरज छूट गया । [इसके फलस्वरूप यद्यपि वह] सम्पूर्ण भूतल को जल से प्लावित कर देने वाले मूसलाधार वर्षा के जल से भी सूखने लगा । दशों दिशाओं को चमकाने वाले शतह्रद (= बिजली) के प्रकाश = चमक से भी मूर्छारूपी अंधेरे में फेंक (गिरा) दिया गया । समस्त जीवलोकों को आनन्दित करने वाले बादलों की (बरसाती) हवाओं से भी जलाया जाने लगा । जल के भार (बोझ) से मोटे (चर्बीवाले) बादलों से भी दुर्बलता को प्राप्त कराया जाने लगा । हरी-भरी घास को पाटल (लाल-लाल) रंग वाली बना देने वाली शक्रगोपकों (इन्द्रबहूटियों) से भी

१. मूले 'यद्यपि' इति न क्वापि पठितस्तथापि अग्रे 'तथापी'ति दर्शनादत्र 'यद्यपि'इति संयोजनीयम् ।
२. प्लावितसकलधाराजलैः ।

शाद्वलैः शक्रगोपकैरपि पाण्डुतां प्रत्यपद्यत। कुसुमधवलैः कुटजैरपि रागपरवशोऽक्रियत। [1]तथापि सकलजगज्जीवनहेतुनापि [2]जीवितसन्देहदोलामारोपितो जलदकालेन, उत्कूलगामिषु विधिविलसितेषु सरित्पूरेषु चोत्प्लवमानः, [3]अनवरतवर्षाजलजनितेषु मूर्च्छागमेषु पङ्कपटलेषु च निमज्जन्, जलभरस्थगिते वर्त्मनि विलोचने[4] च स्खलन्[5], विकासिनीषु कादम्बरीप्राप्ति-

(= श्वेतरक्तीकृतानि) शाद्वलानि (= हरितघासयुक्तभूभागाः) यैस्तादृशैः अपि, शक्रगोपकैः = इन्द्रगोपकैः, वर्षर्तुभावि-रक्तवर्ण-कीटविशेषैः, 'बीरबहूटी' इति नाम्ना हिन्द्यां ख्यातैः, अपि, पाण्डुताम्= रक्तश्वेतताम्, प्रत्यपद्यत = प्राप्यत। पाटलीकारकः कथं पाण्डुं करोतीति विरोधः। परिहारः— पाण्डुताम् = दुर्बलताम् इत्यर्थे। कुसुमधवलैः—पुष्पैः हेतुभिः श्वेतैः, कुटजैः = वनमल्लिकावृक्षैः, अपि, रागपरवशः—रागस्य (= रक्तवर्णस्य) परवशः (= अधीनः) अक्रियत = व्यधीयत, विहितः। श्वेतैः रक्तीकृत इत्यत्र विरोधः। रागस्य = प्रेम्णः परतन्त्रः कृत इत्यर्थे परिहारः। अत्र सर्वत्र विरोधाभासोऽलंकारः।

तथापीति। तथापि = पूर्वोक्तायां स्थितौ सत्यामपि, सकलेत्यादिः—सकलम् (= सर्वम्) यत् जगत् (= संसारः) तस्य जीवनस्य (= जीवितस्य) हेतुना (= कारणेन), अपि, जलदकालेन= वर्षासमयेन, जीवितसन्देहदोलाम्=जीवनसंशयस्य प्रेङ्खाम्, आरोपितः=स्थापितः, न्यस्तः:[इदमग्रे वक्ष्यमाणानि च सर्वाणि प्रथमान्तानि पदानि 'चन्द्रापीड' इत्यस्यानुल्लिखितस्य विशेषणानि।]उत्कूलगामिषु= तटस्योर्ध्वं गच्छत्सु, प्रतिकूलयायिषु, च, विधिविलसितेषु = भाग्यविधानेषु, सरित्पूरेषु = नदीनां प्रवाहेषु च, उत्प्लवमानः = तरन्। उत्कूलगामिषु = तटमतिक्रम्य ऊर्ध्वं गच्छत्सु सरित्पूरेषु, उत्कूलगामिषु = प्रतिकूलगामिषु विधिविलसितेषु च उत्प्लवमान इति भावः। अनवरतेत्यादिः— अनवरतम् (=निरन्तरम्) यत् वर्षाजलम् (=वृष्टिसलिलम्) तेन जनितेषु (=उत्पादितेषु), मूर्च्छागमेषु= मोहागमेषु, पङ्कपटलेषु=कर्दमसमूहेषु, च, निमज्जन्=ब्रुडन्,निपतन् च। जलेत्यादिः—जलस्य(=सलिलस्य) भरेण (= भारेण, आधिक्येन) स्थगिते (= अवरुद्धे, व्यवहिते) वर्त्मनि = मार्गे, विलोचने = नयने, च, स्खलन् = भ्रश्यन्। यथा अत्यधिकजलप्रवाहावरुद्धे मार्गे प्रचलन् जनः स्खलति तथैव नेत्रेऽपि जलावरुद्धे सति द्रष्टुमसमर्थः सन् स्खलतीति साम्यम्। विकासिनीषु = निरन्तरवर्धमानासु कादम्बरी-प्राप्तिचिन्तासु = स्वप्रेयसीलाभचिन्तासु, अथ च, विकासिनीषु = विकसनशीलासु,

पाण्डुता=पीले-पीले रंग को प्राप्त करने लगा। फूलों से सफेद हुए कुटजों से भी वह राग (=लालिमा, प्रेम) के अधीन करा दिया गया। फिर भी, सारे संसार के जीवन के हेतुभूत वर्षाकाल द्वारा जीवन के सन्देहरूपी झूले पर चढ़ाया (बैठाया) गया, (वह चन्द्रापीड) उत्कूलगामी = प्रतिकूल चलनेवाले विधि (भाग्य) के विलासों में और उत्कूल = तट को काट देने वाले नदियों के प्रवाहों = बाढ़ों में तैरता हुआ, लगातार होने वाली वर्षा के जल द्वारा बनाये गये बेहोशी के आगमनों में तथा (लगातार वर्षा के पानी से बनाये गये) कीचड़ों के समूह में डूबता=फँसता हुआ, जल (=पानी, आँसू) के भर (=रेला, समूह) से स्थगित (बन्द तथा अवरुद्ध) मार्ग में और नेत्रों में स्खलित होता=लड़खड़ाता हुआ, लगातार बढ़ती जाती हुई (खिलती हुई) कादम्बरी की प्राप्ति की चिन्ताओं में तथा धारा

१. तथा च। २. जीवन०। ३. अनवरतवर्ष।
४. लोचने। ५. स्वबलविकासिनीषु।

चिन्तासु धाराकदम्बरजोवृष्टिषु चामीलयन्[1], अनुबन्धिषु गमनविघ्नेषु जलधरध्वनितेषु च मुह्यन्[2], सुदुर्लंङ्घ्यवेगान्युत्कण्ठितानि सहस्रशः स्रोतांसि चोल्लङ्घयन्, [3]घनोपाहितवृद्धिना कादम्बरीसमागमौत्सुक्येन पयःप्लवरयेण चोह्यमानः, [4]जीवितप्रत्याशामनिर्वहतो जनांस्तुरङ्गमांश्च परित्यजन्, तर्ज्यमान इव तडिद्भिः, अवरुध्यमान इव जलधरैः, निर्भर्त्स्यमान इव विस्फूर्जितैः, शकलीक्रियमाण इव शतशो निस्त्रिंशवृत्तिभिर्धारासारैः, निरुद्धास्वपि

धारेत्यादिः—धाराकदम्बानाम् (= धारारूपेण विकसनशीलकदम्बवृक्षाणाम्) रजसाम् (=परागाणाम्) वृष्टिषु (= वर्षासु), च, आमीलयन् = मूर्च्छामनुभवन्, चिन्तापक्षे—अमीलयन् = निद्रामननुभवन्, जाग्रद् । अनुबन्धिषु = निरन्तरं भवत्सु, गमनविघ्नेषु = प्रस्थाने प्रतिबन्धकेषु, जलधरध्वनितेषु = मेघानां गर्जनेषु च, मुह्यन्=मोहम् = कर्तव्याकर्तव्यज्ञानाभावं प्राप्नुवन्, मूर्च्छन् च । सुदुर्लङ्घ्येत्यादिः— सु (= सुतराम्) दुर्लङ्घ्यः (= दुःखेन लङ्घयितुं शक्यः, अतिशयकष्टेन लङ्घनीयः) वेगः (= रयः) येषां तानि, तादृशानि, उत्कण्ठितानि (= औत्सुक्यानि), सहस्रशः = अगणितानि, स्रोतांसि = निर्झराणि जलप्रवाहान् च, उल्लङ्घयन् = अतिक्राम्यन्, पक्षे—कथंचित् सहनं कुर्वन् । घनेत्यादिः—घनैः (= मेघैः) उपाहिता (= कृता) वृद्धिः (= वर्धनम्) यस्य तेन तादृशेन, कादम्बरीत्यादिः—कादम्बर्याः (= स्वप्रेयस्याः) यः समागमः (= सम्मिलनम्) तस्य औत्सुक्येन (= औत्कण्ठ्येन), पयःप्लवरयेण—पयसाम् (=जलानाम्) प्लवः (= प्लावनम्, प्रवाहातिशयः) तस्य रयेण (= वेगेन) च, उह्यमानः = अग्रे नीयमानः उभयत्र साम्यम् । जीवित-प्रत्याशाम् = जीवनस्याशाम्, अनिर्वहतः = अधारयतः, जीवनं प्रति निराशान् भवत इति भावः, जनान्=लोकान्, तुरङ्गमान् = अश्वान्, च, परित्यजन्=परिहरन्, पृष्ठदेशे अश्वान् तदारोहिसैनिकादीन् च परित्यजन्निति भावः । [क्वचित्तु—'जीविततुरङ्गमप्रत्याशामनिर्वहतस्तुरङ्गमांश्च परित्यजन्' इत्येव पाठः । अपरत्र च, पृथक्-पृथक् वाक्यद्वयं पठ्यते—'जीवितप्रत्याशामवहन् तुरङ्गमांश्च परित्यजन्' इति पाठः । एष न समीचीनः प्रतिभाति । मूलोक्तपाठानुसारेण चन्द्रापीडः स्वसहयायिनो जनान् तेषां वाहकानश्वांश्च पृष्ठदेशे परित्यजन्, अग्रे एकाकी अश्वेन गच्छन् आसीदिति भावः ।]

पुनरपि तस्य गमनवैशिष्ट्यं प्रतिपादयति—तर्ज्यमान इत्यादिना । तडिद्भिः = गगनविद्युद्भिः, तर्ज्यमानः = तर्जनाविषयीक्रियमाणः, भयं प्राप्यमाणः, इव । जलधरैः = मेघैः, अवरुध्यमानः = अवरुध्यमानः, वार्यमाणः, इव । विस्फूर्जितैः = वज्रनिर्घोषैः, निर्भर्त्स्यमानः = भर्त्सनां प्राप्यमाणः,

---

रूप में गिरती हुई कदम्बपुष्पों के परागों की वृष्टियों में मीलन न करता हुआ (अर्थात् नेत्रों को संकुचित न करता हुआ), सावधान और साभिलाष होता हुआ आगे-आगे होने वाले गमन के विघ्नों में तथा मेघों की गर्जनाओं में मूर्छित (मुग्ध) होता हुआ, अत्यन्त दुर्लंघनीय (कष्ट से पार सकने योग्य) उत्कण्ठाओं को तथा हजारों जलस्रोतों (झरनों आदि) को पार करता हुआ, बादलों द्वारा और अधिक बढ़ायी गयी कादम्बरी से मिलने की उत्सुकता से तथा पानी की बाढ़ के वेग से ढोया जाता हुआ, आगे ले जाया जाता हुआ, जीवन की आशा को छोड़ देने वाले लोगों (साथियों) को तथा घोड़ों को (पीछे) छोड़ता हुआ, बिजली (की गड़गड़ाहट) द्वारा धमकाया जाता हुआ सा, बादलों द्वारा रोका जाता हुआ सा, तूफानी गर्जनों द्वारा तिरस्कृत किया जाता हुआ सा, लम्बी-लम्बी तलवारों जैसी

---

१. चामीलन् । २. विमुह्यन् । ३. घनोपाहृत० ।
४. ......मनिर्वहंस्तुरङ्गमांश्च, अनिर्वहंस्तुरङ्गमांश्च ।

जलदकालेनैवाशुगमनविघ्नभूतास्वाशासु कादम्बरीसमागमाशा सुतरां नारुध्यतास्य यथा[1] तादृशेऽपि यथास्थाननिगडितसमस्तप्राणिनि प्रावृट्काले कलामप्यकृतपरिलम्बोऽनीयत[2] तं पन्यानम्। धाराहतिविकूणिताक्षेण च मुहुर्मुहुर्वलितानमिताननेन[3] श्च्योतदासक्ति[4]-

इव। ['स्फूर्जथुर्वज्रनिर्घोषः' इत्यमरः। निस्त्रिंश-वृत्तिभिः—निस्त्रिंशः (=निर्गतः त्रिंशतः अङ्गुलीभ्यः इति, त्रिंशदधिकाङ्गुलिपरिमाणतोऽपि प्रलम्बः खड्गः) तद्वत् वृत्तिः (= वर्तनम्, प्रहरणमिति भावः) येषां तैस्तादृशैः, धारासारैः = वेगयुक्तवर्षणैः, शतशः = शतभागेषु, शकलीक्रियमाणः = खडं खडं विधीयमानः, इव। अत्र सर्वत्र 'इव' शब्द उत्प्रेक्षायां तेनोत्प्रेक्षालङ्कारः सुस्पष्टः। [अत्र विशेष्यभूतः 'चन्द्रापीड' अलिखितोऽपि अर्थसङ्गत्यै योजनीयः। किञ्च 'अग्रे वक्ष्यमाणवाक्येनास्य सर्वस्यान्वयः करणीयः। अत्रत्या प्रतिपादनशैली न शोभिनेति चिन्त्यम्।] जलदकालेन = वर्षासमयेन, एव, आशु-इत्यादिः—आशु (= शीघ्रम्) गमने (= चलने) विघ्नभूतासु (= प्रत्यवायरूपतां प्राप्तासु), आशासु = दिशासु सर्वासु, निरुद्धासु = उपजातावरोधासु, सतीषु, यथा = कादम्बरी-समागमाशा = स्वप्रेयसीसंगमाशा, सुतराम्, न, अरुध्यत = अवरुद्धा जाता, तादृशे = तथाविधे पूर्वोक्ते, अपि, यथास्थानेत्यादिः—यथास्थानम् (= स्थानमनतिक्रम्य, यथास्थलम्) निगडिताः (= संनाहिताः, बद्धाः कृताः) सकलप्राणिनः (= समस्तजन्तवः) येन तादृशे, प्रावृट्काले = वर्षाकाले, कलाम् = क्षणमात्रम्, अपि, अकृत-परिलम्बः = अकृतः (= न विहितः) परिलम्बः (= विलम्बः) येन स तादृशः, स्वल्पमपि विलम्बमकृत्वैवेति भावः, तादृशः चन्द्रापीडः, तम् = पूर्वपरिचितम्, पन्थानम् = मार्गम्. अनीयत = प्राप्यत। 'आशा' शब्द यदा दिग्वाची तदा विरोध,। 'कादम्बरीसमागमाशा' इत्यत्र ईहावाची तेन विरोधपरिहारः। अत्र 'जलदकालेन' इति कर्तृपदम्, चन्द्रापीडस्य विशेषणवाचकानि कर्माणि प्रथमान्तानि। कर्मणि लकारः। 'गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहामिति' नियमानुसारेण प्रधानकर्मणि चन्द्रापीडे लकारेणोक्तत्वात् कर्मणः प्रथमा प्रयुक्तेति बोध्यम्।

धारेति। धारेत्यादिः—धारायाः (= जलस्याखण्डपतनधारायाः) आहत्या (= प्रहारेण) विकूणिते (=ईषन्निमीलिते) अक्षिणी (=नेत्रे) यस्य तेन तादृशेन, [इमानि तृतीयैकवचनान्तानि पदानि वक्ष्यमाणस्य 'वाजिसैन्येन' इत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि।] मुहुर्मुहुरित्यादिः—मुहुर्मुहुः (= बारं बारम्), वलितानि (= जलधाराया विपरीतदिशायां परावर्तितानि) आनमितानि (=अधोविहितानि) च आननानि (=मुखानि) येन तादृशेन, श्च्योतदित्यादिः—श्च्योतत् (=प्रस्रवत्)

मूसलाधार वर्षाओं से सैकड़ों टुकड़े किया जाता हुआ सा, वर्षाकाल के द्वारा ही शीघ्र गमन में विघ्न भूत सभी आशाओं (दिशाओं,मनोरथों) के अवरुद्ध कर (रोक) दिये जाने पर भी इस (चन्द्रापीड) की कादम्बरी से मिलने की आशा नहीं रोकी जा सकी, जैसा कि अपने-अपने स्थानों पर सभी प्राणियों को बेड़ियां डाल देने वाले (रोक देने वाले) उस प्रकार के [भयानक] वर्षाकाल में भी एक पल का भी बिलम्ब किये बिना (वह चन्द्रापीड) उस=इष्ट मार्ग पर पहुँचा दिया गया। उसके पीछे-पीछे अश्वसेना चल रही थी, जो (अश्वसेना) जलधारा से टकराहट के कारण आधी बन्द आखों वाली थी, जो बार-बार मुड़े तथा नीचे झुके हुए मुखवाली थी, जिसके गरदन के बालों के अग्रभाग

१. आशया तया, यथा। २. असौ।
३. विवलित, चलित०। ४. पिण्डित, संपीडित।

सम्पिण्डितकेसराग्रेणैकसन्तानकर्दमानुमग्न[1]-खुरेणादृश्यनिम्नोन्नतस्खलद्गतिना विशीर्य-माणपर्याणसमायोगेनोपर्युपरिवाहिनी[2]तीरोत्तारसन्तानावानपृष्ठेनापचीयमानबलजवोत्साहेन [3]वाजिसैन्येनानुगम्यमानो जीवितसन्धारणाय यथा तथा [4]निर्वर्तिताशनमात्रकोऽभ्यर्हित[5]-राजलोकवचसाप्यप्रतिपन्नशरीरसंस्कारो दिवसमेव[6] कवलमवहत् ।

आसक्त्या (= संश्लेषेण) संपिण्डितम् (= मिलितम्, पिण्डभावतां प्राप्तं) च केसराणाम् (= स्कन्धप्रदेशस्थकेशानाम्) अग्रम् (= प्रान्तभागः) यस्य तेन तादृशेन । अत्र 'प्रस्वेद' पदं मूले न पठ्यते । किन्तु प्रायशो व्याख्याकारैः 'श्च्योतत्' इति पदं प्रस्वेदस्य विशेषणत्वेन, तदर्थ-याचकत्वेन वा व्याख्यातम् । तन्न रुचिकरम्, अपितु 'श्च्योतद्' 'संपिण्डित'—एतद्द्वयमपि केसरा-ग्राणामेव विशेषणम् । अश्वानां केसराग्रभाग एव श्च्योतन् = क्षरन् संपिण्डितश्चासीदिति भावः । 'श्च्युतिर् क्षरणे' इति भौवादिकस्य रूपम् । एकसन्तानेत्यादिः—एकः सन्तानः (=अविच्छिन्नपरम्परा) यस्य स तादृशो यः कर्दमः (= पङ्कः) तस्मिन् अनुमग्नाः (= ब्रुडिताः, संगताः) खुराः (=शफाः) यस्य तेन तादृशेन । अदृश्येत्यादिः—अदृश्यम् (= द्रष्टुमयोग्यम्) निम्नम् (= नीचैः) उन्नतम् (= उच्चैः) च [स्थलम्] यस्मिन् तस्मिन् स्खलन्ती (= भ्रश्यन्ती) गतिः (= गमनम्) यस्य तेन तादृशेन । विशीर्यमाणेत्यादिः—विशीर्यमाणः (= स्वस्थानात् भ्रश्यन्, स्खलन्) पर्याणस्य (=अश्व-पृष्ठास्तरणस्य) समायोगः (= सम्बन्धः) यस्य यस्माद् वा तेन तादृशेन । उपरीत्यादिः—उपरि-उपरि (= उर्ध्वमूर्ध्वम्, उत्तरोत्तरम्) यथा स्यात्तथा वाहिनीनाम् (= नदीनाम्) तीराणाम् (= तटानाम्) य उत्तारः (=सन्तरणम्, पारकरणम्) तस्य सन्तानेन (=अविच्छिन्नपरम्परया) अवानम् (= अशुष्कम्, क्लिन्नम्) पृष्ठम् (= पृष्ठभागः) यस्य तेन तादृशेन । अपेत्यादिः—अपचीयमानम् (= क्षीयमाणम्) बलम् (= शक्तिः) जवः (= वेगः) उत्साहः (= उद्यमः, साहसम्), च, यस्य तेन तादृशेन; साम्प्रतं विशेष्यमाह—वाजिसैन्येन = अश्वसैनिकसमूहेन, अनुगम्य-मानः = अनुस्रियमाणः, जीवितसंधारणाय = प्राणरक्षणाय, यथा तथा = येन केन प्रकारेण, निर्वर्तितेत्यादिः—निर्वर्तितम् (= सम्पादितम्) अशनमात्रम् (= केवलं भोजनम्) येन तादृशः । अभ्यर्हितेत्यादिः—अभ्यर्हिताः (= सम्माननीयाः) ये राजलोकाः (= नृपाः) तेषां वचसा (= वचनेन), अपि, अप्रतिपन्नेत्यादिः—अप्रतिपन्नः (= अनङ्गीकृतः, अविहितः) शरीरस्य (= स्वदेहस्य) संस्कारः (= स्नानादिविधिः) येन स तादृशः सन्, केवलम्=तन्मात्रम्, दिवसम्= दिनम्, अवहत् = प्राचलत्, एव । अत्र कालात्यन्तयोगे द्वितीया । एव-केवल-शब्दयोः समानार्थं-

---

(छोर) चूते (टपकते) हुए पानी से मिल जाने =चिपक जाने से पिण्ड (गुच्छे) के रूप में हो गये थे, जिसके खुर लगातार कीचड़ में डूबे रहते थे, जिसकी गति अदर्शनीय (न दिखाई पड़ने वाले) ऊँचे-नीचे स्थानों में लड़खड़ा रही थी, जिसकी पीठ पर कसी (बाँधी) गईं काठियाँ (पर्याण, जीनें) इधर-उधर खिसक जा रहीं थीं, जिसकी पीठें एक के बाद दूसरी लगातार नदियों के किनारों को [कूद कर] पार करने के कारण गीली (अवान) हो गईं थीं, जिसका बल, वेग और उत्साह कम होता जा रहा था, [ऐसी अश्वसेना द्वारा अनुगत होता हुआ चन्द्रापीड] जिन्दा रहने के लिये जैसे-तैसे केवल कुछ खाता हुआ, सम्माननीय राजाओं के कहने से भी शरीर-संस्कार (तैलमालिश, स्नानादि शारीरिक कृत्य) न किये हुए सारे दिन में ही चलता ही रहा ।

---

१. लग्न, मग्नोन्मग्न । २. पूर० । ३. विशीर्यंता वाजी ।
४. निर्वतित । ५. अभ्युद्गत० । ६. दिवसमवहदेव केवलम् ।

वहंश्च [1]त्रिभागमात्रावशिष्टेऽध्वनि [2]निवर्तमानं मेघनादमद्राक्षीत् । दृष्ट्वा च दूरत एव कृतनमस्कारं तमप्राक्षीत्—"तिष्ठतु तावत् [3]पुरस्तात्पत्रलेखागमनवृत्तान्तप्रश्नः । वैशम्पायनवृत्तान्तमेव तावत्पृच्छामि । अयि ! दृष्टस्त्वयाच्छोदसरसि वैशम्पायनः ? पृष्टो वावस्थानकारणम् ? पृष्टेन वा किंचित्कथितं न वा ? पश्चात्तापी वास्मत्परित्यागेन ? स्मरति वास्माकम् ? पृष्टोसि वानेन किंचिन्मदीयम् ? उपलब्धो[4] वाभिप्रायः ? उत्पन्नो वालापो

कत्वेन एकस्य प्रयोगोऽधिकः । यद्वा—वहनस्य = आशुगमनस्य दार्ढ्यबोधाय द्वयोः प्रयोग इति । यद्वा 'दिवसमेव' इत्यनेन रात्रौ गमनाभावः । सूचित इति बोध्यम् ।

वहंश्चेति । वहन् = शीघ्रं चलन्, च, त्रिभागेत्यादिः—त्रिभागः (= तृतीयभागः) एव त्रिभागमात्रम्, अवशिष्टम् (= शेषभूतम्) यस्मिन् तादृशे, अध्वनि = मार्गे, निवर्तमानम् = परावर्तमानम्, पश्चादागच्छन्तम्, मेघनादम् = एतन्नामकं सेनाध्यक्षम्, अद्राक्षीत् = = दृष्टवान् । दृष्ट्वा = विलोक्य, च, दूरतः = विप्रकृष्टाद्, एव, कृतनमस्कारम्—कृतः (= विहितः) नमस्कारः (= प्रणामः) येन तं तादृशम्, तम् = मेघनादम्, अप्राक्षीत् = पृष्टवान् । पत्रलेखेत्यादिः—पत्रलेखायाः (= एतन्नाम्न्याः परिचारिकायाः) गमनस्य (= प्रस्थानस्य) वृत्तान्तस्य (= उदन्तस्य, समाचारस्य) प्रश्नः (= पृच्छा) पुरस्तात् = आदौ, तावत् = तावत्कालं यावत्, तिष्ठतु = दूरे भवतु, तस्याः गमनविषये प्रथमं जिज्ञासा नास्तीति तदाशयः । तावत् = प्रथमम्, वैशम्पायन-वृत्तान्तम् = स्ववयस्योदन्तम्, एव, पृच्छामि = जिज्ञासाविषयीकरोमि । अयि ! = विषादसूचकमव्ययमिदम्, त्वया = भवता, मेघनादेन, अच्छोदसरसि = एतन्नामकसरसः समीपदेशे, वैशम्पायनः दृष्टः = विलोकितः ? वा = अथवा, अवस्थानकारणम् = तत्रावस्थितिनिदानम्, पृष्टः = प्रश्नविषयीकृतः ? पृष्टेन = अनुयुक्तेन, वा, तेन, किञ्चित् = किमपि, कथितम् = उत्तरितम्, न वा ? वा = अथवा, अस्मत्परित्यागेन = अस्माकं परिहाणेन, पश्चात्तापी = पश्चात्तापयुक्तः, अनुतप्तः ? वा = अथवा, अस्माकम्, स्मरति = अनुध्यायति, 'सम्बन्धमात्रविवक्षायां कर्मादावपि षष्ठी' इति नियमेन सम्बन्धसामान्ये षष्ठी । वा = अथवा, अनेन = वैशम्पायनेन, मदीयम् = मद्विषयकम्, किञ्चित्, त्वम्, पृष्टः = प्रश्नविषयीकृतः, असि = भवसि ? वा = अथवा, अभिप्रायः = तत्रावस्थानस्याशयः, उपलब्धः = प्राप्तः ? वा = अथवा, युवयोः = वैशम्पायन-मेघनादयोः, आलापः = परस्परसम्भाषणम्, उत्पन्नः = सञ्जातः ?

जब चलते-चलते रास्ते का केवल तीसरा भाग शेष बच गया था तब (चन्द्रापीड ने) मार्ग में वापस लौटते हुए मेघनाद नामक सेनापति को देखा । देखकर, दूर से ही प्रणाम करनेवाले उस (मेघनाद) से पूछा—'पत्रलेखा के गमन की बात पीछे रहे, पहले वैशम्पायन के विषय में ही पूछता हूँ । अरे ! क्या तुमने अच्छोद सरोवर [के पास] में वैशम्पायन को देखा है ? अथवा [उससे] वहाँ रुके रहने का कारण पूछा है ? पूछे जाने पर उसने कुछ कहा अथवा नहीं ? क्या हम लोगों को छोड़ देने से पश्चात्ताप कर रहा है ? अथवा क्या हम लोगों को याद करता है ? क्या मेरे विषय में उसने कुछ पूछा है ? उसका अभिप्राय मालूम हो सका या नहीं ? क्या तुम दोनों की (कोई) बात हो सकी ? अथवा

---

१. त्रिभागावशिष्टे । २. वर्तमानम् । ३. पुरस्तात् ।
४. उपालब्धो वाभिप्रायो वाक्यम्, उपलक्षितो वाभिप्रायस्त्वया ।

युवयोः ? मातापित्रोर्वा सन्दिष्टं किंचित् ? [1]परिबोधितो वा त्वयागमनाय ? आवेदितं वास्मदीयमागमनम्[2] ? नापयास्यति वा तस्मात्प्रदेशात् ? दास्यति वा दर्शनम् ? ग्रहीष्यति वास्मदनुनयम् ? आगमिष्यति वा पुनर्मया सह ? किं कुर्वन्दिवसमास्ते ? को वा विनोदोस्य तिष्ठति' ? इति ।

स त्वेवं पृष्टो[3] व्यज्ञपयत्—"देव, देवेन तु वैशम्पायनमालोक्यानुपदमेव [ते] तुरङ्गैरागत एवाहमि'(पृ० १०७)त्यादिश्य विसर्जितोहम् । [4]अच्छोदसरसः प्रतीपं वैशम्पायनो गत

वा = अथवा, मातापित्रोः = जननीजनकयोः, किञ्चित्, सन्दिष्टम् = निवेदितम्, अत्रापि सम्बन्धसामान्यविवक्षायां सम्प्रदानेऽपि षष्ठी । वा = अथवा, त्वया = भवता, आगमनाय = अस्माकं समीपे आगन्तुम्, परिबोधितः = सम्यग् बोधितः, उपदिष्टः ? वा = अथवा, अस्मदीयम् = अस्माकम्, आगमनम् = अत्र सम्प्राप्तिः, आवेदितम् = निवेदितम्, कथितम् ? वा = अथवा, तस्मात् = पूर्वोक्तात्, प्रदेशात् = अच्छोदसरस्तीरात्, न, अपयास्यति = अपगमिष्यति, अन्यत्र प्रस्थास्यतीति भावः ? वा = अथवा, दर्शनम् = बिलोकनम्, दास्यति = कारयिष्यति, अस्मभ्यमिति शेषः ? वा = अथवा, अस्मदनुनयम् = अस्माकं प्रार्थनाम्, ग्रहीष्यति = स्वीकरिष्यति ? वा = अथवा मया = चन्द्रापीडेन, सह = साकम्, पुनः = भूयः, आगमिष्यति = आयास्यति ? किम्, कुर्वन् = विदधानः, दिवसम् = दिनपर्यन्तम्, आस्ते = तिष्ठति ? सम्पूर्णदिनपर्यन्तं किमाचरतीति तद्भावः । वा = अथवा, अस्य = वैशम्पायनस्य, कः = अज्ञातः, विनोदः = मनोरञ्जनसाधनम्, तिष्ठति = वर्तते ? इतिः = कथनसमाप्तौ ।

चन्द्रापीडस्य विविधप्रश्नानाकर्ण्य मेघनादः किमुत्तरं दत्तवानिति प्रतिपादयितुमाह—स त्वेवमित्यादिना । सः = मेघनादः, तु, एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, पृष्टः = प्रश्नविषयीकृत, सन्, व्यज्ञपयत् = निवेदितवान् । किं तदिति वर्णयति—देव इति । देव ! = स्वामिन्, देवेन = भवता युवराजेन, तु वैशम्पायनम् = स्ववयस्यम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, मिलित्वा, अहम् = चन्द्रापीडः, ते, अनुपदम् = अनुचरणन्यासम्, पृष्ठे एव, तुरङ्गमैः = अश्वैः, आगतः = सम्प्राप्तः, एव, [द्र० मूले १०७ पृष्ठे] इति = एवम्, आदिश्य = आज्ञाप्य, अहम् = मेघनादः, विसर्जितः = गमनार्थं मुक्तः । वैशम्पायनः = तन्नामा, अच्छोदसरसः = एतन्नामकसरोवरस्य, प्रतीपम् = वामम्, गतः = प्रस्थितः, इति, एषा = इयम्, वार्ता = वृत्तान्तः एव, न,

उसने अपने माता-पिता के लिये कोई सन्देश दिया है ? अथवा तुमने वापस लौटने के लिये उसको समझाया ? हम लोगों के [दुबारा यहाँ] आने की सूचना दी ? वहाँ से कहीं अन्यत्र चला तो नहीं जायगा ? अथवा वह दुबारा दर्शन देगा, मिलेगा ? अथवा हम लोगों की प्रार्थना स्वीकार करेगा ? अथवा मेरे साथ वह फिर से वापस लौटेगा ? क्या करता हुआ दिन भर बैठा रहता है ? अथवा उसके मनोबिनोद का साधन क्या चीज है अर्थात् वह किस चीज से अपना मन बहलाता रहता है ?''

ऐसा पूछे जाने पर उस मेघनाद ने निवेदन किया—"स्वामी ! 'वैशम्पायन को देखकर तुम्हारे पीछे ही मैं घोड़ों से आया ही हूँ'(मूल पृ० १०७)ऐसा आदेश देकर आपने मुझे[केयूरक के साथ जाने के लिये] बिदा किया था । 'वैशम्पायन अच्छोद सरोवर की बायीं ओर चला गया' यह बात तो बीच

१. प्रतिबोधितः । २. वास्य मदीयमागमनम् । ३. एवमापृष्टः, एवमादिष्टः । ४. अथाच्छोदसरसः ।

इत्येषान्तरा वार्तैव नोपयाता[१]। चिरयति च देवे जलदसमयारम्भमालोक्य कदाचिदेतेषु दिवसेषु देवेन तारापीडेन देव्या विलासवत्यार्यशुकनासेन च कृतप्रयत्नोऽपि न मुच्यते[२] एवागन्तुं देवश्चन्द्रापीडस्त्वया चैकाकिना न स्थातव्यमेवास्यां भूमौ, परागतप्रायाश्च वयं तन्निवर्त[३]-स्वास्मादेव प्रदेशादित्यभिधाय पत्रलेखया केयूरकेण च त्रिचतुरैः प्रयाणकैरप्राप्त एवाच्छोदं यावद्बलान्निवर्तितोऽस्मि।" इत्येवमावेद्य विरराम। विरतवचनं च तं पुनरपृच्छत्। "[४]किमाकलयस्यद्यतनेनाह्ना[५] यावत्परापतिता पत्रलेखा न?" इति। स तु व्यज्ञपयत्—'देव,

---

उपयाता = सम्प्राप्ता, मम श्रवणे इति शेषः। वैशम्पायनविषयकं किमपि वृत्तान्तं नाकर्णितवानहमिति तदाशयः। मया त्वं पूर्वं विसर्जितः केयूरकेण पत्रलेखया च सार्धम्, कथं तर्हि अत्र पुनरागत इत्यत्राह चिरयति इत्यादिना। देवे = युवराजे भवति, चिरयति = विलम्बं कुर्वति सति, जलदसमयारम्भम् = वर्षाकालस्यारम्भम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, कदाचित् = सम्भवतः, एतेषु = एषु, दिवसेषु = वर्षाकालदिनेषु, देवेन = स्वामिना, तारापीडेन = चन्द्रापीडस्य जनकेन महाराजेन, देव्या विलासवत्या = एतन्नाम्न्या महिष्या, आर्यशुकनासेन = वैशम्पायनजनकेन महामात्येन, च, देवः = युवराजः चन्द्रापीडः, कृतप्रयत्नः—कृतः (= विहितः) प्रयत्नः (= उद्यमः) येन तादृशः, सन् अपि, आगन्तुम् = प्रस्थातुम्, न, मुच्यते = त्यज्यते, अनुमन्यते, एव। त्वया = मेघनादेन, च, एकाकिना = असहायेन, अस्याम्, भूमौ = अरण्यस्थल्याम्, न, स्थातव्यम् = स्थेयम्, एव। वयम् = केयूरक-पत्रलेखादयः, च, परागतप्रायाः = प्रायः आगताः एव, स्वगन्तव्यस्थाने इति शेषः, तत् = तस्माद्, अस्माद् = एतस्माद्, एव, प्रदेशात् = स्थानात् निवर्तस्व = परावर्त्तस्व, चन्द्रापीडस्य समीपे गच्छेति भावः, इति अभिधाय = उक्त्वा, पत्रलेखया = चन्द्रापीडस्य परिचारिकया, केयूरकेण = कादम्बरी-परिचारकेण, च, त्रिचतुरैः = त्रिभिः चतुर्भिः वा (त्रीणि वा चत्वारि वा—इति त्रिचतुराणि तैः), प्रयाणकैः = प्रस्थानकैः, त्रिषु चतुर्षु वा स्थानेषु विश्रम्य सम्पादनीययात्राभिः, अच्छोदम् = एतन्नामकं सरः, यावत् = पर्यन्तम्, अप्राप्तः = अलब्धः, अगतः, एव, अहं मेघनादः, बलात् = हठात्, निर्वर्तितः = परावर्तितः, अस्मि=भवामि, इति, एवम्, आवेद्य=निवेद्य, विरराम = विरतोऽभूत्, शान्तोऽभूत्। विरतवचनम्—विरतम् (= शान्तम्) वचनम् (= कथनम्) यस्य तं तादृशम्, तम् = मेघनादम्, पुनः = भूयः, अपृच्छत् = पृष्टवान्, चन्द्रापीड इति शेषः। किम्, आकलयसि = विचारयसि, संभावयसि, अद्यतनेन अह्ना = दिवसेन, यावत्, पत्रलेखा = एतन्नाम्नी मम परिचारिका, परापतिता = तत्र सम्प्राप्ता, न, वा इति? [अत्र 'अपवर्गे तृतीया' इति सूत्रेण तृतीया बोध्या] सः = मेघनादः तु, व्यज्ञपयत् = न्यवेदयत्, देव = स्वामिन्! यदि = चेत्, कश्चित्,

---

में मुझे मालूम ही नहीं हुई। आपके आने में देर करने पर, वर्षाकाल के आरम्भ को देखकर कहीं इन दिनों में महाराज तारापीड द्वारा अथवा महारानी विलासवती द्वारा या आर्य शुकनास द्वारा यहाँ आने के लिये आपको प्रयत्न करने पर भी नहीं छोड़ा जा सकता, आने की अनुमति नहीं दी जा सकती, और तुम (मेघनाद) को इस (सूनसान) भूमि में अकेले नहीं रुकना चाहिए, हम लोग अपने स्थान तक लगभग वापस आ ही गये हैं, अतः अब इसी स्थान से तुम (मेघनाद) वापस लौट जाओ'— ऐसा कहकर पत्रलेखा तथा केयूरक ने तीन-चार पड़ावों में ही अच्छोद सरोवर तक पहुँचने के पहले ही मुझे हठपूर्वक वापस लौटा दिया।" ऐसा कहकर शान्त हो गया। चुप हुए मेघनाद से चन्द्रापीड

---

१. वोपजाता, चोपजाता। २. मुच्येत। ३. निवर्तय।
४. किमु कलयसि। ५. अद्य तेनाह्ना।

यद्यन्तरा कश्चिदन्तरायो न भवति[1] विलम्बकारी तदा विना सन्देहेन परापतत्येवमगच्छति मे हृदयम् ।'

इत्युक्तवति मेघनादे घनसमयवर्धिताभोगमकरध्वजार्णवमध्यपातिनीं[2] स्वानुमानात् कादम्बरीमुत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्य विक्लवीभवतः [3]पर्यावर्तन्त इवास्य जलधराः कालपुरुषैः, तडितो मदनानलशिखाभिः, अवस्फूर्जितं प्रेतपतिपटहस्वनेन, आसारधाराः स्मरेषुभिः, [4]आमन्द्रगर्जितं

अन्तरायः = विघ्नः, विलम्बकारी = विलम्बजनकः, अन्तरा = मध्ये, न, भवति = जायते, तदा = तर्हि, सन्देहेन = संशयेन, विना = ऋते, सा पत्रलेखा, परापतीति = आगच्छति, स्वगन्तव्यं प्राप्स्यतीति भावः, एवम् = इत्थम्, मे = मेघनादस्य, हृदयम् = चित्तम्, अवगच्छति= जानाति । यदि कश्चन असाध्यो विलम्बकारको मध्ये तां वारयति तदैव तस्यास्तत्र गमनं सन्दिग्धमन्यथा तु निश्चितमेवेति बोध्यम् ।

इतीति । इति = अनेन प्रकारेण, मेघनादे=एतन्नामके सेनापतौ, उक्तवति=कथितवति, सति, स्वानुमानात् = स्वकीयामनुमितिमुत्प्रेक्ष्य, घनेत्यादिः—घनानाम् (= मेघानाम्) समयः (= कालः, वर्षाकालः) तेन वर्धितः (= वृद्धिं प्रापितः) आभोगः (= विस्तारः, प्रचण्डता) यस्य तादृशो यो मकरध्वजः (= कामदेवः) स एव अर्णवः (= समुद्रः) तस्य मध्ये (= अन्तः) पतति (= पतिता भवति) इति शीला तां तादृशीम्, कादम्बरीम् = स्वप्रेयसीम्, उत्प्रेक्ष्य-उत्प्रेक्ष्य= सम्भाव्य-सम्भाव्य, विक्लवीभवतः = विह्वलीभवतः, अस्य = चन्द्रापीडस्य, जलधराः = मेघाः, कालपुरुषैः = यमदूतजनैः, पर्यावर्तन्त = परिणता अभूवन्, इव, ['पर्यवर्त्यन्त' इत्येव साधुपाठः, परस्परं विनिमयं प्राप्यन्त इव' इत्यर्थः,] जलधराः यमदूताः = कालपुरुषा एवाजयन्तेति भावः । 'पर्यवर्त्यन्त' इति क्रियापदस्य अग्रे सर्वत्रान्वयो बोध्यः । तडितः = गगनविद्युतः, मदनेत्यादिः— मदनः (= कामदेवः) एव, अनलः (= वह्निः) तस्य शिखाभिः (= ज्वलाभिः), 'पर्यावर्त्तन्त इव' । तडितः कामाग्निज्वाला अभूवन् इवेति भावः । अवस्फूर्जितम् = करालगर्जितम्, प्रेतेत्यादिः— प्रेतपतिः (= यमराज,) तस्य पटहः (= दुन्दुभिः) तस्य स्वनेन (= ध्वनिना), पर्यवर्त्यंत इव । आसारधाराः = रयेण क्षरन्त्यो जलधाराः, स्मरेषुभिः = कामदेवस्य बाणैः, पर्यवर्त्यन्त इव ।

ने फिर पूछा—"क्या समझते हो कि आज दिन तक पत्रलेखा वहाँ पहुँच नहीं पाई होगी ?' उसने निवेदन किया—"स्वामी ! यदि बीच में विलम्ब करने वाला कोई विघ्न नहीं आया होगा तो बिना किसी सन्देह के पत्रलेखा वहाँ पहुँच ही जायगी, ऐसा मेरा हृदय समझ रहा है ।"

मेघनाद के ऐसे कहने पर अपने [अनुभव के अनुसार] अनुमान से वर्षाकाल द्वारा बढ़ाये गये विस्तार वाले कामदेव रूपी समुद्र के बीच में पड़ी (गिरी) हुई कादम्बरी के विषय में बार-बार संभावना करके व्याकुल होने वाले इस चन्द्रापीड के लिये-मेघ काल=यमराज के पुरुषों=दूतों के रूप में, बिजलियाँ कामदेव रूपी अग्नि की लपटों के रूप में, बादलों की गड़गड़ाहट प्रेतपति=यमराज के [मृत्युसूचक] नगाड़े की आवाज के रूप में, पानी की मूसलाधार वर्षा कामदेव के बाणों के रूप में, गंभीर गर्जन कामदेव के धनुष की डोरी (प्रत्यञ्चा) की टंकार के विस्तार के रूप में, मयूरों की

१. भविष्यति । २. पातिनी ।

३. अत्र 'पर्यवर्त्यन्त' इत्येवोचितः पाठः, परस्परं विनिमयं प्राप्यन्त इव, जलधराः यमराजदूताः अबुध्यन्तेति भावः । परिवर्तन्ते, परिवर्त्यन्ते—इत्यपि पठ्यते क्वचित् । ४. आमन्द्रं ।

मकरध्वजधनुर्ज्यागुञ्जिताभोगेन, कलापिकेकाः कालदूतालापैः, केतकामोदो विषपरिमलेन, खद्योताः प्रलयानलस्फुलिङ्गराशिभिः,[1] अलिवलयानि कालपाशैः, बलाकाश्रेणयः प्रेतपतिपताकाभिः, आपगाः सर्वक्षयमहापूरप्लवैः, दुर्दिनानि कालरात्र्या, कुटजतरवः कृतान्तहासैः। अपि च शरीरेऽपि सत्त्वं कातरतया, बलं क्षामतया, कान्तिर्वैवर्ण्येन, मतिर्मोहेन, धैर्यं विषादेन, हसितं शुचा, नयनमश्रुणा, आलपनं मौनेन, अङ्गान्यसहतया,[2] करणान्यपाटवेन [3]सर्वमेवारत्या[4]।

आमन्द्रगर्जितम् = गम्भीरगर्जनम्, मकरेत्यादिः—मकरध्वजः (= कामदेवः) तस्य यद् धनुः (= चापः) तस्य या ज्या (= प्रत्यञ्चा) तस्याः यद् गुञ्जितम् (= शब्दितम्, टङ्कारः) तस्य आभोगेन (= विस्तारेण) 'पर्यवर्त्यत इव' इदं सर्वत्र योजनीयम्। कलापि-केकाः—मयूराणां ध्वनयः, कालदूतालापैः—कालदूतानाम् (= यमदूतानां प्राणहराणाम्) आलापैः (= भाषणैः, संवादैः) पर्यवर्त्यन्त इव। केतकामोदः—केतकस्य (= क्रकचच्छदस्य उत्कटगन्धवतः, 'केवड़ा' इति हिन्द्यां ख्यातस्य) आमोदः (= सौरभम्), विषपरिमलेन = गरलसौरभेन, पर्यवर्त्यत इव। खद्योताः = ज्योतिरिङ्गणाः, प्रलयेत्यादिः—प्रलये (= सृष्टिसंहारे) यो अनलः (= वह्निः, वाडवः) तस्य स्फुलिङ्गानाम् (= कणानाम्) राशिभिः (= समूहैः), पर्यवर्त्यन्त इव। अलिवलयानि = भ्रमरसमूहाः, कालपाशैः = यमराजस्यास्त्रविशेषैः, बलाकाश्रेणयः = बिसकण्ठिकासमूहाः, प्रेतपति-पताकाभिः = यमराजवैजयन्तीभिः। आपगाः = नद्यः, सर्वेत्यादिः—सर्वेषाम् (= सकलानाम्) क्षयः (= विनाशः) एभ्यस्तादृशैः महापूरस्य (= महाप्लवस्य) पूरैः (= प्रवाहैः)। दुर्दिनानि = वर्षाच्छन्नदिवसाः, कालरात्र्या = प्रलयनिशया। कुटज-तरवः = कुटजनामकवृक्षविशेषाः, कृतान्तहासैः = यमराजस्याट्टहसनैः, पर्यवर्त्यन्त इव—इति यथायथं सर्वत्र योज्यम्। अत्र उभयोः साम्यं मत्वा परस्परं परिवर्तनं स्पष्टं बोध्यम्।

अपि चेति। अपि च = एतदन्यदपि बोध्यम्। शरीरे = देहे, चन्द्रापीडस्य इति शेषः, अपि, अपिना बाह्यार्थानां समुच्चयः, सत्त्वम् = साहसम्, कातरतया = भीरुतया, [अत्रापि 'पर्यवर्त्यत' इति क्रियापदं सर्वत्र योज्यम्।] बलम् = सामर्थ्यम्, क्षामतया = दौर्बल्येन। कान्तिः = सौन्दर्यम्, छविः, वैवर्ण्येन = प्रभाहीनतया, मतिः = बुद्धिः, मोहेन = अज्ञानेन, मूढतया, धैर्यम् = धीरता, विषादेन = खेदेन, हसितम् = हसनम्, शुचा = शोकेन, नयनम् = नेत्रम्, अश्रुणा = रुदितजलेन, आलपनम् = सम्भाषणम्, मौनेन = जोषेण, तूष्णीम्भावेन। अङ्गानि = शरीरावयवाः, असहतया = अक्षमतया। करणानि = इन्द्रियाणि, अपाटवेन = पटुत्वाभावेन, अशक्त्या। सर्वम् = सकलम्, एव, अरत्या = उद्वेगेन, पर्यवर्त्यत इव। अत्र सर्वत्र सत्त्वादीनां कातरतादिरूपेण परिवर्तनं सञ्जातमिति तात्पर्यम्।

बोली (केका) काल = यम के दूतों की बातों के रूप में, केवड़ों की सुगन्ध विष की (विषैली) गन्ध के रूप में, जुगनू प्रलयकालीन अग्नि (बड़वानल) की चिनगारियों के समूह के रूप में, भ्रमरों के मण्डल (= समूह) कालपाश के रूप में, बगुलियों की पंक्तियाँ प्रेतपति = यमराज की (श्वेत) पताकाओं के रूप में, नदियाँ सब का संहार करने वाली जल की बहुत बड़ी बाढ़ों (प्रवाहों) के रूप में, दुर्दिन (मेघाच्छन्न दिन) कालरात्रि के रूप में और कुटज नामक पौधे के फूल कृतान्त = यमराज के हास के रूप में बदल से गये। और भी, उसके शरीर में भी [विद्यमान] सत्त्व (आत्मबल) कायरता के रूप में, बल क्षामता = दुर्बलता के रूप में, कान्ति = छवि विवर्णता (मलिनता) के रूप में, मति मोह (=मूर्छा) के रूप में, धैर्य विषाद के रूप में, हंसी शोक के रूप में, नेत्र आंसू के रूप में, वार्तालाप करना मौन के रूप में, शरीर के अङ्ग असहनशीलता (अक्षमता) के रूप में, इन्द्रियाँ अपटुता (= अकुशलता) के रूप में और सभी कुछ अरति = व्याकुलता के रूप में [परिवर्तित हो गया]।

---

१. रश्मिभिः। २. असहितया। ३. सर्वं च। ४. रजन्या।

दिवसैश्चोल्लिख्यमानमिव, अनवरतवाहिना[1] श्रुपूर[2]प्रवाहेणावभज्यमान[3]मिव,सततैर्निश्वासप्रभञ्जनैरुत्खन्यमानमिव, [4]सन्ततैर्मदनदुःखोत्कलिकासहस्रैरजस्रपातिभिरितस्ततो जर्जरीक्रियमाणमिव, अपि च, सहस्रैर्मकरध्वजशरासारैर्वपुषैव च सह क्षीयमाणमिव स्वल्पावशेषं सङ्कल्पलिखितेन निर्विशेषवृत्तिना कादम्बरीशरीरेणैव[5] सह कण्ठलग्नं कथं कथमपि जीवितं धारयन्, [6]धाराधरक्लिन्नतरुतलम्, आप्लावितोपान्त[7]हरितशाद्वलम्,

दिवसैश्चेति । दिवसैः = दिनैः, च, बहुभिर्दिवसैः प्रचलनेनेति भावः, उल्लिख्यमानम् = उत्कीर्यमाणम्, इव, शिलादाविति शेषः । अनवरतवाहिना = निरन्तर-प्रवृत्तेन, अश्रुपूर-प्रवाहेण = नेत्राम्बुप्रवहणेन, अवभज्यमानम् = मर्द्यमानम्, इव । सततैः = निरन्तरैः, निश्वास-प्रभञ्जनैः = निश्वासपवनैः, उत्खन्यमानम् = उत्पाट्यमानम्, इव । अजस्रपातिभिः = अनवरतपतनशीलैः, सन्ततैः = अविरलैः, मदनेत्यादिः—मदनस्य (= कामदेवस्य) यद् दुःखम् (= व्यथा) तस्य उत्कलिकानाम् (= उत्कण्ठानाम्, अरतीनां वा) सहस्रैः (= दशशतीभिः) इतस्ततः = यत्र तत्र, जर्जरीक्रियमाणम् = शीर्णतां प्राप्यमाणम्, इव । अपि च=अन्यच्च, सहस्रैः =अगणितैः, मकरेत्यादि-मकरध्वजः (=कामदेवः) तस्य शराणाम् (=बाणानाम्) आसारैः (=धारावृष्टिभिः), वपुषा = देहेन, एव, सह = साकम्, क्षीयमाणम् = क्षीणतां प्राप्यमाणम्, इव, [अत्र सर्वत्रोत्प्रेक्षा] । स्वल्पावशेषम्—स्वल्पः (= ईषद्) अवशेषः (= अवशिष्टांशः) यस्य तत् तादृशम्, यत्किञ्चिद-वशिष्टमिति भावः, संकल्प-लिखितेन=कल्पनया चित्रितेन, निर्विशेषवृत्तिना—निर्विशेषा (= समाना) वृत्तिः (= वर्तनम्, व्यवहारः) यस्य तेन तादृशेन, समानदशेनेति भावः, कादम्बरी-शरीरेण = कादम्बरी-देहेन, एव, सह, कण्ठलग्नम् = गलदेशे आसक्तम्, यथा कल्पनास्थितं कादम्बरीशरीरं तस्य गले समासक्तं तथैव तस्य जीवनमपीति साम्यम्, जीवितत् = जीवनम्, प्राणान्, कथं कथमपि = यथाकथञ्चित्, महता कष्टेनेति भावः, धारयन् = बिभ्रत् । [चन्द्रापीड 'स्तदेव अच्छोदम् आससाद'—इत्यत्रान्वयः । इदानीमच्छोदस्य वैशिष्ट्यं पुनः प्रतिपादयति—धाराधरेत्यादिना । [इमानि द्वितीयैक-वचनान्तानि सर्वाणि 'अच्छोदम्' इति वक्ष्यमाणस्य विशेषणानि बोध्यानि ।] धारेत्यादिः—धाराधराः (= मेघाः) तैः क्लिन्नम् (= आर्द्रम्) तरूणाम् (= पादपानाम्) तलम् (= अधोदेशः) यस्मिन् तत् तादृशम् । आप्लावितेत्यादिः—आप्लावितम् (= जलेन परिप्लावितम्) उपान्तस्य (= प्रान्तदेशस्य) हरितम् (= हरिद्वर्णम्) शाद्वलम् (= तृणमयभूमिः) यस्मिन् तत्

[लम्बी यात्रा में बीते हुए] दिनों के द्वारा उकेरे (खोद-खोदकर बनाये) गये जैसे, लगातार बहते हुए अश्रुसमूह के प्रवाह से तोड़े-फोड़े जाते हुए जैसे, लगातार बहती हुई सांसों की हवाओं (उच्छ्वासों)के द्वारा खोदे जाते हुए जैसे,लगातार होनेवाले,विस्तृत कामदेव-सम्बन्धी हजारों दुःखों की व्याकुलताओं द्वारा इधर-उधर जर्जर किये जाते हुए जैसे,और भी,कामदेव के हजारों बाणों की वर्षाओं से शरीर के साथ ही साथ क्षीण होते जाते हुए जैसे,कुछ-कुछ ही शेष बचे हुए,संकल्प(मानसिक भाव) से बनाये गये अर्थात् काल्पनिक और अपने समान ही वृत्ति (व्यवहार) वाले कादम्बरी के शरीर के साथ-साथ [चन्द्रापीड के] कण्ठ में लटक जाने वाले (अर्थात् जैसे कादम्बरी का काल्पनिक चित्र का शरीर उसके गले का आलिंगन कर रहा हो उसी प्रकार) अपने प्राणों को जिस किसी प्रकार (बहुत कष्ट से) धारण करता हुआ चन्द्रापीड उसी (पूर्ववर्णित) 'अच्छोद' सरोवर पर दूने दुःख के साथ पहुँचा, [इस वर्षाकाल में] जिस (अच्छोद) के वृक्षों के नीचे के तल भाग (जमीन) बादलों [के पानी की वर्षा] से गीले थे, जिसके आस पास की हरी-भरी जगहें (प्रदेश) पानी में डूब गयी थीं, जिसके

१. प्रवाहिता, वाहिता, स्यवाहिता । २. ''''''धारा । ३. अपभज्यमानम्, विभज्यमानम् । ४. सततैः । ५. इव । ६. धाराधरजलक्लिन्न । ७. ''''''उपान्तं ।

[1]असेव्यतटलतावनम्, अनवरतरोधोजलप्रवेशकलुषितप्रान्तम्, अवशीर्यमाणोद्दण्डकुमुद[2]दलगहनम्, आमग्नकमलखण्डम्, उत्प्लवमानाश्यानकिञ्जल्कदलशकलम्, [3]आजर्जरितकह्लारकुवलयम्, उद्भ्रान्तभ्रमदलिवलयम्, उड्डीनहंससार्थम्[4], अनवस्थानसारसारसितकरुणम्, अवशिष्टदलतलनिलीयमानोच्चकितचक्रवाकयुगलम्, उत्कम्पितकादम्बक-कदम्बकाश्रीयमाणो-

---

तादृशम् । असेव्येत्यादिः—असेव्यम् (= असेवनीयम्) तटस्य (= तीरस्य) लतानाम् (= व्रततीनाम्) वनम् (= समूहः, काननं वा:) यस्मिन् तत् तादृशम् । अनवरतेत्यादिः—अनवरतम्, (= निरन्तरम्) यथा स्यात् तथा, रोधसः (= तटस्य) जलस्य (= वारिणः) प्रवेशः (= आगमनम्) तेन कलुषितः (= मलिनतां प्रापितः) प्रान्तः (= प्रान्तदेशः) यस्मिन् तत् तादृशम् । अवशीर्येत्यादिः—अवशीर्यमाणानि (= इतस्ततः विकीर्यमाणानि, भ्रश्यमानानि) यानि उद्दण्डानि (= उन्नालानि, ऊर्ध्वविसदण्डयुक्तानि) कुमुदानाम् (= कैरवाणाम्) दलानि (= किसलयानि) तैः गहनम् = निविडम् । आमग्न-कमलखण्डम्—आमग्नम् (= समन्तात् जले त्रुडितम्) कमलानाम् (= पङ्कजानाम्) खण्डम् (= वनम्, समूहः) यस्मिन् तत् तादृशम् । उत्प्लवेत्यादिः—उत्प्लवमानानि (= प्रबलरूपेण ऊर्ध्वंतीर्यमाणानि), आश्यानानि (= अशुष्काणि, आर्द्राणि) किञ्जल्कानाम् (= केसराणाम्) दलानाम् (= पत्राणाम्) शकलानि (= खण्डानि) यस्मिन् तत् तादृशम् । आजर्जरितेत्यादिः—आर्जजितानि (= समन्तात् जीर्णतां प्राप्तानि) कह्लाराणि (=सौगन्धिकानि, श्वेतकमलानि) कुवलयानि (= नीलकमलानि) च यस्मिन् तत् तादृशम् । उद्भ्रान्तेत्यादिः—उद्भ्रान्तम् (= चकितम्) यथा स्यात् तथा भ्रमद (= भ्रमणं कुर्वद्) अलीनाम् (= द्विरेफाणाम्) वलयम् (= मण्डलम्, समूहः) यस्मिन् तत् तादृशम् । उड्डीनेत्यादिः—उड्डीनः (= विहितोड्डयनः) हंससार्थः (= मराल-समूहः) यस्मिन् तत् तादृशम् । अनवस्थानेत्यादिः—अनवस्थानाः (= नास्ति अवस्थानं येषां ते तादृशाः) ये सारसाः लक्ष्मणाः) तेषाम् आरसितम् (= आरटनम्, उच्चध्वनिः) तेन करुणम् (= दयायुक्तम्, कारुण्यजनकम्) । अवशिष्टेत्यादिः—अवशिष्टानि (= शेषाणि) यानि दलानि (= पद्मकिसलयानि) तेषां तले (= अधोदेशे) निलीयमानानि (= निभृतानि, गुप्तरूपेण स्थितानि) उच्चकितानाम् (= आश्चर्यग्रस्तानाम्) चक्रवाकानाम् (= रथाङ्गद्वयपक्षि-विशेषाणाम्) युगलानि (= मिथुनानि) यस्मिन् तत् तादृशम् । उत्कम्पितेत्यादिः—उत्कम्पिताः (= भयेन वेपिताः) ये कादम्बकाः (= हंसविशेषाः) तेषां कदम्बकैः (= समूहैः) आश्रीयमाणः

तटों की लताओं के वन (कुंज) रहने (ठहरने) योग्य नहीं रह गये थे, जिसके किनारे के भूमिभाग लगातार तट के जल के प्रवेश आने के कारण कलुषित (मलिन) हो गये थे, जो टूटती हुई डंडियों सहित कुमुद के पत्तों से भरा हुआ था, जिसमें कमल खूब डूबे हुए थे, फूलों की केसर के कुछ गीले टुकड़े जिसमें ऊपर तैर रहे थे, जिसमें कह्लार और कुवलय खूब जर्जर हो चुके थे, घबड़ाये हुए भौंरों का समूह जिसमें घूम (चक्कर काट) रहा था, जिससे हंसों का समूह उड़ चुका था, [वर्षा की अधिकता के कारण] न ठहर सकने के कारण सारसों के आक्रन्दन (आवाजों) से जो करुण हो रहा था; जहाँ डरे (सहमे) हुए चकवी-चकवे के जोड़े [बरसात से] नष्ट होने से बचे हुए पत्तों के नीचे छिप कर बैठ रहे थे, जहाँ डर से काँपते हुए हंसों के समूह तट के किनारे नड्वलों (झाड़ियों,झुरमुटों) में बैठ रहे थे, जहाँ जोर-जोर से बोलते हुए मयूरों, बगुलों (बक), बगुलियों (बलाका) के समूह

---

१. अशेषतट०, आसेव्य० । २. कुसुमकुमुद० । ३. अजर्जरित० । ४. हंसमालम् ।

पकूलनड्वलम्, [1]उत्कलविरुतकलापि[2]बकबलाककलापाध्यासितोपान्तपादपम्, उपहतं प्रावृषान्यदिव, दृष्टपूर्वमप्यदृष्टपूर्वमिव[3], अदत्तदृष्टिसुखम्, अनुत्पादितहृदयाह्लादम्, अनुपजनितमानसप्रीति तदेवाच्छोदमुपाहितद्विगुणदुःखमाससाद।

आसाद्य चोपसर्पन्नेव[4] "सर्वाश्ववारानादिदेश—"कदाचिदसौ वैलक्ष्यादस्मानालोक्यापसर्पत्येव। तच्चतुर्ष्वपि पार्श्वेष्ववहिता भवन्तु भवन्तः" इति। आत्मनापि तुरगगत

(= आवासत्वेन गृह्यमाणः) उपकूलम् (= तटस्य समीपम्) नड्वलः (= नेडप्रायो देशः) यस्य तत् तादृशम् ["नडप्रायो नाडकीयोऽनड्वान् नड्वलश्च सः।" इति हैमः]। उत्कलेत्यादि—उत् (= प्रबलरूपेण) कलम् (= मधुरम्) विरुतम् (= ध्वनिः) येषां तादृशा ये कलापिनः (= मयूराः) बकाः (= बकोटाः), बलाकाः (= बिसकण्ठिकाः) तासां कलापः (= समूहः) तेन अध्यासिताः (= अधिष्ठिताः) उपान्तस्य (= प्रान्तभागस्य) पादपाः (= तरवः) यस्य तत् तादृशम्। प्रावृषा = वर्षया, उपहतम् = ताडितम्, आहतम्, अतएव, अन्यत् = पूर्वापेक्षया भिन्नम् इव। [अत्र 'इव' शब्द उत्प्रेक्षायाम्।] दृष्टपूर्वम् = पूर्व-विलोकितम्, अपि, अदृष्टपूर्वम् = अनवलोकितप्रथमम्, इव, अदत्तेत्यादिः—अदत्तम् (= अजनितम्) दृष्टेः (= नेत्रस्य) सुखम् (= आनन्दः) येन तत् तादृशम्। अनुत्पादितेत्यादिः—अनुत्पादितः (= अजनितः) हृदयस्य (= चित्तस्य) आह्लादः (= आनन्दः) येन तत् तादृशम्। अनुपेत्यादिः—अनुजनिता (= न समुत्पादिता) मानसस्य (= स्वान्तस्य) प्रीतिः (= प्रसन्नता) येन तत् तादृशम्। उपाहितेत्यादिः—उपाहितम् (= स्थापितम्, जनितम्) द्विगुणम् (= द्विगुणितम्), दुःखम् (= कष्टम्) येन तत् तादृशम्, तद् = पूर्वदृष्टम्, एव, अच्छोदम् = एतन्नामकं सरः, आससाद = प्राप्तवान्। यदच्छोदसरः पूर्वस्मिन् कालेऽतीवानन्दप्रदमासीद् तदेव वैशम्पायनस्य कादम्बर्याश्च विरहेऽवर्णनीय-क्लेशोत्पादकं जातमिति तदाशयः।

आसाद्येति। आसाद्य = सम्प्राप्य, तदेवाच्छोदसर इति शेषः, उपसर्पन् = समीपं गच्छन्, एव, सर्वाश्ववारान् = समस्ताश्वारोहिणो जनान्, आदिदेश = आज्ञापयामास। कदाचित् = सम्भावनायामिदम्, असौ = एष वैशम्पायनः, अस्मान् = चन्द्रापीडादीन्, आलोक्य = दृष्ट्वा, वैलक्ष्यात् = विस्मययुक्तलज्जया, अपसर्पति = दूरं पलायते, एव, तत् = तस्मात् चतुर्षु, अपि, पार्श्वेषु = भागेषु, भवन्तः = यूयं सर्वेऽपि, अवहिताः = सावधानाः, भवन्तु = भवेयुः, सावधानतया तिष्ठन्तु इति भावः, इतिः = आदेशसमाप्तौ। आत्मनापि = स्वयमपि, तुरगगतः = अश्वोपरिस्थितिः, एव, खिन्नः =

तटवर्ती वृक्षों पर बैठे थे, जो वर्षा की मार के कारण दूसरा सा लग रहा था, जो पहले से देखा हुआ भी पहले से न देखा हुआ सा लग रहा था, जो आँखों को सुख (आनन्द) नहीं दे रहा था, जो हृदय में आनन्द (प्रसन्नता) नहीं उत्पन्न कर रहा था, जो मन में प्रीति = प्रेम, लगाव नहीं पैदा कर रहा था। [ऐसे उस पूर्व दृष्ट 'अच्छोद' नामक सरोवर पर दूने दुःख को लिये हुए पहुँचा।]

उसे प्राप्त कर, उसके पास पहुँचते ही सभी घुड़सवारों को आदेश दिया—"सम्भव है कि [अचानक आये हुए] हम सबको देखकर वह वैशम्पायन लज्जा के कारण भाग जाय। इसलिए

१. मुक्तकलविरुत०, उत्कलकलविङ्क०। २. ···कलाप···। ३. दृष्टमप्यपूर्वमिव। ४. इव। ५. सर्वान्।

एव खिन्नोऽप्यखिन्न इव विचिन्वल्लँतागहनानि तरुमूलानि शिलातलानि [1]लसन्मण्डपांश्च समन्ताद् बभ्राम। भ्राम्यंश्च यदा न क्वचिदपि किंचिदवस्थानचिह्नमप्यद्राक्षीत्तदा चकार चेतसि—'नियतमसौ पत्रलेखासकाशान्मदागमनमुपलभ्य [2]प्रथममेवापक्रान्तो येनावस्थान-चिह्नमात्रं कथमपि नोपलक्ष्यते। [3]निरुद्धोद्देशं गतश्च क्वाप्यस्माभिरसावेवमन्विष्टोऽपि न दृष्टः। तत् [4]कष्टतरमापतितम्। वैशम्पायनमदृष्ट्वास्मात्प्रदेशात्पदमपि गन्तुं पादावेव

क्लान्तः, अपि, अखिन्नः = अक्लान्तः, इव, विचिन्वन् = अन्विष्यन्, अन्वेषणं कुर्वन्, लतागहनानि = व्रततीनामन्तरालानि, वृक्षमूलानि = पादपानां ब्रध्नान्, शिलातलानि = पाषाणखण्डानामु-परिभागान्, लसन्मण्डपान् = शोभायमानलतामण्डपान् च, समन्तात् = सर्वतः, बभ्राम = भ्रमणं कृतवान्। यथासम्भवं सर्वत्रान्वेषितवानिति भावः।

भ्राम्यंश्चेति। स चन्द्रापीडः, भ्राम्यन्नपरितः भ्रमणं कुर्वन्, च, यदा यस्मिन् काले क्वचिदपि = कस्मिंश्चिदपि स्थाने, किञ्चित् = ईषन्मात्रम्, अवस्थानचिह्नम् = अवस्थितिसूचकम्, अपि, न, अद्राक्षीत् = विलोकितवान्, तदा, चेतसि = स्वमनसि, चकार = कृतवान्, वक्ष्यमाणं विचारया-मासेति भावः। नियतम् = अवश्यमेव, असौ = एष वैशम्पायनः, पत्रलेखासकाशात् = एतन्नाम्नी-मत्सेविकासमीपात्, तस्या मुखादिति भावः, मदागमनम् = अत्र मम प्रापणम्, उपलभ्य = सम्प्राप्य, ज्ञात्वा, प्रथमम् = ममागमनात् पूर्वम्, एव, अपक्रान्तः = निष्क्रान्तः, पलायितः, येन = हेतुना, अवस्थानचिह्नमात्रम् = अवस्थितिप्रत्यभिज्ञानमात्रम्, कथमपि = केनापि प्रकारेण, महता प्रयासेनापि, न नैव उपलक्ष्यते = दृश्यते। निरुद्धोद्देशम्—निरुद्धः (= शिलादिना पिहितः) चासौ उद्देशः (= स्थानम्) तम्, गुप्तस्थलमिति भावः, अस्मिन् पाठे 'क्वापि' इत्यधिकरण-पदार्थस्यान्वयो न सम्यक्, अतः 'निरुद्देशं गतः' इति पाठ इति केचित्। वस्तुतस्तु—'शिलादिना पिहितस्थानमिति समीचीनम् गतः = प्रयातः, सः, अस्माभिः = चन्द्रापीडादिभिः एवम् = अनेन गम्भीररूपेण, अन्विष्टः = विचितः, अपि, क्वापि = कस्मिंश्चिदपि स्थाने, न = नैव, दृष्टः = विलोकितः। तत् = तस्मात्, कष्टतरम् = कृच्छ्रतरम्, आपतितम् = समुपस्थितम्।

स्वद्वैविध्यं विचारयति—वैशम्पायनमित्यादिना। वैशम्पायनम्, अदृष्ट्वा = अनवलोक्य, तस्य दर्शनं विनेति भावः, अस्मात्, प्रदेशात् = स्थानात्, पदम् = एकपादं प्रक्षेपमात्रम्, अपि, गन्तुम् = प्रचलितुम्, मे = चन्द्रापीडस्य, पादौ = चरणौ, एव, न, उत्सहेते = उत्साहं कुरुतः, अर्हतः।

आप सभी चारों ओर सावधान (होकर खड़े) हों।" [ऐसा कहकर] स्वयं भी घोड़े पर सवार रहता हुआ ही खिन्न (थका हुआ) होता हुआ भी अखिन्न जैसा होकर उसे खोजता हुआ लताओं के गहनों (झाड़ियों, कुंजों) में, वृक्ष के मूलों (जड़ों के समीप) में, शिलातलों में तथा मनोहर लता-मण्डपों में सभी ओर घूमा। और घूमते हुए जब कहीं भी कोई भी ठहरने का चिह्न नहीं देखा तब मन में (ऐसा) सोचने लगा—'निश्चित ही वह पत्रलेखा के पास से हम लोगों के आगमन को जानकर [हम लोगों के आने से] पहले ही यहाँ से कहीं चला गया (भाग गया) जिससे उसके ठहरने का चिह्न तक किसी भी प्रकार से नहीं दिखाई दे रहा है। कहीं निरुद्ध (गुप्त) स्थान में गया हुआ है इसीलिए हम लोगों द्वारा इस प्रकार से खोजे जाने पर भी वह (वैशम्पायन) कहीं नहीं दिखाई पड़ा। इसलिए यह बहुत बड़ा कष्ट = दुःख आ पड़ा। वैशम्पायन को देखे बिना

१. लतामण्डपान्। २. प्रथमतरम्।
३. निरुद्देशम्, निरुद्देश्यम्। ४. कष्टम्, कष्टतमम्।

नोत्सहेते मे । मन्मथशरविक्षिप्ताश्च कादम्बरीदर्शनमात्रकावलम्बनाः क्षणमपि विलम्बमन्तरीकर्तुमक्षमाः क्षामतया[1] मा यासिषुः प्राणाः। सर्वथा विनष्टोऽस्मि। न दृष्टा देवी कादम्बरी। नापि वैशम्पायनः।' इत्येवमुत्पन्ननिश्चयोऽप्यपरिच्छेद्यस्वभावत्वात् प्रत्याशायाः 'कदाचिदस्य वृत्तान्तस्याभिज्ञा महाश्वेतापि भवत्येव तत्तां तावत्पश्यामि ततो यथायुक्तं प्रतिपत्स्ये' इत्यारोप्य हृदये तदाश्रमस्यैव नातिदूरे निवेशिततुरगसैन्यः सैन्यसमायोगमपनीय[2] सर्पनिर्मोकपरिलघुनी घनोज्झितज्योत्स्नाभिरामे परिधाय वाससी तथास्थितपर्या-

---

मन्मथेत्यादिः—मन्मथस्य (= कामदेवस्य) शरैः (= बाणैः) विक्षिप्ताः (= आहताः), कादम्बरीत्यादिः—कादम्बर्याः (= स्वप्रेयस्याः) दर्शनम् (= विलोकनम्) एव दर्शनमात्रकम्, तदेव अवलम्बनम् (= आश्रयः) येषां ते तादृशाः, क्षणमपि = निमेषमात्रमपि, विलम्बम् = कालातिपातम्, अन्तरीकर्तुम्=मध्ये सोढुम्,अक्षमाः=असमर्थाः,मे=चन्द्रापीडस्य,प्राणाः=असवः,क्षामतया= दुर्बलतया, मा=नैव, यासिषुः=गमन्, माङ्योगे लुङ्, तेन न गच्छन्तु निःसरन्तु इति भावः। सर्वथा = सर्वप्रकारेण, विनष्टः = हतः, अस्मि = वर्ते। न, देवी = प्रेयसी, कादम्बरी, दृष्टा = विलोकिता, नापि, वैशम्पायनः = एतन्नामा वयस्यः, दृष्ट इत्यत्रापि योज्यम्। उभयोर्मध्ये एकस्यापि दर्शनस्य सौभाग्यं न जातमिति भावः। इति, एवम् = इत्थम्, उत्पन्न-निश्चयः = जातनिर्णयः, अपि, चन्द्रापीडः, प्रत्याशायाः = आशायाः, अपरिच्छेद्यस्वभावत्वात्—अपरिच्छेद्यः (= परिच्छेत्तुम् = निश्चेतुम्, अशक्यः) स्वभावः (= प्रकृतिः, स्वरूपम्) यस्याः सा तादृशी तस्या भावः तत्त्वं तस्मात्, आशया मानवः सन्देहमारूढः इतस्ततोऽस्थिररूपेण सर्वमपि सम्भवं कर्तुं प्रयतते इति चन्द्रापीडोऽपि स्वकरणीयं विचारयतीति तात्पर्यम्। 'कदाचित् = सम्भवतः, महाश्वेता = एतन्नाम्नी कादम्बरीसखी, अपि, अस्य, वृत्तान्तस्य = वैशम्पायनविषयक-घटनाचक्रस्य, अभिज्ञा = ज्ञानवती, भवति = अस्ति, एव, तत् = तस्मात्, ताम् = महाश्वेताम्. तावत् = आदौ, पश्यामि = साक्षात्करोमि, ततः = तस्या दर्शनानन्तरम्, यथायुक्तम् = यथोचितम्, प्रतिपत्स्ये = विधास्यामि, इति, हृदये = स्वमनसि, आरोप्य = संस्थाप्य, निश्चित्येति भावः, तदाश्रमस्य = महाश्वेतायाः तपश्चरणस्थलस्य, एव, नातिदूरे = नातिविप्रकृष्टे, समीपे एवेति भावः, निवेशितेत्यादिः—निवेशितम् (= स्थापितम्) तुरगसैन्यम् (= अश्वबलादिकम्) येन स तादृशः, सन्, सैन्यसमायोगम् = सैनिकवेषभूषादिकम्, अपनीय = पृथक्कृत्य, सर्पेत्यादिः—सर्पनिर्मोकः (= नागकञ्चुकः) तद्वत् परिलघुनी (= सूक्ष्मे),

---

पैर इस स्थान से एक कदम भी आगे नहीं चल सकते। कामदेव के बाणों से विक्षिप्त (= आहत, उन्मत्त),केवल कादम्बरी के दर्शनों का सहारा लेनेवाले तथा बीच में एक पल की भी देर न कर सकने वाले मेरे प्राण कदाचित् दुर्बलता के कारण निकल न जाँय। मैं सभी प्रकार से बरबाद हो गया। न तो देवी कादम्बरी को ही देख सका और न ही वैशम्पायन को।'—ऐसा निश्चयवाला होता हुआ भी आशा का निश्चययोग्य स्वरूप न होने के कारण अर्थात् आशा में निश्चय की अपेक्षा सम्भावना के बलवती होने के कारण--'सम्भव है कि महाश्वेता (कादम्बरी की प्रियसखी) भी इस वैशम्पायन के वृत्तान्त (घटना) के विषय में जानती ही हो, इसलिए पहले उसी का दर्शन करता हूँ, मिलता हूँ, उसके बाद जैसा उचित होगा, करूँगा'—ऐसा मन में बैठाकर (निश्चय करके) उस आश्रम की अधिक दूरी पर नहीं अर्थात् समीप में ही घुड़सवार सेना को ठहराकर,सैनिक की वेषभूषा को हटाकर,

---

१. क्षामतयामी प्राणाः, क्षीयमाणप्राणाः।   १. अपहाय।

णमेवेन्द्रायुधमारुह्य महाश्वेताश्रममुपजगाम ।

तत्र च[1] प्रविशन्नेवावतीर्य महाश्वेतावलोकनकुतूहलात्पश्चादाकृष्टेनेन्द्रा[2]युधपरिजनेनानुगम्यमानो विवेश । प्रविश्य च गुहाद्वार एव धवलशिलातले समुपविष्टामधोमुखीमसह्यमन्युवेगोत्कम्पितसर्वावयवामनवरत-नयनजलवर्षिणीमुच्चण्डवर्षवाताहतां लतामिवोद्बाष्पदीनदृष्ट्या कथं कथमपि तरलिकया विधृतशरीरां महाश्वेतामपश्यत् । दृष्ट्वा च

घनेत्यादिः—घनैः (= मेघैः) उज्झिता (= मुक्ता) या ज्योत्स्ना (= चन्द्रिका) तद्वत् अभिरामे (= रमणीये, मनोहरे) वाससी = वस्त्रद्वयम्, अधोवस्त्रम् उपरिसंव्यानं च, परिधाय = धारणं कृत्वा, तथास्थितपर्याणम् = तेनैव रूपेण स्थितं पर्याणम् = आसनं यस्मिन् तं तादृशम्, एव, इन्द्रायुधम् = एतन्नामकं निजाश्वम्, आरुह्य = आरूढो भूत्वा, महाश्वेताश्रम् = महाश्वेतायाः निवासस्थानम्, प्रति, उपजगाम = उपययौ, समीपं प्रयातः ।

तत्र चेति । तत्र = महाश्वेताश्रमे, च, प्रविशन् = प्रवेशं कुर्वन्, एव, अवतीर्य = अवतरणं कृत्वा, इन्द्रायुधाश्वादिति शेषः, महाश्वेतेत्यादि—महाश्वेतायाः अवलोकनम् (= दर्शनम्) तस्मिन् यत् कुतूहलम् (= औत्सुक्यम्) तस्मात्, हेतोः, पश्चात् = पृष्ठभागे, आकृष्टेन = आकर्षितेन इन्द्रायुध-परिजनेन = इन्द्रायुधस्य सेवकलोकेन, अश्वानां पालकलोकेन, अनुगम्यमानः = अनुस्रियमाणः, विवेश = प्रवेशं कृतवान् । प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, च, गुहाद्वारे = गह्वरस्य द्वारि, एव, धवलशिलातले = शुभ्रपाषाणखण्डस्योपरि, समुपविष्टाम् = निषण्णाम्, अधोमुखीम् = निम्नाननाम्, असह्येत्यादिः—असह्यः (= असहनीयः) यो मन्योः (= दुःखस्य) वेगः (= रयः) तेन उत्कम्पिताः (= उद्वेपिताः) सर्वे (= समस्ताः) अवयवाः (= अङ्गानि) यस्यास्तां तादृशीम्, अनवरतेत्यादिः—अनवरतम् (= निरन्तरं) यथा स्यात् तथा, जलम् (= अश्रुसलिलम्) वर्षति (= पातयाति) इत्येवंशीलाम्, उच्चण्डेत्यादिः—उच्चण्डः (= अतीवोग्रः) यः वर्षवातः (= झञ्झावातः) तेन आहताम् (= ताडिताम्) लताम् = व्रततीम्, इव, अथ च, उद्बाष्पदीनदृष्ट्या = अश्रुरहित-दैन्ययुक्तनेत्रया, तरलिकया = एतन्नाम्न्या सेविकया, कथंकथमपि = यथा कथंचित्, महता कष्टेन प्रयासेन चेति भावः, विधृत-शरीराम् = अवधारितदेहाम्, महाश्वेताम्, अपश्यत् = व्यलोकयत् । ताम् = महाश्वेताम्, तादृशीम् = तदवस्थाम्,

---

साँप की केंचुल के समान हलके (और स्वच्छ), बादलों से रहित चाँदनी के समान सुन्दर (चमचमाते) दो वस्त्रों को धारण करके उसी प्रकार से जीन (काठी) कसे हुए 'इन्द्रायुध' नामक अपने अश्व पर चढ़कर महाश्वेता के आश्रम के समीप पहुँचा ।

तब उसमें प्रवेश करते ही (घोड़े से) उतरकर, महाश्वेता के दर्शन के कौतूहल से पीछे-पीछे खिंचे हुए 'इन्द्रायुध' अश्व के सेवकों (सईसों) द्वारा अनुगत होता (अनुसरण किया जाता) हुआ, प्रविष्ट हो गया । (उस आश्रम में) प्रवेश करके, गुफा के दरवाजे पर ही सफेद शिलातल पर बैठी हुई, नीचे मुख की हुई, असह्य मन्यु (दुःख, क्रोध) के वेग के कारण काँपते हुए सभी अंगों वाली, लगातार आँसू गिराती हुई, प्रचण्ड बरसाती हवा = तूफान से आहत लता के समान प्रतीत होनेवाली, अधिक आँसू निकलने से दीन दृष्टिवाली, तरलिका द्वारा जैसे-तैसे सम्भाले (पकड़े) गये शरीर वाली महाश्वेता को देखा । इस प्रकार की दशा वाली उस महाश्वेता को देखकर इस (चन्द्रापीड) के मन में यह (विचार)

---

१. तत्र च प्रवेश एव, तत्राप्रविशन्नेव ।
२. इन्द्रायुधेन परिजनेन च, परिजनेन राजपुत्रैश्च ।

तां तादृशीमस्योदपादि हृदये—'मा नाम देव्याः कादम्बर्या एव किमप्यनिष्टमुत्पन्नं भवेत् येनेयमीदृश्यवस्था हर्षहेतावपि मदागमनेऽनुभूयते महाश्वेतया।' इत्याशङ्काभिन्नहृदयोऽयमुड्डीनैरेव प्राणैः पदे पदे स्खलन्निव पतन्निव मुह्यन्निवोपसृत्योपविश्य च तस्यैव शिलातलस्यैकदेशे प्रोद्बाष्पविषण्णवदनः 'किमेतदिति' तरलिकामपृच्छत्। सा तु तदवस्थाया अपि महाश्वेताया एव मुखमवलोकितवती।

अथानुपसंहृतमन्युवेगापि गद्गदिकावगृह्यमाणकण्ठा महाश्वेतैव प्रत्यवादीत्—"महा-

---

दृष्ट्वा = विलोक्य च, अस्य = चन्द्रापीडस्य, हृदये = मनसि, उदपादि = उत्पन्नमभूत्, वक्ष्यमाणमिति शेषः। नाम = इदं कोमले आमन्त्रणे, आशंकाभिव्यक्तौ वा, देव्याः, कादम्बर्याः, एव, एतेनान्येषां निरासः, किमपि = अज्ञातम्, अनिष्टम् = अशुभम्, उत्पन्नम् = सञ्जातम्, मा = न, भवेत् = स्यात्, [अत्र मा शब्द एव न तु माङ्, तेन न लङ्लुङाविति बोध्यम्।] येन = कारणेन, इयम् = प्रत्यक्षमुपलभ्यमाना, ईदृशी=एवं विधा, अवस्था = दशा, महाश्वेतया = एतन्नाम्न्या, मदागमने=ममात्र सम्प्राप्तौ, हर्षहेतौ=मोदकारणे, सत्यपि, अनुभूयते = अनुभवविषयीक्रियते। इति=एवम्, आशङ्केत्यादिः—आशङ्कया (=आरेकया, सम्भावनया) भिन्नम् (= विदीर्णम्) हृदयम् (=चित्तम्) यस्य स तादृशः, अयम् = एष चन्द्रापीडः, उड्डीनैः = कृतोड्डयनैः, बहिर्निःसृतैः, एव, प्राणैः = असुभिः, पदे पदे = प्रतिपादक्रमम्, स्खलन् = भ्रश्यन्, इव, पतन् = पातं कुर्वन्, इव, मुह्यन् = मूर्च्छां प्राप्नुवन्, इव [अत्र इव शब्द उत्प्रेक्षायाम्], उपसृत्य=समीपं गत्वा, प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा च, तस्य = पूर्ववर्णितस्य, एव, शिलातलस्य = पाषाणखण्डतलस्य, एकदेशे = एकभागे, प्रोद्बाष्पेत्यादिः—प्र (= प्रकर्षेण) उद्गतः (= निःसृतः) यः बाष्पः (= अश्रुजलम्) तेन विषण्णम् (= विषादयुक्तम्, दीनम्) वदनम् (=मुखम्) यस्य स तादृशः, सन् चन्द्रापीडः, 'एतत् = पुरोलक्ष्यमाणम्, किम् = किंरूपम् ?' इति = इत्थम्, तरलिकाम् = महाश्वेतासेयिकाम्, अपृच्छत् = पृष्टवान्, सा = तरलिका, तु, तदवस्थायाः—सा (=तादृशी) अवस्था (=दशा) यस्याः, तस्याः तादृश्याः, महाश्वेतायाः, एव, मुखम् = आस्यम्, अवलोकितवती = दृष्टवती।

अथेति। अथ = ततः, अनुपेत्यादिः—अनुपसंहृतः (=अदूरीकृतः) मन्युवेगः (=शोकरयः) यया सा तादृशीः, अपि, गद्गदिकेत्यादिः—गद्गदिकया (= गद्गदध्वनिना) अवगृह्यमाणः (= अवरुध्यमानः) कण्ठः (= गलप्रदेशः) यस्याः सा तादृशी, महाश्वेता, एव, प्रत्यवादीत् = प्रत्युत्तरं दत्तवती। महाभाग ! = अतिभाग्यशालिन् ! इयम् = एषा, वराकी = दीना,

---

उत्पन्न हुआ—'देवी कादम्बरी का ही कोई अनिष्ट न उत्पन्न हो गया हो जिससे हर्ष के कारणभूत अर्थात् खुशी पैदा करनेवाले मेरे आगमन में भी महाश्वेता इस प्रकार की दशा का अनुभव कर रही है, भोग रही है।'—इस प्रकार की आशंका से विदीर्ण हुए हृदयवाला यह (चन्द्रापीड) उड़े हुए प्राणों से पग-पग पर लड़खड़ाता हुआ-सा, गिरता हुआ सा, मूर्च्छित होता हुआ सा, समीप में जाकर, उसी शिलातल के एक छोर पर बैठकर, आँसू बहने से उदासीन मुखवाला होता हुआ—"यह क्या है ?" ऐसा तरलिका से पूँछा। परन्तु वह तो उस प्रकार से बैठी हुई भी महाश्वेता का ही मुख देखती रही।

इसके बाद मन्यु (शोक) के आवेग की शान्ति न कर लेनेवाली भी, गद्गदिका से रुंधे हुए कण्ठवाली उस महाश्वेता ने ही उत्तर दिया—"महाभाग ! यह बेचारी क्या कहेगी। दुःख के

भाग, [1]'किमियमावेदयति वराकी ? यया दुःखाभिघातैककठिनहृदयया पुनरप्यदुःखश्रवणार्हेऽपि[2] दुःखमात्मीयं श्रावितं सैवाहं मन्दभाग्या महाभाग जीवितव्यसनिनी निर्लज्जा निर्घृणा[3] च दुःश्रवणमपि श्रावयामि दुःखमिदम्[4], श्रूयताम्—'केयूरकाद्भवद्गमन'[5] माकर्ण्य विदीर्णमानसा[6] न मया चित्ररथस्य मनोरथः पूरितः, न मदिरायाः प्रार्थना कृतार्थिता, नात्मनः

किम् = अज्ञातम्, आवेदयति = सूचयति, किमपि वक्तुं न शक्नोतीति भावः। दुःखेत्यादिः—दुःखस्य (= क्लेशस्य) यः अभिघातः (= प्रहारः) तेन एकम् (= अद्वितीयम्) कठिनम् (= दारुणम्) हृदयम् (= चित्तम्) यस्याः सा तया, यया = पुरःस्थितया, मया महाश्वेतया, अदुःखश्रवणार्हे = दुःखं श्रोतुमयोग्येऽपि, भवति चन्द्रापीडे, आत्मीयम् = स्वीयम् दुःखम् = कष्टम्, श्रावितम् = श्रवणविषयीकारितम्, महाभाग ! = परमभाग्यशालिन् !, सा = तादृशी, एव, अहम् = महाश्वेता, मन्दभाग्या = दुर्भगा, जीवितव्यसनिनी = प्राणधारणविषयकासक्तिवती, निर्लज्जा = निस्त्रपा, निर्घृणा = निर्दया, च दुःश्रवणम् = दुःखेन श्रोतुं योग्यम्, अपि, इदम् = सद्योजातम्, प्रत्यक्षमुपलभ्यमानम्, दुःखम् = कष्टम्, पुनरपि = द्वितीयवारमपि, श्रावयामि = श्रवणसाक्षात्कारविषयीकारयामि। अहमेव इदमपि दुःखदं वृत्तान्तं भवन्तं श्रावयितुं पारयामीति तस्या भावः।

श्रूयतामिति। श्रूयताम्=आकर्ण्यताम्। किं तदिति वदति—केयूरकादित्यादिना। केयूरकात्= एतन्नामकात् कादम्बरीसेवकात्। तस्य मुखादिति भावः, भवतः = चन्द्रापीडस्य, गमनम् = उज्जयिनीं प्रति प्रस्थानम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, विदीर्णमानसा—विदीर्णम् (= भिन्नम्, त्रुटितम्) मानसम् (= हृदयम्) यस्याः सा तया [अत्र विदीर्णमानसया, अथवा विदीर्ण-मनसा इत्येव तृतीयान्तं स्त्रियां साधु। मूले भ्रमसात् तथा लिखितमिति बोध्यम्।] मया = महाश्वेतया, न, चित्ररथस्य = कादम्बरी-जनकस्य, मनोरथः = अभिलाषः, पूरितः = सफलीकृतः, न मदिरायाः = कादम्बरी-जनन्याः, प्रार्थना = निवेदनम्, कृतार्थिता = सफलीकृता, ['त्वं विवाहं कुरु तदनन्तरमेव मम पुत्री कादम्बरी अपि विवाहं विधास्यति, एवञ्च तव विवाहे सम्पन्ने सत्येव आवयोः कादम्बरी-विवाहसुखं भविष्यति, अतो ममानुरोधेन स्वप्रतिज्ञां परित्यज्य कादम्बरीं

अभिघात (प्रहार) से ही कठिन हो गये हृदयवाली जिस मैंने दुःख न सुनने के योग्य होने पर भी (आपको) अपना दुःख [प्रथम मिलन के समय] सुनाया था, महाभाग ! वही मैं मन्दभागिनी, अपने जीवन से मोह रखनेवाली, निर्लज्ज और निर्घृण (निर्दया) [अब] दुःख से सुनने योग्य भी इस दुःख को सुना रही हूँ। सुनिये—'केयूरक [के मुख] से आपका [हेमकूट से उज्जयिनी] जाना सुनकर, टूटे हुए मनवाली मैंने न तो चित्ररथ (कादम्बरी के पिता) का मनोरथ पूरा किया और न मदिरा (कादम्बरी की माता) की प्रार्थना ही सफल होने दी, न अपना ही अभीष्ट सम्पादित किया,

१. किमिति नावेदयते, किमपि नावेदयते।

२. पुनरदुःखश्रवणार्होऽप्यात्मीयं दुःखं श्रावितः, पुनरप्यदुःखश्रवणार्होऽप्यात्मीयं दुःखं श्रावितः।

३. निष्करुणापि। ४. इदं नापि पठयते क्वचित्।

५. भवतो गमनम्, भवदागमनं विदीर्यमाणमनसा।

विदीर्णमानसया—इति उचितः पाठः, विशेषस्तु संस्कृतव्याख्यायां द्रष्टव्यः।

समीहितं सम्पादितम्, न गृहाभ्यागतस्य चन्द्रापीडस्य प्रियमनुष्ठितम्, न चापि हृदयवल्लभ-समागम[1]निर्वृता प्रियसखी कादम्बरी वीक्षितेत्युत्पन्नानेकगुणवैराग्या गाढबन्धान्कादम्बरी-स्नेहपाशानपि [2]छित्वा पुनः कष्टतरतपश्चरणायात्रैवायाता यावदत्र महाभागस्यैव [3]तुल्याकृति-मुन्मुक्तमिवान्तः करणेन शून्यशरीरमुत्तरलमुखमुत्प्लुताबद्धलक्ष्यशून्यया दृष्ट्या प्रनष्टमिव किमपीतस्ततो विलोकयन्तं ब्राह्मणयुवानमपश्यम् ।

स तु मामुपसृत्यानन्यदृष्टिः, अदृष्टपूर्वोपि प्रत्यभिजानन्निव, असंस्तुतोपि चिरपरिचित

विवाहार्थं प्रेरय' इति पूर्वार्धं-वर्णिता प्रार्थना बोध्या ।] न आत्मनः = महाश्वेतायाः, समीहितम् = वाञ्छितम्, सम्पादितम् = विहितम्, न गृहाभ्यागतस्य = मम निवासे सम्प्राप्तस्य, चन्द्रापीडस्य = राजकुमारस्य, प्रियम् = कादम्बरीमिलनरूपम्, अनुष्ठितम् = समाचरितम्, न, चापि, हृदयेत्यादिः—हृदयवल्लभस्य (= प्राणेश्वरस्य) समागमेन (= सम्मेलनेन) निर्वृता (= सञ्जात-सन्तोषा), प्रियसखी, कादम्बरी, वीक्षिता = अवलोकिता, इति = इत्थम्, उत्पन्नेत्यादिः—उत्पन्नम् (= सञ्जातम्) अनेकगुणम् (= बहुविधम्) वैराग्यम् (= विरक्तिः) यस्याः सा तादृशी, गाढबन्धान् = दृढग्रन्थीन्, कादम्बरीस्नेहपाशान् = कादम्बरी-प्रेमजालान् अपि, छित्वा = भित्वा, विदार्य, पुनः = भूयः, कष्टतरतपश्चरणाय = कृच्छ्रतरतपोविधानाय, अत्रैव = अस्मिन् स्वाश्रमे एव, यावत् = यदा, आयाता = आगता, अत्र = अस्मिन्नाश्रमे, महाभागस्य = श्रीमतः चन्द्रापीडस्य, एव, न तु अन्यादृशस्य, तुल्याकृतिम् = समानाकारम्, अन्तःकरणेन = मनसा, उन्मुक्तम् = परित्यक्तम्, इव, शून्यशरीरम् = निश्चेष्टकायम् उत्तरलमुखम् = चञ्चलाननम्, उत्प्लुतेत्यादिः—उत्प्लुतम् (= उत्पतितम्) आबद्धम् (= सुनिश्चितम्) यद् लक्ष्यम् (= उद्देश्यम्) तेन, शून्यया (= रहितया), दृष्ट्या = नेत्रेण, प्रनष्टम् = विलुप्तम्, इव, किमपि = अज्ञातम्; इतस्ततः = यत्र तत्र, विलोकयन्तम् = पश्यन्तम्, ब्राह्मणयुवानम् = विप्रयुवकम्, अपश्यम् = विलोकितवती ।

स त्विति । सः = ब्राह्मणयुवा वैशम्पायन इत्यर्थः, तु, माम् = महाश्वेताम्, उपसृत्य = समीपमागत्य, अनन्यदृष्टिः—न अन्यस्मिन् (= मद्भिन्ने क्वापि) दृष्टिः (= नेत्रम्) यस्य स तादृशः । अदृष्टपूर्वः—न पूर्वम् (= ततः प्राक्) दृष्टः (= विलोकितः), अपि, प्रत्यभिजानन् = सा एवेयमिति रूपेण मां परिचिन्वन्, इव । [अत्र इव शब्द उत्प्रेक्षायां बोध्यः ।] असंस्तुतः = अपरिचितः, अज्ञात इति यावत्, अपि, चिरपरिचितः = दीर्घकालात् सुविज्ञातः, इव । असम्भावितः =

न घर पर आये अतिथि चन्द्रापीड का प्रिय (भला) किया और न ही हृदयवल्लभ (= प्राणप्रिय) के मिलन से सुखी (प्रसन्न) हुई प्रिय सखी कादम्बरी को ही देखा, इसलिए कई गुने उत्पन्न हुए वैराग्यवाली होती हुई, बहुत मजबूत बन्धनों वाले कादम्बरी के स्नेह पाशों को भी तोड़कर, और भी अधिक कष्ट देनेवाले तप को करने के लिए यहीं (आश्रम में) ज्यों ही चली आई त्योंही महाभाग आपके ही समान आकृतिवाले, अन्तःकरण द्वारा छोड़े गये से, सूने शरीरवाले, चञ्चल मुखवाले, ऊपर उठी हुई तथा लक्ष्यहीन दृष्टि से कुछ खोई हुई सी वस्तु को इधर-उधर देखनेवाले ब्राह्मण युवक को देखा ।

वह ब्राह्मण युवक मेरे पास आकर, अनन्य दृष्टिवाला (कहीं अन्यत्र कुछ न देखनेवाला), पहले कभी न देखा हुआ भी पहचानता हुआ सा, अपरिचित होता हुआ भी चिरपरिचित सा, [मेरे द्वारा

---

१. •••निवृत्ता । २. भित्वा । ३. तुल्यवयसाकृतिमन्तम् ।

इव, असम्भावितोप्युपारूढप्रौढप्रणय इव, अस्निग्धोपि परवानिव प्रेम्णा, शून्योपि किमप्यनुस्मरन्निव, दुःखिताकारोपि सुखायमान इव, तूष्णीमपि स्थितः प्रार्थयमान इव, अपृष्टोप्यावेदयन्निवात्मीयामेवावस्थाम्, [1]अभिनन्दन्निवानुशोचन्निव हृष्यन्निव विषीदन्निव बिभ्यदिवाभिभवन्निव हृत इवाकाङ्क्षन्निवानुस्मरन्निव विस्मृतमनिमेषेण [2]निश्चलस्तब्धपक्ष्मणान्तर्बाष्पपूरार्द्रेण कर्णान्तचुम्बिना विकसितेनेवामुकुलिततारकेण चक्षुषा मत्त इवाविष्ट इव

असम्भावनाविषयीकृतः, उत्थानादिनाऽसत्कृतः, अपि, उपारूढेत्यादिः—उपारूढः (= अङ्कुरितः, प्रवृद्धः) प्रौढः (= प्रकृष्टः) प्रणयः (= स्नेहः) यस्मिन् स तादृशः इव। अस्निग्धः = अवत्सलः, अपि, प्रेम्णा = अनुरागेण, परवान् = परकीयः, इव। प्रेम्णा—इत्यस्यास्मिन् वाक्यांशे एवान्वयो युक्तियुक्तः। शून्यः = भावहीनः, अपि, किमपि = अज्ञातम्, अनुस्मरन् = अनुध्यायन्, इव। दुःखिताकारः—दुःखितः (= खेदं प्राप्तः) आकारः (= आकृतिः) यस्य स तादृशः, सन्, अपि, सुखायमानः—सुखम् (= सुखपूर्णम्) आचरतीति यद्वा—सुखं प्रकटयति इति तादृशः, प्रसन्न इति भावः, इव ('सुखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते' इति वचनाद् सुखयुक्तमाचरन् इव इति भावः)। तूष्णीम् = मौनम्, स्थितः = निषण्णः, अपि, प्रार्थयमानः = याचनां विदधानः, इव। अपृष्टः = अननुयुक्तः, अपृच्छाविषयीकृतः, अपि, आत्मीयाम् = स्वकीयाम्, एव, न तु अन्यदीयामिति भावः, अवस्थाम् = दशाम्, आवेदयन् = विज्ञापयन्, इव। वैशम्पायनस्य विविधामवस्थां वर्णयित्वा पुनरपि तस्यानेकविधाचरणानि प्रतिपादयितुमाह—अभिनन्दन् = प्रशंसां विदधानः, इव। अनुशोचन् = शोकं कुर्वन् इव। हृष्यन् = हर्षं प्राप्नुवन्, इव। विषीदन् = विषादं कुर्वन्, इव। बिभ्यत् = भयं प्राप्नुवन्, इव। अभिभवन् = तिरस्कुर्वन् इव। हृतः = मुषितः, इव। [मध्ये क्तान्त-प्रयोगोऽनवधानतामूलक इति बोध्यम्।] आकाङ्क्षन् = इच्छन्, इव। विस्मृतम् = विस्मरणविषयीकृतं किमपि, अनुस्मरन् = अनुध्यायन्, इव। अनिमेषेण = पक्ष्मपतन-शून्येन, निश्चलेत्यादिः—निश्चलम् (= स्पन्दरहितम्) स्तब्धम् (= जडीभूतम्) पक्ष्म (= नेत्ररोम) यस्य तेन तादृशेन, अन्तरित्यादिः—अन्तः (= आभ्यन्तरे) बाष्पस्य (= अश्रुणः) पूरम् (= समूहः) तेन आर्द्रेण (= क्लिन्नेन), कर्णान्तचुम्बिना = श्रवण-प्रान्तभागस्पर्शनशीलेन, विकसितेन = प्रफुल्लेन, इव, आमुकुलिततारकेण—आमुकुलिता (= ईषद् समन्ताद् वा विकसिता) तारका (= कनीनिका) यस्मिन् तद् तादृशेन, चक्षुषा = नेत्रेण, मत्तः = मदयुक्तः, इव, आविष्टः = भूतादिगृहीतः, इव,

---

किसी भी रूप में] सत्कृत न किया गया भी प्रगाढ़ प्रेम से युक्त होता हुआ सा, प्रेम न किया गया भी प्रेम के अधीन किया गया सा, शून्य होता हुआ भी कुछ स्मरण करता हुआ सा, दुःखी आकार वाला होता हुआ भी सुख का अनुभव करता हुआ सा, चुपचाप बैठा हुआ भी प्रार्थना करता हुआ सा, बिना पूछा गया भी अपनी ही अवस्था को कहता हुआ सा, अभिनन्दन करता हुआ सा, शोक करता हुआ सा, प्रसन्न होता हुआ सा, खिन्न होता हुआ सा, डरता हुआ सा, तिरस्कृत करता हुआ-सा, हरा (लुटा) हुआ सा, चाहता हुआ-सा, भूली चीज का स्मरण करता हुआ सा, पलक न गिरानेवाले, निश्चल और स्तब्ध पलक वाले, भीतर आँसुओं के समूह से गीले, कान के कोने तक लम्बे, विकसित से, अधखुली पुतलीवाले नेत्र से मत्त = मदिरा पान किये सा, भूतादि से आविष्ट (आक्रान्त) सा, वियुक्त =

---

१. अभिनिन्दन्। २. क्षरद्बाष्प०।

वियुक्त इव, पिबन्निवाकर्षन्निवान्तर्विशन्निव च सुचिरमालोक्याब्रवीत्—"[1]वरतनु, सर्वं एव हि जगति जन्मनो वयस आकृतेर्वा सदृशमाचरन्न वचनीयतामेति। तव पुनरेकान्तवामप्रकृते[2]र्विधेरिव विसदृशानुष्ठाने कोऽयं प्रयत्नः, यदियमक्लिष्टमालतीकुसुमसुकुमारा मालेव कण्ठप्रणयैकयोग्या तनुरनुचितेनामुना [3]कष्टतरतपश्चरणपरिक्लेशेन [4]ग्लानिमुपनीयते। रूपवयसोरनुरूपेण सुम-

वियुक्तः = विरहितः, इव, पिबन् = पानं कुर्वन्, इव, आकर्षन् = आकर्षणं विदधानः, इव, अन्तः = आभ्यन्तरे, मनसीति भावः, विशन् = प्रवेशं कुर्वन्, इव, च, सुचिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, अब्रवीत् = अवोचत्।

स ब्राह्मणयुवा किमब्रवीदिति वर्णयति—वरतन्वित्यादिना। हे वरतनु = शोभन-शरीरे!, जगति = लोके, जन्मनः = उत्पत्तेः, वयसः = आयुषः, आकृतेः = आकारस्य वा, सदृशम् = योग्यम्, आचरन् = आचरणं कुर्वन्, सर्वः = समस्तः, एव, जनः = लोकः, वच-नीयताम् = लोकापवादम्, निन्दां वा, न = नैव, एति = प्राप्नोति, हि = निश्चयेन। एकान्ते-त्यादिना = एकान्तेन (= निश्चयेन, पूर्णरूपेण वा) वामा (= प्रतिकूला) प्रकृतिः (= स्व-भावः) यस्य तस्य तादृशस्य, विधेः = विधातुः, इव, तव = भवत्याः, महाश्वेतायाः, विसदृशानुष्ठाने = आयोग्य-कार्यसम्पादने, तपश्चरणे इति भावः, कः = कीदृशः, अयम् = दृश्यमानः, प्रयत्नः = प्रयासः ? यद् = यस्मात्, अक्लिष्टेत्यादि—अक्लिष्टानि (= मृदूनि, विकारमप्राप्तानि) यानि मालती-कुसुमानि (= मालत्याख्यलतायाः पुष्पाणि) तद्वत् सुकुमारा (= सुकोमला) तेषां वा सुकुमारा, कण्ठप्रणयैकयोग्या—कण्ठे (= गलप्रदेशे) प्रणयः (= रक्षणस्नेहः) तत्र एका (= अद्वितीया) योग्या (= उचिता), इयम् = दृश्यमाना, तनुः = तव शरीरम्, अनुचितेन = अनर्हेण, अमुना = एतेन, कष्टतरेत्यादिः—कष्टतरम् (= क्लिष्टतरम्) यत् तप-श्चरणम् (= तपस्याकरणम्) तस्य परिक्लेशः (= व्यथाबाहुल्यम्), तेन हेतुना, ग्लानिम् = म्लानताम्, उपनीयते = सम्प्राप्यते। यथा कश्चिदपि बुद्धिमान् सुकुमारां मालतीमालां न म्लानां करोति तथैव भवती अपि सुकुमारां तनुं न म्लानां कुर्यादिति तदाशयः। अत्रोपमा सुस्पष्टा।

विरही-सा, पान करता हुआ सा, खींचता हुआ सा, भीतर प्रवेश करता हुआ सा, बहुत देर तक देखकर बोला—"हे सुन्दर शरीरवाली ! संसार में सभी लोग जन्म, आयु अथवा आकार के सदृश (योग्य) आचरण करते हुए लोकापवाद को नहीं प्राप्त करते हैं। किन्तु नितान्त विपरीत स्वभाववाले ब्रह्मा के समान [जन्म आदि के] विपरीत इस तपश्चरणरूपी अनुष्ठान में यह तुम्हारा कैसा प्रयास है ? अर्थात् तुम्हारा शरीर, आयु आदि अभी कठोर तपस्या के योग्य नहीं है, जो कि सुकोमल मालती के पुष्प के समान सुकुमार और कण्ठ में धारण करने के योग्य माला के समान इस शरीर को अयोग्य (विपरीत) इस अत्यन्त कठिन तपश्चरणरूपी क्लेश से ग्लानि को प्राप्त करा रही हो, मुरझा रही हो। पुष्पों से सुन्दर प्रतीत होने वाली लता जैसे अपने रूप और अवस्था के अनुरूप (योग्य) रस से भरे फल से युक्त

१. सुतनु। २. ···विधेः।
३. कष्टतमेन तपश्चरण०। ४. म्लानिम्।

नीहारिणी लतेव रसाश्रयिणा फलेन किमर्थं न संयोज्यते। जातस्य हि रूपगुणविहीनस्यापि जन्मोपनतानि जीवलोकसुखान्यनुभूय शोभते [1]परत्रसम्बन्धी तपश्चरणपरिक्लेशः। किं पुनराकृतिमतो जनस्य ? तद्दुःखयति [2]मामस्यास्ते स्वभावसरसायास्तनोर्मृणालिन्या इव तुहिनपातस्तपः परिक्लेशः। यदि च त्वादृशी जीवलोकसुखेभ्यः पराङ्मुखी तपसा क्लेशयत्यात्मानं तदा वृथा वहति धनुरधिज्यं कुसुमकार्मुकः। निष्कारणमुदयति[3] चन्द्रमाः।

रूपवयसोः = सौन्दर्यावस्थयोः, अनुरूपेण = योग्येन, रसाश्रयिणा = रसवता, फलेन = साध्येन, सह, सुमनोहारिणी = पुष्पहारिणी, चेतोहारिणी वा, लता = व्रतती, इव, किमर्थम् = कस्मात् कारणात्, न, संयोज्यते = संलग्ना क्रियते, संयुक्ता विधीयते। एष तव तत्रानौचित्यमिति भावः। हि = यस्मात्, रूपगुणविहीनस्य = सौन्दर्यौदार्यादि-वैशिष्ट्य-शून्यस्य, अपि, जातस्य = उत्पन्नस्य, प्राणिमात्रस्य, जन्मोपनीतानि = जन्मना सह प्राप्तानि, जीवलोकसुखानि = सांसारिकानन्दान्, अनुभूय = अनुभवं कृत्वा, एव, परत्रसम्बन्धी = परलोकसम्बन्धी, परलोकप्राप्तिकाले सम्भाव्य सुखादिविषयकः, तपश्चरणक्लेशः = तपोऽनुष्ठानकष्टम्, शोभते = शोभां प्राप्नोति उचितो, भवतीति भावः। आकृतिमतः = सुन्दराकारयुक्तस्य, जनस्य = लोकस्य, तव सदृशस्य, किं पुनः ? न किमपि वक्तव्यमिति भावः। तत् = तस्मात्, स्वभावसरसायाः = प्रकृत्यैवार्द्रायाः, मृणालिन्याः = कमलिन्याः, तुहिनपातः = हिमपतनम्, इव, स्वभावसरसायाः = प्रकृत्यैव रसवत्याः, ते = तव, अस्याः = दृश्यमानायाः, तनोः = शरीरस्य, तपश्चरणक्लेशः = तपोऽनुष्ठानव्यथा, माम् = अपरिचितं जनम्, वैशम्पायनमिति भावः, दुःखयति = दुःखितं करोति, पीडयतीति भावः। यदि = चेत्, त्वादृशी = तव सदृशी सुन्दराङ्गी, जीवलोक-सुखेभ्यः = सांसारिकविषयानन्देभ्यः, पराङ्मुखी = विमुखी, वैराग्यवती, सती, तपसा = तपस्यया, आत्मानम् = स्वाम्, स्वशरीरमिति भावः, क्लेशयति = खेदयति, तदा = तस्मिन् काले, तस्यां स्थितावित्यर्थः, कुसुमकार्मुकः = कामदेवः, अधिज्यम्=आरोपितप्रत्यञ्चम्, धनुः=चापं, वृथा=व्यर्थम्,वहति=धारयति। चन्द्रमाः = शशी, निष्कारणम् = निष्फलम्, उदयति = उदयं प्राप्नोति। वसन्तमासाभ्यागमः=वसन्तर्तुसमागमनम्, वृथा

होती है उसी प्रकार अत्यन्त सहृदयों की मनोहारिणी अपनी काया को रूप तथा आयु के अनुरूप (योग्य) रसयुक्त (सरस) फल अर्थात् संभोग से युक्त क्यों नहीं करती हो ? क्योंकि जन्म लिए हुए रूप और गुणों से विहीन भी व्यक्ति के लिए जन्म अर्थात् स्वभावतः प्राप्त होनेवाले जीवलोक (संसार, के सुखों का अनुभव करने के बाद ही परलोक-सम्बन्धी तपस्या करने का कष्ट शोभा देता है, अच्छा लगता है। तब फिर सौन्दर्यशाली व्यक्ति के विषय में कहना ही क्या ? अर्थात् उसे तो सांसारिक सुखोपभोग के लिए ही सौन्दर्य प्राप्त हुआ है। इस कारण स्वाभाविक रूप से ही सरस (आर्द्र, जलमय) कमलिनी के ऊपर तुषारपात के समान स्वाभाविक रूप से सरस (रमणीय) तुम्हारी इस देह पर तपस्या करने का क्लेश मुझको दुःख दे रहा है, कष्ट पहुँचा रहा है। यदि तुम्हारी जैसी सुन्दरी (कुमारी भी) संसार के सुखोपभोगों से विमुख होती हुई तपस्या द्वारा अपने को क्लेशयुक्त करती है, कष्ट देती है, तब तो कामदेव व्यर्थ ही डोरी चढ़ा हुआ अर्थात् खिंचा हुआ धनुष ढोता है।

१. फलसम्बन्धी। २. मामयमस्यास्ते। ३. उदेति।

वृथा[1] वसन्तमासाभ्यागमः। निष्फलानि 'कुमुदकुवलयकह्लारकमलाकरविकसितानि। निष्प्रयोजना जलदसमयारम्भाडम्बराः। निरर्थकान्युपवनानि। किं ज्योत्स्नया? किं वा लीलासरित्पुलिनैर्मलयानिलेन वा?' इति।

अहं तु देवस्य पुण्डरीकस्यैव वृत्तान्तादपेतकौतुका सर्वथा[2] तं वदन्तमपि—'कस्त्वम्? कुतो वा समायातः? किमर्थं वा मामेवमभिदधासी' त्यपृष्ट्वैवान्यतोऽ-'गच्छम्। गत्वा च देवार्चनकुसुमान्याचिन्वतीं[3] तरलिकामाहूयाब्रवम्—"तरलिके! योयं

= व्यर्थः, भवतीति शेषः। कुमुदेत्यादिः—कुमुदानि (= कैरवाणि) च कुवलयानि (= श्वेत-कमलानि) च कह्लाराणि (= सौगन्धकानि) च कमलानि (= अन्यविधानि पङ्कजानि) च तेषाम् आकराणाम् (= समूहानाम्) विकसितानि (= विकसनानि), निष्फलानि = निष्प्रयोजनानि। जलदेत्यादिः—जलदसमयः (= वर्षाकालः) तस्य य आरम्भः (= प्रारम्भः) तस्य आडम्बराः (= समाटोपाः, प्रदर्शनानि) निष्प्रयोजनाः = निष्फलाः। उपवनानि = उद्यानानि, निरर्थकानि = व्यर्थानि। ज्योत्स्नया = चन्द्रिकया, किम्? न किमपि फलमित्यर्थः। वा = अथवा, लीलेत्यादिः—लीलासरितः (= क्रीडानद्याः) पुलिनैः (= तटैः), वा = अथवा, मलयानिलेन = मलयाचलमारुता, किम्? न किमपि फलमित्यर्थः।

वैशम्पायनवचनमाकर्ण्य समुत्पन्नां स्वप्रतिक्रियां प्रकटयति महाश्वेता—अहं त्वित्यादिना। अहम् = महाश्वेता, तु, देवस्य = पूजनीयस्य, पुण्डरीकस्य = एतन्नामकस्य स्ववल्लभस्य, एव, वृत्तान्तात् = सञ्जातघटनातः, अपेतकौतुका = दूरीभूतकुतूहला, सती, सर्वथा = सर्वतोभावेन, वदन्तम् = कथयन्तम्, अपि, तम् = वैशम्पायनम्—त्वम् = भवान्, कः = किमात्मकः? कुतः = कस्मात् स्थानात्, समायातः = समागतः? किमर्थम् = किं प्रयोजनम्, वा, माम् = महाश्वेताम्, एवम् = इत्थम्, अभिदधासि = कथयसि, पृच्छसीति भावः? इति = एवम्, अपृष्ट्वा = प्रश्नविषयमकृत्वा, एव, अन्यतः = अन्यत्र, अगच्छम् = अव्रजम्, तस्य सर्वथाऽपरिचितस्य यूनः विषये कोऽपि प्रश्नोऽपराध इति मत्वा तत्स्थानस्य परित्याग एव श्रेयस्कर इति तस्या भावः। गत्वा = व्रजित्वा च, देवार्चनकुसुमानि = सुरपूजनार्थं पुष्पाणि, आचिन्वतीम् = आहरन्तीम्, तरलिकाम् = एतन्नाम्नीं परिचारिकाम्, आहूय = आकार्य, अब्रवम् = अवोचम्—तरलिके!,

---

चन्द्रमा बिना किसी कारण के उदित होता है। वसन्तमास का आना बेकार है। कुमुद, कुवलय, कह्लार तथा कमलों के वनों का विकसित होना, खिलना निष्फल (व्यर्थ) है। बरसात के मौसम के मेघों का आडम्बर (घटाओं का छा जाना) भी बेकार है। (सुन्दर) बगीचे निरर्थक (बेकार) हैं। चाँदनी का क्या फल है? विलास करने के लिये नदियों के रेतीले किनारों से अथवा मलयपर्वत से आनेवाली वायु से क्या लाभ?" [अर्थात् पूर्वोक्त सभी चीजें बेकार हो जाती हैं यदि महाश्वेता तुम्हारी जैसी सुन्दरी भी तपस्या के क्लेश से शरीर को पीड़ा पहुँचाती है।]

मैं (महाश्वेता) तो स्वामी पुण्डरीक की घटना से ही सभी प्रकार के कौतूहलों (उत्सुकताओं) से दूर हो चुकी हुई, बोलते जाते हुए भी उससे 'तुम कौन हो? अथवा कहाँ से आये हो? अथवा मुझसे ऐसी बातें क्यों कह रहे हो?' यह बिना पूछे ही दूसरी ओर चली गई। जाने के बाद देवताओं की पूजा के लिये फूलों को चुनती हुई, तोड़ती हुई तरलिका को बुला कर मैंने कहा—"अरे तरलिका!

---

१. व्यर्थः।   २. सर्वथा तथा, सर्वं तथा।   ३. अवचिन्वती, उच्चिन्वती।

युवा कोपि ब्राह्मणाकृति[१]रस्यावलोकयतो[२] वदतश्चान्यादृश एवाभिप्रायो मयोपलक्षितः। तन्निवार्यतामयं यथा पुनरत्र नागच्छति। अथ निवारितोप्यागमिष्यति[३] तदावश्यमेवास्या[४]-भद्रकं भविष्यति' इति। स तु निवार्यमाणोपि [५]दुर्निवारवृत्तेर्मदनहतकस्य दोषैर्भवितव्यतया वानर्थस्य नात्याक्षीदेवानुबन्धम्।

अतीतेषु [६]केषुचिद्दिवसेष्वेकदा गाढायां [७]यामिन्यामुद्गिरत्स्विव भरेणोद्दीपित-

---

यः = अज्ञातः, अयम् = पुरःस्थितः, कोऽपि = अपरिचितः, युवा = युवकः, ब्राह्मणाकृतिः = आकृत्या विप्रः, प्रतीयते इति शेषः, अवलोकयतः = पश्यतः, वदतः = भाषमाणस्य च, अस्य=युवकस्य, अन्यादृशः = अन्यविधः, अनुचित एव, इति भावः, अभिप्रायः = आशयः, मया=महाश्वेतया, लक्षितः = विलोकितः। तत् = तस्मात्, अयम् = एषः, निवार्यताम् = निषिध्यताम्, वर्ज्यताम्, यथा = येन प्रकारेण, पुनः = भूयः, अत्र = मम समीपे आश्रमे वा, न, आगच्छति = आयातु इति भावः, अस्मात् स्थानात् पलायनाय पुनरनागमनाय च अयं दृढं वक्तव्य इति तस्या भावः। अथ = पक्षान्तरे अथवा यद्यर्थे, निवारितः = कृतनिषेधः, अपि, आगमिष्यति = आयास्यति, तदा = तर्हि, तस्मिन् काले, वा, अस्य = ब्राह्मणयुवकस्य, अभद्रकम् = अकल्याणम्, अवश्यमेव = निश्चितरूपेण, भविष्यति = सम्पत्स्यते, इतिः = कथनसमाप्तौ। सः = ब्राह्मणयुवा, तु = परन्तु, निवार्यमाणः = निषिध्यमानः, अपि, दुर्निवारवृत्तेः—दुर्निवाराः (= दुःखेन निवारयितुं शक्या) वृत्तिः (= व्यापारः) यस्य तादृशस्य, मदनहतकस्य = हत्याकारिणः कामदेवस्य, दोषैः = दूषणैः, वा = अथवा, अनर्थस्य = अभद्रस्य, विनाशस्येत्यर्थः, भवितव्यतया = अग्रे भावित्वेन, अनुबन्धम् = स्नेहम्, प्रीत्यनुरोधम्, न, एव अत्याक्षीत् = तत्याज, स्नेहासक्त एव जातः।

अतीतेष्विति। केषुचित् = कतिपयेषु, दिवसेषु = दिनेषु, अतीतेषु = गतेषु सत्सु, एकदा = एकस्मिन् समये, गाढायाम् = तीव्रायाम्, यामिन्याम् = निशायाम्, निशीथकाले इति भावः, इन्दु - मयूखेषु = चन्द्रस्य किरणेषु, भरेण = अतिशयेन, प्रकर्षेण वा, उद्दीपितेत्यादिः—उद्दीपितः (= उत्तेजितः, प्रवर्द्धितः) स्मरः (= कामः) एव अनलः (= अग्निः) येन तं तादृशम्, ज्योत्स्नापूरम् = चन्द्रिकायाः प्रवाहम्, उद्गिरत्सु = उद्वमत्सु, इव, सत्सु,

---

यह जो कोई भी युवक ब्राह्मण जैसी आकृतिवाला है, (देखने से ब्राह्मण सा लगता है) इसके [मुझे] देखने तथा बात करने का दूसरे प्रकार का ही आशय मैंने समझा है अर्थात् इसकी भावना दूषित प्रतीत होती है। अतः इसे यहाँ से इस प्रकार से हटा दो, भगा दो, जिससे फिर दुबारा यहाँ न आवे। यदि हटाया (भगाया) गया भी (दुबारा) आता है तब तो निश्चय ही इसका अभद्रक = अकल्याण, बुरा होगा।, परन्तु रोके जाने पर भी उसने, न रोके जा सकने योग्य व्यवहार वाले दुष्ट कामदेव के दोषों के कारण अथवा अनर्थ की भवितव्यता के कारण (अर्थात् अनर्थ के अवश्यंभावी होने के कारण) अनुबन्ध = पीछे लगा रहना (हठ करना) नहीं छोड़ा।

कुछ ही दिन बीत जाने पर एक बार घोर रात में जब चन्द्रमा की किरणें कामदेवरूपी अग्नि को बहुत अधिक उद्दीपित करनेवाली चाँदनी के प्रवाह को उगल सी रहीं थीं, गिरा

---

१. ··· ···ऽऽतिकोऽस्य। २. विलोकयतः, न विलोकयताः। ३. यद्यागमिष्यति। ४. अस्यैव। ५. दुर्निवार्य। ६. चैकदा। ७. रजन्याम्।

स्मरा[1]नलं ज्योत्स्नापूरमिन्दुमयूखेषु, लब्धनिद्रायां तरलिकायाम्, अप्राप्तसुखा[2] सन्ता-[3]पान्निर्गत्यास्मिन्नेव शिलातले विमुक्ताङ्गी कह्लारसुरभिणा[4] मन्दमन्देनाच्छोदानिलेन बीज्यमाना, वर्णसुधाकूर्चकैरिव करैर्धवलितदशाशामुखे चन्द्रमसि निहितदृष्टिः, 'अपि नामायमेभिरमृतवर्षिभिरखिलजगदाह्लादकारिभिः[5] करैश्चन्द्रमास्तमपि हृदयवल्लभं मे वर्षेद्, इत्याशंसाप्रसङ्गेन देवस्य सुगृहीतनाम्नः पुण्डरीकस्य स्मरन्ती, कथमभाग्यैर्मे मन्द-

---

तरलिकायाम् = एतन्नाम्न्यां मम सेविकायाम्, लब्धनिद्रायाम् = प्राप्तस्वापायाम्, सत्याम्, सन्तापात् = मानसिकपरितापात्. अप्राप्तसुखा—अप्राप्तम् (= न लब्धम्) सुखम् (= आनन्दः, निर्वृतिर्वा) यया सा तादृशी अहं महाश्वेता, निर्गत्य = कुटीराद् बहिरागत्य, अस्मिन्नेव = पुरोवर्तिनि, शिलातले = पाषाणखण्डतले, विमुक्ताङ्गी—विमुक्तानि (= त्यक्तानि, शिथिलीकृतानि) अङ्गानि (= देहावयवाः) यया सा तादृशी सती, कह्लारसुरभिणा = सौगन्धिकपुष्पसौरभेण, मन्दमन्देन = मन्थर-मन्थरेण, अच्छोदानिलेन = अच्छोदजलसंस्पृष्टपवनेन, बीज्यमाना = बीजनविषयीक्रियमाणा, वर्णसुधाकूर्चकैः = श्वेतवर्णलेपनद्रव्यविशेषस्य 'हिन्द्यां चूना' इति प्रसिद्धस्य तूलिकाभिः, इव, करैः = किरणैः, धवलितेत्यादिः—धवलितानि (= शुभ्रीकृतानि) दशानाम् (= दशसङ्ख्यकानाम्) आशानाम् (= दिशानाम्) मुखानि (= आस्यानि) येन तादृशे, चन्द्रमसि = निशाकरे, निहितदृष्टिः = दत्तलोचना, अहम्, अपि = इदं सम्भावनायाम्, नाम = इदं कोमलामन्त्रणे, अयम् = एष पुरो दृश्यमानः, चन्द्रमाः = शशी, अमृतवर्षिभिः = सुधावर्षणशीलैः, अखिलेत्यादिः—अखिलस्य (= समस्तस्य) जगतः (= लोकस्य) आह्लादम् (= आनन्दम्, हर्षम्) कुर्वन्ति (= उत्पादयन्ति) इत्येवंशीलैः, करैः = किरणैः, तम् = = पूर्वोक्तम्, मे = मम, हृदयवल्लभम् = प्राणप्रियम्, अपि वर्षेत् = वर्षणविषयं कुर्यात् ['तस्मिन्नपि हृदयवल्लभे' इति सप्तम्यन्त-पाठस्तूचिततरः] इति = एवम् आशंसा-प्रसङ्गेन = स्पृहाया आशाया वा सम्बन्धेन, सुगृहीतनाम्नः = सुस्मरणीयाभिधानस्य, स्मरणीयनामवतः, देवस्य = पूज्यस्य, पुण्डरीकस्य = एतन्नाम्नो वल्लभस्य, स्मरन्ती = स्मरणं कुर्वन्ती, 'अधीगर्थदयेषां कर्मणि' इति सूत्रेण कर्मणि षष्ठी बोध्या । मे = मम महाश्वेतायाः, मन्दपुण्यायाः = हीन-

---

सी रही थीं, तरलिका सोई हुई थी, [उस समय मैं] सन्ताप के कारण सुख न पाती हुई अर्थात् बेचैन होकर, बाहर निकल कर, इसी शिलातल पर अङ्गों को ढीला-ढाला छोड़े हुई अर्थात् लेटी हुई, कह्लारों से सुगन्धित तथा मन्द-मन्द (धीमी-धीमी) 'अच्छोद सरोवर' की हवा से बीजित होती हुई अर्थात् उससे सेवित होती हुई, सफेद चूने की कूचियों जैसी किरणों द्वारा दशों दिशाओं के मुखों को सफेद कर देनेवाले चन्द्रमा की ओर दृष्टि लगाये हुई—"अरे, अमृत की वर्षा करनेवाली, सारे संसार को आनन्द देनेवाली इन किरणों के द्वारा चन्द्रमा उस हृदय-वल्लभ (पुण्डरीक) को भी बरसा दे, अर्थात् वृष्टि के माध्यम से मेरा प्राणप्रिय मुझे दे दे—' ऐसी आशंसा (आशा) के प्रसंग से सुगृहीतनामा (आदरपूर्वक स्मरणीय नामवाले) स्वामी पुण्डरीक का स्मरण (ध्यान) कर रही थी, पुण्यहीन (पापिनी) मेरे अभाग्यों के कारण ही आकाश से

---

१. उद्दीपितं स्मरानलं । २. अप्राप्तनिद्रासुखा, अनवाप्तनिद्रासुखा ।

३. सन्तापनिर्गत्या । ४. '''सुगन्धिना । ५. आह्लादकारिकरैः ।

पुण्यायास्तादृशस्यापि दिव्याकृतेर्महापुरुषस्य तस्य नभसोवतीर्णस्य भाषितमलीकमुपजातम्, जातानुकम्पेन वा यथाकथंचिज्जीवितुमित्येव[1] समाश्वासिता जीवितप्रिया तपस्विन्यपि येन पुनर्दर्शनमेव तेन मम न दत्तम्। किं करोतु देवः सुगृहीतनामा पुण्डरीको यः परासुरेवोत्क्षिप्य नीतः, कपिञ्जलस्तु जीवन्गतः, कथमियता कालेन तेनापि निष्करुणेन वार्तापि मे न सम्पादिता'—इत्येतानि चान्यानि [2]चालजालानि [3]दुर्जीवितगृहीता चिन्तयन्ती जाग्रत्येवातिष्ठम्।

सुकृतायाः, अभाग्यैः = दुर्दैवतैः, तादृशस्य = तथाविधस्य, अपि, दिव्याकृतेः = दिव्यरूपस्य, नभसः = गगनात्, अवतीर्णस्य = अधः समागतस्य, तस्य, महापुरुषस्य = महनीय लक्षणलक्षितस्य, जनस्य, भाषितम् = कथितम्, उक्तम्, कथम् = कस्माद् हेतोः, अलीकम् = असत्यम्, उपजातम् = सञ्जातम् ? वा = अथवा, जातानुकम्पेन = समुत्पन्नानुग्रहेण, येन, यथाकथञ्चित् = येन केनापि प्रकारेण, जीवितुम् = प्राणान् धारयितुम्, इत्येव, जीवितप्रिया—जीवितम् (= प्राणाः) प्रियम् (= अभीष्टम्) यस्याः सा तादृशी तपस्विनी = वराकी, समाश्वासिता = समाश्वासनं प्रापिता, अहमिति शेषः, तेन = पूर्वोक्तदिव्यरूपधारिणा, मम = मदर्थम्, पुनः = भूयः, दर्शनम् = विलोकनम्, साक्षात्कारः, एव, न दत्तम् = वितीर्णम्, स पुनर्दर्शन-प्रदानार्थं कदापि नागत इति भावः। सुगृहीतनामा = सुग्रहणीयाभिधानः, देवः = = पूज्यः, पुण्डरीकः = एतन्नामा मम प्रियतमः, किम्, करोतु = विदधातु, यः पुण्डरीकः, परासुः = मृतः, एव, उत्क्षिप्य = उत्थाय, नीतः = परलोकं प्रापितः ? तु = परन्तु कपिञ्जलः = एतन्नामा पुण्डरीकसखा, जीवन् = प्राणान् धारयन्, गतः = पृष्ठे प्रयातः, तेनापि, निष्करुणेन = दयाशून्येन, इयता = एतावन्मात्रेण, कालेन = समयेन, कथम् = किं कारणम्, मे = मदर्थम्, वार्ता = वृत्तान्तः, समाचारः, अपि, न, सम्पादिता = विहिता, प्रेषितेति भावः, इति, एतानि = पूर्वोक्तानि, अन्यानि = इतराणि, च, आलजालानि = स्वप्नान्तर्गतप्रायाणि, अनल्पानि, वा चिन्तयती = ध्यायन्ती, दुर्जीवितगृहीता = दुष्टजीवनेन धृता, दुःखितं जीवनं यापयन्तीति भावः, जाग्रती = अनिद्रिता, एव, अतिष्ठम् = स्थितवती, मम नयनयोर्निद्रा न समायातेति भावः।

उतरे हुए, दिव्य आकार वाले, उस प्रकार के महापुरुष का कथन भी कैसे झूठा हो गया, अथवा उत्पन्न हुई दयावाले उसने 'तपस्विनी भी यह प्राणों को प्रिय समझनेवाली जिस किसी प्रकार से जिये इसके लिये ही समाश्वस्त किया था' क्योंकि उस महानुभाव ने मुझे फिर दोबारा दर्शन ही नहीं दिया। सुगृहीत (स्मरणीय) नामवाले स्वामी पुण्डरीक क्या कर सकते हैं जिन्हें मरे हुए ही वह उठा कर (आकाश में) ले गया, परन्तु कपिञ्जल तो जीते जी ही (आकाश में) गया था, तब क्या उस निष्ठुर ने इतने समय तक मेरी खबर तक नहीं ली अथवा मुझे (उस पुण्डरीक की) कोई खबर तक नहीं दी,—इन्हें तथा दूसरी व्यर्थ की बातों को सोचती हुई दुःखी जीवन की मारी मैं जागती ही बैठी रही।

---

१. अत्र 'जातानुकम्पेन वा यथाकथञ्चित् जीवतु जीवितप्रिया तपस्विनी' इत्येवमेव समाश्वासितास्मि' इति भट्टोक्तपाठ एव उचिततरः प्रतीयते।

२. आलजालानि, आलापजालानि।

३. यद्दुर्जीवित०।

अथ निभृतपदसञ्चरणम्, [1]आचरणादुत्कण्टकम्, अनवरतपतितमदनशरशल्यनिकरनिचितमिव शरीरमुद्वहन्तम् [2]उद्विकासि-केतकरजःपटलधवलं प्रथमतरमेव भस्मसात्कृतमिव मदनहुतभुजा[3], भुजाग्रेण कुण्डलीकृत[4]मृणालमपर्युषित[5]शासनवलयमिवावश्य-[6]मरणाय सकलजगदप्रतिहतशासनेन कुसुमधन्वना विसर्जितं दधानम्, उद्भूतसाध्वसो-

---

अग्रे किं जातमिति प्रतिपादयन्नाह—अथेत्यादिना। अथ = एतदनन्तरम्, मम जागरणावस्थायामेवेति भावः। [अत्र द्वितीयैकवचनान्तानि सर्वाणि वक्ष्यमाणस्य 'तमेव युवानम्' इत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि।] निभृतेत्यादिः-निभृतम् (=निःशब्दम्)यथा स्यात् तथा पदयोः (=पादयोः) सञ्चरणम् (=सञ्चलनम्) यस्य तं तादृशम्। आचरणात् = पादपर्यन्तम्, उत्कण्टकम् = रोमाञ्चितम्, सकलशरीरे रोमाञ्चयुक्तमिति भावः, अनवरतेत्यादिः—अनवरतम् (= निरन्तरम्) यथा स्यात् तथा पतिताः (= आलग्नाः) ये मदनशराः (= कामबाणाः) तेषां यानि शल्यानि (= अग्रभागाः) तेषां निकरेण (= समुदायेन) निचितम् (= व्याप्तम्), इव, शरीरम् = देहम्, उद्वहन्तम् = धारयन्तम्, उद्विकासीत्यादिः—उद्विकासी (= उन्निद्रः, विकसितः) यः केतकः (= एतन्नामा पुष्पविशेषः), तस्य यः परागः (= पुष्परसः) तस्य पटलम् (= समूहः) तेन धवलम् (= शुभ्रम्), अत एव, मदनहुतभुजा = कामाग्निना, प्रथमतरम् = आदौ, एव, भस्मसात्कृतम् = दग्धीकृतम्, इव। भुजाग्रेण = कराग्रभागेण, कुण्डलीकृतमृणालम् = मण्डलीकृतकमलनालम्, सकलेत्यादिः—सकलम् (= समस्तम्) च तत् जगत् (= संसारः) तस्मिन् अप्रतिहतम् (= अनवरुद्धम्, अवारितम्) शासनम् (= आदेशः) यस्य तेन तादृशेन, कुसुमधन्वना = कामदेवेन, विसर्जितम् = प्रदत्तम्, अवश्यमरणाय = निश्चितरूपेण प्राणत्यागाय, अपर्युषित-शासनवलयम् = प्रत्यग्रादेशस्य कटकम्, इव, दधानम् = धारयन्तम्, कराग्रभागे मणिबन्धादौ यत् कमलनालमासीत् तत् कामस्य अवश्यमरणस्याज्ञासूचकं वलयमिव प्रतीयते स्मेति भावः।

उद्भूतेति। उद्भूतेत्यादि—उद्भूतम् (= उत्पन्नम्) यत् साध्वसम् (= भयम्) तस्माद् य उत्कम्पः (= प्रकम्पनम्) तेन तरलितया (= चञ्चलया), केतकीगर्भसूच्या

इसके बाद दिन के [प्रकाश के] समान चन्द्रमा की चाँदनी में दूर से ही पहचाने जाने वाले उसी युवक को देखा, जो (युवक) चुपके-चुपके पैर रख रहा था, जिसके पैरों से लेकर [मस्तक तक] रोमाञ्च था, जो लगातार ऊपर गिरते (चुभते) हुए कामदेव के बाणों के घावों के समूह से व्याप्त अर्थात् घायल से शरीर को धारण कर रहा था, ढो रहा था,जो खिले हुए केवड़े के पुष्प के पराग-समूह से श्वेतवर्णवाला था अत एव ऐसा लग रहा था कि कामदेव रूपी अग्नि द्वारा पहले से ही भस्म कर दिया गया हो, जला डाला गया हो, हाथ की कलाई में [मोड़कर] गोल करदिया गया कमलनाल ऐसा लग रहा था कि मानों सारे संसार में अनुल्लङ्घनीय आज्ञा वाले कामदेव द्वारा निश्चित रूप से मृत्यु (पाने) के लिए दिया गया तात्कालिक (ताजी-ताजी) आज्ञा का वलय (कड़ा,हथकड़ी) जो धारण किये हो,उत्पन्न हुए भय तथा कम्पन के कारण हिलती हुई,कान के किनारे पर धारण की गई,लगी हुई

---

१. आचरणादुत्कण्टितम्, आपतन्तं तमुत्कम्पिततनम्। २. उद्विकासिकेत०, उद्विकासकेत०।
३. मदनहुताभुजाग्रेण। ४. मृणालिकावलयम्। ५. उपर्युषित, अपर्युषितं। ६. अवश्यं।

त्कर्णतरलितया केतकीगर्भसूच्या 'क्वापरं गम्यते हतोसि मये'ति मन्मथप्रथमसहायस्य चन्द्रमसः कलयेव[1] कर्णान्तिलग्नया तर्ज्यमानम्, उद्वेगावर्जितेन [2]नयनजलस्रोतसात्मने जल-[3]मिव प्रयच्छन्तम्, आत्मेच्छयैव [4]मत्करग्रहणाय निर्वर्तितस्नानमिव स्वेदाम्भसा, 'न युक्तमेव ते परहृदयमविज्ञायोपगन्तुमि'ति पदे पदे निवार्यमाणमिव गुरुणोरुस्तम्भेन, दूरत[5] एव मदालिङ्गनालीकाशया प्रसारितभुजयुगलमुत्कलिकासहस्रविषमं रागसागरमिव प्रतरन्तम्, अनवरतप्रवृत्तै[6]राकृष्यमाणमिव पुरस्ताद्दीर्घैर्निश्वासमरुद्भिः, उह्यमानमिव दिङ्मुख-

---

= सूच्याकाराग्रकेतकीपुष्पेण, 'मया = केतकीगर्भसूच्या, हतः = मारितः, व्यापादितः, असि = वर्तसे, अतः, परम् = अग्रे, क्व = कुत्र, गम्यते = व्रज्यते ? इति = एवं रूपेण, मन्मथप्रथमसहायस्य = कामदेवस्य प्रमुखसहयोगिनः, चन्द्रमसः = निशाकरस्य, कर्णान्तिलग्नया = श्रवणप्रान्तदेशस्थितया, कलया = षोडशभागेन, तर्ज्यमानम् = भर्त्स्यमानम्, इव । उद्वेगावर्जितेन—उद्वेगः (= मानसिकतापः) तेन आवर्जितेन (= प्रदत्तेन प्रवाहितेनेति भावः), नयनजलस्रोतसा = नेत्राश्रुप्रवाहेण, आत्मने = स्वस्मै, जलम् = सलिलम्, इव, प्रयच्छन्तम् = प्रददानम् । आत्मेच्छया = स्वेच्छया, एव, मत्करग्रहणाय = मत्पाणिग्रहणाय, स्वेदाम्भसा = स्वेदसलिलेन, निर्वर्तितस्नानम्—निर्वर्तितम् (= निष्पादितम्) स्नानम् (= निमज्जनम्) येन तं तादृशम् इव । 'परहृदयम् = अन्यदीयाशयम्, अविज्ञाय = अविदित्वा, उपगन्तुम् = समीपे प्रयातुम्, ते = तव, वैशम्पायनस्य न, युक्तम् = समाचीनम्, एव, इति = एतदर्थम्, गुरुणा = बृहत्तरेण, पृथुलेन वा, ऊरुस्तम्भेन=जङ्घाद्वयोर्जाड्येन, 'स्तम्भौ स्थूणाजडीभावौ' इत्यमरः, पदे पदे=प्रतिपदम्, निवार्यमाणम्= निषिध्यमानम्, इव । दूरतः = विप्रकृष्टाद, एव, मदालिङ्गनेत्यादिः–मम(= महाश्वेतायाः) आलिङ्गनम् (= उपगूहनम्) तस्य अलीका (= मिथ्या) या आशा (= आशंसा) तया, हेतुना, प्रसारितभुजयुगलम् = प्रसारितकरद्वयम्, उत्कलिकासहस्रविषमम्—उत्कलिका (= उत्कण्ठा) एव उत्कलिका (= तरङ्गम्) तासां सहस्रैः (= अगणितसंख्याभिः) विषमम् (= भीषणम्), रागसागरम् = स्नेहसिन्धुम्, प्रतरन्तम् = उत्तरन्तम् इव । अनवरतप्रवृत्तैः = सततप्रचलितैः, दीर्घैः = = लम्बायमानैः, निःश्वासमरुद्भिः = निश्वासपवनैः, पुरस्ताद् = अग्रे, आकृष्यमाणम् = नीय-

---

केवड़े के पुष्प के भीतरी भाग की सुई के कारण ऐसा लग रहा था कि मानों कामदेव के प्रधान सहायक चन्द्रमा की कला द्वारा ऐसे डराया जा रहा हो—'अब दूसरी जगह कहां जा रहें हो, तू तो मेरे द्वारा मार दिया गया है', अत्यधिक उद्वेग (घबड़ाहट)के कारण निकले हुए अश्रुजल के प्रवाह से ऐसा लग रहा था कि मानों [मरने के बाद दिये जाने वाले जल से पहले ही] अपने लिए जलदान = तर्पण कर रहा हो, [सारे शरीर में] पसीने के जल से ऐसा लग रहा था कि अपनी इच्छा से ही [मेरी बिना स्वीकृति के] मेरा पाणिग्रहण करने के लिए स्नानकृत्य सम्पन्न कर चुका हो, 'दूसरे का हृदय अर्थात् हृदय की भावना को जाने बिना तुम्हारा उस (महाश्वेता) के समीप जाना ठीक नहीं है'—ऐसे [कहते हुये] मानो स्थूल जङ्घारूपी खम्भों या जाड्य द्वारा पग-पग पर रोका जा रहा हो,मेरे आलिंगन को झूठी आशा से दूर से ही दोनों हाथों को फैलाये हुए वह ऐसा लग रहा था कि मानों उत्कलिकाओं (उत्सुकताओं) के रूप में हजारों उत्कलिकाओं (लहरों) से भीषण बने हुये प्रेमरूपी सागर में तैर रहा हो; लगातार चलती हुईं लम्बी-लम्बी निश्वास वायुओं के द्वारा वह मानों आगे की ओर

---

१. करशाखया । २. सलिल । ३. जलाञ्जलिम् ।
४. मकरग्रहणाय । ५. अदूरतः । ६. प्रवृतैः ।

प्लाविना ज्योत्स्नापूरेण, रणरणकशून्यम्, उच्छुष्काननम्, प्रोन्मुक्तं सत्त्वेन, प्रतिपन्नं कृपणतया, अवधीरितं धैर्येण, संगृहीतं तरलतया, विसर्जितं लज्जया, [1]अधिगतं धाष्ट्र्येन, दूरीकृतं परलोकभीत्या[2], विमुक्तं[3] युक्तायुक्तविवेकेन, संकल्पजन्मन एव केवलस्य वशे स्थितम्, आविष्टमिव मत्तमिवोन्मादादापतन्तम्, दूरतोऽपि दिवसनिर्विशेषेण चन्द्रातपेन विभाव्यमानं तमेव युवानमद्राक्षम्।

दृष्ट्वा च तं तादृशं निःस्पृहाप्यात्मनि परं भयमुपगतवती चेतस्यचिन्तयम्[4]—'अहो

मानम्, इव। दिङ्मुखप्लाविना = दिशावकाशव्यापिना, ज्योत्स्नापूरेण = चन्द्रिकाप्रवाहेण, उह्यमानम् = अग्रे नीयमानम्, इव। रणरणकशून्यम् = औत्सुक्यविहीनम्, उच्छुष्काननम्—उच्छुष्कम् (= म्लानम्) आननम् (= आस्यम्) यस्य तं तादृशम्। सत्त्वेन = बलेन धैर्येण वा, प्रोन्मुक्तम् = परित्यक्तम्, अधीरं निर्बलं वेति भावः, कृपणतया = दीनतया, प्रतिपन्नम् = गृहीतम्, धैर्येण = धीरतया, अवधीरितम् = तिरस्कृतम्, उपेक्षितं वा, तरलतया = चाञ्चल्येन, संगृहीतम् = परिगृहीतम्, धृतम्, लज्जया = त्रपया विसर्जितम् = परित्यक्तम्, धाष्ट्र्येन = धृष्टतया, अधिगतम् = सम्प्राप्तम्, परलोकभीत्या = लोकान्तरात् भयेन, दूरीकृतम् = अपसारितम्, युक्तायुक्तविवेकेन = उचितानुचितज्ञानेन, विमुक्तम् = परित्यक्तम्, केवलस्य, संकल्पजन्मनः = मनसिजस्य कामदेवस्य, एव, वशे = अधीने, स्थितम् = विद्यमानम्, आविष्टम् = भूताद्यावेशयुक्तम्, इव, मत्तम् = क्षीबम्, इव, उन्मादात् = चित्तवैक्लव्यात्, आपतन्तम् = आगच्छन्तम्, इव, मम पार्श्वे इति शेषः, दूरतः = दविष्ठात्, अपि, दिवसनिर्विशेषेण = दिवसात् निर्गतः विशेषः (= भेदः) यस्य तादृशेन, दिवसतुल्येनेति भावः, चन्द्रातपेन = चन्द्रिकया, विभाव्यमानम् = स्पष्टं विलोक्यमानम्, ज्ञायमानम्, तमेव = पूर्ववर्णितमेव, युवानम् = ब्राह्मणतरुणम्, अद्राक्षम् = व्यलोकयम्। यत्र यत्र 'इव' प्रयोगस्तत्र तत्रोत्प्रेक्षालंकारः।

दृष्ट्वेति। तादृशम् = तथाविधम्, तम् = पूर्वोक्तं ब्राह्मणयुवानम् दृष्ट्वा = विलोक्य च, निःस्पृहा = स्वप्राणधारणविषये निर्मोहा, अपि, सती, आत्मनि = स्वमनसि, परम् = अत्यधिकम्, भयम् = भीतिम्, उपगतवती = प्राप्तवती, सती, चेतसि=मनसि, अचिन्तयम् = विचारितवती, अहो =

खींचा जा रहा हो, (खींच कर आगे ले जाया जा रहा हो,) दिशाओं के मुखों = अग्रभागों को डुबा देने (व्याप्त कर लेने) वाले चाँदनी के प्रवाह (बाढ़) से मानों उठा कर ले जाया जा रहा हो, रणरणक = मन की उत्सुकता से शून्य, सूखे हुये मुख वाला, आत्मबल द्वारा छोड़ दिया गया, दीनता द्वारा पकड़ लिया गया, धैर्य द्वारा तिरस्कृत = ठुकराया गया, चञ्चलता द्वारा अपने में गृहीत = पकड़ लिया गया, लज्जा द्वारा छोड़ा गया, धृष्टता द्वारा प्राप्त किया गया, परलोक के भय से दूर किया गया, उचित और अनुचित में भेद करने की शक्ति द्वारा छोड़ दिया गया; केवल सङ्कल्पजन्मा = कामदेव के ही वश में गया हुआ, [भूतादि से] आविष्ट = पकड़ा गया सा, पागल सा, उन्माद से मेरी ओर बढ़ा आ रहा था। [ऐसे उसी युवक, जो दिन के समान चन्द्रमा की चाँदनी में साफ-साफ पहचाना जा रहा था, को दूर से ही देखा।]

उस प्रकार की दशा वाले उस (वैशम्पायन) को देखकर, निस्पृह होती हुई भी मन में भयभीत

---

१. धिक्कृतं।   २. भीषया।   ३. अंगीकृतं स्वरुच्या, विमुक्तम्।   ४. अकरवम्।

[1]कष्टमापतितम्। [2]यद्ययमुन्मादादागत्य पाणिनापि स्पृशति मां तदा मयेदमपुण्यहतकं शरीरमुत्स्रष्टव्यम्। तच्चिराद् देवस्य पुण्डरीकस्य पुनर्दर्शनप्रत्याशया दुःखोत्तरमप्यङ्गीकृतं[3] व्यर्थतां मे यातं प्राणसन्धारणम्' इति। स त्वेवं चिन्तयतीमेव मामुपसृत्याब्रवीत्—'चन्द्रमुखि, हन्तुमुद्यतो मामयं कुसुमशरसहायश्चन्द्रमाः, तच्छरणमागतोऽस्मि। रक्ष मामशरणमनाथमार्तमप्रतीकार[4]क्षमात्मना [5]त्वदायत्तजीवितम्। शरणागतपरित्राणं हि तपस्विना-

---

इदं खेदे, कष्टम् = कृच्छ्रम्, आपतितम् = समागतम् ! यदि अयम् = ब्राह्मणयुवा, उन्मादात् = प्रमत्ततया, आगत्य = उपसृत्य, पाणिना = करेण, अपि, माम् = महाश्वेताम्, स्पृशति = स्पर्शं करोति, तदा, मया = महाश्वेतया, अपुण्यहतकम् = पापैर्निहतम् इदम् = पुरोवर्ति, शरीरम् = देहः उत्सृष्टव्यम् = परित्यक्तव्यम्। तत् = तर्हि, तस्माद् वा, देवस्य पुण्डरीकस्य, पुनः = भूयः, दर्शनप्रत्याशया = मिलनाभिलाषेण, दुःखोत्तरम् = उत्तरकालभवं दुःखं यस्मिन् तत् तादृशम्, अपि, अङ्गीकृतम् = स्वीकृतम्, प्राणसन्धारणम् = प्राणसंरक्षणम्, जीवितम्, व्यर्थताम् = निष्फलताम्, यातम् = गतम् भविष्यतीति शेषः, इतिः = समाप्तौ। सः = युवा, तु, एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, चिन्तयन्तीम् = ध्यायन्तीम्, विचारयन्तीम्, एव, माम् = महाश्वेताम्, उपसृत्य = समीपमागत्य, अब्रवीत् = अवोचत्।

स ब्राह्मणयुवा किमब्रवीदिति वर्णयति—चन्द्रमुखीत्यादिना। हे चन्द्रमुखि ! = चन्द्रवत् मुखम् यस्यास्तत्सम्बुद्धौ, शशिवदने, कुसुमशरसहायः = कामदेवस्य साहाय्यकर्ता, अयम् = पुरो दृश्यमानः, चन्द्रमाः = निशापतिः, माम् = वैशम्पायनम्, हन्तुम् = मारयितुम्, उद्यतः = उद्युक्तः, अस्ति, तत् = तस्मात्, शरणम् = संरक्षणम्, आगतः = सम्प्राप्तः, अस्मि = वर्ते, तवेति शेषः। अशरणम् = आश्रयशून्यम्, अनाथम् = अस्वामिकम् आर्त्तम् = दुःखितम्, अप्रतीकारक्षमम् = प्रतिक्रियां कर्तुमयोग्यम्, आत्मना = स्वयमेव, त्वदायत्तजीवनम्— त्वयि (= भवति महाश्वेतायाम्) आयत्तम् (= अधीनम्) जीवितम् (= जीवनम्) यस्य तं तादृशम् [अधीनार्थकयोगे सप्तमी बोध्या], माम् = वैशम्पायनम्, रक्ष = त्रायस्व, हि = यतः, शरणागतपरित्राणम् = शरणमुपागतस्य संरक्षणम्, तपस्विनाम् = तपोनिरतानाम्, अपि, धर्मः = करणीयम्, एव, अस्तीति शेषः। तत् =

हो गई और अपने मन में यह सोचने लगी—'ओह ! यह तो बहुत कष्टकारक सङ्कट आ गया है। यदि उन्माद (पागलपन) के कारण यह नवयुवक आकर हाथ से भी मुझे छू लेता है तो मुझको यह अभागा (अपवित्र) शरीर छोड़ देना होगा। तब तो स्वामी पुण्डरीक के दुबारा दर्शन की आशा से, दुःखों से भरा हुआ चिरकाल तक प्राण धारण करना मेरे लिये व्यर्थ हो जायगा !' मैं ऐसा सोच ही रही थी कि वह मेरे पास आकर कहने लगा—'हे चन्द्रमुखी ! कामदेव का सहायक (मित्र) यह चन्द्रमा मुझे मार डालने के लिये तैयार होकर बैठा है, इसलिये [आपकी] शरण में आया हूँ। अशरण, अनाथ, आर्त्त तथा अपने आप प्रतीकार करने में असमर्थ मेरी रक्षा करो, आपके अधीन मेरा जीवन है। शरण में आये हुये लोगों की रक्षा करना तपस्वियों का भी धर्म है। अतः यदि आत्म-समर्पण के

---

१. कष्टतरम्। २. यद्ययमेवमुन्मादात्, यद्ययमेत्यस्वयमुन्मात्। ३. अंगीकृत्य।
४. अप्रतीकारमाक्षमम्। ५. त्वदायत्तं मे जीवितम्।

मपि धर्म एव । तद्यदि मामात्मप्रदानेन[1] नात्र सम्भावयसि तदा हतोऽहमाभ्यां कुसुमशर-शिशिरकराभ्याम्' इति ।

अहं तु तदाकर्ण्य [2]झगित्युत्तमाङ्गनिर्गतज्वालेव रोषानलेन निर्दहन्तीव तमुन्मिषद्बाष्पस्फुलिङ्गया दृष्ट्या तदा तर्जयन्तीवा[3] पादतलादुत्कम्पितगात्रयष्टिराविष्टेवात्मानमप्यचेतयमाना क्रोधावेगरूक्षाक्षरमवदम्—'आः पाप[4], कथमेवं गदतो[5] मामुत्तमाङ्गे ते न निपतितं वज्रम्,अवशीर्णा वा न सहस्रधा जिह्वा, विह्वलतां न गता वा वाणी, नष्टानि

तस्मात्, यदि, आत्मप्रदानेन = स्वसमर्पणेन, अत्र = अस्मिन् स्थाने, माम् = वैशम्पायनम् न, सम्भावयसि = सत्करोषि, तदा = तर्हि, अहम् = वैशम्पायनः, कुसुमशर-शिशिरकराभ्याम् = कामदेव-चन्द्राभ्याम्, हतः = मारितः, अस्मि ।

महाश्वेता स्वप्रतिक्रियां वर्णयति—अहं त्वित्यादिना । तु = परन्तु, अहम् = महाश्वेता, तदाकर्ण्य = तस्य कथनं श्रुत्वा, झगिति = शीघ्रमेव, क्वचित्तु—झिगिति पाठः, उत्तमेत्यादिः—उत्तमाङ्गात् (= मस्तकात्) निर्गता (= निःसृता) ज्वाला (=अर्चिः) यस्याः सा तादृशी सती अहम्, रोषानलेन = कोपाग्निना, तम् = वैशम्पायनम्, निर्दहन्ती = ज्वालयन्ती, इव, उन्मिषदित्यादिः—उन्मिषन्तः (= प्रकटीभवन्तः, विकसन्तः) बाष्पः (= अश्रु) एव स्फुलिङ्गाः (= अग्निकणाः) यस्यां सा तादृश्या, दृष्ट्या = दृशा, नेत्रेण, तदा = तस्मिन् काले, तम्, तर्जयन्ती = सर्वतः तर्जनां प्रापयन्ती, इव, आ पादतलात् = चरणतलम् आरभ्य, उत्कम्पितेत्यादिः—उत्कम्पिता (= वेपथुम्=प्रकम्पनं प्राप्ता) गात्रयष्टिः = देहः यष्टिः इव यस्याः सा तादृशी, आविष्टा = भूतादिगृहीता, इव, आत्मानम् = स्वाम्, अपि, अचेतयमाना = अजानन्ती, क्रोधेत्यादिः—क्रोधस्य (= प्रवृद्धकोपस्य) आवेगेन (= आवेशेन) रुक्षाणि (= कठोराणि) अक्षराणि (=वर्णाः) यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा, अवदम् = अवोचम् । आः पाप ! = अरे पापिन् !, माम् = महाश्वेतां तपस्विनीम्, एवम् = अनेन प्रकारेण, गदतः = वदतः, ते = तव वैशम्पायनस्य, उत्तमाङ्गे = मस्तके, शिरसि वा, वज्रम् = अशनिः, कथम् = कस्मात् हेतोः, न, पतितम् = भ्रष्टम् ? वा = अथवा, जिह्वा = रसना, सहस्रधा = सहस्रप्रकारैः, न अवशीर्णा = छिन्ना भिन्ना, जाता ? वा = अथवा, वाणी = वाक्, विह्वलताम् = कलुषताम्, विकलवताम्, न, गता = याता ? वा = अथवा, अक्षराणि = वर्णाः, न, नष्टानि = नाशं प्राप्तानि ? मन्ये =

द्वारा तुम मेरा सम्मान नहीं करती हो, अथवा मुझे नहीं बचाती हो तो कामदेव और चन्द्रमा इन दोनों के द्वारा मैं मार दिया गया हूँ ।'

किन्तु इस बात को सुन कर मैं धिक्कार के साथ अपने मस्तक से निकलने वाली लपटों से युक्त होती हुई, क्रोधाग्नि से उसको जलाती हुई सी, उमड़ पड़े आंसूरूपी अग्निकणों वाली दृष्टि से उस समय उसे डराती (धमकाती) हुई सी, पैरों तक कांपते हुये शरीर वाली होकर भूतादि से आविष्ट (व्याप्त) सी होती हुई, अपना भी ध्यान न रखती हुई, क्रोध के आवेग से कठोर अक्षरों में कहने लगी—'अरे पापी ! मुझ से ऐसी बात कहते हुये तेरे शिर पर वज्र (बिजली) क्यों नहीं गिर पड़ा ? तुम्हारी जीभ हजारों टुकड़ों में क्यों नहीं बट गई ? तुम्हारी वाणी क्यों नहीं विह्वल (विकल, शक्तिशून्य) हो गई ? अथवा [तेरे मुख से निकले] अक्षर ही नष्ट

---

१. ······प्रतापेन । २. झटिति, धिगिति । ३. तर्जनायैव ।
४. हताश । ५. एवं वादिनस्तवोत्तमाङ्गे ।

वा नाक्षराणि। मन्ये च न सन्त्येव तेऽस्मिन्नञ्छरीरे सकललोकशुभाशुभसाक्षिभूतानि पञ्च महाभूतानि। येनैवं वदन्नाग्निना भस्मीकृतोऽसि, न वायुना[1] हृतोसि, नाम्भसा[2] प्लावितोसि, न धरित्र्या[3] रसातलं प्रवेशितोसि, नापि तत्क्षणमेवाकाशेनात्मनोर्निर्विशेषतां नीतोसि। अव्यवस्थितो व्यवस्थितेऽस्मिँल्लोके[4] कुतस्त्वमुत्पन्न एवंविधः, यस्तिर्यग्जातिरिव कामचारी न किञ्चिदपि वेत्सि। येनैवं खलु हतविधात्रा[5] केनाप्युपदर्शितमुखरागः[6] स्वपक्षपातमात्रप्रवृत्तिरनिरूपितस्थानास्थानवादी शुक इव वक्तुमेवं शिक्षितस्तेनैव किमु[7]

जानामि, च, ते = वैशम्पायनस्य, अस्मिन् = पुरोवर्तिनि, शरीरे = देहे, सकलेत्यादिः—सकललोकानाम् (= समस्तजनानाम्) शुभाशुभयोः (= कल्याणाकल्याणयोः, पापपुण्ययोर्वा) साक्षिभूतानि (= साक्षीणि, साक्षात्कारीणि) पञ्च, महाभूतानि = पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यानि, न, सन्ति = वर्त्तते, एव = इदमवधारणे, येन = हेतुना, एवम् = पूर्वोक्त प्रकारेण, वदन् = कथयन्, अग्निना = अनलेन, न, भस्मीकृतः = दग्धः, असि, वायुना = पवनेन, न, हृतः = दूरं प्रापितः, असि, अम्भसा = जलेन, न, प्लावितः = प्रवाहितः, असि, धरित्र्या = पृथिव्या, रसातलम् = पातालम्, न, प्रवेशितः = प्रवेशं कारितः, असि, आकाशेन = व्योम्ना, तत्क्षणमेव = तत्कालमेव, आत्मनोर्निर्विशेषताम् = स्वसमानताम्, शून्यत्वमिति भावः, नापि, नीतः = प्रापितः, असि ? व्यवस्थिते = पञ्चभूतात्मकरूपेण विहितव्यवस्थे, अस्मिन्, लोके = संसारे, एवंविधः = एतादृशः सर्वथोच्छृङ्खलः, अव्यवस्थितः = निर्मर्यादः, त्वम्, कुतः = कस्मात् स्थानात् कारणाद् वा, उत्पन्नः= सञ्जातः ? यः = त्वम्, तिर्यक्जातिः = पशुपक्षियोनिजातः, इव, कामचारी = स्वेच्छाचारी, किञ्चिदपि, न वेत्सि = जानासि ? येन = यस्मात् कारणात्, एवम्, हतविधात्रा = दुष्टेन ब्रह्मणा, केनापि = कारणेन, उपदर्शितमुखरागः—उपदर्शितः (= प्रकटितः) मुखे (= आनने) रागः (=लालिमा, अनुरागः च) येन स तादृशः, [शुकः रक्तमुखो भवति वैशम्पायनोपि अनुरक्तमुखो वर्तते इति साम्यम्], स्वपक्षेत्यादिः—स्वस्य (= निजस्य) पक्षयोः (= पतत्रयोः) पातः (= पातनम्) एव (= मात्रम्) तस्मिन् प्रवृत्तिः (= प्रवर्तनम्) यस्य सः, पक्षान्तरे—स्वीयाभिप्राय-प्रकटनमात्रव्यापृतः, अनिरूपितेत्यादिः—अनिरूपितम् (= न ज्ञातं विचारितं वा) स्थानम् (= उचितम्, प्रसङ्गः च) अस्थानम् (= अनुचितम्, अप्रसङ्गः च) तस्मिन् वदितुम् (= भाषितुम्) शीलं

क्यों नहीं हो गये ? मैं तो यही समझती हूँ कि समस्त लोगों के शुभ और अशुभ (पाप और पुण्य) के साक्षी (गवाह) पञ्च महाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी) ये तुम्हारे इस शरीर में हैं ही नहीं। यही कारण है जिससे तुम ऐसा बोलते हुये न अग्नि द्वारा जला दिये गये हो, न वायु द्वारा कंपा दिये या उड़ा दिये गये हो, न जल द्वारा बहा दिये गये हो, न पृथ्वी द्वारा रसातल (पाताल) में भेज दिये गये हो और न उसी समय आकाश द्वारा अपने समान अर्थात् शून्य बना दिये गये हो ! इस व्यवस्थायुक्त (मर्यादित) संसार में अव्यवस्थित (स्वेच्छाचारी) तू कहाँ से पैदा हो गया जो पशु-पक्षियों के समान स्वेच्छाचारी होता हुआ कुछ भी नहीं जान पा रहा है ? जिस किसी अभागे विधाता ने इस प्रकार से मुखराग (= लालिमा, प्रेम) प्रकट करने वाले, अपने पक्षपात में ही लगे हुए (अर्थात् अपने विषय में ही सब करते हुए अथवा पंखों की

---

१. धूतोऽसि, आहतः, अपहृतः। २. पयसा। ३. धात्र्या।
४. लोकत्रये। ५. हतविधिना।
६. समुपदर्शित-वदनरागः। ७. किमिति, किमुत।

तस्यामेव जातौ न निक्षिप्तोसि[1]। तेनैकान्तहासहेतु[2]रेवं वदन्नपि न क्रोधमुत्पादितवानसि। त्वदुक्ते[3] दुःखिताहं ते संविभागमिमं करोमि येनात्मवचनानुरूपां जातिमापन्नो नैवास्मद्विधाः[4] कामयसे।' इत्युक्त्वा चन्द्राभिमुखी भूत्वा कृताञ्जलिः पुनरवदम्—'भगवन् परमेश्वर सकलभुवनचूडामणे लोकपाल, यदि मया देवस्य पुण्डरीकस्य दर्शनात्प्रभृति मनसाऽप्यपरः पुमान्न चिन्तितस्तदानेन मे सत्यवचनेनायमलीककामी मदुदीरितायामेव

यस्य स तादृशः, शुकः = कीरः, इव, वक्तुम् = भाषितम्, एवम् = अनेन प्रस्तुतरूपेण, शिक्षितः= पठितः, असि, तेनैव = हतविधात्रा, तस्याम् एव, जातौ = शुकयोनौ, किमु = किमर्थम्, न, निक्षिप्तः = पातितः, जनितः, असि = भवसि ? तेन = कारणेन, शुकवत् समुत्पादनयोग्यतया, एकान्वेत्यादिः— एकान्तेन (= निश्चयेन) हासस्य (= प्रहसनस्य) हेतुः (= निमित्तभूतः), अतीवोपहास्यः, एवम् = प्रस्तुतरूपेण, वदन् = प्रलपन्, अपि, क्रोधम् = कोपम्, न, उत्पादितवान् = जनितवान्, असि। [वस्तुतस्तु—एकान्तहासहेतु एवं वदन्' इति पाठो युक्ततरः, 'एकान्तहासहेतु' इत्यस्य वदन-क्रिया-विशेषणत्वस्यैवोचितत्वात्। यदि शुकः सन् त्वमेवम् अकथयिष्यत् तदा मम क्रोधभाजनं नाभविष्यत् परन्तु मनुष्यः सन् एव वदन् त्वं मे क्रोधविषय एव इति तस्या भावः।] त्वदुक्तेः = तव कथनात्, 'त्वदुक्ते' इति सप्तम्यन्तपाठे 'तव कथने' इत्यर्थः, दुःखिता = दुःखमुपगता, अहम् = महाश्वेता, ते = तव वैशम्पायनस्य, इमम्, संविभागम् = विभज्य प्रदानम्, करोमि = विदधामि, तव वचनैर्मम मनसि यद् दुःखं संजातं तस्य विभागं तुभ्यमपि दुःखं प्रदायैव करोमीति तदाशयः, येन = विभज्य दुःख-प्रदानेन हेतुना, आत्मवचनानुरूपाम् = स्वकथनसदृशाम्, जातिम् = जन्म, शुकयोनौ जन्म, आपन्नः = प्राप्तः, सन् त्वम्, अस्मद्विधाः = मत्सदृशीः सतीः स्त्रीः, नैव, कामयसे= इच्छसि, वासनापूर्तिहेतुत्वेनाभिलषिष्यतीति तद्भावः।' इति = एवम्, उक्त्वा, चन्द्राभिमुखीभूत्वा= निशाकरस्य संमुखीभूय, कृताञ्जलिः = बद्धाञ्जलिः सती, अहं पुनः, अवदम् = कथितवती।

सा स्वीयमाक्रोशवचनं प्रतिपादयति—भगवन् इत्यादिना। भगवन् परमेश्वर, सकल-भुवन-चूडामणे = समस्तसंसारस्य शिरोमणे! यदि, मया = महाश्वेतया, देवस्य, पुण्डरीकस्य = एतन्नाम्नः, दर्शनात् = विलोकनात्, प्रभृति = आरभ्य, मनसा = चेतसा, अपि, अपरः = पुण्डरीक-भिन्नः, पुमान् = पुरुषः, न = नैव, चिन्तितः = ध्यातः, तदा=तस्यां स्थितौ, मे = मम महाश्वेतायाः, अनेन सत्यवचनेन=ऋतभाषणेन, अलीककामी = मिथ्याकामुकः, अयम्=वैशम्पायनः, मदुदीरितायाम् =

फड़फड़ाहट में ही लगे हुए), उचित तथा अनुचित स्थान को बिना विचारे ही जो कुछ बोल देने वाले तोते के समान बोलने के लिये इस प्रकार से सिखाया गया है, क्यों नहीं उसी विधाता ने उसी तोते की योनि में तुझे डाल दिया ? यही कारण है कि अत्यन्त (पूरी तरह) उपहास का हेतुभुत तू इस प्रकार से बोलता हुआ भी मेरे क्रोध को पैदा नहीं कर पाया है। तेरे बोलने से मैं बहुत दुःखी हुई अतः अपने इस दुःख को तुम्हारे साथ बांटती हूँ अर्थात् जैसे मैं दुखी हूँ वैसे ही तुझे भी दुखी कर देती हूँ। जिससे कि अपने बोलने के अनुरूप (योग्य) अर्थात् शुक की योनि में पड़ा हुआ तू हम जैसी साध्वी स्त्रियों की कामना न कर सके—ऐसा कह कर चन्द्रमा की ओर मुख किये हुई, हाथ जोड़ कर फिर कहने लगी—"हे भगवन्, हे परमेश्वर, सारे संसार के शिरोमणि, लोकरक्षक ! यदि मैंने स्वामी पुण्डरीक के दर्शन से लेकर आज तक मन से भी किसी अन्य पुरुष का ध्यान न किया हो तो मेरे इस सत्य वचन से यह झूठा कामी मेरी कही हुई ही योनि में जा गिरे अर्थात् तोता बन जाय।

१. क्षिप्तः। २. हासहेतुं वदन्। ३. त्वद्दुरुक्तेस्तेऽहम्, त्वदुक्ते। ४. अस्मद्विधा।

जातौ पततु', इति ।

स च मे [1]'वचसोऽस्यानन्तरमेव न वेद्मि किमसह्यवृत्तेर्मदनज्वरस्य वेगादुत सद्योविपाकस्यात्मनो दुष्कृतस्य गौरवादाहोस्विन्मद्वचसः सामर्थ्यादेव [2]छिन्नमूलस्तरुरिवाचेतनः क्षितावपतत् । [3]अतिक्रान्तजीवितेऽस्मिन् [4]कृताक्रन्दात्तत्परिजनाच्छ्रुतवती यथासौ महाभागस्यैव मित्रं भवति ।' इत्युक्त्वा च त्रपावनतमुखी महीं महीयसाश्रुवेगेन[5] तूष्णीमेवाप्लावितवती ।

चन्द्रापीडस्य तु तदाकर्ण्य कर्णान्तायतलोचनद्वयामीलन[6]भग्नदृष्टेर्भ्रष्टवचनसौष्ठवस्य

मया कथितायाम्, एव, जातौ = योनौ, पक्षियोनाविति भावः, पततु = पतित्वा जन्म गृह्णातु' इतिः = शाप-समाप्तौ ।

स चेति । सः = वैशम्पायनः, च, मे = मम, अस्य = पूर्वोक्तस्य, वचसः = वचनस्य, शापप्रदानस्येति भावः, अनन्तरम् = पश्चाद्, एव, न, वेद्मि = जानामि, किम्, असह्यवृत्तेः = असह्यव्यापारस्य, मदनज्वरस्य = कामसन्तापस्य, वेगात् = रयात्, उत = अथवा, सद्योविपाकस्य = तत्क्षणफलप्रदानप्रवृत्तस्य, आत्मनः = स्वस्य, दुष्कृतस्य=पापस्य, गौरवात् = महत्वात्, आहोस्वित् = अथवा, मद्वचसः = मम महाश्वेतायाः वचनस्य, सामर्थ्यात्=प्रभावाद्, एव, छिन्नमूलः = उत्पाटितमूलः, तरुः = वृक्षः, इव, अचेतनः = चेतनाशून्यः, सन्, क्षितौ = भूमौ, अपतत् = पतितवान् । अतिक्रान्तजोविते—अतिक्रान्तम् (= निर्गतम्) जोवितम् (= जीवनम्) यस्य तस्मिन्, तादृशे, सति, अस्मिन्=वैशम्पायने, कृताक्रन्दात्=विहितविलापात्, परिजनात्=सेवकलोकात्, श्रुतवती = अशृणवम्, यथा, असौ = एष ब्राह्मणयुवा, महाभागस्य=श्रीमतः, एव, मित्रम्=वयस्यः, भवति = अस्ति ।' इति, उक्त्वा, च, त्रपावनतमुखी = लज्जयावनतवदना, सती, महीयसा = महत्तरेण, अत्यधिकेन, वा, अश्रुवेगेन = नेत्रसलिलप्रवाहरयेण, तूष्णीम् = जोषम्, एव, महीम् = पृथिवीम्, आप्लावितवती = पूरितवती, अश्रूणामाधिक्येन धरा परिपूर्णा कृतेति तद्भावः ।

चन्द्रापीडस्येति । तु=किन्तु, तत्=महाश्वेतोक्तम्, आकर्ण्य=श्रुत्वा, 'चन्द्रापीडस्य हृदयमस्फुटदित्यत्रान्वयः' कर्णान्तेत्यादिः—(= श्रवणप्रान्तम्) यावत् आयतम् (= विशालम्) यद् लोचनयोः (= नेत्रयोः) द्वयम् (= युगलम्) तस्य आमीलनम् (= मुद्रणम्) तेन भग्ना

मेरे यह कहने के बाद ही, वह युवक असहनीय काम के वेग के कारण अथवा अपने पापों की अधिकता के तत्काल फल देने के कारण अथवा मेरे उक्त वचन के प्रभाव के कारण ही कटी हुई जड़ वाले वृक्ष के समान अचेत होकर जमीन पर गिर पड़ा। इसके प्राण निकल जाने पर रोते हुये सेवकों के मुख से यह सुना कि वह आपका मित्र था।'—ऐसा कह कर लज्जा से मुख झुकाये हुई चुपचाप ही बहुत अधिक आसुओं के वेग से पृथ्वी को गिला कर दिया, पृथ्वी को आसुओं की धारा से भिगा दिया ।

यह सुनकर कानों के प्रान्तभाग तक फैले हुये दोनों नेत्रों के बन्द हो जाने से दृष्टि बन्द हो

---

१. मद्वचसोऽस्यानन्तरमेव, स तु मद्वचनान्तरम् । २. आच्छिन्नमूलः ।
३. अपक्रान्त० । ४. कृताक्रन्दात्तपरिजनाच्छ्रुतवती, कृताक्रन्दात् तत्परिजनात् श्रुतम् ।
५. प्लावितेन । ६. ...मग्न... ।

'भगवति, कृतप्रयत्नायामपि भगवत्यामपुण्यभाजास्मिञ्जन्मनि मया न प्राप्तं देव्याः कादम्बर्याश्चरणपरिचर्यासुखं तज्जन्मान्तरेऽपि भगवती सम्पादयित्री भूयात्' इति गदत एव कादम्बरीसमागमाप्राप्तिदुःखेनेव[1] भेदोन्मुखं मुकुलमिव शिलीमुखाघातात् स्वभावसरसं हृदयमस्फुटत्।

अथ महाश्वेतायाः शरीरमुत्सृज्य सम्भ्रमप्रतिपन्नचन्द्रापीडशरीराया—'भर्तृदारिके, किं लज्जया, पश्य तावदन्यथैव कथमप्यास्ते देवश्चन्द्रापीडः, भग्नेवास्य[2] ग्रीवा न मूर्धानं

(= नष्टा, अवरुद्धा) दृष्टिः (= अवलोकन सामर्थ्यम्) यस्य तादृशस्य, [अत्र षष्ठ्यन्तपदानि 'चन्द्रापीडस्य' विशेषणानि ।] भ्रष्टेत्यादिः—भ्रष्टम् (= नष्टम्, लुप्तम्) वचनस्य (= वचसः) सौष्ठवम् (= सौन्दर्यम्) यस्य तादृशस्य, पुनः कीदृशस्य ? 'भगवति ! = सम्माननीये ! महाश्वेते ! भगवत्याम् = भगवत्यामादरणीयायाम्, कृतप्रयत्नायाम् = विहितप्रयासायाम् अपि, अपुण्यभाजा = पापिना, मया = चन्द्रापीडेन अस्मिन् जन्मनि = इह भवे, देव्याः कादम्बर्याः, चरणपरिचर्यासुखम् = पादसेवानन्दः, न, प्राप्तम् = लब्धम्, तत् = तस्मात्, जन्मान्तरे = अन्यस्मिन् भाविनि भवे, अपि, भगवती = पूज्या भवती, सम्पादयित्री = जनयित्री भूयात् = भवेत्, [अत्र जन्मनि भवत्या कादम्बर्याः मम च सम्मेलनाय महान् प्रयासः कृतः, स विफलो जातः, अतो जन्मान्तरे भवती एव इदमपूर्णं कृत्यं सम्पादयिष्यति इति तदाशयः ।] इति = पूर्वोक्तम्, गदतः = अस्फुटं वदतः एव, चन्द्रापीडस्य = राजकुमारस्य, कादम्बरीत्यादिः—कादम्बर्याः समागमः (= सम्मिलनम्) तस्य या अप्राप्तिः (= अनुपलब्धिः) तस्या दुःखेन (= कष्टेन), इव, शिलीमुखाघातात् = भ्रमराणां भ्रमणात् जातः यः संघट्टः तस्मात्, हेतोः, स्वभाव-सरसम् = प्रकृत्या मधुरम्, भेदोन्मुखम् = स्फुटनायोद्यतम्, मुकुलम् = कुड्मलम्, इव, स्वभावसरसम्, हृदयम् = चित्तम्, अस्फुटत् = विदीर्णं जातम् ।

अथेति । अथ = चन्द्रापीडस्य हृदयस्फोटनानन्तरम्, महाश्वेतायाः = स्वस्वामिन्याः, शरीरम् = देहम्, उत्सृज्य = त्यक्त्वा, सम्भ्रमेत्यादिः—सम्भ्रमेण (= व्यग्रतया, शीघ्रतया वा) प्रतिपन्नम् (= गृहीतम्, अवलम्बितम्) चन्द्रापीडस्य शरीरम् (= देहः) यया तस्याः तादृश्याम्, [तरलिकायामित्यस्य विशेषणमिदम्] 'भर्तृदारिके = स्वामिनि महाश्वेते ! लज्जया = त्रपया, किम् ? = न किमपि फलमिति भावः, पश्य = विलोकय, देवः चन्द्रापीडः, अन्यथा = विचित्रप्रकारेण, एव कथमपि = येन केन प्रकारेण, आस्ते = तिष्ठति, वर्तते, अस्य = चन्द्रापीडस्य, भग्ना = त्रुटिता, छिन्ना, इव, ग्रीवा = कन्धरा, मूर्धानम् = शिरः,

जाने वाले तथा वचनों की मिठास समाप्त हो जाने वाले चन्द्रापीड ने यह कहा—'भगवती ! आपके प्रयास करने पर भी मुझ पापी को इस जन्म में देवी कादम्बरी के चरणों की सेवा का सुख नहीं प्राप्त हो सका, अतः दूसरे जन्म में भी आप इस कार्य को पूरा करने वाली हों ! ऐसा कहते ही मानों कादम्बरी के मिलन का सुख प्राप्त न करने के कारण विदीर्ण होने को उद्यत स्वभावतः सरस उसका हृदय उसी प्रकार फट गया जैसे फटने के लिये तैयार हुई कली स्वभाव से सरस होती हुई भी भौरों के आघात से फट जाती है ।

इसके बाद महाश्वेता के शरीर को छोड़कर घबड़ाहट (हड़बड़ाहट) से चन्द्रापीड के शरीर को थामती हुई—'स्वामिनी ! अब लाज करने से क्या लाभ ? देखो ये राजकुमार तो कैसे और किसी प्रकार के होते जा रहे हैं । इनकी गरदन टूटी हुई जैसी होकर शिर को नहीं धारण कर पा रही है ।

१. दुःखेनैव । २. भग्नेव ।

धारयति, विचालितोपि न किञ्चिच्चेतयते, नान्तःप्रविष्टतारके समुन्मीलयति विलोचने, नायं यथा[1]वस्थितपतितानां गात्राणामावरणं करोति, [2]नोच्छ्वसिति हृदयेन। हा देव चन्द्रापीड चन्द्राकृते कादम्बरीप्रिय क्वेदानीं [3]त्वया विना गम्यते' इत्युक्त्वा[4]र्तवचसि तरलिकायाम्, तिर्यगाभुग्नचन्द्रापीडमुखनिहितनिश्चल[5]स्तब्धदृष्टिनिश्चेष्टायां महाश्वेतायाम्, 'आः पापे दुष्टतापसि! किमिदं त्वया[6] कृतम्, [7]अपाकृताखिलजगत्पीडस्य तारापीडस्य कुलमुत्सा-

---

न, धारयति = वहति, अवलम्बनं ददाति ? विचालितः = चैतन्यसञ्चालनाय प्रकम्पितः, अपि, न, किञ्चित्, चेतयते = संज्ञां प्राप्नोति, अन्तःप्रविष्टतारके—अन्तः (= मध्ये, आभ्यन्तरे) प्रविष्टे (= प्रवेशं विहिते) तारके (= कनीनिके) ययोः ते, तादृशे, विलोचने = नेत्रे, न, समुन्मीलयति = समुद्घाटयति, अयम् = एषः, यथावस्थितपतितानाम्—अवस्थितम् अनतिक्रम्य यथा स्यात् तथा पतितानाम् (= अधोगतानाम्), गात्राणाम् = अवयवानाम्, आवरणम् = = आच्छादनम् न, करोति = विदधाति, हृदयेन = चेतसा, न उच्छ्वसिति = उच्छ्वासं गृह्णाति, हा देव, चन्द्राकृते = चन्द्रतुल्याकार चन्द्रापीड, कादम्बरीप्रिय = मम स्वामिन्याः प्राणवल्लभ, त्वया = कादम्बर्या, बिना = ऋते, इदानीम् = अधुना, क्व = कुत्र, गम्यते = प्रस्थीयते ? इति उक्त्वा = विलपित्वा, आर्त्तवचसि = करुणवचनायाम्, तरलिकायाम् = महाश्वेतासेविकायाम्, सत्याम्, तिर्यगित्यादिः—तिर्यक् (= वक्रम्) यथा स्यात् तथा आभुग्नम् (=आनतम्)यत् चन्द्रापीडमुखम् (=चन्द्रापीडाननम्) तस्मिन् निहिता (=संस्थापिता) निश्चला (=स्पन्दशून्या) स्तब्धा (= जडा) च दृष्टिः (= नेत्रम्) यया सा तादृश्याम्, अथ च निश्चेष्टायाम् (= शारीरिकव्यापारशून्यायाम्), महाश्वेतायाम् = एतन्नाम्न्यां कादम्बरीसख्याम्, सत्याम्, 'आः इदं शोके क्रोधे वा, पापे = पापिनि ! दुष्टतापसि = दुष्टतपस्विनि ! त्वया, इदम् = पुरोवर्ति, किम् = अवर्णनीयम् कृतम्=विहितम् ? अपाकृतेत्यादिः—अपाकृताः (= दूरीकृताः, निवारिताः) अखिलस्य (= सर्वस्य) जगतः (= संसारस्य) पीडा (= व्यथा, दुःखम्) येन स तादृशस्य तारापीडस्य = एतन्नाम्नो राज्ञः, कुलम् = अन्वयः, वंशः, उत्सादितम् = उच्छेदितम्, बिनाशितम् ।

हिलाये डुलाये जाने पर भी इन्हें कुछ होश नहीं आ रहा है। भीतर धँसी हुई पुतलियों वाली आँखे नहीं खोल रहे हैं। जैसे-तैसे गिरे हुए अंगों को नहीं ढक रहे हैं! न हृदय से सांस ले रहे हैं। हा देव चन्द्रापीड ! हाय चन्द्रमा के समान आकृति वाले ! हाय कादम्बरी के प्रिय ! उस कादम्बरी के बिना अकेले-अकेले इस समय कहाँ जा रहे हो ?' इस तरह से तरलिका विलाप करने लगी। तिरछे मुड़े हुए चन्द्रापीड के मुख पर निश्चल तथा स्तब्ध दृष्टि डालते हुई महाश्वेता अचेत हो गई। (तभी) 'अरे पापिन और दुष्ट तपस्विनी ! तूने यह क्या कर डाला, सारे संसार की पीड़ा हर लेने वाले महाराज तारापीड के वंश को मिटा दिया। हम लोगों के साथ-साथ (सारी) प्रजा को अनाथ कर डाला।

---

१. यथास्थितानां, यथावस्थितपतितानाम् । २. न मनागप्युच्छ्वसित्येव ।
३. 'तया' इत्येवोचितः पाठः । ४. उक्त्वा उन्मुक्तार्तवचसि, इत्युन्मुक्तार्तवचसि ।
५. निखिल० । ६. त्वयापकृपया ।
७. व्यपाकृत, अकृत ।

दितम्[1] अनाथीकृताः प्रजाः सहास्माभिः, भग्नाः पन्थानो गुणानाम्, अर्गलिताः ककुभोऽर्थिलोकस्य, कस्य वदनमीक्षतां[2] लक्ष्मीः, कोऽवलम्बनं भवतु भूमेः, कं सेवन्तां सेवकाः, त्वया विना सम्प्रति व्यसनमेव सेवा संवृत्ता, [3]वृत्तं समानशीलत्वम्, अस्तमिता च [4]परिजनश्लाघा, लघूकृतो भृत्यादरः, दूरं गतानि प्रियालपितानि, समाप्ताः परित्यागकथाः, कथं कथावशेषीभूतोऽसि, भूतपूर्वाः कमुपयान्तु [5]सम्प्रति प्रजाः[6], क्व[7] सम्प्रति साधूनां समाधानम्, अधुना [8]धूर्धरे त्वयि विपन्ने कः समुद्वहतु देवेन तारापीडेनोढां धुरम्, धीरस्यापि ते कथं कातर-

अस्माभिः = परिजनादिभिः, सह = साकम्, प्रजाः = पाल्यजनाः, अनाथीकृताः = स्वामिहीनाः अशरणाः कृताः, गुणानाम् = औदार्यादीनां प्रसिद्धानां वैशिष्ट्यानाम्, पन्थानः = मार्गाः; भग्नाः = भङ्गतां प्रापिताः, विच्छेदिताः, अर्थिलोकस्य = याचकजनस्य, ककुभः = दिशाः, अर्गलिताः = अर्गलायुताः कृताः, निरुद्धा उपगन्तुमिति भावः, लक्ष्मीः = राजश्रीः, कस्य = वदनम् = मुखम्, ईक्षताम् = विलोकयतु ? कः = अज्ञातः जनः, भूमेः = पृथिव्याः, अवलम्बनम् = आलम्बम्, आश्रयः, भवतु = अस्तु ? सेवकाः = परिचारकाः, कम् = अज्ञातम्, सेवन्ताम् = भजन्ताम्, उपासन्ताम् ? त्वया = भवता चन्द्रापीडेन, विना = ऋते, सम्प्रति = इदानीम्, सेवा = परिचर्या, व्यसनम् = कष्टम्, व्याधिः, एव, संवृत्ता = सञ्जाता। समानशीलत्वम् = सदृशस्वभावत्वम्, सर्वेषां प्रति समानाचरणमिति भावः, वृत्तम् = अतीतम्। परिजनश्लाघा = सेवकलोकस्य प्रशंसा, अस्तमिता = अस्तं गता, विनष्टा। भृत्यादरः = सेवकानां सम्मानः, लघूकृतः = स्वल्पीकृतः। प्रियालपितानि = मृदुभाषितानि, दूरम्, गतानि = प्रयातानि। परित्यागकथाः = दानविषयकाणि कथानकानि, समाप्ताः = विनाशं प्राप्ताः। कथम् = कस्मात् कारणात्, किमर्थम् वा, कथावशेषीभूतः—कथा (= नामग्रहणम्) एव अवशेषः (= अवशिष्टः) यस्य तादृशः, असि = वर्तसे ? सम्प्रति = अधुना, भूतपूर्वाः = पूर्वाः भूताः, प्रजाः = पाल्यलोकाः, कम् = अज्ञातम्, उपयान्तु = उपसर्पन्तु, स्वकार्यसिद्ध्यर्थमिति भावः। सम्प्रति, साधूनाम् = सज्जनानाम्, समाधानम् = समस्यादीनां निराकरणम्, मानसी शान्तिर्वा, क्व = कस्मिन् स्थले भविष्यतीति भावः। धूर्धरे = राज्यभारवहनसमर्थे, त्वयि = भवति चन्द्रापीडे विपन्ने = मृते सति, अधुना = इदानीम्, तारापीडेन = एतन्नामकेन तव पित्रा, ऊढाम् = सन्धारिताम्, धुरम् = राज्यभारम्, कः = अज्ञातः, समुद्वहतु = धारयतु ? धीरस्य = धैर्यवतः, अपि, ते = तव

गुणों के मार्गों को छिन्न-भिन्न कर डाला। याचकों के लिये दिशाओं का तालाबन्दी (अर्गला-बन्धन) कर दी अर्थात् उनके लिये अब कोई स्थान नहीं रह गया। अब राजलक्ष्मी किसका मुख देखेगी ? अब इस पृथ्वी का सहारा कौन बनेगा ? सेवक किसकी सेवा करेंगे ? [हाय चन्द्रापीड !] तुम्हारे बिना सेवा करना अब कष्ट ही रह गया है। सबके साथ समान व्यवहार करना समाप्त हो गया। नौकरों द्वारा प्रशंसा किया जाना समाप्त हो गया। नौकरों का आदर (सम्मान) अब कम हो गया। मीठी बातें दूर चली गईं। दान देने की कहानियाँ समाप्त हो गईं। कैसे तुम (आप) केवल नाम मात्र शेष रह गये ? अब भूतपूर्व प्रजा किसकी शरण में जाय ? अब सज्जनों [की समस्याओं] का समाधान कहाँ होगा ? अब राज्यभार को धारण करने वाले आप जैसे के नष्ट हो जाने पर महाराज तारापीड द्वारा वहन की (ढोई) गई राज्यधुरा को कौन ढोयेगा, वहन करेगा ? धैर्यशाली भी

१. उत्सारितम्। २. उद्वीक्षताम्। ३. निवृत्तं। ४. अश्रान्तपरिजन०। ५. साम्प्रतम्। ६. प्रज्ञाः। ७. किं। ८. धीर त्वयि, धूर्धरे त्वयि।

स्यैव शुचा भिन्नं हृदयम्,[१] दयालोरपि ते केयमद्येदृशी जाता निर्दयतास्मासु, देव प्रसीद, सकृदप्याज्ञापय, देहि[२] भक्तजनस्याभ्यर्थनाम्, प्रतिपद्यस्व प्राणान्, न त्वयि बिना क्षणमपि प्राणिति पुत्रवत्सलो देवस्तारापीडो न देवी विलासवती नाप्यार्यः शुकनासो न मनोरमा न राजानो नापि प्रजाः, परित्यज्य च सर्वानेकाकी क्व प्रस्थितोसि, कुतस्तवेयमेकपद एवेदृशी निष्ठुरता जाता, क्व सा गुरुजनस्योपरि भक्तिर्यदेवमनपेक्ष्य प्रयासि'—इत्युक्तवत्यवनितल-विमुक्तात्मन्यारटति परिजने, [३]तदाकर्णनोत्कर्णे—'हा हा किमेतदि'त्युद्भ्रान्तमनसि[४] समा-

---

चन्द्रापीडस्य, हृदयम् = चित्तम्, शुचा = वैशम्पायनशोकेन, कथम् = कस्मात्, भिन्नम् = द्विधाभूतम् ? दयालोः = दयावतः, अपि, ते = तव चन्द्रापीडस्य, अस्मासु = अस्मद्विषये, अद्य = अधुना, इयम् = अनुभूयमाना, का = अज्ञाता, निर्दयता = कठोरता, जाता = समुत्पन्ना ? देव, प्रसीद = प्रसन्नो भव, सकृदपि = एकबारमपि, आज्ञापय = समादिश, भक्तजनस्य = सेवकलोकस्य, अभ्यर्थनाम् = याचनाम्, देहि = प्रयच्छ। प्राणान् = असून्, प्रतिपद्यस्व = स्वीकुरु, धारयेति भावः। त्वया = भवता चन्द्रापीडेन, विना = ऋते, पुत्रवत्सलः = सुतस्नेही, देवः = स्वामी, तारापीडः = एतन्नामा तव पिता, क्षणमपि = लवमपि, अत्यल्पकालमपि, न, प्राणिति = श्वसिति, जीवतीति भावः, इदं क्रियापदमग्रेऽपि योज्यम्। देवी = महाराज्ञी, विलासवती = एतन्नाम्नी तव माता, न, प्राणिति, आर्यः = पूज्यः, शुकनासः = एतन्नामा प्रधानामात्यः, अपि, न, प्राणिति, मनोरमा = वैशम्पायनजननी, न, प्राणिति, राजानः = त्वदधीनाः नृपाः, अपि, न, प्राणन्ति, प्रजाः = तव पाल्यलोकाः, अपि, न, प्राणन्ति। सर्वान् = अस्मान् सकलान्, परित्यज्य = विहाय, एकाकी = अद्वितीयः, क्व = कुत्र अज्ञातस्थाने, प्रस्थितः = कृतप्रस्थानः, असि = वर्तसे ? एकपदे = एकदा, अकस्माद्, एव, तव = भवतश्चन्द्रापीडस्य, ईदृशी = एतादृशी, इयम्=वर्तमाना, निष्ठुरता = कठोरता, कुतः = कस्मात् कारणात्, जाता = उत्पन्ना ? गुरुजनस्य = पित्रादिलोकस्य, उपरि = विषये, सा = पूर्वं दृष्टा, भक्तिः = सेवाभावना, क्व = कुत्र ? यत् = यस्मात्, एवम् = अनेन प्रकारेण, अनपेक्ष्य = अपेक्षामकृत्वा, प्रयासि = प्रस्थितोऽसि—इति = इत्थम्, उक्तवति = कथितवति, अवनीत्यादिः—अवनितले (= भूतले) विमुक्तः (= निपातितः) आत्मा (=स्वदेहादिः) येन तेन तादृशे, परिजने= सेवकलोके, आरटति = आक्रन्दति, सति। तदाकर्णनोत्कर्णे = सेवकजनरुदनं श्रुत्वा उत्थितश्रवणे, 'हा हा' = इदमतिशोके, एतत्, किम्, इति = उक्त्वा, उद्भ्रान्तमनसि = व्याकुलचित्ते, राजपुत्रलोके =

आपका, कातर व्यक्ति के समान, शोक से हृदय कैसे फट गया ? दयालु भी आपकी आज हम सब पर यह किस प्रकार की निर्दयता (कठोरता) हो गई ? स्वामी ! प्रसन्न हो जाइये, एकबार भी आज्ञा दे दीजिये, हम भक्तों की प्रार्थना पूरी कर दीजिये, दुबारा प्राणों को धारण कर लीजिये, (क्योंकि) तुम्हारे बिना न पुत्रवत्सल महाराज तारापीड और न महारानी विलासवती, न आर्य शुकनास, न मनोरमा, न दूसरे राजा और न प्रजा एक क्षण भी जीवित रह सकते हैं। इन सभी को छोड़कर अकेले-अकेले कहाँ चल पड़े हो ? अचानक यह ऐसी तुम्हारी निष्ठुरता कहाँ से आ गई ? गुरुजनों पर आपकी वह भक्ति कहाँ चली गई जो इस प्रकार से उनकी अपेक्षा किये बिना ही चले जा रहे हो ?'–इस प्रकार से कहते हुए सेवक लोग अपने को जमीन पर लुढ़काये(गिराये)हुए जोर-जोरसे चिल्लाने लगे। उनके इस विलाप को सुनने से कान ऊपर किये हुए 'हाय हाय यह क्या हो गया'

---

१. शरीरम्। २. अवधेहि। ३. तदाकर्ण्योत्कर्ण्य। ४. उद्भ्रान्ते राजपुत्रलोके।

पतति राजपुत्रलोके, 'समुत्प्लुतोत्पक्ष्मनयनदर्शिनि चन्द्रापीडवदननिवेशितदृशि दीनतर-हेषारवकृताक्रन्दे शुचेव पर्यायोत्क्षिप्तखुरचतुष्काहतक्ष्मातले मुहुर्मुहुरात्मोन्मोचनायेवाच्छो-टितखरखलीन-कनकशृङ्खला-योगे तुरङ्गमतां मुमुक्षतीवेन्द्रायुधे, पत्रलेखानिवेदितचन्द्रापीडा-गमना चन्द्रोदयोल्लासिनी वेलेव महोदधेः समकरध्वजा व्याजीकृत्य [2]महाश्वेतादर्शनं

नृपसुतजने, समापतति = शीघ्रमागच्छति, सति । समुत्प्लुतेत्यादिः—समुत्प्लुते (= अश्रुजलपरिपूर्णे) उत्पक्ष्मणी (= ऊर्ध्वोत्थापितनेत्ररोमणी) याभ्यां तादृशे ये नेत्रे (= चक्षुषी) ताभ्यां पश्यति (= विलोकयति) तच्छीले तस्मिन्, चन्द्रापीडेत्यादिः—चन्द्रापीडस्य वदने (= आनने) निवेशिता (= निहिता, दत्ता) दृष्टिः (= विलोकनम्) येन तादृशे, दीनेत्यादिः—दीनतरः (= अतिशयेन दैन्ययुक्तः, करुणतरः) यः हेषारवः (=अश्वस्य स्वध्वनिः हेषितध्वनिः) तेन कृतः आक्रन्दः (= रोदनम्) येन तादृशे, शुचा = शोकेन, इव, पर्यायेत्यादिः—पर्यायेण (= एकैकक्रमेण) उत्क्षिप्तम् (= उत्थापितम्) खुराणाम् (= शफानाम्) चतुष्कम् (= चतुष्टयम्) तेन आहतम् (= ताडितम्) क्ष्मातलम् (= भूतलम्) येन तादृशे, मुहुर्मुहुः = बारं बारम्, आत्ममोचनाय = स्वस्य बन्धनान्मुक्ति-प्राप्तये, इव, आच्छोटितेत्यादिः—आच्छोटितः (= संच्छिन्नः) खरस्य (= कठोरस्य) खलीनस्य (= मुखनियन्त्रकपदार्थविशेषस्य) कनकशृङ्खलायाः (= सुवर्णगलायाः) च, योगः (= सम्बन्धः) येन तादृशे, इन्द्रायुधे=एतन्नामकेऽश्वे, तुरङ्गमताम्=अश्वयोनिम्, मुमुक्षति=त्यक्तुमिच्छति, इव सति ।

कादम्बरीसमागमनं निरूपयितुमारभते—पत्रलेखेत्यादिना । पत्रलेखेत्यादिः—पत्रलेखया (= चन्द्रापीडपरिचारिकया) निवेदितः (= आवेदितः, संसूचितः) चन्द्रापीडस्य (= राजकुमारस्य) आगमनम् (= तत्र सम्प्राप्तिः) यस्यै तादृशी ["कादम्बरी.........तत्रैवाजगाम' इत्यत्रान्वयः प्रथमान्तानि पदानि कादम्बर्या विशेषणानीति बोध्यम् ।] चन्द्रेत्यादिः—चन्द्रस्य (= शशिनः) उदयेन (= आकाशे समुद्गमनेन) उल्लसति (= उल्लासं प्राप्नोति, प्रवर्धते) इति शीलं यस्याः सा तादृशी, महोदधेः = महासागरस्य, वेला = समुद्रजलविकृतिः, इव (अत्र केचन—'वेला' इत्यस्य 'तटभूमि' रिति अथवा 'वीचिः' इति व्याख्यां कृतवन्तः, तत्तु न रुचिकरम्—"अब्ध्यम्बुकृतौ वेला कालमर्यादयोरपि" (अमरः ३।३।१९९) इत्यमरेण विरोधात् ।) समकरध्वजा = कामेन सहिता, पक्षे—मकररूपेण ध्वजेन सहिता, मात्रापित्रोः = जननीजनकयोः पुरः = अग्रे, महाश्वेतादर्शनम्,

---

ऐसा कहते हुए घबड़ाये हुए राजकुमार दौड़कर आने लगे । डबडबाये तथा बरौनियों को ऊपर किये हुए नेत्रों से देखता हुआ, चन्द्रापीड के शरीर पर आँखे गड़ाये हुआ, (टकटकी बाँधकर देखता हुआ), अत्यन्त दीनता से युक्त हिनहिनाहट की ध्वनि से आक्रन्दन करता हुआ, शोक के कारण मानों क्रमशः ऊपर उठाये जाते हुए चारों खुरों से भूतल को आहत करता (खोदता) हुआ, अपने को छुड़वाने के लिये मानों बार-बार कठोर लगाम तथा सोने की जंजीर को खड़खड़ाता हुआ इन्द्रायुध (अश्व) मानों तुरङ्गमता (अश्वयोनि) से अपनी मुक्ति चाहने लगा । [इसी के बीच में] पत्रलेखा द्वारा चन्द्रापीड के आगमन की सूचना प्राप्त की हुई, चन्द्रमा के उदय से उल्लसित (उछलती, ऊपर उठती हुई) महोदधि (= महासमुद्र) की लहर के समान, चन्द्रोदय में प्रसन्न होने वाली, उल्लासयुक्त, कामदेव को साथ लिये हुई (कामातुर), अपने माता पिता (चित्ररथ तथा गौरी) के आगे महाश्वेता

---

१. समुल्ललित० । २. कादम्बरीदर्शनं ।

मातापित्रोः पुरः, प्रतिपन्नश्रृङ्गारवेषाभरणा 'रणन्नूपुरयुगेन[1] मुखरमेखलादाम्ना[2] रम्योज्ज्वलाकल्पेन[3] कल्पितानङ्गबलविभ्रान्तिना[4] गृहीतसुरभिमाल्यानुलेपनपटवासाद्युपकरणेन नातिबहुना परिजनेनानुगम्यमाना, पुरः केयूरकेणोपदिश्यमानमार्गा[5] पत्रलेखाहस्तावलम्बिनी मदलेखया सह कृतालापा—'मदलेखे ! पत्रलेखा कथयति '[6]प्रत्यहमहं पुनस्तस्यैकान्तनिष्ठुरहृदयस्य शठमतेर्निर्घृणमनसो[7] निःस्पृहागमनमेव न श्रद्दधे, किं न स्मरसि तत्तस्य

व्याजीकृत्य = मिषीकृत्य, प्रतिपन्नेत्यादिः—प्रतिपन्नानि (= स्वीकृतानि, धारितानि) श्रृङ्गारः (= प्रसाधनम्) वेषः (= उज्ज्वलपरिधानम्) आभरणानि (= आभूषणानि) च यया तादृशी, रणन्नूपुरयुगेन—रणत् (= झंकारं कुर्वत्) नुपुरयुगम् (= मञ्जीरमिथुनम्) यस्य तेन तादृशेन, [इमानि तृतीयैकवचनान्तानि 'परिजनेन' इति वक्ष्यमाणस्य विशेषणानि ।] मुखरेत्यादिः—मुखरम् (=वाचालम्, शब्दायमानम्) मेखलायाः (=काञ्च्याः) दाम (=बन्धनसूत्रम्) यस्य तेन तादृशेन, रम्येत्यादिः—रम्यः (= रमणीयः, मनोहरः) उज्ज्वलः (= शुभ्रः) च आकल्पः (= वेषः) यस्य तेन तादृशेन, ['आकल्पवेषौ नेपथ्यम्' इत्यमरः २।६।९९] कल्पितेत्यादिः—कल्पिता (= जनिता) अनङ्गस्य (= कामदेवस्य) बलस्य (= सैन्यस्य) विभ्रान्तिः (= विशिष्टभ्रमः) येन तादृशेन, गृहीतेत्यादिः—गृहीतानि (= आत्तानि, धारितानि) सुरभि (= सुगन्धि) माल्यम् (= माला) अनुलेपनम् (=विलेपनम्) पटवासः (= कुङ्कुमादि-सुगन्धितचूर्णम्) आदौ येषां तानि उपकरणानि (= सामग्रीः) येन तादृशेन, नातिबहुना = अबहुसंख्येन, कतिपयेन, परिजनेन = सेवकलोकेन, अनुगम्यमाना = अनुस्रियमाणा । केयूरकेण = एतन्नामकेन स्वसेवकेन, उपदिश्यमानः (=सूच्यमानः, निर्दिश्यमानः) मार्गः (= पन्थाः) यस्यैः सा तादृशी, पत्रलेखायाः (= चन्द्रापीडसेविकायाः), हस्तम् (= करम्) अवलम्बते (= धारयति) इति शीलं यस्याः सा तादृशी, मदलेखया = स्वसेविकया, सह, कृतालापा—कृतः (= विहितः) आलापः (= सम्भाषणम्) यया सा तादृशी, 'मदलेखे !, पत्रलेखा = चन्द्रापीडस्य सेविका, प्रत्यहम् = प्रतिदिनम्, कथयति = भाषते, यत् अहम् = कादम्बरी, पुनः = द्वितीयवारम्, एकान्तेत्यादिः—एकान्तम् (= अत्यन्तम्) निष्ठुरम् (= कठोरम्) हृदयम् (= चित्तम्) यस्य तादृशस्य, शठमतेः—शठा (= धूर्ततायुक्ता) मतिः (= बुद्धिः) यस्य तादृशस्य, निर्घृणमनसः—निर्घृणम् (= निर्दयम्) मनः (= चेतः) यस्य तादृशस्य, तस्य = पूर्वोक्तस्य चन्द्रापीडस्य, निःस्पृहागमनम्—निःस्पृहम् (= निःस्वार्थम्, मदर्थमेव)

के दर्शन का बहाना बनाकर, श्रृङ्गार और वेशभूषा धारण की हुई, कुछ थोड़ी सी परिचारिकाओं द्वारा अनुगत की जाती हुई, जिन (परिचारिकाओं) की पायजेबें झन-झना रही थीं, कमर की करधनी बज रही थी, जो रमणीय तथा उज्ज्वल वेष धारण किये हुई थीं, जो कामदेव की सेना की भ्रान्ति उत्पन्न कराये हुई थी, जो सुगन्धित मालायें, विलेपन (उबटन), पटवास (सजाने का चूर्ण = पाउडर) आदि सामग्री लिये हुई थीं, (ऐसी सेविकायें जिसके पीछे-पीछे चल रही थीं ।) केयूरक द्वारा जिसे मार्ग समझाया जा रहा था, जो पत्रलेखा के हाथ का सहारा लिये हुई थी, मदलेखा के साथ वार्तालाप करती हुई—'अरी मदलेखा ! पत्रलेखा रोजाना कहती रहती है कि मैं अत्यन्त निष्ठुर (कठोर) हृदयवाले, छल बुद्धिवाले, निर्दयी मन वाले उस चन्द्रापीड के निःस्वार्थ आगमन में विश्वास ही नहीं करती हूँ । क्या तुम्हें स्मरण नहीं है कि मेरी उस अवस्था (दयनीय) दशा पर,

---

१. ...नूपुरेण, नूपुरयुगा । २. ...दामा । ३. ...वाससा ।
४. ...विभ्रमेण । ५. अपदिश्यमान० । ६. अन्यत् ।
७. निर्घृणस्यागमनम्, निस्त्रिंशस्यागमनम्, नृशंसस्यागमनम् ।

मदवस्थामश्रद्दधानस्य हिमगृहके मद्विमर्शाय[1] दुर्विदग्धबुद्धेर्वक्रभाषितं यत्र सस्मितमालोकितया त्वयैवास्मै सुतरामेवासंशयकारि[2] प्रत्युत्तरं दत्तम्[3]। तदसौ मरणेपि मे न श्रद्दधात्येवेमामवस्थाम्[4], अन्यथा[5] यदि 'मदर्थे दुःखमेवमियमनुभवती'त्येत[6]दस्याभविष्यत्तदा तथा गमनमेव नाकरिष्यत्, [7]तथागतोऽप्यसौ यत्किमपि वक्तव्यस्त्वयैव, मया पुनर्दृष्टोपि नालपितव्यो नोपालब्धव्यः, न चरणपतितस्याप्यनुनयो ग्राह्यः, नाहं प्रिय-

---

आगमनम् (= अत्र सम्प्राप्तिमेव) न, श्रद्दधे = विश्वसिमि। [अत्र 'निःस्पृहागमनम्'—इत्यस्य 'निःस्पृहस्य आगमनम्' इति व्याख्यानं दृश्यते परन्तु 'निःस्पृह' इति यदि आगमनस्यैव विशेषणं कल्प्यते तदा उचिततरं प्रतिभाति। कादम्बर्या अयमाशयो यत् चन्द्रापीडः स्वार्थं बिना केवलं मम दर्शनार्थं मिलनार्थं वा आगच्छतीति न मे विश्वासयोग्यम्।] किम्, न, स्मरसि = स्मरणं करोषि ? मम = कादम्बर्याः, अवस्थाम् = दयनीयदशाम्, अश्रद्दधानस्य = विश्वासमकुर्वतः, हिमगृहके = एतन्नामके शीतभवने, शैत्यप्रदानार्थं निर्मिते स्थलविशेषे, मद्विमर्शाय = तद्विषयकमदनुरागविचाराय, 'अहं तस्योपरि कियदनुरागं करोमी'ति विचारणायेति भावः, दुर्विदग्धमतेः = चतुरबुद्धेः, तस्य = चन्द्रापीडस्य, तत्, [1]वक्रभाषितम् = वक्रोक्तिम्, कौटिल्यमयं वचनमिति भावः, यत्र = यस्मिन् प्रसङ्गे, सस्मितम् = मन्दहाससहितम्, आलोकितया = दृष्टया, त्वया = मदलेखया, एव, अस्मै = चन्द्रापीडाय, सुतराम् = सम्यग्रूपेण, असंशयकारि = सन्देहाभावजनकम्, प्रत्युत्तरम् = प्रतिवचनम्, दत्तम् = कृतम्, तत् = तस्मात्, असौ = चन्द्रापीडः, मरणे = निधने, अपि, मे = कादम्बर्याः, एवम् = एतादृशीम्, अवस्थाम् = दुर्दशाम्, न, श्रद्दधाति = विश्वसिति। अन्यथा = उक्तवैपरीत्ये सति, यदि = चेत्, मदर्थे = चन्द्रापीडार्थम्, इयम् = एषा कादम्बरी, एवम् = अनेन प्रकारेण, दुःखम् = क्लेशम्, अनुभवति = अनुभवं करोति; सहते इति भावः, इति, एतत्, अस्य = चन्द्रापीडस्य, [मनसि] अभविष्यत् = अवर्तिष्यत, तदा, गमनम् = इतः उज्जयिनीं प्रति प्रस्थानम्, एव, न, अकरिष्यत् = व्यधास्यत्। अतः तथा = तेन प्रकारेण, आगतः = सम्प्राप्तः, अपि, असौ = चन्द्रापीडः, यत् किमपि, वक्तव्यः = भाषितव्यः, त्वया = मदलेखया, एव, न तु मयेति भावः। मया = कादम्बर्या, पुनः = भूयः, दृष्टः = विलोकितः, अपि, असौ चन्द्रापीडः, न, आलपितव्यः = वदितव्यः, न, उपालब्धव्यः = उपालम्भप्रदानेनाक्रोशविषयीकर्तव्यः, चरण-

---

विश्वास न करते हुए उस दुर्विदग्ध बुद्धिवाले (अत्यन्त चालाक) ने हिमगृह में मेरे [प्रेम के] विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिये कैसी घुमा फिराकर बातें की थीं, जहाँ मुस्कराहट के साथ बोलती हुई तुम्हीं ने उसको सन्देह न पैदा करने वाला अर्थात् अत्यन्त स्पष्ट (दो टूक) उत्तर दिया था ? इस कारण [मुझे लगता है कि] वह मेरे मरने पर भी मेरी इस दशा पर विश्वास नहीं ही करेगा। नहीं तो 'यह कादम्बरी मेरे लिये ऐसे दुःख झेल रही है' इसका उससे यदि थोड़ा भी अनुभव होता तो वह जाता ही नहीं। इसलिये इस प्रकार से आये हुए उनसे तुम्हें ही बात करनी है, मैं देखने

---

१. मद्वितविमर्शाय। २. संशयकारि। ३-३. कादम्बर्याः पूर्वार्धभागे ९८०-८७ पृष्ठेषु इदं द्रष्टव्यम्। ४. एवमवस्थाम्। ५. अन्यच्च। ६. अस्य चेतस्यभविष्यत्। ७. तत्र गतः।

सख्या प्रसादनीया'— इत्यभिदधानैवाचेतितागमनखेदा कादम्बरी चन्द्रापीडदर्शनायोत्ताम्यन्ती तत्रैवाजगाम।

आगम्य चोद्धृतामृतमिव रत्नाकरम्, इन्दुविरहितमिव निशाप्रबन्धम्, अस्तमिततारागणमिव गगनम्, अपचित[1]कुसुमशोभमिवोपवनम्, उत्खातकर्णिकमिव कमलम्, उत्खण्डिताङ्कुरमिव मृणालम्[2], अवलुप्ततरलमिव[3] हारम्, उन्मुक्तजीवितं चन्द्रापीडमद्राक्षीत्।

पतितस्य = मम पादयोः निपतितस्य, विनतस्य, अपि, अनुनयः = विनयः, न, ग्राह्यः = स्वीकार्यः, प्रियसख्या = भवत्या मदलेखया, अहम् = कादम्बरी, न, प्रसादनीया = प्रसन्ना कार्या, अनुनेया' इति = इत्थम्, अभिदधाना = भाषमाणा, एव, अचेतितेत्यादिः—अचेतितः (= अध्यातः, अननुभूतः) आगमनस्य (= तत्र सम्प्राप्तेः) खेदः (= कष्टम्) यया सा तादृशी, कादम्बरी = गन्धर्वराजदुहिता, चन्द्रापीडस्य प्रेयसी, चन्द्रापीडदर्शनाय = चन्द्रापीडं विलोकयितुम्, उत्ताम्यन्ती = अधीरा, व्याकुला भवन्ती, तत्रैव = महाश्वेताश्रमे एव, आजगाम = समाययौ।

कादम्बर्या तत्रागत्य किं दारुणं दृष्टमिति वर्णयति-आगम्य चेत्यादिना। तत्राश्रमे, आगम्य = आगत्य, सम्प्राप्य, उद्धृतामृतम् = उद्धृतम्, (= निःसारितम्, गृहीतम्) अमृतम् (=पीयूषम्) यस्मात्तादृशम्, रत्नाकरम्=सागरम्, इव, 'उन्मुक्तजीवितं चन्द्रापीडम् अद्राक्षीदि'ति वक्ष्यमाणेऽन्वयः। इन्दुविरहितम् = शशिशून्यम्, निशाप्रबन्धम् = रात्रिसातत्यम्, इव। अस्तमित-तारागणम्—अस्तम् (=अदर्शनम्) इताः (=गताः प्राप्ताः) तारागणाः (=नक्षत्रसमूहाः) यस्मिन् तादृशम्,गगनम्=आकाशम्, इव। अपचित-कुसुमशोभम् = अपचिता (= ह्रासं प्राप्ता) कुसुमशोभा (= पुष्पच्छविः) यस्मिन् तादृशम्, उपवनम् = उद्यानम्, इव। उत्खातकर्णिकम्—उत्खाता (= त्रोटिता, अवलूना) कर्णिका (= कमलानां बीजकोशः) यस्मात् तादृशम्, कमलम् =पङ्कजम्, इव। उत्खण्डिताङ्कुरम्-उत्खण्डिताः (= उच्छेदिताः) अङ्कुराः (= प्ररोहाः) यस्मात् तादृशम्, मृणालम्=कमलनालम्, इव। अवलुप्ततरलम्—अवलुप्तः (= हृतः, विनष्टः) तरलः (= मध्यमणिः) यस्मात् तादृशम्, हारम् = रत्नादीनां माल्यम्, इव, उन्मुक्तजीवितम्— उन्मुक्तम् (= परित्यक्तम्, निःसृतम्) जीवितम् (= जीवनम्, प्राणाः) येन यस्मात् वा तादृशम्, चन्द्रापीडम् = स्वप्राणेश्वरम्, अद्राक्षीत् = व्यलोकयत्, कादम्बरीति शेषः। अत्रोपमालङ्कारः सुस्पष्टः।

पर भी उनसे न तो बात करूँगी और न उलाहना दूँगी,(मेरे)पैरों पर गिरे हुए भी उनके अनुराग को नहीं स्वीकार करूँगी, और मेरी प्यारी सखी भी उस समय मुझे नहीं मनायेगी'—इस प्रकार से बातें करते-करते ही आने के कष्ट का अनुभव न करती हुई ही कादम्बरी चन्द्रापीड के दर्शन के लिये उतावली होती हुई वहीं आ पहुँची।

(वहाँ) आकर कादम्बरी ने अमृत निकाल लिये गये समुद्र के समान, चन्द्रमा से रहित पूरी रात्रि के समान, अस्त हुये तारागणों वाले आकाश के समान, चुन लिये गये फूलों वाले बगीचे के समान, कर्णिका तोड़ दिये गये कमल के समान, नोच लिये गये अंकुर वाले मृणाल के समान और मध्यमणि से रहित हार के समान जीवन से रहित अर्थात् मरे हुए चन्द्रापीड को देखा।

---

१. ...फलकुसुम०। २. मृणालिनीम्। ३. ...तरलमणिमिव।

दृष्ट्वा च तं सहसा 'हा किमिदमि'त्यधोमुखी धरातलमुपयान्ती कथंकथमपि [1]मुक्ताक्रन्दया मदलेखयाधार्यत। पत्रलेखा पुनरुन्मुच्य कादम्बरीकरतलमचेतना क्षितिमुपागमत्[2]। [3]चिराच्च लब्धसंज्ञापि कादम्बरी तथैव मूढेव निश्चलस्तब्धदृष्टिराविष्टेव स्तम्भितेव निष्प्रयत्ना निश्वसितुमपि [4]विस्मृतान्तर्मन्युभारनिस्पन्देव चन्द्रापीडवदनसमर्पिताक्षी[5] श्यामारुणानना ग्रहोपरक्तेन्दुबिम्बेव पौर्णमासीनिशा निशितपरशुपातोत्कम्पिनी

दृष्ट्वेति। तम् = तादृशं चन्द्रापीडम्, दृष्ट्वा = विलोक्य, च, सहसा = एकपदे एव, अकस्मात्, 'हा = इदं शोकातिरेके, इदम् = पुरोदृश्यमानम्, किम्? अवर्णनीयमिति भावः, इति = एवमुक्त्वा, अधोमुखी = निम्नवदना सती, धरातलम् = भूतलम्, उपयान्ती = पतन्ती, मुक्ताक्रन्दया = विहिताक्रन्दनया, मदलेखया = स्वपरिचारिकया, कथंकथम् = येन केन प्रकारेण, महता कष्टेनेति भावः, अधार्यत = धारिता, येन भूमौ पतनात् शिरोघातादिः न संजातः। पत्रलेखा = चन्द्रापीडपरिचारिका, पुनः = भूयः, कादम्बरीकरतलम् = कादम्बरीपाणितलम्, उन्मुच्य = विहाय, धृतं करतलं त्यक्त्वा, अचेतना = चैतन्यरहिता, सती, क्षितिम् = भूमिम्, उपागमत् निपतिताभूत्। चिरात् = दीर्घकालानन्तरम्, च, लब्धसंज्ञा = लब्धा (= प्राप्ता) संज्ञा (= चैतन्यम्) यया सा तादृशी सती, अपि, कादम्बरी, तथैव = तदवस्था एव, निश्चल-स्तब्धदृष्टिः—निश्चला (= अचला, अवरुद्धा) स्तब्धा (= स्पन्दनशून्या) च दृष्टिः यस्याः सा तादृशी, आविष्टा = भूतादि-गृहीता, इव, स्तम्भिता = जडीकृता, इव, निष्प्रयत्ना = निश्चेष्टा, सती, निश्वसितुम् = निश्वासं ग्रहीतुम्, अपि, विस्मृता = विस्मरणयुक्ता, अन्तर्मन्युभारनिष्पन्दा = हृदये शोकातिरेकेण गतिशून्या, इव, चन्द्रापीडेत्यादिः—चन्द्रापीडस्य वदने (= मुखे) समर्पिते (= दत्ते, निहिते) अक्षिणी (= नेत्रे) यया सा तादृशी, श्यामारुणानना—श्यामम् (= कृष्णम्, मलिनम्) अरुणम् [= ताम्रवर्णम्) च आननम् (= मुखम्) यस्याः सा तादृशी, ग्रहोपरक्तबिम्बा—ग्रहेण (= राहुनामकग्रहविशेषेण) उपरक्तम् (= गृहीतम्, आक्रान्तम्) इन्दुबिम्बम् (= चन्द्रमण्डलम्) यस्यां सा तादृशी, पौर्णमासीनिशा = पूर्णिमारात्रिः, इव, निशितेत्यादिः—निशितः (= तीक्ष्णः) यः परशुः (= कुठारः) तस्य पातः (= पतनम्,

उसे देखकर अचानक ही 'हाय यह क्या हो गया?' ऐसे (चिल्लाती हुई) औंधे (नीचे की ओर) मुख वाली भूतल पर गिरती हुई उस कादम्बरी को जोर जोर से क्रन्दन करती हुई मदलेखा ने जिस किसी प्रकार (बहुत कष्ट से) सम्हाल लिया, जमीन पर गिरने से पहले बीच में ही थाम लिया। परन्तु पत्रलेखा तो कादम्बरी का हाथ छोड़ कर बेहोश (मूर्छित) होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। बहुत देर के बाद चैतन्य प्राप्त करके (होश में आ करके) भी कादम्बरी उसी प्रकार मूढ (= ज्ञानशून्य) सी, निश्चल थमी (स्तब्ध) आँखों वाली अतएव भूतादि से आविष्ट-सी, स्तब्ध (जड़) सी, चेष्टाशून्य सी साँसें लेना भी भूली हुई, आन्तरिक शोक के भार से स्पन्दशून्य (निश्चल) सी, चन्द्रापीड के मुख पर आँखें गड़ाई हुई सी, काले तथा लाल मुख वाली, अतएव (राहु से) ग्रसित चन्द्रमण्डल वाली पूर्णिमा की रात्रि सी, तीखे परशु (फरसा, कुल्हाड़ी) के

1. संक्रन्दया। 2. उपागता। 3. अचिराच्च।
4. विस्मृत्यार्थं०। 5. ...सन्दानिताक्षी।

लतेव वेपिताधरकिसलया लिखितेव स्त्रीस्वभावविरुद्धेन चेतसा तस्थौ । तथावस्थितां च तामुन्मुक्तार्तनादा सपादपतनं मदलेखाब्रवीत्—'प्रियसखि, प्रसीदोत्सृजेमं[1] मन्युसम्भार-मारटन्ती[2] । बाष्पमोक्षेणामुच्यमानेऽस्मिन्नियतमति[3]भारोत्पीडितं तटाकमिव सरसमृदु[4] सहस्रधा स्फुटति ते हृदयमित्यपेक्षस्व देवीं मदिरां देवं च चित्ररथम् । त्वया बिना कुलद्वय-मपि नास्ति ।' इत्युक्तवतीं मदलेखां कादम्बरी विहस्याब्रवीत्—

प्रहारः) तेन उत्कम्पितुं शीलं यस्याः सा तादृशी, लता = व्रतती, इव, वेपितेत्यादिः—वेपितम् (= कम्पितम्) अधरकिसलयम् (= ओष्ठपल्लवम्) यस्याः सा तादृशी, स्त्रीस्वभावविरुद्धेन = नारीप्रकृतेः विपरीतेन, चेतसा = हृदयेन, लिखिता = प्रस्तरादावुत्कीर्णा, इव, तस्थौ = उपविष्टाभूत् । स्त्रीणां स्वभावस्य चञ्चलता लोकप्रसिद्धा, तां विहाय चित्रमिव तस्थाविति भावः । तथावस्थिताम् = तेन प्रकारेण जडीभूत्वा विद्यमानाम्, च, ताम्=कादम्बरीम्, उन्मुक्तार्त्तनादा—उन्मुक्तः (=परित्यक्तः, कृतः) आर्तः (=करुणः) नादः (= प्रलापः) यया सा तादृशी सती, मदलेखा = कादम्बरी-परिचारिका, सपादपतनम् = पादयोः निपतनेन सहितं यथा स्यात् तथा, अब्रवीत् = अवोचत् । प्रियसखि !, प्रसीद = प्रसन्ना भव, कृपां कुरु मयीति भावः, आरटन्ती = क्रन्दनं कुर्वन्ती, इमम् = अनुभूयमानम्, मन्युसंभारम् = दुःखस्य वेगम्, उत्सृज = परित्यज । बाष्पमोक्षेण=अश्रुजलपरित्यागेन, रोदनेनेति भावः, अस्मिन् = दुःखसंभारे, अमुच्यमाने = अत्यज्यमाने सति, अतिभारोत्पीडितम् = अत्यधिक-बोधघोत्पीडितम्, अपरिमेयजलभारसंपीडितम्, पक्षे—शोकभारातिरेकपरिपूर्णम्, सरसमृदु—सरसम्=स्नेहेन सहितम्,पक्षे-जलेन सहितम्, अथ च मृदु = कोमलम्, मनोहरम्,तडाकम् = तडागः, इव, ते = तव कादम्बर्याः, हृदयम् = चित्तम्, सहस्रधा = सहस्रप्रकारैः, स्फुटति = विदीर्णं भवति, अत्र हृदयस्य तटाकस्य च साम्यं स्पष्टम् । यथा—जलाधिक्येन तडागो विभिन्नस्थानेषु विदीर्णो भवति तथैव कादम्बरीहृदयमपि शोकभाराक्रान्तं सत् विदीर्णं भविष्यतीति तदाशयः । इति = अस्मात् हेतोः, देवीम्, मदिराम् = कादम्बरीजननीम्, देवम् = स्वामिनम्, चित्ररथम् = कादम्बरीपितरम्, च अपेक्षस्व = चिन्तय तयोर्दशां विचारयेति भावः । त्वया = भवत्या कादम्बर्या, बिना = ऋते, कुलद्वयम् = तव कुलं चन्द्रापीडकुलं च, न, अस्ति = वर्तते, तव मरणे उभयोः कुलयोर्विनाशः सुनिश्चित इति तदाशयः । इति = इत्थम्, उक्तवतीम् = कथितवतीम्, मदलेखाम्, कादम्बरी, विहस्य = मन्दविकृतहासपूर्वकम्, अब्रवीत् = अवोचत् ।

प्रहार से कांपती हुई लता के समान कांपते हुये अधर रूपी किसलय वाली, नारी-प्रकृति के विरुद्ध चित्त से अर्थात् अत्यन्त शान्त होकर चित्र में उत्कीर्ण की हुई सी खड़ी रही । उस प्रकार से खड़ी हुई उस कादम्बरी से उत्कट आर्त्तनाद करने वाली मदलेखा पैरों पर गिर कर कहने लगी—'प्रिय सखि ! प्रसन्न हो जाओ, रुदन करके इस शोक के भार को दूर कर डालो । [रोने से शोक हल्का हो जाता है ।] आंसू गिरा कर इस शोक के भार के दूर न किये जाने पर निश्चित ही शोक के अत्यधिक भार से उत्पीडित सरस और मृदु तालाब के समान (प्रेमी और कोमल) तुम्हारा हृदय हजारों खंडों में फट कर टुकड़े टुकड़े हो जायगा । [जैसे पानी की बाढ़ से किसी तालाब की सीमायें टूट जाती हैं, सर्वत्र पानी बाहर बहने लगता है उसी प्रकार तुम्हारे हृदय की भी दशा हो जायगी ।] इस कारण स्वामिनी मदिरा (कादम्बरी की माँ) और स्वामी चित्ररथ (कादम्बरी के पिता) का ख्याल करें । क्योंकि तुम्हारे विना दोनों ही कुल नहीं रह पायेंगे ।'—ऐसे कहती हुई मदलेखा से हंस कर कादम्बरी कहने लगी—

---

१. एवम् । २. अरटन्ती, अनारटन्ती । ३. अतिजलभार । ४. मृदुसरसं ।

'अय्युन्मत्तिके ! कुतोस्य मे वज्रसारकठिनस्य हतहृदयस्य स्फुटनम् । यन्नालोक्यैवं[1] सहस्रधा स्फुटितम् । अपि च, या जीवति तस्याः सर्वमिदं माता पिता बन्धुरात्मा सख्यः परिजन इति । मया पुनर्म्रियमाणया जीवितभूतं कथंकथमपि समासादितमिदं प्रियतमशरीरं यज्जीवदजीवद्वा संभोगेनानुमरणेन वा द्विधापि सर्वदुःखानामेवोपशान्तये । तत्किमिति देवेनागच्छता मदर्थं प्राणांश्चोत्सृजता सुदूरमारोपितं गुरुतां च नीतमात्मानमश्रुपातमात्रकेण लघूकृत्य पातयामि ? कथं स्वर्गगमनोन्मुखस्य देवस्य रुदितेनामङ्गलं करोमि ? कथं

कादम्बरी किमब्रवीदिति वर्णयति—अयि उन्मत्तिके—इत्यादिना । अयि उन्मत्तिके = उन्मादयुक्ते सखि !, वज्रसारकठिनस्य = अशनिसारभूततत्त्वतुल्यकठोरस्य, अस्य, मे = कादम्बर्याः, हतहृदयस्य = भाग्यहीनचित्तस्य, स्फुटनम् = विदीर्णता, कुतः ? न कस्मादपि कारणादिदं स्फुटिष्यतीति भावः । यत् = हृदयम्, एवम् = अनेन प्रकारेण मृतमपि चन्द्रापीडम्, आलोक्य = दृष्ट्वा सहस्रधा = सहस्रप्रकारैः, न, स्फुटितम् = विदीर्णं जातम् । अपि च = अन्यच्च, या = कापि, जीवति = प्राणिति, तस्याः, एव, माता, पिता, बन्धुः, आत्मा = स्वः, परिजनः = सेवकः, इति, सर्वम्, भवति । पुनः = परन्तु, म्रियमाणया = मरणं प्राप्नुवत्या, मया = कादम्बर्या, कथंकथमपि = यथाकथञ्चित्, समासादितम् = प्राप्तम्, इदम्, जीवितभूतम् = प्राणस्वरूपम् प्रियतमशरीरम्=वल्लभतमदेहः जीवत्=प्राणत्, वा=अथवा अजीवत् = अप्राणत्, सम्भोगेन = मैथुनेन, वा = अथवा, अनुमरणेन = पृष्ठतोमरणेन, द्विधा = प्रकारद्वयेन, अपि, सर्वदुःखानाम् = सर्वकष्टानाम्, उपशान्तये = निवृत्तये, वर्तते । अत्र 'जीवत् सम्भोगेन, अजीवत् अनुमरणेन' इति यथासङ्ख्यमन्वयः कार्यः । तेन तस्या अयं भावः यत् अस्य जीवितकाले यथा सम्भोगः दुःखनिवृत्तिकरस्तथैव मरणे अनुमरणं दुःखविनाशकमिति बोध्यम् । तत् = तस्मात् कारणात्, देवेन = प्राणेश्वरेण चन्द्रापीडेन, आगच्छता = अत्रागमनं कुर्वता, मदर्थम् = कादम्बर्यर्थम् प्राणान् = असून्, च, उत्सृजता = परित्यजता, सुदूरम् = अतीवोच्चैः, आरोपितम् = संस्थापितम्, गुरुताम् = गौरवम्, च नीतम् = प्राप्तम्, आत्मानम् = स्वाम्, अश्रुपातमात्रकेण = नेत्राम्बुपातनेनैव, लघूकृत्य = तुच्छीकृत्य, किमिति = किमर्थम्, पातयामि = तस्मात् महत्त्वात् च्युतं करोमि ? स्वर्गगमनोन्मुखस्य = स्वर्गम् प्रस्थितस्य, देवस्य = वल्लभस्य, चन्द्रापीडस्य, रुदितेन = स्वरोदनेन, कथम् = किमर्थम्, अमङ्गलम् = अशुभम्, करोमि = विदधामि ? प्रस्थानकाले रोदनस्या-

---

'अरी पगली । जो मेरा हृदय इस प्रकार (चन्द्रापीड को) देख कर भी हजारों टुकड़ों में नहीं फटा, वज्रसार के समान कठिन यह नीच हृदय कहाँ से फट सकता है ? और भी, जो जीवित है उसी के लिये यह सब है—माता, पिता, बन्धु, आत्मा (अपना रूप) सखियाँ और सेविकायें । किन्तु मरने जा रही मैंने अपने प्राणभूत प्रियतम के शरीर को जिस किसी प्रकार पाया है—जो जीवित रहते सम्भोग के द्वारा और मरने पर पीछे मरने अर्थात् सती होने के द्वारा—इन दोनों प्रकारों से मेरे सभी दुःखों की शान्ति के लिये हैं । इस कारण यहाँ आकर और मेरे लिये अपने प्राणों को छोड़ते हुए देव चन्द्रापीड द्वारा मुझे बहुँत ऊपर पहुँचा दिया गया और गौरव को प्राप्त करा दिया गया, ऐसी मैं आँसू गिराकर ही अपने को हल्का (तुच्छ) बना कर क्यों नीचे गिराऊँ । और क्यों

---

१. आलोक्यैव यन्न ।

पादधूलिरिव पादावनुगन्तुमुद्यता हर्षस्थानेपि रोदिमि ? किं मे दुःखमेवंविधम् । अधुना तु मे सर्वदुःखान्येव दूरीभूतानि । किमद्यापि रुद्यते ? यदर्थं कुलक्रमो न गणितः,गुरवो नापेक्षिताः, धर्मो नानुरुद्धः, जनवादान्न[1] भीतम्, लज्जा परित्यक्ता, मदनोपचारैः सखीजनः खेदितः, दुःखिता मे प्रियसखी महाश्वेता तस्याः कृते(पूर्वार्द्धे पृ० ८११)प्रतिज्ञातमन्यथा जातं [2]मयेत्येतदपि चेतसि न कृतम् । तस्मिन्मदर्थमेवोज्झितप्राणे प्राणेश्वरे प्राणान्प्रतिपालयन्ती[3] त्वयैव

मङ्गलजनकत्वादिति तद्भावः । पादधूलिः = चरणयोः रजः, इव, पादौ = चन्द्रापीडचरणौ, अनुगन्तुम् = अनुसर्तुम्, उद्यता = कृतोद्यमा अहम्, कथम् = किमर्थम्, हर्षस्थाने = आनन्दप्रसङ्गे, अपि रोदिमि = आक्रन्दामि ? एवंविधम् = एतादृशम्, मे = मम कादम्बर्याः, किम् = अज्ञातम्, दुःखम् = कष्टम् ? न किमपीति तद्भावः । अधुना = इदानीं चन्द्रापीडप्राणपरित्यागे सति, मे = कादम्बर्याः, सर्वदुःखानि=सकलकष्टानि, एव, दूरीभूतानि = अपसृतानि, विनष्टानीति भावः । किम्, अद्यापि = अधुनापि, रुद्यते = विलप्यते ? यदर्थम् = यस्मै, चन्द्रापीडमुद्दिश्य, कुलक्रमः = वंशपरम्परा, न, गणितः = ध्यातः, गुरवः = मातापित्रादयः, न, अपेक्षिताः = न पृष्टाः, अभ्यर्थिताः, धर्मः = शास्त्रव्यवस्था, न, अनुरुद्धः = परिपालितः, जनवादात् = लोकप्रवादात्, न, भीतम् = भयं प्राप्तम्, लज्जा = व्रीडा, परित्यक्ता = समुज्झिता, मदनोपचारैः = कामव्यथोपशमनोपायैः हेतुभिः, सखीजनः = वयस्यालोकः, खेदितः = कष्टं प्रापितः, मे, प्रियसखी महाश्वेता, दुःखिता=दुखं प्रापिता, तस्याः=महाश्वेतायाः, कृते, प्रतिज्ञातम्=प्रतिश्रुतम्, [द्र० पूर्वार्द्धे पृ० ८११-८२४] अन्यथा = विपरीतम्, जातम् = भूतम्, [पूर्वार्द्धे इदं वर्णितं यद् यदा पुण्डरीकः अकस्मात् मृतस्तदा स्वप्रियतमां सखीं महाश्वेतां व्याकुलां विलोक्य कादम्बरी प्रतिज्ञातवती यत् यावत् महाश्वेतायाः प्रियतममिलनं न भविष्यति तावदहमपि पाणिग्रहणं न कारयिष्यामि किन्तु चन्द्रापीडं प्रति समासक्त्या तस्याः प्रतिज्ञा भग्ना जातेति तस्या आशयः ।] इति, एतदपि, मया = कादम्बर्या, चेतसि = मनसि, न कृतम् = विहितम्, चिन्तितम् । मदर्थम् = कादम्बरीमुद्दिश्य, एव, उज्झितप्राणे = त्यक्तप्राणे, तस्मिन्, प्राणेश्वरे = प्राणनाथे, जाते सति, प्राणान् = असून्, परिपालयन्ती = परित्यजन्ती, अहम् = कादम्बरी, त्वया = सख्या मदलेखया, एवम् =

स्वर्ग की ओर जाते हुए स्वामी के लिये अपने रोदन से अमंगल करूँ ? चरणों की धूलि के समान उनके चरणों का अनुगमन करने के लिये उद्यत मैं हर्ष के स्थान पर क्यों रोऊँ ? अब मेरा ऐसा दुःख क्या है ? अब तो मेरे सारे ही दुःख दूर हो गये । तो क्या अब भी रोऊँ ? जिसके लिये मैंने कुल की मर्यादा नहीं गिनी (मानी), न माता-पिता आदि गुरुजनों की परवाह (अपेक्षा) की, न (कन्या)धर्म का अनुसरण किया, न लोकापवाद से भय खाया,लाज छोड़ डाली, कामदेव के [सन्ताप की शान्ति के लिये किये जाने वाले] उपचारों के कारण सखियों को परेशान किया, अपनी प्रिय सखी महाश्वेता को दुःखी किया,उस (महाश्वेता) के लिये जो प्रतिज्ञा की थी (द्र० पूर्वार्द्ध पृ० ८११-८२४) वह दूसरी प्रकार की हो गई—यह भी मैंने मन में नहीं सोचा । उन प्राणेश्वर के मेरे लिये ही प्राण छोड़

---

१. जनापवादान्न । २. मम ।

३. अत्र 'प्रतिपालयन्ती' इत्यस्य 'रक्षन्ती' इत्यर्थो न संगतः, अपितु पालनस्य विपरीत एवार्थोऽत्र युज्यते, तेन 'परित्यजन्ती अहं कादम्बरी मदलेखया त्वया किम् एवमुक्ता ?' इत्येव व्याख्यानं समीचीनम् ।

किमुक्ताहम् ? अस्मिन्समये मरणमेव जीवितम्[1]। जीवितं पुनर्मरणम्। तद्यदि ममोपरि स्नेहः, करोषि मत्प्रियं हितं वा, तन्ममोपरि[2] स्नेहाबद्धयापि प्रियसख्या तथा कर्तव्यं यथा न तातोऽम्बा च मच्छोकादात्मानं परित्यजतः। यथा च मयि [3]वाञ्छितं मनोरथं त्वयि पूरयतः। येन परलोकगताया अपि मे जलाञ्जलिदानाय पुत्रकस्त्वयि भविष्यति[4]। यथा च मे सखीजनः परिजनो वा न स्मरति, शून्यं वा [5]भवनमालोक्य न दिशो गृह्णाति, तथा

इत्थम्, किम् = अकथनीयम् उक्ता = कथिता, अस्मि। मम प्राणेश्वरेण मदर्थमेव स्वप्राणाः परित्यक्ताः। परन्तु अहं साम्प्रतमपि प्राणधारणाय यत्नं करोमीति त्वया न समीचीनं कथितम्। अस्मिन् समये = चन्द्रापीडस्य मरणानन्तरम्, ममापि, मरणम् = मृत्युः, एव, जीवितम् = जीवनम्, पुनः, जीवितम्, मरणम् = मृत्यु। तत् = तस्मात्, यदि ममोपरि, स्नेहः = प्रेम, तवेति शेषः, वा = अथवा, मत्प्रियम् = मम प्रीतिकरम्, हितम् = हितकरम्, करोषि = विदधासि, तत् = तर्हि, ममोपरि = कादम्बर्युपरि, स्नेहाबद्धया = प्रीत्या नियन्त्रितया अपि, प्रियसख्या, तथा = तेन प्रकारेण, तादृशं वा, कर्तव्यम् = विधेयम्, यथा = येन प्रकारेण, तातः = मम जनकः चित्ररथः, अम्बा = मम जननी मदिरा च, मच्छोकात् = मम मृत्युजन्यकष्टात्, आत्मानम् = स्वम्, न, परित्यजतः = उज्झतः। मयि = कादम्बर्याम्, च, वाञ्छितम् = अभीष्टम्, मनोरथम् = अभिलाषम्, यथा = येन प्रकारेण, त्वयि = मदलेखायाम्, पूरयतः = सम्पादयतः। येन = कारणेन, परलोकगतायाः = परत्र प्रस्थितायाः, अपि, मे = कादम्बर्याः, जलाञ्जलिदानाय = तर्पणेन जलप्रदानार्थम्, पुत्रकः = प्रियपुत्रः, त्वयि = मदलेखायाम्, भविष्यति = जायिष्यते, उत्पत्स्यते। अयं भावः—मम मरणान्तरं त्वं मम जननी जनकं च समाश्वास्य स्वपाणिग्रहणं विधास्यसि येन त्वयि समुत्पन्नः प्रियः पुत्रकोऽस्मदर्थमपि जलदानं करिष्यतीति। यथा = येन प्रकारेण, च, मे = मम कादम्बर्याः, सखीजनः = आलिलोकः, वा = अथवा, परिजनः = सेवकलोकः, न, स्मरति = स्मृतिपथं नयति, मामिति शेषः, वा = अथवा शून्यम् = मया विरहितम्, भवनम् = सदनम्, मम, आलोक्य, दिशः = दिशाः, न, गृह्णाति =

देने पर अपने प्राणों को छोड़ती हुई मुझसे तुमने ऐसा क्यों कहा ? इस समय तो मरना ही जीवन है। और जीवित रहना मरण है। अतः यदि मेरे ऊपर तुम्हारा स्नेह है अथवा मेरा प्रिय और हितकारी काम करना है तो स्नेह के बन्धन में बँधी हुई भी प्यारी सखी को ऐसा करना चाहिए जिससे मेरे पिता (चित्ररथ) और माता (मदिरा) मेरे शोक के कारण अपने प्राणों को न त्यागें। और जैसे मनोरथ की मेरे ऊपर कल्पना की थी वैसा तुम पर करें अर्थात् तुम्हारा विवाह कर दें जिससे परलोक गई भी मेरे लिये जलांजलि देने के लिये तुम में पुत्र उत्पन्न होगा। और जिस प्रकार से मेरी सखियाँ तथा सेविकायें मेरी याद न करें और मेरा भवन सूना देखकर इधर-उधर न जाने लगें—

१. मरणमेव श्रेयो न जीवितं मे सर्वप्रकारलज्जाकरं तु जीवितं न पुनर्मरणम्।

२. तन्मदीयमप्यात्मनि स्नेहमारोप्य। ३. अवाञ्छितम्।

४. येन परलोकगताया अपि मे जलांजलिदायी पुत्रको भविष्यति। ५. मद्भवनम्।

करिष्यसि। पुत्रकस्य मे भवनाङ्गणे सहकारपोतस्य त्वया मच्चिन्तितयैव माधवीलतया सहोद्वाहमङ्गलं स्वयमेव निर्वर्तनीयम्[1]। मच्चरणतललालितस्या[2]शोकविटपस्य कर्णपूरार्थमपि न पल्लवः[3] खण्डनीयः। मत्संवर्धिताया मालत्याः कुसुमानि देवार्चनायैवोच्चेयानि। वासभवने मे शिरोभागनिहितः कामदेवपटः पाटनीयः। मया स्वयं रोपिताश्चूतवृक्षा[4] यथा फलं गृह्णन्ति तथा संवर्धनीयाः। पञ्जरबन्धदुःखाद्वराकी कालिन्दी सारिका शुकश्च परिहासो द्वावपि मोक्तव्यौ। मदङ्कशायिनी नकुलिका स्वाङ्क एव शाययितव्या। पुत्रको मे बाल-

---

पलाय्य तत्र गच्छति, तथा = तेन प्रकारेण, करिष्यसि। भवनाङ्गणे = सदनस्याजिरे, मे = कादम्बर्याः, पुत्रकस्य = सुतकस्य, पुत्रवत् परिपालितस्य, सहकारपोतस्य = बालस्याम्रवृक्षस्य, त्वया = मदलेखया, मच्चिन्तितया = मया विचारितया, माधवीलतया = अतिमुक्ताख्यव्रतत्या, एव, सह = साकम्, उद्वाहमङ्गलम् = विवाहमङ्गलम्, स्वयमेव = आत्मनैव, निर्वर्तनीयम् = सम्पादनीयम्। मच्चरणलालितस्य = मम पादाभ्यां लालनाविषयीकृतस्य, अशोकविटपस्य = अशोकवृक्षस्य, पल्लवः = किसलयः, कर्णपूरार्थम् = श्रवणाभरणार्थम्, अपि, न, खण्डनीयः = त्रोटनीयः। मत्संवर्धितायाः = मया वृद्धिं प्रापितायाः, मालत्याः = एतन्नाम्न्याः लतायाः, कुसुमानि = पुष्पाणि, देवार्चनायै = देवतानां पूजनाय, एव, उच्चेयानि = उच्चयितव्यानि, ग्रहीतव्यानि। वासभवने = वसतिसदने, विश्रामभवने, मे = मम कादम्बर्याः, शिरोभागनिहितः = शिरोदेशे संस्थापितः, कामदेवपटः = एतन्नाम्ना ख्यातः वस्त्रखण्डविशेषः, पाटनीयः = खण्डनीयः, खण्डं खण्डं करणीयः। मया = कादम्बर्या, स्वयम् = आत्मना, रोपिताः = आरोपिताः, चूतवृक्षाः = आम्रपादपाः, यथा = येन प्रकारेण, फलम्, गृह्णन्ति = धारयन्ति, उत्पादयन्तु इति भावः, तथा = तेन प्रकारेण, संवर्धनीयाः = समेधनीयाः, परिपोषणीयाः। वराकी = दीना, कालिन्दी = एतन्नाम्नी, सारिका = शुकजातिस्त्री, 'मैना' इति हिन्द्यां प्रसिद्धा, परिहासः = एतन्नामा, शुकः = कीरः, च, द्वौ = उभौ, अपि, पञ्जरबन्धात् = पिञ्जरे बन्धनात्, मोक्तव्यौ = मुक्तौ कर्तव्यौ, उड्डयनाय स्वतन्त्रौ विधेयौ। मदङ्कशायिनी = मम क्रोडे शयनशीला, नकुलिका = पिङ्गलिका, प्रिया नकुली, स्वाङ्के = स्वक्रोडे, एव, शाययितव्या = स्वापयितव्या। मे = कादम्बर्याः पुत्रकः = सुत

ऐसा करना। मेरे भवन के आँगन में मेरे बेटे के समान आम के पौधे का विवाहमंगल मेरे द्वारा सोंची गई माधवी लता के साथ ही स्वयं तुम कर देना। मेरे चरणतलों द्वारा लालित (लाड़ प्यार किये गये) अशोक वृक्ष के पत्ता को कर्णपूर बनाने के लिए भी मत तोड़ना। मेरे द्वारा बढ़ाई गई मालतीलता के फूल केवल देवपूजा के लिये ही तोड़ना, चुनना। मेरे वास-भवन (शयनकक्ष) में मेरे शिर की ओर रखे गये कामदेव के चित्रपट को फाड़ देना। मेरे द्वारा स्वयं लगाये गये आम के पेड़ जैसे फल ग्रहण करें, फलें, उसी प्रकार उन्हें बढ़ाना। पिंजरे के बन्धन से दुखी बेचारी 'कालिन्दी' नामक मैना और 'परिहास' नामक शुक इन दोनों को छोड़ देना, उड़ा देना। मेरी गोद में सोने वाली नकुलिका (नेवली बच्ची) को अपनी ही गोद में सुलाना। मेरे तरलक नामक, बाल हरिण बेटे को

---

१. निवर्त्तनीयम्। २. ...बालाशोक०।
३. पल्लव-लव। ४. वृक्षकाः।

हरिणस्तरलकः कस्मिंश्चित्तपोवने समर्पणीयः। पाणितलसंवर्धितं मे जीवञ्जीवमिथुनं क्रीडापर्वते[1] यथा न विपद्यते तथा कर्तव्यम्। पादसह[2]संचारी हंसको यथा न हन्यते केनचित्तथा विधेयः[3]। अचिरगृहीतवसतिः सा च बलाद्विधृता तपस्विनी[4] वनमानुषिका वन एवोत्स्रष्टव्या। क्रीडापर्वतकः कस्मैचिदुपशान्ताय तपस्विने प्रतिपादयितव्यः। शरीरोपकरणानि मे ब्राह्मणेभ्यः[5] प्रतिपादनीयानि। वीणा पुनरात्मन एवाङ्कप्रणयिनी कार्या[6]। अपरमपि यत्ते रोचते तदपि स्वीकर्तव्यम्। अहं पुन[7]रिमममृतकिरणरश्मिभिरना-

---

इव परिपालितः, तरलकः=एतन्नामा, बालहरिणः=शिशुमृगः, तपोवने=मुनीनामाश्रमे, समर्पणीयः= प्रदातव्यः। मे = कादम्बर्याः, पाणितलसंवर्धितम्=करतलाभ्यां वृद्धिं प्रापितम्, जीवञ्जीवमिथुनम्= चकोरयुगलम्, क्रीडापर्वते = क्रीडाशैले, यथा = येन प्रकारेण न, विपद्यते = म्रियते, तथा, कर्तव्यम् = विधेयम्। पादसह-संचारी = पादाभ्यां सार्धं सञ्चरितुं शीलमस्य स तादृशः, हंसकः= प्रियमरालः, केनचित् = ज्ञातेनाज्ञातेन वा जनेन, यथा = येन प्रकारेण, न, हन्यते = व्यापाद्यते, तथा = तेन प्रकारेण, विधेयः = करणीयः। [अत्र 'तथा' इति क्रियाविशेषणेऽन्वये तु 'विधेयम्' इत्येव उचितम्। यदि 'हंसके' इत्यत्रान्वयस्तदा कर्मणि प्रत्यये 'विधेयः' इत्यपि समीचीनम्।] अचिरेत्यादिः-अचिरम् (=अदीर्घकालम्) गृहीता(=प्राप्ता)वसतिः (=वासः) यया सा तादृशी, बलात् =शक्तेः, विधृता=आत्ता, वशीकृता, तपस्विनी=दीना, सा=त्वया सम्यग्ज्ञाता, वनमानुषिका = वनमानुषी, वने जाता मानुषतुल्याकृतिः, वने = अरण्ये, एव, उत्स्रष्टव्या = परिहातव्या। मम, क्रीडापर्वतकः= क्रीडाशैलः, उपशान्ताय=अत्यन्तशान्तप्रकृतये, कस्मैचित्=अज्ञाताय, तपस्विने = तपश्चारिणे, प्रतिपादयितव्यः=समर्पणीयः। मे = मम, शरीरोपकरणानि = देहस्योपकरणभूतानि वस्त्राभरणादीनि, ब्राह्मणेभ्यः = विप्रेभ्यः, प्रतिपादनीयानि = दातव्यानि। वीणा = विपञ्ची, पुनः = तु, आत्मनः = स्वस्याः, एव, अङ्क-प्रणयिनी = क्रोड-प्रणयिनी, कार्या = विधेया, स्वाङ्के एव सदा स्थापनीया न तु अन्यस्मै कस्मैचित् प्रदेयेति भावः। अपरम् = पूर्वोक्तादतिरिक्तम्, अपि, यत् = अज्ञातम्, ते = तुभ्यम्, रोचते = रुचिविषयीभवति, तदपि, स्वीकर्त्तव्यम् = स्वीकरणीयम्, अङ्गीकृत्य विधेयमिति तद्भावः।

अहमिति। 'अहम्=कादम्बरी-इत्यस्य निर्वापयामि आत्मानम्' इत्यत्र तृतीयान्तानां च 'दग्ध-शेषम्' इत्यत्र वक्ष्यमाणेऽन्वयः। अमृतेत्यादिः-अमृतकिरणस्य (=सुधांशोः चन्द्रस्य)रश्मिभिः(=किरणैः), अनाश्यानेत्यादिः—अनाश्यानम् (=अशुष्कम्, आर्द्रम्) यत् चन्दनम् (=मलयजम्) तस्य चर्चाभिः (= लेपनैः), अनवरतेत्यादिः—अनवरतम् (= निरन्तरम्) यथा स्यात् तथा धारागृहाणाम्

किसी तपोवन में दे देना। मेरे हाथों द्वारा पाला गया चकोर का जोड़ा क्रीड़ापर्वत पर जैसे न मर जाय वैसा करना। मेरे पैरों के साथ-साथ घूमने वाला हंस किसी के द्वारा जैसे न मार डाला जाय वैसा करना। कुछ ही पहले मेरे पास रहने वाली, जबरदस्ती पकड़ी गई बेचारी वनमानुषी को वन में ही छुड़वा देना। मेरा क्रीड़ापर्वतक किसी अत्यन्त शान्त तपस्वी को दे देना। मेरे शरीर के प्रयोग में आने वाले (वस्त्र तथा आभूषण आदि) उपकरण ब्राह्मणों को बांट देना। किन्तु मेरी वीणा को अपनी गोद में ही लगा कर रखना। और भी जो कुछ भी तुम्हें अच्छा लगे वह भी

---

१. ...पर्वतके। २. ...चारी।
३. विधेयम्। ४. वसति तपस्विनी बलाद् धृता, निवासा बलाद् विधुता तपस्विनी।
५. सर्वाण्येव ब्राह्मणसात्कर्तव्यानि। ६. कर्तव्या। ७. पुनरियम्।

श्यानचन्दनचर्चाभिरनवरतधारागृहासार-सेकैरनेकसंतान[1]-तुहिनकिरणकिरण-निकरतारकित-तारहारार्पणैर्मणिदर्पणप्रणयनेन मलयजजलार्द्रपद्मिनीपत्रास्तरणेन [2]सरसविसकिसलय-प्रस्तरैरकठोरमृणाल[3]तल्पकल्पनयोद्विकसत्[4]कमलकुमुदकुवलयशयनीयैश्चदग्धशेषमुज्ज्वलचिता[5]-ज्वालामालिनि विभावसौ देवस्य कण्ठलग्ना निर्वापयाम्यात्मानम्' । [6]'इत्यभिदधानैव कृताव-

(= जलधाराभवनानाम्) आसार-सेकैः (= जलधारासिञ्चनैः) अनेकेत्यादिः—अनेकः (= बहुसंख्यकः) सन्तानः (= परम्परा, श्रेणिः) येषां तादृशा ये तुहिनकिरणस्य (= शिशिररश्मेः चन्द्रस्य) किरणाः (= रश्मयः) तेषां निकरेण (= समुदायेन) तारकिताः (= सञ्जाततारा:) ताराः (= उज्ज्वलाः) हाराः (= मौक्तिकमालाः) तेषाम् अर्पणैः (= न्यसनैः, धारणैः), मणि-दर्पण-प्रणयनेन = रत्नमयादर्शानां विरचनेन, मलयजेत्यादिः—मलयजम् (= चन्दनम्) तस्य जलेन (= वारिणा, चन्दनमिश्रितसलिलेन) आर्द्राणि (= क्लिन्नानि) यानि पद्मिनी-पत्राणि (= कमलदलानि) तेषाम् आस्तरणेन (= प्रस्तरणेन), सरसेत्यादिः—सरसानि (= जलमयानि) यानि विसकिसलयानि (= मृणालपल्लवानि) तेषां प्रस्तरैः (= आस्तरैः, विष्टरैः), अकठोरे-त्यादिः—अकठोराणि (= मृदूनि) यानि मृणालानि (= कमलनालानि) तैः तल्पस्य (= शय्यायाः) कल्पनया (= रचनया), उद्विकसदित्यादिः—उद्विकसन्ति (= ईषत् प्रफुल्लन्ति) यानि कमलानि (= पङ्कजानि) कुमुदानि (= रक्तोत्पलानि) कुवलयानि (= नीलकमलानि) च, तेषां शयनीयैः (= शय्याभिः) इत्येतैर्हेतुभिः, दग्धशेषम् (= दग्धा-दवशिष्टम्) इमम् आत्मानम् (= स्वाम्) उज्ज्वलेत्यादिः—उज्ज्वला (= दीप्यमाना) या चितायाः (= चितेः) ज्वाला (= अर्चिषः) तासां माला (= श्रेणिः) सा अस्ति अस्य तादृशे, विभावसौ = अग्नौ, देवस्य = वल्लभस्य चन्द्रापीडस्य, कण्ठलग्ना = गलदेशे समा-श्लिष्टा सति, निर्वापयामि = शीतलं करोमि । [यद्यपि पूर्वोक्तानि चन्दनकमलादीनि सर्वाण्युप-करणानि तया कादम्बर्या सन्तापदूरीकरणाय गृहीतानि किन्तु तैर्दूरीकरणापेक्षया सन्तापोऽवर्धत एव तेन सा दग्धा जाता । दहनाच्चावशिष्टं स्वशरीरं सा अग्नौ स्वयमेव समर्पयितुमिच्छति स्म परन्तु प्रियतमगले लग्ना मृतैवेति तद्भावः ।] इति पूर्वोक्तम्, अभिदधाना = भाषमाणा,

ले लेना । किन्तु मैं तो चन्द्रमा की किरणों से, गीले चन्दन के लेप से, लगातार छूटते हुये फौव्वारों के जल के सींचने से, चारों ओर फैलने वाली चन्द्रमा की किरणों के समूह से तारागणयुक्त चञ्चल हारों के धारण करने से, मणिमय दर्पण बनाने से, चन्दन के जल से गीले किये गये कमलिनी के पत्रों के बिछौने से, गीले-गीले मृणालों की सेज सजाने से तथा खिलते हुये कमल, कुमुद तथा कुवलय की शय्याओं से [उत्पन्न सन्ताप से] जल जाने से बचे हुये अपने आपको (शरीर को) देव चन्द्रापीड के गले में लिपटी हुई मैं चमकती हुई लपटों वाली आग में डाल कर शान्त करूँगी—' ऐसा कहती

१. अनेकसन्तानतुहिनकरकिरण, अनन्तसन्तानतुहिनकरकिरण० ।

२. किसलयैः स्रस्तरैः, किसलयस्रस्तरैः । ३. मृणालिनी० ।

४. ...तल्पकल्पनयोग०, उद्विकासकमलकुवलय, विकसितकुमुदकुवलय० ।

५. उज्ज्वलितचितानले, ज्वालामालिनि । ६. इत्यभिधानाकृतमरणानुबन्धा ।

धारणानुबन्धां मदलेखामवक्षिप्य[1]ोपसृत्य महाश्वेतां कण्ठे गृहीत्वा निर्विकारवदनैव पुनस्तामवादीत्--

'प्रियसखि, तवास्ति कीदृश्यपि प्रत्याशा ययानुरागपरवशा पुनःसमागमाकाङ्क्षिणी क्षणे क्षणे [2]मरणाभ्यधिकानि दुःखान्यनुभवन्ती जीवितमलज्जाकरमननुशोच्यमनुपहसनीयमवाच्यं धारयसि। मम पुनः सर्वतो हताशायाः सापि नास्ति। तदामन्त्रये प्रियसखीं

एव, कृतेत्यादिः—कृतः (= विहितः) अवधारणस्य (= सन्धारणस्य, अवलम्बनस्य) अनुबन्धः (= प्रयासः) यया तां तादृशीम् [केचित्तु—कृतः अवधारणे = देहपरित्यागे अनुबन्धः यया सा तादृशीम् इति, अन्ये च 'कृतविधारणानुबन्धाम्' इति पाठं मत्वा—'कृता विधारणे = देहपरित्यागे अनुबन्धो यया तादृशीम्—इति व्याख्यातवन्तः, एतन्न समीचीनम्, मदलेखया प्राणपरित्यागस्य क्वाप्यनुक्तत्वादिति बोध्यम् । मदलेखा कादम्बरीं धारितवती किन्तु मरणोद्यता कादम्बरी तस्या हस्तादात्मानं मोचितवतीति बोध्यम् ।] मदलेखाम्, स्वसेविकां सखीम्, अवक्षिप्य = दूरे प्रक्षिप्य, उपसृत्य = समीपं गत्वा, महाश्वेताम्, कण्ठे = ग्रीवादेशे, गृहीत्वा = आलिङ्ग्य निर्विकारवदना = विकृतिरहितमुखी, एव, पुनः = भूयः, ताम् = महाश्वेताम्, अवादीत् = अवोचत् ।

कादम्बरी महाश्वेतां किमवादीत्ति विस्तरेण वर्णयितुमाह—प्रियसखि इत्यादिना । हे प्रियसखि = महाश्वेते, तव = भवत्याः, कीदृशी = कथं विधा, अनिर्दिष्टा, अपि, प्रत्याशा = भूयः प्रियतममिलनाशा, अस्ति = वर्तते, यया = प्रत्याशया, अनुरागपरवशा = प्रेमपराधीना, पुनः द्वितीयवारम्, समागमाकाङ्क्षिणी = प्रियतममिलनाभिलाषिणी, सती क्षणे-क्षणे = प्रतिक्षणम्, मरणाभ्यधिकानि = मृत्योरपि अधिकानि, दुःखानि = कष्टानि, अनुभवन्ती = अनुभवं कुर्वन्ती, अलज्जाकरम् = व्रीडाया अजनकम्, अननुशोच्यम् = अचिन्तनीयम्, अनुशोचितमयोग्यम्, अनुपहसनीयम् = अनुपहसितुं योग्यम्, अवाच्यम् = अवचनीयम्, जीवितम् = जीवनम्, प्राणानिति भावः, धारयसि = अवलम्बसे, वहसि, जीवसीति तद्भावः । पुनः = परन्तु, सर्वतः = सर्वप्रकारतः, हताशाया हता=नष्टा,आशा यस्यास्तादृश्याः=विध्वस्ताशायाः, निराशायाः मम,सापि = पुनर्मिलनाशापि, नास्ति । तत् = तस्मात्कारणात्, प्रियसखीम्, पुनर्जन्मान्तरसमागमाय = द्वितीयजन्मनि पुनर्मिलनाय, आमन्त्रये = निमन्त्रये, प्रार्थये इति भावः । इति=इत्थम्, अभिधाय = उक्त्वा, उत्पद्यमानेत्यादि—

हुई ही लगातार थामे हुई मदलेखा को अलग धकेल कर, पास आकर महाश्वेता के गले में लिपट कर, मुख पर कोई विकार लिये बिना ही उस महाश्वेता से कहने लगी—

'हे प्रिय सखी ! तुम्हें तो किसी प्रकार की प्रत्याशा भी है जिसके कारण तुम प्रेम के वश में होती हुई दुबारा मिलन की इच्छा रखती हुई पल-पल में मृत्यु से भी अधिक दुःखों का अनुभव करती हुई—अलज्जा कर (लाज उत्पन्न न कराने वाले), न शोक करने योग्य, न उपहास करने योग्य और अनिन्दनीय जीवन (प्राणों) को धारण किये हुये हो अर्थात् तुम्हारा जीना सार्थक है। किन्तु मरी (नष्ट) हुई आशा वाली मेरे लिये तो यह (पुनर्मिलन की प्रत्याशा) भी नहीं है । इस कारण

१. अवक्षिप्य ।　　　　२. मरणादधिकानि ।

पुनर्जन्मान्तर[1] समागमाय' ।—इत्यभिधायोत्[2]पद्यमानपुलककेसरोद्भासिन्यसमसाध्वसानिलाहतोत्कम्पोत्तरंग्यमाणानन्दबाष्पवेगोर्मितरला, संगलत्स्वेदमकरन्दबिन्दुनिस्यन्दिनी, मुकुलायमाननयनकुमुदा कुमुदिनीव चन्द्रापीडचन्द्रास्तमयविधुरा, तदवस्थेपि हृदयवल्लभे समागमसुखमिवानुभवन्ती सरभसमुपरिपर्यस्तचिकुरहस्तोद्भ्रान्तकुसुमनिवहेन मूर्ध्नार्चयित्वा चन्द्रापीडचरणौ स्रवत्स्वेदामृतार्द्राभ्यां [3]कराभ्यामुत्क्षिप्याङ्केन धृतवती ।

उत्पद्यमानः (= सञ्जायमानः) यः पुलकः (= रोमाञ्चः) स एव केसरः (= किंजल्कः) तेन उद्भासते (= शोभते) इत्येवं शीला, असमेत्यादिः—असमम् (= विषमम्, अत्यधिकम्) यत् साध्वसम् (= भयम्) तस्माद् [जातः] य अनिलः (= श्वासोच्छ्वासवायुः) तेन आहता (= ताडिता), उत्कम्पोत्तरङ्ग्यमाणा = उत्कम्पनेन तरङ्गैरूर्ध्वं नीयमाना, आनन्देत्यादिः—आनन्दवाष्पस्य (= आनन्दजन्याश्रुणः) यः वेगः (= रयः) सः एव ऊर्मिः (= तरङ्गः) तेन तरला (= चञ्चला), संगलदित्यादिः—संगलन् (= सम्यक्प्रकारेण प्रस्रवन्) यः स्वेदः (= घर्मजलम्) स एव मकरन्दः (= पुष्परसः) तस्य बिन्दूनाम् (= जलकणानाम्) निस्यन्दिनी (= प्रवाहिणी), मुकुलायमानेत्यादिः—मुकुलायमाने (= मुकुलवद् आचरन्ती, सङ्कोचं प्राप्यमाणे) नयने (= नेत्रे) कुमुदे इव यस्याः सा तादृशी, कुमुदिनी इव, चन्द्रापीडेत्यादि—चन्द्रापीडः (= राजकुमारः) चन्द्रः (= शशी) इव तस्य अस्तमयेन (= अस्तं गमनेन) विधुरा (= व्याकुला) कादम्बरी हृदयवल्लभे = प्राणप्रिये, तदवस्थे—सा (= मृत्युं प्राप्ता) अवस्था (= दशा) यस्य तस्मिन् तादृशे मृते, अपि, सति, समागमसुखम् = सम्मिलनानन्दम्, अनुभवन्ती = अनुभवं कुर्वाणा, इव, सरभसम् = शीघ्रं यथा स्यात् तथा, उपरि = चन्द्रापीडस्य देहस्योपरि, पर्यस्तेत्यादिः—पर्यस्तः (= प्रक्षिप्तः) यः चिकुर-हस्तः (= केशकलापः) तस्माद् उद्भ्रान्तः (= उद्गीर्णः, निःसृतः) कुसुमानाम् (= पुष्पाणाम्) निवहः (= समूहः) येन तादृशेन, मूर्ध्ना = शिरसा, चन्द्रापीडचरणौ = चन्द्रापीडस्य पादौ, अर्चयित्वा = पूजयित्वा, स्रवदित्यादिः—स्रवन् (= प्रक्षरन्) यः स्वेदः स एव अमृतम् (= पीयूषम्) तेन आर्द्राभ्याम् (= क्लिन्नाभ्याम्) कराभ्याम् = हस्ताभ्याम्, उत्क्षिप्य = उत्थाप्य, चन्द्रापीडमिति शेषः, अङ्केन = क्रोडेन, धृतवती = धारयामास, स्वाङ्के स्थापयामास कादम्बरी चन्द्रापीडमिति भावः ।

मैं प्रिय सखी को दूसरे जन्म में मिलने के लिये आमन्त्रण (न्योता) देती हूँ, अर्थात् अपने प्राण छोड़ रही हूँ ।'—ऐसा कह कर उठे हुये रोमाञ्चरूपी केशर से सुशोभित, अत्यधिक भयरूपी श्वासोच्छ्वास वायु से आहत होती हुई, उत्कम्पनरूपी तरङ्गों में बहती (लुढ़कती) हुई, आनन्दाश्रुओं के वेगरूपी तरङ्गों से चञ्चल (हिलती डुलती हुई), निकलने (टपकने) वाले स्वेदरूपी मकरन्द की बूंदों को टपकाने वाली, सम्पुटित (बन्द) होती हुई कुमुद-सदृश आँखों वाली तथा चन्द्रापीडरूपी चन्द्रमा के अस्त हो जाने से व्याकुल कुमुदनी के सदृश (कादम्बरी ने) प्राणप्रिय के उस दशा में स्थित होने पर भी अर्थात् मर जाने पर भी मानों सम्मिलन के सुख का अनुभव करती हुई, ऊपर जल्दी से बिखरे हुये केश-पाश से वेग से गिरते हुये फूलों के समूह वाले मस्तक से चन्द्रापीड के चरणों की पूजा करके, बहते हुये पसीनारूपी अमृत से आर्द्र हाथों द्वारा उन्हें उठा कर अपनी गोद में रख लिया ।

१. पुनर्जन्मान्तरे । २. उत्पुञ्ज्यमान० । ३. हस्ताभ्याम् ।

अथ तत्करस्पर्शेनोच्छ्वसत[1] इव चन्द्रापीडदेहाज्झटिति तुहिनमयमिव सकलमेव तं प्रदेशं कुर्वाणमव्यक्तरूपं किमपि चन्द्रधवलं ज्योतिरेवोज्जगाम। अनन्तरं चान्तरिक्षे क्षरन्तीवामृतमशरीरिणी वागश्रूयत--'वत्से महाश्वेते, पुनरपि त्वं मयैव समाश्वासयितव्या[2] वर्तसे। तत्ते पुण्डरीकशरीरं मल्लोके मत्तेजसाप्यायमानमविनाशि भूयस्त्वत्समागमनाय[3] तिष्ठत्येव। इदमपरं मत्तेजोमयं स्वत एवाविनाशि विशेषतोऽमुना कादम्बरीकरस्पर्शेनाप्याय-

कादम्बर्या अङ्के स्थापनान्तरं किं जातमिति निरूपयति—अथेत्यादिना। अथ = एतदनन्तरम्, तत्करस्पर्शेन = कादम्बर्याः हस्तस्य स्पर्शेन, उच्छ्वसतः = उच्छ्वासं गृह्णतः, उज्जीवतः, इव, चन्द्रापीडदेहात् = चन्द्रापीडस्य मृतशरीरात्, झटिति = तत्कालम्, रभसात्, सकलम् = सर्वम्, एव, तम्, प्रदेशम् = भूभागम्, तुहिनमयम् = प्रालेयमयम्, हिमरूपमिति भावः कुर्वाणम्, अव्यक्तरूपम् = अस्पष्टं रूपम् (= आकारः) यस्य तत् तादृशम्, किमपि = अवचनीयम्, चन्द्रधवलम् = चन्द्रवत् शुभ्रम्, ज्योतिः = तेजः, एव, उज्जगाम = उदगच्छत्, प्रादुर्बभूव। अनन्तरम् = ज्योतिष उद्गमनानन्तरम्, अन्तरिक्षे = नभसि, अमृतम् = पीयूषम्, क्षरन्ती = वर्षन्ती, इव, अशरीरिणी = अमूर्ता, वाग् = वाणी, अश्रूयत = आकर्ण्यत, श्रवणगोचरीजाता—'वत्से = हे पुत्रि! महाश्वेते = एतन्नामिके!, पुनः = द्वितीयवारम्, अपि, त्वम् = भवती, मया = अविदितरूपवता, एव, समाश्वासयितव्या = समाश्वासनं प्रापयितव्या, वर्तसे = असि। ते = तव महाश्वेतायाः, तत् = पूर्वं नीतम्, पुण्डरीक-शरीरम् = प्रियतमदेहः, मल्लोके = मम चन्द्रमसो लोके, मत्तेजसा = मम धाम्ना, आप्यायमानम् = सिच्यमानम्, संरक्ष्यतां प्राप्यमाणम्, अविनाशि = अविनश्वरम्, अक्षतम्, सत्, भूयः = पुनः, त्वत्समागमनाय = त्वया सम्मिलनाय, तिष्ठति = विराजते, निषीदति, एव। अतस्तद्विषये न कापि चिन्ता कार्येति भावः। इदम् = पुरोवर्ति, अपरम् = द्वितीयम्, मत्तेजोमयम् = मम धाम एव, अतः, स्वत एव = स्वयमेव, अविनाशि = अनश्वरम्, विशेषतः = विशेषरूपेण, अमुना कादम्बरीकरस्पर्शेन = कादम्बर्याः पाणितलस्पर्शेन, आप्यायमानम् = शीतली-क्रियमाणम्, परिपोष्यमाणं वा, चन्द्रापीड-

इसके बाद उस कादम्बरी के हाथों के स्पर्श के कारण मानों सांस लेते हुए चन्द्रापीड के शरीर से तत्काल उस सारे ही प्रदेश को बर्फीला सा बनाती हुई, अव्यक्त रूप वाली, चन्द्रमा के समान धवल कोई ज्योति ऊपर निकल पड़ी। इसके बाद अन्तरिक्ष में अमृत की वर्षा सी करती हुई अशरीरिणी (बिना शरीर धारण की हुई) यह वाणी सुनाई दी—'पुत्री महाश्वेता! दुबारा भी मुझे ही तुमको आश्वासन देना पड़ रहा है। तुम्हारे (प्राणप्रिय) पुण्डरीक का वह शरीर मेरे (चन्द्रमा के) लोक में मेरे तेज (के प्रभाव) से परिपुष्ट या सुरक्षित होता हुआ अविनाशी बना हुआ दुबारा तुम्हारे समागम के लिये विद्यमान ही है, रखा ही है। दूसरा यह चन्द्रापीड का शरीर जो मेरे तेज से बना हुआ स्वतः ही अविनाशी, विशेष रूप से इस कादम्बरी के हाथ के स्पर्श से और परिपुष्ट होता

१. समुच्छ्वसित०। २. समाश्वासिता। ३. समागमाय।

मानं चन्द्रापीडशरीरं शापदोषाद्विमुक्तमप्यन्त[1]रात्मना कृतशरीरसंक्रान्तेर्योगिन इव शरीरमत्रैव भवत्योः [2]प्रत्ययार्थमा शापक्षयादास्ताम्। नैतदग्निना संस्कर्तव्यम्। नोदके[3] प्रक्षेप्तव्यम्। नापि वा समुत्स्रष्टव्यम्। यत्नतः परिपालनीयमा समागमप्राप्तेः' इति।

तां तु श्रुत्वा 'किमेतदि'ति विस्मिताक्षिप्तहृदयः सर्व एव परिजनो गगनतलनिवेशितनिर्निमेषलोचनो[4] लिखित इव पत्रलेखावर्जमतिष्ठत्। पत्रलेखा तु तेन तस्य ज्योतिषस्तुषारशीतलेनाह्लादहेतुना स्पर्शेन लब्धसंज्ञोत्थायाविष्टेव वेगाद्धावित्वा[5]परिवर्धकहस्तादाच्छिद्येन्द्रा-

शरीरम् = राजकुमारदेहः, शापदोषात् = पूर्वं प्रदत्तस्य शापस्य प्रभावात्, विमुक्तम् = प्राणशून्यम् अपि, अन्तरात्मना = मध्यवर्तिना, जीवेन, कृतशरीर-संक्रान्तेः—कृता (= विहिता) शरीरे (= अन्यस्मिन् देहे) संक्रान्तिः (= संक्रमणम्, प्रवेशः) येन तस्य तादृशस्य, योगिनः = विहितयोगसाधनस्य जनस्य, शरीरम्, इव, [इदं चन्द्रापीडशरीरम्] अत्रैव = अस्मिन् स्थाने एव, भवत्योः = युवयोः, कादम्बरी–महाश्वेतयोः, प्रत्ययार्थम् = विश्वासार्थम्, आ-शापक्षयात् = शापक्षयपर्यन्तम्, आस्ताम् = तिष्ठतु। एतत् = चन्द्रापीडशरीरम्, अग्निना = पावकेन, न, संस्कर्तव्यम् = संस्करणीयम्। उदके = जले, न, प्रक्षेप्तव्यम् = निपातनीयम्। वा = अथवा, नापि, समुत्स्रष्टव्यम् = कुत्राप्यन्यत्र परित्याज्यम्। आ समागमप्राप्तेः = समागमप्राप्तिपर्यन्तम्, यत्नतः = प्रयासपूर्वकम्, परिपालनीयम् = सम्यक् रूपेण रक्षणीयम्। इतिः = कथनसमाप्तौ।

तां त्विति। ताम् = अशरीरिणीं वाचम्, तु, श्रुत्वा = आकर्ण्य, 'एतत् किम्' इति = इत्थम्, विस्मिताक्षिप्तहृदयः—विस्मितेन (= विस्मयेन) आक्षिप्तम् (= आकृष्टम्, आक्रान्तम्) हृदयम् (= चित्तम्) यस्य सः तादृशः, सर्वः = समस्तः, एव, परिजनः = सेवकलोकः, गगनतले (= नभस्तले) निवेशितम् (= निहितम्), निर्निमेषम् (= निमेषशून्यम्) लोचनम् (= नेत्रम्) येन तादृशः, लिखितः = चित्रितः, आकीर्णः, इव, पत्रलेखावर्जम् = पत्रलेखां वर्जयित्वा, अतिष्ठत् = तस्थौ। पत्रलेखा स्तब्धा जडा वा नाभूत्। तु = परन्तु, पत्रलेखा = चन्द्रापीडस्य विशेषसेविका, तेन = सर्वैर्दृश्यमानेन, तस्य, ज्योतिषः = अवलोक्यमानधाम्नः तुषारशीतलेन = हिमवच्छीतेन, आह्लादहेतुना=प्रमोदकारकेण स्पर्शेन = सम्पर्केण, स्पर्शनेन, लब्धसंज्ञा —लब्धा (= प्राप्ता) संज्ञा (= चेतना) यया सा तादृशी, उत्थाय = उत्थिता भूत्वा, आविष्टा = भूतादि-गृहीता, इव, धावित्वा = रयेण उपसृत्य, परिवर्धकहस्तात् = एतन्नाम-काश्वपालकस्य करात्, इन्द्रायुधम् = चन्द्रापीडस्याश्वम्, आच्छिद्य = बलात् गृहीत्वा, 'अस्मद्-

हुआ, शाप के दोष से प्राणों से मुक्त हुआ भी (या मरण को प्राप्त हुआ भी) शरीर अपने योग = आत्मबल से दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाने वाले योगी के समान इसी जगह पर तुम दोनों के विश्वास के लिये तब तक बना रहेगा जब तक कि शाप का नाश नहीं होगा। अतः न तो इसका अग्नि से संस्कार करना (जलाना) है, न पानी में प्रवाहित करना है, न [जङ्गल आदि में] फेंकना है, जब तक समागम प्राप्त नहीं हो जाता तब तक बड़े यत्न के साथ रक्षा करनी है, सुरक्षित रखना है।

उस (वाणी) को सुन कर 'यह क्या है ?' इस प्रकार आश्चर्य में डूबे (आकृष्ट) हृदय वाला सारा नौकर-समूह केवल पत्रलेखा को छोड़ कर आकाश तल में टकटकी बांधे (अपलक) नेत्रों वाला, चित्र में बनाया गया सा खड़ा रहा। किन्तु पत्रलेखा उसके बर्फ जैसे शीतल तथा

१. आत्मना। २. संप्रत्ययार्थम्।
३. उदके वा क्षेप्तव्यमुत्स्रष्टव्यं प्रयत्नतः। ४. '''हृदयः। ५. परिबद्धक०।

युधम् 'अस्मद्विधानां[1] यथा तथा भवतु त्वं पुनरेवमेकाकी[2] विना वाहनं दूरं प्रस्थिते देवे क्षणमप्यवस्थातुं न शोभसे' इत्यभिदधाना तेनैवेन्द्रायुधेन सहात्मानमच्छोदसरस्यक्षिपत्।

अथ तयोर्निमज्जनसमयानन्तरमेव तस्मात्सरसः [3]सलिलाच्छैवलोत्करमिव शिरसि लग्नं गलज्जलबिन्दुसंदोहमयथावलम्बिदीर्घशिखं मुखोपरिपरस्परासक्तेरसंस्कारमलिनतया

विधानाम् = मादृशानाम्, यथा = येन प्रकारेण, भवतु, तथा = तेन प्रकारेण, भवतु = अस्तु, पुनः = किन्तु, त्वम् = इन्द्रायुध !, एवम् = अनेन प्रकारेण, तं परित्यज्येति भावः, वाहनम् = यानम्, विना = ऋते, देवे = स्वामिनि चन्द्रापीडे, सहायकहीने, प्रस्थिते = प्रस्थानं कृतवति सति, क्षणमपि, एकाकी = अद्वितीयः, अवस्थातुम् = अवस्थितिं कर्तुम्, न, शोभसे = शोभितो भवसि, योग्योऽसीति भावः, इति, अभिदधाना = भाषमाणा, तेनैव, इन्द्रायुधेन = अश्वेन, सह = सार्धम्, आत्मानम् = स्वाम्, अच्छोदसरसि = एतन्नामके सरोवरे, अक्षिपत्=पातयामास। [अत्र क्वचित् संस्करणे 'एकाकिनी' इति स्त्रीलिङ्ग पाठो दृश्यते, स सर्वथाऽसमीचीनः। क्वचित् 'एकाकिनि' इत्यपि पाठः, स तु 'देवे' इत्यस्य विशेषणरूपेण योजयितुं शक्यः। परन्तु 'एकाकी' इत्यस्य 'त्वम्' इत्यस्यैव विशेषणत्वमुचितम्, स्वामिनि प्रयाते सेवकस्य वाहनस्य एकाकिः नक्षणमपि अवस्थानस्यानुचितत्वादिति एकाकिनोऽश्वस्येन्द्रायुधस्य निन्दायाम् विप्राय इति बोध्यम् ।]

अथेति । अथ, तयोः = पत्रलेखेन्द्रायुधयोः, निमज्जनसमयानन्तरम् = जले ब्रुडनान्तरम्, एव, तस्मात् = सरसः = पुरोवर्तमानात् अच्छोद सरोवरस्य, सलिलात् = जलात् ['तापसकुमारः सहसैवोदतिष्ठत्' इति वक्ष्यमाणेऽन्वयः] शैवलोत्करम् = शेवालसमूहम्, इव, [इमानि द्वितीयान्तानि 'जटाकलापम्' इत्यस्य विशेषणानि] शिरसि = मूर्ध्नि, लग्नम् = संसक्तम्, गलदित्यादिः—गलत् (= क्षरत्) जलस्य (= वारिणः) बिन्दूनाम् (= कणानाम्) सन्दोहः (= समूहः) यस्मात् तादृशम्, अयथेत्यादिः—अयथा (= न यथास्थानम्) अवलम्बितुं शीलं यस्याः तादृशी, दीर्घा (= आयता, लम्बमाना) च शिखा (= चूडा) यस्य तं तादृशम् । मुखेत्यादिः—मुखस्य (= आननस्य) उपरि (= ऊर्ध्वभागे) परस्परम् (= अन्योन्यम्) या आसक्तिः (= संश्लेषः) तस्याः हेतोः, असंस्कार-मलिनतया = प्रसाधनाद्यभावजन्यमालिन्येन, च, उपसूचितेत्यादि—

प्रसन्नता के जनक स्पर्श से संज्ञा (होश) प्राप्त कर, उठ कर, भूत से ग्रस्त होती हुई सी तेजी से दौड़ कर, परिवर्धक (सईस) के हाथ से इन्द्रायुध को छीन कर 'हम जैसे लोगों का जैसा हो, वैसा हो, किन्तु वाहन के बिना अकेले स्वामी के दूर चले जाने पर तुम्हारा क्षणमात्र के लिये भी यहाँ अकेला ठहरना अच्छा नहीं लगता है'—ऐसे कहती हुई उसी इन्द्रायुध अश्व के साथ ही अपने को भी अच्छोद सरोवर में गिरा लिया, अर्थात् वह घोड़े के साथ-साथ समुद्र में कूद गई।

उन (पत्रलेखा और इन्द्रायुध) दोनों के डूब जाने के समय के तत्काल बाद ही उस अच्छोद सरोवर के जल से उद्विग्न (घबड़ाई हुई) आकृति वाला एक तपस्वी कुमार अचानक बाहर निकला, जो (तपस्वी कुमार) शैवालसमूह जैसे सिर पर लगे (विद्यमान), जल की बूंदों के समूह को चुआते हुए, ठीक-ठीक रूप से न लटकने वाली लम्बी चोटी वाले, मुख के ऊपर चिपक जाने से तथा (स्नान आदि) संस्कार न किये जाने से मैले होने के कारण बहुत समय पहले से ऊपर

१. अस्मिन्नविध्यतां यथा ते तथा त्वं पुनरप्येकाकिनि देवे विना वाहनं दूरं प्रस्थिते क्षणमप्यवस्थातुं न शोभसे—इत्यभिदधाना, अस्मद्विधा तु यथा तथा त्वं पुनरेवमेकाकी विना वाहनं दूरं प्रस्थिते देवे क्षणमपि न तिष्ठञ्शोभसे इत्यभिदधानातेनैव ।

२. वस्तुतस्तु अत्र 'एकाकी' इति इन्द्रायुधस्यैव विशेषणमुचितम्, पत्रलेखया एकाकित्वस्यैव निन्द्यत्वात्, सदा सहवर्तिनोऽश्वस्य तथावस्थितेरनुचितत्वादिति बोध्यम् । ३. सरःसलिलात् ।

चोपसूचितचिरोर्ध्वबन्धं जटाकलापमुद्वहन्, जलार्द्रदेहासक्तेन बिसतन्तुमयेनेव ब्रह्मसूत्रेणोद्भासमानः,[1] म्लानारविन्दिनीपलाशपृष्ठपाण्डुरेण[2] जीर्णमन्दारवल्कलेनाबद्धपरिकरः, करेणाननावरोधिनीर्जटा समुत्सारयन् अश्रुजलच्छलेनाच्छोदसरः सलिलमिवान्तः प्रविष्टं[3]माताम्राभ्यामुद्वह[4]ल्लोचनाभ्यामुद्विग्नाकृतिस्तापसकुमारकः सहसैवोदतिष्ठत्। उत्थाय च दूरत एवोद्दामबाष्पजलनिरोधपर्याकुलयापि [5]बद्धलक्षया दृष्ट्या विलोकयन्तीं महाश्वेतामुपसृत्य शोकगद्गदमवादीत्—

उपसूचितः (= स्पष्टं ज्ञापितः) चिरः (= चिरकालिकः) ऊर्ध्वः (= उपरितनः) बन्धः (= बन्धनम्) यस्य तं तादृशम्, जटाकलापम् = जटासमूहम्, उद्वहन् = धारयन्। जलेत्यादिः—जलेन (= सलिलेन) आर्द्रः (= क्लिन्नः) यो देहः (=शरीरम्) तस्मिन् आसक्तेन (= संश्लिष्टेन), बिसतन्तुमयेन = मृणालसूत्रनिर्मिततुल्येन, इव, ब्रह्मसूत्रेण = यज्ञोपवीतेन, उद्भासमानः = प्रकृष्टं शोभमानः। [अत्र 'इव' शब्द उत्प्रेक्षायां बोध्यः।] म्लानेत्यादिः—म्लानम् (= म्लानतामुपगतम्, शुष्कम्) यत् अरविन्दिन्याः (= कमलिन्याः) पलाशम् (= पत्रम्) तस्य पृष्ठम् (= पृष्ठभागः) तद्वत् पाण्डुरेण (= शुभ्रवर्णेन) जीर्णमन्दारवल्कलेन—जीर्णम् (= प्राचीनम्) यत् मन्दारस्य (= पारिजातपादपस्य) वल्कलम् (= तरुत्वक्) तेन आबद्धः (= सन्नद्धः) परिकरः (= कटिवस्त्रम्) यस्य तादृशः। आननावरोधिनीः = मुखावरणकारिणीः, जटाः = सटाः, करेण = स्वपाणिना, समुत्सारयन् = दूरीकुर्वन्। अन्तः प्रविष्टम् = मध्यदेहगतम्, इव, अच्छोदसरः सलिलम् = अच्छोदसरोवरजलम्, आताम्राभ्याम् = ईषद्रक्तवर्णाभ्याम्, लोचनाभ्याम् = नेत्राभ्याम्, उद्वहन् = धारयन्। [जटाकलापम् 'उद्वहन्' इति प्रयुज्य पुनरत्र 'उद्वहन्' इत्यस्यैव पदस्यावृत्तिर्न समीचीना प्रतीयते।] उद्विग्नाकृतिः = उद्विग्ना (= उद्वेगं प्राप्ता, व्याकुला) आकृतिः (= आकारः) यस्य तादृशः, तापसकुमारकः = तपस्विसुतः, सहसैव = अकस्मादेव, झटित्येव, उदतिष्ठत् = उत्थितः बहिरायायौ इति भावः। उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, सलिलाद्बहिरागत्य चेति भावः, दूरतः = विप्रकृष्टात् एव, उद्दामेत्यादिः—उद्दामम् (= अतितीव्रम्) यद् बाष्पजलम् (= नेत्रपयः, अश्रु) तस्य निरोधः (= प्रतिबन्धः) तेन पर्याकुला (= व्यग्रा) तथा तादृश्या, अपि, बद्धलक्षया = बद्धवेध्यया, [क्वचित्तु बद्धलक्ष्यया, अथ च 'अबद्धलक्ष्यया' इत्यपि पठ्यते। लब्धम् (= प्राप्तम्) लक्ष्यम् (= वेध्यम्) यया सा तादृश्या। अथवा अलब्धम् = अप्राप्तम् लक्ष्यं यया सा तादृश्या, पर्याकुलत्वेन लक्ष्यबद्धताया असम्भवत्वमिति भावः।] दृष्ट्या = नेत्रेण, विलोकयन्तीम् = पश्यन्तीम्, महाश्वेताम्, उपसृत्य = समीपं गत्वा, शोकगद्गदम्—शोकेन (= दुःखेन) गद्गदम् (= अव्यक्ताक्षरम्) यथा

बाँधे जाने की सूचना देने वाले जटा-समूह को धारण कर रहा था, जो पानी से गीले शरीर पर चिपके हुए, मृणालसूत्र से निर्मित यज्ञोपवीत (जनेऊ) से सुशोभित हो रहा था, जो मुरझाई हुई कमलिनी के पत्ते के पृष्ठ भाग के समान पाण्डुवर्ण वाले जीर्ण (पुराने) मन्दार वृक्ष के वल्कल से कमर को कसे (बाँधे) हुए था, जो मुख को ढक लेने वाली जटाओं को दोनों हाथों से हटा रहा था, अलग कर रहा था, आँसुओं के बहाने से, भीतर घुसे हुए मानों अच्छोद सरोवर के जल को लाल-लाल आँखों से अर्थात् आँखों में धारणकर रहा था [ऐसा व्याकुल आकार वाला तापसकुमार पानी से बाहर निकला]। बाहर निकल कर, दूर से ही बहुत अधिक अश्रुजल के रोके जाने जाने से व्याकुल होती हुई भी (किन्तु) लक्ष्य बाँधे हुई दृष्टि से [उसे] देखती हुई महाश्वेता के पास जाकर, शोक से गद्गद वाणी में कहने लगा—

१. म्लानारविन्दनीलपलाश०। २. ...पाण्डुना। ३. आताम्रायताभ्याम्।
४. उद्वमँल्लोचनानी'ति तूचितः पाठः। ५. अलब्धलक्ष्यया।

'गन्धर्वराजपुत्रि, [1]जन्मान्तरादिवागतोपि प्रत्यभिज्ञायतेऽयं जनो न वा' इति । सा त्वेवं पृष्टाशोकानन्दमध्यवर्तिनी ससंभ्रममुत्थाय कृतपादवन्दना[2] प्रत्यवादीत्-'भगवन्कपिञ्जल,अहमेवंविधाऽपुण्यवती या भवन्तमपि न प्रत्यभिजानामि ? अथवा युक्तैवेदृशी मय्यनात्मज्ञायां संभावना[3], याहमेकान्तत एव व्यामोहहता स्वर्गं गतेपि देवे पुण्डरीके जीवामि । तत्कथय केनासावुत्क्षिप्य नीतः ? किमर्थं वा नीतः ? किं वास्य वृत्तम् ? क्व वर्तते ? किं वा तवोपजातं येनैतावता कालेन [4]वार्तापि न दत्ता ? [5]कुतो वा त्वमेकाकी देवेन बिना समागतः[6] ?'

स्यात् तथा, अब्रबीत्=अवोचत् ।

गन्धर्वराजपुत्रीति । गन्धर्वराजपुत्रि !=हे महाश्वेते, जन्मान्तरात् = अन्यजन्मनः, इव, आगतः = सम्प्राप्तः, अपि, अयम् = एष पुरः स्थितः, जनः = लोकः, अहं कपिंजल इति भावः, प्रत्यभिज्ञायते=परिचीयते, प्रत्यभिज्ञाविषयीक्रियते, न वा ? सा=महाश्वेता, तु एवम्=अनेन प्रकारेण, पृष्टा=अनुयुक्ता, शोकानन्दमध्यवर्तिनी=दुःखस्य प्रमोदस्य च अन्तराले विद्यमाना, [प्रियतमपुण्डरीकस्य दर्शनेन अधिकं वियोगकष्टमनुभवन्ती,तस्य दर्शनेनैव भूयः प्रियतममिलनसम्भावनया प्रमोदं चानुभवन्तीति भावः ।] ससंभ्रमम् = सत्वरं यथा स्यात् तथा, उत्थाय = उत्थिता भूत्वा, प्रत्यवादीत् = प्रत्यवोचत् । भगवन् = हे देव, पूज्य, कपिञ्जल = एतन्नामकतपस्विन् !, अहम् = महाश्वेता, एवंविधा = एतादृशी, अपुण्यवती = दुर्भागिनी, या, भवन्तम् = त्वाम्, अपि, न, प्रत्यभिजानामि = प्रत्यभिज्ञाविषयीकरोमि, परिचिनोमि ? येन पूर्वं प्रियमेलनाय बहूपकृतं तस्यैव प्रत्यभिज्ञानाभावे न किमपि कारणमिति तद्भावः । अथवा = पक्षान्तरे, अनात्मज्ञायाम् = आत्मज्ञानहीनायाम्, मयि = महाश्वेतायाम्, ईदृशी = एतत्प्रकारा, सम्भावना=कल्पना, युक्ता = समीचीना, एव, या अहम् = महाश्वेता, एकान्ततः = एकान्तेन, निश्चितरूपेण, एव, व्यामोहहता= अज्ञानेन विनष्टा, सती, देवे = पूज्ये, पुण्डरीके, स्वर्गम् = नाकम्, गते = प्रयाते अपि, जीवामि = प्राणिमि, जीवनं धारयामीति भावः । प्रियतमे स्वर्गं गते मयापि प्राणान् सन्त्यज्य तदनुसरणमेव कर्तव्यमासीत् किन्तु तन्न मया कृतमिति हेतोरहमपुण्यवतीति तद्भावः । तत् = तस्मात् हेतोः, कथय = ब्रूहि, असौ = स पुण्डरीकः, केन = अज्ञातेन, उत्क्षिप्य = हठात् आकृष्य, नीतः = अन्यत्र प्रापितः ? किमर्थम् = किं प्रयोजनम् कस्मै प्रयोजनाय, वा, नीतः=प्रापितः ? वा=अथवा, अस्य = पुण्डरीकस्य, किम् = अज्ञातम्, वृत्तम् = संजातम्, घटितम् ? क्व = कस्मिन् अज्ञाते स्थाने, वर्तते = विद्यते ? वा = अथवा, तव = भवतः, कपिञ्जलस्य किम् = अज्ञातम्, उपजातम्=

'हे गन्धर्वराजपुत्रि महाश्वेता जी ! दूसरे जन्म से आये हुए जैसे इस व्यक्ति को आप पहचान रही हैं अथवा नहीं ?' इस प्रकार से पूछी गई शोक और आनन्द दोनों के मध्य में विद्यमान होती हुई वह महाश्वेता हड़बड़ाहट में उठ कर, पैरों की वन्दना करके उत्तर देने लगी—"भगवन् कपिञ्जल ! क्या मैं ऐसी पापिन हूँ जो कि आपको भी नहीं पहचानूंगी ? अथवा मुझ अनात्मज्ञा (मूर्खा) के विषय में ऐसी सम्भावना करना ठीक ही है, जो कि अज्ञान से मारी गई मैं स्वामी पुण्डरीक के स्वर्ग चले जाने पर भी जीवित हूँ । इसलिये यह बतलाओ—'कौन उन्हें उठा कर ले गया ? किसलिये ले गया ? अथवा इनका क्या हुआ, या क्या समाचार है ? वे कहाँ हैं ? और तुम्हारा क्या हुआ था जो इतने समय तक अपना कोई समाचार ही नहीं भेजा ? और उन पूज्य पुण्डरीक के बिना अकेले तुम क्यों वापस आये हो ?'

१. जन्मान्तरागतः, जन्मान्तरगतः । २. कृतपादप्रणामा । ३. त्वयाप्यात्मनः कारणादेवं संभाविता । ४. वार्तामपि न दत्तवानसि० । ५. कुतोऽपि । ६. एवागतोऽसीति ।

स त्वेवं पृष्टो महाश्वेतया विस्मयोन्मुखेन कादम्बरीपरिजनेन चन्द्रापीडानुगामिना च राजपुत्रलोकेनोपर्युपरि-पातिना वीक्ष्यमाणः प्रत्यवादीत्—'गन्धर्वराजपुत्रि श्रूयताम्। अहं हि कृतार्त-प्रलापामपि त्वामेकाकिनीं समुत्सृज्य वयस्यस्नेहादाबद्धपरिकरः 'क्व मे प्रियसुहृद-मपहृत्य गच्छसी'त्यभिधाय तं पुरुषमनुबध्नञ्जवेनोदपतम्। स तु मे प्रतिवचनमदत्त्वैव गीर्वाणवर्त्मनि विस्मयोत्फुल्लनयनैरवलोक्यमानो वैमानिकैः, अवगुण्ठितमुखीभिरवमुच्यमान-

---

उत्पन्नम्, येन = कारणेन, एतावता कालेन = समयेन, वार्त्ता = स्ववृत्तान्तः, अपि, न, दत्ता = विहिता, प्रेषिता ? वा = अथवा, कुतः = कस्मात् कारणात् स्थानाद् वा, त्वम् = कपिञ्जलः, देवेन = स्वामिना, पुण्डरीकेण, विना = ऋते, एकाकी = अद्वितीयः, असहायः, समागतः=समायातः, असि ?

कपिञ्जलस्य प्रतिवचनं वर्णयति—स त्वेवमित्यादिना। स तु, एवम् = पूर्वोक्तप्रकारेण, महाश्वेतया, पृष्टः = अनुयुक्तः, विस्मयोन्मुखेन—विस्मयेन (= आश्चर्येण) उत् (= ऊर्ध्वम्) मुखम् (= आननम्), यस्य तेन तादृशेन, कादम्बरी-परिजनेन = कादम्बर्याः सेवकलोकेन, चन्द्रापीडानुगमिना = चन्द्रापीडस्य पृष्ठे अनुसरणशीलेन, उपर्युपरिपातिना = अन्योन्योपरिपतन-शीलेन, पूर्वमहं पूर्वमहमिति भावनया अन्योन्योपरि पतनं कुर्वता, राजपुत्रलोकेन = राजकुमारजनेन, च, वीक्ष्यमाणः = अवलोक्यमानः, प्रत्यवादीत् = प्रत्यबोचत्। हे गन्धर्वराजपुत्रि = महाश्वेते !, श्रूयताम् = आकर्ण्यताम्, अहम् = कपिञ्जलः, हि, कृतेत्यादि—कृतः (= विहितः) आर्त्तः (= करुणः, दीनः) प्रलापः (= क्रन्दनम्) यया तां तादृशीम्, अपि, त्वाम् = भवतीं महाश्वेताम्, एकाकिनीम् = असहायाम्, समुत्सृज्य = परित्यज्य, वयस्यस्नेहात् = सुहृदोऽनु-रागात्, आबद्धपरिकरः = आबद्धकटिवसनः, सन्, मे = मम कपिञ्जलस्य, सुहृदम् = वयस्यम्, पुण्डरीकम्, अपहृत्य = अपहृतं कृत्वा, क्व = कुत्र, अज्ञातस्थले, गच्छसि = व्रजसि ? इति, अभिधाय = उक्त्वा, तम् = पुण्डरीकस्य नेतारम्, पुरुषम् = पुरुषाकृतिं जनम्, अनुबध्नन् = अनुधावन्, जवेन = वेगेन, उदपतम् = ऊर्ध्वम् अगच्छम्। तु = परन्तु, सः = पुरुषाकारो जनः, मे = मम कपिञ्जलस्य, प्रतिवचनम् = प्रत्युत्तरम्, अदत्त्वा = अप्रदाय, अविधाय, एव, गीर्वाण-वर्त्मनि = देवानां मार्गे, गगने इति भावः विस्मयोत्फुल्लनयनैः = आश्चर्येण विकसितनेत्रैः, वैमानिकैः = विमानविहरणशीलैः देवैः, अवलोक्यमानः = दृश्यमानः, अवेत्यादिः—अवगुण्ठितानि (= अवगुण्ठनवसनेन आच्छादितानि, पिहितानि), मुखानि (= आननानि) याभिस्तादृशीभिः अभिसारिकाभिः = स्ववल्लभानामभिसरणं कुर्वद्भिः, दिव्याङ्गनाभिः = अप्सरोभिः, अव-मुच्येत्यादिः—अवमुच्यमानः (= त्यज्यमानः, प्रदीयमानः) गगनमार्गः (= आकाशीयवर्त्म)

इस प्रकार से महाश्वेता द्वारा पूछा गया (वह कपिञ्जल) आश्चर्य से ऊपर मुख किये हुये कादम्बरी के सेवकों द्वारा तथा चन्द्रापीड के अनुगामी, एक दूसरे के ऊपर आते हुये (गिर पड़ते हुये) राजकुमारों द्वारा देखा जाता हुआ उत्तर देने लगा—"हे गन्धर्व-राजपुत्रि महाश्वेता ! सुनो, रोती-बिलखती हुई भी तुम्हें अकेली छोड़ कर मैं अपने मित्र के अनुराग के कारण कमर कसे हुये 'मेरे प्रिय मित्र को कहाँ ले जा रहे हो ?' ऐसा कह कर उस पुरुष का पीछा करता हुआ बहुत तेजी से ऊपर उड़ गया। किन्तु वह तो मेरी बात का उत्तर दिये बिना ही आकाश मार्ग में, आश्चर्य से फटे हुये नेत्रों वाले विमानारोही लोगों द्वारा देखा जाता हुआ, मुख पर घूंघट लटकाये हुई दिव्याङ्गनायें जो अभिसार करने वाली थीं, चञ्चल पुतलियों वाले

गगनमार्गो [1]दिव्याङ्गनाभिरभिसारिकाभिरालोलतारकेक्षणाभिः[2] इतस्ततः प्रणम्यमानस्तारकाभिः,अम्बरसरः कुमुदाकरमतिक्रम्य तारागणं [3]चन्द्रिकाभिराम-सकलोकं चन्द्रलोकमगच्छत्। तत्र च महोदयाख्यायां सभायामिन्दुकान्तमये महति पर्यङ्के तत्पुण्डरीकशरीरं स्थापयित्वा मामवादीत्—'कपिञ्जल! जानीहि मां चन्द्रमसम्। अहं खलूदयगतो[4] जगदनुग्रहाय स्वव्यापारमनुतिष्ठ[5]न्ननेन ते प्रियवयस्येन कामापराधाज्जीवितमुत्सृजता निरपराधः संशप्तः-

यस्मै स तादृशः, आलोलेत्यादिः—आलोलाः (= ईषच्चञ्चलाः) तारकाः (= कनीनिकाः) ययोः तादृशे ईक्षणे (= नयने) यासां तादृशीभिः, तारकाभिः = ताराभिः, इतस्ततः = यत्र तत्र सर्वत्र, प्रणम्यमानः = अभिवन्द्यमानः, नमस्क्रियमाणः[2]। अम्बरेत्यादिः—अम्बरम् (= आकाशम्) एव सरः (= सरोवरः) तस्मिन् कुमुदानाम् (= कुवलयानाम्) आकरम् (= समुदायम्), एव, तारागणम् =नक्षत्र-समूहम्, अतिक्रम्य = उल्लङ्घ्य, चन्द्रिकेत्यादिः—चन्द्रिकया (=स्वकौमुद्या) अभिरामः (= रमणीयः, उद्भासमानः) सकललोकः (=समस्तसंसारः) यस्मिन् तादृशम्, चन्द्रलोकम् = इन्दुलोकम्, अगच्छत् = अव्रजत्।

तत्र चेति। तत्र = चन्द्रलोके, च, महोदयाख्यायाम्—महोदय-इति आख्या (= नाम) यस्याः तादृश्याम्, सभायाम् = सदसि, इन्दुकान्तमये = चन्द्रकान्तमणिनिर्मिते, महति = विशाले, पर्यङ्के = पल्यङ्के, शयनीये, तत् = पूर्वोक्तम्, पुण्डरीक-शरीरम् = पुण्डरीकस्य देहम्, स्थापयित्वा = निधाय, माम् = कपिञ्जलम्, अवादीत् = अवोचत्—हे कपिञ्जल!, माम्, चन्द्रमसम् = निशापतिम्, जानीहि = अवेहि। अहम् = चन्द्रः, खलु = निश्चयेन, उदयगतः = उदयं प्राप्तः, उदितः, सन्, जगदनुग्रहाय = संसारस्य कल्याणाय, स्वव्यापारम् = स्वकीयं कर्तव्यम्, अनुतिष्ठन् = परिपालयन्, विदधानः, अनेन = पुरोवर्तिना, ते = तव कपिञ्जलस्य, प्रियवयस्येन = प्रियसुहृदा पुण्डरीकेण, कामापराधात् = कामदेवस्य दोषात्, जीवितम् = जीवनम्, प्राणान्, उत्सृजता = परित्यजता, मृत्युं प्राप्नुवता, निरपराधः = निर्दोषः, सन्नपि, अहम्=चन्द्रः, संशप्तः = शापसा-

नेत्रों वाली थीं, के द्वारा [आगे जाने के लिये] आकाशमार्ग दिया जाता हुआ, तारकाओं द्वारा इधर-उधर प्रणाम किया जाता हुआ वह दिव्य व्यक्ति आकाशरूपी सरोवर के कुमुद-समूहरूपी तारागणों को पार करने के बाद चाँदनी से सभी ओर मनोहर (दिखाई देने वाले) चन्द्रलोक में चला गया। और वहाँ चन्द्रलोक में 'महोदया' नामक सभा में चन्द्रकान्तमणि-निर्मित विशाल पलंग पर पुण्डरीक के उस शरीर को रख कर मुझ (कपिञ्जल) से बोला—"कपिञ्जल, मुझ चन्द्रमा जानों। मैं उदित होता हुआ संसार पर अनुग्रह करने के लिये अपने कर्तव्य का परिपालन कर रहा था, तभी तुम्हारे इस मित्र ने जो कि कामदेव के दोष के कारण प्राण-परित्याग कर रहा था, मुझ

१. दिव्याङ्गनाभिसारिकाभिः।

२-२. अत्रान्वयविषये सन्देहः, तारकासु अपि तारका' इति कथनं न समीचीनं प्रतीयते यद् बहुभिष्टीकाकारैः प्रदर्शितम्, वस्तुतस्तु अर्थौचित्यानुरोधादत्र दूरान्वयोपि स्वीकार्यः—'अवगुण्ठितमुखीभिः, आलोल-तारकेक्षणाभिः अभिसारिकाभिः दिव्याङ्गनाभिः अवमुच्यमान-गगनमार्गः—इति योजनैव समीचीना वर्तते।

३. चन्द्राभिराम।   ४. खलूदयं गतः।   ५. अनुकुर्वन्।

"दुरात्मन्निन्दुहतक ! यथाहं त्वया करैः 'संताप्योत्पन्नानुरागः सन्नसंप्राप्तहृदयवल्लभासमागमसुखः प्राणैर्वियोजितस्तथा त्वमपि कर्मभूमीभूतेऽस्मिन् भारते वर्षे जन्मनि जन्मन्येवोत्पन्नानुरागोऽप्राप्तसमागमसुखस्तीव्रतरां[२] हृदयवेदनामनुभूय जीवितमुत्स्रक्ष्यसि'[३] इति ।

अहं तु तेनास्य शापहुतभुजा [४]झटिति [५]ज्वलित इव 'निरागाः[६] किमनेनात्मदोषानुबन्धेन निर्विवेकबुद्धिना शप्तोऽस्मी'त्युत्पन्नकोपः 'त्वमपि मत्तुल्यदुःखसुख[७] एव भविष्यसी'ति प्रतिशाप-

स्कृतः । कथं संशप्त इति वर्णयति—दुरात्मन् = दुष्ट, इन्दुहतक = हतचन्द्र, पापिन् चन्द्र इति भावः, यथा = येन प्रकारेण, त्वया = चन्द्रेण, करैः = किरणैः, सन्ताप्य = सन्तप्तावस्थां प्रापय्य, उत्पन्नेत्यादिः—उत्पन्नः (= सञ्जातः) अनुरागः (= प्रीतिः) यस्य तादृशः, सन् अहम् = पुन्डरीकः, असम्प्राप्तेत्यादिः—असंप्राप्तम् (= न लब्धम्) हृदयवल्लभायाः (= प्राणप्रियायाः) समागमस्य (= सम्मिलनस्य) सुखम् (= आनन्दः, सन्तृप्तिः) येन स तादृशः, प्राणैः = असुभिः, वियोजितः = पृथक्कृतः, मारित इति भावः, तथा = तेन प्रकारेण, त्वम् = चन्द्रः, अपि, कर्मभूमीभूते = कर्तव्यभूमि-स्वरूपे, अस्मिन् भारते = एतन्नामके, वर्षे = देशे, भूखण्डे, जन्मनि-जन्मनि = अनेक-जन्मसु, एव, उत्पन्नानुरागः = सञ्जातप्रीतिः, किन्तु, अप्राप्त-समागमसुखः = अलब्ध-प्रियामिलनानन्दः, सन्, तीव्रतराम् = अत्युत्कटाम्, हृदय-वेदनाम् = हृदयपीडाम्, अनुभूय = अनुभवं कृत्वा, जीवितम् = प्राणान्, उत्स्रक्ष्यसि = परित्यक्ष्यसि, इतिः = शापसमाप्तौ ।

चन्द्रः स्वप्रतिक्रियां व्यनक्ति—अहं त्वित्यादिना । अहम् = चन्द्रः, तु, अस्य = पुण्डरीकस्य, शापहुतभुजा = शापाग्निना, झटिति = तत्क्षणमेव, जलितः = दग्धः, इव, निरागः—निर्गतः आगः (= अपराधः) यस्मात् तादृशः, निरपराध इति भावः, किम् = किमर्थम्, अनेन = एतेन पुण्डरीकेण, आत्मेत्यादिः—आत्मनः (= स्वस्य) यो दोषः (= अपराधः) तस्य अनुबन्धः (= सम्बन्धः) यस्मिन् तादृशेन, निर्विवेक-बुद्धिना—निर्विवेका (= ज्ञानशून्या) बुद्धिः (= मतिः) यस्य तेन तादृशेन, शप्तः = शापविषयीकृतः, अस्मि = वर्ते, इति = अस्मात् कारणात्, उत्पन्नकोपः = सञ्जातक्रोधः, त्वम् = भवान् पुण्डरीकः, अपि, मत्तुल्यदुःखसुखः—मम (= चन्द्रस्य) तुल्ये (= सदृशे) दुःखसुखे (= कष्टानन्दौ) यस्य सः तादृशः, एव, भविष्यसि = सम्पत्स्यसे' इति = अनेन रूपेण, अस्मै = पुण्डरीकाय, प्रतिशापम् = शापस्य

निरपराध को शाप दे दिया—'अरे दुरात्मा और दुष्ट चन्द्रमा, जिस प्रकार से तुमने अपनी किरणों से सन्तप्त करके [मेरे मन में] अनुराग उत्पन्न कराया हुआ किन्तु प्रिया के समागम सुख को न प्राप्त करता हुआ मैं प्राणों से रहित कर दिया गया, मार डाला गया, उसी प्रकार तू भी कर्मभूमि भूत भारतवर्ष देश में जन्म-जन्म अर्थात् अनेक जन्मों में उत्पन्न अनुराग वाला होता हुआ भी [अपनी प्रिया के] समागम सुख को न प्राप्त करता हुआ, हृदय की अत्यन्त तीव्र वेदना का अनुभव करके अपने प्राण छोड़ेगा ।'

तब उसकी इस शापाग्नि से तत्काल ही जले हुये से मैंने भी—'अपने दोष के कारण के सम्बन्ध से, इस ज्ञानशून्य बुद्धि वाले ने निरपराध भी मुझे शाप दे दिया है'—इस कारण उत्पन्न क्रोध वाला होते हुये 'तुम भी मेरे समान दुःख और सुख भोगने वाले हो जाओगे'—इस प्रकार से

१. सन्तापितः तत्पन्नानुरागः । २. तीव्रतमां । ३. उत्स्रजिष्यसि । ४. झगिति, धगिति । ५. समुद्दीपित, उद्दीपित । ६. निरगाम् । ७. सुखदुःख ।

मस्मै प्रायच्छम्। अपगतामर्षश्च विवेकमागतया बुद्ध्या विमृशन् महाश्वेताव्यतिकरम-स्याधिगतवानस्मि। वत्सा तु महाश्वेता मन्मयूखसंभवादप्सरसः कुलाल्लब्धजन्मनि गौर्यामुत्पन्ना। [1]तया चायं भर्ता स्वयंवृतः। अनेन च[2] स्वयंकृतादेवात्मदोषान्मया सह मर्त्यलोके वारद्वयमवश्यमुत्पत्तव्यम्। अन्यथा जन्मनि जन्मन्येषा[3] वीप्सैव न चरितार्था भवति। तद्यावदयं [4]शापदोषादपैति तावदस्यात्मना विरहितस्य शरीरस्य मा विनाशो भूदिति मयेदमुत्क्षिप्य समानीतम्। वत्सा च महाश्वेता समाश्वासिता। तदिदमत्र मत्तेजसा-

उत्तरे शापम्, प्रायच्छम्=प्राददाम्। अपगतामर्षः—अपगतः (=दूरीभूतः) अमर्षः (=क्रोधः) यस्य तादृशः, सन्, विवेकम्=ज्ञानम्, आगतया = प्राप्तया, बुद्ध्या=मत्या, विमृशन् = विचारयन्, अस्य = पुण्डरीकस्य, महाश्वेता-व्यतिकरम् = महाश्वेतया सह सम्बन्धम्, अधिगतवान्=ज्ञातवान्, अस्मि, अयं महाश्वेतायामनुरक्तो मदनव्यथामनुभवन् म्रियते इति तथ्यं ज्ञातवानस्मि। वत्सा=प्रिया, महाश्वेता = एतन्नाम्नी गन्धर्वराजकन्या, तु, मन्मयूखसम्भवात् = मम चन्द्रस्य किरणैरुत्पन्नात्, अप्सरसः कुलात् = अप्सरसो वंशात्, लब्ध-जन्मनि—लब्धम् (= प्राप्तम्) जन्म (= जनिः, उत्पत्तिः) यया तस्यां तादृश्याम्, गौर्याम् = एतन्नाम्न्यां गन्धर्वराजकुमार्याम्, उत्पन्ना = सञ्जाता। तया = महाश्वेतया, च, अयम् = एष पुण्डरीकः, स्वयं वृतः = आत्मेच्छया वरणविषयीकृतः, भर्ता = पतिः, अस्ति। स्वयं कृतात् = स्वत एव विहितात्, आत्मदोषात् = स्वकीयापराधात्, अनेन = एतेन पुण्डरीकेण, मया = चन्द्रेण, सह = सार्धम्, मर्त्यलोके = मृत्युलोके, वारद्वयम् = द्विवारम् अवश्यम् = निश्चितरूपेण, उत्पत्तव्यम् = जन्म ग्रहणीयम्। अन्यथा = एतद्वैपरीत्ये, 'जन्मनि जन्मनि = जनौ जनौ' इति एषा, वीप्सा = द्विरुच्चारणम्, न, चरितार्था = सफला, भवति = भविष्यति। तत् = तस्मात्, अयम् = एष पुण्डरीकः, यावत् = यावताकालेन, शाप-दोषात् = शापदुष्प्रभावात्, अपैति = दूरीभवति, मुक्तोभवति, तावत् = तावताकालेन, अस्य = पुण्डरीकस्य, आत्मना = चैतन्येन, विरहितस्य = शून्यस्य, मृतस्येत्यर्थः, शरीरस्य = देहस्य, विनाशः = क्षयः, मा = नैव, भूत् = भवतु, माङ्योगे लुङ्, इति = एतदर्थम्, मया = चन्द्रेण, इदम् = पुण्डरीक-शरीरम्, उत्क्षिप्य = उत्थाप्य, समानीतम् = अत्र आनीतम्। वत्सा = वल्लभा, महाश्वेता च, समाश्वासिता = समाश्वासनं प्रापिता। तत् = तस्मात् इदम्= पुण्डरीकशरीरम्, अत्र = चन्द्रलोके, मत्तेजसा = मम चन्द्रस्य धाम्ना, आप्यायमानम् = रक्षितं

उस (पुण्डरीक) को प्रतिशाप (शाप के बदले में शाप) दे डाला। किन्तु क्रोध दूर हो जाने पर विवेक प्राप्त कर लेने वाली बुद्धि से विचार करता हुआ मैं महाश्वेता के साथ इसके स्नेह-सम्बन्ध को जान गया। बेटी महाश्वेता तो मेरी किरणों से उत्पन्न हुये अप्सराओं के कुल में जन्म प्राप्त की हुई गौरी नामक (गन्धर्वस्त्री) में उत्पन्न हुई है। और उसने स्वयं ही इस (पुण्डरीक) को अपना भर्ता (पति) वरण किया है। इसे (पुण्डरीक को) अपने किये गये दोष के कारण ही मेरे साथ मर्त्यलोक में दो बार अवश्य उत्पन्न होना है। क्योंकि ऐसा न होने पर 'जनम-जनम में' यह [मेरी कही हुई] वीप्सा = द्विरुक्ति ही सफल नहीं होगी। इस कारण यह (पुण्डरीक) जब तक शापदोष से मुक्त नहीं हो जाता है तब तक आत्मा (चेतन) से रहित इसके शरीर का विनाश न हो—इसी के लिये मैं उठा कर यहाँ ले आया हूँ। और बेटी महाश्वेता को समाश्वस्त कर दिया है। अतः

१. अनया। २. अनेन च संप्रति। ३. इत्येषा। ४. शापदोषो व्यपैति।

[1]प्यायमानमा शापक्षयात् स्थितम्। अधुना त्वं गत्वैनं[2]वृत्तान्तं श्वेतकेतवे निवेदय। महाप्रभावोऽसौ कदाचिदत्र प्रतिक्रियां कांचिदपि करोति।' इत्युक्त्वा मां व्यसर्जयत्।

अहं तु विना वयस्येन शोकावेगान्धो[3] गीर्वाणवर्त्मनि[4] धावन्नन्यतममतिक्रोधनं वैमानिकमलङ्घयम्। स तु मां दहन्निव रोषहुतभुजा भ्रुकुटिविकरालेन चक्षुषा निरीक्ष्याब्रवीत्—'दुरात्मन् मिथ्यातपोबलगर्वित! यदेवमतिविस्तीर्णे गगनमार्गे त्वयाहमुद्दामप्रचारिणा तुरंगमेणेवोल्लङ्घितस्तस्मात्तुरङ्गम एव भूत्वा मर्त्यलोकेऽवतर' इति[5]। अहं तु तमुद्बाष्पपक्ष्मा

सत्, पुष्यत्, आ शापक्षयात् = शापस्य समाप्तिपर्यन्तम्, स्थितम् = संरक्षितम्, वर्तते इति शेषः। अधुना = इदानीम्, त्वम् = कपिञ्जल, गत्वा = व्रजित्वा, एनम् = अमुम्, वृत्तान्तम् = उदन्तम्, श्वेतकेतवे = एतन्नाम्ने पुण्डरीकपित्रे महर्षये, निवेदय = सूचय। महाप्रभावः = अत्यन्तसामर्थ्यवान्, असौ = श्वेतकेतुः, कदाचित्, अत्र = अस्मिन् विषये, काञ्चिदपि = अज्ञाताम्, प्रतिक्रियाम् = प्रतीकारम्, करोति = विदधाति। इति = एवम्, उक्त्वा = कथयित्वा, माम् = कपिञ्जलम्, व्यसर्जयत् = विसर्जितवान्।

अहं त्विति। तु = परन्तु, अहम् = कपिञ्जलः, वयस्येन = सुहृदा पुण्डरीकेण, विना = ऋते, शाकावेगान्धः = शोकस्य (= मन्योः) आवेगेन (= आवेशेन) अन्धः (= दृष्टिहीनः, उचितानुचितविवेकशून्यः) गीर्वाणवर्त्मनि = देवानां मार्गे, गगने, धावन् = जवेन गच्छन्, अन्यतमम् = कमप्येकम्, अतिक्रोधनम् = अतीवकोपशालिनम्, वैमानिकम् = व्योमयानेन चरन्तं देवम्, अलङ्घयम् = लङ्घितवान्। तु = किन्तु, सः = वैमानिकः, रोषहुतभुजा = क्रोधाग्निना, दहन् = प्रज्वालयन्, इव, भ्रुकुटिविकरालेन = भ्रुकुट्याभीषणेन, चक्षुषा = नेत्रेण, निरीक्ष्य = अवलोक्य, अब्रवीत् = अवोचत्—दुरात्मन् = दुष्ट, मिथ्यातपोबलगर्वित = मिथ्या (= मृषा) तपसः बलेन (= सामर्थ्येन, प्रभावेण) गर्वितः (= सञ्जातगर्वः) तत्सम्बुद्धौ रूपम्, यत् = यतः, एवम् = अनेन रूपेण, अतिविस्तीर्णे = अत्यन्त-विस्तृते, गगनमार्गे = व्योमवर्त्मनि, त्वया = भवता कपिञ्जलेन, अहम्, उद्दाम-चारिणा = उच्छृङ्खलगामिना, तुरङ्गमेण = अश्वेन, इव, लङ्घितः = अतिक्रान्तः, तस्मात् = कारणात्, तुरङ्गमः = अश्वः, एव, भूत्वा = जनित्वा, मर्त्यलोके = भूलोके, अवतर = अवतारं गृहाण, उत्पन्नो भवेति भावः। अहम् = कपिञ्जलः तु, तम् = वैमानिकम्, उद्बाष्पपक्ष्मा—उत् (= ऊर्ध्वम्) बाष्पः (= अश्रु) यस्मिन् तादृशं पक्ष्म

शाप की समाप्ति तक यह (पुण्डरीक का शरीर) मेरे (चन्द्रमा के) तेज से संरक्षित होता हुआ रहेगा। इस समय तुम जाकर यह वृत्तान्त महर्षि श्वेतकतु से कह दो। वे बहुत प्रभावशाली हैं, कदाचित् इस सम्बन्ध में वे कोई प्रतीकार भी कर दें। [अतः उसे रोकने के लिये उन्हें सूचना देना आवश्यक है]—ऐसा कह कर मुझे बिदा कर दिया।

किन्तु मित्र के बिना (अकेले) शोक के आवेग से अन्धे हुये मैं आकाशमार्ग में भागते हुये किसी अतिक्रोधी विमानचारी (देवर्षि आदि) को लांघ गया, उसके ऊपर से निकल गया। वह तो मुझे जलाता (फूंकता) हुआ सा क्रोधाग्नि के कारण भयानक भौंह वाली अपनी आंख से देख कर कहने लगा—'अरे दुष्ट, झूठी तपस्या के बल से अहङ्कार वाले! जो इस अत्यन्त लम्बे चौड़े गगन मार्ग पर उच्छृङ्खल रूप से भागने वाले घोड़े के समान तूने मेरा अतिक्रमण किया है, मुझे लांघा है, इसलिये घोड़ा बन कर ही मर्त्यलोक में अवतार लेगा।' किन्तु [ऐसा सुनते ही] गीली

---

१. आप्यायितम्। २. वृत्तान्तमिमम्। ३. शोकवेशान्धः।
४. गीर्वाणवर्त्मना। ५. इति बोढव्यं त्वया।

कृताञ्जलिरवदम्—'भगवन् वयस्यशोकान्धेन त्वं मयोल्लङ्घितो नावज्ञया[1]। तत्प्रसीद। उपसंहर [2]शापमाशु त्वमिमम्' इति। स तु मां पुनरवादीत्-'[3]यन्मयोक्तं तन्नान्यथा भवितुमर्हति। तदेतत्ते करोमि-कियन्तमपि कालं यस्यैव [4]वाहनतामुपयास्यसि तस्यैवावसाने स्नात्वा विगतशापो भविष्यसि।' इत्येवमुक्तस्तु तमहमवदम्--'भगवन् यद्येवं ततो विज्ञापयामि। तेनापि [5]मत्प्रियवयस्येन पुण्डरीकेण चन्द्रमसा सह शापदोषान्मर्त्यलोके एवोत्पत्तव्यम्। तदेतावन्तमपि भगवान् प्रसादं करोतु मे दिव्येन चक्षुषावलोक्य यथा तुरंगमत्वेपि मे तेनैव

(= नेत्ररोम) यस्य स तादृशः, कृताञ्जलिः = बद्धाञ्जलिः, अवदम् = प्रार्थितवान्—भगवन्, वयस्य-शोकान्धेन = सुहृदवियोगजन्यमन्युना ज्ञानशून्येन, मया = कपिञ्जलेन, त्वम् = वैमानिकः, उल्लङ्घितः = अतिक्रान्तः, अवज्ञया = तिरस्कारेण, न = नैव, उल्लङ्घित इति भावः। तत् = तस्मात्, प्रसीद = प्रसन्नो भव। त्वम् = भवान्, इमम् = त्वया प्रदत्तम्, शापम्, आशु = शीघ्रं यथा स्यात् तथा, उपसंहर = निवर्तय, प्रभावहीनं कुर्विति भावः। तु = किन्तु, सः = वैमानिकः, माम् = कपिञ्जलम्, पुनः = भूयः, अवादीत् = अवोचत्। मया, यत्, उक्तम् = कथितम्, तत्, अन्यथा = विपरीतम्, भवितुम्, न, अर्हति। तत् = तस्मात्, ते = तव, एतत् = इदम्, करोमि = विदधामि, कियन्तम् = किम्परिमाणम्, कालम् = समयं यावत्, यस्य जनस्य = लोकस्य एव, वाहनताम् = युग्यताम्, उपयास्यसि = उपगमिष्यसि, वाहनो भविष्यसीति भावः, तस्य, एव, जनस्य, अवसाने = अन्ते, मरणकाले, स्नात्वा = स्नानं कृत्वा विगतशापः = शापप्रभावमुक्तः, भविष्यसि = सम्पत्स्यते इति, एवम् = इत्थम्, उक्तः = कथितः, अहम्, तम् = वैमानिकम्, अवदम् = अवोचम्—'भगवन्, यदि = चेत्, एवम् = इत्थं भविष्यति, ततः = तस्मात्कारणात्, विज्ञापयामि = निवेदयामि। मत्प्रियवयस्येन = प्रियमित्रेण तेनापि पुण्डरीकेण, शापदोषात् = शाप-प्रभावात्, चन्द्रमसा = चन्द्रेण, सह = साधंम्, मर्त्यलोके = भूलोके, एव, उत्पत्तव्यम् = जन्म ग्रहीतव्यम्, तत् = तस्मात्, मे = मम कपिञ्जलस्य, एतावन्तम् = इयन्तम्, अपि, प्रसादम् = अनुग्रहम्, भगवान् = ऐश्वर्यवान् श्रीमान्, दिव्यचक्षुषा = दिव्यनेत्रेण, अवलोक्य = दृष्ट्वा करोतु = विदधातु, यथा = येन प्रकारेण, मे = मम, तुरङ्गमत्वे = अश्वत्वे, अपि, तेनैव, वयस्येन = सुहृदा,

बरौनियों वाली (आर्द्र)आंखों वाला होकर मैं हाथ जोड़ कर कहने लगा–'भगवन्! मित्र के (वियोग-रूपी) शोक से अन्धे हुये ही मैंने आपको लांघा है न कि आपकी अवज्ञा (अपमान) से। इसलिये प्रसन्न हो जाइये। आप अपने इस शाप को शीघ्र ही वापस ले लीजिये।' [यह सुन कर] वह कहने लगा—'मैंने जो कह दिया वह अब अन्यथा नहीं हो सकता। इस कारण तुम्हारे लिये यह करता हूँ कि कुछ समय तक तू जिसका वाहन बनेगा, उसकी मृत्यु हो जाने पर, स्नान करके शाप से मुक्त हो जायगा।' ऐसा कहा गया मैं फिर से उससे बोला —'भगवन्, यदि ऐसा है तो आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि मेरे प्रिय मित्र पुण्डरीक को शापदोष के कारण चन्द्रमा के साथ मर्त्य-लोक में ही अवतार लेना है। अतः दिव्य दृष्टि से देख कर इतनी कृपा और कीजिये कि घोड़े की

१. अवज्ञायाः, अवज्ञानात्। २. इमं शापमुपसंहरेति।
३. दत्त एव शापः संप्रति मया नान्यथा। ४. वाह्यताम्। ५. मे प्रियवयस्येन।

प्रियवयस्येन सहावियोगेन कालो यायात्' इति। स त्वेवमुक्तो मुहूर्तमिव ध्यात्वा पुनर्माम-वादीत्–'अनया स्नेहलतया ते [1]ममार्द्रीकृतं हृदयम्। तदालोकितं मया—उज्जयिन्यामपत्य-हेतोस्तपस्यतस्तारापीडनाम्नो राज्ञः सनिदर्शनं चन्द्रमसा तनयत्वमुपगन्तव्यम्। वयस्येनापि ते पुण्डरीकेण तन्मन्त्रिण एव शुकनासनाम्नः। त्वमपि [2]तस्य महोपकारिणश्चन्द्रात्मनो राजपुत्रस्य वाहनतामुपयास्यसि' इति। अहं तु तद्वचनानन्तरमेवाधः स्थिते[3] महोदधौ न्यपतम्। तस्माच्च तुरंगीभूयैवोदतिष्ठम्। संज्ञा तु मे [4]तुरंगत्वेनापि न[5] व्यपगता। येनायं

पुण्डरीकेण, सह = सार्धम्, अवियोगेन=वियोगं विना, एव, कालः = समयः, यायात् = व्रजेत्, यापितः स्यात्। स तु = वैमानिकः एवम् = इत्थम् उक्तः = कथितः सन्, मुहूर्तम् = स्वल्प-कालम्, इव, ध्यात्वा = ध्यानं कृत्वा, विचिन्त्य, पुनः, माम् = कपिञ्जलम्, अवादीत् = अवोचत्। अनया = एतया, ते = तव, स्नेहलतया = अनुरागव्रततया, मम = वैमानिकस्य, हृदयम् = चित्तम्, आर्द्रीकृतम् = क्लिन्नीकृतम्, द्रवीकृतम्। तत् = तस्मात्, मया = वैमानिकेन, आलोकितम् = दृष्टम्, उज्जयिन्याम् = अवन्तिनगर्याम्, अपत्यहेतोः = सन्तानप्राप्तये, तपस्यतः = तपश्चरतः, तारापीडनाम्नः, राज्ञः = नृपतेः, सनिदर्शनम् = सप्रमाणम्, स्वप्ने यथा सूचितं तथा अभिज्ञानेन = अयं चन्द्र एव इति ज्ञानेन सहितम्, चन्द्रमसा = चन्द्रेण, स्वयम्, तनयत्वम्, पुत्रत्वम्, उपगन्तव्यम् = प्राप्तव्यम्, चन्द्रः पुत्ररूपेण उत्पत्स्यते इति भावः, ते = तव कपि-ञ्जलस्य, वयस्येन = सुहृदा पुण्डरीकेण, अपि, तन्मन्त्रिणः = तस्य तारापीडस्यामात्यस्य, शुकनास-नाम्नः, एव, तनयत्वमुपगन्तव्यमिति वाक्यशेषोऽत्र योजनीयः। त्वम् = भवान् कपिञ्जलः, अपि, तस्य, महोपकारिणः = महदुपकारपारायणस्य, राजपुत्रस्य = राजकुमारस्य चन्द्रापीडस्य, वाहन-ताम् = युग्यताम्, उपयास्यसि = उपगमिष्यसि, प्राप्स्यसीति भावः, इतिः = कथनसमाप्तौ। अहम् = कपिञ्जलः, तु, तद्वचनान्तरम् = तस्य वैमानिकस्य भाषणान्तरम्, एव, अधः स्थिते = नीचैर्विद्यमाने, महोदधौ = महासागरे, न्यपतम् = निपतितवान्, तस्मात् = महोदधेः, च, तुरङ्गीभूय = अश्वशरीरं सन्धार्य, एव, उदतिष्ठम् = उत्तस्थौ, बहिराजगाम। तु = परन्तु तुरङ्गत्वेन = अश्वत्वेन, अपि, मे = मम कपिञ्जलस्य, संज्ञा = बोधः, न, व्यपगता = विनष्टा, अश्वः सन्नपि अहं सर्वं वस्तुतत्त्वं जानामि स्मेति भावः। क्वचित्तु—'तुरङ्गत्वेऽपि'

योनि में भी उस प्रिय मित्र पुण्डरीक के अवियोग से अर्थात् साथ ही साथ समय बीते।' मेरे ऐसे कहे जाने पर कुछ देर तक ध्यान (सोंच) करके वह फिर से बोला –'तुम्हारी इस स्नेहरूपी लता ने मेरा हृदय आर्द्र कर (पिघला) दिया है। अतः मैंने यह देख लिया है, जान लिया है कि उज्जयिनी नगरी में पुत्र-प्राप्ति के लिये तपस्या करते हुये तारापीड राजा को [स्वप्न में] सूचित करके चन्द्रमा उनका पुत्र बनेगा। और तुम्हारा मित्र पुण्डरीक भी उस राजा के महामन्त्री शुकनास का ही पुत्र बनेगा। और तुम भी महोपकारी चन्द्ररूपी उस राजकुमार का वाहन (अश्व) बनेगा।' मैं तो उसके कहने के बाद ही नीचे स्थित महासमुद्र में गिर पड़ा। और उस समुद्र से घोड़ा बन कर ही ऊपर निकला। परन्तु घोड़ा हो जाने पर भी मेरी संज्ञा (सारा ज्ञान) दूर नहीं हुई, अर्थात् मुझको सब कुछ याद रहा। जिस कारण से इसी उद्देश्य के लिये किन्नरी मिथुन (जोड़े) का पीछा-

---

१. आर्दितम्। २. तस्यैव परमोपकारिणः। ३. अधः स्थितः।
४. तुरङ्गमत्वेऽपि। ५. नैवोपयाता।

मयास्यैवार्थस्य कृते किन्नरमिथुनानुसारी भूमिमेतामानीतो देवश्चन्द्रमसोऽवतारश्चन्द्रापीडः। योऽप्यसौ[1]प्राक्तनानुरागसंस्कारादभिलपन्नजानत्या त्वया शापाग्निना निर्दग्धः सोऽपि मे वयस्यपुण्डरीकस्यावतारः।'

[2]इत्येतच्छ्रुत्वा 'हा देव पुण्डरीक, जन्मान्तरेऽप्यविस्मृतमदनुराग, मत्प्रतिबद्धजीवित, मच्छरण, मन्मुखावलोकिन्, मन्मयसकलजीवलोक, [3]लोकान्तरगतस्यापि तेऽहमेव राक्षसी विनाशायोपजाता, दग्धप्रजापतेरियदेव मन्निर्माणे दीर्घजीवितप्रदाने च प्रयोजनं निष्पन्नं

इति सप्तम्यन्तपाठः, अत्र 'अश्वरूपं प्राप्ते सत्यपीत्यर्थः। येन = संज्ञायाः सत्त्वेन एव, मया = कपिञ्जलेन इन्द्रायुधाश्वरूपधारिणा, अस्य, एव, अर्थस्य = प्रयोजनस्य, कृते, किन्नरमिथुनानुसारी = किन्नरयुग्मानुवर्ती, सन्, अयम् = एषः, चन्द्रमसः = चन्द्रस्य, अवतारः, देवः, चन्द्रापीडः, एताम् = इमाम्, भूमिम् = प्रदेशम्, आनीतः = सम्प्रापितः। यः, अपि, असौ = वैशम्पायनः, प्राक्तनानुरागसंस्कारात् = पूर्वजन्मस्नेहसंस्कारवशात्, अभिलपन् = भवतीं प्रति वदन्, किन्तु, अजानत्या = अज्ञानवत्या, त्वया = महाश्वेतया, शापाग्निना = शापवह्निना, दग्धः = ज्वालितः, सः, अपि, मे = मम कपिञ्जलस्य, वयस्यपुण्डरीकस्य तव प्राक्तनवल्लभस्य, अवतारः = द्वितीयजन्मप्राप्तः, एव, अस्ति, न तु अन्यः कश्चिदिति भावः।

महाश्वेतायाः अवस्थां वर्णयति—इत्येतदित्यादिना। इति, एतत् = कपिञ्जलोक्तम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, हा देव पुण्डरीक, जन्मान्तरे = अन्यस्मिन् जन्मनि, अपि, अविस्मृतमदनुराग = अविस्मृतः (= न विस्मृतः) मम (= महाश्वेतायाः) अनुरागः (= स्नेहः) येन स तत्सम्बुद्धौ, मत्प्रतिबद्धजीवित = मयि (= महाश्वेतायाम्) एव प्रतिबद्धम् (= आसक्तम्) जीवितम् (= प्राणाः) यस्य तत्सम्बुद्धौ; मच्छरण = मदाश्रय, [अत्र अहमेव शरणम् = आश्रयः यस्य तत्सम्बुद्धौ रूपम्, न तु 'मम शरणम्' इति षष्ठी-समासः।] मन्मुखावलोकिन्—मम (= महाश्वेतायाः) मुखम् (= आननम्) अवलोकयितुं शीलमस्य स तत्सम्बुद्धौ रूपम्, मन्मयेत्यादिः—अहम् एव इति मन्मयः = मद्व्याप्तः, सकलः (= समस्तः) जीवलोकः (= प्राणिवर्गः) यस्य तत्सम्बुद्धौ रूपम्, लोकेत्यादिः—अन्यो लोकः (= लोकान्तरम्) तत्र गतस्य (= प्रस्थितस्य) अपि, ते = भवतः पुण्डरीकस्य, विनाशाय = क्षयाय, मारणाय, अहम् = महाश्वेता, एव, राक्षसी = पिशाचिनी, उपजाता = समुत्पन्ना। दग्धप्रजापतेः = हतविधातुः, मन्निर्माणे = मम सृष्टौ, दीर्घजीवितप्रदाने = दीर्घकालिकजीवनसमर्पणे, च, इयत् = एतावद्, एव, प्रयोजनम् = उद्देश्यम्, निष्पन्नम् = सिद्धं जातम्, यत्, पुनः पुनः =

करता हुआ चन्द्रमा के अवतार स्वामी चन्द्रापीड को इस जगह तक ले आया था। और [हे महाश्वेता जी,] पूर्वजन्म के अनुराग के संस्कार के कारण ही तुम्हें चाहते हुये जिस इस (वैशम्पायन) को तुमने शापाग्नि से जला डाला, वह (वैशम्पायन) भी मेरे प्रिय मित्र पुण्डरीक का ही अवतार (दूसरा जन्म) था।'

यह सुनकर 'हाय देव पुण्डरीक! दूसरे जन्म में भी मेरे अनुराग को न भूलने वाले! मेरे ऊपर ही अपना जीवन (प्राण) स्थिर रखने वाले! मुझे अपनी शरण बनाने वाले! मेरे मुख को देखने वाले! सारे संसार को मेरे रूप में ही बना देने वाले! लोकान्तर में चले गये भी तुम्हारे विनाश के लिये मैं ही राक्षसी बनकर पैदा हुई। दुष्ट विधाता का मुझे बनाने तथा लम्बी आयु देने का

---

१. प्राक्तनादेव। २. एतच्छ्रुत्वा महाश्वेता। ३. कथं लोकान्तर०।

यत्पुनः पुनस्ते व्यापादनम्, स्वयं हत्वा च पापकारिणी [1]कमुपालभे ? [2]किं [3]ब्रवीमि ? कि-[4]माक्रन्दामि ? कमुपयामि शरणम् ? को वा करोतु मयि दयाम् ? याचेह [5]आत्मनैवाधुना—देव प्रसीद, कुरु दयाम्, देहि मे प्रतिवचनमित्येतान्यक्षराण्युच्चारयन्त्यपि लज्जे, मन्ये च तवाप्येवमुत्पन्नं मन्दभाग्यायां मयि वैराग्यं येनैवमपि विप्रलपन्त्यां[7] न प्रतिवचनं [8]ददासि । हा हतास्म्यनेनैवात्मनो जीवितस्योपर्यनिर्वेदेन'[9]—इत्युन्मुक्तार्तनादा सोरस्ताडनमवनावात्मानमपातयत् ।

भूयो भूयः, ते = तव पुण्डरीकस्य, व्यापादनम् = मारणम्, स्वयम् = आत्मना, च, हत्वा = व्यापाद्य, पापकारिणी = दुष्कृतविधात्री, कम् = अज्ञातम्, उपालभे = उपालम्भं करोमि ? किम्, ब्रवीमि = वदामि ? किम्, आक्रन्दामि = विलपामि ? कम् = अज्ञातम्, शरणम् = आश्रयम्, उपयामि = उपगच्छामि ? वा = अथवा, कः, मयि = महाश्वेतायाम्, दयाम् = करुणाम्, करोतु = विदधातु ? अधुना = इदानीम्, अहम्, आत्मना = स्वयम्, एव, याचे = याचनां करोमि, अभ्यर्थये, देव ! = स्वामिन्, प्रसीद = प्रसन्नो भव, दयाम् = कृपाम्, कुरु = विधेहि, मे = मम, प्रतिवचनम् = प्रत्युत्तरम्, देहि = प्रयच्छ, इति = इत्थम्, एतानि = इमानि, अक्षराणि = वर्णान्, उच्चारयन्ती = कथयन्ती, अपि, लज्जे = त्रपे । मन्ये = स्वीकरोमि, च, मन्दभाग्यायाम् = दुर्भगायाम्, मयि = महाश्वेतायाम्, तव = पुण्डरीकस्य, अपि, एवम् = इत्थम्, वैराग्यम् = विरक्तिः, उत्पन्नम् = सञ्जातम्, येन = हेतुना, एवम् = अनेन प्रकारेण, विप्रलपन्त्याम् = आक्रन्दन्त्याम्, सत्याम्, अपि, प्रतिवचनम् = प्रत्युत्तरम्, न, ददासि = प्रयच्छसि । हा = इदं शोके, आत्मनः = स्वस्याः जीवितस्य = जीवनस्य, उपरि = विषये, अनेन = अमुना, अनिर्वेदेन = चिरजीवनस्याविरक्तया, एव, हता = विनष्टा, मारिता, अस्मि = भवामि । इति = इत्थम्, उन्मुक्तेत्यादिः— उन्मुक्तः (= परित्यक्तः, प्रारब्धः) आर्तः (= दीनतामयः) नादः (= ध्वनिः) यया सा तादृशी, सोरस्ताडनम् = वक्षःस्थले कराभ्याघातं कृत्वा, आत्मानम् = स्वाम्, अवनौ = भूमौ, अपातयत् = पातयामास, भूमौ निपतितेति भावः ।

यही प्रयोजन बना—मेरे द्वारा बार-बार आपका मारा जाना । अपने आप ही आपको मार कर पाप करने वाली मैं अब किसे उलाहना दूँ, शिकायत करूँ ? क्या कहूँ ? क्या चिल्लाऊँ ? किसकी शरण में जाऊँ ? अथवा कौन मुझ पर दया करेगा ? अब मैं स्वयं ही आपसे यह भीख माँगती हूँ—स्वामी प्रसन्न हो जाइये, दया कीजिये, मेरी बातों का उत्तर दीजिये—' इन अक्षरों को कहती हुई भी मैं लज्जा कर रही हूँ (यह कहते भी मुझे शर्म आ रही है ।) मैं तो यही समझती हूँ कि आपका भी मुझ अभागिन पर ऐसा वैराग्य उत्पन्न हो गया है जिससे कि ऐसी बिलाप करती हुई भी मुझे कोई उत्तर नहीं दे रहे हो । हाय, अपने प्राणों के ऊपर इस अनिर्वेद (घृणा न करना, अनुराग करना) के कारण मैं मारी गई हूँ'—इस प्रकार से आर्तनाद करती हुई, छाती पीटती हुई (महाश्वेता) ने अपने आप को जमीन पर गिरा दिया अर्थात् वह भूतल पर गिर गई ।

---

१. किमुपा० । २. कं । ३. ब्रवीमि, कस्मै कथयामि ।
४. कम् । ५. अपराद्धा । ६. उत्पन्नमेव ।
७. विलपन्त्या । ८. मे ददासि । ९. अनिर्वेदना ।

कपिञ्जलस्तु [1]तथार्त्तकृतप्रलापां सानुकम्पमवादीत्—'गन्धर्वराजपुत्रि, कस्तवात्र दोषो येनैवमनिन्दनीयमात्मानं निन्दापदैर्योजयसि। को [2]वाऽधुना [3]सुखपाकेऽनुभवनीये दुःखस्यावसरः येनैवात्मानं शुचा व्यापादयसि। [4]यदसह्यतरं तत्त्वया निर्व्यूढं [5]दृढीकृतहृदययास्यैव समागमप्रत्याशया। यथा च शापदोषादिदमुपगतं[6] भवत्योर्द्वयोरपि दुःखं तथा मया कथितमेव। चन्द्रमसोपि भारती भवतीभ्यां श्रुतैव। तदुन्मुच्यतामयमात्मनो वयस्यस्य चाश्रेयस्करः शोकानुबन्धः[7]। द्वयोरेव[8] श्रेयसे यदेव भवत्याङ्गीकृतं तदेवानुबध्यतां

कपिञ्जल इति। कपिञ्जलः, तु, तथा = तेन प्रकारेण, कृतार्त्तप्रलापाम् = विहितदीनविलापाम्, सानुकम्पम् = अनुकम्पा (= दया) तया सहितं यथा स्यात् तथा, अवादीत् = अवोचत्। हे गन्धर्वराजपुत्रि = महाश्वेते !, अत्र = अस्मिन् विषये, तव = भवत्याः महाश्वेतायाः, कः, दोषः = अपराधः, येन = कारणेन, अनिन्दनीयम् = निन्दाया अयोग्यम्, आत्मानम् = स्वाम्, निन्दापदैः = निन्दासूचकशब्दैः, योजयसि = सम्बध्नासि ? अधुना = इदानीम्, सुखपाके = सुखरूपे परिणामे, अनुभवनीये = अनुभवितुं शक्ये सति, दुःखस्य = क्लेशस्य, अवसरः = प्रसङ्गः, कालो वा, कः ? न कोऽपीति भावः। येन = हेतुना, एव, शुचा = शोकेन, आत्मानम् = स्वाम्, व्यापादयसि = मृत्युं प्रापयसि। यत् = दुःखम्, असह्यतरम् = असहनीयतरम्, तत् = दुःखम्, दृढीकृतहृदयया—दृढीकृतम् (= कठोरीकृतम्) हृदयम् (= चित्तम्) यया तादृश्या, त्वया = भवत्या महाश्वेतया, अस्य = पुण्डरीकस्य, एव, समागम-प्रत्याशया = मिलनस्य प्रत्याशया, निर्व्यूढम् = सोढम्, अतियापितम्। यथा = येन प्रकारेण, च, शापदोषात् = शापप्रभावात्, भवत्योः = महाश्वेताकादम्बर्योः द्वयोः = उभयोः, अपि, दुःखम् = कष्टम्, उपगतम् = सम्प्राप्तम्, तथा = तेन प्रकारेण, मया = कपिञ्जलेन, कथितम् = निवेदितम्, एव। एवञ्च तद्विषयेऽपि भवत्योः सर्वं रहस्यं स्पष्टीभूतम्। भवतीभ्याम् = युष्मभ्याम्, चन्द्रमसः चन्द्रस्य, अपि, भारती = वाणी, श्रुता = आकर्णिता, एव। तत् = तस्मात्, आत्मनः = स्वस्याः, वयस्यस्य = सुहृदः पुण्डरीकस्य, च, अयम् = प्रत्यक्षमुपलभ्यमानः, अश्रेयस्करः = अकल्याणकरः, शोकानुबन्धः = शोकस्य सम्बन्धः, प्रवाहः, उन्मुच्यताम् = परित्यज्यताम्। द्वयोः = भवत्योरुभयोः, एव, श्रेयसे = कल्याणाय, भवत्या = महाश्वेतया त्वया, यद् एव, अङ्गीकृतम् = स्वीकृतम्, प्रारब्धम्, तद्, एव, व्रतपरिग्रहोचितम् = व्रतग्रहणानुकूलम्, तपः = तपस्या, अनुबध्यताम्=

किन्तु उस प्रकार से आर्त्त प्रलाप करती हुई उस महाश्वेता से अनुकम्पा-पूर्वक कपिञ्जल कहने लगा—'हे गन्धर्वराजपुत्रि महाश्वेता जी ! इसमें आपका कौन सा दोष है जो आप निन्दा के अयोग्य अपने को निन्दावाचक पदों से युक्त कर रही हैं, अपने को कोस रही हैं। अब सुखदायक परिणाम के इस समय में दुःख करने का कौन सा अवसर है जो इस तरह शोक से अपने को मार डाल रही हो। जो अत्यन्त असह्य था, उसे तो [इस पुण्डरीक के] मिलन की प्रत्याशा से हृदय को दृढ़ बनाती हुई तुमने सह ही लिया है और जिस प्रकार शाप के दोष के कारण आप दोनों को यह कष्ट प्राप्त हुआ, वह मैंने कह ही दिया है। और चन्द्रमा की वाणी भी आप दोनों ने सुनी ही है। इसलिये अपने तथा मेरे मित्र इन दोनों के लिए अशुभकारक लगातार शोक का सम्बन्ध अब छोड़ डालिये।

१. तथा कृतार्त्त०। २. को नाम वा। ३. सुखमात्रके। ४. यदलङ्घ्यतरम्। ५. दृढहृदयस्य। ६. उपागतम्। ७. शोकानुबन्धावेगः। ८. द्वयोरपि।

व्रतपरिग्रहोचितं तपः। तपसो हि सम्यक्कृतस्य नास्त्यसाध्यं नाम किञ्चित्। देव्या हि [1]गौर्या तपसः प्रभावादतिदुरासदं स्मरारेरपि [2]यावदासादितं देहार्धपदम्। एवं त्वमपि नचिरात्तथैव मे वयस्यस्याङ्के [3]निजतपसः प्रभावात्पदमवाप्स्यसि।' इति महाश्वेतां पर्यबोधयत्।

उपशान्तमन्युवेगायां च महाश्वेतायां विषण्णदीनमुखी कादम्बरी कपिञ्जलमप्राक्षीत्—[4]'भगवन्! पत्रलेखया त्वया चास्मिन्सरसि जलप्रवेशः कृतः। तत्किं तस्या [5]पत्रलेखायाः संवृत्तमित्यावेदनेन प्रसादं करोतु भगवान्' इति। स तु प्रत्यवादीत्—'राजपुत्रि[6],

विधीयताम्। हि = यतः, सम्यक्, कृतस्य = विधिवदनुष्ठितस्य, तपसः = तपस्यायाः, असाध्यम् = असाधनीयम्, अप्राप्यम्, किञ्चित् = किमपि, न = नैव, नाम = इदं वाक्यालंकारे? अपि तु सर्वमपि साध्यमेव भवतीति भावः। तपसः फलं विशदयति दृष्टान्तेन—देव्येत्यादिना। हि=यतः,देव्या=भगवत्या गौर्या = पार्वत्या, तपसः, प्रभावात् = सामर्थ्यात्, स्मरारेः = कामविनाशकस्य, शङ्करस्य, अपि, अतिदुरासदम् = अत्यन्तकष्टेन प्राप्तव्यम्, देहार्धपदम् = शरीरस्याधंभागपदम्, यावत् = पर्यन्तम्, आसादितम् = सम्प्राप्तम्। एवञ्च यदा गौरी स्ववल्लभस्य शङ्करस्यादिदेवस्य अर्धं भागं तपस्यया प्राप्तवती तदा भवती अपि तपस्यया स्ववल्लभं पुण्डरीकं कथं नैव प्राप्स्यसि? अवश्यमेव प्राप्स्यतीति भावः। एवम् = अनेनैव रूपेण, त्वम् = भवती महाश्वेता, अपि, तथैव = तेनैव प्रकारेण, निजतपसः = स्वीयतपस्यायाः, प्रभावात् = बलात्, न चिरात् = शीघ्रमेव, मे = मम कपिञ्जलस्य, वयस्यस्य = सुहृदः पुण्डरीकस्य, अङ्के = क्रोडे, पदम् = स्थानम्, अवाप्स्यसि = लप्स्यसे, इति = इत्थम्, महाश्वेताम्, पर्यबोधयत् = परिबोधितवान्, सान्त्वयामासेति भावः। अत्रोपमा।

इदानीं कादम्बर्याः प्रतिक्रियां वर्णयति—उपशान्तेत्यादिना। महाश्वेतायाम्, उपशान्तेत्यादिः—उपशान्तः (= दूरीभूतः) मन्योः (= दुःखस्य) वेगः (= रवः) यस्याः तादृश्यां सत्याम्, विषण्णदीनमुखी—विषण्णम् (= विषादयुक्तम्) दीनम् (= करुणम्) च मुखम् (= आस्यम्) यस्याः सा तादृशी, कादम्बरी, कपिञ्जलम्, अप्राक्षीत् = पृष्टवती। भगवन् = श्रीमन्!, पत्रलेखया= चन्द्रापीडस्य एतन्नाम्न्या परिचारिकया, त्वया = भवता, च, अस्मिन् सरसि = अच्छोदसरोवरे, जलप्रवेशः = वारिणि प्रवेशः, निपतनम्, कृतः = विहितः। तत् = तस्मात्, तस्याः, पत्रलेखायाः, किम् = अज्ञातम्, संवृत्तम् = संजातम्, इति = इदम्, आवेदनेन = सूचनेन, भगवान् = भवान्, प्रसादम् = अनुग्रहम्, करोतु = विदधातु, इतिः = समाप्तौ। सः = कपिञ्जलः, तु प्रत्यवादीत्=

उन दोनों (मित्रों) के ही कल्याण के लिये आपने जो व्रत-ग्रहण योग्य तपस्या अपना रखी है उसे ही [लगातार] करती रहिये। निश्चित ही, भली प्रकार की गई तपस्या के लिये कुछ भी असाध्य नहीं होता है। क्योंकि देवी गौरी (पार्वती) ने तपस्या के ही प्रभाव से महादेव तक के भी शरीर का अति दुर्लभ आधा भाग प्राप्त कर लिया था, अर्थात् उनके शरीर का अर्धभाग बन गयी थी। उसी प्रकार तुम भी शीघ्र ही अपनी तपस्या के प्रभाव से मेरे मित्र के अङ्क (गोद) में स्थान प्राप्त कर लोगी।" इस प्रकार से (कपिञ्जल ने) महाश्वेता को समझाया।

जब महाश्वेता के दुःख का वेग शान्त हो गया तब विषाद से दीन मुख वाली कादम्बरी ने कपिञ्जल से पूछा—"भगवन्! पत्रलेखा और आप [दोनों एक साथ] इस सरोवर के जल में कूदे थे। अतः उस पत्रलेखा का क्या हुआ?—यह बताते हुये मुझ पर कृपा करिये।" वह

१. गौर्यास्तपः। २. समासादितम्। ३. निजतपः।
४. भगवन्, कपिञ्जल। ५. तस्याः संवृत्तम्। ६. भगवति।

सलिलपातानन्तरं न कश्चिदपि तद्वृत्तान्तो मया ज्ञातः। तदधुना क्व चन्द्रात्मकस्य चन्द्रापीडस्य[1] ? क्व पुण्डरीकात्मकस्य[2] वैशम्पायनस्य जन्म ? किं वाऽस्याः पत्रलेखाया वृत्तमि'ति सर्वथैवास्य वृत्तान्तस्यावगमनाय[3] गतोऽहं प्रत्यक्षलोकत्रयस्य तातस्य श्वेतकेतोः पादमूलम् ।' इत्यभिदधान एव गगनमुदपतत् ।

अथ गते तस्मिन्विस्मयान्तरितशोकवृत्तान्ता[4] चन्द्रापीडमालोक्य[5] गलितनयनपयसि यथास्थानमपसृत्य[6] स्थितवति[7] सपरिजने राजपुत्रलोके कादम्बरी महाश्वेताम-

---

प्रत्यबोचत् । राजपुत्रि !=गन्धर्वराजकन्ये !, सलिलपातानन्तरम् = जलपतनान्तरम्, मया=कपिञ्जलेन, कश्चिदपि = कोऽपि, तद्वृत्तान्तः = तस्या वार्ता, न ज्ञातः = विदितः । तत् = तस्मात् हेतोः, अधुना = इदानीम्, चन्द्रात्मकस्य = चन्द्रस्वरूपस्य, चन्द्रापीडस्य तथा, पुण्डरीकात्मस्य=पुण्डरीकरूपस्य वैशम्पायनस्य, च, क्व = कुत्र, कस्मिन् स्थाने, जन्म = उत्पत्तिः, वृत्तम्, वा = अथ वा, अस्याः, पत्रलेखायाः, किम् = अज्ञातम्, वृत्तम् = जातम्, इति, सर्वस्य = समस्तस्य एव, वृत्तान्तस्य = घटनाचक्रस्य, अवगमनाय = ज्ञानाय, अहम् = कपिञ्जलः, प्रत्यक्षत्रयलोकस्य = साक्षात्क्रियमाणलोकत्रयस्य, तातस्य = पितृकल्पस्य, श्वेतकेतोः = एतन्नामकस्य पुण्डरीकजनकस्य, पादमूलम् = चरणसमीपम्, गतः = प्रयातः, अस्मीति, इति = इत्थम् अभिदधानः = भाषमाणः, एव, गगनम् = व्योमतलम्, उदगात् = उत्थितोऽभूत्, आकाशे उदडीयतेति भावः ।

अथेति । अथ = गगने उत्पतनान्तरम्, तस्मिन् = कपिञ्जले, गते = प्रयाते च सति, विस्मयेत्यादिः—विस्मयेन (= आश्चर्येण) अन्तरितः (=व्यवहितः) शोकस्य (= वल्लभमरणजन्यदुःखस्य) वृत्तान्तः (= उदन्तः) यस्याः सा तादृशी, कादम्बरी = गन्धर्वराजपुत्री, चन्द्रापीडम्, स्वस्वामिनम्, आलोक्य = दृष्ट्वा मृतमिति शेषः, गलितेत्यादिः— गलितम् (= क्षरितम्, निःसरितम्) नयनपयः (= नेत्रजलम्, अश्रुसलिलम्) यस्य तादृशे, सपरिजने = सेवकलोकसहिते, राजपुत्रलोके = नृपकुमारजने, अपसृत्य = पृष्ठभागे गत्वा, यथास्थानम् = स्थानम् अनतिक्रम्य, स्व-स्वयोग्यस्थानेषु, स्थितवति = स्थितिं विहितवति सति, महाश्वेताम् = स्ववयस्याम्, अवादीत् = अवोचत्, कादम्बरीति कर्तृपदं पूर्वमेवोक्तम् । प्रियसखि ! = प्रियवयस्ये, त्वया = भवत्या महाश्वेतया, सह =

कपिञ्जल बोला–"राजपुत्री ! पानी में कूदने के बाद मुझे उसका कोई भी समाचार ज्ञात नहीं हुआ। इसलिये इस समय,चन्द्रस्वरूपी चन्द्रापीड का कहाँ तथा पुण्डरीकस्वरूप वैशम्पायन का कहाँ जन्म हुआ है तथा उस पत्रलेखा का क्या हुआ ?—इसी सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानने के लिये मैं तीनों लोकों का साक्षात्कार कर लेने वाले तात (पुण्डरीक के पिता) श्वेतकेतु के चरणों के समीप जा रहा हूँ।" ऐसा कहता हुआ ही आकाश में उड़ गया।

तब कपिञ्जल के चले जाने के बाद नोकर चाकर सहित सभी राजकुमार चन्द्रापीड को देख कर आंसू गिराते हुये, हट कर, जब अपने-अपने उचित स्थानों पर खड़े हो गये थे तब आश्चर्य के कारण दब गई शोक घटना वाली (अर्थात् आश्चर्य के आगे जो शोक भूल गयी थी ऐसी)

---

१. पीडस्यात्मा । २. पुण्डरीकात्मनः । ३. अवगमाय । ४. वृत्तान्ते । ५. आलोक्यालोक्य । ६. अपसृत्यापसृत्य । ७. संस्थितवति ।

वादीत्—'प्रियसखि, [1]तुल्यदुःखतां त्वया सह नयता न खल्वसुखं स्थापितास्मि भगवता विधात्रा। अद्य मे शिरः समुद्घाटितम्। अद्य ते वदनं दर्शयन्ती प्रियसखीति चाभाषमाणा न लज्जे। तवाप्यहमद्यैव प्रियसखी सञ्जाता। सम्प्रति मरणं जीवितं वा न दुःखाय मे। तत्कोऽपरः प्रष्टव्यो मया ? केन वापरेणोपदेष्टव्यम् ? तदेवं गते यत्करणीयं तदुपदिशतु[2] मे प्रियसखी। नाहमात्मना किञ्चिदपि वेद्मि किं कृत्वा श्रेयः।' इत्युक्तवतीं कादम्बरीं महाश्वेता प्रत्यवादीत्—'प्रियसखि, किमत्र प्रश्नेनोपदेशेन वा यदेवेयमनति-

---

सार्धम्, तुल्यदुःखताम्—तुल्यम् (=सदृशम्) दुःखम् (=प्रियविरहकष्टम्) यस्याः तस्याः भावस्तत्ताम्= सदृशदुःखिताम्, नयता = प्रापयता, भगवता, विधात्रा = ब्रह्मणा, खलु = निश्चयेन, असुखम् = अकष्टं यथा स्यात् तथा, न = नैव, स्थापिता = पातिता, अस्मि। असुखम् इत्यनेन 'सुखाभावम्' इति प्रतीयते तेन 'सुखाभावे न रक्षितास्मीति गम्यते। अद्य = अस्मिन् दिने, मे = कादम्बर्याः, शिरः = मूर्धा, समुद्घाटितम् = समुन्नमितम्, उन्नतं कृतम्, इतः पूर्वं स्वकृत्येन लज्जिताऽवनम्रमुखी आसमिति तद्भावः। अद्य, ते = तव, तुभ्यम्, वदनम् = मुखम्, दर्शयन्ती = साक्षात्कारयन्ती, प्रियसखी=प्रियवयस्या, इति = इत्थम्, आभाषमाणा = सम्भाषणं कुर्वन्ती, च, न, लज्जे = त्रपामनुभवामि। तव =भवत्याः, अपि, अहम्=कादम्बरी, अद्य, एव, प्रियसखी = प्रियाली, सञ्जाता = सम्भूता। सम्प्रति = इदानीम्, मरणम् = मृत्युः, वा = अथवा जीवितम् = जीवनम्, मे = मम कादम्बर्याः, दुःखाय = क्लेशाय, न, वर्त्तते। तत् = तस्मात्, अपरः = त्वद्भिन्नः, कः = अज्ञातो जनः, मया = कादम्बर्या, प्रष्टव्यः = अनुयोक्तव्यः, पृच्छाविषयीकार्यः। वा = अथवा, केन = अज्ञातेन, अपरेण = त्वत्तो भिन्नेन, उपदेष्टव्यम् = उपदेशनीयम्, तत् = तस्मात् एवम् = अनेन प्रकारेण, गते = प्राप्ते सति, ईदृशेऽवसरे समुपस्थिते सतीति भावः, यत् करणीयम् = अनुष्ठेयम्, तत्, प्रियसखी = महाश्वेता भवती, मे = मह्यं कादम्बर्यै, उपदिशतु = बोधयतु। अहम् = कादम्बरी, आत्मना = स्वयम्, किञ्चदपि = किमपि न, वेद्मि = जानामि, किम् = अज्ञातम्, कृत्वा = विधाय, श्रेयः = कल्याणम्, भविष्यतीति भावः। इति = इत्थम् उक्तवतीम् = कथितवतीम्, कादम्बरीम्, महाश्वेता, प्रत्यवादीत् = प्रत्यवोचत्। प्रियसखि !, अत्र = अस्मिन् प्रसङ्गे, प्रश्नेन = पृच्छया, वा = अथवा, उपदेशेन = बोधनेन, किम् ? न किमपीति भावः, यत्, एवम् = अनेन प्रकारेण, इयम् = एषा,

---

कादम्बरी महाश्वेता से बोली—"हे प्रिय सखी तुम्हारे समान ही दुःखभागिनी बनाते हुये विधाता ने वास्तव में मुझे दुःख में नहीं डाला है। आज मेरा मस्तक ऊँचा हो गया है। आज तुम्हें अपना मुख दिखाती हुई 'प्रिय सखी' ऐसा कहती हुई मैं लजा नहीं रही हूँ। तुम्हारी भी मैं आज ही ही प्रिय सखी बन पायी हूँ। अब मरना अथवा जीना मेरे लिये दुःख का हेतु नहीं है। तब किस दूसरे से पूँछूं ? अथवा कौन दूसरा मुझे उपदेश देगा (समझायेगा) ? इस कारण इतना हो जाने पर अब मुझे जो करना हो वह प्रिय सखी मुझे बतलावे। मैं स्वयं यह नहीं समझ पा रही हूँ कि क्या करके मेरा श्रेय (भला) होगा"—इस प्रकार से कहने वाली कादम्बरी से महाश्वेता ने कहा, उत्तर दिया—"प्रिय सखी, इस प्रसङ्ग में पूछने या उपदेश देने की क्या बात है, जो भी कुछ यह

---

१. तुल्यदुःखतां कुर्वता तेन चिरात् खल्वद्य सुखम्। २. तदुपादिशतु।

क्रमणीया प्रियतमसमागमप्रत्याशा कारयति तदेव करणीयम्। पुण्डरीकवृत्तान्तोऽद्य कपिञ्जलहस्तात्स्फुटीभूतः[1]। तदा [2]तु वाङ्मात्रकेणैव समाश्वासितया मया न पारितमन्यत्किञ्चिदपि [3]कर्तुम्। तत्त्वमन्यत्किं करोषि यस्याः प्रत्ययस्थानमिदं चन्द्रापीडशरीरमङ्क एवास्ते। [4]तदन्यथात्वेऽस्य [5]करणीयचिन्ता। [6]यावत्पुनरिदमविनाशि तिष्ठति तावदेव तस्यानुवृत्तिं मुक्त्वा किमन्यत्करणीयम्? अप्रत्यक्षाणां हि देवतानां मृदश्मकाष्ठमय्यः[7] प्रतिमाः श्रेयसे [8]पूजासत्कारेणोपचर्यन्ते। किं पुनः प्रत्यक्षदेवस्य[9] चन्द्रापीडनामान्तरितस्य

अनतिक्रमणीया = अनुल्लङ्घनीया, प्रियतम-समागम—प्रत्याशा = वल्लभतम-मिलनप्रत्याशा, कारयति = कर्तुं प्रेरयति, तद्, एव, करणीयम् = विधेयम्। अद्य = अस्मिन् काले, कपिञ्जलहस्तात् = कपिञ्जलमाध्यमेन, [क्वचित्तु 'कपिञ्जलाख्यानादि'ति पाठः, कपिञ्जलस्य कथनादिति तस्यार्थः।] पुण्डरीकवृत्तान्तः = पुण्डरीकविषयकोदन्तः, स्फुटीभूतः = प्रकटीभूतः। तदा = पुण्डरीक-मरणकाले, तु वाङ्मात्रकेण = दिव्यपुरुषवचनेन, एव, समाश्वासितया = समाश्वासनं प्रापितया, मया = महाश्वेतया, अन्यत् = प्रतीक्षाभिन्नम्, किमपि, कर्तुम् = विधातुम्, न, पारितम् = शक्तम्। तत् = तस्मात्, त्वम् = कादम्बरी, अन्यत् = शापावसानपर्यन्तं प्रतीक्षातो भिन्नम्, किम्, करोषि = विदधासि, यस्याः = तव कादम्बर्याः, प्रत्ययस्थानम् = विश्वासस्थलम्, इदम् = एतत्, चन्द्रापीडशरीरम् = चन्द्रापीडदेहः, अङ्के = क्रोडे, एव, आस्ते = वर्तते। तत् = तस्मात्, अस्य = चन्द्रापीडशरीरस्य, अन्यथात्वे = अन्यरूपेण स्थितौ, तवाङ्कस्थितत्वाभावे, एव, करणीयचिन्ता = कर्तव्यचिन्ता, अपेक्षिता आसीदिति भावः, परन्तु अत्र तव प्रियतमशरीरं तवाङ्के एव विराजतेऽतस्तस्य रक्षणमेव भवत्याः परमं कर्त्तव्यम्। यावत् = यावत् कालपर्यन्तम्, इदम् = चन्द्रापीडशरीरम्, अविनाशि = अक्षयि, अनश्वरम्, तिष्ठति = वर्तते, तावद् = तावत्कालपर्यन्तम्, तस्य = चन्द्रापीडशरीरस्य, अनुवृत्तिम् = सपर्याम्, सेवाम्, मुक्त्वा = त्यक्त्वा, अन्यत् = अपरम्, किम्, करणीयम् = विधेयम्? न किमपीति भावः। हि = यस्मात् कारणात्, अप्रत्यक्षाणाम् = परोक्षाणाम्, अदृश्यानाम्, देवतानाम् = सुराणाम्, मृदश्मकाष्ठमय्यः—मृत् (= मृत्तिका) अश्मा (= प्रस्तरः) काष्ठम् (= दारु), त इत्येव, मृदादिनिर्मिता इत्यर्थः, प्रतिमाः = मूर्त्तयः, श्रेयसे = मङ्गलाय, पूजासत्कारेण—पूजा (= पुष्पादिसमर्पणम्) सत्कारः (= अभ्युत्थानम्, प्रणामादिः) इत्येतयोः समाहारस्तेन, उपचर्यन्ते = पूज्यन्ते, सेव्यन्ते। किम्, पुनः, कथनीयम्, प्रत्यक्षदेवस्य = प्रत्यक्षसुरस्य, चन्द्रापीडनामान्तरितस्य =

प्रियतम से मिलने की अनुल्लङ्घनीय आशा कराती जाती है, वही करना है। पुण्डरीक का वृत्तान्त आज कपिञ्जल के हाथों (माध्यम) से स्पष्ट हो गया। उस समय तो केवल [आकाश से ही] समाश्वासन प्राप्त करायी गई मैं कुछ भी नहीं कर सकी थी। तब तुम दूसरा कुछ क्या करोगी, जिसको विश्वास दिलाने के लिये यह चन्द्रापीड का शरीर गोद में ही विद्यमान है। यदि ऐसा न हुआ होता तब यह सोचना था कि क्या किया जाय। जब तक [चन्द्रापीड का] यह शरीर अविनाशी बना रहता है तब तक इसी की सेवा को छोड़ कर और क्या करना है? कारण यह है कि अप्रत्यक्ष देवताओं की मिट्टी, पत्थर और काष्ठ की बनी हुई प्रतिमायें कल्याण के लिये पूजा-सत्कार द्वारा सेवित की जाती हैं। तब फिर प्रत्यक्ष देवता, चन्द्रापीड इस दूसरे छिपे हुए नाम की, बिना आराधना

---

१. कपिञ्जलाख्यानात्।　२. तत्कालं तु।　३. वक्तुम्।
४. तदन्यथा त्वस्य।　५. करणीया।　६. अविनाशि तदेव।
७. काष्ठमयाः।　८. श्रेयसपूजासत्कारेण।　९. देवस्य चन्द्रस्य।

चन्द्रमसो मूर्तिरनाराधितप्रसन्ना[1] ?'

इत्युक्तवत्यां महाश्वेतायां[2] कादम्बरी तूष्णीमेवोत्थाय[3] तरलिकया मदलेखया चोत्थाप्य तामखेदार्हां चन्द्रापीडतनुमन्यतरस्मिञ्छीतवातातपवर्षादि[4]सर्वद्वन्द्वदोषरहिते शिलातले शनैरखेदयन्ती 'स्थापयित्वापनीतशृङ्गारवेषाभरणा मङ्गलमात्रकावस्थापितैकक-रत्नवलया '[5]स्नानशुचिर्भूत्वा[6] परिधाय धौतशुचिनो दुकूले प्रक्षाल्य पुनः पुनर्गाढ-

= चन्द्रापीड–इति–आख्यया व्यवहितस्य, चन्द्रमसः = चन्द्रस्य, अनाराधितप्रसन्ना = आराधनां विनैव प्रसादोन्मुखी, मूर्तिः = प्रतिमा, श्रेयसे स्यादिति किम्, वक्तव्यम् इति वाक्यांशो योजनीयः। एवञ्च भवतो कादम्बरी चन्द्रापीडस्य पूजायां संलग्ना भूत्वा शापावधिसमाप्तिपर्यन्तं प्रतीक्ष-स्वेति भावः।

इत्युक्तवत्यामिति। इति = इत्थम्, महाश्वेतायाम्, उक्तवत्याम् = कथितवत्यां सत्याम्, कादम्बरी, तूष्णीम् = मौनम्, एव, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, तरलिकया = एतन्नाम्न्या सेविकया, मदलेखया = एतन्नाम्न्या, च परिचारिकया, ताम् = पुरोवर्तिनीम्, अखेदार्हाम् = अक्लेशनीयाम्, चन्द्रापीडतनुम् = चन्द्रापीडस्य शरीरम्, उत्थाप्य = हस्तैरूर्ध्वं गृहीत्वा, समवलम्ब्य, शीतेत्यादिः– शीतम्, वातः, आतपः, वर्षा चादौ येषां तादृशानि सर्वाणि द्वन्द्वानि (= परस्परविरोधीनि युग्मरूपाणि प्राकृतिकतत्त्वानि) तेषां दोषैः (= दुर्गुणैः) रहिते (= हीने), अन्यतरस्मिन् = इतरस्मिन्, शिलातले = पाषाणखण्डे, शनैः = मन्दं मन्दम्, अखेदयन्ती = कष्टमप्रापयन्ती, स्थापयित्वा = रक्षित्वा, निधाय, अपनीतेत्यादिः—अपनीतः (= दूरीकृतः) शृङ्गारवेषः (=शृङ्गारोपयोगी वेष), आभरणम् (= आभूषणम्) च यया सा तादृशी, मङ्गलेत्यादिः—मङ्गलम् एव मङ्गलमात्रकम् तदर्थम् अवस्थापितम् (= अवधृतम्) एकस्मिन् करे (= हस्ते) रत्नवलयम् (=मणिकटकम्) यया सा तादृशी, स्नानशुचिः = स्नानेन पवित्रा, भूत्वा, धौत-शुचिनी—धौते (= प्रक्षालिते) अत एव शुचिनी (= शुद्धे) दुकूले (=क्षौमवस्त्रे) परिधाय = धारयित्वा, अधरकिसलये—अधरः (= अधरोष्ठः) किसलयम् (= नवपल्लवम्) इव तस्मिन्, गाढलग्नम् = घनं संसक्तम्, ताम्बूल-रागम् = पुन्नागवल्याः पत्रस्य भक्षणेन संजातं लौहित्यम्, पुनः पुनः=भूयो भूयः, प्रक्षाल्य = धावित्वा,

के ही प्रसन्न होने वाली इस चन्द्रमा की मूर्ति की [पूजा की] क्या बात है ? अर्थात् इसकी पूजा से कल्याण होना निश्चित है।"

महाश्वेता के ऐसा (उपर्युक्त) कह लेने पर कादम्बरी ने चुपचाप उठ कर तरलिका और मदलेखा [की सहायता] के द्वारा कष्ट न सह सकने योग्य चन्द्रापीड के उस शरीर को उठा कर शीत, वायु, धूप तथा वर्षा आदि समस्त द्वन्द्वों (कष्टों) से रहित (सुरक्षित) किसी दूसरे शिलातल पर धीरे-धीरे बिना कोई कष्ट पहुँचाये हुये स्थापित करने (रखने) के बाद सभी शृङ्गार के वस्त्र और आभूषण हटाकर, केवल मङ्गल के लिये एक रत्नजटित कड़ा को धारण करती हुई, स्नान द्वारा पवित्र होकर, धुले हुए दो उज्ज्वल (शुद्ध) वस्त्र धारण करके, नवपल्लव के समान अधरोष्ठ में गाढ़ी लगी हुई पान की लाली को बार-बार धोकर (छुटाकर), बारम्बार बन्द हो जाने वाली तथा आये हुए

१. प्रपन्ना। २. महाश्वेतायां तूष्णी। ३. सहोत्थाय। ४. वर्षादिद्वन्द्व०। ५. स्थापितावशेषरत्नवलया, मङ्गलमात्रकावस्थापितैककरभूषणा। ६. स्नाता शुचिर्भूत्वा।

लग्नमधरकिसलये ताम्बूलरागमुपर्युपरिनिमीलितागतबाष्पवेगोत्तरललोचनान्यदेव किमप्यचिन्तितमनुत्प्रेक्षित[1]मशिक्षितमनभ्यस्तमनुचितपूर्वं[2] बाला बलाद्विलोमप्रकृतिनाकार्यपण्डितेन दग्धवेधसा कार्यमाणा, यान्येव सुरभिकुसुमधूपानुलेपनानि सुरतोपभोगायानीतानि तैरेव देवतोचितामपचितिं सम्पाद्य चन्द्रापीडमूर्तौ, मूर्तिमतीव शोकवृत्तिरार्तरूपा[3], रूपान्तरमिव [4]तत्क्षणेनैवागता, विगतजीवितेव शून्यमुखी, मुखावलोकिनी चन्द्रापीडस्य, [5]पीडितोत्पीडितहृदयापि रक्षन्ती बाष्पमोक्षम्, उद्दामवृत्तेः शोकादपि मरणादपि कष्टतमामवस्था-

---

अपमृज्य, उपर्युपरीत्यादिः—उपर्युपरि (= उत्तरोत्तरम्) निमीलिते (मुद्रिते) अथ च आगतः बहिर्भूतः) बाष्पस्य (= अश्रुणः) वेगः (= जवः) याभ्यां तादृशे अथ च उत्तरले (=अतिचञ्चले) लोचने (= नेत्रे) यस्याः सा तादृशी, बिलोमप्रकृतिना = विपरीतस्वभावेन, अकार्यपण्डितेन = अकरणीय कृत्य-विधानदक्षेण, दग्धवेधसा = हतविधात्रा, बलात् = हठात्, किमपि = अज्ञातम्, अचिन्तितम् = अध्यातम्, अनुत्प्रेक्षितम्=असम्भावितम्, अशिक्षितम् = अपठितम्, अनभ्यस्तम्=पुनः पुनरावृत्तिहितम्, अनाचुत्तम्, अनुचितम् = अयोग्यम्, अपूर्वम्=नवीनम्, कार्यमिति शेषः, कार्यमाणाम्= कर्तुं विवशीक्रियमाणा, कादम्बरीति विशेष्यम्, यानि एव, सुरभीत्यादिः—सुरभीणि (= सुगन्धीनि) कुसुमानि (= पुष्पाणि), धूपः (= तुरुष्कः, ज्वलनात् गन्धप्रवाहकविशेषः) अनुलेपनानि (= बिलेपनानि, चन्दनादीनि), सुरतभोगाय—सुरते (= निधुवने, मैथुने) भोगाय (=उपभोगाय) आनीतानि = तत्र प्रापितानि, तैः = सुरभ्यादिभिः, चन्द्रापीडमूर्तौ = चन्द्रापीडशरीरे; देवतोचिताम्= देवयोग्याम्, अपचितिम् = सपर्याम्, पूजाम्, सम्पाद्य = विधाय, मूर्तिमती = शरीरधारिणी, शोकवृत्तिः = शोकनामकभावविशेषः, इव, आर्त्तरूपा = कारुण्याभिव्यञ्जकाकृतिः, तत्क्षणेन = तेन क्षणेन, एव, रूपान्तरम् = अन्यरूपम्, इव, आगता = सम्प्राप्ता, अत्राप्युत्प्रेक्षा। विगतेत्यादिः— विगतम्, (= अपगतम्, विनष्टम्) जीवितम् (= जीवनम्, प्राणाः) यस्याः सा तादृशी, इव, शून्यमुखी—शून्यम् (= रिक्तम्, भावविरहितम्) मुखम् (= आननम्) यस्याः सा तादृशी। चन्द्रापीडस्य = स्वप्रियतमस्य, मुखावलोकिनी = आननदर्शिनी, पीडितेत्यादिः—पीडितम् (=पीडा) तेन उत्पीडितम् (= व्यथितम्, व्याप्तम्) हृदयम् (= चित्तम्) यस्याः सा तादृशी, अपि सती, बाष्पमोक्षम् = अश्रुपरित्यागम्, रक्षन्ती = कुर्वन्ती । उद्दामवृत्तेः—उद्दामा (= अत्युत्कटा) वृत्तिः (= व्यापारः) यस्य तादृशात्, शोकात् = दुःखात्, अपि, मरणात् = मृत्योः, अपि

आसुओं के वेग से अत्यन्त चञ्चल नेत्रों वाली होती हुई, उलटी प्रकृतिवाले, अनुचित कार्य करने में पण्डित, दग्ध (मुँहजले) विधाता के द्वारा कभी भी न सोंचे गये, असम्भावित, न सिखाये गये, अनभ्यस्त तथा अनुचित कार्य करवाई जाने वाली (कादम्बरी) ने—जिन सुगन्धित फूलों, धूप और उबटन आदि को सुरत उपभोग के लिये ही लाया गया था उन्हीं (वस्तुओं) के द्वारा चन्द्रापीड की मूर्ति (मृत देह) में पूजा-सत्कार करके, साकार (शरीरधारिणी) शोकवृत्ति जैसी दुःखस्वरूपा, उसी क्षण में मानों दूसरा रूप प्राप्त की हुई, प्राणों से रहित सी शून्यमुखी [केवल] चन्द्रापीड के मुख को देखती हुई, पीड़ा से उत्पीड़ित होती हुई भी आँसू गिरना रोकती हुई, अत्यन्त तीव्र शोक से भी तथा मृत्यु से भी अधिक कष्ट देनेवाली दशा का अनुभव करती हुई,(मृत)पति चन्द्रापीड के दोनों

---

१. अनुपक्षितम् ।   २. अपूर्वं बिलोम० ।   ३. आर्तिरूपा ।
४. तत्क्षणेनेवागता, तत्क्षणेनैवोपगता ।   ५. पीडोत्पीडित० ।

मनुभवन्ती, तथैवाङ्के समारोपितचन्द्रापीडचरणद्वया, दूरागमनखिन्नेनापि बुभुक्षितेनाप्य-प्रतिपन्नस्नानपानभोजनेनापि मुक्तात्मना राजपुत्रलोकेन स्वपरिजनेन च सह निराहारा तं दिवसमक्षिपत्।[1]

यथैव च दिवसमशेषं तथैव तां गम्भीरमेघोपरोधभीमामनवरत-गर्जितध्वनिकम्पित-हृदयबन्धामाबद्धकलकलापि[2]-कुलकेका-कोलाहलाकुलित[3]चेतोवृत्तिमुद्दामदर्दुरारटित-बधिरित-

कष्टतमाम् = अतिशयकष्टजननीम्, अवस्थाम् = दशाम्, अनुभवन्ती = साक्षात्कुर्वन्ती, अङ्के = स्वक्रोडे, तथैव = तेनैव प्रकारेण, पूर्ववदित्यर्थः, समारोपितेत्यादिः—समारोपितम् (= स्थापितम्) चन्द्रापीडस्य (= वल्लभस्य) चरणद्वयम् (= पादयुग्मम्) यया सा तादृशी, दूरेत्यादिः—दूरात् (= अतिविप्रकर्षात्, उज्जायिनीनगरीतः) यद् आगमनम् (= तत्र सम्प्राप्तिः) तेन खिन्नेन (= सञ्जातखेदेन, पीडितेन) अपि, बुभुक्षितेन (= क्षुधाक्रान्तेन) अपि, अप्रतिपन्नेत्यादिः—अप्रतिपन्नम् (= असम्पादितम्) स्नानम् (= मज्जनम्) पानम् (= जलादिपानम्) भोजनम् (= अशनम्) येन तादृशेनः, अपि, मुक्तात्मना—मुक्तः (= त्यक्तः, अनपेक्षितः) आत्मा (= स्वं रूपं शरीरादिकं वा) येन तादृशेन, जीवननिरपेक्षेणेति भावः, राजपुत्रलोकेन = राजकुमारवृन्देन, स्वपरिजनेन = स्वसेवकलोकेन, च, सह = सार्धम्, निराहारा = अगृहीत-भोजना, क्षुधिता एव, तम्, दिवसम् = दिनम्, अक्षिपत् = यापितवती। अक्षपयदित्येवोचितः पाठः।

यथैवेति। यथा = येन प्रकारेण, एव, च, अशेषम् = समस्तम्, दिवसम् = दिनम्, क्षपितवती' इत्यत्र योज्यम् तथैव = तेनैव प्रकारेण ['क्षणमिव क्षपां क्षपितवती' इति वक्ष्यमाणेऽन्वयः।] गम्भीरेत्यादिः—गम्भीरः (= घनः) यो मेघः (= वारिदः) तेन यः उपरोधः (= प्रतिबन्धः) तस्माद् भीमाम् (= भयङ्कराम्) —एतानि अन्यानि च स्त्री-द्वितीयैकवचनान्तानि पदानि 'क्षपाम् एतस्य विशेषणानि बोध्यानि। अनवरतेत्यादि। अनवरतम् (= निरन्तरम्) यत् गर्जितम् (= गर्जनम्) तस्य यः ध्वनिः (= प्रचण्डशब्दः), तेन कम्पितः (= वेपित) हृदयस्य (= चित्तस्य) बन्धः (= बन्धनग्रन्थिः) यया तां तादृशीम्। आबद्धेत्यादिः—आबद्धम् (=सम्मिलितम्, एकत्रीभूतम्) यत् कलापिनाम् (= मयूराणाम्) कुलम् (= समूहः) तस्य यत् कोलाहलम् (= कलकलध्वनिः) तेन आकुलिता (= व्याकुलीकृता) चित्तवृत्तिः (= मनोवृत्तिः मानसीस्थितिः) यया तां तादृशीम्। उद्दामेत्यादिः—उद्दामम् (= अनियन्त्रितम्, अतितीव्रम्) यद् दर्दुराणाम् (= भेकानाम्) आरटितम् (= टर्र-टर्रेति स्वनः) तेन बधिरितानि (= बधिरीकृतानि)

चरणों को उसी प्रकार (पहले के ही समान) धारण करती हुई, (कादम्बरी) ने बहुत दूर से आने से थके होते हुए भी, भूखे होते हुए भी, स्नान, पान तथा भोजन न किये होते हुए भी, अपने को भी छोड़े (भूले) हुए राजपुत्र-समूह के साथ तथा अपने सेवकों के साथ-साथ बिना कुछ खाये हुए (भूखे प्यासे) ही वह दिन बिता दिया।

कादम्बरी ने जैसे सारा दिन बिताया वैसी ही वह रात भी क्षणभर के समान बिता दी, जो (रात) गंभीर (घने) बादलों की घटा घिर जाने के कारण भयानक [लग रही] थी; लगातार होनेवाली गर्जन की ध्वनि (गड़गड़ाहट) से हृदय के बन्धों (जोड़ों) को कँपानेवाली थी, मण्डली बनाये (बांधे) हुए तथा मधुर ध्वनि वाले मयूरों की आवाज के कोलाहल से [लोगों की] चित्तवृत्ति

१. अक्षपयत्-इत्येव पाठः समीचीनः। २. कलापिकेका। ३. आकुलीकृत०।

श्रोत्रेन्द्रियां दुर्दर्शतडित्सम्पातपीडितदिशमशनि[2]निर्ह्रादतर्जनापादितभुवनज्वरां ज्वलत्खद्योत-निवह-जर्जरिततरुगहन[3]तलतमःप्रसरभीषणतमां तमस्विनीमपि दूरीकृत्याबलसहभुवं भीतिम्, अपरित्यक्तचन्द्रापीडचरण[4]कमलाऽचेतितस्वशरीरखेदा जाग्रती समुपविष्टैव क्षणमिव क्षपां क्षपितवती।

प्रातश्च तदुन्मीलितं चित्रमिव चन्द्रापीडशरीरमवलोक्य[5] शनैः शनैः पाणिना

श्रोत्रेन्द्रियाणि (= श्रवणेन्द्रियाणि) यया तां तादृशीम्। दुर्दर्शेत्यादिः—दुर्दर्शः (= दुःप्रेक्षणीयः) यः तडित्सम्पातः (= गगनविद्युत्संनिपतनम्) तेन पीडिताः (= पीडां प्रापिताः क्षोभिताः) दिशः (= काष्ठाः) यस्यां तां तादृशीम्। अशनीत्यादिः—अशनिः (= वज्रम्) तस्य निर्ह्रादः (= गर्जनध्वनिः) तेन यत्तर्जनम् (= भीत्युत्पादनम्) तेन आपादितः (= संजनितः) भुवनस्य (= लोकस्य) ज्वरः (=सन्तापः) यस्यां तां तादृशीम्। ज्वलदित्यादिः—ज्वलन् (=दीप्यमानः) यः खद्योतानाम् (=ज्योतिरिङ्गणानाम्)निवहः (=समूहः) तेन जर्जरितः (=जर्जरीकृतः, क्षीणतां प्रापितः) तरुगहनानाम् (=वृक्षसमुदायानाम्) तले (= अधोभागे) तमःप्रसरः (= अन्धकारविस्तारः) तेन भीषणतमाम् (= अतिभयानकाम्), तमस्विनीम् = तमोबहुलाम्, रात्रिम्, अपि [क्षपामित्यस्यैव विशेषणम्], अबलासहभुवम् = स्त्रीप्रकृतिसुलभाम्, भीतिम् = भयम्, दूरीकृत्य = परित्यज्य, अपरीत्यक्तेदिः—अपरित्यक्तम् (= न मुक्तम्) चन्द्रापीडस्य (=स्वप्रियतमस्य) चरणम् (=पादः) कमलम् (= पङ्कजम्), इव यया सा तादृशी। अचेतितेत्यादिः—अचेतितः (= अगणितः, अध्यातः) स्वशरीरस्य (= निजदेहस्य) खेदः (= क्लेशः) यया तादृशी, जाग्रती = जागरणं कुर्वती, समुपविष्टा = निषण्णा, एव, क्षपाम् = पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टां रात्रिम्, क्षणम् = पलम्, इव, क्षपितवती = यापितवती।

प्रातश्चेति। प्रातः = प्रत्यूषे, उन्मीलितम् = विकसितम्, यद्वा तूलिकादिभिर्निर्मितम्, चित्रम् = आलेख्यम्, इव, तत् = पूर्ववर्णितम्, मृतमिति भावः, चन्द्रापीडशरीरम् = चन्द्रापीडस्य देहम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा, पाणिना = करेण, शनैः, शनैः, स्पृशन्ती = स्पर्शं कुर्वन्ती, पार्श्व-

को व्याकुल कर रही थी, मेढकों की तेज आवाज (टर्र-टर्र) से कानों को बहिरा बना दे रही थी, अत्यन्त कष्ट से देखी जा सकने वाली (अर्थात् आखों को चौंधिया देने वाली) बिजली के गिरने से सभी दिशाओं को पीड़ित कर रही थी, अशनि (वज्र, आकाशीय विद्युत्) की प्रचण्ड आवाज (तड़तड़ाहट) की तर्जना से सारे संसार का ज्वर उत्पन्न करा रही थी, टिम-टिमाते जुगुनुओं के समूह द्वारा जर्जर किये गये (फाड़े गये), पेड़ों के नीचे के, अन्धकार के प्रसार (फैलाव) से और अधिक भयानक लग रही थी, ऐसी उस रात को भी, नारी जाति के स्वाभाविक (गुण) भय को दूर कर अर्थात् बिना डरी हुई, चन्द्रापीड के चरणकमलों को बिना छोड़े अर्थात् पकड़े-पकड़े ही, अपने शरीर का ध्यान न करती हुई, जागती हुई, बैठी-बैठी ही [उस रात को भी क्षण भर के समान] बिता दिया।

[दूसरे दिन] प्रातःकाल, बनाये गये चित्र [मूर्ति] के समान उस चन्द्रापीड के शरीर को देख कर धीरे-धीरे हाथों से स्पर्श करती (सहलाती) हुई (कादम्बरी) पास में बैठी हुई

१. दृशम्।　　२. अविनिर्ह्राद, अशनि-निर्ह्राद-तर्जनापादित०।
३. ...गहनतल।　　४. ...चरणाचेतितशरीर०।　　५. आलोक्य।

स्पृशन्ती पार्श्वस्थितां मदलेखा[1]मवादीत्—"प्रियसखि मदलेखे, न वेद्मि किं रुचेर्वशादुत निर्विकारतयैवेति, अहं तु तादृशीमेवेमां तनुमालोकयामि। तत्त्वमपि तावदादरतो निरूपय।'[1] इत्येवमुक्ता मदलेखा तां प्रत्यवादीत्—"प्रियसखि किमत्र निरूपणीयम् ? अन्तरात्मनो विरहाद् व्यापारमात्रकम[2]स्योपरतम्। अन्यत्तादृशमेवेदं [3]व्याकोशशतपत्राकारं मनागप्यनुन्मुक्तं श्रिया वदनम्। [4]तथायं संवेल्लिताग्रभागः स्निग्धः कुन्तलकलापः। तथैवेय-

स्थिताम् = समीपे निषण्णाम्, मदलेखाम्, अवादीत्। किमवादीदित्याह—प्रियसखीत्यादिना। प्रियसखि, मदलेखे! अहम्, न, वेद्मि = जानामि, किम्, रुचेः = अभिलाषस्य, वशात् = बलात्, उत = अथवा, निर्विकारतया = कस्यापि विकारस्याजनिततया, एव इति, अहम् = कादम्बरी, तु, तादृशीम् = पूर्वमवलोकितसादृशीम्, एव, इमाम् = पुरोवर्तिनीम्, तनुम् = चन्द्रापीडस्य कायम्, आलोकयामि = सम्यक् पश्यामि। तत् = तस्मात्, तावत् = अधुना, त्वम् = मदलेखा, अपि, आदरतः = सम्मानपूर्वकम्, निरूपय = सम्यग् रूपेण विलोकय। इति, एवम् = इत्थम्, उक्ता, मदलेखा, ताम् = कादम्बरीम्, प्रत्यवादीत् = प्रत्युवाच। सा किं प्रत्यवादीदित्याह—प्रियसखीत्यादिना। प्रियसखि, अत्र = उपस्थितविषये, किम्, निरूपणीयम् = दर्शनीयम्, विचारणीयम्। अन्तरात्मनः = अन्तर्वर्तिजीवतत्त्वस्य, प्राणस्येति भावः, विरहात् = अभावात्, अस्य = चन्द्रापीड-शरीरस्य, व्यापारमात्रकम् = केवलाशरीरिकी चेष्टा एव, उपरतम् = विनष्टम्। अन्यत् = एतदतिरिक्तम्, तादृशम् = तथाविधम्, यथा पूर्वमासीत् तथैवेति भावः, व्याकोशेत्यादिः—व्याकोशम् (= विकसितम्) यत् शतपत्रम् (= कमलम्) तस्य आकारः (= आकृतिः) इव आकारः यस्य तत् तादृशम्, श्रिया = शोभया, लक्ष्म्या, मनागपि = ईषदपि, अनुन्मुक्तम् = अपरित्यक्तम्, इदम् = पुरोदृश्यमानम्, वदनम् = मुखम् [सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम्' इत्यमरः १।१०।४० 'व्याकोश-विकच-स्फुटाः' इत्यमरः २।३।७] तथा = तादृशः, एव, अयम् = दृश्यमानः, संवेल्लितेत्यादिः—संवेल्लितः (= आकुञ्चितः) अग्रभागः (= अग्रदेशः) यस्य तादृशः, स्निग्धः = चिक्कणः, कुन्तलकलापः = सुन्दरकेशसमूहः, वर्तते इति शेषः। तथा = पूर्ववद् तादृशी,

मदलेखा से कहने लगी—"प्रिय सखी, रुचि (चन्द्रापीड के प्रति अपने लगाव) के कारण अथवा [इस शरीर में] कोई विकार न होने के कारण, मैं तो इस (चन्द्रापीड के) शरीर को वैसा ही (पहले के समान ही) देख रही हूँ। इसलिये तुम भी तो आदर के साथ देखो।' इस प्रकार से कही गई मदलेखा ने (कादम्बरी को) उत्तर दिया—'प्रिय सखी, इसमें देखना क्या ? भीतरी जीव तत्त्व के निकल जाने के कारण इस शरीर की केवल चेष्टायें (क्रियायें) ही समाप्त हुईं है, बन्द हुई हैं। और सभी कुछ वैसा का वैसा ही है—खिले हुये कमल के समान यह मुख शोभा से थोड़ा भी रहित नहीं है, अर्थात् पूर्ण कान्ति वाला है। हिलते हुये अग्रभाग (छोरों)

१. आभाष्येदमब्रवीत्—मदलेखे। २. विरहान्नव्यापारमात्रकमस्याः परमन्यत्।
३. सकोष०। ४. तथाऽयं, तथैवायम्।

मिन्दुशकलानुकारिणः कान्तिर्ललाटस्य। तादृशमेवेदमामुकुलितनीलोत्पलद्युतिहारि कर्णान्तायतं लोचनद्वयम्[1]। तथैव चेमा[2]वहसतोपि [3]विहसिताविवोद्भासितकपोलमूलौ सृक्कोपान्तौ। तादृश एवाभिनवकिसलयच्छविरधरः। तथैव चेदं विद्रुमालोहितनखाङ्गुलीतलं पाणिपादम्। तथैव[4] चेदमविगलितसहजलावण्यसौकुमार्याणां सौष्ठवमङ्गानाम्[5]। तत्सत्या सा[6] भारती कपिञ्जलावेदितश्च शापवृत्तान्त इति सम्भावयामि।' इत्युक्तवत्यां मदलेखाया-

एव, इयम् = दृश्यमाना, इन्दुशकलानुकारिणः = चन्द्रखण्ड-सदृशस्य, ललाटस्य = भालस्य, कान्तिः = छविः, दृश्यते इति शेषः। तादृशम् = तथाविधम्, पूर्ववद्, एव, इदम् = दृश्यमानं पुरोवर्ति, आमुकुलितेत्यादि—आ (= ईषद्) मुकुलितस्य (= विकसितस्य) नीलोत्पलस्य (= नीलकमलस्य) द्युतिम् (= कान्तिम्) हरति (= चोरयति) इत्येवंशीलम्, कर्णान्तायतम् = श्रवणप्रान्तदेशपर्यन्तलम्बायमानम्, लोचनद्वयम् = नेत्रयुग्मम्, वर्तते इति शेषः। तथा = तादृशौ, एव, च, इमौ = एतौ, अहसतः = हासमकुर्वतः, अपि, अस्य चन्द्रापीडस्य, विहसितौ = हास्यं कुर्वाणौ इव, उद्भासितेत्यादिः—उद्भासितम् (= प्रभासितम्) कपोलमूलम् (= गण्डस्थलमूलदेशः) याभ्यां तौ तादृशौ, सृक्कोपान्तौ = ओष्ठप्रान्तदेशौ, वर्तेते इति शेषः। तादृशः = तथाविधः, एव, अभिनवेत्यादिः—अभिनवस्य (= नूतनस्य) किसलयस्य (= पल्लवस्य) छविः (= कान्तिः) इव कान्तिर्यस्य स तादृशः, अधरः = ओष्ठः। तथा = तादृशम्, एव, इदम् = दृश्यमानम्, विद्रुमेत्यादिः—विद्रुमम् (= प्रबालम्) इव, लोहितम् (= रक्तम्) नखाः (= नखराः) अङ्गुलयः (= करशाखाः) तलम् (= अधोभागः) च यस्य तत् तादृशम्, पाणिपादम् = करचरणम्। [अत्र प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः।] तथा = पूर्ववद्, एव, इदम् = पुरोवर्ति, अविगलितेत्यादिः—अविगलितम् (= अविनष्टम्, अक्षुण्णम्) सहजम् (= स्वाभाविकम्) लावण्यम् (= सौन्दर्यम्) सौकुमार्यम् (= सुकोमलत्वम्) येषां तादृशानाम्, अङ्गानाम् = अवयवानाम्, सौष्ठवम् = शोभनरूपवत्त्वम्, दृश्यते इति शेषः। तत् = तस्मात्, एतादृशवैचित्र्यदर्शनात्, सा = गगनभाषिता, भारती = दिव्यावाणी, सत्या=यथार्था, कपिञ्जलावेदितः = कपिञ्जलेन संसूचितः, च, शापवृत्तान्तः=शापघटनावर्णनम्, च, सत्य इति=इत्थम्, सम्भावयामि=

वाला चिकना केशकलाप भी वैसा का वैसा है। चन्द्रमा के टुकड़े के समान ललाट की कान्ति भी वैसी ही है। कुछ-कुछ बन्द हुये (या खिले हुये) नीलकमल की शोभा का हरण करने वाले, कानों तक लम्बे (विशाल) दोनों नेत्र भी वैसे ही हैं। यद्यपि ये हंस नहीं रहे हैं फिर भी हंसते हुये और कपोल के मूल भागों (गालों के किनारों) को शोभित करते हुये ओष्ठप्रान्तों के पार्श्व भाग भी वैसे के वैसे हैं। नवपल्लव की कान्ति के समान कान्ति वाला अधरोष्ठ भी वैसा ही है। मूंगों के समान लाल-लाल नाखूनों तथा अङ्गुलियों के तल भागों वाले ये हाथ और पैर वैसे ही हैं, स्वाभाविक सुन्दरता और सुकुमारता न छोड़ने वाले अङ्गों का सौष्ठव, रमणीयता वैसी है। इसलिये वह (आकाश-) वाणी और कपिञ्जल द्वारा बताया गया शाप का वृत्तान्त सच ही है—ऐसी मेरी

१. लोचनयुगलम्। २. एतौ। ३. विकसितौ।
४. तदेव चेदम्। ५. अङ्गानां लावण्यम्। ६. असौ।

मानन्दनिर्भरा महाश्वेतायै दर्शयित्वा चन्द्रापीडचरणतलनिबद्धजीविताय राजपुत्रलोकायापि दर्शितवती।

स तु विस्मयोत्फुल्ललोचनः सर्वं एवावनितलनिवेशितशिराः प्रणम्य चन्द्रापीडचरणौ रचिताञ्जलिर्जानुद्वयेनावनौ स्थित्वा कादम्बरीं[1]व्यज्ञापयत्—"देवि, त्वत्प्रभावोऽयं यदेवमस्मानपुण्यवतः परित्यज्य दूरं गतस्यापि देवस्य [2]तादृशमेवेदं प्रसन्नेन्दु[3]मण्डलद्युतिहारि वीक्ष्यते वदनम्। तथैव चेदं चरणयुगलमवभाति[4] पुरेव प्रोत्फुल्लरक्ततामरसच्छायम्।

उत्प्रेक्षे, कल्पयामि। इति=इत्थम्, मदलेखायाम्, उक्तवत्याम्=कथितवत्याम्, सत्याम्, आनन्दनिर्भरा= अतिशयानन्देन परिपूर्णा कादम्बरी, महाश्वेतायै, दर्शयित्वा = दर्शनं कारयित्वा, चन्द्रापीडशरीरमिति शेषः, चन्द्रापीडेत्यादिः—चन्द्रापीडस्य, चरणयोः (= पादयोः) तले (= अधोदेशे) निबद्धम् (= समवलम्बितम्) जीवितम् (= जीवनम्) येषां तादृशाय, राजपुत्रलोकाय= राजकुमारसमूहाय, अपि, दर्शितवती =दर्शनं कारितवती, चन्द्रापीडशरीरं कादम्बरीति योज्यम्।

स त्विति। सः = राजपुत्रलोकः, तु, विस्मयोत्फुल्ललोचनः = आश्चर्येण विकसितनेत्रः, सन्, सर्वः = सकलः, एव, अवनीत्यादिः—अवनितले (= भूतले) निवेशितम् (= निहितम्) शिरः (= मूर्धा) येन स तादृशः, सन्, चन्द्रापीडचरणौ = चन्द्रापीडपादौ, प्रणम्य = प्रणतिं कृत्वा, रचिताञ्जलिः = बद्धाञ्जलिः, सन्, जानुद्वयेन = ऊरुसक्थिभागयुगलेन, अवनौ = भूमौ, स्थित्वा = निषद्य, कादम्बरीम्, व्यज्ञापयत् = न्यवेदयत्। किं न्यवेदयदित्याह—देवीत्यादिना। देवि, अयम् = एषः प्रत्यक्षं दृश्यमानः, त्वत्प्रभावः = तव सामर्थ्यम्, यद्, एवम् = अनेन रूपेण, अपुण्यवतः = अभाग्यवतः, अस्मान् = राजपुत्रादीन्, परित्यज्य = विहाय, दूरम् = विप्रकृष्टम् गतस्य = प्रयातस्य, अपि, देवस्य = स्वामिनो राजकुमारस्य, तादृशम् = तथाविधम्, पूर्वावलोकितसदृशम्, एव, इन्दुमण्डलेत्यादिः—इन्दुमण्डलम् (=चन्द्रबिम्बम्) तस्य द्युतिः (=कान्तिः) तां हरति (= चोरयति) इत्येवंशीलम्, वदनम् = आननम्, वीक्ष्यते। तथा = तेन रूपेण, एव, इदम् = पुरोवर्ति, चरणयुगलम् = पादयुग्मम्, पुरेव = पूर्ववदेव, प्रोत्फुल्लेत्यादिः—प्रोत्फुल्लम् (= विकसितम्) रक्तम् (= ताम्रवर्णम्) यत् तामरसम् (= कमलम्) तस्य छाया (= कान्तिः) इव कान्तिर्यस्य तत् तादृशम् अवभाति = सुशोभते। तथा = पूर्ववद्, एव,

---

सम्भावना ही है।' मदलेखा द्वारा ऐसा कहा जाने पर अत्यन्त हर्ष से परिपूर्ण कादम्बरी ने महाश्वेता को (चन्द्रापीड का) दर्शन करा कर, चन्द्रापीड के चरणतलों पर आश्रित जीविका वाले अर्थात् अधीनस्थ राजपुत्रों को भी दर्शन कराया।

[उस प्रकार के चन्द्रापीड के शरीर को अक्षत देख कर] आश्चर्य से फटी हुई आंखों वाले, भूतल पर मस्तक रखे हुये वे सभी राजा लोग अञ्जलि बांध कर, घुटनों के बल जमीन पर बैठ कर कादम्बरी से निवेदन करने लगे—"हे देवी, यह तुम्हारा ही प्रभाव है जो कि हम अभागों को छोड़ कर दूर चले गये भी देव (युवराज चन्द्रापीड) का प्रसन्न चन्द्रमण्डल की कान्ति का हरण करने वाला यह मुख वैसा ही दिखाई दे रहा है। ये दोनों चरण भी पहले के समान ही खिले हुये कमल की कान्ति के समान कान्ति वाले वैसे ही शोभित हो रहे हैं। [हम लोगों पर की जाने वाली अपनी अथवा अपने ऊपर की जाने वाली कादम्बरी की] दुबारा प्रसन्नता के अनुभव की

---

१. व्यज्ञपयत्, व्यजिज्ञपत्। २. तथैव। ३. प्रसन्नमिन्दुः, प्रसन्नप्रभमिन्दुः। ४. अविकारि।

तथैव च पुनः प्रसादानुभव[1]प्रत्याशालालसं हृदयम्। अन्यच्च, '[2]मनुष्यलोकेषु केन कदा वा दृष्टं श्रुतमनुभूतं वा यदस्माभिः पुण्यवद्भिः।' इत्यभिहितवति राजलोके ससखीजना सपरिजना[3] चोत्थाय स्वयमेवावचित्य[4] देवतार्चनकुसुमानि स्नात्वा निर्वर्तितचन्द्रापीड-शरीरपूजासंस्कारा शरीरस्थितिकरणायादिदेश सकलमेव राजलोकम्। [5]निर्वर्तितस्नानाशने च तस्मिन्नात्मनापि महाश्वेतयोपनीतानि तयैव सह सपरिवारा फलान्युपभुक्तवती[6]।

प्रसादेत्यादिः—प्रसादः (= प्रसन्नता अनुग्रहो वा) तस्य अनुभवस्य (= अनुभूतेः) या प्रत्याशा (= आशा) तस्यां लालसा (= अभिलाषः) यस्य तादृशम्, हृदयम् = चित्तम्। [अत्र हृदय-मित्यस्यान्वयः चन्द्रापीडेन सहैवोचितः, तथैव प्रकृतत्वात्। अतोऽत्र 'प्रसादः = अनुग्रहः कादम्बर्याः एव बोध्यः, तस्यैवानुभवस्य प्रत्याशाया लालसा वर्तते चन्द्रापीडहृदयस्य न तु राजपुत्रहृदयस्य। किञ्च—"कामोऽभिलाषस्तर्षश्च सोऽत्यर्थं लालसा द्वयोः।" (१।७।२८) इत्यमरविरोधात्, स्त्रियां पुंस्येव च 'लालसा' शब्दस्य साधुत्वात्—"लालसम् = लोलुपम्" इति व्याख्यापि न समीचीना। पूर्वोक्तरीत्या बहुव्रीहौ तु नपुंसकत्वात् ह्रस्वत्वं बोध्यम्।] अन्यच्च = किमधिकं वक्तव्यम्, मनुष्य-लोकेषु = मानवजनेषु, केन = अज्ञातेन, जनेन, कदा = कस्मिन् काले, वा दृष्टम् = विलोकितम्, श्रुतम् = आकर्णितम्, वा = अथवा, अनुभूतम् = अनुभवविषयीकृतम् यत्, पुण्यवद्भिः = सुकृतशालिभिः, अस्माभिः = राजपुत्रादिभिः दृष्टमित्यादि-क्रियापदान्यत्रापि योज्यानि। इति = इत्थम्, राजपुत्रलोके = राजकुमारजने अभिहितवति = कथितवति सति, ससखीजना = वयस्यालोकसहिता, सपरिजना = सेवकवृन्दसहिता, च, कादम्बरीति शेषः, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, देवतार्चनकुसुमानि = देवपूजनार्थानि पुष्पाणि स्वयमेव = आत्मनैव, अवचित्य = अव-चयनं कृत्वा, स्नात्वा = स्नानं कृत्वा, निर्वर्तितेत्यादिः—निर्वर्तितः (= सम्पादितः) चन्द्रा-पीडस्य शरीरस्य (= देहस्य) पूजा, (= अर्चनम्) सत्कारः (= प्रसाधनादिकम्) यया तादृशी सती, सकलमेव = सर्वमेव राजलोकम्, शरीर-स्थितिकरणाय = देहधारणोपयोगिस्नान-भोजनादि-सम्पादनाय, आदिदेश = आज्ञापयामास। तस्मिन् = राजलोके, च, निर्वर्तित-स्नानाशने=सम्पादित-स्नानभोजनादिके, सति, आत्मनापि = स्वयमपि, महाश्वेतया, उपनीतानि = समानीतानि, फलानि, तया = महाश्वेतया, एव, सह = सार्धम्, सपरिवारा = परिजनसहिता, न तु केवलं स्वयमिति भावः, उपभुक्तवती = खादितवती, कृताहारा = गृहीतभोजना, च,पुनः = भूयः, तथैव = तेनैव

आशा की चाह रखने वाला हृदय वैसा ही है। और अधिक क्या, मनुष्यलोक में किसने और कब वह देखा, सुना और अनुभव किया जो हम पुण्यवानों ने (देखा और अनुभव किया)।"—इस प्रकार से राजाओं के कहने पर (कादम्बरी ने) सखियों तथा सेवक-सेविकाओं के साथ उठ कर, देवताओं की पूजा के लिये स्वयं ही फूलों को चुन कर, नहा कर, चन्द्रापीड के शरीर की पूजा तथा (प्रसाधन आदि अपेक्षित) संस्कार करने के बाद सभी राजाओं को जीवन-निर्वाह के लिये उपयोगी स्नान तथा भोजन आदि करने का आदेश दिया। उन (सभी) लोगों के स्नान और भोजन कर लेने के बाद स्वयं भी महाश्वेता द्वारा लाये गये फल परिजनों सहित उसी के साथ खाये। आहार

१. अनुभवन०। २. मानुष्येषु, एतन्मनुष्येषु। ३. सपरिवारा। ४. उचितदेवतार्चनकुसुमा। ५. निर्वर्तित। ६. उपयुक्तवती।

कृताहारा च पुनस्तथैव चन्द्रापीडचरणावङ्केनोद्वहन्ती[1] तमपि दिवसमनयत्।

अन्येद्युश्चोपजातदृढतरप्रत्यया चन्द्रापीडशरीराविनाशं प्रति[2], मदलेखामवादीत्—'प्रियसखि, देवस्य शरीरमिदमुपचरन्तीभिरवश्यमा[3] शापक्षयादस्माभिरधुनात्र स्थातव्यम्। [4]तदिदमत्यद्भुतं वृत्तान्तं तातस्याम्बायाश्च गत्वा निवेदय। येन नान्यथा मां सम्भावयतः, दुःखेन वा मदीयेन न तिष्ठतः। यथा मामेवंविधां दुःखभागिनीमागत्य न पश्यतस्तथा करिष्यसि। न शक्नोम्यहं तातमम्बां च दृष्ट्वा शोकवेगं धारयितुम्। मया[5] चोपरतमेव[6]

प्रकारेण, चन्द्रापीडचरणौ = चन्द्रापीडस्य पादौ, अङ्केन = क्रोडेन, उद्वहन्ती = धारयन्ती, तम्, दिवसम् = दिनम्, अपि, अनयत् = यापितवती।

अन्येद्युरिति। अन्येद्युः = अन्यस्मिन् दिवसे, च, चन्द्रापीडशरीराविनाशम् = चन्द्रापीड-देहस्य अक्षयम्, प्रति, उपजातेत्यादिः—उपजातः (= समुत्पन्नः) दृढतरः (= अतिशयेन प्रबलः) प्रत्ययः (= विश्वासः) यस्याः सा तादृशी, कादम्बरी, मदलेखाम्, अवादीत् = अवोचत्। किमवादीदित्याह—प्रियसखीत्यादिना। प्रियसखि !, आ-शापक्षयात् = शापविनाशकालपर्यन्तम्, देवस्य = स्वामिनश्चन्द्रापीडस्य, शरीरम् = देहम्, उपचरन्तीभिः = पूजयन्तीभिः, सेवमानाभिः, अस्माभिः = कादम्बर्यादिभिः, अधुना = इदानीम्, अत्र = अस्मिन्नाश्रमे, अवश्यम् = निश्चितरूपेण, स्थातव्यम् = स्थेयम्, वसितव्यम्। तत् = तस्मात्, इमम् = अमुम्, प्रत्यक्षमुपलभ्यमानम्, अत्यद्भुतम् = अतीवाश्चर्यंकरम्, वृत्तान्तम् = उदन्तम्, गत्वा = यात्वा, सम्प्राप्य, तातस्य = जनकस्य चित्ररथस्य, अम्बायाः = जनन्याः मदिरायाः, च, निवेदय = संसूचय। [सम्बन्धसामान्यार्थे षष्ठी बोध्या।] येन = हेतुना, माम् = कादम्बरीम्, अन्यथा = विपरीतम्, चारित्र्यदोषादि-युक्तमिति भावः, न=नैवं, सम्भावयतः = सम्भावनां कुरुतः, वा = अथवा, मदीयेन = मामकीनेन, दुःखेन = क्लेशेन, न, तिष्ठतः = निषीदतः, दुःखिताविति शेषः। तौ मम चारित्र्यदोषादिकं न सम्भावयतां न वा मम दुःखं विदित्वा दुःखितौ जायेतामिति भावः। यथा = येन प्रकारेण, माम् = कादम्बरीम्, एवंविधाम् = एतादृशीम्, दुःखभागिनीम् = कष्टं सहमानाम्, आगत्य = अत्र सम्प्राप्य, न, पश्यतः = विलोकयतः, तथा = तेनैव प्रकारेण, करिष्यसि = विधास्यसि, अहम् = कादम्बरी, तातम् = जनकं चित्ररथम्, अम्बाम् = जननीं मदिराम्, च, दृष्ट्वा = विलोक्य, शोकवेगम् = मन्युरयम्, धारयितुम् = वोढुम्, अवरोद्धुम्, न, शक्नोमि=अर्हामि। मया=कादम्बर्या, च, उपरतम् = प्राणहीनम्, एव, न तु जीवितमिति, देवम् = स्वामिनं चन्द्रापीडम्, आलोक्य =

ग्रहण करने के बाद फिर उसी प्रकार से चन्द्रापीड के दोनों चरणों को अङ्क में धारण किये (गोद में रखे रखे) हुए ही वह दिन भी बिता दिया।

दूसरे दिन चन्द्रापीड के शरीर की अनश्वरता पर खूब (पूरा) विश्वास रखती हुई (कादम्बरी) मदलेखा से कहने लगी—"प्रिय सखी, स्वामी चन्द्रापीड के इस शरीर की सेवा करते हुये हमे अब यहाँ शाप की अवधि की समाप्ति तक ठहरना होगा। इसलिये तुम जाकर माता जी और पिता जी को यह अत्यन्त अद्भुत समाचार बता दो। जिससे वे मेरे बारे (विषय) में किसी अन्य प्रकार की अर्थात् गलत सम्भावना न करने लग जाँय अथवा मेरे दुःख से दुःखी होकर बैठ जाँय। जैसे इस प्रकार की दुःखभागिनी मुझे न देखने आवें, वैसा ही तुम करना। क्योंकि मैं पिता और माता को देखने के बाद शोक का वेग नहीं रोक (धारण कर) सकूँगी। मैं तो मरे हुए ही

---

१. अङ्के कृत्वोद्वहन्ती। २. प्रतिपद्य। ३. अवश्यमाशया०।
४. अत्यद्भुतं भूतम्, अद्भुतरूपम्। ५. यया। ६. अपि।

देवमालोक्य न रुदितम्। सा किमपरमधुना निःसंशयितजीविते देवे प्रतिपन्ननियमा रोदिमि।' इत्यभिधाय तां व्यसर्जयत्।

[1]गत्वागतया च तया--'प्रियसखि, सिद्धं तेऽभिवाञ्छितम्। एवं सन्दिष्टं तातेन चित्ररथेनाम्बया च मदिरया—'गाढगाढं[2] पुनरालिङ्ग्य शिरस्युपाघ्राय च वक्तव्यावयोर्वचनाद्—'वत्से कालमेतावन्तं मनस्येव नैतदावयोरासीद् यथा जामातृसहिता वत्सा द्रष्टव्येति तदयमेवावयोः परमानन्दो यद्वत्सया[3] स्वयं जामाता वृतः, तत्राप्यपरं भगवतो लोकपालस्य

दृष्ट्वा, न, रुदितम् = विलपितम्। सा = तादृशी अहम्, निःसंशयितजीविते—निःसंशयितम् (= निश्चितम्) जीवितम् (= पुनर्जीवनम्) यस्य तादृशे, देवे = स्वामिनि, विषये, प्रतिपन्ननियमा—प्रतिपन्नः (= अङ्गीकृतः) नियमः (= अभिग्रहः, व्रतादिकं वा) यया सा तादृशी, अधुना = इदानीम्, किम्, अपरम्, रोदिमि = विलपामि, इति = एवम्, उक्त्वा, ताम्=मदलेखाम्, व्यसर्जयत् = विसर्जितवती, गमनाय प्रेरयामास।

गत्वेति। गत्वा = व्रजित्वा, गन्धर्वराजनगरमिति शेषः, आगतया = ततः प्रतिनिवृत्तया, च, तया = मदलेखया, ['आवेदिते' इति वक्ष्यमाणेऽन्वयः] प्रियसखि कादम्बरि, ते = तव, अभिवाञ्छितम् = अभीष्टम्, सिद्धम् = सफलं जातम्, तातेन, चित्ररथेन, अम्बया मदिरया च, एवम् = वक्ष्यमाणरूपम्, सन्दिष्टम् = सन्देशः प्रेषितः। 'एवमित्यस्य किं स्वरूप'मिति प्रतिपादयितुमाह--गाढमित्यादिना। गाढगाढम् = घनं घनं यथा स्यात् तथा, प्रबलरूपेणेति भावः, पुनः = भूयोभूयः, आलिङ्ग्य = आलिङ्गनं कृत्वा, उपगूह्य, शिरसि = मूर्धनि, उपाघ्राय = सम्यग्घ्रात्वा, चुम्बित्वेति भावः, आवयोः = जननीजनकयोः, वचनात् = कथनात्, वक्तव्या = भाषितव्या, कादम्बरीति शेषः, वत्से ! = पुत्रि !, एतावन्तम् = इयन्तम्, कालम् = समयम्, यावत्, आवयोः, मनसि = चित्ते, न, एतत् = इदम्, आसीत् = अभूत्, यथा = यत्, जामातृसहिता = स्वकीयपतियुक्ता, वत्सा = पुत्री, द्रष्टव्या = विलोकनीया, मम वत्सा कदापि विवाहं न करिष्यतीति प्रतिज्ञामाकर्ण्य आवयोर्मनसि इयं कल्पनापि नासीद् यत् आवां जामात्रा सहितं स्वसुतां द्रष्टुं समर्थौ भविष्याव इति तदाशयः, तत् = तस्मात्, आवयोः = तव जननीजनकयोः, अयमेव, परमानन्दः = अतिशयसुखस्यावसरः, यद्, वत्सया=पुत्र्या, जामाता = स्वकीयः भर्तेति भावः, वृतः = स्वीकृतः। तत्र = वरणप्रसङ्गेः, अपि, अपरम् = द्वितीयम्, आनन्दजनकमिदमस्तीति भावः, भगवतः=देवस्य,

चन्द्रापीड के शरीर को देख कर नहीं रोई, तब अब स्वामी का जीवित होना सुनिश्चित हो जाने पर नियम पालन करती हुई क्यों रोऊँ ?" ऐसा कह कर उस मदलेखा को बिदा कर दिया।

[गन्धर्व नगर से] जाकर वापस लौट आई उस मदलेखा ने बताया—'प्रियसखी, तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई। तुम्हारे पिता चित्ररथ ने और माता मदिरा ने यह सन्देश दिया है—'हमारी ओर से बार-बार खूब गले से लिपटा कर और सिर पर सूंघकर कह देना—बेटो ! इतने समय तक तो हम लोगों के मन में ही यह बात नहीं थी कि हम लोग जामाता के साथ पुत्री को देख सकेंगे अर्थात् विवाहित कादम्बरी को देख पायेंगे, इसलिए हम दोनों के लिए तो यही परम

१. गतागतया। २. गाढतरमालिङ्ग्य। ३. वत्सयैव।

चन्द्रमसोऽवतारः। 'तत्कल्याणैः शापावसाने जामात्रा सहैवानन्दबाष्प[2]निर्भरमानना-रविन्दं ते द्रक्ष्यावः'' इत्यावेदिते निर्वृते[3]नान्तरात्मना दैवतदुपचरन्ती तच्चन्द्रापीडशरीर-मतिष्ठत्।

अथापगतवति जलदसमये, घननिरोधो[4]द्बन्धादिवोन्मुक्ते जीवलोके, प्रसरन्तीष्वि-वाशासु, फलभरावन[5]म्र-कलमवन[6]पिञ्जरासु ग्रामसीमासु, काशकुसुमधवलास्वरण्यस्थलीषु,

---

लोकपालस्य, चन्द्रमसः = चन्द्रस्य, अवतारः = द्वितीयरूपधारी, इति। तत् = तस्मात्, कल्याणैः= मङ्गलजनकैः व्रतादिभिः, शापावसाने = शापकालस्य समाप्तौ, जामात्रा, सह, एव, ते = तव कादम्बर्याः, आनन्दबाष्पनिर्भरम् = प्रमोदजन्याश्रुपरिपूर्णम्, आननारविन्दम् = मुखकमलम्, द्रक्ष्यावः = विलोकयिष्यावः।' इति = इत्थम्, आवेदिते = संसूचिते सति, मदिरयेति शेषः, निर्वृतेन = शान्तियुक्तेन, अन्तरात्मना = चेतसा, तत् = पुरोवर्ति अविनाशि, चन्द्रापीडशरीरम् = स्वप्रियतमकायम्, दैवतवत् = देवतातुल्यम्, उपचरन्ती = सेवमाना, अतिष्ठत्=स्थितवती कादम्बरीति शेषः।

अथेति। अथ = तदनन्तरम्, जलदसमये = वारिदकाले, वर्षर्ताविति भावः, अपगतिवति= व्यतीते सति, जीवलोके = प्राणिजने, संसारे इति भावः, घननिरोधबन्धाद्–घनानाम् (= मेघानाम्) निरोधः (= अवग्रहः, अवरोधः) स एव उद्बन्धः (=बन्धनम्) तस्माद्, इव, मुक्ते=स्वाधीनीकृते सति, मेघानामाच्छन्नतया लोका एकस्मात् स्थानादन्यत्र गन्तुं न प्रभवन्तीति तेषामुद्बन्धकत्वं स्पष्टम्। आशासु = दिशासु, प्रसरन्तीषु = विस्तारं प्राप्नुवतीषु सतीषु। ग्रामसीमासु = ग्राम्यवसतीनां प्रान्तदेशेषु, फलभरेत्यादिः—फलभरेण (= सस्यबीजभारेण) अवनम्राणि (= विनतानि) यानि कलमवनानि (= पक्वसस्यानि क्षेत्राणि) तैः पिञ्जरासु = पीतरक्तासु सतीषु। ['...सीमसीमे स्त्रियामुभे।' इत्यमरः २।२।२०] एतदनुसारं-सीमन्-सीमा–एतौ पृथक् शब्दौ स्त्रीलिङ्गे समानार्थे प्रयुज्येते। तेन नात्र कोऽपि भ्रमः करणीयः। "शालयः कलमाद्याश्च षष्टिकाद्याश्च पुंस्यमी। इत्यमरः २।९।२४] अरण्यस्थलीषु = काननप्राकृतिकभूभागेषु, सत्सु। काशेत्यादिः—काशानाम् (= तृणपादपविशेषाणाम्) कुसुमैः (= पुष्पैः) धवलासु (= शुभ्रवर्णासु)। प्रासादतलेषु =

हर्ष का विषय है जो बेटी ने स्वयं ही हमारा जामाता वरण कर लिया हैं। और उस पर भी [विशेष हर्ष इस बात का है] लोकपाल भगवान् चन्द्रमा का अवतार [चन्द्रापीड जामाता चुना गया]। इस कारण कल्याणकारक अनुष्ठानों से शाप को समाप्ति हो जाने पर जामाता के साथ ही आनन्द के आसुओं से परिपूर्ण तुम्हारे मुखकमल को देखेंगे।'—ऐसा कहे जाने पर शान्त चित्त से कादम्बरी देवता के समान उस चन्द्रापीड के शरीर की पूजा करती हुई रहने लगी।

इसके बाद जब वर्षाकाल बीत गया, प्राणिसमूह मेघों द्वारा रोके जाने के कष्ट से मानों मुक्त हो गया, दिशायें दूर-दूर तक फैलने लगीं, गावों की सीमायें फल = बालियों के बोझ से झुके हुए धान के पौधों के खेतों के कारण पिञ्जर (कुछ पीली-नीली) रंग की हो गईं, जंगली जमीनें कास के सफेद फूलों से सफेद-सफेद हो गईं, भवनों के तल = निचले हिस्से उपभोग के योग्य हो गये;

---

१. तत्कतिपयेनैव कालेन। २. ...... निर्भरमानन०। ३. निर्वृत्तेन।
४. बन्धात्। ५. फलभरादवनम्र, कणिशभरादवनम्र०। ६. आपिञ्जरासु।

सेव्यतामुपगतेषु [1]प्रासादतलेषु, कह्लारहारिषु पल्वलेषु, [2]कुमुदामोदशीतलासु यामवतीषु, [3]सेफालिकापरिमलग्राहिषु निशावसानमातरिश्वसु, चन्द्रप्रभाभिरामेषु प्रदोषेषु, उद्दामफुल्लेन्दीवररजोवाससुरभिषु वासरेषु[4], सलिलापसरणक्रम-[5]तरङ्गायमाणासु सुकुमारतीरसैकतरेखासु, सुखोत्तारतामापन्नास्वापगासु, पङ्कपरिहरणशुष्केष्वप्रहतरूढतृणोलप[6]-च्छन्नेषु मन्दाश्यानकर्दमोद्भिद्यमानाभिनवपदवीकेषु पुनरपि [7]पार्थिवलोकेन प्रवर्तितेषु

सौधानामधोभागेषु, सेव्यताम् = उपभोग्यताम्, निवसनार्हताम्, उपगतेषु = प्राप्तेषु सत्सु। वर्षाकाले अधोभागेषु अतिशयक्लिन्नतादिना कष्टं जायते तेनोर्ध्वभागेषु जनाः निवसन्ति। वर्षापगमे पुनरधोदेशे आयान्तीति तदाशयः, पल्वलेषु = क्षुद्रजलाशयेषु, कह्लारहारिषु=कमलैर्मनोहरेषु, सत्सु। यामवतीषु= रात्रिषु,कुमुदेत्यादिः—कुमुदानाम् (=रात्रौ विकसनशीलानां कमलानाम्) आमोदेन (=सौरभेन)शीतलासु (= शिशिरासु) सतीषु। निशावसानमातरिश्वसु = निशायाः अवसानं प्रातःकालः तस्य पवनेषु, सेफालिकेत्यादिः—सेफालिनाम् (=लताविशेषपुष्पाणाम्) परिमलम् (=सुगन्धम्) गृह्णन्ति इत्येवं शीलेषु सत्सु। प्रदोषेषु = सायंकालेषु, चन्द्रप्रभाभिरामेषु=इन्दुज्योत्स्नया हृदयहारिषु सत्सु। वासरेषु = दिवसेषु, उद्दामेत्यादिः—उद्दामम् (= उत्कटम्) फुल्लानि (=विकसितानि) यानि इन्दीवराणि (= कमलानि) तेषां रजसाम् (=परागाणाम्) वासः (=सौरभम्) तेन सुरभिषु (=सुगन्धपरिपूर्णेषु) सत्सु। सुकुमारेत्यादिः—सुकुमाराः (= कोमलाः) तीरस्य (=तटस्य, तटसम्बन्धिन्यः) सैकतरेखाः (= बालुकामयीलेखाः) यासु तासु, सलिलेत्यादिः—सलिलम् (= जलम्) तस्य यद् अपसरणम् (= दूरीभवनम्) तस्य क्रमः (= परिपाटी) तेन तरङ्गायमाणासु (=उत्कलिकायमानासु, तरङ्गरूपिण्य इव प्रतीयमानासु) [जलाभावेऽपि बालुकायां याः रेखाः दृश्यन्ते ताः तरङ्गाणीव प्रतीयन्ते इति भावः] आपगासु = सरित्सु, सुखोत्तरताम् = अनायासेन लङ्घनीयताम्, आपन्नासु= प्राप्तासु, सतीषु। प्राञ्जलवर्त्मसु—प्राञ्जलानि (= सरलानि, प्रचलितानि) वर्त्मानि (= मार्गाः) तेषु, पङ्केत्यादिः—पङ्कः, (= कर्दमः) तस्य परिहरणम् (=दूरीभवनम्, समाप्तिः) तेन शुष्केषु (= शुष्कतां प्राप्तेषु, अनार्द्रेषु), अप्रहृतेत्यादिः—अप्रहृतानि (=अविनष्टानि, लोकानां पादचलनैः अदलितानि) रूढानि (= उद्भूतानि) यानि तृणानि (= घासादयः) उलपाः (= लताः) तैः छन्नेषु (= आवृतेषु) ['''वीरुद्गुल्मिन्युलप इत्यपि।' इत्यमरः २।४।९]। मन्देत्यादिः—मन्दः (= अल्पः, ईषद्) आश्यानः (= अशुष्कः) यः कर्दमः (= पङ्कः) तेन उद्भिद्यमानाः (=प्रकटीभवन्त्यः) अभिनवाः (=नूतनाः) पदव्यः (=मार्गाः)येषु तेषु तादृशेषु, पुनरपि; पार्थिवलोकेन =

तालाब कमलों के कारण मनोहारी हो गये, रातें कुमुदों की गन्ध से शीतल हो गईं, सबेरे की हवायें शेफालिका [निर्गुण्डी] के फूलों की गन्ध को साथ लेकर बहने लगीं, सन्ध्यायें चन्द्रमा की छटाओं से मनोहर होने लगीं, दिन खूब खिले हुए कमलों के पराग की गन्ध से सुगन्धित होने लगे, नदी तट की कोमल रेत की रेखायें पानी के धीरे-धीरे हटने (उतरने) के क्रम से तरंगों के समान हो गईं, नदियाँ आसानी से तैरने (पार करने) लायक हो गईं, सीधे सरल मार्ग जो कीचड़ हट जाने के कारण सूख गये थे, [पैरों का] दबाव न पड़ने के कारण उगी हुई घासों से व्याप्त हो गये थे, कुछ-कुछ सूखे कीचड़ में नये (ताजे) पदचिह्न उभर कर दिखाई देने लगे, उन (मार्गों) पर राजा

१. पादपतलेषु। २. कुसुम०। ३. शेफाली: काली०। ४. सलिलाशयेषु।
५. ''' '''तरंगमाण पाण्डुसुकुसुमरतीर-सैकतरेखासु। ६. रूढोलप०। ७. पान्थलोकेन।

प्राञ्जलवर्त्मसु जम्बालविगमात् सर्वतस्तुरगखुरसहासु[1] भूमिष्वेकदा चन्द्रापीडचरणमूलोपविष्टां कादम्बरीमुपसृत्य मेघनादो व्यज्ञपयत्—

"देवो[2] युवराजश्चिरयतीत्युत्ताम्यता हृदयेन देवेन तारापीडेन देव्या विलासवत्यार्यशुकनासेन च वार्ताहराः प्रहिताः। ते च देव्या एव शोकशल्यघटनां परिहरद्भिर्यथावृत्त[3] सर्वमाख्यायास्माभिरभिहिताः—'भवतां[4] हस्ते देवेन चन्द्रापीडेन न किञ्चित्प्रतिसन्देष्टव्यम्, नापि देव्या कादम्बर्या। तदकृतविलम्बा एव गत्वैवमखिलवृत्तान्तं

नृपजनेन, प्रवर्तितेषु = प्रयोगं नीतेषु, तेषु नृपेषु सञ्चरत्सु सत्सु इति भावः। भूमिषु = पृथ्वीषु, जम्बालविगमात्=पङ्कस्य विनाशात् ['निषद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽस्त्री'''। इत्यमरः] हेतोः, सर्वतः = सर्वासु दिशासु, तुरग-खुर-सहासु = अश्वानां शफानां प्रहारसहनसमर्थासु सतीषु, यदा भूमौ अश्वानां गतिर्वेगेन भवितुं शक्या जाता तदेति भावः, एकदा=एकस्मिन् काले, चन्द्रापीडेत्यादिः—चन्द्रापीडस्य चरणयोः (=पादयोः) मूले (= अतीवनिकटे) उपविष्टाम् (=आसीनाम्) कादम्बरीम्, उपसृत्य= समीपमागत्य मेघनादः = चन्द्रापीडस्य सेनाधिपतिः, व्यज्ञपयत् = निवेदितवान्।

किं व्यज्ञपयदित्याह--देव इत्यादिना। देवः = स्वामी, युवराजः = चन्द्रापीडः, चिरयति = विलम्बं कुरुते, परावर्तने इति शेषः, इति = अस्मात् हेतोः, उत्ताम्यता = आकुलीभवता, हृदयेन= चेतसा, देवेन = महाराजेन तारापीडेन देव्या = महिष्या, विलासवत्या = चन्द्रापीडजनन्या, आर्यशुकनासेन, च, वार्ताहराः = सन्देशवाहका दूताः, प्रहिताः = प्रेषिताः। ते = वार्ताहराः, च, देव्याः = भवत्याः कादम्बर्याः, एव, शोकशल्यघटनाम्-शोकः एव शल्यम् (= बाणाग्रम्) तस्य घटनाम् (=वृत्तान्तम्) परिहरद्भिः, तां विहायेति भावः, यथावृत्तम् = येनरूपेण यत् यत् जातम्, सर्वम्, आख्याय = कथयित्वा, अस्माभिः = मेघनादादिभिः,अभिहिताः = कथिताः। किमभिहृता इत्याह—भवतामित्यादिना। देवेन = युवराजेन, चन्द्रापीडेन, भवताम् = युष्माकम्, हस्ते = करे, भवतां माध्यमेनेति भावः न, किञ्चित्, प्रतिसन्देष्टव्यम् = प्रतिसन्देशः प्रेषणीयः, अस्ति। नापि, देव्या = स्वामिन्या, कादम्बर्या, किञ्चित् प्रतिसन्देष्टव्यमस्ति। तत् = तस्मात्, अकृतविलम्बाः = अकृतः (= अविहितः) विलम्बः (= कालक्षेप) यैस्तादृशा, शीघ्रातिशीघ्रमिति भावः, गत्वा = प्रतिनिवृत्य, उज्जयिनीमिति शेषः, एवम्, अखिलम्, वृत्तान्तम् = घटितं घटनाचक्रम्,

---

लोग फिर से चलने लगे थे, कीचड़ हट जाने के कारण चारो ओर जमीने घोड़ों के खुरों [की टकराहट] को सहने लगीं थी, तभी एक दिन चन्द्रापीड के चरणों के मूल (समीप) में बैठी हुई कादम्बरी के पास पहुँच कर मेघनाद निवेदन करने लगा—

"(देवि !) स्वामी युवराज चन्द्रापीड देर लगा रहे हैं—इस कारण व्याकुल हृदय से महाराज तारापीड, महारानी विलासवती तथा आर्य शुकनास ने [सारी स्थिति जानने के लिये] सन्देशहर दूत भेजे हैं। आपकी ही शोकरूप शल्य की घटना को छोड़ कर हम लोगों ने जो भी हुआ है वह बताकर यह कहा है—"आपके हाथों में न तो युवराज चन्द्रापीड को कोई सन्देश भेजना है और न देवी कादम्बरी को। अतः बिना देर लगाये तत्काल ही वापस लौटकर यह सारा वृत्तान्त

---

१. सहासु संजातासु। २. देवि, देव।
३. अस्माभिर्यथावृत्तं समाख्या। ४. भवता तु हस्तेन।

[1]लोकार्तिहराया[2]वनितलपतये देवदेवाय तारापीडायावेदयत।' इत्येवमभिहितास्तु तेऽस्मान् मन्युनिर्भराः प्रत्यवदन्—"यथा भवद्भिः कथितं तत्तथा। तिष्ठतु तावत्क्रमागतस्नेहो भक्तिरनुवृत्तिर्वा। कार्यंगौरवकृतं कुतूहलमेव देवावलोकनं प्रति बलात्प्रेरय[3]त्यस्मान्। यदि [4]भवतामपि वार्तामात्रकोपलभ्य एवायमर्थस्ततो [5]युज्यतेऽस्माकं भवद्भ्यः समुपलभ्य प्रतिगमनम्। अथ नयनविषयगामी तदा वयमपि नेदृशा[6] एवापुण्यकर्माणो ये न पश्यन्ति

लोकार्तिहराय = संसार-व्यथाविनाशकाय, अवनितल-पतये = भूपतये, देवदेवाय = राजाधिराजाय, तारापीडाय = चन्द्रापीडस्य जनकाय, आवेदयत = संसूचयत, इतिः = कथनसमाप्ती। एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, अभिहिताः = कथिताः, ते = वार्ताहराः, तु, मन्युनिर्भराः = क्रोधपरिपूर्णाः, सन्तः, अस्मान् = मेघनादीन्, प्रत्यवदन् = प्रत्यवोचन्। किं तदित्याह—यथेत्यादिना। भवद्भिः = मेघनादादिभिः युष्माभिः, यथा = येनरूपेण, कथितम् = उक्तम्, तत् = भवदुक्तम्, तथा = तेनैव रूपेण, अस्तु इति शेषः। तावत् = आदौ, क्रमागत-स्नेहः = परम्परया सम्प्राप्तः, स्नेहः = अनुरागः, भक्तिः = सेवा, वा = अथवा, अनुवृत्तिः = अनुवर्तनम् इच्छानुकूलाचरणम्, तिष्ठतु = दूरे अस्त्विति भावः। कार्यैत्यादिः—कार्यस्य (= कृत्यस्य) गौरवेण (= महत्त्वेन) कृतम् (= जनितम्), कुतूहलम् = औत्सुक्यम्, एव, देवावलोकनम् = चन्द्रापीडदर्शनम्, प्रति, अस्मान् = उज्जयिनीतः समागतान् वार्ताहरान्, बलात् = हठात्, प्रेरयति = नोदयति। यदि = चेत्, भवताम् = मेघनाथादीनाम्, अपि, अयम् = एषः, अर्थः = विषयः, वार्तामात्रकोपलभ्यः—वार्ता एव (= वार्तामात्रकम्) तेन उपलभ्यः (= प्राप्तुं योग्यः, बोधनीयः), अस्ति, यदि भवन्तोऽपि चन्द्रापीडविषये केवलां वार्तामेव शृण्वन्ति, न तु दर्शनस्य सौभाग्यं लभन्ते, यदि प्रत्यक्ष-दर्शनस्य अवसरो न लभ्यते केवलं संवादप्राप्तिरेव भवदधीना वर्तते, ततः = तदा, तस्मात् कारणाद् वा, भवद्भ्यः = युष्मभ्यः सकाशात्, समुपलभ्य = सम्प्राप्य, वार्तामिति भावः, अस्माकम् = सन्देशहराणाम्, प्रतिगमनम् = प्रतिनिवर्तनम्, युज्यते = उचितं भवति। अथ = यदि, नयनगामी = नेत्रदर्शनविषयः, देवः, अस्तीति शेषः, तदा = तर्हि, वयम् = सन्देशहराः भृत्याः, अपि, न, ईदृशाः = एवंविधाः, अपुण्यकर्माणः = अशुभ-कृत्यकारिणः, स्मः, ये, देवम् = स्वामिनं चन्द्रापीडम्, न, पश्यन्ति = अवलोकयन्ति, अवलोकयितुं समर्था भवन्तीति भावः। अस्माभिः = सेवकैः, अपि,

लोगों का कष्ट दूर करने वाले, पृथ्वीपति, देवाधिदेव महाराज तारापीड से निवेदन कर दीजिये।" हम लोगों द्वारा ऐसा कहे जाने पर क्रोध या दुःख से भरे हुए वे लोग उत्तर देने लगे—'आपने जैसा कहा वैसा (सच) है। [युवराज के प्रति हम लोगों का] परम्परा से चला आ रहा अनुराग, भक्ति अथवा अनुवृत्ति (अनुसरण) दूर रहे, छोड़ दिया जाय। [वैशम्पायन के अन्वेषण रूपी] कार्य की महत्ता से उत्पन्न कौतूहल ही हम लोगों को देव चन्द्रापीड के दर्शन के लिये प्रेरित कर रहा है। यदि आप लोगों को भी केवल वृत्तान्त सुनना ही सम्भव हुआ तब तो आप लोगों से सुनकर हम लोगों का वापस लौट जाना उचित है। [भाव यह है कि यदि आप लोगों ने भी युवराज को नहीं देखा है, केवल घटना सुनी है तब तो हम भी आपसे सारी घटना सुनकर वापस लौटना उचित समझते हैं।] यदि स्वामी चन्द्रापीड आप लोगों के नेत्रों के समक्ष आये हैं, आपने साक्षात् देखा है

१. अखिललोक०। २. हरये। ३. कारयति।
४. भवतां वार्ता। ५. युज्यते एव। ६. एव केऽप्यगुणाः।

देवम् । अस्माभिरपि चिरतरं [1]चरणपरिचर्यया देवस्य पवित्रित एवात्मा । अस्माकमपि सर्वदा दर्शनगोचरावस्थानेव प्रसादं [2]कृतवानेव देवः । किमद्य जातं येन देवस्य पादारविन्दवन्दनप्रसादेनासंविभज्य विसृज्यामहे[3] । त एव वयं पादलग्नाश्चरणरेणवः । यद्विज्ञाप्य देवीं देवस्य युवराजस्य पादप्रणामेनास्माकं सफलयतु भवानागमनपरिश्रमम् । अन्यथा भूमिमेतावतीमागत्य सम्भवे सत्यप्रत्यक्षीकृत[4]युवराजशरीरा गताः सन्तः किं देवदेवेन

देवस्य = स्वामिनश्चन्द्रापीडस्य, चरण-परिचर्यया = पादयोः सेवया, आत्मा = स्वचित्तादिः, पवित्रितः=पावनीकृतः, एव । अस्माकम्, अपि, सर्वदा = सर्वस्मिन् काले, दर्शनेत्यादिः—दर्शनम् (= विलोकनम्) तस्य गोचरम् (= विषयभूतम्) यद् अवस्थानम् (= अवस्थितिः) तेन, हेतुना, देवः = स्वामी चन्द्रापीडः, प्रसादम् = अनुग्रहम्, कृतवान् = अकरोत्, एव, न तु क्रुद्धोऽभूदिति भावः । अद्य = अस्मिन् दिने, समये वा, किम् = अवर्णनीयम्, जातम् = समुत्पन्नम्, येन = हेतुना, देवस्य = चन्द्रापीडस्य, पादेत्यादिः—पादौ (= चरणौ) अरविन्दे (= कमले) इव, तयोः यद् वन्दनम् (= अभिवादनम्, प्रणतिः) तदेव प्रसादः (= अनुग्रहः, प्रसन्नता वा) तेन, असंविभज्य = सम्यग् विभागं न कृत्वा, तमनुपलभ्येति भावः, विसृज्यामहे = परावर्तनाय आदिश्यामहे, वयम् = सन्देशहराः सेवकाः, चरणलग्नाः = पादयोः संसक्ताः, ते = पूर्वानुभूताः, एव, न तु अपरिचिताः, चरणरेणवः = पाद-पांसवः, वर्तामहे । यद् = पाद-लग्नचरणरेणुत्वम्, वस्तुतस्तु—'तद् विज्ञाप्य' इति समीचीनः पाठः, तद् = तस्माद्, देवीम् = कादम्बरीम् विज्ञाप्य = विनिवेद्य, देवस्य, युवराजस्य = चन्द्रापीडस्य, पादप्रणामेन = चरणयोः प्रणत्या, भवान् = त्वं मेघनादः, अस्माकम् = सन्देशहराणां सेवकानाम्, आगमनपरिश्रमम् = अत्र सम्प्राप्तिजन्यं खेदम्, आयासम्, सफलयन्तु = सफलं कुर्वन्तु । अन्यथा = पक्षान्तरे, नैव चेत्, एतावतीम् = इयतीम्, एतद्दूरपर्यन्ताम्, भूमिम् = धराम्, आगत्य = सम्प्राप्य, सम्भवे = शक्ये, सति, अप्रत्यक्षीकृतेत्यादिः —अप्रत्यक्षीकृतम् (=स्वयमनवलोकितम्) युवराजस्य (=चन्द्रापीडस्य) शरीरम् (= देहः) यैस्ते तादृशाः गताः = प्रयाताः, सन्तः उज्जयिनीं प्रतीति शेषः, देवदेवेन = महाराजाधिराजेन, तारापीडेन = चन्द्रापीडस्य जनकेन, वयम् = सन्देशहराः, किम्

तब तो हम लोग भी ऐसे अभागे नहीं हैं कि स्वामी का दर्शन न कर सकें । हमलोगों ने भी बहुत समय तक स्वामी के चरणों की सेवा द्वारा अपनी आत्मा को पवित्र किया ही है । हम लोगों के सामने भी स्वामी ने प्रत्यक्ष दर्शन देने के लिये उपस्थित होकर अनुग्रह किया ही है । तब आज क्या हो गया है जिसके कारण युवराज के चरणारविन्दों की वन्दना की कृपा का हिस्सा दिये बिना ही हम लोगों को वापस भेजा जा रहा है । हम लोग उनकी चरणों में लगी हुई वे ही धूलि (रजें) हैं । इसलिए आप देवी कादम्बरी से निवेदन करके स्वामी युवराज के चरणों को प्रणाम करने के द्वारा हमारे आगमन के परिश्रम को सफल करें । यदि ऐसा नहीं होगा तो इतनी (दूर) भूमि में आकर संभव होने पर भी युवराज चन्द्रापीड के शरीर का दर्शन (साक्षात्कार) किये बिना वापस

१. देवचरणपरिचर्यया । २. प्रसादीकृतवान् ।

३. विसर्ज्यामहे । ४. प्रत्यक्षीकृतशरीरा० ।

तारापीडेन वक्तव्या वयम्? किं वास्माभिर्देवो विज्ञापयितव्यः? इत्यावेदिते देवी प्रमाणम्।" इति विज्ञाप्य पुनस्तूष्णीं स्थितवति मेघनादे तत्कालसमुत्प्रेक्षितानाश्वासश्वशुरकुलवैक्लव्याद्विलीयमानेव शुचान्तःसञ्चितं बाष्पमाकुलिततरलतारकाभ्यामापिबन्ती लोचनाभ्यां गद्गदिकयावगृह्यमाणकण्ठी[1] कथं कथमपि चिरात्कादम्बरी प्रत्युवाच—'स्थान एव हि तैरगमनमङ्गीकृतम्। अनवलोक्य देवमेवमेव याताः सन्तः किमुच्यन्ताम्[2]। अपि च,

= अज्ञातम्. चन्द्रापीडस्यानयनाभावे यदि देवाधिदेवः किमपि प्रक्ष्यति तदाऽस्माभिः किमुत्तरं देयमिति न ज्ञायते। वा = अथवा, अस्माभिः = सन्देशहरैः, देवः = महाराजस्तारापीडः, किम् = अज्ञातम्, विज्ञापयितव्यः = निवेदनीयः, इति = इत्थम्, आवेदिते = निवेदिते, सति, सन्देशहरैरिति शेषः, देवी = कादम्बरी, प्रमाणम् = यथादिशति तथैव करोमीति तदाशयः, इति, विज्ञाप्य = विनिवेद्य, पुनः, मेघनादे = सेनाध्यक्षे, तूष्णीम् = मौनम्, स्थितवति = स्थिते, सति, पुर इति शेषः, तत्कालेत्यादिः—तत्कालम् (= तस्मिन्नेव समये) समुत्प्रेक्षितम् (= वितर्कितम्) अनाश्वासेन (= आश्वसनाभावेन) श्वशुरकुलस्य (= पत्युः चन्द्रापीडस्य वंशस्य) यद् वैक्लव्यम् (= विह्वलत्वम्) तस्माद् हेतोः [क्वचित्तु ......'वैक्लव्या' इति प्रथमान्तः पाठः, तस्य—... ...वैक्लव्यं यया सा तादृशी—इत्यर्थः'] शुचा = शोकेन, विलीयमाना = विलयं प्राप्नुवती, इव, अन्तः = आभ्यन्तरे, सञ्चितम् = पुञ्जीभूतम्, बाष्पम् = अश्रुसलिलम्, आकुलितेत्यादिः—आकुलिते (= व्याकुलीभूते) तरले (= अस्थिरे) च तारके (= कनीनिके) ययोस्तादृशाभ्याम्, लोचनाभ्याम् = नेत्राभ्याम्, आपिबन्ती = निरुन्धती, गद्गदिकयेत्यादिः—गद्गदिकया (= गद्गदेत्यारकशब्देन) अवगृह्यमाणः (= अवरुध्यमानः) कण्ठः (= गलप्रदेशः) यस्याः तादृशी, कादम्बरी, कथंकथमपि = यथा कथञ्चित्, चिरात् = विलम्बेन, प्रत्युवाच = प्रत्युत्तरं दत्तवती।

कादम्बरी किं प्रत्युवाचेत्याह—स्थान इत्यादिना। स्थाने = उचितम्, एव, यत्, तैः = सन्देशहरैः अगमनम् = अप्रयाणम्, चन्द्रापीडदर्शनं विनेति शेषः, अङ्गीकृतम् = अनुष्ठितम्। ['युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने—' इत्यमरः ३।४।११] देवम् = स्वामिनं चन्द्रापीडम्, अनवलोक्य = अदृष्ट्वा, एवमेव = अनेन रूपेण, अप्रत्यक्षीकृतदेवाः, याताः = प्रतिनिवृत्ताः सन्तः, किम् = अज्ञातम्, उच्यन्ताम् = भाष्यन्ताम्, देवाधिदेवादिभिरिति शेषः। अपि च = अन्यच्च, अयम् =

लौटे हुए हम लोगों से महाराजाधिराज तारापीड क्या कहेंगे? अथवा हमी लोग उनसे क्या निवेदन करेंगे?"—उन लोगों द्वारा ऐसा निवेदन किया जाने पर अब देवी आपकी जैसी इच्छा वैसा किया जाय।"—इस प्रकार से निवेदन करके मेघनाद के फिर चुपचाप बैठ जाने पर उसी समय [किसी प्रकार का] आश्वासन न पाने के कारण होने वाली श्वशुरकुल की व्याकुलता की संभावना करके शोक के कारण भीतर ही भीतर घुलती जाती हुई सी, भीतर संचित आँसुओं को व्याकुल और चंचल पुतलियों वाली आँखों से पीती हुई, गद्गदिका (घिग्घी बँध जाने) के कारण रुँधे हुए गले वाली उस कादम्बरी ने बहुत देर बाद जिस किसी प्रकार उत्तर दिया—'उन लोगों का न लौटने का निर्णय ठीक ही है। युवराज के दर्शन के बिना यों ही वापस लौटे हुए उन लोगों से [दूसरे लोग] क्या कहेंगे?

१. गद्गदिकावगृह्यमाणकण्ठा, गद्गदिकावगृह्यमाणकण्ठी। २. किमुच्यन्तात एव।

वृत्तान्त[1]एवायमेवंविधो लोकातीतो यत्रावलोकनेनापि न सम्प्रत्ययः समुत्पद्यते किं पुनरनालोकनेनापि। कैतवमात्रकोपदर्शितप्रेमपल्लवा[2] वल्लभतमजीविता वयमपि यावत्पश्यामस्तं तावदनपेक्षितप्राणवृत्तयः स्नेहसद्भावनया[3] [4]सद्भृत्या न पश्यन्तीत्यघटमानकमिदम्। तदपरिलम्बितं प्रवेश्यन्ताम्। पश्यन्तु देवम्। 'सफलयित्वा[5]गमनपरिश्रमेण सार्धं लोचने ततो यास्यन्ति' इति। आज्ञानन्तरं च मेघनादेन प्रवेशितान् दूरत[6] एव समं बाष्पपातेन

एषः, वृत्तान्तः = घटना, उदन्तः, एव, एवंविधः = एतादृशः, लोकातीतः = अलौकिकः अश्रुत अदृष्टपूर्वः अनवलोकितपूर्वः अस्ति, यत्र=यस्मिन् वृत्तान्ते, अवलोकनेन=साक्षात्कारेण, अपि, सम्प्रत्ययः= विश्वासः, न, समुत्पद्यते = जायते, अनालोकनेन = अदर्शनेन, अपि, किम् = अज्ञातम्, पुनः कथनीयमित्याशयः। कैतवेत्यादिः—कैतवम् (= छलम्, कपटम्) एव कैतवमात्रम्, तेन उपदर्शितम् (= प्रकटितम्) प्रेम (= स्नेहः) पल्लवम् (= किसलयम्) इव, यैः ते तादृशाः, छलरूपेणैव न तु वास्तविकरूपेण प्रेम प्रदर्शयन्तः, वल्लभतमजीविताः—सर्वेभ्योऽधिकं वल्लभम् = प्रियमिति वल्लभतमं जीवितम् (= जीवनम्, स्वीयाः प्राणाः इति भावः) येषां ते तादृशाः, संसारे स्वीयप्राणानेव सर्वाधिकान् मन्यमाना इति भावः, वयम् = कादम्बर्यादयः अपि, यावत्-कालपर्यन्तम्, यदि, तम् = चन्द्रापीडम्, पश्यामः = विलोकयामः, तावत् = तर्हि, अनपेक्षितेत्यादिः—अनपेक्षिता (= न चिन्तता) प्राणानाम् (= असूनाम्) वृत्तिः, (= वर्तनम्) यैस्ते-तादृशाः स्वजीवनविषयेऽचिन्तयन्त इति भावः, एते, सद्भृत्याः = सुसेवकाः सन्देशहराः, स्नेहसद्भावनया = प्रीतिपरिपूर्णसद्भावेन, न, पश्यन्ति = विलोकयन्ति, इति = इदम्, अघटमानम् = असङ्गतम्, अनुचितं प्रतीयते इति शेषः। तत् = तस्मात्, अपरिलम्बितम् = अविलम्बपूर्वकम्, यथाशीघ्रम्, प्रवेश्यन्ताम् = प्रवेशायानुमन्यन्ताम्, सन्देशहरा इमे इति योज्यम्। ते, देवम् = चन्द्रापीडम्, पश्यन्तु = साक्षात्कुर्वन्तु। आगमनपरिश्रमेण = अत्र सम्प्राप्तिजन्यायासेन, सार्धम् = साकम्, लोचने = नेत्रे, सफलयित्वा = कृतार्थीकृत्य, ततः = तदनन्तरम्, यास्यन्ति = गमिष्यन्ति, उज्जयिनीमिति शेषः। आज्ञानन्तरम् = आदेशस्य पश्चात्, मेघनादेन = सेनाध्यक्षेण, प्रवेशितान् = प्रवेशं कारितान्, दूरतः = दविष्ठाद, एव, बाष्पपातेन = अश्रुपतनेन,

---

(दूसरी बात) यह भी है कि यह घटना भी इस प्रकार की अलौकिक है कि देख लेने पर भी इसमें विश्वास नहीं होता है, तब फिर बिना देखे तो [विश्वास करने के विषय में कहना ही] क्या ? केवल बनावटी स्नेह रूपी पल्लव को दिखाते हुए (अपने) प्राणों को सबसे अधिक प्रिय मानते हुए हम लोग भी उन्हें जब देख ही रहे हैं तब अपने प्राणों की चिन्ता न करने वाले सच्चे (वास्तविक) सेवक लोग उनका दर्शन न करें, यह तो घटित नहीं होती है, अनुचित ही है। [भाव यह है कि हम लोग तो अपने प्राणों की चिन्ता करते हुए भी युवराज का दर्शन कर रहे हैं। किन्तु वे सच्चे सेवक तो अपने प्राणों की भी चिन्ता किये बिना रुके हैं अतः वे दर्शन न करें—ऐसा कैसे हो सकता है ?] इसलिए बिना देरी के उन्हें प्रवेश कराओ। वे स्वामी का दर्शन करें। अपने आगमन के परिश्रम के साथ-साथ नेत्रों को भी सफल करके (अर्थात् स्वामी का दर्शन करके) उसके बाद (यहाँ से) वापस लौटेंगे।' इस प्रकार की आज्ञा के बाद मेघनाद द्वारा प्रवेश कराये गये, दूर से

---

१. अयमेवंविधो लोकातीतो वृत्तान्तः। २. प्रेमफलाः। ३. सद्भावनीयाः। ४. सद्वृत्त्या। ५. सफलयन्तु। ६. अदूरतः।

पञ्चाङ्गालिङ्गितमहीतलांश्चन्द्रापीडचरणवन्दनसद्भावनिहितोत्पक्ष्मनिभृतदृष्टींस्ताननन्यदृष्टि-श्चिरमि[1]वालोक्य कादम्बरी स्वयमेवाभाषत[2]—

"भद्रमुखाः, परित्यज्यतामयं क्रमागतस्नेहसद्भावसुलभः शोकावेगः। [3]यत्खल्वनालोचितावधि दुःखावसानमेव दुःखं तन्मरणभीरोर्भवतु नाम शोकावेगाय। यत्पुनः सुखो-

समम्=सार्धम्, पञ्चेत्यादिः—पञ्च च तानि अङ्गानि (=द्वे जानुनी द्वौ करौ मस्तकं चेति पञ्चावयवाः) तैः आलिङ्गितम् (= आश्लिष्टम्, पूर्णरूपेण स्पृष्टम्) महीतलम् (= भूतलम्) यैस्तान् तादृशान्, चन्द्रापीडेत्यादिः—चन्द्रापीडस्य चरणयोः (= पादयोः) यद् वन्दनम् (= प्रणमनम्) तस्मिन् यः सद्भावः (= सद्भावना, प्रणयः) तेन निहिता (= स्थापिता) उत्पक्ष्मा (= ऊर्ध्वीकृत-नयनरोमा) निभृता (= निश्चला) च दृष्टिः (= नेत्रम्) यैस्तान् तादृशान्, तान् = सन्देशहरान् सेवकान्, अनन्यदृष्टिः—न अन्यस्मिन् (= तद्भिन्ने विषये स्थाने वा) दृष्टिः (= नेत्रम्) यस्याः सा तादृशी सती, कादम्बरी, चिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, इव, विलोक्य = दृष्ट्वा, स्वयमेव = आत्मना एव, अभाषत = उक्तवती। अत्र 'इव' शब्दः केवलं वाक्यालङ्कारे बोध्यः।

कादम्बरी किमभाषतेत्याह—भद्रमुखा-इत्यादिना। भद्रमुखाः—भद्रम् (= शोभनम्) मुखम् (= आननम्) येषां तादृशास्तत्सम्बुद्धौ, क्रमेत्यादि—क्रमेण (= परिपाट्या) आगतः (= सम्प्राप्तः) यः स्नेहस्य (= स्वामिविषयकानुरागस्य) सद्भावः (= अस्तित्वम्) तेन सुलभः (= सुप्रापः, स्वाभाविकः), अयम् = एष दृश्यमानो, भवदीयः, शोकावेगः = शोकस्य रयः, परित्यज्यताम् = परिमुच्यताम्। कथमिदमधुना त्वयोच्यते इत्याह–यद्, दुःखम्=शोकः, अनालोचितावधि—अनालोचितः (= न विचारितः, अज्ञातः) अवधिः (= समाप्तकालः) यस्य तत् तादृशम्, निरवधिकमिति भावः, दुःखावसानम्—दुःखम् (= कष्टं, क्लेशः) अवसाने (= समाप्तिकाले) यस्य तत् तादृशम्, एव, भवति, तत् दुःखम् = कष्टम्, मरणभीरोः = मृत्योः भयशीलस्य, शोकावेगाय = शुचो रयाय, भवतु = वर्तताम्, नाम। पुनः = परन्तु, यद्=दुःखम्,

ही आँसुओं के गिरने के साथ ही साथ अपने पाँचों अंगों (दो जानु,दो हाथ और मस्तक) से भूतल को स्पर्श किये हुए, चन्द्रापीड के चरणों की वन्दना की सद्भावना में ऊपर उठी हुई बरौनी वाली तथा स्तब्ध आँखों वाले उन सन्देशहरों को अनन्य दृष्टि से (केवल उन्हीं पर दृष्टि गड़ाये टकटकी बाँधे हुई) बहुत देर तक देखने के बाद कादम्बरी स्वयं ही बोली—

"सज्जनों, परम्परा से प्राप्त स्नेह की सद्भावना से सुलभ इस शोक के आवेग को छोड़ दीजिए। जिसकी कोई [समाप्त होने की] अवधि निश्चित न हो, जिसका अवसान (परिणाम, अन्त) दुःख ही हो, ऐसा दुःख तो मृत्यु से डरने वाले के लिये शोक के आवेग के लिए हो [ठीक है।]

१. चिरमवलोक्य। २. अलपत्। ३. न खलु।

दर्कं तत्पुरः स्थितया सुखप्रत्याशयैवान्तरितं नापतति हृदये। तदेष वृत्तान्त एवंविधो येन न केवलमत्र निरवकाशता शोकस्य प्रत्युत सुदूरभिन्नवृत्तेर्विस्मयस्यावसरः। किमत्र परिबोधनेन? अन्यत्रादृष्टपूर्वो मनुष्येषु प्रत्यक्षीकृत[1] एवायं वृत्तान्तः। [2]भवद्भिरपि दृष्टं च पुरेवा[3]क्षततनोर्देवस्य वदनम्। [4]सम्भाषणापि या देवेन बिना न सम्भवति सापि

सुखोदकंम्—सुखम् (= सुखकारकः) उदर्कः (= उत्तरं फलम्, परिणामः) यस्य तत् तादृशं वर्तते, तत् = दुःखम्, पुरः स्थितया = अग्रे विद्यमानया, सुखप्रत्याशया = आनन्दोपलब्ध्याशया, एव, अन्तरितम् = व्यवहितम्, सद्, हृदये = चित्ते, न, आपतति = आयाति। ['... ...उदर्कः फलमुत्तरम्।' इत्यमरः २।८।२९]। अयं भावः—वर्तमाने यद् दुखं विद्यते तद् यदि भाविनि काले परिणामेऽपि दुःखदं भवति तदा तु तस्य विषये शोकः करणीयः। परन्तु यद् दुःखं वर्तमाने दृश्यते तस्य परिणामे सुखप्राप्तिः सुनिश्चितास्ति तर्हि तद्विषये शोको न विधेय इति तस्या आशयः। तत् = तस्मात्, एषः, वृत्तान्तः = उदन्तः, घटनाचक्रमिति भावः, एवंविधः = एतादृशः, अस्ति, येन, अत्र = अस्मिन् विषये, केवलम्, शोकस्य = शुचः, निरवकाशता = अवकाशाभावः, प्रसङ्गः, एव, न = नैव, वर्तते इति शेषः, प्रत्युत = एतद्विपरीतम्, सुदूरेत्यादिः—सुदूरम् (= अतिविप्रकृष्टम्, अत्यन्तम्) भिन्ना (= विपरीता) वृत्तिः (= वर्तनम्) यस्य तादृशस्य, सर्वथा विरोधिन इति भावः, विस्मयस्य (= आश्चर्यस्य), अवसरः (= कालः, प्रसङ्गः), वर्तते इति शेषः। अत्र = अस्मिन् विषये, प्रबोधनेन = ज्ञानप्रदानेन, ज्ञापनेन वा, किम् ?=न किमपि फलमित्याशयः। स्वीयं वक्तव्यं द्रढयितुमेवाह कादम्बरी—अन्यत्रेत्यादिना। अन्यत्र = अन्यस्मिन् क्वापि स्थाने, मनुष्येषु = जीवधारिषु मानवेषु, अदृष्टपूर्वः = न पूर्वं दृष्टः, अनालोकितपूर्वः, अयम् = एषः, वृत्तान्तः = घटनाचक्रम्, मृतेऽपि देहे विकाराभाव इत्याशयः, अत्र, प्रत्यक्षीकृतः = साक्षात्कृतः, एव, अस्ति। भवद्भिः = सन्देशहरैः सेवकैः, अपि, पुरा इव =पूर्ववदेव, अक्षततनोः = अविकारिदेहस्य, देवस्य = चन्द्रापीडस्य, वदनम् = आननम्, दृष्टम् = विलोकितम्। या, सम्भाषणा = परस्परालापः, अपि, देवेन = स्वामिना, विना = ऋते, न सम्भवति, भवितुमर्हति, सा = सम्भाषणा, अपि, सम्भाविता = सम्भावनाविषयीकृता, एव, यदा पुनः शरीरे प्राणा आगमिष्यन्ति तदा देवेन सह वार्तालापोऽपि सम्भव एव मन्तव्यः। ['अत्र मूले सम्भावनापि

परन्तु जो दुःख परिणाम में सुखवाला हो, अर्थात् जिसका अन्त सुखकारक हो, ऐसा दुःख तो आगे होने वाले सुख की प्रत्याशा से ही छिपा रहता हुआ हृदय में आता ही नहीं है। [ऐसे दुःख का कोई महत्व नहीं होता है।] इसलिए यह वृत्तान्त (घटना) इस प्रकार का है कि इसमें केवल शोक का स्थान ही नहीं है अपितु इसके विपरीत बहुत बड़े आश्चर्य का अवसर है। इस प्रसङ्ग में अधिक समझाने से क्या (लाभ)? अन्यत्र कहीं भी मनुष्यों में न देखा गया यह वृत्तान्त देखा ही गया है। और आप लोगों ने भी पहले के ही समान अक्षत शरीर वाले देव का दर्शन किया ही है और जो वार्तालाप भी स्वामी के बिना सम्भव नहीं हैं, वह भी सम्भव ही है। ['देवेन बिना' के स्थान पर 'जीवाद् विना' ऐसा पाठ मानने पर यह अर्थ होगा—'जीव = आत्मा के बिना जो वार्ता

१. प्रत्यक्षतः। २. एतन्नापि लभ्यते कुत्रचित्।
३. पुनरेवाक्षत०, पुनरेवापिकृत०। ४. सम्भावनापि या जीवाद् बिना।

सम्भावितैव। तद्गम्यतामधुना वार्तोत्सुकमतेर्देवस्य पादमूलम्। न चायं प्रत्यक्षदृष्टोप्युपरतशरीराविनाशवृत्तान्तः प्रकाशनीयः। दृष्टोस्माभिरच्छोदसरसि तिष्ठत्येतदेवावेदनीयम्। [1]यतः कारणादुपरतिः खल्ववश्यंभाविनी प्राणिनां [2]कथञ्चित्प्रत्ययमुत्पादयति। शरीराविनाशः पुनः प्राणैर्विनाकृतानां दृश्यमानोऽप्यश्रद्धेय एव। तदस्यावेदनेन सुदूरस्थितमपि गुरुजनं मरणसंशये निक्षिप्य वर्तमाने प्रयोजनमेव नास्ति। प्रत्यागतजीविते जीविते-

---

या जीवाद् विना न सम्भवति सापि सम्भावितैव' इति पाठोऽपि कुत्रचित् प्राप्यते। अस्यायं भावः—जीवाद् = आत्मनः, विना = अभावे, या सम्भावना = शरीरादि-शोभाविषयिणी कल्पना, सापि सम्भाविता दृश्यते भाविनि काले। वस्तुतस्तु अत्र प्रकाशितः पाठः, पाठान्तरं च सम्यग्रूपेण न भावमभिव्यनक्तीति चिन्त्यं बुधैः।] तत् = तस्माद्, अधुना = सम्प्रति, वार्तेत्यादिः—वार्तायाम् (= एतद्विषयकवृत्तान्ते) उत्सुका (= उत्कण्ठिता) मतिः (= बुद्धिः) यस्य तादृशस्य, देवस्य = देवाधिदेवस्य तारापीडस्य, पादमूलम् = चरणसमीपम्, गम्यताम् = व्रज्यताम्। प्रत्यक्षदृष्टः = स्वयमेवावलोकितः, अपि, अयम् = एषः, शरीरेत्यादिः—शरीरस्य (= देहस्य) अविनाशः (= क्षयाभावः, अनश्वरता) तस्य वृत्तान्तः (= उदन्तः, वार्ता), न = नैव, प्रकाशनीयः = प्रकटनीयः। अस्माभिः = सन्देशहरैः, दृष्टः = साक्षात्कृतः, अच्छोदसरसि = एतन्नामके सरोवरे, तन्निकटे इत्यर्थः, तिष्ठति = निषीदति, विद्यते, इति, एतदेव = इदमेव, न तु इतोऽधिकमिति भावः, आवेदनीयम् = सूचनीयम्। यतः = यस्मात्, कारणात्=हेतोः, प्राणिनाम् = जीवानाम्, अवश्यम्भाविनी = निश्चितरूपेण सम्भाविनी, उपरतिः=मरणम्, खलु = निश्चयेन, वाक्यालङ्कारे वा, कथञ्चित् = केनापि प्रकारेण, प्रत्ययम् = विश्वासम्, उत्पादयति = जनयति। येन केन प्रकारेण सर्वेषां मृत्युस्तु सुनिश्चित एव वर्तते इति तद्विषये सर्वेऽपि विश्वासं कुर्वन्तीति भावः। पुनः = परन्तु, कृतानाम् = गतानाम्, रहितानाम्, प्राणिनाम्, प्राणैः = असुभिः, विना = ऋते, दृश्यमानः = विलोक्यमानः, अपि, शरीराविनाशः = देहस्य क्षयाभावः, अश्रद्धेयः = अविश्वसनीयः, एव, इति सर्वजनानुभवसिद्धम्। [वस्तुतस्तु—प्राणैः = असुभिः, विनाकृतानानाम् = रहितविहितानां प्राणिनां शरीराविनाश इत्याद्यर्थः समीचीनः। विनाशब्दस्य अभावार्थे प्रयुक्तस्य समासो बोध्यः।] तत् = तस्माद्, अस्य = शरीराविनाशवृत्तान्तस्य आवेदनेन = संसूचनेन, सुदूरस्थितम् = बहुविप्रकृष्टस्थम्, अपि, गुरुजनम् = पित्रादिकम्, मरणसंशये = मृत्योः सन्देहे, निक्षिप्य = निपात्य, वर्तमाने = अधुना, प्रयोजनम् = फलम्, एव, नास्ति = न वर्तते, अस्माकमिति शेषः। प्रत्यागतजीविते—प्रत्यागतम्

करना सम्भव नहीं है वह भी भविष्य में सम्भव ही है।] इस कारण अब आप लोग [युवराज के] वृत्तान्त को जानने के लिए उत्सुक मन वाले महाराज के चरणों के मूल में जाइये। लेकिन स्वयं प्रत्यक्ष देखा गया भी [युवराज के] शरीर के अविनाश का समाचार मत बतलाइयेगा। 'हम लोगों ने देखा है, युवराज अच्छोद सरोवर [के तट] पर हैं'—इतना ही निवेदन करियेगा। इसका कारण यह है कि प्राणियों की अवश्य भाविनी मृत्यु तो जिस किसी प्रकार [लोगों के मन में] विश्वास उत्पन्न करा ही देती है। परन्तु प्राणों से ही रहित किये गये अर्थात् मरे हुए लोगों के शरीर का अविनाश (नष्ट न होना) देखा जाने पर भी विश्वास करने योग्य नहीं होता है। इस कारण इस प्रकार की बात कहने से बहुत दूर बैठे हुए भी गुरुजनों को मृत्यु के सन्देह में डाल देने का इस समय कोई भी प्रयोजन नहीं है। जब मेरे प्राणेश्वर (चन्द्रापीड) दुबारा जीवित हो जायेंगे

---

१. यतः कारणम्, कि कारणम्।   २. न कथञ्चित्।

श्वरे स्वयमेवायमत्यद्भुतभूतोर्थो [1]गुरुजनेष्वाप्रकटीभविष्यति। इत्यैवमादिष्टाश्च ते व्यज्ञापयन्—

"देवि, किं विज्ञापयामः ? द्वाभ्यामेवापरिज्ञानमस्य वस्तुनः सम्भवेदगमनेनास्मदीयेनाकथनेन वा। तदस्माकं तु हस्ते[2] द्वयमप्येतन्नास्ति। युवराजवैशम्पायनयोर्वार्तां[3] विना दुःखं तिष्ठता देवेन तारापीडेन देव्या विलासवत्यार्यशुकनासेन सम्भाव्य[4] प्रेषितानामप्रोषित-

(= पुनरागतम्) जीवितम् (= जीवनम्) यस्य तादृशे, जीवितेश्वरे = मम प्राणेश्वरे, चन्द्रापीडे, सति, स्वयम् = आत्मना, एव, अयम् = एषः, अत्युद्भुतः = अतीवाश्चर्यजनकः, अर्थः = प्रसङ्गः, गुरुजनेषु = पित्रादिषु, आप्रकटीभविष्यति = पूर्णरूपेण ज्ञातो भविष्यति, तदा ते सर्वं श्रुत्वा विश्वस्ता भविष्यन्तीति तस्या भावः। इत्येवम् = अनेन प्रकारेण, आदिष्टाः = आज्ञप्ताः ते = सन्देशहराः, व्यज्ञापयन् = निवेदितवन्तः।

सन्देशहराः किं व्यज्ञापयन्नित्याह—देवि–इत्यादिना। देवि = माननीये गन्धर्वराजपुत्रि !, किम् = अज्ञातम्, विज्ञापयामः = निवेदयामः ? अस्य = भवत्या कथितस्य, वस्तुनः = वृत्तान्तस्य, द्वाभ्याम्, एव, कारणाभ्यामिति शेषः, अपरिज्ञानम् = अबोधनम्, सम्भवेत् = सम्भाव्यते, अस्मदीयेन = सेवकवर्गस्य, अगमनेन = इतः उज्जयिनीं प्रति गमनाभावेन, वा = अथवा, अकथनेन = अभाषितेन। एतदतिरिक्तं तृतीयं किमपि कारणं न सम्भवति येन देवाय इदं ज्ञातं न भवेत्। तत् = परन्तु, अस्माकम् = सन्देशहराणाम्, हस्ते = करे, अधीने, एतत् = पूर्वोक्तम्, अगमनम्, गत्वा च अनिवेदनम्, द्वयम् = उभयम्, अपि, नास्ति = न वर्तते। तु = किन्तु, तद् = पूर्वोक्तम्, द्वयम् = अस्मदीयम् अगमनम्, गत्वा चानिवेदनम्, अपि, अस्माकम् = सन्देशहराणाम्, हस्ते = करे, अधीने न, अस्ति। किं कारणमित्याह—युवराजेत्यादिना। युवराजवैशम्पायनयोः = चन्द्रापीडवैशम्पायनयोः वार्त्ताम् = वृत्तान्तम्, विना, वार्त्ताज्ञानं विनेत्याशयः, दुःखम् = दुःखपूर्वकं यथा स्यात् तथा, तिष्ठता = निषीदता, विद्यमानेन, देवेन = महाराजाधिराजेन, तारापीडेन, देव्या = महिष्या, विलासवत्या, आर्यशुकनासेन च, सम्भाव्य = सम्यग् विचिन्त्य, प्रेषितानाम् = प्रहितानाम्, अस्माकं सर्वविधकार्यसामर्थ्यं सुष्ठु विचार्यैव वार्त्ताज्ञानार्थं प्रेषितानामिति भावः, अप्रोषितेत्यादिः—अप्रोषितम् (= न

तब यह अत्यन्त आश्चर्यजनक वृत्तान्त उन्हें अपने आप स्पष्ट ज्ञात हो जायगा।'—(कादम्बरी द्वारा) ऐसा आदेश दिये जाने पर वे निवेदन करने लगे—

"देवि, हम लोग क्या निवेदन करें ? यह बात केवल दो ही प्रकार से छिपाई जा सकती है, (१) या तो हम लोग वापस लौटकर जायें ही नहीं अथवा (२) वहाँ जाकर भी न कहें। परन्तु हम लोगों के हाथ में (अधीन) ये दोनों ही बातें नहीं है। कारण (स्पष्ट) है कि युवराज चन्द्रापीड तथा वैशम्पायन का कोई समाचार न जानने से दुःख में पड़े हुए महाराज तारापीड, महारानी विलासवती और आर्य शुकनास द्वारा भली भाँति विचार करके भेजे गये हम लोगों का [बिना

१. गुरुजने जने वा प्रकटीभविष्यति। २. हस्तात्।
३. विना वार्ताम्, वार्तया विना। ४. सम्भाव्य।

जीवितानामगमनं[1] तु दूरापेतमेव । गत्वापि दयिततमतनयवार्ताश्रवणलालसस्य राज्ञो देव्या आर्यशुकनासस्य दुःखप्लुताक्षीण्युद्वीक्ष्य मुखानि निर्विकारवदनानामस्माकमवस्थानमशक्य[2]मेव ।' इति विज्ञापिता तैः "एवमेतदि"त्युक्त्वा कादम्बरी मेघनादमवादीत्—

'मेघनाद, वेद्मि संस्तुतजनस्यैतदनुचितमिति । तथापि गुरूणां चेतःपीडामवेक्ष[3]-

---

गतम्, नष्टम्) जीवितम् (= जीवनम्) येषां तादृशानाम्, जीवितानामिति भावः, अगमनम् = तेषां समीपेऽप्रयाणम्, तु दूरापेतम् = दूरं गतम्, असम्भवम् । यदि गम्यते तर्हि का समस्येत्याह—गत्वेत्यादिना । गत्वा = उज्जयिनीं व्रजित्वा तेषां समक्षं वा यात्वा, अपि, दयितेत्यादिः—दयिततमः (= अतिशयेन प्रियः) यः तनयः (= पुत्रः, चन्द्रापीडः, वैशम्पायनश्च) तस्य वार्ता (= तत्सम्बन्धी, वृत्तान्तः) तस्य श्रवणे (= आकर्णने) लालसा (= उत्कण्ठा) यस्य तादृशस्य, राज्ञः = तारापीडस्य, देव्याः = विलासवत्या, आर्यशुकनासस्य, च, दुःखेत्यादि—दुःखेन (= तनयविषयकव्यथया) प्लुतानि (= अश्रुपूरितानि) अक्षीणि (=नेत्राणि) येषु तादृशानि, मुखानि = आस्यानि, निरीक्ष्य = विलोक्य, निर्विकार-वदनानाम् = विकृतिरहितमुखानाम्, अस्माकम् = सन्देशहराणाम्, अवस्थानम् = अवस्थितिः, अशक्यम् = असम्भवम्, एव । तत्र गत्वा तनयवृत्तान्तं ज्ञातुमुत्सुकानामनिष्टशङ्कया समुत्पन्नाश्रुपूरप्लावित-नेत्राणां तेषां मुखानामवलोकनं कृत्वाऽस्माभिर्धैर्यधारणमसम्भवम्, तेन निर्विकारभावस्य प्रश्न एव नोदेतीति भावः । इति = अनेन रूपेण, तैः = वार्त्ताहरैः, विज्ञापिता = निवेदिता, एवम् = इत्थम्, एतत् = त्वदुक्तम्, सर्वथा सत्यमिति भावः, इति उक्त्वा, कादम्बरी, मेघनादम् = सेनाध्यक्षम्, अवादीत् = अकथयत् ।

कादम्बरी मेघनादं किमवादीत्याह—मेघनाद इत्यादिना । मेघनाद, वेद्मि = सम्यग् जानामि, संस्तुतजनस्य = परिचितलोकस्य, कृते, एतत् = निर्विकारभावेनावस्थानम्, अनुचितम् = अनर्हम्, असम्भवमिति भावः । तर्हि भवत्या इदं कथमुक्तमित्याह—तथापीत्यादिना । तथापि = एवं स्थितेऽपि, गुरूणाम् = श्वशुरादीनाम्, चेतः पीडाम् = मनोव्यथाम्, अवेक्षमाणया =

सारा समाचार जाने] जीते जी वापस लौटना तो बहुत दूर की बात है । और [किसी प्रकार वापस] लौट करके अतिशय प्रिय पुत्र [चन्द्रापीड तथा वैशम्पायन] के समाचार को सुनने के लिये लालायित महाराज, महारानी तथा आर्य शुकनास के दुःख से डबडबाई आँखों वाले (उदास) चेहरों (मुखों) को देखकर [अपने] मुखों में कोई विकार लाये बिना हमलोगों का उनके सामने ठहरना असम्भव है, अर्थात् उनके रुआसे मुख देखकर हम लोग अपने आँसुओं को नहीं रोक सकते ।"—इस प्रकार से उन लोगों द्वारा निवेदन किये जाने पर "यह सच है" ऐसा कहकर कादम्बरी फिर मेघनाद से कहने लगी—

"मेघनाद, यह मैं जानती हूँ कि परिचित व्यक्ति के लिये ऐसा करना ठीक नहीं है । फिर भी मैंने गुरुजनों के मन में होने वाली पीडा की सम्भावना करके ही ऐसा कहा है । यह दूसरा

---

१. अगमनं दूरत एव ।   २. अवस्थानमनुचितमशक्यमेव ।   ३. अपेक्षमाणया ।

माणया मयैवमभिहितम्। इतरदपि दुःखमापतति[1]। कीदृशं भवति ? [2]किं पुनरिदं महावज्रपतनसदृशम् ? तदेतदपि भवतु। एभिः सहापरः कश्चिच्छ्रद्धेयवचाः प्रत्यक्षदृष्टसकलवृत्तान्तः सम्प्रत्याय व्रजतु।' इति।

एवमादिष्टस्तु मेघनादो व्यज्ञपयत्—"देवि, राजलोके तु का कथा [3]भृत्यवर्गोपि

अवलोकयन्त्या, विचिन्तयन्त्या, मया = कादम्बर्या, एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, अभिहितम् = कथितम्। इतरद् = एतस्माद्भिन्नम्, अपि, दुःखम् = कष्टम्, आपतति = उपस्थितं भवति, एकं तु कष्टं सम्मुखे वर्तते एव अपरमिदमपि निश्चितमेवेति तस्या भावः। कीदृशम् = किं प्रकारकम्, भवति = अस्ति ? किम् = इदं प्रश्ने, पुनः, इदम् = इतरद्भिन्नं दुखम्, महावज्र-पतनसदृशम् = महापवि-निपतन-तुल्यम् ? तत् = तर्हि, एतद् = द्वितीयं दुःखम्, अपि, भवतु = जायताम्।

वस्तुतस्तु अत्रत्यः पाठो भ्रष्टः प्रतिभाति "इतरदपि दुःखमापतितं कीदृशं भवति" इत्येतदेकमेव वाक्यं समीचीनम् भिन्न-भिन्न-वाक्यार्थमानार्थसङ्गतिः न भवति। चन्द्रापीडस्य मृत्युरूपं कष्टं तु सम्मुखं वर्तत एव। यदि इमं वृत्तान्तं ज्ञात्वा श्वशुरादीनामपि पुत्रशोकेन मरणं जायते तदा तु संसारे क्वापि मम गतिरेव नास्तीति कादम्बर्या आशयो बोध्यः।

एभिः = एतैः सन्देशहरैः, सह = सार्धम्, अपरः = एतद्भिन्नः, श्रद्धेयवचाः—श्रद्धेयम् (= विश्वासयोग्यम्) वचः (= वचनम्) यस्य स तादृशः, प्रत्यक्षेत्यादिः—प्रत्यक्षम् (=साक्षात्) यथा स्यात् तथा दृष्टः (= विलोकितः) सकलः (= समस्तः) वृत्तान्तः (= उदन्तः, घटनाचक्रम्) येन स तादृशः, जनः, सम्प्रत्ययाय = विश्वासजननाय, व्रजतु = गच्छतु, इतिः = कथनसमाप्तौ।

एवमिति। तु = किन्तु, एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, आदिष्टः = आज्ञप्तः, मेघनादः = सेनाध्यक्षः, व्यज्ञपयत् = निवेदितवान्—देवि = स्वामिनि, राजलोके = नृपजनानां विषये, तु, का, कथा = वार्त्ता, किं वक्तव्यमिति भावः, सकलः = सर्वः, एव, अयम् = एष पुरोवर्त्ती,

---

भी दुःख आ गया, कैसा होगा ? क्या यह महावज्र के पतन (बिजली गिरने) जैसा होगा ? तो यह भी हो जाय। [भाव यह है कि अभी तो केवल चन्द्रापीड के प्राणों के निकल जाने का एक ही दुःख था। अब यह समाचार श्वसुर आदि के पास पहुँचने पर उनकी क्या दशा होगी—यह कल्पना अतिशय कष्टकारक है। किन्तु क्या किया जाय, कहना तो पड़ेगा। अतः अब बिजली गिरने जैसा दुःख भी सहना ही होगा।] जिसने सारी घटना प्रत्यक्ष देखी है, जिसकी बातों पर विश्वास किया जा सकता है ऐसा कोई दूसरा व्यक्ति इन सन्देशहरों के साथ उन लोगों को [पुनर्जीवित होने का] विश्वास दिलाने के लिये जाय।"

इस प्रकार से आदेश दिये जाने पर मेघनाद ने फिर निवेदन किया—"राजाओं के विषय

---

१. आपतति अतः। २. अत्रत्या—वाक्ययोजना तदभिप्रायश्च संस्कृतव्याख्यायां द्रष्टव्यः।

३. भृत्यवर्गोऽपि।

सकल एवायं कन्दमूलफलाशी निश्चयं कृत्वा स्थितो यथास्माकं मध्यादेकेनापि देवपादान् विना न प्रतीपं गन्तव्यमिति। भृत्या अपि त एव ये सम्पत्तेर्विपत्तौ सविशेषं सेवन्ते। समुन्नम्यमानाः सुतरामवनमन्ति। आलप्यमाना न समानालापाः सञ्जायन्ते। स्तूयमाना नोत्सिच्यन्ते। क्षिप्यमाणा नापरागं गृह्णन्ति। उच्यमाना न प्रतीपं भाषन्ते। पृष्टा हितप्रियं विज्ञापयन्ति। अनादिष्टाः कुर्वन्ति। कृत्वा न जल्पन्ति। पराक्रम्य न विकत्थन्ते। विकथ्य-

---

भृत्यवर्गः = सेवकसमूहः अपि, कन्द-मूल-फलाशी = कन्द-मूल-फल-मात्रभक्षणशीलः सन्, निश्चयम् = निर्णयम्, कृत्वा = विधाय, स्थितः = कृतावस्थितिः वर्तते। कीदृशं निश्चयं कृत्वेत्याह—यथा, अस्माकम् = भृत्यवर्गाणाम्, मध्यात्, एकेन = एकसङ्ख्यकेन, अपि, देवपादान् = चन्द्रापीडचरणान्, विना = ऋते, न, प्रतीपम् = विलोमम्, अमुं विहाय विपरीतदिशामिति भावः, गन्तव्यम् = प्रयातव्यम्। तेषामेतादृशनिर्णये को हेतुरित्याह—भृत्याः = सेवकाः, अपि, ते, एव, भवन्ति, ये = भृत्याः, सम्पत्तेः = सम्पन्नतायाः अपेक्षया, विपत्तौ = विपत्तिकाले, सविशेषम् = विशेषरूपेण, पूर्वतोऽपि अधिकम्, सेवन्ते = परिचरन्ति। सम्पन्नताकाले सुखेन हृष्टाः सेवन्ते विपन्नताकाले स्वसुखमनपेक्ष्य स्वामिनं ये सेवन्ते त एव वास्तविकरूपेण भृत्याः कथ्यन्ते इति तद्भावः। समुन्नम्यमानाः=समुन्नतिं प्राप्यमाणाः, अपि, सुतराम्, अवनमन्ति = स्वामिनः समक्षं विनता एव तिष्ठन्तीति भावः, न गर्वेणोन्नम्य मुखं तिष्ठन्ति। आलप्यमानाः = सम्भाष्यमाणाः, अपि, समानालापाः—समानः (= स्वस्वामिसदृशः) आलापः (= भाषणम्) येषां ते तादृशाः, न, सञ्जायन्ते = भवन्ति, स्वामिना सह तत्समानरूपेण न वार्तां कुर्वन्तीति भावः, स्तूयमानाः = स्वामिना प्रशंसित क्रियमाणाः, अपि, न, उत्सिच्यन्ते = दर्पयुक्ताः जायन्ते। क्षिप्यमाणाः = दूरं क्रियमाणाः, तिरस्क्रियमाणाः; अपि, अपरागम् = विरागम्, न, गृह्णन्ति = अङ्गीकुर्वन्ति। उच्यमानाः = भाष्यमाणा, क्रोधादिनापीति शेषः, अपि, प्रतीपम् = विपरीतम्, न = नैव, भाषन्ते = वदन्ति। पृष्टाः = पृच्छाविषयीकृताः, अनुयुक्ताः, हितप्रियम् = हितकारकं मनोहरं च, विज्ञापयन्ति = निवेदयन्ति। अनादिष्टाः = अनाज्ञप्ताः, अपि, कुर्वन्ति = विदधति, अपेक्षितकर्माणीति शेषः। कृत्वा = विधाय, च, न, जल्पन्ति = भाषन्ते, सर्वत्रेति शेषः। पराक्रम्य = पराक्रमं विधाय, न, विकत्थन्ते = आत्मश्लाघां कुर्वन्ति। विकथ्य-

---

में तो क्या कहा जाय,यह सारा सेवक-समूह भी कन्द मूल फल मात्र खाता हुआ यह निश्चय करके बैठा, रुका हुआ है कि स्वामी के चरणों के बिना अकेले हम लोगों में से एक भी वापस पीछे नहीं लौटेगा। और सेवक भी तो वे ही होते हैं जो सम्पत्ति की अपेक्षा विपत्ति में विशेष सेवा करते हैं। उन्नति प्रदान किये जाने पर भी और विनम्र होते जाते हैं। वार्तालाप किये जाने पर भी समान रूप में (बराबरी से) बातचीत नहीं करते हैं। [अपने स्तर का सदैव ध्यान रखते हैं।] प्रशंसा किये जाने पर भी जो नहीं फूलते हैं (गर्वान्वित होते हैं)। फटकारे जाने पर भी [सेवा से] नाराज (या विरक्त) नहीं होते हैं। [कुछ अप्रिय] कहे जाने पर भी उल्टा या विरुद्ध नहीं बोलते हैं। पूँछे जाने पर हितकारक और प्रिय ही निवेदित करते हैं। बिना आदेश के ही [आवश्यकता तथा अपेक्षित] कार्य करते हैं। [बड़ा काम] करके भी उसकी चर्चा नहीं करते हैं। पराक्रम करके

माना अपि लज्जामुद्वहन्ति । महाहवेष्वग्रतो ध्वजभूता इव लक्ष्यन्ते । दानकाले पलायमानाः पृष्ठतो निलीयन्ते । धनात् स्नेहं बहु मन्यन्ते । जीवितात् पुरो मरणमभिवाञ्छन्ति । गृहादपि स्वामिपादमूले सुखं तिष्ठन्ति । येषां च तृष्णा चरणपरिचर्यायाम्, असन्तोषो हृदयाराधने, व्यसनमाननावलोकने, वाचालता गुणग्रहणे, कार्पण्यमपरित्यागे भर्तुः । ये च विद्यमानेपि स्वात्मन्यस्वाधीनसकलेन्द्रियवृत्तयः, पश्यन्तोप्यन्धा इव, शृण्वन्तोपि बधिरा इव, वाग्मिनोपि मूका इव, जानन्तोपि जडा इव, अनुपहतकरचरणा

मानाः = प्रशंसां क्रियमाणाः, अपि, लज्जाम् = त्रपाम्, उद्वहन्ति = धारयन्ति । महाहवेषु = महायुद्धेषु, अग्रतः = पुरोभागे, ध्वजभूताः = पताकाभूताः, इव, लक्ष्यन्ते = दृश्यन्ते । दानकाले = विशिष्टद्रव्यादिवितरणसमये, पलायमानाः = पलायनं कुर्वन्तः, पृष्ठतः = पश्चाद्देशे, निलीयन्ते = निह्नुताः जायन्ते । धनात् = वित्तादितः, स्नेहम् = अनुरागम्, बहु = अधिकम्, मन्यन्ते = स्वीकुर्वन्ति । जीविताद् = प्राणधारणात्, पुरः = अग्रे तदपेक्षयेति भावः, मरणम् = मृत्युम्, अभिवाञ्छति=इच्छन्ति, स्वस्वाम्यर्थमिति शेषः । गृहाद् = निजभवनाद्, अपि, स्वामिपादमूले = भर्तृचरणसमीपे, सुखम् = सुखपूर्वकम्, तिष्ठन्ति = उपविशन्ति ।

साम्प्रतं परिसङ्ख्यालङ्कारेण भृत्यानां वैशिष्ट्यं प्रतिपादयन्नाह—येषां चेत्यादिना । येषाम् = भृत्यानाम्, तृष्णा = पिपासा, सर्वोत्कृष्टेच्छा, भर्तुः = स्वामिनः [इदं सर्वत्र वाक्येषु योज्यम्] चरणपरिचर्यायाम् = पादयोः सेवायाम् [एव, न तु धनादिद्रव्येष्विति भावः]। असन्तोषः = अतृप्तता, हृदयाराधने = स्वामिनश्चित्तस्य प्रसादने [एव, नु तु स्वीयपरिवारिकजनानां हृदयाराधने]। व्यसनम् = आसक्तिः, आननावलोकने = स्वामिनो मुखस्य दर्शने [एव, न, रमण्यादीनामिति भावः]। वाचालता =वाग्मिता, बहुभाषिता, गुणग्रहणे = परेषां शौर्यादि-गुणानामादाने [एव, न तु परेषां निन्दादाविति भावः] कार्पण्यम् = कृपणता, भर्तुः = स्वामिनः, अपरित्यागे = अविमोचने [एव, न तु धनादाविति भावः]।

पुनरपि भृत्यानामेव वैशिष्ट्यं प्रतिपादयति—ये चेत्यादिना । ये = भृत्याः, च, निजात्मनि, विद्यमाने = अस्तित्वे, अपि, अस्वाधीनेत्यादिः—अस्वाधीना (= न स्ववशगता, पराधीना) सकलेन्द्रियाणाम् (= समस्तहृषीकाणाम्) वृत्तिः (= वर्तनम्) येषां ते तादृशाः ['वर्तन्ते' इति वक्ष्यमाणं क्रियापदमत्र सर्वत्र योजनीयम्], ते जीवन्तोऽपि॰ स्वेच्छया न किमपि कर्तुमिच्छन्ति, स्वामिन इच्छैव तान् कर्मणि प्रेरयतीत्यादिकं तात्पर्यं बोध्यम् । पश्यन्तः = अवलोकयन्तः, नेत्राभ्यामिति शेष। अन्धाः = दृष्टिहीनाः, इव, वर्तन्ते । शृण्वन्तः = आकर्णयन्तः, कर्णाभ्यामिति

भी आत्मप्रशंसा नहीं करते हैं । प्रशंसा किये जाने पर भी लज्जा का अनुभव करते हैं । बड़े बड़े युद्धों में ध्वजाओं के समान आगे-आगे दिखाई देते हैं । [किन्तु स्वामी द्वारा किसी वस्तु या उपहार] दान के समय भाग कर पीछे [पंक्ति में] छिप जाते है । धन की अपेक्षा स्नेह को अधिक मानते हैं । अपने जीवन की रक्षा की अपेक्षा स्वामी के लिये पहले मरना चाहते हैं । घर की भी अपेक्षा स्वामी के पैरों के मूल (समीप) में अधिक सुख से बैठते हैं । और जिन सेवकों की तृष्णा अपने स्वामी के चरणों की सेवा में ही होती है (धनादि में नहीं) । असन्तोष =अतृप्ति [स्वामी के] हृदय की आराधना में ही होता है [न कि प्रेयसी आदि के] । व्यसन [स्वामी के] मुख को देखने में ही होता है [न कि मदिरापान और द्यूतादि क्रीडा में] । वाचालता [अधिक बातें करना] गुणों के

अपि पङ्गव इव, क्लीबा इवाकिञ्चित्कराः, स्वात्मना स्वामिचिन्तादर्शे प्रतिबिम्बवद्वर्तन्ते। [1]तत्सर्वमेवायमेवं स्थितो भृत्यलोकः। देवस्य च स्थाने देवी वर्तते। तदाज्ञापितं कृतमवधारयतु देवी।' इत्युक्त्वा मेघनादस्त्वरितकनामानं कुमारबालसेवकमाहूय तैः सह व्यसर्जयत्।

शेषः, अपि, बधिराः = एडाः, इव वर्तन्ते, ['स्यादेडे बधिरः' इत्यमरः २।८।४८] वाग्मिनः = वाक्शक्तियुक्ताः, बहुभाषिणः, अपि, मूकाः = अवाचः, इव, वर्तन्ते। जानन्तः = विदन्तः, सर्वमिति शेषः, अपि, जडाः = ज्ञानहीनाः, मूर्खाः, इव, वर्तन्ते। अनुपहतेत्यादिः—अनुपहतौ (= अविनष्टौ, अक्षतौ) करौ (= हस्तौ) चरणौ (= पादौ) च येषां तादृशाः सन्तः, अपि, पङ्गवः = श्रोणाः, इव, वर्तन्ते। क्लीबाः = षण्ढाः, इव, अकिञ्चित्कराः = किमपि कर्तुमशक्ताः, स्वात्मना = स्वयमेव, स्वामि-चिन्तादर्शे = भर्तुः चिन्तारूपे दर्पणे, प्रतिबिम्बवत् = प्रतिच्छाया, इव, वर्तन्ते = स्थिताः भवन्ति। [वस्तुतस्तु—'स्वामिचिन्तादर्शे' इत्यत्र 'स्वामिचित्तादर्शे' इत्येव पाठः समीचीनतरः। चित्तस्य आदर्शरूपत्वं सुप्रसिद्धम्। स्वामिनः चित्ते यत्किमपि भवति तदनुष्ठातुं सर्वदा सन्नद्धास्तिष्ठन्तीति भावः।] स्ववक्तव्यमुपसंहरति मेघनादः—तत्सर्वमित्यादिना। तत् = पूर्वोक्तात् हेतोः, 'सर्वम् = सकलः, एव, अयम् = एषः, भृत्यलोकः = सेवकसमूहः, एवम् = अनेन पूर्वोक्तरूपेण, स्थितः = आसीनः, विद्यमानः अस्ति। देवस्य = स्वामिनश्चन्द्रापीडस्य, च, स्थाने, देवी = स्वामिनी भवती, वर्तते, देवस्योपरतत्वादिति शेषः। तत् = तस्मात्, देवी, आज्ञापितम् = आदिष्टम्, कृतम् = विहितम्, अवधारयतु = जानातु, भवत्या यथाऽऽदिश्यते अस्माभिस्तथैव परिपालयिष्यते इति तद्भावः। इति = इत्थम्, उक्त्वा = निवेद्य, मेघनादः = सेनाध्यक्षः, त्वतरितक-नामानम् = त्वरितक इति नाम (= अभिधेयम्) यस्य तं तादृशम्, कुमार-बालसेवकम्—कुमारस्य (= युवराजस्य) बालश्चासौ सेवकः (= परिचारकः) तम्, अथवा बाल्यावस्यात आरभ्य अद्यावधि सदैव सेवायां तत्परं त्वरितकनामानं सेवकमित्यर्थः आहूय = आकार्य, तैः = सन्देशहरैः, सह = सार्धम्, व्यसर्जयत् = प्राहिणोत्, प्रेषितवान्।

ग्रहण में ही होती है [न कि किसी दूसरे की निन्दा करने आदि में]। और कृपणता अपने स्वामी को न छोड़ने में ही होती है [न कि धनादि के परित्याग में]। जो अपनी आत्मा अर्थात् जीवन के रहते हुए भी सभी इन्द्रियों के व्यापारों, कार्यों में पराधीन (स्वामी के अधीन) वृत्ति वाले होते हैं अर्थात् अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं करते हैं। देखते हुए भी अन्धे जैसे, सुनते हुए भी बहिरे जैसे, वाग्मी (अच्छे बोलने वाले) होते हुए भी गूंगे जैसे, (सभी कुछ) जानते हुए भी जड़ = मूर्ख जैसे, ठीक-ठाक (दोष रहित) हाथ-पैर वाले होते हुए भी पङ्गु = अंगभंग जैसे तथा नपुंसकों के समान कुछ भी न कर सकने वाले होते हुए स्वामी के चिन्तारूपी दर्पण में या चित्तरूपी दर्पण में स्वयं ही प्रतिबिम्ब = परछाईं के समान रहते हैं। यही कारण है जिससे ये सभी नौकर लोग वहीं डटे हुए हैं अर्थात् अब युवराज को छोड़कर कोई भी नहीं जा सकता। और (इस समय) स्वामी चन्द्रापीड के स्थान पर देवी (कादम्बरी) आप विद्यमान हैं। अतः आप जो भी आज्ञा देंगी आप उसे पूरा किया हुआ ही समझें।"—ऐसा कहकर मेघनाद ने कुमार के बालसेवक [लड़का जो सेवा करता है अथवा बाल्यावस्था से जो कुमार की सेवा कर रहा है] जिसका 'त्वरितक' ऐसा नाम है, उसे बुलाकर उन सन्देशहर सेवकों के साथ भेज दिया।

---

१. १. सर्वम्—इति क्लीबे पाठश्चिन्त्यः, भृत्यलोकस्य विशेषणतया पुंस्त्वस्यैवोचितत्वात्।

अथ सुबहुदिवसापगमे वार्तां विनोत्ताम्यन्ती चन्द्रापीडस्यैवागमनायोपयाचितं[1] कर्तुमवन्तीनाम-नगरीदेवतानामवन्तिमातॄणा[2]मायतनं निर्गता विलासवती 'देवि, दिष्ट्या वर्धसे। प्रसन्नास्तेऽवन्तिमातरः, परागता 'युवराजवार्ताहराः'—इति सहसैव सम्भ्रमप्रधाविताद्[3] [4]परिजनादुपश्रुत्यानन्दबाष्पजललुलितया जलार्द्रेन्दीवरदलस्रजेव विक्षेपदीर्घया दृष्ट्यार्चयन्तीव चिरं दृष्ट्वा ककुभो मृगाङ्गनेव परिभ्रष्टबालपोता [5]फूत्कृत्य प्राकृतेवार्ता—

अथेति। अथ = एतनन्तरम्, सुबहुदिवसापगमे=अत्यधिकसमयातिक्रान्ते, सति, वार्ताम्= चन्द्रापीडसम्बन्धिवृत्तान्तम्, विना=न ज्ञात्वेति भावः, उत्ताम्यन्ती = विह्वलीभवन्ती, चन्द्रापीडस्य = स्वपुत्रस्य, एव, उपयाचितम् = अभीष्टकार्यसिद्धेरनन्तरं देवताभ्यः प्रदेयवस्तुसंकल्पादिकम्, कर्तुम् = विधातुम्, अवन्तीनाम-नगरीदेवतानाम् = अवन्तीत्याख्य-नगरीदेवीनाम्, तन्नगर्यधिष्ठातृदेवीनाम्, अवन्तिमातॄणाम् = एवन्नामकमातॄणाम्, आयतनम् = आलयम्, मन्दिरम्, प्रति, निर्गता = प्रस्थिता, विलासवती = महिषी चन्द्रापीडजननी, ['उपश्रुत्य······पृच्छन्ती एव अद्राक्षी दि'ति दूरे वक्ष्यमाणेऽन्वयो बोध्यः]—देवि = स्वामिनि, दिष्ट्या = भाग्येन, वर्धसे = वृद्धिं प्राप्नोषि, तव भाग्यवृद्धिर्जायते इति भावः। अवन्तिमातरः = एतन्नगर्यधिष्ठातृदेव्यः, ते = तव सम्बन्धे, प्रसन्नाः = प्रसादयुक्ताः, वर्तन्ते। युवराजवार्ताहराः =चन्द्रापीडस्य वृत्तान्तं ज्ञातुं प्रेषिताः सन्देशहराः, परागताः = प्रतिनिवृत्ताः, उज्जयिनीमितिशेषः, इति = एवम्, सहसैव = अकस्मादेव, सम्भ्रमप्रधाविताद् = सत्वरं यथा स्यात् तथा धावनपरात्, परिजनात् = सेवकात्, उपश्रुत्य = आकर्ण्य, आनन्देत्यादिः—आनन्देन आनन्दस्य वा यत् बाष्पजलम् (= अश्रुसलिलम्) तेन तस्मिन् वा लुलितया (= ब्रुडितया), जलार्द्रेत्यादिः—जलेन आर्द्रा (= क्लिन्ना) या (= माला) तया, इव, विक्षेपदीर्घया = सम्भ्रमविस्तारितया, दृष्ट्या = नेत्रेण, ककुभः = दिशाः, अर्चयन्ती = पूजयन्ती, इव, चिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, दृष्ट्वा = विलोक्य, परिभ्रष्टेत्यादिः—परिभ्रष्टः (= समूहाच्च्युतः) बालः (= शिशुः, सरलः मूर्खः) पोतः (= शावकः) यस्याः सा तादृशीः मृगाङ्गना = हरिणी, इव, फूत्कृत्य = फू-फू-इत्याकारकध्वनिं कृत्वा, प्राकृता = सामान्यस्त्री, इव, आर्ता = व्यथिता, सती—

बहुत दिन बीत जाने पर भी [चन्द्रापीड के] किसी समाचार [की जानकारी] के न होने से व्याकुल (बेचैन) होती हुई, चन्द्रापीड के ही वापस लौट आने के लिये उपयाचित करने के लिये (मनौती मानने के लिये) अवन्ती नामक नगरी की देवियों अवन्तिमाताओं के मन्दिर में पहुँची हुई विलासवती महारानी से—"महारानी! आप बड़ी भाग्यशालिनी हैं। अवन्ती मातायें आपके ऊपर प्रसन्न हो गईं है। युवराज चन्द्रापीड का समाचार लेने गये दूत वापस लौट आये हैं।" इस प्रकार से अचानक दौड़कर आये हुए सेवक [के मुख] से सुनकर आनन्द के आँसुओं से भरी हुई, (अतः) जल से गीली नीलकमल के पत्रों की माला जैसी (तथा) [उत्सुकता या हड़बड़ाहट में] फैलने से लम्बी-लम्बी आँखों से पूजा करती हुई सी दिशाओं को (अर्थात् चारो ओर) देर तक देख कर जिसका बच्चा (समूह से) बिछुड़ गया है ऐसी हिरनी के समान फू-फू करके प्राकृत (गंवार)

१. 'चन्द्रापीडो मे समागच्छेत्तर्हि एवमुपहारान् प्रदद्याम्' इति—प्रार्थना—'दीयते यत्तु देवेभ्यो मनोराज्यस्य सिद्धये। उपयाचितकं दिव्यं दोहदं तद् विदुर्बुधाः॥' इति जटाधरः।

२. ब्राह्मी, माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा। माहेन्द्री चैव वाराही चमुण्डा सप्त मातरः।' इति सप्तमातृकाः प्रसिद्धाः। ३. ससंभ्रमप्रधाविताद्। ४. परिचारिकाजनात्। ५. पूत्कृत्य।

'केनेदममृतं मे वाक्छलाद् वृष्टम् ? कस्यानुकम्पास्मिञ्जने जाता ? केन दृष्टाः ? कियद्दूरे वर्तन्ते[1] ? किं वा तैः[2] कथितम् ? कुशलं मे वत्सस्य ? इति पृच्छन्त्येवाद्राक्षीद्—इतस्ततो [3]यथादर्शनं संघशः प्रधावितेन नरपतिप्रतिबद्धेनाप्रतिबद्धेन चोज्जयिनीनिवासिना जनेन—'[4]आगतो युवराजः ? कियद्दूरे भवद्भिः परित्यक्तः ? दिवसेष्वेतेषु क्व वर्तते ? क्व वा भवद्भिर्यात्वा[5] दृष्टः ? क्व वातिकष्टस्तेनातिवाहितो वाहनमात्रसाधनेन धारा-

केन = अज्ञातेन जनेन, वाक्छलात् = वचनकैतवात्, मे = मह्यम्, ममोपरीत्यर्थः, इदम्, अमृतम् = पीयूषम्, वृष्टम् = भृशं निपातितम् ? कस्य = अज्ञातस्य, अस्मिन् जने = मयि, अनुकम्पा = अनुग्रहः, जाता = उत्पन्ना ? केन, दृष्टाः = विलोकिताः, 'सन्देशहराः' इति योज्यम्, कियद् दूरे = कियति विप्रकृष्टे, वर्तन्ते = सन्ति, ते ? वा = अथवा, तैः = सन्देशहरैः, किम् = अज्ञातम्, कथितम् = उक्तम् ? मे = विलासवत्याः महिष्याः, वत्सस्य = सुतस्य, कुशलम् = क्षेमम्, वर्तते ? इति = इत्थम्, पृच्छन्ती = प्रश्नान् कुर्वन्ती, जिज्ञासां प्रकटयन्तीति भावः, एव, अद्राक्षीत् = विलोकितवती अस्याः दर्शन-क्रियायाः दूरस्थे 'दूरत एव त्वरितकसमेतान् तान् लेखहारकान्' इति कर्मणि अन्वयः ।

साम्प्रतं विस्तरेण तात्कालिकं दृश्यमुपस्थापयति—इतस्तत इत्यादिना । इतस्ततः = यत्र तत्र सर्वत्र, यथादर्शनम् = दर्शनमनतिक्रम्य, येन क्रमेण यो यः पश्यति तेन क्रमेणेति भावः, संघशः = समूहशः, संघं बद्ध्वा बद्ध्वेति भावः, प्रधावितेन = अतित्वरितगत्या प्रचलितेन, नरपति-प्रतिबद्धेन = राज्ञा सम्बद्धेन कर्मचारिवर्गेण, अप्रतिबद्धेन = राज्ञा असम्बद्धेन च सामान्यजनेन, उज्जयिनी-निवासिना = अवन्तीनिवसनशालिना, जनेन = लोकेन ['एतस्य दूरस्थे 'प्रतिपदं पृच्छ्यमानान्'''' '''लेखहारकानि'ति कर्मण्यन्वयो बोध्यः ।]—युवराजः = चन्द्रापीडः, आगतः = सम्प्राप्तः, उज्जयिनीमिति शेषः ? भवद्भिः = युष्माभिः, कियद्दूरे = कियति विप्रकृष्टे, परित्यक्तः = मुक्तः, तं विहाय भवन्तोऽत्राग्रे समायाता इति भावः । एतेषु = एतत्परिमाणेषु दिवसेषु = दिनेषु, क्व = कुत्र अज्ञातस्थाने, वर्तते = विद्यते ? अवर्ततेति भावः, वर्तमानसामीप्ये भूते लट् । भवद्भिः, क्व, यात्वा = व्रजित्वा, दृष्टः = अवलोकितः ? वा = अथवा, वाहनेत्यादिः—वाहनम् (= अश्वः) एव वाहनमात्रम्, साधनम् (= यात्रायां सहायकम्) यस्य तादृशेन तेन, अतिकष्टः = अतिक्लेशकारकः ['अतिकष्टैः = अतिक्लेशैः' इत्यपि

स्त्री के समान आर्त्त (व्याकुल) बनी हुई (विलासवती)—"किसने वाणी के बहाने से मेरे लिये अमृत की वर्षा की है ? किस (महानुभाव) की इस व्यक्ति (मुझ) पर अनुकम्पा हो गई है ? किसने [उन सन्देशहर दूतों को] देखा है ? वे कितनी दूर हैं ? अथवा उन लोगों ने क्या कहा है ? मेरे बेटे का सब कुशल तो है ?—"इस प्रकार से पूछ ही रही थी कि देखा कि—इधर उधर जैसे-जैसे देखा उसी प्रकार मण्डली बनाकर दौड़ते हुये उज्जयिनी-निवासी लोग—जो कि राजा से सम्बद्ध अर्थात् राजकर्मचारी अथवा असम्बद्ध = सामान्य नागरिक जनों द्वारा यह कि "युवराज वापस लौट आये हैं ? आप लोगों ने कितनी दूरी पर उन्हें (पीछे) छोड़ा है ? इतने दिनों तक कहाँ रहे ? अथवा आप लोगों ने जाकर कहाँ उन्हें देखा ? अथवा वाहनमात्र साधन के

१. वर्तते ।　　　२. तेन अनेन ।　　　३. यथादर्शनं सर्वशः ।

४. अत्रानेकजनानां विभिन्नाः प्रश्नाः उपवर्णिता इति विचार्यैवार्थो विधेयो येन पुरुषवचनलिङ्गानामसङ्गतिः न स्यादिति ।　　　५. गत्वा ।

धरागमः ? तुरगपृष्ठगतस्य मन्ये वहत एवास्यापक्रान्तः ? त्वरितक एतद् वेत्ति, किमनेन वेदितेनापि ? एतत्कथयतु यदर्थमयं क्लेशः कृतो युवराजेन स दृष्टो वैशम्पायनः प्रत्यानीतो वा ? मिलितोस्य पत्रलेखासहितो मेघनादः ? '[1]दत्तः कथं कश्चिदपि सन्देशो देववर्धनेन" ? मे मित्रमेवासावद्यारभ्य'। 'राभसिकतयैव विनाशं बलाद् गतस्य बालधर्मणो वत्सस्य बिभेम्येव वार्तां पृच्छन्नपि[2], जीवत्यसावस्य वाजी यो युवराजेन प्रसादी-

पाठः] धाराधरागमः = जलदकालः, वर्षर्तुः अतिवाहितः = यापितः ? मन्ये = सम्भावयामि, तुरग-पृष्ठ-गतः = अश्वपृष्ठसमारूढः, वहतः = तीव्रं चलतः, एव, अस्य = युवराजस्य, अपक्रान्तः = व्यतीतः धाराधरागम इति शेषः। त्वरितकः = एतन्नामकः चन्द्रापीडस्य बालभृत्यः, एतत् = इदं सर्वम्, वेत्ति = जानाति । अनेन = पूर्वोक्तेन, वेदितेन = ज्ञापितेन अपि, किम् ? एतत् = इदम्, कथयतु = वदतु, युवराजेन = चन्द्रापीडेन, यदर्थम् = यन्निमित्तम्, यस्मै-वैशम्पायनायेति भावः, अयम् = एषः, क्लेशः = कष्टम्, कृतः = सोढः, सः, वैशम्पायनः = एतन्नामा सखा, दृष्टः = विलोकितः, वा = अथवा, प्रत्यानीतः = प्रत्यावर्त्य नगर्यामानीतः ? पत्रलेखासहितः = एतन्नाम्न्या चन्द्रापीड-परिचारिकया समेतः, मेघनादः = सेनाध्यक्षः, अस्य = चन्द्रापीडस्य, मिलितः = संगतः। देववर्धनेन = एतन्नामकेन, कथम् = किम्, कश्चिदपि, सन्देशः = वाचिकं वृत्तम्, दत्तम् = समर्पितम् ? अद्य, आरभ्य = अस्मात् दिवसाद् आदाय, असौ = देववर्धनः, मे = वक्तुः जनविशेषस्य, मित्रम् = सखा, एव, जातमिति शेषः। राभसिकतया = रभसा (= सहसा, अविमृश्येति भावः) प्रवर्तते इति राभसिकः तस्य भावस्तया एव, बलात् = हठात्, विनाशम् = क्षयम्, मृत्युम्, गतस्य = प्रयातस्य, बालधर्मणः = बालः (= बालोचितः) धर्मः (= स्वभावः) यस्य तादृशस्य, शिशुप्रकृतिकस्य, यद्वा—एतन्नामकस्य, वत्सस्य = सुतस्य, वार्त्ताम् = वृत्तान्तम्, पृच्छन् = जिज्ञासाविषयीकुर्वन्, अपि, विभेमि = भयमनुभवामि, अस्य = बालधर्मणः, कृते, यः, वाजी = अश्वः, युवराजेन = चन्द्रापीडेन, प्रसादीकृतः = उपहृतः, अनुग्रहेण प्रदत्तः, असौ = एव, वाजी, जीवति = प्राणधारणं करोति ?

अत्रेदं ध्येयम्—अत्रत्ये पाठेऽस्पष्टता प्रतीयते। बालधर्मा-इति कस्यचित् नाम अथवा 'वत्सस्य' विशेषणम्-इति न स्पष्टम्। पूर्वं 'देववर्धन' इत्यस्य उत्तरे 'पृथुवर्मण' उल्लेखेन मध्येऽपि नामविशेषस्येवोचितत्वात्। एवञ्च 'बालधर्मा' तु मृतः, किन्तु तस्य वत्सः जीवति न वेति पृष्टुं न मे सामर्थ्यमिति भावः। 'जीवत्यसावस्य वाजी यो युवराजेन प्रसादीकृतः ?' अस्मिन् वाक्येऽपि

साथ अर्थात् अकेले घोड़े के साथ-साथ उन्होंने इतनी कष्टकारक बरसात कैसे बिताई ? ऐसा लगता है कि घोड़े की पीठ पर बैठे हुये चलते-चलते ही इसकी बरसात बीती होगी ? त्वरितक इसे जानता होगा। अथवा इसके जान लेने से भी क्या लाभ ? पहले यह बताओ कि जिस (वैशम्पायन) के लिये युवराज ने यह (इतना) क्लेश सहा, वह वैशम्पायन दिखाई दिया, अथवा उसे वापस लौटा लाया ? अथवा पत्रलेखा के साथ इस (युवराज) को मेघनाद (सेनाध्यक्ष) मिला ? देववर्धन ने कोई किसी प्रकार का सन्देश दिया है ? वह आज से मेरा मित्र बन गया है।' 'शीघ्रता के कारण (बिना सोंचे विचारे) हठपूर्वक विनाश को प्राप्त हो जाने वाले लड़कपन के (बचकाने) स्वभाव वाले बालधर्मा के वत्स (बेटा) का समाचार पूछते हुये भी डर रहा हूँ, वह घोड़ा अभी जीवित है जो युवराज ने प्रसन्न होकर दिया था। [अथवा 'बालधर्मा नामक वत्स जो जिद करके विनाश के मुख

१. न दत्तः।

२. प्रष्टुमपि।

कृतः[1] ? 'प्रसीदत[2] सादिनां प्रथमस्य पृथुवर्मणो[3] मातुलस्य मे कथयत वार्ताम्। उत्प्रेक्षामहे महानश्ववारैरनुभूतः क्लेश इति'। 'कुशलं महाश्वपतेरश्वसेनस्य ? श्वशुरोऽसावस्माकम्।' 'विस्मयः कृतोस्मत्पित्रापि [4]यच्चिह्नकमपि भवतां हस्ते न किञ्चित्प्रहितम्। आहितभर एवासौ युवराजभवने दृष्टो भवद्भिर्भ्राता मे भरतसेनः ? 'सपरिजनस्य सेनापतेर्भद्रं' भद्रसेनस्य ? सेवाव्यसनी सूनुर्मे [5]कुमारवर्मा तत्र[6] लगति।' 'बलाधिकृतस्य[7] का

नार्थसंगतिः। 'वाजीयो' इत्यस्य स्थाने केषुचित् हस्तलेखेषु 'वाजीवो' इत्यपि पाठः,अयमेव चोचितः। एवञ्च—'जीवति असौ ? अस्य वाऽऽजीवो युवराजेन प्रसादीकृतः ?' इत्यस्यायमभिप्रायः—असौ = बालधर्मणः वत्सः, जीवति = प्राणिति ? वा = अथवा, युवराजेन = चन्द्रापीडेन, अस्य = बालधर्मणः वत्सस्य, कृते, आजीवः = जीवनोपायः, वेतनादिकम्, प्रसादीकृतः = अनुग्रहरूपेण प्रदत्तः ? न वेति प्रश्नकर्तुराशयः। अन्नत्या संगतिश्चिन्तनीया एव विद्वद्भिः। प्रसीदत = प्रसन्ना भवत, सादिनाम् = अश्वारोहिणाम्, प्रथमस्य = प्रमुखस्य, श्रेष्ठाश्वरोहिण इत्यर्थः, मे = प्रश्नकर्तुः, मातुलस्य = मातुर्भ्रातुः, पृथुवर्मणः = एतन्नामकस्य, वार्ताम् = वृत्तान्तम्, कथयत = सूचयत। उत्प्रेक्षामहे = संभावनां कुर्महे, अश्ववारैः = अश्वारोहिसैनिकैः, महान् = विपुलः, क्लेशः = कष्टम्, अनुभूतः = सोढः, भुक्तः। महाश्वपतेः = अश्वसेनाधिपतेः (महान् चासौ अश्वपतिस्तस्य), अश्वसेनस्य = एतन्नामकस्य, कुशलम् = भद्रम् ? असौ = अश्वसेनः, अस्माकम्, श्वशुरः = पत्न्याः पिता, वर्तते। अस्मत्पित्रा = अस्मज्जनकेन, अपि, विस्मयः = आश्चर्यम्, कृतः = अकारि, यत् तेन, भवताम् = युष्माकम्, हस्ते = करे, माध्यमेन, किञ्चित् = किमपि, चिह्नकम् = अभिज्ञानकम्, पत्रादिकं वा, न प्रहितम् = प्रेषितम्। आहितभरः—आहितः (= स्थापितः) भरः (= भारः) यस्मिन् तादृशः, एव, मे, भ्राता = सहोदरः, भरतसेनः, भवद्भिः, युवराजभवने = चन्द्रापीडसदने, दृष्टः = विलोकितः ? सपरिजनस्य = परिजनसहितस्य, भद्रसेनस्य = एतन्नामकस्य, सेनापतेः = बलाध्यक्षस्य, भद्रम् = कल्याणम् ? मे = मम प्रश्नकर्तुः, सूनुः = सुतः, कुमारवर्मा=एतन्नामा, तत्र = सेनादौ, लगति = कार्यं कुरुते। बलाधिकृतस्य=सेनाधिपतेः, अवन्तिसेनस्य = एतन्नामकस्य,

में अर्थात् युद्ध में गया था उसका समाचार पूछते हुये भी डरता हूँ। क्या वह अभी जीवित है अथवा युवराज ने उसे कोई जीविका प्रदान करने का अनुग्रह किया है।' यह अर्थ संस्कृत व्याख्या में संशोधित पाठभेद के आधार पर है।] 'घुड़सवारों में अग्रणी मेरे मामा पृथुवर्मा का समाचार कृपा करके मुझको बतलाइये।' हमारा तो अनुमान है कि घुड़सवारों ने बहुत अधिक कष्ट उठाया होगा।' 'महान् अश्वपति अश्वसेन का कुशल तो है ? वे मेरे ससुर हैं।' 'मेरे पिता जी ने भी आश्चर्य कर डाला जो कि आपके हाथ से कोई चिह्न (पत्र या उपहार) भी नहीं भेजा।' 'अपनी जिम्मेदारी (उत्तर-दायित्व) को सम्भाले (निभाते) हुये ही मेरे भाई भरतसेन को आप लोगों ने युवराज के भवन में देखा है ?' 'सेनापति भद्रसेन का अपने परिजनों सहित कुशल तो है ?' 'सेवा करने का व्यसनी मेरा पुत्र वहाँ (काम पर) लगा हुआ है।' सेनापति अवन्तिसेन का क्या समाचार है ? सेना के आगे-आगे

१. अस्य वाक्यस्य तत्त्वं संस्कृतव्याख्यायां द्रष्टव्यम्। २. प्रसीदतास्य। ३. पृथुवत्मनः।
४. पित्रा स्वचिह्नकम्। ५. कलापवर्मा।
६. तत्र चलति, तत्रावगलति, तत्र चलगति। ७. बलाधिकृतस्तस्य।

वार्तावन्तिसेनस्य ? रोषितस्तेनासीन्नासीरार्थं युवराजः'। 'राजकुले कः प्रसादवित्तो वर्धमानो[1] मान्यते वा'? 'केन वा किं लब्धमेतावद्भिर्दिवसैः ?' [2]आजीवनिका बहवः खल्वभिनवसेवका जाताः', 'यातु तावत्सर्वमेवान्यद्, येन दृष्टः स कथयतु सर्वसेनसूनोर्वीरसेनस्य वार्ताम्, पितर्युपरते प्रथममेव स प्रविष्टो यात्राम्'। मात्रास्य दुःखान्तरितप्रत्यग्रपतिमरणशोकादशनक्रियैव परित्यक्ता। न विद्म एवं कथं सा जीवति ?'—इत्येतानि

का, वार्ता = वृत्तान्तः ? तेन = अवन्तिसेनेन, नासीरार्थम् = सेनाग्रभागे प्रयातुम्, युवराजः = चन्द्रापीडः, रोषितः = रोषं प्रापितः। वा = अथवा, राजकुले = नृपभवने, प्रसादवित्तः—प्रसादः (= युवराजस्य प्रसन्नता, अनुग्रहः) एव वित्तम् (= धनम्) यस्य स तादृशः कृपाभाजनमिति भावः, अतएव, वर्धमानः = उन्नतिं प्राप्नुवन्, कः = अज्ञातो जनः, मान्यते = सम्मानितो भवति ? वा = अथवा, एतावद्भिः = इयत्सङ्ख्यकैः, दिवसैः = दिनैः, केन = जनेन, किम् = अज्ञातम्, लब्धम् = प्राप्तम् ? आजीवनिकाः = जीवन-निर्वाह-मात्रवेतनाः, बहवः = असंख्याः, अभिनवाः = नूतनाः, सेवकाः = कर्मकराः, जाताः = भूताः। [आजीवनम् = आजीवः = आजीविका, आजीवनम् अस्ति येषां ते—इति मतुबर्थे 'अत इतिठनौ' इति ठनि इकादेशे—आजीवनिका इति रूपम्] तावत् = आदौ, सर्वमेव = सकलमेव, अन्यत् = अपरम्, वस्तु, यातु = गच्छतु दूरे इति शेषः, येन = जनेन, सः = वीरसेनः, दृष्टः = विलोकितः, स जनः, सर्वसेनसूनोः = सर्वसेनसुतस्य, वीरसेनस्य = एतन्नामकस्य वार्ताम् = वृत्तान्तम्, कथयतु = वदतु, सूचयतु, पितरि = सर्वसेने जनके, उपरते = मृते सति, सः = वीरसेनः, प्रथमम् = प्रथमवारम्, एव, यात्राम् = प्रयाणम्, प्रविष्टः = सम्मिलितः, प्राथमिकीं यात्रां कृतवानिति भावः। अस्य = वीरसेनस्य, मात्रा = जनन्या, दुःखेत्यादिः—दुःखम् (= पुत्रस्य प्रथमयात्रायां प्रस्थानजन्यं कष्टम्) तेन अन्तरितः (= व्यवहितः) प्रत्यग्रः (= सद्यो जातः) यः पतिमरणशोकः (= भर्तृमृत्युजन्या शुक्) तस्मात् हेतोः, अशनक्रियां = भोजनव्यापारः, एव, परित्यक्ता = मुक्ता। न, विद्मः = जानीमः, सा = माता, एवम् = भोजनपरित्यागेन, कथम् = केन प्रकारेण जीवति = प्राणिति ? इति, एतानि = पूर्वोक्तानि, अन्यानि = इतराणि

जाने के लिये उसने युवराज को क्रुद्ध (नाराज)कर दिया था।' 'राजभवन में राजा की कृपा से धनी बना हुआ कौन है जिसकी वृद्धि (उन्नति) और सम्मान हो रहा है अर्थात् कौन युवराज का कृपापात्र और महत्त्वपूर्ण पद पर है ?' इतने दिनों में किसने क्या प्राप्त किया ?' 'अब तो बहुत से नये-नये राजसेवक नौकरी करने में लग गये हैं।' 'अच्छा ये सब दूसरी बातें छोड़ो, जिसने देखा हो वह सर्वसेन के पुत्र वीरसेन का समाचार बतलावे, पिता की मृत्यु हो जाने पर वह सबसे पहली बार (विजय) यात्रा में सम्मिलित हुआ है, इसकी माता ने तो शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुए अपने पति के दुःख को (पुत्र के यात्राजन्य) दुःख से भुला कर [पुत्रवियोग में] खाना-पीना ही छोड़ दिया है। पता नहीं, इस तरह वह कैसे जिन्दा होगी ?'—इस प्रकार के तथा दूसरे प्रकार के प्रश्न पूछे

१. वर्तमाने, वर्धनो। २. राजनिकाः।

चान्यानि च प्रतिपदं पृच्छयमानामप्यदत्तवचसो[1] नासाग्रस्थितमन्युगर्भदृष्टीनाविष्टानिव, अध्वश्रमनिःसहाङ्गानपि पदाकृष्टिसम्भावितोद्यमायासितया गत्या गच्छतश्च, अतिमलिनपटच्चराच्छादितान्,असंस्कारमलिनकायान्, [2]अनेकधैवोद्बद्धाध्वधूलिपरुषमूर्धजान्, ध्वजानिवाध्वक्लेशस्य, [3]'आश्रयानिव श्रमस्य, पदन्यासानिव दौर्मनस्यस्य, आवासानिव प्रवासस्य,

च, वचनानीति शेषः, प्रतिपदम् = पदे-पदे, पृच्छयमानान् = पृच्छाविषयीकृतान्, अनुयुक्तान्, अपि, अदत्तवचसः—अदत्तम् (= असमर्पितम्) वचः (= वचनम्) यैस्तादृशान्, उत्तरमददतः, मौनीभूतानिति भावः, नासाग्रेत्यादिः—नासाग्रे (= नासिकायाः प्रान्तभागे) स्थितः (= लग्नः, विद्यमानः) मन्युः (= शोकः) गर्भे (= मध्ये) यस्याः सा तादृशी दृष्टिः (= नेत्रम्) येषां तान् तादृशान्, नासिकाग्रभागावस्थित-दुःखपूर्णनयनान्, आविष्टान् = भूतादिसमाक्रान्तान्, इव। अध्वेत्यादिः—अध्वनः अध्वनि वा (= मार्गस्य मार्गे वा) यः श्रमः (= क्लमः) तेन निःसहानि (= सोढुमशक्तानि) अङ्गानि (= अवयवाः) येषां तान् तादृशान्, सतः, अपि, पदाकृष्टीत्यादिः—पदानाम् (= चरणानाम्) आकृष्टिः (= आकर्षणम्) तेन सम्भावितः (= कल्पितः, अनुमितः) य उद्यमः (= उद्योगः) तेन आयासितया (= आयासं प्रापतया), गत्या, गच्छतः = चलतः, अतिमलिनेत्यादिः—अतिमलिनानि (= अतिशयेन मालिन्यमुपगतानि) यानि पटच्चराणि (=जीर्णशीर्णवस्त्राणि) तैः आच्छादितान् = आवृतान्, ['पटच्चरं जीर्णवस्त्रं समौनक्तककर्पटौ' इत्यमरः २।६।११५]। असंस्कारेत्यादिः—असंस्कारेण (= मज्जनादि-शरीर-संस्काराभावेन) मलिनाः (= मलीमसाः) कायाः (= देहाः) येषां तान् तादृशान्। अनेकधैव=असकृत्, उद्बद्धेत्यादिः—उद्बद्धाः (= प्राबल्येन संलग्नाः) अध्वनः (= मार्गस्य) धूलयः (= पांसवः) ताभिः परुषाः (= कठोराः) मूर्धजाः (= केशाः) येषां तान् तादृशान्। अध्वक्लेशस्य = मार्गजन्य, कष्टस्य, ध्वजान् = चिह्नानि, इव। श्रमस्य = क्लमस्य, आश्रयान् = अवलम्बनानि, इव। दौर्मनस्यस्य = अप्रसन्नचित्तस्य, पदन्यासान् = चरणाक्षेपान्, इव। प्रवासस्य = विदेशगमनस्य, आवासान् =

जाते हुये भी किन्तु इनका उत्तर न देते हुये, शोक से भरी आंखों को (अपनी-अपनी) नासिकाओं के अग्रभाग पर गड़ाये हुये,भूतादि से आविष्ट (ग्रसित) हुये जैसे, तथा [लम्बे] मार्ग [पर चलने] से होने वाली थकान के कारण ढीले ढाले (अशक्त) अङ्गों वाले होते हुये भी पैरों के घसीटने के कारण प्रतीत (अनुमानित) प्रयत्न द्वारा कष्टयुक्त गति से जाते हुये, अत्यन्त मैले कुचैले वस्त्रों से ढके अर्थात् पहने हुये, स्नानादि न कर सकने के कारण मलिन शरीर वाले, अनेक (भिन्न-भिन्न) प्रकार से ऊपर बांधे गये तथा रास्ते में (उड़ती हुई) धूलि के कारण कड़े (रूखे) केशों वाले, मार्ग के क्लेश के ध्वज = प्रतीक जैसे, थकान के आश्रय (अवलम्बन) जैसे, दौर्मनस्य = विषाद के पदन्यास (पैर रखने, आगमन) जैसे, प्रवास (परदेशगमन) के आवास (निवासभूमि) जैसे,

१. अदत्तप्रतिवचसः। २. अनेकधैवोद्बद्ध०। ३. आश्रमानिव, श्रमस्यावासानिव।

सन्दर्भानिव, सर्वदुःखानां दूरत[1] एव त्वरितकसमेतांस्ताँल्लेखहारकान् आलोक्य च तस्मिन्नेव मातृगृहाङ्गणे स्थित्वा तेषामाह्वानायादिदेश।

अनन्तरं चातर्किताापतितदर्शनोत्पादित-द्विगुणदुःखावेगान्मुषितानिवोन्मुक्तानिवेन्द्रियैर्दारुमयानिव शून्यशरीरान्निर्जीवितानिवोपसर्पतः पुरस्तात्पतन्तीव बाष्पान्धा साध्वसस्खलितचरण-कमला[2] कतिचिद्गत्वा पदानि [3]गद्गदतरमुच्चैरकृतप्रणामानेवावादीत्—

आलयान्, इव। सर्वदुःखानाम् = सकलक्लेशानाम्, सन्दर्भान् = पुञ्जान्, इव, त्वरितकसमेतान् = एतन्नामकेन चन्द्रापीडस्य बालसेवकेन सहितान्, तान्, लेखहरान् = सन्देशहरान् दूतान्, दूरतः = विप्रकृष्टाद्, एव अद्राक्षीत् = अपश्यदिति अन्वयस्तूक्त एव। तान् = सन्देशहरान्, आलोक्य = दृष्ट्वा, तस्मिन् = पूर्ववर्णिते, एव, मातृगृहाङ्गणे = मातॄणां मन्दिरस्य प्राङ्गणे, एव, स्थित्वा = अवस्थाय, तेषाम् = सन्देशहराणाम्, आह्वानाय = आकारणाय, आदिदेश = आज्ञापयामास, महाराज्ञी विलासवतीति योज्यम्।

महाराज्ञ्या आदेशेनाह्वाने कृते सति दूतानां तत्रागमनं वीक्ष्य सा किमकरोदिति प्रतिपादयन्नाह—अनन्तरमित्यादिना। अनन्तरम्=आह्वानस्य पश्चात्, च, अतर्कितेत्यादिः—अतर्कितम् (=अविचारितम्) यथा स्यात् तथा आपतितम् (= सञ्जातम्) यद् दर्शनम् (= महाराज्ञ्या अवलोकनम्) तेन उत्पादितः (= जनितः) द्विगुणः (= द्विगुणितः) दुःखस्य (= मानसिकव्यथायाः) आवेगः (= रयः) येषां तान् तादृशान्। अत एव, मुषितान् = चौरैः लुण्ठितान्, इव, इन्द्रियैः=श्रवणादिकरणैः, मुक्तान् = परित्यक्तान्, इव, अतएव, दारुमयान् = काष्ठनिर्मितान्, इव, शून्यशरीरान् = शून्यम् (= रिक्तम्) शरीरम् (= देहः) येषां तान् तादृशान्, शरीरसत्त्वेऽपि बल-चैतन्यविहीनानिति भावः, अत एव, निर्जीवितान् = प्राणहीनान् मृतान्, इव, उपसर्पतः = समीपमागच्छतः, सन्देशहरान्, प्रति, विलासवती, बाष्पान्धा = अश्रुप्रवाहेण दर्शनशक्तिहीना, साध्वसेत्यादिः-साध्वसेन (= भयेन व्यग्रतया वा) स्खलितौ (= स्खलनं प्राप्तौ, प्रकम्पितौ) चरणौ (=पादौ) कमले (= पङ्कजे) इव यस्याः सा तादृशी, अत एव, पुरस्तात् = अग्रे, पतन्ती = स्रंसन्ती, इव, कतिचित् = अत्यल्पानि, पदानि = चरणविक्षेपान्, गत्वा = व्रजित्वा, अकृतेत्यादिः—अकृतः (= न विहितः) प्रणामः (= प्रणतिः) यैः तान् तादृशान्, एव, सन्देशहरान्, गद्गदतरम् = अव्यक्ततरं यथा स्यात् तथा, उच्चैः = तारस्वरेन, अवादीत् = भाषितवती। सा विलासवती

सभी दुःखों के सन्दर्भ (समुदाय या उपक्रम) जैसे, त्वरितक नामक बालसेवक के साथ (आते हुये) उन सभी सन्देशहरों को (विलासवती ने) दूर से ही देखा। उन्हें देख कर उसी मातृमन्दिर के आँगन में रुक कर उनको बुलाने के लिये आदेश दे दिया!

इसके बाद अचानक ही हो जाने वाले [महारानी के] दर्शनों के कारण उमड़ पड़े दुगुने दुःख के आवेग वाले, ठगे हुये-से, इन्द्रियों द्वारा छोड़ दिये गये-से अर्थात् निश्चेष्ट से, लकड़ी से बनाये गये जैसे, शून्य शरीर वाले, निर्जीव (प्राणरहित) से आगे आते हुये [अभी] प्रणाम तक न कर पाते हुये भी (अर्थात् उनके प्रणाम तक न करने पर भी) उन लोगों से-गिरती हुई, आंसुओं से

१. अदूरतः। २. चरणानि। ३. सगद्गदस्वरम्।

"भद्राः, कथयताशु वत्सस्य मे वार्तामात्रम्[1]। इदं त्वन्यथैव किमपि कथयति मे हृदयम्[2]। अप्रत्ययमेवाश्रयते। वत्सो दृष्टो वा न भवद्भिः[3]?" इत्येवं पृष्टास्तु ते सहसागतबाष्पवेगमवनितलनिवेशितोत्तमाङ्गाः प्रणामापदेशेनोत्सृज्य[4] कृच्छ्रादिवाभिमुखमुन्नमितवदना व्यज्ञापयन्—

"देवि, दृष्टोऽस्माभिरच्छोदसरस्तीरे युवराजः। शेषमेष त्वरितको निवेदयिष्यति।"-इत्यभिवदत एव तानुद्बाष्पमुखी प्रत्युवाच—"किमपरमयं[5] तपस्वी निवेदयिष्यति?

किमवादीदिति प्रस्तौति—भद्रा इत्यादिना। भद्राः = महानुभावाः, मे = मम विलासवत्याः, वत्सस्य = पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य, वार्तामात्रम् = वृत्तान्तमात्रं न तु ततोऽधिकं किञ्चित्, आशु = क्षिप्रम्, कथयत = वदत, सूचयत। मम, इदम् = एतत्, हृदयम् = चित्तम्, मनः, तु, किमपि= अवर्णनीयम्, अन्यथा = अन्येन प्रकारेण, विपरीतरूपेणेति भावः कथयति = वदति, सूचयति। अप्रत्ययम् = अविश्वासम्, एव, आश्रयते = अवलम्बते, मम वत्सस्य अत्रागमनं प्रतीति शेषः, भवद्भिः = युष्माभिः, वत्सः = पुत्रः चन्द्रापीडः, दृष्टः = साक्षादवलोकितः, वा = अथवा, न, दृष्ट इति भावः। इति, एवम् = अनेन रूपेण, पृष्टाः = अनुयुक्ताः, ते = सन्देशहराः, सहसा = सद्यः=अकस्मात्, आगतबाष्पवेगम् = विनिःसृताश्रुरयम्, अवनितलेत्यादिः—अवनितले (= भूतले) निवेशितानि (=स्थापितानि, विहितानि) उत्तमाङ्गानि (=मूर्धानः) यैस्तादृशाः सन्तः, प्रणामापदेशेन= प्रणति-व्याजेन, उत्सृज्य = परित्यज्य, [नेत्रेषु आगतान् अश्रुसमूहान् प्रणामव्याजेन भूतले निपात्येति भावः।] कृच्छ्रात् = कष्टाद्, इव, अभिमुखम्=सम्मुखम्, उन्नमितवदनाः—उन्नमितम् (=उत्थापितम्) वदनम् (= आननम्) यैस्ते तादृशाः सन्तः, व्यज्ञापयन् = निवेदितवन्त, सन्देशहरा इति।

देवि इति। देवि = स्वामिनि!, अस्माभिः = सन्देशहरैः, अच्छोदसरस्तीरे = अच्छोदनामकसरोवरतटे, युवराजः = चन्द्रापीडः, दृष्टः = विलोकितः। शेषम् = एतस्मादतिरिक्तम्, एषः = अयम्, त्वरितकः = एतन्नामा, चन्द्रापीडस्य बालसेवकः, निवेदयिष्यति = सूचयिष्यति इति = इत्थम्, अभिवदतः = कथयतः, एव, तान् = सन्देशहरान् दूतान्, उद्बाष्पमुखी = उद् (= ऊर्ध्वम्) बाष्पः (= अश्रु) यस्मिन् तादृशम् आननम् (= मुखम्) यस्याः सा, विलासवती, प्रत्युवाच = प्रत्युक्तवती। अयम् = एषः, तपस्वी = वराकः त्वरितकः, अपरम् = भिन्नम्, किम्, निवेदयिष्यति = कथयिष्यति? न किमपीति भावः। कथं विना कथनेनैव

अन्धी बनी हुई, घबड़ाहट के कारण लड़खड़ाते पैरों वाली (महारानी वसुमती) कुछ ही पग चल कर टूटे-फूटे (गद्गद) अक्षरों में जोर से पूछने लगी—'सज्जनों! मेरे पुत्र का केवल समाचार ही शीघ्र बताओ। क्योंकि मेरा यह हृदय तो कुछ अन्यथा ही कह रहा है अर्थात् अनिष्ट की आशंका कर रहा है। इसे तो [कुशलता का] विश्वास ही नहीं हो रहा है। आप लोगों ने मेरा बेटा देखा है अथवा नहीं?'—इस प्रकार से पूंछे गये उन लोगों ने अचानक निकल पड़े आंसुओं के वेग को, प्रणाम करने के बहाने से जमीन पर मस्तकों को टिके हुए, छोड़कर (गिरा कर), बड़े ही कष्ट से उनके सामने अपने मुख उठाते हुये निवेदन किया—

"महारानी जी! युवराज को हम लोगों ने अच्छोद सरोवर के तट पर देखा है शेष यह त्वरितक बतलायेगा।' ऐसा कहते ही उनसे आंसुओं से भरे मुखवाली महारानी कहने लगी—'यह बेचारा अब और क्या बतलायेगा? अर्थात् इसे कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि

---

१. वार्ताम्।　　२. कथमपि करोति मे हृदयम्।
३. म्रियते मम वत्सो दृष्टो वा भवद्भिः।　　४. उपसृत्य, उपसृत्य।　　५. परतरम्।

दूरतः [1]प्रभृत्यपसृतप्रहर्षेणैवोपसर्पणेन, प्रतिलेखमालिकाशून्यैः शिरोभिः, आविषण्णदीनै-राननैः, प्रयत्नसंरक्षिताश्रुमोक्षदुःखिताभ्यां लोचनाभ्याम् [2]सम्मुखसमक्षमधारणेन च दृष्टे-र्यदावेदितव्यं तद्भवद्भिरेवावेदितम्। हा वत्स जगदेकचन्द्र चन्द्रापीड, चन्द्रानन, चन्द्र-शीतलप्रकृते, चन्द्राभिरामगुण लोचनानन्दभूत, किं भूतं ते येन नागतोसि[3] ? तात चन्द्रापीड ! पीडिता ब्रवीमि न कोपादुपालभमाना। न युक्तमेतत्तव, 'अम्ब न परिलम्बं मनागपि

भवत्या सर्वं ज्ञातमित्याह—दूरत इत्यादिना। दूरतः = विप्रकृष्टात्, प्रभृति = आदाय, अपसृत-प्रहर्षेण —अपसृतः (= दूरीभूतः) प्रहर्षः (= प्रकृष्टानन्दः) यस्मात् तादृशेन, उपसर्पणेन = मम समीपमागमनेन, एव, प्रतिलेखेत्यादि—प्रतिलेखानाम् (= प्रत्युत्तरे प्रेषितपत्राणाम्) माला एव मालिका (= स्रक्) तया शून्यैः (= हीनैः), शिरोभिः = मस्तकैः। [प्राचीनकाले सम्मानितजनानां महत्त्वपूर्णानि प्रत्युत्तरे प्रेषितानि पत्रादीनि सन्देशहरैर्मालेव शिरोभिः सन्धार्य प्राप्तव्यस्थानेषु नीयन्ते स्म। अत्र च तादृशप्रतिलेखमलायाः शिरस्यभावात् प्रत्युत्तराभावः स्वयमेव प्रकटीभूत इति तस्याः भावः।] आविषण्ण-दीनैः = विषादपूर्णैः दैन्ययुक्तैश्च, आननैः = मुखैः। प्रयत्नेत्यादिः—प्रयत्नेन (= महता प्रयासेन) संरक्षितः (= अवरुद्धः) यः अश्रूणाम् (= नेत्रसलिलानाम्) मोक्षः (= निपातः, निःसारणम्) तेन दुःखिताभ्याम् (= क्लेशिता-भ्याम्) नेत्राभ्याम्। दृष्टेः = नेत्रस्य, च, सम्मुख-समक्षम् = मम विलासवत्याः आननस्य पुरतः, अधारणेन = अस्थापनेन, अकरणेनेति भावः, एतैर्हेतुभिः, यद् = अज्ञातम्, आवेदितव्यम् = निवेदनीयम्, तद्, भवद्भिः = युष्माभिः सन्देशहरैः, एव, न तु अन्यैः कैश्चिदिति भावः, आवेदितम् = सम्यक् रूपेण सूचितम्। इदानीं विलासवत्याः शोकं विस्तरेण वर्णयति—हा वत्स इत्यादिना। हा = इदं शोकातिरेके, वत्स = पुत्र !, जगदेक-चन्द्र ! = जगतः (= संसारस्य) एकः (= अद्वितीयः, मत्कृतेऽनुपमेयः) चन्द्र (= इन्दो !), चन्द्रानन = चन्द्र इव आननम् (= आस्यम्) यस्य तत्सम्बुद्धौ रूपम्, चन्द्र-शीतल-प्रकृते !—चन्द्रवत् शीतला (= शीता, शिशिरा) प्रकृतिः (= स्वभावः) यस्य तत्सम्बुद्धौ। चन्द्राभिरामगुण !—चन्द्रवत् अभिरामाः (= मनोहराः) गुणाः (= वैशिष्ट्यानि) यस्य तत्सम्बुद्धौ, लोचनानन्दभूतः—लोचनानाम् (= नेत्राणाम्) आनन्दभूतः (= प्रमोदरूपः) तत्सम्बुद्धौ। हे चन्द्रापीड ! = एतन्नामन् !, ते = तव, किम् = अज्ञातम्, भूतम् = जातम्, येन = कारणेन, न, गतः = आयातः, असि ? तात ! = प्रिय वत्स, चन्द्रापीड !, पीडिता = सञ्जातपीडा, दुःखिता, ब्रवीमि = वदामि, कोपाद् = रोषात्, क्रोधाद्वा, उपालभमाना = उपालम्भं कुर्वाणा, क्रोशन्ती, न = नैव, ब्रवीमीति शेषः। 'अम्ब ! हे मातः ! मनाग् = ईषद्, अपि, परिलम्बम् = विलम्बम्, न, करोमि =

दूर से ही प्रसन्नतारहित (उदास) होकर मेरे समीप आने से, उत्तरमाला से रहित मस्तकों से अर्थात् माथे पर युवराज का प्रत्युत्तर सन्देश न बांधने से, विषादयुक्त और दीन मुखों से, बड़े प्रयत्न से रोके गये आंसुओं के निकलने से दुःखी हो गईं आखों सें और मेरे मुख के सामने दृष्टि धारण न कर सकने से अर्थात् ऊपर आंखें उठा कर मेरी ओर न देख सकने के कारण—आप लोगों ने ही वह सब बता दिया जो इसे कहना था। हाय बेटा, संसार के अकेले चन्द्रमा चन्द्रापीड, चन्द्रमा के समान मुख वाले, चन्द्रमा के समान शीतल स्वभाव वाले, चन्द्रमा के समान सुन्दर गुणों वाले, [सभी को] आंखों के आनन्दभूत ! बेटा तुम्हें क्या हो गया जिससे नहीं आये हो ? बेटा चन्द्रापीड ! मैं पीड़ित होकर ही ऐसा कह रही हूँ न कि क्रोध से उलाहना दे रही हूँ। 'माँ ! मैं जरा भी विलम्ब नहीं करूँगा।'

---

१. अकृत, अनुद्गत। २. सम्मुखसमवधारणेन। ३. आयासि, आयातोऽसि।

करोमि', (उत्तरार्धं पृ० २१९) इति तथा मे पुरः प्रतिज्ञायान्यत्र क्वाप्यवस्थातुम्। वत्स गच्छत एव ते मयास्य हतहृदयस्य शङ्कयैव ज्ञातं—दुष्करं मे वत्सस्य पुनर्मुखावलोकनमिति। बलाद्गतोसि। किं करोमि? को वात्र दोषो वत्सस्य? मन्दभाग्याया ममैवैतान्यपुण्यानां विलसितानि। 'भवन्त्यपुण्यवत्योपि लोके न पुनर्मया सदृशी पापकारिणी, यस्यास्त्वमेक एवमकाण्ड एवाच्छिद्य[2] क्वापि नीतोसि। विप्रलब्धास्मि दग्धवेधसा। वत्स! सुदूरस्यापि[3] पादयोः पतामि ते। निवर्तस्वैकवारम्। अम्बेत्यालपतस्ते

करिष्यामि' (उत्तरार्द्धे पृ० २१९) इति=एवं प्रकारेण, मे = स्वजनन्याः, पुरः=समक्षम्, तथा = तेन प्रकारेण, प्रतिज्ञाय = प्रतिज्ञां विधाय, क्वापि = अज्ञाते, अन्यत्र = भिन्ने स्थाने, ते = तव चन्द्रापीडस्य, अवस्थातुम् = अवस्थितिं कर्तुम्, एतत् = इदम्, न, युक्तम् = समीचीनम्। त्वं तु कदापि मम समक्षमेवमसत्यं नैवोक्तवानसि तर्हि अधुना इदं किमाचरितवानिति भावः। वत्स! = पुत्र, ते = तव, चन्द्रापीडस्य, गच्छतः = प्रचलतः, एव, मया = तव जनन्या विलासवत्या, अस्य = मदीयस्य, हतहृदयस्य = हतचित्तस्य, शङ्कया = आरेकया, एव, ज्ञातम् = बुद्धम्, यत् मे = मम, वत्सस्य = सुतस्य, पुनः = भूयः, मुखावलोकनम् = आननदर्शनम्, दुष्करम् = दुर्लभम्, इति = ज्ञाप्यबोधने। बलाद् = हठात्, गतः = प्रयातः, असि। किम् = अज्ञातम्, करोमि = विदधामि? वा = अथवा, अत्र = अस्मिन् सन्दर्भे, वत्सस्य = पुत्रस्य, कः, दोषः = अपराधः? न कोऽपीति भावः। मन्दभाग्यायाः—मन्दम् (=तुच्छम्, हतम्) भाग्यम् (=भागधेयम्) यस्याः तादृश्याः, मम = विलासवत्याः, एव, न तु अन्यस्याः कस्याश्चिदिति भावः, अपुण्यानाम्=पापानाम्, एतानि = इमानि, विलसितानि = विचेष्टितानि, फलितानि। लोके=संसारे, अपुण्यवत्यः = पुण्यहीनाः, अपि, नार्यः, भवन्ति = जयन्ते, (भवन्तु = सन्तु, वा) पुनः = परन्तु, मया = विलासवत्या, सदृशी = तुल्या, पापकारिणी = दुष्कृतविधायिनी, न, भवतीति भावः। कथमित्याहेति उत्तरयति—यस्याः = पापकारिण्याः जनन्याः, त्वम् = भवान्, एकः= अद्वितीयः, एव, एवम् = अनेन रूपेण, अकाण्डे = अप्रस्तावे, अनुचिते समये, एव, आच्छिद्य = बलपूर्वकं गृहीत्वा, क्वापि = अज्ञातस्थाने, नीतः = प्रापितः, असि। दग्धवेधसा = हतविधात्रा, विप्रलब्धा = वञ्चिता, अस्मि। हे वत्स! सुदूरस्य = अतिविप्रकृष्टे स्थितस्य, अपि, ते = तव चन्द्रापीडस्य, पादयोः = चरणयोः, पतामि = प्रणतिं करोमि। एकवारम्=सकृदपि, निवर्तस्व =

(उत्तरार्ध पृ० २१९)—इस प्रकार से मेरे आगे प्रतिज्ञा करके तुम्हारा यह किसी दूसरी जगह रुक जाना ठीक नहीं है। बेटा, तुम्हारे जाते हुये ही इस हृत (मृत, अभागे) हृदय की शंका से मुझे मालूम हो गया था कि अब मुझे दुबारा पुत्र के मुख का दर्शन दुष्कर (बहुत कठिनाई से होने वाला) है। हठ करके गये हो। मैं क्या करूँ? अथवा इसमें बच्चे का क्या दोष है? ये सब तो मुझ अभागिन के पापों का खेल = फल है। लोक में अपुण्यशालिनी (अभागिन) होती हैं किन्तु मुझ जैसी पापकारिणी नहीं होती हैं जिसके तुम अकेले पुत्र को ही इस प्रकार असमय में अचानक छीन कर कहीं ले जाया गया है। जले (नीच) विधाता द्वारा ठगी गई हूँ। बेटा, बहुत दूरी पर स्थित भी तुम्हारे पैरों पर गिर रही हूँ, तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। एक बार वापस लौट आओ।

१. अपुण्यवत्योऽपि भवन्तु,न पुनर्मया सदृशी' इत्युचितः पाठः। २. अवच्छिद्य। ३. सुदूरं गतस्यापि।

वदनमालोकयितुमुत्कण्ठितं मे हृदयम्। जात दुर्लभक न जानाम्येव किमाजन्मनः प्रभृति शैशवं ते स्मृत्वात्मानमनुशोचामि, उत यौवनाभोगकारिणीं[1] वर्तमानां [2]रूपशोभाम्। आहोस्विदवष्टम्भधीरामुत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्यागामिनीं प्रभुताम्'—इत्येवं विलपन्तीं मामवलोक्य हृदयस्थितो मैवं कृथाश्चेतसि पुत्र—यथा बिनापि मया जीवत्येव विलासवती। जात! त्वया विना जीवन्त्यापि [3]पितुरेवं ते कथं मया वदनं दर्शित(व्य)म्। न वेद्मि किमपि।

पश्चात् आगच्छ। अम्ब = हे मातः!, इति = अनेन रूपेण, आलपतः = आलापं कुर्वतः, प्रेम्णा वदतः, ते = तव चन्द्रापीडस्य, वदनम् = मुखम्, अवलोकयितुम् = द्रष्टुम्, मे = विलासवत्याः, हृदयम् = चित्तम्, उत्कण्ठितम् = उत्सुकम्, व्याकुलं वर्तते इति भावः। हे जात = पुत्र, दुर्लभक! = दुष्प्राप! अतिशयकष्टेन पुण्येन च लब्धुं शक्य इति भावः, न, जानामि = अवगच्छामि, एव, किम्, आजन्मनः = जन्मकालाद्, प्रभृति = आरभ्य, [आ-इत्यनेनैव अवध्यर्थप्रतीतौ 'प्रभृति' इत्यस्य प्रयोगः उक्तिदीर्घमात्रार्थमिति अनर्थकं वेति बोध्यम्।] ते = तव चन्द्रापीडस्य, शैशवम् = बालत्वम्, स्मृत्वा = स्मरणं कृत्वा, आत्मानम् = स्वाम्, अनुशोचामि = चिन्तां करोमि, आत्मनि शोकमनुभवामीति भावः, उत = अथवा, यौवनेत्यादिः—यौवनस्य (= तारुण्यस्य) आभोगम् (= विस्तारम्) करोति इत्येवं शीलाम्, युवावस्थाविस्तारकारणीभूताम्, रूपशोभाम् = सौन्दर्यच्छटाम्, "स्मृत्वात्मानमनुशोचामीति भावः। आहोस्वित् = अथवा, अवष्टम्भधीराम् = अवष्टम्भः (=स्तम्भनम्, दृढनिश्चयवत्त्वम्) तेन धीराम् (= धैर्यशालिनीम् स्थिराम्) आगामिनीम्= भाविनीम्, प्रभुताम् = स्वामिताम्, उत्प्रेक्ष्य-उत्प्रेक्ष्य = विचार्य-विचार्य, आत्मानमनुशोचामीति भावः। इति, एवम् = अनेन, रूपेण, विलपन्तीम् = विलापं कुर्वतीम्, माम् = स्वजननीम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा, हृदयस्थितः = मम चेतसि कृतावस्थानः, बहिरविद्यमानत्वेऽपीति भावः, त्वम्, पुत्र! =वत्स, एवम् = वक्ष्यमाणरूपेण, मा = नैव, कृथाः = कार्षीः, न विचारयेति भावः— यथा = यत्, मया = चन्द्रापीडेन, विना = ऋते, अपि, विलासवती = तव जननी, जीवति= प्राणिति, एव, न तु मृतेति भावः। जात! = हे वत्स!, त्वया = भवता चन्द्रापीडेन, विना= ऋते, जीवन्त्या = प्राणधारणं कुर्वन्त्या, अपि, मया = तव जनन्या, ते = तव पितुः, एवम् = अनेन प्रकारेण, एकाकिन्या, वदनम् = स्वमुखम्, कथम् = केन प्रकारेण, दर्शितम् = दर्शनीयम्, दर्शितव्यमित्युचितः पाठः। किमपि, न, वेद्मि = जानामि। ते = तव, चन्द्रापीडस्य, आकृतेः=

'माँ, माँ'—इस प्रकार से बोलते हुये तुम्हारा मुख देखने के लिये मेरा हृदय उतावला हो रहा है। मेरे दुर्लभ बेटे! मैं नहीं समझ पा रही हूँ कि तुम्हारे जन्मकाल से लेकर बाल्यकाल तक के कामों को याद करके शोक करूँ, रोऊँ या यौवन का विस्तार (निखार) करने वाली इस वर्तमान रूपशोभा को [याद करके रोऊँ] ? अथवा दृढ़ता (दृढ़ निश्चय) से अडिग बनी आगे आने वाली तुम्हारी प्रभुता (राजा बनने की अवस्था) को सोंच सोंच कर रोऊँ'—इस प्रकार से विलाप करती हुई मुझे देख कर मेरे हृदय में स्थित बेटा तुम अपने मन में ऐसा मत करना, सोचना कि मेरे (चन्द्रापीड के) बिना भी विलासवती जीवित है। बेटा! तुम्हारे बिना (अकेली) जीवित रहती हुई भी मैं तुम्हारे पिता को अपना मुख कैसे दिखा सकती हूँ? मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ

१. ...हारिणीम्। २. वर्तमानरूप०, वर्तमानस्वरूप०। ३. पितुरेव।

प्रियतया ते, किमाकृतेः प्रत्ययात् उत स्त्रीजनसहभुवो मूढभावादेवेत्यद्यापि न श्रद्दधाति मे हृदयमनिष्टं ते। येन न सहस्रधा स्फुटति। [1]स्फुटीकर्तुं च वार्तां भीता ते त्वरितकोपनीतामेव नेच्छामि। वरमनाकर्ण्यैवाश्रवणीयमुपरतास्मीति। तात, किं [2]ब्रवीषि, यथा किमनेन[3] सुतस्नेहानुचितेन लोकलज्जाकरेण वैक्लव्येनेति ? एषा स्थितास्मि ते वत्स वचनात्तूष्णीम्। न रोदिमि।'—इत्यभिदधानैवासन्नसखीजनावलम्बितशरीरा मोहमगात्।

आकारस्य, प्रियतया = वल्लभतया, प्रत्ययात् = विश्वासात्, उत = अथवा, स्त्रीजन-सहभुवः = स्त्रीजातौ स्वाभाविकात्, मूढभावात् = मूर्खत्वात्, एव, इति=इदम्, अद्य=अस्मिन् समये, अपि, मे=मम विलासवत्याः, हृदयम् = चित्तम्, ते = तव चन्द्रापीडस्य, अनिष्टम् = अशुभम्, न, श्रद्दधाति = विश्वसिति। येन = कारणेन, एव, सहस्रधा = सहस्रप्रकारेण, असंख्यखण्डेषु, न, स्फुटति = विदीर्णं भवति। तथापि भीता = भयाक्रान्ता, सती, अहम्, त्वरितकोपनीताम् = त्वरितकनाम्ना बालसेवकेन प्रापिताम्, वार्ताम् = वृत्तान्तम्, एव, स्फुटीकर्तुम् = स्पष्टीकर्तुम्, स्पष्टरूपेण ज्ञातुम्, न, इच्छामि = अभिलषामि। अश्रवणीयम् = श्रवणायोग्यम्, वृत्तान्तम्, अनाकर्ण्य = अश्रुत्वा, एव, अहम्, उपरता = मृता, अस्मि, इति, वरम् = श्रेष्ठम्। अप्रियवृत्तान्तश्रवणात्पूर्वमेव मरणं मम जायेतेत्येव वरं मन्ये इति तस्या भावः। तात = हे वत्स!, किम् = अज्ञातम्, ब्रवीसि = वदसि, यथा = यत्—अनेन = एतेन मया क्रियमाणेन, सुतस्नेहानुचितेन—सुते (= पुत्रे) स्नेहः (= अनुरागः) तस्य, अनुचितेन (= अयोग्येन), लोकलज्जाकरेण = जगति त्रपासमुत्पादकेन, वैक्लव्येन = विह्वलत्वेन, मोहेन वा, किम् ? न किमपीति भावः। वत्स!, ते = तव चन्द्रापीडस्य, वचनात् = कथनात्, आदेशादिति भावः, एषा, अहम्, तूष्णीम् = मौनम्, स्थितास्मि = तिष्ठामि, न, रोदिमि = विलपामि।' इति = इत्थम्, अभिदधाना = कथयन्ती, एव, आसन्नेत्यादिः—आसन्नः (= समीपवर्ती) यः सखीजनः (= वयस्यालोकः) तेन अवलम्बितम् (= आश्रितम्) शरीरम् (= कायः) यस्याः सा तादृशी सती, मोहम् = मूर्च्छाम्, अगात् = अगच्छत्, मूर्छिता जातेति भावः।

रहा है। तुम (मेरे) प्रिय हो—इस कारण क्या आकृति के विश्वास से अथवा स्त्रीजन की स्वाभाविक मूढता से ही मेरा हृदय आज भी तुम्हारे अनिष्ट पर विश्वास नहीं करता है। जिसके कारण ही हजारों टुकड़ों में नहीं फट रहा है। (अत्यन्त) डरी हुई मैं त्वरितक द्वारा लाई गई तुम्हारी बात (वृत्तान्त) को भी स्पष्ट करना नहीं चाहती हूँ। अच्छा तो यही होगा कि अश्रवणीय वृत्तान्त को बिना सुने अर्थात् सुनने से पहले ही मैं मर जाऊँ। बेटा क्या कह रहे हो कि—इस पुत्रस्नेह की अनुचित लोक में लज्जा उत्पन्न करने वाली इस विह्वलता से क्या ? अर्थात् यह ठीक नहीं है। तो लो बेटा, अब मैं तुम्हारे कहने से चुपचाप हो बैठी हूँ। नहीं रो रही हूँ।''—इस प्रकार से कहती हुई (महारानी विलासवती) पास बैठी हुई सखियों द्वारा पकड़े (थामे) गये शरीर वाली होकर मूर्छित हो गई अर्थात् सेविकाओं ने उसका शरीर थाम लिया और वह मूर्छित हो गई।

---

१. वार्तां ते त्वरितकाद् भीतैव। २. ब्रवीमि। ३. अनेन स्नेहानुचितेन।

अथानेकसहस्रसंख्येन प्रधावता विलासवतीपरिजनेनावेदिते तस्मिन्वृत्तान्ते मन्दरास्फालनोद्वेल[1] इव महाम्भोधिरुद्भ्रान्तचेताः ससम्भ्रममुत्थायार्यशुकनासद्वितीयो यामावस्थितां प्रजविनीं करेणुकामारुह्य रयादापिबन्निव पुरो राजमार्गं 'किं किमेतदि'त्युन्मुक्तार्तनादकलकलेन सर्वतः प्रधावता जनपदौघेनाकर्षन्निवो[2]द्वासयन्निव[3] पृष्ठतः सगोपुराट्टालकप्राकारभवनतोरणामुज्जयिनीं निर्जगाम नरपतिः ।

अथेति । अथ = विलासवत्या मूर्छागमनानन्तरम्, अनेक-सहस्रसंख्येन = अगणितेन, बहुसहस्रसंख्येन, प्रधावता = रयेण गच्छता, विलासवतीपरिजनेन = महाराज्ञ्याः सेवकलोकेन, तस्मिन् = सद्योजाते, वृत्तान्ते = मूर्छाविषयकोदन्ते, आवेदिते = निवेदिते, सूचिते, सति, मन्दरेत्यादिः—मन्दरस्य (= मन्दराचलस्य) आस्फालनेन (= मन्थनेन) उद् (= उद्गता) वेला (= तरङ्गः) यस्य स तादृशः, महाम्भोधिः (= महासागरः) इव, उद्भ्रान्तचेताः—उद्भ्रान्तम् (= संक्षुब्धम्) चेतः (= मनः) यस्य तादृशः, ससम्भ्रमम् = त्वरया सह, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, आर्येत्यादिः-आर्यशुकनासः (= एतन्नामामात्यः) द्वितीयः (= सहवर्ती)यस्य स तादृशः,नरपतिः = राजाधिपतिः तारापीडः, यामावस्थिताम्—यामे (= चतुष्किकायाम्, प्रहरे) अवस्थिताम् (= सेवार्थं विद्यमानाम्) प्रजविनीम् = अतीव-तीव्रगामिनीम्, करेणुकाम् = हस्तिनीम्, आरुह्य = आरूढो भूत्वा, रयात् = जवात्, पुरः = अग्रे, राजमार्गम् = राजपथम्, आपिबन् = पानं कुर्वन्, इव, 'किं किम् ?' जातमिति शेषः, इति = इत्थमुक्त्वा, उन्मुक्तेत्यादिः—उन्मुक्तः (= परित्यक्तः, विहितः) आर्तः (= करुणः) यः नादः (= ध्वनिः) तस्य कलकलेन (= तीव्रकोलाहलेन) वस्तुतस्तु—उन्मुक्तः = विहितः, आर्तनादरूपः कलकलः = कोलाहलः येन तादृशेन । सर्वतः = सर्वाभ्यः दिशाभ्यः, प्रधावता = रयेण चलता, जनपदौघेन = लोकानां समुदायेन ['भवेज्जनपदो देशे जने जनपदेऽपि वा' इति विश्वकोषः] सह, "सगोपुराट्टालकप्राकारभवनतोरणाम् उज्जयिनीं पृष्ठतः आकर्षन् इव, उद्वासयन् इव, नरपतिः निर्जगाम' इत्यन्वयो बोध्यः । सगोपुरेत्यादिः—गोपुरम् (= पुरद्वारम्, अट्टालकम् (= प्रासादस्योपरिभागः) प्राकारः (= नगरसीमावर्तिनीभित्तिः) भवनम् (= सदनम्) तोरणम् (= बहिर्द्वारम्) च इत्येतानि तैः सह वर्तते तां तादृशीम्, उज्जयिनीम् = स्वराजधानीम्, पृष्ठतः = स्वपश्चाद्भागे, आकर्षन् = आवर्जयन्, आकृष्टिं कुर्वन्, इव, उद्वासयन् = वासशून्यां कुर्वन्, निर्जनां विदधानः, इव, निर्जगाम = बहिर्निर्गतः ।

इसके बाद कई हजारों (लाखों) की संख्या में दौड़े हुए विलासवती के परिजनों द्वारा उस वृत्तान्त (मूर्छित होने की घटना) के सूचित किये जाने पर, मन्दराचल द्वारा मथे जाने के कारण उद्वेलित (ज्वारभाटा युक्त) महासागर के समान अत्यन्त क्षुब्ध चित्तवाले (राजातारापीड) हड़बड़ाहट में उठकर, आर्य शुकनास को साथ लेते हुए पहर (अपने निश्चित समय) पर खड़ी (सेवा में उपस्थित) बहुत तेज चलनेवाली हथिनी पर सवार होकर बहुत तेजी (वेग) के कारण सामने के मार्ग (की दूरी) को पीता हुआ सा, 'क्या हुआ ? क्या हुआ ?' इस प्रकार से बहुत तेज बने आर्त्तनाद का कोलाहल करते हुए,सभी ओर से दौड़ते हुए जनपदके लोगों की भीड़के साथ-साथ गोपुरों(मुख्यद्वारों) अट्टालिकाओं, प्रकारों (चहारदीवारें) भवनों तथा तोरणों (घुमावदार द्वारों) से युक्त उज्जयिनी नगरी को पीछे-पीछे खींचता हुआ सा, खाली करवाता हुआ सा राजा तारापीड बाहर निकल पड़ा ।

---

१. उद्वेलितः । २. आवर्जयन्निव । ३. उद्वास्यन् विपर्यासयन्निव ।

उपेत्य चावन्तिमातृगृहमवतीर्य तिर्यग्विषण्णोद्बाष्पवदनेन मलयजजलैश्च सिञ्चता कदलीदलैश्च वीजयता जलार्द्रैश्च पाणिपल्लवैः संवाहनं कुर्वता कथं कथमपि चेतनामापाद्यमानां परिजनेनार्धोन्मीलितलोचनयुगामुष्णकालकमलिनीमिव विलासवतीमपश्यत् । दृष्ट्वा च सहसा प्रवृत्तेन नेत्राम्भसा मूर्च्छाविशेषानयनायेव[1] सिञ्चन् समुपविश्य पार्श्वे स्पर्शामृतवर्षिणा करेण ललाटे चक्षुषि कपोलयोरुरसि बाह्वोश्च स्पृशञ्छनैः शनैर्बाष्पगद्गदमवादीत्-

---

उपेत्यति । अवन्तिमातृगृहम् = अवन्तीनगर्या अधिष्ठातृ-देवीनां मन्दिरम्, उपेत्य = समीपम् आगत्य च, नरपतिः, तिर्यक्—तिर अञ्चतीति, वक्रगामी सन् इति भावः । केचित्तु—तिर्यगिति वदनस्यैव विशेषणं मन्यन्ते । अवतीर्य = उत्तीर्य, करेणुकापृष्ठादधो देशे आगत्य, 'विलासवतीम् अपश्यदि'ति सम्बन्धः । कीदृशीमित्याह-तिर्यगित्यादिः तिर्यक् (=तिर अञ्चतोति, वक्रीभवत्) विषण्णम् (=विषादयुक्तम्) उद्बाष्पम् (= निर्गताश्रुपरिपूर्णम्) च वदनम् (= मुखम्) यस्य तेन तादृशेन, ['परिजनेन' इत्यस्य विशेषणानि तृतीयान्तपदानीति बोध्यम् ।] मलयजलैः = चन्दनद्रवमिश्रित-सलिलैः, च, सिञ्चता = आर्द्रं कुर्वता, सेकं विदधता, कदली-दलैः = रम्भापत्रैः, वीजयता = वायुमुत्पाद्य सेवमानेन, जलार्द्रैः = सलिलक्लिन्नैः, पाणिपल्लवैः=करैः किसलयैरिव, संवाहनम्=शरीरमर्दनम् कुर्वता=विदधता, परिजनेन=सेवकलोकेन, कथं कथमपि = यथा कथञ्चित्, महता प्रयासेनेति भावः, चेतनाम् = चैतन्यम्, आपाद्यमानाम् = प्राप्यमाणाम्, चैतन्ययुक्तां क्रियमाणामिति भावः, अर्धेत्यादिः—अर्धम् (= सामि) यथा स्यात् तथा उन्मीलितम् (= उद्घाटितम्) लोचनयोः (= नयनयोः) युगम् (= युग्मम्) यया तां तादृशीम्, अतएव, उष्ण-काल-कमलिनीम्—उष्णकालस्य (= ग्रीष्म-समयस्य) कमलिनी (= पद्मिनी) ताम्, इव, विलासवतीम् = महाराज्ञीम्, अपश्यत् = दृष्टवान् ।

दृष्ट्वेति । दृष्ट्वा = विलोक्य च, विलासवतीम्, सहसा = अकस्मात्, प्रवृत्तेन = विनिःसृतेन, प्रादुर्भूतेन, नेत्राम्भसा = अश्रुसलिलेन, मूर्च्छाविशेषापनयनाय—मूर्च्छायाः (= मोहावस्थायाः) य अवशेषः (= अवशिष्टांशः) तस्य अपनाय (= दूरीकरणाय) इव, सिञ्चन् = सेकं कुर्वन्, तस्या उपरि अश्रुसलिलं पातयन्निति भावः, पार्श्वे = निकटे, समुपविश्य = निषद्य, स्पर्शामृतवर्षिणा—स्पर्शः (= स्पर्शनम्, आमर्शः) एव अमृतम् (= पीयूषकम्) वर्षतोत्येवं शीलेन, करेण = हस्तेन, ललाटे = उत्तमाङ्गे, चक्षुषि = नेत्रे, (नेत्रयोरिति तूचितम्), उरसि = वक्षस्थले, बाह्वोः = भुजयोः, च, स्पृशन् = स्पर्शं कुर्वन्, [तत्तदवयवयवावच्छेदेन स्पर्शं कुर्वन्निति भावः ।] शनैः शनैः = मन्दं मन्दम्, बाष्पगद्गदम् = बाष्पेण बाष्पाणां वा प्रादुर्भावेन

अवन्तीमाताओं के मन्दिर में पहुँच कर, (हथिनी से) तिरछे उतर कर, राजा ने उदास तथा आंसुओं से भरे हुए मुखों वाले, चन्दन-मिश्रित जल से सींचते हुए, केला के पत्तों से हवा करते हुए तथा पानी से गीले किये गये करपल्लवों से [हाथ पैर आदि का] मर्दन (दबाते, मालिश) करते हुए परिजनों (नौकरों-चाकरों) द्वारा जिस किसी प्रकार से चेतना प्राप्त कराई जाती हुई, होश में लाई जाती हुई, आधी खुली हुई दोनों आँखों वाली ग्रीष्म काल की कमलिनी के समान महारानी विलासवती को देखा । [ऐसी महारानी को] देखकर अचानक निकल पड़े अश्रुरूपी जल से बाकी बची खुची (शेष रही) मूर्च्छा (बेहोशी) को दूर करने के लिए मानों सींचता हुआ सा, (राजा) पास में बैठकर, स्पर्शरूपी अमृत की वर्षा करने वाले अपने हाथों से माथे, आँखों, गालों, वक्षस्थल तथा हाथों का स्पर्श करता हुआ (सहलाता हुआ)आँसुओं से लड़खड़ाती हुई वाणी में धीरे-धीरे बोला—

---

१. एव ।

'देवि, यदि सत्यमेवान्यादृशं किमपि चन्द्रापीडस्य ततो न जीव्यत[1] एव। किमर्थमयमात्मा वत्सस्य कृते सकललोकसाधारणेनामुना वैक्लव्योपगमेन तुच्छतां नीयते। इयन्ति शुभान्युपात्तानि कर्माणि। किमपरं क्रियते। [2]नाधिकस्य भाजनं सुखस्य वयम्। [3]अनुपात्तं हि हृदयताडनमपि कुर्वद्भिर्न लभ्यत एवात्रात्मेच्छया। विधिर्नामापरः कोऽप्यत्रास्ते। यत्तस्मै रोचते तत्करोति। नासौ कस्यचिदप्यायत्तः। एवं च पराधीनवृत्तौ[4]

गद्गदम् (= अव्यक्तम्) यथा स्यात् तथा, अवादीत् = कथितवान्।

किमवादीदित्याह—देवि इत्यादिना। हे देवि! महाराज्ञि!, यदि = चेत्, वत्सस्य = सुतस्य, चन्द्रापीडस्य सत्यम् = अवितथम्, एव, किमपि = अश्रुतमज्ञातं च, अन्यादृशम् = अमङ्गलमित्याशयः, जातमिति शेषः, ततः = तर्हि, न = नैव, जीव्यते = प्राण्यते, एव, आवाभ्यामिति शेषः, मरणमेव श्रेयस्करमित्याशयः। किमर्थम् = किं प्रयोजनम्, अयम् = एष, आत्मा = जीवः, वत्सस्य = पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य, कृते = निमित्तम्, सकलेत्यादिः—सकलाः (= सर्वे) च ते लोकाः (= जनाः) तेषां साधारणेन (= तुल्येन), आपामरजनव्याप्तेन, अमुना = एतेन, वैक्लव्योपगमेन = विह्वलताङ्गीकारेण, तुच्छताम् = स्वल्पताम्, नीचभावमित्याशयः, नीयते = प्राप्यते। रोदन-विह्वलत्वाद्यनुभवापेक्षया मरणमेव उचिततरमिति भावः। इयन्ति = एतावन्ति, शुभानि = भद्राणि, कर्माणि = कृत्यानि, एव, उपात्तानि = अर्जितानि। एवाप्रयोगेऽपि अवधारणार्थप्रतीतिः। अपरम् = एतद्भिन्नम् किम्, क्रियते = कर्तुं शक्यते। वयम् = चन्द्रापीडस्य जननीजनकादयः, अधिकस्य, सुखस्य = सौभाग्यस्य, सातस्य, भाजनम् = पात्रम्, न, स्मः = भवामः। हि = यतः, अनुपात्तम् = पूर्वजन्मादावनर्जितम्, कर्मणः फलम्, हृदयताडनम् = उरःस्थलपीडनम्, कुर्वद्भिः = विदधानैः, अपि, लोकैः, अत्र = अस्मिन् संसारे, आत्मेच्छया = स्वेच्छया, न, लभ्यते = प्राप्यते, एव, कथमपि नैव प्राप्तुं शक्यते इति भावः। विधिः = विधाता, नाम = निश्चयेन, अपरः = साधारणजनभिन्नः, कोऽपि = अस्मदादिभिर्ज्ञातुमशक्यः, अत्र = अस्मिन् संसारे, आस्ते = विद्यते, तिष्ठति वा, सर्वोपरीति शेषः। तस्मै = विधये, यत् = अन्यजनैरज्ञातम्, रोचते = रुचिविषयीभवति, प्रियं प्रतीयते, तत् = स्वप्रियम्, करोति = विधत्ते। असौ = विधिः, कस्यचिदपि = स्वभिन्नस्यापरस्य, आयत्तः = अधीनः, वशवर्ती, न = नैव, वर्तते। एवञ्च = अस्यां स्थितौ, सर्वस्मिन् = सकले लोके, पराधीनवृत्तौ—पराधीना (= विध्याश्रिता) वृत्तिः (= वर्तनम्,

'देवि! सचमुच में यदि बेटा चन्द्रापीड का कुछ ऐसा-वैसा हुआ है अर्थात् अनिष्ट हुआ है तो हम लोग जीवित नहीं रह सकते अर्थात् मृत्यु ही अच्छी है। पुत्र के लिए साधारण लोगों की तरह इस विह्वलता को प्राप्त करती हुई अपने को क्यों तुच्छ बना रही हो। (हम लोगों ने) इतने ही शुभ कर्म अर्जित किये हैं। और अब दूसरा किया ही क्या जा सकता है? इससे अधिक सुख के पात्र हम लोग नहीं हैं। क्योंकि जो (सत्कर्मो से) अर्जित नहीं है वह इस संसार में अपनी छाती पीट डालने से भी अपनी इच्छा के अनुसार नहीं मिल सकता। इस संसार में विधाता नाम का कोई दूसरा (सर्वशक्तिमान)है, उसको जो अच्छा लगता है वही करता है, वह किसी के भी अधीन नहीं है। इसप्रकार जब सभी लोग परतन्त्र वृत्तिवाले हैं तो हम लोगों ने क्या-क्या नहीं पाया? अर्थात् सभी कुछ पाया

१. जीव्यन्ते। २. नातोऽधिकस्य। ३. उपात्तम्। ४. वृत्ते।

सर्वस्मिन्न किं [1]वास्माभिर्लब्धम् ? वत्सस्यातिदुर्लभो जन्मोत्सवः सम्भावितः । अङ्कगतस्य मुखमवलोकितम् । उत्तानशयस्योच्चुम्ब्य चरणावुत्तमाङ्गे कृतौ । जानुसञ्चारिणो रेणुधूसरशरीरस्याङ्के लुलतः[2] स्पर्शसुखमनुभूतम् । अव्यक्त[3]मनोहारीणि प्रथमजल्पितानि श्रोत्रे कृतानि । विचेष्टमानस्य बालचाटवो दृष्टाः । गृहीतविद्यस्य गुणवत्तयानन्दितं हृदयम् । उपारूढयौवनस्यामानुषी रूपशोभा शक्तिश्च प्रत्यक्षीकृता । अभिषिक्तस्य यौवराज्ये

व्यापारः) यस्य तादृशे, सति, अस्माभिः, किम्, वा, न, लब्धम् = प्राप्तम् ? अपितु बह्वधिकं लब्धमिति भावः । एतदेव दर्शयन्नाह—वत्सस्येत्यादिना । वत्सस्य = पुत्रस्य ['वत्सस्य' इति षष्ठ्यन्तस्याग्रे सर्वत्र षष्ठ्यन्तपदेषु सम्बन्धं विधायैवार्थो बोध्यः ।] अतिदुर्लभः = अतिदुष्प्रापः, जन्मोत्सवः = जननमहः, सम्भावितः = निष्पादितः । अङ्कगतस्य = क्रोडनिषण्णस्य, मुखम् = आननम्, अवलोकितम् = दृष्टम् । उत्तानशयस्य—उत्तानम् (= ऊर्ध्ववक्षस्कम्) यथा स्यात् तथा शेते (= स्वपिति, शय्यायां लुठति) इति तादृशस्य, चरणौ = पादौ,उच्चुम्ब्य = सम्यक् चुम्बित्वा, उत्तमाङ्गे = मस्तके, मूर्ध्नि कृतौ = स्थापितौ । जानुसंचारिणः—जानुभ्याम् (= ऊर्वोः सन्धिभागाभ्याम्) संचरति (= विचरति) इति तादृशस्य, जानुबलेन संचरमाणस्येति भावः, रेणुधूसर-शरीरस्य—रेणुभिः (= रजोभिः,मृत्तिकाकणैः) धूसरम् (= मलीमसम्) शरीरम् (= कायः) यस्य तादृशस्य, अथ च, अङ्के = क्रोडे, लुलतः = लुठतः, क्रीडतः, स्पर्शसुखम् = संश्लेषजन्यप्रमोदः, अनुभूतम् = उपभुक्तम् । अव्यक्त-मनोहारीणि—अव्यक्तानि (= अस्पष्टानि) मनोहारीणि (= चित्ताकर्षकाणि) [केचित्तु-'अव्यक्तत्वेन मनोहारीणि इति वदन्ति ।] प्रथम-जल्पितानि = प्रारम्भिक-भाषितानि, श्रोत्रे = कर्णे, कृतानि = विहितानि, श्रुतानीति भावः । विचेष्टमानस्य = करचरणादिभिः नानाविधां चेष्टां कुर्वतः, बालचाटवः = बालोचित-प्रियप्रायाणि कर्माणि, दृष्टाः = विलोकिताः । गृहीत-विद्यस्य—गृहीता (= आत्ता, अधिगता) विद्या (= विविधविषयज्ञानम्) येन तादृशस्य, गुणवत्तया = प्रशंसनीय-गुणशालितया, हृदयम् = चित्तम्, आनन्दितम् = प्रमोदितम् । उपारूढ-यौवनस्य—उपारूढम् (= सम्प्रातम्) यौवनम् (= तारुण्यम्) येन तादृशस्य, अमानुषी= साधारणमानवेषु अप्रत्यक्षीकृता, रूपशोभा = सौन्दर्यस्य कान्तिः, शक्तिः = बलं सामर्थ्यम् च, प्रत्यक्षीकृता = विलोकिता । यौवराज्ये = युवराजस्य कर्मणि पदे च, अभिषिक्तस्य=कृताभिषेकस्य,

---

है । बेटे का अत्यन्त दुर्लभ जन्मोत्सव मनाया । गोद में बैठाकर उसका मुख देखा । उत्तान लेटे हुए उसके पैरों को चूमकर माथे से लगाया । घुटनों के बल चलते हुए धूल से धूसरित शरीरवाले (तथा) गोद में लोटते हुए बेटे के स्पर्श का सुख भोगा है । प्रारंभिक अवस्था लड़कपन की तोतली और मीठी-मीठी बोलियाँ सुनीं । खेलते हुए उसकी मनोहर बाल क्रीडाओं को देखा । पढ़ लिख गये बेटे की गुणवत्ता से हृदय को आनन्दित किया । युवावस्था को प्राप्त हुए बेटे की अमानुषी (सामान्य मनुष्यों में न पाई जाने वाली) रूप की शोभा और शक्ति देखी । युवराज पद पर अभिषेक प्राप्त किये हुए बेटे के शिर को

---

१. किं चास्माभिः । २. ललतः, लगतः । ३. मनोहराणि ।

शिरः समाघ्रातम् । दिग्विजयागतस्य प्रणमतः परिष्वक्तान्यङ्गानि । एतावदेव मनोरथशतवाञ्छितस्य वस्तुनो[1] न सम्पन्नं यद्वधूसमेतस्य निजपदे प्रतिष्ठां कृत्वा तपोवने न गतम्[2] । सर्वाभिवाञ्छितप्राप्तिस्तु महतः पुण्यराशेः फलम् । अपरमपि, किं वृत्तं वत्सस्यैतदद्यापि न परिस्फुटं केनचिदेव कथितम् । एतावत्तु मयाऽव्यक्त[3]मेतदेव परिजनात्कथयतः कर्णे कृतम्—यथास्मत्प्रहितैर्लेखहारिभिः सहापरो वत्सस्य मे बालसेवकस्त्वरितकनामायातः । स वेत्ति सर्वं वृत्तान्तम् । सोऽपि त्वया न पृष्ट एवेति । तत्तं[4] तु

शिरः=मूर्धा, समाघ्रातम् = घ्राणविषयीकृत्य परिचुम्बितम् । दिग्विजयागतस्य–दिशाम्(= दिशानाम्) विजयः (=स्ववशीकरणम्)तस्मात् कार्यात् आगतस्य(= सकुशलं निवृत्तस्य), प्रणमतः = प्रणतिं कुर्वतः, अङ्गानि = देहावयवाः, परिष्वक्तानि=समाश्लिष्टानि । मनोरथेत्यादिः-मनोरथानाम्(= अभिलाषाणाम्) शतैः, वाञ्छितस्य (= अभीष्टस्य) वस्तुनः=पदार्थस्य, एतावद् = इयन्मात्रम्, एव, न, सम्पन्नम्= जातम्, यत्, वधूसमेतस्य = स्नुषायुक्तस्य, विवाहितस्येति भावः, चन्द्रापीडस्य, निजपदे = स्वरीयपदे, नृपसिंहासने, प्रतिष्ठाम् = प्रतिष्ठापनम्, कृत्वा, तपोवने, न, गतम् = प्रयातम् । [अत्र-'वस्तुनः' इत्यस्य 'चन्द्रापीडस्य' इत्यर्थः । परन्तु 'वस्तुनः' इत्यस्य स्थाने यदि 'वस्तुतः' इति पाठः स्वीक्रियेत तदाऽर्थसंगतिः समीचीनतरा —मनोरथ-शतवाञ्छितस्य वत्सस्य चन्द्रापीडस्य वस्तुतः = वास्तविकरूपेण एतावदेव न सम्पन्नमिति ।] सर्वाभिवाञ्छितप्राप्तिः = सकलाभीष्टस्य उपलब्धिः, तु, महतः = विपुलस्य, पुण्यराशेः = सुकृत-समूहस्य, फलम् = परिणामः, भवतीति । अपरम् = अन्यद्, अपि, इदं बोध्यम्, वत्सस्य = पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य, किम् = अज्ञातम्, वृत्तम् = जातम्, एतत् = इदम्, अद्यापि = एतत्कालपर्यन्तमपि, केनचिद् = लोकेन सन्देशहरेण वा, एव, परिस्फुटम् = स्पष्टरूपेण, न, कथितम् = उक्तम्, सूचितम् । व्यक्तम् = स्पष्टम्, अव्यक्तमिति पाठेऽस्पष्टमित्यर्थः, कथयतः = परस्परमालपतः, परिजनात् = भृत्यवर्गात्, परिवारजनात् च, मया = तारापीडेन, एतावत् = इयन्मात्रम्, एव, कर्णे = श्रवणे, कृतम् = विहितम्, श्रुतम्, यथा = यत्, अस्मत्प्रहितैः = अस्माभिः प्रेषितैः, सन्देश-लेखहारिभिः = प्रत्युत्तरहारिभि सेवकैः, सह = सार्धम्, मे = मम, वत्सस्य = पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य, अपरः = अस्मत्प्रेषितेभ्यो भिन्नः, त्वरितकनामा = एतदभिधानः, बालसेवकः = बाल्यकालाद् भृत्योजातः, आयातः=आगतः, अस्ति । सः = त्वरितकः, सर्वम् = समस्तम्, वृत्तान्तम् = घटनाचक्रम्, वेत्ति = जानाति । त्वया = महाराज्ञ्या विलासवत्या, सः = त्वरितकः, अपि, न, पृष्टः = अनुयुक्तः, जिज्ञासाविषयीकृतः, एव । तत्=तस्मात्,

सूँघा । दिग्विजय करके(वापस)लौटकर प्रणाम करते हुए बेटे के अवयवों का आलिंगन किया । सैकड़ों मनोरथों से प्राप्त वस्तु (=पुत्र) का बस इतना ही नहीं हो सका कि हम इसको वधू के साथ अपने पद (राजसिंहासन) पर प्रतिष्ठित करके तपोवन नहीं गये । [सैकड़ों मनोरथों से प्राप्त हुए इस चन्द्रापीड का केवल यह नहीं हो सका कि वधू के साथ इसे अपने पद (राजसिंहासन) पर प्रतिष्ठित करके हम तपोवन नहीं जा सके ।] क्योंकि सभी प्रकार की चाही गई (बातों) की प्राप्ति तो बहुत बड़े पुण्य-समूह का फल होता है । [महारानी जी !] दूसरी बात यह भी है, बेटे का क्या हुआ है—यह अभी तक साफ-साफ किसी ने नहीं कहा है । परस्पर बातें करते हुए परिजनों से मैंने अव्यक्त (या व्यक्त= स्पष्ट) रूप में इतना ही सुना है—'हम लोगों के द्वारा भेजे गये सन्देशहरों के साथ पुत्र का दूसरा एक त्वरितक नाम का बालसेवक (बाल्यावस्था से ही सेवा में लगा अथवा लड़का रूप में सेवा करने वाला) आया है । वही सारी बातें (घटनायें) जानता है । तुमने उससे भी नहीं ही पूछा

१. 'वस्तुतः'—इति उचिततरः पाठः । २. गन्तव्यम् ।
३. मयाव्यक्तम्, मयाव्यक्तम् । ४. तत्तु, तं तु ।

तावत्पृच्छामः । ततो जीवितमरणयोरन्यतरदङ्गीकरिष्यामः ।' इत्यभिवदत्येव राजनि परिजनान्तरितं त्वरितकमाहूय प्रतीहारः 'त्वरितकमारान्महीतलनिवेशितोत्तमाङ्गमालोकयतु देवः' इति दर्शितवान् ।

राजा तु तथा तमालोक्य चन्द्रापीडस्नेहाद् 'एही'त्याहूय हस्तेनोत्तमाङ्गे स्पृष्ट्वादिष्टवान्—'भद्र कथय किं वृत्तं वत्सस्य[1] येनागमनाय मया तन्मात्रामात्येन[2] च लिखितेपि[3] [4]नायातः अनागमनकारणं वा किञ्चिन्न प्रतिलेखितवान्' इति । स त्वेवमादिष्टो राज्ञा

तावत् = सर्वप्रथमम्, तम् = त्वरितकम्, तु, पृच्छामः = प्रश्नविषयीकुर्मः । ततः = तदनन्तरम्, जीवितमरणयोः = प्राणधारण-प्राणत्यागयोः, मध्ये, अन्यतरत् = एकम्, किमपि, अङ्गीकरिष्यामः = स्वीकरिष्यामः । इति = इत्थम्, राजनि = नृपतौ तारापीडे, अभिवदति = कथयति, एव, सति, परिजनान्तरितम् = सेवकजनैर्व्यवहितम्, पश्चाद्देशे स्थितम्, त्वरितकम्, आहूय=आकार्य, प्रतीहारी = द्वारपालकः, "देवः = स्वामी, महीतलेत्यादिः—महीतले (= भूतले) निवेशितम् (= स्थापितम्) उत्तमाङ्गम् (= मूर्धा) येन तं तादृशम्, त्वरितकम्, आरात् = समीपात्, आलोकयतु = पश्यतु' इति= इत्थमुक्त्वा, दर्शितवान् = दर्शयामास ।

राजेति । राजा = नृपः तारापीडः, तु, तथा = तेन प्रकारेण प्रणमन्तम्, तम् = त्वरितकम्, आहूय = आकार्य, चन्द्रापीडस्नेहात् = चन्द्रापीडस्यानुरागात्, 'अयं चन्द्रापीडस्य बालसेवकः, सर्वं जानातीति भावनया स्नेहं प्रदर्श्य' इति भावः, एहि = आगच्छ, इति = इत्थम्, आहूय = आकार्य, हस्तेन = करेण, उत्तमाङ्गे = मूर्ध्नि, स्पृष्ट्वा = स्पर्शं कृत्वा, आदिष्टवान् = आज्ञापयामास । किमादिष्टवानिति प्रतिपादयति—भद्र इत्यादिना । भद्र = प्रिय त्वरितक !, कथय = वद, वत्सस्य = पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य, किम् = अज्ञातम्, वृत्तम् = सञ्जातम्, येन = कारणेन, मया = तारापीडेन, तन्मात्रा = तस्य जनन्या विलासवत्या, अमात्येन = महासचिवेन शुकनासेन, च, आगमनाय = अत्र परावर्तनाय, लिखिते = लिपीकृते, अपि, न, आयातः = आगतः, वत्सश्चन्द्रापीड इति शेषः । वा = अथवा, किञ्चित् = किमपि, अनागमनकारणम् = अत्र अपरावर्तननिमित्तम्, न, प्रतिलेखितवान् = प्रत्युत्तरं लेखयित्वा दत्तवान् इति = कथनसमाप्तौ । स = त्वरितकः, तु, एवम् = इत्थम्, राज्ञा = तारापीडेन, आदिष्टः = आज्ञप्तः,

---

है । अतः पहले उस त्वरितक से तो (सब कुछ) पूछ लें । इसके बाद जीवित रहने और मर जाने में से किसी एक को स्वीकार कर लेंगे ।" राजा के ऐसे कहते ही परिजनों के पीछे छिपे (खड़े) हुए त्वरितक को बुलाकर प्रतीहारी ने 'दूर से ही पृथ्वी पर माथा टिकाये अर्थात् भूमितल में मस्तक का स्पर्श कराये हुए त्वरितक को महाराज देख लीजिये' यह (कहकर)उस त्वरितक को दिखा दिया।

राजा तारापीड ने उस प्रकार के त्वरितक को देखकर चन्द्रापीड के स्नेह के कारण 'आओ, आओ' इस प्रकार से बुलाकर उसके माथे को हाथ से छूने के बाद आदेश दिया—"भद्र त्वरितक ! बताओ बेटे का क्या हो गया जिसके कारण मेरे, उसकी माता और अमात्य शुकनाश के द्वारा वापस आने के लिये लिखे जाने पर भी नहीं (वापस) आया । और न ही वापस न लौटने का कोई कारण ही लिखकर भेजा ।" इस प्रकार से आज्ञा दिये गये उस त्वरितक ने [उज्जयिनी से] प्रस्थान से

---

१. वत्सस्य मे ।　　२. तन्मात्रा चामात्येन च ।

३. लिखिते आदिष्टेऽपि ।　　४. स नायातः ।

गमनतः[1] प्रभृति यथावृत्तं कथयितुमारेभे। राजा तु चन्द्रापीडहृदयस्फुटनवृत्तान्तं यावदाकर्ण्यातिक्षुभित[2]शोकार्णवाक्रान्तिविक्लवः प्रसार्य करमार्तस्वरस्त्वरितकमवादीत्—'भद्र, विरम सम्प्रति, कथितं त्वया कथनीयम्। मयापि श्रुतं यच्छ्रोतव्यम्। पूर्णो मे प्रश्नदोहदः। निवृत्तं श्रवणकौतुकम्। कृतार्थीभूता श्रुतिः। आनन्दितं हृदयम्। उत्पन्ना प्रीतिः। सुखं स्थितोऽस्मि। हा वत्स त्वयैकाकिना स्फुटतो हृदयस्यानुभूता वेदना। निर्व्यूढा त्वया वैशम्पायनस्योपरि प्रीतिः। वयं दुःखभागिनो निस्त्रिंशाः कर्मचाण्डालाः, येषां [3]तवापि

सन्, गमनतः = उज्जयिनीतः, प्रयाणतः, प्रभृति = आदाय, यथावृत्तम् = येन प्रकारेण जातम् तत्, कथयितुम् = वक्तुम्, आरेभे = आरब्धवान्। राजा = नृपतिः तारापीडः, तु, चन्द्रापीडेत्यादिः = चन्द्रापीडस्य (= स्वपुत्रस्य) यत् हृदयस्य (= चित्तस्य) स्फुटनम् (= स्फोटः, विदीर्णत्वम्) तस्य वृत्तान्तम् (= उदन्तम्), यावत् = पर्यन्तम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, अतिक्षुभितेत्यादिः—अति (= अतिशयेन) क्षुभितः (= क्षोभं प्राप्तः) शोकः (= शुक्, दुःखम्) एव, अर्णवः (= समुद्रः) तस्य या आक्रान्तिः (= आक्रमणम्) तया विह्वलः (= व्याकुलः), सन्, करम् = हस्तद्वयम्, प्रसार्य = विस्तृतौ कृत्वा, आर्तस्वरः—आर्त्तः (= करुणः, दीनः) स्वरः (= शब्द,) यस्य तादृशः, सन्, त्वरितकम् = चन्द्रापीडस्य बालसेवकम्, अवादीत् = उक्तवान्। भद्र, सम्प्रति = अधुना, विरम = विरतो भव, मा अग्रे ब्रूहीत्याशयः। यत्, कथनीयम्= वक्तव्यम्, तत्,त्वया, कथितम्=उक्तम्। मया=राज्ञा,अपि, तत्, श्रुतम्=आकर्णितम्,यत्, श्रोतव्यम्= आकर्णनीयम्, आसीदिति शेषः। मे = तारापीडस्य, प्रश्नदोहदः = प्रश्नाभिलाषः, पूर्णः = पूर्णतां गतः। श्रवणकौतुकम् = आकर्णनोत्सुक्यम्, निवृत्तम् = दूरीभूतम्। श्रुतिः = श्रवणः, कृतार्थीकृता = सफलीकृता। हृदयम् = मनः, आनन्दितम् = प्रमुदितम्। प्रीतिः = प्रसन्नता, स्नेहः उत्पन्ना=सञ्जाता। सुखम् = सुखपूर्वकम्, स्थितः = निषण्णः, अस्मि = वर्ते। [इमानि राज्ञः सर्वाणि वाक्यानि विपरीतलक्षणया शोकातिशयाभिव्यञ्जकानीति बोध्यम्। शोकातिरेके एवैतादृशवाक्यानामुच्चारणादिति]। हा वत्स ! = हा ! पुत्र, त्वया = भवता, एकाकिना = अद्वितीयेन, असहायेन, एव, स्फुटतः = द्वैधीभवतः, हृदयस्य = चित्तस्य, वेदना = पीडा, अनुभूता = अनुभवविषयीकृता। त्वया, वैशम्पायनस्य = स्ववयस्यस्य, उपरि = विषये, प्रीतिः = स्वीयानुरागः, निर्व्यूढा = निर्वाहिता, मरणपर्यन्तं परिपालितेति भावः। वयम् = तारापीडादयः, दुःखभागिनः = कष्टभाजः, निस्त्रिंशाः = क्रूराः, कर्मचाण्डालाः = कर्मणा श्वपचाः। येषाम् =

लेकर जो भी हुआ वह कहना आरम्भ कर दिया। परन्तु राजा ने चन्द्रापीड के हृदय फटने तक की घटना सुनकर अत्यन्त क्षुब्ध हुए शोक सागर के आक्रमण से व्याकुल होते हुए (अथवा शोक सागर में डूब जाने से व्याकुल होते हुए), हाथ फैलाकर आर्त्तस्वर में त्वरितक से कहा—'भद्र ! अब रहने दो, रुक जाओ। जो तुम्हें कहना था, कह दिया। मुझे भी जो सुनना था, सुन लिया। मेरे प्रश्न करने का दोहद (चाह, मनोरथ) पूरा हो गया। सुनने की उत्सुकता समाप्त हो गई, जाती रही। कान सफल हो गये। हृदय (मन) खूब खुश हो गया। प्रेम उमड़ पड़ा, उत्पन्न हो गया। बड़े सुख से बैठा हूँ। हाय बेटा ! हृदय फटने की वेदना तुमने अकेले सहन की है। तुमने वैशम्पायन के ऊपर अपने प्रेम का निर्वाह किया है। हमी लोग दुःख के भागी, क्रूर और कर्म से चाण्डाल हैं जिनकी

१. राज्ञागमनतः। २. आक्षुभित। ३. तथापि।

हृदयस्फुटने[1] निर्विकारत्वमेव[2]। देवि वज्रसारतोपि कठिनतरमेवेदमावयोर्हृदयम् । यन्न स्वयं सहस्रधा स्फुटति । न चापि मरणदुःखभीरवोऽमी वत्समनुगच्छन्ति स्वयं प्राणाः । तदुत्तिष्ठ यावदेवातिदूरं न प्रयात्येकाकी वत्सस्तावदेवानुगमनाय [3]प्रयतामहे । सशोकं शुकनास किमद्यापि तिष्ठसि ? अयं स कालः स्नेहस्य । महाकालायतनसमीपे समादिश सपदि परिचारकांश्चितारचनाय । [4]रचयत झटिति काष्ठानि काष्ठिकाः । किं तिष्ठतैवं

अस्माकं तव जनकादीनाम्, तवापि = भवतः चन्द्रापीडस्यापि, तेन प्रकारेण, हृदय-स्फोटने = चित्तस्य द्वैधीभावे, निर्विकारत्वम् = विकाराभावः एव, न तु कस्याप्यङ्गस्य स्फुटनमिति भावः ।

इदानीं चन्द्रापीडमातरं विलासवती प्रति किमाहेति वर्णयति—देवि-इत्यादिना । देवि ! = प्रिये !, आवयोः = जनन्यास्तव जनकस्य मम च, इदम्=आवयोः शरीरे विद्यमानम्, हृदयम् =चित्तम्, वज्रसारतः=अशनेः सत्वतः, अपि, कठिनतरम्=कठोरतरम्, अस्ति, यत् =हृदयम्, स्वयम् =आत्मनैव, सहस्रधा =सहस्रप्रकारैः, न स्फुटति = विदीर्णं भवति । मरण-दुःख-भीरवः = मरणकालजन्यदुःखाद् भयशीलाः, अमी = आवयोः एते, प्राणाः = असवः, स्वयम् = आत्मनैव, वत्सम् = पुत्रं चन्द्रापीडम्, न च, अनुगच्छन्ति = अनुसरन्ति । तत् = तस्माद्, उत्तिष्ठ = उत्थानं कुरु, वत्सः = पुत्रः चन्द्रापीडः, एकाकी = असहायः यावदेव = यावता कालेन एव, अतिदूरम् = अतिविप्रकृष्टम्, न, प्रयाति = गच्छति, तावदेव = तावता कालेनैव, अनुगमनाय = अनुसरणाय, प्रयतामहे = प्रयत्नं कुर्महे ।

शुकनासं प्रति किमाहेति वर्णयति—सशोकमित्यादिना । शुकनास !, अद्यापि = इदानीमपि, सशोकम् = शोकेन सहितं यथा स्यात् तथा, किम् = कथम्, तिष्ठसि = निषीदसि । अयम् = एषः, सः = निकषसमः, कालः = समयः, स्नेहस्य = प्रेम्णः, आगत इति शेषः । वयं चन्द्रापीडं प्रति कियन्तं स्नेहं कुर्म इति तस्य परीक्षाया एष कालः सम्प्राप्त इति तद्भावः । महाकालायतन-समीपे = भगवतः महाकालेश्वरस्य मन्दिरस्य निकटे, सपदि = शीघ्रमेव, चितारचनाय = अग्निदाहार्थं चैत्याया निर्माणाय, परिचारकान् = सेवकान्, समादिश = आज्ञापय । अरे काष्ठिकाः = दारुरक्षकाः, झटिति = सत्वरमेव, काष्ठानि = दारूणि, रचयत = स्थापयत,

(उस प्रकार से) तुम्हारे भी हृदय के फट जाने पर निर्विकारता ही है, अर्थात् कोई विकार नहीं उत्पन्न हुआ । देवि ! हम दोनों का हृदय वज्रसार से भी अधिक कड़ा है जो अपने आप हजारों टुकड़ों में नहीं फट जाता । और न ही नरक के दुःख से डरने वाले ये प्राण ही अपने आप बेटे का अनुसरण कर रहे हैं । अतः उठो जब तक पुत्र अकेला बहुत दूर तक न चला जाय उससे पहले ही उसके पीछे-पीछे चलने का प्रयत्न कर लें । शुकनास ! तुम अब भी क्यों शोकयुक्त होकर बैठे हो ? प्रेम (प्रदर्शित करने) का यही समय है । महाकाल के मन्दिर के पास शीघ्र ही चिता बनाने के के लिये नौकरों को आज्ञा दे दीजिये । अरे लकड़हारों ! शीघ्र ही लकड़ियों को एकट्ठा करो (चिता के रूप में बनाओ) । अरे कंचुकियों ! इस प्रकार से क्यों सिकुड़े हुए बैठे हो ? जाओ अग्नि में

१. स्फोटने । २. निर्विकारत्वमेवेदम्, निर्विकारमेव ।
३. प्रयतावहे—इति द्विवचनान्तमेवोचितम् । ४. उपनयत ।

संकुचिताः कञ्चुकिनः ? गत्वा निष्क्रामयत हुताशनप्रवेशोपकरणानि । निष्कारणरुदितेन किमधुना ? [1]उपरोधपरिलम्बाद्विना दापयाशेषं देवि द्विजेभ्यः कोषम् । कस्य कृतेद्यापि पाल्यते ? पालनादिकं करणीयमधुना क्षीणं क्षीणपुण्यस्य मे । यात यथाभूमि भूमिपतयः । उत्सृष्टाः [2]स्थ । यथा च नाद्यैवास्य [3]दुःखं जानन्ति प्रजास्तथा करिष्यथ । कथावशेषीभूतो मे वत्सः । [4]कमपरं संविधाय यामि ?'—एवमार्त[5]प्रलापिनं तारापीडम-

दाहकर्मणि उपयोगिस्वरूपेण रचनां कुरुत । कञ्चुकिनः ! = अरे सौविदल्लाः ! एवम् = अनेन प्रकारेण, संकुचिताः = संकोचं प्राप्ताः, शरीराणि संकुच्येति भावः, कथम् = किमर्थम्, तिष्ठत = निषीदत ? किमपि कथं न चेष्टध्वे इति भावः । गत्वा = इतः व्रजित्वा, हुताशन-प्रवेशोपकरणानि = वह्नौ प्रवेशकरणार्थमपेक्षित-साधनानि घृतादीनि, निष्क्रामयत = बहिर्निःसारयत । अधुना = साम्प्रतम्, निष्कारणरुदितेन=निष्प्रयोजनं विलपितेन, किम् ? न किमपि फलमिति भावः । हे देवि !=महिषि ! उपरोधपरिलम्बाद्—उपरोधः (= अवरोधः, निषेधः) परिलम्बः (= बिलम्बः) च तयोः समाहारः तस्मात्, विना = ऋते, निषेधं विना विलम्बं बिना च, अशेषम् = सर्वम्, कोषम् = निधिम्, द्विजेभ्यः=विप्रेभ्यः, दापय =वितरणं कारय । कस्य, कृते, अद्यापि = इदानीमपि, पाल्यते = रक्ष्यते, कोष इति शेषः ? न कस्यापि कृते इति भावः । क्षीणपुण्यस्य—क्षीणानि (= नष्टानि) पुण्यानि (= सुकृतानि) यस्य तादृशस्य, मे = तारापीडस्य, पालनादिकम् = भरणपोषणरक्षादिकम्, प्रजानामिति शेषः, करणीयम् = विधेयं, कर्तव्यम्, अधुना = इदानीम्, पुत्राभावे इत्यर्थः, क्षीणम् = नष्टम् । हे भूमिपतयः ! = भूपतयः, अधीनस्थनृपाः !, यथाभूमि = भूमिम् अनतिक्रम्य, स्व-स्वराज्य-भूमिमिति भावः, यात = गच्छत । साम्प्रतम्, उत्सृष्टाः = उन्मुक्ताः, गमनाय स्वतन्त्राः, स्थ=वर्तध्वे, यूयमिति शेषः । यथा = येन प्रकारेण, च, प्रजाः = पाल्याः लोकाः, अद्यैव = अस्मिन्नेव दिने, अस्य = चन्द्रापीडस्य, दुःखम् = हृदयस्फोटरूपव्यथाम्, न, जानन्ति = अवगच्छन्ति, तथा = तेनैव प्रकारेण, करिष्यथ = विधास्यथ । मे = मम तारापीडस्य, वत्सः = पुत्रः, कथावशेषीभूतः—कथा (= नामकीर्तनम्) एव अवशेषः (= अवशिष्टभागः) यस्य, तथाभूतः, जातः [अकथाविशेषः कथाविशेषः संपद्यमानः भूतः इति कथाविशेषीभूतो जातः । अभूततद्भावे च्विप्रत्यये रूपम् ।] कम् = अज्ञातम्, अपरम् = भिन्नम्, राजानम्, संविधाय = कृत्वा, राज्यभारं निक्षिप्येति भावः, यामि = व्रजामि, तपोवनादाविति शेषः । एवम् = अनेन प्रकारेण, आर्त्तप्रलापिनम्—आर्त्तम् (= करुणम्)

प्रवेश के लिये उपयोगी (आवश्यक) सामग्री (भण्डारगृह से) निकलवाओ । अब बेकार में रोने से क्या ? हे देवि ! किसी अवरोध (रोक-टोक) तथा विलम्ब के बिना सारा खजाना ब्राह्मणों को दिलवा दो, बंटवा दो । अब भी किसके लिये रखा जाय या रक्षा की जाय ? क्षीण पुण्यवाले मेरे लिये अब पालन आदि कर्त्तव्य सब क्षीण हो गये, समाप्त हो गये । राजा लोग (अपनी-अपनी) भूमि में जायें । अब तुम सभी मुक्त हो, स्वतन्त्रता प्राप्त कर चुके हो । जिस प्रकार से इस (चन्द्रापीड) के दुःख को प्रजा आज ही न जान पाये वैसा करें । मेरा बेटा अब केवल नाम को (कहानीमात्र) बचा है अर्थात् शरीर से न रहकर नाम से ही है । अब किस दूसरे को (राजा) बनाकर [वन में या परलोक] जाऊँ ?' इस प्रकार से आर्त्तस्वर में विलाप करने वाले, अपनी (विलासवती की) पीडा का ध्यान न रखकर विलासवती द्वारा सम्भाले गये शरीरवाले राजा तारापीड से अत्यन्त दुःखी होकर त्वरितक

१. अवरोधपटलं दापय । पुरोधः परिलम्बाद् विना प्रविश्य दापय—इत्येवोचिततरः पाठ ।
२. तथोत्सृष्टाः स्थः, दृष्टाः स्थ ।
३. अस्य वा दुःखम्, अनाथतादुःखम् ।
४. कथमपरं संविधाय यामि, कमपरं संविधापयामि ।
५. आर्तं प्रलपन्तं च ।

चेतितात्मपीडया विलासवत्या धृतशरीरमातंतरस्वरस्त्वरितको व्यज्ञापयत्—'देव ! [1]स्फुटितेपि हृदये ध्रियते शरीरेण युवराजः। शापदोषाद्वैशम्पायनस्य च यथा जन्म तथा निरवशेषं शृणोतु तावद् देवः' इति।

तारापीडस्तु तदद्भुतमाकर्ण्य कौतुकान्तरितशोकावेगो विगतनिमेषेण चक्षुषाविष्ट इव दत्तावधानस्तेन कथ्यमानं यथादृष्टं यथाश्रुतं यथानुभूतं च निरवशेषं तत्सर्वमश्रौषीत्। श्रुत्वा च तमनेकचिह्नोत्पादितप्रत्ययमश्रद्धेयं च निरतिशयशोककारणं च विस्मयास्पदभूतं

यथा स्यात् तथा प्रलपति (= विलपति) इत्येवंशीलम्, अतएव, अचेतितेत्यादिः—अचेतिता (= न ध्याता, विचिन्तिता) आत्मनः (= स्वस्याः) पीडा (= व्यथा) यया तादृश्या, विलासवत्या = महिष्या, धृतशरीरम्-धृतम् (= अवलम्बितम्, गृहीतम्) शरीरम् (= कायः) यस्य तं तादृशम्, तारापीडम् = महीपतिम्, आर्त्ततरस्वरः—अतिशयेन आर्त्तः (= करुणः, दीनः) स्वरः (= उच्चारणध्वनिः) यस्य तादृशः, त्वरितकः = एतन्नामा चन्द्रापीडस्य बालसेवकः, व्यज्ञापयत् = सूचितवान्, न्यवेदयत्—देव ! = स्वामिन् !, हृदये = चित्ते, स्फुटिते, विदीर्णे मृते, सति, अपि, युवराजः = चन्द्रापीडः, शरीरेण = देहेन, ध्रियते = धार्यते, शरीरं तु जीवितावस्थमिव वर्तते इति तदाशयः, शापदोषात् = शापस्य दुष्प्रभावात्, यथा = येन प्रकारेण, च, वैशम्पायनस्य, जन्म = उत्पत्तिः, जाता, तथा = तेन प्रकारेण, निरवशेषम् = सम्पूर्णम्, देवः = महाराजः, तावत् = प्रथमम्, शृणोतु = आकर्णयतु, तदनन्तरमेव शोकादिकं करणीयमिति भावः।

तारापीडस्त्विति। तारापीडः, तु, तत् = त्वरितकोक्तम्, अद्भुतम् = विस्मयजनकम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, कौतुकेत्यादिः—कौतुकेन (= श्रवणकुतूहलेन) अन्तरितः (= व्यवहितः) शोकस्य (= शुचः, दुःखातिशयस्य) आवेगः (= रयः) यस्य तादृशः, विगतनिमेषेण = निमीलनशून्येन, चक्षुषा = नेत्रेण, आविष्टः = भूतादिगृहीतः, इव, दत्तेत्यादिः—दत्तम् (= समर्पितम्) अवधानम् (= ध्यानम्, चित्तैकाग्र्यम्) येन तादृशः, सन्, तेन = त्वरितकेन, कथ्यमानम् = उच्यमानम्, निवेद्यमानम्, यथादृष्टम्—दृष्टम् (= विलोकितम्) अनतिक्रम्य, यथाश्रुतम्-श्रुतम् (= आकर्णितम्) अनतिक्रम्य, यथानुभूतम्—अनुभूतम् (= साक्षात्कृतम्, अनुभवविषयीकृतम्) अनतिक्रम्य, च, यथा स्यात् तथा, निरवशेषम्—निर्गतः अवशेषः यस्मात् तादृशम्, सम्पूर्णमिति भावः, तत् = तेनोच्यमानम्, सकलम् = समस्तम्, अश्रौषीत् = आकर्णयामास। अनेकेत्यादिः—अनेकानि (= नानाविधानि) यानि चिह्नानि (= लक्षणानि, गमकानि) तैः उत्पादितः (= जनितः) प्रत्ययः (= विश्वासः) यस्य (= वृत्तान्तस्य) तं तादृशम्, अश्रद्धेयम् = श्रद्धाया अनर्हम्, च, निरतिशयेत्यादिः—निरतिशयः (= भूयान्, अत्यधिकः) यः शोकः (= शुक्, दुःखम्) तस्य

कहने लगा—"देव ! हृदय के फट जाने पर भी युवराज शरीर द्वारा धारण किये गये अर्थात् जीवित हैं। (महाराज ! आप अपने मन मे जैसी कल्पना कर रहे हैं वैसा नहीं है, हृदय के फट जाने पर भी युवराज शरीर से जीवित है।] शापदोष के कारण जिस प्रकार से वैशम्पायन का जन्म हुआ वह सब तो पहले सुन लीजिये।"

उस अद्भुत (वृत्तान्त) को सुनकर कौतूहल द्वारा जिसके शोक का वेग छिपा (दबा) दिया गया ऐसे राजा तारापीड ने टकटकी बाँधे नेत्र से भूतग्रसित सा, पूरा ध्यान लगाये हुये, त्वरितक द्वारा कही जाती हुई बात—जैसी देखी गई, जैसी सुनी गई और जैसी अनुभव की गई वह सब पूरी की पूरी सुनी। युवराज चन्द्रापीड तथा वैशम्पायन का वह वृत्तान्त, जिसने कि अनेक चिह्नों (लक्षणों) से विश्वास उत्पन्न करा दिया था, [फिर भी] विश्वास के अयोग्य, अत्यन्त शोक का

१. देव, यथा त्वं हृदये संभावयसि न तथा, स्फुटितेऽपि हृदये शरीरेण ध्रियते युवराजः'—इति पाठान्तरमेव समीचीनम्।

च दुःश्रवं च कौतुककरं च युवराजवैशम्पायनयोर्वृत्तान्तमीषदिव विवर्तिताननो विमर्शस्तिमिततारकां [1]दृष्टिं निर्विशेषांवस्थे [2]शुकनासमुखेऽभ्यपातयत्[3]। सुहृदस्तु स्वयं दुखिता[4] अपि[5] निधानीकृत्यात्मदुःखं सुहृद्दुःखापनोदायैव [6]यतन्ते यतः शुकनासस्तदवस्थोपि स्वस्थवदवनिपतिमुवाच—

'देव, विचित्रेऽस्मिन्संसारे सञ्चरत्सु[7] सुखदुःखमयेषु देवतिर्यग्योनिमानुषेषु त्रिगुणा-

---

कारणम् (= निमित्तम्, गमकम्) च, विस्मयेत्यादिः—विस्मयस्य (=आश्चर्यस्य) च आस्पदभूतम् (= स्थानभूतम्, आश्रयम्) च, दुश्रवम्=दुःखेन श्रोतुं योग्यम्, च, कौतुककरम्=कौतूहलोत्पादकम्, च, युवराज-वैशम्पायनयोः = स्वपुत्र-शुकनासपुत्रयोः, तम् = सद्योजातम्, वृत्तान्तम् = उदन्तम्, ईषद् = किञ्चिद्, अल्पम्, इव, विवर्तिताननः—विवर्तितम् (= अन्यस्यां दिशि परिवर्तितम्) आननम् (= मुखम्) येन स तादृशः, राजा तारापीडः, विमर्शेत्यादिः—विमर्शेन (= वितर्केण, विमर्शार्थमिति भावः) स्तिमिते (= निश्चले) तारके (= कनीनिके) यस्याः सा तां तादृशीम्, दृष्टिम् = दृशम्, निर्विशेषावस्थे—निर्विशेषा (= पूर्वसमाना, अविकृता) अवस्था (= दशा) यस्य तादृशे, शुकनास–मुखे = वैशम्पायनपितुराननै, अभ्यपातयत् = प्रक्षेपयामास, शुकनासस्य विचारं ज्ञातुं तन्मुखं प्रति निरीक्षयामासेति भावः। यतः, सुहृदः = वास्तविकमित्राणि, तु, स्वयम् = आत्मना, दुःखिताः = दुःखयुक्ताः सन्तः अपि, आत्मदुःखम् = स्वव्यथाम्, निधानीकृत्य = अन्यत्र संस्थाप्य, विस्मृत्येति भावः, सुहृद्दुःखेत्यादिः—सुहृदः (= मित्रस्य) यद् दुःखम् (= क्लेशः) तस्य अपनोदाय (= दूरीकरणाय, विनाशाय), एव, यतन्ते = यत्नं कुर्वन्ति, न तु स्वीयदुःखापनोदनाय प्रथमं यतन्ते इति भावः। यतः = यस्मात् हेतोः, शुकनासः, तदवस्थः—सा (= तादृशी दुःखपूर्णा) अवस्था (= दशा) यस्य स तादृशः, सन् अपि, स्वस्थवत् = अविकृतदशः, इव, अवनिपतिम् = राजानं तारापीडम्, उवाच = निवेदितवान्।

स्वयं तादृशमद्भुतं वृत्तान्तं राज्ञः प्रश्नञ्चाकर्ण्य शुकनासः किमुवाचेति विस्तरेण वर्णयति—देव-इत्यादिना। देव ! = स्वामिन्, विचित्रे = आश्चर्यमये, अस्मिन् संसारे = जगति, सञ्चरत्सु = संभ्रमत्सु, सञ्चरणं कुर्वत्सु, सुखदुःखमयेषु = सुखदुःखयुक्तेषु, देवेत्यादिः—देवाः (= सुराः) तिर्यग्योनयः (= पशुपक्ष्यादयः) मानुषाः (= मानवाः) च तेषु, सर्वविधयोनिषु स्थितेषु इति

कारण (जनक), आश्चर्य का स्थान अर्थात् आश्चर्य उत्पन्न करने वाला, अत्यन्त कष्ट से सुनने योग्य तथा कुतूहल उत्पन्न करने वाला था, को सुनकर, मुख को कुछ पीछे घुमाकर, (राजा तारापीड ने) तर्क-वितर्क के कारण निश्चल पुतलीवाली दृष्टि (नेत्र) से बिना किसी परिवर्तित अवस्था वाले अर्थात् निर्विकारभाव से बैठे हुए शुकनास के मुख पर डाली, उसे देखने लगा। मित्र तो स्वयं दुःखी होते हुए भी अपने दुःख को एक ओर रखकर अर्थात् भूलकर अपने मित्र के दुःख को दूर करने के लिये ही प्रयत्न करते हैं, इसी कारण से तो शुकनास उस प्रकार की (दुःखमयी) दशावाला होता हुआ भी स्वस्थ (बिना किसी तकलीफ वाला) सा होता हुआ राजा से कहने लगा—

'महाराज ! इस विचित्र संसार में सुख तथा दुःख से युक्त अर्थात् सुखी और दुखी होते हुए

---

१. दृशम्। २. शुकनासे। ३. न्यपातयत्। ४. दुःखं दुःखिता।
५. विस्मृत्य। ६. वर्तन्ते। ७. सञ्चरत् सुखदुःखमयेषु, सञ्चरत्सु सुखदुःखमोहमयेषु।

त्मनः प्रधानस्यापि परिणामात् [1]परमाण्वादेर्ब्रह्माण्डपर्यन्तस्योत्पत्तिस्थितिप्रलयकारणस्येश्वरस्येच्छया धर्माधर्मसाधनानामिष्टानिष्टफलसम्बन्धकारिणां कर्मणां वा शुभाशुभानां विपाक[2]-स्वभावाद्वा स्वयमेवानेकप्रकारमुत्पद्यमानस्य तिष्ठतो विनश्यतो वा नियतवृत्तेः स्थावरजङ्गमस्य न काचिदवस्था सा या न सम्भवति। [3]तत्कुतोयं देवस्यात्र वस्तुनि [4]विमर्शः? यदि [5]युक्तेर्विचारात्कियन्त्यत्र युक्तिरहितान्यागमप्रामाण्यादेवाभ्युपगतान्यपि[6] [7]संवादीनि

भावः, त्रिगुणात्मनः—त्रयः गुणाः (= सत्त्वम्, रजस्, तमस्—इत्याख्याः) इत्यात्मा (= स्वरूपं यस्य तादृशस्य, सत्त्वरजस्तमोरूप-गुणत्रयस्वरूपस्येत्यर्थः, प्रधानस्य = प्रकृतेः, अपि, परिणामात् = परिणमनात्, विकारादिति भावः, परमाण्वादेः—परमाणुः (= न्यायादिशास्त्रप्रतिपादित-सूक्ष्मतमं तत्त्वम्) आदौ (= प्रथमम्) यस्य तादृशात्, (आरभ्य) ब्रह्माण्डपर्यन्तस्य-ब्रह्माण्डम् (=चराचरात्मकं जगत्) पर्यन्तः (= समाप्तिः) यस्य तादृशस्य, समस्तचराचरात्मकजगत इति भावः, उत्पत्तीत्यादिः—उत्पत्तिः (= जन्म) स्थितिः (= अवस्थानम्) प्रलयः (= विनाशः) इत्येतेषां कारणस्य (= निमित्तभूतस्य) ईश्वरस्य = सर्वशक्तिमतो भगवतः, इच्छया = स्पृहया, वा = अथवा, धर्माधर्मसाधनानाम् =सुकृतासुकृतयोर्निमित्तानाम्, इष्टेत्यादिः—इष्टानिष्टे (=ईप्सितानीप्सिते, वाञ्छितावञ्छिते) ये फले (= विपाके, साध्ये) तयोर्द्वयोः सम्बन्धं कुर्वन्तीत्येवं शालिनाम्, स्वर्गनरकादिप्राप्तिरूपफल-सम्बन्धविधायिनामित्यर्थः, शुभाशुभानाम् = सदसताम्, कर्मणाम् = कृत्यानाम् विपाकस्वभावाद्—विपाकः (= परिणामः) तद्रूपः स्वभावः (=निसर्गः) तस्मात्, [वस्तुतस्तु—'विपाकात् स्वभावाद् वा'—इत्येव पाठो युक्तः।] स्वयमेव = आत्मनैव, अनेकप्रकारम् = बहुविधं यथा स्यात् तथा, उत्पद्यमानस्य = जायमानस्य, तिष्ठतः = अवस्थितिं कुर्वतः, वर्तमानस्य, वा = अथवा, विनश्यतः = विनाशं प्राप्नुवतः, नियतवृत्तेः—नियता (= निश्चिता) वृत्तिः (=वर्त्तनम्) यस्य तादृशस्य, क्वचित्तु—अनियतवृत्तेरिति पाठः, स्थावरजङ्गमस्य = चराचरस्य, न = नैव, काचित् = कापि, सा, अवस्था = दशा, या = अवस्था, न, सम्भवति = सम्भावनाविषयीभवति, भवितुमर्हति। तत् = तस्मात्, देवस्य = महाराजस्य, अत्र = अस्मिन्, वस्तुनि = विषये, कुतः = कस्मात् कारणात्, विमर्शः = वितर्कः, संशय इति भावः? यदि = चेत्, युक्तेः=उपपत्तेः, विचारात् = विमर्शात् [चिन्त्यते-प्रभृति पदमत्र संयोज्यम्, अन्यथाऽत्र वाक्ये 'यदि' इति पदार्थस्यान्वयो न युज्यते। वस्तुतस्तु—'यदि' इति पदमधिकमेव मन्तव्यम्।] अत्र = जगति, कियन्ति= बहूनीति भावः, युक्तिरहितानि = उपपत्तिशून्यानि, आगमप्रामाण्याद् = वेदादीनां प्रमाणत्वेन, एव, अभ्युपगतानि = स्वीकृतानि, अपि, संवादीनि = अव्यभिचारीणि, यथार्थानीति भावः,

देव, पशु-पक्षी तथा मनुष्यों के चलते-फिरते रहने पर, त्रिगुणात्मक (= सत्त्व-रजस्तमोगुणात्मक) प्रकृति के भी परिणाम के कारण अथवा परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारणभूत (जनक) ईश्वर की इच्छा से धर्म और अधर्म के साधन भूत, इष्ट (भले) और अनिष्ट (बुरे) फल से सम्बन्ध रखने वाले शुभ और अशुभ कर्मों के विपाक स्वभाववाला होने के कारण अर्थात् उन्हीं कर्मों के अनुसार फल होने के कारण स्वयं ही अनेक प्रकार से उत्पन्न होनेवाले, स्थित होने वाले अथवा विनष्ट होने वाले (किन्तु) निश्चित वृत्ति वाले इस स्थावर जङ्गमात्मक (प्राणियों) की कौन सी दशा है जो नहीं हो सकती है? अर्थात् सभी कुछ हो सकता है। अतः इस विषय में महाराज को तर्क-वितर्क करने का क्या कारण है? इसमें कहाँ से सन्देह है? यदि

१. परिणामादात्मनः।　２. विपाकाद्वा, विभावाद्वा, विपाकात् स्वभावाद्वा।
३. तत्कि कुतोऽयं।　४. विमर्षः।　५. युक्तेः।
६. एव।　७. अविसंवादीनि, विसंवादरहितानि।

दृश्यन्ते। मुद्राबन्धाद्ध्यानाद्वा विषप्रसुप्तस्योत्थापने कीदृशी युक्तिः ? अयस्कान्तस्य चायसः समाकर्षणे [1]भ्रमणे वा। मन्त्राणां वैदिकानामवैदिकानां वानेकप्रकारेषु कर्मसु सिद्धौ। नानाविधद्रव्यसंयोगानां[2] वा [3]मरणमदनाद्युत्पादनापहरणवशीकरणविद्वेषणादिषु शक्तेः समुत्पादनात्! अन्येषां बहुतराणामेवंविधानां च तत्र तत्र सर्वस्मिन्नेवागमः प्रमाणम्। आगमेषु सर्वेष्वेव पुराण[4]रामायणभारतादिषु सम्यगनेकप्रकाराः शापवार्ताः। तद्यथा—महेन्द्र-

दृश्यन्ते = विलोक्यन्ते। मुद्राबन्धात्—मुद्रा (= योगशास्त्रनिर्दिष्ट-शरीर-क्रियाविशेषः) तस्या बन्धात् (= बन्धनात्, करणात्) वा = अथवा, ध्यानात् = विशेषरूपेण चित्तस्यैकाग्रीकरणात्, कारणात्, विषसुप्तस्य = गरलपानजनितमूर्च्छाग्रस्तस्य, उत्थापने = चैतन्यापादने, कीदृशी = किं प्रकारा, युक्तिः = उपपत्तिः ? न कापीति भावः। अयस्कान्तस्य = चुम्बकविधायक-लौहविशेषस्य, अयसः = लौहसामान्यस्य, समाकर्षणे = समाकृष्टौ, भ्रमणे = यथादिशं सञ्चारणे, वा, का युक्तिः ? एवमेव, वैदिकानाम् = वेदोक्तानाम्, अवैदिकानाम् = शाबरादीनाम्, मन्त्राणाम् = शब्दसमूह-विशेषाणाम्, अनेकप्रकारेषु = नानाविधेषु, कर्मसु = कृत्येषु, सिद्धौ = निष्पत्तौ, साफल्ये, का युक्तिः ? वा = अथवा, नानाविधद्रव्यसंयोगानाम्—नानाविधाः (= अनेकप्रकाराः) ये द्रव्याणाम् (= पदार्थानाम्) संयोगाः (= संमिश्रणानि) तेषाम्, मरणेत्यादिः—मरणम् (= मृत्युः), मदनः (= कामः) आदौ यस्य तादृशस्य (= कार्यस्य) उत्पादनम् (= जननम्) च, अपहरणम् (= अपनयनम्), च, वशीकरणम् (= स्वाधीनीकरणम्) च, विद्वेषणम् (= द्वेषजननम्) च आदौ येषां तादृशेषु (कार्येषु), शक्तेः = सामर्थ्यस्य, समुत्पादनात् = निष्पादनात्, जननात्, कर्मसु सिद्धौ कीदृशी युक्तिः ? [अत्र सर्वत्रापेक्षितवाक्यांशान् संयोज्यैवापेक्षितार्थः करणीयः।] एवंविधानाम् = एतादृशानाम्, अन्येषाम् = पूर्वोक्तादभिन्नानाम्, बहुतराणाम् = अत्यधिकानाम्, कार्याणां जनने इति शेषः, तत्र तत्र सर्वस्मिन् = अखिले कार्यसमूहे, आगमः = वेदादिः, एव, प्रमाणम्=प्रमाकरणम्,न तु कापि युक्तिस्तत्र विलोक्यते इति भावः। पुराण-रामायण-महाभारतादिषु—पुराणानि (= अष्टादशसंख्यकानि प्रसिद्धानि) च रामायणम् (=आदिकाव्यरूपेण ख्यातम्), च महाभारतम् (= प्रथममैतिह्यग्रन्थः) च—एतानि आदौ येषां तेषु, सर्वेषु = समस्तेषु, आगमेषु = शास्त्रादिषु, एव, सम्यक् = समुचित प्रकारेण, अनेकप्रकाराश्च, शापवार्ताः = शापविषयक-

युक्ति की दृष्टि से विचार किया जाय तब तो इस संसार में युक्ति से रहित (किन्तु) केवल आगम (शास्त्रादि) प्रमाणों से स्वीकार की गई भी यथार्थ (सही-सही रूप में) दिखाई देती हैं। विषपान कर सोये=मूर्छित व्यक्ति को मुद्राबन्ध (एक यौगिक ध्यान विशेष) से अथवा ध्यान के द्वारा [होश में लाकर] उठाकर खड़ा कर देने में कौन सी युक्ति है ? अथवा चुम्बक द्वारा लोहे के [अपनी ओर] खींचने में अथवा [अपने अनुसार] घुमाने में [कौन-सी युक्ति है ?] वैदिक अथवा अवैदिक मन्त्रों द्वारा अनेक प्रकार के कार्यों के सिद्ध करने में [कौन-सी युक्ति है ?] और नाना प्रकार के द्रव्यसंयोगों (विभिन्न वस्तुओं के परस्पर मिला देने) को मरण, काम (वासना) आदि को उत्पन्न करना, अपहरण, वशीकरण तथा विद्वेषण=शत्रुता उत्पन्न कराने आदि कार्यों में शक्ति के उत्पन्न हो जाने से [कार्य सिद्धि में कौन-सी युक्ति है] ? और भी इसी प्रकार के बहुत से पदार्थों की [कार्य सम्पादन क्षमता उत्पन्न होने में] उन-उन सभी में आगम ही प्रमाण है। सभी शास्त्र, रामायण, महाभारत

१. भ्रामणे। २. संयोगद्रव्याणाम्।
३. मरणामरणमदनादि० मरणमदमान्द्य। ४. रामायणमहाभारतादिषु।

पदवर्तिनो नहुषस्य राजर्षेरगस्त्यशापादजगरता[1]। सौदासस्य च वसिष्ठसुत[2]शापान्मानुषादत्वम्। असुरगुरुशापाच्च [3]ययातेस्तारुण्य एव जरसा भङ्गः। [4]त्रिशङ्कोश्च पितृशापाच्चाण्डालभावः। [5]श्रूयते च स्वर्गवासी [6]महाभिषो नाम राजास्मिल्लोके [7]शन्तनुरुत्पन्नः। तत्पत्नीत्वमुपगतायाः[8] गङ्गायाः शापदोषादष्टानामपि वसूनां मनुष्येषूत्पत्तिः। तिष्ठतु तावदन्य एव। अयमादिदेवो भगवानजः, स एव जमदग्नेरात्मजतामुपगतः। श्रूयते च

वृत्तान्ताः सन्तीति भावः।

शापवार्त्ताः विस्तरेण वर्णयति—तथ्येत्यादिना। महेन्द्र–पदवर्तिनः—महेन्द्रस्य (= देवराजस्य) यत् पदम् (= स्थानम्) तस्मिन् वर्तते इत्येवंशीलस्य, राजर्षेः—राजा चासौ ऋषिस्तस्य, नहुषस्य = एतन्नाम्नः, अगस्त्यशापात् = कुम्भोद्भवस्य शापवचनप्रभावात्, अजगरता = अजगराख्यसर्पविशेषयोनिप्राप्तिः। सौदासस्य = सुदास-पुत्रस्य एतन्नाम्नो राज्ञः, च, वसिष्ठ–सुतशापाद् = कुलगुरु–महर्षिवसिष्ठ–पुत्रशापप्रदानात्, मनुषादत्वम् = मानवमांसभक्षकत्वम्। असुरगुरुशापात् = शुक्राचार्यशापप्रभावात्, च, ययातेः = एतन्नाम्ना ख्यातस्य नृपतिविशेषस्य, तारुण्ये = युवावस्थायाम्, एव, जरसा = वार्धक्येन, भङ्गः = यौवनविनाशः, वार्धक्यप्राप्तिरिति भावः। त्रिशङ्कोः—एतन्नाम्ना ख्यातस्य हरिश्चन्द्रवंशीयस्य नृपविशेषस्य, च, पितृशापात् = पितृशापप्रभावात्, चाण्डालभावः = चाण्डालत्वम्। श्रूयते = पुराणादिषु आकर्ण्यते, च, स्वर्गवासी = देवलोकनिवासी, महाभिषः = एतन्नामा, राजा = नृपः, एष, अस्मिन् लोके = भूलोके, शन्तनुः = एतन्नाम्ना पुरुवंशस्य प्रधानपुरुषः, राजा, उत्पन्नः = जातः। तत्पत्नीत्वम् = तस्य भार्यात्वम्, उपगतायाः = प्राप्तायाः भार्याभूताया इत्यर्थः, गङ्गायाः = जाह्नव्याः, [अत्र पञ्चमी एव न तु षष्ठी] शापदोषात् = कदाचन शापप्रभावात्, अष्टानाम् = अष्टसंख्याकानाम्, अपि, वसूनाम्=देवयोनिविशेषाणाम्, मनुष्येषु = मानवेषु, मनुष्ययोनिष्वित्यर्थः, उत्पत्तिः = जन्म। तिष्ठतु = दूरे भवतु, आस्ताम्, अन्यः = अपरः दृष्टान्तः, तावदिदं वाक्यालङ्कारे। अयम् = एष, सर्वत्र ख्यातः, आदिदेवः = विष्णुः, भगवान् = ऐश्वर्यवान्, अजः = अजन्मा, सः = विष्णुः, एव, जमदग्नेः = एतन्नामकस्य महर्षेः, आत्मजताम् = पुत्रत्वम्, उपगतः = प्राप्तवान्, भगवान् विष्णुरेव परशुरामरूपेण जन्म गृहीतवानिति प्रसिद्धम्। श्रूयते = आकर्ण्यते, च, इदमपि, पुनः = भूयः, आत्मानम् = स्वम्,

और पुराण आदि में अच्छी तरह से अनेक प्रकार के शापों की बातें [कथायें देखी जाती हैं।] उदाहरणार्थ–इन्द्र के पद पर बैठे हुए राजर्षि नहुष का अगस्त्य ऋषि के शाप से अजगर सर्प बन जाना। सुदासपुत्र सौदास का वसिष्ठपुत्र के शाप से (मांसभक्षी) राक्षस बन जाना। असुरगुरु शुक्र के शाप से राजा ययाति का यौवन में ही बूढ़ा हो जाना। और त्रिशंकु का पिता के शाप से चाण्डाल बन जाना। यह भी सुना जाता है कि स्वर्गवासी महाभिष नामक राजा इस लोक में शन्तनु रूप से उत्पन्न हुए थे। इनकी पत्नी बनी हुई गङ्गा से शाप के दोष के कारण आठों वसुओं की मनुष्य रूप में ही उत्पत्ति हुई थी। अब दूसरी बात छोड़िये। यह आदि देव अजन्मा भगवान (विष्णु हैं)

१. इन्द्रपदमारूढस्य दर्पयुक्तस्य नहुषस्य अगस्त्यशापेनाजगरयोनिप्राप्तिकथा महाभारते वर्तते।

२. पराजितेन एकेन राक्षसेन अश्वमेधस्य समाप्तौ वसिष्ठस्य कपटरूपं धृत्वा सामिषं भोजनं याचितं कपटाच्च तथैव निर्माय ऋषिपुत्रेभ्यः दत्तम्। तेन क्रुद्धैः वसिष्ठपुत्रैः सौदासाय शापो दत्त इति कथा वाल्मीकि रा० उ० का० ६५। ३. प्रसिद्धा कथा महाभारतादौ।

४. द्र० वाल्मी० उ० का० ५८। ५. महाभारतीया कथातिप्रसिद्धा।

६. महाभिषः। ७. शान्तनुः, शान्तनुपत्नीत्वम्। ८. उपगतायां गङ्गायाम्, उपागतायाः स्वर्गङ्गायाः।

पुनश्चतुर्धात्मानं विभज्य राजर्षेर्दशरथस्य तथैव मथुरायां वसुदेवस्य। तन्मनुष्येषु देवतानामुत्पत्तिर्नैवासम्भाविनी[1]। न च पूर्वमनुष्येभ्यो गुणैः परिहीयते देवः। न चापि भगवतः कमलनाभादतिरिच्यते चन्द्रमाः। किमत्रासम्भावनीयम् ? अपि च, गर्भारम्भसम्भवे देवेन देव्या वदने विशंश्चन्द्रमा एव [2]दृष्टः। तथा ममापि स्वप्ने पुण्डरीकस्य दर्शनं समुपजातम्[3] (पूर्वार्द्धे पृ० ३२४-२५)। तदुत्पत्तिं प्रति तयोर्नास्त्येव सन्देहः। विनष्टयोः

चतुर्धा = चतुर्षु भागेषु, विभज्य = विभागीकृत्य, राजर्षेः, दशरथस्य = रामचन्द्रजनकस्य, आत्मजत्वमुपगतः, तथैव = तेनैव प्रकारेण, मथुरायाम् = एतन्नाम्न्यां नगर्याम्, वसुदेवस्य = आत्मजतामुपगतः। रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाश्चत्वारोऽपि भ्रातरो विष्णोरंशभूता एवासन्। एवमेव श्रीकृष्णोऽपि तस्यैवावतार इति तत्र तत्र प्रसिद्धम्। तत् = तस्मात्, मनुष्येषु = मानवेषु, देवतानाम् = सुराणाम्, उत्पत्तिः = जन्म, नैव, असम्भाविनी = असम्भवा, अपि तु सर्वथा सम्भवा एवेति बोध्यम्। न, च, पूर्वमनुष्येभ्यः = पूर्वे (= प्राक्कालिकाः) च ते मनुष्याः (= मानवाः, परशुरामादयः) तेभ्यः, ['पञ्चमी विभक्तेः' इति पञ्चमी] गुणैः = दयौदार्यदाक्षिण्यादिभिः, देवः = तारापीडो युवराजश्चन्द्रापीडो वा, हीयते = हीनो वर्तते, अपितु तत्तुल्य एवेति भावः। न, च, अपि, चन्द्रमाः, भगवतो कमलनाभात् = विष्णोः, अतिरिच्यते = अधिको भवति, गुणादिवैशिष्ट्यविषये इति शेषः, अपि तु विष्णोरपेक्षया चन्द्रमाः हीनगुण एवेति बोध्यम् एवञ्च यदा विष्णोरपि मानवयोनौ जन्म तदा चन्द्रविषये किं कथनीयम्। अतः, अत्र = अस्मिन् विषये, चन्द्रस्य मानवरूपेणोत्पत्तावित्यर्थः, किम्, असम्भावनीयम् = असम्भाव्यम् ? न किमपीति भावः। तदेव द्रढयितुमाह—अपि चेत्यादिना। अपि च = अन्यच्च; गर्भारम्भसमये = गर्भधारणकालस्य प्रारम्भे, देवेन = महाराजेन, देव्याः = महाराज्याः विलासवत्याः, वदने = मुखे, विशन् = प्रवेशं कुर्वन्, चन्द्रमाः = शशी, दृष्टः = विलोकितः, एव। तथा = तेनैव प्रकारेण, मम = शुकनासस्य, अपि, स्वप्ने = स्वप्नावस्थायाम्, पुण्डरीकस्य = कमलस्य, दर्शनम् = विलोकनम्, समुपजातकम् = सम्भूतम्। [अनयोरुत्पत्ति-कालात् पूर्वमेवानयोर्जन्मविषये संकेतः पूर्वार्धे (पृ० ३२४-२५) समुपवर्णितस्तत्रैव विस्तरेण द्रष्टव्यम्।] तत् = तस्मात्, तदुत्पत्तिम्—तयोः (= चन्द्रापीडवैशम्पायनयोः) उत्पत्तिः (= जन्म) ताम्, प्रति, सन्देहः = संशयः, न, अस्ति = वर्तते,

वे ही जमदग्नि के पुत्र (परशुराम) बने थे। यह भी सुना जाता है कि उन्होंने ही पुनः अपने को चार भागों में विभक्त करके राजर्षि दशरथ के पुत्र (राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न रूप) में और उसी प्रकार मथुरा में वासुदेव के पुत्र (श्रीकृष्ण) रूप में जन्म लिया था। इसलिए मनुष्यों में देवताओं की उत्पत्ति असम्भव नहीं है। और पूर्ववर्ती (दशरथ आदि) मनुष्यों की अपेक्षा गुणों से आप महाराज कम नहीं हैं। और न ही भगवान् कमलनाभ विष्णु से बढ़कर अर्थात् बड़ा चन्द्रमा है। अतः इसमें असंभव क्या है ? और भी, गर्भ के आरम्भ के समय में महाराज ने महारानी के मुख में प्रवेश करता हुआ चन्द्रमा [स्वप्न में] देखा था। उसी प्रकार मुझे भी स्वप्न में पुण्डरीक (= कमल) का दर्शन हुआ था। [इस कारण चन्द्रापीड के चन्द्र का अवतार और वैशम्पायन के पुण्डरीक का अवतार इस रूप में]इन दोनों की उत्पत्ति के विषय में सन्देह है ही नहीं। विनष्टों=आत्मा से रहितों

१. असंभाविता।

२. विलासवत्या···आनने सकलकलापूर्णमण्डलं शशिनं प्रविशन्तमद्राक्षीत्। काद० पू० पृ० ३२४।

३. द्विजेन···पुण्डरीकमुत्सङ्गे देव्या मनोरमायाः निहितं दृष्टम्। काद० पू० पृ० ३२५-२६।

शरीरस्याविनाशः कथं, कथं वा पुनर्जीवितप्रतिलम्भ[1]—इत्यत्राप्यखिललोकप्रख्यात[2]प्रभावममृतमेवैकं[3] कारणमावेदितम् । तच्चन्द्रमसि विद्यत इत्येषास्त्येव वार्ता । [4]तत्सर्वमेतदित्थमेवावगच्छतु देवः ।

अन्यच्च, [5]तादृशाकारकान्तेरखिललोकाह्लादकारिणोऽन्यत्र सम्भव एव नास्ति । तत्कल्याणैर्नचिराच्छापावसाने [6]निर्वर्तितगन्धर्वसुतोद्वाहमङ्गलस्य गलन्नयनपयसो बध्वा

एव, मम मनसीति शेषः, अतएव भवतापि सन्देहो न विधेय इति तद्भावः । विनष्टयोः = विनाशं प्राप्तयोः, मृतयोः तयोश्चन्द्रापीडवैशम्पायनयोः, शरीरस्य = देहस्य, कथम् = कस्मात् कारणात्, अविनाशः = विनाशाभावः, अविकृतता, कथम् = कस्मात् कारणाद्, वा, जीवितप्रतिलम्भः—जीवितस्य (= जीवनस्य) प्रतिलम्भः (= पुनः प्राप्तिः) भवितेति शेषः, इत्यत्रापि = अस्मिन् विषये, अपि, अखिलेत्यादिः—अखिलेषु (= सर्वेषु) लोकेषु (= जगत्सु, प्राणिषु वा) प्रख्यातः (= प्रसिद्धः) प्रभावः (= महिमा, समर्थता वा) यस्य तादृशम्, अमृतम् = पीयूषम् एव, एकम् = अद्वितीयम्, कारणम् = निमित्तम्, आवेदितम् = कथितम्, अस्ति । तत् = अमृतम्, चन्द्रमसि = इन्दौ, विद्यते = वर्तते, एव, इति, एषा = इयम् वार्त्ता = वृत्तान्तः, किंवदन्ती, अस्ति, एव । तत् = तस्मात्, एतत् = त्वरितकोक्तम् इदम्, सर्वम् = सकलम्, इत्थम् = अनेन रूपेण यथार्थमिति भावः, एव, देवः = स्वामी, अवगच्छतु = जानातु ।

पुनरपि स्वोक्तमेव समर्थयति—अन्यच्चेत्यादिना । अन्यत् = अपरम्, च, इदमपि बोध्यमिति, तादृशेत्यादिः—तादृशः (= तथाविधः) आकारः (= आकृतिः) कान्तिः (= सौन्दर्यम्) च यस्य तादृशस्य, अखिलेत्यादिः—अखिलस्य (= सर्वस्य) लोकस्य (= जगतः) आह्लादम् (= आनन्दम्) करोति (= जनयति) इति तादृशस्य प्राणिविशेषस्य, अन्यत्र = अन्यस्मिन् स्थाने, चन्द्रलोकाद् भिन्ने, सम्भवः = उत्पत्तिः, एव, न अस्ति । तत् = तस्मात्, कल्याणैः = मङ्गलैः, नचिरात् = शीघ्रमेव, शापावसाने = शापस्य समाप्तौ, निर्वर्तितेत्यादिः—निर्वर्तितः (= सम्पादितः) गन्धर्वसुतया (= गन्धर्वाधिपति-चित्ररथस्य कन्यया कादम्बर्या सह) उद्वाहः (= विवाहः, परिणयः) एव मङ्गलम् (= कल्याणम्) येन तस्य तादृशस्य, गलन्नयनपयसः—गलत् (= स्रवत्, निःसरत्) नयनाभ्याम् (= नेत्राभ्याम्) [बहुा—नयनयोः] पयः (= जलम्, अश्रुसलिलमिति भावः) यस्य तादृशस्य, बध्वा = स्नुषया, स्वपत्न्या, सह = साकम्,

के शरीर का कैसे विनाश न होना तथा दुबारा जीवन प्राप्त करना कैसे [सम्भव है]—इस विषय में भी समस्त संसार में प्रसिद्ध प्रभाव वाला एकमात्र अमृत ही कारण कहा गया है । और वह अमृत चन्द्रमा में रहता ही है—यह बात [प्रसिद्ध] है ही । इसलिए यह सब आप ऐसा ही [जैसा सुना है सच] समझें ।

और भी, समस्त संसार को आनन्द देनेवाले उस प्रकार के [सुन्दर] शरीर तथा शोभावाले का अन्यत्र (चन्द्रमा से भिन्न में) होना सम्भव नहीं है । इसलिए कल्याणकारकों (अनुष्ठानों) से शीघ्र ही शाप के समाप्त हो जाने पर गन्धर्वराज-कन्या कादम्बरी के साथ विवाह रूपी मंगलकृत्य को सम्पन्न किये हुए, आँखों से नयनजल(आनन्दाश्रु) गिराते हुए,(आपकी)बधू के साथ[आपके]पैरों पर सिर

१. प्रलम्भः ।　२. प्रत्याख्यात ।　३. अमृतमनेककारणम्, अमृतमेव कारणम् ।
४. सत्यमित्थमेव ।　५. ईदृशस्याकारस्य कान्तेः, ईदृशाकारकान्तेः ।　६. निर्वर्तित० ।

सह पादयोः पततः पुत्रत्वमुपगतस्य चन्द्रापीडनामान्तरितस्य लोकपालस्यैव[1] चन्द्रमसो दर्शनेनाजन्म[2]कृतमेव सन्तापं परित्यक्ष्यति देवः। [3]तयोरेवं शापोऽस्माकं पुनर्वर एव। तदस्मिन्वस्तुनि मनागपि न देवेन देव्या वा शोकः कार्यः। मङ्गलान्यभिधार्यन्ताम्[4]। अभिमतदेवताराधनेन धनातिसर्जनेन चान्यजन्मोपार्जितं कुशलमभिवर्ध्यताम्। अकुशलमपि [5]यमनियमकष्टव्रतोपवासादिना तपःपरिक्लेशेन क्षयमुपनीयताम्। अपरमपि यद्यदेवं[6]

पादयोः = चरणयोः, तव महिष्याश्चेति शेषः, पततः = नमतः, प्रणमतः, पुत्रत्वम् = सुतत्वम्, उपगतस्य = प्राप्तस्य, पुत्ररूपेण जन्म गृहीतवतः इति भावः, चन्द्रापीडेत्यादिः—चन्द्रापीडः = इत्याकारकेण नाम्ना (= अभिधानेन) अन्तरितस्य (=व्यवहितस्य, परिवर्तितस्य), लोकपालस्य= लोकरक्षकस्य, एव, चन्द्रमसः = चन्द्रस्य, दर्शनेन = विलोकनेन, साक्षात्कारेण, आजन्मकृतम् = जन्मकालाद् आरभ्य अद्यावधि विहितम्,एव सन्तापम्=मानसिकक्लेशम्, देवः =स्वामी, परित्यक्ष्यति= दूरीकरिष्यसि, निष्पापः, सन्तापहीनश्च भविष्यतीति भावः। तयोः = चन्द्रापीड-वैशम्पायनयोः, एवम् = एतादृशः, शापः = आक्रोशजन्यवचनविशेषः, अस्माकम् = सर्वेषां गुरुजनानाम्, कृते, वरः = कल्याणप्राप्त्युपायः, एव, सञ्जात इति शेषः। तत् = तस्मात्, देवेन = महाराजेन तारापीडेन, देव्या = महाराज्ञ्या विलासवत्या, वा, अस्मिन् = प्रकृतविषये, उभयोरनिष्टविषये इति भावः, मनाक् = ईषद्, अपि, शोकः = शुक्, दुःखम्, नैव, कार्यः = कर्त्तव्यः। मङ्गलानि = श्रेयांसि, अभिधार्यन्ताम् = अभिध्रियन्ताम्। अभिमतेत्यादिः—अभिमतानाम् (= कुले कल्याणकारित्वेन स्वीकृतानाम्) देवतानाम् (= सुराणाम्) आराधनेन (= सेवनेन) धनातिसर्जनेन = वित्तस्य वितरणेन, च, अन्यजन्मोपार्जितम् = पूर्वजन्मार्जितम्, कुशलम् = कल्याणम्, अभिवर्ध्यताम् = समेध्यताम्। अकुशलम्=अकल्याणम्, अपि, यमेत्यादिः—यमाः (= अहिंसादयो दश[7]) नियमाः(=शौचादयोदश[8])कष्टव्रतानि (=कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि) उपवासाः(=भोजनपरित्यागाः)आदौ यस्य तादृशेन तपः परिक्लेशेन=तपश्चर्यासम्बन्धिकष्टेन, क्षयम् = विनाशम्, उपनीयताम् = प्राप्यताम्। अपरम् = एतदतिरिक्तम्, अपि, यद् यद् = यत्किमपि, एवं गते = एवं स्थितौ सत्याम्, श्रेयस्करम् = कल्याणजनकम्, श्रूयते = आकर्ण्यते, ज्ञायते = बुध्यते, वा, तत्तत् = सर्वमिति भावः,

झुकाते हुए अर्थात् कादम्बरी के साथ आपके चरणों में प्रणाम करते हुए, पुत्ररूप को प्राप्त किये हुए, चन्द्रापीड इस दूसरे नाम वाले लोकपाल भगवान् चन्द्रमा के दर्शन करके महाराज आप सारे जीवन के लिये सन्ताप छोड़ देंगे। उन दोनों (चन्द्रापीड और वैशम्पायन) का इस प्रकार का शाप हम लोगों के लिये तो वरदान ही है। इस कारण इस सम्बन्ध में महाराज को अथवा महारानी को थोड़ा भी शोक नहीं करना चाहिए। [अपितु] मङ्गलकारी (वस्तुयें) धारण करें या मङ्गलकृत्य करवायें। इष्ट देवता की आराधना से तथा धन के खूब दान से आप अन्य जन्म में उपार्जित कुशल को और बढ़ावें। और अकुशल को भी यम, नियम, कष्टकारी व्रत (चान्द्रायण) आदि तपस्या के क्लेश

१. इव। २. जन्म।
३. तत्तयोरयं। ४. अभिध्यायन्ताम्। अभिवर्धताम्,अभिवर्ध्यताम्।
५. उपार्जितेन कष्टतमेनोपवासादिधर्मनियमेन। ६. यद्दैवगतेः, यद्यदवगतम्।
७. ब्रह्मचर्यं दया क्षान्तिर्दानं सत्यमकल्कता। अहिंसाऽस्तेयमाधुर्यं दमश्चेति यमाः स्मृताः॥यज्ञ० ३।३१३
८. शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः। व्रतमौनोपवासं च स्नानं च नियमा दश ॥अत्रि० १३

गते श्रेयस्करं श्रूयते ज्ञायते वा तत्तदद्यैवारभ्य क्रियतां कार्यतां च कर्म। न खलु वैदिकानामवैदिकानां[1] वा कर्मणामसाध्यं नाम किञ्चिदपि ? उत्पत्तिरपि तयोः कृच्छ्रलब्धयोरीदृशेनैव प्रकारेणोपजाता।'

इत्युक्तवति शुकनासे सशोक एव राजा प्रत्यवादीत्—'सर्वमेतद्यदार्येणाभिहितं कोऽन्यो बुध्यते ? केन वापरेण वयं परिबोधनीयाः? कस्य वापरस्यास्माभिर्वचनं करणीयम् ? किन्तु तद्वत्सस्य मे वैशम्पायनदुःखात्स्फुटनं हृदयस्याग्रतो दृष्टिलग्नं सर्वमेवान्यदन्तरयति[2]।

कर्म, अद्यैव = अस्मिन् दिने एव, आरभ्य = आदाय, क्रियताम् = विधीयताम्, कार्यताम् = आचार्यादिभिः सम्पाद्यताम्। [अत्र 'आरभ्य' इत्यस्य योगे पञ्चमी एवोचिता। अतः 'अद्य आरभ्य = अद्यतनदिवसाद् आरभ्य' इत्यर्थो बोधनीयः।] वैदिकानाम् = ऋग्वेदादि-प्रतिपादितानाम्, अवैदिकानाम् = अन्यधार्मिकग्रन्थनिर्दिष्टानाम्, च, कर्मणाम् = कृत्यानाम्, न खलु = निश्चयेन, किञ्चिदपि, असाध्यम् = अनिष्पाद्यम्, नाम ? अपि तु सर्वमेव साध्यमिति भावः। तयोः = चन्द्रापीड-वैशम्पायनयोः, कृच्छ्रलब्धयोः = अतिशयकष्टेन प्राप्तयोः, उत्पत्तिः = जन्म, अपि, ईदृशेन = एवंविधेन, असाधारणेन, प्रकारेण एव, उपजाता = भूता।

इत्युक्तवतीति। इति = इत्थम्, शुकनासे, उक्तवति = कथितवति, सति, सशोकः = शोकयुक्तः, सन्, एव, राजा = तारापीडः, प्रत्यवादीत् = प्रत्यवोचत्। यत्, आर्येण = भवता, अभिहितम् = कथितम्, एतत् = इदम्, सर्वम् = समस्तम्, अन्यः = भवद्भिन्नोऽपरः, कः = जनः, बुध्यते = जानाति ? न कोऽपि जानातीति भावः। अपरेण = भवद्भिन्नेनान्येन, केन = अज्ञातेन, जनेन, वा, वयम् = तारापीडादयः, परिबोधनीयाः = ज्ञानं प्रापणीयाः ? अपरस्य = भवद्भिन्नस्य, कस्य = अज्ञातस्य जनस्य, वा, वचनम् = कथनम्, उपदेशः, अस्माभिः = तारापीडादिभिः, करणीयम् = पालनीयम् ? न कस्यापीति भावः। एवञ्चैतत् सर्वं हृदयेनोररीकरोमि। किन्तु, वैशम्पायनदुःखात् = एतन्नामकस्वमित्रदुःखश्रवणजन्यदुःखात्, कारणात्, मे = मम तारापीडस्य, वत्सस्य = पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य, तत् = पूर्वं जातम्, अस्माभिः सर्वैः साम्प्रतमेवाकर्ण्योत्प्रेक्षितम्, हृदयस्य = अन्तःकरणरूपस्य, स्फुटनम् = विदीर्णत्वम्, अग्रतः = सम्मुखम्, दृष्टिलग्नम् = नेत्रयोः संसक्तम्, सत्, अन्यत् = तदतिरिक्तम्, सर्वम् = सकलम्, एव, अन्तर-

---

से नष्ट कर डालें। और भी जो कुछ इस प्रकार की स्थिति में श्रेयस्कर काम सुनाई दे अथवा मालूम हो, वह आज से आरम्भ कर दीजिये और [पुरोहित आदि से] करवाइये। क्योंकि वैदिक तथा अवैदिक [मांगलिक] कार्यों के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है ? अर्थात् सब सम्भव है। और बड़े कष्टों से प्राप्त होने वाले इन दोनों (चन्द्रापीड तथा वैशम्पायन) का जन्म भी तो इसी प्रकार से अर्थात् अनुष्ठानों के बल से ही हुआ है।'

शुकनास द्वारा ऐसा कहा जाने पर राजा तारापीड शोकयुक्त रहते हुए ही बोले—"यह सब कुछ जो आर्य ने कहा है, उसे आपके अतिरिक्त कौन दूसरा जानता है ? अथवा कौन दूसरा हम लोगों को समझा सकता है ? अथवा किस दूसरे के वचन हम लोग मानेंगे ? किन्तु वैशम्पायन के दुःख के कारण वत्स चन्द्रापीड के हृदय का वह विदीर्ण होना (फट जाना) मेरी आँखों में समाया

---

१. कर्मणां खलु वैदिकानामवैदिकानां वासाध्यं नाम किंचिदपि नास्ति।   २. अन्तरपतितम्।

तदेव पश्यामि। तदेव शृणोमि। तदेवोत्प्रेक्षे। तदेवमप्रत्यक्षिते[1] वत्सस्य वदने संस्तम्भमेवात्मनो न शक्नोमि कर्तुम्। यत्र च ममायमीदृशः प्रकारस्तत्र देव्याः परिबोधनं दूरापेतमेव। तद्गमनादृतेन्य उपाय एव नास्ति जीवितसन्धारणाय–इत्येवमवधारयत्वार्यः"। इत्युक्तवति तारापीडे चिरात्तनयपीडया [2]तत्पुरः परित्यज्य लज्जां विलासवती कृताञ्जलिरुच्चैर्जगाद—'आर्यपुत्र, यद्येवं तथापि किमपरं विलम्बितेन? निर्गता एव वयम्। दीयतां

यति = व्यवधत्ते, आवृणोति। तत्=हृदयस्फुटनस्य दृश्यम्, एव, पश्यामि = अवलोकयामि। तद्, एव, शृणोमि = आकर्णयामि। तद्, एव, उत्प्रेक्षे = सम्भावयामि। तत् = तस्मात्, एवम् = इत्थम्, अनेन रूपेण सञ्जाते वा, वत्सस्य = चन्द्रापीडस्य, वदने = मुखे, अप्रत्यक्षिते = अनवलोकिते, सति, आत्मनः = स्वस्य, संस्तम्भम् = स्थिरीकरणम्, एव, न = नैव, शक्नोमि = अर्हामि। यावत् कालं वत्सस्य मुखस्य दर्शनं न जायते तावत् मे आत्मा स्थिरीभवितुं नार्हतीति भावः। यत्र = यस्मिन् विषये, च, मम = धैर्यवतः राज्ञः पुरुषस्य, अयम् = प्रत्यक्षं दृश्यमानः, ईदृशः = एवंविधः, प्रकारः = स्थितिः, वर्तते, तत्र = तस्मिन् विषये, देव्याः = महाराज्ञ्याः विलासवत्याः, परिबोधनम् = सान्त्वनाप्रापणपूर्वकमुपदेशकरणम्, तु, दूरापेतम् = असम्भवमिति भावः। तत् = तस्मात्, जीवितसन्धारणाय = प्राणसंरक्षणाय, गमनात् = अतः प्रस्थानात्, चन्द्रापीडस्य समीपमिति शेषः, ऋते = विना, अन्यः = अपरः, उपायः = साधनम्, एव, नास्ति। इति, एवम् = अनेन रूपेण, आर्यः = भवान्, अवधारयतु = निश्चिनोतु।

इत्युक्तवतीति। इति = इत्थम्, तारापीडे, उक्तवति = कथितवति, सति, चिरात् = दीर्घकालात्, तनयपीडया = पुत्रविषयकव्यथया, तत्पुरः = राज्ञः समक्षम्, लज्जाम् = त्रपाम्, परित्यज्य = विहाय, विलासवती = महाराज्ञी, कृताञ्जलिः = बद्धाञ्जलिः सती, उच्चैः = उन्नतस्वरेण, जगाद = कथितवती। आर्यपुत्र! = स्वमिन्! यदि = चेत्, एवम् = अनेन प्रकारेण स्थितिरस्ति, भवानपि चन्द्रापीडस्य मुखस्य दर्शनाय ममेव व्याकुलो वर्तते, इति भावः, तथापि = तर्हि, तदा वा, अपरम् = अन्यत् किम्, विलम्बितेन = विलम्बकरणेन? न किमपीति तद्भावः। वयम्, निर्गताः = राजभवनाद् बहिरागताः, एव, स्मः। प्रयाणम् = प्रस्थानम्,

---

हुआ और सभी दूसरी बातों को छिपा देता है, दबा देता है। उस (रहस्य) को ही देखता हूँ। उसी को सुनता हूँ। उसी की कल्पना करता हूँ। इसलिए वत्स के मुख का जब तक दर्शन नहीं हो जाता तब तक मैं अपने आपको धारण नहीं कर सकता, संभाल नहीं सकता। फिर जिस विषय में मेरी ऐसी दशा है वहाँ महारानी को समझाने की बात तो दूर रही। इस कारण [चन्द्रापीड के समीप] जाने के अतिरिक्त कोई भी दूसरा उपाय प्राणरक्षा के लिए नहीं है—ऐसा आप निश्चित रूप से जान लें। तारापीड के ऐसा कहने पर बहुत देर से पुत्र-सम्बन्धी पीड़ा के कारण, राजा के आगे लज्जा को छोड़कर, हाथ जोड़कर विलासवती जोर-जोर से कहने लगी—'स्वामी! यदि ऐसा है तो अब और देर करने से क्या? हम लोग तो निकल ही पड़े हैं। प्रस्थान कीजिये। मेरा हृदय बेटे को देखने के

---

१. तदेवमप्रत्यक्षमेव मद्वत्सस्य वदनम्। २. पत्युः पुरः।

प्रयाणम्। उत्ताम्यति मे हृदयं वत्सस्य दर्शनाय। दुःखापनोदार्थं स्फुटनमङ्गीकृतमासीत्। तदपि[1] सम्प्रति दर्शनकाङ्क्षया न रोचत एव। जानामि 'वरं दीर्घकालमपि[2] दुःखान्यनुभवन्ती सकृदपि वत्सस्य दर्शनाय जीवितास्मि। न पुनरसह्यदुःखोपशान्तये सम्प्रत्येव मृतास्मीति। तदस्य [3]पुनराशानिबन्धनस्य[4] सर्वात्ययनिवारणोपायस्य वत्साननावलोकनोत्सुकस्य[5] गमनमपि हृदयस्य तावद्विनोदतां व्रजतु।' इति वदन्तीमेव[6] विलासवती-

दीयताम् = क्रियताम्। वत्सस्य = पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य, दर्शनाय = विलोकनाय, मे = मम विलासवत्याः, हृदयम् = चित्तम्, उत्ताम्यति = व्याकुलीभवति। दुःखापनोदार्थम् = पुत्रशोकस्यापनयनाय, स्फुटनम् = वक्षोविदीर्णत्वम्, अङ्गीकृतम् = स्वीकृतम्, आसीत्, अत्र पूर्वमिति शेषः। सम्प्रति = इदानीम्, चन्द्रापीडस्य प्राणेऽपगतेऽपि शरीरेण धारणादिति भावः, दर्शनकाङ्क्षया = अवलोकनेच्छया, न, रोचते = रुचिविषयीभवति, एव, तद्दर्शनापेक्षया न किमपि इष्टमनिष्टं वा मह्यं रोचते इति तद्भावः। जानामि = अवगच्छामि, मन्ये, दीर्घकालम् = चिरकालम्, अपि, दुःखानि = कष्टानि, अपि, अनुभवन्ती = अनुभवविषयीकुर्वन्ती, सहमाना, वरम् = उचितम्, प्रशस्यतरम्, सकृद् = एकबारम्, अपि, वत्सस्य = पुत्रस्य, दर्शनाय = विलोकनाय, जीविता = प्राणान् धारयन्ती, अस्मि। पुनः = किन्तु, असह्यदुःखोपशान्तये = असहनीयकष्टानां निवृत्तये, सम्प्रति = इदानीम्, एव, मृता = मृत्युमधिगता, अस्मि इति, न, वरम्। तत् = तस्मात्, [अत्र षष्ठ्यन्तानि पदानि 'हृदयस्य' विशेषणानि। हृदयस्य च 'गमनम्' इत्यत्रान्वयः, 'गमनमि'-त्यस्य 'विनोदतां व्रजतु' इत्यत्रान्वयो बोध्यः।] गमनम् = अधुनैव प्रयाणम्, अपि, पुनः = भूयः, आशानिबन्धनस्य—आशा (= मिलनप्रत्याशा) निबन्धनम् (= निमित्तम्) यस्य तादृशस्य, गृहीताशस्येति भावः, सर्वेत्यादिः—सर्वे (= समस्ताः) च ते अत्ययाः (= विघ्नाः, प्रत्यूहाः) तेषां निवारणस्य (= दूरीकरणस्य) उपायस्य (= साधनस्य), वत्सेत्यादिः—वत्साननम् (= चन्द्रापीडमुखम्) तस्य यद् अवलोकनम् (= दर्शनम्) तस्मिन् उत्सुकस्य (= उत्कण्ठितस्य) अस्य = मदीयस्य, हृदयस्य = चित्तस्य, तावत् = अधुना, प्रथमं वा, विनोदताम्—विनोदः (= आनन्दः) तस्य भावः ताम्, आनन्दसाधनताम्, व्रजतु = गच्छतु, प्राप्नोतु। एवञ्च गमनमेव मम हृदयस्य विनोदं जनयिष्यतीति तस्या आशयः। इति = इत्थम्, वदन्तीम् = कथयन्तीम्, एव, विलासवतीम् = महाराज्ञीम्, आसाद्य = सम्प्राप्य,

लिए उतावला हो रहा है। [पहले तो] दुःख को हटाने (मन को हल्का करने) के लिए हृदय का फटना (मरना)स्वीकार कर लिया था, लेकिन अब (बेटे को)देखने की इच्छा के कारण वह अच्छा नहीं लग रहा है। मैं तो यह अच्छा समझती हूँ कि बहुत लम्बे समय तक दुःखों को भोगती हुई एक बार भी दुबारा पुत्र के दर्शन के लिए जीवित रहूँ। न कि असह्य दुःख को दूर करने के लिए अभी ही मर जाऊँ। इस कारण आशा के निमित्तभूत, सभी प्रकार के कष्टों को दूर करने में साधनभूत (तथा) बेटे के मुख को देखने के लिए आतुर (उत्सुक) बने हुए इस हृदय के लिए [चन्द्रापीड के समीप] जाना भी एक प्रकार का विनोद बन जाय।" इस प्रकार से कहती हुई ही विलासवती

१. यदपि दुःखापनोदार्थं स्फुरितमस्याशंसितं हृदयमासीत्। २. चिरं। ३. दुराशा०। ४. अनिबन्धनस्य। ५. उन्मुखस्य। ६. वदन्तीमेव।

[1]मासाद्यान्यतमः शुकनासस्यात्मसमः[2] परिणतवयाः षट्कर्मा[3] समुपसृत्य [4]स्वस्तिपूर्वकं व्यज्ञापयत् ।

'देवि सर्वत[5] [6]एवापरिस्फुटेन वार्ताकलकलेनाकुलीकृत[7]हृदया मनोरमा स्वयमेव धावन्त्यागता । राज्ञो लज्जमाना नोपगता स्थानमिदम् । तदेषा मातृगृहस्य पृष्ठतस्तिष्ठति । पृच्छति च देवीम्—"किमेभिः कथितम् ? जीवति मे वत्सो वैशम्पायनः ? स्वस्थशरीरो वा ? ढौकितो वा पुनर्युवराजस्य ? [8]क्व वर्तते ? तावागमिष्यतो वा कियद्भिर्दिवसैः[8] ?"

तस्याः समीपे आगत्येत्यर्थः अन्यतमः = कश्चिदेकः, शुकनासस्य, आत्मसमः = स्वतुल्यः, परिणतवयाः—परिणतम् (= वार्धक्यम्, परिपक्वतां प्राप्तम्) वयः (= अवस्था) यस्य स तादृशः, षट्कर्मा—षट् (= षट्संख्यकानि) कर्माणि (= विधेयानि) यस्य स तादृशः । [मन्वादिस्मृतिषु ब्राह्मणानामिमानि षट्कर्माणि निर्दिष्टानि—"अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्माण्यग्रजन्मनः ।" म० स्मृ० १०।७५] एवञ्च ब्राह्मणः सेवक इत्यर्थः, समुपसृत्य = समीपमागत्य, स्वस्तिपूर्वकम्—'स्वस्ति' इत्याकारकं वचनं पूर्वं यस्मिन् यथा स्यात् तथा, व्यज्ञापयत् = निवेदितवान् ।

स विप्रः दूतः किं व्यज्ञापयदिति वर्णयति—देवि इत्यादिना । देवि ! = हे महाराज्ञि ! सर्वतः = परितः, एव, अपरिस्फुटेन = अव्यक्तेन, अस्पष्टेन, वार्ता-कलकलेन = अज्ञातवृत्तान्तस्य कोलाहलेन, आकुलीकृतहृदया = व्यग्रीकृतचित्ता, मनोरमा = वैशम्पायन-जननी, शुकनासपत्नी, स्वयम् = आत्मना, एव, न तु केनापि सहायकेन सार्धमिति भावः, धावन्ती = त्वरितगत्या प्रचलन्ती, आगता = समायाता, अत्रेति शेषः । राज्ञः = नृपात्, नृपं वीक्ष्येति भावः, लज्जमाना = त्रपमाणा, इदम्, स्थानम् = स्थलम्, न, उपगता = समायाता । तत् = तस्मात्, एषा = इयं मनोरमाख्या शुकनासभार्या, मातृगृहस्य = मातृकामन्दिरस्य, पृष्ठतः = पश्चाद्भागे, तिष्ठति = स्थिता वर्तते । देवीम् = महाराज्ञीम्, पृच्छति = पृच्छाविषयीकरोति । किं तदिति वर्णयति—किमेभिरित्यादिना । एभिः = एतैः सन्देशहरैर्दूतैः, किम्, कथितम् = उक्तम्, सूचितम् ? मे = मम मनोरमायाः, वत्सः = पुत्रः, वैशम्पायनः, जीवति = प्राणिति ? वा = अथवा, स्वस्थशरीरः = अक्षतदेहः, अस्तीति शेषः ? युवराजस्य = चन्द्रापीडस्य, ढौकितः = मिलितः, वा ? क्व = कस्मिन्, अज्ञातस्थाने, वर्तते ? = विद्यते ? तौ = चन्द्रापीडवैशम्पायनौ, कियद्भिः = किम्परिमितैः,

---

को पाकर, कोई एक, शुकनास का अपने ही समान, बूढ़ा, षट्कर्मा (दान आदि छः कृत्यों को करने वाला ब्राह्मण सेवक), समीप में पहुँच कर स्वस्तिवाचन करके निवेदन करने लगा—

"देवि ! सभी ओर से अस्फुट इस बातचीत के कोलाहल के कारण व्याकुल चित्तवाली होती हुई मनोरमा (वैशम्पायन की माता) अपने आप दौड़ती हुई आई है । महाराज से लजाती हुई इस स्थान पर नहीं आई है । इस कारण वह मातृगृह (देवी मन्दिर) के पीछे खड़ी है । और महारानी से यह पूछ (पुछवा) रही है—"इन सन्देशवाहकों ने क्या कहा है ? क्या मेरा बेटा जीवित है ? उसका शरीर स्वस्थ है अर्थात् सब कुशल तो है ? क्या वह युवराज को मिला ? वह कहाँ है ?

---

१. आगत्य । २. आत्मतमः । ३. षट्कर्मवान् । ४. स्वस्तीत्युक्त्वा ।
५. सर्वत्रैव । ६. अमुना । ७. आकुलीक्रियमाण० । ८. का वार्ता, क्व वा वर्तते ।

इति। राजा तु तदुपरतिवार्तया अपि कष्टतममाकर्ण्य दीर्ण इव शुचा शतगुणीभूतशोको-त्प्लुताङ्गीं[1] विलासवतीमवादीत्—'देवि, न श्रुतं किञ्चिदपि वत्सयोः[2] प्रियसख्या ते। अन्यतश्च श्रुत्वा कदाचिज्जीवितेनैव वियुज्यते। तदुत्तिष्ठ स्वयमेव धैर्यमालम्ब्य सर्व-वृत्तान्तानुकथनेन संस्थापय[3] प्रियसखीं तथा यथार्यशुकनासेन सह यातव्यम्।' इत्ये-वोत्थाप्य सपरिजनां विलासवतीं व्यसर्जयत्। आत्मनापि शुकनासेन सह गमनसंविधान-मकारयत्।

कतिभिः, दिवसैः = दिनैः, आगमिष्यतः ? राजा = तारापीडः, तु, तदुपरतीत्यादिः = तयोः (= चन्द्रापीड-वैशम्पायनयोः) या उपरतिः (= मृत्युः, प्राणविनाशः) तस्याः या वार्त्ता (= वृत्तान्तः) तस्याः, अपि, तदपेक्षयापीति भावः, कष्टतमम् = कष्टतरम्, कष्टजनकमिति भावः, मनोरमावचनम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, शुचा = शोकेन, दीर्णः = विदीर्णः, हृदयेन द्विधाभूयेति भावः, इव, शतेत्यादि,—शतेन (= शतसंख्यया) गुणीभूतः (= गुणितः) यः शोकः (=शुक्, कष्टम्) तेन उत्प्लुतम् (= व्याप्तम्) अङ्गम् (= अवयवम्, शरीरमिति भावः) यस्याः तां तादृशीम्, विलासवतीम् = महाराज्ञीम्, अवादीत् = अवोचत्। देवि ! ते = तव, प्रियसख्या = मनोरमया, वत्सयोः = चन्द्रापीड-वैशम्पायनयोः, विषये, किञ्चिद् = ईषद्, अपि, न, श्रुतम् = आकर्णितम्, अन्यतः = त्वद्भिन्नतः कस्माच्चिदपरात् जनात्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, तयोर्मरणमिति शेषः, कदाचित् = सम्भावयामि, जीवितेन = प्राणैः, एव, वियुज्यते = विमुच्यते, प्राणान् एव परित्यजेदिति भावः। तद् = तस्मात्, उत्तिष्ठ = उत्थानं कुरु, स्वयम् = आत्मना, एव, धैर्यम् = धृतिम्, आलम्ब्य = आश्रित्य, सर्ववृत्तान्तानुकथनेन = भूयः सकलघटनाचक्रस्य अभिधानेन, प्रिय-सखीम् = मनोरमां वैशम्पायनमातरम्, तथा = तेन प्रकारेण, संस्थापय = समाश्वस्तां कुरु, यथा = येन प्रकारेण, आर्यशुकनासेन, सह = सार्धम्, यातव्यम् = प्रस्थेयम्, सर्वां वस्तुस्थितिं बोधयित्वा शुकनासेन सह तस्या अपि तयोः समीपे साम्प्रतमेव गमनं संसूच्य तां समाश्वासयेति सदाशयः। इति, एवम् = इत्थम्, उक्त्वा, उत्थाप्य = उत्थापनां कृत्वा, स्वहस्ताभ्यामिति शेषः, सपरिजनाम् = भृत्यवर्गसहिताम्, विलासवतीम् = महाराज्ञीम्, व्यसर्जयत् = ततः प्रस्थातुमाज्ञपयामास। आत्मना = स्वयम्, अपि, शुकनासेन, सह, गमनसंविधानम् = प्रस्थान-प्रबन्धम्, अकारयत् = कारितवान्।

और वे दोनों कितने दिनों में वापस आयेंगे ?'' लेकिन राजा तो उन दोनों की मृत्यु से भी अधिक कष्टकारक बातें सुनकर, शोक के कारण विदीर्ण होता हुआ सा, सौगुने बढे हुए शोक से व्याप्त शरीर-वाली विलासवती से कहने लगा —'देवि ! तुम्हारी सखी ने बच्चों के विषय में (अभी तक) कुछ भी नहीं सुना है। किसी दूसरे से सुनकर सम्भव है वह अपने प्राण ही छोड़ दे। इस कारण उठो, अपने आप ही धैर्य धारण करके, सारा वृत्तान्त कहने के बाद उसे ढाढस बंधाओ कि उसे भी आर्य शुकनास के साथ चलना है।'—यह कहकर राजा ने विलासवती को उठाकर नौकर-चाकरों के साथ विदा कर दिया। और स्वयं भी शुकनास के साथ प्रस्थान की तैयारी में जुट गया।

---

१. उत्प्लुताक्षीम्। २. वत्सयोः कृते किंचिदपि। ३. संस्तम्भय।

अथ तथा प्रस्थिते राजनि राजानुरागाच्चन्द्रापीडस्नेहेन चाश्चर्यदर्शनकुतूहलाय प्रथमगतपितृपुत्रभ्रातृमित्रस्वजनदर्शनाय च गृहरक्षकवर्जमुज्जयिन्याः सकल एव लोको गन्तुमुदचलत् । राजा तु शीघ्रगमनविघातहेतून्समस्तानेव [1]निवर्त्य प्रलघुपरिकरः पिबन्निव पन्थानम्, एकदिवसेनेव परापतितुमीहमानः, स्तोकत एवाध्वनः प्रभृत्युत्ताम्यता हृदयेन "कियत्यध्वन्यद्यापि वर्तामहे, कतिपयैर्दिवसैः परापताम" ? इति मुहुर्मुहुस्तुरङ्गमारोपितं

अथेति । अथ = तदनन्तरम्, तथा = तेन पूर्वोक्तरूपेण रूपेण, शुकनासादिभिः सहेति भावः, राजनि = नृपे तारापीडे, प्रस्थिते = प्रस्थानमारब्धे सति, राजानुरागात् = नृपं तारापीडं प्रति स्वीयप्रेमवशात्, चन्द्रापीडस्नेहात् = युवराजं प्रति स्वीयप्रेमवशात् च, आभ्यां कारणाभ्याम्, आश्चर्यदर्शनकुतूहलाय—आश्चर्यस्य (= अद्‌भुतत्वस्य, विस्मयस्य) यद् दर्शनम् (= विलोकनम्) तस्मिन् कुतूहलाय (= औत्सुक्याय), अथ च, प्रथमेत्यादिः—प्रथमम् (= एतेषामपेक्षया पूर्वमेव) गताः (= याताः चन्द्रापीडेन सहेति भावः) ये पितरः (= जनकाः) भ्रातरः (= सहोदराः) मित्राणि (= सखायः) स्वजनाः (= बान्धवलोकाः) च, इति एतेषाम्, दर्शनम् (= विलोकनम्, साक्षात्कारः), तस्मै, तदर्थम्, च, गृहरक्षकवर्जम् = गृहाणां सुरक्षाकरान् सेवकान् वर्जयित्वा, उज्जयिन्याः, सकलः = समस्तः, एव, लोकः = जनः, गन्तुम् = गमनाय, उदचलत् = चलितवान् । उदचलदित्यनेनैव अभीष्टार्थप्रतीतौ 'गन्तुमि'ति प्रयोगोधिक एव । राजा = तारापीडः, तु, समस्तान् = सर्वान्, एव, शीघ्रेत्यादिः—शीघ्रम् (= आशु) यथा स्यात् तथा यद् गमनम् (= प्रयाणम्) तस्य यो विघातः (= प्रतिबन्धः, बाधा) तस्य हेतून् (= कारणानि), निवर्त्य = दूरीकृत्य, लघुपरिकरः—लघुः (= अल्पः) परिकरः (= परिजनः, परिवारः) यस्य स तादृशः, सन्, पन्थानम् = मार्गम्, पिबन् = धयन्, इव, एकदिवसेन = एकमात्रदिनेन, परापतितुम् = चन्द्रापीडस्य समीपं गन्तुम्, मार्गं वा अतिक्रान्तुम्, ईहमानः = अभिलषन्, स्तोकतः = अल्पाद्, एव, अध्वनः = मार्गात्, प्रभृति = आरभ्य, उत्ताम्यता: = व्याकुलीभवता, हृदयेन = चित्तेन, कियति = किम्परिमाणे, अध्वनि = मार्गे, वर्तामहे=स्मः, कतिपयैः = कतिभिः, दिवसैः = दिनैः, परापताम:= तत्र गच्छामः, तत् स्थानं प्राप्स्यामः ? इति = इत्थम्, मुहुर्मुहुः = वारंवारम्, तुरङ्गमारोपितम् =

इसके बाद राजा के प्रस्थान कर देने पर राजा के प्रति अनुराग के कारण तथा चन्द्रापीड के प्रति स्नेह के कारण आश्चर्यकारक घटना को देखने के कौतूहल के लिए तथा [इससे] पहले [चन्द्रापीड के साथ] गये हुए पिताओं, पुत्रों, भाईयों, मित्रों, स्वजनों (पारिवारिक लोगों) को देखने के लिए, घरों की रखवाली करने वाले चौकीदारों को छोड़कर, उज्जयिनी के सभी लोग प्रस्थान के लिए चल पड़े । लेकिन राजा तारापीड जल्दी-जल्दी यात्रा करने में बाधक बने हुए उन सभी लोगों को वापस लौटाकर, कुछ थोड़े से ही लोगों को साथ में लेकर, मार्ग को पीता हुआ सा, एक ही दिन में उस निश्चित स्थान पर पहुँच जाने की इच्छा करता हुआ, थोड़े ही मार्ग से अर्थात् कुछ ही दूर तक चलने के बाद से ही व्यग्र हृदय से 'अभी हम लोग कितना मार्ग पार कर आये हैं ?

---

१. निर्वर्त्य ।

त्वरितकमाहूयाहूय[1] पृच्छन्नविच्छिन्नकैः[2] प्रयाणकैर्बहुभिरेव दिवसैराससादाच्छोदम्। आसाद्य च विकल्पशतदोलाधिरोहणदुःस्थितेनान्तरात्मना दूरस्थित एव प्रथममाप्ततमानश्ववारान्वार्तान्वेषणाय त्वरितकेन [3]सार्धं प्रहितवान्।

अथ तैः सार्धमागच्छन्तम्, उज्झितात्मसंस्कारमलिनकृश[4]शरीरम्, अवनितलनिवेशितोत्तमाङ्गम्, उद्बाष्पदीनतरदृष्टिम्, जीवितलज्जया रसातलमिव प्रवेष्टुमीहमानम्,

अश्वे समारोहितम्, त्वरितकम् = एतन्नामकं सेवकम्, आहूय-आहूय = आकार्य-आकार्य, पृच्छन् = पृच्छाविषयीकुर्वन्, अविच्छिन्नकैः = विच्छेदरहितैः, निरन्तरैः, मार्गमध्ये क्वापि अविहितविश्रामैरिति भावः, प्रयाणकैः = प्रस्थानैः, चलनैः, अबहुभिः = अल्पैः, एव, दिवसैः = दिनैः, अच्छोदम् = एतन्नामकं सरोवरम्, आससाद = प्राप्तवान्, राजा तारापीडः। अत्र 'अपवर्गे तृतीया' इति सूत्रेण फलप्राप्तौ गम्यमानायां कालात्यन्तयोगे तृतीया, न तु "कालाध्वनोरि"ति सूत्रेण द्वितीयेति बोध्यम्। आसाद्य = तत्सरोवरतटं प्राप्य, च, विकल्पेत्यदिः—विकल्पानाम् (= शंकानाम्) शतम् (= दशशती) तद् एव दोला (= प्रेङ्खा) तस्याम् अधिरोहणम् (= आरुह्यावस्थानम्) तेन दुःखितेन (= विषण्णेन) अन्तरात्मना = मनसा, दूरस्थितः = विप्रकृष्टे विद्यमानः, एव, प्रथमम्= स्वगमनात् पूर्वम्, आप्ततमान् = अतिविश्वस्तान्, अश्ववारान्=अश्वारोहिणः सैनिकान्, वार्तान्वेषणाय= तथ्यवृत्तान्तज्ञानाय, त्वरितकेन = एतन्नामकेन सेवकेन, सार्धम् = सह, प्रहितवान्=प्रेषितवान्।

अथेति। अथ = अश्ववाराणां प्रेषणानन्तरम्, तैः = पूर्वप्रेषितैः अश्ववारैः, सार्धम् = साकम्, आगच्छन्तम् = आयान्तम्, [राजपुत्रलोकम् = नृपसुतसमूहम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, विलासवतीम् अवादीत् राजा'—इत्यन्वयः। अत्र द्वितीयैकवचनान्तानि पदानि 'राजपुत्र' इत्यस्य विशेषणानीति बोध्यम्।] उज्झितेत्यादिः—उज्झितः (= परित्यक्तः, अविहितः) आत्मनः (= स्वस्य) संस्कारः, (= स्नानादिदैनिककृत्यम्) तेन मलिनम् (= मलीमसम्) कृशम् (= दुर्बलम्) च शरीरम् (= देहः) यस्य तं तादृशम्। अवनीत्यादिः—अवनितले (= भूतले, पृथिव्याः पृष्ठभागे) निवेशितम् (=स्थापितम्) उत्तमाङ्गम् (= मस्तकम्) येन तं तादृशम्, मस्तकेन भूतलं स्पृशन्तमित्यर्थः। उद्बाष्पेत्यादिः—उद्बाष्पा (= उद्गताश्रुः) दीनतरा (=करुणतरा) च दृष्टिः यस्य तं तादृशम्, जीवितलज्जया = प्राणधारणात् त्रपया, पातालम् = रसातलम्, इव, प्रवेष्टुम् = प्रवेशं कर्तुम्, ईहमानम् = इच्छन्तम्। [चन्द्रापीडे मृतेऽपि ते प्राणान् धारयन्तीति

और अब कितने दिनों में पहुँचेंगे ?'—इस प्रकार से घोड़े पर बैठाये गये त्वरिक को बुलाकर-बुलाकर, बार-बार पूछता हुआ,बिना कहीं रुके, अनवरत यात्रा द्वारा थोड़े ही समय में अच्छोद सरोवर पर पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर सैकड़ों प्रकार के संकल्प-विकल्पों के झूले में चढ़ने के कारण दुःखी हुए मन से (प्रिय-अप्रिय अनेक प्रकार की कल्पनाओं में झूलते हुए दुःखी हृदय से)दूर पर ही खड़ा होकर(ठहरकर), पहले अत्यन्त विश्वासपात्र घुड़सवारों को त्वरितक के साथ हाल-चाल का पता लगाने के लिए भेजा।'

उसके [थोड़ी ही देर] बाद उन (घुड़सवारों) के साथ आते हुए, अपने (स्नानादि-प्रसाधन) संस्कार छोड़ देने (न कर पाने) के कारण मलिन तथा कृश शरीर वाले, भूतल पर मस्तकों को रखे हुए, आँसुओं से भरी तथा कातर दृष्टि वाले, (जीवित रहते वापस लौट आने) के कारण [उत्पन्न]

१. आहूय।
२. अविच्छिन्नैश्च।
३. सह।
४. मलिनीकृत०।

अहमहमिकया परस्परावरणेनैवात्मदर्शनमभिरक्षन्तम्, अक्षतमपि हतमिव, सपरिच्छदमपि मुषितमिव, जीवन्तमपि मृतमिव, ससम्भ्रमकृतागमनमपि प्रतीपमाकृष्यमाणचरणमिव, अङ्गैरेव सह गलितोत्साहम्, [1]बाष्पेणैव सह मुक्तात्मानम्, वैक्लव्येनैव सहोपसर्पन्तम्, मेघनादपुरःसरं सकलमेव चन्द्रापीडचरणतलनिबद्धजीवितनं राजपुत्रलोकमालोक्यो[2]ल्लसिततनयशोकोर्मिवेगाक्रान्तोप्युच्छ्वसित इव दृढीभूतचन्द्रापीडदेहाविनाशप्रत्ययान्तरात्मना निवृत्य

भावनया जातलज्जया स्वमुखं दर्शयितुमसमर्थाः पातालमिव प्रविशन्त आसन् इति भावः ।] अहमहमिकया = अहं पूर्वम् अहं पूर्वम् इति भावनया, परस्परावरणेन—परस्परस्य (= अन्योन्यस्य) आवरणेन (= आच्छादनेन, व्यवधानेन), एव, आत्म दर्शनम् = स्वविलोकनम्, राज्ञादिकर्तृकमिति योज्यम्, अभिरक्षन्तम् = गोपायन्तम्, वारयन्तम् । अक्षतम्=अप्राप्ताघातम्, अपि, हतम्=व्यापादितम्, इव । सपरिच्छेदम् = सपरिवारम्, परिच्छदः (= सामग्री) तेन सहितम्, अपि, मुषितम्=लुण्ठितम्, इव । चित्तस्यास्वस्थतया अस्वाभाविकरूपेण दृश्यमानमिवेति भावः । जीवन्तम् = प्राणन्तम्, अपि, मृतम् = प्राप्तमरणम्, इव । निश्चेष्टतया तथैव विलोक्यमानमिवेति भावः । ससम्भ्रमेत्यादिः—सम्भ्रमः (= त्वरा, व्यग्रता) तेन सहितं यथा स्यात् तथा कृतम् (= विहितम्) आगमनम् (= तत्र सम्प्राप्तिः) येन तं तादृशम्, अपि, प्रतीपम्=विलोमम्, आकृष्यमाणचरणम्—आकृष्यमाणौ (=आकर्षणविषयीक्रियमाणौ) चरणौ (= पादौ) यस्य तं तादृशम् । अङ्गैः = शरीरावयवैः, सह, गलितोत्साहम्—गलितः (= दूरीभूतः, शिथिलितः) उत्साहः (= साहसम्) यस्य तं तादृशम् । बाष्पेण = अश्रुजलेन, एव, सह = सार्धम्, मुक्तात्मानम् = विसृष्टजीवनम्, परित्यक्तमनोबलम् । वैक्लव्येन = विह्वलतया, एव, सह = साकम्, उपसर्पन्तम् = समीपं गच्छन्तम् । मेघनादपुरःसरम्—मेघनादः (= एतन्नामकः बलाध्यक्षः) पुरःसरः (= अग्रेगामी) यस्य तं तादृशम्, सकलम् = सर्वम्, एव, चन्द्रापीडेत्यादिः—चन्द्रापीडस्य (= युवराजस्य) चरणतले (= पादयोरधोदेशे) निबद्धम् (= सन्नद्धम्, स्थापितम्) जीवितम् (= जीवनम्) यस्य तं तादृशम्, राजपुत्रलोकम् = राजकुमारसमूहम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, उल्लसितेत्यादिः—उल्लसितः (= समुत्थितः) यः तनयस्य (=पुत्रस्य) शोकस्य (= शुचः, दुःखस्य) ऊर्मिः (= तरङ्गः) इव वेगः (=रयः) तेन आक्रान्तः (=अधिष्ठितः, अभिभूतः, परिव्याप्तः), अपि, [राजपुत्रलोकस्य दर्शनेन] उच्छ्वसितः = प्राप्तचैतन्यः, इव, दृढीभूतेत्यादिः—दृढीभूतः (=प्रबलीभूतः, निश्चितीभूतः) चन्द्रापीडस्य (=स्वपुत्रस्य) देहस्य (=शरीरस्य) अविनाशे (= अक्षतत्वे) प्रत्ययः (=विश्वासः) यस्य तादृशेन, अन्तरात्मना (=चित्तेन) निवृत्य=

लज्जा से मानों पाताल में प्रविष्ट हो जाने की इच्छा करते हुए, परस्पर में स्पर्धा करते हुए एक-दूसरे की आड़ में होकर [छिपकर राजा को अपना मुख] दिखाने से बचाते हुए, अक्षत (स्वस्थ शरीर वाले) होते हुए भी मारे गये जैसे, समस्त सामग्री से युक्त होते हुए भी लुटे हुए से, जीवित रहते हुए भी मरे जैसे, जल्दी में आते हुए भी उल्टे पैरों से पीछे की ओर खींचे जाते हुए जैसे, शरीर के अंगों के साथ ही ढीले-ढाले उत्साह वाले, आसुओं के साथ ही आत्मा (मनोबल) को गिराते हुए, विह्वलता के साथ ही आगे बढ़ते हुए, मेघनाद सेनापति को आगे किए हुए, चन्द्रापीड के ही चरणतल में जीवन को समर्पित किये (बाँधे) हुए सभी राजपुत्रों को देखकर, उठ रहीं पुत्रशोक की तरंगों के वेग से आक्रान्त होता हुआ भी चैतन्य को प्राप्त करता हुआ सा अथवा आश्वस्त होता हुआ सा राजा (तारापीड अपने पुत्र) चन्द्रापीड के शरीर के अविनाश (ठीक दशा) के विषय में दृढ़ विश्वास रखने

१. चापेनैव । २. उल्लसितनयनः ।

सा वरणपर्याणवर्तिनीं विलासवतीमवादीत्—'देवि, दिष्ट्या वर्धसे। म्रियते सत्यमेव शरीरेण वत्सः, येन सकल एवायं तच्चरणकमलानुजीवी राजपुत्रलोकस्तत्पादमूलादागत इति।'

सा तु तदाकर्ण्य किंचिदात्मपाणिनैवोत्सारितावरणसिचयाञ्चला निश्चलया दृष्ट्या चिरमिवालोक्य[1] तनयनिर्विशेषं राजपुत्रलोकमविच्छि[2]न्नाश्रुधारापि धैर्यमुन्मुच्योच्चैरारटितवती—"हा वत्स, कथं सहपांशुक्रीडितस्यैतावतो राजपुत्रलोकस्य मध्ये त्वमेवैको न दृश्यसे" इति।

पश्चात् परावर्त्य, सावरणेत्यादिः—आवरणेन (= वस्त्राद्याच्छादनेन) सहितम् यत् पर्याणम् (= पल्ययनम्; पर्यङ्कः) तत्र वर्तिनीम् (= विद्यमानाम्), विलासवतीम् = महाराज्ञीम्, अवादीत् = अवोचत्, राजा तारापीडः—'देवि = प्रिये!, दिष्ट्या = भाग्येन, वर्धसे = एधसे, तव भाग्यवृद्धिर्भवतीति भावः। सत्यम् = तथ्यम्, एव, वत्सः = पुत्रश्चन्द्रापीडः, शरीरेण = देहेन, म्रियते = धार्यते, तस्य शरीरमविनाशि वर्तते इति यदाकर्णितं तत्सर्वं सत्यमेव मन्तव्यमिति तदाशयः। येन = हेतुना, सकलः = सर्वः, एव, अयम् = पुरोवर्ती, तच्चरणेत्यादिः—तस्य चरणौ (=पादौ) कमले (=पङ्कजे) इवेति, ते अनुजीवितुं शीलं यस्य तादृशः, राजपुत्रलोकः=राजकुमार-समूहः तत्पादमूलात् = तस्य चरणतलसमीपात्, आगतः = अत्र सम्प्राप्तः, वैपरीत्ये तु अस्यागमने साहसमेव न स्यादिति सद्भावः।

इदानीं विलासवत्याः व्यवहारं वर्णयति—सा त्वित्यादिना। सा = विलासवती, तु, तत् = राज्ञोक्तम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, किञ्चिदात्मेत्यादिः—किञ्चित् (= कियत्, ईषद्) यथा स्यात् तथा आत्मनः (= स्वस्याः) पाणिना (= करेण) उत्सारितम् (= अपाकृतम्; ऊर्ध्वीकृतम्) आवरणस्य (= आच्छादनस्य) सिचयस्य (= वस्त्रस्य) अञ्चलम् (= प्रान्तभागः) यया सा तादृशी ["सिचयो वसनं चीराच्छादौ सिक्चेलवाससि। पटप्रान्ताञ्चलस्यान्ते।" इति हैमः।] निश्चलया = स्पन्दशून्यया, स्थिरया, दृष्ट्या = नेत्रेण, चिरम् = दीर्घकालम्, इव, तनयनिर्विशेषम्—तनयेन (= पुत्रेण चन्द्रापीडेन) निर्विशेषम् (= निर्गतः विशेषः = भेदः यस्मात्, तं तादृशम्, समानमित्यर्थः) राजपुत्रलोकम् = नृपसुतसमूहम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, अविच्छिन्ना (= अत्रुटिता, अनवरता) अश्रुणः (= वाष्पसलिलस्य) धारा (= प्रवाहः) यस्याः सा तादृशी, अपि, धैर्यम् = धीरताम्, उन्मुच्य = परित्यज्य, उच्चैः = तारस्वनेन, आरटितवती = आक्रन्दं कृतवती—हा = इदं शोके, वत्स = पुत्र!, सह पांशुक्रीडितस्य = सार्धमेव रजसा कृतक्रीडस्य, समानक्रीडां कृत्वा प्राप्तयौवनस्येति भावः, एतावतः = इयतः विशालस्येति भावः, राजपुत्रलोकस्य, मध्ये = अन्तरा, त्वम् = भवान्, एव, एकः = एककः, न,

---

वाले मन से (पीछे की ओर) मुड़कर (घूमकर) पर्दे वाली घोड़े की जीन में बैठी हुई महारानी विलासवती से कहने लगा—'महारानीजी! बधाई हो। सचमुच में पुत्र शरीर से जीवित है अर्थात् उसका शरीर सुरक्षित अविकृत है। इसीलिए तो उसके चरणकमलों पर आश्रित जीविका वाले ये सभी राजकुमार उसके चरणों के पास से यहाँ आये हैं।' [यदि उसका शरीर सुरक्षित और पूर्ववत् अविकृत दशा में न होता तो ये सभी उसे छोड़कर मेरे सामने आने का साहस नहीं कर पाते।]

परन्तु महारानी यह सुनकर, अपने हाथ से ही अपने आच्छादनवस्त्र (परदे) का आँचल कुछ हटाकर, स्तब्ध दृष्टि से बहुत देर तक अपने पुत्रसदृश राजकुमारों को देखकर लगातार अश्रुधारा को बहाती हुई भी धैर्य को छोड़कर जोर-जोर से चिल्लाने (क्रन्दन करने) लगी—"हाय बेटा! साथ-साथ में धूलि में खेलने वाले अर्थात् अपने बाल्यकाल के साथी इतने राजकुमारों के बीच में अकेले

---

१. विलोक्य। २. अवच्छिन्न।

तथारटन्तीं तु तां समाश्वास्य दूरत एव राजा समं सर्वलोकेनावनितलनिवेशितोत्तमाङ्गं मेघनादम् 'इतो ढौकस्वे'त्यादि[1]श्योद्दिश्याप्राक्षीत्—'मेघनाद, कथय को वृत्तान्तो वत्सस्य ?' इति। स तु व्यज्ञापयत्—'देव, चेतनाविरहाच्चेष्टामात्रकमेवापगतम्, शरीरे पुनर्ज्ञायते दिवसे दिवसेऽप्यधिका कान्तिः समुपजायते' इति। राजा तु तच्छ्रुत्वा जीवितप्रतिलम्भे समुपजातप्रत्याशः 'श्रुतं देव्या मेघनादस्य वचनम् ? तदेहि, चिरात्पुनः कृतार्थयामो दर्शनेनात्मानम्, पश्यामो वत्सस्य वदनम्'' इत्यभिदधान एवाभिवर्धितगतिविशेषया करेण्वा महाश्वेताश्रममगमत्।

दृश्यसे = विलोक्यसे, अस्माभिरिति शेषः।' इति = वाक्यसमाप्तौ। तु = परन्तु तथा = पूर्वोक्तप्रकारेण, आरटन्तीम् = आक्रन्दन्तीम्, विलपन्तीम्, ताम् = विलासवतीम्, समाश्वास्य = सान्त्वनां प्रदाय, राजा = नृपस्तारापीडः, दूरतः = विप्रकृष्टाद्, एव, सर्वलोकेन = सकलजनेन, समम् = सार्धम्, अवनितल-निवेशिताङ्गम्=भूतले स्थापितमस्तकम्, भूतले मस्तकं निधाय प्रणमन्तमित्यर्थः, मेदनादम् = एतन्नामकं सेनाध्यक्षम्, 'इतः = अत्र, ढौकस्व = आगच्छ", इति = इत्थम्, आदिश्य = आज्ञाप्य, उद्दिश्य = विशेषतो लक्ष्यीकृत्य, अप्राक्षीत् = पृष्टवान्—'मेदनाद !, कथय = वद, सूचय, वत्सस्य = पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य, कः, वृत्तान्तः = उदन्तः, वर्तते ? सः = मेघनादः, तु, व्यज्ञापयत् = न्यवेदयत्। देव = स्वामिन्, चेतनाविरहात् = चैतन्यस्याभावात्, चेष्टामात्रकम् = शारीरिकसञ्चलनादिक्रियामात्रम्, एव, अपगतम् = दूरीभूतम्, न त्वन्यत् किञ्चिदिति एवकारेण गम्यते; पुनः = परन्तु, शरीरे = देहे, दिवसे-दिवसे = प्रतिदिनम्, अपि, अधिका=पूर्वतोऽपि प्रचुरा, कान्तिः = द्युतिः, जायते = उत्पद्यते, इति, ज्ञायते = बुध्यते, इतिः = कथनसमाप्तौ। राजा = नृपस्तारापीडः, तु, तत् = मेघनादोक्तम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, जीवित-प्रतिलम्भे = पुनर्जीवनप्राप्तौ, समुपजातप्रत्याशः—समुपजाता (= समुत्पन्ना) प्रत्याशा (= आशा) यस्य स तादृशः, सन्—'देव्या = महाराज्ञ्या भवत्या, मेघनादस्य, वचनम् = भाषितम्, श्रुतम् = आकर्णितम् ? तत् = तस्मात्, एहि = आगच्छ, चिरात् = चिरकालात्, बहुविलम्बादिति भावः, पुनः,दर्शनेन=पुत्रस्यावलोकनेन, आत्मानम्=स्वं स्वां च,कृतार्थयामः=सफलीकुर्मः, इति = एवम्, अभिदधानः = कथयन्, एव, अभिवर्धितेत्यादिः—अभिवर्धितः (= वृद्धिं प्रापितः) गतिविशेषः (= गमनक्रिया वैशिष्ट्यम्) यस्याः तादृश्या, करेण्वा = हस्तिन्या, महाश्वेताश्रमम्=अच्छोदसरोवरस्य निकटस्थित-तपस्थलीविशेषम्, अगमत्=अगच्छत् प्राप्तवान्।

तुम्हीं क्यों नहीं दिखाई पड़ रहे हैं ?'' इस प्रकार से चिल्लाती हुई उस विलासवती को धीरज बँधाकर, दूर से ही राजा ने सभी लोगों के साथ-साथ भूतल पर माथा टेके हुए मेघनाद को "इधर आओ" ऐसी आज्ञा देकर, उसे लक्षित करके पूछा—'मेघनाद, बताओ बेटे का क्या समाचार है?' उसने निवेदन किया—"महाराज ! चेतना के न रहने के कारण केवल चेष्टा (शारीरिक क्रिया) ही नष्ट हुई है, परन्तु ऐसा मालूम होता है कि दिन-प्रतिदिन शरीर में कान्ति और अधिक होती जा रही है।' इसे सुनकर पुनः जीवन प्राप्त होने के विषय में पूरी आशा रखते हुए—"महारानी ने मेघनाद का कहना सुना ? इसलिए आओ, बहुत दिनों बाद फिर से पुत्र के दर्शन से अपने को कृतार्थ करें, पुत्र का मुख देखें।'—इस प्रकार से कहते हुए ही विशेष तेजी के साथ चलाई गई हथिनी से महाश्वेता के आश्रम में चल दिये।

---

१. उद्दिश्योद्दिश्य, इत्यादिश्य।

अथ सहसैव तच्चन्द्रापीडगुरुजनागमनमाकर्ण्य [1]पुरःप्रकीर्णतारमुक्तानुकारिनयनबिन्दुसंदोहा[2] 'हा हतास्मि मन्दपुण्या दुःखैकभागिनी, न जानाम्येव विस्मृतमरणा कियद्यावदहमनेनानेकप्रकारं [3]खलीकारदानैकपण्डितेन दग्धवेधसा परं दग्धव्या !' इत्यभिदधानैव धावित्वा ह्रिया महाश्वेता [4]गुहाभ्यन्तरमविशत् । चित्ररथतनयापि सत्वरोपसृतसखीकदम्बकावलम्बितशरीरा तूष्णीमेव मोहान्धकारम् । तदवस्थयोश्च तयोः शुकनासावलम्बितशरीरो

अथेति । अथ = तारापीडादीनां महाश्वेताश्रमसमीपमागमनानन्तरम्, सहसा = अकस्माद्, एव, तत् = पूर्वोक्तम्, चन्द्रापीड-गुरुजनागमनम् = चन्द्रापीडस्य मातापित्रादीनाम् आगमनम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, पुरः-इत्यादिः—पुरः (= अग्रे) प्रकीर्णाः (= विकीर्णाः) अथ च ताराः (= उज्ज्वलाः) या मुक्ताः (= मौक्तिकानि) ता अनुकुर्वन्ति—इत्येवंशीलाः = सदृशाः ये नयनयोः (= नेत्रयोः) बिन्दवः (= अश्रुपृषताः) तेषां सन्दोहः (= समूहः) यस्याः सा तादृशी, केचित्तु—पुरः विकीर्णः तारमुक्तानुकारि-नयनबिन्दुसन्दोहः यया सा तादृशी—इति व्याचख्युः । यस्याः चक्षुषोः प्रकीर्णानां ताराणां मुक्तानां सदृशानाम् अश्रुबिन्दूनां सन्दोहो पतन्नासीदिति भावः । हा = इदं शोकातिरेके, मन्दपुण्या = अल्पपुण्या, दुःखैकभागिनी—दुःखम् (= क्लेशम्) एकम् (= केवलम्) भजति (= प्राप्नोति) इत्येवंशीला तादृशी, अहम् = महाश्वेता, हता = व्यापादिता, अस्मि = भवामि, न जानामि = अवगच्छामि, एव, विस्मृतमारणा—विस्मृतम् (= विस्मृतिं प्रापितम्) मरणम् (= मृत्युः) यया सा तादृशी, कियद्यावत् = कियत्समयपर्यन्तम्, अहम् = महाश्वेता, अनेकप्रकारकम् = बहुविधं यथा स्यात् तथा, खलीकारेत्यादिः—खलीकारः (= उत्पीडनम्, सन्त्रासः) तस्य दाने (= अर्पणे) एकस्मिन् (= केवले) पण्डितेन (= विचक्षणेन, निपुणेन), अनेन = एतेन सर्वविदितेन, दग्धवेधसा (= ज्वलितविधात्रा, हतब्रह्मणा), परम् = अधिकाधिकम्, दग्धव्या = दाहनीया, ज्वालनीया—इति = इत्थम्, अभिदधाना = कथयन्ती, एव, ह्रिया = लज्जया, धावित्वा = पलाय्य, महाश्वेता, गुहाभ्यन्तरम् = गह्वरमध्यम, अविशत् = प्रविष्टा । चित्ररथतनया = कादम्बरी, अपि, सत्वरेत्यादिः—सत्वरम् (= शीघ्रम्, ससंभ्रमम्) यथा स्यात् तथा उपसृतः (= समीपमागतः) यः सखीनाम् (= आलीनाम्) कदम्बकः (= समूहः) तेन अवलम्बितम् (= आश्रितम्, धृतम्)

इसके बाद अचानक ही चन्द्रापीड के गुरुजनों = माता, पिता तथा अमात्य का आना सुनकर उज्ज्वल मोतियों-सदृश अश्रुबिन्दुओं के समूह को आगे बिखेरे हुई—'हाय ! अभागिन, केवल दुःख को भोगने वाली मैं मारी गई, मुझे मालूम नहीं कि केवल अपकार (उत्पीडन) देने में निपुण यह जला हुआ (दुष्ट) विधाता मौत को भूली हुई मुझ अबला को कब तक तरह-तरह से और अधिक जलाता रहेगा ?'' ऐसे कहती हुई ही लज्जा के कारण भागकर, महाश्वेता अपनी गुफा के भीतर घुस गई, छिप गई । और चित्ररथ (गन्धर्वराज) की कन्या (कादम्बरी) भी शीघ्र ही पास में आई हुई सखियों के समूह द्वारा पकड़े (थामे) गये शरीरवाली होकर, चुपचाप मोहरूपी अन्धकार में (प्रविष्ट हो गयी) । उन दोनों (महाश्वेता और कादम्बरी) के ऐसी दशा में होते हुए शुकनास द्वारा सहारा

---

१. पुनः । २. ...सन्दोहम् ।
३. अनेकप्रकारखलीकार० । ४. गुहाभ्यन्तरम् ।

राजा विवेशाश्रमपदम् । तदनु मनोरमावलम्बिता पुरःप्रधावितोत्प्लुतायततरदृष्टिः 'क्व मे वत्सः?' इति पृच्छन्ती विलासवती । प्रविश्य च 'सहजयैव कान्त्याऽ[1]विरहितमुपरतसर्वप्रयत्नं [2]सुप्तमिव तं पुत्रवत्सला तनयमालोक्य यावन्न परापतत्येव तारापीडस्तावद्विलासवती विधारयन्तीं मनोरमामप्याक्षिप्य दूरत एव प्रसारितबाहुलताद्वया रयोन्मुक्तजर्जराभिर्नयनजलधाराभिः

शरीरम् (= देहः) यस्याः तादृशी सती, तूष्णीम् = मौनम्, एव, मोहान्धकारम्—मोहः (= मूर्च्छा) एव अन्धकारः (= तमः) तम्, 'अविशत्' = प्रविष्टा'' इति क्रियापदमत्रापि योज्यम् । तयोः = कादम्बरी-महाश्वेतयोः, तदवस्थयोः—सा (= पूर्ववर्णिता) अवस्था (= दशा) ययोस्ते तादृशयोः, सत्योः, शुकनासेत्यादि—शुकनासेन अवलम्बितम् (= धृतम्), शरीरम् (= कायः) यस्य तादृशः, राजा = नृपस्तारापीडः, आश्रमपदम् = आश्रमस्थलम्, विवेश = प्रविष्टवान् । तदनु = तयोः पश्चात्, मनोरमावलम्बिता = शुकनासपत्नीधृता, पुर-इत्यादिः-पुरः (= अग्रे) प्रधाविता (= जवेन प्रचलिता) उत्प्लुता (= अश्रुपरिपूर्णा) आयततरा (= अतिदीर्घा) च दृष्टिः (= नेत्रम्) यस्याः सा तादृशी, 'क्व = कुत्र, मे = मम विलासवत्याः, वत्सः = पुत्रः चन्द्रापीडः ?' इति, पृच्छन्ती = प्रश्नं कुर्वाणा, विलासवती = महाराज्ञी, 'आश्रमपदं विवेश' इति अत्रापि योज्यम् ।

प्रविश्य चेति । प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा च, विलासवतीति कर्तृपदं योज्यम्, सहजया = स्वाभाविक्या, एव, कान्त्या = प्रभया, द्युत्या, अविरहितम् = युक्तम्, उपरत-सर्वप्रयत्नम् = सकलचेष्टाशून्यम्, अतएव, सुप्तम् = कृतशयनम्, इव, तम् = पूर्वोक्तम्, तनयम् = पुत्रम्, चन्द्रापीडम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, तारापीडः = नृपः, न, परापतति = आयाति, तावत् तारापीडागमनात् पूर्वमेवेति भावः, पुत्रवत्सला = सुतवल्लभा, विलासवती = महाराज्ञी, विधारयन्तीम् = शरीरमवलम्बमानाम्, मनोरमाम् = वैशम्पायनजननीम्, आक्षिप्य = दूरे क्षिप्त्वा, दूरतः = विप्रकृष्टाद्, एव, प्रसारित-बाहुलतया-प्रसारितम् (=विस्तारितम्) बाह्वोः (=भुजयोः) लतयो (=व्रतत्योः) इव द्वयम् (=युग्मम्) यया सा तादृशी, रयेत्यादिः—रयेण (=वेगेन) उन्मुक्ताः (=परित्यक्ताः) अतएव, जर्जराभिः (= विशीर्णाभिः, छिन्नभिन्नाभिः), नयनजल-धाराभिः = अश्रुसलिलप्रवाहैः, प्रस्रवेण = स्तन्यक्षरणेन,

---

दिये गये शरीरवाला राजा तारापीड आश्रम में प्रविष्ट हो गया । इसके पीछे-पीछे मनोरमा द्वारा सहारा दी गई, आगे दौड़ी हुई और अधिक फैली हुई नेत्रों वाली—'मेरा बेटा कहाँ है ?' इस प्रकार से पूछती हुई विलासवती [महाश्वेता के आश्रम में प्रविष्ट हुई ।] (वहाँ) प्रवेश करके अपनी स्वाभाविक कान्ति से युक्त, (किन्तु) सभी प्रकार की शारीरिक चेष्टाओं से रहित, सोये हुए जैसे उस अपने पुत्र (चन्द्रापीड) को देखकर पुत्रवत्सला महारानी विलासवती ने राजा तारापीड के पहुँचने के पहले ही अपने को सहारा देने वाली (पकड़ कर थामने वाली) मनोरमा को हटाकर (पीछे धकेल कर) दूर से ही दोनों लतासदृश हाथों को फैलाये हुई, वेग से गिरने के कारण छिन्न-भिन्न होती हुई अश्रुजल = आसुओं की धाराओं से तथा स्तनों से चूते हुए दूध से भूतल को सींचती (गीला करती)

---

१. सह तयैव कान्त्या ।

२. 'सहजयैव कान्त्या विरहितम्' इति स्वपपाठः, कथानकविरोधात्, तात्पर्यविरहाच्चेति बोध्यम् ।

३. पुस्तमयमिव, प्रस्तरमयमिव ।

प्रस्रवेण च सिञ्चन्ती महीतलम्, 'एहि जातदुर्लभक ! चिराद् दृष्टोसि, देहि मे प्रतिवचनम्, आलोकय सकृदपि माम्, अनुचितं तात तवैतदवस्थानम्, उत्थायाङ्कोपगमनेन मे संपादय तनयोचितं स्नेहम्, न [1]चानाकर्णितपूर्वं बाल्येपि त्वया मद्वचनम्, अद्य किमेवं विलपन्त्या अपि न शृणोषि ? जात केन रोषितोसि ? एषा तोषयामि वत्स पादयोर्निपत्य। पुत्र चन्द्रापीड प्रणम तावत्प्रत्युद्गम्य त्वत्स्नेहादेवातिदूरमागतस्यापि पितुः पादौ। क्व सा गता ते गुरुभक्तिः ? क्व ते गुणाः ? क्व स स्नेहः ? क्व सा धर्मज्ञता ? क्व तत्पितृपक्षपाति-

---

च, महीतलम् = भूतलम्, सिञ्चन्ती = आर्द्रं कुर्वाणा, "एहि = आगच्छ, जातदुर्लभक = उत्पन्न-दुर्लभक, चिराद् = बहुविलम्बाद्, दृष्टः = विलोकितः, असि = वर्तसे, मे = मम विलासवत्याः, प्रतिवचनम् = प्रत्युत्तरम्, देहि = प्रयच्छ, माम् = स्वजननीं विलासवतीम्, सकृद् = एकवारम्, अपि, विलोकय = पश्य, तात = प्रियपुत्र !, तव = भवतः, एतदवस्थानम् = अनेन रूपेणात्रावस्थितिः, अनुचितम् = अयुक्तम्; उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, अङ्कोपगमनेन = क्रोडे समागमनेन, मे = मम विलासवत्याः, तनयोचितम् = पुत्रस्य योग्यम्, स्नेहम् = अनुरागम्, सम्पादय = कुरु। बाल्ये = बालकावस्थायाम्, शैशवे, अपि, त्वया = भवता चन्द्रापीडेन, मद्वचनम् = मम विलासवत्याः भाषितम्, न = नैव, अनाकर्णितपूर्वम् = अश्रुतपूर्वम्, इतः पूर्वं न कदापि इत्थं जातं यदा त्वया मम वचनं न श्रुतं तदनुसारं च नाचरितमिति भावः, नञ्द्वयप्रयोगः प्रकृतकथनस्य दाढ्यं बोधयितुं बोध्यम्, तेन श्रुतमेवेति सिध्यति, अद्य = अस्मिन् समये, किम् = कस्मात् कारणात्, एवम् = अनेन प्रकारेण, विप्रलपन्त्याः = आक्रन्दत्याः, अपि, न = नैव, शृणोषि = आकर्णयसि ? वचनमिति शेषः, जात = हे वत्स ! केन = अज्ञातेन जनेन, रोषितः = क्रोधं प्रापितः, असि ? वत्स = पुत्र, एषा = इयं ते जननी, पादयोः = चरणयोः, तवेति शेषः, निपत्य = पतित्वा, नतीभूय, तोषयामि = प्रसादयामि। हे पुत्र चन्द्रापीड !, तावत् = आदौ, प्रत्युद्गम्य = सम्मुखमभिगम्य, त्वत्स्नेहात् = त्वयि अनुरागात्, एव, अतिदूरम् = अतिविप्रकृष्टम्, आगतस्य = सम्प्राप्तस्य, पितुः = जनकस्य तारापीडस्य, अपि, पादौ = चरणौ, प्रणम = नमस्कुरु। ते = तव चन्द्रापीडस्य, सा = पूर्वप्रसिद्धा, गुरुभक्तिः = पित्रादीनाम् आराध्यत्वेन सेवा, क्व = कुत्र, गता = प्रयाता ? ते = तव, गुणाः = दयौदार्यदाक्षिण्यादि-वैशिष्ट्यानि, क्व = कुत्र, गताः ? सः = सर्वजनविदितः, स्नेहः = अनुरागः, गुरुजनेष्विति शेषः, क्व = कुत्र, गतः ? सा = अतिप्रसिद्धा, धर्मज्ञता = धर्मशास्त्रज्ञानम्, क्व, गता ? तत् = सुप्रसिद्धम्, पितृपक्षपातित्वम् =

हुई—'आओ मेरे दुर्लभ बच्चे ! बहुत समय बाद दिखाई पड़ रहे हो। मुझे उत्तर दो। एक बार भी मेरी ओर देखो। बेटा ! तुम्हारा इस प्रकार से (निश्चेष्ट होकर) रहना अच्छा नहीं है। उठकर मेरी गोद में आने के द्वारा पुत्र के योग्य स्नेह करो, दिखाओ, लड़कपन में भी तुमने कभी भी मेरी बात अनसुनी नहीं की, नहीं टाली है। तब फिर आज इस प्रकार से रोती-बिलखती हुए भी मेरी (बात) क्यों नहीं सुन रहे हो ? बेटा किसने तुझे नाराज कर दिया, यह लो मैं दोनों पैरों पर गिरकर तुम्हें मना रही हूँ। बेटा चन्द्रापीड ! पहले अगवानी करके, (तुम) तुम्हारे स्नेह के कारण ही इतनी दूर आये हुए अपने पिता जी को भी पैरों में प्रणाम करो। तुम्हारी गुरुजनों के विषय में वह भक्ति कहाँ चली गई ? तुम्हारे वे गुण कहाँ [गये] ? कहाँ [गया तुम्हारा] वह स्नेह ? कहाँ [गई तुम्हारी] वह धर्मज्ञता ? कहाँ [गया तुम्हारा] वह पिता के प्रति पक्षपात ? कहाँ [गई

---

१. अनवकर्णितपूर्वम्।

त्वम्? क्व सा बन्धुप्रीतिः? क्व सा परिजनवत्सलता? कथमभाग्यैर्मे सर्वमेकपदे एवोत्सृज्यैवमौदासीन्यमवलम्ब्यावस्थितोसि? अथवा यथा ते सुखं तथा तिष्ठ, वय'मुदासीनहृदयास्त्वयि'—इति कृतार्तप्रलापा समुपसृत्य पुनः पुनर्गाढमालिङ्ग्याङ्गानि शिरः समाघ्राय कपोलौ चुम्बित्वा चन्द्रापीडस्य चरणावुत्तमाङ्गे कृत्वोन्मुक्तकण्ठमरोदीत्।

तथा रुदन्तीं तु तामन्तरितनिजपीडस्तारापीडश्चन्द्रापीडमपरिष्वज्यैव सर्वप्रजापीडा-

---

पितरि मातरि च विशेषस्नेहः, क्व, गतम्? सा = सर्वज्ञाता, बन्धुप्रीतिः = बान्धवजनेषु, अनुरागः, क्व, गता? सा = सर्वत्र प्रसिद्धा, परिजनवत्सलता = सेवकजनहितकारिता, क्व, गता? मे = मम विलासवत्याः, अभाग्यैः = दुर्दैवैः, एकपदे = अकस्मात्, एव, सर्वम् = समस्तम्, पूर्वोक्तं गुरुभक्त्यादिकमिति भावः, उत्सृज्य = विहाय, कथम् = कस्मात् कारणात्, एवम् = अनेन प्रकारेण, औदासीन्यम् = वैराग्यम्, अवलम्ब्य = समाश्रित्य, स्थितः = निषण्णः, असि = वर्तसे? अथवा = पक्षान्तरे, यथा = येन प्रकारेण, ते = तव चन्द्रापीडस्य, सुखम् = आनन्दः, प्रसन्नता, स्यात्, तथा = तेन प्रकारेण, तिष्ठ = निषीद, वर्तस्व। वयम् = तव मात्रादयः, त्वयि = त्वद्विषये, उदासीनहृदयाः—उदासीनम् (= तटस्थम्, अजिज्ञासु) हृदयम् (= चित्तम्) येषां ते तादृशाः, आग्रहरहिता इति भावः, स्मः=वर्तामहे—इति अनेन रूपेण, कृतार्त्तप्रलापा—कृतः (=विहितः) आर्त्तः (=करुणः) प्रलापः (=क्रन्दनम्) यया सा तादृशी, समुपसृत्य = समीपं गत्वा, पुनः पुनः = भूयो भूयः, चन्द्रापीडस्य, अङ्गानि = चन्द्रापीडशरीरावयवान्, गाढम् = निबिडं यथास्यात् तथा, आलिङ्ग्य = समाश्लिष्य, शिरः = मूर्धानम्, समाघ्राय = सम्यग्रूपेण घ्रात्वा, कपोलौ = गण्डस्थले, चुम्बित्वा = चुम्बनं कृत्वा, चरणौ = चन्द्रापीडस्य पादौ, उत्तमाङ्गे = स्वमस्तके, कृत्वा, मस्तकेन स्पृष्ट्वा धृत्वा चेति भावः, उन्मुक्तकण्ठम्—उन्मुक्तः (= परित्यक्तः) कण्ठः (= कण्ठस्वरः) यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा, अतीवोच्चैः स्वरेणेति भावः, अरोदीत् = रोदनमारेभे।

तथा रुदन्तीमिति। तथा = पूर्वोक्तरूपेण, रुदन्तीम् = आक्रन्दन्तीम्, ताम् = विलासवतीम्, अन्तरितेत्यादिः—अन्तरिता (= व्यवहिता, विस्मृता) निजा (= स्वीया) पीडा (= तनयसम्बन्धिव्यथा) येन स तादृशः, चन्द्रापीडम् = स्वतनयम्, अपरिष्वज्य = अनालिङ्ग्य, एव, सर्वेत्यादिः—सर्वाः (= सकलाः) च ताः प्रजाः (= पाल्यजनाः) तासां पीडाः (= कष्टानि)

तुम्हारी] वह बन्धुओं के साथ प्रीति? कहाँ है वह परिजनों के प्रति वत्सलता? मेरे अभाग्यों (पापों) के कारण यह सब अचानक छोड़कर क्यों उदासीनता का अवलम्बन करके अर्थात् उदास बनकर बैठ गये हो? अच्छा (बेटा!) तुम्हें जैसे सुख मिले, वैसे ही बैठे रहो, हम लोग तुम्हारे विषय में उदासीन हो गये अर्थात् अब कुछ नहीं कहेंगे।"—इस प्रकार से आर्त्त प्रलाप करती हुई (विलासवती) चन्द्रापीड के पास पहुँचकर बार-बार कसकर (छाती से) आलिंगन कर (लगाकर) शिर सूँघकर, गालों को चूमकर, उसके दोनों पैरों को अपने मस्तक से लगाकर, उन्मुक्त कण्ठ से (जोर-जोर से) रोने लगी।

परन्तु अपना दुःख भूलकर, चन्द्रापीड का आलिंगन किये बिना ही राजा तारापीड ने उस प्रकार से क्रन्दन करती हुई महारानी विलासवती को, समस्त प्रजा की पीडा हरने में समर्थ अपनी

---

१. औदासीन्य, अनुदासीन।

पहरणक्षमाभ्यां [1]भुजाभ्यामवलम्ब्याब्रवीत्–'देवि, यद्य[2]प्यावयोः सुकृतैरपत्यता[3]मुपगतस्तथापि देवतामूर्तिरेवायमशोचनीयः। [4]तदुन्मुच्यतामयमिदानीं [5]मनुष्यलोकोचितः शोचितव्य-वृत्तान्तः। अस्मिञ्छोके कृते न किंचिदपि भवति। केवलं गल एव स्फुटति रुदतो न हृदयम्। निरर्थकं प्रलपितमेव निर्याति [6]वदनान्न जीवितम्। निरासङ्गं नयनजलमेव पतति न शरीरम्। अपि च, वत्सस्यादर्शनमात्रमेवावयोः पीडाकरम्। तच्चैवमालोक्यमाने मुखेऽस्य दूरापेतम्। अपरमस्यामवस्थायामावाभ्यामपि तावत्परमवष्टम्भं कृत्वा मनोरमा शुकनासश्च

तासां हरणे (= अपनयने, दूरीकरणे) क्षमाभ्याम्=समर्थाभ्याम्, भुजाभ्याम् = बाहुभ्याम्, अवलम्ब्य = आश्रित्य, धृत्वा, अब्रवीत् = अवोचत्। किं तदित्याह–देवि—इत्यादिना। हे देवि !, यद्यपि, आवयोः= विलासवती-तारापीडयोः,जननीजनकयोः, सुकृतैः=पुण्यैः, अपत्यताम्=तनयत्वम्, उपगतः=सम्प्राप्तः, एष चन्द्रापीड इति शेषः, तथापि, अयम्=एष आवयोस्तनयभूतः, देवमूर्तिः=देवस्वरूपः, एव, अशोचनीयः= शुचं कर्तुमयोग्यः, अस्य जन्ममरणविषये किमपि न चिन्तनीयमिति भावः। तत् = तस्मात्, इदानीम्= अधुना, मनुष्यलोकोचितः = मानवजनयोग्यः, मानवविषये एव करणीयः, अयम् = अस्माभिः क्रियमाण एषः, शोचितव्यवृत्तान्तः = शोचनार्हं उदन्तः, चिन्तव्यतेति भावः, उन्मुच्यताम् = परित्यज्यताम्। अस्मिन् = एतद्विषये, शोके = शुचि, कृते = विहिते, किञ्चिद् = किम्, अपि, न, भवति = भवितुमर्हति। रुदतः = करुणं विलपतः, तव मम च, केवलम् = तन्मात्रम्, गलः= कण्ठविवरः, एव, स्फुटति = स्फुटितं विदीर्णं भवति, न तु, हृदयम् = चित्तम्, स्फुटति—इति योज्यम्। वदनात् = मुखात्, निरर्थकम् = व्यर्थम्, निष्प्रयोजनम्, प्रलपितम् = विलपितम्, क्रन्दनम्, एव, निर्याति = निःसरति, न तु, जीवितम् = प्राणाः, निर्याति। निरासङ्गम् = निःसम्बन्धम्, निरर्थकम्, नयनजलम् = अश्रुसलिलम्, एव, पतति = पतनं करोति, न तु, शरीरम् = कायः, पतति। अपि च = अन्यच्च, वत्सस्य = पुत्रस्य, अदर्शनमात्रम् = अनवलोकनमात्रम्, एव, आवयोः = जननीजनकयोः, पीडाकरम् = व्यथाकारकम् आसीदिति योज्यम्। तत् = अदर्शनम्, च, अस्य = चन्द्रापीडस्य, मुखे = आनने, एवम् = अनेन रूपेण, आलोक्यमाने = दृश्यमाने, सति, दूरापेतम् = दूरं गतम्, दुःखकारणभूतं मुखानवलोकनमेवासीत् किन्तु साम्प्रतमस्य मुखदर्शनं जातमतो न दुःखकारणं वर्तते इति तद्भावः। अपरम् = अन्यच्च, अस्याम्, अवस्थायाम् = दशायां समुपस्थितायां सत्याम्, आवाभ्याम् = विलासवती-तारापीडाभ्याम्, अपि, तावत् = प्रथमम्, अवष्टम्भम् = धैर्यम्, कृत्वा = धृत्वा, मनोरमा = वैशम्पायनस्य माता, शुकनासः = तस्य पिता,

दोनों भुजाओं से सहारा देकर कहा—"देवि ! यद्यपि हम दोनों के पुण्यों के कारण ये पुत्र बने हैं, वास्तव में ये देवमूर्ति (चन्द्रमा)ही हैं, अतः शोक करने योग्य नहीं है। इसलिए सामान्य मनुष्यों के समान शोक करने की बात छोड़ दो। इस शोक के करने पर कोई भी लाभ नहीं होने वाला है। रोते-चिल्लाते केवल गला ही फटेगा न कि हृदय। बेकार का रोना ही मुख से निकलेगा न कि प्राण। व्यर्थ में अश्रुजल ही गिरेगा न कि शरीर। और फिर, अभी तक तो पुत्र का अदर्शन (न देख पाना) ही हम दोनों को दुःख दे रहा था, वह तो वह इस प्रकार से मुख देख लेने पर दूर ही हो गया (होगा)। दूसरी बात यह है कि ऐसी स्थिति में हम दोनों को भी दृढ धैर्य धारण करके मनोरमा और शुकनास

१. दोर्भ्याम्। २. यद्यथावयोः। ३. उपगतोऽपत्यताम्। ४. तन्मुच्यताम्।
५. मनुष्यस्नेहोचितशोचितव्यवृत्तान्तस्य, मनुष्यलोकोचितः परिशोचितव्यवृत्तान्तः। ६. परं वदनात्।

संधारणीयौ ययोर्लोकान्तरितो वैशम्पायनः । [1]तिष्ठतां तावदेतावपि । यस्याः प्रभावात्पुनरनुभवनीयो वत्सस्य[2] जीवितप्रतिलम्भाभ्युदयमहोत्सवः, सैवेयं गन्धर्वराजतनया वधूस्तेऽस्मदागमनशोकोर्मिसंक्रान्तिमूढा सनामग्रहणमुन्मुक्ताक्रन्दाभिः प्रियसखीभिर्ग्राह्य[3]माणाद्यापि संज्ञां न प्रतिलभते । तदेनां तावदुत्था[4]प्याङ्के कृत्वा चेतनां लम्भय । ततो यथेच्छं रोदिष्यसि ।'

च, सन्धारणीयौ = धैर्यं प्रदाय स्थापनीयौ, समाश्वासनीयौ, ययोः = मनोरमा-शुकनासयोः, वैशम्पायनः = एतन्नामा तनयः, लोकान्तरितः = लोकान्तरं गतः । अन्यः लोकः—लोकान्तरम्, तद् अस्य सञ्जातम्—लोकान्तरितः । तावत् = आदौ, एतौ = मनोरमा-शुकनासौ, अपि, तिष्ठताम्= निषीदताम्, दूरे भवताम्, तयोर्विषये न किमपि करणीमिति भावः ।

यस्या इति । यस्याः = कादम्बर्याः, प्रभावात् = सामर्थ्यात्, माहात्म्यात्, पुनः = भूयः, वत्सस्य = पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य, जीवितेत्यादिः— जीवितस्य (=जीवनस्य, प्राणानाम्) प्रतिलम्भः (= प्रकर्षेण लाभः, पुनः प्राप्तिः) तेन य अभ्युदयः (= अभिवृद्धिः, सौभाग्यम्) तस्य महोत्सवः (= महामहः), अनुभवनीयः = अनुभवविषयीकरणीयः, वर्तते इति शेषः, सा = चन्द्रापीड-प्राणवल्लभा, इयम् = एषा पुरास्थिता, गन्धर्वराजतनया = गन्धर्वराजकन्या कादम्बरी, ते = भवत्याः विलासवत्याः, वधूः = स्नुषा, अस्मदित्यादिः—अस्माकम् (= चन्द्रापीडजनकादीनाम्) यद् आगमनम् (= अत्र सम्प्राप्तिः) तेन ये शोकाः (=शुचः, दुःखानि) ते एव ऊर्मयः (=कल्लोलाः) तासां या संक्रान्तिः (= संक्रमणम्) तया मूढा (=मूर्छिता), सनामग्रहणम् = नाम्नः (=कादम्बरी-इति संज्ञायाः) ग्रहणेन (= उच्चारणेन) सहितं यथा स्यात् तथा, उन्मुक्ताक्रन्दाभिः—उन्मुक्तः (= परित्यक्तः, विहितः) आक्रन्दः (=विलापः) याभिः तादृशीभिः, प्रियसखीभिः=प्रियवयस्याभिः, ग्राह्यमाणा = ध्रियमाणा, अद्यापि = इदानीम् अपि, संज्ञाम् = चेतनाम्, न, प्रतिलभते = प्राप्नोति, चैतन्ययुक्ता न भवतीति भावः । तत् = तस्मात्, एनाम् = एतां वधूं गन्धर्वराजकन्याम्, तावत् = प्रथमम्, उत्थाप्य = उत्थापनं कृत्वा, अङ्के = क्रोडे, कृत्वा = विधाय, अङ्के संस्थाप्य, चेतनाम् = चैतन्यम्, लम्भय = प्रापय । ततः = तदनन्तरम्, यथेच्छम् = इच्छामनतिक्रम्य, यथाइच्छा तथा, रोदिष्यसि = विलपिष्यसि, रोदनं कुर्विति भावः ।

को धीरज बँधवाना चाहिए क्योंकि उनका पुत्र वैशम्पायन तो परलोक चला गया है । और उन दोनों को भी जाने दो,छोड़ो,जिसके प्रभाव के कारण चन्द्रापीडके दुबारा जीवन-प्राप्ति रूप अभ्युदय का महोत्सव करना है, वही तुम्हारी पुत्रवधू गन्धर्वराज-कन्या (कादम्बरी) हम लोगों के यहाँ आ जाने से शोक की लहरों के आक्रमण से बेहोश (मूर्छित) हुई, नाम ले-लेकर पुकारती हुई, जोर-जोर से करुण क्रन्दन करती हुई सखियों द्वारा (चेतना प्राप्त करने के लिए) थामी जाती हुई भी होश में नहीं आ रही है । इसलिए सबसे पहले इसे उठा कर, अपनी गोद में बैठा कर, होश में लाओ । उसके बाद जितनी इच्छा हो उतना अर्थात् जी भरकर रो लेना ।"

---

१. तिष्ठ, तिष्ठेताम् । २. अस्य ।
३. गृह्यमाणापि-इत्येवोचितम् । ४. अङ्के कृत्वोत्थाप्य ।

इत्यभिहिता राज्ञा [1]'विलासवती 'क्व सा मे वत्सस्य जीवितनिबन्धनवधूः ?' इत्यभिदधत्येव ससंभ्रममुपसृत्याप्रतिपन्न[2]संज्ञामेवाङ्केनादाय कादम्बरीं करेण [3]मूर्च्छानिमीलनाहितद्विगुणतर-नयनशोभं वदनमालोक्यानवरत-नयनसलिलस्नानार्द्रमिन्दुशकल-शीतलं स्वकपोलं कपोलयोर्ललाटे[4] ललाटं लोचनयोश्च लोचने निवेशयन्ती चन्द्रापीडस्पर्शशिशिरेण च पाणिना हृदये [5]स्पृशन्ती 'समाश्वसिहि [6]मातस्त्वया विनाद्यैव प्रभृति केन संधारितं वत्सस्य मे

इत्यभिहितेति । इति = अनेन प्रकारेण, राज्ञा = तारापीडेन, अभिहिता = उक्ता, विलासवती = महाराज्ञी—'सा = पूर्ववर्णिता, मे = मम विलासवत्याः, वत्सस्य = पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य, जीवितेत्यादिः—जीवितस्य (= जीवनस्य, प्राणानाम्) निबन्धनम् (= कारणम्) वधूः (= स्नुषा), क्व = कुत्र, वर्तते ? इति, अभिदधती = कथयन्ती, एव, ससम्भ्रमम् = संभ्रमेण सहितम्, सत्वरम्, वेगेनेति भावः, उपसृत्य = समीपं गत्वा, अप्रतिपन्नसंज्ञाम्—अप्रतिपन्ना (= न प्राप्ता) संज्ञा (= चैतन्यम्) यया सा तादृशीम्, एव, कादम्बरीम् = गन्धर्वराजपुत्रीम्, करेण = हस्तेन, गृहीत्वेति शेषः, अङ्केन = क्रोडेन, आदाय = संस्थाप्य, मूर्च्छेत्यादिः—मूर्च्छया (= मूर्च्छाहेतुकेन) निमीलनेन (= नेत्रयोर्मुद्रणेन) आहिता (= स्थापिता) द्विगुणतरा (=द्विगुणितादप्यधिका) नयनयोः (= नेत्रयोः) शोभा (=सौन्दर्यम्) यस्मिन् तादृशम्, वदनम्= मुखम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, अनवरतेत्यादिः—अनवरतम् (= निरन्तरम्) यत् नयनयोः (=चक्षुषोः) सलिलम् (= जलम्, अश्रु) तेन यत् स्नानम् (= आप्लवः) तेन आर्द्रम् (= क्लिन्नम्), अत एव, इन्दुशकलशीतलम् = चन्द्रखण्डवत् शिशिरम्, स्वकपोलम् = विलासवत्याः निजं गण्डस्थलम्, कपोलयोः = गण्डस्थलयोः, कादम्बर्या इति शेषः, ललाटम् = स्वमस्तकम्, ललाटे = तस्याः मस्तके, लोचने = स्वनेत्रे, लोचनयोः = तस्याः नेत्रयोः, निवेशयन्ती=स्थापयन्ती, चन्द्रापीडेत्यादिः—चन्द्रापीडस्य (= स्वपुत्रस्य) यः स्पर्शः (= स्पर्शनम्) तेन शिशिरेण (=शीतलेन) पाणिना = स्वहस्तेन, हृदये = तस्याः वक्षसि, स्पृशन्ती = स्पर्शं कुर्वन्ती—'हे मातः != देवि !,समाश्वसिहि= समाश्वस्ता भव, धैर्यं धारय, त्वया = भवत्या, विना = अन्तरेण, अद्य, एव, प्रभृति = पर्यन्तम्,

महाराज तारापीड द्वारा इस प्रकार से कही गई विलासवती—'कहाँ है वह मेरे बेटे को पुनः जीवन प्रदान करने की साधनभूत वधू ?" ऐसा कहती हुई ही वह हड़बड़ी में पास पहुँचकर बेहोशी में ही पड़ी हुई कादम्बरी को हाथ से गोद में लेकर, बैठाकर, बेहोशी के कारण बन्द कर लेने से दुगुनी बढ़ी हुई नेत्रों की शोभावाले मुख को देखकर, लगातार अश्रुजल से स्नान करने से गीले (अत एव) चन्द्रखण्ड के समान शीतल अपने गाल को उसके दोनों गालों पर, (अपने) मस्तक को (उसके) मस्तक पर तथा (अपनी) दोनों आँखों को (उसकी) दोनों आँखों पर रखती हुई, लगाती हुई तथा चन्द्रापीड के शरीर के स्पर्श के कारण शीतल (अपने) हाथ से (उसकी) छाती का स्पर्श करती

१. विलासवती तु तच्छ्रुत्वा ससंभ्रमोन्मुक्तचन्द्रापीडचरणा 'तत् क्व सा मे जीवित-प्रतिलम्भहेतुर्वत्सस्य वधू'रिति धावमाना चोपसृत्य तदवस्थां तु तामुत्थाप्याङ्के कृत्वा मूर्छानिमीलनाहितद्विगुणतरनयनशोभं वदनमालोक्य । २. अप्रतिपत्तिसंज्ञाम् । ३. मूर्छानिमीलित । ४. ललाटेन । ५. हृदयम् । ६. हे मातः ।

चन्द्रापीडस्य शरीरम्? मातस्त्वममृतमयीव जातासि येन वत्सस्य पुनर्वदनमालोकितम्'—इत्यवादीत्।

कादम्बरी तु तेन चन्द्रापीडनामग्रहणेन तेन च [1]तन्निर्विशेषवृत्तिना विलासवती-शरीरस्पर्शेन लब्धसंज्ञापि लज्जावनम्रमुखी प्रतिपत्तिमूढा मदलेखयाङ्कादवतार्य परवत्येव यथाक्रममकार्यत वन्दनां गुरूणाम्। 'आयुष्मति दीर्घकालमविधवा भव' इति कृताशीर्वादा

एव शब्दोऽधिकः, दाढर्यार्थको वा, केन=अज्ञातेन जनेन, मे = मम विलासवत्याः, वत्सस्य = पुत्रस्य, चन्द्रापीडस्य, शरीरम्=देहः, संधारितम्=सम्यग्रूपेण धृतम्? न केनापि रक्षितमिति भावः, हे मातः= देवि!, त्वम् = भवती, अमृतमयी=सुधामयी, इव, जाता=संवृत्ता, असि येन=कारणेन, वत्सस्य= पुत्रस्य, वदनम् = मुखम्, पुनः = भूयः, आलोकितम् = दृष्टम्, इति अवादीत् = अकथयत्। [यथा पुत्रविषये 'तात' शब्दः प्रयुज्यते एवमेव पुत्रतुल्यायां स्नुषायां मातृ-शब्द-प्रयोगः, स्नेहातिशये आदरातिशये वा बोध्यः। अतएव भर्तृहरिणा—'मातर्लक्ष्मि भजस्व कञ्चिदपरम्।' भवभूतिना च—'अयि मातर्देवयजनसम्भवे देवि सीते' (उत्तर० १) इति प्रयुक्तम्। वस्तुतस्तु सा विलासवती कादम्बरीं साक्षात् प्राणप्रदायिनीं देवीमेव मत्वा भावावेशेन श्रद्धातिरेकेण च तथा कथितवतीति समीचीनम्।

कादम्बरीति। तु = परन्तु, कादम्बरी = गन्धर्वराजकन्या, तेन = विलासवत्या उच्चारितेन, चन्द्रापीडनामग्रहणेन, तेन, तन्निर्विशेषवृत्तिना-तस्मात् (= चन्द्रापीडस्पर्शात्) निर्गतः (= दूरीभूतः) विशेषः (= भेदः) यस्याः तादृशी वृत्तिः (= वर्तनम्, व्यापारः) यस्य तेन तादृशेन, चन्द्रापीडस्य स्पर्शसदृशेन, विलासवती-शरीरस्पर्शेन = चन्द्रापीडजननी-देहस्पर्शेन, [पुत्रे मातृशरीर-सादृश्यमनुभवसिद्धम्। तत्स्पर्शेऽपि सादृश्यम् = समानसुखप्रदत्वमिति मत्वा वर्णितम्।] लब्धसंज्ञा = प्राप्तचेतना, अपि, लज्जावनम्रमुखी = त्रपयाऽवनतानना, प्रतिपत्तिमूढा = प्रतिपत्तिः (= किं करणीयम्-इति ज्ञानम्) तस्यां मूढा (= शून्या) कर्तव्याकर्तव्यविवेकहीनेति भावः, मदलेखया = परिचारिकया, अङ्कात् = क्रोडात्, विलासवत्या इति शेषः, अवतार्य = अवतारणं कृत्वा, भूमौ नीत्वा, परवती = पराधीना, स्ववशेऽविद्यमाना, एव, गुरूणाम्=श्वशुरादि-पूज्यजनानाम्, यथाक्रमम् = क्रममनतिक्रम्य, ज्येष्ठतानुक्रमेणेति भावः, वन्दनाम् = प्रणतिम्, अकार्यत = व्यधाप्यत, कारिता [अत्र 'अकार्यत' इति बोध्यकर्मता कादम्बर्यां वन्दनायाश्चोभयत्रैव वर्तते किन्तु प्रधानकर्मत्वेन प्रयोज्य-कादम्बर्याः कर्मत्वस्योक्तत्वात्तस्यां प्रथमा बोध्या।] 'आयुष्मति = चिरञ्जीविनि!, दीर्घकालम्= चिरकालपर्यन्तम्, अविधवा = सौभाग्यवती, भव = वर्तस्व। [धवः = पतिः, विगतः धवः यस्याः सा—विधवा, पतिहीना, न विधवा इति अविधवा। भारतीयसंस्कृतौ पतिरेव स्त्रीणां सौभाग्यसूचकः, तेन सौभाग्यवती = पतियुक्ता भवेत्यर्थः।] इति = इत्थम्, कृताशीर्वादा—कृतः (= विहितः)

हुई—"हे माँ (पूज्य पुत्री!) धीरज रखो, तुम्हारे बिना आज तक मेरे बच्चे का शरीर कौन धारण किये (संभाले) रह सकता था? हे माँ! तुम मेरे लिये अमृतमयी सी होकर उत्पन्न हुई हो, जिसके (प्रभाव के) कारण आज दुबारा बेटे का मुख देखने का सौभाग्य मिला, बेटे का मुख देखा।"

विलासवती द्वारा चन्द्रापीड के उस नाम को लेने(उच्चारण करने)से तथा उसी के समान लगने वाले विलासवतीके शरीरके स्पर्श से होश में आई हुई भी लज्जा से मुख नीचे की हुई, (कर्तव्याकर्तव्य के) ज्ञान से शून्य अर्थात् किंकर्तव्यविमूढ होती हुई कादम्बरी को मदलेखा द्वारा (विलासवती की) गोद से उतार कर, परवश अर्थात् अपने होश में न रहती हुई (कादम्बरी) से गुरुजनों (श्वसुर आदि) को क्रमशः वन्दना (प्रणामादि) करवाई गई। 'अयुष्मति! तुम चिरकाल तक सौभाग्यवती (पतियुक्त) रहो।' इस प्रकार से [सभी गुरुजनों द्वारा] आशीर्वाद दी गई कादम्बरी को धीरे-धीरे उठाकर,

---

१. निर्विशेष०।

च शनैः शनैस्तै[1]रुत्थाप्यमाना[2]तिनिकटे विलासवत्याः पृष्ठतः समुपवेश्याधार्यत । अथ प्रत्यापन्नचेतनायां चित्ररथतनयायां चन्द्रापीडमेवोज्जीवितं मन्यमानो राजा चिरमिवास्य गाढमङ्गमालिङ्ग्य[3] चुम्बंश्च पश्यंश्च स्पृशंश्च स्थित्वा मदलेखामाहू[4]यादिदेश—'दर्शनसुखमात्रकमस्माकं विधीयमानम् । तच्चास्माभिरासादितम् । तद्यादृशेनैवोपचारेणैतावतो दिवसानुपचरितवती वधूर्वत्सस्य शरीरं स एवोपचारो नास्म[5]दनुरोधाल्लज्जया वा मनागपि

आशीर्वादः (= आशीर्वचनम्) यस्यै सा तादृशी, कादम्बरी, शनैः शनैः = मन्दं मन्दं यथा स्यात् तथा, तैः = गुरुजनादिभिः [वस्तुतस्तु—'ताभिः = सखीभिरिति अथवा तया = मदलेखया' इत्येव पाठः समीचीनः, यद्वा—तैः = सखीजनैरिति व्याख्येयम्] उत्थाप्यमाना=उत्थापनं क्रियमाणा, 'उत्थाप्य' इत्येव पाठ उचितः अतिनिकटे = अत्यन्तसमीपे, विलासवत्याः=महिष्याः, पृष्ठतः=पृष्ठभागे, समुपवेश्य = संस्थाप्य, उपविष्टां कृत्वा, अधार्यत = समालम्ब्यत । अथ = तदनन्तरम्, प्रत्यापन्नचेतनायाम्—प्रत्यापन्ना (= पुनः प्राप्ता) चेतना (= संज्ञा, चैतन्यम्) यया सा तादृश्याम्, चित्ररथकन्यायाम् = कादम्बर्याम्, राजा = तारापीडः, चन्द्रापीडम्=स्वतनयम्, एव, उज्जीवितम्= पुनर्जीवितम्, मन्यमानः=अवगच्छन्, चिरम् = दीर्घकालम्, इव, अस्य = चन्द्रापीडमृतदेहस्य, गाढम् = प्रबलम्, आलिङ्ग्य = आश्लिष्य, चुम्बन् = चुम्बनं कुर्वन्, पश्यन् = विलोकयन्, स्पृशन् = स्पर्शं कुर्वन्, सन्, स्थित्वा = अवस्थितिं कृत्वा, मदलेखाम् = कादम्बरी-सेविकाम्, आहूय = आकार्य, आदिदेश= आज्ञापितवान् । किं तदित्याह—दर्शनेत्यादिना । दर्शनस्य (= विलोकनस्य) सुखम् (= आनन्दः) एव, दर्शनसुखमात्रकम्, आलोकनसुखमेव केवलम्, अस्माकम् = तारापीडादीनाम्, विधीयमानम् = क्रियमाणम्, प्रयोजनमासीदिति भावः, तत् = सुखं तादृशम्, च, अस्माभिः=पित्रादिभिः, आसादितम् = प्राप्तम् । तत् = तस्मात् हेतोः, यादृशेन = यथाविधेन, एव, उपचारेण = सेवाविधिना, एतावतः= इयतः, दिवसान् = दिनानि पर्यन्तम्, वधूः = स्नुषा कादम्बरी, वत्सस्य = पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य, शरीरम् = देहम्, उपचरितवती = उपचारं कृतवती, आसीत्, सः = तादृशः, एव, उपचारः = सेवाविधिः, अस्मदनुरोधात् = अस्माकं प्रतिबन्धात्, लज्जया = त्रपया, वा, मनाक् = ईषद्, अपि, न = नैव, परिहरणीयः = परित्याज्यः । अस्माकमागमनेन तज्जन्यलज्जया वा पूर्वरीत्या विहितोपचारे न किमपि परिवर्तनं विधेयमिति तद्भावः । वयम् = चन्द्रापीडस्य मातापित्रादयः, निष्प्रयोजनाः—निर्गतम् (= न विद्यमानम्) प्रयोजनम् (= उद्देश्यम्) येषां ते तादृशाः, केवलम्, द्रष्टारः = विलोकयितारः, एव, न तु ततोऽधिका इति भावः । अस्माभिः = पित्रादिभिः,

बहुत ही पास में विलासवती के पीछे बैठाकर [मदलेखा द्वारा ही] सम्भाल ली गई, थाम कर रखी गई । इसके बाद चित्ररथ की कन्या (कादम्बरी) के होश में आ जाने पर चन्द्रापीड को पुनर्जीवित सा ही मानते हुए राजा तारापीड ने बहुत देर तक कस कर उस (चन्द्रापीड) का आलिंगन करने के बाद, चूमते हुए,देखते हुए तथा छूते हुए (बहुत देर तक) ठहर कर,मदलेखा को बुलाकर यह आदेश दिया—"हम लोगों को तो (बेटे के) देखने का सुखमात्र प्राप्त करना था, वह हम लोगों ने पा लिया । इसलिए जिस प्रकार के उपचार (सेवा आदि) से वधू कादम्बरी ने चन्द्रापीड के शरीर की इतने दिनों तक सेवा की है वही सब उपचार, हमारे आ जाने के संकोच के कारण अथवा

१. अत्र 'तै'रित्यत्र 'ताभिः' तया' वेत्येव पाठः समीचीनः । यद्वा–तैः=सखीजनैरिति व्याख्या कार्या ।
२. उत्थाप्य । ३. आलिङ्गन् । ४. आहूयाहूय । ५. उपरोधात् ।

परिहरणीयः[1] । [2]वयं निष्प्रयोजना द्रष्टार एव केवलम् । किमस्माभिरिह स्थितैर्गतैर्वा ? यस्याः करस्पर्शेनाप्यायितमेतदविनाशि[3] सैव वधूः पार्श्वेऽस्य तिष्ठतु ।'—इत्यादिश्य निर्जगाम । निर्गत्य चोपकल्पितं निजावासमगत्वैव तपस्विवासोचितेऽन्यतमस्मिन्नासन्न एवाश्रमस्य शुचिशिलातलसनाथे तरुलतामण्डपे समुपविश्य निर्विशेषदुःखं सकलमेव राजचक्रमाहूय सबहुमानमवादीत्—

"न भवद्भिरवगन्तव्यं यथाद्य शोकावेगादेवैतदहमङ्गीकरोमीति । पूर्वचिन्तित एवाय-

इह = अस्मिन्, महाश्वेताश्रमे, स्थितैः = कृतावस्थानैः, गतैः = प्रयातैः, वा = अथवा, किम् ? न किमपि फलमिति भावः । यस्याः = कादम्बर्याः बध्वाः, करस्पर्शेन = पाणिसम्पर्केण, आप्यायितम् = पोषितं पालितं च, एतत् = चन्द्रापीडस्य शरीरम्, अविनाशि=अनश्वरम्, वर्तते इति शेषः, सा, एव, वधूः = स्नुषा कादम्बरी, अस्य = चन्द्रापीडदेहस्य, पार्श्वे=समीपे, तिष्ठतु=निषीदतु । इति = इत्थम्, आदिश्य = आज्ञाप्य, निर्जगाम = निर्ययौ राजा तारापीडः । निर्गत्य=बहिरागत्य, च, उपकल्पितम् = सेवकवर्गेण विरचितम्, निजावासम् = स्वकीयसदनम्, अगत्वा = अव्रजित्वा, एव, तपस्विवासोचिते = मुनिजननिवास-योग्ये, अन्यतमस्मिन् = इतरस्मिन् कस्मिंश्चिदपि, आसन्ने = समीपवर्तिनि, एव, शुचि-शिलातलसनाथे = पवित्र-पाषाणखण्डयुक्ते, तरुलतामण्डपे = वृक्ष-लतादि-निर्मिते मण्डपे, समुपविश्य = निषद्य, निर्विशेषदुःखम्—निर्गतः (=अपयातः) विशेषः (=भिन्नः) यस्मात् तादृशम्, दुःखम् (= कष्टम्) यस्य तत् तादृशम्, सकलम् = समस्तमेव, राजचक्रम् = नृपसमूहम्, आहूय=आकार्य, आह्वानं कृत्वा, सबहुमानम्—बहुः (= अत्यधिकः) मानः (= सम्मानम्) तेन सहितं यथा स्यात् तथा, अवादीत् = अवोचत् ।

राजा अधीनस्थ-नृपान् किमवोचदिति वर्णयति—न भवद्भिरित्यादिना । भवद्भिः = युष्माभिर्नृपादिभिः, एतत् = इदं न, अवगन्तव्यम् = बोद्धव्यम्, यथा = यत्; अद्य = इदानीम्, शोकावेगाद् = दुःखस्यावेगात्, एव, न तु अन्यस्मात् कारणादिति भावः, एतत् = वनवासरूपं कृत्यम्, अहम् = तारापीडः, अङ्गीकरोमि = स्वीकरोमि । अयम् = इदानीं विधीयमानः, अर्थः = वनवासलक्षणं कृत्यम्, पूर्वचिन्तितः = प्राक् निश्चितः, आसीत्, यथा = यत्, वधू-समेतस्य = स्नुषायुक्तस्य, कृतोद्वाहस्य, चन्द्रापीडस्य, वदनम् = आननम्, आलोक्य = दृष्ट्वा,

लज्जा के कारण, थोड़ा भी नहीं छोड़ा जाना चाहिए । हम लोग तो बेकार के केवल दर्शक ही हैं । हम लोग यहाँ रुकें अथवा चले जायँ, इससे क्या ? अर्थात् रुकने या जाने का कोई फल या हानि नहीं है । जिसके हाथ के स्पर्श से चन्द्रापीड का पुष्ट हुआ यह शरीर अविनाशी बना हुआ है, वही वधू (कादम्बरी) इसके पास रहे ।" ऐसा आदेश देकर [वहाँ से बाहर] निकल गया ।

वहाँ से निकल कर राजा ने [सेवकों द्वारा उसी समय] अपने लिये बनाये गये आवास-स्थान में न जाकर,तपस्वीजनों के रहने योग्य,उस आश्रम के पास में ही किसी एक पवित्र शिलातल से युक्त, वृक्षों तथा लताओं से घिरे मण्डप में बैठकर, अपने समान ही दुःखवाले सभी राजाओं के समूह को बुलाकर, आदरपूर्वक कहा—"आप लोग यह न समझें कि मैं शोक के आवेग के कारण ही यह (आश्रम में जीवनयापन) स्वीकार कर रहा हूँ । यह बात मैंने पहले ही सोच रखी थी कि

१. परिहारणीयः । २. वयं तु । ३. अविनाशि शरीरम् ।

मर्थो यथा वधूसमेतस्य चन्द्रापीडस्य वदनमालोक्य संक्रामितनिजभरेण मया क्वचिदाश्रमपदे गत्वा पश्चिमं वयः क्षपितव्यमिति। स चायं मे भगवता कृतान्तेन पुराकृतैः कर्मभिर्वा विरूपैरेवं समुपनमितः। किमपरं क्रियते? अनतिक्रमणीया नियतिः। अप्रापणीयं नानुभूतमात्मचेष्टाकृतं वत्सस्य सुखम्[1]। प्रजापरिपालनफलं[2] तु पुनर्भवद्भुजेष्वेवमक्षतेष्वविरहित[3]मस्त्येव। [4]अन्यथापि हि चेष्टमानेष्वस्मासु सर्वमेव तेष्वेवावस्थितम्। तदिच्छामि चिरकाङ्क्षितं मनोरथं पूरयितुम्। धन्याश्च जरापीतसारतनवस्तनयेष्वात्मभरमासज्य लघु-

संक्रामित-निजभरेण—संक्रामितः (= संस्थापितः) निजः (= स्वकीयः) भरः (= राज्यभारः) येन तादृशेन, मया = तारापीडेन, क्वचित् = कस्मिश्चित्, आश्रमपदे = आश्रमस्थले, गत्वा = व्रजित्वा, पश्चिमम् = अन्तिमम्, वयः = अवस्था, वार्धक्यावस्था, क्षपितव्यम् = यापितव्यम्। स च, अयम् = पूर्वोक्तोऽर्थः, भगवता, कृतान्तेन = यमराजेन, वा = अथवा, पुरा = पूर्वस्मिन् जन्मनि, कृतैः = विहितैः, विरूपैः = अशुभैः, कर्मभिः = कृत्यैः, एवम् = पूर्वोक्तरूपेण अधुना अनुभूयमानरूपेणेति भावः, समुपनमितः = सम्प्रापितः। अपरम् = एतद्भिन्नम्, किम् क्रियते = विधीयते, विधातुं शक्यते? नैव शक्यते इति भावः। नियतिः = भाग्यविधिः, अनतिक्रमणीया = लङ्घयितुमशक्या। अप्रापणीयम् = प्राप्तुमयोग्यम्, आत्मचेष्टाकृतम् = आत्मनः प्रयत्नैः जनितम्, वत्सस्य = पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य, सुखम् = सौख्यम्, न, अनुभूतम् = अनुभवविषयीकृतम्। प्रजापरिपालनफलम् = लोकानां रक्षणरूपं फलम्, तु, पुनः, अक्षतेषु = अखण्डितेषु, भवद्भुजेषु = युष्माकं बाहुषु, सत्सु, एवम्, अविरहितम् = मया सम्बद्धम्, अस्ति = वर्तते, एव। हि = यतः, अस्मासु = तारापीडादिषु, अन्यथा = अन्यप्रकारेण, अपि, पालनादिषु असावधानतयापीति भावः, चेष्टमानेषु = यतमानेषु सत्सु, सर्वम् = प्रजापालनादिसकलं कर्तव्यम् एव, तेषु = भवतां नृपाणां भुजेषु, एव, अवस्थितम् = निहितम्, अस्तीति शेषः। तत् = तस्मात्, कारणात्, चिरकाङ्क्षितम् = बहुकालात् वाञ्छितम्, मनोरथम् = मनोऽभिलाषम्, पूरयितुम् = परिपूर्णीकर्तुम्, इच्छामि = अभिलषामि। धन्याः = कृतकृत्याः, सुकृतिन इत्यर्थः, जरेत्यादिः—जरया (= वार्धक्येन) पीतः (= पानविषयीकृतः, गृहीतः) सारः (= बलादिकम्) यस्याः तादृशी तनुः (= शरीरम्) येषां ते तादृशाः सन्तः, तनयेषु = आत्मजेषु, आत्मभरम् =

वधू-सहित चन्द्रापीड के मुख का दर्शन करके [उस पर] समस्त भार सौंपकर मैं किसी आश्रम में जाकर अन्तिम = वृद्धा अवस्था बिताऊँगा। और वह (अवसर) भगवान् विधाता ने अथवा पूर्वजन्म के किये गये दुष्कृतों ने इस रूप में सामने उपस्थित कर दिया है। अब दूसरा किया ही क्या जाय। भाग्य (-विधान) का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है। अपने प्रयत्न से किये गये, बेटे के सुख का अनुभव नहीं प्राप्त कर सका क्योंकि वह मेरे लिए अप्राप्य था। प्रजाओं के परिपालन का भार तो आप लोगों की सुरक्षित भुजाओं (के बल) पर [पहले से ही] बना हुआ ही है। हमारे अन्य तरह से प्रयत्न करने पर भी अर्थात् राज्यसिंहासन पर बैठे रहते हुए भी सारा भार (आप लोगों की) उन भुजाओं पर ही आश्रित था। इसलिए अब मैं चिरकाल से वाञ्छित अपना मनोरथ (= वनवास की अभिलाषा) पूरा कर लेना चाहता हूँ। वे ही लोग धन्य होते हैं जिनकी शारीरिक शक्ति बुढ़ापे ने पी ली (नष्ट कर दी) है, वे अपना राज्यभार पुत्रों को सौंप कर

१. सुखम्। २. फलं बल०। ३. अविहतम्। ४. अन्यद्।

शरीराः परलोकगमनं साधयन्ति । 'यच्च बलाद्गले पादमाधाय यदा तदानिच्छतोऽप्याच्छिद्यत एव कृतान्तेन । तद्यदि पात्रे क्वचिदपि स्थापयित्वा निजपदं जरापरिभुक्तायुःशेषेण[2] निष्प्रयोजनस्थितिना सर्वसुखबाह्येन मांसपिण्डेन[3] परलोकसुखान्युपार्ज्यन्ते लाभ एवायम् । [4]तदस्य वस्तुन कृते भवन्तो मया [5]प्रार्थनोयाः ।"

इत्युक्त्वा संनिहितान्यपि परित्यज्योचितानि [6]सर्वसुखान्यनुचितान्यङ्गीकृत्य

स्वकीयं राज्यधुरम्, आसज्य = संस्थाप्य, लघुशरीराः = निर्भारदेहाः, सन्तः, परलोकगमनम् = स्वर्गलोकप्रयाणम्, साधयन्ति = निष्पादयन्ति । यत्, शरीरम् च, बलात् = हठात्, गले = निगरणे, कण्ठे, पादम् = चरणम्, आधाय = स्थापयित्वा, यदा तदा = यस्मिन् तस्मिन् काले, अनिच्छतः = अनभिलषतः, अपि, पुरुषस्य, कृतान्तेन = यमराजेन, आच्छिद्यते = अपह्रियते, अपकृष्यते, एव । तत् = तस्मात्, यदि = चेत्, क्वचिदपि = कस्मिंश्चिदपि, पात्रे = योग्ये, जने पुत्रादौ, निजपदम् = स्वभारम्, राज्यभारमित्यर्थः, स्थापयित्वा = संस्थाप्य, जरेत्यादि,—जरया (= वार्धक्येन) परिभुक्तम् (= परिपीतम्) आयुषः (= वयसः) शेषः (= अवशिष्टांशः) यस्य तेन तादृशेन, निष्प्रयोजनस्थितिना—निष्प्रयोजना (= निरर्थका) स्थितिः (= अवस्थानम्) यस्य तेन तादृशेन, सर्वसुखबाह्येन = सकलसुखेभ्यः बहिर्भूतेन, सुखोपभोगं कर्तुमसमर्थेनेति भावः, मांसपिण्डेन = शरीरेण, परलोक-सुखानि = पारत्रिकसौख्यानि, उपार्ज्यन्ते = उपार्जितानि क्रियन्ते, अयम् = एषः, लाभः = अधिकफलप्राप्तिः एव, अस्तीति शेषः । तत् = तस्मात्, अस्य = अर्थस्य, पूर्वोक्तस्य वनवासनिवासकरणरूपस्येति भावः, कृते = एतन्निमित्तमित्यर्थः, मया = तारापीडेन, भवन्तः = यूयं नृपादयः, प्रार्थनीयाः = अभ्यर्थनीयाः, सन्ति, प्रार्थिताः—इति सूचितः पाठः ।

इतीति । इति = पूर्वोक्तम्, उक्त्वा = कथयित्वा, सन्निहितानि = समीपे विद्यमानानि, अपि, उचितानि = योग्यानि, सर्वसुखानि = सकलसौख्यानि, परित्यज्य = विहाय, अनुचितानि = राज्ञोऽनर्हाणि, अपि, वन्यानि = वनोद्भूतानि, सुखानि, अङ्गीकृत्य = आश्रित्य । एतदेव विस्तरेण

हल्के शरीर वाले होकर परलोक को सिद्ध करते हैं । और [प्राणी की] इच्छा न रहते हुये भी यमराज (मृत्यु) किसी भी समय जबरदस्ती गले पर पाँव रख कर [प्राणी को] खींच ही ले जाता है अर्थात् मरना सुनिश्चित है । इसलिये यदि किसी सुपात्र पर अपना पदभार सौंप कर इस (शरीर रूपी) मांसपिण्ड से, जिसकी बची हुई आयु को बुढ़ापे ने खा लिया है, नष्ट कर दिया है, जिस शरीर का रहना अब बेकार हो गया है, और अब सभी सुखों के भोगने में असमर्थ हो गया है, ऐसे शरीर = मांसपिण्ड के द्वारा परलोक के सुख उपार्जित कर लिये जाँय, तो यह लाभ ही है । यही कारण है कि इस बात के लिये अर्थात् अब वनवास करने के लिये मुझे आप लोगों से प्रार्थना करनी है ।'

इस प्रकार से कह कर राजा ने समीप में उपस्थित भी, उचित भी समस्त सुखों का परित्याग करके, (अतएव राजा के लिये) अनुचित भी वन में होने वाले सुखों को

१. तच्च । २. मुक्तशेषेण । ३. शरीरकेण ।
४. तस्य । ५. प्रार्थिताः । ६. उपभोगसुखानि ।

वन्यानि[1], तथा[2] हि—हर्म्यबुद्धिं वृक्षमूलेषु, अन्तःपुरस्त्रीप्रीतिं लतासु, संस्तुतजनस्नेहं हरिणेषु, निवसनरुचिं चीरवल्कलेषु, कुन्तलरचनाभियोगं जटासु, आहारहार्दं कन्दमूलफलेषु, शस्त्रधारणव्यसनमक्षसूत्रे[3], प्रजापरिपालनशक्तिं समित्कुशकुसुमेषु, नर्मालापं धर्मसंकथासु, समररसमुपशमे, जयेच्छां परत्र[4], कोशस्पृहां तपसि, आज्ञां मौने, सर्वोपभोगरागं च वैराग्ये, तनयस्नेहं तरुषु संक्रमय्य तथा[5] तपस्विजनोचिताः क्रियाः कुर्वन् गन्धर्वलोकोचितानहरहरुप-

परिसंख्यया वर्णयति—तथा हीत्यादिना । तथा हि=अनेन रूपेण, राजा तारापीडः, हर्म्यबुद्धिम्=प्रासाद-विषयिणीं धियम्, वृक्षमूलेषु=पादपानां बुध्नेषु ['संक्रमय्य' इति पदं सर्वत्र योज्यम्], संक्रमय्य=संक्रमणं कृत्वा, तत्र तत्र भिन्नां बुद्धिं कृत्वेति भावः, अन्तःपुरस्त्री-प्रीतिम् = अवरोधस्थकलत्रस्नेहम्, लतासु = व्रततीषु, संस्तुत-जन-स्नेहम् = परिचित-जनप्रीतिम्, हरिणेषु=मृगेषु, निवसनरुचिम्=वस्त्राभिलाषम्, चीरवल्कलेषु = जीर्णवस्त्रेषु तरुत्वचासु च, कुन्तलरचनाभियोगम्—कुन्तलानाम् (= केशानाम्) रचना (= विशिष्टरीत्या विन्यासः) तस्याम् अभियोगम् (= समासक्तिम्), जटासु = सटासु, लम्बायमान-विशृङ्खलितकेशेषु, आहारहार्दम् = भोजनविषयिणीं प्रीतिम्, कन्दमूलफलेषु—कन्दाः (= गोलमूलानि) मूलानि (= बुध्नाः) फलानि (= सस्यादीनि) च तेषु, शस्त्रधारणव्यसनम् —शस्त्राणाम् (= आयुधानाम्) धारणम् (= स्वकरादौ स्थापनम्) तस्मिन् व्यसनम् (= आसक्तिः) ताम्, अक्षसूत्रे = अक्षाणाम् (= रुद्राक्षाणाम्) सूत्रे (= तन्तौ) जपमालायामिति भावः, प्रजेत्यादिः—प्रजानाम् (= परिपाल्यलोकानाम्) परिपालनम् (= भरणपोषणरक्षणादिकम्) तस्य शक्तिम् (= बलम्), समिदित्यादिः—समिधः (= हवनीयकाष्ठानि) कुशाः (= दर्भाः) कुसुमानि (= पुष्पाणि) च, तेषु । नर्मालापम्—नर्मस्यालापम् (=क्रीडालापम्, हास्यालापम्), धर्मसंकथासु = धार्मिककथानकेषु, समररसम् = युद्धरसम्, युद्धविषयकप्रीतिम्, उपशमे = शान्तरसे, जयेच्छाम् = विजयस्याभिलाषम्, परत्र = परलोके, कोशस्पृहाम् = निधिवाञ्छाम्, तपसि = तपस्यायाम्, आज्ञाम् = आदेशम्, मौने = तूष्णींभावे, सर्वोपभोगरागम्—सर्वे (= समस्ताः) च ते भोगाः (=इन्द्रियसुखप्राप्तयः) तेषु रागम् (= आसक्तिम्) वैराग्ये=विरक्तौ, तनयस्नेहम् = पुत्रप्रीतिम्, च तरुषु = वृक्षेषु, संक्रमय्य = संक्रमणं कृत्वा, तत्तद्विषयिणीं बुद्धिम् अन्यत्र तपस्विजनोचितेषु पदार्थेषु कृत्वेति भावः, तथा, तपस्विजनोचिताः = तापसलोकयोग्याः, क्रियाः = कर्माणि,

स्वीकार करके (अर्थात् स्वीकार कर लिया)—जैसे, अब उसने महलों [में निवास] की बुद्धि को पेड़ों की जड़ों में (समझ कर), अन्तःपुर की स्त्रियों की प्रीति की बुद्धि लताओं में, परिचित लोगों का प्यार हरिणों में, अच्छे-अच्छे वस्त्रों (के धारण) की रुचि को चीर और वल्कलों पर, बाल सजाने की अभिरुचि को जटाओं (के बाँधने) पर, भोजन की प्रसन्नता को कन्द, मूल तथा फलों पर, शस्त्र धारण करने के व्यसन को अक्षसूत्र = जपमाला (के धारण) पर, प्रजा के परिपालन की शक्ति को समिधायें, कुशों तथा फूलों (के चयन) पर, नर्म = हास-परिहास की बातों को धार्मिक कथाओं पर, युद्ध-सम्बन्धी रस (मन के आनन्द) को उपशम (शान्ति) में, जीतने की इच्छा को परलोक (की कामना) में, कोष = खजाना (बढ़ाने) की इच्छा को तपस्या में, आज्ञा को मौन (धारण करने) में, सभी प्रकार के ऐन्द्रिय उपभोगों के अनुराग को वैराग्य में और पुत्र-सम्बन्धी स्नेह को वृक्षों पर संक्रान्त करके अर्थात् उन-उन सांसारिक वस्तुओं की भावनाओं को तपस्या के अनुकूल व्यवहार में मान कर, स्थानान्तरित करके तपस्वियों के योग्य

१. च वन्यानि तपोवनदुःखानि । २. तत्र । ३. अक्षसूत्रेषु ।
४. परलोके । ५. यथा, तथा, याः ।

चारान्कादम्बर्या कथमपि समुत्सृष्टलज्जया महाश्वेतया च क्रियमाणाननिच्छन्नविच्छेदात्सायं-प्रातश्चानुभूतचन्द्रापीडदर्शनसुखो दुःखान्यगणयन्नरपतिः सपरिवारः समं देव्या शुकनासेन च तत्रैवातिष्ठत् ।"

इत्येव च कथयित्वा[1] भगवाञ्जाबालिर्जराभिभवविच्छायं स्मितं कृत्वा हारीत-प्रमुखान् सर्वानेव [2]तान्श्रावकानवादीत्—'दृष्टमायुष्मद्भिरिदमन्तःकरणापहारिणः कथा-रसस्याक्षेपसामर्थ्यम् ? यत्कथयितुं प्रवृत्तोस्मि तत्परित्यज्यैव कथारसात्कथयन्नतिदूरमति-

---

कुर्वन् = विदधानः, गन्धर्वेत्यादिः—गन्धर्वलोकस्य (= किम्पुरुषलोकस्य) उचितान् (=योग्यान्), न तु, मनुष्यलोकयोग्यानिति भावः, कादम्बर्या, कथमपि = यथा कथञ्चित्, समुत्सृष्टलज्जया—समुत्सृष्टा (= परित्यक्ता) लज्जा (= त्रपा) यया तादृश्या, [अत्र—'कथमपि समुत्सृष्टलज्जया' इति विशेषणं महाश्वेताया एव उचितं प्रतीयते । तस्याः कारणादेव चन्द्रापीडस्य हृदयस्फोटनादिति भावः ।] महाश्वेतया = कादम्बरी-प्रियसख्या, च, अहरहः = प्रतिदिनम्, क्रियमाणान् = विधीयमानान्, उपचारान् = भक्तिप्रकारान्,तस्मिन् लोके प्रसिद्धान् लोकाचारानिति भावः, अनिच्छन् = अनभिलषन्, अविच्छेदात् = विना व्यवधानात्, निरन्तरमित्यर्थः, सायम्=सायंकाले, प्रातःकाले च, अनुभूतेत्यादिः—अनुभूतम् (= अनुभवविषयीकृतम्, साक्षात्कृतम्) चन्द्रापीडस्य (= स्वतनयस्य) दर्शनस्य (= विलोकनस्य) सुखम् (= आनन्दः, सौख्यम्) येन स तादृशः, सन्, दुःखानि = स्वीयक्लेशान्, अगणयन् = अविचारयन्, नरपतिः = राजा तारापीडः, सपरिवारः = सपरिजनः, देव्या = महिष्या विलासवत्या, शुकनासेन = अमात्येन वैशम्पायनपित्रा, च, समम् = सार्धम्, तत्रैव = महाश्वेताश्रमे एव, अतिष्ठत् = न्यषीदत्, स्थितवान् ।

इत्येवेति । इति = पूर्ववर्णितम्, एव, उक्त्वा = कथयित्वा, भगवान् = महर्षिः, जाबालिः = एतन्नामा, जरेत्यादिः—जरायाः (= वार्धक्यस्य) अभिभवेन (= पराभवेन, आक्रमणेन) विच्छायम् (= विगतशोभम्, क्षीणकान्तिम्), स्मितम् = मन्दहास्यम्, कृत्वा = विधाय, हारीतप्रमुखान्—हारीतः (= एतन्नामा स्वपुत्रः) प्रमुखः (= प्रधानः) येषु तादृशान् सर्वान्, एव, तान्, श्रावकान् = कथाश्रोतॄन्, अवादीत् = अवोचत्—'आयुष्मद्भिः = चीरञ्जीविभिर्भवद्भिः, अन्तःकरणापहारिणः = मनोहारिणः, कथारसस्य = प्रबन्धरसस्य, आक्षेपसामर्थ्यम्=आकर्षणशक्तिः, दृष्टम्=विलोकितम् । यत् = जिज्ञासितम्, कथयितुम् = वक्तुम्, प्रवृत्तः = कृतप्रयत्नः, उपक्रान्तः, अस्मि, तत्, परित्यज्य = विहाय, एव, कथारसात् = प्रबन्धास्वादात्, कथयन् = विस्तरेण वर्णयन्,

---

कार्य करता हुआ, कादम्बरी द्वारा और जिस किसी तरह लज्जा का परित्याग करने वाली महाश्वेता द्वारा प्रतिदिन किये जाने वाले गन्धर्व लोक के योग्य उपचारों (परम्परागत पूजा सत्कार आदि को) न चाहता हुआ, बिना किसी व्यवधान के प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल चन्द्रापीड के दर्शन के सुख का अनुभव करता हुआ, (अपने) दुःखों को न गिनता हुआ, राजा तारापीड परिवार-सहित महारानी और शुकनास के साथ वहीं (आश्रम में) रुक गया, ठहर गया ।

इतना ही कहने के बाद भगवान् जाबालि वृद्धावस्था(बुढ़ापे)के कारण दबायी गई शोभावाली मुस्कराहट लेकर अर्थात् मुस्करा कर हारीत जिसमें प्रधान है ऐसे उन सभी कथा के श्रोताओं से कहने लगे—'आप लोगों ने अन्तःकरण को अपनी ओर खींच लेने वाले इस कथारस का सामर्थ्य देखा ? मैंने जिसे कहना प्रारम्भ किया था उसी को छोड़ कर कथारस के कारण बहुत आगे चला आया हूँ ।

---

१. अत्यत्र प्रसङ्गं ज्ञातुं कादम्बर्याः कथामुखे जाबाल्याश्रमवर्णनं (पृ० १९९-२४०)द्रष्टव्यं यत्र महर्षिः शुकश्रावकस्य पूर्वजन्मसम्बन्धिवृत्तान्तमवर्णयत् । २. तापसान् ।

क्रान्तोस्मि । [1]तदः स कामोपहतचेताः स्वयंकृतादेवाविनयाद्दिव्यलोकतः परिभ्रश्य मर्त्यलोके (पृ० ३०६) वैशम्पायननामा शुकनाससूनुर[2]भवत्स[3] एवैष पुनः स्वयंकृतेनाविनयेन कोपितस्य पितुराक्रोशान्महाश्वेताकृताच्च [4]सत्याधिष्ठानादस्यां शुकजातौ पतितः' ।

इत्येवं वदत्येव भगवति जाबालौ बाल्येपि मे सुप्तप्रबुद्धस्येव पूर्वजन्मान्तरोपात्ताः समस्ता एव विद्या जिह्वाग्रेऽभवन् । सकलासु च कलासु कौशल[5]मुपजातम् । [6]उपदेशाय

अतिदूरम् = अतिविप्रकृष्टम्, अतिक्रान्तः = अतिक्रमणं कृतवान्, प्रयात इति भावः, अस्मि = वर्ते । अत् = तस्मात् हेतोः, यः = पूर्ववर्णितः, सः = पुण्डरीकनामा तापसकुमारः, कामोपहतचेताः = कामेन (= मनसिजेन) उपहतम् (= नष्टम्) चेतः (= मनः) यस्य तादृशः, सन्, स्वयंकृतात् = आत्मना एव विहितात्, अविनयात् = प्रतिकूलाचरणात्, धृष्टतायाः, दिव्यलोकतः = गन्धर्वलोकात्, परिभ्रश्य = भ्रष्टो भूत्वा, मर्त्यलोके = भूलोके, वैशम्पायननामा = वैशम्पायनाभिधानः, शुकनाससूनुः = शुकनासपुत्रः, अभवत् = जातः, (द्र० पृ० ३०६) सः = पुण्डरीकः, एव, एषः = अयम्, पुनः = भूयः, स्वयं कृतेन = आत्मनैव विहितेन, अविनयेन = औद्धत्येन, कोपितस्य = रोषितस्य, पितुः = श्वेतकेतुमहर्षेः, आक्रोशात् = कठोरवचनात्, शापादिति भावः, महाश्वेताकृतात् = महाश्वेतया विहितात्, सत्याधिष्ठानात्—सत्यम् (= ऋतम्) अधिष्ठानम् (= आश्रयः) यस्य तादृशात्, आक्रोशात् = शापात् ["भगवन् परमेश्वर सकलभुवन-चूडामणे लोकपाल ! यदि मया देवस्य पुण्डरीकस्य दर्शनात् प्रभृति मनसाप्यपरः पुमान् न चिन्तितस्तदानेन मे सत्यवचनेनायमलीककामी मदुदीरितायामेव जातौ पततु" पृ० २७९-८० द्रष्टव्यम् ।] अस्याम् = वर्तमानायाम्, शुकजातौ = कीरयोनौ, पतितः = च्युतः, जन्म प्राप्तवान् ।

इत्येवमिति । इति, एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, भगवति, जाबालौ = एतन्नामकमहर्षौ, वदति= कथयति, सति, एव, बाल्ये = बाल्यावस्थायाम्, अपि, सुप्तप्रबुद्धस्य—पूर्वं सुप्तः (= शयितः) पश्चाद् उत्थितः (= जागरितः) तस्य, इव, मे = मम शुकस्य, पूर्वेत्यादिः—पूर्वस्मिन् (= प्राग्वर्तिनि) जन्मान्तरे (= भवान्तरे) उपात्ताः (= गृहीताः), समस्ताः = सर्वाः, एव, विद्याः = चतुर्दशसंख्यकाः प्रसिद्धाः, जिह्वाग्रे = रसनाग्रभागे, अभवन् = अजायन्त, उपस्थिता जाता इति भावः । सकलासु = अखिलासु, कलासु = संगीतादिनाम्ना प्रसिद्धासु, कौशलम् = प्रावीण्यम्, उपजातम्=

इस कारण [पूर्वकाल में] कामवासना से विकल मन वाला जो यह (पुण्डरीक) अपने द्वारा किये गये ही अविनय (धृष्टता) के कारण (द्र० पृ० ३०६ चन्द्रमा के प्रतिशाप से) दिव्य लोक से पतित होकर मृत्युलोक में वैशम्पायन नामवाला शुकनास का पुत्र बना था, वही फिर दुबारा अपनी की गई धृष्टता (अविनय)के कारण ही कुपित किये गये अपने पिता श्वेतकेतु के आक्रोश (शाप) से तथा महाश्वेता के सत्याचरण=पतिव्रतात्व के कारण इस तोते की योनि में आ गिरा, जन्मा है ।" (द्र० पृ० २७९-८०)

महर्षि जाबालि के ऐसे कहते ही बाल्यावस्था में भी पूर्व जन्म में पढ़ी गयी वे सभीविद्यायें उसी प्रकार (पुनः) जिह्वाग्र हो गईं, मुझे स्मरण हो गई जैसे मैं सोकर जागा होऊँ । सभी कलाओं में कौशल उत्पन्न हो गया । बात करने (=कुछ भी कहने) के लिए मनुष्यों के समान स्पष्ट वर्णोच्चारण-

---

१. तदयं । २. अभूत्, उत्पन्नः । ३. स एव पुनः ।
४. सत्याभिध्यानात् । ५. उपदेशकौशलम् । ६. मनुजस्येयं ।

मनुष्यस्येव चेयं विस्पष्टवर्णाभिधाना भारती च संपन्ना[1]। विज्ञानं च [2]सर्ववस्तुविषयं स्मरणं च संवृत्तम्। किं बहुना, मनुष्यशरीरादृते सर्वमन्यत्तत्क्षणमेव[संवृत्तम्,]मे वैशम्पायनस्य[3]—स एव चन्द्रापीडस्योपरि स्नेहः,सैव कामपर[4]वशता,स एव महाश्वेतायामनुरागः,सैव तदवाप्ति प्रत्युत्सुकतेत्युपगतं सकलमेव। केवलमसंजातपक्षतया मे तस्मिन्समये पूर्वजन्मोपात्ता शरीरचेष्टा नासीत्। तथा चाविर्भूतसकलान्यजन्मवृत्तान्तः समुत्सुकान्तरात्मा 'किं मातापित्रोः? किं तातस्य तारापीडस्य? किमम्बाया विलासवत्याः? किं वयस्यस्य चन्द्रापीडस्य?

समुत्पन्नम्। उपदेशाय = कथनाय, मनुष्यस्य = मानवस्य, इव = सदृशी, च, विस्पष्टेत्यादिः—विस्पष्टम् (= सुस्पष्टम्) वर्णानाम् (= अकाराद्यक्षराणाम्) अभिधानम् (= उच्चारणम्) यस्यां तादृशी, इयम् = भवद्भिः श्रूयमाणा, भारती = वाणी, च, सम्पन्ना = सञ्जाता। सर्वेत्यादि—सर्वाणि (= समस्तानि) वस्तूनि (= पदार्थाः) विषयाः (= इन्द्रियादिभिः ग्राह्याः पदार्थाः) यस्मिन् तादृशम्, विज्ञानम् = विशिष्टबोधः, अथ च, सर्ववस्तुविषयम्, स्मरणम् = स्मृतिः, अनुभवजन्यज्ञानम्, च, संवृत्तम् = सञ्जातम्। मनुष्यशरीरात् = मानवदेहात्, ऋते = विना, मानवदेहं विहायेति भावः, अन्यत् = इतरत्, सर्वम् = सकलम्, तत्क्षणम् = तत्कालम्, एव, मे = मम, शुकस्येत्यर्थः, संवृत्तमिति अत्रापि योज्यम्। एतदेव विस्तरेण प्रतिपादयति—मे = मम, वैशम्पायनस्य = एतन्नामकस्य, चन्द्रापीडस्य = एतन्नामकवयस्य उपरि, सः = पूर्वसदृशः, एव, स्नेहः = अनुरागः, (जातः) सा = पूर्वसदृशी, एव, कामपरवशता = मदनाधीनता, जाता, महाश्वेतायाम् = एतन्नाम्न्यां गन्धर्वसुतायाम्, सः = पूर्वानुभूतः, एव, अनुरागः = प्रीतिः, (जातः), तदवाप्तिम् = तस्याः महाश्वेतायाः प्राप्तिम्, प्रति, सा = पूर्वतुल्या, एव, उत्सुकता = उत्कण्ठा, जातेति, सकलम् = अखिलम्, एव, उपगतम् = प्राप्तम्। असंजातपक्षतया—असंजातौ (= अनुत्पन्नौ) पक्षौ (= पक्षती) यस्य तस्य भावस्तत्ता तया हेतुना तस्मिन् समये = ऋषिणा कथनकाले, पूर्वजन्मोपात्ता = पूर्वस्मिन् जन्मनि अर्जिता, शरीरचेष्टा = चलनादिरूपा शारीरिकी क्रिया, केवलम् = तन्मात्रम्,न = नैव, आसीत् = अभवत्। तथा च = एवञ्च, आविर्भूतेत्यादिः—आविर्भूतः (= प्रकटीभूतः) सकलः (= सर्वः) अन्यस्य (= पूर्वस्य) जन्मनः (= भवस्य) वृत्तान्तः (= उदन्तः) यस्य स तादृशः, समुत्सुकः (= समुत्कण्ठितः) अन्तरात्मा (= अन्तःकरणम्, मनः) यस्य स तादृशः सन्, मातापित्रोः = मातुः मनोरमायाः पितुः शुकनासस्य, च, किम्? जातमिति सर्वत्र वाक्येषु योज्यम्। तातस्य = पूजनीयस्य, तारापीडस्य = महाराजस्य, किम्? अम्बायाः = मातुस्तुल्यायाः, विलासवत्याः = चन्द्रापीडजनन्याः, किम्? वयस्यस्य = सुहृदः, चन्द्रापीडस्य = एतन्नामकस्य,

---

वाली यह वाणी हो गई। सभी वस्तुओं का विज्ञान (= तात्त्विक ज्ञान) भी हो गया और स्मरण भी हो गया। अधिक क्या कहूँ, मनुष्य के शरीर को छोड़कर बाकी सभी कुछ उसी समय हो गया—मुझ वैशम्पायन का चन्द्रापीड के ऊपर वही (पहले जैसा) प्रेम, वही कामाधीनता, महाश्वेता में वही अनुराग और उसे पाने के लिए वही उत्सुकता—यह सारा का सारा स्मरण हो गया। केवल मेरे पंख न निकलने के कारण उस समय पूर्वजन्म में अर्जित शारीरिक चेष्टा (कार्य करने की शक्ति) नहीं हो पाई। इस प्रकार पूर्वजन्म का समस्त वृत्तान्त स्मरण कर लेने वाला और अत्यन्त उत्सुक मनवाला मैं—'माता-पिता का क्या, सम्माननीय तारापीड का क्या, माँ विलासवती का

---

१. संवृत्ता। २. बहुवस्तु, यत् सर्ववस्तु। ३. वैशम्पायनस्यैव। ४. कामपरता।

उत प्रथमसुहृदः कपिञ्जलस्य ? आहोस्विन्महाश्वेतायाः ? इति नाज्ञासिषमेवं कस्य कस्य[1] कथं वा स्मृतवानस्मीति। तथा चोत्सुकान्तरात्मा महीतलनिवेशितशिराश्चिरमिव स्थित्वा भगवन्तं जाबालिं निजाविनयश्रवणलज्जया विलीयमान इव विशन्निव पातालतलं कथमपि शनैः शनैर्व्यज्ञापयम्—'भगवंस्त्वत्प्रसादादाविर्भूतज्ञानोस्मि संवृत्तः। स्मृताः खलु मया सर्व एव पूर्वबान्धवाः। मूढतायां च यथैव मे तेषां स्मरणं नासीत्तथैव

किम् ? उत = अथवा, प्रथमसुहृदः = आद्यजन्मनि पुण्डरीकरूपेण विद्यमानस्य मे मित्रस्य कपिञ्जलस्य, किम् ? आहोस्वित्=अथवा, महाश्वेतायाः=मम प्रेयस्याः एतन्नाम्न्याः, किम् ? जातमिति, न = नैव, अज्ञासिषम् = ज्ञातवान्, एवम् = अनेनैव रूपेण, कस्य कस्य = वर्णयितुमशक्यस्य परिचितलोकस्य, कथम् = केन प्रकारेण, वा, स्मृतवान् = स्मृतिपटले प्रापितवान् अस्मि, इत्यपि, न अज्ञासिषम्। [कस्य कस्य—इत्यत्र 'मातुः स्मरति' इत्यत्रेव सम्बन्धमात्रविवक्षायां कर्मणि षष्ठी बोध्या। एवञ्च—कं कं कथं वा स्मृतवानस्मि—इति नाज्ञासिषम् इति वाक्यार्थः।] तथा च, समुत्सुकान्तरात्मा—समुत्सुकः (= समुत्कण्ठितः) आत्मा (= हृदयम्) यस्य स तादृशः, महीतलेत्यादिः—महीतले (= भूतले) निवेशितम् (= निहितम्) शिरः (= मूर्धा) येन स तादृशः, चिरम् = दीर्घसमयपर्यन्तम्, इव, स्थित्वा = स्थितिं विधाय, निजेत्यादिः—निजः (= स्वकीयः) यः अविनयः (= धृष्टत्वम्, अशिष्टाचरणम्) तस्य यत् श्रवणम् (= आकर्णनम्) तेन लज्जया (= त्रपया) विलीयमानः = विलीनतां प्राप्नुवन्, इव, पातालम् = रसातलम्, विशन् = प्रवेशं कुर्वन्, इव, शनैः शनैः = मन्दं मन्दं यथा स्यात् तथा, कथमपि = येन केन प्रकारेण, भगवन्तम्, जाबालिम् = एतन्नामकं महर्षिम्, व्यज्ञापयम् = न्यवेदयम्।

सः शुकः किं न्यवेदयदिति विस्तरेण प्रतिपादयितुमाह—भगवन्नित्यादिना। भगवन् = तपोधन मुने !, त्वत्प्रसादात् = तवानुग्रहात्, आविर्भूतज्ञानः = आविर्भूतम् (= प्रकटीभूतम्, पुनः सञ्जातम्) ज्ञानम् (= मतिः) यस्य स तादृशः, संवृत्तः = सञ्जातः, अस्मि = वर्ते। मया = शुकेन, सर्वे = समस्ताः एव, पूर्वबान्धवाः = पूर्वजन्मसम्बन्धि-बन्धुजनाः, स्मृताः = स्मृतिं प्रापिताः, खलु = निश्चयेन। मूढतायाम् = मूर्खतायाम्, पक्षियोनौ समुत्पन्नत्वादिति शेषः, मे = मम शुकस्य, यथैव = येनैव प्रकारेण, स्मरणम् = स्मृतिः, न, आसीत् = अभवत्, तथैव = तेनैव प्रकारेण, पीडा = व्यथा, अपि, न, आसीत् = अभूत्। अज्ञानावस्थायां यथा सुखं

क्या, मित्र चन्द्रापीड का क्या और प्रथम जन्म के मित्र कपिञ्जल का क्या, और महाश्वेता का क्या हुआ—(यही नहीं जान पाया), इस प्रकार से किस-किस को कैसे-कैसे याद किया—यह नहीं जान पाया। इसके बाद उत्सुक मन वाला, पृथ्वी तल पर मस्तक टिकाये (झुकाये) हुआ बहुत देर तक ठहर कर, अपनी धृष्टता को सुनने से (उत्पन्न) लज्जा के कारण गला जाता हुआ सा, पाताल लोक में प्रवेश करता हुआ सा जिस किसी प्रकार मैं महर्षि जाबालि से धीरे-धीरे निवेदन करने लगा—"प्रभो, आपके प्रभाव से मुझे सभी का ज्ञान हो गया। मुझे पूर्वजन्म के सभी बन्धु-बान्धव सचमुच में ही याद आ गये। अज्ञानावस्था में जिस प्रकार से मुझे उनका स्मरण नहीं था उसी प्रकार उन [के

---

१. कस्य कथं वा, कस्य कस्य कथं कथं वा।

पीडापि। अधुना पुनस्तान्स्मृत्वा[1] स्फुटतीव मे हृदयम्। न[2] च तान्स्मृत्वापि तथा, यथा चन्द्रापीडम्, यस्य मदुपरतिश्रवणमात्र[3]कात्स्फुटितं हृदयम्। तत्त[4]स्यापि जन्माख्यानेन प्रसादं करोतु भगवान्। येनायं तिर्यग्योनिवासोपि मे तेन सहैकत्र वसतो न पीडाकरः संजायते।' इत्येवं च विज्ञापितो मया सासूयमिव मामवलोक्य भगवाञ्जाबालिः सस्नेहकोपगर्भं प्रत्यवादीत्—'दुरात्मन्, ययैतावतीं दशामुपनीतोसि कथं तामेव [5]तरलहृदयतामनुबध्नासि ?

न स्मृतवान् तथैव पीडामपि न स्मृतवानिति उभयं तुल्यमासीदिति भावः। अधुना = इदानीम्, पुनः = भूयः, तान् = पूर्वबान्धवान्, स्मृत्वा = स्मरणं कृत्वा, मे = मम शुकस्य, हृदयम् = चित्तम्, स्फुटति = विदीर्णं भवति, इव। न च, तान् = पूर्वबान्धवान्, स्मृत्वा = स्मरणं कृत्वा, अपि, तथा = तेन प्रकारेण [मे हृदयं स्फुटति] यथा = येन प्रकारेण, चन्द्रापीडम् = स्ववयस्यम्, स्मृत्वा मे हृदयं स्फुटति इति अत्रापि योज्यम्; यस्य = चन्द्रापीडस्य, मदुपरतीत्यादिः— मम (= वैशम्पायनस्य) उपरतिः (= मरणम्) तस्य श्रवणम् एव (= आकर्णनम् एव) तन्मात्रात् हृदयम् = चित्तम्, स्फुटितम् = विदीर्णं जातम्, चन्द्रापीडस्य हृदयस्फोटमाकर्ण्य मम मनसि सर्वतोऽधिकं कष्टमुपजातमिति भावः, तत् = तस्मात् कारणात्, तस्य = चन्द्रापीडस्य; जन्मनः = भवस्य, वर्तमानजन्मनः, अपि, आख्यानेन = कथनेन, भगवान् = श्रीमान्, प्रसादम् = अनुग्रहम्, करोतु = विदधातु, येन = कारणेन, मे = मम वैशम्पायनस्य, अयम् = एषः, तिर्यग्योनिवासः = पक्षियौनौ स्थितिः, अपि, तेन = चन्द्रापीडेन, सह = सार्धम्, एकत्र = एकस्मिन्नेव स्थाने, वसतः = निवसतः, स्थितिं कुर्वतः, पीडाकरः = व्यथाजनकः, न, सञ्जायते = भवति, सामीप्ये भविष्यति प्रयोगस्तेन, न भविष्यतीत्यर्थः। इति, एवम् = अनेन रूपेण, मया = शुकेन, विज्ञापितः = निवेदितः, भगवान् = महर्षिः, जाबालिः, सासूयम् = असूयया (= कोपः, ईर्ष्या) सहितं यथा स्यात् तथा, माम् = शुकम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा, सस्नेहेत्यादिः = स्नेहः (= प्रीतिः) कोपः (= क्रोधः) तौ गर्भे (= आभ्यन्तरे) यस्य तत् तेन सहितं यथा स्यात् तथा, वास्तविकप्रेम्णा कृत्रिमकोपेन च सहितमिति भावः, प्रत्यवादीत् = प्रत्यवोचत्।

किं तदित्याह—दुरात्मन्नित्यादिना। दुरात्मन् = दुष्टात्मन्!, यया = तरलहृदयतया, एतावतीम् = इयतीम्, दयनीयामिति भावः, दशाम् = अवस्थाम्, उपनीतः = प्रापितः, असि = वर्तसे, ताम्, एव, तरलहृदयताम्—तरलम् (= चञ्चलम्) हृदयम् (= चित्तम्) यस्य तद्भावस्तत्ताम्, कथम् = किमर्थम्, अनुबध्नासि = अनुधावसि ? अद्यापि = इदानीमपि, पक्षौ = पक्षती, अपि,

वियोग] की पीडा भी नहीं थी। परन्तु अब फिर से उन सबको याद करके मेरा हृदय फटा सा जा रहा है। उनको याद करके भी उस तरह से नहीं फटा जा रहा है जिस तरह से चन्द्रापीड को याद करके, जिस चन्द्रापीड का हृदय मेरी मृत्यु के सुनते ही फट गया था। अतः भगवान् आप उस चन्द्रापीड के भी जन्म की कथा कहने के द्वारा(मुझ पर)अनुग्रह करें जिससे उसके साथ रहते हुए मुझे इस पक्षियोनि में रहना भी कष्टकारक न हो सके।' इस प्रकार से मेरे निवेदन करने पर महर्षि जाबालि जलन भरी दृष्टि से मुझे देखकर स्नेह और (बनावटी) क्रोध के साथ उत्तर देने लगे—'अरे दुरात्मन्! जिसके कारण तू इस इतनी (खराब) दशा को प्राप्त हुआ है उसी हृदय की चञ्चलता से चिपका (बँधा) जा रहा है ? अभी तो (तेरे) दोनों पंख भी (पूरी तरह) नहीं निकले हैं। पहले उड़ने

१. स्मृत्वा स्मृत्वा। २. तथान्यत्। ३. मात्रात्। ४. दयां करोतु भगवांस्तस्यापि जन्माख्यानप्रसादप्रदानेन। ५. हृदयतरलतां।

अद्यापि पक्षा¹वपि नोद्भिद्येते। तत्संचरणक्षमस्तु तावद् भव। ततो मां प्रक्ष्यसि।' इत्येवमुक्ते भगवता समुपजातकुतूहलो हारीतः पप्रच्छ—'तात, महानयं विस्मयो मे। कथय कथमस्य मुनिजातौ वर्तमानस्य तादृशी कामपरता जाता, यया जीवितमपि न संधारयितुं पारितम्। कथं च दिव्यलोकसंभूतस्य तथा स्वल्पमायुः संवृत्तम् ?' इति, एवं च पृष्टः सूनुना भगवाञ्जाबालिरमलाभिः पापमलमिव² प्रक्षालयन्दशनदीधितिसलिलधाराभिः प्रत्यवादीत्—

"स्पष्टमेवात्र कारणं वत्स! अयं हि कामरागमोहमयादल्पसारात्स्त्रीवीर्यादेव

न, उद्भिद्येते = निर्गच्छतः। तत् = तस्मात्, तावत् = प्रथमम्, सञ्चरणक्षमः = उड्डयनसमर्थः, भव = जायस्व। ततः = तदनन्तरम्, माम् = जाबालिम्, पृच्छसि = प्रश्नविषयीकरोषि, तदैव ते प्रश्नकरणमुचितमिति भावः। इति, एवम् = अनेन प्रकारेण, भगवता = महर्षिणा जाबालिना, उक्ते = कथिते सति, समुपजातकुतूहलः—समुपजातम् (= समुत्पन्नम्) कुतूहलम् (=औत्सुक्यम्) यस्य स तादृशः, सन्, हारीतः = जाबालिपुत्रः, पप्रच्छ = पृष्टवान्। किं पप्रच्छेति वर्णयति— तात इत्यादिना। तात = पूज्यपितः! अयम् = एषः, मे = मम, महान् = अत्यधिकः, विस्मयः = आश्चर्यम्। कथय = वद, श्रावयेति भावः, मुनिजातौ = ऋषिकुले, वर्तमानस्य = विद्यमानस्य, अपि, अस्य = पूर्वजन्मनि पुण्डरीकस्य, ततो वैशम्पायनस्य, वर्तमाने शुकस्य, तादृशी = तत्प्रकारा, कामपरता—कामे (=मदने) परः (=लीनः) तस्य भावस्तत्ता, कामुकतेत्यर्थः, कथम् = कस्मात् कारणात्, जाता = अभूत्। यया = कामपरतया, जीवितम् = जीवनम्, प्राणान्, अपि, धारयितुम् = धर्तुम्, न, पारितम् = शक्तम्। दिव्यलोकसम्भूतस्य = दिव्यलोकसमुत्पन्नस्य अस्य, कथम् = कस्मात् करणात्, तथा = तेन रूपेण, स्वल्पम् = स्तोकम्, आयुः = वयः, जीवनावधिरिति भावः, संवृत्तम् = संजातम् ? एवञ्च = अनेन प्रकारेण, च, सूनुना = पुत्रेण हारीतेन, पृष्टः = अनुयुक्तः, भगवान् = महर्षिः जाबालिः, अमलाभिः = निर्मलाभिः, उज्ज्वलाभिः, दशनेत्यादिः—दशनानाम् (=दन्तानाम्) दीधितयः (= किरणाः) सलिलस्य (= जलस्य) धाराः (= प्रवाहाः) इवेति ताभिः, पापमलम् = दुष्कृतकलुषम्, मे, प्रक्षालयन् = दूरीकुर्वन्, इव, प्रत्यवादीत् = प्रत्युत्तरितवान्।

जाबालिः किं प्रत्यवादीदिति वर्णयति—स्पष्टमेवेत्यादिना। वत्स = पुत्र! अत्र = अस्मिन् विषये, कारणम् = निमित्तम्, स्पष्टम् = प्रकटम्, एव, अस्ति। हि = यतः, अयम् = एष पूर्वजन्मनि पुण्डरीकः, कामेत्यादिः—कामः (= मदनवासना) रागः (= प्रेम) मोहः (= अज्ञानम्)—इति प्राचुर्येण अस्मिन् तत्—कामरागमोहमयम्, तस्मात् [प्राचुर्यार्थे मयट्] तन्मात्रात्, अल्पसारात् =

में समर्थ तो हो जा, तब मुझसे पूछना।' इस प्रकार से जब महर्षि ने कहा तब उत्पन्न कुतूहल वाले हारीत ने पूछा—'पिता जी! मुझे बड़ा आश्चर्य है। बताइये, मुनिवंश में उत्पन्न हुए इस (पुण्डरीक) की उस प्रकार की कामुकता कैसे हो गई, जिसके कारण यह अपने प्राणों को भी नहीं धारण कर पाया, संभाल सका? और फिर दिव्य लोक में जन्म (उत्पन्न) होने वाले इसकी उतनी कम आयु कैसे हो गई?'' इस प्रकार से पुत्र द्वारा पूछे गये भगवान् जाबालि अपनी निर्मल दन्त-कान्तिरूपिणी जलधारा से (मेरे) पापों को धोते हुए से कहने लगे—"बेटा! इसमें कारण स्पष्ट ही है। क्योंकि यह (पुण्डरीक) काम, राग तथा मोह की प्रधानता वाले (अथवा कामवासना और मूढ़ता के

१. पक्षावेव। २. मे प्रक्षालयन्।

केवलादुत्पन्नः। (पूर्वार्द्धे पृ० ६७९) श्रुतौ च पठ्यते[1] एतत्--यादृशाद् वै जायते तादृगेव भवतीति। लोकेऽपि च प्रायः कारणगुणभाञ्ज्येव कार्याणि दृश्यन्ते। तथा चैतदायुर्वेदेऽपि श्रूयते--यः किलाल्पसारात्स्त्रीवीर्यादेव केवलाज्जन्तुर्भवति स खल्वभावात्सारभूतस्य स्थैर्यहेतोः पुरुषवीर्यस्य [2]यथासारं गर्भे वा विलयमापद्यते, मृतो वा जायते, जातो वा न दीर्घकालं जीवतीति। तदयमुत्पन्न एवेदृशो येनास्य तादृशी कामपरता जाता। मरणं च

अल्पबलात्,केवलात्=तन्मात्रात्,स्त्रीवीर्यात्=नारीरजसः,एव, उत्पन्नः=संजातः,न तु तत्र पुरुषवीर्यसंयोगोभूदिति भावः। पुण्डरीकस्योत्पत्तिविषये कादम्बर्याः पूर्वार्द्धे कथा द्रष्टव्या यत्र केवलात् लक्ष्मीवीर्यादेव एवास्य उत्पत्तिर्वर्णिता (पूर्वार्द्धे पृ० ६७९)। श्रुतौ=वेदादौ, च पठ्यते=श्रूयते, एतत्=इदम्, यादृशात्=यद्गुणविशिष्टात्, जायते = उत्पद्यते, वै = निश्चयेन, तादृक् = तादृशः, एव, भवति, न केवलं शास्त्रेषु प्रत्युत, लोके = संसारे, अपि, प्रायः = बाहुल्येन, कार्याणि = जायमानानि वस्तूनि घटादीनि, कारणगुणभाञ्जि—कारणगुणान् (= निमित्तकारणवैशिष्ट्यानि) भजन्ते (= आश्रयन्ति)—इत्येवंशीलानि, एव, दृश्यन्ते = विलोक्यन्ते। यादृशकारणात् यद् उत्पद्यते तत्कार्ये तत्कारणगुणा अपि वर्त्तन्ते एवेति सर्वलोकानुभवसिद्धमिति भावः। तथा च = अन्यच्च इदमपि, आयुर्वेदशास्त्रे = भैषज्यशास्त्रे, अपि, श्रूयते = आकर्ण्यते, यत्, यः, जन्तुः = प्राणी, अल्पसारात्—अल्पः (= स्तोकः,) सारः (= बलम्, सामर्थ्यम्) यस्मिन् तादृशात्, केवलात् =तन्मात्रात्, स्त्रीवीर्यात् = नारीरजसः, एव, भवति = जायते, सः = जन्तुः, किल = निश्चयेन, सारभूतस्य = बलभूतस्य, स्थैर्यहेतोः = स्थिरताकारणभूतस्य, पुरुषवीर्यस्य = नरशुक्रस्य, अभावात् = असत्त्वात्, यथासारम् = सारानुसारम्, बलानुकूलम्, गर्भे = जननीकुक्षौ, वा, विलयम् = विलीनताम्, विनाशमिति भावः, आपद्यते = प्राप्नोति, विलीनो भवति, अथवा, मृतः = प्राणहीनो वा, जायते = उत्पद्यते, वा = अथवा, जातः = उत्पन्नः, दीर्घकालम् = चिरकालपर्यन्तम्, न, जीवति = प्राणान् धारयति, इति। एवञ्चास्योत्पत्तौ तृतीया दशा सञ्जातेति भावः। तत् = तस्माद्, अयम् = पुण्डरीकः, ईदृशः = एतादृशः, उत्पन्नः = सञ्जातः, एव, येन = कारणेन, अस्य = पूर्वजन्मनि पुण्डरीकस्य, पुनः वैशम्पायनस्य, तादृशी = तत्प्रकारा, कामपरता = कामुकता, जाता = अभूत्। मदनेत्यादिः—मदनस्य (= कामस्य) वेगः (= रयः) तस्मात् तद्रूपो वा यः संज्वरः (= सन्तापः) तस्य असहिष्णोः = असहनशीलस्य, अस्य = पुण्डरीकस्य, वैशम्पायनरूपेणावतरितस्य च, मरणम् = मृत्युः, अपि, तथा = तेन प्रकारेण, अल्पकालेनेति भावः,

कारण) अल्पबल वाले केवल स्त्रीवीर्य (रज) से ही उत्पन्न हुआ है। (द्र० पूर्वार्द्ध पृ० ६७९) श्रुति (वेदों) में यह पढ़ा जाता है कि जो जिस प्रकार (के कारण) से उत्पन्न होता है वह उसी प्रकार का होता है। और लोक में भी सामान्य रूप से कार्य (उत्पद्यमान वस्तु) अपने कारणभूत तत्त्व के गुणों का ही अनुसरण करते हैं, वैसे ही होते हैं। और आयुर्वेद में भी इस प्रकार सुना जाता है—'जो जन्तु अल्प वीर्यवाले केवल स्त्रीवीर्य से ही उत्पन्न होता है वह सारभूत तथा स्थिरतादायक पुरुषवीर्य के अभाव के कारण सारानुसार अर्थात् केवल स्त्रीवीर्य के कारण या तो गर्भ में ही विलीन (गायब) हो जाता है या मरा हुआ पैदा होता है या उत्पन्न होकर भी बहुत अधिक समय तक जीवित नहीं रहता है। इसलिये इसका जन्म ही इस प्रकार से हुआ है जिसके कारण इसकी उस प्रकार की कामुकता हो गई। और कामवेग से उत्पन्न ज्वर को न सह सकते हुए इसकी

१. इदं क्वचित् नापि पठ्यते। २. इदमपि कुत्रचित् नापि पठ्यते।

मदनवेगसंज्वरासहिष्णोस्तथो[1]पनतम् । अधुनापि तादृश एवाल्पायुरयम् । [2]शापावसानोत्तर-कालं [3]यदस्याक्षयेणायुषा योगो भविष्यति ।'

इत्येतच्छ्रुत्वा पुनरवनितलनिवेशितशिराः प्रणम्य भगवन्तं व्यज्ञापयम्–भगवन्! अहम-पुण्यवानस्यां तिर्यग्योनौ वर्तमानः स्वयं सर्वस्यैवाक्षमः । वागपि मे भगवतः प्रसादात् सम्प्रत्ये-वानने सम्भूता, भूतपूर्वं ज्ञानञ्चान्तरात्मनि । शरीरं पुनरायुःसंवर्धक[4]कर्मयोग्यं भगवतः प्रसादाद-[5]न्यस्मिञ्जन्मनि यदि भवेत्, तत्केन [6]प्रकारेणाक्षयं तन्मे महाकर्मसाध्यमायुर्भविष्यतीत्येत-

उपनतम् = सम्प्राप्तम् । अधुना = इदानीम् अपि, शुकयोनिप्राप्तौ सत्यामपि, अयम् = एष शुकः तादृशः = तथाविधः, पूर्वतुल्य एव, अल्पायुः = अल्पजीवितः, वर्तते । शापावसानोत्तरकालम् = शापस्य समाप्तेरनन्तरसमये, अस्य = शुकस्य, अक्षयेण = अविनाशिना, अयुषा = वयसा, योगः = सम्बन्धः, भविष्यति = जायिष्यते । अत्र 'यदस्य = यद् अस्य' इत्यत्र यत् शब्दो वाक्यालंकारे, निमित्तार्थे वा । यद्वा पूर्वं 'तदयमुत्पन्नः' इति 'तद्' इति कथनात् सापेक्षतया 'यद्' इति कथनं मन्तव्यम् । वस्तुतस्तु—अनर्थकत्वमेवोचितम्, अत एव बहुत्र नायं पठ्यते इति ।

इत्येतदिति । इति, एतत् = पूर्वोक्तम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, पुनः = भूयः, अवनीत्यादिः—अवनितले (= भूतले) निवेशितम् (= स्थापितम्) शिरः (= मूर्धा) येन स तादृशः, अहम्, भगवन्तम् = जाबालिम्, प्रणम्य = प्रणतिं कृत्वा, व्यज्ञापयम् = निवेदितवान् । किं तदित्याह—भगवन् = श्रीमन्, अपुण्यवान् = पापी, अहम् = वैशम्पायनः, अस्याम् = वर्तमानायाम्, तिर्यग्योनौ = पक्षियोनौ, वर्तमानः = विद्यमानः सन् स्वयम् = आत्मना, सर्वस्य = सकलस्य कार्यस्य, अक्षमः = असमर्थः, अस्मि । भगवतः = श्रीमतो भवतः, प्रसादात् = अनुग्रहात्, वाग् = वाणी, अपि, मे = मम शुकस्य, आनने = आस्ये, सम्प्रति = इदानीम्, एव, संभूता = सञ्जाता, भूतपूर्वम्—पूर्वं भूतम्, प्राक्कालार्जितम्, ज्ञानम् = बुद्धिवैशारद्यम्, च, अन्तरात्मनि = अन्तःकरणे, बुद्धाविति भावः, सम्भूतमिति शेषः । पुनः = परन्तु, भगवतः = श्रीमतो भवतः, प्रसादात् = कृपया, यदि = चेत्, अन्यस्मिन् = अपरस्मिन्, द्वितीये इति भावः, जन्मनि = भवे, आयुःसंवर्धके-त्यादिः—आयुषः (= जीवनकालस्य) संवर्द्धकस्य (= वृद्धिकारकस्य) कर्मणः (= कृत्यस्य, जपानुष्ठानादिरूपस्य) योग्यम् (= समर्थम्) शरीरम् = कायः, भवेत् = जायेत, तत् = तर्हि, तस्माद्वा, केन = अज्ञातेन, प्रकारेण = विधानेन, मे = मम शुकस्य, महाकर्मसाध्यम्—महाकर्मभिः

मृत्यु भी उसी प्रकार हुई है। और इस समय भी यह अल्प आयु वाला ही है। शाप की समाप्ति के बाद इसका अक्षय आयु के साथ योग होगा अर्थात् यह दीर्घजीवी बनेगा।'

महर्षि के इन वचनों को सुनकर मैं फिर से पृथ्वी पर माथा रखता हुआ उनको प्रणाम करके निवेदन करने लगा—"प्रभो! इस पक्षियोनि में रहता हुआ मैं पुण्यहीन प्राणी स्वयं सभी कुछ करने में असमर्थ हूँ। पापी भी अभी-अभी आपके प्रसाद से मेरे मुख में उत्पन्न हुई है, अर्थात् मैं मनुष्य-वाणी में बोलने में समर्थ हुआ हूँ और भूतपूर्व (पहले वाला) ज्ञान भी मन में (अभी) उत्पन्न हुआ है। किन्तु यदि आपके अनुग्रह से दूसरे (आगामी) जन्म में आयु बढ़ाने वाले (जप होमादि) कार्यों के योग्य (समर्थ) शरीर मिल जाय तो किस प्रकार से महान् कार्यों से साध्य मेरी अक्षय आयु होगी—यह भी भगवान् आप मुझे आदेश दीजिये।" इस प्रकार से मेरे निवेदन करने पर सभी दिशाओं में

१. तथोपगतम् । २ शापावसानानन्तरकालम् ।
३. क्वचित् 'यद्' इति नापि पठ्यते, एतदेव युक्तम्; एतस्यानन्वयात् ।
४. ...संवर्धनीय०...। ५. अस्मिन् । ६. केनचित् ।

दाज्ञापयतु भगवान् ।' इत्येवं विज्ञापितस्तु मया, दिक्षु विक्षिप्य चक्षुर्भगवानाज्ञापितवान्--'एतदपि यथा तथा ज्ञास्यस्येव । [1]तावदियं कथास्ताम् । रसाक्षेपादचेतितैवास्माभिः प्रभातप्राया रजनी । प्रभाविरहादनु[2]न्मृष्टरजत-दर्पणा[3]भमि[4]दमपरान्ता[4]वलम्बि वर्तते रजनिकर-बिम्बम् । [5]यथायथोद्गमविस्तारिणी जरत्तामरसपत्रारुणा पाण्डुच्छविरुल्लसति सीमन्त-

(= जपहोमोपानुष्ठानादिभिः) साध्यम् (= साधयितुं योग्यम्), अक्षयम् = अविनाशि, तत् = आयुः, भविष्यति = सम्पत्स्यते, इति, एतदपि, भगवान् = श्रीमान्, आज्ञापयतु = निर्दिशतु । इति, एवम्, मया = शुकेन, विज्ञापितः = निवेदितः, तु, चक्षुः = नेत्रम्, दिक्षु = दिशासु, विक्षिप्य= सम्प्रेर्य, पातयित्वा, भगवान् = श्रीमान् जाबालिः, आज्ञापितवान् = आदिष्टवान् । एतद् = इदम्, अपि, यथा = येन प्रकारेण, भविष्यतीति, तथा = तेन प्रकारेण, ज्ञास्यसि = वेत्स्यसि, एव, न मया अस्मिन् विषये किमपि आदेष्टव्यमिति भावः । तावत् = साम्प्रतम्, इयम् = एषा, मयोच्यमाना, कथा, आस्ताम् = तिष्ठतु, अग्रे अकथ्यमानैव भवत्विति भावः ।

रसेति । रसाक्षेपात् = कथारसस्याकर्षणात्, अस्माभिः = सर्वैरत्रोपस्थितलोकैः, प्रभातप्राया= बाहुल्येन प्रभातीभूता, रजनी = रात्रिः, अचेतिता = अज्ञाता, न ज्ञाता, एव, इति भावः । प्रभाविरहात् = कान्त्यभावात्, अनुन्मृष्टेत्यादिः—अनुन्मृष्टः (= असंमार्जितः, वस्त्रादिना अस्वच्छीकृतः) यः रजतस्य (= रौप्यस्य) दर्पणः (= मुकुरः) तस्य आभा (= छविः, कान्तिः) इव आभा यस्य तत् तादृशम्, इदम् = पुरोवर्ति, रजनिकर-बिम्बम् = चन्द्रमण्डलम्, अपरेत्यादिः—अपरस्याः (= अन्यस्याः पश्चिमायाः दिशायाः) अन्तम् (= प्रान्तम्) अवलम्बते इत्येवं शीलम्, वर्तते = विद्यते । अत्र 'अपराम्बरान्तावलम्बि' इति युक्तः पाठः, पश्चिमाकाशावलम्बि—इति तस्यार्थः । प्रातःकाले चन्द्रमण्डलं पश्चिमायां दिशायाम्, पश्चिमे आकाशे वा वर्तते इति सर्वानुभवसिद्धम् । यथायथेत्यादिः—यथायथम् (= यथाक्रमेण) यः उद्गमः (= उदयः) तेन विस्तारिणी (=विस्तरणशीला), जरदित्यादिः—जरत् (= परिपक्वम्, पूर्णरूपेण प्रफुल्लम्) यत् तामरसम् (= रक्तकमलम्) तस्य पत्रवत् (= दलवत्) आ-अरुणा (= ईषद् रक्तवर्णा), पाण्डुः (= पाण्ड्वी), कान्तिः (= छविः, शोभा) यस्याः सा तादृशी, पूर्वस्याः = ऐन्द्रयाः, ककुभः = दिशायाः, तमःकेश-संघातम्—तमः (= तामिस्रम्) एव केशः (= कचः) तस्य संघातम् (= समूहम्), सीमन्तयन्ती —सीमन्तः (= केशविभाजकपंक्तिः) तं कुर्वन्ती (= विदधाना), इव, अरुणेत्यादिः—अरुणस्य (= सूर्यसारथेः) ये अग्राः (= आदिमाः) कराः (= किरणाः)

अर्थात् चारो ओर दृष्टि डालकर, देखकर भगवान् जाबालि ने आज्ञा दी—'यह तुम जैसे तैसे जान ही लोगे । अब इस कथा को यहीं छोड़ो, बन्द करो । कथारस (आनन्द) से आकृष्ट होने के कारण हमें यह मालूम ही नहीं हो पाया कि रात लगभग बीत गई और सबेरा हो चला । प्रभा से विहीन होने के कारण, बिना साफ किये गये दर्पण की कान्ति के समान कान्ति वाला यह चन्द्रमण्डल दूसरी दिशा अर्थात् पश्चिम दिशा के अन्त (छोर) में लटका हुआ सा हो गया है । उदय के अनुसार धीरे-धीरे फैलने वाला, पूर्ण रूप से पके (विकसित) लाल कमल के पत्र के समान लाल वर्ण वाला, धूसर छवि वाला, सूर्य की प्रभातकालीन पहली-पहली किरणों का समूह पूर्वदिशा (रूपी नायिका) के अन्धकार

१. आस्तां तावदियं कथा । २. उन्मृष्ट० । ३. रजतकुम्भाभम् ।
४. अम्बरान्तरावलम्बि, अपराम्बरान्तावलम्बि । ५. यथायथोद्गमन० ।

यन्ती तमःकेशसंघातमिव पूर्वस्याः ककुभोऽरुणाग्रकरालोकततिः[1]। इमाः सशेषतिमिरतया-म्बरैरकाण्डकलुषं[2] भास्वत्प्रभालोकमारब्धाः क्रमेण यथासूक्ष्मं तारकाः प्रवेष्टुम्। एष पम्पासरःशायिनां प्रबोधाशंसी समुच्चरति कोलाहलः श्रोत्रहारी विहंगमानाम्। एते च निशीथिनीपरिमिलन[3]शीतलाश्चलितवनकुसुमपरिमलग्राहिणो वातुं प्रवृत्ताः प्रभातपिशुना वायवः, प्रत्यासन्नाग्निविहार[4]वेला।' इत्यभिदधान एव गोष्ठीं भङ्क्त्वोदतिष्ठत्।

तेषाम् आलोकः (= प्रभा) तस्याः ततिः (= श्रेणिः, पङ्क्तिः), उल्लसति = उल्लासं प्राप्नोति, शोभते इति भावः। आकाशे एकस्यां दिशायां तमोऽवशिष्टम् अपरस्यां च अरुणोदयेन लोकः उल्लसितः, एतेनेदं प्रतीयते यत् अरुणोदयः प्राचीदिशारूपिनायिकायाः तमोरूपकेशान् द्विभागयोः विभजति स्मेति सुष्ठु कल्पना। इमाः = एताः प्रत्यक्षं विलोक्यमानाः, तारकाः = नक्षत्राणि, क्रमेण = क्रमशः यथासूक्ष्मम् = सूक्ष्म-सूक्ष्मतरीभवन्त्यः, सशेषतिमिरतया—सह शेषेण वर्तते तत् सशेषं (= स्वल्पम्) तिमिरम् (= तमः) यस्मिन् तादृशस्य भावस्तत्ता तया, अम्बराकाण्डकलुषम्—अम्बरे (= आकाशे) अकाण्डे (= असमये) कलुषम् (= मलिनम्), भास्वत्प्रभालोकम्—भास्वतः (= सूर्यस्य) प्रभायाः (= दीप्तेः) आलोकम् (= प्रकाशम्), प्रवेष्टुम् = प्रवेशं कर्तुम्, आरब्धाः = आरम्भं कृतवत्यः। एषः = स्पष्टं श्रूयमाणः, पम्पासरःशायिनाम् पम्पाख्यसरोवरतटे शयनशालिनाम्, विहङ्गमानाम् = पक्षिणाम्, प्रबोधाशंसीः = जागरणसूचकः, श्रोत्रहारी = कर्णमनोहरः, कोलाहलः = उच्चारितध्वनिः, समुच्चरति = प्रकटीभवति। एते = सर्वैरनुभूयमानाः इमे, निशीथिनीत्यादिः—निशीथिनी (= रात्रिः) तया यत् परिमिलनम् (= सम्पर्कः) तेन शीतलाः (= शैत्ययुक्ताः), चलितेत्यादिः—चलितानि (= प्रकम्पितानि) यानि वनकुसुमानि (= आरण्यवृक्षपुष्पाणि) तेषां परिमलः (= सौरभम्) तं गृह्णन्ति (= आददते)—इत्येवंशीलाः, प्रभातपिशुनाः = प्रातःकालस्य सूचकाः, वायवः = पवनाः, वातुम् = सञ्चरितुम्, प्रवृत्ताः = आरब्धाः। अग्नि-विहारवेला = अग्निहोत्रे गमनाय समयः, प्रत्यासन्ना = सन्निहिता, जातेति भावः, इति = इत्थम्, अभिदधानः = भाषमाणः, एव, गोष्ठीम् = सभाम्, भङ्क्त्वा = विसृज्य, उदतिष्ठत् = उत्थितः, 'समज्यापरिषद् गोष्ठी सभासमितिसंसदः' इत्यमरः।

(रूपी) केश-समूह की माँग (बालों को दो भागों में विभक्त कर बाँधना) बनाता हुई सा उल्लसित हो रहा है। कुछ-कुछ अंधेरा शेष रह जाने के कारण धीरे-धीरे क्रमशः छोटे होते जाते हुए इन तारागणों ने असमय में ही आकाश में मलिन बन गये सूर्य की प्रभा के प्रकाश में प्रवेश करना प्रारम्भ कर दिया है। पम्पा सरोवर पर [रात में] सोने वाले पक्षियों के जागरण की सूचना देने वाला, श्रुति-मधुर कोलाहल उठने लगा है। रात्रि के सम्पर्क के कारण शीतल बनी हुई, वनों के हिलते हुए पुष्पों की सुगन्ध को साथ में लेती हुई, प्रभातकाल की सूचना देने वाली ये हवायें बहने (चलने लगी हैं। अग्निहोत्रादि करने का समय समीप आ गया है।' ऐसा कहते हुए ही महर्षि जाबालि सभा को भंग कर उठ खड़े हुए।

---

१. आलोकवर्त्तिः, आलोकान्तरिताः। २. अङ्ककलुषम्, एककाण्डपटकलुषम्।
३. परिमलने, परिमलम्। ४. विहरण।

अथोत्थिते भगवति जाबालौ वीतरागापि [1]निष्कौतुकापि मोक्षमार्गावस्थानापि समस्तैव सा तपस्विपरिषत्कथारसाद्विस्मृतगुरूचितप्रतिपत्तिः शृण्वतीवोत्कण्ट[2]कितकाया विस्मयोत्फुल्लमुखी युगपदागलितशोकानन्दजन्मनयनसलिला हाकष्टशब्दानुबन्धिनी[3] स्तम्भितेव चिरमिव स्थित्वा यथास्थानं जगाम। हारीतस्तु मां सन्निहितेऽपि मुनिकुमारकजने निजकरेणैवोत्क्षिप्यात्मपर्णशालां नीत्वा शनैः स्वशयनैकदेशे[4] स्थापयित्वा प्राभातिकक्रियाकरणाय निर्ययौ।

अथेति। अथ = एतदनन्तरम्, जाबालौ = महर्षौ, उत्थिते = कृतोत्थाने सति, वीतरागा—वीतः (= विशेषरूपेण अपगतः) रागः (= संसारे आसक्तिः) यस्याः सा तादृशी, अपि, निष्कौतुका—निर्गतम् (=समाप्तम्) कौतुकम्(=कुतूहलम्)यस्याः तादृशी कौतुकहीना, अपि, मोक्षेत्यादिः—मोक्षमार्गे (= मुक्तिपथे) अवस्थानम् (= अवस्थितिः) यस्याः सा तादृशी, अपि, समस्ता = अखिला, एव, सा = कथाश्रवणाय समवेता, तपस्विपरिषत् = तापसानां सभा, कथारसात् = कथानकस्यास्वादात् हेतोः, विस्मृतेत्यादिः—विस्मृता (= विस्मरणं प्रापिता, अचिन्तिता) गुरौ (= महर्षि-जाबालौ) उचिता (= योग्या, अपेक्षिता) प्रतिपत्तिः (= व्यवहारः, प्रणामादिरूपः) यया सा तादृशी, शृण्वती = आकर्णयन्ती, इव, समाप्तिकालेऽपि श्रवणेषु तान् शब्दान् अनुभवन्तीवेति भावः, उत्कण्टकितकाया—उत् (= ऊर्ध्वाः) कण्टकाः (=रोमाः) सञ्जाताः यस्य तादृशः कायः (= शरीरम्) यस्याः सा तादृशी, विस्मयेत्यादिः—विस्मयेन (= आश्चर्येण) उत्फुल्लम् (= विकसितम्) मुखम् (= आननम्) यस्याः सा तादृशी, युगपदित्यादिः—युगपत् (= एकसार्धमेव) आगलितम् (= निःसृतम्, पतितम्) शोकः (= दुःखम्) आनन्दः (= सुखम्) च ताभ्यां जन्म (= उत्पत्तिः) यस्य तादृशम् नयनसलिलम् (= नेत्राम्बु, आश्रुजलम्) यस्याः सा तादृशी। हाकष्टेत्यादिः—हाकष्टम् इति शब्दः (= एतादृशशोकव्यञ्जको यो ध्वनिः) तम् अनुबध्नाति (= पश्चात् सम्बध्नाति) इत्येवं शीला, स्तम्भिता = स्तम्भनं प्राप्ता, कीलिता, इव, चिरम् इव= दीर्घकालपर्यन्तम् इव, स्थित्वा = अवस्थानं कृत्वा, यथास्थानम् = स्थानं स्थानम् अनतिक्रम्य, निजनिजाश्रममिति भावः, जगाम=ययौ। हारीतः—एतन्नामको जाबालिपुत्रः, तु, मुनिकुमारकजने= ऋषि-पुत्रलोके, सन्निहिते = समीपस्थिते, अपि सति, निजकरेण = स्वकीयहस्तेन, एव, माम् = शुकम्, उत्क्षिप्य = उत्थाप्य, आत्मपर्णशालाम् = निजकुटीरम्, नीत्वा = प्रापयित्वा, शनैः शनैः= मन्दं मन्दम्, स्वशयनैकदेशे = स्वशय्याया एकभागे, स्थापयित्वा = संस्थाप्य, प्राभातिक-क्रियाकरणाय = प्रातःकालिक-दैनिककर्मसम्पादनाय, निर्ययौ = निर्जगाम।

इसके बाद महर्षि जाबालि के उठ खड़े होने पर वीतराग(सांसारिक प्रेम में युक्त न होनेवाली) भी कौतूहल से रहित तथा मोक्ष के मार्ग पर स्थित होती हुई भी वह सारी की सारी तपस्वियों की परिषत् (तापसमण्डली) कथारस (के प्रभाव) के कारण (अत्यन्त भावमग्न होकर) गुरु (जाबालि) के प्रति उचित व्यवहार (प्रणामादि)को भी भूली हुई जैसे कि मानों अभी भी सुन रही हो, उत्कण्ठित होने के कारण आश्चर्य से खिले हुए(फैलाये हुए)मुखवाली, एक साथ ही शोक और आनन्द से निकले हुए अश्रुजल वाली, 'हाय कष्ट! हाय कष्ट'—इस प्रकार के शब्दों को करती हुई, स्तब्ध सी होती हुई, बहुत देर तक ठहर कर, अपने-अपने स्थान पर चल पड़ी। परन्तु अन्य मुनिकुमारों के रहने पर भी हारीत अपने ही हाथों से मुझे उठाकर, अपनी पर्णकुटी में ले जाकर, धीरे-धीरे अपनी शय्या के एक भाग (कोने) में रखकर प्रातःकालिक (दैनिक) कृत्य करने के लिये बाहर चला गया।

१. निष्कामुकापि। २. उत्कण्टकिततया, उत्कण्ठिततया। ३. अनुबन्धिनी, पराधीनेव। ४. वेदिदेशे।

निर्गते च तस्मिंस्तेन सर्वकार्याक्षमेण तिर्यग्जातिपतनेन पीडितान्तरात्मा चिन्तां प्राविशम् । अत्र तावदनेकभवसुकृतशतसहस्राधिगम्यं मानुष्यमेव दुर्लभम् । [1]तत्राप्यपरं सकलजातिविशिष्टं ब्राह्मण्यम् । ततोपि विशिष्टतरमासन्नामृतपदं मुनित्वम् । तस्यापि विशेषान्तरं किमपि दिव्यलोकनिवासित्वम् । तद्येनैतावतः स्थानात्स्वदोषैरात्मा पातितस्तेन कथमधुना सर्वक्रियाविहीनेनास्यास्तिर्यग्जातेः समुद्धृतः स्यात् । कथं वा पूर्वजन्माहित-

निर्गत इति । तस्मिन् = जाबालिपुत्रे हारीते, निर्गते = निःसृते, बहिः प्रस्थिते, सति, तेन, तदा वर्तमानेन, सर्वकार्याक्षमेण = सकलकार्यकरणायासमर्थेन, तिर्यग्जातिपतनेन = पक्षियोनौ जन्मग्रहणेन, पीडितान्तरात्मा—पीडितः (= दुःखितः) अन्तरात्मा (=चित्तम्) यस्य स तादृशः, अहम्, चिन्ताम् = गम्भीरचिन्तनावस्थाम् प्राविशम् = प्रविष्टवान् । कीदृशीं चिन्तां प्राविशदिति वर्णयति—अत्रेत्यादिना । अत्र = अस्मिन् संसारे, तावत् = प्रथमम्, अनेकभवेत्यादिः—अनेके (= बहुसंख्याकाः चतुरशीतिलक्षात्मकाः) ये भवाः (=जन्मानि) तेषां सुकृतानाम् (=पुण्यानाम्) यानि शतसहस्राणि (= लक्षाणि) तैः अधिगम्यम् = प्राप्यम्, मानुष्यम् = मानवत्वम्, मनुष्य-जन्मेति भावः, दुर्लभम् = दुष्प्रापम् । तत्रापि = मनुष्यजन्मसु अपि, अपरम् =अन्यत्, सकलजाति-विशिष्टम् =समस्तेषु वर्णेषु प्रशस्यतमम्, ब्राह्मण्यम् = ब्राह्मणत्वम्, दुर्लभमिति योज्यम् । ततः = ब्राह्मणत्वात्, अपि; विशिष्टतरम्=प्रशस्यतरम्, उत्कृष्टतरम्, आसन्नामृतपदम्—आसन्नम् (= समीपवर्ति) अमृतम् (= मोक्षात्मकम्) पदम् (= स्थानम्), यस्मिन् तादृशम्, मुनिपदम् = ऋषित्वम्, विशिष्टतरम् = विशेषरूपेण गौरवयुक्तम् । तस्य = मुनित्वस्य, अपि किमपि = अवर्णनीयम्, विशेषान्तरम् = विशिष्टो भावः, दिव्यलोकनिवासित्वम् = स्वर्गलोकनिवसनशालित्वम् । एतेन स्वर्गलोकनिवासः सर्वापेक्षयोत्कृष्टतमो वर्तते इति भावः । तत् = तस्मात् कारणात्, येन = पापिना मया पुण्डरीकेण, एतावतः = इयन्महत्त्वपूर्णात्, स्थानात् = पदात्, स्वदोषैः = निजदुष्कर्मभिः, आत्मा = स्वः, पतितः = भ्रंशितः, च्युतीकृतः, सर्वक्रियाविहीनेन = सर्वविधकार्यासमर्थेन, तेन = मया, सम्प्रति शुकयोनौ वर्तमानेनेति भावः, कथम् = केन प्रकारेण, उपायेन वा, अधुना= वर्तमाने:, इदानीम्, अस्याः=एतस्याः, तिर्यग्जातेः=पक्षियोनितः, समुद्धृतः = उद्धारं प्रापितः, स्यात्, मोचितः स्यादिति भावः, कथम्=केन प्रकारेण, वा=अथवा पूर्वजन्मेत्यादिः— पूर्वजन्मनि (=पुण्डरीक-

उसके चले जाने पर सभी कार्यों के करने में असमर्थ पक्षियोनि में पतन(जन्म)के कारण पीडित मनवाला मैं चिन्ता में पड़ गया,सोचने लगा–'इस संसार में पहले तो अनेक जन्मों के हजारों पुण्यों द्वारा प्राप्त होने वाला मनुष्य का जन्म ही दुर्लभ है । और उसमें भी सभी जातियों में श्रेष्ठ ब्राह्मणत्व । और इससे भी बढ़कर अमृतपद के निकट अर्थात् मोक्ष पद तक दिलाने वाला मुनित्व (बढ़कर है) । और उस मुनित्व से भी कुछ अधिक विशेषता रखने वाला दिव्य लोक का निवासी होना । इस कारण जिस (प्राणी) के द्वारा इतने बड़े स्थान से अपने दोषों के कारण अपने को गिराया गया, पतित किया गया, अब सभी क्रियाओं से रहित उस (प्राणी) के द्वारा इस पक्षियोनि से अपनी आत्मा का उद्धार कैसे किया जा सकता है । अथवा पूर्वजन्म में स्नेह करने वालों के साथ मिलने

१. तत्रापि परम् ।

स्नेहैः सह समागमसुखमननुभूतम् (स्यात्) । अननुभवतश्च तन्निष्प्रयोजनेनामुना जीवितेन किं मे परिरक्षितेन ? [1]पततु यत्र तत्र क्वापि यातनाशरीरम् । सुखं तु नानुभवितव्यममुना दुःखैकभाजनेन । तत्परित्यजाम्येनम् । पूर्यतामस्मद्व्यसनदानैकचिन्तादुःस्थितस्य विधेर्मनोरथः, इति ।' एवं च जीवितपरित्यागचिन्तानिमीलितं मां समुच्छ्वासयन्निव विकासहासिना मुखेन सहसा प्रविश्य हारीतोऽभ्यधात्—'भ्रातर्वैशम्पायन ! दिष्ट्या वर्धसे । पितुस्ते भगवतः श्वेत-

रूपेण जन्मनि, वैशम्पायनरूपेण जन्मनि च) आहितः (= स्थापितः, अर्जितः) स्नेहः (= प्रीतिः) येषु, यैर्वा तैः तादृशैः जनैः, सह = सार्धम्, समागमसुखम् = सम्पर्कजन्यसौख्यम्, स्यादिति शेषः । तत् = पूर्वानुभूतसमागमसुखम्, अननुभवतः = अनुभवमकुर्वतः, साक्षादकुर्वतः, मे = शुकस्य, निष्प्रयोजने = निरुद्देश्यकेन, अमुना = एतेन वर्तमानेन, जीवितेन = जीवनेन, परिरक्षितेन = सर्वतस्त्रातेन, पालितेन सुरक्षितेन च, किम् ? न किमपि फलमिति भावः । यत्र तत्र = यस्मिन् तस्मिन् वा, क्वापि = कस्मिंश्चिदपि स्थाने, यातनाशरीरम् = नरकवेदनानुभवनशीलदेहः, पततु = भ्रश्यतु, पतितं भवतु । "यातना नरकवेदना' इति हैमः । दुःखैक-भाजनेन—दुःखस्य (= क्लेशस्य) एकस्य (= केवलस्य), भाजनेन (= पात्रेण), अमुना = एतेन, शुकशरीरेणेति भावः, सुखम् = पूर्वानुभूत-सौख्यम्, तु, न = नैव, अनुभवितव्यम् = अनुभवविषयीकरणीयम् । तत्-तस्मात्, एनम् = इमम् शुकदेहम्, परित्यजामि = परिमुञ्चामि । अस्मदित्यादिः—अस्मभ्यम् (= मह्यम्) यत् व्यसनदानम् (= कष्टप्रदानम्) तस्य एका (= केवला) या चिन्ता (=करण-व्यग्रता) तया दुःस्थितस्य (= दुःखं प्राप्नुवतः, दुःखितस्य) विधेः = ब्रह्मणः, मनोरथः = अभिलाषः, पूर्यताम् = पूर्णो भवतु, इति । एवञ्च = अनेनरूपेण च, जीवितेत्यादिः—जीवितस्य (= जीवनस्य, प्राणानाम्) परित्यागः (= मोचनम्) तस्य चिन्तया (= चिन्तनेन) निमीलितम् (= मुद्रित-नयनम्) माम् = शुकम्, विकासहासिना—विकासः (= प्रफुल्लता) हासः (= हसनम्, स्मयः) च यस्मिन्, तादृशेन, मुखेन = वदनेन, समुच्छ्वासयन् = समुच्छ्वासं प्रापयन्, चैतन्यं लम्भयन्, इव, सहसा = अकस्मात्, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, हारीतः = जाबालिपुत्रः, अभ्यधात् = कथयामास—'भ्रातः वैशम्पायन ! दिष्ट्या = भाग्येन, वर्धसे = वृद्धिं प्राप्नोषि, तव भाग्यवृद्धिर्जातेति भावः । ते = तव, पूर्वतरजन्मनि पुण्डरीकस्य, पितुः = जनकस्य, भगवतः = पूजनीयस्य, श्वेत-

के सुख का अनुभव कैसे किया जा सकता है ? अर्थात् नहीं किया जा सकता । उस सुख का अनुभव न कर सकने वाले निष्प्रयोजन (जिसके रहने का अब कोई फल नहीं रह गया है उस) जीवन की रक्षा करने से क्या लाभ ? तब फिर यह यातना (देनेवाला) शरीर जहाँ कहीं भी गिर जाय, नष्ट हो जाय । केवल दुःख पाने के लिये उत्पन्न हुए इस (पक्षी के) शरीर से सुख का अनुभव तो नहीं किया जा सकता । इसलिए अब इसका परित्याग कर रहा हूँ । मुझे केवल दुःख ही देने की चिन्ता करने वाले विधाता का यह मनोरथ (भी) पूरा हो जाय ।' इस प्रकार से अपने प्राण त्यागने की चिन्ता में आँखें बन्द किये हुए मुझे खिले तथा हास(मुस्कान)से युक्त अपने मुख से आश्वासन

१. तत्रापरत्र क्वापि यातु वत्र शरीरम् ।

केतोः पादमूलात् कपिञ्जलस्त्वामेवान्विष्यन्नायातः' इति ।

अहं तु तच्छ्रुत्वा [1]तत्क्षणेनोत्पन्नपक्ष इवोत्पत्य तत्समीपमेव[2] प्राप्तुमभिवाञ्छन्नुद्ग्रीवावलोकी 'क्वासौ ?' इति तमप्राक्षम् । स त्वकथयत्-'एष तातपादमूले वर्तते' इति । एवं वादिनं तु तमहं पुनरवदम्—'यद्येवं ततः प्रापयतु मां तत्रैव भगवान् । उत्ताम्यति मे हृदयं तद्दर्शनाय' इति । एवं वदन्नेवाग्रतो गगनागमनवेगा[3]दयथास्थितजटाकलापम्, अनिल-

केतोः = एतन्नामकमहर्षेः, पादमूलात् = चरणसमीपात्, कपिञ्जलः = एतन्नामा तव प्राचीनवयस्यः, त्वाम् = भवन्तम् एव, अन्विष्यन् = मार्गयन्, अन्वेषणं कुर्वन्, आयातः = आगतः, अस्तीति शेषः ।

अहमिति । अहम् = शुकः, तु, तत् = हारीतवचनम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, तत्क्षणेन = तत्कालम्, उत्पन्नपक्षः = सञ्जात-पक्षतिः, इव, उत्पत्य = उड्डीय, तत्समीपम् = कपिञ्जलस्य निकटम्, प्राप्तुम् = आसादयितुम्, अभिवाञ्छन् = अभिलषन्, उद्ग्रीवावलोकी—उत् (=ऊर्ध्वम्) ग्रीवा (= कन्धरा) यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा अवलोकयति (= पश्यति) इत्येवं शीलः, सन्, 'असौ = कपिञ्जलः, क्व = कुत्र, वर्तते ?' इति शेषः । सः = हारीतः, अकथयत् = उक्तवान् । एषः = कपिञ्जलः, तातपादमूले = पितुः जाबालेः चरणसमीपे, वर्तते = विद्यते, इति । एवं वादिनम् = इत्थं भाषिणम्, तु, तम् = हारीतम्, अहम् = शुकः, पुनः = भूयः, अवदम् = अवोचम्, 'यदि = चेत्, एवम् = इत्थम्, अस्ति, ततः = तर्हि, माम् = शुकम्, भवान् = त्वं हारीत; तत्रैव = जाबालिचरणसमीपे, एव, प्रापयतु = नयतु । मे = मम शुकस्य, हृदयम् = चित्तम्, तद्दर्शनाय = कपिञ्जलावलोकनाय, उत्ताम्यति = व्यग्रीभवति, इति । एवम् = पूर्वोक्तम्, वदन् = कथयन्, एव, दुष्टात्मा = पापात्मा, अहम् = शुकः, कपिञ्जलम् = एतन्नामानं पूर्वजन्मनः वयस्यम्, [अद्राक्षम् = दृष्टवान्, इति मुख्यं वाक्यम्, अत्र द्वितीयान्तानि पदानि तस्य कपिञ्जलस्य विशेषणानीति बोध्यम् ।] अग्रतः = स्वसम्मुखम्, गगनागमनवेगात्—गगने (= आकाशे) यद् आगमनम् (= तत्र सम्प्राप्तिः) तस्मिन् वेगात् (= रयात्) हेतोः, अयथेत्यादिः—अयथावस्थितः (= अस्तव्यस्तरूपेण वर्तमानः) केशकलापः (= जटासमूहः) यस्य तं तादृशम् । अनिलेत्यादिः-

देते हुए से हारीत ने अचानक प्रवेश करके कहा—'भाई वैशम्पायन ! तुम्हें बधाई हो । तुम्हारे पिता श्वेतकेतु के चरणों के समीप से तुम्हें ही खोजता हुआ वैशम्पायन आया हुआ है ।'

यह सुनकर तो जैसे उसी समय पंख निकल आये हों ऐसा मैं उड़कर, उसके पास जाने की इच्छा करता हुआ, गर्दन ऊपर उठाकर देखता हुआ पूछने लगा—'वह कपिञ्जल कहाँ है ?' उस हारीत ने बताया—'वह कपिञ्जल पिता जी (महर्षि जाबालि) के चरणों के समीप बैठा हुआ है ।' इस प्रकार से कहने वाले उस हारीत से मैंने फिर पूछा—'यदि ऐसा है तो आप मुझे वहीं पहुँचा दीजिये, (वहीं ले चलिये) । मेरा हृदय उसको देखने के लिये व्याकुल हो रहा है ।' ऐसा कहते हुए ही मैंने आगे (सामने) कपिञ्जल को देखा—जिसका जटाकलाप आकाश से (नीचे) आने के वेग के कारण अस्त व्यस्त (छितराया हुआ) था, पवन मार्ग (आकाश) में चलने के कारण जिसके

१. तत्क्षणोत्पन्न ।२. तत्समीपं विहाय सहसैव प्राप्तुमभिवाञ्छन्, समीपं विहायसैवप्राप्तुमभिवाञ्छन् ।
३. उद्वेगादव्यवस्थित ।

पथसञ्चरणचलितैकाञ्चलोत्तरीयम्, तरुत्वचा दृढाबद्धपरिकरम्, अर्धत्रुटितयज्ञोपवीतसनाथा-स्थिशेषोरस्कम्, निःशेषसुरपथावतरणश्रमोच्छ्वसितशरीरम्[2], समीरणापहृतमपि[3] मरुत्पथो-त्पन्नखेदसंभृतम्[4], उदकप्रवेशान्निस्यन्दमानस्वेदम् आननेन, मदवलोकनदुःखोद्गतं[5][6] च बाष्प-जललवविसरमीक्षणाभ्यां युगपदुत्सृजन्तम्, मुमुक्षुमपि मत्स्नेहेनामुक्तम्, वीतरागमपि मत्प्रिय-

अनिलस्य (= पवनस्य) यः पन्थाः (=मार्गः, गगनम्), तस्मिन् यत् सञ्चरणम् (=विचरणम्, सञ्चलनम्) तेन चलितः (= कम्पितः, उड्डीनः) एकः (= अद्वितीयः, एकभागस्थः) अञ्चलः (= वस्त्रप्रान्तः) यस्य तादृशम् उत्तरीयम् (= संव्यानम्) यस्य तं तादृशम्। तरुत्वचा = वृक्षवल्कलेन, दृढाबद्धपरिकरम्–दृढम् (= बलवत्) यथा स्यात् तथा बद्धः (= नद्धः) परिकरः (= कटिवस्त्रम्) यस्य तं तादृशम्। अर्धेत्यादिः—अर्धम् (= सामि) यथा स्यात् तथा त्रुटितम् (= छिन्नम्) यज्ञोपवीतम् (= ब्रह्मसूत्रम्) तेन सनाथम् (= युक्तम्) अस्थिशेषम् (=अस्थि-मात्रावशिष्टम्) उरः (= वक्षः) यस्य तं तादृशम्। निःशेषेत्यादिः—निःशेषः (= समस्तः) यः सुराणाम् (= देवानाम्) पन्थाः (= मार्गः) गगनमित्यर्थः तस्माद् यद् अवतरणम् (= अधोदेशे आगमनम्) तेन तस्य वा यः श्रमः (= क्लमः) तेन उच्छ्वसितम् (= उच्छ्वासयुक्तम्) शरीरम् (= देहः) यस्य तं तादृशम्। समीरणापहृतम्—समीरणेन (= वायुना) अपहृतम् (=अपहृत्य नीतम्), अपि, मरुत्पथेत्यादिः—मरुताम् (= पवनानाम्) यः पन्थाः (=मार्गः) तस्मिन्, गगने इत्यर्थः, उत्पन्नेन (= संजातेन) खेदेन (= श्रमेण) संभृतम् (= परिपूर्णम्, निचितम्)। उदक-प्रवेशात् = जलमध्येगमनात्, आननेन = स्वमुखेन, निस्यन्दमानस्वेदम्—निस्यन्दमानम् (= क्षरन्तम्, निःसरन्तम्) स्वेदम् (= घर्मजलम्) अथ च मदवलोकनेत्यादिः—मम=दयनीय-दशामधिगतस्य मम अवलोकनम् (= वीक्षणम्) तेन यद् दुःखम् (= कष्टम्) तेन उद्गतम् (= निर्गतम्) वाष्पेत्यादिः—बाष्पजलम् (= अश्रुसलिलम्) तस्य लवानाम् (= बिन्दूनाम्) विसरम् (= समूहम्) च, ईक्षणाभ्याम् = नेत्राभ्याम्, युगपत् = समकालमेव, उत्सृजन्तम् = मुञ्चन्तम्, निःसारयन्तम्। मुमुक्षुम् = मोक्षाभिलाषिणम्, अपि, मत्स्नेहेन = मयि प्रीत्या, अमुक्तम्= अपरित्यक्तम्, सहितमित्यर्थः, वीतरागम्—वीतः (= दूरीभूतः) रागः (= सांसारिकसमासक्तिः) यस्य तं तादृशम्, अपि, मत्प्रियहितरतम्—मम यत् प्रियम् (= प्रीतिकरम्) हितकरम् (=कल्याण-

उत्तरीय (दुपट्टा) का किनारा हिल रहा था, वृक्ष की छाल से जिसकी कमर कसकर बँधी हुई थी, हड्डी मात्र शेष बचे (अर्थात् मांसरहित) उसके वक्षःस्थल पर आधा टूटा हुआ यज्ञोपवीत विद्यमान (लटक रहा) था। सम्पूर्ण देवमार्ग से (चलते हुए) उतरने की थकान के कारण शरीर उच्छ्वसित अर्थात् हाँफने लगा था, हवा के झोंकों से खींचा गया भी हवा के मार्ग = आकाश में चलने से उत्पन्न थकान से भरा हुआ था, जो (आकाश गंगा के) जल में प्रवेश करने के कारण बहते हुए पसीना को मुख से, और मुझे देखने से हुए दुःख से उद्भूत (उभड़े हुए) अश्रुजल कणों के समूह को दोनों आँखों से, एक साथ बहा रहा, गिरा रहा था, जो मुमुक्षु (संसार से मोक्ष का इच्छुक) होता हुआ भी मेरे प्रति स्नेह के कारण मुक्त नहीं था, वीतराग (विरक्त) होता हुआ भी मेरे प्रिय हितकर कार्य में

१. संघटनविघटितवरणैकाञ्चलोत्तरीयं तरुत्वचा, संञ्चरणवेगचलितैकाञ्चलयोत्तरीयतरुत्वचा।
२. आयासित।
३. अपहृतम्।
४. उत्पन्न।
५. मद्विलोकन।
६. दुःखागतम्

हितरतम्, निःसङ्गमपि मत्समागमोत्सुखम्, निस्पृहमपि मदर्थसंपादनपर्याकुलम्, निर्मम-मप्युपारूढस्नेहम्, निरहंकारमप्यहमेवायमिति मां मन्यमानम्, समुज्झितक्लेशमपि मदर्थे [1]क्लिश्यन्तम्, समलोष्टाश्मकाञ्चनतासुखित[2]मपि [3]मद्दुःखदुःखितम्, कृतज्ञमकृतज्ञः, स्नेहल-प्रकृतिं रूक्षचेताः[4], सुकृतिनमपुण्यवान्, अनुगतं वामस्वभावः, भावार्द्रहृदयम् एकान्त-निष्ठुरः, मित्रं वैरी, वचनकरमनाश्रवः, महात्मानं दुरात्मा, कपिञ्जलमहमद्राक्षम्।

दृष्ट्वा च निर्भरगलितनयनपयास्तादृशोपि कृताभ्युद्गमनप्रयत्नः [5]फूत्कृत्य तमवदम्-

करम्) च तत्र रतम् (= आसक्तम्), निःसङ्गम् = सकलजनसम्पर्कशून्यम्, अपि, मत्समागमोत्सुकम्= मम मिलनायोत्कण्ठितम्, निस्पृहम् = निरभिलाषम्, अपि, मदर्थसम्पादनपर्याकुलम् = मदीयकार्य-सम्पादनाय व्याकुलम्, निर्ममम् = ममत्वशून्यम्, अपि, उपारूढस्नेहम् = मयि सम्भृतस्नेहम्, निरहङ्कारम् = अहङ्काररहितम्, अपि, अयम् = अयं वैशम्पायनः, अहम् = कपिञ्जलः एव, इति = इत्थम्, मन्यमानम् = जानन्तम्, समुज्झितक्लेशम्—समुज्झितः (= परित्यक्तः) क्लेशः (= सांसारिककष्टम्) येन तं तादृशम्, अपि, मदर्थे = वैशम्पायनाय, क्लिश्यन्तम् = क्लेशमनुभवन्तम्, समेत्यादिः—समे (= तुल्ये) लोष्टम् (= प्रस्तरखण्डः) काञ्चनम् (= सुवर्णम्) च यस्य तस्य भावस्तत्ता तया सुखितम् (=सुखिनम्),अपि, मद्दुःख-दुःखितम्—मम (=वैशम्पायनस्य) यद् दुःखम् (= पक्षियोनौ उत्पन्नतया कष्टम्) तेन दुःखितम् (= सञ्जातदुःखम्)। अकृतज्ञः—कृतम् (= विहितम् उपकारादिकम्) न वेत्ति (= जानाति, स्वीकरोति) इत्येवंशीलः, अहम्, कृतज्ञम् = पूर्वविहितोपकारवेदिनम्, रूक्षचेताः—रूक्षम् (= कठोरम्) चेतः (= चित्तम्) यस्य स तादृशः, अहम्, स्नेहलप्रकृतिम्—स्नेहला (= स्नेहः अस्ति यस्याः सा तादृशी, स्नेहमयी) प्रकृतिः (=स्वभावः) यस्य तादृशम्, अपुण्यवान् = पापी अहम्, सुकृतिनम् = पुण्यवन्तम्, वामस्वभावः—वामः (= विपरीतः) स्वभावः (= प्रकृतिः) यस्य स तादृशोऽहम्, अनुगतम् = सर्वेषामनुकूलम्, एकान्तनिष्ठुरः = नितान्तकठोरः, भावार्द्रहृदयम्—भावेन (= प्रीतिभावेन) आर्द्रम् (= क्लिन्नम्, द्रवीभूतम्) हृदयम् (= चित्तम्) यस्य तं तादृशम्, वैरी = शत्रुभूतः, मित्रम् = सुहृद्, अनाश्रवः = अनाज्ञाकारी, वचनेऽस्थितः, वचनकरम् = आज्ञापालकम्, दुरात्मा = दुष्टात्मा, महात्मानम् = उदारचित्तम्, कपिञ्जलम् = एतन्नामानं स्वकीयं पूर्वजन्मनः मित्रम्, अहम् = शुकजातिसमुत्पन्नः, अद्राक्षम् = अपश्यम्।

दृष्ट्वेति। दृष्ट्वा = विलोक्य, च, तं कपिञ्जलमिति शेषः, निर्भरेत्यादिः—निर्भरेत्यादिः-

लगा हुआ था, (सांसारिक पदार्थों के) संग से रहित होता हुआ भी मुझसे मिलने के लिये उत्सुक था, निस्पृह (सभी प्रकार की इच्छाओं से रहित) होता हुआ भी मेरा कार्य सम्पादित करने के लिये बेचैन था, ममता रहित होता हुआ भी [मेरे ऊपर] स्नेह किये हुए था, अहंकार-रहित होता हुआ भी 'यह मैं ही हूँ' ऐसा मान रहा था अर्थात् अपने में और मुझमें कोई भेद नहीं समझ रहा था, क्लेशों को छोड़े हुए भी मेरे किये क्लेश सह रहा था, पत्थर और सोने को एक सा मानकर सुखी होता हुआ भी मेरे दुःख के कारण दुःखी था, ऐसे उस कृतज्ञ (कपिञ्जल) को अकृतज्ञ (मैं) ने, स्नेहशील स्वभाव वाले को कठोरचित्त वाले ने, सुकृतवान् (पुण्यशाली) को अपुण्यवान् ने, अनुकूल को प्रतिकूल स्वभाव वाले ने, भावों से आर्द्र (भावुक) हृदयवाले को अत्यन्त निष्ठुर ने, मित्र को शत्रु ने, वचन पालने वाले को वचनों के झूठे ने, महात्मा को दुष्टात्मा ने देखा।

उस कपिञ्जल को देखकर खूब आँसू बहाता हुआ, उस अवस्था (पक्षी की योनि) में होता

१. क्लिश्यमानम्।   २. सुखम्।   ३. दुःखितम्।   ४. रूक्षात्मा।   ५. पूत्कृत्य।

'सखे कपिञ्जल, एवं जन्मद्वयान्तरितदर्शनमपि त्वां दृष्ट्वा किं सरभसमुत्थाय दूरत एव प्रसारितभुजद्वयो गाढालिङ्गनेन[1] सुखमनुभविष्यामि ? किं करं करेणावलम्ब्यासनपरिग्रहं कारयिष्यामि ? किं सुखासीनस्य गात्रसंवाहनं कुर्वञ्छ्रममपनेष्यामि ? इति, एवमात्मानमनुशोचन्तमेव मां कपिञ्जलः करद्वयेनोत्क्षिप्य मद्विरहदुःखदुर्बले वक्षसि निवेश्य चिरमिवान्तःप्रवेशयन्निवालिङ्गनसुखं किल तथा मेऽनुभूय भूयसा मन्युवेगेनोत्तमाङ्गे कृत्वा

निर्भरम् (= अत्यन्तम्) यथा स्यात् तथा गलितम् (= निःसृतम्) नयनपयः (= अश्रुजलम्) यस्य तादृशः, सन् अपि, कृतेत्यादिः—कृतः (= विहितः) अभ्युद्गमनाय (= स्वागतकरणाय) प्रयत्नः (= प्रयासः) येन स तादृशः, अहम्, फूत्कृत्य = फूदितिध्वनिं कृत्वा, उच्चैर्निःश्वस्य, तम् = कपिञ्जलम्, अवदम् = उक्तवान्—सखे ! मित्र ! कपिञ्जल !, एवम् = इत्थम्, जन्मेत्यादिः—जन्मनोः (= भवयोः) द्वयम् (= युग्मम्) तेन अन्तरितम् (=व्यवहितम्) दर्शनम् (=वीक्षणम्) यस्य तं तादृशम्, त्वाम् = कपिञ्जलम्, दृष्ट्वा = विलोक्य, किम् = इदं काकौ, सरभसम् = वेगेन सहितं यथा स्यात्, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, दूरतः = विप्रकृष्टाद्, एव, प्रसारितभुजद्वयः—प्रसारितम् (= विस्तारितम्) भुजयोः (= हस्तयोः) द्वयम् (= युगलम्) यस्य स तादृशः सन्, अहम् = पूर्वजन्मनि वैशम्पायनः, पूर्वतरस्मिन् च पुण्डरीकः, गाढालिङ्गनेन = निबिडाश्लेषेण, सुखम् = आनन्दम्, अनुभविष्यामि = अनुभवं करिष्यामि ? किम्, करेण = निजहस्तेन, करम्= तव पाणिम्, अवलम्ब्य = गृहीत्वा, आसनपरिग्रहम् = विष्टरस्य स्वीकरणम्, कारयिष्यामि ? = विधापयिष्यामि ? किम्, सुखासीनस्य—सुखम् (= सुखपूर्वकम्) यथा स्यात् तथा आसीनस्य (=निषण्णस्य), तव, संवाहनम् = अवयवमर्दनम्, कुर्वन् = विदधानः, अहम्, श्रमम् = क्लमम्, अपनेष्यामि = दूरीकरिष्यामि ? इति । एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, आत्मानम् = स्वम्, अनुशोचन्तम् = चिन्तयन्तम्, एव, माम् = शुकम्, कपिञ्जलः = एतन्नामा मम सुहृद्, करद्वयेन = द्वाभ्यामपि पाणिभ्याम्, आदर-प्रदर्शनार्थमिति शेषः, उत्क्षिप्य=ऊर्ध्वमुत्थाय, मद्विरहेत्यादिः—मम (= पुण्डरीकस्य) यः विरहः (= वियोगः) तेन यद् दुःखम् । (= कष्टम्) तेन दुर्बले (= दौर्बल्यं प्राप्ते, कृशे) वक्षसि = उरःस्थले, निवेश्य = संस्थाप्य, चिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, अन्तः = मध्ये, हृदयस्येति शेषः, प्रवेशयन् = प्रवेशं कारयन्, इव, किल = निश्चयेन, मे = मम शुकस्य, आलिङ्गनसुखम् = समाश्लेषानन्दम्, तथा=तेन रूपेण, अनुभूय =साक्षात्कृत्य, भूयसा = अत्यधिकेन, मन्युवेगेन = शोकरयेण, मच्चरणौ = मम शुकस्य पादौ, उत्तमाङ्गे = स्वमस्तके, कृत्वा =

हुआ भी उसके स्वागत करने का प्रयास करता हुआ उच्छ्वास लेकर कहने लगा—

"मित्र कपिञ्जल ! इस प्रकार से दो जन्मों के व्यवधान के बाद दिखाई देने वाले भी तुम्हें देखकर क्या वेग के साथ उठकर, दूर से ही दोनों हाथ फैलाये हुए गाढ आलिंगन के सुख का अनुभव करूँगा ? क्या (मैं) अपने हाथ से तुम्हारा हाथ पकड़ कर आसन पर बैठाऊँगा ? क्या आराम से बैठे हुए तुम्हारे अंगों को दबाता हुआ (तुम्हारी) थकान दूर कर सकूँगा ? इस प्रकार से अपने ऊपर सोचते अर्थात् पश्चात्ताप करते हुए ही मुझको कपिञ्जल ने दोनों हाथों से ऊपर उठाकर मेरे विरह के दुःख से दुर्बल अपने वक्षःस्थल पर बहुत देर तक रखकर अर्थात् देर तक छाती से लगाकर मुझे (अपने) हृदय में घुसाता हुआ सा, उस प्रकार से मेरे आलिंगन का आनंद लेता हुआ, बहुत बड़े दुःख के वेग के साथ

1. गाढालिङ्गनसुखम् ।

मच्चरणावितरवदरोदीत् ।

तथा रुदन्तं तु तं वाङ्मात्रप्रतीकारः पुनरवदम्—'सखे कपिञ्जल, सकलक्लेशपरिभूतस्य 'पापात्मनो[1] ममेदं युज्यते[2] यत्त्वया प्रारब्धम् । त्वं पुनर्बालोऽपि न स्पृष्ट एवा[3]मीभिः संसारबन्धात्मकैर्निर्वाणमार्गपरिपन्थिभिर्दोषैः । तत्किमधुना[4] मूढजनगतेन वर्त्मना ? समुपविश्य तावत्कथय यथावृत्तां तस्य वार्ताम् । अपि कुशलं तातस्य ? स्मरति वा माम् ? [5]दुःखितो वा मदीयेन दुःखेन ? मद्वृत्तान्तमाकर्ण्य किमुक्तवान् ? कुपितो न वा' ? इति । स त्वेवमुक्तो

विधाय, तत्र स्थापयित्वा, इतरवत् = प्राकृतलोक इव, अरोदीत् = रोदनमकार्षीत् । 'इतरः प्राकृतो नीचः' इति हैमः ।

तथेति । तथा = प्राकृतजनवत्, रुदन्तम् = रोदनं कुर्वन्तम्, तु, तम् = कपिञ्जलम्, वाङ्मात्रप्रतीकारः—वाक् एव = वाङ्मात्रम्, प्रतीकारः = प्रतिक्रिया यस्य स तादृशः, केवलेन वाण्या एव बोधयितुं समर्थ इति भावः, अहं शुकः, पुनः = भूयः, अवदम् = अवोचम् । किं तदित्याह—सखे इत्यादिना । सखे कपिञ्जल !, सकलेत्यादिः—सकलाः (= समस्ताः) च ये क्लेशाः तैः परिभूतस्य (= अभिभूतस्य) पापात्मनः = पापिनः, मम = शुकस्य, एवेति, शेषः, इदम् = रोदनम्, युज्यते = युक्तं वर्तते, यद् = रोदनम् त्वया = कपिञ्जलेन, प्रारब्धम् = प्रारम्भं कृतम् । अपराधिना मयैव स्वकृत्यानां कृते रोदितव्यं न तु त्वयेति भावः । त्वम् = कपिञ्जलः, पुनः, बालः = कुमारः, सन्, अपि, अमीभिः = एतैः, संसारबन्धनात्मकैः = भवबन्धनस्वरूपैः, निर्वाणेत्यादिः—निर्वाणस्य (= मोक्षस्य) मार्गः (= पन्थाः) तस्य परिपन्थिभिः (= शत्रुभूतैः) दोषैः = कामादिदूषणैः, न, स्पृष्टः = स्पर्शविषयीकृतः, एव । तत् = तस्मात्, अधुना=इदानीम्, मूढजनगतेन = मूर्खलोकैरनुसृतेन, वर्त्मना = मार्गेण, रोदनादिरूपेणेति भावः, किम् ? न किमपि फलमित्यर्थः । समुपविश्य = निषद्य, तावत् = प्रथमम्, यथावृत्तम् = यथोपजातम्, तस्य=घटितस्य, वार्ताम् = वृत्तान्तम्, कथय = वद, श्रावय । अपिः = इदं प्रश्ने, तातस्य = पितुःश्वेतकेतोः, कुशलम् = क्षेमम् ? वा = अथवा, माम् = पुण्डरीकं तदनु वैशम्पायनं साम्प्रतं शुकमित्यर्थः, स्मरति = स्मृतिपथं नयति ? वा = अथवा, मदीयेन = मत्सम्बन्धिना, दुःखेन = क्लेशेन शुकयोनि-प्राप्तिरूपेणेति भावः, दुःखितः = सञ्जातदुःख', अस्ति । मद्वृत्तान्तम् =मम सम्बन्धिनी कथां श्रुत्वा, किम्, उक्तवान् = कथितवान् ? कुपितः = मयि क्रुद्धः, न, वा ? सः = कपिञ्जलः,

---

मेरे दोनों चरणों को अपने सिर से लगाकर सामान्य मनुष्य की तरह रोने लगा, बिलखने लगा ।

उस प्रकार से रोते हुए उससे वाणी मात्र से प्रतीकार कर सकने वाला मैं फिर कहने लगा—'जो रोना तुमने आरम्भ किया है वह तो सभी प्रकार के क्लेशों से ग्रस्त मुझ पापी के लिये तो उचित है [न कि तुम्हारे लिये] क्योंकि तुम तो बालक होते हुए भी संसार-बंधन में डालने वाले तथा मोक्ष मार्ग के विपरीत (विरोधी) इन (काम मोह आदि) दोषों से अछूत रहे हो, ये दोष तुम्हें छू भी नहीं पाये हैं । तो अब मूर्खों के मार्ग पर जाने से क्या लाभ ? पहले बैठकर जो-जो घटना जिस-जिस प्रकार से हुई है वह बतलाओ—"क्या पिता जी (श्वेतुकेतु) सकुशल हैं ? क्या मुझे याद भी करते हैं ? मेरे दुःख के कारण दुःखी हैं क्या ? मेरा हाल सुनकर उन्होंने क्या कहा ? वह (मुझ पर)

---

१. मन्दात्मनः ।   २. न युज्यते ।   ३. अमीभी रागादिभिः ।

४. अमुना ।   ५. न दुःखितः ।

मया हारीतशिष्योपनीते[1] पल्लवासने समुपविश्याङ्के मां कृत्वा हारीतोपनीतेनाम्भसा प्रक्षाल्य मुखमाख्यातवान्।

'सखे कुशलं तातस्य। अयं चास्मद्वृत्तान्तः प्रथमतरमेव तातेन दिव्येन चक्षुषा दृष्टः। दृष्ट्वा च प्रतिक्रियार्थं कर्म प्रारब्धम्। समारब्ध एव कर्मणि तुरगभावाद्विमुक्तो गतोऽस्मि तातस्य पादमूलम्। गतं च मां दूरत एवोद्बाष्पदृष्टिर्विषण्णदीनवदनं भयादनुपसर्पन्तमालोक्याहूयाज्ञापितवान्—'वत्स कपिञ्जल, परित्यज्यतां स्वदोषशङ्का। ममैवायं

तु, मया = शुकेन, एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, उक्तः = कथितः, पृष्टः, सन्, हारीतशिष्योपनीते = हारीतशिष्येण समाहृते, पल्लवासने = पत्रविष्टरे, समुपविश्य = निषद्य, माम् = शुकम्, अङ्के = क्रोडे, कृत्वा = विधाय, हारीतोपनीतेन = हारीतेन स्वयमेव समानीतेन, अम्भसा = जलेन, मुखम् = स्वकीयमाननम्, प्रक्षाल्य = धावित्वा, प्रक्षालनं कृत्वा, आख्यातवान्=कथयितुमारेभे।

कपिञ्जलः किमाख्यातवानिति वर्णयति-सखे—इत्यादिना। सखे = प्रिय वयस्य !, तातस्य= पितुः श्वेतकेतोः, कुशलम् = कल्याणम्, वर्तते। अयम् = एष घटितः, अस्मद्वृत्तान्तः = अस्माकमुदन्तः, तातेन = पित्रा श्वेतकेतुना, दिव्येन = अलौकिकेन, चक्षुषा ज्ञाननेत्रेण, दृष्टः=विलोकितः। दृष्ट्वा = अवलोक्य, च, प्रतिक्रियार्थं = तस्यानिष्टस्य परिहाराय, कर्म = अपेक्षितं कृत्यम्, समारब्धम् = कर्तुमुपक्रान्तम्, कर्मणि = अपेक्षितकृत्ये, समारब्धे = समुपक्रान्ते, तुरगभावाद् = अश्वयोनेः, विमुक्तः = मोक्षं प्राप्तः, अहम्, तातस्य = पितुः श्वेतकेतोः, पादमूलम् = चरणसमीपम्, गतः = प्रयातः, अस्मि। गतम् = सम्प्राप्तम् च, माम् = कपिञ्जलम्, दूरतः = विप्रकृष्टाद्, एव, उद्बाष्पदृष्टिः = उद्गताश्रु-नयनः, सन्, विषण्णेत्यादिः—विषण्णम् (= विषादयुक्तम्) दीनम् (= दैन्ययुक्तम्) च वदनम् (= मुखम्) यस्य तं तादृशम्, भयात् = भीतेः, अनुपसर्पन्तम् = समीपमनागच्छन्तम्, माम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, आहूय = आकार्य, आज्ञापितवान् = आदिष्टवान्। किमादिष्टवानिति वर्णयति–वत्स ! कपिञ्जल !, स्वदोषशङ्का = निजापराधशङ्का, परित्यज्यताम् = मुच्यताम्, स्वदोषविषयिणी शङ्का त्वया न कार्येति भावः। शठमतेः—शठा (= मूढा) मतिः

नाराज तो नहीं हैं ?'' मेरे द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर हारीत के शिष्य द्वारा लाये गये पत्तों के आसन पर बैठकर, मुझ (शुक) को अपनी गोद में रखकर, हारीत द्वारा लाये गये जल से अपना मुख धोकर कहने लगा—

"मित्र ! पिता जी सकुशल हैं। हम लोगों के इस वृत्तान्त (घटना) को उन्होंने पहले ही अपने दिव्य नेत्र से देख लिया था। और देखने के बाद इसके प्रतीकार के लिये (अपेक्षित) कर्म (अनुष्ठानादि) भी प्रारम्भ कर दिया है। (उनके द्वारा) अनुष्ठान कृत्य के प्रारम्भ करते ही (इन्द्रायुध नामक) अश्व की योनि से मुक्त हुआ मैं पिता जी (श्वेतकेतु) के चरणों के समीप पहुँचा। आँसुओं से डबडबाई आखोंवाले पिताजी ने विषाद और दीनता से युक्त मुख वाले तथा भय के कारण (उनके) पास न जाते हुए मुझे दूर से ही देखकर, बुलाकर (यह) आज्ञा दी—"बेटा कपिञ्जल, अपने दोष (गल्ती) की शंका छोड़ दो। यह सारा का सारा दोष तो मुझ शठ

१. त्वरितोपनीतेन।

खलु शठमतेः सर्व एव दोषः। येन जानताप्युत्पत्तिसमय एव वत्सस्य कृते नेदमा[1]युष्करं कर्म निर्वर्तितम्[2]। अधुना सिद्धप्रायमेवेदम्। न दुःखासिका भावनीया। मत्पादमूले तावत्स्थीयताम्' इति। एवमाज्ञापितस्तु तातेन विगतभीर्व्यज्ञापयम्[3]—'तात, यदि प्रसादोस्ति [4]ततो यत्रैवासावुत्पन्नस्तत्रैव गमनायाज्ञापयतु मां तातः' इति।

एवं विज्ञापितस्तु मया पुनराज्ञापितवान्—'वत्स शुकजातावसौ पतितः। तद्गत्वापि तमद्य नैव वेत्सि, नाप्यसौ त्वां वेत्तोति तत्तिष्ठ तावत्' इति। अद्य च प्रातरेवाहूय मामाज्ञा-

---

(= बुद्धिः) यस्य तादृशस्य, मम = श्वेतकेतोः, एव, अयम् = एष घटितः, सर्वः = सकलः, एव, दोषः = दूषणम्, प्रमाद इति भाव। येन = मया श्वेतकेतुना, जानता = अवगच्छता, अपि, उत्पत्तिसमये = जन्मकाले, एव, वत्सस्य = पुत्रस्य पुण्डरीकस्य, कृते = उद्दिश्य, इदम् = एतत् सम्प्रति विधीयमानम्, आयुष्करम् = आयुर्वर्धकम्, कर्म = कृत्यम्, न = नैव, निर्वर्तितम् = सम्पादितम्। अधुना = सम्प्रति, इदम् = कृत्यम्, सिद्धप्रायम् = प्रायः सिद्धम्, समाप्तम्, एव। दुःखासिका = दुःखपूर्विका आसनक्रिया, दुःखेनावस्थानमित्याशयः, न, भावनीया = करणीया। मत्पादमूले = मम श्वेतकेतोः चरणसमीपे, तावत् = सम्प्रति, स्थीयताम् = अवस्थानं क्रियताम्। एवम् = इत्थम्, तातेन = जनकेन, आज्ञापितः = निर्दिष्टः, तु, विगतभीः = विगता (=दूरीभूता) भीः (= भयम्) यस्य तादृशः, सन्, व्यज्ञापयम् = निवेदयामास। तात = हे पितः! यदि = चेत्, प्रसादः = प्रसन्नता, अनुग्रहः, अस्ति, ततः = तर्हि, यत्र = यस्मिन् स्थाने, एव, असौ = पुण्डरीकः, उत्पन्नः = जातः, अस्ति, तत्र = तस्मिन् स्थाने, एव, गमनाय = प्रयाणाय, तातः = पिता, भवान् माम् = कपिञ्जलम्, आज्ञापयतु = आज्ञां प्रददातु।

एवमिति। मया = कपिञ्जलेन, एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, विज्ञापितः = निवेदितः सः, पुनः=भूयः, आज्ञापितवान् = निर्दिष्टवान्। किं तदित्याह—वत्स इत्यादिना। वत्स = पुत्र!, असौ= एष पुण्डरीकः, शुकजातौ = कीरयोनौ, पतितः, पतनं कृतवान्, तद् = तस्मात्, गत्वा = व्रजित्वा, अपि, अद्य = इदानीम्, तम् = पुण्डरीकम्, नैव, वेत्सि = जानासि, नापि, असौ = पुण्डरीकः, एव, त्वाम् = भवन्तं कपिञ्जलम्, वेत्ति = जानाति, परिचिनोति, वर्तमानसामीप्ये भविष्यति लट्प्रयोगस्तेन वेत्स्यसि, वेत्स्यति चेति यथाक्रमं बोद्धव्यम्। तत् = तस्मात्, तावत् = इदानीम्, तिष्ठ = निषीद, गमनाद् विरम। अद्य = अस्मिन् दिने, च, प्रातः = प्रभातकाले, एव, आहूय = आकार्य, माम् = कपिञ्जलम्, आज्ञापितवान् = आज्ञां प्रदत्तवान्। किं तदित्याह—वत्स इत्यादिना।

बुद्धिवाले का ही है, जिसने (सब कुछ) जानते हुए भी बच्चे (पुण्डरीक) के जन्म लेते समय ही आयु बढ़ाने वाला यह अनुष्ठान प्रारम्भ नहीं किया था। अब यह अनुष्ठान लगभग सम्पन्न हो चुका है। तुम्हें किसी प्रकार का दुःख नहीं करना चाहिए। अब तुम मेरे चरणों के समीप ही रहो।' पिता श्वेतकेतु द्वारा ऐसा सूचित किये जाने पर मैंने निर्भीक होकर उनसे निवेदन किया—"पिता जी, यदि आपका अनुग्रह मुझ पर है तो वह (पुण्डरीक) जहाँ है वहीं पर जाने के लिये पिता जी मुझे आज्ञा दें।'

इस प्रकार से मेरे द्वारा निवेदन करने पर उन्होंने फिर कहा—'बेटा! इस समय तो वह तोते की योनि मे पैदा हुआ है। अतः इस समय तुम जाकर भी उसे नहीं पहचान पाओगे, और न वही तुम्हें पहचान पायेगा, अतः अभी (यहीं) रुको।' और आज प्रातःकाल ही मुझे

---

१. आयुःकामं कर्म।　　२. निर्वार्तितम्।　　३. व्यज्ञपयम्।　　४. तदा।

पितवान्—'वत्स कपिञ्जल महामुनेर्जाबालेराश्रमपदं सुहृत्ते प्राप्तः। जन्मान्तरस्मरणं चास्योपजातम्। तद्गच्छ सम्प्रति तं द्रष्टुम्। मदीयया चाशिषानुगृह्य वक्तव्योऽसौ—'वत्स यावदिदं कर्म[न][1]परिसमाप्यते तावत्त्वयास्मिन्नेव जाबालेः पादमूले[2] स्थातव्यमिति। अपि च, त्वद्दुःखदुःखिताम्बा ते श्रीरपि तस्मिन्नेव कर्मणि परिचारिका वर्तते। तया तु शिरस्युपाघ्रायैतदेव पुनः पुनः सन्दिष्टम्।' एवमुक्त्वाऽकठोरशिरीषकुसुमशिखासूक्ष्माग्रोद्भेदपक्ष्मलानि गात्राणि[3] पुनः पुनः पाणिना परामृश्यान्तर्हृदयेनादूयत। तथा दूय-

---

वत्स = पुत्र, कपिञ्जल !, ते = तव, सुहृद् = वयस्यः पुण्डरीकः, महामुनेः = महर्षेः, जाबालेः= एतन्नामकस्य, आश्रमपदम् = आश्रमस्थलम्, प्राप्तः = लब्धः, आगतः। जन्मान्तरस्मरणम् = पूर्वजन्मविषयकं स्मरणम्, च, अस्य = एतस्य पुण्डरीकस्य, उपजातम् = समुत्पन्नम्, तत्=तस्माद्, सम्प्रति = अधुना, तम् = स्ववयस्यं पुण्डरीकम्, द्रष्टुम् = अवलोकयितुम्, गच्छ = व्रज। मदीयया = मामकीनया, आशिषा = आशीर्वचनेन, च, असौ = एष पुण्डरीकः, वक्तव्यः = कथनीयः—वत्स = पुत्र पुण्डरीक ! यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, इदम् = मया विधीयमानं प्रतिक्रियाकर्म, (न) परिसमाप्यते = समाप्तिं प्राप्नोति, तावत्, त्वया = पुण्डरीकेण, अस्मिन्, जाबालेः= एतन्नामकमहर्षेः, पादमूले = चरणसमीपे, एव, स्थातव्यम् = स्थेयम्, निवसनीयम्। अपि च = अन्यच्च, त्वद्दुःखदुःखिता = तव दुःखेन दुःखमवाप्ता, ते = तव, अम्बा = जननी, श्रीः = लक्ष्मीः, अपि, तस्मिन् = प्रतिक्रियाकर्मणि, एव, परिचारिका = सहायिका, ममेति शेषः, वर्तते। तया = तव मात्रा, शिरसि = मूर्धनि, उपाघ्राय = चुम्बनं कृत्वा, एतद् = इदम्, मयोक्तम्, एव, नत्वन्यदिति भावः, पुनः पुनः = भूयो भूयः, सन्दिष्टम् = सन्देशः कथितः। एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, उक्त्वा = कथयित्वा, अकठोरेत्यादिः—अकठोराणि (= मृदूनि) यानि शिरीषस्य (= एतन्नामकव्रततेः) कुसुमानि (= पुष्पाणि) तेषां या शिखा (= उपरितनभागः) तस्याः सूक्ष्मः (= अतिलघुः) य अग्रः (= अग्रिमः, प्रथमः) उद्भेदः (= उद्गमः) तद्वत् पक्ष्मलानि (= रोमयुक्तानि) गात्राणि = ममाङ्गानि, पुनः पुनः = भूयो भूयः, पाणिना = स्वकरेण, परामृश्य = स्पर्शं कृत्वा, अन्तर्हृदयेन = मनोऽभ्यन्तरभागेन, अदूयत = दुःखितोऽभूत्। तथा =

बुलाकर आज्ञा दी—'बेटा कपिञ्जल ! तुम्हारा मित्र पुण्डरीक महर्षि जाबालि के आश्रम में पहुँच गया है। उसे अपने पूर्वजन्म का स्मरण भी हो गया है। इसलिए अब तुम उसका दर्शन करने के लिये वहाँ जाओ। मेरे आशीर्वाद द्वारा उसको अनुगृहीत करने के बाद कहना—'बेटा, जब तक यह कार्य समाप्त नहीं हो जाता तब तक तुम इन्हीं महर्षि जाबालि के चरणों में ही रहना अर्थात् वहाँ से कहीं अन्यत्र न जाना। और भी, तुम्हारे दुःख से दुःखी हुई तुम्हारी माता लक्ष्मी भी इसी अनुष्ठानकृत्य में मेरी परिचारिका बनी हुई है। उसने तो (तुम्हारा) मस्तक सूँघकर (चूमकर) बार-बार इतना ही सन्देश दिया है (अर्थात् तुम्हें जाबालि के चरणों में ही रहना है)' इस प्रकार से कहकर शिरीष (सिरस) के कोमल फूल की चोटी (शिखर) की सूक्ष्म (पतली) नोक के पहले-पहले निकलने

---

१. न परिसमाप्यते। २. आश्रमे। ३. गात्राणि मे।

मानहृदयं च तमवदम्—'सखे कपिञ्जल! किं दूयसे? त्वयापि मन्दपुण्यस्य मम कृते [1]तुरंगमतामापन्नेन पराधीनवृत्तिना बहुतराण्येव दुःखान्यनुभूतानि। कथं सोमपानोचितेनामुनास्येन समुत्पादितसफेनरक्तस्रवाः खरखलीनक्षतयो विसोढाः? कथमयमकठोरकिसलयशयनैकसेवा[2]सुकुमारः सदा पर्याणितस्य न शीर्णः पृष्ठवंशः? कथमेषु कुसुमोच्चय[3]पातित-बालवनलतास्पर्शमात्राक्षमेषु[4] गात्रेषु कशाभिघाता निपतिताः[5]? कथं च ब्रह्मसूत्रो-

तेन रूपेण, दूयमानहृदयम् = खिद्यमानचित्तम्, च, तम् = कपिञ्जलम्, अवदम् = अवोचम्, अहं शुकरूपधारीति शेषः। सखे कपिञ्जल! किम् = किमर्थम्, दूयसे = खिद्यसि, परितप्यसे। त्वया = भवता अपि, मन्दपुण्यस्य = भाग्यहीनस्य, मम = पुण्डरीकस्य कृते, तुरङ्गमतापन्नेन = अश्वयोनिप्राप्तेन, इन्द्रायुधरूपेण गृहीतजन्मना, पराधीनवृत्तिना—पराधीना (= परायत्ता) वृत्तिः (=वर्तनम् आचरणम्) यस्य तेन तादृशेन, त्वया, बहुतराणि = अत्यधिकानि, एव, दुःखानि = कष्टानि, अनुभूतानि = सोढानि। कथम् = केन प्रकारेण, सोमेत्यादिः—सोमस्य (= यागस्थ-सोमलतारसस्य) पानस्य (= आस्वादनस्य, धयनस्य) उचितेन (= योग्येन), अमुना = एतेन त्वदीयेन, आस्येन = मुखेन, समुत्पादितेत्यादिः—समुत्पादितः (= सञ्जनितः) सफेनः (= सडिण्डीरः, फेनयुक्तः) रक्तस्य (= रुधिरस्य) स्रवः (= च्युतिः) याभिः तादृश्यः, खरेत्यादिः—खरम् (= कठोरम्) यत् खलीनम् (= कविका, लौहमयवल्गुभागः) तेन क्षतयः (= क्षतानि, व्रणाः), विसोढाः = क्षान्ताः? कथम् = केन प्रकारेण, सदा = सर्वस्मिन् समये, पर्याणितस्य=पृष्ठास्तरणयुक्तस्य, तव, अयम् = एषः, अकठोरेत्यदिः—अकठोराणि (= सुकुमाराणि) यानि किसलयानि (= पत्राणि) तेषां शयनम् (= शय्या)तस्य एकस्य (= केवलस्य) सेवया (= सेवनेन, उपभोगेन) सुकुमारः (= सुकोमलः) पृष्ठवंशः (= पृष्ठास्थि, रीढकः) न, शीर्णः = त्रुटितः, विदीर्णः? अपि तु, अवश्यं शीर्ण इति [रीढकः पृष्ठवंशः स्यात् पृष्ठं तु चरमं तनोः। इति हैमः] कुसुमेत्यादिः—कुसुमानाम् (= पुष्पाणाम्) उच्चयः (= अवचयः) तस्मिन् तस्माद् वा पातिताः (= अवनमिताः, स्रस्ताः) या बाललताः (=नवव्रततयः) तासां स्पर्शः (= स्पर्शनम्) एव स्पर्शमात्रम्, तस्मिन् तस्य वा अक्षमेषु (= सोढुमशक्तेषु), एषु = तावकीनेषु, गात्रेषु = देहावयवेषु, कशाभिघाताः = चर्मदण्डप्रहाराः, कथम् = केन प्रकारेण, निपतिताः = निपतनं कृतवन्तः, जाता इति भावः? कथम्, च, ब्रह्मसूत्रोद्वाहिनीत्यादिः—ब्रह्मसूत्रम् (= यज्ञो-

के समान रोयें से युक्त (मेरे) अंगों को हाथ से बारम्बार स्पर्श करके (सहला करके) मन ही मन में बहुत दुःखी हुआ। इस प्रकार से दुःखी होते हुए उस (कपिञ्जल) से मैंने कहा—'मित्र कपिञ्जल! क्यों दुःखी हो रहे हो? मुझ मन्द पुण्यवाले (अभागे) के लिये तुमने भी घोड़े की योनि प्राप्त करते हुए, पराधीन होते हुए बहुत से दुःख सहे हैं। सोमरस का पान करने के योग्य इस (पवित्र) मुख से फेन के साथ-साथ खून की बूंदे भी निकालने वाली लगाम के कठोर घाव कैसे सहे होंगे? केवल कोमल पल्लवों की शय्या का ही सेवन करने से सुकुमार अर्थात् सुकोमल पत्रों के बिस्तर पर ही सोने से अत्यन्त कोमल बनी हुई तुम्हारी पीठ सदैव जीन चढ़ी रहने के कारण क्यों नहीं टूट गई होगी? फूल चुनते (समय में) नीचे झुकाई गई बाल (कोमल) वनलताओं के स्पर्श मात्र को भी न सह सकने वाले तुम्हारे अंगों पर चाबुकों की मार किस तरह पड़ी होगी? और किस

१. तुरगताम्। २. एकमुखसेवा। ३. आपातित, पतित।
४. मात्राक्षमेषु। ५. निपातिताः।

द्वाहिनि देहेस्मिन्व[1]ध्रोत्पीडनकृताः पीडाः समुपजाताः ?" इति । एभिरन्यैश्च पूर्ववृत्तान्तालापै-स्तत्कालविस्मृततिर्यग्जातिदुःखः सुखमतिष्ठम्[2] ।

[3]उपरोहति च मध्याह्नं सवितरि सह कपिञ्जलेन मां यथोचितमाहारमकारयत् । कृताहारश्च कपिञ्जलः क्षणमिव स्थित्वा मामब्रवीत्—"अहं हि तातेन त्वां समाश्वासयितुं जाबालिपादमूलादा कर्मपरिसमाप्तेर्न त्वया चलितव्यमित्येतच्चादेष्टुं विसर्जितः । अन्यद[4]-हमपि तत्रैव कर्मणि व्यग्रतर एव । तद् व्रजामि सम्प्रति ।" अहं तु तच्छ्रुत्वा विषण्णवदनस्तं

पवीतम्) उद्वहति (= धारयति) इत्येवंशीलस्ताद्दशे, अस्मिन् = पुरःस्थिते, देहे = शरीरे, वध्रोत्पीडनकृताः—वध्रम् (= चर्ममयपट्टः, यद्वा बन्धनरज्जुः) तेन यत् उत्पीडनम् (= बन्धनादि-जनितकष्टम्) तेन तस्माद्वा कृताः (= विहिताः) पीडाः = व्यथाः, समुपजाताः = समुत्पन्नाः ? इतिः = कथनसमाप्तौ । एभिः = पूर्वोक्तैः, अन्यैः = तद्भिन्नैः, च, पूर्वेत्यादिः—पूर्वे (= प्राक्तनाः) ये वृत्तान्ताः (= उदन्ताः) तेषाम् आलापैः (= कथनैः), विस्मृतेत्यादिः—विस्मृतम् (= विस्मृतिं नीतम्) तिर्यग्जातिदुःखम् (= पक्षियोनिजन्मकष्टम्) येन सः तादृशः, अहम् = वैशम्पायनशुकः, सुखम् = अक्लेशं यथा स्यात् तथा, अतिष्ठम् = व्यषीदम् ।

उपरोहतीति । सवितरि = भगवति सूर्ये, मध्याह्नम् = अह्नो मध्यम्, उपरोहति = उपारोहणं कुर्वति सति, मध्याह्ने जाते सति, कपिञ्जलेन = एतन्नामकेन मित्रेण, सह = साकम्, माम् = वैशम्पायनशुकम्, यथोचितम्=यथायोग्यम्, यस्य कृते यदुचितमासीत्तदिति भावः, आहारम्= भोजनम्, अकारयत् =अभक्षयत् । कृताहारः = विहितभोजनः, कपिञ्जलः, क्षणम्, इव, स्थित्वा = निषद्य, अवस्थाय, माम् = शुकम्, अबादीत् = अवोचत् । किं तदिति वर्णयति—अहमित्यादिना । अहम् = कपिञ्जलः, हि = निश्चयेन, तातेन = पित्रा श्वेतकेतुना, त्वाम् = वैशम्पायनशुकम्, समाश्वासयितुम् = समाश्वासनं प्रदातुम्, आकर्मपरिसमाप्तेः = तवारिष्टनिवृत्त्यर्थमारब्धविशिष्टानुष्ठानपरिपूर्तिपर्यन्तम्, त्वया = शुकेन, जाबालिपादमूलात् = जाबालिचरणसमीपात्, न, चलितव्यम् = सञ्चरितव्यम्, क्वापि गन्तव्यम्, इति, एतत् = इदम्, च, आदेष्टुम् = आज्ञप्तुम्, विसर्जितः = प्रेषितः । अन्यत् = किं च, अहम् = कपिञ्जलः, अपि, तत्रैव = तस्मिन्नेव कर्मणि = विशिष्टानुष्ठाने, व्यग्रतरः = अतीवव्यापृतः, एव । तद् = तस्माद्, सम्प्रति = इदानीम् व्रजामि = गच्छामि । अहम् = वैशम्पायनशुकः, तत् = कपिञ्जलोक्तम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य,

तरह से यज्ञोपवीत धारण करने वाली इस देह पर चमड़े के कमरबन्द के कसे जाने की पीड़ा हुई होगी ? इस प्रकार की पूर्वजन्म से सम्बद्ध अन्य बीती बातों (के माध्यम) से उस समय पक्षियोनि में उत्पन्न होने के दुःख को भूला हुआ सुखपूर्वक बैठा रहा ।

सूर्य के मध्याह्न में चढ़ जाने पर (हारीत ने) कपिञ्जल के साथ-साथ मुझे भी यथोचित भोजन करवाया । भोजन करके कुछ देर ठहरने के बाद कपिञ्जल ने मुझसे कहा—'वास्तव में पिता श्वेतकेतु ने तुम्हें आश्वासन देने (धीरज बधाने) के लिये तथा जब तक यह अनुष्ठान पूरा नहीं हो जाता तब तक तुम्हें महर्षि जाबालि के चरणों के पास से कहीं (अन्यत्र) नहीं जाना है—यह आदेश देने के लिये भेजा है । दूसरी बात यह कि मैं भी वहीं (पिता जी के पास) अनुष्ठान कर्म में अत्यन्त व्यस्त

१. वध्र । २. अध्यतिष्ठम् । ३. उपारोहति । ४. अहमपि, अस्मि तदहमपि ।

प्रत्यवदम्—"सखे कपिञ्जल ! एवं गते किं ब्रवीमि ? किं च तातस्याम्बाया वा संदिशामि ? सर्वं त्वमेव वेत्सि' इति। स त्वेवमुक्तो मया पुनः पुनस्तत्रावस्थानाय मां सन्निधाय[1] हारीतं चानुभूतास्मदालिङ्गनसुखो विस्मयोन्मुखेन मुनिकुमारकजनेनेक्ष्यमाणोऽन्तरिक्षमतिक्रम्य [2]क्वाप्यदर्शनमगात्। गते च तस्मिन्हारीतः समाश्वास्य मां शरीरस्थितिकरणायोदतिष्ठत्। उत्थाय [3]चान्यं मुनिकुमारकं मत्पार्श्वे स्थापयित्वा निरगात्। [4]निर्वर्तितस्नानादिक्रियाकलापश्चात्मनैव सहापराह्ण[5]समये पुनर्मामाहारमकारयत्।

विषण्णवदनः = दीनमुखः, सन्, तम् = कपिञ्जलम् प्रत्यवदम् = प्रत्यवोचम्—सखे = मित्र ! कपिञ्जल ! एवम् = इत्थम्, गते = जाते सति, किम् = अज्ञातम्, ब्रवीमि = वच्मि ? तातस्य = पितुः श्वेतकेतोः, अम्बायाः = श्रियः, च, किम् = अज्ञातम्, सन्दिशामि = सन्देशं प्रापयामि ? न किमपीति भावः। सर्वम्, = अखिलं वृत्तान्तम्, त्वमेव, वेत्सि = जानासि, इति। सः = कपिञ्जलः, तु, मया = वैशम्पायनशुकेन, एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, उक्तः = कथितः, सन्, तत्र = जाबाल्याश्रमे, अवस्थानाय = अवस्थितिकरणाय, माम् = शुकम्, हारीतम् = जाबालिपुत्रम्, च, पुनः पुनः = भूयोभूयः, सन्निधाय = अनुरुध्य, सावधानं कृत्वा, अनुभूतेत्यादिः—अनुभूतम् (= उपभुक्तम्, साक्षात्कृतम्) अस्माकम् (= मम शुकस्य) आलिङ्गनस्य (=आश्लेषस्य) सुखम् (= आनन्दः) येन स तादृशः, सन्, विस्मयोन्मुखेन = कौतुकेनोर्ध्वीकृताननेन, मुनिकुमारकजनेन, ईक्ष्यमाणः = अवलोक्यमानः, अन्तरिक्षम् = गगनम्, अतिक्रम्य = उल्लङ्घ्य, क्वापि = कुत्रापि अज्ञातस्थाने, अदर्शनम् = अप्रत्यक्षताम्, लोपम्, अगात् = गतः, दर्शनशक्तेर्बहिर्भूत इति भावः। तस्मिन् = कपिञ्जले, गते = गगनेऽदर्शनतां प्राप्ते सति, हारीतः, माम् = शुकम्, समाश्वास्य = समाश्वासनं प्रदाय, शरीरस्थितिकरणाय=स्नानादिदैनिककृत्यसम्पादनाय, उदतिष्ठत् = उत्थितः। उत्थाय = ऊर्ध्वं स्थित्वा च, अन्यं मुनिकुमारकम्, मत्पार्श्वे = वैशम्पायनशुकस्य समीपे, स्थापयित्वा = संस्थाप्य, मम सेवार्थमिति शेषः, निरगात् = निःसृतः। निर्वर्तितेत्यादिः—निर्वर्तितः (=सम्पादितः, कृतः) स्नानादि-क्रिया-कलापः (= सलिलोन्मज्जनादिकर्मजातम्) येन स तादृशः सन्, आत्मना = स्वेन, एव, सह = सार्धम्, अपराह्णसमये = मध्याह्नोत्तरकाले, पुनः = भूयः, माम् = शुकम्, आहारम् = भोजनम्, अकारयत् = कारितवान्।

हूँ। इसलिए अब (यहाँ से) चलता हूँ।" यह सुनकर दुःखी मुख वाला होता हुआ मैं बोला—'मित्र कपिञ्जल ! ऐसी दशा में मैं क्या कहूँ ? और पिताजी अथवा माता लक्ष्मी के लिये क्या सन्देश भेजूँ ? तुम्हीं तो सब कुछ जानते हो।' मेरे इस प्रकार से कहने पर वहीं आश्रम में ठहरे रहने के लिये मुझे और हारीत को बारम्बार समझा कर (सावधान कर) मेरे आलिंगन के सुख का अनुभव करके, आश्चर्य से ऊपर मुख उठाये हुए मुनिकुमारों द्वारा देखा जाता हुआ, अन्तरिक्ष (आकाश) को पार करके कहीं लुप्त हो गया। उसके चले जाने पर हारीत मुझे ढाढस बँधाकर स्नानादि दैनिक कृत्य करने के लिये उठ खड़ा हुआ। उठकर दूसरे मुनिकुमार को मेरे पास बैठाकर (बाहर) चला गया।

---

१. संविधाय।　२. अदर्शनपथम्।　३. अन्यतमम्।
४. निर्वर्तित।　५. सायाह्नसमये।

एवं ¹चावहितचेतसा हारीतेन संवर्ध्यमानः कतिपयैरेव दिवसैः संजातपक्षोऽभवम् । उत्पन्नोत्पतनसामर्थ्यश्च चेतस्यकरवम्—'गमनक्षमस्तु संवृत्तोऽस्मि ! ²तन्न नाम चन्द्रापीडोत्पत्तिपरिज्ञानम् । महाश्वेता पुनः सैवास्ते । तत्किमुत्पन्नज्ञानोपि तद्दर्शनेन विनात्मानं निमेषमपि ³दुःखं स्थापयामि ? भवतु तत्रैव गत्वा तिष्ठामि ।' इति निश्चित्यैकदा प्रातर्विहारनिर्गत एवोत्तरां ककुभं गृहीत्वावहम् । अबहुदिवसाभ्यस्तगमनतया स्तोकमेव गत्वा-

एवञ्चेति । एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, च, अवहितचेतसा—अवहितम् (= सावधानम्, मम पालनादिकर्मणि तत्परम्) चेतः (= मनः) यस्य तेन तादृशेन, हारीतेन, संवर्ध्यमानः = वृद्धिं प्राप्यमाणः, समेध्यमानः, सन्, कतिपयैः = कियद्भिः, अल्पैरिति भावः, दिवसैः = दिनैः, [अपवर्गे तृतीया बोध्या], सञ्जातपक्षः—सञ्जातौ (= समुत्पन्नौ, बहिर्निःसृतौ) पक्षौ (=पक्षती) यस्य स तादृशः, अभवम् = अभूवम् । उत्पन्नेत्यादिः—उत्पन्नम् (= सञ्जातम्) उत्पतनस्य (= उड्डयनस्य) सामर्थ्यम् (= शक्तिः, योग्यता) यस्य स तादृशः, सन्, चेतसि = मनसि, अकरवम् = कृतवान्, विचारितवानिति भावः । किन्तदिति वर्णयति—गमनेत्यादिना । गमनक्षमः= उड्डयने समर्थः, तु, जातः = भूतोऽस्मि । तत् = तस्मात्, नाम = इदं कोमलामन्त्रणे, चन्द्रापीडोत्पत्तिपरिज्ञानम् = चन्द्रापीडस्य जन्मनः अवबोधः, न = नैव, जातमिति योज्यम् । [अत्र 'तत्र न मे चन्द्रापीडोत्पत्तिपरिज्ञानम्' इति पाठः समीचीनः ।] महाश्वेता = मम प्रेयसी, पुनः = तु, सा = पूर्वसदृशी, एव, आस्ते = वर्तते । तत् = तस्मात्, किम्, उत्पन्नज्ञानः—उत्पन्नम् (= संजातम्) ज्ञानम् (= अवबोधः) यस्य स तादृशः, सन्, अपि, तद्दर्शनेन = महाश्वेताया अवलोकनेन, विना = ऋते, आत्मानम् = स्वम्, निमेषमपि = क्षणपर्यन्तमपि, दुःखम् = कष्टम्, स्थापयामि = स्थापयितुं शक्नोमि ? नेति भावः । भवतु = स्यात् यत् किमपि, तत्रैव = महाश्वेताश्रमे एव, गत्वा = व्रजित्वा, तिष्ठामि = निषीदामि ।' इति = एवम्, निश्चित्य = मनसि अवधार्य, एकदा, प्रातः = प्रभातकाले, विहारनिर्गतः = उड्डयनार्थं निःसृतः, एव, उत्तराम् = उदीचीम्, ककुभम् = दिशाम्, गृहीत्वा = लक्ष्यीकृत्य, अवहम् = वेगेन अचलम् । अबहुदिवसेत्यादिः—अबहुभिः (= अल्पैः) दिवसैः (= दिनैः) अभ्यस्तम् (= प्रारब्धम्) गमनम् (= चलनम्, उड्डयनम्) येन स तस्य भावस्तत्ता तया हेतुना, स्तोकम् = अत्यल्पम्, एव,

स्नानादि समस्त क्रियाकलाप करने के बाद अपराह्ण के समय में भी फिर अपने साथ ही मुझे भोजन कराया ।

इस प्रकार से [मेरे पालन-पोषण तथा रक्षणादि में] सावधान चित्तवाले हारीत द्वारा पाला पोसा जाता हुआ मैं कुछ ही दिनों में उत्पन्न पंखों वाला अर्थात् पंखों से युक्त हो गया । और उड़ने के सामर्थ्य से युक्त होता हुआ मन में सोंचने लगा—'उड़ने में समर्थ तो हो ही गया हूँ । इसलिये चन्द्रापीड के जन्म के विषय में जानकारी भले ही न हो पाई हो किन्तु महाश्वेता तो वही है । तब फिर उसके विषय में जानकारी प्राप्त करता हुआ भी उस (महाश्वेता) के दर्शन के बिना अपने को दुःख में क्यों रक्खूं ? अर्थात् महाश्वेता के वियोग का दुःख अब नहीं सहना चाहिए । अच्छा, तो वहीं (आश्रम में) चलकर बैठता हूँ ।' इस प्रकार से निश्चय करके एक बार प्रातःकाल घूमने के लिये निकला हुआ मैं उत्तर दिशा को पकड़ कर चल पड़ा । कुछ ही दिनों का उड़ने का अभ्यास

१. आहित । २. नाम तावत् । 'तत्र न मे चन्द्रापीडोत्पत्तिपरिज्ञानम्' इत्येव पाठः साधुः ।
३. दुःखे ।

शीर्यन्त इव मेऽङ्गानि श्रमेण । 'अशुष्यच्चञ्चु[2]पुटं पिपासया । नाडिन्धमेनाकम्पत[3] कण्ठः श्वासेन[4] । तदवस्थश्च शिथिलायमानपक्षतिरत्र पताम्यत्र पतामी'ति [5]परवानेवान्यतमस्य [6]तमस्विनीतिमिरसंघातस्येवार्ककरतिरस्कारिणो घनहरितपल्लवभरावनम्रस्यासन्नतरस्य सरस्तीरतरुनिकुञ्जस्योपर्यात्मानमसुञ्चम् । चिरादिवोन्मुक्ताध्वश्रमक्लमोऽवतीर्य शीतलतरु-

---

गत्वा = व्रजित्वा, श्रमेण = उड्डयनक्लेशेन, मे = शुकस्य, अङ्गानि = देवहावयवाः, अशीर्यन्त= अस्फुटन्, इव, भिन्नानि इव, जातानीति भावः । चञ्चुपुटम्, पिपासया = उदन्यया, पानेच्छया, अशुष्यत् = शुष्कं जातम् । कण्ठः = गलः, नाडिन्धमेन = अतितीव्रेण (नाडिं धमयति = स्फारयति तादृशेन) श्वासेन = श्वसनक्रियया, अकम्पत = अवेपत । तदवस्थः—सा (=पूर्ववर्णिता) अवस्था (= दशा) यस्य स तादृशः सन्, च, शिथिलायेत्यादिः—शिथिलायमाने (= शैथिल्यं प्राप्नुवन्त्यौ) पक्षती (=पक्षमूलौ) यस्य स तादृशः, अत्र, पतामि = पतनं करोमि, अत्र पतामि= पतनं करोमि, इति = इत्थम्, परवान् = विवशः, एव, अन्यतमस्य = एकस्य कस्यचन, तमस्विनीत्यादिः–तमस्विनी (=रात्रिः) तस्याः तिमिर-संघातस्य (=तमः समूहस्य), इव, अर्केत्यादिः– अर्कस्य (= सूर्यस्य) करान् (= किरणान्) तिरस्करोति (= पराभवति) इत्येवंशीलस्य, घनेत्यादिः—घनः (= निबिडः) हरितः (= हरितवर्णः, नवीनः) च यः पल्लवभरः (= किसलयसमूहः) तेन अवनम्रस्य (= अधोभागं प्राप्तस्य), आसन्नतरस्य=अतीव निकटस्थस्य, सर इत्यादिः—सरसः (= पम्पासरोवरस्य) तीरे (= तटे) तीरस्य (= तटस्य) वा तरूणाम् (= वृक्षाणाम्) निकुञ्जस्य (=कुञ्जस्य) उपरि = ऊर्ध्वभागे, आत्मानम् = स्वम्, अपातयम् = पातितवान् । चिराद् = दीर्घकालात्, इव शब्दो वाक्यालंकारे सम्भावनायां वा, उन्मुक्तेत्यादिः— उन्मुक्तः (= दूरीकृतः) अध्वनः (= मार्गस्य) यः श्रमः (आयासः) तस्य क्लमः (=खेदः) येन स तादृशः, अहं शुकः, अवतीर्य = वृक्षनिकुञ्जस्योर्ध्वभागादधः आगत्य, शीतलेत्यादिः—शीतला (= शिशिरा) या तरूणाम् (= पादपानाम्) तलस्य (= अधोभागस्य) छाया (= अनातपः)

होने के कारण थोड़ी ही दूर चलकर परिश्रम (थकान) से मेरे अंग टूटने से लगे । प्यास के कारण चञ्चुपुट सूखने लगा । नाड़ियों को फुला देनेवाली सांस से गला कांपने लगा । उस प्रकार की दशा वाला शिथिल होते हुए पंखों वाला होता हुआ—'यहीं गिरा यहीं गिरा'–इस प्रकार से विवश होता हुआ पास में ही रात के अंधेरे के समूह जैसे, सूर्य की किरणों का तिरस्कार करने (रोकने) वाले, घने हरे-हरे पत्तों के भार से नीचे झुके हुए, बहुत ही पास स्थित, सरोवर के तट के वृक्षों के निकुञ्ज (झुरमुट) के ऊपर अपने को गिरा दिया अर्थात् वहीं उतर कर बैठ गया । बहुत देर में मार्ग (पर उड़ने) की थकान मिटा कर, (निकुञ्ज के) नीचे (पृथ्वी पर) उतर कर, पेड़ों की शीतल छाया

---

१. शुष्यत् । २. चञ्चुपुटः । ३. अकम्पितकण्ठः, अध्मायत ।

४. अवशीर्यन्त मेऽङ्गानि—इति रूपेण पूर्ववाक्ये यदा तत्तक्रियायाः प्राधान्येन निर्देशः प्रक्रान्तस्तर्हि अग्रेऽपि सोऽयमेव क्रमः निर्वाह्यः तत्रश्च—अशुष्यच्चञ्चुटं पिपासया, नाडिन्धमेन आध्मायत (अकम्पत) कण्ठः श्वासेन—इत्यादि । ५. पतन्नेवाहितगमनप्रयत्नः ।

६. दृष्टिहारिणां हरितघननिबिडपल्लवभरावनम्रासन्नतरस्य सरस्तीरजम्बूनिकुञ्जस्य ।

तलच्छायास्थितो दलगहन-संरोधशिशिरमरविन्दकिञ्जल्करजो-वाससुरभि [1]बिसरसकषाय-मापीयमानमेवोत्पादितपुनरुक्त[2]पानस्पृहमा तृप्तेः पयो निपीय[3] यथाप्राप्तैरकठोरकमलकर्णिका-बीजैर्वीरतरु[4]पर्णाङ्कु[5]फलैश्च कृत्वा क्षुधः प्रतीकारम् 'अपराह्णसमये पुनः कियन्तमप्यध्वानं यास्यामी'ति मनसि कृत्वाध्वश्रमनिःसहान्यङ्गानि [6]विश्रमयितुमन्यतमामविच्छिन्नच्छायां शाखामारुह्य तरोर्मूलभाग एवावातिष्ठम् । तथा स्थितश्चाध्वश्रमसुलभां निद्रामगच्छम् ।

तस्यां स्थितः (= कृतावस्थानः), दलेत्यादिः—दलानाम् (= पत्राणाम्) गहनम् (= समूहः, घनभागः) तेन हेतुना यः संरोधः (= सूर्यातापनिवारणम्) तेन शिशिरम् (= शीतलम्), अरविन्देत्यादिः—अरविन्दानाम् (= कमलानाम्) किंजल्कानाम् (= केसराणाम्) च यद् रजः (=परागः) तस्य वासेन (= सौरभेन) सुरभि (=सुगन्धीकृतम्), बिसेत्यादिः—बिसानाम् (=मृणालतन्तूनाम्) यः रसः (= द्रवः) तेन कषायम् (= तुवरम्) ['तुवरस्तु कषायोऽस्त्री । इत्यमरः १।५।९] आपीयमानम् = पानविषयीकृतं सत्, एव, उत्पादितेत्यादिः—उत्पादिता (= जनिता) पुनरुक्ता (= पुनः पुनरावृत्ता) पानस्य (= धयनस्य) स्पृहा (= इच्छा) येन तत् तादृशम्, पयः = सलिलम्, आतृप्तेः = तृप्तिपर्यन्तम्, निपीय=पानं कृत्वा, यथाप्राप्तैः = यथोपलब्धैः, अकठोरेत्यादिः—अकठोराणि (= कोमलानि) कमलकर्णिकानाम् (= कमल-वराटकानाम्) बीजैः (=फलभूतैः), वीरेत्यादिः—वीरतरूणाम् (= अर्जुनवृक्षाणाम्) पर्णैः (= पत्रैः) अङ्कुरैः (= प्ररोहैः) फलैः (= सस्यैः) च, क्षुधः (= बुभुक्षायाः) प्रतीकारम् (= प्रतिक्रियाम्, उपशान्तिम्) कृत्वा = विधाय, अपराह्णसमये = मध्याह्नोत्तरकाले, पुनः, कियन्तम् = किंपरिमाणम्, अपि, अध्वानम् = मार्गम्, यास्यामि = गमिष्यामि, इति = एवम्, मनसि = चित्ते, कृत्वा = विधाय, विचार्य, अध्वेत्यादिः—अध्वनः (= मार्गस्य) यः श्रमः (= खेदः) तेन निःसहानि (=असमर्थानि), शिथिलानीति भावः, अङ्गानि = शरीरावयवान्, विश्रमयितुम् = विश्रामं कारयितुम्, अन्यतमाम्= एकां काञ्चित्, अविच्छिन्नच्छायाम्—अविच्छिन्ना (= घना) छाया (=अनातपः) यस्याः तादृशीम्, शाखाम् = वृक्षशाखाम्, आरुह्य = आरोहणं कृत्वा, तरोः = वृक्षस्य, मूलभागे = अधोदेशे, एव, अवातिष्ठम्=अवस्थितिं कृतवान् । तथा = पूर्वोक्तप्रकारेण, स्थितः = कृतावस्थितिः, निषण्णः, अध्वेत्यादिः—अध्वनः (= मार्गस्य) यः श्रमः (= खेदः, आयासः) तेन सुलभाम् (=सुप्रापाम्), निद्राम् = स्वापम्, अगच्छम् = अव्रजम्, निदद्राविति भावः ।

में बैठा हुआ, पत्तों की अधिकता से ढके होने के कारण [सूर्य की किरणें न पड़ने से] शीतल, कमलों के केसर की गन्ध से सुगन्धित, कमलनाल के रस (मिलने) के कारण कसैले, पी लेने पर भी बार-बार पीने की इच्छा उठाने वाले पानी को जीभर पी लेने के बाद जैसे-तैसे मिले हुए कमलनाल के बीजों से तथा वीरतरु (अर्जुन वृक्ष) के पत्तों, अंकुरों तथा फलों से भूख मिटाकर 'अपराह्ण के समय फिर कुछ मार्ग तय करूँगा'—ऐसा मन में सोचकर, मार्ग में हुए श्रम से अत्यन्त क्लान्त अंगों को विश्राम कराने के लिये घनी छायावाली किसी एक शाखा पर चढ़कर पेड़ के मूल भाग में(नीचे)ही बैठ गया । उस प्रकार से बैठा हुआ मैं मार्ग के श्रम से होने वाली स्वाभाविक थकान से नींद में डूब गया ।

१. कषायमधुर० । २. अपुनरुक्त० । ३. निपीयमानप्राप्तैः । ४. तीरतरु० । ५. अङ्कुरपत्रैश्च, अङ्कुरैः फलैश्च । ६. विश्रामयितुम् ।

चिरादिव च लब्धप्रबोधो बद्धमात्मानमनुन्मोचनीयैस्तन्तुपाशैरपश्यम्। अग्रतश्च पाशविरहितमिव कालपुरुषम्, अतिकठिनतया कालिम्ना च वपुषः कालायसपरमाणुभिरिव केवलैर्निर्मितम्, प्रेतपतिमिवापरम्, प्रतिपक्षमिव पुण्यराशेः, [1]आशयमिव पाप्मनः, विनापि क्रोधकारणादाबद्धभीषण[2]भ्रुकुटिरौद्रतरेणाननेनारक्तकेकरतर[3]कनीनिकेन च चक्षुषा सकलजनभयंकरस्य भगवतः कृतान्तस्यापि भयमिवोपजनयन्तम्, [4]आशये केशेषु चास्निग्धम्,आनने

चिरादिवेति। चिरात् = दीर्घसमयात्, इव, च, लब्धप्रबोधः—लब्धः (= प्राप्तः) प्रबोधः (=जागरणम्) येन स तादृशः, जागरित इत्यर्थः, अहम् = शुकः, आत्मानम् = स्वम्, अनुन्मोचनीयैः= छेदयितुम् अशक्यैः, तन्तुपाशैः = रज्जुजालबन्धनैः, बद्धम् = नियमितम्, निगडितम्, अपश्यम् = व्यलोकयम्। अग्रतः = पुरस्तात्, च, ['पुरुषम् = मनुष्यम् = अद्राक्षम् = दृष्टवान्' इति मुख्यं वाक्यम्। अत्र च द्वितीयैकवचनान्तानि पदानि 'पुरुषम्' इत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि।] पाशविरहितम् = अगृहीतपाशम्, कालपुरुषम् = यमदूतम्, इव, वपुषः = शरीरस्य, अतिकठिनतया = अत्यन्तकठोरतया, कालिम्ना = कृष्णवर्णत्वेन, च, केवलैः = तन्मात्रैः, कालायसपरमाणुभिः = लौहविशेषपरमाणुभिः, निर्मितम् = विरचितम्, सृष्टम्, इव। अपरम् = प्रसिद्धादभिन्नम्, प्रेतपतिम्= प्रेताधिपं यमराजम्, इव। पुण्यराशेः = सुकृतसमूहस्य, प्रतिपक्षम् = शत्रुम्, इव। पाप्मनः=पापस्य, आशयम् = आश्रयाधिष्ठानम्, इव। क्रोधकारणात्=कोपस्य निमित्तात्, विनापि = ऋते, अपि, आबद्धेत्यादिः—आबद्धा (= कृता) भीषणा (= भयङ्करी) भ्रुकुटिः (= भ्रूभङ्गः) तया रौद्रतरेण (=अतिशय-रुद्ररूपतापन्नेन) आननेन=मुखेन, आरक्तेत्यादिः—आरक्ते (=समन्ताल्लोहिते) केकरतरे (= कनीनिके) यस्य तादृशेन चक्षुषा = नेत्रेण, च हेतुना, सकलजनभयङ्करस्य = निखिललोकभयजनकस्य, भगवतः, कृतान्तस्य = यमराजस्य, अपि भयम् = भीतिम्, उपजनयन्तम्= समुत्पादयन्तम्, इव, [उत्प्रेक्षा], आशये=हृदये, केशेषु = कचेषु, च, अस्निग्धम् =स्नेहरहितम्, कठोरम्, चिक्कणता-शून्यम्—इति रीत्या अग्रेऽपि अर्थद्वयं बोध्यम्। आनने = मुखे, ज्ञाने=अवबोधे,

बहुत देर बाद जागा (तो) न छुटाये जा सकने वाले तन्तुओं (डोरी) के जाल में अपने को बँधा हुआ देखा। और अपने आगे (सामने) [मृत्यु के] पाश (जाल) से रहित कालपुरुष (= यम के दूत) जैसे, शरीर की अत्यन्त कठिनता (दृढ़ता) तथा कालिमा के कारण केवल लोहे के परमाणुओं से बने जैसे; दूसरे प्रेतपति (यमराज) जैसे, पुण्य-समूह के शत्रु-जैसे, पाप के आशय (भण्डार) जैसे, क्रोध के [किसी] कारण के बिना भी ऊपर चढ़ाई (तानी) गई भयानक भौंहें के द्वारा और अधिक रुद्र प्रचण्ड मुख से तथा लाल-लाल बहुत टेढ़ी-टाढ़ी (ऐंचीतानी) पुतलियों वाली आँख से, सभी लोगों के लिये भय उत्पन्न करने वाले भगवान् यमराज के लिए भी भय उत्पन्न कराते हुए जैसे, आशय (= हृदय) में और केशों (दोनों) में अस्निग्ध (१) स्नेहरहित, (२) तैलरहित रूखे, [यहाँ दो-दो अर्थ निकलते हैं—जैसे हृदय में अस्निग्ध = स्नेहशून्य, कठोर वैसे ही केशों में भी

१. आश्रयम्।　　२. भ्रुकुटी।　　३. आरक्तकेकरतलः, रक्ततर।

४. अत्र पुरुषस्य आशयादयः यथा प्रस्तुतास्तथैव तस्य केशादयोपि प्रस्तुता एव। एवञ्च प्रस्तुतानां प्रस्तुतानामेव पदार्थानामेकधर्माभिसम्बन्धस्तेनात्र तुल्ययोगिता स्पष्टा। सापि च श्लेषमूला।

ज्ञाने चान्धकारितम्, वर्णे चरिते च कृष्णम्, निवसने कर्मणि च मलिनम्, वपुषि वचसि च परुषम्, अदृष्टा¹श्रुतानुरूपमप्याकारप्रत्ययादेवानुमीयमानक्रौर्यदोषं पुरुषमद्राक्षम् ।

आलोक्य च तं तादृशमात्मन उपरि निष्प्रत्याश एवापृच्छम्--"भद्र कस्त्वम् ? किमर्थं वा त्वया बद्धोस्मि । यद्यामिषतृष्णया, तत्किमिति सुप्त एव न व्यापादितोस्मि ? किं मया निरागसा बन्धदुःखमनु²भावितेन । अथ केवलमेव कौतुकात्, ततः कृतं कौतुकम् । मुञ्चतु

च, अन्धकारितम् = अन्धकारयुक्तम्, मोहयुक्तञ्च, वर्णे = शरीरस्य रूपे, चरिते = आचरणे, च, कृष्णम् = श्यामम्, कुत्सितञ्च । निवसने = वस्त्रे, कर्मणि = क्रियायाम्, च, मलिनम्=मलीसमम्, दूषणयुक्तम् निकृष्टम् । वपुषि = शरीरे, वचसि = वाण्याम्, च, परुषम् = कठोरम् । अदृष्टेत्यादिः—अदृष्टम् (= न विलोकितम्) अश्रुतम् (= अनाकर्णितम्) अनुरूपम् (=सदृशम्) यस्य तादृशम्, अपि, आकारेत्यादिः—आकारस्य (= आकृतेः) प्रत्ययात् (=ज्ञानात् दर्शनात्), एव, अनुमीयेत्यादिः—अनुमीयमानम् (= अनुमानेनानुभूयमानम्) क्रौर्यम् (= क्रूरता) तद्रूपं दोषः (=दूषणम्) यस्य तं तादृशम्, पुरुषम् = मनुष्यम्, अद्राक्षम् = अपश्यम् ।

तं क्रूरं पुरुषमवलोक्य जातां शुकस्य प्रतिक्रियां वर्णयति--आलोक्य चेत्यादिना । तादृशम् = तथाविधम्, तम् = क्रूरं पुरुषम्, आलोक्यः=दृष्ट्वा, च, आत्मनः=स्वस्य, उपरि=विषये, निष्प्रत्याशः= प्राणरक्षायां निराशः, एव, अपृच्छम् = पृष्टवान्, अहं शुक इति ज्ञेयम् । भद्र !, त्वम् = भवान्, कः ? वा = अथवा, त्वया, किमर्थम् = किम्प्रयोजनम्, बद्धः = नद्धः, अस्मि ? यदि = चेत्, आमिषतृष्णया = मांसलिप्सया, बद्ध इति शेषः, तत् = तर्हि, सुप्तः = शयनं प्राप्तः, एव, किमिति= कुतः, न, व्यापादितः = मारितः ? निरागसा—निर्गतम् (= नष्टम्) आगः (= पापः) यस्य तादृशेन, निरपराधेन, मया = शुकेन, बन्धदुःखम् = पाशबन्धनक्लेशम्, अनुभावितेन = प्रापितेन, किम् ? न किमपीति भावः । अथ = पक्षान्तरे, केवलम्, एव, कौतुकात् = कुतूहलात्, बद्धोऽस्मीति शेषः, ततः = तर्हि, कौतुकम् = कुतूहलम्, औत्सुक्यम्, कृतम् = जातम्, पूर्णमभूदिति भावः । भद्रमुखः = कल्याणकारी भवान्, इदानीम् = अधुना, मुञ्चतु = बन्धनात् परित्यजतु । वल्लभे-

---

अस्निग्ध स्नेह = तैल से रहित सूखे], मुख में और ज्ञान (दोनों) में अन्धकारयुक्त, [मुख, कुत्सित वर्ण और कर्म के कारण काला था, ज्ञान अज्ञान से आवृत होने से अन्धकारित], रंग (वर्ण) में और आचरण (दोनों) में काले (कुत्सित), वस्त्र में और कर्म (दोनों) में मलिन (गन्दे), शरीर में और वाणी (दोनों) में कठोर, (पहले कभी) न देखे गये तथा न सुने गये होने पर भी आकार के देखने (ज्ञान) से ही अनुमान किये गये क्रूरता के दोष वाले पुरुष को देखा ।

उस प्रकार के उस पुरुष को देखकर अपने [जीवन के] ऊपर निराश होते हुए ही मैंने (शुक ने) उससे पूछा--"अरे भद्र (भले) पुरुष तुम कौन हो ? तुमने मुझे क्यों बाँधा है ? यदि मांस के लालच से [बाँधा है] तो सोते हुए ही मुझे क्यों नहीं मार डाला ? मुझ निरपराध को इस प्रकार से [बंधन का] दुःख भुगवाने से क्या लाभ ? और यदि केवल कौतुक के कारण [मुझे

---

१. अदृष्टश्रुतानुरूपम्, अदृष्टश्रुतानुभूतम् । २. अनुभावितेनापि ।

मामिदानीं भद्रमुख। मया खलु वल्लभ[1]जनोत्कण्ठितेन दूरं गन्तव्यम्। अकालक्षेपक्षमं वर्तते [2]मे हृदयम्। भवानपि प्राणिधर्मे [3]वर्तते।' एवमुक्तः स मामुक्तवान्[4]—"महात्मन्, अहं खलु क्रूरकर्मा जात्या चाण्डालः। न च मया त्वमामिषलुब्धेन कुतूहलेन[5] वा बद्धः। मम खलु स्वामी पक्कणाधिपतिरितो नातिदूरे मातङ्गकप्रतिबद्धायां भूमौ कृतावस्थानः। तस्य दुहिता कौतुकमये प्रथमे वयसि वर्तते। तस्यास्त्वं केनापि दुरात्मना कथितो यथा जाबालेराश्रम एवंगुणविशिष्टो महाश्चर्यकारी शुकस्तिष्ठति। तया च श्रुत्वोत्पन्नकौतुकात्त्वद्ग्रहणाय

त्यादिः—वल्लभः (= प्रियः) चासौ जनः (= लोकः, महाश्वेतारूपः) तस्मिन् उत्कण्ठितेन (= समुत्सुकेन), मया = शुकेन, दूरम् = विप्रकृष्टम्, गन्तव्यम् = व्रजनीयम्, खलु = निश्चयेन। मे = मम शुकस्य, हृदयम् = चित्तम्, अकालक्षेपक्षमम् = समयविलम्बसहनासमर्थम्, वर्तते = अस्ति। भवान् = त्वम्, अपि, प्राणिधर्मे = मानवधर्मे, वर्तते = विद्यते, त्वमपि प्राणिनामुचितानुचितविवेकी असीति भावः। एवम् = इत्थम्, मया, उक्तः = कथितः, सः = क्रूरः पुरुषः, माम् = शुकम्, उक्तवान् = कथितवान्। किमुक्तवानिति वर्णयति—महात्मन् इत्यादिना। महात्मन् = महाशय!, अहम्, खलु = निश्चयेन, क्रूरकर्मा = निर्दयकर्मानुष्ठाता, जात्या=जन्मना, चाण्डालः = श्वपचः, अस्मि। मया, च, त्वम्, शुकः, आमिषलुब्धेन=मांसाभिलाषिणा, कुतूहलेन = औत्सुक्येन, वा, न = नैव, बद्धः=पाशे नद्धः। मम, स्वामी, पक्कणाधिपतिः=शबरालयस्याधिपतिः, इतः = अस्मात् स्थानात, नातिदूरे = न बहुविप्रकृष्टे, मातङ्गकप्रतिबद्धायाम्=अन्त्यजैरधिगृहीतायाम्, भूमौ=स्थाने, तन्निर्मितभवनादाविति भावः,कृतावस्थानः—कृतम् (=विहितम्)अवस्थानम् (=अवस्थितिः, निवासः) येन स तादृशः, वर्तते। तस्य = शबराधिपतेः, दुहिता = पुत्री, प्रथमे वयसि=कौमारे प्रारम्भिकावस्थायाम्, वर्तते = अस्ति। केनापि = अज्ञातेन, दुरात्मना = दुष्टजनेन, त्वम् = शुकः, तस्या = दुहितुः, कथितः = सूचितः, सम्बन्ध-सामान्ये षष्ठी, यथा = यत्, जाबालेः = एतन्नामक-महर्षेः आश्रमे, एवंगुणविशिष्टः = विविधगुणगणालङ्कृतः, शुकः = कीरः, तिष्ठति = निवसति। तया = शबराधिपतिदुहितया, च, श्रुत्वा = आकर्ण्य, उत्पन्नकौतुकात् = सञ्जातौत्सुक्यात्, त्वद्-

---

बाँधा है] तो अब कौतुक भी पूरा हो गया। भले मनुष्य, अब मुझे छोड़ दो। अपने प्रियजन [से मिलने] के लिए उत्कण्ठित मुझे दूर जाना है। मेरा हृदय बिलम्ब नहीं सह सकता। तुम भी तो प्राणी के धर्म में विद्यमान हो अर्थात् प्राणी के धर्म जानते हो।' इस प्रकार से मेरे द्वारा कहे जाने पर वह पुरुष बोला—"महात्मन्! मैं क्रूर कर्म करने वाला जाति से चाण्डाल हूँ। मैंने तुम्हें न तो मांस के लालच से बाँधा है और न ही कौतूहल से। मेरे स्वामी चाण्डालों के अधिपति (सरदार) यहाँ से थोड़ी ही दूर पर मातङ्गकों (चाण्डालों) द्वारा अपने अधीन की गई भूमि में डेरा डाले हुए हैं, ठहरे हुए हैं। उनकी कन्या कौतूहलयुक्त प्रथम अवस्था (बाल्यावस्था) में है अर्थात् बच्ची है। किसी दुष्ट व्यक्ति ने तुम्हारे बारे में उससे कह दिया है कि महर्षि जाबालि के आश्रम में इन-इन गुणों से युक्त महान् आश्चर्य उत्पन्न कराने वाला (एक) तोता रहता है। (ऐसा) सुनकर उत्पन्न हुए कौतुक के कारण उसने तुम्हें पकड़ने के लिए मेरे जैसे बहुत से लोगों को आदेश दे दिया। अतः

---

१. जनदर्शन। २. मद्हृदयम्। ३. प्राणिधर्मे प्रवर्तसे, प्राणिधर्मे वर्तस एवेति। ४. प्रत्यवादीत्। ५. कुतूहलिना।

[1]बहव एवापरे मादृशाः समादिष्टाः । तदद्य पुण्यैर्मयासादितोसि । तदहं तत्पादमूलं त्वां प्रापयामि । बन्धे मोक्षे चाधुना सा ते प्रभवति' इति ।

अहं तु तच्छ्रुत्वा शुष्का[2]शनिनेव ताडितः शिरसि संविग्नान्तरात्मा चेतस्यकरवम्—'अहो मे मन्दपुण्यस्य दारुणतरः कर्मणां विपाकः । येन मया [3]सुरासुरशिरःशेखराभ्यर्चितचरणसरसिजायाः श्रियो जातेन, जगत्त्रयनमस्यस्य महामुनेः श्वेतकेतोः स्वहस्तसंबर्धितेन, दिव्यलोकाश्रम[4]निवासिना भूत्वा [5]म्लेच्छजातिभिरपि दूरतः परिहृतप्रवेशमधुना

ग्रहणाय = बद्ध्वा त्वां नेतुम्, मादृशाः = मत्तुल्याः, बहवः = नेके, एव, अपरे=अन्ये, समादिष्टाः = आज्ञप्ताः । तत् = तर्हि, तस्माद् वा, अद्य = अस्मिन् दिने, पुण्यैः = सुकृतैः, मया = चाण्डालेन, आसादितः = प्राप्तः, असि । तत् = तस्मात्, त्वाम् = शुकम्, तत्पादमूले = तस्याः, पक्कणाधिपतेः दुहितुः चरणयोः समीपे, प्रापयामि = नयामि । ते = तव शुकस्य, बन्धे = निगडने, मोक्षे = मोचने, वा, सा = अस्मत्स्वामिदुहिता, एव, प्रभवति = समर्थाऽस्ति, न त्वहमिति शेषः ।

अहमिति । अहम् = शुकरूपः पुण्डरीकः, तु, तत् = चाण्डालवचनम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, शुष्काशनिना=मेघाभावेऽपि आकाशीयविद्युता, निरभ्रवज्रेण, शिरसि=उत्तमाङ्गे,ताडितः=आहतः,इव, संविग्नान्तरात्मा —संविग्नः (= नितान्तं खिन्नः) आत्मा (= अन्तःकरणम्, मनः) यस्य स तादृशः, सन्, चेतसि = मनसि, अकरवम् = कृतवान्, चिन्तितवानिति भावः । किमिति वर्णयति—अहो —इत्यादिना । अहो = इदमत्यन्तखेदे, मन्दपुण्यस्य=हीनसुकृतस्य, पापिनः, मे = मम पुण्डरीकस्य, कर्मणाम् = कृत्यानाम्, दारुणतरः = भीषणतरः, विपाकः = परिणामः, सञ्जात इति शेषः । येन = हेतुना, सुरेत्यादिः—सुराः (= देवाः) असुराः (= दैत्याः) च तेषां शिरःसु (= उत्तमाङ्गेषु) ये शेखराः (= आपीडाः, मुकुटाः, मालाः वा) तैः समभ्यर्चितौ (= सम्यक्पूजितौ) चरणौ (= पादौ) सरसिजे (= कमले) इव यस्याः तादृश्याः, श्रियः = लक्ष्म्याः, जातेन = उत्पन्नेन, जगत्त्रयनमस्यस्य—त्रिभुवननमस्करणीयस्य, महामुनेः = महर्षेः, श्वेतकेतोः = एतन्नामकस्य, स्वहस्त-संवर्धितेन = निजकराभ्यां परिपाल्य समेधितेन, दिव्येत्यादिः—दिव्यलोकस्य (= स्वर्गलोकस्य) य आश्रमः (= मुनिस्थानम्) तत्र निवासिना (= वासविधायिना), भूत्वा = सम्पद्य, म्लेच्छजातिभिः = म्लेच्छकुलोत्पन्नैः अपि, दूरतः = विप्रकृष्टात्, परिहृतप्रवेशम्—

आज पुण्यों के कारण मैंने तुम्हें प्राप्त किया (पकड़ा) है । अतः अब मैं तुम्हें उसी के चरणों के पास पहुँचा देता हूँ । अब तुम्हारे बन्धन अथवा मोक्ष (बाँध कर रखने या छोड़ देने) में वही समर्थ है, अर्थात् ये दोनों अधिकार उसी के पास हैं ।

यह सुनकर सूखे में शिर पर गिरने वाली बिजली से मारा गया सा मैं बहुत व्याकुल (उद्विग्न) चित्त वाला होकर मन में सोंचने लगा—"अरे, मुझ अभागे के कर्मों का इतना भीषण परिणाम हुआ । जो कि देवों और असुरों के मस्तकों की मालाओं से पूजित चरणकमलों वाली लक्ष्मी से जन्म लेने वाले तथा तीनों लोकों द्वारा नमस्कार करने योग्य महामुनि श्वेतकेतु द्वारा अपने हाथों से बढ़ाये (पाले-पोसे) गये, दिव्य लोक (स्वर्गलोक) के आश्रम में निवास करने वाले होकर भी मुझे म्लेच्छ जाति के लोगों द्वारा भी दूर से प्रवेश के लिए रोके गये (अयोग्य) अत्यन्त घृणित पक्कण=

---

१. बहव एवापरेऽपि, अपरिमिताः । २. मुक्ताशनिनेव ।

३. सुरासुरशिखराभ्यर्चिते चरणसरसिजायाः स्त्रियः । ४. आश्रय ।

५. पुलिन्दाः नाहुला निष्ठाः शबरा बरुटा भटाः ।
माला भिल्लाः किराताश्च सर्वेऽपि म्लेच्छजातयः ॥

[1]पक्कणं प्रवेष्टव्यम्[2]। चण्डालैः सहैकत्र स्थातव्यम्।[3]जरन्मातङ्गाङ्गनाकरोपनीतैः कवलैरात्मा पोषणीयः। चण्डालबालकजनस्य क्रीडनीयेन भवितव्यम्। दुरात्मन् पुण्डरीकहतक! धिग्जन्मलाभं ते, यस्य [4]कर्मणामयमीदृशः परिणामः। किमर्थं प्रथमगर्भं एव न सहस्रधा शीर्णोसि। मातः श्रीः, अशरणजनशरणचरणपङ्कजे, अतिगहनभीषणाद्रक्ष मामस्मान्महानरकपातात्। तात भुवनत्रयत्राणक्षम, त्रायस्व कुलतन्तुमेकम्[5]। त्वयैव संवर्धितोस्मि।

परिहृतः (=परिवर्जितः) प्रवेशः (= अन्तर्गमनम्) यस्य तत् तादृशम्, [1]पक्कणम्=शबराधिवासः, प्रवेष्टव्यम् = प्रवेशनीयम्। चाण्डालैः = श्वपचैः, सह = सार्धम्, एकत्र = एकस्मिन्नेव स्थाने, स्थातव्यम् = स्थितिः करणीया। जरदित्यादिः--जरत्यः (= वृद्धाः) याः मातङ्गानाम् (=श्वपचानाम्) अङ्गनाः (= स्त्रियः) तासां करैः (= हस्तैः) उपनीतैः (= प्रदत्तैः) कवलैः (= ग्रासैः, गण्डोलकैः) आत्मा (= शरीरम्) पोषणीयः (= पुष्टः करणीयः)। चण्डालबालकजनस्य = श्वपच-शिशुलोकस्य, क्रीडनकेन = क्रीडासाधनेन, भवितव्यम् = सम्पत्तव्यम्। दुरात्मन् = अरे पापात्मन्, पुण्डरीक! (स्वं सम्बोधयितुमाह), ते = तव, जन्मलाभम् = जनिप्राप्तिम्, धिक्, अस्तु 'धिग्योगे द्वितीया'। यस्य = मम पुण्डरीकस्य, कर्मणाम् = पूर्वजन्मादावनुष्ठितानां कृत्यानाम्, ईदृशः = एतत्प्रकारः, परिणामः = परिणतिः, जात इति शेषः। प्रथमगर्भे = आदि-गर्भ-प्राप्तौ, एव, किमर्थम् = कस्मात् कारणात्, न, सहस्रधा = सहस्रप्रकारेण, शीर्णः = भिन्नो जातः, असि। हे मातः! = जननि! श्रीः = लक्ष्मि!, अशरणेत्यादिः--अशरणाः (= नास्ति शरणं = रक्षणं येषां तादृशाः, आश्रयविहीनाः) ये जनाः (= लोकाः) तेषां शरणम् (=रक्षकम्) चरणौ (=पादौ) पङ्कजे (= कमले) इव यस्यास्तत्सम्बुद्धौ रूपम्, अतिगहनभीषणात्--अतिगहनम् (=दुरवगाहनम्) च तद् भीषणम् (= भयङ्करम्) च तस्मात्, अस्मात् = पुरोवर्तमानात्, महानरकपातात् = घोरनरकनिपतनात्, रक्ष=पाहि। भुवनत्रय-त्राण-क्षम! =त्रिभुवनरक्षणसमर्थ!, हे तात! = पितः, श्वेतकेतो! एकम् = अद्वितीयम्, कुलतन्तुम् = वंशसूत्रम्, त्रायस्व = परिपाहि, मम मरणे तव वंशविनाशः सुनिश्चित इति भावः। त्वया = भवता श्वेतकेतुना, एव, संवर्द्धितः = वृद्धिं प्रापितः,

---

शवरालय (चाण्डालों की बस्ती) में जाना होगा। उन चाण्डालों के साथ एक ही स्थान पर रहना होगा। बूढ़ी चाण्डालों की स्त्रियों के हाथों से लाये गये ग्रासों से आत्मा = शरीर का पोषण करना होगा। चाण्डालों के बच्चों का खिलौना बनना पड़ेगा। दुष्टात्मा मुंहजले पुण्डरीक! तेरे जन्म लेने को ही धिक्कार है जिस (मुझ पुण्डरीक) के कर्मों का ऐसा (निकृष्ट) परिणाम हो रहा है। तू गर्भ में ही हजारों टुकड़ों में खण्ड खण्ड क्यों नहीं हो गया? अशरण लोगों को शरण देने वाले चरणपंकजों वाली है माँ लक्ष्मी! अत्यन्त गहन और भयानक इस महानरक में गिरने से मेरी रक्षा करो। तीनों लोकों की रक्षा करने में समर्थ हे पिता जी! इस एकमात्र कुलतन्तु (वंशसूत्र) को बचा लो। तुम्हीं ने बड़ा किया है। हे मित्र कपिञ्जल! यदि वापस आकर तुमने मुझे इस पाप

---

१. १. 'पक्कणः शबरालयः' इति अमरकोशात् नपुंसकपाठश्चिन्तनीयः।

२. द्रष्टव्यम्। ३. जनंगमानां करोपनीतैः जनङ्गमानङ्गनोपेतैः। ४. कर्मणः। ५. पांसुलम्।

वयस्य कपिञ्जल, यदि परापत्य त्वयास्मात्पापान्न मोचितोऽस्मि तदा जन्मान्तरेऽपि पुनर्मा कृथा मत्समागमप्रत्याशाम्।' इत्येतानि चान्यानि च चेतसा विलप्य पुनस्तमभ्यर्थनादीनमवदम्—

"भद्रमुख जातिस्मरो मुनिरस्मि जात्या। तत्त्वापि मामस्मान्महतः पापसंकटादुद्धृत्य धर्मो भव'त्येवादृष्टसुखहेतुः। दृष्टेऽपि च केनचिदपरेणादृष्टस्य मन्मुक्तिकृतः प्रत्यवायो नास्त्येव। तन्मुञ्चतु मां भद्रमुखः' इत्यभिदधानश्च [2]पादयोरपतम्। स तु विहस्य माम-

अस्मि। वयस्य! = हे मित्र! कपिञ्जल, यदि = चेत्, परापत्य = पुनरागत्य, त्वया = भवता कपिञ्जलेन, अस्मात् = पुरो जातात्, पापात् = अपुण्यात्, न, मोचितः = मुक्तिं प्रापितः, तदा = तर्हि, जन्मान्तरे = अन्यस्मिन् जन्मनि, अपि, मत्समागम-प्रत्याशाम् = मम पुनर्मिलनाशाम्, मा = नैव, कृथाः = कुरु!' इति एतानि = पूर्वोक्तानि, अन्यानि = एतद्भिन्नानि, च, चेतसा= मनसा, विलप्य = विलापं कृत्वा, बहिर्विलपनस्य नावसर इति भावः, पुनः=भूयः, तम् = चाण्डालम्, अभ्यर्थनादीनम्—अभ्यर्थना (= प्राणरक्षणप्रार्थना) तया दीनम् (= दैन्ययुक्तम्) यथा स्यात् तथा, अवदम् = अवोचम्।

स शुकः किमवददिति निरूपयति-भद्रमुख इत्यादिना। हे भद्रमुख!=कल्याणकारिन्! अहम्, जातिस्मरः=जातिं स्मरति इति जातिविषयकस्मरणवान्, जात्या = जन्मना, मुनिः = ऋषिः, अस्मि। तत् = तस्मात्, अस्मात् = पुरोविद्यमानात्, पापसङ्कटात् = महापातकजनितविपत्तेः, माम् = शुकम्, उद्धृत्य = उद्धारं विधाय, तव = भवतः, अपि, अदृष्टसुखहेतुः—अदृष्टे (=परस्मिन् लोके स्वर्गलोके) सुखस्य (= आनन्दस्य) हेतुः (= कारणम्) धर्मः = पुण्यम्, भवति = जायते, एव। दृष्टे = दर्शनविषये अस्मिन् लोके, अपि, अपरेण = अन्येन, अदृष्टस्य = अनवलोकितस्य, मन्मुक्तिकृतः = मम मोक्षस्य विधायिनः, तव, प्रत्यवायः = प्रायश्चित्तम्, न, अस्ति, एव। अयं भावः—त्वयाहं पूर्वं बद्धः साम्प्रतं मुक्तः—इत्यनेनादृष्टलोकस्य सुखजनकं पुण्यं भविष्यति। अत्रापि लोके मां पूर्वं बद्ध्वा ततो मुक्तवानसीति न केनापि दृष्टमिति न ते स्वामिदुहितुः समीपे तव दोषस्य प्रकटनं भविष्यति, मम मुक्तिजन्यं प्रायश्चित्तं च नापतिष्यति। तस्मादुभयविधलाभ एवेति। तत् = तस्मात् पूर्वोक्तहेतुद्वयात्, भद्रमुखः = कल्याणाननः, माम् = शुकम्, मुञ्चतु = बन्धनात् मुक्तं करोतु—इति, अभिदधानः=भाषमाणः, पादयोः=चरणयोः चाण्डालस्येति शेषः, अपतम् = निपतितः। सः = चाण्डालः, तु, विहस्य = हासं कृत्वा, माम् = शुकम्, अब्रवीत्=उक्तवान्। किमुक्तवानित्याह—

से नहीं बचाया तो फिर दूसरे जन्म में भी मुझसे मिलने की आशा मत रखना।' इन्हें तथा अन्य बातों का मन से विलाप करके फिर से दीनतायुक्त प्रार्थना करता हुआ उस चाण्डाल से बोला—

"हे भद्रमुख! (भले मनुष्य) मैं जाति = जन्म से ही पूर्वजन्म का स्मरण रखने वाला मुनि हूँ। इसलिए इस महान् पाप संकट से मुझे बचा कर तुम्हारा भी अदृष्ट लोक = स्वर्ग लोक में सुख का हेतु धर्म होगा ही। और इस दृष्ट लोक = भूलोक में भी किसी दूसरे के देखे बिना ही मुझे छोड़ते हुए तुम्हें (अपनी स्वामि-कन्या की आज्ञा का उल्लंघन रूपी) प्रायश्चित भी नहीं होगा। अतः हे भले मानुष! मुझे छोड़ दो।'—ऐसा कहता हुआ मैं (शुक) उस चाण्डाल के पैरों पर

१. भवेत्। २. पुनः पुनः पादयोः।

ब्रवीत्—'रे मोहान्ध यस्य शुभाशुभकर्मसाक्षिभूताः पञ्च लोकपालास्तवैवात्मशरीरस्थिता[1] न पश्यन्ति सोन्यस्य[3] भयादकार्यं नाचरति ? तन्नीतोसि मया स्वाम्याज्ञया' इति। एवमभिदधान एव मामादाय पक्कणाभिमुखमगच्छत्।

अहं तु तेन तद्वचसाभिहत इव मूर्ध्नि मूकतामापन्नः केषां पुनः कर्मणामिदं मे फलमित्यन्तरात्मनाभिध्यायन्प्राणपरित्यागं प्रति कृतनिश्चयोऽभवम्। नीयमानश्च तथा तेन

रे मोहान्ध—इत्यादिना। रे मोहान्ध ! =अरे अज्ञानान्ध, निर्विवेक !, यस्य, तव, एव, आत्मशरीरस्थिताः = निजदेहे विद्यमानाः, शुभाशुभकर्मसाक्षिभूताः=शुभानामशुभानाञ्च कर्मणां प्रत्यक्षं द्रष्टारः, पञ्च, लोकपालाः = इन्द्रादयः, [अकार्यम्] न, पश्यन्ति = अवलोकयन्ति, सः = त्वम्, अन्यस्य= लोकपालभिन्नस्य, भयात् = भीतेः, अकार्यम् = अनुचितं कर्म, न = नैव, आचरति = अनुतिष्ठति ? अपि तु आचरत्येवेति काकुरत्र बोध्या। अयं भावः—तव शरीरे विद्यमानाः पञ्चलोकपालाः तव शुभाशुभकर्माणि सदैव पश्यन्ति तदापि त्वयाऽनुचितमाचरितमेव। अहं तु अन्यस्य कस्यापि दर्शनभीत्या न तथा करोमि। जानामि लोकपालाः सर्वं सदा पश्यन्ति। अतो त्वया यदुक्तं—'मां मुञ्चन् त्वं न केनापि विलोकित' इति सर्वथाऽसमीचीनमेव। अतो नाहं त्वां मुक्त्वा स्वामिदुहितुः दोषभागी भविष्यमीति। तत् = तस्मात्, स्वाम्यज्ञया = स्वामिनो दुहितुराज्ञया, मया = चण्डालेन, नीतः = तत्समीपं प्रापितः, असि, एव, इति। एवम् = पूर्वोक्तप्रकारेण, अभिदधानः=भाषमाणः, एव, माम् = शुकम्, आदाय=नीत्वा, पक्कणाभिमुखम् = शबरालयाभिमुखम्, अगच्छत् = अचलत्।

अहमिति। अहम् = शुकः, तु, तेन = पूर्वोक्तेन, तद्वचसा = तस्य चाण्डालस्य वचनेन, मूर्ध्नि = शिरसि, अभिहतः = ताडितः, इव, मूकताम् = मौनम्, आपन्नः = प्राप्तः, इव, 'मे = मम पुण्डरीकस्य, केषाम् = अज्ञातानाम्, कर्मणाम् = कृत्यानाम्, पुनः, इदम् = पुरोवर्ति, फलम् = परिणामः, इति, अन्तरात्मना = चित्तेन, अभिध्यायन् = विचिन्तयन्, प्राणपरित्यागम् = असुमोक्षम्, प्रति, कृतनिश्चयः = विहितनिर्णयः, अभवम् = अभूवम्। तथा = तेन प्रकारेण,

गिर पड़ा। वह तो हँसकर मुझसे कहने लगा—'अरे मोहान्ध ! (प्राणों की रक्षा के मोह में अन्धे बने हुए मुर्ख) जिसके शुभ तथा अशुभ कर्मों के साक्षी (गवाह,देखने वाले) पाँचों (इन्द्र, वरुण, यम, अग्नि और कुबेर)लोकपाल तुम्हारे अपने शरीर में रहते हुए भी(शुभ तथा अशुभ कर्मों को)नहीं देखते, वह अन्य के भय से अनुचित कार्य नहीं करेगा ? अर्थात् अवश्य करेगा। इसलिए स्वामी (की कन्या) की आज्ञा से तुझे ले ही चलता हूँ।' ऐसा कहता हुआ ही मुझ (शुक) को लेकर पक्कण = चण्डालों की बस्ती की ओर चल दिया।

मैं तो उसके उस कथन से सिर पर चोट खाया हुआ सा चुपचाप रहता हुआ—'मेरे किन कर्मों का यह फल है'—ऐसा अपने मन में सोंचता हुआ प्राण छोड़ देने का निश्चय कर बैठा। उस चण्डाल द्वारा उस प्रकार से ले जाया जाता हुआ उस (चाण्डाल-कन्या) के द्वारा छोड़ दिये जाने की आशा से ही आगे की ओर दृष्टि डाले हुए मैंने पक्कण = चण्डालों की बस्ती देखी,

१. तथैव।   २. आत्मशरीरे स्थिताः, आत्मस्थिताः।   ३. अन्यस्य कस्य।

[1]तन्मोचनप्रत्याशयैवाग्रतो दत्तदृष्टिराविष्टैरिव [2]बीभत्सविन्यासैर्व्यावृत्तैश्चावर्तकानायपरिभ्रमणानिभृतैश्च मृगावपाटित-जीर्णवागुरा-संग्रन्थनव्यग्रैश्चोत्त्रुटित-कूटपाश-संग्रन्थनाय[3]स्तैश्च हस्तस्थित-सकाण्डकोदण्डैश्च [4]प्रासप्रचण्डपाणिभिश्च[5] [6]सेलग्राहिभिश्च नानाविधग्राहक-विहंग-वाचालन[7]कुशलैः कौलेयकमुक्तिसंचा[8]रणचतुरैश्चण्डालशिशुभिर्वृन्दशो दिशि दिश मृगया[9]

तेन = चण्डालेन, नीयमानः = स्वामिकन्यासमीपं प्राप्यमाणः, तन्मोचनप्रत्याशया—तस्याः (= स्वामिदुहितुः) मोचनस्य (= मुक्तेः) प्रत्याशया (= आशया), सा शबराधिपतिकन्या कदाचिद् दयया मां मुञ्चेदपीति आशया इति भावः, अग्रतः = अग्रे, दत्तदृष्टिः = विहितनयनः, अग्रेऽवलोकयन् अहम्—['पक्कणम् अपश्यम्' इति दूरस्थेऽन्वयः । अत्र तृतीया-बहुवचनान्तानि पदानि च मध्ये वक्ष्यमाणस्य 'चण्डालशिशुभि'रित्यस्य विशेषणानि । इदञ्च 'आवेद्यमानम्'इत्यत्र कर्तृत्वेनान्वेति एवञ्च विशेष्यविशेषणभावं विचार्यार्थो विधेयः ।] आविष्टैः = भूतादिगृहीतैः, इव, बीभत्सविन्यासैः—बीभत्सः (= घृणाजनकः) विन्यासः (= वस्त्रादिकम्) येषां तादृशैः, व्यावृत्तैः = आखेटक्रियां सम्पाद्य गृहं प्रत्यागतैः, आवर्त्तकेत्यादिना—आवर्त्तः एव आवर्तकः (= अम्भसां भ्रमः) तेषु य आनायः (= मत्स्यबन्धनजालम्) तस्य परिभ्रमणम् (= इतस्ततो गोलकाकारेण सञ्चालनम्) तेन अनिभृतैः (= चञ्चलैः) च । ['आवर्त्तोऽम्भसां भ्रमः' । इत्यमरः । स्वार्थे कः प्रत्ययः, आवर्त्तकः । 'आनायः पुंसि जालं स्यादि'त्यमरः ।] जलभ्रमिषु मत्स्यबन्धनजालं पातयित्वा चक्राकारं भ्रमणं कुर्वद्भिरिति भावः । मृगेत्यादिः—मृगैः (= हरिणैः) अवपाटिता (= उत्त्रोटिता) या जीर्णा (= पुरातनी) वागुरा (= मृगबन्धनरज्जुः) तस्याः संग्रथने = पुनः संगुम्फने, व्यग्रैः = तीव्रतया संलग्नैः, च उत्त्रुटितेत्यादिः—उत्त्रुटिताः (= उच्छिन्नाः) ये कूटपाशाः (= उन्माथाः) तेषां संग्रथने (= पुनः संयोजने, संगुम्फने) आयस्तैः = विहित-प्रयत्नैः, च हस्तेत्यादिः—हस्तेषु (= करेषु) स्थितानि (= निहितानि, गृहीतानि) सकाण्डानि (= बाणसहितानि) कोदण्डानि (= धनूंषि) येषां तैः तादृशैः, च । प्रासेत्यादिः—प्रासैः (= कुन्तैः, भल्लैः) प्रचण्डाः (= रौद्राः) पाणयः (= हस्ताः) येषां तादृशैः, च । सेलग्राहिभिः = सेलनामकास्त्रधारणशीलैः, च । नानाविधेत्यादिः—नानाविधाः (= अनेकप्रकाराः) ये ग्राहकाः (= ग्रहणकर्तारः, वशीकर्तारः) विहङ्गाः (= पक्षिणः, श्येनादयः) तेषां वाचालनम् = विशेषध्वन्युच्चारणम्, शिक्षणम्) तत्र कुशलैः=दक्षैः, कौलेयकेत्यादिः—कौलेयकाः (= कुक्कुराः) तेषां मुक्तौ (= किमपि लक्ष्यं समुद्दिश्य बन्धनपरित्यागः) तस्यां यत् सञ्चारणम् (= स्वेच्छया

जिस (पक्कण) की सूचना चण्डाल बालक दूर से ही दे रहे थे जो बालक भूत-प्रेत से ग्रसित जैसे, घृणाजनक वेष-भूषा वाले, [शिकार आदि से] वापस लौटे हुए, पानी की भँवरों में डाले गये मछली पकड़ने के जालों को इधर-उधर (गोल-गोल) चक्कर कटाने में लगे हुए, हरिणों द्वारा तोड़ दी गईं पुरानी वागुराओं (बाँधने की रस्सियों) को पुनः जोड़ने में लगे हुए, टूट गये (पक्षी आदि के) फँसाने वाले फन्दों (जालों) को जोड़ने (गूँथने) में लगे हुए, हाथों में बाणयुक्त धनुष लिये हुए, भालों (को धारण करने) से भयानक हाथों वाले, सेल (एक अस्त्रविशेष) पकड़े हुए, अनेक प्रकार के शिकार पकड़ने वाले पक्षियों की बोली सिखाने में कुशल, [जानवरों आदि के पीछे] कुत्तों को छोड़ने तथा (अपनी इच्छानुसार) इधर-उधर दौड़ाने में कुशल और समूह = टोलियाँ बनाकर दिशा-दिशा में अर्थात् चारो ओर शिकार खेलने वाले थे, जिस (पक्कण) में इधर-उधर ऊपर की ओर उठ

१. आत्मनो मोचन ।
२. बीभत्सविन्यासैर्व्यावृत्तैश्च वर्तकानादाय परिभ्रमणानिवृत्तैश्च, बीभत्सुविन्यासैर्व्यावृत्तैश्च वर्तकानामु-परिभ्रमणनिवृत्तैश्च । ३. निग्रन्थन, ग्रन्थन । ४. प्राशप्रचण्डदण्ड, प्रसरद्दण्डप्रचण्ड ।
५. भल्लग्राहिभिश्च लगुडिभिश्च लासकग्राहिभिश्च । ६. सेलमादाय ।
७. वाचालकुशलैः; वाचालनाकुशलै । ८. संचरण । ९. मृगया, मृगयया ।

क्रीडद्भिर्दूरत 'एवावेद्यमानम्, इतस्ततो विस्रगन्धिधूमोद्गमानुमीयमान-सान्द्र[2]वंशवनान्त[3]रितवेश्मसंनिवेशम्, सर्वतः करङ्कप्रायवृतिवाटम्, अस्थिप्रायरथ्यावकरकूटम्, उत्कृत्त[4]मांसमेदो-वसासृक्कर्दम-प्रायकुटीराजिरम्, आखेटकप्रायाजीवम्, पिशितप्रायाशनम्[5], वसाप्रायस्नेहम्, कौशेयप्रायपरिधानम्, चर्मप्रायास्तरणम्, सारमेयप्रायपरिवारम्,

---

परिचालनम्) तत्र चतुरैः (= दक्षैः), च, इदानीं विशेष्यमाह—चण्डालशिशुभिः = श्वपचबालकैः, वृन्दशः = वृन्दैः वृन्दैश्च, दिशि दिशि = सर्वस्यां दिशायाम्, मृगयाम् = आखेटम्, क्रीडद्भिः = कुर्वद्भिः, दूरतः = विप्रकृष्टाद्, एव, आवेद्यमानम् = संसूच्यमानम् । इतस्ततः = यत्र तत्र सर्वत्र, विस्रेत्यादिः—विस्रगन्धः (= अर्धपक्वमांसस्य गन्धः) अस्ति अस्मिन् तादृशो य धूमोद्गमः (= दहनकेतनस्योर्ध्वं गमनम्) तेन अनुमीयमानः (= अनुमितिविषयी-क्रियमाणः) सान्द्रेण (= निबिडेन) वंशवनेन (=वेणुविपिनेन) अन्तरितः (= व्यवहितः) वेश्मसन्निवेशः (= गृहाणामवस्थितिः) यस्मिन् तादृशम् । सर्वतः=सर्वासुदिशासु, करङ्केत्यादिः—करङ्कप्राया (=जीवास्थिबहुला) चासौ वृतिः (=वेष्टनम्) यस्मिन् तादृशः, वाटः (=निःसरणमार्गः) यस्मिन् तं तादृशम् । ['वाटो वृतौ च मार्गे च वाटी च गृहनिष्कुटे' इति विश्वकोषः] । अस्थीत्यादिः—अस्थीनि प्रायः(=बाहुल्येन) यस्यां तादृश्यः या रथ्याः (= मार्गाः) तासु अवकरकूटः (= संमार्जिनीक्षिप्तजञ्जालसमूहः) यस्मिन् तं तादृशम् । उत्कृत्तेत्यादिः—उत्कृत्तम् (= खण्डशः विदीर्णम्) यत् मांसम् (=आमिषम् पललम्), मेदः (= अस्थिसारः) वसा (= वपा, शुद्धमांसस्य स्निग्धभागः) असृक् (= रुधिरम्) एतेषां समाहारः तस्य कर्दमः (= पङ्कः) प्रायः (= प्राचुर्येण) यस्मिन् तादृशम् । आखेटकप्रायाजीवम्—आखेटः (= मृगया) एव आखेटक सः प्रायः (= बाहुल्येन) आजीवः (=आजीविका) यस्मिन् तादृशम् । पिशितप्रायाशनम्—पिशितम् (= मांसम्) प्रायः (= बाहुल्येन) अशनम् (= भक्षणम्) यस्मिन् तादृशम् । वसा-प्राय-स्नेहम्—वसा (= वपा, मांसस्निग्धभागः) प्रायः (= बाहुल्येन) स्नेहः (= स्निग्धपदार्थः) यस्मिन् तादृशम् । कौशेय-प्रायपरिधानम्—कौशयम् (= कृमिकोशोत्थितम्, क्षौमम्) प्रायः (= बाहुल्येन) परिधानम् (= अधो-

---

रही कच्चे मांस की गन्ध लिए हुए धुयें से, घने बाँसों से घिरे हुए घरों का अनुमान किया जा रहा था, जहाँ सभी रास्तों में कंकालों (हड्डियों) का घेरा बना हुआ था, जहाँ गलियों में अधिकतर हड्डियों से भरा पड़ा कूड़ा-कचरा था, जहाँ झोपड़ियों के आँगनों में अधिकतर काटा या नोचा गया मांस,मेदा,चर्बी और खून का कीचड़ भरा हुआ था,जहाँ शिकार करना ही जीविका-निर्वाह का प्रमुख साधन था, प्रायः मांस ही भोजन था, चर्बी ही प्रायः तेल थी अर्थात् तेल के स्थान पर चर्बी का ही प्रयोग होता था, वस्त्र अधिकतर रेशमी ही थे, बिछौने प्रायः चमड़े के ही थे, प्रायः कुत्ते ही परिवार

---

१. आवेद्यमानम् । २. वंशीवन । ३. वादम् ।
४. वसाकर्दम । ५. पिशितप्रायमशनमिति व्यस्तः पाठोऽसमीचीनः ।

धवलीप्रायवाहनम्, स्त्रीमद्यप्रायपुरुषार्थम्, असृक्प्रायदेवताबलिपूजम्, पशूपहारप्रायधर्मक्रियम्, आकरमिव सर्वनरकाणाम्, कारणमिव सर्वाकुशलानाम्, संनिवेशमिव सर्वश्मशानानाम्, पत्तनमिव सर्वपापानाम्, आयतनमिव सर्वयातनानाम्, स्मर्यमाणमपि भयंकरम्, श्रूयमाणमप्युद्वेगकरम्, दृश्यमानमपि पापजननम्, जन्मकर्मतो मलिनतर-जनम्,

---

वस्त्रम्) यस्मिन् तादृशम् । चर्मप्रायास्तरणम्—चर्म (= अजिनम्) प्रायः (= बाहुल्येन) आस्तरणम् (= शय्याच्छादनवस्त्रम्) यस्मिन् तादृशम् । सारमेयप्रायपरिवारम्—सारमेयाः (= कुक्कुराः) प्रायः (= बाहुल्येन) परिवाराः (= परिजनाः, स्वजनाः) यस्मिन् तादृशम् । धवलीप्रायवाहनम्—धवली (= श्वेतवर्णा गोविशेषा) प्रायः (= बाहुल्येन) वाहनम् (= वहनसाधनम्, युग्यम्) यस्मिन् तादृशम् । स्त्रीमद्यप्राय-पुरुषार्थम्—स्त्रियः (= नार्यः) मद्यम् (= मदिरा) च प्रायः (= बाहुल्येन) पुरुषार्थः (=जीवनस्य प्रमुखं साध्यम्) यस्मिन् तादृशम् । असृक्-प्रायदेवताबलिम्—असृक् (= रक्तम्) प्रायः (= बाहुल्येन) देवतानाम् (= इष्टदेवानाम्) बलिपूजा = उपहाराश्चार्चनञ्च) यस्मिन् तादृशम् । पशूपहार-प्राणधर्मक्रियम्—पशूनाम् उपहारः (= बलिरूपेण समर्पणम्) प्रायः (= बाहुल्येन) धर्मक्रिया (= धार्मिककृत्यानुष्ठानम्) यस्मिन् तादृशम् । पुनरपि तस्यैव वर्णनमन्यरूपेणापि करोति—आकारमिवेत्यादिना । सर्वनरकाणाम् = सकलनिरयाणाम् आकारम् = स्वरूपम्, इव । सर्वाकुशलानाम् = सकलनाममङ्गलानाम्, कारणम् = = निमित्तम्, इव । सर्वश्मशानानाम्—सकलानां मृतदेहदहनस्थानानाम्, पितृवनानाम्, सन्निवेशम् = वासस्थानम्, इव । सर्वपापानाम् = सकलासुकृतानाम्, पत्तनम् = पुरम्, इव । सर्वयातनानाम् = सकलतीव्रवेदनानाम्, आयतनम् = सदनम्, इव । स्मर्यमाणम् = स्मृतिविषयीक्रियमाणम्, अपि भयङ्करम् = भयजनकम् । श्रूयमाणम् = आकर्ण्यमानम्, अपि, उद्वेगकरम् = मानसिकक्षोभजनकम् । दृश्यमानम् = अवलोक्यमानम्, अपि पापजननम् = असुकृतोत्पादकम् । जन्मकर्मतः = जन्मतः कर्मतश्च उभयरूपेणेति भावः. मलिनतरजनम्—मलिनतराः (= अतिशयेन मलिनाः) जनाः (= लोकाः) यस्मिन् तादृशम् । जनतः = पामरात् नीचजनात् च, नृशंसतर-लोक-

---

थे, धवली = सफेद गायें ही वाहन थे, स्त्रियाँ (अर्थात् इनका भोग) और मदिरा (अर्थात् इनका पान) ही पुरुषार्थ = जीवन का परम लक्ष्य था, देवताओं की बलि-पूजा प्रायः खून से ही होती थी, धर्म का अनुष्ठान प्रायः पशुओं की बलि देना था, जो सभी नरकों के खजाने जैसी, समस्त अमङ्गलों के कारण जैसी, सभी श्मशानों = मरघटों के खेमे जैसी, सभी पापों के नगर जैसी, सभी यातनाओं के घर जैसी थी, जो याद की जाती हुई भी भय उत्पन्न करा देने वाली, सुनी जाती हुई भी व्याकुलता उत्पन्न कराने वाली,देखी जाती हुई भी पाप उत्पन्न करने वाली थी, जिसमें लोग जन्म और कर्म दोनों से ही अत्यन्त मलिन थे, जिसमें लोगों के हृदय जन = नीच पुरुष से भी क्रूरतर थे, जहाँ

जनतो [1]नृशंसतरलोकहृदयम्, लोकहृदयेभ्योपि निघृ णतर[2]सर्वसंव्यवहारसमस्तपुरुषम्, अविशेषाचारबाल-युव-स्थविरम्, अव्यवस्थितगम्यागम्याङ्गनोपभोगम्, [3]अपुण्यकर्मैकापणं पक्कणमपश्यम् ।

दृष्ट्वा च तं तादृशं [4]नरकवासिनोप्युद्वेगकरं समुत्पन्नघृणोऽन्तरात्मन्यकरवम् । अपि नाम सा चाण्डालदारिका दूरत एव मामालोक्योत्पन्नकरुणा मोचयेन्न जातिसदृशमाच-

हृदयम्— नृशंसतरम् (= अतिशयेन क्रूरम्) लोकानाम् (= तत्रत्य-जनानाम्) हृदयम् (= चित्तम्), यस्मिन् तादृशम् । लोकहृदयेभ्यः = अन्यजनानां चित्तेभ्यः, अपि, निघृ णेत्यादिः— निघृ णतरः (= निर्दयतरः) सर्वः (= सकलः) संव्यवहारः (= व्यवहरणम्) येषां तादृशाः समस्ताः (= अखिलाः) पुरुषाः (= लोकाः) यस्मिन् तादृशम् । अविशेषेत्यादिः—अविशेषः (= नास्ति विशेषः = भेदः यस्मिन् तादृशः, सदृश इति भावः) आचारः (= आचरणम्, अनुष्ठानम्) येषां तादृशाः, बालाः (= शिशवः, कुमाराः) युवानः (= तरुणाः) स्थविराः (= वृद्धाः) च यस्मिन् तादृशम् । अव्यवस्थितेत्यादिः—अव्यवस्थितः (= व्यवस्थाहीनः, अमर्यादितः) गम्याः (= उपभोगयोग्याः) अगम्याः (= उपभोगायोग्याः) च याः अङ्गनाः (= रमण्यः) तासाम् उपभोगः (= सेवनम्) यस्मिन् तादृशम् । अपुण्यकर्मैकापणम् = अपुण्यकर्मणाम् (= असुकृतकृत्यानाम्) एकम् (= अद्वितीयम्) आपणम् (= हट्टम्), पक्कणम् = शबरालयम्, अहं शुकः, अपश्यम् = व्यलोकयम् । बाणभट्टेन पूर्वार्द्धे शबरसेनापतेर्वर्णनं कृतम् । भूषणभट्टेन तद्रीत्याऽत्र शबरालयस्य = पक्कणस्य वर्णनं कृत्वा तस्य पूर्तिरपि विहिता ।

दृष्ट्वेति । नरकवासिनः = निरयनिवसनशीलस्य, अपि, जनस्य उद्वेगकरम् = उद्वेगजनकम्, तादृशम् = पूर्वोक्तस्वरूपम्, तम् = पक्कणम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, समुत्पन्नघृणः = समुत्पन्ना (= सञ्जाता) घृणा (= जुगुप्सा) यस्य तादृशः, अहम् = शुकः, अन्तरात्मनि = चेतसि, अकरवम् = कृतवान्, विचारयामासेत्यर्थः । अपि नाम = इदं सम्भावनायाम्, सा चाण्डाल-दारिका = चण्डालपुत्री, दूरतः = विप्रकृष्टाद्, एव, माम् = शुकम् आलोक्य = दृष्ट्वा, उत्पन्नकरुणा—उत्पन्ना (= सञ्जाता) करुणा (= दया) यस्याः सा तादृशी सती, मोचयेत् = मुक्तिं कारयेत् जातिसदृशम् = चाण्डालजात्यनुकूलं क्रूरम्, न = नैव, आचरिष्यति =

के लोगों के सभी व्यवहार (साधारण) लोगों के हृदयों से भी अधिक निदर्यतापूर्ण थे, जहाँ बालक, युवक और बूढ़े सभी का आचरण एक जैसा था, जहाँ स्त्रियों के उपभोग में गम्या-अगम्या ऐसी कोई मर्यादा नहीं थी,जो केवल पापों की ही एकमात्र बाजार थी।(ऐसी पक्कण=चण्डालों की बस्ती देखी।)

नरक में रहने वालों के लिए भी उद्वेग पैदा कर देने वाले उस प्रकार के उस पक्कण— चण्डालों की बस्ती को देखकर उत्पन्न हुई घृणा वाला मैं मन में सोचने लगा—"हो सकता है कि वह चाण्डालकन्या दूर से ही मुझे देखकर दया करके मुझे छुड़वा दे, अपनी क्रूर जाति के सदृश व्यवहार

१. निःस्पर्शता । २. सर्वव्यवहार ।
३. समस्तपुरुष, एककारण । ४. नरकवासिनाम् ।

रिष्यति । भविष्यन्त्येवंविधानि मे पुण्यानि । न निमेषमप्यत्र पदं कुर्याम् ।' इत्येवं कृताशंसमेव मां नीत्वा स चाण्डालस्तदा 'दुर्दर्शनाकारवेषायै[1] दूरतः[2] स्थितः प्रणम्य 'एष स मया प्राप्तः' इति तस्यै चाण्डालदारिकायै दर्शितवान् । सा तु प्रहृष्टतरवदना 'शोभनं कृतम्', इति तमभिधाय तत्करात्स्वकरयुगे[3]नादाय माम्, 'आः पुत्रक ! प्राप्तोसि, क्वापरं गम्यते, व्यपनयामि ते सर्वमिदं कामचारित्वम्' इत्यभिदधानैव धावमानचण्डाल[4]बालकोपनीतेऽर्धा[5]श्यानलोमशदुर्गन्धिगोचर्मवध्रिकावनद्धे दृढबद्धदारुमय-पानभोजनपात्रे मनागुद्घा-

---

व्यवहरिष्यति । मे = मम शुकस्य, एवंविधानि (= एतादृशानि) पुण्यानि = सुकृतानि, भविष्यन्ति = सम्पत्स्यन्ते ? एवं सति, अत्र = पक्कणे, निमेषम् = अक्षिस्पन्दमात्रम्, अपि, पदम् = स्थानम्, न, कुर्याम् = विदध्याम्—इति एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, कृताशंसम् = विहिताभिलाषम्, एव, माम् = शुकम्, नीत्वा, सः = पूर्ववर्णितः, चण्डालः, तदा = तस्मिन् समये, दुर्दर्शेत्यादिः—दुर्दर्शः (= द्रष्टुमयोग्यः) आकारः (= स्वरूपम्) वेषः (= वसनादिकम्) च यस्याः तादृश्यै तस्यै, दूरतः, स्थितः = कृतावस्थितिः, एव, प्रणम्य = प्रणतिम्, कृत्वा = विधाय, एषः = अयम्, सः = गुणगणविशिष्टः शुकः, प्राप्तः = उपलब्धः, इति = इत्थमुक्त्वा, तस्यै, चाण्डालदारिकायै, दर्शितवान् = दर्शयामास । सा = चाण्डालकन्या, तु, प्रहृष्टतरवदना = अतिशयमुदितानना, सती, शोभनम् = सुन्दरम्, शुभम्, कृतम् = विहितम्, इति तम् = चण्डालम्, अभिधाय = उक्त्वा, तत्करात् = तस्य हस्तात्, स्वकरयुगेन = स्वकीयपाणियुगलेन, माम् = शुकम्, आदाय = गृहीत्वा, आः = इदं हर्षातिरेके, पुत्रक ! = प्रिय पुत्र ! प्राप्तः = लब्धः, असि । साम्प्रतम् = इदानीम्, क्व = कुत्र, अपरम् = भिन्नम्, स्थानमिति शेषः गम्यते = गन्तुं शक्यते, ते = तव, सर्वम्=सकलम्, इदम् = दृश्यमानम्, कामचारित्वम् = स्वेच्छाचरणम्, व्यपनयामि = दूरीकरोमि इति, अभिदधाना = कथयन्ती, एव, धावमानेत्यादिः—धावमाना (= तीव्रगत्या चलन्तः) ये चाण्डालबालकाः (= चण्डालार्भकाः) तैः उपनीते (= समीपमानीते), अर्धेत्यादिः—अर्धम् (= सामि) यथा स्यात् तथा आश्यानम् (= शुष्कम्) लोमशम् (= रोमयुक्तम्) च दुर्गन्धि (= दूषितगन्धयुक्तम्) च यत् यत् गोचर्म (= धेनोर्वृषभस्य वा चर्म = देहत्वक्) तस्य या वध्रिका (नद्ध्री, रज्जुरिति प्रसिद्धा) तया बद्धे (= नद्धे), दृढेत्यादिः—दृढम् (= सम्यग्रूपेण) यथा स्यात् तथा बद्धानि (= बन्धनरूपेण स्थापितानि) दारुमयानि (= काष्ठमयानि) पानस्य (= सलिलपानस्य) भोजनस्य (= अशनस्य) च पात्राणि (= भाण्डानि) यस्मिन् तादृशे, मनागुद्घाटितद्वारे—मनाक् (= ईषद्)

न करे । क्या इस प्रकार के मेरे पुण्य हो सकते हैं ? तब तो मैं यहाँ पलक भर के लिये भी पैर नही रक्खूं ?'' इस प्रकार से सोचते हुए ही मुझे लेकर वह चण्डाल दूर से ही खड़ा होकर उस दुर्दर्श=विकृत = भद्दी आकृति और वेशभूषा वाली को प्रणाम करके 'यह तोता मैंने पा लिया है' ऐसा कहकर उस चण्डाल कन्या को दिखाया । वह अत्यन्त प्रसन्न मुखवाली होती हुई 'बहुत अच्छा किया' ऐसा उस (चण्डाल) से कहकर, उसके हाथ से अपने दोनों हाथों द्वारा पकड़ कर, लेकर, 'ओह पुत्र ! प्राप्त हो गये हो । अब आगे अन्यत्र कहाँ जाओगे । तुम्हारी यह सारी स्वच्छन्दता समाप्त कर देती हूँ' ऐसा कहती हुई ही दौड़ते हुए चण्डाल बालकों द्वारा पास में लाये गये, आधे भाग में सूखे रोयेंदार तथा दुर्गन्ध युक्त बैल या गाय के चमड़े (तांत) की डोरियों से कस कर बाँधे गये, दृढ़ता के साथ (कसकर) बाँधे गये पानी पीने और भोजन के लकड़ी के पात्रों वाले, कुछ ही

---

१. अशुद्धतरवेषायै । २. दूरस्थित, दूरत एवावस्थित । ३. युगलेन ।
४. बहुबालक० । ५. अर्धश्यान ।

टितद्वारे दारुपञ्जरे समं महाश्वेतावलोकनमनोरथैराक्षिप्यार्गलित[1]द्वारा सा [2]मामवदत् यथा—'अत्र [3]निवृ^तः सम्प्रति तिष्ठ।' इत्यभिधाय तूष्णीमस्थात्।

अहं तु तथा संरुद्ध[4]श्चेतस्यकरवम्—[5]महासंकटे पतितोऽस्मि। यदि तावदावेदितात्मावस्थः शिरसा प्रणिपत्य मुक्तये विज्ञापयाम्येनां तदा य एव मे गुणो दोषतामापद्य बन्धायोपजातः स एव संवर्धितो भवति। 'साधु [6]जल्पती'त्येवाहमनया ग्राहितः। [7]कास्या

उद्घाटितम् (= अनावृतं विहितम्) द्वारम् (= प्रवेशमार्गः) यस्मिन् तादृशे, दारुपञ्जरे = काष्ठमय–पक्षि–पिञ्जरे, महाश्वेतावलोकनमनोरथैः = स्ववल्लभादर्शनाभिलाषैः, समम् = साधम्, एव, आक्षिप्य = मध्येक्षिप्त्वा, संस्थाप्य, अर्गलितद्वारा—अर्गलितम् (= अर्गलया बद्धम्) द्वारम् (= गमनागमनमार्गः) यया सा तादृशी सती, माम् = शुकम्, यथा = एवं प्रकारेण अवदत् = अकथयत्, 'अत्र = अस्मिन् पिञ्जरे, निवृ^तः = शान्तः, सुखी, सन्, सम्प्रति = इदानीम्, तिष्ठ = उपविश, इति, अभिधाय = उक्त्वा, तूष्णीम् = मौनम्, अस्थात् = स्थितवती।

अहमिति। अहम् = शुकः, तु, तथा = तेन प्रकारेण, संरुद्धः = सन्निबद्धः, चेतसि = मनसि, अकरवम् = व्यचारयम्। किं तदिति वर्णयति—महासंकटे = महत्यां विपत्तौ, पतितः = निपतितः, भ्रष्टः, अस्मि = वर्ते। यदि = चेत्, तावत् = आदौ, आवेदितात्मावस्थः—आवेदिता (= सूचिता) आत्मनः (= स्वस्य) अवस्था (= दशा) येन स तादृशः सन्, शिरसा = उत्तमाङ्गेन, प्रणिपत्य = प्रणतिं कृत्वा, मुक्तये = मोक्षाय, एनाम् = चाण्डालकन्याम्, विज्ञापयामि = निवेदयामि, तदा = तर्हि, मे = मम शुकस्य, यः, एव, गुणः = वैशिष्ट्यम्, मनुष्यवाण्या भाषित्वम् दोषताम् = दूषणत्वम्, आपद्य = सम्प्राप्य, बन्धाय = बन्धनाय, उपजातः = सम्भूतः, सः = गुणः, एव, संवर्धितः = समेधितः, भवति = जायते। कथमिदमिति चेतत्राह—'साधु = सुन्दरं यथा स्यात् तथा, जल्पति = वदति, इति एव = अस्मात् कारणादेव, अनया = चण्डालकन्यया, अहम् = शुकः, ग्राहितः = ग्रहणं प्रापितः, मदीयया = मामकीनया, बन्धनपीडया =

खुले दरवाजे वाले लकड़ी के पिंजरे में महाश्वेता के दर्शन करने के मनोरथों के साथ ही साथ डालकर, दरवाजा बन्द करके वह कहने लगी—"अब यहाँ आराम से शान्त होकर बैठो।' यह कहने के बाद चुपचाप बैठ गई।

उस प्रकार से बन्द किया गया मैं मन में सोचने लगा—"मैं तो बहुत बड़े संकट में गिर गया हूँ। यदि अब अपनी सारी (वास्तविक) अवस्था को बताता हुआ सिर से प्रणाम करके मुक्ति के लिये इससे प्रार्थना करता हूँ, तब तो मेरा जो गुण (मनुष्यवाणी में बोलने का कौशल) दोषरूपता को प्राप्तकर मेरे बन्धन कराने का कारण बन गया, वही दोष बढ़ जाता है। क्योंकि 'बहुत सुन्दर बोलता

---

१. द्वाराविधाना। २. समयवदत्,समावेदयत्। ३. संनिवृत्तः। ४. पञ्जरे संरुद्धः।
५. अहो संकटे। ६. संजल्पते। ७. यस्याः।

मदीयया बन्धनपीडया पीडा ? नाहमस्यास्तनयो न भ्राता न बन्धुः। अथ मौनमालम्ब्य तिष्ठामि। [1]तत्रापि शाठ्य[2]प्रकुपिता कदाचिदितोऽप्यधिका[3]मवस्थां प्रापयति माम्। नृशंसतमा हि जातिरियम्। अथवा वरमितोऽप्यधिकमुपजातं[4] न पुनश्चाण्डालैः सह वागपि विमिश्रता। अपि च, गृहीतमौनं निर्वेदात्कदाचिन्मुञ्चत्येव। वदंस्तु पुनर्न मोक्तव्य एवाहमनया। अपि च, यद्दिव्यलोक[5]भ्रंशो यन्मर्त्यलोके जन्म यत्तिर्य[6]ग्जातौ पतनं यच्चाण्डालहस्तागमनं यच्चेदमेवंविधं पञ्जरबन्धदुःखं सर्वं एवायमनियतेन्द्रियत्वस्यैव

न्द्बनव्यथया, अस्याः = कन्यकायाः, का, पीडा = व्यथा ? न कापीति भावः। यतो हि, अहम् = शुकः, अस्याः, न, तनयः = पुत्रः, न भ्राता = सहोदरः, न, वा, बन्धुः = आत्मीयजनः। अथ = पक्षान्तरे, मौनम् = तूष्णींभावम्, आलम्ब्य = गृहीत्वा, तिष्ठामि, तत्रापि = तस्यां स्थितावपि, शाठ्यप्रकुपिता = मम शठतया क्रोधमुपगता, इतः = वर्तमानायाः, अपि, अधिकाम् = प्रचुरतराम्, अवस्थाम् = दुर्दशाम्, माम् = शुकम्, प्रापयति = प्राह्णयति। हि = यतः, इयम् = एषा, जातिः = चाण्डालजातिः, नृशंसतमा = क्रूरतमा, भवति। अथवा, इतः = वर्तमानात्, अपि, अधिकम्, उपजातम् = उत्पन्नम्, कष्टमिति शेषः, वरम् = समीचीनम्, पुनः = परन्तु, चाण्डालैः, सह, वाग् = वाणी, अपि, मिश्रिता = मिलिता, न, वरमिति शेषः। अपि च = अन्यच्च, गृहीतमौनम् = धृततूष्णीम्भावम् माम् = शुकम्, कदाचित् = कथञ्चित्, निर्वेदात् = स्वाज्ञाया अवमानेन जनितखेदात्, मुञ्चति = त्यजति, एव। तु = परन्तु, वदन् = भाषमाणः, अहम् = शुकः, अनया = कन्यया, न = नैव, मोक्तव्यः = मोचनीयः, एव। अपि च = इदमपि विचारणीयम्, यत्, दिव्यलोकभ्रंशः = स्वर्गलोकात् पतनम्, चन्द्रशापेनेति शेषः, यत् च, मर्त्यलोके = भूलोके, जन्म = जनिः, वैशम्पायनरूपेणेति भावः, यत्, तिर्यग्जाति-पतनम् = पक्षियोनौ निपतनम्, शुकरूपेणेति भावः, यत्, चाण्डालहस्तागमनम् = चाण्डालकरे सम्प्राप्तिः, यत्, च, एवंविधम् = एतादृशम्, पञ्जरबन्धदुःखम् = पिञ्जरबन्धनकष्टम्, अयम् = एषः, सर्वः = सकलः, अनियतेन्द्रियत्वस्य = अनियतानि (= न नियन्त्रितानि) इन्द्रियाणि

है'—इसी कारण तो इसने मुझे पकड़वाया है। मेरी बन्धन-पीड़ा से इसकी क्या पीड़ा (होती होगी)? क्योंकि मैं न तो इसका बेटा हूँ, न भाई और न बन्धु। यदि मौन धारण करके बैठ जाता हूँ, कुछ नहीं बोलता हूँ तब भी मेरी शठता से नाराज होकर यह (लड़की) इससे भी अधिक (बुरी) दशा में मुझे करवा सकती है। क्योंकि यह चाण्डाल जाति बहुत ही क्रूर होती है। अथवा इससे भी अधिक बुरी हालत हो जाना ठीक है अपेक्षा इसके कि इन चाण्डालों की वाणी से वाणी मिलायी जाय, अर्थात् इनसे बोलने से अच्छा है और अधिक बुरा हाल सहन कर लेना। यह भी सम्भव है कि मौन धारण करने वाले मुझे यह कदाचित् घृणा या दुःख से छोड़ ही दे। लेकिन बोलते हुए मुझे तो यह नहीं ही छोड़ेगी। और भी, यह जो मेरा दिव्यलोक से पतन, जो मनुष्य लोक में जन्म, जो पक्षि-योनि में पतन, जो चाण्डाल के हाथ में आना, और जो इस प्रकार का पिंजड़े में बँध जाने का

---

१. तथापि। २. प्रकोपिता। ३. अतोऽप्यधिककष्टताम्।
४. उपजातम्। ५. दिव्यलोकतो भ्रंशः। ६. तिर्यग्योनौ।

दोषः। तत्किमेकया[1] वाचा। सर्वेन्द्रियाण्येव नियमयामि।' इति निश्चित्य मौनग्रहणमकरवम्। आलप्यमानोऽप्यातर्ज्यमानोऽप्याहन्यमानोऽपि त्रुट्यमानोऽपि च बलान्न किंचिदप्यवदम्। केवलमुच्चैश्चीत्कारमेवामुञ्चम्। उपनीतेऽपि च पानाशने तं दिवसमनशनेनैवात्यवाहयम्।

[2]अन्येद्युश्चातिक्रामत्यशनकाले मे [3]दूयमाने हृदये च सा स्वपाणिनोपनीय नानाविधानि पक्वान्यपक्वानि च फलानि सुरभिशीतलं च पानीयमप्रतिपन्नतदुपभोगं[4] मामारोपि-

(= हृषीकाणि) येन तस्य भावस्तत्त्वम् तस्य, एव, दोषः = दूषणम् दुष्प्रभावः इति भावः। तत् = तस्मात्, एकया = अद्वितीयया, वाचा = वाण्या, किम् ? न किमपीति भावः। सर्वेन्द्रियाणि = समस्तानि इन्द्रियाणि, एव, नियमयामि = नियन्त्रितानि करोमि, इति = इत्थम् निश्चित्य = निर्णीय, मौनग्रहणम् = तूष्णीभावस्य स्वीकरणम्, अकरवम् = अकार्षम्। बलात् = हठात्, शक्तेः प्रयोगात्, आलप्यमानः = परैः सम्भाष्यमाणः, अपि, आतर्ज्यमानः = सर्वतः तर्जनां प्राप्यमाणः, आहन्यमानः = ताड्यमानः, अपि, त्रुट्यमान = केशादिषु छिद्यमानः, अपि, अहम्, किञ्चित्, अपि, न, अवदम् = उक्तवान्। केवलम् = तन्मात्रम्, उच्चैः = उच्चस्वरेण, चीत्कारम् = चीदितिशब्दोच्चारणम्, एव, अमुञ्चम् = अत्याजम्। पानाशने = जले भक्ष्ये च, समानीते = सम्प्रापिते, सम्मुखं स्थापिते, अपि, सति, तम्, दिवसम् = दिनम्, अनशनेन = अभोजनेन, एव, अत्यवाहयम् = व्यतीतं कृतवान्। 'तं दिवसमि'त्यत्र कालात्यन्तसंयोगे द्वितीया।

अन्येद्युरिति। अन्येद्युः = अपरस्मिन् दिवसे, अशनकाले = भोजनस्य समये, अतिक्रामति = व्यतिगच्छति, सति, मे = मम शुकस्य, हृदये = चित्ते, दूयमाने = खिन्नतां प्राप्यमाणे च, सति, सा = चाण्डालकन्या, नानाविधानि = बहुप्रकाराणि, पक्वानि = उचितसमये परिपाकं प्राप्तानि, अपक्वानि = अपरिपाकं प्राप्तानि, फलानि, सुरभि-शीतलम् = सुगन्धयुक्तं शीतं च, पानीयम् = जलम्, स्वपाणिना = निजकरेण, एव, उपनीय = समादाय, अप्रतिपन्नतदुपभोगम्—अप्रतिपन्नः (= न विहितः) तेषाम् (= भोक्ष्यपेयादिपदार्थानाम्) उपभोगः (= ग्रहणम्) येन तं तादृशम्, माम् = शुकम्, आरोपितलोचना—आरोपिते (= संस्थापिते मयीति

दुःख है—वह सब इन्द्रियों को वश में न रखने का ही दोष है। तब केवल अकेली वाणी को ही क्यों, सभी इन्द्रियों को वश में कर लेता हूँ।" ऐसा निश्चय करके मैंने मौन धारण कर लिया। जबरदस्ती बुलवाया जाता हुआ भी, डरवाया जाता हुआ भी, पीटा जाता हुआ भी, तोड़ा (नोचा) जाता हुआ भी मैं कुछ नहीं बोला। केवल जोर-जोर से चीत्कार ही छोड़ता रहा, चिंचियाता ही रहा। पानी और भोजन लाये जाने पर भी बिना कुछ खाये पीये ही वह दिन बिता दिया।

दूसरे दिन मेरे भोजन का समय बीत जाने पर तथा हृदय के दुःखी होने पर वह कन्या अपने ही हाथ से अनेक प्रकार के पके और कच्चे फल तथा सुगन्धित और शीतल पानी लाकर उन

१. तत् किं मम। २. अपरेद्युः।
३. दूयमानहृदयेन। ४. तदुपयोगम्।

लोचना[1] स्निह्यन्तीवावोचत्—'क्षुत्पिपासार्दितानां[2] हि पशुपक्षिणां निर्विचार[3]चित्तवृत्तीनामुपनतेष्वाहारेष्वनुपयोगो न सम्भवत्येव। तद्यद्येवंविधस्त्वं कोऽपि भोज्याभोज्यविवेककारी पूर्वजातिस्मरोऽस्मदीयमाहारं [4]परिहरसि तथापि तावद्भक्ष्याभक्ष्यविवेकरहितायां तिर्यग्जातौ वर्तमानस्य ते किं वाभक्ष्यं यन्न भक्षयसि? येन चोत्कृष्टतमां जातिं प्राप्यात्मनैवेदृशं कर्म कृतं येन तिर्यग्योनौ पतितः[5] स किमपरं विचारयसि? प्रथममेवात्मा

शेषः) लोचने (= नेत्रे) यया सा तादृशी, सा स्निह्यन्ती = स्नेहं कुर्वाणा, इव, अवोचत् = उक्तवती। सा किमवोचदिति वर्णयति—क्षुदित्यादिना। क्षुत्-पिपासार्दितानाम्—क्षुधा (= बुभुक्षया) पिपासया (= पानाभिलाषेण) च अर्दितानाम् (= पीडितानाम्), पशुपक्षिणाम् = तिर्यश्चादीनाम्, निर्विचार-चित्तवृत्तीनाम्—निर्विचारा (= विवेचनशून्या) चित्तस्य (= मनसः) वृत्तिः (= व्यापारः) येषां तादृशानाम्, उपनतेषु = सम्मुखमानीतेषु स्थापितेषु, आहारेषु = भोज्यपदार्थेषु, अनुपयोगः = भोगाभावः, न, सम्भवति = सम्भवो न भवति, एव। ते स्वसम्मुखे निहितेषु भोज्येषु स्वेच्छया भोक्तुं प्रवर्तन्ते एवेति सर्वत्र दृश्यते। तत् = तस्मात्, यदि = चेत् एवं विधः = एतादृशः, त्वम् = भवान्, कोऽपि = मयाऽज्ञातः, भोज्येत्यादि—भोज्यम् (= भोजनार्हम्) अभोज्यम् (= भोजनानर्हम्) च तयोः यो विवेकः (= पार्थक्येन ज्ञानम्) तं करोति एवंशीलः, पूर्वजातिस्मरः = पूर्वकालिकजन्म-विषयकस्मरणवान् अस्मदीयम् = आस्माकीनम्, आहारम् = भोजनम्, परिहरसि = वर्जयसि, तर्हि = तस्यां स्थितावपि, तावत् = वाक्यालङ्कारे, निश्चये वा, भक्ष्याभक्ष्यविवेकरहितायाम् = भोज्याभोज्यज्ञानशून्यायाम्, तिर्यक्जातौ = पशुयोनौ, वर्तमानस्य = विद्यमानस्य, ते = तव शुकस्य, किम्, वा, अभक्ष्यम् = यत् = यस्मात्, न = नैव, भक्षयसि = खादसि? अपि तु पक्षिणा त्वया सर्वमेव भक्षणीयमिति भावः। येन = प्राणिना त्वयेत्यर्थः, उत्कृष्टतमाम् = अतिशयेनोत्कर्षविशिष्टाम्, जातिम् = जनिम्, प्राप्य = लब्ध्वा, आत्मना = स्वयमेव, ईदृशम् = एतादृशम्, कर्म = कुत्सितं कृत्यम्, कृतम् = विहितम्, येन = हेतुना, तिर्यग्योनौ = पक्षियोनौ, पतितः = भ्रष्टः, सः = त्वम्, अपरम् = अन्यत्, किम्, विचारयसि = चिन्तयसि, एवञ्च त्वया न किमपि विचारणीयमिति

(फलों तथा जल) का भोग न करने (न खाने)वाले मेरे ऊपर (स्नेह से)आँखे गड़ाये हुई,प्यार करती हुई सी कहने लगी—"विचारशून्य वृत्ति वाले भूख प्यास से व्याकुल पशु तथा पक्षियों का सामने लाये गये भोजन का उपयोग न करना सम्भव नहीं है अर्थात् सामने लाये गये भोजन को वे लेते ही हैं। इस कारण यदि इस प्रकार के तुम कोई भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार करने वाले, पूर्वजन्म का स्मरण करने वाले होकर मेरे दिये गये भोजन को छोड़ते हो तो भी भक्ष्य तथा अभक्ष्य के ज्ञान से रहित इस पक्षी की योनि में वर्तमान तुम्हारे लिये यहाँ क्या अभक्ष्य है जो तुम नहीं खा रहे हो। जिसने सबसे ऊँची जाति (मुनिजन्म) प्राप्त करके स्वयं ही (ऐसा) निकृष्ट कर्म किया है जिससे पक्षियोनि में गिरा, जन्मा हो, वह तुम अब दूसरा ही विचार कर रहे हो, अर्थात् तुम्हें अब कुछ नहीं सोचना चाहिए। [इस पक्षि-योनि में गिरने से] पहले ही अपने को ज्ञान में क्यों नहीं रखा? अब तो अपने कर्मफल के अनुसार प्राप्त हुई योनि के अनुसार आचरण करते हुए तुम्हें कोई दोष

---

१. आरोपित, आरोधित०। २. अर्चितानाम्। ३. निर्विकार।
४. परिहासी। ५. स्वम्।

न विवेके[1] स्थापितः। अधुना स्वकर्मोपात्तजातिसदृशमाचरतस्ते नास्त्येव दोषः। येषां [2]च भक्ष्याभक्ष्यनियमोस्ति तेषामप्यापत्काले प्राणानां सन्धारणमभक्ष्योपयोगेनापि तावद्विहितम्। किं पुनस्त्वादृशस्य। न चेदृशं किंचिदप्याहाराय[3] मयोपनीतं यादृशेन [4]चाण्डालाशनशङ्का समुत्पद्यते। फलानि तु ततोपि प्रतिगृह्यन्त एव। पानीयमपि चाण्डालभाण्डादपि भुवि पतितं पवित्रमेवेत्येवं जनः कथयति। तत्किमर्थंमात्मानं क्षुधा पिपासया वा पातयसि[5], यन्न भक्षयस्यमूनि मुनिजनोचितानि वनफलानि, न पिबसि वा पानीयम् ?'

भावः। प्रथमम् = निकृष्टयोनौ पतनात् प्राक्, एव, आत्मा, विवेके = उचितानुचितविचारे, न = नैव, स्थापितः = निहितः ? अधुना = अस्मिन् समये, स्वकर्मेत्यादिः—स्वकर्मभिः (= निजकृत्यैः) उपात्ता (= प्राप्ता) या जातिः (= जन्म) तस्याः सदृशम् (= अनुकूलम्) आचरतः (= आचरणं) कुर्वतः, भक्ष्याभक्ष्यविचारमकृत्वा भोजनं विदधतः, ते = तव शुकस्य, दोषः = दूषणम् प्रायश्चित्तम्, न, अस्ति = वर्तते, एव। येषाम् = विशिष्टानां प्राणिनाम्, भक्ष्याभक्ष्यनियमः = भोज्याभोज्यमर्यादा, अस्ति, तेषाम् = जनानाम्, अपि आपत्काले = विपत्तिसमये, अभक्ष्योपयोगेन = अभोज्यपदार्थग्रहणेन, अपि, प्राणानाम् = असूनाम्, सन्धारणम् = परिपालनम् तावत्, विहितम् = शास्त्रकारैः कृतम्, त्वादृशस्य = भवादृशस्य, पुनः, किम् ? न किमपि कथनीयमिति भावः। आहाराय = भोजनाय, मया = चाण्डालकन्यया, किञ्चित्, अपि, ईदृशम् = एतादृशम्, न = नैव, उपनीतम् = सम्मुखे प्रापितम्, यादृशेन = यत्प्रकारकेण भोजनेन, चाण्डालाशनशङ्का = चाण्डालसम्बन्धि-भोजनस्य आरेका, समुत्पद्यते = सञ्जायते। फलानि = वृक्षाद्युद्भूतानि, तु, ततः = चाण्डालाद्, अपि, गृह्यन्ते = स्वीक्रियन्ते, एव। पानीयम् = जलम्, अपि, चाण्डालभाण्डात् = चाण्डालपात्रात्, अपि, भुवि = धरायाम्, पतितम् = क्षिप्तम् पवित्रम् = पूतम्, एव, भवति; इति = इत्थम्, जनः = लोकः, कथयति = वदति। तत् = तस्मात्, किमर्थम् = कस्मात् कारणात् प्रयोजनाद्, वा, आत्मानम् = स्वम्, क्षुधा = बुभुक्षया, पिपासया = पानेच्छया च, पातयसि = पतनं कारयसि, घातयसीति भावः। यत्, मुनिजनोचितानि = मुनिलोकस्यापि योग्यानि, अमूनि = एतानि, वनफलानि, न, भक्षयसि = खादसि, वा = अथवा,

---

नहीं है। जिन (विवेकियों) के लिये भक्ष्य और अभक्ष्य का नियम है उनके लिए भी आपत्ति के समय अभक्ष्य वस्तुओं के उपयोग द्वारा भी प्राणों का धारण रखना (शास्त्रों में) विहित ही है। फिर तुम्हारे जैसे (पक्षी योनि में उत्पन्न) के लिये कहना ही क्या ? और इसके अतिरिक्त तुम्हारे भोजन के लिए मैं ऐसा कुछ भी नहीं लाई हूँ जिससे चाण्डाल की [स्पर्श की गई] वस्तु को खाने की शंका उत्पन्न होती हो। फिर फल तो चाण्डालों से भी ले ही लिये जाते हैं। जल भी, चाण्डाल के बर्तन से जमीन में गिरा हुआ, पवित्र ही होता है, ऐसा (विद्वान्) लोग कहते हैं। तब फिर किस लिये भूख और प्यास से अपनी आत्मा को गिरा रहे हो, मार डाल रहें हो, जो कि तुम मुनिजनों के लिये (खाने) योग्य इन जंगली फलों को नहीं खा रहे हो और न पानी पी रहे हो ?" मैं तो

---

१. विवेकेन। २. अपि च। ३. अपरिहाराय।
४. चण्डालाशनेन शंका, चाण्डालाशनाशंका। ५. आयासयसि।

इति। अहं तु तेन तस्याश्चाण्डालजात्यनुचितेन वचसा विवेकेन च विस्मितान्तरात्मा 'तथे'ति प्रतिपद्य शापनिघ्नो घृणां परित्यज्य जीविततृष्णया क्षुत्पिपासोपशमायाशनक्रियामङ्गीकृतवानस्मि। मौनं तु पुनर्नात्याक्षम्।

एवमतिक्रामति च काले क्रमेण तरुणतामापन्ने मय्येकदा प्रभातायां यामिन्यामुन्मीलितलोचनोऽद्राक्षमस्मिन्कनकपञ्जरे स्थितमात्मानम्[1], सापि चाण्डालदारिका यादृशी[2] तादृशी देवेनापि दृष्टैव। सकलमेव तत्पक्कणममरपुरसदृशमालोक्य चापगतचाण्डालवस-

---

पानीयम् = जलम् न, पिबसि = पानं करोषि, इतिः = कथनसमाप्तौ। अहम् = शुकः, तुः, तस्याः = चाण्डालकन्यायाः, चाण्डालजात्यनुचितेन = चाण्डालजातेरयोग्येन, तेन, वचसा = वचनेन, विवेकेन = शास्त्रीय ज्ञानेन, च, विस्मितान्तरात्मा—विस्मितः (= आश्चर्यमधिगतः) आत्मा (= चित्तम्) यस्य स तादृशः, सन्, 'तथा' = एवमेव भवत्या यदुक्तं तत् समीचीनमेव, इति, प्रतिपद्य = स्वीकृत्य, शापनिघ्नः = शापपराधीनः सन्, घृणाम् = चाण्डालस्पर्शजनितां जुगुप्साम्, परित्यज्य = विहाय, जीविततृष्णया = जीवनस्य वाञ्छया, क्षुत्पिपासोपशमाय = बुभुक्षापानाभिलाषशान्त्यै, अशनक्रियाम् = भोजनकार्यम्, अङ्गीकृतवान् = स्वीकृतवान् आसम्। पुनः, तु = परन्तु, मौनम् = तूष्णीम्भावम्, न, अत्याक्षम् = त्यक्तवान्। भोजनं कृत्वापि मौनी एवातिष्ठमित्याशयः।

एवमिति। एवम् = अनेन प्रकारेण, काले = समये, क्रमेण = परिपाट्या, अतिक्रामति = व्यतिगच्छति सति, तरुणताम् = यौवनम्, आपन्ने = प्राप्ते सति, मयि, एकदा = एकस्मिन् समये, यामिन्याम् = निशायाम्, प्रभातायाम् = प्रभातरूपेण परिणतायाम्, उन्मीलितलोचनः—उन्मीलिते (= उद्घाटिते) लोचने (= नेत्रे) येन स तादृशः, अहं शुकः, अस्मिन् = भवतां समक्षं विद्यमाने, कनकपिञ्जरे = स्वर्णमय-पञ्जरे, स्थितम् = विद्यमानम्, स्वाम् = आत्मानम्, अद्राक्षम् = दृष्टवान्। सा, चाण्डालदारिका = चाण्डालकन्यका, यादृशी = यत्प्रकारा, तादृशी = तत्प्रकारा, देवेनापि = भवता शूद्रकेण वसुधाधिपेनापि, दृष्टा = विलोकिता, एव। एवञ्च तस्याः स्वरूपादिविषये न किञ्चिदपि वर्णनीयमिति भावः। सकलम् = सर्वम्, एव,

---

उस कन्या की चाण्डाल जाति की अयोग्य उस बात से और विवेक के आश्चर्यचकित होता हुआ—"ऐसा ही सही" ऐसा स्वीकार करके, शाप के वशीभूत होता हुआ, घृणा को छोड़कर जीवित रहने की लालसा से भूख और प्यास शान्त करने (मिटाने) के लिए भोजन करना अङ्गीकार कर बैठा, लेकिन अपना मौन नहीं छोड़ा।

इस प्रकार समय बीतने पर जब मैं क्रमशः (धीरे-धीरे) तरुण हो गया तब एक बार रात बीत जाने पर आँखे खोलते ही इस सोने के पिंजरे में अपने को पड़ा हुआ देखा, और वह चाण्डालकन्या भी जैसी, वैसी तो श्रीमान ने भी देखी ही है। उस समस्त पक्कण-शबरालय को अमरपुर=स्वर्ग के समान देखकर, चाण्डालों की बस्ती में रहने की उद्विग्नता दूर किये हुए, आश्चर्य से चकित

---

१. स्थितिमापन्नमात्मानम्। २. चाण्डालदारिकामीदृशीं यादृशी देवेनापि दृष्टैव, चाण्डालदारिकामीदृशी सापि चाण्डालकन्यका यादृशी देवेन दृष्टैव।

तिसंवेगो विस्मितान्तरात्मा 'किमेतदि'ति 'कुतूहलात्प्रष्टुकामो यावन्न परित्यजाम्येव मौनं तावदेषा मामादाय देवपादमूलमायाता। तत्केयं, किमर्थमनया चाण्डालतात्मनः ख्यापिता, किमर्थं वाहं बद्धः, बद्धो वा किमर्थमिहानीतः ?' इत्यत्र वस्तुन्यहमपि देव इवानपगतकुतूहल एव' इति।

राजा तु तच्छ्रुत्वा समुपजाताभ्यधिककुतूहलस्तदाह्वानाय पुरःस्थितां प्रतीहारी-मादिदेश[2]। [3]नचिरादेव तयोपदिश्यानमार्गा प्रविश्य सा पुरस्तादूर्ध्वस्थितैव राजानमभि-

---

तत् = पूर्वोक्तम्, पक्कणम् = शबरालयम्, अमरपुरसदृशम् = स्वर्गतुल्यम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, च, अपगतेत्यादिः—अपगतः (= दूरीभूतः) चाण्डालेषु (= शबरेषु) वसतेः (= सहावस्थानस्य) संवेगः (= उद्वेगः, व्याकुलता) यस्य स तादृशः, विस्मितान्तरात्मा—विस्मितः (= आश्चर्यचकितः) आत्मा (= मनः) यस्य स तादृशः, 'एतत् = इदं पुरोवर्ति, किम् ? इति = एवम्, कुतूहलात्=औत्सुक्यात्, प्रष्टुकामः=पृष्टुमिच्छुकः, यावत्, मौनम्=तूष्णीभावम् न, परित्यजामि = मुञ्चामि, तावत् = ततः पूर्वमेव, एषा = इयं चाण्डालकन्यका, माम् = शुकम्, आदाय = नीत्वा, देवपादमूलम् = भवतां चरणयोः समीपम्, आयाता = आगता। तत् = तस्मात्, इयम् = एषा चाण्डालकन्यका, का ? अनया = एतया चाण्डालकन्यया, किमर्थम् = किम्प्रयोजनाय, आत्मनः = स्वस्याः, चाण्डालता = चाण्डालभावः, ख्यापिता = कथिता, स्थापिता वा, वा = अथवा, अहम् = शुकः, किमर्थम्, बद्धः = नियमितः, वा = अथवा, बद्धः = नियन्त्रितः एव, पिञ्जरे इति शेषः, किमर्थम्, इह = भवतां समीपे, आनीतः = सम्प्रापितः इति, अत्र = अस्मिन्, वस्तुनि = विषये, देवः = भवान्, इव, अहम् = शुकः, अपि, अनपगतकुतूहलः—अनपगतम् (=न दूरीभूतम्) कुतूहलम् (=औत्सुक्यम्) यस्य स तादृशः, कुतूहलयुक्तः, एव, अस्मीति।

राजेति। राजा = शूद्रकनामा उज्जयिन्यधिपतिः, तत् = शुकवचनम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, समुपजातेत्यादिः—समुपजातम् (= समुत्पन्नम्) अभ्यधिकम् (= अतिशयप्रचुरम्) कुतूहलम् (= औत्सुक्यम्) यस्य स तादृशः सन्, तदाह्वानाय = तस्या चाण्डालकन्यायाः आकारणाय, पुरःस्थिताम् = सम्मुखे विद्यमानाम्, प्रतीहारीम् = द्वारपालिकाम्, आदिदेश = आज्ञपयामास। नचिरात् = अविलम्बेन, एव, तया = प्रतीहार्या, उपेत्यादिः—उपदिश्यमानः (= निर्दिश्यमानः, सूच्यमानः) मार्गः (= पन्थाः) यस्याः सा तादृशी, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, सा = चाण्डालकन्यका, पुरस्तात् = अग्रे, ऊर्ध्वस्थिता—ऊर्ध्वम् (= उपरि) यथा स्यात् स्थिता (= कृता-

---

मनवाला—'यह क्या है'—इस कौतूहल से जब तक कुछ पूछने के लिये मौन को छोड़ूँ तब तक यह कन्या मुझे (स्वर्ण पिंजरे में) लेकर महाराज के चरणों के समीप आ गई। इसलिए-यह कौन है ? इसने किस लिये अपने को चाण्डाल रूप में घोषित किया है ? मुझे किस लिये बाँधा ? और बाँधे ही मुझे किस लिये यहाँ लाई ?'—इस विषय में महाराज के समान ही मैं (शुक) भी न शान्त हुए कुतूहल वाला ही हूँ अर्थात् जैसे आपको इन सभी बातों को जानने की उत्सुकता है वैसे ही मुझे भी।

इसे सुनकर अत्यधिक उत्सुकतायुक्त होते हुए राजा (शूद्रक) ने उस (शूद्रकन्या) को बुलाने के लिये सामने खड़ी हुई प्रतीहारी को आदेश दे दिया। थोड़ी ही देर में उस प्रतीहारी द्वारा

---

१. कौतुकात्।　　२. आदिशत्।　　३. अचिरात्।

[1]भवन्ती [2]धाम्ना प्रागल्भ्येन बभाषे—'भुवनभूषण रोहिणीपते तारारमण कादम्बरीलोचनानन्दचन्द्र, सर्वस्त्वयास्य दुर्मतेरात्मनश्च पूर्वजन्मवृत्तान्तः श्रुत एव। अत्रापि जन्मनि यथायं निषिद्धोपि (पूर्वार्धे पृ० ४१६) पित्रा कामरागान्धः पितुराज्ञामुल्लङ्घ्य वधूसमीपं प्रस्थितः [3]तथाप्यनेन स्वयमेव कथितम्। तदहमस्य दुरात्मनो जननी श्रीः। तथा प्रस्थितमेनं दिव्येन चक्षुषा दृष्ट्वास्य पित्राहं समादिष्टास्मि—'सर्व एव [4]ह्यविनयप्रवृत्तोनुतापाद्विना न निवर्तते।

वस्थाना) एव, धाम्ना = स्वतेजसा, राजानम् = नृपं शूद्रकम्, अभिभवन्ती = तिरस्कुर्वन्ती, प्रागल्भ्येन = धृष्टतापूर्वकं प्रौढ्या वा, बभाषे = कथयामास—हे भुवनभूषण = जगदलङ्कार, रोहिणीपते = रोहिणीधव, तारारमण = तारकाविनोदक, कादम्बरी-लोचनानन्दचन्द्र = कादम्बर्याः (= एतन्नाम्न्याः गन्धर्वकन्यकायाः) लोचनयोः (=नेत्रयोः) आनन्दस्य (=प्रमोदस्य) चन्द्र (=निशाकर), त्वया = भवता, अस्य = अमुष्य, दुर्मतेः = दुष्टबुद्धेः, आत्मनः = स्वस्य, च, सर्वः = समस्तः, पूर्वजन्मवृत्तान्तः = प्राग्जन्मोदन्तः, श्रुतः = आकर्णितः, एव। एवञ्च तद्विषये मया न किमपि वक्तव्यमिति भावः। अत्र = अस्मिन्, अपि, जन्मनि = शुकयोनौ, यथा = येन प्रकारेण, पित्रा=जनकेन श्वेतकेतुना, निषिद्धः=वारितः, अपि, (द्र० पृ० ४१६) कामरागान्धः = कामेन प्रेम्णा वा दृष्टिहीनः, निर्विवेकः सन्, पितुः = जनकस्य श्वेतकेतोः, आज्ञाम् = आदेशम्, उल्लङ्घ्य = अतिक्रम्य, वधूसमीपम् = निजप्रेयस्याः महाश्वेतायाः निकटम्, प्रस्थितः = प्रचलितः, तथापि = स वृत्तान्तः, अपि, ['तदपि' इत्येव समीचीनः पाठः।] अनेन = शुकेन, स्वयमेव = आत्मना, एव, कथितम् = भाषितम्। तत् = तस्मात्, अहम् = शूद्रकन्या, चाण्डालकन्या, अस्य = पुरोवर्तिनः, दुरात्मनः = पापिनः, जननी = माता, जन्मदात्री, श्रीः = लक्ष्मीः, अस्मि। तथा = तेन प्रकारेण महाश्वेतासंगमोद्देश्येनेति भाव, प्रस्थितम् = प्रचलितम्, एनम् = एतं शुकम्, दिव्येन = अलौकिकेन, चक्षुषा = नेत्रेण, दृष्ट्वा = विलोक्य, अस्य = पुण्डरीकनाम्नः सम्प्रति शुकयोनिगतस्य, पित्रा = जनकेन श्वेतकेतुना, समादिष्टा = आज्ञप्ता, अस्मि। किमाज्ञप्तेति वर्णयति—सर्व एवेत्यादिना। अविनयप्रवृत्तः = निन्दितपथप्रचलितः, सर्वः = सकलः, एव, जनः = लोकः, अनुतापाद् = पश्चात्तापाद्, विना, न, निवर्तते = निवृत्तो

बताये गये मार्ग से प्रवेश करके वह (शूद्रकन्या) सामने (आगे) खड़ी ही होकर अपने तेज से राजा को अभिभूत करती हुई प्रगल्भता के साथ कहने लगी—"हे भुवनभूषण, रोहिणी के पति, तारारमण, कादम्बरी के नेत्रों को आनन्द देने वाले चन्द्रमा! तुमने इस दुर्बुद्धि के पूर्वजन्म का सारा वृत्तान्त सुन ही लिया है। इस (शुक के) जन्म में भी पिता द्वारा निषिद्ध होता हुआ भी काम तथा राग से अन्धा होकर पिता की आज्ञा का उल्लंघन करके (द्र०पृ० ४१६)अपनी वधू (महाश्वेता) के पास चल दिया, यह भी इसने अपने आप ही कह दिया है। तो मैं इस दुरात्मा (पापी) की जननी (माँ) लक्ष्मी हूँ। उस (पूर्वोक्त) प्रकार से चल पड़े इसे इसके पिता ने दिव्य चक्षु से देखकर मुझे आदेश दिया—अविनय = धृष्टता (अशिष्टता) के मार्ग पर चले हुए सभी लोग बिना पश्चात्ताप किये उससे अलग नहीं होते हैं, अर्थात् उसे नहीं छोड़ते हैं। इसलिए यह तुम्हारा पुत्र

१. अभिभवन्तीव। २. स्वधाम्ना। ३. तदपि। ४. स्वाविनय।

तदर्थं ते तनयः कदाचिदस्या अपि तिर्यग्जातेरधस्तात्पतति तद्यावदिदं कर्म न परिसमाप्यते तावदेनं मर्त्यलोक एव बद्ध्वा धारय। यथा चानुतापोऽस्य भवति तथा प्रतिविधेयमस्य' इति। तदस्य विनयायेदं विनिर्मितं [1]मया। सर्वमधुना तत्कर्म परिसमाप्तम्। शापावसानसमयो वर्तते। शापावसानेन च युवयोः सममेव सुखेन भवितव्यमिति त्वत्समीपमानीतो मयायम्। अत्रापि यच्चाण्डालजातिः ख्यापिता, तल्लोकसंपर्कपरिहाराय। तदनुभवतां सम्प्रति द्वावपि सममेव जन्मजराव्याधिमरणादिदुःख[2]बहुले तनू परित्यज्य

भवति, अविनयादिति शेषः। तत् = तस्मात्, अयम् = एषः, ते = तव लक्ष्म्याः, तनयः = सुतः, कदाचित् = इदं सम्भावनायाम्, अस्याः = वर्तमाने प्राप्तायाः, तिर्यग्जाते = शुकयोनितः, अपि, अधस्ताद् = नीचैः, पतति = भ्रश्यति, तत् = तर्हि, यावत्, इदम् = मयाऽस्यारिष्टनिवृत्तये आरब्धम्, कर्म = विशिष्टानुष्ठानम्, न परिसमाप्यते = सम्पूर्णतां प्रयाति, तावत्, एनम् तव पुत्रं शुकम्, मर्त्यलोके = भूलोके, बद्ध्वा = संनियम्य, धारय = स्थापय। यथा = येन प्रकारेण, च, अस्य = तव पुत्रस्य शुकस्य, अनुतापः = पश्चात्तापः, भवति = उत्पद्यते, तथा = तेन प्रकारेण, अस्य = तव पुत्रस्य, प्रतिविधेयम् = करणीयम्, इतिः = कथनसमाप्तौ। तत् = तस्मात् कारणात्, अस्य = स्वसुतस्य, विनयाय = शिक्षणाय, विनीतं विधातुमिति भावः, मया = लक्ष्म्या, इदम् = भवद्भिर्दृश्यमानम्, विनिर्मितम् = विरचितम्। अधुना = इदानीम्, तत् = अनुष्ठितम्, सर्वम् = समस्तम्, कर्म = कृत्यम्, परिसमाप्तम् = सम्पन्नं जातम्। शापावसान-समयः = शापस्य समाप्तिकालः, वर्तते = अस्ति। शापावसानेन = शापस्य समाप्त्या च, युवयोः = तदानीं शूद्रक-शुकरूपधारिणोः ततः पूर्वं चन्द्रापीडवैशम्पायनयोः ततोऽपि पूर्वं चन्द्रपुण्डरीकयोः, समम् = एकसार्धम्, एव, सुखेन = आनन्देन, भवितव्यम् = सम्पत्तव्यम्, इति = अस्मादेव कारणात्, अयम् = एष शुकरूपधारी, मया = अस्य जनन्या लक्ष्म्या, त्वत्समीपम् = शूद्रकस्य भवतः निकटम्, आनीतः = सम्प्रापितः। अत्रापि = अस्मिन् घटनाचक्रेऽपि, या, चाण्डालजातिः, ख्यापिता = कथिता, तत्, लोकसम्पर्कपरिहाराय = जनानां संसर्गस्य वर्जनाय। चण्डालत्वेन ज्ञात्वा न कोऽपि मम स्पर्शमपि विधास्यतीति विचार्यैव इयमतिनिकृष्टा जातिः समाश्रिता। अत्र वाक्ये प्रयुक्तं 'यत्' 'तत्' इदं पदद्वयं क्रियाविशेषणं बोध्यम्। जातेर्विशेषणत्वे तु 'या' 'सा' इति स्त्रीलिङ्गेनैव भाव्यम्। तत् = तस्माद् हेतोः, सम्प्रति = इदानीम्, द्वौ = उभौ भवन्तौ शूद्रकवैशम्पायनावित्यर्थः, जन्मेत्यादिः—जन्म (= मर्त्यलोके उत्पत्तिः) जरा (= वार्द्धक्यम्) च व्याधिः (= शारीरिकरोगादिकम्) मरणम् (= मृत्युः) एतानि आदौ येषां तानि तादृशानि दुःखानि (= कष्टानि) बहुलानि (= अधिकानि) ययोस्तादृशे, तनू = शरीरे, समम् = एकसार्धम्, एव, परित्यज्य = विहाय, यथेष्टेत्यादिः—यथेष्टाः

पक्षियोनि से भी निकृष्ट योनि में पतित न हो जाय, इस कारण जब तक यह अनुष्ठान का कृत्य नहीं हो जाता है तब तक इसे मर्त्यलोक में ही बाँध कर रखो। और उस प्रकार से उपाय करते रहना जिससे कि इसे पश्चात्ताप होने लगे। इस कारण इसको विनय अर्थात् सीख देने के लिये मैंने यह सब बनाया। अब वह सारा (अनुष्ठानकृत्य) समाप्त हो चुका है। शाप की समाप्ति का समय (आ गया) है। शाप की समाप्ति हो जाने के कारण तुम दोनों एक ही साथ सुख से रह सकोगे, इस कारण इस (शुक) को तुम्हारे पास लाई हूँ, और इस (सन्दर्भ) में मैंने जो अपनी चाण्डाल जाति ख्यापित (घोषित) की है वह भी दूसरे लोगों का सम्पर्क रोकने के लिये। इस कारण आप और यह (चन्द्र = चन्द्रापीड, पुण्डरीक = वैशम्पायन) दोनों ही जन्म, बुढ़ापा, व्याधि (रोग) तथा मृत्यु आदि अनेक दुःखों से भरे हुए इन शरीरों को त्याग कर अपने-अपने प्रियजनों के संसर्ग

१. मया सर्वं कृतम्, अधुना तु कर्म समाप्तम्। २. बहुली तनूम्।

यथेष्टजनसमागमसुखम् ।' इत्यभिदधानैव सा 'झटिति रणद्भूषणरव'बधिरितान्तरिक्ष-मुत्फुल्ललोकलोचनोद्वीक्षिता क्षितेर्गगनमुदपतत् ।

अथ राज्ञस्तद्वचनमाकर्ण्य 'संस्मृतजन्मान्तरस्य—'सखे वैशम्पायनाख्यपुण्डरीक दिष्ट्या तुल्यकालमेवावयोः शापावसानं संजातम्' इत्यभिदधत एवाकर्णाकृष्टकार्मुको मकरकेतुरग्रतः परमास्त्रं कादम्बरीं कृत्वा जीवितापहरणाय प्रतिरोधक इव निरुद्धसर्वाशोन्तरा[4] पदं चकार । तत्पदाक्रान्तिनिर्वासितमिव कादम्बरीशरणमुपजगामान्तःकरणम् ।

(= यथाभिलषिताः) ये जनाः (= लोकाः) तेषां समागमः (= सम्मिलनम्) तद्रूपं यत् सुखम् (= आनन्दम्), अनुभवताम् = साक्षात्कुरुताम्, इति = इत्थम्, अभिदधाना = भाषमाणा, एव, सा = चण्डाल-कन्यारूपिणी, लक्ष्मीः, रणदित्यादिः—रणन्ति (= ध्वनिकुर्वन्ति) यानि भूषणानि (= अलङ्काराः) तेषां यो रवः (= स्वनः, शब्दः) तेन बधिरितम् (= बधिरीकृतम्) अन्तरिक्षम् (= आकाशम्) यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा, उत्फुल्लानि (= विकसितानि) यानि लोकानाम् (= जनानाम्) लोचनानि (= नेत्राणि) तैः उद्वीक्षिता (= अवलोकिता) सती, क्षितेः = पृथिव्याः, गगनम् = आकाशम्, उदपतत् = उत्पपात, उदडीयत इति भावः ।

अथेति । अथ = तदनन्तरम्, तद्वचनम् = शूद्रकन्यारूपधारिण्याः तस्याः कथनम्, आकर्ण्य= श्रुत्वा, संस्मृतजन्मान्तरस्य—संस्मृतम् (=स्मृतिविषयीकृतम्) जन्मान्तरम् (=पूर्ववर्ति जन्म) येन तस्य तादृशस्य, राज्ञः=शूद्रकस्य—'सखे !=मित्र ! वैशम्पायनेत्यादिः—वैशम्पायन-आख्या (= अभिधानम्, नाम) यस्य तादृश पुण्डरीक !, दिष्ट्या = सौभाग्येन, तुल्यकालम्—तुल्यः (= समानः, एकः) कालः (= समयः) यस्य तादृशम्, आवयोः = चन्द्र-पुण्डरीकयो, शापावसानम् = शापसमाप्तिः, जातम् = भूतम्, इति = इत्थम्, अभिदधतः = कथयतः: एव, (राज्ञः = शूद्रकस्य) आकर्णेत्यादिः—आकर्णम् (= कर्णपर्यन्तम्) आकृष्टम् (= आकर्षितम्) कार्मुकम् (= धनुः) येन स तादृशः, मकरकेतुः = कामदेवः, अग्रतः = स्वपुरस्तात्, कादम्बरीम् = एतान्नाम्नीं गन्धर्व-राजकन्याम्, परमास्त्रम् = अमोघास्त्रम्, कृत्वा = विधाय, जीवितापहरणाय = प्राणानां ग्रहणाय, प्रतिरोधकः = मार्गमवरुध्य स्थितो दस्युः, इव, निरुद्धसर्वाशः—निरुद्धाः (= अवरुद्धाः) सर्वाः (=सकलाः) आशाः (=दिशः) येन स तादृशः, अन्तरा = मध्ये, हृदये, पदम् = स्थानम्, चकार = कृतवान्, चित्तस्य मध्ये स्थितोऽभूदिति भावः । तत्पदेत्यादिः—तस्य (= मकरकेतोः, कामदेवस्य) पदयोः (= चरणयोः) आक्रान्त्या (= आक्रमणेन) निर्वासितम् (= बहिष्कृतम्) इव, अन्तःकरणम् = शूद्रकस्य हृदयम्, कादम्बरीशरणम् = कादम्बरी-परित्राणम्, उपजगाम = प्राप्तवान् । यथा दस्युसमाक्रान्तः कश्चिज्जनः स्वरक्षार्थं समीपस्थितं लोकमाश्रयति तथैव शूद्रकस्य

(मिलन) के सुख का अनुभव करो, भोगो ।''—इस प्रकार से कहती हुई ही वह लक्ष्मी (शूद्रकन्या रूपधारिणी) झनझनाते हुए आभूषणों की ध्वनि से आकाश को बहरा बनाती हुई, फटी अर्थात् पूर्ण रूप से फैली हुई आंखों से लोगों द्वारा देखी जाती हुई तत्काल ही पृथ्वी से गगन में उड़ गई ।

इसके बाद उस (लक्ष्मी) की यह बात सुनकर अपने पूर्वजन्मों का स्मरण कर लेने वाले—'अरे मित्र वैशम्पायन नामक पुण्डरीक ! सौभाग्य से हम दोनों के शाप की समाप्ति एक साथ ही हुई है' ऐसा कहते हुए ही राजा (शूद्रक) के अन्तःकरण=मन के भीतर कान तक धनुष की डोरी खींचे हुए कामदेव कादम्बरी को परमास्त्र के रूप में आगे किये हुए, प्राण लेने के लिये एक डाकू के समान सभी दिशाओं को घेरता हुआ आ धमका । उस कामदेव के पैरों के रखने से (अपने स्थान से)

१. झणिति, क्षणिति । २. स्वरोधित । ३. आकर्णयतस्तदैवाकृष्टकार्मुकः । ४. अन्तः पदं ।

तन्मार्गणाभिहतिभीता इव देहमुत्सृज्य निर्जग्मुरजडाः श्वासमरुतः। तद्बाणपक्षवाताहतमिवाकम्पत तरलं शरीरम्। [1]तच्छरशल्यभराल[2]सोत्कण्टकिनी तनुरजायत। तद्विशिखरजोरूषितमिव नयनयुगलमश्रुजलमुत्ससर्ज। [3]आपाण्डुतां च सद्यो वदन[4]लावण्यमयासीत्। तद्धनुर्गुणध्वानाकर्णनोद्वेजितमिव हृदयवेदनाकूणितत्रिभागं नयनयुगलमभवत्। अन्तर्ज्वलिष्यतो मदनदहनस्य धूमोपहतमिव वेपमानमधरकिसलयं शोषमगात्। [5]तत्तापविरस-

---

हृदयमपि कादम्बरी-समीपमगच्छदिति भावः। तन्मार्गेत्यादिः—तस्य (= कामदेवस्य) ये मार्गणाः (= बाणाः) तेषां तैर्वा या अभिहतिः (= अभिघातः, प्रहारः) तया भीताः (= भयं प्राप्ताः), इव, देहम् = शूद्रकशरीरम्, उत्सृज्य = परित्यज्य, अजडाः = चेतनाः, श्वासमारुताः = श्वासवायवः, निर्जग्मुः = निर्गताः, शूद्रकशरीरात् श्वासवायवो बहिर्भूता इति भावः। तद्बाणेत्यादिः—तस्य (= मकरकेतोः) बाणाः (= शराः) तेषां पक्षाणाम् (= पुंखानाम्) वातेन (= तदुत्थपवनेन) आहतम् (= अभिहतम्, ताडितम्), इव, तरलम् = चञ्चलम्, शरीरम् = शूद्रकस्य देहः, अकम्पत = अवेपत। तच्छरेत्यादिः—तस्य (= कामदेवस्य) शराः (= बाणाः) तेषां शल्याः (= अग्रभागाः) तेषां भरः (= समूहः) तेन अलसा (= मन्दा), तनुः = देहः, उत्कण्टकिनी= रोमाञ्चयुक्ता, अजायत = जाता। तद्विशिखेत्यादिः—तस्य (= कामदेवस्य) ये विशिखाः (= बाणाः) तेषां रजः (= धूलिः) तेन रूषितम् (= व्याप्तम्) इव, नयनयुगलम् = नेत्रद्वयम्, अश्रुजलम् = अश्रुसलिलम्, उत्ससर्ज = परितत्याज। वदनलावण्यम् = मुखस्य सौन्दर्यम्, च, सद्यः = तत्कालम्, आपाण्डुताम् = ईषत्पाण्डुरवर्णताम्, अयासीत्=अगच्छत्। तद्धनुरित्यादिः—तस्य (=कामदेवस्य) धनुः (= चापः) तस्य गुणः (= प्रत्यञ्चा) तस्य ध्वानः (= स्वनः) तस्य यद् आकर्णनम् (= श्रवणम्) तेन उद्वेजितम् (= प्राप्तोद्वेगम्), इव, नयनयुगलम् = नेत्रयुग्मम्, हृदयेत्यादिः—हृदयस्य (= चित्तस्य) या वेदना (= तीव्रपीडा) तया आकूणितः (= ईषद्वक्रीकृतः) त्रिभागः (=तृतीयांशः) यस्य तादृशम्, अभवत्=सञ्जातम्। अन्तर्ज्वलिष्यतः= आभ्यन्तरे प्रज्वलोन्मुखस्य, यस्य प्रज्वलनं सत्वरमेव भावि आसीत् तादृशस्य, मदनदहनस्य=कामाग्नेः, धूमोपहतम् = अग्निकेतनेन आहतम्, इव, वेपमानम् = कम्पमानम्, अधरकिसलयम्—अधरः (= अधरोष्ठः) किसलयम् (= नवपल्लवम्), इव, शोषम् = शुष्कताम्, अगात् = प्राप्नोत्। ['मदनदहनस्य धूमोपहतम्' इत्यत्र विशेषणे सम्बन्धेनासमर्थ-समासः, स च उभयोः समस्तपदं 'मदनदहनधूमोपहतम्' इति स्वीकार्यं समाधेयः।]

निकाला गया सा (राजा का) हृदय कादम्बरी की शरण में चला गया। उस (कामदेव) के बाणों के प्रहार से मानों भयभीत अजड़=उष्ण श्वास-वायुयें उस (शूद्रक) का शरीर छोड़कर बाहर निकल गईं। उस (कामदेव) के बाणों के पंखों की हवा से आहत सा उस (शूद्रक) का शरीर काँपने लगा। उसके बाणों में लगे काँटों की मार से अलसाई (ढीली ढाली) देह कण्टकित (रोमाञ्चयुक्त) हो गई। उस (कामदेव) के पुष्पबाणों के पराग से भरी हुईं सी दोनों आखों ने अश्रुजल छोड़ दिया। और मुख का सौन्दर्य शीघ्र ही पीला सा हो गया। मानों कामदेव के धनुष की टंकार सुनने से व्याकुल होती हुईं उस (शूद्रक) की दोनों आखों ने हृदय की वेदना से अपना तृतीय भाग बन्द कर

---

१. तच्छल्य०।

२. भरालसेवोत्कण्टकिनी, निकरकीलितेवोत्कण्टकिनी। अत्र—'तच्छरशल्यनिकरकीलितेवोत्कण्टकिनी तनुरजायत—' इत्येव पाठ उचितः, शल्याघाते सति कस्यापि आलस्यस्य दर्शनाभावात्।

३. पाण्डुताम्।   ४. यौवनलावण्यम्।   ५. तत्तापविरसमानमतिनिःपीडितम्।

माननान्निष्पीडितं सरागं हृदयमिव ताम्बूलमपतत् । आर्द्रस्य दारुणो द्रव[1] इव दह्यमानस्याङ्गेभ्यो निरगमत्स्वेदः । मदनशरकीलितानीव तावतैव क्षणेनाङ्गानि परवशान्यजायन्त ।

तथा च कादम्बरीं पुरस्कृत्य कुसुम[2]धन्वनायास्यमानस्य तदवयवरूपशोभाविनिर्जितानि तापापहरणक्षमाण्यपि [3]तस्याकिंचित्कराण्यभवन् । तथा हि—कमलकिसलयानि

पुनरपि तामेव वर्णयति विचित्रामवस्थाम्—तत्तापेत्यादिना । तत्तापेत्यादिः—तस्य (= कामदेवस्य) तापः (= सन्तापः, संज्वरः) तेन विरसम् = नीरसम्, शुष्कम्, निष्पीडितम् = संपीडितम्, चर्वितम्, सरागम्—रागः (= प्रेम, लौहित्यं च) तेन सहितम्, हृदयम् = चित्तम्, इव, ताम्बूलम् = नागवल्लीदलम्, आननात् = मुखात्, अपतत् = पपात । ताम्बूलं निष्पीडितं सत् लौहित्यमयं भवति हृदयमपि प्रेमयुक्तं भवतीत्युभयोः सरागत्वं बोध्यम् । दह्यमानस्य = ज्वल्यमानस्य, आर्द्रस्य = अशुष्कस्य, दारुणः = काष्ठस्य, द्रवः = अन्तर्वर्तिरसः, इव, दह्यमानस्य=ज्वल्यमानस्य शूद्रकस्य, अङ्गेभ्यः = शरीरावयवेभ्यः, स्वेदः = घर्मजलम्, निरगमत् = निर्गतः, तस्य देहः स्वेदयुक्तो जात इति भावः । मदनेत्यादिः—मदनशरेण (= कामदेवबाणेन) कीलितानि (= कीलनत्वं प्राप्तानि), इव, (शूद्रकस्य) अङ्गानि = अवयवाः, तावता, एव, क्षणेन = निमेषमात्रेण, परवशानि= पराधीनानि, अजायन्त = सम्भूतानि ।

तापापहरणाय समर्थानि प्रसिद्धानि वस्तून्यपि कथं व्यर्थानि जातानि येन तस्य तादृशी दशा जातेति प्रतिपादनायाह—तथा चेत्यादिना । कादम्बरीम् = चन्द्रापीड-प्रेयसीम्, पुरस्कृत्य = अग्रे विधाय, लक्ष्यीकृत्येति भावः, कुसुमधन्वना=बाणचापेन कामदेवेन, आयास्यमानस्य = पीड्यमानस्य, तदवयवेत्यादिः—तस्याः (=कादम्बर्याः) अवयवाः (=अङ्गानि) तेषां रूपशोभा (=रूपसौन्दर्यम्) तेन विनिर्जितानि (= पराभूतानि) तापापहरणक्षमाणि (= सन्तापदूरीकरणे समर्थानि, कमल-किसलय-कुवलयदलस्रङ्-मणिदर्पणमृणाल-शशाङ्करश्मि-घनसारधूलि-मुक्तादामामृतकरबिम्ब-ज्योत्स्ना-मणिवेदिकाकुट्टिमरूपाणि लोके प्रथितानि) अपि, तस्य = शूद्रकस्य कृते, अकिञ्चित्कराणि = व्यर्थानि, अभवन् = अजायन्त । केचित्तु—'तदवयवरूपशोभाविनिर्जितानि' इत्यत्र तत्पदेन शूद्रकस्य ग्रहणं मन्यन्ते, तन्न रुचिकरम्, अत्र कादम्बर्याः उपस्थित्या तस्या एवाङ्गानां ग्रहणं समीचीनं प्रतिभाति । एवञ्च पराजितानि कमलादीनि तस्य तापहरणे समर्थानि नाभूवन्नित्याशयः, पराजयेन द्वेषोदयात्, सहायकत्वे अरुचेश्च । एतदेव विस्तरेण वर्णयति—तथा हीत्यादिना । तथा हि = तच्च

लिया, अर्थात् आखों का तृतीयांश बन्द हो गया । हृदय में शीघ्र ही जलने को तैयार कामदेवरूपी आग के धूयें से उपहृत (टक्कर खाया हुआ) हिलता हुआ अधरोष्ठ सूखने लगा । मानों कामदेवरूपी अग्नि के ताप के कारण नीरस (सूखा, फीका), चबाया (मर्दित) गया सराग (लाल-लाल, अनुरागयुक्त) पान का बीड़ा,हृदय के समान, मुख से गिर पड़ा । [हृदय दबाया गया तथा अनुरागयुक्त था, पान भी चबाया गया और लालिमायुक्त था ।] जलाई जाती हुई गीली लकड़ी से निकलते हुए गर्म पानी के समान [कामाग्नि से जलाये जाते हुए राजा के शरीर के] अङ्गों से पसीना निकलने लगा। मानों कामदेव के बाण रूपी कीलों से ठोंके गये उसके सारे अवयव उसी समय पराधीन हो गये ।

और भी, कादम्बरी को आगे करके अर्थात् माध्यम बना कर कामदेव द्वारा परेशान किये जाते हुये उसके लिये [उसके अथवा] कादम्बरी के अवयवों की शोभा के द्वारा परास्त = अभिभूत की गईं वस्तुयें (कमल, कुवल आदि) वास्तव में सन्ताप को दूर करने में समर्थ होती

१. 'द्रव'—इति नापि पठ्यते । २. कुसुमधन्वनः । ३. अस्य ।

पाणिपादेन[1] कुवलयदलस्रजो दृष्ट्या, मणिदर्पणाः कपोलेन, मृणालानि बाहुलतिकया, शशाङ्करश्मयो नखमयूखैः घनसारधूलिः स्मितप्रभया, मुक्तादामानि दशनकिरणैः, अमृतकरबिम्बं मुखेन, ज्योत्स्ना लावण्येन, [2]मणिवेदिकाकुट्टिमानि नितम्बेन।

एवं च विहतसर्वबाह्यप्रतिक्रियस्य हृदयेऽप्यसुखायमानसकलान्यविनोदस्य, तामेवमिध्यायतः, तामेवोत्प्रेक्ष[3]माणस्य, तामेवाभिलषतः[4], तामेव पश्यतः, तामेवालपतः,

---

विनिर्जितत्वमनेन रूपेण बोध्यम्, पाणिपादेन = पाणी (= करौ) च पादौ (= चरणौ) च—एतेषां समाहारः, प्राण्यङ्गत्वादेकवचनम्, तस्याः कादम्बर्याः पाणिपादेन, कमलकिसलयानि = पद्मपत्राणि, 'विनिर्जितानी'ति पदं सर्वत्र योज्यम्। तस्याः, दृष्ट्या = नेत्रेण, कुवलयदलस्रजः = उत्पलपत्राणां मालाः, 'विनिर्जिताः'। इति योज्यम्। एवमेव यथायोग्यं लिङ्गवचनादि परिवर्तनीयम्।] कपोलेन = गण्डस्थलेन, मणिदर्पणाः = मणिनिर्मितादर्शाः, विनिर्जिताः। बाहुलतिकया = भुजवल्ल्या, मृणालानि = विसदण्डाः, विनिर्जितानि। नखमयूखैः = नखराणां किरणैः, शशाङ्करश्मयः = चन्द्रस्य किरणाः, विनिर्जिताः। स्मितप्रभया = मन्दहासस्य कान्त्या, घनसारधूलिः = कर्पूरचूर्णम्, विनिर्जिता। दशनकिरणैः = दन्तमयूखैः, मुक्तादामानि = मौक्तिकहाराः, विनिर्जितानि। मुखेन = आस्येन, अमृतकर-बिम्बम् = चन्द्रमण्डलम्, विनिर्जितम्। लावण्येन = सौन्दर्येण, ज्योत्स्ना = चन्द्रकौमुदी, विनिर्जिता। नितम्बेन = कटिपश्चाद्देशेन, मणिवेदिकाकुट्टिमानि = मणिनिर्मितभूमयः, (विनिर्जितानि)।

एवञ्चेति। एवम् = अनेन पूर्वोक्तप्रकारेण च, [अत्रत्यस्य—'विहत-सर्वबाह्यप्रतिक्रियस्य' इत्यस्य दूरे वक्ष्यमाणे 'काष्ठीभूतदेहस्य दाहक्षमो झटित्येवारुरोह परां कोटिं कामानलः'—इत्यत्रान्वयः। एवञ्च षष्ठ्यन्तानि पदानि 'शूद्रकस्य' विशेषणानीति बोध्यम्।] एवम् = अनेन प्रकारेण, च, विहतेत्यादिः—विनष्टा, जडीभूता) सर्वा (= सकला) बाह्या (= बहिरङ्गा) प्रतिक्रिया (= प्रतीकारः) यस्य तादृशस्य, हृदये = राज्ञः शूद्रकस्य, चित्ते अपि, असुखेत्यादिः असुखायमानः (= दुःखवदाचरमाणः) सकलः (= समस्तः) अन्यः (= अपरः) विनोदः (= मनोरञ्जनम्) यस्य तादृशस्य, ताम् = कादम्बरीम्, एव, अभिध्यायतः = चिन्तयतः, ताम् = कादम्बरीम्, एव, उत्प्रेक्षमाणस्य = उत्प्रेक्षाविषयीकुर्वतः, सम्भावयतः, ताम्, एव, अभिलषतः = इच्छतः,

---

हुईं भी उस (शूद्रक = चन्द्रापीड) के लिये अनुपयोगी = व्यर्थ हो गईं, किसी काम की नहीं रह गईं। उदाहरणार्थ—कमल तथा नवपल्लवों को (कादम्बरी के) हाथों और पैरों ने, नील कमल के पल्लवों (पंखुड़ियों) की माला को [उसकी] आँखों ने, मणिमय शीशों को [उसके] गालों ने, कमलनालों को [उसकी] बाहुरूपी लताओं ने, चन्द्रमा की किरणों को [उसके] नाखूनों की किरणों ने, कपूर के चूर्ण को [उसकी] मुस्कराहट की छटा ने, मोतियों की मालाओं को [उसके] दाँतों की किरणों ने चन्द्रबिम्ब को [उसके] मुख ने, चाँदनी को [उसके] लावण्य ने और मणिमय वेदी की भूमि को [उसके] नितम्बों ने [परास्त कर दिया था]। [अतः हारी हुईं ये सभी वस्तुयें राजा के लिये अनुपयोगी बन गईं।]

इस प्रकार से [सन्ताप की शान्ति के लिये] बाहरी सभी प्रकार की प्रतिक्रिया के विनाश वाले अर्थात् प्रतिक्रिया से रहित, हृदय में भी अन्य समस्त विनोदों के सुख को न प्राप्त करते हुये,

---

१. पाणिना, पादेन। २. मणिकुट्टिमवेदिका। ३. उत्प्रेक्ष्यमाणस्य।
४. लिखतः। ५. तामेव लपतः, तामालपतः।

तामेवालिङ्गतः, तया सह तिष्ठतः, तां प्रकोपयतः, तामनुनयतः, तस्याः पादयोः पततः, तया सह केलिं कुर्वतः, तां रममाणस्य, मुक्तसर्वान्यक्रियस्य, दिवाप्यनुन्मीलितलोचनस्य, रात्रावप्यनुपजातनिद्रस्य, सुहृज्जनमप्यसंभाषयतः[1], कार्योपगता[2]नप्यजानतः, [3]गुरुजनमप्यनमस्यतः, धर्मक्रियामप्यकुर्वाणस्य, सुखादप्यनर्थिनः, दुःखादप्यनुद्विजमानस्य, मरणादप्यबिभ्यतः गुरुभ्योऽप्यपेतलज्जस्य, आत्मन्यपि विगलित[4]स्नेहस्य, किं बहुना, कादम्बरी-

ताम्, एव, पश्यतः = विलोकयतः; ताम्, एव, आलपतः = सम्भाषमाणस्य; ताम्, एव, आलिङ्गतः= आश्लिष्यतः; [अत्र सर्वत्र वाक्येषु एवकारस्य प्रयोगेण परिसंख्यायाः प्रतीत्या तद्भिन्नानां निषेधो गम्यते । तेन तामेव अभिध्यायतः न तु तद्भिन्नामित्यर्थोऽत्र गम्यते । एवमेव सर्वत्र बोध्यम् ।] तया कादम्बर्या, सह, तिष्ठतः = निषीदतः, ताम्, प्रकोपयतः = प्रकोपं प्रापयतः, ततश्च ताम्, अनुनयतः = प्रसादयतः, तस्याः, पादयोः = चरणयोः, पततः = पतनं कुर्वतः; तया, सह, केलिम् = रतिक्रीडाम्, कुर्वतः = विदधतः; ताम्, रममाणस्य रमणं कुर्वतः ['रमु क्रीडायाम्' इति धातोरकर्मकत्वादत्र कर्मत्वाप्राप्त्या 'तया सह' इत्येवोचितः । अन्तर्भावित-ण्यर्थत्वे तु 'तां' रमणं कारयतः' इत्यर्थे कर्मत्वमपि सुवचमिति बोध्यम् ।] मुक्तेत्यादिः = मुक्ता (= परित्यक्ता) सर्वा (= सकला) अन्या (= अपरा) क्रिया येन तस्य तादृशस्य; दिवा = दिने, अपि, अनुन्मीलितलोचनस्य = अनुद्घाटिते नेत्रे येन तस्य तादृशस्य, रात्रौ = निशायाम्, अपि, अनुपजातनिद्रस्य—न उपजाता (= सञ्जाता) निद्रा (= सुप्तिः) यस्य तादृशस्य; सुहृज्जनम् = मित्रलोकम्, अपि, असम्भाषयतः = भाषणमकुर्वतः, अवदतः; कार्योपगतान्—कार्यार्थम् (= तस्य स्वस्य च प्रयोजनविशेषस्य सम्पादनार्थम्) उपगतान् (= समीपमागतान्), अपि, अजानतः = अनवगच्छतः; गुरुजनम् = वृद्धलोकम्, अपि, अनमस्यतः = प्रणाममकुर्वतः; धर्मक्रियाम् = धार्मिककृत्यम्, अपि, अकुर्वाणस्य = अविदधतः, सुखात् = सुखयुक्ताद्, अपि, अनर्थिनः = अयाचकस्य, [सुखम् अस्ति यस्य स इति मतुबर्थेऽच् प्रत्ययः । एवमेव 'दुःखात्' इत्यस्य 'दुःखयुक्ताद्' इत्यर्थो बोध्यः ।] दुःखात् = दुःखयुक्ताद्, अपि, अनुद्विजमानस्य = उद्वेगमप्राप्नुवतः; मरणात् = मृत्योः, अपि, अबिभ्यतः = भयं न कुर्वतः; गुरुजनेभ्यः = पूज्यजनेभ्यः, अपि, अपेतलज्जस्य—अपेता (= दूरीभूता) लज्जा (= त्रपा) यस्य तादृशस्य; आत्मनि = स्वविषये, अपि, विगलितस्नेहस्य—विगलितः (= दूरीभूतः) स्नेहः (= अनुरागः, आसक्तिः) यस्य तादृशस्य । पुनरपि विशेषणं वर्णयितुमाह—किं बहुनेत्यादिना । बहुना = अधिकजल्पनेन, किम् ? न किमपि

उस (कादम्बरी) का ही ध्यान करते हुये, उसी की उत्प्रेक्षा = कल्पना करते हुये, उसी को चाहते हुये, उसी को देखते हुये, उसी से बात करते हुये, उसी का आलिङ्गन करते हुये, उसी के साथ बैठते हुये, उसी को नाराज करते (चिढ़ाते) हुये, उसी को मनाते हुये, उसी के पैरों पर गिरते हुये, उसी के साथ केलि = कामक्रीडा करते हुये, उसी के साथ रमण करते हुये, समस्त दूसरे कामों को छोड़े हुये, दिन में भी आँखे न खोलते हुये, रात में भी न सोते हुये, मित्रजनों से भी वार्तालाप न करते हुये, किसी कार्य के लिये पास में आये हुये लोगों को भी न जानते = पहचानते हुये, गुरुजनों को भी प्रणाम न करते हुये, धार्मिक कार्य भी न करते हुये, सुखी से भी न कुछ चाहते हुये, अथवा सुख की भी चाह न करते हुये, दुःखी से भी न घबड़ाते हुये अथवा दुःख से भी व्यग्र न होते हुये, मौत से भी न डरते हुये, गुरुजनों से भी न लजाते हुये, अपने प्रति भी स्नेह न

१. असंभाषित । २. कार्यापगतमपि । ३. गुरून् । ४. अस्नेहस्य ।

समागमेऽप्यनुद्यमस्य केवलमस्य[1] मुहुर्मुहुर्मूर्च्छोपगमच्छलेन जीवितोत्सर्गयोग्यामिव[2] [तनुं] कुर्वतो विहस्तेनापि प्रतिपन्नविविधोपकरणेन गलितनयन[3]पयसाप्युच्छुष्काननेन [4]मुषितवचनावकाशेनापि वैशम्पायनाक्रोशन[5]परेणानवरतमाचरणा[6]द्विकीर्णचन्दनचर्चेन चरणतल-

---

फलमिति भावः। कादम्बरी-समागमे = स्वप्रेयस्याः सङ्गमविषये, अपि, अनुद्यमस्य—नास्ति उद्यमः (= उद्योगः) यस्य तादृशस्य, केवलम्, अस्य = शूद्रकस्य, मुहुर्मुहुः = बारं बारम् = पुनः पुनः, मूर्च्छोपगमच्छलेन = मूर्च्छाप्राप्तिमिषेण जीवितेत्यादिः—जीवितम् (= जीवनम्, प्राणाः) तस्य उत्सर्गः (= परित्यागः) तस्य योग्याम् (= अर्हाम्), इव, तनुम् = देहम्, कुर्वतः = विदधतः; 'तनुम्' इति स्त्रीलिङ्गं विशेष्यमवश्यमेव योज्यम्।' ['योग्य' शब्दस्याभ्यासार्थकत्वे तु प्राणत्यागस्याभ्यासमिव कुर्वतः—इत्यर्थः। अत्र योग्यशब्दोऽभ्यासार्थे, रघुवंशे यथा—'अपरः प्रणिधानयोग्यया मरुतः पञ्चशरीर-गोचरान्।' रघु। नैषधीयचरिते च—पुनः पुनस्तद् युवयुग्विधाता, योग्यामुपास्ते न युवां युयुक्षुः।' नैषधम्] विहस्तेन—विगतः हस्तः (= करः) यस्य तादृशेन, अपि, प्रतिपन्नविविधोपकरणेन—प्रतिपन्नानि (= धृतानि, गृहीतानि) विविधानि (= अनेकानि) उपकरणानि (= साधनानि, वस्तूनि) येन तादृशेन। यो विहस्तः = कररहितः सः कथं नानाविधवस्तूनि धारयेदिति विरोधः 'विहस्तेन = व्याकुलेन' इत्यर्थे परिहारः।] गलितेत्यादिः—गलितम् (= पतितम्) नयनयोः (= नेत्रयोः) पयः (= जलम्, अश्रु) यस्य तादृशेन, अपि, उच्छुष्काननेन—उच्छुष्कम् (= शुष्कीभूतम्) आननम् (= मुखम्) यस्य तादृशेन, अत्रार्थे विरोधः, उच्छुष्कम् = विवर्णम् आननं यस्य तादृशेनेत्यर्थे परिहारः। मुषितेत्यादिः—मुषितः (= अपहृतः) वचनस्य (= भाषणस्य) अवकाशः (= अवसरः) यस्य तादृशेन, अपि, वैशम्पायनाक्रोशपरेण = वैशम्पायनविषयक-निन्दावचनयुक्तेन, यस्य वचनमेव नास्ति तस्य कथमाक्रोश इति विरोधः, आक्रोशः = तिरस्कारः तद्युक्तेनेत्यर्थे विरोधाभावः, [अत्र सर्वत्र विरोधाभासालङ्कारः सुस्पष्टः। स च द्वितीयार्थेन परिहरणीयः।]

अनवरतमिति। अनवरतम् = निरन्तरम्, आ चरणाद् = पादपर्यन्तम्, विकीर्णेत्यादिः—विकीर्णा (= विक्षिप्ता, विहिता) चन्दनस्य (= मलयजस्य) चर्चा (= लेपः) येन तादृशेन, चरणेत्यादिः—चरणतले (= पादयोरधोभागे) निवेशितानि (= स्थापितानि)

करते हुये, अधिक क्या [कहा जाय]—कादम्बरी से मिलने के लिये भी उद्यम न करते हुये, इसकी (देह को) केवल बार बार मूर्छा आने के बहाने से [शरीर को प्राण छोड़ने के योग्य सा बनाते हुये अर्थात् बार बार बेहोशी आने से मानों प्राण छोड़ने का अभ्यास करते हुये, (लकड़ी बने हुये शरीर वाले राजा शूद्रक को जलाने में समर्थ होती हुई कामाग्नि शीघ्र ही पराकाष्ठा पर पहुँच गई।) यद्यपि विहस्त (हस्त-रहित) होते हुये भी अनेक उपकरणों को हाथों में लिये हुये, [विरोध का परिहार—विहस्त = व्याकुल-अर्थ-में होता है। आगे भी ऐसे ही समझना चाहिये], आखों से आँसू गिराते हुये भी सूखे हुये मुख वाले (उच्छुष्क = मुरझाये), बोलने का समय न रखते हुये भी वैशम्पायन को कोसने में लगे हुये, लगातार [राजा शूद्रक के] चरणों तक चन्दन का लेप

---

१. एव। २. इव तनुम्। ३. सलिलेन।
४. दुःखित०। ५. ···क्रोशपरेण। ६. वितीर्णं।

निवेशितार्द्रारविन्दिनीदलेन करार्पितकर्पूरक्षोदवन्तुरतुषारखण्डेन [1]हृदयविनिहितहिमार्द्रहार-खण्डेन कपोलतलस्थापित[2]स्फटिकमणिदर्पणेन ललाटतटघटितचन्द्रमणिनांसदेशावस्थापित-मृणाल[3] नालेन कदलीदलव्यजनवाहिनानर्तिततालवृन्तेन जलार्द्रानिलसंचारिणा कुसुम-[4]तल्पकल्पनाकुलेन धारागृहजलयन्त्रप्रवर्तना[5] हृतार्तिना मणिकुट्टिमक्षालनाग्रहस्तेन[6] च

आर्द्राणि (= क्लिन्नानि) अरविन्दिनीदलानि (= कमलिनी-पत्राणि) येन तादृशेन, करे-त्यादिः—करयोः (= राज्ञः शूद्रकस्य हस्तयोः) अर्पितम् (= प्रदत्तम्) कर्पूरक्षोदेन (= घनसारचूर्णेन) दन्तुरितम् (= उच्चावचीकृतम्) तुषारस्य (= हिमस्य) खण्डम् (= शकलम्) येन तादृशेन, [खण्डशब्दः, पुंसि नपुंसके चोभयत्र साधुः ।] हृदयेत्यादिः—हृदयेत्यादिः—हृदये (=राज्ञः वक्षस्थले) विनिहितः (= स्थापितः) हिमेनार्द्रः (= हिमेन क्लिन्नः) हारः (= माला) दण्ड इव येन तादृशेन, कपोलेत्यादि—कपोलतले (= गण्डस्थले) स्थापितः (= निहितः) स्फटिकमणिदर्पणः (= स्फटिकमणिनिर्मितमुकुरः) येन तादृशेन; ललाटेत्यादिः—ललाटतटे (= मस्तकस्योर्ध्वभागे) घटितः (= संयोजितः) चन्द्रमणिः (= चन्द्रकान्तमणिः) येन तादृशेन, अंसेत्यादिः—अंसदेशे (= स्कन्धभागे) स्थापितम् (= निहितम्) मृणालनालम् (= कमलनालम्; बिसदण्डम्) येन तादृशेन, कदल-दल-व्यजन-वाहिना = कदलीदलनिर्मित-व्यजनधारिणा, आनर्तितेत्यादिः—आनर्तितः (= परितः भ्रामितः) तालवृन्तः (= तालपत्रनिर्मितविशालव्यजनम्) येन तादृशेन, जलार्देत्यादिः—जलार्द्रः (= सलि-लेन क्लिन्नः) यः अनिलः (= पवनः) तं सञ्चारयति (= प्रवर्तयति) इत्येवंशीलस्तादृशेन, कुसुमेत्यादिः—कुसुमानाम् (= पुष्पाणाम्) तल्पः (= पर्यङ्कः, शय्या) तस्य कल्पना (= रचना) तया आकुलेन (= व्यग्रेण), धारागृहेत्यादिः—धारागृहस्य (=अजस्रजलप्रवाहु-मयभवनस्य) जलयन्त्राणाम् (= जलप्रक्षेपकयन्त्रविशेषाणाम्) प्रवर्तनाय (= परिचालनाय) आ (= समन्तात्) हृता (= प्रवर्तिता) आर्तिः (= पीडा) येन तादृशेन, मणीत्यादिः—मणिकुट्टिमस्य (= मणिनिबद्धभूभागस्य) क्षालनम् (= धावनम्, स्वच्छीकरणम्) तस्मिन् अग्रहस्तः (= संलग्नः कराग्रभागः) यस्य तादृशेन, च, सजलेत्यादिः—सजलानि (= सलिल-

---

करने वाले, [राजा के] पैरों के नीचे कमलिनी के गीले पत्ते रखे हुये, हाँथों पर कपूर के चूर्ण के कारण ऊँचा नीचा बरफ का टुकड़ा रखे हुये, वक्षःस्थल पर बर्फ से गीली माला की लड़ को रखे हुये, गालों के ऊपर स्फटिकमणि का दर्पण रखे हुये, मस्तकतल पर चन्द्रकान्तमणि रखे हुये, कन्धों पर मृणालनाल रखे हुये, केले के पत्तों का पंखा लिये हुये, ताड़ के पंखों को इधर उधर घुमाते हुये, पानी से गीली ठण्डी ठण्डी हवा करते हुये, फूलों की शय्या बनाने में व्यस्त, धारागृह में लगे जलयन्त्रों = फौव्वारों के चलाने के द्वारा [राजा की] व्यथा को शान्त करते हुये, मणिजटित फर्श को धोने में व्यस्त, जलयुक्त = गीले केसर वाले कमलों के उपचार के विधान

---

१. विनिहितार्द्र । २. स्फाटिकस्फुटित, स्फाटिक । ३. मृणालेन ।
४. सकुसुमतल्प । ५. आहृत, आहित, अकृत० । ६. आयस्तेन ।

[1]सजलकिञ्जल्कजलजोपचारप्रकरसंभ्रान्तेन च [2]शिशिरभूगृहाभ्यन्तरप्रत्यवेक्षणदक्षेण चोद्यानदीर्घिकातटलतागहनमण्डपसेकसन्ताप[3]हारिणा च [4]मलयजरसचन्द्रार्द्रजलचन्द्राश्रयावधानदानोद्यतेन चाप्तपरिजनेनोपचर्यमाणस्यापि काष्ठीभूतदेहस्य [5]दाहक्षमो झटित्येवारुरोह परां कोटिं कामानलो राज्ञ इव तुल्यावस्थस्य महाश्वेतोत्कण्ठया पुण्डरीकात्मनो वैशम्पायनस्य च ।

युक्तानि) किञ्जल्कानि (= केसराणि) येषां तादृशानि यानि जलजानि (= कमलानि) तेषां तैर्वा य उपचारप्रकरः (= उपचरणसमूहः) तस्मिन् सम्भ्रान्तेन (= व्यग्रेण). [उपचार-प्रकार—इति पाठे तु उपचारस्य विधिः तस्मिन् सम्भ्रान्तेनेत्यर्थः] शिशिरेत्यादिः—शिशिरम् (= शीतलम्) यद् भूगृहम् (= भुवोऽधोभागे निर्मितं भवनम्) तस्य अभ्यन्तरम् (= मध्यभागः) तस्य प्रत्यवेक्षणम् (= निरीक्षणम् अन्वेषणं वा) तस्मिन् दक्षेण (= चतुरेण), च, उद्यानेत्यादिः—उद्यानस्य (= उपवनस्य) या दीर्घिका (= वापी) तस्याः तटे (= तीरे) लतानाम् (= व्रततीनाम्) गहनस्य (= वनस्य) मण्डपः (= जनाश्रयः, मण्डपाकारस्थानविशेषः) तस्मिन् यः सेकः (= सिञ्चनम्) तेन सन्तापम् (= सञ्ज्वरम्) हरति (= दूरीकरोति) इत्येवंशीलेन, च, मलयजेत्यादिः—मलयजरसः (= चन्दनद्रवः) च चन्द्रः (= कर्पूरम्) च आर्द्रम् (= क्लिन्नं वस्तु) च जलम् (= सलिलम्) च चन्द्राश्रयः (= चन्द्रिका, चन्द्रमसोऽभ्यवधानं वा) च तेषु यदवधानम् (= ध्यानम्) तस्य दाने (= विधाने) उद्यतेन (= उद्युक्तेन, लग्नेन) च आप्तपरिजनेन = विश्वस्तपरिच्छदलोकेन, उपचर्यमाणस्य = सेव्यमानस्य, अपि, काष्ठीभूतदेहस्य—काष्ठीभूतः (= दारुभूतः, काष्ठत्वं प्राप्तः) देहः (= शरीरम्) यस्य तादृशस्य, राज्ञः, शूद्रकस्य = एतन्नामकस्य, अस्यां कादम्बर्यामादावेव विस्तरेण वर्णितस्य एतन्नामकस्य राज्ञः, दाहक्षमः = प्रज्वालने समर्थः, कामानलः = काम एव अनलः, मनोभववह्निः, झटिति = तत्कालम्, एव, पराम् = उत्कटाम्, कोटिम् = काष्ठाम्, आरुरोह = आससाद, राज्ञः = नृपस्य शूद्रकस्य, एव, तुल्यावस्थस्य—तुल्या (= समाना) अवस्था (= दशा) यस्य तस्य तादृशस्य, महाश्वेतोत्कण्ठया = महाश्वेताविषयिण्या उत्कलिकया, पुण्डरीकात्मनः = पुण्डरीकस्वरूपस्य, वैशम्पायनस्य=चन्द्रापीडमित्रस्य, च, 'कामानलः परां कोटिमारुरोह' इति वाक्यांशोऽत्रापि योज्यः । एवञ्च युगपदेव उभयोर्मित्रयोः कामातुरता सञ्जातेति भावः ।

में अत्यन्त व्यस्त = शीघ्रता करते हुये, जमीन में बने शीतगृहों के भीतरी भागों को देखने = निरीक्षण करने में कुशल, उद्यानों की बावड़ियों के तटवर्ती गहन लता वनों में मण्डपों को सींचने के द्वारा (राजा) के सन्ताप को दूर करने वाले और चन्दनरस = गीले चन्दन, चन्द्र = कपूर, गीले पदार्थ, जल और चाँदनी वाले स्थानों पर ध्यान देने में लगे हुये—विश्वस्त सेवकों द्वारा जिस राजा का उपचार किया जा रहा था फिर भी उसके काष्ठभूत (लकड़ी बने) शरीर को जलाने में समर्थ कामरूपी अग्नि पराकाष्ठा पर पहुँच गयी, महाश्वेता-सम्बन्धी उत्कण्ठा के कारण राजा (शूद्रक) के ही समान दशा वाले पुण्डरीकस्वरूप वैशम्पायन को [जलाने में समर्थ कामरूपी अग्नि पराकाष्ठा पर पहुँच गया]।

---

१. सजलपङ्कजकिञ्जल्ककह्लारप्रकरप्रचारणसम्भ्रान्तेन ।

२. अन्धकारशिशिर० ।　　३. सन्तापापहारिणा, सन्तापकारिणा ।

४. मलयजरस—चन्द्रार्द्र—जलार्द्र-चन्द्राश्रय०, मयलजजलार्द्रचन्द्राश्रय० ।　　५. दाहहेतुः ।

तस्मिन्नेव चान्तरे [1]तत्सन्धुक्षणायेव प्रवर्तयन् सरसकिसलयलतालास्योपदेशदक्षं दक्षिणानिलम्, आलोलरक्तपल्लवप्रालम्बान् [2]कम्पयन्नशोकशाखिनः, [3]वाञ्छितमुकुलमञ्जरी-भरेणानम्रयन्[4] बालसहकारान्, उत्कोरकयन्कुरबकैः सह बकुलतिलकचम्पकनीपान्, आपी-[5]तयन्किकिरातैः ककुभो[6], विकिरन्नतिमुक्तकामोदम्, उद्दामयन्किंशुकवनानि, निरङ्कुशयन्

कामदेवस्य मित्रस्य वसन्तस्यापि सहायकत्वेन तत्रोपस्थितिं वर्णयितुमाह—तस्मिन्ने-वेत्यादिना। तस्मिन् = पूर्वोक्ते, एव, च, अन्तरे = समयस्यान्तराले, ['परावर्तत सुरभिमासः' इत्यत्रान्वयः। इदमेव च मुख्यं वाक्यं बोध्यम्, तस्यैव सुरभिमासस्य विशेषणानि सर्वाणि प्रथमैक-वचनान्तानि पदानीति बोध्यम्।] तत्संधुक्षणाय—तस्य परां कोटिमारूढस्य कामानलस्य, संधुक्षणाय= उद्दीपनाय, प्रकर्षेण प्रज्वालनाय, इव, सरसेत्यादिः—सरसानि (= रसयुक्तानि, नवानि हरितानि) किसलयानि (= पल्लवानि) यासां तादृश्यः या लताः (= वल्लर्यः) तासां लास्यस्य (= नृत्यस्य) उपदेशे (= शिक्षणे) दक्षम् (= चतुरम्) दक्षिणानिलम् = दक्षिणदिशोत्थपवनम्, मलयमारुत-मित्यर्थः, प्रवर्तयन् = प्रेरयन्। आलोलेत्यादिः—आलोलानि (= चञ्चलानि) रक्तानि (=लोहित-वर्णानि) च यानि पल्लवानि (= किसलयानि) तेषां प्रालम्बाः (= समूहाः) येषु तादृशान्, अशोक-शाखिनः=अशोकाख्यवृक्षान्, कम्पयन्=वेपयन्। वाञ्छितेत्यादिः—वाञ्छितानि (=अभिलषितानि) मुकुलानि (=कुड्मलानि) मञ्जर्यः (=वल्लर्यः) च तासां भरेण (=भारेण, आधिक्येन) बालसहकारान्= नवान् आम्रवृक्षान्, आनम्रयन् = अधिकं निम्नत्वं प्रापयन्। कुरवकैः = पुष्पविशेषवृक्षैः, सह = सार्धम्, बकुलेत्यादिः—बकुलाः (= केसराः) च तिलकाः (= क्षुरकाख्याः वृक्षविशेषाः) च चम्पकाः (= हेमपुष्पकाः) च नीपाः (= कदम्बाः) च इति तान्, उत्कोरकयन् = कुड्मलयुक्तान् कुर्वन्। किंकिरातैः = कुरण्टकैः अशोकवृक्षैः, '...शेखरैः किंकिरातैः' इतिरत्नावली। सह=सार्धम्, ककुभः = दिशाः, आपीतयन् = परितः पीतवर्णाः कुर्वन्। अतिमुक्तकामोदम् = माधवी-लतायाः सौरभम्, विकिरन् = विक्षिपन्, प्रसारयन्। किंशुकवनानि = पलाशानां विपिनानि, उद्दामयन् = उत्कटयन्। कामिजनमनांसि = कामुकलोकानां चेतांसि, निरङ्कुशयन्=उच्छृङ्खलानि

उसी समय में मानों उस (कामाग्नि) को भड़काने के लिये सरस (हरी ताजी) पत्तों वाली लताओं को लास्य (नृत्य) सिखाने में दक्ष मलयानिल (दक्षिणानिल) को बहाता = चलता हुआ, चञ्चल (हिलती हुई) लाल-लाल पत्तियों के समूह वाले अशोक वृक्षों को कंपाता (हिलाता) हुआ, मनोवाञ्छित मुकुलों तथा मञ्जरियों (बौरों) के बोझ से नये-नये (छोटे-छोटे) आम-के वृक्षों को झुकाता हुआ, कुरबकों (कुरण्ट के वृक्षों) के साथ-साथ बकुल (मौलसिरी) तिलक, चम्पा और कदम्ब के वृक्षों को कलियों से युक्त करता हुआ, किंकिरातों (अशोक वृक्षों) से दिशाओं को कुछ कुछ पीला करता हुआ, माधवी लता (बेला) की गन्ध को बिखेरता हुआ, ढाक के वनों को उत्कट अर्थात् फूलों से लदा बनाता हुआ, कामुक लोगों के मनों को निरंकुश बनाता हुआ, मानिजनों

---

१. तत्क्षणमेव । २. स्तवकयन् । ३. विकसित ।
४. आनमयन्, नम्रयन् । ५. आपातयन् । ६. ककुभान् ।

कामिजनमनांसि, निर्मूलयन्मानम्, अपमार्जयंल्लजाम्, अपाकुर्वन्कोपम्, [1]अपनयन्ननु-नयव्यवस्थाम्, [2]आस्थापयन्हठ [3]चुम्बनालिङ्गनरतस्थितिम्, समुल्लासयन्मकरध्वजरक्त-[4]ध्वजानिव किंशुकानि, सकलमेव महारजतमयमिव रागमयमिव मदनमयमिवोन्माद-मयमिव प्रेममयमिवोत्सवमयमिवौत्सुक्यमिव जनयञ्जीवलोकम्, किसलयितसर्वकान्तार-काननोपवनतरुरुत्फुल्लचूतद्रुमामोदवासितदशाशान्तरो मधुमदमधुरकोकिलालापदुःखिता-

कुर्वन्। मानम् = दर्पम्, प्रेयस्याः प्रियस्य चोभयोरिति शेषः, निर्मूलयन् = समूलम् उत्पाटयन्, विनाशयन्। लज्जाम् = त्रपाम्, उभयोरिति शेषः, अपमार्जयन् = अपाकुर्वन्, दूरीकुर्वन्। कोपम् = क्रोधम्, उभयोरिति शेषः, अपाकुर्वन् = निराकुर्वन्। अनुनयव्यवस्थाम् = प्रसादनस्य रीतिम्, उभयोरिति शेषः, अपनयन् = निराकुर्वन्, स्वत एव कोपादीनां विनाशेन तस्यानवश्यकत्वादिति भावः। हठेत्यादिः—हठात् (= बलात्) चुम्बनम् च (= अधरकपोलादीनां विशिष्टरीत्या स्पर्शः) हठात् आलिङ्गनम् च (= उपगूहनम्) हठात् रतम् (= रतिप्रवृत्तिः) च एतासां स्थितिम् (= अवस्थाम् वृत्तिम्) आस्थापयन् = सम्यग्रूपेण स्थापयन्, बलादेव एतानि सर्वान् कर्तुं प्रेरयन्निति भावः। मकरध्वजरक्तध्वजान् = कामदेवस्य लोहितपताकाः, इव, किंशुकानि = पलाशान्, समुल्लासयन् = प्रवर्धयन्। अत्र 'इव' शब्द उत्प्रेक्षायां साधुः। सकलम् = समस्तम्, एव, जीवलोकम् = संसारम्, महारजतमयम् = स्वर्णमयम् ['चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने' इत्यमरः], इव, रागमयम् = प्रणयमयम्, इव, मदनमयम् = कामदेवमयम्, इव, उन्मादमयम् = चित्तवैक्लव्यमयम्, इव, प्रेममयम् = स्नेहमयम्, इव, उत्सवमयम् = महमयम्, इव, औत्सुक्यमयम् = कौतूहलमयम्, इव, जनयन् = कुर्वन्। किसलयितेत्यादिः—किसलयिताः (= संजातकिसलयाः, उत्पन्नपल्लवाः) सर्वे (= सकलाः) कान्ताराणि (= महारण्यानि, अरण्यान्यः) च काननानि (= सामान्यवनानि) च उपवनानि (= उद्यानानि) च इति तेषां तरवः (= वृक्षाः) येन यत्र वा तादृशः सर्वशब्दः तरोः विशेषणम्। [केचित्तु तत्र कान्तारम् = शून्याटवी, काननम् = निर्मानुषं वनम्, उपवनम् = नगर-समीपवर्तिवनम्' इति त्रयाणां किञ्चिद्भेदोऽस्तीति।] उत्फुल्लेत्यादिः—उत्फुल्लाः (= विकसिताः) चूतद्रुमाः (= आम्रतरवः) तेषाम् आमोदेन (= सौरभेण) वासितानि (= सुरभीकृतानि) दशानाम् आशानाम् (= दिशानाम्) अन्तराणि (= अन्तरालानि, मध्यदेशाः) येन यत्र वा तादृशः। मधुमदेत्यादिः—मधुनः (= मकरन्दस्य) मदेन (= मादकतया) मधुरः (= मिष्टः, कर्णप्रियः) यः कोकिलालापः (= पिकध्वनिः) तेन दुःखिता (= प्राप्तदुःखा) अध्वगानाम्

के मान को दूर करता हुआ, लज्जा को हटाता हुआ, क्रोध को दूर करता हुआ, (परस्पर) अनुनय विनय (मान-मनौवल) की व्यवस्था को हटाता (समाप्त करता) हुआ, बलपूर्वक (जबरदस्ती) चुम्बन, आलिङ्गन तथा सम्भोग की स्थिति को स्थापित करता हुआ, कामदेव की लाल पताकाओं के समान किंशुकों (ढांक के फूलों) का विस्तार करता हुआ, बढ़ाता हुआ, सारे के सारे जीवलोक (संसार) को महारजतमय = सुवर्णमय जैसा, आसक्तिमय जैसा, कामदेवमय जैसा, उन्मादमय जैसा, प्रेममय जैसा, उत्सवमय जैसा, औत्सुक्यमय जैसा बनाता (करता) हुआ, सभी जंगलों, वनों तथा उपवनों को नवपल्लवों से युक्त करता हुआ, खिले (मञ्जरी से लदे) हुये आम के वृक्षों की सुगन्ध से दशों दिशाओं के मध्य भाग को सुगन्धित करता हुआ, मधु (पान) से मत्त तथा मधुर कोयलों की आवाज से प्रवासी जनों के कानों को कष्ट पहुँचाता हुआ, लगातार (गिरते हुये)

१. उपनयन्। २. उपस्थापयन्, व्यवस्थापयन्।
३. हठ०। ४. रक्तध्वजांशुकानि, रक्तांशुकानि।

ध्वगजनश्रुतिरनवरतमकरन्दसीकरासारदुर्दिनोन्मादितसकलजीवलोकहृदयो मदाकुल-[1]भ्रमद्भ्रमरझङ्कारका[2]तरितविरहातुरमनोवृत्तिरात्मसम्भवैकोल्लासकारी भरात्परावर्तत सुरभिमासः।

येन च कुसुमधन्वनः परमास्त्रेण मधुना पर्याकुलितहृदया कादम्बरी सम्प्राप्ते भगवतः कामदेवस्य [3]महे महता प्रयत्नेन कथं कथमप्यतिवाहितदिवसा, श्यामायमानदशदिशि सायाह्ने, स्नात्वा [4]निर्वर्तितकामदेवपूजा, तस्य पुरश्चन्द्रापीडमतिसुरभिशीतलैः

(= प्रवासिनां पथिकानाम्) श्रुतिः (= कर्णम्) येन यत्र वा तादृशः। अनवरतेत्यादिः—अनवरतः (= अविच्छिन्नः) यः मकरन्दस्य (= पुष्परसस्य) सीकराणाम् (= बिन्दूनाम्) आसारः (= वृष्टिः) तद्रूपं तेन वा यद् दुर्दिनम् (= मेघाच्छन्नं दिनम्) तेन उन्मादितानि (= उन्मादयुक्तानि कृतानि) सकलजीवलोकानाम् (= समस्त-प्राणिजनानाम्) हृदयानि (= चित्तानि) येन यस्मिन् वा तादृशः। मदाकुलितेत्यादिः—मदाकुलाः (=पुष्परसपानेनोन्मत्ताः) ये भ्रमन्तः (= भ्राम्यन्तः) भ्रमराः (= द्विरेफाः) तेषां यो झङ्कारः (= झमिति ध्वनिः) तेन कातरिताः (= अधीरीकृताः) विरहातुराणाम् (= वियोगेन व्याकुलजनानाम्) मनोवृत्तयः (= मनोव्यापाराः, मानसिकदशाः) येन स तादृशः। आत्मेत्यादिः—आत्मनः (= मनसः) सम्भवः (= उत्पत्तिः) यस्य स तादृशो यः कामदेवस्तस्य एकः (= अद्वितीयः) उल्लासकारी (= उल्लासजनकः प्रवर्धकः) सुरभिमासः = वसन्तः, भरात् = वेगात् आधिक्याद् वा, परावर्तत= समुपागतः। सकलस्ववैशिष्ट्यविशिष्टो वसन्तमास आगत इति भावः।

येनेति। कुसुमधन्वनः = पुष्पधनुर्धरस्य कामदेवस्य, परमास्त्रेण = उत्कृष्टास्त्रेण, येन = पूर्ववर्णितेन, मधुना = वसन्तमासेन, पर्याकुलितहृदया = अत्यन्तव्यग्रचित्ता, कादम्बरी = चन्द्रापीडप्रेयसी, भगवतः, कामदेवस्य = मनोभवस्य, महे = उत्सवे, सम्प्राप्ते = समुपस्थिते, सति, महता = अत्यधिकेन, प्रयत्नेन = प्रयासेन, कथं कथमपि = यथा कथञ्चित्, अतिवाहितदिवसा—अतिवाहितः (= यापितः) दिवसः (= दिनम्) यया सा तादृशी, श्यामायमानदशदिशि—श्यामायमानाः (= कृष्णवर्णीभवन्त्यः) दश दिशः (= काष्ठाः) यस्मिन् तादृशी, सायाह्ने = सायं काले, स्नात्वा = स्नानं कृत्वा, निर्वर्तितेत्यादिः—निर्वर्तिता (= सम्पादिता, विहिता) कामदेवस्य (= मनोभवस्य) पूजा (= पूजनम्) यया सा तादृशी, तस्य = कामदेवस्य, पुरः = समक्षम्, चन्द्रापीडम् = स्वप्रियतमम्, अतिसुरभि-शीतलैः = अतिशयसुगन्धित-

जल-कणों की तीव्र वर्षा से बने हुये दुर्दिन द्वारा सभी लोगों के हृदयों को उन्मादयुक्त किये हुये, मद से मत्त (पगलाये) तथा उड़ते (घूमते) हुये भौरों की झंकार (गुनगुनाहट) के द्वारा विरही लोगों की मनोदशा को कातर बनाये हुये, एकमात्र कामदेव के उल्लास को करने वाला बसन्त मास पूरे जोर शोर से आ गया।

कामदेव के परमास्त्र जिस बसन्त के द्वारा व्याकुल हृदय वाली की गई कादम्बरी, भगवान् कामदेव के उत्सव के आ जाने पर किसी प्रकार बहुत प्रयास से दिन को बिताती हुई, दशों दिशाओं को श्यामवर्ण की (अंधेरी) बना देने वाली सन्ध्या के समय में स्नान करके कामदेव की पूजा सम्पादित करके उस (कामदेव) के आगे चन्द्रापीड को अत्यन्त सुगन्धित तथा शीतल जल से

१. भ्रमयन्। २. चकित। ३. महोत्सवे। ४. निर्वर्तित०।

स्नापयित्वाम्भोभिरा चरणाद्विलिप्य मृगमदामोदिना हरिचन्दनेन, सुरभिकुसुमस्रग्भिरुद्ग्रथितं कुन्तलकलापं [1]कृत्वैककर्णार्पित[2]-[3]सत्किसलयाशोककुसुमस्तबककर्णपूरं कर्पूरकुसुमप्रायैः प्रसाध्याभरणविशेषैर्विस्मृतनिमेषापिबन्तीव भावार्द्रया दृशा[4] सुचिरमालोक्योत्कण्ठानिर्भरा पुनः पुनर्निश्वस्योत्कम्पमाना साध्वसेन स्विन्नसर्वाङ्गी समुत्कण्टकिततनुरुच्छुष्यदधरवदना महाश्वेतावलोकनभयान्मुहुर्मुहुर्दिक्षु विक्षिप्तोच्चकितदृष्टिरतिचिरमिवोपसृत्य पुनः पुनः

शीतैः, अम्भोभिः = जलैः, स्नापयित्वा = स्नानं कारयित्वा, आ चरणाद् = मस्तकादारभ्य चरणपर्यन्तम्, मृगमदामोदिना—मृगमदः (= कस्तूरिका) तस्य आमोदः (= सौरभम्) अस्ति अस्मिन् तादृशेन कस्तूरीगन्धमिश्रितेनेत्यर्थः, हरिचन्दनेन = एतन्नामकविशेष-मलयजेन, विलिप्य = विलेपनं कृत्वा, कुन्तलकलापम् = केशसमूहम्, सुरभि-कुसुमस्रग्भिः = सुगन्धितपुष्पमालाभिः, उद्ग्रथितम् = बद्धम्, कृत्वा = विधाय, एककर्णेत्यादिः—एकस्मिन् कर्णे (= श्रोत्रे) अर्पितम् (= न्यस्तम्), सत् (= शोभनम्, विद्यमानं वा) किसलयम् (= पल्लवम्) यस्मिन् सः, किसलयसहित इत्यर्थः, अशोक-कुसुमानाम् (= अशोकपुष्पाणाम्) स्तबकः (= गुच्छः) एव कर्णपूरः (= कर्णावतंसः) यस्य तं तादृशं स्वप्रियतममिति शेषः; कर्पूरकुसुमप्रायैः = घनसारस्य पुष्पाणि प्राचुर्येण येषु तैः, आभरण-विशेषैः = अलंकरणविशेषैः, प्रसाध्य = विभूषितं कृत्वा, विस्मृतनिमेषा = त्यक्तनिमेषोन्मेषा, आपिबन्ती = भृशं पानं कुर्वन्ती, अत्यादरेणावलोकयन्ती, इव, भावार्द्रया = मनोभावातिरेकेण सजलया, दृशा = नेत्रेण, सुचिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, उत्कण्ठानिर्भरा = औत्सुक्यपरिपूर्णा, पुनः पुनः = भूयो भूयः, निःश्वस्य = निःश्वासं गृहीत्वा, उत्कम्पमाना = अत्यधिकं वेपमाना, साध्वसेन = भयेन व्यग्रतया लज्जया वा, स्विन्नसर्वाङ्गी—स्विन्नानि (= स्वेदयुक्तानि) सर्वाणि (= सकलानि) अङ्गानि (= अवयवाः) यस्याः सा तादृशी, समुत्कण्टकिततनुः—समुत्कण्टकिता (= रोमाञ्चिता) तनुः (= शरीरम्) यस्याः सा तादृशी, उच्छुष्यदधरवदना—उच्छुष्यत् (= शुष्कतां प्राप्नुवत्) अधरम् (= अधरोष्ठम्) यस्य तादृशं वदनम् (= मुखम्) यस्याः सा तादृशी, महाश्वेतावलोकनभयात् = महाश्वेताकर्तृकदर्शनस्य भयेन, मुहुर्मुहुः = बारं बारम्, दिक्षु = सर्वासु दिशासु, विक्षिप्तोच्चकितदृष्टिः—विक्षिप्ता (= प्रेरिता, कृता) उच्चकिता (= आश्चर्ययुक्ता) दृष्टिः (= नेत्रम्)

स्नान करवा कर, कस्तूरी की सुगन्ध से युक्त हरिचन्दन द्वारा पैरों तक लेप करके, सुगन्धित फूलों की मालाओं से केशकलाप को ग्रन्थित करके, बांध करके, एक कान में पत्ते के साथ अशोकपुष्पों के के गुच्छे को कर्णपूर के रूप में पहनाये, कपूर तथा फूलों की प्रचुरता वाले आभरण विशेषों से सजा कर, निर्निमेष (अपलक) वह भावार्द्र (भावमयी) दृष्टि से पीती हुई सी बहुत देर तक देख कर, अत्यधिक उत्कण्ठा से युक्त, बार बार लम्बी सांसें लेकर, कांपती हुई भय के कारण सभी अंगों में पसीने से युक्त, रोमाञ्चित शरीर वाली, सूखते हुये ओष्ठ और मुख वाली, महाश्वेता द्वारा देख लिये जाने के भय से बार बार सभी दिशाओं में चकित दृष्टि डाले हुई, बहुत देर में पास आकर, बार-

१. कृत्वैव कर्णा० । २. आरोपित ।

३. प्रसरत्किसलय । ४. दृष्ट्या ।

स्थित्वाविष्टेव [1]परवती परित्याजिता बलाल्लज्जया सहाबलाजनसहजां भीतिं भगवता भुवनत्रयोन्मादकारिणा मन्मथेनात्मानमपारयन्ती सन्धारयितुमेकान्ते निःसहा सहसा तमभिपत्य मुकुलितनयन[2]पङ्कजा जीवन्तमिव निर्भरं कण्ठे जग्राह ।

चन्द्रापीडस्य तु तेनामृतसेकाह्लादिना कादम्बरीकण्ठग्रहेण सद्यः सुदूरगतमपि कण्ठस्थानं पुनर्जीवितं प्रत्यपद्यत । दिवसक्लमा[3]मीलितं कुमुदमिव शरज्ज्योत्स्नाभिपाता-

---

यथा सा तादृशी अतिचिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, इव, उपसृत्य = समीपमागत्य, चन्द्रापीड-शरीरस्येति भावः, पुनः पुनः, स्थित्वा = निषद्य, आविष्टा = भूतादि-ग्रस्ता, इव, परवती = पराधीना सती, भुवनेत्यादिः—भुवनत्रयस्य (= लोकत्रयस्य) उन्मादम् (= उन्मत्तताम्) करोतीत्येवंशीलेन भगवता = माहात्म्यवता, मन्मथेन = मनोभवेन, लज्जया = त्रपया, सह = सार्धम्, अबलाजनसहजाम् = नारीलोकस्वाभाविकीम्, भीतिम् = भयम्, बलात् = हठात्, परित्याजिता = परित्यक्तुं प्रेरिता, लज्जां भयं चोभयमपि कामातुरतया परित्यजन्तीति भावः, आत्मानम् = स्वाम्, सन्धारयितुम् = प्रकृतौ स्थापयितुम्, अपारयन्ती = अक्षममाणा, असमर्था, एकान्ते = रहसि, निःसहा = सोढुमसमर्था, तम् = चन्द्रापीडमृतदेहम्, सहसा = अकस्मात्, अभिपत्य = उपगम्य, मुकुलितवदन-पङ्कजा—मुकुलिते (= निमीलिते) नयने (= नेत्रे) पङ्कजे (= कमले) इव यस्याः सा तादृशी, कादम्बरी, जीवन्तम् = प्राणान् धारयन्तम्, इव, तं चन्द्रापीडम्, निर्भरम् = सघनं यथा स्यात् तथा, कण्ठे = ग्रीवाप्रदेशे, जग्राह = गृहीतवती, आश्लिष्टवतीत्यर्थः ।

चन्द्रापीडस्येति । अमृतेत्यादि—अमृतस्य (= सुधायाः) सेकः (= सिञ्चनम्) तद्वद् आह्लादम् (= आनन्दम्) करोतीत्येवंशीलेन, तेन = पूर्वोक्तेन, कादम्बरी-कण्ठग्रहेण = कादम्बरी-कर्तृककण्ठाश्लेषेण, चन्द्रापीडस्य = राजकुमारस्य तु, सुदूरगतम् = अतिविप्रकृष्टं प्रयातम्, अपि, जीवितम् = जीवनम्, सद्यः = तत्कालमेव, पुनः = भूयः, कण्ठस्थानम् = गलप्रदेशम्, प्रत्यपद्यत = प्राप, प्राणाः पुनरपि तस्य कण्ठे समागताः । स जीवितोऽभूदिति भावः । दिवसेत्यादिः—दिवसस्य (= दिनस्य) यः क्लमः (= सन्तापः) तेन आमीलितम् (= मुद्रितम्, संकुचितम्) शरज्ज्योत्स्नाभिपातात् = शारदीय-चन्द्रिकासम्पर्कात्, आबन्धनात् = वृन्तपर्यन्तम्, कुमुदम् = कैरवम्, इव, चन्द्रापीडस्य, हृदयम् = चित्तम्, कादम्बरी-विहितकण्ठाश्लेषात् आबन्धनात्, उच्छ्वसितम् = प्राणितम् । यथा दिवसजन्य-सन्ताप-प्रभावात् कुमुदं संकुचितं सत् रात्रौ शरत्कालीन-ज्योत्स्नायाः

बार ठहर (रुक) कर भूतादि से ग्रस्त सी, पराधीन-सी तीनों लोकों के उन्माद को उत्पन्न कर देने वाले भगवान कामदेव के द्वारा बलपूर्वक लज्जा के साथ साथ स्त्रीजन सुलभ भय को भी छुड़वा दी गई अर्थात् निर्भय बना दी गई, अपने को सम्भालने में असमर्थ होती हुई, अकेले में [वियोग को] सहने में असमर्थ, (कादम्बरी) अचानक उस चन्द्रापीड के पास पहुँच कर, नयनकमलों को बन्द किये हुई, जीते जागते के समान से उसको कण्ठ में आलिङ्गन कर बैठी ।

अमृत के सिंचन के समान कादम्बरी के उस कण्ठालिङ्गन से चन्द्रापीड के दूर गये अर्थात् शूद्रक के शरीर में गये हुये भी प्राण पुनः कण्ठस्थान में आ गये, वह जीवित हो उठा । दिन की गर्मी के कारण मुरझाया तथा बन्द (सिमटा हुआ) कुमुद शरत्कालीन चन्द्रमा की चाँदनी के गिरने

---

१. परवतीव । २. ···लोचन । ३ दिवसनिमीलितम्, दिवसक्लमनिमीलितम् ।

दुच्छ्वसितमा[1]'बन्धनाद् हृदयम् । उषःपरामृष्टेन्दीवर-मुकुललीलयोदमीलत्कर्णान्तायतं चक्षुः । अम्भोरुहविभ्रमेण चाजृम्भत वदनम् । एवं च सुप्तप्रतिबुद्ध इव प्रत्यापन्नसर्वाङ्ग-चेष्टश्चन्द्रापीडस्तथा कण्ठलग्नां कादम्बरीं चिरविरहदुर्बलाभ्यां दोर्भ्यां गाढतरं कण्ठे गृहीत्वा वाताहतां बालकदलीमिव भयोत्कम्पमानाङ्गयष्टिमुद्गाढतरामीलिताक्षीं वक्षस्येव

निपतनात् वृन्तसहितं विकसितं भवति तथैव चन्द्रापीडस्य हृदयमपि कादम्बरी-कृतकण्ठग्रहणेन पूर्णतया विकसितं जातमिति कैरवहृदययोरुपमा स्पष्टा । कर्णान्तायतम् = श्रोत्रयोरन्तभागपर्यन्तं विशालम्, चक्षुः = नेत्रम्, उषःपरामृष्टेत्यादिः—उषसा (= प्रत्यूषकालेन) परामृष्टम् (= स्पृष्टम्) यद् इन्दीवरस्य (= नीलकमलस्य) मुकुलम् (= कुड्मलम्) तस्य या लीला (= विलासः) तया, उदमीलत् = विकसितमभूत् । यथा उषः प्रभया स्पृष्टं नीलकमलकुड्मलं विकसितं भवति तथैव कादम्बरीकृत-कण्ठग्रहणेन चन्द्रापीडस्य कर्णान्तायतं चक्षुः विकसितमभूदिति भावः । अम्भोरुहविभ्रमेण = कमलस्य विलासेन, वा = इव, वदनम् = मुखम्, अजृम्भत = विकसितं जातम् । एवञ्च = अनेन प्रकारेण च, सुप्तप्रतिबुद्धः—पूर्वं सुप्तः (= शयितः) पश्चात् प्रतिबुद्धः (= जागरितः), इव, प्रत्यापन्नेत्यादिः—प्रत्यापन्ना (= पुनरधिगता) सर्वाङ्गानां सर्वाङ्गेषु वा (= सकलावयवेषु) चेष्टाः (= व्यापारः) येन स तादृशः, चन्द्रापीडः = कादम्बरी-प्रियतमः, तथा = पूर्वोक्तप्रकारेण, कण्ठलग्नाम् = विहितकण्ठाश्लेषाम्, कादम्बरीम्, चिरविरहदुर्बलाभ्याम् = दीर्घकालिकवियोगेन कृशाभ्याम्, दोर्भ्याम् = भुजाभ्याम्, कण्ठे = कादम्बर्याः ग्रीवाप्रदेशे, गाढतरम् = निबिडतरं यथा स्यात् तथा, गृहीत्वा = धृत्वा, वाताहताम् = वायुना प्रकम्पिताम्, बालकदलीम् = नवरम्भाम्, इव, भयेत्यादिः—भयेन (= भीत्या) उत्कम्पमाना (= वेपमाना) अङ्गम् (= शरीरम्) यष्टिः (= यष्टिका) इव, यस्याः तां तादृशीम्, उद्गाढतरामीलिताक्षीम्—उद्गाढतरम् (= अतिशयेन दृढम्) यथा स्यात् तथा आमीलिते (= संकोचिते) अक्षिणी (= नेत्रे) यया तां तादृशीम्, वक्षसि = उरसि, उभयोर्भुजयोर्मध्ये इत्यर्थः, एव, प्रवेष्टुम् = प्रवेशं

(सम्पर्क) के कारण जैसे उच्छ्वसित हो उठता है, खिल जाता है, वैसे ही उसका हृदय (कमल) बन्धन = वृन्त से खिल उठा । उषा काल के सम्पर्क को प्राप्त की हुई इन्दीवर (कमल) की कलियों की लीला अपनाती हुई, कानों तक लम्बी-लम्बी आँखें खिल उठीं, विकसित हो गई । कमल की लीला के समान उसका मुख खिल उठा । इस प्रकार सोकर जागा हुआ जैसा सभी अंगों में चेष्टा (क्रियाशीलता) प्राप्त किया हुआ चन्द्रापीड उस प्रकार से गले में लिपटी हुई कादम्बरी को दीर्घकालिक विरह के कारण दुबली बाहों से खूब कस कर गले में आलिगन करके तेज वायु = तूफान से आहत (मारी गई) छोटी सी कदली (केला के पेड़) के समान भय से कांपती हुई अङ्गयष्टिका वाली, खूब आँखें बन्द की हुई, (चन्द्रापीड के) हृदय में ही प्रवेश करने की इच्छा

---

१. आ निबन्धनात्, आबन्धनम् ।

प्रवेष्टुमीहमानां न मोक्तुं न ग्रहीतुमात्मना पारयन्तीं श्रोत्रहृदयग्राहिणानुभूतपूर्वेण स्वरेणानन्दयन्नवादीत् ।

'भीरु, परित्यज्यतां भयम् । प्रत्युज्जीवितोस्मि तवैवामुना कण्ठग्रहेण । त्वं खल्वमृतसम्भवादप्सरसां कुलादुत्पन्ना । किं न स्मरसि तन्मे वचनमिदम्—'तत्तेजोमयं वपुः स्वत एवाविनाशि विशेषतोमुना कादम्बरीकरस्पर्शेनाप्यायितमिति' । तदेतावन्त्येव दिनानि पाणिना ते स्पृश्यमानोपि न यत्प्रत्युज्जीवितोऽस्मि तच्छापदोषात् । अद्य तु स मे द्वितीयवारं त्वदर्थमेवानुभूतदुर्विषहमदनज्वरदाहवेदनापरमदुःखस्य व्यपगतः शापः । परित्यक्ता सा

कर्तुम्, ईहमानाम् = अभिलषन्तीम्, आत्मना = स्वतः, न, मोक्तुम् = त्यक्तुम् औत्सुक्यात् चन्द्रापीडस्य कण्ठमिति शेषः, न, वा, ग्रहीतुम् = आदातुम्, लज्जयेति शेषः, पारयन्तीम् = शक्नुवतीम्, कादम्बरीम्, श्रोत्र-हृदयग्राहिणा—श्रोत्रे (= कर्णद्वये) हृदयम् (= मनः) च इति श्रोत्रहृदयम्, तद् गृह्णाति = आधत्ते, आकर्षयतीत्येवंशीलेन, अनुभूतपूर्वेण = पूर्वमनुभवविषयीकृतेन, श्रुतेनेत्यर्थः, आनन्दयन् = प्रमोदयन्, अवादीत् = अवोचत्, चन्द्रापीड इति कर्तात्र बोध्यः ।

चन्द्रापीडः कादम्बरीं किमवादीदिति वर्णयति—भीरु इत्यादिना । हे भीरु = भयशीले ! भयम् = भीतिः; परित्यज्यताम् = परिह्रीयताम् । तव = भवत्याः कादम्बर्याः, एव, अमुना = सम्प्रति एव विहितेन, कण्ठग्रहेण = गलालिङ्गनेन, प्रत्युज्जीवितः = पुनर्जीवितः, अस्मि = वर्ते । खलु = हि, निश्चयेन वा, त्वम् = कादम्बरी, अमृत सम्भवात् = सुधारसोत्पन्नात्, अप्सरसाम् = गन्धर्वाङ्गनानाम्, कुलात् = वंशाद्, उत्पन्ना = सञ्जाता असि । किम्, मे = मम चन्द्रस्येत्यर्थः, इदम् = उक्तं वक्ष्यमाणं च, वचनम् = कथनम्, न, स्मरसि = स्मृति-विषयतां प्रापयसि ? अवश्यं स्मरसीति भावः । किं तद् वचनमित्याह—तत् = चन्द्रापीडसम्बन्धि, तेजोमयम् = तेजःस्वरूपम्, वपुः = शरीरम्, स्वतः = स्वयम्, स्वभावाद् वा, अविनाशि = अनश्वरम्, अस्तीति शेषः, विशेषतः = विशेषरूपेण, अमुना = एतेन, कादम्बरीकरस्पर्शेन = कादम्बरी-हस्तामर्शनेन; आप्यायितम् = परिपुष्टतां प्राप्तम्, अस्ति इति । तत् = तस्मात्, एतावन्ति = इयन्ति एव दिनानि = दिवसान् पर्यन्तम्, ते = कादम्बर्याः, पाणिना = करेण, स्पृश्यमानः = स्पर्शं प्राप्नुवन्, अपि, न, यत्, प्रत्युज्जीवितः = पुनर्जीवितः, अमूम्, स तु शापदोषात् = शापजन्यदुष्प्रभावात्, न तु अन्यस्मात्कारणादिति भावः । अद्य = इदानीम् तु, त्वदर्थम् = कादम्बरीनिमित्तम्, एव, अनुभूतेत्यादिः—अनुभूतम् (= साक्षात्कृतम्, सोढम्) दुर्विषहः (= अत्यन्तकष्टेन सोढुं योग्यः) यो मदनज्वरः (= कामसन्तापः) तस्य तेन वा यो दाहः

करती हुई, अपने आप (कण्ठाश्लेष को) न छोड़ने और न पकड़ने में समर्थ होती हुई (कादम्बरी) को—कानों तथा हृदय को आकृष्ट करने वाले (प्रिय) तथा पहले से अनुभव किये गये अपने स्वर से आनन्दित करता हुआ बोला—

'अरे भीरु ! (अब) भय छोड़ दे । तुम्हारे इसी कण्ठाश्लेष के द्वारा मैं पुनर्जीवित हो उठा हूँ । तुम वास्तव में चन्द्रमा से उत्पन्न होने वाली अप्सराओं के कुल में उत्पन्न हुई हो । क्या तुम्हें मेरा वह वचन नहीं याद है—'वह तेजोमय शरीर स्वतः ही अविनाशी है, विशेष रूप से कादम्बरी के इस करस्पर्श से परिपुष्ट हो रहा है' इसलिये इतने (बीते) दिनों तक तुम्हारे हाथ से स्पृष्ट किया जाता हुआ भी जो मैं नहीं पुनर्जीवित हो सका, वह तो शाप के दोष के कारण । किन्तु आज तो

मया त्वद्विरहदुःखदायिनी मानुषी शूद्रकाख्या तनुः। एषापि च तवास्यां रुचिरुत्पन्नेति त्वत्प्रीत्या प्रतिपन्ना पालिता च। तदयं लोकश्चन्द्रलोकश्च ते द्वावप्यधुना चरणतलप्रतिबद्धौ। अपि च प्रियसख्या अपि ते महाश्वेतायाः प्रियतमो मयैव सह विगतशापः संजातः।' इत्यभिदधत्येव चन्द्रापीडशरीरान्तरितवपुषि चन्द्रमसि चन्द्रलोकावस्थानलग्नममृतपरिमलमेव केवलमधिकमुद्वहन्नङ्गैरनन्यतमस्तादृशेनैव वेषेण यादृशेन महाश्वेतोत्कण्ठयोपरतस्तथैव

(= सन्तापः) तस्य परमम् (= अत्यन्तम्) दुःखम् (= कष्टम्) येन तादृशस्य तस्य, मे = चन्द्रस्य, सः = पूर्वप्रदत्तः, शापः = आक्रोशजन्यवाक्यविशेषः, द्वितीयवारम्, व्यपगतः = दूरीभूतः। मया = चन्द्रेण त्वद्विरह-दुःखदायिनी = तव वियोगजन्यकष्टप्रदायिनी, शूद्रकाख्या = शूद्रक इति नाम्ना गृहीता, मानुषी = मनुष्यसम्बन्धिनी, तनुः = देहः, परित्यक्ता = उज्झिता। अस्याम् = चन्द्रापीडरूपेण गृहीतायाम्, तनौ, तव=भवत्याः कादम्बर्याः, रुचिः = आसक्तिः प्रीतिः, उत्पन्ना = सञ्जाता, इति = अस्मात् कारणात्, त्वत्प्रीत्या = तव प्रेम्णा, प्रतिपन्ना = स्वीकृता, पालिता = परिरक्षिता च। तत् = तस्मात्, अयम् = एषः, लोकः = मर्त्यलोकः, चन्द्रलोकः, च, द्वौ = उभौ, अपि, अधुना = इदानीम्, ते = तव कादम्बर्याः, चरणतलप्रतिबद्धौ = पाद-तलाधीनौ, स्तः।' अपि च = अन्यच्च, ते = तव कादम्बर्याः, प्रियसख्याः = वल्लभवयस्यायाः, महाश्वेतायाः = एतन्नाम्न्याः, प्रियतमः = प्राणेश्वरः, पुण्डरीक इति भावः, अपि, मया = मया चन्द्रेण, सह = सार्धम्, एव, विगतशापः = शापरहितः, सञ्जातः = अभूत, इति = अनेन रूपेण, चन्द्रापीडेत्यादिः—चन्द्रापीडस्य (= एतन्नामकस्य राजकुमारस्य) शरीरेण (= देहेन) अन्तरितम् (= व्यवहितम्) वपुः (= शरीरम्) यस्य तस्मिन् तादृशे, चन्द्रमसि = चन्द्रे लोकपाले, अभिदधति = कथयति, सति, चन्द्रेत्यादिः—चन्द्रलोके (= निशापतिलोके) यद् अवस्थानम् (= अवस्थितिः, निवसनम्) तेन लग्नम् (= संसक्तम्), अमृतपरिमलम् (= पीयूषस्य सौरभम्), एव, केवलम्, अधिकम् = पूर्वावस्थातो विशिष्टम्, उद्वहन् = धारयन्, अङ्गैः = देहावयवैः, अनन्यतमः = नातिशयेन अन्यः, अभिन्न इति यावत्, तादृशेन = पूर्ववर्णितेन, एव, वेषेण = नेपथ्येन, यादृशेन = यत्प्रकारेण,

तुम्हारे लिये ही असह्य काम-वेदनारूपी ज्वर के सन्ताप के कष्टरूपी महान् दुःख का अनुभव करने वाले (भोगने वाले) मेरे लिये वह शाप दूसरी बार दूर हो गया। तुम्हारे विरह का दुःख देने वाली शूद्रक नाम वाली वह मानुषी देह मैंने छोड़ दी है। इस (चन्द्रापीडरूपी) देह में तुम्हारी रुचि—प्रीति उत्पन्न हो गई है इसलिये इस (देह) को स्वीकार किया है और पालन किया है। इसलिये यह मनुष्यलोक और चन्द्रलोक ये दोनों ही अब तुम्हारे चरणतलों में बद्ध = आश्रित हैं। और भी, तुम्हारी प्रिय सखी महाश्वेता का प्रियतम (पुण्डरीक = वैशम्पायन) भी मेरे साथ ही शाप से रहित हो गया है"—इस प्रकार से चन्द्रापीड के शरीर में छिपे हुये शरीर वाले चन्द्रमा के कहते ही चन्द्रलोक में चिरकाल तक रहने के कारण [शरीर में] लगी हुयी अधिक केवल अमृत की सुगन्ध को धारण करता हुआ, अपने अवयवों से दूसरा न होता हुआ, उसी प्रकार

कण्ठेनैकावलीं धारयंस्तथैवाकल्पनिःसहैरङ्गैस्तथैवापाण्डुक्षामकपोलवाहिना मुखेनाम्बरतलादवतरन्नदृश्यत कपिञ्जलकरावलम्बी पुण्डरीकः[1]।

दृष्ट्वा च तं दूरत एवोन्मुक्तचन्द्रापीडवक्षःस्थला कादम्बरी स्वयमेव धावित्वा दत्त[2]-कण्ठग्रहां महाश्वेतां पुण्डरीकागमनमहोत्सवेन यावन्न वर्धयत्येव तावदवतीर्य पुण्डरीकः परमोपकारिणे चन्द्रापीडवपुषे शशाङ्कायाढौकत। चन्द्रापीडस्तु तं कण्ठे गृहीत्वाब्रवीत्—

महाश्वेतोत्कण्ठयोपरतः = महाश्वेतायाः औत्सुक्येन मृतः, तथैव = पूर्ववदेव, कण्ठेन = ग्रीवादेशेन, एकावलीम् = मौक्तिकानामेकसूत्रमालाम्, धारयन् = बिभ्रद्, तथैव = पूर्ववदेव, आकल्पनिःसहैः = प्रसाधनसहनासमर्थैः, अङ्गैः = अवयवैः। ['आकल्पवेषौ नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्' इत्यमरः २।६-९९] तथैव = पूर्ववदेव, आपाण्ड्वित्यादिः—आ (= ईषत्) पाण्डू (= पाण्डुरौ, शुक्लौ) क्षामौ (= कृशौ) च कपोलौ (= गण्डस्थले) वहति (= बिभर्ति) इत्येवंशीलेन, मुखेन = वदनेन, उपलक्षित इति शेषः, अम्बरतलात् = गगनतलात्, अवतरन् = अधोदेशे आगच्छन्, कपिञ्जल-करावलम्बी = कपिञ्जलाख्य-स्वमित्र-हस्ताश्रयी, पुण्डरीकः = महाश्वेतायाः प्राणवल्लभः, अदृश्यत = दृष्टः, लोकैरिति शेषः। एवञ्च चन्द्रः पुण्डरीकश्चोभावपि तत्र स्वमूलस्वरूपेणोपस्थितावभूतामिति भावः।

दृष्टेति। दूरतः = विप्रकृष्टाद्, एव, तम् = पुण्डरीकम्, अवतरन्तम्, दृष्ट्वा = विलोक्य, उन्मुक्तेत्यादिः—उन्मुक्तम् (= परित्यक्तम्) चन्द्रापीडस्य (= स्वप्रियतमस्य) वक्षःस्थलम् (= उरःस्थलम्) यया सा तादृशी, कादम्बरी, स्वयमेव = आत्मना एव, धावित्वा = तीव्रतरं गत्वा, पलाय्य, दत्तकण्ठग्रहाम्—दत्तः (= अर्पितः), कण्ठग्रहः (= गलालिङ्गनम्) यस्यै तादृशीम्, ताम् = स्वप्रियवयस्याम्, पुण्डरीकागमनमहोत्सवेन = पुण्डरीकस्य पुनः समागमरूपमहामहेन, यावत्, न, वर्धयति = अभिनन्दति, वर्धापनेन योजयति, तावत्, अवतीर्य = आकाशादधः समागत्य, पुण्डरीकः, परमोपकारिणे = अतीवोपकृतिविधायिने, चन्द्रापीडवपुषे = चन्द्रापीडशरीरधारिणे, शशाङ्काय = चन्द्राय, अढौकत = उपागमत्, अत्र 'गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि' इति सूत्रेण चतुर्थी कर्मण्येव बोध्येति न कोपि दोषः। चन्द्रापीडः तु, तम् = पुण्डरीकम्, कण्ठे = गले, गृहीत्वा = आश्रित्य, गलालिङ्गनं विधायेति भावः, अब्रवीत् = अवोचत्। किन्तदिति वर्णयति—सखे इत्यादिना। सखे पुण्डरीक ? = प्रिय मित्र पुण्डरीक !

के वेष से जिस प्रकार के वेश द्वारा महाश्वेता के प्रति उत्कण्ठित हुआ था, गले में उसी प्रकार की एकावली (—मोतियों की एक लड़ वाली माला) को धारण करता हुआ, उसी प्रकार के आकल्प = वेशभूषा को न सह सकने वाले अङ्गों से, उसी प्रकार के पाण्डुवर्ण के तथा दुर्बल कपोल वाले मुख के साथ कपिञ्जल का हाथ थामे (पकड़े) हुआ, आकाशतल से नीचे उतरता हुआ पुण्डरीक दिखाई दिया।

उस (पुण्डरीक) को दूर से देख कर चन्द्रापीड के वक्षस्थल को छोड़ती हुई कादम्बरी अपने आप दौड़ कर महाश्वेता को गले से लगाती हुई पुण्डरीक के आगमनरूपी महोत्सव से जब तक बधाई भी नहीं दे पाई थी तब तक (उससे पहले ही) नीचे उतर कर पुण्डरीक परम उपकारकारक चन्द्रापीड के रूप में शरीर वाले चन्द्रमा के पास आ पहुँचा। चन्द्रापीड उसे गले से लगा कर कहने लगा—'मित्र पुण्डरीक ! यद्यपि पहले अर्थात् पुण्डरीक रूप में जन्म के

---

१. वपुस्पृष्टमुक्तशरीरः पुण्डरीकः। २. दत्तकण्ठग्रहम्।

'सखे पुण्डरीक यद्यपि प्राग्जन्मसम्बन्धाज्जामातासि तथाप्यनन्तरजन्माहितसुहृत्स्नेहसद्भावेनैव मया सह वर्तितव्यं भवता।' इत्येवं च वदत्येव चन्द्रापीडे चित्ररथहंसौ दिष्ट्या वर्धयितुं केयूरको हेमकूटमगमत्। मदलेखापि धावमाना निर्गत्य मृत्युञ्जयजपव्यग्रस्य तारापीडस्य विलासवत्याश्च पादयोः पतित्वा—'देव देव्या सह दिष्ट्या वर्धसे, प्रत्युज्जीवितो युवराजः समं वैशम्पायनेन' इत्यानन्दनिर्भरमुच्चैर्जगाद।

यद्यपि, प्राग्जन्मसम्बन्धात् = पूर्वजन्मसम्बन्धानुसारेण, जामाता = दुहितुः पतिः, असि = भवसि, [महाश्वेतोत्पत्ति-वर्णन-प्रसङ्गे इदं प्रतिपादितं यत् सा चन्द्रसम्भवाप्सरसां कुले उत्पन्ना। तेन चन्द्रस्य दुहिताऽभूत्। पुण्डरीकश्च तस्याः पतिरेतेन जामाता वर्तते इति बोध्यम्।] तथापि = एवं स्थितावपि, अनन्तरेत्यादिः—अनन्तरम् (= पश्चात्कालिकम्) यद् जन्म (= उत्पत्तिः, चन्द्रापीडरूपेण यदवतरणम्) तस्मिन् आहितः (= अर्जितः, जनितः) यः सुहृत्स्नेहः (= वयस्यानुरागः) तस्य सद्भावेन (= सद्भावनया), एव, मया = चन्द्रेण, चन्द्रापीडेन, सह=सार्धम्, भवता = त्वया पुण्डरीकेण, वर्तितव्यम्=व्यवहर्तव्यम्, न तु श्वशुरत्वेनेति तदाशयः, इति,एवम्=पूर्वोक्तरूपेण,चन्द्रापीडेन, वदति = कथयति, एव, सति, चित्ररथ-हंसौ = एतन्नामानौ कादम्बर्याः महाश्वेतायाश्च पितरौ, दिष्ट्या = भाग्येन, वर्धयितुम् = समेधयितुम्, तयोर्वर्धापनं कर्तुमिति भावः, केयूरकः=कादम्बरीसेवकः, हेमकूटम् = कादम्बर्याः नगरम्, अगमत् = प्रस्थितः। मदलेखा = कादम्बरीपरिचारिका सखी, अपि, धावमाना = धावन्ती, निर्गत्य = ततो बहिरागत्य, मृत्युञ्जयजपव्यग्रस्य=मृत्युञ्जयाख्यमहामन्त्रजपानुष्ठान-निरतस्य, तारापीडस्य = चन्द्रापीडजनकस्य, विलासवत्याः = चन्द्रापीडजनन्याः च, पादयोः = चरणयोः, पतित्वा = निपत्य, 'देव! = स्वामिन्! देव्या = महाराज्ञ्या, सह = सार्धम्, दिष्ट्या = भाग्येन, वर्धसे = एधसे, तव सौभाग्यवृद्धिर्जायते इति भावः। कथमिति चेत्तत्राह—प्रत्युज्जीवित इति। युवराजः = चन्द्रापीडः, वैशम्पायनेन = एतन्नामकेन शुकनासपुत्रेण, समम् = सार्धम्, प्रत्युज्जीवितः=पुनर्जीवितः, जात इति शेषः, इति, आनन्दनिर्भरम् = प्रमोदाधिक्येन सहितं यथा स्यात् तथा, उच्चैः=तीव्रस्वरेण, जगाद=उक्तवती।

सम्बन्ध के कारण तुम मेरे जामाता (दामाद) हो [क्योंकि महाश्वेता चन्द्रकुलोत्पन्न अप्सरा से जन्मी होने से चन्द्रमा की कन्या हो जाती है।] फिर भी बाद वाले अर्थात् वैशम्पायन के रूप में जन्म के कारण हुये मैत्रीभाव के स्नेह से ही मेरे साथ आपको व्यवहार करना चाहिये अर्थात् मित्रता का ही नाता रहना चाहिए श्वसुर-जामाता का नहीं।" चन्द्रापीड द्वारा ऐसा कहे जाते ही केयूरक (कादम्बरी का सेवक) चित्ररथ (कादम्बरी के पिता) और हंस [महाश्वेता के पिता] को बधाई देने लिये हेमकूट पर्वत पर चल दिया। मदलेखा भी दौड़ती हुई बाहर निकल कर मृत्युञ्जय मन्त्र के जप में संलग्न तारापीड के तथा विलासवती के पैरों पर गिर कर—"महाराज! महारानी के साथ साथ बधाई हो, युवराज चन्द्रापीड वैशम्पायन के साथ पुनर्जीवित हो गये हैं।" इस प्रकार से अत्यन्त आनन्द के साथ जोर से बोली।

राजा तच्छ्रुत्वा तु शरीरसंस्कारविरहोद्गताविरलदीर्घपरुषपलितलोमशप्रकोष्ठाभ्यां दोर्भ्यां परिष्वज्य तां [तदनु] हर्षपरवशो विलासवतीं कण्ठेवलम्ब्य [1]जराभङ्गवलिपरिशिथिलितमूलेन बाहुनोत्क्षिप्तोत्तरीयांशुकाञ्चलः स्वयमेवाशिक्षितलयविसंष्ठुलैः पदैर्नृत्यन्निवोत्फुल्लवदन-नरपतिसहस्रपरिवृतोऽम्भोजाकर इव मलयमारुतप्रेङ्खोलनाविवर्तितो मदलेखां—'क्वासौ क्वासावि'ति पुनः पुनः पृच्छन्पुनः पुनर्निर्विशेषहर्षवृत्तिं शुकनासं कण्ठे

राजेति । राजा = नृपस्तारापीडः, तु, तत् = मदलेखोक्तम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, शरीरेत्यादिः—शरीरस्य (= स्वदेहस्य) यः संस्कारः (= स्नानप्रसाधनादिः) तस्य विरहेण (= अभावेन) उद्गतानि (= प्रादुर्भूतानि) अविरलानि (= निबिडानि) दीर्घाणि (=लम्बायमानानि) च, परुषाणि (= कठोराणि) च, पलितानि (= पक्वतया श्वेतानि) लोमानि (= रोमाणि) सन्ति अनयोरिति लोमशौ (= रोमयुक्तौ) प्रकोष्ठौ (= कफोणेरधोर्वविभागौ) ययोस्तादृशाभ्याम्, दोर्भ्याम् = भुजाभ्याम्, ताम् = मदलेखाम्, परिष्वज्य = आलिङ्ग्य, तदनु = तदनन्तरम्, हर्षपरवशः = प्रमोदवशीभूतः, विलासवतीम् = महाराज्ञीम्, कण्ठे = गलप्रदेशे, अवलम्ब्य = आश्रित्य, जरेत्यादिः—जरया (= वार्धक्येन) यो भङ्गः (= अभिभवः) तेन या वल्यः (= चर्मसंकुचनलक्ष्म्यः) ताभिः शिथिलितम् (= शिथिलतायुक्तम्) मूलम् (= अधोऽशः) यस्य तादृशेन, बाहुना = भुजेन, उत्क्षिप्तेत्यादिः—उत्क्षिप्तः (= स्कन्धोपरि स्थापितः) उत्तरीयाञ्चलः (= उत्तरीयवस्त्रम्) येन तादृशः, स्वयमेव = आत्मनैव, अशिक्षितेत्यादिः—अशिक्षितः (= न शिक्षां प्राप्तः, अनधीतः) यो लयः (= वाद्यादिगत्या सह स्वरादीनां संगतिः) तेन विसंष्ठुलैः (= अव्यवस्थितैः, अस्वाभाविकैः) पदैः = चरणैः, नृत्यन् = लास्यं कुर्वन्, इव, उत्फुल्लेत्यादिः—उत्फुल्लानि (= विकसितानि, मन्दहास्ययुक्तानि) वदनानि (= मुखानि) येषां तादृशाः ये नरपतयः (=राजानः) तेषां सहस्रैः परिवृतः (=परिगतः, युक्तः), मलयेत्यादिः—मलयमारुतः (= दक्षिणानिलः) तस्य या प्रेङ्खोलना (= इतस्ततः सञ्चालनम्) तया विवर्तितः (= क्षोभं प्रापितः, भिन्नमुखीकृतः) अम्भोजाकरः = कमलाकरः, इव, [अत्र राज्ञः अम्भोजाकरस्य च साम्यमुत्प्रेक्षितम् ।] नृत्यन् नृपः पवनचञ्चलजलाशयस्थानीयः, उत्फुल्लानि नरपतिमुखानि कमलस्थानीयानि—इति उभयोः साम्यं स्पष्टम्] मदलेखाम् = सूचनादायिनीं सेविकाम्, 'असौ = चन्द्रापीडः, क्व ?. असौ = चन्द्रापीडः, क्व ?' इति = इत्थम्, पुनः पुनः = भूयोभूयः, पृच्छन् = पृच्छाविषयीकुर्वन्, निर्विशेषहर्षवृत्तिम्—निर्विशेषा (= स्वतुल्या) हर्षस्य (=प्रमोदस्य) वृत्तिः (= भावः, व्यापारो वा) यस्य तादृशम्, शुकनासम् = वैशम्पायनपितरम्, कण्ठे = गलप्रदेशे,

राजा तारापीड उस मदलेखा के वचन सुन कर शरीर-संस्कार (स्नानादि) के अभाव के कारण निकले (उगे) घने लम्बे, कठोर और पके (सफेद) केशों से युक्त कोहनियों (प्रकोष्ठ) वाले हाथों से उसका आलिंगन करके (गले लगा कर), अत्यन्त हर्षयुक्त होता हुआ विलासवती को गले से लगा कर, बुढ़ापे के कारण त्वचा के सिकुड़ जाने से पड़ी हुई झुर्रियों से ढीली ढाली मूल भाग वाली भुजा से उत्तरीय (दुपट्टा) का आंचल ऊपर उठाये हुये, लय की शिक्षा न (प्राप्त) होने के कारण अव्यवस्थित = इधर उधर गिरते हुये पैरों से स्वयं ही नाचता हुआ सा, खिले हुए मुखवाले हजारों राजाओं से घिरा हुआ, मलयाचल की हवा से हिलाये जाने के कारण (इधर-उधर) हिलते डुलते कमलवन के समान (राजा) मदलेखा से-'वह चन्द्रापीड कहाँ है ? कहाँ है ?' ऐसा बार-बार पूछता हुआ,अपने ही समान हर्ष से परिपूर्ण व्यवहारवाले शुकनास को बार-बार गले से लगाकर

१. 'जराभङ्ग··· ···तारापीडोऽभ्यधात्' इत्येतन्नास्ति ।

सम्भावयंस्तत्रैवागच्छत् । दृष्ट्वा च तथा पुण्डरीककण्ठे लग्नं चन्द्रापीडमानन्दनिर्भरः शुकनासमवादीत्—'दिष्ट्या मया नैकाकिना तनयप्रत्युज्जीवनोत्सवसुखमनुभूतम्' इति । चन्द्रापीडस्तु तथा हर्षपरवशं पितरमालोक्य ससम्भ्रमोन्मुक्तपुण्डरीकः पुरेव पृथ्वीतलनिवेशितशिराश्चरणयोरपतत् ।

अथ सत्वरोपसृतस्तं तथा प्रणतमुन्नमय्य तारापीडोऽभ्यधात्—'पुत्र यद्यपि पिताहं तव शापदोषात्स्वपुण्यैर्वा सञ्जातस्तथापि जगद्वन्दनीयो लोकपालस्त्वम् । अपि च मय्यपि

पुनः पुनः = भूयोभूयः, सम्भावयन् = समाश्लिष्यन्, कण्ठग्रहणेन आनन्दप्रदर्शनपूर्वकं सम्मानं प्रकटयन्निति भावः, तत्रैव = यत्र चन्द्रापीडवैशम्पायनावास्तां तस्मिन्नैव स्थाने, अगच्छत्=प्रस्थितः ।

दृष्ट्वेति । चन्द्रापीडम् = युवराजम्, तथा = पूर्ववर्णितरूपेण, पुण्डरीककण्ठे = स्वसुहृद्गलप्रदेशे, लग्नम् = आसक्तम्, दृष्ट्वा = विलोक्य, आनन्दनिर्भरः = अतिशयप्रमोदपरिपूर्णः सन्, शुकनासम् = वैशम्पायनपितरम्, अवादीत् = अवोचत् । किन्तदिति वर्णयति—दिष्ट्येत्यादिना । दिष्ट्या = सौभाग्येन, मया = राज्ञा तारापीडेन, एकाकिना = असहायेन अद्वितीयेन, त्वया रहितेनेति भावः, तनयेत्यादिः—तनयस्य (=पुत्रस्य चन्द्रापीडस्य) यत् प्रत्युज्जीवनम् (=पुनर्जीवनम्) तद्रूपो य उत्सवः (= महः) तस्य सुखम् (= प्रमोदः) न = नैव, अनुभूतम् = साक्षात्कृतम्, अपि तु भवता सहैवानुभूतमिति भावः । चन्द्रापीडः = युवराजः, तु, तथा = तेन प्रकारेण, हर्षपरवशम् = प्रमोदाधीनम्, पितरम् = जनकं तारापीडम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, ससम्भ्रमेत्यादिः—सम्भ्रमेण (= व्यग्रतया) सहितं यथा स्यात् तथा मुक्तः (= परित्यक्तः) पुण्डरीकः (=स्ववयस्यः) येन तादृशः सन्, पुरा = पूर्वम्, इव, पृथ्वीत्यादिः—पृथ्वीतले (= भूतले) निवेशितम् (= संस्थापितम्) शिरः (= मूर्धा) येन तादृशः सन्, चरणयोः = पितुः पादयोः, अपतत् = निपतितवान्, प्रणनाम ।

अथेति । अथ = तदनन्तरम्, सत्वरोपसृतः = अतीवत्वरया समीपं गतः, तथा = पूर्वोक्तेन रूपेण, प्रणतम् = पादयोर्निपतितम्, तम् = चन्द्रापीडम्, उन्नमय्य = उपरि उत्थाप्य, तारापीडः, अभ्यधात् = अवोचत्—'हे पुत्र ! = हे सुत !, शापदोषात् = तव शापजन्यदुष्प्रभावात्, स्वपुण्यैः = मम निजैः सुकृतैः, वा, अहम् = तारापीडः, तव = भवतः, पिता = जनकः, सञ्जातः = भूतः, तथापि = एवं सत्यपि, त्वम् = भवान्, जगद्वन्दनीयः = संसारेण नमस्कार्यः, लोकपालः = लोकरक्षकः, चन्द्रः, असि ! अपि च = अन्यच्च, मयि = तारापीडे, अपि,

---

सम्मानित करता हुआ उसी स्थान पर पहुँच गया। पुण्डरीक के गले में उस प्रकार से लिपटे हुए चन्द्रापीड को देखकर अत्यन्त आनन्दित होता हुआ शुकनास से कहने लगा—"सौभाग्य से अकेले मैंने पुत्र के पुनर्जीवन महोत्सव सुख को नहीं भोगा, अर्थात् हम दोनों ने एक साथ भोगा।" चन्द्रापीड उस प्रकार से हर्ष में डूबे हुए पिता तारापीड को देखकर घबड़ाकर (हड़बड़ाहट में) पुण्डरीक को छोड़कर पहले के समान ही भूतल पर शिर रखता हुआ (पिता के) चरणों पर गिर पड़ा।

इसके बाद बहुत जल्दी-जल्दी में पास आये हुए तारापीड ने उस प्रकार से प्रणाम करते हुए चन्द्रापीड को ऊपर उठाकर कहा—'बेटा ! यद्यपि शाप के दोष के कारण अथवा अपने पुण्यों के कारण मैं तुम्हारा पिता बन गया हूँ तथापि तुम सारे संसार के वन्दनीय लोकपाल (चन्द्रमा) हो। इसके अतिरिक्त मुझमें भी (लोगों द्वारा) नमस्कार करने योग्य जो अंश है उसे भी मैंने तुम्हीं में संक्रान्त

नमस्यो योंशः सोपि मया त्वय्येव संक्रामितः। तदुभयथापि त्वमेव नमस्कार्यः। इत्यभिदधदेव समं राजपुत्रलोकसहस्रैः प्रतीपमस्य पादयोरपतत्। विलासवती तु तथा पित्रा प्रणते तस्मिन्परितोषेण (स्व) वाङ्गेष्विवासम्मान्ती तं पुनः शिरसि पुनर्ललाटे पुनश्च कपोलयोश्चुम्बित्वा गाढतरं सुचिरमालिलिङ्ग। उन्मुक्तश्च मात्रोपसृत्य पुनः पुनः कृतनमस्कारः शुकनासं प्रणनाम। आशीःसहस्राभिवर्धितश्च तेनात्मनोपसृत्य यथानुक्रमं पित्रोः शुकनासस्य मनोरमायाश्च 'एष वो वैशम्पायनः' इति पुण्डरीकं विनय'विलक्षावनम्रवदनमदर्शयत्।

यः = शास्त्रप्रदर्शितः, नमस्यः = नमस्कारयोग्यः, अंशः = भागः, सः = अंशः, अपि, मया = राज्ञा, त्वयि = चन्द्रापीडे, एव, संक्रामितः = स्थानान्तरितः। ['अष्टानां लोकपालानां मात्राभिर्निर्मितो नृपः' इत्यादिवचनानुरोधेन नृपे सर्वेषामंशाः सन्ति। तेन स चन्द्रापीडे इमानंशानपि सङ्क्रामयितवानिति भावः।] तत् = तस्मात्, उभयथा = उभयप्रकारेण, स्वतः लोकपालत्वेन मदंशानां सङ्क्रमणेन चेति भावः, त्वम् = भवान्, एव, नमस्कार्यः = प्रणम्यः, इति = इत्थम्, अभिदधत् = कथयन्, एव, राजपुत्र-लोकसहस्रैः = राजकुमारसहस्रैः, समम् = सह, प्रतीपम् = चन्द्रापीडस्य विपरीतम्, अस्य = चन्द्रापीडस्य, पादयोः = चरणयोः, अपतत् = निपतितः। विलासवती=चन्द्रापीडजननी, तु, तथा=तेन प्रकारेण, पित्रा=जनकेन तारापीडेन, तस्मिन् = चन्द्रापीडे युवराजे, प्रणते = नमस्कृतवति सति, परितोषेण=अतिसन्तुष्टतया, स्वाङ्गेषु=निजावयवेषु, असम्मान्ती, = मातुमशक्नुवती, प्रवेशं प्राप्तुमसमर्थेति भावः, इव, तम् = चन्द्रापीडम्, पुनः, शिरसि = मूर्धनि, पुनः, ललाटे = मस्तके, पुनः, कपोलयोः = गण्डस्थलयोः, चुम्बित्वा = चुम्बनं कृत्वा, सुचिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, गाढतरम् = अतिदृढं यथा स्यात् तथा, आलिलिङ्ग = आश्लिष्टवती। अत्र तत्तदवयवावच्छेदः सप्तम्यर्थः। तेन ललाटावच्छेदेन चुम्बित्वेत्यर्थः। मात्रा = जनन्या विलासवत्या, उन्मुक्तः = आलिङ्गनात् परित्यक्तः, सन्, पुनः पुनः = भूयोभूयः, कृतनमस्कारः = विहित-प्रणतिः सन्, शुकनासम् = वैशम्पायनपितरम्, प्रणनाम = नमश्चकार। तेन = शुकनासेन, आशीरित्यादिः—आशिषाम् (= शुभवचनानाम्) सहस्रम् (= दशशती) तेन अभिवर्धितः (= अभियोजितः) सन्, चन्द्रापीडः, आत्मना = स्वयम्, उपसृत्य = समीपं गत्वा, यथाक्रमम् = श्रेष्ठताक्रमानुसारेण, पित्रोः=जननीजनकयोः विलासवती-तारापीडयोः, शुकनासस्य=वैशम्पायनजनकस्य, मनोरमायाः = वैशम्पायनजनन्याः, च, एषः = अयं पुरोवर्ती, वः = युष्माकम्, वैशम्पायनः' वर्तते इति शेषः, इति=इत्थमुक्त्वा विनयेत्यादिः—विनयेन (=विनम्रतया) विलक्षम् (=लज्जायुक्तम् विस्मितं वा) वदनम् (= मुखम्) यस्य तादृशम्, पुण्डरीकम्, अदर्शयत् = दर्शितवान्, चन्द्रापीड इति शेषः।

कर दिया है, समर्पित कर दिया है। इसलिए अब दोनों ही प्रकारों से तुम्हीं मेरे लिये वन्दनीय हो'—इस प्रकार से कहता हुआ ही हजारों राजपुत्रों के साथ उलटे उसी (चन्द्रापीड अर्थात् अपने पुत्र) के पैरों पर गिर पड़ा, प्रणाम करने लगा। लेकिन विलासवती पिता द्वारा पुत्र को इस प्रकार से प्रणाम करने पर परितोष = खुशी के कारण अपने अंगों में न समाती हुई-सी उसके शिर पर फिर माथे पर फिर गालों पर चूम कर बहुत देर तक खूब कस कर आलिङ्गन करती रही, अपनी छाती में लिपटाये रही। माता द्वारा छोड़े गये चन्द्रापीड ने पास जाकर बार-बार नमस्कार करते हुए शुकनास को प्रणाम किया। शुकनास द्वारा हजारों आशीर्वादों से अभिवर्धित (युक्त) किया गया, अपनेआप आगे बढ़कर क्रमशः माता (विलासवती), पिता (तारापीड), शुकनास और मनोरमा को—'यह आप लोगों का वैशम्पायन है' ऐसा (कहते हुए) विनय तथा लज्जा से झुके शरीरवाले पुण्डरीक को दिखाया।

तस्मिन्नेव च प्रस्तावे समुपसृत्य कपिञ्जलः शुकनासमवादीत्—'एवं सन्दिष्टमार्यस्य भगवता श्वेतकेतुना—'अयं खलु पुण्डरीकः संवर्धित एव केवलं मया। आत्मजः पुनस्तव। अस्यापि भवत्स्वेव लग्नः स्नेहः। तद्वैशम्पायन एवायमित्येवमवगत्याविनयेभ्यो निवारणीयः। परोऽयमिति कृत्वा नोपेक्षणीयः। यच्चापगतशापोऽप्यात्मसमीपं नानीतस्तत्तवैवायमिति। अन्यच्चात्मानमस्मिन्ना[1]चन्द्रकालीनायुषि स्थापयित्वा कृतार्थः। [2]सम्प्रत्य-

---

तस्मिन्नेवेति। तस्मिन् = पूर्वोक्ते, एव, प्रस्तावे = प्रकरणे च, समुपसृत्य = समीपमागत्य, कपिञ्जलः, शुकनासम् = वैशम्पायनस्य पितरम्, अवादीत् = उक्तवान्। किन्तदिति वर्णयति—एवमित्यादिना। भगवता = महर्षिणा, श्वेतकेतुना = पुण्डरीकस्य पित्रा, आर्यस्य = श्रीमतो भवतः, एवम् = अनेन प्रकारेण, सन्दिष्टम् = सन्देशः कथितः। अयम् = एषः, पुण्डरीकः = वैशम्पायनस्य पूर्ववर्ती जनः, मया = श्वेतकेतुना, केवलम्, संवर्धितः = समेधितः, एव, खलु = निश्चयेन। पुनः = परन्तु, आत्मजः = सुतः, पुत्रः, तव = भवतः शुकनासस्य एव, वर्तते। अस्य = पुण्डरीकस्य, अपि, भवत्सु = शुकनासादिषु, एव, स्नेहः = प्रीतिः, लग्नः = सम्बद्धः, अस्ति। तत् = तस्माद्, अयम् = एषः पुण्डरीकः, वैशम्पायनः = एतन्नामा तव पुत्रः, एव, इति, एवम् = अनेन प्रकारेण, अवगत्य = ज्ञात्वा, अविनयेभ्यः = अशिष्टाचारेभ्यः, औद्धत्येभ्यः, निवारणीयः = दूरीकरणीयः। अयम् = एषः पुण्डरीकः, परः = भिन्नः, अनात्मीयः, इति, कृत्वा = मत्वा, न, उपेक्षणीयः = उपेक्षाविषयीकरणीयः। यत्, च, अपगतशापः—अपगतः (= दूरीभूतः, विनष्टः) शापः (= आक्रोशजन्यानिष्टवचन-प्रभावः) यस्य तादृशः सन्, अपि, आत्मसमीपम् = निजसन्निकटम्, न, आनीतः = प्रापितः, तत्, तव = भवतः शुकनासस्य, एव, अयम् = एषः, पुत्रः, इति, कारणादिति शेषः। अन्यत् च = इदमपि बोध्यम्, आचन्द्रकालीनायुषि—चन्द्रस्य (= चन्द्रापीडस्य) कालः (= जीवनसमयः, आयुः) इति चन्द्रकालः आ = मर्यादीकृत्य चन्द्रकालम्—इति, आचन्द्रकालम् भवतीति—आचन्द्रकालीनम्, आयुः (= जीवनावधिः) यस्य तादृशे, अस्मिन् = वैशम्पायनाख्यपुण्डरीके, आत्मानम् = स्वम्, स्वांशम्, स्थापयित्वा = निधाय, कृतार्थः = कृतकृत्यः, 'आत्मा वै जायते पुत्रः' इत्युक्त्या पुत्रे जाते कृतकृत्यतेति भावः, सम्प्रति = इदानीम्, अस्माद् = एतस्माद् अस्माभिरधिष्ठिताद्,

---

उसी समय पर पास पहुँच कर कपिञ्जल ने शुकनास से कहा—"भगवान् महर्षि श्वेतकेतु ने आर्य (शुकनास) के लिये इस प्रकार का सन्देश दिया है—'इस पुण्डरीक को मैंने केवल बड़ा ही किया है, पाला-पोसा ही है। लेकिन बेटा तो तुम्हारा ही है। और इस (पुण्डरीक = वैशम्पायन) का भी आप लोगों पर ही स्नेह है। अतः यह (पुण्डरीक) वैशम्पायन ही है—ऐसा समझकर अविनय = अशिष्टाचरणों से दूर रखना है। यह दूसरा है अर्थात् अपना वैशम्पायन नहीं है—ऐसा मानकर उपेक्षित नहीं करना है। और जो शापरहित होते हुए भी इसे मैं अपने पास नहीं ले आया, वह भी, यह तुम्हारा ही है—ऐसा समझ कर। और भी, चन्द्र = चन्द्रापीड के समान अनन्तकाल की आयुवाले इसमें अपने को स्थापित करके कृतार्थ हो गया हूँ। अब इस दिव्य लोक से भी ऊपर

---

१. आचन्द्रसमकालीनायुषि। २. सम्प्रति—इदं नापि पठ्यते।

'स्माद्दिव्यलोकादप्युपरिष्टाद्गन्तुमुद्यतं मे सत्त्वाख्यं ज्योतिः' इति। शुकनासस्तु विनयावनतं पुण्डरीकं पाणिनांसेऽवलम्ब्य कपिञ्जलं प्रत्यवादीत्—'कपिञ्जल! सकलजगदाशयज्ञेन सता भगवता किमित्यादिष्टम्? सर्वथा स्नेहस्यायमसन्तोषः।' इत्येवंविधैश्च पूर्वजन्मवृत्तान्ता'नुस्मरणालापैः परस्परालोकनसुखोत्फुल्ललोचनानां सर्वेषामेव तेषामचेतितैव सा क्षणदा प्रभाता[3]। प्रातरेव च सकलगन्धर्वलोकानुगतौ समं मदिरागौरीभ्यां चित्ररथ-हंसौ गन्धर्व-

---

दिव्यलोकात् = सुरलोकाद्, अपि, उपरिष्टाद् = उपरि, उच्चैः, गन्तुम् = प्रयातुम्, मे=मम श्वेतकेतोः, सत्त्वाख्यम्—सत्त्वम् आख्या यस्य तादृशम्, ज्योतिः = प्रकाशः, आत्मतत्त्वमिति भावः, उद्यतम् = उद्युक्तम्, वर्तत इति शेषः, इतिः = कथनसमाप्तौ। शुकनासः, तु, विनयावनतम् = विनयेनावनम्रम्, पुण्डरीकम्, पाणिना = स्वकरेण, अंसे = स्कन्धदेशे, अवलम्ब्य = आश्रित्य, धृत्वेति भावः, कपिञ्जलम् = पुण्डरीकस्य मित्रम्, प्रत्यवादीत् = प्रत्युक्तवान्। सकलजगदाशयज्ञेन = समस्तसंसारस्य प्राणिनां हृद्गतभावविज्ञानवता, सता = महर्षिणा श्वेतकेतुना, किम्, इत्यादिष्टम् = पूर्वोक्तः सन्देशः प्रदत्तः? सर्वथा = सर्वप्रकारैः, अयम् = एषः, तेन सन्दिष्टः, स्नेहस्य = प्रीतेः, असन्तोषः = अपरितृप्तिः। सर्वज्ञतया सः श्वेतकेतुः अस्माकं सर्वमाशयं वेत्ति एव, तथापि तेन यदादिष्टं तत्तु केवलमस्मासु तस्य स्नेहप्रदर्शनमात्रमेव बोद्धव्यमिति तद्भावः।

इत्येवंविधैश्चेति। इति, एवंविधैः = एतादृशैः, पूर्वोक्तैः, पूर्वेत्यादि—पूर्वजन्मनाम् (= प्राक्कालिकजन्मनाम्), अनुस्मरणस्य (= पुनः स्मरणस्य) आलापैः (= भाषणैः) परस्परेत्यादिः—परस्परस्य (= अन्योन्यस्य) यद् अवलोकनम् (= दर्शनम्) तेन यत् सुखम् (= आनन्दः) तेन उत्फुल्लानि (= विकसितानि) लोचनानि (= नेत्राणि) येषां तादृशानाम् सर्वेषाम् = सकलानाम्, एव, तेषाम् = तत्रोपस्थितजनानाम्, सा, क्षणदा = रात्रिः, अचेतिता = अज्ञाता, एव, प्रभाता=प्रभातरूपेण परिणता, समाप्तिमुपगता। प्रातः=प्रत्यूषे, एव, च, सकलेत्यादि—सकलाः (= सर्वे) च ते गन्धर्वलोकाः (= देवयोनिविशेषजनाः) तैः अनुगतौ (= अनुसृतौ, सहितौ) मदिरा-गौरीभ्याम् = कादम्बर्याः महाश्वेतायाश्च जननीभ्याम्, समम् = सार्धम्, चित्ररथ-हंसौ = कादम्बर्याः महाश्वेतायाश्च जनकौ गन्धर्वराजौ, अपि, तत्रैव = तस्मिन् अच्छोद-

---

जाने के लिये मेरी सत्त्व नामक ज्योति तैयार बैठी है।' शुकनास ने विनय से झुके हुए पुण्डरीक को हाथ से सम्भाल कर (पकड़ कर) कपिञ्जल से कहा—'समस्त संसार के लोगों के चित्त की बात को जानने वाले महर्षि भगवान् श्वेतकेतु ने यह आदेश क्यों दे दिया? यह सर्वथा स्नेह का असन्तोष है अर्थात् पुण्डरीक पर उनका असीमित स्नेह है।' इस प्रकार से पूर्वजन्मों के वृत्तान्तों के स्मृति-सम्बन्धी वार्तालाप के द्वारा परस्पर देखने के सुख से खिले हुए नेत्रों वाले उन सभी लोगों का ध्यान ही नहीं हुआ कि रात्रि समाप्त हो गई। और प्रातःकाल ही समस्त गन्धर्व लोगों से अनुगत (सहित) मदिरा (कादम्बरी की माता) और गौरी (महाश्वेता की माता) के साथ गन्धर्वराज चित्ररथ

---

१. अस्मद्। २. संस्मरण०। ३. प्रयाता।

राजावपि तत्रैवाजग्मतुः। आगतयोश्च तयोर्लज्जितात्मजोपगममुदितहृदययोर्जामातृदर्शन-समुत्फुल्लवदनयोस्तारापीडशुकनासाभ्यां सहानुभूतसम्बन्धकोचितसंवादकथयोः सहस्रगुण इव महोत्सवः प्रावर्तत।

अथ प्रवर्तमान एव तस्मिंश्चित्ररथस्तारापीडमवादीत्—'विद्यमाने स्वभवने किमर्थमयमरण्ये महोत्सवः क्रियते? अपि च, यद्यप्यस्माकमयमेव परस्पराभिरुचिनिष्पन्नो धर्म्यो विवाहस्तथापि लोकसंव्यवहारोऽनुवर्तनीय एव। तद्गम्यतां तावदस्मदीयमवस्थानम्।

तत्रै, एव, आजग्मतुः = आयातौ। चित्ररथस्य हंसापेक्षया विशेषाभ्यर्हितत्वेन पूर्वनिपातो बोध्यः। आगतयोः = तत्र सम्प्राप्तयोः, तयोः = चित्ररथ-हंसयोः, लज्जितेत्यादिः—लज्जिते (= व्रीडामुपगते) ये आत्मजे (= सुते) तयोः उपगमेन (= सम्प्राप्त्या) मुदितम् (= आनन्दितम्, प्रहृष्टम्) हृदयम् (= चित्तम्) ययोस्तादृशयोस्तयोः, जामात्रित्यादिः—जामात्रोः (= कन्यापत्योः) दर्शनेन (= विलोकनेन) सम्फुल्ले (= प्रमुदिते) वदने (= आस्ये) ययोस्तादृशयोः, तारापीड-शुकनासाभ्याम् = चन्द्रापीड—वैशम्पायनापरनामपुण्डरीकपितृभ्याम्, सह = सार्धम्, अनुभूतेत्यादिः—अनुभूतः (= अनुभवविषयीकृतः) यः सम्बन्धकः (= परस्परं सम्बन्धः) तस्य उचिता (= योग्या) संवादकथा (= मिथोवार्तालापः) ययोस्तादृशयोः, चित्ररथ-हंसयोः, सहस्रगुणः = सहस्रसङ्ख्यया गुणितः, इव, महोत्सवः = महामहः, विवाहोत्सव इत्यर्थः, प्रावर्तत = प्रारब्धोऽभूत्।

अथेति। अथ = तदनन्तरम्, तस्मिन् = विवाहमहोत्सवे, प्रवर्तमाने = सञ्जायमाने सति, एव, चित्ररथः = कादम्बर्याः पिता, तारापीडम् = चन्द्रापीडस्य जनकम्, अवादीत् = अवोचत्। किन्तदिति वर्णयति—विद्यमाने इत्यादिना। स्वभवने = निजसदने अस्मदीये राजभवने इत्यर्थः, विद्यमाने = वर्तमाने, सति, अरण्ये = कानने, अयम् = एषः, महोत्सवः = विवाहोत्सवः, किमर्थम् = कस्मै प्रयोजनाय, कस्मात्कारणाद् वा, क्रियते = विधीयते? अपि च = अन्यत् च, यद्यपि, अस्माकम् = गन्धर्वाणाम्, अयम् = एषः, एव, परस्परेत्यादिः—परस्परस्य (= अन्योन्यस्य) या अभिरुचिः (= अभिलाषः, प्रीतिः) तया निष्पन्नः (= सञ्जातः), धर्म्यः = धर्मादनपेतः, धर्मानुमोदित इत्यर्थः। कन्यायाः वरे वरस्य च विवाहः = परिणयः, कन्यायां परस्परं या अभिरुचिर्जाता तया निष्पन्नो विवाह एवास्माकं गन्धर्वाणां धर्मयुक्तो भवतीति भावः, तथापि = एवं स्थितावपि, लोकसंव्यवहारः = सांसारिकाचारः, अनुवर्तनीयः = अनुसरणीयः, परिपालनीयः एव। तद् = तस्मात्, तावत्, अस्मदीयम् = आस्माकीनम्, अवस्थानम्

(कादम्बरी के पिता) और हंस (महाश्वेता के पिता) भी वहीं पर आ गये। आये हुए, (उन दोनों के) लजाती हुई अपनी पुत्रियों के मिलने के कारण अत्यन्त प्रसन्न चित्त वाले तथा जामाताओं के दर्शन के कारण खिले हुए मुखों वाले, तारापीड और शुकनास के साथ सम्बन्धियों (समधियों) के योग्य वार्तालाप करते हुए होने पर वह (विवाह) महोत्सव हजारों गुना सा होने लगा।

इसके बाद उस महोत्सव के प्रारम्भ हो जाने पर चित्ररथ ने तारापीड से कहा—'अपना राजभवन रहने पर वन में यह महोत्सव क्यों किया जा रहा है?' और भी, यद्यपि हम लोगों का परस्पर अभिरुचि (लगाव, प्रेम) से हुआ विवाह धर्मसम्मत है फिर भी लौकिक संव्यवहार =

ततः स्वभूमिं चन्द्रलोकं वा गमिष्यथ ।' तारापीडस्तु तं प्रत्यवादीत्—'गन्धर्वराज ! यत्रैव निरतिशयं सम्पत्सुखं तदेव वनमपि भवनम् । तदीदृशं क्वापरत्र मया सम्पत्सुखं प्राप्तम् ? अन्यच्च सम्प्रति[1] सर्वगृहाण्येव मया जामातरि ते संक्रामितानि । तद्वयस्य ! वधूसमेतं तमेवादाय गम्यतां गृहसुखानुभवाय' इति । चित्ररथस्तु तथाभिहितो "राजर्षे[2]! यथा ते रोचते" इत्युक्त्वा चन्द्रापीडमादाय हेमकूटमगात् । गत्वा च चित्ररथः कादम्बर्या सह समग्रमेव स्वं राज्यं चन्द्रापीडाय न्यवेदयत् । पुण्डरीकायापि समं महाश्वेतया निजपदं हंसः । तौ तु

= निवासस्थानं हेमकूटपर्वत इत्यर्थः, गम्यताम् = प्रचल्यताम् । ततः = विवाहकृत्यसम्पादनान्तरम्, स्वभूमिम् = निजराजधानीमुज्जयिनीम्, वा = अथवा, चन्द्रलोकम् = चन्द्रस्य लोकम्, गमिष्यथ = प्रचलिष्यथ । चन्द्रापीडः चन्द्रस्यैवावतार इति मत्वाऽत्र चन्द्रलोकगमनं कथितम् । तारापीडः=चन्द्रापीडस्य जनकः, तु, तम्=चित्ररथं कादम्बरीजनकम्, प्रत्यवादीत्=प्रत्यवोचत्—गन्धर्वराज ! यत्र=यस्मिन् स्थाने, एव, निरतिशयम् = अत्यधिकम्, सम्पत्सुखम् = वैभवजन्यं सुखम्, भवतीति शेषः, तद्, एव, वनम् = काननम्, अपि, भवनम् = सदनम्, भवति । तत् = तस्मात्, ईदृशम् = एतादृशमनुभूयमानम्, पुत्रस्य पुनर्जीवनरूपम्, सम्पत्सुखम् = सम्पन्नताजन्यं सुखम्, मया = तारापीडेन, क्व = कुत्र, अपरत्र = अस्माद् भिन्ने स्थाने, प्राप्तम् = लब्धम् । एवञ्चेदं स्थानमेवास्मत्कृते भवनं वर्तत इति त्वया ज्ञेयम् । अन्यत् च = इदमपि बोध्यम्, सम्प्रति = इदानीम्, मया = तारापीडेन, ते = तव चित्ररथस्य, जामातरि = कन्यापतौ चन्द्रापीडे चन्द्रे वा, सर्वगृहाणि = सकलसदनानि, एव, संक्रामितानि = समर्पितानि । तत् = तस्मात्, वयस्य ! = सखे चित्ररथ !, वधूसमेतम् = कादम्बरीसहितम्, तम् = स्वजामातारं चन्द्रापीडम् एव, आदाय = नीत्वा, गृहसुखानुभवाय = राजभवनसौख्योपभोगाय, गम्यताम् = व्रज्यताम्, भवतेति शेषः । इतिः = कथनसमाप्तौ । चित्ररथः = कादम्बरीपिता, तु तथा = पूर्वोक्तरूपेण, अभिहितः = कथितः, 'राजर्षे = हे तारापीड !, ते = तुभ्यम्, यथा = येन प्रकारेण, रोचते = प्रीतिकरं प्रतीयते, इति, उक्त्वा = कथयित्वा, चन्द्रापीडम्, आदाय = सार्धं नीत्वा, हेमकूटम् = गन्धर्वराजधानीम्, अगात् = अगमत् । गत्वा = तत्र यात्वा, च, चित्ररथः, कादम्बर्या = स्वकन्यया, सह = सार्धम्, समग्रम् = सकलम्, एव, स्वम् = निजम्, राज्यम् = आधिपत्यम्, चन्द्रापीडाय = जामात्रे, न्यवेदयत् = समर्पितवान् । हंसः = महाश्वेतायाः पिता, महाश्वेतया, समम् =

रीतिरिवाज का पालन तो करना ही चाहिए । अतः हम लोगों के स्थान (भवन) में चलें । इस [विवाह सम्पन्न होने] के बाद अपनी भूमि = उज्जयिनी अथवा चन्द्रलोक चले जायें ।" (यह सुनकर) तारापीड ने उन्हें उत्तर दिया—'हे गन्धर्वराज ! जहाँ पर निरतिशय = सर्वाधिक सम्पत्-सुख मिले वही वन भी भवन होता है । इसलिए किस दूसरे स्थान पर इस प्रकार का सम्पत्सुख प्राप्त [हुआ है] ? और दूसरी बात यह है कि अभी-अभी मैंने सभी भवन तुम्हारे दामाद को समर्पित कर दिये हैं । इसलिए हे मित्र, वधू (कादम्बरी) के साथ उस (चन्द्रापीड) को ही ले जाकर भवनसुखों का अनुभव करने के लिये जाइये ।" इस प्रकार से कहे गये चित्ररथ—"हे राजर्षि ! आपको जैसा अच्छा लगे [वही किया जाय]'—ऐसा कहकर चन्द्रापीड को साथ लेकर हेमकूट चले गये । वहाँ जाकर चित्ररथ ने कादम्बरी के साथ-साथ अपना सम्पूर्ण राज्य चन्द्रापीड को दे दिया । और हंस ने भी महाश्वेता के साथ-साथ अपना पद = राज्य पुण्डरीक को भी दे दिया ।

१. सर्वसुखान्येव । २. राजर्षिणा ।

हृदयरुचितवधूलम्भमात्रकेणैव कृतार्थौ न किञ्चिदप्यपरं प्रत्यपद्येताम्।

अन्यदा जन्माभिवाञ्छितहृदयवल्लभलाभमुदिता सर्व-स्वजनमध्यो[1]पगमननिर्वृतापि कादम्बरी बाष्पोत्तरललोचना विषण्णमुखी वासभवनगतं चन्द्रापीडमूर्तिं चन्द्रमसमप्राक्षीत्—"आर्यपुत्र, सर्वे खलु वयं [2]मृताः सन्तः प्रत्युज्जीविताः परस्परं संघटिताश्च। सा पुनर्वराकी पत्रलेखास्माकं मध्ये न दृश्यते। न विद्मः किं तस्याः केवलाया वृत्तम् ?" इति। चन्द्रापीड-मूर्तिश्चन्द्रमाः तच्छ्रुत्वा [3]प्रीतान्तरात्मा तां प्रत्यवादीत्—"प्रिये, कुतोत्र सा ? सा हि खलु

सार्धम्, निजपदम् = स्वाधिपत्यम्, पुण्डरीकाय = स्वजामात्रे, अपि, न्यवेदयत् = समर्पितवान्। तौ = चन्द्रापीड-पुण्डरीकौ, तु, हृदयेत्यादिः—हृदये (= चित्ते) रुचिते (= अभिलषिते, प्रीतिजनिके) ये वध्वौ (= पत्न्यौ) तयोः उपलम्भः (= प्राप्तिः) एव तन्मात्रकेण, एव, कृतार्थौ = कृतकृत्यौ, सन्तुष्टौ, किञ्चिद्, अपि, अपरम् = तद्भिन्नम्, न, प्रत्यपद्येताम् = स्वीकृतवन्तौ।

अन्यदेति। अन्यदा = अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित् समये, जन्मेत्यादिः—जन्मनि (= जीवने) अभिवाञ्छितः (= आकाङ्क्षितः) यो हृदयवल्लभः (= प्राणप्रियः) तस्य लाभः (= सम्प्राप्तिः) तेन मुदिता (= प्रहृष्टा), सर्वेत्यादिः—सर्वे (= सकलाः) च ये स्वजनाः (= आत्मीयलोकाः) तेषां मध्ये, उपगमेन (= समागमेन) निर्वृता (= सुखिता), अपि, कादम्बरी, बाष्पेत्यादिः—बाष्पेण (= अश्रुसलिलेन) उत्तरले (= चञ्चले, अतीवार्द्रे) लोचने (= नेत्रे) यस्याः सा तादृशी, विषण्णमुखी—विषण्णम् (= खिन्नम्) मुखम् (= आननम्) यस्याः सा तादृशी, सती, वासभवनागतम् = विश्रामसदने सम्प्राप्तम्, चन्द्रापीडमूर्तिम्—चन्द्रापीडः मूर्तिः (= शरीरम्) यस्य तं तादृशम्, चन्द्रापीडशरीरधारिणमित्यर्थः, चन्द्रमसम् = चन्द्रम्, अप्राक्षीत् = पृष्टवती—हे आर्यपुत्र ! सर्वे = सकलाः, वयम्, खलु = निश्चयेन, मृताः = उपरताः, मृत्युमुपगताः, सन्तः, प्रत्युज्जीविताः = पुनर्जीविताः, परस्परम् = मिथः, संघटिताः = मिलिताः, च, स्मः। पुनः = परन्तु, सा, वराकी = दीना, तपस्विनी, पत्रलेखा = एतन्नाम्नी चन्द्रापीडस्य सेविका, अस्माकम्, मध्ये, न, दृश्यते = विलोक्यते। न, विद्मः = जानीमः, केवलायाः = एकाकिन्याः, तस्याः = पत्रलेखायाः, किम् = अज्ञातम्, वृत्तम् = जातम् ? इतिः = कथनसमाप्तौ। चन्द्रापीडमूर्तिः = चन्द्रापीडशरीरधारी, चन्द्रः = निशापतिः, तत् = कादम्बरीवचनम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, प्रीतान्तरात्मा = मुदितचित्तः, सन्, ताम् = कादम्बरीम्, प्रत्यवादीत् = प्रत्यवोचत्—प्रिये ! = वल्लभे !, सा = पत्रलेखा, अत्र = अस्मिन् लोके, कुतः = कस्मात् कारणात्, किमर्थं

किन्तु उन दोनों ने तो मनचाही वधुओं की प्राप्ति से ही कृतकृत्य = सन्तुष्ट होते हुए दूसरी कोई भी वस्तु स्वीकार नहीं की।

किसी दूसरे समय में, जन्म = जीवन में अभिलषित हृदयवल्लभ (पति) के मिल जाने से प्रसन्न और अपने सभी स्वजनों के मध्य में पहुँचने = रहने के कारण निश्चिन्त होती हुई भी आसुओं से डबडबाई आँखों वाली उदास मुख वाली होती हुई कादम्बरी ने वासभवन में आये हुए चन्द्रापीड-शरीरधारी चन्द्रमा से पूछा—"आर्यपुत्र ! हम सभी लोग मर कर पुनर्जीवित हो गये और आपस में मिल भी गये हैं। किन्तु वह बेचारी पत्रलेखा ही हम लोगों के बीच में नहीं दिखाई देती है। पता नहीं उस अकेली का क्या हुआ है ? चन्द्रापीडशरीरधारी चन्द्रमा उसकी बात सुनकर प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे—"प्रिये ! वह अब यहाँ कैसे होगी ? वह तो मेरे दुःख में

१. उपगमन०। २. वयं खलु। ३. अदित०।

[1]मद्दु:खदु:खिनी रोहिणी शप्तं मामुपश्रुत्य–'कथं त्वमेकाकी मर्त्यलोकनिवासदु:खमनुभवसि ?' इत्यभिधाय निवार्यमाणापि मया [2]प्रथमतरमेव मच्चरणपरिचर्यायै मर्त्यलोके जन्माग्रहीत् । इतश्च[3] जन्मान्तरं गच्छता मया तदुपरमसममुन्मुक्तशरीरा पुनरपि मर्त्यलोकमवतरन्ती बलादा[4]वर्ज्यात्मलोकं[5] विसर्जिता । तत्र पुनस्तां द्रक्ष्यसि" इति । कादम्बरी तु तच्छ्रुत्वा रोहिण्यास्तयो[6]दारतया स्नेहलतया महानुभावतया पति[7]व्रततया पेशलतया च विस्मितहृदया परं लज्जिता न किंचिदपि वक्तुं शशाक ।

वा भवतीति शेष: । सा = पत्रलेखा, हि = निश्चयेन, मद्दु:खदु:खिनी = मम चन्द्रस्य कष्टेन कष्टवती सती, रोहिणी = चन्द्रस्य पत्नी, माम् = चन्द्रम्, शप्तम् = शापग्रस्तम्, उपश्रुत्य = समाकर्ण्य, 'कथम् = केन प्रकारेण, त्वम् = भवान्, एकाकी = अद्वितीय: असहाय:, मर्त्यलोकनिवासदु:खम् = मर्त्यलोकवसतिकष्टम्, अनुभवसि = अनुभवविषयीकरोषि इति = इत्थम् अभिधाय = उक्त्वा, मया = चन्द्रेण, निवार्यमाणा = निषिध्यमाना, अपि, प्रथमतरम् = मत्त: पूर्वम्, एव, मच्चरणपरिचर्यायै = मम पादयो: सेवार्थम्, मर्त्यलोके = भूलोके, जन्म = जनिम्, अग्रहीत् = गृहीतवती । इत: = अस्मात् स्थानात्, च, जन्मान्तरम् = अन्यत् जन्म, भवान्तरम्, गच्छता = व्रजता, प्राप्नुवता, मया = चन्द्रेण, तदुपरमसमम् = तस्य (= चन्द्रापीडस्य) उपरम: (= मरणम्) तेन समम् (= साकम्) क्वचित्तु—मदुपरमसमम्' इति पाठः, तस्य—मम = चन्द्रस्य उपरमेण सह' इत्यर्थ:, उन्मुक्तशरीरा = परित्यक्तदेहा, पुनरपि = भूयोऽपि, मर्त्यलोकम् = भूलोकम्, अवतरन्ती = अवतारं गृह्णन्ती, बलाद् = हठात्, आवर्ज्य = वर्जनां कृत्वा, निषिध्य, आत्मलोकम् = स्वकीयं चन्द्रलोकम्, विसर्जिता = प्रेषिता । तत्र = चन्द्रलोके, ताम् = पत्रलेखाशरीरधारिणीं रोहिणीम्, पुन: = भूय:, प्रेक्ष्यसि = अवलोकयिष्यसि, इति: = कथनसमाप्तौ । कादम्बरी तु, तत् = चन्द्रापीडोक्तम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, रोहिण्या: = चन्द्रपत्न्या:, तया = अनुभूतया, उदारतया = औदार्येण, स्नेहलतया = वत्सलतया, महानुभावतया = महाप्रभावतया, पतिव्रततया = पातिव्रत्येन, पेशलतया = सहृदयतया, च, विस्मितहृदया = आश्चर्यचमत्कृतचित्ता, सती, परम् = अत्यन्तम्, लज्जिता = व्रीडाप्राप्ता, किञ्चिदपि = किमपि, वक्तुम् = भाषितुम्, न = नैव, शशाक = अशक्नोत् ।

दु:खी होने वाली रोहिणी मुझे शापग्रस्त सुनकर—'तुम अकेले किस प्रकार से मर्त्यलोकनिवास के दु:ख को भोग पाओगे ।' ऐसा कहकर मेरे द्वारा मना की जाती हुई भी उसने मुझसे पहले ही मेरे चरणों की सेवा के लिये मर्त्यलोक में जन्म ले लिया था । और इस (चन्द्रापीड के शरीर) से दूसरे अर्थात् शूद्रक के जन्म को प्राप्त करने वाले मेरे द्वारा उस (चन्द्रापीड) के मरने के साथ ही शरीर को छोड़ती हुई दुबारा फिर से मर्त्यलोक में अवतार लेती हुई, वह बलपूर्वक रोक कर अपने = चन्द्रलोक पहुँचा दी गई है । अत: उसे वहीं पर दुबारा देखोगी ।" यह सुनकर कादम्बरी रोहिणी की उस उदारता, स्नेहशीलता, महानुभावता, पतिव्रतता और पेशलता=हृदय की कोमलता से आश्चर्यचकित हृदयवाली होती हुई बहुत लज्जित होती हुई कुछ भी नहीं बोल सकी ।

---

१. दु:खिता । २. प्रथममेव । ३. दिवश्च । ४. आतर्ज्य ।
५. अमरलोकम् । ६. तया तया । ७. सपतिव्रततया, पातिव्रततया ।

अत्रान्तरे जन्मद्वयाकाङ्क्षितं [1]कालप्रभोश्चन्द्रमसः कादम्बरीसम्भोगसुखमिवोपपादयितुमपससार वासरः। अनुरागपताकेवो[2]ल्लसदपरसंध्यावधूत्रपावरणायेव वितस्तार [3]वासतेयी। चन्द्रोदयाभिरामं च समग्रमेव जगदभवत्। एवं च भरेणावतीर्णायां रजन्यां चन्द्रापीडश्चिराभिलषितमुन्मीलितनयनकुवलयमुत्स्रस्तनीवीप्रसृतकरनिवारणानुबन्धमनुभूतप्रत्यालिङ्गनसुखमभि[4]प्रार्थितसुरतपरिसमाप्तित्रपासुभगं कादम्बरीप्रथमसुरतसुखमनुभूयैक-

---

अत्रान्तर इति। अत्रान्तरे = एतत्कालमध्ये, कालप्रभोः = कालस्य नियन्तुः, [सूर्यचन्द्रमसोरुदयास्ताभ्यामेव कालनियमनं भवतीति सर्वप्रसिद्धम्] चन्द्रमसः=चन्द्रस्य, जन्मद्वयाकाङ्क्षितम् = जन्मनः (= भवस्य) द्वयम् (= युग्मम्) तेनाकाङ्क्षितम् (= अभिलषितम्), कादम्बरीसम्भोगसुखम् = कादम्बर्याः रमणस्यानन्दम्, इव, उपपादयितुम् = सम्पादयितुम्, वासरः=दिवसः, अपससार = पलाययौ। दिने सम्भोगस्य वर्जनादिति बोध्यम्। अनुरागेत्यादिः—अनुरागः (=प्रीतिः) एव अनुरागः (= रक्तिमा) तस्य पताका (= वैजयन्ती), इव, उल्लसदित्यादिः—उल्लसन्ती (=प्रसीदन्ती, प्रहृष्यन्ती) या अपरसन्ध्या (=पश्चिमसन्ध्या) सा एव वधूः (=स्नुषा, नायिका) तस्याः त्रपा (= व्रीडा) तस्याः आवरणाय (= आच्छादनाय), इव, वासतेयी = निशा, वितस्तार = विस्तारं गता, प्रससार। समग्रम् = सकलम्, एव, जगत् = संसारः, चन्द्रोदयाभिरामम्-चन्द्रस्य (= निशापतेः) उदयेन (= उदितेन, आकाशमध्ये समागमनेन) अभिरामम् (=रमणीयम्) अभवत् = जातम्। एवञ्च =अनेन प्रकारेण च, रजन्याम् = निशायाम्, भरेण=भारेण, प्राबल्येन, अवतीर्णायाम् = समागतायाम्, सत्याम्, पूर्णरूपेण मध्यरात्रौ संजातायामिति भावः, चन्द्रापीडः, चिराभिलषितम् = दीर्घकालादभिवाञ्छितम्, उन्मीलितेत्यादिः—उन्मीलिते (= विकसिते) नयने (= नेत्रे) कुवलये (=नीलकमले) इव यस्मिन् तादृशम्, उत्स्रस्तेत्यादिः-उत्स्रस्ता (= स्वयमेव शिथिलीभूता) या नीवी (= स्त्रीकटिबन्धः) तस्यां प्रसृतः (= व्यापृतः, लग्नः) यः करः (= चन्द्रापीडस्य पाणिः) तस्य निवारणस्य (=वर्जनस्य, निषेधस्य) अनुबन्धः (= सातत्यम्, आग्रहः) यस्मिन् तादृशम्, अनुभूतेत्यादिः—अनुभूतम् (= अनुभवविषयीकृतम्) प्रत्यालिङ्गनस्य (= आलिङ्गनोत्तरकालिकान्यदीयसमाश्लेषणस्य) सुखम् (=आस्वादः) यस्मिन् तादृशम्, अभिप्रार्थितेत्यादिः—अभिप्रार्थितम् (= संयाचितम्, वाञ्छितम्) यत् सुरतम् (=सम्भोगः) तस्य परिसमाप्तिः (= अवसानम्) तस्मिन् या त्रपा (= व्रीडा) तया सुभगम् (= रमणीयम्), कादम्बरी-प्रथम-सुरतसुखम् = कादम्बर्याः सह प्रथमसम्भोगे जायमानं प्रमोदम्, अनुभूय =अनुभव-

---

इसी बीच में कालप्रभु = समय के नियामक चन्द्रमा के दो जन्मों के चाहे गये कादम्बरी के सम्भोग सुख को उपपादित करने = देने के लिये मानों दिन दूर हट गया। उल्लसित (प्रकट) होती हुई अपरसन्ध्या = पश्चिम सन्ध्या रूपी वधू की लाज को मानों ढकने के लिये अनुराग (= प्रेम, लालिमा) की पताका के समान रात्रि फैलने लगी। और सारा संसार चन्द्रमा के उदय से मनोहर हो गया। इस प्रकार जब रात्रि पूर्ण रूप से आ चुकी थी अर्थात् अर्धरात्रि बीत चुकी थी तब चन्द्रापीड ने कादम्बरी के प्रथम सुरत सुख—जो दीर्घकाल से अभिलषित था, जिसमें नयन-कमल खिले हुए थे, जिसमें ढीली नीवी (साड़ी या लहंगे के नारा की गांठ) को खोलने के लिये बढ़ाये गये (चन्द्रापीड के) हाथ को रोकने का अनुबन्ध = प्रयास किया जा रहा था, जिसमें आलिङ्गन-प्रत्यालिङ्गन के सुख का अनुभव किया जा रहा था, मनचाही सुरत क्रीडा की समाप्ति पर होने वाली लाज से जो और सुन्दर हो गया था, का अनुभव (भोग) करके, एक दिन के समान

---

१. क—कालं प्रभोः; ख—'कालप्रभोश्चन्द्रमसः' इति नास्ति। 　 २. उल्लाल।
३. वा रजनी, तमोवासो वासवी। 　 ४. अप्रार्थित।

दिवसमिव दशरात्रं स्थित्वा परितुष्टहृदयाभ्यां श्वशुराभ्यां विसर्जितः पितुः पादमूलमाजगाम।

आगत्य च समकालमेवानुभूतक्लेशं राजलोकमात्मसमं कृत्वा समारोपितराज्यभारः पुण्डरीके परित्यक्तसर्वस्वकार्ययोः पित्रोः पादावनुचरन् कदाचिदत्यद्भुतोत्फुल्लनयननैगमजनावलोकितो जन्मभूमिस्नेहादुज्जयिन्याम्, कदाचिद्गन्धर्वराजगौरवेणानुपमरमणीय[1]तम-

---

विषयीकृत्य, समास्वाद्य, एकदिवसम् = एकदिनम्, इव, दशरात्रम् = दशदिवसपर्यन्तम्, स्थित्वा = अवस्थितिं कृत्वा, निवासं कृत्वा, परितुष्टहृदयाभ्याम्—परितुष्टे (= सन्तुष्टे, प्रमुदिते) हृदये (= चित्ते) ययोस्तादृशाभ्याम्, श्वशुराभ्याम् = श्वश्रूश्च श्वशुरश्चेति श्वशुरौ, ताभ्याम् ['पुमान्स्त्रिया' इति सूत्रेण श्वशुर शब्दस्यैकशेषः, 'जगतः पितरौ' वितिवत्] विसर्जितः = गन्तुं समाज्ञप्तः, चन्द्रापीडः, पितुः = जनकस्य तारापीडस्य, पादमूलम् = चरणतलसमीपम्, आजगाम = आययौ।

आगत्येति। आगत्य = पितुः समीपं सम्प्राप्य, च, समकालम् = तुल्यकालम्, एव, अनुभूतक्लेशम्—अनुभूतः (= साक्षात्कृतः) क्लेशः (= कष्टम्) येन तादृशम्, राजलोकम् = नृपसमूहम्, आत्मसमम् = स्वतुल्यम्, कृत्वा = विधाय, राज्याधिकारादिसम्प्रदानेन स्वसमानं समृद्धियुक्तं च विधायेति भावः, पुण्डरीके = एतन्नामके मित्रे, समारोपित-राज्यभारः—समारोपितः (= स्थापितः, समर्पितः) राज्यभारः (= राज्यधूः) येन स तादृशः सन्, परित्यक्त-सर्वस्वकार्ययोः—परित्यक्तम् (= मुक्तम्) सर्वम् (= सकलम्) स्वम् (= निजम्) कार्यम् (= राज्यादिकर्म) याभ्यां तादृशयोः, पित्रोः = जननीजनकयोः, पादौ = चरणौ, अनुचरन् = सेवमानः, कदाचित् = कस्मिंश्चित् समये प्रसङ्गे वा, अत्यद्भुतेत्यादिः—अत्यद्भुतेन (= अत्यन्ताश्चर्येण) उत्फुल्लानि (= विकसितानि) नयनानि (= नेत्राणि) येषां तादृशा ये नैगमजनाः (= वणिग्जनाः) तैः अवलोकितः (= दृष्टः, दृश्यमानः) सन्, [इदं चन्द्रमसो विशेषणं बोध्यम्] जन्मभूमि-स्नेहात् = जन्मस्थानविषयकप्रीतेः कारणात्, उज्जयिन्याम् = अवन्तिराजधान्याम् ['एवं दशरथः प्रीतो नैगमा ब्राह्मणास्तथा' इति वाल्मीकीयरामायणस्य श्लोकटीकायां रामानुजः—नैगमाः = वाणिजः इति। वस्तुतस्तु सङ्कीर्णार्थापेक्षया 'नागरिकजना इत्येवार्थः समीचीनः, यतो हि अग्रे भूलोकनिवासिनां चर्चा नास्ति तेनात्र सामान्यजनवाची एव नैगम-शब्दः। यद्वा—नैगमाः = वेदानुयायिनः—इत्यप्यर्थः समीचीनः।] कदाचित् = कस्मिंश्चित् समये, गन्धर्वराजगौरवेण = गन्धर्वराजस्य अतीवमाहात्म्येन, अनुपमेत्यादिः—अनुपमः (= अतुलः, असदृशः), रमणीयतमः (= अतिशयेन मनोहरः) च महिमा (= माहात्म्यम्, प्रभावो वा) यस्य तादृशे,

---

ही दश रातों तक ठहर कर (अर्थात् दश दिन ऐसे बीत गये मानों एक दिन बीता हो) प्रसन्न हृदयवाले श्वशुर तथा सास द्वारा बिदा किया गया अपने पिता तारापीड के चरणों के समीप आ गया।

(वहाँ) आकर अपने साथ-साथ क्लेश को भोगने वाले सभी राजाओं को अपने समान (सुखी और परिवारयुक्त) बनाकर, पुण्डरीक के ऊपर समस्त राज्यभार सौंपकर, समस्त अपने (राज्यादि) कार्यों को छोड़ देने वाले माता-पिता के चरणों की सेवा करता हुआ, कभी आश्चर्य से फटी (फैली) आँखों वाले नैगमजनों = वणिग्जनों (वास्तव में—नागरिक जनों) द्वारा देखा गया जन्मभूमि के प्रति स्नेह के कारण उज्जयिनी में, कभी गन्धर्वराज के गौरव अर्थात् उनके प्रति

---

१. रमणीयतर, रमणीयता।

महिम्नि हेमकूटे, कदाचिदमृतपरिमलाधिवाससुरभिशिशिरसर्वप्रदेशहारिणि रोहिणीबहुमानेन चन्द्रलोके, कदाचिदहर्निशोत्फुल्लसहस्रपत्रनिवहो[1]दकवाहिनि पुण्डरीकप्रीत्या लक्ष्मीनिवास-सरसि, कादम्बरीरुच्या च सर्वत्रैवापरेष्वपि [2]रम्यतरेषु तेषु तेषु स्थानेषु तया सह जन्मद्वया-काङ्क्षयैवापरिसमाप्तान्यपुनरुक्तानि च तानि तानि न केवलं चन्द्रमाः कादम्बर्या सह, कादम्बरी महाश्वेतया सह, महाश्वेता तु पुण्डरीकेण सह, पुण्डरीकोपि चन्द्रमसा, सह

हेमकूटे = एतन्नाम्न्यां गन्धर्वराजधान्याम्, कदाचित् = कस्मिंश्चित् समये, रोहिणीबहुमानेन = रोहिणीनामक-स्वभार्याविषयकात्यादरेण, अमृतेत्यादिः—अमृतम् (= सुधा) तस्य यः परिमलः (= सौरभम्) तस्याधिवासः (= अधिवसनम्, सौरभीकरणम्) तेन सुरभिः (= सुगन्धः) शिशिरः (= शीतलः) च सर्वः (= सकलः) प्रदेशः (= स्थानम्, क्षेत्रम्) तेन हारिणि (= मनोहरे), चन्द्रलोके = चन्द्रधाम्नि, कदाचित् = कस्मिंश्चित् काले, पुण्डरीकप्रीत्या = एतन्नामक-लक्ष्मीसुतस्नेहेन हेतुना, अहर्निशेत्यादिः—अहर्निशम् (= रात्रिन्दिवम्) उत्फुल्लानि (= विकसितानि) सहस्रपत्राणि (= सहस्रदलानि कमलानि) तेषां निवहः (= समूहः) यस्मिन् तादृशम्, उदकम् (= जलम्) वहति (= धारयति) इत्येवंशीले, लक्ष्मीनिवास-सरसि = श्रियः निवास-सरसि, श्रियः निवासस्य सरोवरे, [यद्वा—लक्ष्म्याः निवासो यस्मिन् स लक्ष्मीनिवासः = कमलम्, तस्य सरसि] कादम्बरीरुच्या = स्वप्रेयस्या इच्छानुसारेण, च, सर्वत्र, एव, अपरेषु = तद्भिन्नेषु, अपि, रम्यतरेषु = अतिशयेन मनोहरेषु, तेषु तेषु = वर्णयितु-मशक्येषु, स्थानेषु = प्रदेशेषु, तया = कादम्बर्या, सह = सार्धम्, जन्मद्वयाकाङ्क्षया = जन्म-युग्मेच्छया, द्वयोर्जन्मनोरभिलाषेण, एव, अपरिसमाप्तानि = अपरिपूरितानि, अपुनरुक्तानि = नवीनानि नवीनानि, च तानि तानि = वर्णयितुमशक्यानि सुखानि = सौख्यानि, प्रमोदान्, न, केवलम् = एकाकी, चन्द्रमाः = चन्द्रापीडशरीरधारी चन्द्रः, कादम्बर्या = स्वबल्लभया, सह = सार्धम्, अथ च, कादम्बरी = अस्याः कथायाः नायिका, महाश्वेतया = एतन्नाम्न्या स्वसख्या, सह = सार्धम्, अथ च, महाश्वेता, पुण्डरीकेण = एतन्नाम्ना स्ववल्लभेन, सह = सार्धम्, पुण्डरीकः, अपि, चन्द्रमसा = चन्द्रेण, चन्द्रापीडरूपधारिणा चन्द्रेण, सह = सार्धम्, परस्पराबियोगेन=अन्योन्यस्य

आदरभाव के कारण अनुपम और सर्वाधिक रमणीय महिमावाले हेमकूट पर्वत पर, कभी (अपनी पत्नी) रोहिणी के प्रति बहुत सम्मान प्रकट करने के कारण अमृत की सुगन्ध से सुगन्धित और शीतल समस्त प्रदेशों के द्वारा मनोहारी चन्द्रलोक में, कभी पुण्डरीक के प्रति प्रेम के कारण दिनरात खिले हुए कमलों (सहस्रपत्रों) के समूह से युक्त जलप्रवाह-युक्त लक्ष्मी के निवासस्थल सरोवर में, और कादम्बरी की रुचि के अनुसार और दूसरे उन सभी रमणीय स्थानों में उस कादम्बरी के साथ दोनों ही जन्मों में चाह (अभिलाषा) के कारण समाप्त (पूरे) न होने वाले तथा नित नये उन-उन सुखों को, न अकेला चन्द्रमा कादम्बरी के साथ (अपितु) कादम्बरी महाश्वेता के साथ, महाश्वेता

---

१. मोद, निवहोद । २. रम्यवनेषु तेषु तेषु ।

परस्परावियोगेन सर्वं एव सर्वकालं [1]सुखान्यनुभवन्तः परां कोटिमानन्दस्याध्यगच्छन् ।

[।। [2]इति बाणभट्टसुत-पुलिन्दभट्टापरनाम-भूषणभट्टेन पूरिता कादम्बरी ।।]

अवियोगेन=अविरहेण = संयोगेनेति भावः, सर्वे = पूर्वोक्ताः सकलाः, एव, सर्वकालम्=समग्रसमयम्, सुखानि = सौख्यानि, अनुभवन्तः = साक्षात्कुर्वन्तः, आनन्दस्य = प्रमोदस्य, पराम् = अत्युत्कुटाम्, कोटिम् = दशाम्, पराकाष्ठामिति भावः, अध्यगच्छन् = प्राप्नुवन्, सर्वे परमसुखिनोऽभवन्निति भावः । ग्रन्थान्ते सुखस्योल्लेखो मङ्गलार्थम् । बहूनां कर्तॄणां वर्णनाद् क्रियाया बहुवचनान्तत्वं बोध्यम् । एवञ्च पित्रा बाणभट्टेन प्रारब्धायाः अथ चापूर्णायाः कादम्बरीकथायाः समापनं तत्तनूजेन विधाय कथा परिपूरितेति सहृदयैर्बोद्धव्यमिति शम् ।

ख्याता विप्रगणाः समस्तभुवने ये कान्यकुब्जाभिधा-
स्तेष्वेवोग्रतपा ह्युदारचरितो यागाद्यनुष्ठानकृत् ।
शास्त्राभ्यासरतो युतो बुधजनैर्दाने सदा तत्पर-
श्शिष्यव्यूहसमर्चिताङ्घ्रिकमलो जातस्त्रिपाठ्यन्वयः ॥ १ ॥

अयोध्यानाथाख्योऽजनि विमलमतिकस्तत्र विबुध-
स्ततो जातः ख्यातोऽनुपमचरितः सत्यवचनः ।
सुधीः केदाराख्यो निजगुणगणैरर्जितयशाः
महात्यागी दानी दिशि दिशि जनैरर्चितपदः ॥ २ ॥

सुतस्तदीयोऽनुपमोऽद्वितीयो 'बनारसीलाल' पदाभिधानः ।
चारित्र्यवैदुष्यगुणैः प्रसिद्धिं ह्यवाप्तवानेष समस्तभूमौ ॥ ३ ॥

शिवा शिवस्येव तु यस्य पत्नी 'सियादुलारी'ति पदप्रसिद्धा ।
सुसेव्य मध्येऽस्यजदस्य सार्धं प्रसूय नाना सुतकान् सुसाध्वी ॥ ४ ॥

पुण्डरीक के साथ, पुण्डरीक भी चन्द्रमा के साथ, सभी लोग परस्पर में बिना बिछुड़े हुए सारे समय, सुख को भोगते हुए आनन्द की पराकाष्ठा (चरमसीमा) पर पहुँच गये ।

[।। इस प्रकार बाणभट्टपुत्र भूषणभट्ट द्वारा कादम्बरी कथा का उत्तरभाग पूर्ण किया गया ।।]

१. सर्वसुखानि, सुखम् ।

२. यद्यप्युपलब्धेषु ग्रन्थेषु न क्वापि पुष्पिकेयमीदृशो विलोक्यते, एतत्तु तथ्यम् । यतो हि बाणभट्टसुतेनादावेवेदं प्रतिज्ञातं यत् अवशिष्टकथा-पूरणार्थमेव मयाऽयं प्रबन्धो विलिख्यते । अतः स्वनामोल्लेखनस्यावश्यकता तेन नानुभूता । परन्तु आधुनिकसम्पादकैस्तस्यानुल्लेखः कोष्ठकेऽपि न कृत इति न समीचीनं न वा न्याय्यमत एव मयाऽत्र लोकानां ज्ञानाय परम्परा-संरक्षणाय चेयं पुष्पिका कोष्ठके समुल्लिखितेति बोध्यम् ।

पित्रोरभूदखिल-पुण्यतपःप्रभावान्मध्यः सुतः सरलधीः 'जयशङ्कराख्यः'।
काशीमुपेत्य विबुधोत्तमप्राप्तशिक्षः कादम्बरीं विवृतवान् निजमोदहेतोः ॥ ५ ॥

विश्वेश्वरस्य दयया कृपया गुरूणां ह्याशीर्बलेन सुकृतेन च स्वीयपित्रोः।
कादम्बरी-विवरणेन सहोत्तरांशः पूर्णोऽर्पितोऽस्ति शिवयोरनुरञ्जनाय ॥ ६ ॥

कृपया विश्वनाथस्य सङ्कटमोचनस्य च।
गुरुपितृ-प्रसादेन व्याख्येयं पूर्णतामगात् ॥ ७ ॥

ज्येष्ठमासेऽसिते पक्षे नवम्यां भृगुवासरे।
कादम्बरी नवा व्याख्या सम्पूर्णा 'भावबोधिनी' ॥ ८ ॥

॥ इति आचार्य-जयशङ्कर-लाल-त्रिपाठि-विरचितायां 'भावबोधिनी'-संस्कृत-व्याख्यायां भूषणभट्टविरचितायाः कादम्बर्या उत्तरभागः सम्पूर्णः ॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

कृपया विश्वनाथस्य सङ्कटमोचनस्य च।
गुरु-पितृ-प्रसादेन कृता व्याख्या नवा धिया ॥
ज्येष्ठमासेऽसिते पक्षेऽमावस्यायां बुधे दिने।
कादम्बर्युत्तरार्धस्य हिन्दी-व्याख्यापि पूरिता ॥

॥ जयशङ्कर लाल त्रिपाठी द्वारा विरचित 'भावबोधिनी-हिन्दी-व्याख्या' में कादम्बरी का उत्तरार्ध भाग पूर्ण हुआ ॥

परिशिष्टम्

विशेषविवरणानि

अच्छोदाख्यं सरःपुराणे श्रूयते

एतन्नामकं सरोवरं कस्मिन् पुराणे वर्णितमिति न स्पष्टं ज्ञायते। बाणभट्ट-कल्पितमिदं नाम। अत एवोत्तरभागे 'श्रूयते' इति प्रयोगो दृश्यते।

अग्निशौचमंशुकम्

अग्निना शौचं शुद्धिर्यस्य तदग्निशौचम्। साधारणं वस्त्रं मलिनं सज्जले प्रक्षालितं शुद्धयति इदं वस्त्रं वह्नौ क्षिप्तं सदैव दीप्तवर्णं निष्क्रामति। अस्य वस्त्रस्य चर्चा मार्कण्डेयपुराणे दुर्गासप्तशत्याम्—

"वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी।"

किङ्किरातः

किङ्किरं रक्तवर्णत्वमतति पुष्पकाले इति किङ्किरातोऽशोकवृक्षः।

किङ्किरातो हिमस्तिक्तः कषायश्च हरेदसौ।

कफपित्तपिपासास्रदाहशोषवमिक्रिमीन् ॥ (भावप्रकाशे)

त्रिशङ्कोश्च शापवशाच्चाण्डालभावः

त्रिशङ्कुः सूर्यवंशीयराजविशेषः। एष वशिष्ठमाह—'अहं शरीरेणानेन स्वर्गं गन्तुं यजेयम्', वशिष्ठ 'एतदशक्यमि'त्युवाच। ततो राजा तस्य पुत्रानुवाच—'सशरीरो यज्ञेन स्वर्गं यथाप्नुयां तथा कुरुत, यद्यहं भवद्भिः परित्यक्तस्तथा सत्यन्यं गुरुमुपासिष्ये।' वशिष्ठपुत्रास्तच्छ्रुत्वा राजानमूचुः-भगवान् वशिष्ठो यदशक्यमाह तदस्माभिः कथं कर्तुं शक्यम्। राजोवाच—'यष्टुमन्यां गतिं गमिष्यामि। तच्छ्रुत्वा ऋषिपुत्रा राजानं शेपुः—'श्वश्चाण्डालो भविष्यसि'। ततस्तस्यां रात्र्यामतीतायां स चाण्डालदर्शनो भूत्वा विश्वामित्रं शरणमाययौ। (इयं कथा रामायणे प्राप्यते)

दन्तक्षतम्

सुरतक्रीड़ा में दन्ताघात के स्थान निर्दिष्ट हैं। यथा—

'स्तनयोर्गण्डयोश्चैव ओष्ठे चैव तथाधरे।

दन्ताघातः प्रकर्त्तव्यः कामिनीनां सुखावहः ॥' इति कामशास्त्रम्।

द्रुघणः

द्रुः=वृक्षः हन्यतेऽनेनेति द्रुघणः = कुठारः। 'करणेऽयोविद्रुषु' इत्यप्प्रत्ययः घनादेशश्च। 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' इति णत्वम्। यथोक्तम्—

'द्रुघणस्त्वायसाङ्गः स्याद् वक्रग्रीवो बृहच्छिराः। पञ्चादशाङ्गुलोत्सेधो मुष्टिसम्मितमण्डलः ॥

अस्य चतस्रः क्रियाः—उन्नामनं प्रपातश्च स्फोटनं दारणं तथा।

चत्वार्येतानि द्रुघणे बल्गितानि श्रितानि वै ॥'

नखक्षतम्

सुरतक्रीड़ा में नखाघात का भी शास्त्रीय विधान है, उसके स्थान निर्दिष्ट हैं। यथा—

नखाघातः प्रदातव्यो यथास्थानानि कर्मसु। पार्श्वयोः स्तनयोश्चैव ऊर्वोश्चैव नितम्बके॥
वक्षःस्थले च कर्णान्ते कपोले बाहुमूलके। ग्रीवायां कण्ठदेशे च नखाघातं समाचरेत्॥
तथा सर्वशरीरेषु नखं दद्याच्छनैः शनैः॥ (इति कामशास्त्रम्।)

प्रधानस्य परिणामः

सांख्यमतानुसारं सत्त्वरजस्तमसां त्रयाणां गुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः। प्रकृतिरेव प्रधानम्। यदा चैतेषु गुणेषु न्यूनाधिकभावो जायते तदैव सृष्टिर्भवतीति बोध्यम्। अयं च न्यूनाधिकभावः प्राणिकर्मानुसारेण भवति। अयमेव च प्रधानस्य परिणाम इत्युच्यते। विस्तरस्तु सांख्यतत्त्वकौमुद्यादिग्रन्थेषु द्रष्टव्यः।

महेन्द्रपदवर्त्तिनो नहुषस्य राजर्षेरगस्त्यशापादजगरता नहुषशापवृत्तान्तो महाभारते—३।१८

'अहं हि दिवि दिव्येन विमानेन चरन् पुरा। अभिमानेन मत्तः सन् किञ्चिन्नान्यदचिन्तयन्॥
ब्रह्मर्षि-देव-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-पन्नगाः। करान्मम प्रयच्छन्ति सर्वे त्रैलोक्यवासिनः॥
चक्षुषा यं प्रपश्यामि प्राणिनं पृथिवीश्वर। तस्य तेजो हराम्याशु तद्धि दृष्टेर्बलं मम॥
ब्रह्मर्षीणां सहस्रं हि उवाह शिबिकां मम। स मामपनयो राजन् भ्रंशयामास वै श्रियः॥
तत्र ह्यगस्त्यः पादेन वहन् स्पृष्टो मया मुनिः। अगस्त्येन ततोऽस्म्युक्तो ध्वंस सर्पेति वै रुषा॥
ततस्तस्माद्विमानाग्रात्प्रच्युतश्च्युतभूषणः। प्रपतन् बुबुधे त्मानं व्यालीभूतमधोमुखम्॥

आयुषस्य पुत्रः ययातेश्च पिता नहुषश्चन्द्रवंशोयोतिबली राजासीत्। वृत्रवधाद् ब्रह्महत्यादोषदूरीकरणार्थं यदा देवराज इन्द्रो जलमध्ये आत्मशुद्ध्यै प्रायतत तदा रिक्ते इन्द्रस्य राजसिंहासने देवैर्नहुषः प्रतिष्ठापितः। तत्रारूढः गर्वेण इन्द्राणीं कामयामास। तस्या आदेशेन सप्तर्षिव्यूढायां शिबिकायामासीनः स अगस्त्यं शीघ्रं गन्तुं 'सर्प सर्प' इत्युक्तवान्। क्रुद्धेनागस्त्येन 'त्वं सर्पो भव' इति शप्तम्। ततश्च स सर्पयोनौ पतितवान्।

रणरणकः

रणरणकः—उत्कण्ठा। यथा उत्तररामचरिते भवभूतिः—"सैवेयं रणरणकदायिनी चित्रदर्शनाद्विरहभावना देव्याः स्वप्नोद्देशं करोति।"

वैद्युतानलः

निरुक्तेऽग्निस्त्रिविधः प्रतिपादितः—पार्थिवाग्निः, अन्तरिक्षाग्निः, द्युलोकाग्निश्च। पृथिव्यामग्निरूपेण, आकाशे सूर्यरूपेण जले च विद्युद्रूपेण वर्तते। पार्थिवाग्निः जलेन शाम्यति किन्तु जलीयाग्निस्तु जलसम्पर्केण वर्धते। अत एव कामिजनानां वर्षाकाले दाहो जायते इति बोध्यम्।

शापदोषादष्टानामपि वसूनामुत्पत्तिः

देवीभागवते—२।३ इयं कथा लिखिता—

'एतस्मिन् समये चाष्टौ वसवः स्त्रीसमन्विताः । वशिष्ठस्याश्रमं प्राप्ता रममाणा यदृच्छया ॥
पृथ्वादीनां वसूनाञ्च मध्ये कोपि वसूत्तमः । द्यौर्नाम्ना तस्य भार्याथ नन्दिनीं तां ददर्श ह ॥
दृष्ट्वा पतिं सा पप्रच्छ कस्येयं धेनुरुत्तमा । द्यौस्तामाह वशिष्ठस्य गौरियं शृणु सुन्दरि ॥
दुग्धमस्याः पिबेद्यस्तु नारी वा पुरुषोऽथवा । अयुतायुर्भवेन्नूनं सदैवागतयौवनः ॥
तच्छ्रुत्वा सुन्दरी प्राह मर्त्यलोकेऽस्ति मे सखी । उशीनरस्य राजर्षेः पुत्री परमशोभना ॥
तस्या हेतोर्महाभागः सवत्सां गां पयस्विनीम् । आनयस्वाश्रमश्रेष्ठं नन्दिनीं कामदां शुभाम् ॥
यावदस्याः पयः पीत्वा सखी मम सदैव हि । मानुषेषु भवेदेका जरारोग-विवर्जिता ॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा द्यौर्जहार च नन्दिनीम् । अवमत्य मुनिं दान्तं पृथ्वाद्यैः सहितोऽनघः ॥
हृतायामथ नन्दिन्यां वशिष्ठस्तु महातपाः । आजगामाश्रमपदं फलान्यादाय सत्वरः ॥
नापश्यत्स यदा धेनुं सवत्सां स्वाश्रमे मुनिः । वारुणिश्चापि विज्ञाय ध्यानेन वसुभिर्हृताम् ॥
वसुभिर्मे हृता धेनुर्यस्मान्मामवमत्य वै । तस्मात्सर्वे भविष्यन्ति मानुषेषु न संशयः ॥
एवं शशाप धर्मात्मा वसूंस्तान् वारुणिः स्वयम् । श्रुत्वा विमनसः सर्वे बभूवुर्दुःखिताश्च ते ॥
शप्ताः स्म इति जानन्त ऋषिं तमुपचक्रमुः । प्रसादयन्तस्तमृषिं वसवः शरणं गताः ॥
मुनिस्तानाह धर्मात्मा वसून्दीनान्पुरःस्थितान् । अनुसंवत्सरं सर्वे शापमोक्षमवाप्स्यथ ॥
येनेयं विहृता धेनुर्नन्दिनी मम वत्सला । तस्माद् द्यौर्मानुषे लोके दीर्घकालं वसिष्यति ॥
ते शप्ताः पथि गच्छन्तो गङ्गां दृष्ट्वा सरिद्वराम् । ऊचुस्तां प्रणताः सर्वे शप्ताः चिन्तातुरां नदीम् ॥
भविष्यामो वयं देवि कथं देवाः सुधाशनाः । मानुषाणाञ्च जठरे चिन्तेयं महती हि नः ॥
तस्मात्त्वं मानुषी भूत्वा जनयास्मान्सरिद्वरे । शन्तनुर्नाम राजर्षिस्तस्य भार्या भवानघे ॥
जातान् जातान् जले चास्मान् विनिक्षिप सुरापगे । एवं शापविनिर्मोक्षो भविता नात्र संशयः ॥
तथेत्युक्ताश्च ते सर्वे जग्मुर्लोकं स्वकं पुनः । गङ्गापि निर्गता देवी चिन्तयमाना पुनः पुनः ॥

सौदासस्य च वशिष्ठसुतशापान्मानुषादत्वम्

सौदासः इक्ष्वाकुवंशीयोऽयोध्याधिपतिरासीत् । स पुरा मृगयां चरन् एकं राक्षसमवधीत् । अस्य राक्षसस्य भ्राता वैरशोधनं चिकीर्षुः सूदरूपधरोऽस्य राज्ञो गृहं प्रत्युवास । एकदा त्वसौ राक्षसो भोक्तुकामाय नृपतेः सौदासस्य गुरुपुत्राय नरामिषं पक्त्वा ददौ । वशिष्ठपुत्रस्तु तद्दृष्ट्वाऽभोज्यमतिक्रुद्धः सन् राक्षसो भवेति राजानमशपत् । इयं कथा महाभारते १।१७७

सत्त्वाख्यं ज्योतिः

सत्त्वगुणस्वरूपं ब्रह्मभूयम् । यथाह भगवद् गीतायाम्—'ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः' इति ।

भूषणभट्टस्य कानिचित् सुभाषितानि

अत्र तावदनेकभव-सुकृतसहस्राधिगम्यं मानुष्यमेव दुर्लभम् । (पृ० ४०७)

अनतिक्रमणीया नियतिः । (पृ० ३९३)

अनुपात्तं हि हृदयताडनमपि कुर्वद्भिर्न लभ्यत एवात्रात्मेच्छया । (पृ० ३५८)

अमोघ्यं तातचरणशुश्रूषासुखम् । (पृ० ३२–३३)

आजन्मक्रमाहितो बलवाञ्जननीस्नेहः । (पृ० ३२)

एकल्लवामृतरसास्पदचन्द्रपादसम्पर्क एव हि मृगाङ्कमणेद्रवाय । (पृ० ६)

किमस्ति कश्चिदसावियति लोके यस्य निर्विकारं यौवनमतिक्रान्तम् । (पृ० १९६)

केन कदा वावलोकितो ज्योत्स्नारहितश्चन्द्र । (पृ० १०२)

गङ्गां प्रविश्य भुवि तन्मयतामुपेत्य स्फीताः समुद्रमितरा अपि यान्ति नद्यः । (पृ० ७)

गुरवो हि दैवतं बालानाम् । (पृ० २०२)

जीवितफलं प्रियतमामुखावलोकनम् । (पृ० ३३)

तपसो हि सम्यक् कृतस्य नास्त्यसाध्यं नाम किंचित् । (पृ० ३१४)

ददाति हृदयेवकाशमत्युदारता । (पृ० ११२)

दुस्त्यजा जन्मभूमिः । (पृ० ३३)

न खलु वैदिकानामवैदिकानां वा कर्मणामसाध्यं नाम किञ्चित् । (पृ० ३७३)

न राजते एव सहकारकुसुममञ्जरीपरिग्रहमन्तरेण सर्वजनसुलभोऽपि कुसुममासः । (पृ० १०२)

नवरागपल्लवोद्गमलीलान्तर्विशेषदुश्चरितचक्रवर्तिनि तारुण्यावतारे सर्वस्यैव विषमतर-विषय-मार्गपतितस्य स्खलितमापतति । (पृ० २०१)

परत्र फलदायी कुत्रोपयुज्यते परमार्थः ? (पृ० २०४)

परिणामेऽपि पुण्यवतां केषांचिदेव हि केशैः सह धवलिमानमापद्यन्ते चरितानि । (पृ० २००)

पीडा च सुखैकहेतोर्वल्लभजनादेवासम्भाव्या या समुत्पाद्यते तयैव हि न किंचिन्न क्रियते ? (पृ० १८३)

प्रभावी मन्मथहतकः । (पृ० ३३)

प्रसिद्धिरत्रायशसे यशसे वा दोषगुणाश्रया वा फलवती । (पृ० २०४)

बलवती खलु वल्लभ-जनसंगमाशा । (पृ० ५५)

भृत्या अपि त एव ये सम्पत्तेर्विपत्तौ सविशेषं सेवन्ते । (पृ० ३४१)

मृदुस्वभावमपि जलमिव मुक्ताफलतामुपगतं कठिनीभवत्युत्कण्ठितं हृदयमबलाजनस्य । (पृ० ५५)

यत्रैव निरतिशयं सम्पत्सुखं तदेव वनमपि भवनम् । (पृ० ४६८)

यथैवाशिषो गुरुजनवितीर्णा वरतामापद्यन्ते, तथैवाक्रोशाः शापताम् । (पृ० २०२)

यस्यामेव वेलायां चित्तवृत्तिः सैव वेला सर्वकार्येषु । (पृ० २१३)

यादृशाद् वै जायते तादृगेव भवति । (पृ० ४०२)

येषां च भक्ष्याभक्ष्यनियमोऽस्ति तेषामप्यापत्काले प्राणानां सन्धारणमभक्ष्योपयोगेनापि तावद् विहितम् । (पृ० ४३९)

यौवनावतारे हि शैशवेनैव सह गलति गुरुजनस्नेहः । (पृ० १९६)

राजा कालस्य कारणम् । (पृ० १९६)

वज्रसारकठिनहृदयैरपि दुर्विषहाः स्मरेषवः । (पृ० ८३)

विकाराणां च कारणं प्रायः सरसता । (पृ० १९७)

विधिर्निर्मापरः कोऽप्यन्यत्रास्ते यत् तस्मै रोचते तत्करोति । (पृ० ३५८)

विलसति च कुसुममार्गणे केन कार्येण छिद्रसहस्राणि न भवन्ति यैः सत्वमेवाधस्ताद् व्रजति । (पृ० १९९)

शरणागतपरित्राणं हि तपस्विनामपि धर्म एव । (पृ० २७६–७७)

सत्यमेव गरीयः खलु जीविवालम्बनमिदं विनोदश्च वियोगिनीयां यदुत सङ्कल्पमयः प्रियः ।(पृ०२०)

सर्व एव हि जगति जन्मनो वयस आकृतेर्वा सदृशमाचरन्न वचनीयतामेति । (पृ० २६७)

सर्व एव ह्यविनयप्रवृत्तोऽनुतापाद् विना न निवर्तते । (पृ० ४४२)

सर्वाभिवाञ्छितप्राप्तिस्तु पुण्यराशेः फलम् । (पृ० ३६०)

सर्वोऽपि प्रत्याशया धार्यते । (पृ० १०३)

स्वप्नायमानानामपि यद् गुरूणां मुखेभ्यो निष्क्रामति शुभमशुभं वा शिशिषु तदवश्यं फलति । (पृ० २०१-२)

प्राप्तिस्थानम्-कृष्णदास अकादमी, पो० बा० ११६८, वाराणसी-१

ISBN : 81-218-0009-9 Rs. 225-00